

जैनाचार्य-जैनधर्मदिनाकर-पूज्यश्री-घासीशठजी-महाराज-
विरचितया-पीयूषपरिषण्यारयया व्याख्यया समद्रष्टृतम्

हिन्दीगुर्जरभाषानुनामहितम्

औपपातिक-सूत्रम् ।

AUPAPAATIKA SUTRA

नियोजक

संस्कृत-प्राकृतज्ञ-जैनागमनिष्ठात-भियव्याख्यानि-
पण्डितमुनि. श्रीकन्हैयालालजी-महाराजः ।

☆

प्रकाशक

अ. मा. श्वे. म्या. जैनशास्त्रोद्धार-समिति-प्रमुखः
श्रेष्ठि-श्रीशान्तिनाथ-मङ्गलदासमार्ड - महोदयः

मु. राजकोट (सोराष्ट्र)

प्रथम आवृत्ति प्रति १०००

वीर सवत २४८५

*

विक्रम सवत २०१५

ईस्वीसन् १९५९

☆

मूल्यम्-रु १२-००

विषय	पृष्ठ
२१ भगवान के शिष्यों का बाह्याभ्यन्तर तप-उपधान का वर्णन ।...	२०३-३०६
२२ भगवान महावीर स्वामी के अनेकविध शिष्यों का वर्णन ।	३०६-३२१
२३ असुरकुमार देवों का भगवान के समीप आगमन, और उनका वर्णन	३२२-३३०
२४ नागकुमारादि भवनवासी देवों का भगवान के समीप आगमन, और उनका वर्णन ।	३३१-३३३
२५ व्यन्तर देवों का भगवान के समीप आगमन, और उनका वर्णन ।	३३४-३३८
२६ ज्योतिष्क देवों का भगवान के समीप आगमन, और उनका वर्णन ।	३३९-३४१
२७ भगवान के समीप वैमानिक देवों का आगमन, और उनका वर्णन ।	३४२-३४६
२८ चम्पा नगरी के वासी लोगो का भगवान के दर्शन की उत्सुकता, और उनका भगवान के समीप जाना ।	३४७-३६३
२९ प्रवृत्तिव्यापृत द्वारा कूणिक का भगवान के आगमन का परिज्ञान, और राजा कूणिक द्वारा प्रवृत्ति व्यापृत का सत्कार ।	३६३-३६५
३० राजा कूणिक-द्वारा बलव्यापृत (सेनापति) का आह्वान, और उसे हाथी, घोड़ा, रथ आदि तथा नगर के सजवाने का आदेश ।	३६६-३६९
३१ बलव्यापृत-द्वारा हस्तिव्यापृत को हाथी-सजाने का आदेश और हस्तिव्यापृत-द्वारा हाथियों का सजाना ।	३७०-३७७
३२ बलव्यापृत-द्वारा यानशालिक को यान-सजाने का आदेश, और यानशालिक-द्वारा यानों को सजाना ।	३७७-३८२
३३ बलव्यापृत-द्वारा नगरगुप्तिक को नगर सजाने का आदेश, और नगरगुप्तिक-द्वारा नगर को सजाना ।	३८३-३८५
३४ आभिषेक्य हस्तिरत्न-आदि का निरीक्षण कर, बलव्यापृत का कूणिक राजा के पास जा कर उन्हें भगवान के दर्शन के लिये जाने की प्रार्थना करना ।	३८५-३८८
३५ कूणिक राजा का व्यायामादि करके स्नान करना, दण्डनायक आदि से परिवेष्टित हो गजराज पर आरूढ़-होना, और सभी प्रकार के ठाट-घाट के साथ भगवान के दर्शन के लिये प्रस्थान करना, उचित प्रतिपत्ति के साथ भगवान के समीप पहुँचना, और पर्युपासना करना ।	३८८-४३५

३६ सुभद्रा आदि रानियों का अपनी २ दामी आदि परिवार के साथ सज-धज कर पूर्णभद्र उद्यान में भगवान के दर्शन के लिये उचित प्रतिपत्ति में माथ जाना और रूढ़ी २ भगवान की पशुपामना करना ।	४३५-४४२
३७ भगवान की धर्मदेशना ।	४४२-४७३
३८ अनगार-वर्म की निरूपणा ।	४७४-४८३
३९ भगवान के पाम चहुतों की प्रमज्या लेना और चहुतों का गृहस्थ धर्म स्वीकार करना ।	... ४८४-४८६
४० परिषद का अपने २ स्थान पर जाना ।	४८६-४८८
४१ कृष्णिक राजा का अपने स्थान पर जाना ।	४८९-४९०
४२ सुभद्रा-आदि रानियों का अपने २ स्थान पर जाना	... ४९१-४९३

॥ इति समवसरण नामक पूर्वार्ध की विषयानुक्रमणिका ॥

॥ अथ उत्तरार्ध की विषयानुक्रमणिका ॥

१ गौतमस्वामी का वर्णन ।	४९४-४९८
२ गौतमस्वामी का भगवान के समीप जाना ।	... ४९९-५०२
३ पापकर्म के विषय में गौतमस्वामी का प्रश्न, और भगवान का उत्तर ।	५०२-५०३
४ मोहनीय कर्म के ग्रन्थ के विषय में गौतमस्वामी और भगवान का प्रश्नोत्तर ।	... ५०४
५ मोहनीय कर्म के वेदन करते हुए के कर्मग्रन्थ के विषय में गौतमस्वामी और भगवान का प्रश्नोत्तर ।	५०५-५०६
६ त्रस-प्राणघातियों के नरक में उपपात के विषय में गौतम और भगवानका प्रश्नोत्तर ।	५०७
७ असयतों के उपपात-विषय में गौतम स्वामी और भगवान का प्रश्नोत्तर, तथा असयतों के देवरूप में उपपात होने में भगवान द्वारा हेतु का कथन ।	५०८-५१२
८ अण्डवदक-आदि के विषय में गौतम और भगवान का प्रश्नोत्तर ।	५१३-५२०
९ प्रकृतिभद्रक-आदि के उपपात-विषय में गौतम और भगवान का प्रश्नोत्तर ।	५२१-५२३

कर वे देश, समाज सभीका कल्याण करते थे, और अपने इहलोक और परलोक की सिद्धि को भी प्राप्त करते थे ।

द्वितीय भाग में भगवान् गौतमस्वामी और भगवान् महारारका प्रभोत्तर-रूप सवाद है । इस सवाद के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि किन कर्मों से जीव नरकगामी होते हैं, किन कर्मों से देवलोकगामी होते हैं, और कैसे सिद्धिगामी होते हैं ।

इस प्रकार यह सूत्र परमोपादेय है । वर्णन की दृष्टि से यह तो समस्त जैनागमों का वर्णनकोश ही है । क्यों कि अन्य आगमों में जहाँ कहीं भी नगर, वैश्य, राजा, रानी आदिको वर्णन आता है, वहाँ सक्षेप में ही आता है, और वहाँ 'औपपातिक सूत्र' से ही वर्णनात्मक सन्दर्भ लेनेके लिये निर्देश किया जाता है । इस दृष्टि से भी इसकी अत्यन्त उपादेयता है । सभी जीव सर्वदा यही चाहते हैं कि 'सर्वदा मे सुख भूयाद् दुःख माऽस्तु कदा च न' अर्थात्-मुझे सर्वदा सुख मिले, दुःख कभी भी नहीं मिले । सुख अहिंसादि सत्कर्म से या आत्यन्तिक कर्मविमोक्ष से ही मिलता है, और दुःख हिंसादि असत्कर्मों से मिलता है । नरकादिक दुःख जिन कर्मों से मिलते हैं तथा देवलोकैकिक सुख जिन कर्मों से मिलते हैं उन कर्मोंका परिज्ञान इस शास्त्र के अध्ययन से होता है । ज्ञपरिज्ञा से सुखदायी और दुःखदायी कर्मा को जानकर जीव प्रत्याख्यान-परिज्ञा से दुःखदायी कर्मा को छोड़कर, आसेवनपरिज्ञा से सुखदायी कर्मोंका आसेवन करता है, और क्रमिक आत्मविशुद्धि से सिद्धिगामी होता है । इस दृष्टि से तो इसकी उपयोगिता अद्वितीय ही है ।

ऐसे अनुपम इस सूत्र की सर्वजनगम्य व्याख्या की नितान्त आवश्यकता थी । इस अभावको दूर करने के लिये पूज्य श्री १००८ घासीलालजी म सा ने इस सूत्र की 'पीयूषवर्षिणी' नामक सरल सस्कृत व्याख्या रची है । जो साधारण सस्कृतज्ञों के लिये भी सुबोध है । हिन्दी और गुर्जर-भाषी जनताको इस सूत्रका अभिप्राय सरलतया ज्ञात हो, इसलिये इसका हिन्दी-गुर्जर अनुवाद भी किया गया है । इस प्रकार मूल, सस्कृत व्याख्या, हिन्दी और गुजराती अनुवाद-सहित यह 'औपपातिकसूत्र' मुद्रित हो कर आप शास्त्रप्रेमी महानुभावों के समक्ष प्रस्तुत है । आप इस के स्वाध्याय से अपने जीवन का चरम उत्कर्ष साधन कर इस दुर्लभ मानव जीवन को सफल करे, यही हमारी आन्तरिक भावना है । इति शम् ।

કા ૧૦,૦૦૦ આપનાર આદ્ય મુરબીશ્રી.
સમિતિના પ્રમુખ; દાનવીર શેઠશ્રી



શેઠ ગાતિલાલ મ ગળદાસલાઈ
અ મ દા વા દ

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ-રચિત

સૂત્રોની ટીકા

શ્રી-વધ્માન-શ્રમણ-સંઘના આચાર્ય

પૂજ્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ

આ પે લ

સ મ મ તિ પ ત્ર

☆

તે મ જ

અન્ય મહાત્માઓ, મહાસતીજીઓ, અદ્યતન-પદ્ધતિવાળા કોલેજના પ્રોફેસરો

તે મ જ

શાસ્ત્રજ્ઞ શ્રાવકોના અભિપ્રાયો.

૭ શ્રીમ લોજ પાસે
ગરેડીયા કુવારોડ
રાજકોટ સૌરાષ્ટ્ર

શ્રી અખિલ ભારત ઋવે સ્થા જૈન-
શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

(श्री दशवैकालिकसूत्रका सम्मतिपत्र.)

॥ श्रीवीरगौतमाय नम ॥



सम्मति-पत्रम्.

मए पडियमुणि-हेमचंदेण य पडिय-मूलचन्दवास-चारा पत्ता पडियरयण-
मुणि-घासीलाळेण विरइया सकय-हिंदी-भापार्हि जुत्ता सिरि-दसवेयालिय-नाम-
सुत्तस्स आयारमणिमजूसा वित्ती अवलोइया, इमा मणोहरा अत्थि । एत्थ सद्दाण
अइसयजुत्तो अत्थो वण्णिंओ, विडजणाण पाययजणाण य परमोवयारिया इमा वित्ती
दीसइ । आयारविसए वित्तीकत्तारेण अइसयपुव्व उरलेहो कडो, तद्दा अहिंसाए
सख्ख जे जद्दा-तद्दा न जाणति तेसिं इमाए वित्तीए परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा
पत्तेयविसयाणं फुडरूवेण वण्णाण ऋड, तद्दा मुणिणो अरहत्ता इमाए वित्तीए अव-
लोयणाओ अइसयजुत्ता सिज्झइ । सकयछोया सुत्तपयाण पयच्छेओ य सुवोहदायगो
अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा वित्ती दट्ठ्वा । अम्हाण समाजे एरिसविज्ज-मुणिर-
यणाण सब्भावो समाजस्स अहोभग्ग अत्थि । किं ? उच्चविज्जमुणिरयणाण कारणाओ,
जो अम्हाण समाजो सुत्तप्पाओ, अम्हकेर सादिच्च च लुत्तप्पाय अत्थि, तेसिं
पुणोवि उदओ भविस्सइ, जस्स कारंणाओ भोवियप्पा मोक्खस्स जोग्गो भवित्ता
पुणो निव्वाण पाविहिइ । अओह आयारमणि-मजूसाए कत्तुणो पुणो पुणो
धन्नावाय देसि- ॥

वि स १९९० फागुन-
शुक्लत्रयोदशी-मङ्गले
(अलवर स्टेट)

इइ-
उवज्जाय-जइण-मुणी आयारामो
(पचनइओ)

जैनागमवेत्ता जैनधर्मदिवारु उपाध्याय श्री १००८ श्री आत्मारामजी
 महाराज तथा न्याय व्याकरण के ज्ञाता परम-पण्डित मुनिश्री १००७
 श्री हेमचन्द्रजी महाराज, इन दोनों महात्माओंका दिया हुआ
 श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रका प्रमाणपत्र निम्न प्रकार है—

सम्मइवत्तं

सिरि-वीरनिव्वाण-सवच्छर २४५८ आसोई
 (पुण्णमामी) १५ सुक्खारो छहियाणाओ ।

मए मुणिहेमचदेण य पंडियरयणमुणिसिरि-वासीलालविणिम्मिया सिरि-उवासगमुत्तस्स
 अगारधम्मसजीवणी-नामिया नित्ति पडियमूलचन्द वासाओ अज्जोवत सुयासमीईण, इय वित्ती
 ज्हाणाम तथा गुणेवि धारेइ, सच्च, अगाराण तु इमा जीवण (मज्जमजीवण) दाई एव अथि ।
 त्रित्तिरुत्तुणा मूलमुत्तस्स भावो उज्जुसेलीओ फुडीरुओ, अहय उवासयस्स सामण्णविसेसधम्मो,
 णयसियवायवाओ, कम्मपुरिसट्टवाओ, समणोवासयस्स धम्मददत्ता य, इच्चाइविसया अस्सि
 फुडरीइओ वण्णिया, जेण रुत्तुणो पट्टिहाए सुट्टुप्पयारेण परिचओ होइ, तह इइहासदिट्ठिओवि
 सिरिसमणस्स भगवओ महावीरस्स समए वट्टमाण-भरहवासस्स य कत्तुणा विसयप्पयारेण
 चित्त चित्तित, पुणो सक्खयपाटीण, वट्टमाणकाले हिन्दीणामित्थाए भासाए भासीण य परमोव-
 यारो कडो, टमेण कत्तुणो अरिहत्ता दीसइ, कत्तुणो एय रुज्ज परमप्पमसणिज्जमत्थि । पत्तेय-
 जणस्स मञ्जत्थभावाओ अस्स सुत्तस्स अवलोयणमर्दव लाहप्पय, अवि उ सावयस्य उ
 इम सत्थ सव्वस्समेव अत्थि, अओ कत्तुणो अणेगकोडीसो धन्नवाओ अत्थि, जेहि अच्चतप-
 रिस्समेण जट्टणजणतोवरि असीमोवयारो कडो, अह य सावयस्य वारस नियमा उ पत्तेयजणस्स
 पट्टगिज्जा अत्थि, जेसि पहावओ वा गहणाओ आया निव्वाणाहिगारी भवइ, तथा भवियव्व-
 यावाओ पुरिसकारपरकमवाओ य अवस्समेव दसणिज्जो, किं बहुणा ! इमीसे वित्तीए पत्तेयविस-
 यस्स फुडसदेहिं वण्णय कय, जइ अज्जोवि एव अम्हाण पसुत्तप्पाए समाजे विज्ज भवेज्जा
 तथा नाणस्स चरित्तस्स तथा सघस्स य ख्लिप्प उदओ भविस्सइ, एव ह मन्ने ॥

भवईओ—

उवज्जाय-जइणमुणि-आयाराम-पंचनईओ,

सम्मतिपत्र

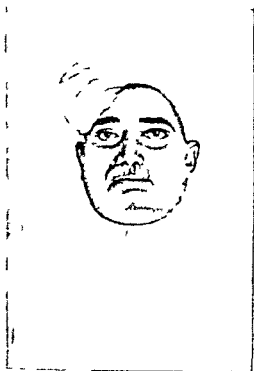
(भाषान्तर)

श्रीगुरुनिर्माण सं. २४५८ आसोज

शुक्ल (पूर्णिमा) १५ शुक्रवार लुधियाना

मैने और पंडितमुनि हेमचन्द्रजीने पंडितरत्नमुनिश्री घासीलालजीकी रची हुई उपासकदशाग सूत्रकी गृहस्थधर्मसजीवनी नामक टीका पंडित मूलचन्द्रजी व्याससे आद्योपान्त सुनी है। यह वृत्ति यथानाम तथागुणवाली-अच्छी बनी है। सच यह गृहस्थोंके तो जीवनदात्री-समरूप जीवनको देनेवाली ही है। टीकाकार ने मूलसूत्र के भावका सरल रीतिसे वर्णन किया है, तथा श्रावकका सामान्य धर्म क्या है ? और विशेष धर्म क्या है ? इसका सुलासा इस टीकामें अच्छे ढंगसे बतलाया है। स्याद्वादका स्वरूप कर्म-पुरुषार्थ-गद और श्रावकको धर्मके अन्दर दृढ़ता किस प्रकार रखना, इत्यादि विषयोंका निरूपण इसमें भलीभाँति किया है। इससे टीकाकारकी प्रतिभा खूब झलकती है। ऐतिहासिक दृष्टिसे श्रमण भगवान् महावीरके समय भारतवर्ष में जैनधर्म किस जाहोजलाली पर था ? इस विषयका तो ठीक चित्र ही चित्रित कर दिया है। फिर संस्कृत जाननेवालोंको तथा हिंदीभाषाके जाननेवालोंको भी पूरा लाभ होगा, क्योंकि टीका संस्कृत है उसकी सरल हिन्दी सरदी गई है। इसके पढ़नेसे कर्ताकी योग्यताका पता लगता है कि वृत्तिकारने समझानेका कैसा अच्छा प्रयत्न किया है। टीकाकारका यह कार्य परम भगवनीय है। इस सूत्रको मध्यस्थ-भावसे पढ़ने वालोंको परम लाभकी प्राप्ति होगी। क्या कहें श्रावको (गृहस्थों) का तो यह सूत्र सर्वस्व ही है, अतः टीकाकारको मोटिश धन्यवाद दिया जाता है, जिन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे जैन-जनताके ऊपर असीम उपकार किया है। इसमें श्रावकके गारह नियम प्रत्येक स्त्री-पुरुषके पढ़ने योग्य हैं, जिनके प्रभावसे अथवा यथायोग्य ग्रहण करनेसे आत्मा मोक्षका अधिकारी होता है। तथा भवितव्यतावाद और

કે ૨,૦૦૦ આપનાર આદ્ય મુગ્ધબીશ્રી



(-વ) શેઠ હરખચંદ કાલીદાસ વાઘીયા

ભાણવડ

पुरुषकारपराक्रमवाद हर-एकको अग्र्य देखना चाहिये। कहां तक रहें, इसटी कामे प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकारसे बताये गये हैं। हमारी मुप्तमाय (सोई हुईसी) समाजमे अगर आप जैसे योग्य विद्वान फिर भी कोई होंगे तो ज्ञान, चारित्र्य तथा श्रीसत्रका शीघ्र उदय होगा, ऐसा मैं मानता हूँ-

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्मराम पंजाबी.

।



इसी प्रकार लाहोरमें विराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिश्री १००८
श्री भागचन्दजी महाराज तथा प. मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी
महाराजके दिये हुए, श्री उपासकदशान्न सूत्रके
प्रमाणपत्रका हिन्दी सारांश निम्न प्रकार है-

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज-कृत श्री उपासकदशान्न सूत्रकी सस्कृत टीका व भाषाका अख्लोकन क्रिया, यह टीका अतिरमणीय व मनोरञ्जक है, इसे आपने उडे परिश्रम व पुरुषार्थसे तैयार किया है सो आप धन्यवादके पात्र हैं। आप जैसे व्यक्तियोंकी समाजमे पूर्ण आवश्यकता है। आपकी इस लेखनीसे समाजके विद्वान् साधुवर्ग पढ़कर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढ़नेसे हमको अत्यानन्द हुआ, और मनमे ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी समाजमें भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे- यह एक हमारे लिये बड़े गौरवकी बात है।

वि. स. १९८९ मा. आश्विन

कृष्णा १३ वार भौम लाहोर.

ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र की, 'अनगारधर्माऽमृतवर्षिणी' टीका पर,
 जैतद्विवाकर, साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर, परमपूज्य, अक्षय
 जैनाचार्य श्री, आत्मारामजी महाराजका ॥ १५५ ॥ ॥

सम्मतिपत्र ॥ १५५ ॥ ॥ १५५ ॥ ॥ १५५ ॥

लुधियाना, ता. ४-८-५१.

॥ १५५ ॥

मैने आचार्यश्री घासीलालजी म. द्वारा निर्मित 'अनगारधर्माऽमृतवर्षिणी' टीका वाले श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रका मुनि श्री रत्नचन्द्रजीसे आयोपान्त श्रवण किया।

यह नि सन्देह कहना पडता है कि यह टीका आचार्यश्री घासीलालजी म ने बड़े परिश्रम से लिखी है। इसमें प्रत्येक शब्दका प्रामाणिक अर्थ और कठिन स्थलों पर सार-पूर्ण विवेचन आदि कई एक विशेषतायें हैं। मूल स्थलोंको सरल बनानेमें काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा असाधारण सभी स्मृतज्ञ पाठकों को लाभ होगा, ऐसा मेरा विचार है।

मै स्वाध्यायप्रेमी सज्जनों से यह आशा करूँगा कि वे 'वृत्तिकारके' परिश्रम को सफल बनाकर शास्त्रमें दीर्घ 'अर्धमोल' शिक्षाओं से अपने जीवनको शिक्षित करते हुए परमसाध्य मोक्षको प्राप्त करेंगे।

श्रीमान्जी जयवीर

आपका सेवामे पोष्ट-द्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इसपर आचार्यश्रीजीकी जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे हैं, पहुँचने पर समाचार देवे।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म. ठाने ६ सुरतशान्तिसे विराजते हैं। पूज्य श्री घासीलालजी म. सा. ठाने ४ को हमारी ओरसे चन्द्रना अर्जकर सुखशाता पूछे।

पूज्य श्री घासीलालजी म. जी का लिखा हुआ त्रिपाकसूत्र महाराजश्रीजी देखना चाहते हैं, इसलिये १ कापी आप भेजने की कृपा करें, फिर आपको वापिस भेज देवेगे। आपके पास नहीं हो तो जहा से मिले वहासे १ कापी जरूर भिजवाने का कष्ट करें, उत्तर जल्द देनेकी कृपा करें। योग्य सेवा लिखते रहे।

लुधियाना ता ४-८-५१

निवेदक

प्यारेलाल जैन

जैनागमशरिधि - जैनधर्मदिव्यकर - उपाध्याय - पण्डित - मुनि

श्रीआत्मारामजी महाराज (पंजाब)का आचाराङ्गमूत्र 'की'

आचारचिन्तामणि टीका पर

सम्मति-पत्र ।

मैंने पूज्य आचार्यवर्य श्रीयासीलालजी (महाराज)की बनाई हुई श्रीमद् आचाराङ्गमूत्र के प्रथम अंशयन'की आचारचिन्तामणि टीका सम्पूर्ण उपयोग-पूर्वक सुनी ।

यह टीका-न्याय सिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियम से निरद्ध है । तथा इसमें प्रसंग २ पर क्रम से अन्य सिद्धान्त का संग्रह भी उचित रूप से मालूम होता है ।

टीकाकारने अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं, तथा ग्रीह विषयों का विशेषरूप से संस्कृत भाषा में स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन अधिक मनोरंजक है, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवाद के पात्र हैं ।

" मैं आशा करता हूँ कि-जिज्ञासु महोदय इसका भलीभाँति पठन द्वारा जैनागम-सिद्धान्तरूप अमृत पी-पी कर मन को हर्षित करेंगे, और इसके मनन से दस जन चार अनुयोगों का स्वरूपज्ञान पायेंगे । तथा आचार्यवर्य इसी प्रकार दूसरे भी जैनागमों के विगद विवेचन द्वारा श्वेताम्बर स्थानरवासी समाज पर महान उपकार कर यशस्वी वनेंगे ।

वि स २००२ }
शुभशर सुदि १ }

जैनमुनि-उपाध्याय आत्माराम
लुधियाना (पंजाब)

शुभमस्तु ।

वीकानेरवाला समाजभूषण शास्त्रज्ञ भेरुदानजी शेटिआका अभिप्राय

*

"आप जो शास्त्रों का कार्य कर रहे हैं, यह बड़ा उपकार का कार्य है । इससे जैनजन्ता को काफी लाभ पहुँचेगा ।

(ता २८-३-५६ का पत्र में से)

॥ श्री ॥

जैनागमवारिधि—जैनधर्मदिवाकर—जैनाचार्य—पूज्य—श्री आत्मारामजी—
महाराजाना पञ्चनद—(पञ्चात्र)स्थानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा—
मर्थबोधिनीनामकटीकायामिदम्—

सम्मतिपत्रम्.

आचार्यवर्ये श्री घासीलालमुनिभि सङ्कलिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थबोधिनी-
नाम्नी सस्कृतवृत्तिरूपयोगपूर्वक सकलाऽपि स्वशिष्यमुखेनाऽथावि मया, इयं हि वृत्तिर्मुनिवरस्य
वैदुष्य प्रकटयति । श्रीमद्विर्मुनिभि सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितु य प्रयत्नो व्यधायि तदर्थमने-
कशो धन्यवादानर्हन्ति ते । यथा चेय वृत्ति सरला सुबोधिनी च तथा सारवत्यपि । अस्या
स्वाध्यायेन निर्वाणपदमभीप्सुभिर्निर्वाणपदमनुसरद्विज्ञान—दर्शन—चारित्र्येषु प्रयतमानैर्मुनिभि
श्रावकैश्च ज्ञानदर्शनचारित्र्याणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते ।

आशासे श्रीमदाशुकविर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीजुषा विदुषा मनस्तोपाय जैनागमसूत्राणा
सारावबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्थ सरला सुस्पष्टाश्च वृत्तीविंधाय तास्तान् सूत्र-
ग्रन्थान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति ।

अन्ते च "मुनिवरस्य परिश्रम सफलयितु सरला सुबोधिनीं चेमा सूत्रवृत्तिं स्वाध्यायेन
सनाथयिष्यन्त्यवश्य सुयोग्या हसनिमा पाठका ।" इत्याशास्ते—

विक्रमाब्द २००२
श्रावणकृष्णा प्रतिपदा
लुधियाना.

उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनि ।

ऐसेही —

मध्यभारत सैलाना—निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी श्रमणोपासक
जैन लिखते हैं कि —

श्रीमान् की की हुई टीकावाला उपासकदशाग सेवक के दृष्टिगत हुवा,
सेवक अभी उसका मनन कर रहा है । यह ग्रन्थ सर्वांग—सुन्दर एवम् उच्चकोटि का
उपकारक है ।

निरयावलिकामूत्रका

आगमवारिधि-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-जैनाचार्य-पूज्यश्री
आत्मारामजी महाराजकी तरफ का आया हुआ

सम्मतिपत्र

लुधियाना ता ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत गुलाबचन्द्रजी पानाचदजी ! सादर जय जिनेन्द्र ।

पत्र आपका मिला । निरयावलिका-त्रिपय पूज्यश्रीजीका स्वास्थ्य ठीक न होने से उनके शिष्य प. श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मतिपत्र लिख दिया है, आपको भेज रहे हैं । कृपया एक कौपी निरयावलिका की और भेज दीजिये और कोई योग्य सेवा-कार्य लिखते रहें ।

भवदीय,

गुजरमल-बलवतराय जैन

॥ सम्मतिः ॥

(लेखक जैनमुनि प श्री हेमचन्द्रजी महाराज)

सुन्दरमोधिनीटीकया समलङ्कृतं हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादसहितं च श्रीनिरयावलिकासुत्र मेधाविनामल्पमेधसा चोपकारक भविष्यतीति सुहृद मेऽभिमतम्, सस्कृतटीकेय सरला सुमोधा सुललिता चात एव अन्वर्थनाम्नी चाप्यस्ति । सुविशदत्वात् सुगमत्वात् मत्येरुदुर्वोधपदव्याख्यायुतत्वाच्च टीकैषा सस्कृतसाधारण-ज्ञानवतामप्युपयोगिनी भाषिनीत्यभिप्रैमि । हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादावपि एतद्भाषाविज्ञाना महीयसे लाभाय भवेतामिति सम्यक् सभावयामि ।

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराजाना परिश्रमोऽयमशसनीयो, धन्यवादाहार्हाश्च ते मुनिसत्तमाः । एवमेव श्रीसमीरमल्लजी-श्रीकन्हैयालालजी-मुनिवरेण्ययोर्नियोजनकार्यमपि श्लाघ्य, तावपि च मुनिवरौ धन्यवादाहार्हा स्तः ।

सुन्दरमस्तावनात्रिपयानुक्रमादिना समलङ्कृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि शब्दकोपोऽपि दत्तः स्यात्तर्हि वरतर स्यात् । यतोऽस्यावश्यकता सर्वेऽप्यन्वेपकविद्वांसोऽनुभवन्ति ।

पाठकाः सूत्रस्यास्याध्ययनाध्यापनेन लेखकनियोजकमहोदयाना परिश्रमसफलविष्यन्तीत्याशास्महे । इति ।

श्री उपासकदशङ्ग सूत्र पर जैनसमाज के अप्रगण्य जैनधर्मभूषण
महान विद्वान सतो एव विद्वान धावकोने सम्मति भेजी है,
उन के नाम निम्न लिखित हैं।

- (१) लुधियाना—सम्बत् १९८९, आश्विन पूर्णिमा का पत्र, श्रुतज्ञान के भडार आगम-
रत्नाकर जैनधर्मदिवाकर श्री १००८ श्री उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज, तथा
न्यायव्याकरणवेत्ता श्री १००७ तच्छिष्य श्री मुनि हेमचन्द्रजी महाराज
- (२) लाहौर—वि० स० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डित रत्न श्री १००८
श्री भागचन्द्रजी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डितरत्न श्री १००७ श्री त्रिलोकचन्द्रजी
महाराज
- (३) खीचन से ता ९-११-३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८ श्री भारतरत्न
श्री समरथमलजी महाराज
- (४) बालाचोर—ता १४-११-३६ का पत्र, परम प्रसिद्ध भारतरत्न श्री १००८ श्री
शतावधानीजी श्री रतनचन्द्रजी महाराज
- (५) बम्बई—ता १६-११-३६ का पत्र, प्रसिद्ध कवीन्द्र श्री १००८ श्री कवि नान-
चन्द्रजी महाराज
- (६) आगरा—ता १८-११-३६, जगद-वल्लभ श्री १००८ श्री जैनदिवाकर श्री
चौधमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्री साहित्यप्रेमी प्यागचन्द्रजी महाराज
- (७) हैद्राबाद (दक्षिण) ता २५-११-३६ का पत्र, स्थविरपदभूषित भाग्यवान पुरुष
श्री ताराचन्द्रजी महाराज तथा प्रसिद्ध वक्ता श्री १००७ श्री सोभागमलजी महाराज
- (८) जयपुर—ता २६-११-३६ का पत्र, संप्रदाय के गौरववर्धक शातस्वभावी श्री
१००८ श्री पूज्य श्री खूनचन्द्रजी महाराज
- (९) अम्बाला—ता २९-११-३६ का पत्र, परम प्रतापी पञ्जाब केसरी श्री १००८
श्री पूज्य श्री काशीरामजी महाराज

- (१०) सेलाना-ता २९-११-३६ का पत्र, शाखों के ज्ञाता श्रीमान् स्तनलालजी डोमी
 (११) खीचन-ता ९-११-३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ सुश्रावक श्रीयुत्
 माधवलालजी

ता २५-११-३६

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुआ उपासकदशाग सूत्र तथा पत्र मिला। यहाँ विराजित प्रवर्तक वयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचदजी महाराज पण्डित श्री किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ मुखशांति में विराजमान हैं। आपके वहा विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी वन्दना अर्ज कर मुखशांति पूछें। आपने उपासकदशाग सूत्र के विषय में यहा विराजित मुनिवरों की सम्मति मगाई उसके विषय में वक्ता श्री सोभागमलजी महाराज ने फरमाया है कि वर्तमान में स्थानरुवासी समाज में अनेकानेक विद्वान् मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र की वृत्ति रचने का साहस जैसा घासीलालजी महाराज ने किया है वैसा अन्य ने किया हो ऐसा नजर नहीं आता। दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त उपयोगी तो यों है कि संस्कृत प्राकृत हिन्दी और गुजराती भाषा होने से चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं। जैन-समाज में ऐसे विद्वानों का गौरव बढे यही शुभकामना है। आशा है कि स्थानरुवासी सघ विद्वानों की कदर करना सीखेगा।
 योग्य लिखें, शेष शुभ।

भवदीय

जमनालाल रामलाल कीमती

आगरा से:—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्धव्रता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोथमलजी महाराज व पंडितरत्न सुव्याख्यानी गणीजी श्री प्यारचन्द जी महाराज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

श्रीमार्त्तन्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खीचन से लिखते हैं कि:-

उन पंडितरत्न महाभाग्यवत पुरुषों के सामने उनकी अगाधतत्त्वगवेषणा के विषय में-मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूँ ।

परन्तु :-

शक्ति का ज्ञान

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढ़ा है, बहुत सराहना की है। वास्तव में ऐसे उत्तम व सबके समझाने योग्य ग्रन्थों की बहुत आवश्यकता है और इस समाज का तो ऐसे ग्रन्थ ही गौरव बढ़ा सकते हैं-ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम हैं ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्रकाश से यह समाज अमानास्या के घोर अन्धकार में दीपावली का अनुभव करती हुई महावीर के अमूल्य वचनों का पान करती हुई अपनी उन्नति में अग्रसर होती रहेगी।

श्री २९-१-२६

अम्बाला (पंजाब)

ता २९-१-२६

अम्बाला (पंजाब)

पत्र आपका मिला। श्री श्री १००८ पंजाब केसरी पूज्य श्री काशीरामजी

महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया। आपकी भेजी हुई उपासकदशाज्ञ सूत्र तथा गृहधर्मकल्पतरु की एकएक प्रति भी प्राप्त हुई। दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं, ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवाने की बड़ी आवश्यकता है। इन पुस्तकों से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है। आपका यह पुरुषार्थ सराहनीय है।

आपका

शाशिभूषण शास्त्री

अध्यापक, जैन हाई स्कूल

अम्बाला शहर.

३१ ५,२५२ आपना० आद्य सुरक्षीश्री.



छ ग न लाल श म ण दा स ला व सा र
अ म दा वा ङ

शास्त्रस्वभावां वैगम्यमूर्ति तन्त्रवारिधि धैर्यवान श्री जैनाचार्य पूज्यवर श्री श्री १००८ श्री सूत्रचन्द्रजी महाराज साहेबने मूत्र श्री उपासकरुदशाङ्गजी को देखा । आपने फरमाया कि पण्डित मुनि घामीलालजी महाराज ने उपासकरुदशाङ्ग सूत्रकी टीका लिखने में चटा ही परिश्रम किया है । इस समय इस प्रकार प्रत्येक मूर्तोंकी मशोधनपूर्वक सरल टीका और शुद्ध हिन्दी अनुवात् होने से भगवान निर्गन्थों के प्रवचनों के अपूर्व रस का लाभ मित्र सकता है

*

नालाचोर से भारतस्वतन्त्रतायथानी पण्डित मुनि श्री १००८ श्री रतनचन्द्रजी महाराज फरमाते हैं कि .—

उत्तरोत्तर जोता मूल सूत्रनी मस्त्रुत टीकाओ रचवामा टीकाकारे स्तुत्य प्रयास कयों छे, जे स्थानकनासी समाज माटे मगरुदरी लेना जेवु छे, उली कराचीना श्री सवे सारा कागलमा अने सारा टाडपमा पुस्तक उपावी प्रगट कयुं छे, जे एक प्रकारनी साहित्यसेना बजावी छे

*

बम्बई अहेर में विराजमान कृपि मुनि श्री नानचन्द्रजी महागजने फरमाया है कि पुस्तक सुन्दर हे, प्रयास अच्छा है ।

*

खीचन से स्थविर क्रियापात्र मुनि श्री रतनचन्द्रजी महाराज और पण्डितस्वतन्त्र मुनि समरथमलजी महाराज फरमाते हैं कि—विद्वान महात्मा पुरुषोत्तम प्रयत्न सराहनीय है । जैनागम श्रीमद् उपासकरुदशाङ्ग सूत्र की टीका, एव उसकी सरल सुबोधनी शुद्ध हिन्दी भाषा बटी ही सुन्दरता से लिखी है ।

*

श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री श्री श्री १००८ जैनधर्मदिवाकर जैनागमरत्नाकर श्रीमज्जैनाचार्य श्री पूज्य घासीलालजी महाराज चरणवन्दन स्वीकार हो ।

अपरञ्च—समाचार यह है कि आपके भेजे हुए ९ शाख मास्टर शोभालालजी के द्वारा प्राप्त हुए, एतदर्थ धन्यवाद ! आपश्रीजीने तो ऐसा कार्य किया है जो कि हजारों वर्षों से किसी भी स्थानकवासी जैनाचार्य ने नहीं किया ।

आपने स्थानकवासी जैनसमाज के ऊपर जो उपकार किया है वह कदापि भुलाया नहीं जा सकता और नहीं भुलाया जा सकेगा ।

हम तीनों मुनि भगवान महावीर से अथवा शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि आपकी इस वज्रमयी लेखनी को उत्तरोत्तर शक्ति प्रदान करें ता कि आप जैनसमाज के ऊपर और भी उपकार करते रहे, और आप चिरञ्जीव हों ।

हम हैं आप के मुनि तीन

मुनि सत्येन्द्रदेव—मुनि लखपतराय—मुनि पद्मसेन

✽

इतवारं वाजार

नागपुर ता १९-१२-५६

प्रखर विद्वान जैनाचार्य मुनिराज श्री घासीलालजी महाराज—द्वारा जो आगमोद्धार हुआ और हो रहा है सचमुच महाराजश्री का यह स्तुत्य कार्य है । हमने प्रचारकजी के द्वारा नौ सूत्रों का सेट देखा और कई मार्मिक स्थलोंको पढा, पढकर विद्वान मुनिराजश्री की शुद्ध श्रद्धा तथा लेखनीके प्रति हार्दिक प्रसन्नता फूट पडी ।

वास्तव में मुनिराजश्री जैनसमाज पर ही नहीं, इतर समाज पर भी महा उपकार कर रहे हैं । ज्ञान किसी एक समाज का नहीं होता है, वह सभी समाज की अनमोल निधि है, जिसे कठिन परिश्रम से तैयार कर जनता के सम्मुख रक्खा जा रहा है, जिसका एक एक सेट हर शहर गांव और घरघर में होना आवश्यक है ।

साहित्यरत्न

मोहनमुनि सोहनमुनि जैन

શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્રનું સમ્મતિપત્ર.

શ્રમણમઘના મહાન આચાર્ય આગમવારિધિ સર્વતન્ત્ર સ્વતન્ત્ર જ્ઞાનાચાર્ય
પૂજ્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજે આપેલા સમ્મતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ



મે તથા પરિત મુનિ હેમચ દ્રશ્યે પરિત મૂલચંદ્રજી વ્યાસ-નાગૌર માર-
વાઠ વાળા દ્વારા મળેલી પરિન્તલ શ્રી ધામીલાલજીમુનિ વિરચિત સસ્કૃત
અને હિન્દી ભાષા મહિત શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્રની આચારમણિમજ્જ્યા ટીકાનું
અવલોકન કર્યું આ ટીકા સુદર બની છે તેમા પ્રત્યેક શબ્દનો અર્થ મારી રીતે
વિશેષ ભાવ લઈને સમજવવામા આવેલ છે

તેથી વિદાને અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે આ ટીકા પરમ ઉપકાર
કરવાવાળી છે ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો સારો ઉલ્લેખ કરેલ છે. જે
અહિંસાના સ્વરૂપને યથાર્થરૂપથી નથી બહુતા, તેમને માટે 'અહિંસા શુ
વસ્તુ છે?' તેનું સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે વૃત્તિકારે મૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને
સારી રીતે મમબવેલ છે. આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા
સિદ્ધ થાય છે

આ વૃત્તિમા એક બીજી વિશેષતા એ છે કે મૂલસૂત્રની સસ્કૃતછાયા
હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રના પદ અને પદચ્છેદ મુજોધદાયક બનેલ છે

પ્રત્યેક જ્ઞાસુએ આ ટીકાનું અવલોકન અવશ્ય કરવું જોઈએ વધારે શુ
કહેવું ? અમારા સમાજમા આવા પ્રકારના વિદાન મુનિરત્નનું હોવું એ મમાજનું
અહોભાગ્ય છે અદ્યતન સુમપ્રાય-સુતેહો મમાજ અને હુમપ્રાય એટલે હોપ પામેહુ
સાહિત્ય એ બન્નેનો આવા વિદાન મુનિરત્નોના કારણે ફરીથી ઉદય થયે જેનાથી
ભાવિતાત્મા મોક્ષને યોગ્ય બનશે અને નિર્વાણ પદને પામશે આ માટે અમે વૃત્તિકારને
વારવાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ

વિક્રમ સવત ૧૯૯૦ કાલ્શુન શુકલ
તેરમ મગળવાર
(અલ્લવર સ્ટેટ)

ધતિ

ઉપાધ્યાય જૈનમુનિ
આત્મારામ
પંચનદીય

લીબડી સ પ્રદાયના સદાનદી મુનિશ્રી છોટાલાલજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રીવીતરાગદેવે, જ્ઞાનપ્રચારને તીર્થ કરનામગોત્ર બાધવાનું નિમિત્ત કહેલ છે જ્ઞાનપ્રચાર કરનાર, કરવામા સહાય કરનાર અને તેને અનુમોદન આપનાર જ્ઞાનાવરણીય કર્મને ક્ષય કરી, કેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમપદના અધિકારી બને છે શાસ્ત્રજ્ઞ, પરમશાન્ત અને અપ્રમાદી પૂજ્યશ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ પોતે અવિશ્રાન્તપણે જ્ઞાનની ઉપાસના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગોમા પણ કરી રહ્યા છે તે માટે તેઓશ્રી અનેકથા ધન્યવાદના અધિકારી છે, વદનીય છે તેમની જ્ઞાનપ્રભાવનાની ધગશ ઘણા પ્રમાદિઓને અનુકરણીય છે જેમ પૂજ્યશ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ પોતે જ્ઞાનપ્રચાર માટે અવિશ્રાન્ત પ્રયત્ન કરે છે તેમજ-શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના કાર્યવાહકો પણ એમા સહાય કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી રહેલ છે તે પણ ખરેખર ધન્યવાદના પૂર્ણ અધિકારી છે

એ સમિતિના કાર્યકરોને મારી એક સૂચના છે કે -

શાસ્ત્રોદ્ધારક પ્રવર પડિત અપ્રમાદી સ ત ધાસીલાલજી મહારાજ જે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ કરી રહેલ છે, તેમા સહાય કરવા માટે-પડિતો વિગેરેના માટે જે ખર્ચો થઈ રહેલ છે તેને પહોંચી વળવા માટે સારૂ-સરખું ફંડ જોઈએ એના માટે મારી એ સૂચના છે કે - શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકો, જે બની શકે તો પ્રમુખ પોતે અને બીજા જે ત્રણ જણાએ, ગુજરાત, નૌરાહૂ અને કચ્છમા પ્રવાસ કરી મેમ્બરો બનાવે અને આર્થિક સહાય મેળવે

જે કે અત્યારની પરિસ્થિતિ વિષમ છે વ્યાપારીઓ, ધ ધાદારીઓને પોતાના વ્યવહાર સાચવવા પણ મુશ્કેલ બન્યા છે છતાં જો સંભાવિત ગૃહસ્થો પ્રવાસે નીડળે તો જરૂર કાર્ય સફળ કરે એવી મને શ્રદ્ધા છે

આર્થિક અનુકૂળતા થવાથી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પણ વધુ મરલતાથી થઈ શકે પૂજ્યશ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ ન્યા મુધી આ તરફ વિચરે છે ત્યાં મુધીમા એમની જ્ઞાનશક્તિનો જેટલો લાભ લેવાય તેટલો લઈ લેવો હદાય સૌરાહૂમા વધુ વખત રહેવાથી તેમને હવે બહાર વિહરવાની ઇચ્છા થતી હોય તો શાન્તિભાઈ શેઠ જેવાએ અમદાવાદ પધરાવવા માટે વિનતી કરવી, અને ત્યાં અનુકૂળતા મુજબ જે-ત્રણ વર્ષની સ્થિરતા કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પૂર્ણ કરાવી લેવું જોઈએ

થોડા વખતમા જામજોધપુરમા શાસ્ત્રોદ્ધાર કમિટી મળવાની છે તે વખતે ઉપરની સૂચના વિચારાય તો કીક

કચી શાસ્ત્રો દ્વારા પૂજ્ય ધામીલાલજી મહારાજને એમની આ મેવા અને
પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારંવાર અભિનંદન છે. શામનનાયક દેવ તેમના
યરીરાદિને મશક્ત અને નીર્ધાયુ ગણે તેથી તેઓ મમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ
મેવા ઠગી શકે એ અમતુ

ચાતુર્માસ મ્ધળ લીબડી } લિ
મ ૨૦૧૦ શાવણ વદ ૧૩ શુક્ર } મદાનદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

શ્રીવર્ધમાનમંપ્રદાયના પૂજ્યશ્રી પૂનમચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્રવિશારદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ધામીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન-
આગમો ઉપર ને મન્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે તે માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે
તેમણે આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને મ્ધાનડવાની જૈનમમાજતુ ગૌરવ
વધાર્યું છે આગમો ઉપરની તેમની મન્કૃત ટીકા, ભાષા અને ભાવની દ્રષ્ટિએ ઘણીજ
સુદર છે મન્કૃતરચના માધુર્ય તેમજ અલંકાર વગેરે શુભોચી યુક્ત છે. વિદ્વાનોએ
તેમજ જૈનસમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરેએ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ
મન્કૃતરચનાની ઠદર ઠગવી જોઈએ, અને દરેક પ્રકારનો મહકાર આપવો જોઈએ

આવા મહાન કાર્યમા પરિતરતન પૂજ્યશ્રી ધામીલાલજી મહારાજ જે
પ્રયત્ન ઠગી રહ્યા છે તે અલાઠિઠ છે તેમતુ આગમ ઉપરની મન્કૃત ટીકા વગેરે
મ્ધવાતુ લગીરવ ઠાર્ય ગીઠ્ર મકળ થાય એ શુભેચ્છા માથે

અમહાવાદ

તા ૨૨-૪-૫૬ રવિવાર,

મહાવીજયતી

}

મુનિ પૂર્ણચંદ્રજી



ખલાત સમ્પ્રદાયના મહાસતીજી ગારદાખાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય

લખતર તા ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન શેક શાતીલાલભાઈ મગળદામભાઈ

પ્રમુખ માહેબ, અખિલ ભારત સ્વે મ્ધા જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

સુ. અમહાવાદ

અમો અત્રે દેવશુન્ની દૃષ્ટિએ મુખરૂપ ઠીએ વિ.મા આપની સમિતિ-દ્વારા
પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ધામીલાલજી મહારાજ માહેબ જે સૂત્રોતુ ઠાર્ય ઠરે છે
તે પૈકીના સૂત્રોમાથી ઉપાસઠદશાગ સૂત્ર, આચારાગ સૂત્ર અતુત્તરૌપપાતિક સૂત્ર,

દશવૈકલિક સૂત્ર વિગેરે સૂત્રો જોયા તે સૂત્રો મસ્તુત હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષા
ઓમા હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને ઘણું જ લાભાયક છે તે
વાચન ઘણું જ સુદર અને મનોરજક છે આ કાર્યમા પૂજ્ય આચાર્યશ્રી જે અગાધ
પુરુષાર્થથી કાર્ય કરે છે તે માટે વારવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે આ સૂત્રો સમાજને
ઘણું લાભવુ કારણ છે

હંસ-સમાન ભુદ્ધિવાળા આત્માઓ સ્વપરના લેદ્ધી નિખાલમ ભાવનાએ
અવલોકન કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનઠવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ
લેવા જેવું છે માટે દરેક લગ્ય આત્માઓને સૂચન કરૂ છું કે આ સૂત્રો ચોતપોતાના
ઘરમા પસાવવાની સુદર તકને ચૂકરો નહિ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપરપન
ને પુષ્ટીરૂપ સૂત્રો મળવા બહુ સુરકેલ છે આ કાર્યમા આપશ્રી તથા સમિતિના અન્ય
કાર્યકરો જે શ્રમ લઈ રહ્યા છે તેમા મહાન નિર્જરાનુ ડારણુ જોવામા આવે છે
તે બદલ ધન્યવાદ. એજ

લી શારદાબાઈ સ્વામી

ખલાત સપ્રદાય



બરવાળા ન પ્રદાયના વિદુષી મહાસતીજી મોઘીબાઈ
સ્વામીનો અભિપ્રાય

ઘણુકા તા ૨૭-૧-૫૬

શ્રીમાનશેઠ શાન્તીલાલ મગળદાસ

પ્રમુખ ને ભા પ્રવે તથા ત્રેનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ

સુ રાજકોટ

અત્રે ધિરાજતા શુ શુ ના ભ હાર મહામતીજી વિદુષી મોઘીબાઈ સ્વામી
તથા હીરાબાઈ આદિ ઠાણા બન્ને મુખશાતામા ધિરાજે છે આપને સૂચન છે
કે અપ્રમત્ત અવસ્થામા રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ધર્મધ્યાન કર્યોજી એજ આશા છે

વિશેષમા અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ધામીલાલજી મહારાજના
રચેલા સૂત્રો બાઈ પોપટલાલ ધનજીબાઈ તરફથી ભેટ તરીકે મળેલા તે સૂત્રો તમામ
આઘોષાત વાચ્યા, મનન કર્યા અને વિચાર્યા છે તે સૂત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને
અને વીતરાગમાર્ગને ખૂબજ ઉન્નત બનાવનાર છે તેમા આપણી શ્રદ્ધા એટલી
ન્યાયરૂપથી ભરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ગૌરવ લેવા જેવું છે હંસ સમાન

ડા. પ,૨૫૧ આપનાર આદ્ય મુરબીશ્રી,



કોઠાની હરગોવીંદલાઇ જેચ દ
ગજકોર

આત્માઓ જ્ઞાનઝરણાઓની આત્મરૂપ વાદીને વિક્રમિત કચ્છે ધન્ય છે આપને અને મમિતિના કાર્ય કરાને જે મમાજ ઉત્વાન માટે ઠાઈની પણ પરવા કર્યા વગર જ્ઞાનનું દાન ભવ્ય આત્માઓને આપવા નિમિત્તરૂપ થઈ રહ્યા છે. આવા મમર્થ વિદ્વાન પાનેવી સ્વપૂર્ણ કાર્ય પુરૂ કરાવશે તેવી આશા છે

એજ હિ ઝરવાળા સપ્રદાયના વિદુધી
મહામતીજ મોંઘીબાઈ સ્વામી
ના ફરમાનથી લી જોડીદામ ગણેશભાઈ-ધ ધુકા
સ્થાનકવામી જેન મઘના પ્રમુખ

#

અઘતન પદ્ધતિને અપનાવનાર વડોદરા કોલેજના એક વિદ્વાન
પ્રોફેસરને અભિપ્રાય.

સ્થાનકવાસી મ પ્રદાયના મુનિશ્રી ઘામીલાલજી મહારાજ જૈનશાસ્ત્રોના મ સ્કૃત ટીકાણદ, ગુજરાતીમા અને હિન્દીમા ભાષાતરૂ કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યમા વ્યાસ થયેલા છે શાસ્ત્રો પંકી જે પ્રસિદ્ધ વયા છે તે હુ જોઈ શકયો છુ મુનિશ્રી પોતે મ સ્કૃત, અર્ધમાગધી, હિન્દી ભાષાઓના નિષ્ણાન છે, એ એમનો હુ કો પરિચય ટરતા મહજ જલાઈ આવે છે શાસ્ત્રોનુ સ પાઠન કરવામા તેમને પોતાના શિષ્ય વર્ગને અને વિશેષમા ત્રણ પઠિતોનો મહકાર મળ્યો છે, તે જોઈ મને આનદ થયો સ્થાનકવામી મ પ્રદાયના અગ્રેનગેએ પઠિતોનો મહકાર મેળવી આપી મુનિશ્રીના કાર્યને સરણ અને શિષ્ટ ધનાવ્યુ છે સ્થાનકવામી-મમાજમા વિદ્વત્તા ઘણી ઓછી છે તે દિગખર, મૂર્તિપૂજક સ્વેતાખર વગેરે જનદર્શનના પ્રતિનિધિઓના ઘણા મમયથી પરિચયમા આવતા હુ વિરોધના ભય વગર ઠહો શકુ પૂ મહારાજનો આ પ્રયાસ સ્થાનકવામી સ પ્રદાયમા પ્રથમ છે એવી મારી માન્યતા છે સ સ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો સારા આપવામા આવ્યા છે ભાષા શુદ્ધ છે એમ હુ ચોક્કસ ઠહી શકુ છુ ગુજરાતી ભાષાતરો પણ શુદ્ધ અને સરણ થયેલા છે મને વિશ્વાસ છે કે મહારાજ શ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જૈનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાતરોને વાચનાલયમા અને કુટુંબોમા વમાવી શકાય તે પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરશે

પ્રતાપગજ, વડોદરા
તા ૨૭-૭-૧૯૫૬

કામદાર કેમવલાલ હિ મતરામ,
એમ એ

મુખ્યની બે કોલેજોના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય

મુખ્ય તા ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાંતીલાલ મગળદાસ

પ્રમુખ શ્રી અખિલ ભારત શ્વે સ્થા નૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ,
રાજકોટ

પૂજ્યાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તૈયાર કરેલા આચારાગ, દશવૈકલિક આવશ્યક, ઉપાસકદશાગ વગેરે સૂત્રો અમે જોયા આ સૂત્રો ઉપર સસ્કૃતમા ટીકા આપવામા આવી છે અને સાથે સાથે હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષાતરો પણ આપવામા આવ્યા છે, સસ્કૃત ટીકા અને ગુજરાતી તથા હિન્દી ભાષાતરો જોતા આચાર્યશ્રીના આત્રણે ભાષા પરના એકસરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે આ સૂત્ર-ત્રયોમા પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વતા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે ગુજરાતી તથા હિન્દીમા થયેલા ભાષાતરમા ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોધપાત્ર છે એથી વિદ્વદ્જન અને સાધારણ માણસ ઉભયને સતોષ આપે એવી એમની લેખિનીની પ્રતીતિ થાય છે ૩૨ સૂત્રોમાથી હજુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયા છે બીજા સાત સૂત્રો લખાઈને તૈયાર થઈ ગયા છે આ બધા જ સૂત્રો જ્યારે એમને હાથે તૈયાર થઈને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈનસૂત્ર-સાહિત્યમા અમૂલ્ય સપત્તિરૂપ ગણાશે એમા સશય નથી આચાર્યશ્રીના આ મહાન કાર્યને જૈન સમાજનો-વિશેષત સ્થાનકવાસી સમાજનો સંપૂર્ણ સહકાર સાપડી રહેશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ

પ્રો રમણુલાલ ચીમનલાલ શાહ

સેટ એવિયર્સ કોલેજ, મુખ્ય.

પ્રો તારા રમણુલાલ શાહ.

સોફીયા કોલેજ, મુખ્ય.

રાજકોટની ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજના પ્રોફેસર સાહેબનો

અભિપ્રાય

જયમહાલ

જાગનાથ પ્લોટ

રાજકોટ, તા ૧૮-૪-૫૬

પૂજ્યાચાર્ય પ મુનિ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આજે જૈનસમાજ માટે એક એવા કાર્યમા બ્યાસ થયેલ છે કે જે સમાજ માટે બહુ ઉપયોગી થઈ પડશે મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલા આચારાગ, દશવૈકલિક, શ્રીવિષ્ણુત વિ મે જોયા

આ સૂત્રો જોતા પહેલી જ નજરે મહારાજશ્રીનો સમ્પૂર્ણ, અર્ધભાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અમાધારભૂ કાબૂ જણાઈ આવે છે એક પણ ભાષા મહારાજશ્રીથી અજાણી નથી આપને જાણીએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટિના છે તેની વચ્ચે ગભીર, વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે આટલા ગહન અને સર્વત્રાઘ્ય સૂત્રોનું ભાષાતર ૫ ધાર્મીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટિના મુનિરાજને હાથે વાચ્ય છે તે આપણા અહોભાગ્ય છે યત્રવાદ અને લૌકિકવાદના આ જમાનામાં જ્યારે ધર્મભાવના ઓસરતી જાય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન-આધ્યાત્મિકતાથી ભરેલા સૂત્રોનું મરજ ભાષામાં ભાષાતર દરેક જીજ્ઞાસુ, સુમુક્ષુ અને માધકને માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે જૈન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણસ, માધુ અને શ્રાવક દરેકને મમજીવ પડે તેવી સ્પષ્ટ, મરજ અને શુદ્ધ ભાષામાં સૂત્રો લખવામાં આવ્યા છે મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઈએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમાં મહાજાયેલા જોઈએ છીએ એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની કલ્પના કરી શકાય તેમ છે તેમનું જીવન સૂત્રોમાં વણાઈ ગયું છે

મુનિશ્રીના આ અમાધારણ કાર્યમાં પોતાના શિષ્યોનો તથા પડિતોનો સહકાર મળ્યો છે અને આશા છે કે જો દરેક સુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ઘરમાં વસાવશે અને પોતાના જીવનને આવા સુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલો શ્રમ સંપૂર્ણપણે મક્કળ થશે

ગ્રે રસિકલાલ કન્નુરચંદ ગાધી
એમ એ એલ એલ બી
ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજ
રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

સુખઈ અને ઘાટકોપરમા મળેલી સલાએ લીનાસર કોન્ડરન્સ તથા
સાધુસ મેલનમાં મોકલાવેલ ઠરાવ

હાલ જે વખતે પ્રવેતાબસ્થાનકવાસી જૈન સઘ માટે આગમ-સંશોધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોની અતિઆવશ્યકતા છે અને જે મહાનુભાવોએ આ વાત દીર્ઘદ્રષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમાં લઈ તે પાર પાડવા મહેનત લઈ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પંડિતરત્ન શ્રી ધાર્મીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદલી અધિવેશનમાં સર્વાનુમતે સાહિત્યમત્રી નીમ્યા છે તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે આ ભા પ્રવે સ્થા જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઈ રહ્યું છે જેને પ્રથાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચાર મત્રીશ્રી

તથા અનેક અનુભવી મહાનુભાવોએ પોતાની પમ દગીની મહોર છાપ આપી છે અને છેલ્લામા છેલ્લા વડોદરા યુનિવર્સિટીના પ્રોફેસર કેશવલાલ કામદાર (એમ એ) એ પોતાનું સવિસ્તર પ્રમાણપત્ર આપ્યું છે તે શાસ્ત્રોદ્ધારકમિટીના કામને આ સ મેલન તથા કેન્દ્ર-સ હાર્દિક અલિન દન આપે છે અને તેમના કામને ન્યા ન્યા અને જે જે જરૂર પડે--પ ડિતની અને નાણાની પામેના ક્ર ઉમાથી અને જાહેર જનતા પાસેથી મદદ મળે તેવી ઇચ્છા ધરાવે છે

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને જ્યારે આટલી બધી પ્રશ સાપૂર્વક પમ દગી મળી છે ત્યારે તે કામને મદદ કરવાની આ કેન્દ્ર-સ પોતાની ફરજ માને છે અને જે કાંઈ ત્રુટી હોય તે પ ર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજની સાનિધ્યમા જઈ બતાવીને સુધારવા પ્રયત્ન કરવો આ કામને ટલ્લે ચઢાવવા જેવું કોઈ પણ સત્તા ઉપરના અધિકારીઓની વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે જોવા પ્રમુખ સાહેબને ભલામણ કરે છે

(સ્થા જૈન પત્ર તા ૪-૫-૫૬)

*

સ્વતંત્રવિચારક અને નિકર લેખક ‘જૈનસિદ્ધાંત’ના તત્રીશ્રી

શેઠ નગીનદાસ ગીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સ્થાપીને પૂ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને સૌરાષ્ટ્રમા બોલાવી તેમની પાસે બત્રીસે સૂત્રો તૈયાર કરાવવાની હિલચાલ ચાલતી હતી ત્યારે તે હિલચાલ કરનાર શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ સાથે મારે પત્રવ્યવહાર ચાલતો ત્યારે શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈએ તેમના એક પત્રમા મને લખેલુ કે—

“આપણા સૂત્રોના મૂળ પાઠ તપાસી શુદ્ધ કરી સ સ્કૃત માથે તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાનકવાસી સ પ્રદાયમા મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મ સિવાય મને કોઈ વિશેષ વિદ્વાન મુનિ જોવામા આવતા નથી લાખી તપાસને અતે મે મુનિ શ્રી ઘાસીલાલજીને પસદ કરેલા છે ”

શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ પોતે વિદ્વાન હતા, શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમ વિચારક પણ હતા શ્રાવકો તેમજ મુનિઓ પણ તેમની પાસેથી શિક્ષા વાચના લેતા, તેમ જ્ઞાનચર્યા પણ કરતા એવા વિદ્વાન શેઠશ્રીની પસદગી મથાર્થ જ હોય એમા

નવાઈ નથી અને પૂ શ્રી ધામીલાલજીના બનાવેલા સૂત્રો જોતા મૌ કોઈને ખાત્રી થાય તેમ છે કે દામોદરદાસભાઈએ તેમજ સ્થાનકવામીસમાજે જેવી આશા શ્રી ધામીલાલજી મ. પાનેથી રાખેલી તે ઠરાબર ફળીભૂત થયેલ છે

શ્રીવર્ધમાન - શ્રમણસઘના આચાર્ય શ્રીઆત્મારામજી મહારાજે શ્રી ધામીલાલજી મ ના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશ્ન સ્વા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ધામીલાલજી મ ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થયે

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને, અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાચકને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઈ પડે છે વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે ત્યારે સામાન્ય હિન્દી વાચકને હિન્દી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આપુ સૂત્ર સરળતાથી સમજાઈ જાય છે.

કેટલાકોને એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાચવાનું આપણુ કામ નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે ખીજા કોઈપણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતાં સૂત્રો સામાન્ય વાચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઈ જાય છે સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ ભ મહાવીરે તે વખતની લોકભાષામા (અર્ધભાગધી ભાષામા) સૂત્રો બનાવેલા છે. એટલે સૂત્રો વાચવામા તેમજ સમજવામા ઘણા સરળ છે.

માટે કોઈ પણ વાચકને એવો ભ્રમ હોય તો તે કાઢી નાખવો અને ધર્મનું તેમજ ધર્મના સિદ્ધાંતોનું સાચુ જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાચવાને શુકલું નહિ, એટલું જ નહિ પણ જરૂરથી પડેલા સૂત્રોજ વાચવા.

સ્થાનકવાસીઓમા આ શ્રી સ્થા નૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે અને કરી રહી છે તેવું કોઈ પણ મ સ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી સ્થા નૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે ખીજા છ સૂત્રો લખાયેલ પડયા છે, જે સૂત્રો-અનુયોગદ્વાર અને કાણ્યાગ સૂત્રો-લખાય છે તે પણ થોડા વખતમા તૈયાર થઈ જશે તે પછી બાકીના સૂત્રો, હાથ ધરવામા આવશે

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઇ જાય એમ ઈચ્છીએ છીએ અને સ્થા બધુઓ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમના સૂત્રો ધરમા વસાવે એમ ઈચ્છીએ છીએ

‘જેન સિદ્ધાન્ત’ -મે ૧૯૫૫

“ જૈન સિદ્ધાંતના ” તંત્રીશ્રીનો અભિપ્રાય.

સ્થાનકવાગ્નીઓમાં પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર પાડનારી આ એકની એક સ્થા છે. અને એના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે તેણે ઘણી સારી પ્રગતિ કરી છે તે જોઈ આનંદ થાય છે

મૂળ પાઠ, ટીકા, હિન્દી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પાડવા એ કાંઈ સહેલું કામ નથી એ એક મહાભારત કામ છે. અને તે કામ આ શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનકવાગ્ની સમાજ માટે ઘણા ગૌરવનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે

સમિતિ તરફથી નવ સૂત્રો બહાર પડી ચૂક્યાં છે, હાલમા ત્રણ સૂત્રો છપાય છે નવ સૂત્રો લખાઈ ગયા છે અને જબૂદ્દીપ્રસ્તુતિ તથા નદીસૂત્ર તૈયાર થઈ રહ્યા છે

હાલમા મત્રી શ્રી સાકરચંદ્ર ભાઈચંદ્ર સમિતિના કામમા જ તેમનો આખો વખત ગાળે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે તેમની ખત માટે ધન્યવાદ

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વયોવૃદ્ધ પડિત મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ મૂળ પાઠનું સંશોધન તથા મસ્કૃત ટીકા તેઓશ્રીજ તૈયાર કરે છે મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા જૈન નમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે એ ઉપકારનો બદલો તો વાળી શકાય તેમજ નથી

પરંતુ આ સમિતિના મેમ્બર બની, તેના બહાર પડેલા સૂત્રો ધરમા વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામા આવે તો જ મહારાજશ્રીનું થોડું ઋણ બહા કચું ગણાય

ભગવાને કહ્યું છે કે પદ્મ જાણ તઓ દયા-પહેલું જ્ઞાન પછી દયા, દયા ધર્મને યથાર્થ સમજવો હોય તો ભગવાનની વાગ્દેશ આપણા સૂત્રો વાચવાજ જોઈએ તેનું અધ્યયન કરવું જોઈએ અને તેનો ભાવાર્થ યથાર્થ સમજવો જોઈએ

એટલા માટે આ શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા જૈને પોતાના ધરમા વસાવવાજ જોઈએ સર્વધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાજ સમાયેલું છે, અને સૂત્રો સહેલાઈથી વાચીને સમજી શકાય છે, માટે દરેક સ્થા. જૈન આ સૂત્રો વાચે એ ખાસ જરૂરનું છે

રૂ. ૫,૦૦૧ આપનાર આદ્ય મુરબ્બીશ્રી,



(સ્વ) શેઠ ધારસીભાઈ જીવણભાઈ
મોલાપુર

શ્રી ઉપાસકદશાંગ સૂત્રને માટે અભિપ્રાય.

મૂળ સૂત્ર તથા ૫ મુનિશ્રી ધાસીલાલજીએ બનાવેલ સંસ્કૃત છાયા તથા ટીકા અને હિંદી તથા ગુજરાતી-અનુવાદ મહિત

પ્રકાશક-અ. બા શ્રવે સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ, ગરેડીઆ કુવા રોડ, ધીન લોજ પાસે, રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર). પૃષ્ઠ ૬૧૬ બીજી આવૃત્તિ બેવડું (મોટું) ઠઠ. પાકુ પુકું નેકેટ માથે સને ૧૯૫૬ ક્રિ મત ૮-૮-૦

આપણા મૂળ ખાર અગ સૂત્રોમાનુ ઉપાસકદશાંગ એ સાતમું અગસૂત્ર છે, એમા લગવાન મહાવીરના દશ ઉપાસકો-શ્રાવકોના જીવનચરિત્રો આપેલા છે, તેમા પહેલું ચરિત્ર આનંદ શ્રાવકનું આવે છે

આનંદ શ્રાવકે જૈનધર્મ અંગીકાર કર્યો અને ખાર વ્રત લગવાન મહાવીર પાસે અંગીકાર કરી પ્રતિજ્ઞા-પ્રત્યાખ્યાન લીધા તેનું સવિસ્તર વર્ણન આવે છે તેના અતર્ગત અનેક વિષયો જેવા કે, અભિગમ, લોકાલોકસ્વરૂપ, નવતત્ત્વ, નરક, દેવલોક વગેરેનું વર્ણન પણ આવે છે

આનંદ શ્રાવકે ખાર વ્રત લીધા તે ખારે વ્રતની વિગત, અતિચારની વિગત વગેરે બધું આપેલું છે તે જ પ્રમાણે બીજા નવ શ્રાવકોની પણ વિગત આપેલ છે

આનંદ શ્રાવકની પ્રતિજ્ઞામા અરિહત્તચેડ્યાઈ શબ્દ આવે છે મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજા સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહત્ત તનુ ચૈત્ય (પ્રતિમા) એવો કરે છે પણ તે અર્થ તદ્દન ખોટો છે અને તે જગ્યાએ આગળ પાછળના સંબંધ પ્રમાણે તેનો એ ખોટો અર્થ બધ બેમતો જ નથી તે મુનિશ્રી ધાસીલાલજીએ તેમની ટીકામા અનેક રીતે પ્રમાણે આપી સાબિત કરેલ છે અને અરિહત્ત ચેડ્યાઈ નો અર્થ સાધુ વાય છે તે બતાવી આપેલ છે

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાથી શ્રાવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપરાંત તે શ્રાવકોની ઋદ્ધિ, રહેઠાણ, નગરી વગેરેના વર્ણનો ઉપરથી તે વખતની સામાજિક સ્થિતિ, રીતરિવાજ, રાજ્યવ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે

એટલે આ સૂત્ર દરેક શ્રાવકે અવશ્ય વાચ્યું જોઈએ, એટલું જ નહિ, પણ વારંવાર અધ્યયન કરવા માટે ઘરમા વસાવવું જોઈએ

પુસ્તકની શરૂઆતમા વર્દમાન શ્રમણ સઘના આચાર્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજનું અમતિપત્ર તથા બીજા સાધુઓ તેમજ શ્રાવકોના અમતિપત્રો આપેલા છે, તે સૂત્રની પ્રમાણભૂતતાની ખાત્રી આપે છે

“ જૈન સિદ્ધાંત ” જાન્યુઆરી, ૫૭

સંકટો સતીકીકેટો ઉપરાંત હાલમા મળેલા
કેટલાક તાજા અભિપ્રાયો

શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યને વેગ આપો

ત્રીસ્થાનેથી (જૈનજ્યોતિ) તા. ૧૫-૯-૫૭

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ઠાણા ૪ હાલમા અમદાવાદ સુકામે સરસપુરનાં સ્થા જૈન ઉપાશ્રયમા ધિરાજમાન છે તેઓશ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય 'ખૂબ' જ ખત અને ઉત્સાહથી વૃદ્ધવયે 'પણુ' કરી રહ્યા છે તેઓશ્રી વૃદ્ધ છે છતાં પણ આંખો દિવસ 'શાસ્ત્રો'ની ટીકાઓ લખી રહ્યા છે આજ સુધીમા તેમણે લગભગ ૨૦ જેટલા શાસ્ત્રોની ટીકાઓ લખી નાખી છે અને બાકીના સૂત્રાની ટીકા જેમ અને તેમ જલદી પૂર્ણ કરવી એવા મનોરથ સેવી રહેલ છે, સ્થા. જૈન સમાજમા શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા લખવાનો આ પ્રથમ જ પ્રયાસ છે અને તે પ્રયાસ સંપૂર્ણ અને એવી અમે શાસનદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના કરીએ છીએ આજ સુધી ઘણા મુનિવરોએ શાસ્ત્રોનું કામ શરૂ કરેલ છે પણ કોઈએ પૂર્ણ કરેલ નથી પૂજ્યશ્રી અમુલખજીજી મહારાજે બત્રીસે શાસ્ત્રો ઉપર હિન્દી અનુવાદ કરેલ અને સંપૂર્ણ અનેલ ત્યારબાદ આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ હિન્દી ટીકા કેટલાક શાસ્ત્રો ઉપર લખેલ પણ ઘણા શાસ્ત્રો બાકી રહી ગયા પૂજ્ય હસ્તિમલજી મહારાજે એક બે શાસ્ત્રો ઉપરની ટીકાઓના અનુવાદો કરેલ પૂજ્ય શ્રી જવાહિરલાલ મહારાજશ્રીએ સૂયગઠાગસૂત્ર ટીકા સહિત હિન્દી અનુવાદ સાથે પ્રકાશિત કરેલ શ્રી સાંભાજ્યમલજી મહારાજે આચારાગની હિન્દી ટીકા લખેલ પણ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા હજી સુધી સ્થા જૈન સાધુઓ તરફથી થયેલ નથી બ્યારે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ ૨૦ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા તેને હિન્દી ગુજરાતી અનુવાદ કરાવેલ છે આથી હવે આશા બધાય છે કે તેઓશ્રી બત્રીસે બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા લખવામા સફળ થશે અને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ આજ સુધી ૧૦ થી ૧૨ શાસ્ત્રો છપાવી પણ દીધા છે અને હજી પણ તે શાસ્ત્રો વિશેષ જલદી છપાય તે માટે શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સંપૂર્ણ પ્રયત્ન કરી રહેલ છે તે ધન્યવાદને પાત્ર છે

જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના ૩ ૨૫૧ ભરીને લાઈફ મેમ્બર થનારને તમામ શાસ્ત્રો શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી ભેટ મળે છે આ રીતે એક પથ અને ઠો ઠાજ બન્ને રીતે લાભ થાય તેમ છે ૩ ૨૫૧ થી ૫૦૦ રૂપિયાની કિમતના શાસ્ત્રો મળે એ પણ મોટો લાભ છે અને પ્રવચનની પ્રલાવના કરવાનો ધર્મલાભ પણ મળે છે

આ સાથે પૂન્ય ધાસીલાલજી મહારાજના સુચિષ્ય પ. મુનિશ્રી કન્હૈયા-
લાલજી મહારાજ મલાડ મુકામે ચાતુર્માસ બિરાજે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોના
મેખરો કરવા માટે અલાગ પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની મેવા બલતવી રહ્યા છે અને
અત્યાર સુધીમા મુ'બઈ તેમજ પરાઓના લગભગ ૪૦ જેટલા ગૃહસ્થો લાઈફ
મેખર બની ગયા છે અને મુ'બઈમા લગભગ ૩૦૦ જેટલા મેખરો થાય તે
ઈચ્છવા યોગ્ય છે શ્રામત ગૃહસ્થો હુબરો રૂપિયા પોતાના ઘર ખર્ચમા તેમજ
મોજશોખના કામોમા તેમજ વ્યાવહારિક કામોમા વાપરી રહ્યા છે તો આવા
શાસ્ત્રોદ્ધાર જેવા પવિત્ર કાર્યમા રૂપિયા વાપર્યે તો ધર્મની સેવા કરી ગણાયે
અને બદલામા ઉત્તમ આગમસાહિત્યની એક લાયબ્રેરી મળી જશે જેતુ વાચન
કરવાથી આત્માને શાંતિ મળશે અને શાસ્ત્રઆજ્ઞા-પ્રમાણે વર્તવાથી છવન મક્ષણ થશે

૪



શતાવધાની મુનિશ્રી જયંતીલાલજી મહારાજશ્રીનો અમદાવાદનો પત્ર “સ્થાનકવાસી જૈન” તા ૫-૯-૫૭ના અકમાં છપાવેલ છે જે નીચે મુજબ છે.

સૂત્રોના મૂળ પાઠમા ફેરફાર હોઈ શકે ખરો ?

તા ૭-૮-૫૭ના રોજ અત્રે ધિરાજતા શાસ્ત્રોદ્ધારક આચાર્ય મહારાજશ્રી ધાત્રીલાલજી મહારાજ પાસે, મારા ઉપર આવેલ એક પત્ર લઈને હું ગયો હતો, તે સમયે મારે પૂ મ સા સાથે જે વાતચીત થઈ તે સમાજને બહુ કરવા સારૂ લખુ છું

‘શાસ્ત્રોત્તુ કામ એક ગહન વસ્તુ છે અપ્રમાદી થઈ તેમા અવિરત પ્રયત્નો કરવા જોઈએ, સ પૂર્ણ શાસ્ત્રોત્તુ જ્ઞાન તેમજ દરેક પ્રકારની ખાસ લાષાઓત્તુ જ્ઞાન હોય તોજ આગમોદ્ધારતુ કાર્ય મફળતાથી થાય આ પ્રકારનો પ્રયત્ન હાલ અમદાવાદ ખાતે સરસપુર જૈન સ્થાનકમા ધિરાજતા પૂજ્ય શ્રી ધાત્રીલાલજી મહારાજ કરી રહ્યા છે શાસ્ત્ર-લેખનતુ આ કાર્ય થઈ રહ્યું છે, તેમા અનેક વ્યક્તિઓને અનેક પ્રકારની શકાઓ થાય છે તે પૈકી શાસ્ત્રોના મૂળ પાઠમા ફેરફાર થાય છે ? કરવામા આવે છે ? એવો પ્રશ્ન પણ કેટલાકને થાય છે અને તેવો પ્રશ્ન થાય તે સ્વાભાવિક છે, કેમકે અમુક મુનિરાજો તરફથી પ્રગટ થયેલ સૂત્રોના મૂળ પાઠમા ફેરફાર થયેલા છે જેથી આ કાર્યમા પણ સમાજને શકા થાય

પણ ખરી રીતે જોતા, અત્યારે જે શાસ્ત્રોદ્ધારતુ કામ ચાલી રહ્યું છે તે વિષે સમાજને ખાત્રી આપવામા આવે છે કે, શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ તરફથી અત્યાર સુધીમા પ્રગટ થયેલા આગમોના મૂળ પાઠમા જરાપણ ફેરફાર કરવામા આવેલ નથી અને ભવિષ્યમા જે સૂત્રો પ્રગટ થશે તેમા ફેરફાર થશે નહી તેની સમાજ નોંધ લ્યે

લી

શતાવધાની શ્રી જયંત મુનિ-અમદાવાદ

“ શ્રી અખિલ ભારત સ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો 'ટુંક પરિચય' ”

સ્થાનકવાસી સમાજની આ એકની એક સમ્બંધ છે કે જેણે અત્યાર સુધીમા તેર સૂત્રો છપાવી બહાર પાડી હીધા છે સાત સૂત્રો છપાય છે અને બીજા કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂક્યા છે.

આ પ્રમાણે આ સમ્બંધે મહાન્ પ્રગતિ સાધી છે તેનો ટુંક પરિચય આ પત્રિકામા આપેલ છે તે વાચી જઈ સર્વ સ્થા જૈન ભાઈબહેનોએ આ સમ્બંધ ને યથાશક્તિ મદદ કરી તેના ઠાર્ય ને હજી વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે.

‘ખાલી ઘડો વાગે ઘણો’ એમ સ્થા કોન્કરન્સ જેમ ખોટા બણુગા કૂકનારી સસ્થાની કોઈ કિમત નથી, ત્યારે નક્કર કામ કરનારી આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય ફરજ છે.

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણો મહાન્ ઉપકાર છે વયોવૃદ્ધ હોવા છતા તેઓશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવું કામ હજી સુધી બીજા કોઈએ કર્યું નથી અને બીજી કોઈ ઠરી શકશે કે નહિ તે પણ શકાલયું છે પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારનો ટિચિત બદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી મહાય કરીને વાળવાનો છે સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામા પાછો હાથે તેમ નથી એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

“ જૈનસિદ્ધાંત ” પત્ર એપ્રિલ ૧૯૫૭

શ્રી દશવેકાલક તથા ઉપાસકદશાંગ સૂત્રો

ગુજરાતી ભાષામાં અનુવાદ થયેલા પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ વિરચિત ઉપરોકત બે સૂત્રો જૈનધર્મ પાળતા દરેક ધરમા હોવા જ નોંધ્યે તે વાચવાથી શ્રાવક ધર્મ અને શ્રમણ ધર્મના આચારતુ જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકે છે અને શ્રાવકો પોતાની નિરવધ અને એપણીય સેવા શ્રમણ પ્રત્યે બળવી શકે છે વર્તમાનકાળે શ્રાવકોમાં તે જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે અંધશ્રદ્ધાએ શ્રમણવર્ગની વૈયાવચ્ચ તો કરી રહ્યેલ છે પરંતુ 'કલ્પ શુ અને અકલ્પ શુ' એનું જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે પોતે સાવધ સેવા અર્પી પોતાના સ્વાર્થને ખાતર શ્રમણવર્ગને પોતાને સહાયક થવામાં ઘસડી રહ્યા છે અને શ્રમણવર્ગની પ્રાય કુસેવા કરી રહ્યા છે તેમાથી બચી લાલતુ ડારણુ થાય અને શ્રમણને યથાતથ્ય સેવા અર્પી તેમને પણ જ્ઞાન-દર્શન-ચારિત્રની આરાધના કરવામાં સહાયક થઈ પોતાના જ્ઞાન દર્શન-ચારિત્રની આરાધના કરી સુગતિ મેળવી શકે શ્રમણની યથાતથ્ય સેવા કરવી તે અવશ્ય ગૃહસ્થની ફરજ છે

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ શાસ્ત્રોદ્ધારનો અનુવાદ 'ત્રણ ભાષામાં રૂડી રીતે કરી રહ્યા છે અને રૂપીયા ૨૫૫૭ ભરી મેમ્બર થનારને રૂા ૪૦૦-૫૦૦ લગ લગ ની કીમતના બત્રીસે આગમો ક્ષી મળી શકે છે તો તે રૂા ૨૫૫૭ ભરી મેમ્બર થઈ બત્રીસે આગમો દરેક શ્રાવકધરે મેળવવા નોંધ્યે બત્રીસે શાસ્ત્રોના લગલગ ૪૮ પુસ્તકો મળશે તો તે લાલ પોતાની નિર્જ્શ માટે, પુન્યાનુબધી, પુન્ય માટે જરૂર મેળવે ઉપરોકત બે સૂત્રોની કીમત સમિતિ કંઈક ઓછી રાખે તો હરકોઈ ગામમાં શ્રામત હોય તે સૂત્રો લાવી અરધી કીમતે, મફત અથવા પૂરી કીમતે લેનારની સ્થિતિ નોંધ દરેક ધરમા વસાવી શકે

—એક ગૃહસ્થ

નોંધ -ઉપરની સૂચનાને અમે આવકારીએ છીએ આવા સૂત્રો દરેક ધરમા વસાવવા યોગ્ય તેમજ દરેક શ્રાવકે વાચવા યોગ્ય છે. તત્રી—

“રત્નચોત” પત્ર

તા ૧-૧૦-૫૧૭

શ્રી સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિની કાર્યવાહક કમીટીનો અહેવાલ.

..

મે મહિનાની શરૂઆતમા શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિની મીટીંગ અમદાવાદમા મળી હતી તેનો હેવાલ અમને મળેલો છે તેમા સમિતિએ સરસ કામ કયું છે

આ ઉપરથી સમજી શકાય છે કે સ્થાનકવાસી સમાજમાં આજ સુધી કોઈએ પણ નથી કરી શક્યુ એવું મહાભારત કામ પૂ શ્રી ધામીવાલજી મહારાજ તથા શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ ધણી સફળતાથી કરી રહી છે અને તેઓ થોડા વખતમા માથે લીધેલુ સર્વ કામ સ પૂર્ણ રીતે પાર ઉતારશે એવી અમને ખાત્રી છે

આવા ઉત્તમ કાર્ય માટે સમસ્ત સ્થાનકવાસી જૈનોએ શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિને પોતાનાથી બની શકે તે રીતે સ પૂર્ણ ટેકા આપવો જોઈએ, તે તેમની ફરજ બની રહે છે જો માટે સૂત્રો એ પહેલી ફરજિયાતની વસ્તુ છે સૂત્રના આધારે જ ધર્મજ્ઞાન મળે છે આજ સુધી જે આપણને અપ્રાપ્ય હતા તે આપણા જૈન-સૂત્રો પૂ શ્રી ધામીવાલજી મહારાજ તથા શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિએ સુલભ કરી આપ્યા છે

તો હવે સ્થાનકવાસી જૈનોએ શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સલાસદ બની સમિતિનું કામ બનતી ઉતાવળે પૂરૂ થાય તેમ કરવાની ખાસ જરૂર છે વાચકોમાથી જેઓથી બની શકે તેમજ પહેલા વર્ગના શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સભ્ય બની જવું જોઈએ તેથી સમિતિના કામને ઉત્તેજન મળવા ઉપરાત સભ્યને સૂત્રોનો આજો સેટ મફત મેળવવાનો લાભ મળશે અને સૂત્રો વાચીને ધર્મારાધન કરવાનો જે લાભ મળશે તે તો અમૂલ્ય જ છે. માટે સમિતિના સભ્ય થઈ જવાની અમારી દરેક ત્યા જૈનને ખાસ બલામણુ છે

“જૈન સિદ્ધાંત” જુલાઈ-૧૯૫૮

‘શાસ્ત્રોદ્ધાર’ સમિતિના આગમે અંગે

અભિપ્રાય.

*

દક્ષિણ, ઉત્તર પ્રદેશ, દિલ્હી અને પશ્ચિમમાં ઉચ્ચ વિદ્યાર કરીને હાલમાં ગુજરાત-સૌરાષ્ટ્રમાં વિચરી રહેલા ઉચ્ચ વિદ્યારી પૂ મહાસતીજી શ્રી રભાકુ વરજી તથા પ્રમિદ્ધ વ્યાખ્યાની વિવિધભાષાવિશારદા પૂ મહાસતીજી શ્રી સુમતિકુ વરજીનો, પૂજ્ય શ્રી ૧૦૦૮ શ્રી ઘાસીલાલજી મ સા નિર્મિત જૈનાગમોની મરુત ટીકા તથા હિન્દી-ગુજરાતીભાષાતર પર અભિપ્રાય-

ૐ નમો સિદ્ધાણુ

શાસ્ત્રવિશારદ શ્રદ્ધેય પડિત રત્ન પૂજ્ય આચાર્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જૈનાગમોના એક વિદ્વાન, વૃદ્ધવિચારક અને ઉત્તમ લેખક છે

સાહિત્યસર્જન એ તેમના જીવનનો એક ઉત્તમ સંદર્ભ છે. સામાજિક-પ્રયત્નોથી દૂર રહી, અથાગ પરિશ્રમ દ્વારા વિરચિત, સપાકિત અને અનુવાદિત તેમના અનેક ગ્રંથો પ્રકાશિત થયા છે, જે તમામ જૈનોને માટે ચિંતન, મનન અને અધ્યયન-અધ્યાપન માટે એક અપૂર્વ સાધનરૂપ છે. આલું ઉત્તમ સાહિત્ય તૈયાર કરીને તેઓશ્રીએ સાહિત્યનેનીતા મહાન પદને દીપાવ્યું છે.

આગમના રહસ્યોથી અનલિપ્ત (અબ્જલ) આજની પ્રજામાં શ્રદ્ધેય શ્રી મહારાજ સાહેબનું સાહિત્ય અત્યંત ઉપયોગી છે, તેમ હું માનું છું.

અમદાવાદ તા ૧-૫-૫૮

આચાર્ય-સુમતિકુ વર

અલવરથી

શ્રી શ્રમણ સઘના ઉપાધ્યાય કવિ સુનિશ્રી અમરચ દલ મહારાજને

કલ્પસૂત્ર માટે આવેલ પત્ર

શ્રીયુત ભોળીલાલજી-અમદાવાદ.

જયવીર

આપને ત્યા ળીગજમાન પરમ શ્રદ્ધેય શ્રી શ્રી ૧૦૦૮ શ્રી પૂજ્ય-
પાદશ્રી ઘામીલાલજી મહારાજ આદિ ગદ્યા મતોની સેવામા વહન સુખ-
શાન્તિ નિવેદન છે

આપે મોકલેલ 'કલ્પસૂત્ર' મેળવીને શ્રદ્ધેય કવિજીએ પ્રમન્નતા પ્રગટ
કરી છે અને માહર સઘાયોગ્ય અભિનદનપૂર્વક લખાવ્યુ છે કે "કલ્પસૂત્રનુ
પ્રકાશન બહુજ ઉત્કૃષ્ટ કોટિનુ છે તેની ટીકા સુદર વિસ્તારપૂર્વક
સારી રીતે લખેલ છે ટાઈમ મળતા અધ્યયન કરવા માટે પ્રયત્ન કરવામા
આવશે છાપવામા આવેલ આવૃત્તિ માટે જોટિ કોટિ ધન્યવાદ આપવામા
આવે છે

કવિશ્રીજીનુ સ્વાસ્થ્ય મારી ગીતે આલે છે પહેલાની અપેક્ષાએ કઈં
સાર છે આ પત્ર વિલગ્નથી લખવામા આવેલ છે તો લમા કરજો

અલવર (રાજસ્થાન)
તા ૬-૮-૧૯૫૮.

} લવલીય રતનલાલ સચેતી
(હિન્દીનો ગુજરાતીમા અનુવાદ)

શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના આગમો અંગે અભિપ્રાય.

*

દક્ષિણ, ઉત્તર પ્રદેશ, દિલ્હી અને પશ્ચિમમાં ઉચ્ચ વિદ્યાર કરીને હાલમાં ગુજરાત-સૌરાષ્ટ્રમાં વિચરી રહેલા ઉચ્ચ વિદ્યાની પૂ મહાસતીશ્રી શ્રી રત્નાકુવરશ્રી તથા પ્રસિદ્ધ વ્યાખ્યાની વિવિધભાષાવિશારદા પૂ મહાસતીશ્રી શ્રી સુમતિકુવરશ્રીનો, પૂજ્ય શ્રી ૧૦૦૮ શ્રી ઘાસીલાલશ્રી મ સા નિર્મિત જૈનાગમોની સસ્કૃત ટીકા તથા હિન્દી-ગુજરાતીભાષાતર પર અભિપ્રાય -

ૐ નમો સિદ્ધાણુ

શાસ્ત્રવિશારદ શ્રદ્ધેય પડિત રત્ન પૂજ્ય આચાર્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલશ્રી મહારાજ સાહેબ જૈનાગમોના એક વિદ્વાન, વૃદ્ધવિચારક અને ઉત્તમ લેખક છે

સાહિત્યસર્જન એ તેમના જીવનનો એક ઉત્તમ સકલ્પ છે. સામાજિક પ્રયત્નોથી દૂર રહી, અથાગ પરિશ્રમ દ્વારા વિરચિત, સપાદિત અને અનુવાદિત તેમના અનેક ગ્રંથો પ્રકાશિત થયા છે, જે 'તમામ જૈનોને માટે ચિંતન, મનન અને અધ્યયન-અધ્યાપન' માટે એક અપૂર્વ સાધનરૂપ છે આણું ઉત્તમ સાહિત્ય તૈયાર કરીને તેઓશ્રીએ સાહિત્યસેવીનાં મહાન 'પદ્મને દીપાવ્યું છે'

આગમના રહસ્યોથી અનલિપ્ત (અજ્ઞાણ) આજની પ્રજામાં શ્રદ્ધેય શ્રી મહારાજ સાહેબનું સાહિત્ય અત્યંત ઉપયોગી છે, તેમ હું માનું છું

અમદાવાદ તા ૧-૫-૫૮

આર્યા-સુમતિકુવર

॥ श्री वीतरगाय नमः ॥

‘जैनाचार्य’—‘जैनधर्मविचारक’—पूज्य-श्री-वासीलालजीमहाराज-
विरचित-पीयूषवर्षिण्याख्यया व्याख्यया समलङ्कृतम्

औपपातिकसूत्रम्.

(मङ्गलाचरणम्)

मालिनीछन्दः ।

भविजनहितकारं ज्ञानवित्तैरुसारं, कृतभवनधिपार नष्टकर्मारिभारम् ।

अघहरणसमीरं दुःखदात्राग्निनीरं, त्रिमल्यगुणगभीरं नोमि वीर सुधीरम् ॥ १ ॥

औपपातिकसूत्रकी पीयूषवर्षिणी टीका का हिन्दी-भाषानुवाद ।

मङ्गलाचरण-

जानावरण आदि चार घातिया कर्मों के सर्वथा विनाश से उद्भूत केवल ज्ञान-
रूपी अनत अचिन्त्य अन्तरगविभूतिविष्ट, भव्यनीमा के अघाध आत्मकल्याण का
उज्वल मार्गप्रदर्शन करनेसे सदा हितकारक, स्वयं ममाररूपी अपार पारावार से पार
होकर अन्य जीवोंको भी वहासे पार करनेवाले, तृणादिक को उड़ानेवाली वायुकी तरह
पापपुज को उड़ानेके लिये अघाधगतिवाले, आधि, व्याधि एव उपाधिजन्य अनेक
दुखोंकी राशिरूपी प्रचण्ड अग्निकी ज्वालाको वृत्त करने के लिये निर्मल सलिल जैसे,
ऐसे धीर वीर अन्तिम तीर्थंकर श्रीशंभुको—जो क्षायिकगुणों से सदा ओतप्रोत
बने हुए हैं—में भक्तिपूर्वक नमन करता हूँ ॥ १ ॥

औपपातिकसूत्रकी पीयूषवर्षिणी टीकाको गुजराती-अनुवाद

मङ्गलाचरण-

जानावरण आदि चार घातिया कर्मोंना सर्वथा विनाशथी उत्पन्न थयेल
देवजानरूपी अनत अचिन्त्य अन्तरगविभूतिरूप, लव्यलवोना अघाध
आत्मकल्याणना उज्वल मार्गप्रदर्शन करवाथी सदा हितकारक, पोते ससार-
रूपी अपार असुख पार करीने पीण लवोने पणु तेमाथी पार करवावाणा,
वेम वायु तृणुने उड़ाडी नाणे तेम पापपुजने उड़ाडवामा अघाध गतिवाणा,
आधि व्याधि तेम उपाधिजन्य अनेक दुखोती राशिरूपी प्रचण्ड अग्निनी
ज्वालाने शात करवा निर्मल जल लेवा, एवा धीर वीर अन्तिम तीर्थंकर
श्री शंभु के ले निर्मल क्षायिक गुणोथी महा ओतप्रोत अनेका छे तेमने
हुँ भक्तिपूर्वक नमन करूँ छु (१)

आर्या-गाथा ।

जयण्ट मुहपत्ति, मदोरग वधए मुहे निघं ।

जो-मुकरागदोसो, वदे तं गुरुवरं मृद ॥ ४ ॥

अनुष्टुप् ।

जैनी मरस्वतीं नन्वा, घासीलालेन तन्यते ।

औपपातिकमूत्रस्य, वृत्तिः पीयूषवर्षिणी ॥ ५ ॥

अथौपपातिकमूत्रम्-औपपातिकमिति क पदार्थः 'इतिचेदुच्यते-देवजन्म नै-
यिकजन्म सिद्धिगमनद्योतित्रयम् उपपात, तमुपपातमधिकृत्य वृत्तमन्वयनम् औपपातिकम्,
एतत् औपपातिकमुपाङ्ग, कर्मात् 'अङ्गस्य=आचाराङ्गस्य समीपवर्तिवात्, तत्र हि प्रथ-

मै सदा उन गुरुदेव को नमस्कार करता हू कि जिन्होंने उहनाय के जीवों की
यतनानिमित्त अपने मुक्त पर वीरसहित मुक्तपत्तिको सदा बाध रखा है। तथा
जिनको दृष्टि में शत्रु और मित्र एवं निन्दक और यत्नक दोनों समान हैं। ऐसे
रागद्वेष से मदा पर रहनेवाले शुद्ध गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हू ॥ ४ ॥

श्री जिनेन्द्र के मुखकमल से निर्गत द्वादशाङ्गीरूप वाणी को नमन कर मैं
घासीलाल मुनि औपपातिकमूत्रकी पीयूषवर्षिणीनामक टीका रचता हूँ ॥ ५ ॥

प्र०- 'औपपातिक' इस पदका क्या अर्थ है ?

उ०- देवोंका जन्म, नास्तिकियोंका जन्म एवं सिद्धिगति में गमन, ये तीन
उपपात हैं। इनको लेकर रचे गये मूत्रका नाम औपपातिक है। यह अग नहीं है उपाङ्ग है।

हु नदा ते शुद्धेवने नमस्कार वरं हु उ जेमले छकायना एवोनी
यतनानिमित्त चोताना मुअपण दोगमहित मुअपत्तिने सदा बाधी राप्ते छे,
तथा जेमनी दृष्टिमा शत्रु अने मित्र तेमज निहक तथा प्रशसक अने समान
छे अेवा रागद्वेषथी सदा पर रडेवावाणा शुद्ध शुद्धेवने हु नमस्कार कउ हु (४)

श्री जिनेन्द्रना मुअकमलथी नीउलेली द्वादशाङ्गीरूप वाणीने नमन करीने
हुं घासीलाल मुनि औपपातिकमूत्रनी पीयूषवर्षिणी नामे टीका रचु हुं (५)

प्र०- औपपातिक अे पहने शु अर्थ छे ?

उ०- देवोना जन्म, नास्तिक्योना जन्म तेमज सिद्धिगतिमा गमन अे
त्रय उपपात छे तेमने लधने अनायेला मूत्रतु नाम औपपातिक छे आ
अग नहीं, उपाङ्ग उे तेने उपाङ्ग अे भाटे कडे छे उे ते आचाररागमूत्रतु

वसन्ततिलका ।

आनन्तराऽऽगमसुधारसनिर्क्षरेण,

संसिच्य धर्मतरुसद्गुचिराऽऽलयालम् ।

स्वर्गाऽपवर्गसुखराशिफल वित्तीयं,

मोक्षं गतं तमिह गौतममानमामि ॥ २ ॥

श्रुतविलम्बितम् ।

कमलकोमलमञ्जुपदाम्बुजं,

विमलबोधिविबोधिविबोधकम् ।

मुखसुशोभिसदोरकवस्त्रिं,

गुरुवरं सदयं प्रणमाम्यहम् ॥ ३ ॥

अनन्तरागमरूपी निर्मल सुधारस के प्रवाह से धर्मरूपी वृक्षके सम्पददर्शनरूप आलवाल (क्यारी)को सींचकर जिन्होंने भव्यजनोके लिये उसके फलस्वरूप स्वर्ग एवं मोक्ष के सुस्वरूप फलों को वितरित कर (दिकर) उन्हें कल्याणस्थानमे लगाया, ऐसे मोक्षप्राप्त उन गौतमस्वामी को मैं भक्तिपूर्वक नमन करता हू ॥ २ ॥

जिनके उभय सुन्दर चरणकमल कमल जैसे कोमल है । जो निर्मल बोधि अर्थात् सम्यक्बुद्धो तथा श्रुतचारित्ररूप बोधको देने वाले है । जिनके मुखके ऊपर दोरासहित मुखपत्रि छद्मकाय के जीवोंकी रक्षा के निमित्त सदा बधी हुई रहती है, ऐसे दयालु गुरुवर को मैं भक्तिपूर्वक नमन करता हू ॥ ३ ॥

अनन्तरागमरूपी निर्मल अमृतना प्रवाहधी धर्मरूपी वृक्षना सम्पददर्शनरूप आलवाल (क्यारी) ने सिंचन करीने केबल्ले लब्धजनो भाटे तेना इलस्वरूप स्वर्ग तेभज मोक्षना सुभरूप इल्लोनु वितरण करी तेभने कल्याणस्थानभा लगाउया जेवा मोक्षप्राप्त ते गौतमस्वामीने हु लज्जितपूर्वक नमन करे छु (२)

जेभना धने सुहर अरण्यकमल कमल जेवा दोभण छे, जे निर्मलबोधि अटले सम्भक्तवने तथा श्रुतचारित्ररूप बोधने आपवावाण छे, जेना मुख उपर दोरासहित मुखपत्रि छद्मकायना छेवानी रक्षाना निमित्त सदा बाधेवी रहे छे जेवा दयालु गुरुवरने हु लज्जितपूर्वक नमन करे छु (३)

होत्वा, रिद्धित्थिमियसमिद्धा प्रमुडयजणजाणवया आडण्ण-

तस्मिन् काले तस्मिन् ममये अत्र ममन्यर्थे नृनांया प्राश्नयैत्या काल्ममयथोल्लोकोक्तौ
 पयायवे कथ युगपत्तिरेण । नथ न वा पुनरुक्तिदोष । अत्र समाधानमाह—‘काल’
 इति वर्तमानावसर्पिण्याधतुधार्कलक्षण, ममयस्तु हीयमानलक्षण । यत्र काले मा चम्पाऽभूत्
 स कोणिको राजा बभूव, श्रीपर्दमानस्यामी च भगवान् आसीन् । अथवा ‘तेण’ इति
 तृतीयैकवचनान्त—तेन कालेन तेन ममयेन हतुमतेन असर्पिणीचतुर्थाऽऽरकलक्षणेन
 उपलक्षिता चम्पानामिका नगरी आसीन् । ननु सा नगरी मन्प्रयपि वर्तते तर्हि औप-
 पातिकनूत्रप्ररूपणाकालेऽपि ‘आसीत्’ इति ‘अस्ति’ इति वक्तव्यम्, तत्रयमुक्तम् ‘आसीत्’
 इति चेत्, उच्यते—अवसर्पिणीचकालस्य प्रस्तुतोपाङ्गमप्रथमकाले वर्गनीयचम्पानगरी
 तादृशी वक्ष्यमाणविशेषगविशिष्टा नाऽभूदिति ‘अस्ति’ इत्यनुक्त्वाऽऽमादित्युक्तम् । चम्पापुरी
 वर्ण्यते—‘ऋद्ध-त्थिमिय-समिद्धा’ ऋद्ध-विभवं मवनादिका की
 स्तिमिता—स्वपरचक्रभयरहिता, धिरेगति यावत्, समृद्धा—धनधान्यसमेधिता एभिस्त्रिभि
 पदै कर्मधारयसमास, ऋद्धा चामौ स्तिमिता चासौ समृद्धा चेति तथा, विभवविस्तीर्णा
 प्रशान्तिसम्पन्ना चेत्यर्थ, ‘प्रमुडय-जण-जाणवया’ प्रमुदितजनज्ञानपदा, प्रमुदित्वा=प्रमोद
 प्राप्ता जना=नागरिका जानपदा=अशेषदेशवाग्मिनो यस्या सा तथा, इष्टप्रभूत-

पिणी काल के चतुर्थे अंश में और हीयमान उस समय में चम्पा नाम की नगरी थी,
 उसमें कोणिक राजा राज्य करते थे, और भगवान् विचर रहे थे । वह नगरी कैसी थी ?
 इसका वर्णन करते हैं—वह नगरी (ऋद्ध-त्थिमिय-समिद्धा) ऋद्ध-विभव मवनादिका की
 विशिष्ट वृद्धि से संपन्न थी । स्तिमित—इसमें निवास करने वाले लोगों को स्वचक्र और परचक्र का भय
 बिलकुल ही नहीं था । जनता यहाँ की सुख की नींद सोती और सुख की नींदसे उठती थी । समृद्धा—
 यह नगरी अखंड धन एवं धान्य से सदा परिपूर्ण थी । (प्रमुडय-जण-जाणवया) इसीलिये
 यहाँ के समस्त नागरिक जन एवं अशेष देशनिवासी मानव सर्वदा आनन्द में मग्न

थाथा आरामा अने हीयमान ते समथमा च या नामे नगरी हुती, तेमां
 दोषिष्ठ राज् गन्त्य करता हुता अने भगवान महावीर विचरी रक्षा हुता
 ते नगरी कैसी हुती ? तेतु वर्णन करवाभा आवे छे—ते नगरी (ऋद्ध-
 त्थिमिय-समिद्धा) ऋद्ध-विभव तेभन् लवनादिनी विशिष्ट वृद्धिथी ते नगरी मयन्त
 हुती स्तिमित—तेमा निवास करवावाणा लोडोने स्वयच्छ तथा पश्यकने भिलकुल
 भय नडोते । त्यानी अन्त सुषे निद्रा करती अने सुषे निद्राथी उठती हुती समृद्धा
 आ नगरी अण्डे धन धान्यथी महा परिपूर्ण हुती (प्रमुडय-जण-जाणवया)

માધ્યયનસ્ય પ્રથમોદ્દેશકે—‘એવમેગેસિં ણો ણાય ભવઈ—અત્થિ મે આયા ઓવવાઈए, નત્થિ મે આયા ઓવવાઈए, કે અહ આસી ? કે વા ઇઓ ચુए इह पेच्चा भविस्सामि ?’
 इत्यादि, अत्राऽऽचाराङ्गसूत्रे यदात्मन औपपातिकरूपमुपात्तम् तदेवाऽत्र प्रतन्यते, तेन तदुपदिष्टार्थस्य सविस्तरं पुष्टिकरणरूपं सामीप्यमिह वर्तते, अत एवाचाराङ्गोपाङ्गता मिथ्यति ।
 अस्योपाङ्गस्य अयमुपादिघात —

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नाम नयरी
टीका—‘तेणं कालेण’ इत्यादि। ‘तेणं कालेण तेण समएण’

इसे उपाग इसलिये कहा है कि यह आचारागसूत्रका समीपवर्ती है, अर्थात् आचाराग सूत्र के प्रथम अध्ययन के प्रथम उद्देश में “एवमेगैसिं णो णाय भवई—अत्थि मे आया ओववाइए, नत्थि मे आया ओववाइए, के अह आसी ? के वा इओ चुए इह पेच्चा भविस्सामि ?” अर्थात्—किन्हीं किन्हीं जीवों को यह ज्ञान नहीं होता कि मेरा आत्मा उत्पत्तिशील है या मेरा आत्मा उत्पत्तिशील नहीं है ? मैं पहले कौन था और यहासे मरकर परलोक में कौन होऊँगा ?, इत्यादि सूत्र जो कहा है, और इसमें आत्मा के जिस औपपातिकरूपने का कथन करने में आया है इसीकी इस उपाग में वित्त्तरके साथ पुष्टि करने में आई है, अत यह पुष्टिकरणरूप समीपता इसमें है, इसीलिये इसमें आचारागसूत्र की उपागता सिद्ध होती है। इस उपागका उपोद्घात इस प्रकार है—‘तेण कालेण’ इत्यादि।

(तेण कालेण तेण समएणं चंपा नाम नयरी होत्या) उस अवस-

समीपवर्ती^० છે એટલે આચારાગસૂત્રના પ્રથમ અધ્યયનના પ્રથમ ઉદ્દેશમાં “એવમેગેસિં ણો ણાયં ભવઈ—અત્થિ મે આયા ઓવવાઈए, નત્થિ મે આયા ઓવવાઈए, કે અહ આસિ ? કે વા ઇઓ ચુए इह पेच्चा भविस्सामि ?” એટલે—કોઈ કોઈ જીવોને એ જ્ઞાન નથી હોતું કે મારો આત્મા ઉત્પત્તિશીલ છે કે નથી, હું પ્રથમ કોણ હતો અને અહિંથી મૃત્યુબાદ પરલવમાં હું કોણ થઈશિ ઇત્યાદિ સૂત્ર જે ઠહેલું છે, તથા એમાં આત્માનું જે ઔપપાતિકરૂપણાનું કથન કરવામાં આવ્યું છે તેની આ ઉપાગમાં વિસ્તારસહિત પુષ્ટિ કરવામાં આવી છે આમ આ પુષ્ટિકરણરૂપ સમીપતા આમાં છે તે માટે આમાં આચારાગસૂત્રની ઉપાગતા સિદ્ધ થાય છે ઉપાગનો ઉપોદ્ઘાત આ પ્રકારે છે — ‘તેણ કાલેણ’ ઇત્યાદિ

(તેણ કાલેણ તેણ સમएण ચંપા નામ નયરી હોત્યા) તે અવસર્પિણી ઠાંકના

कुक्कुड-सडेय-गाम-पउरा उच्छु-जव-सालि-कलिया गो-महिस-गवेल-
ग-प्पभूया आयारवतचेडय-जुवड-विविह-सण्णिविट्ट-बहुला उक्कोडि-

‘कुक्कुड-सडेय-गामपउरा’ कुक्कुटपाण्डेयप्रामप्रचुरा-कुक्कुटाश्च पाण्डेया = च्चुगोपतयश्च
कुक्कुटपाण्डेया, तेषां ग्रामा = यमृग ते प्रचुरा = प्रभृता यस्या मा तथा । ‘उच्छु-जव-
सालि-कलिया’ इभुयवशालिकलिया-इभुभिर्भयं शालिभिश्च कलिया = युक्ता, अनेन प्रजाया
पोष्यगदतुगभिहित । पित्तोदरागा हि कार्यक्षमता न भवति । ‘गो-महिस-गवेलग-प्पभूया’
गोमहिषगवेलरुप्रभृता-गामो. महिष्य, गवेलका = मेपा, ते प्रभृता यस्या मा तथा ।
‘आयारवतचेडय-जुवड-विविह-सण्णिविट्ट-बहुला’ आकारवन्धे ययुवतिविविधमन्त्रिविट्ट-
बहुला-आकारवन्ति = सुन्दरावृत्तानि चैथानि = उद्यानानि तथा युवतीना विविधानि
सन्निविष्टानि = नर्तक्यादीना ननिवृत्तानि भवनानि बहुलानि यस्या सा तथा,

है, अतः सेतुसीमा की हुई थी । (कुक्कुट-सडेय-गामपउरा) इस नगरी में कुक्कुट
एव छोटे-छोटे मोंढ बहुत थे । (उच्छु-जव-सालि-कलिया) इभु, जव एव शाली
का ढेर का ढेर यहा के खेतों में लगा रहता था इससे प्रजाजन के पोषण में
किसी भी प्रकार की बाधा किसी भी समय उपस्थित नहीं होती थी । वात भी ठीक है-भूखे पेट
कुठ भी नहीं हो सकता । (गो-महिस-गवेलग-प्पभूया) गाय और भैंसों की पत्ति की
पत्ति इस नगरी में दृष्टिपथ होती थी, इससे दूध और घी का अभाव जनता में
कभी भी दिग्विहारी नहीं पड़ता था । मेप भी यहाँ अधिक मात्रा में थे (आयार-
वतचेडय-जुवड-विविह-सण्णिविट्ट-बहुला) यहा बड़े २ सुन्दर उद्यान थे, एव युवति
नर्तकियों के अनेक भवन भी थे । (उक्कोडिय-गायगंठिभेयग-भड-त्तकर-खडरक्ख-

प्रडारना विवाह पेहा थाय छे अेटवे सेतुसीमा उग्वाभा आवी हुती
(कुक्कुट-सडेय-गामपउरा) आ नगरीमा भुगां तेमज नाना नाना साढ धण्डा हुता
(उच्छु-जव-सालि-कलिया) शेरडी, जव तेमज शालीओना ढगवे ढगला अही ना
पेतशेमा लागेला रडेता हुता, तेथी प्रजजनना पोषणुमा डोर्ध पणु प्रडारनी
पाधा डोर्धपणु समथे उपस्थित धती नडोती वात पणु भराणउ छे-भूय्या
पेटे डोर्धथी डार्ध थाय नडि (गो-महिस-गवेलग-प्पभूया) गाय अने ले सोनी
डारनी डार आ नगरीमा नजरे लेवाभा आवती हुती तेथी दूध अने घीने
अभाव जनतामा डही पणु लेवाभा आवतो न डोतो घेटा पणु अही वधारे
प्रभाणुमा हुता (आयारवतचेडय-जुवड-विविह-सण्णिविट्ट-बहुला) त्या भोटा भोटा
भुडर उद्यान (आण) हुता तेमज युवती नर्तक्यो (नाय उरनारिओ) ना अनेड
खपने पणु हुता (उक्कोडिय-गायगंठिभेयग-भड-त्तकर-खडरक्ख-रहिया) अेमा

जण-मणुस्सा हलसयसहस्स-संकिट्ट-विकिट्ट-लट्ट-पण्णत्त-सेउसीमा

वस्तुसौलभ्यात्प्रमोदमाननिखिलजनेति यावत् । 'आइण्णजण-मणुस्सा' आकीर्णजन-मनुष्या, सख्यातिरेकात् सकृलतया परस्पोपमघटितमनुष्यप्राणिपरिपूर्णैर्यथे । अत्र जनेति जातसामान्यवाचिवात्प्राणीति निर्वक्ति, ततो मनुष्यभ्रासौ जनभ्रेति कर्मधारये राजद्रन्ता-दीनामाकृतिगणवात् मनुष्यशब्दस्य परप्रयोग, तेन आकीर्णा=व्याता-आकीर्णजनमनुष्या, आर्थवात्-आकीर्णशब्दस्य पूर्वप्रयोग, 'हलसयसहस्स-संकिट्ट-विकिट्ट-लट्ट-पण्णत्त-सेउसीमा' हलगतसहस्रसकृष्टविकृष्टलट्टप्रजपसेतुसीमा, गतानि च सहस्राणि च गतसहस्राणि, हलाना शतसहस्राणि, अथवा गतमितानि सहस्राणि लक्षमिति यावत्, तैर्हलशतसहस्रै सकृष्टा विकृष्टा-द्विवार कृष्टा त्रिवार कृष्टा अत एव लट्टा=मृष्टा प्रतनुकृतलोष्टा मनोज्ञा प्रज्ञा= 'इयमस्य कर्षकस्ये'-ति निर्दिष्टा सेतुसीमा=क्षेत्रपालीभ्या सीमा यस्या सा तथा, सेतुभङ्गे कृषीवलाना सीमाविवादो मा भूविति सेतुसीमा प्रज्ञा, इति भाव,

वने हुए थे । (आइण्ण-जण-मणुस्सा) यहा की मेदिनी (भूमि) सदा अधिक से अधिक मानवजनसख्या से आकीर्ण बनी रहती थी-मार्गा पर बड़ी भीड़ लगी रहती थी । (हलसयसहस्स-संकिट्ट-विकिट्ट-लट्ट-पण्णत्त-सेउसीमा.) यहा की भूमि सैकड़ों अथवा हजारों अथवा लाखों हलों द्वारा जोती जाती थी, दो तीन बार जुतने से खेतों की मिट्टी बिलकुल पिस सी जाती थी, प्राय वह ककर पत्थर रहित थी, इससे वह बहुत ही मनोज्ञ प्रतीत होती थी । 'यह इस कर्षक की भूमि है, यह इस कर्षक की भूमि है' इस प्रकार से वहा प्रत्येक किसान के खेतकी सीमा निर्धारित मेडद्वारा करने में आई थी । खेत में मेडद्वारों सीमा निर्धारित यदि न की जाय तो इससे किसानों में अपने खेत की सीमा के बारे में अनेक प्रकारसे विवाद उपस्थित हो जाता

आधी अहीना समस्त नागरिकजन तेभव आहीना यथा देशनिवासी मनुष्यो सर्वथा आनदमा मस थयेला हुता (आइण्णजण-मणुस्सा) अहीनी भूमि मदा वधारने वधारे मानवजनसख्यायी लगी रहैती हुती (हलसयसहस्स-संकिट्ट-विकिट्ट-लट्ट-पण्णत्त-सेउसीमा) अहीनी भूमि मेठडो डे हुल्लेशे अथवा लाणो हुणोथी जेउती हुती जे त्रयु वार जेउवाथी जेतरेनी भाठी बिलकुल पीसाई जती हुती मुख्यत डाकरा पत्थर रहित हुती तेथी ते बहुरी ज मनोज्ञ प्रतीत थती हुती 'आ आ जेइतनी भूमि छे, आ आ जेइतनी भूमि छे' जे प्रकारे त्या प्रत्येक जेइतना जेतरेनी भीमा मेउ-भीमाचिक द्वारा नखी करवाभा आधी हुती जेतरेभा मेउ-भीमाचिक द्वारा जे नखी न करवाभा आवे तो तेथी जेइतोभा पेतपेताना जेतरेनी भीमाना अनेक

णड-णट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलंग-कहग-पवग-लासग-आइक्खग-
लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंववीणिय-अणेगतालायराणुचरिया आरा-

अनेककोटिकोट्टिम्बिकाकौर्णनिर्तमुखा, अनेककोटि-ग्याभर्येथै कौटुम्बिकैः=अनेक-पुगादि-
परिवारवद्विराकागां=व्यामा चामौ निर्वृतमुखा=मपन्नमौरया चंति तथा, जनताया बाहुल्येऽपि
मुखमामग्री न तत्र दुर्लभेति भाव । 'णड-णट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलंग-कहग-
पवग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंववीणिय-अणेगतालायराणुचरिया'
नट-नर्त्तक-जल्ल-मल्ल-मौष्टिक-विडम्बक-कथक-प्लवक-लासका-चक्रक-लक्ष-मल्ल-
तूगावत्तुम्बरीगिकानेरुतालाचरानुचरिता, तत्र नटाः=नाटककारका, नर्त्तकाः=नैकविध-
वृत्तनिष्ठाता, जल्लाः=जूपरिनीडनगान, मल्लाः=मल्लकीडाकारका, मौष्टिकाः=मुष्टि-

निश्चिन्तरीति से सुवर्का निद्रा लिया करती थी । (अणेगकोटिकुडुंभियाइण्णणि
च्युपसुहा) कगेडा कुटुम्बा से इस नगरी के व्याप्त होने पर भी उन्हें यहा
किसी भी प्रकार के कष्टका अनुभव नहा होता था । उन्हें यहाँ प्रत्येक जीवनो-
पयोगी सामग्री सुलभ थी । (णड-णट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलंग-कहग-पवग-
लासग - आइक्खग - लंख-मंख - तूणइल्ल-तुंववीणिय-अणेगतालायराणुचरिया)
नट-नाटक करनेवालों से, नर्त्तक-अनेक प्रकारकों नृत्यक्रिया में निष्णात व्यक्तियों से, जल्ल-रस्सी
पर चढ़कर विविध प्रकार के खेल तमासे दिखलाकर जनता का मनोरजन करनेवाले
नटोंसे, मल्ल-मल्लकीडा मंनिपुण पहलवानों से, मौष्टिक-मुष्टि से प्रहार करनेवाले मौष्टिकों से,
विडम्बक-वेष एव भाषा आदि द्वारा दूसरा को नकल करके स्वयं हसनेवाले तथा दूसरों
को भी उनके चित्तको अनुरजित करके हसानेवाले बहुरूपियासे, कथक-अनेक प्रकार की

निश्चित रीति सुभनी निद्रा होता होता (अणेगकोटिकुडुंभियाइण्णणि
च्युपसुहा) कगेडा कुटुम्बा या नगरी व्याप्त होता होता पशु तेभने अही
गेषपशु प्रकारना कथने अनुभव थतो नहि तेभने अही प्रत्येक एवन-
उपयोगी थीय वस्तु देखेने भजती होती (णड-णट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेल-
ग-कहग-पवग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंववीणिय-अणेगताला-
यराणुचरिया) नट-नाटक करनेवालाओंसे, नर्त्तक-अनेक प्रकारकी नृत्यक्रियाओंसे
निष्णात एवा पात्रोथी, जल्ल-दोरडा पर खड़ीने विविध प्रकारना खेल-नभामा
देखाडीने जनताने मनोरजन करनेवाला नटोथी, मल्ल-मल्लकीडा मंनिपुण पहले
वानोथी, मौष्टिक-मुष्टिसे प्रहार करनेवाला मौष्टिकोथी, विडम्बक-वेष तेभने भाषा
(जाती) द्वारा जीवज्योनी नकल करीने पोते इसे तथा जीवज्योने पशु पुरी

य-गायगंठिभेयग-भड-तक्कर-खंडरक्ख-रहिया खेमा गिरुवइवा सुभि-
क्खा वीसत्थसुहावासा अणेगकोडिकुडुंवियाइण्ण-णिब्बुय-सुहा

‘उकोडिय-गायगंठिभेयग-भड-तक्कर-खंडरक्ख-रहिया’ औ कोटिकगात्रप्रन्थिभेदक-
भट-तक्कर-खण्डरक्ष-रहिता, उक्कोटैरक्कोचैर्यवहरन्ति ते औक्कोटिका=रुद्रप्राहिण, गात्रात्
कटिप्रदेशादे सकाशाद् प्रन्थि भिन्दन्तीति गात्रप्रन्थिभेदका =गुप्तरीत्या प्रन्थिहारिण,
भटा =हठाल्लुण्टाका, तक्करा =चौरा खण्डरक्षा =शुल्कपाल्य, देशसीमाया स्थित्वा ये
राजकर गृह्णन्ति ते, एतै रहिता=एतेयामुपद्रवैर्वर्जिता सर्वोपद्रवविरहितेत्यर्थ, अतएव
‘खेमा’ क्षेमा-कुशलस्वरूपा अशुभाभावात्, ‘गिरुवइवा’ निरुपद्रवा, स्वचक्रपरचक्रो-
भयचक्रकृतोपद्रवविरहिता। ‘सुभिक्खा’ सुमिक्षा-सु=सुलभा भिक्षा भिक्षुणा यत्र
सा तथा, ‘वीसत्थसुहावासा’ विश्वस्तसुखावासा-विश्वस्त=विश्वासमुपगत निश्चित
सुरा आवासे निवासस्थाने यस्या सा तथा, ‘अणेगकोडिकुडुंवियाइण्ण-णिब्बुय-सुहा’

रहिया) इसमें किसी भी प्रकारका भय नहीं था, न तो लालच लेने वाले जन यहाँ
थे और न गुप्तरीति से गाठ कतरनेवाले प्रन्थिच्छेदक लुटेरें यहाँ थे। न यहाँ
भट-जबरदस्ती छटने वाले डाकू थे और न तक्कर-चोर हा थे। ऐसा भी
कोई यहाँ नहीं था जो देशकी सीमा में खड़ा होकर राजा के टक्स को लोगों
से जोर-जुल्म द्वारा अपहरण करनेवाला हो। तात्पर्य यह है कि यह नगरी
समस्त प्रकार के उपद्रवों से रहित थी। इसीलिये यहाँ पर (खेमा गिरुवइवा
सुभिक्खा वीसत्थसुहावासा) क्षेमा कुशलता बनी रहती थी, निरुपद्रवा-स्वचक्र और परचक्र
का भय यहाँ नहीं था। सुमिक्षा-भिक्षुओंको भिक्षा भी सदा सुलभ थी। विश्वस्तसुखावासा-
यहाँ का निवास जनता को सुखकारक था। मकानका दरवाजा खोलकर भी रात्रि को जनता

कोई पशु प्रकटनेका लय नहोता नतो लाय लेवा वाजा ननो अही हुता के न
तो भीसाकातइ लुटारा अही हुता नहोता अही लट-अपरइत्ता लुटवावाजा
डाकुओ के नहोता तक्कर-चोर लोके ओवा पशु कोई अही नहोता के न
देशनी उडभा उला रहीने राजना करने लोके पासेथी जेरनुलभथी पडावा
लेवावाजा डाय तात्पर्य ओ के के आ नगरी समस्त प्रकारना उपद्रवोथी रहित
हुती ओटला भाटे अही (खेमा गिरुवइवा सुभिक्खा वीसत्थसुहावासा)। क्षेमा-
कुशलता कायम रहेती हुती, निरुपद्रवा-स्वचक्र अने परचक्रने लय अही नहोतो।
सुमिक्षा-भिक्षुओने भिक्षा पशु मदा सुलभ हुती विश्वस्तसुखावासा-अही ने निवास
जनताने सुखकारक हुतो मजानता, जाण्णा उधाडा राधाने पशु लोके रात्रिमा

भप्पगासा उव्विद्ध-विउल-गंभीर-खायफलिहा चक्क-गय-मु-

वर्षिणगणोपपेता, तत्र आगमन्ति=नीडन्ति यत्र ते आरामाः=मालतीप्रभृतिवृत्ता-
 वाततरुसमूहसमेता प्रदेशा, उद्यानानि=कुमुदस्तम्भकाऽननतलपुत्रम्पिगण्डितानि स्थानानि,
 अग्रटाः=कृपा, तडागाः=त्रयत्रयविशेषा, दीर्घिकाः=गन्ध वर्षिणाः=जलक्रीडा-
 स्थानानि क्षेत्राणि वा, 'वर्षिण' इति देशीय शब्द, एतेषा गणाः=समूहा, गुणा वा=
 रमणीयतादय, तै उपपेता=युक्ता सा, 'नदणत्रणसन्निभप्पगासा' नन्दनवनमन्निभप्रकाशा-
 नन्दनवन-मेरोद्वितीयवन, तसन्निभप्रकाश तप्रकाशासदृश प्रकाशोयस्यामा तथा, नन्दनवनसदृश-
 सुखसम्पन्ना चम्पानगरी-इत्यर्थ । 'उव्विद्ध-विउल-गंभीर-खायफलिहा' उद्विद्ध-
 विपुलगंभीरखातपरिखा-उद्विद्धम्-उत्=उरुर्पग विद्धम्=अथ रानितम्
 'अतिउण्ड' इति भाषाप्रसिद्ध 'विपुल=विस्तृतम्, गंभीरम्=अदृश्याधस्तलम्, खातम्=
 उपरिविशालम् सङ्कुचिताधस्तलम्, परिखा च=चतुर्दिशु गोलकाररमातरूपा 'खाई' इति
 भाषाप्रसिद्धा यस्या सा तथा, खातपरिखापरिवेष्टितेयर्थ । 'चक्क-गय-मुसुद्धि-ओरोह-सयग्घि-
 जमलकवाडघणदुप्पवेसा' चक्रगदामुसुद्धिचवरोधगतत्रोयमलरुपाटधनदुप्पवेसा,

ववेया नदणत्रणसन्निभप्पगासा) आरामों-मालतीलता आदि के समूहों से एव
 वृक्षराजि मे मण्डित प्रदेशों-से, उद्यानों-पुष्पोंके गुच्छों के भारसे अवनत छोटे २ वृक्षों
 से परिमण्डित स्थानों-से, अग्र-कृपा-से, तडाग-सरोवरों-से, दीर्घिका-वर्षियों से, वर्षिण-
 जलक्रीडा करनेके विशेष स्थानों से वह नगरी सुशोभित थी, इसलिये मेरु के नदनवन
 जैसी वह शोभाका धाम बनी हुई थी । (उव्विद्ध-विउल-गंभीर-खायफलिहा, चक्क-
 गय-मुसुद्धि-ओरोह-सयग्घि-जमलकवाडघणदुप्पवेसा) उद्विद्ध-इस नगरी के चारों ओर जो
 गोलकार खाई थी वह बहुत ही गहरी थी, विपुल विस्तृत थी, गंभीर-जिसका अधस्तल अदृश्य
 था ऐसी थी, एव खातपरिखा-ऊपर विस्तृत और नीचे संकुचित थी । इसका जो चारों ओर का

लता आदिना समूहोऽथी तेभञ्ज वृक्षराजिथी शोभता प्रदेशोऽथी, उद्यानो-पुष्पोना
 गुच्छोना लारथा लन्थी पडेला नाना नाना वृक्षोऽथी वी टाओला स्थानोऽथी, अवट-
 कृपाओऽथी, तडाग-सरोवरोऽथी, दीर्घिका-वर्षियोऽथी चक्क-गय-मुसुद्धि-ओ-
 रोह-सयग्घि-जमलकवाडघणदुप्पवेसा) आ नगरीनी आरे ओर जे गोलाकार
 भाई इती ते धर्षीञ्ज उडी इती, विस्तारवाणी इती, गलार-ओरु तणियु
 अदृश्य उडु ओवी इती, तेभञ्ज उपर पडोणी अने नीचे संकुचित

मुञ्जाण-अगड-तलाग-दीहिय-वप्पिणगणोववेया नंदणवण-सन्नि-

प्रहरणशीला, विडम्बकाः=वेषभाषादिभि परानुकरणेन हसनहासनशीला, कथकाः= विविधकथाकारका गायका वा, प्लवकाः=उत्प्लवनशीला -नवाद्रितरणशीला वा, लासकाः= रासनीडाकारिण, आचक्षकाः=शुभाशुभशकुनाभिधायका, लह्व्वाः=दार्ढयशरिणमि क्रीडन-शीला, मह्वाः=चित्रफलक दर्शयित्वा भिक्षाग्राहिण, तूणाग्रन्तः=तूणाभिधानवाद्यवादकाः, तुम्बवीणिकाः=वीणावादका, अनेके च ते तालाचराः=काष्ठकरतालादिभिस्तालान् ददतो लोकानाः॥चरन्ति=अनुरञ्जयन्ति ये ते तथा, एतैर्नटादितालाचरान्तैरनुचरिता=युक्ता या सा तथा । 'आरामु-ज्जाण-अगड-तलाग-दीहिय-वप्पिणगणोववेया' आरामोद्यानावटतडागदर्शिका-

कथाकहानियों के कहने में कुशलमतिवाले कथाकारकों से, अथवा विविध प्रकार की गानरूला में निपुण सगीतविद्याके जाननेवालों से, प्लवक-कूटनेवालोंसे अथवा तैरने की कला में पारगत अनेक तैराकोंसे, लासक-रास रचनेमें निपुण व्यक्तियों से, आचक्षक-शुभ और अशुभ शकुन को प्रकट करने में विशेषदक्ष नैमित्तिका से, लह्व-बड़े बड़े वासों के अग्रभाग पर चढ़कर वहाँ अनेक प्रकारकी क्रीडा करके दिखानेवाले नटों से, मह-सुन्दर चित्रों को दिखलाकर जनतामें भिक्षा ग्रहण करनेवाले भिक्षुकोंसे, तूणइल्ल-तूणा नामके वाद्यविशेष को बजाने वाले बाजीगरों से, तुम्बवीणिक-वीणा के बजाने में विशेष पटु वीणावादकों से, एव तालाचर-काष्ठ-करताल आदिद्वारा ताल देकर लोगोंको अनुरजित करनेवाले तालाचरों में अनुचरिता-वह नगरी कभी भी शून्य नहीं रहती थी । (आरामु ज्जाण-अगड-तलाग-दीहिय-वप्पिणगणो-

करीने इसावे ज्येवा अहुत्तीयेथी, कथक-अनेक प्रकारनी कथा-वार्ता कडेवाभा कुशलमतिवाजा कथाकारेथी, अथवा विविध प्रकारनी गानकजाभा निपुण ज्येवा स गीतसेथी, प्लवक-कुटवानी विद्याभा पूर्ण निपुणता प्राप्त करेदी होय तेवा कुट-नारायेथी, अथवा तरवानी कजाभापार गत अनेक ताडयेथी, लासक-रास रथवाभा निपुण व्यक्तियेथी, आचक्षक-शुभ अने अशुभ शकुन कडेवाभा अहुत्त हस ज्येवा नैमित्तिकेथी, लह्व-भोटा भोटा वासनी टोय उपर थडीने त्या अनेक प्रकारनी क्रीडा करीने देणाउवावाजा नटोथी, मह-सु हर सु हर चित्रोने देणाडीने लोके पासोथी भिक्षा श्रद्धु करवावाजा भिक्षुयेथी, तूणइल्ल-तूणा नामना वाद्यविशेष गण ववावाजा ग्राह्येथी, तुम्बवीणिक-वीणा गणववाभा विशेष प्रवीण ज्येवा वीणवाह-केथी, तेभज तालाचर-काष्ठकरताल आदिद्वारा ताल हर्ष ने लोकेने भुशी करवावाजा तालाचरथी अनुचरिता-ने नगरी कही पण शून्य रहेती नहोती (आरामु-ज्जाण-अगड-तलाग-दीहिय-वप्पिण-गणोववेया नन्दणवणसन्निभपगासा) आरामो-भालती

भष्पगासा उव्विद्ध-विउल-गंभीर-खायफलिहा चक्क-गय-मु-

वष्पिगगोपेताः, तत्र आगमन्ति=तीडन्ति यत्र ने आरामाः=माल्नीप्रभृतिभ्यो-
 वाततरुसमूहममेता प्रदेशे . उद्यानानि=कुमुदस्तपकाऽयनतत्पुनरुपगमिण्डितानि स्थानानि,
 अवट्टाः=कृया , तडागाः=जलत्रयविशेषा , दीचिकाः=वाप्य वष्पिणाः=जलक्रोडा-
 स्थानानि क्षेत्राणि वा, 'वष्पिग' इति देशीय शब्द , एतेषा गणाः=समूहा , गुगा वा=
 समशीयताशय , तै उपपेता=तुका मा, 'नदणवणसन्निभष्पगासा' नन्दनवनमन्निभप्रकाशा-
 नन्दनवन-भेरोद्धितोद्यवन तसन्निभप्रकाश तप्रकाशमन्त्र प्रकाशोयस्या मा तथा, नन्दनवनसदृश-
 सुखसम्पन्ना चम्पानगरी=इत्यर्थ । 'उव्विद्ध-विउल-गंभीर-खायफलिहा' उद्विद्ध-
 विपुलगम्भीरवातपरिभवा-उद्विद्धम्-उत्=उत्कर्षेण विद्धम्=अयत्र खानितम्
 'अत्तिउण्ड' इति भाषाप्रसिद्ध 'विपुल=विस्तृतम्, गम्भीरम्=अदृश्याधस्तलम्, खातम्=
 उपरिविणालम् सद्बुचिताधस्तलम्, परिखा च=चतुर्दिशु गोल्यकारग्यातरुपा 'खाई' इति
 भाषाप्रसिद्धा यस्या सा तथा, खातपरिखापरिवेष्टितेत्यर्थ । 'चक्क-गय-मुसुट्टि-ओरोह-सयग्गि-
 जमलरुवाडवणदुप्पवेसा' चक्रगडामुसुण्डचवरोधगतप्रोयमलरुपादधनदुष्प्रवेशा,

वक्षेया नदणवणसन्निभष्पगासा) आरामों-माल्नीश्रिता आदि के समूहों में एव
 वृक्षराजि में मण्डित प्रदेशों-में उद्यानों-पुष्पोंके गुच्छों के भारने अवनत छोटे २ वृक्षों
 से परिमण्डित स्थानों-में, अवट्ट-कृषों-में, तडाग-सरोवरों-से, दीचिका-वापियों से, वष्पिण-
 जलक्रोडा करनेके विशेष स्थानों में वह नगरी सुशोभित थी, इसलिये मेरु के नन्दनवन
 जैसी वह शोभाका धाम बनी हुई थी । (उव्विद्ध-विउल-गंभीर-खायफलिहा, चक्क-
 गय-मुसुट्टि-ओरोह-सयग्गि-जमलरुवाडवणदुप्पवेसा) उद्विद्ध-इस नगरी के चारों ओर जो
 गोल्यकारखाई वीरुह बहुत ही गहरी थी, विपुल-विस्तृत थी, गम्भीर-जिसका अधस्तल अदृश्य
 था ऐसी थी, एव खातपरिखा-ऊपर विस्तृत और नीचे मकुचित थी । इसका जो चारों ओर का

लता आदिना समूहोद्यो तेभ्य वृक्षगन्धि गोभता प्रदेशोद्यो, उद्याने-पुष्पेना
 शुन्धेना लारथा लथी पडोला नाना नाना वृक्षोद्यो वी राज्येला स्थानोद्यो, अवट्ट-
 श्वाद्योद्यो, तडाग भवेवरोद्यो, दीर्घिडावायोद्यो वष्पिणु-लकीडा करवाना स्थान
 विशेषोद्यो ते नगरी सुशोभित इती तेथी मेइना नन्दनवन जेवी ते शोभानु
 धाम अनी गध इती (उव्विद्ध-विउल-गंभीर-खायफलिहा, चक्क-गय-मुसुट्टि-ओ-
 रोह-सयग्गि-जमलरुवाडवणदुप्पवेसा) आ नगरीनी आरे डेर जे गोणाकार
 भाउ इती ते धषुण्णि उडी इती, विस्तारवाणी इती, गलार-जेनु तण्णियु
 अदृश्य इतु जेवी इती, तेभ्य उपर पडोणी अने नीचे सकुचित

सुंढि-ओरोह-सयग्धि-जमलकवाडघणदुप्पवेसा धणुकुडिल-वंक-
पागार-परिक्खित्ता कविसीसगवट्टरइयसंठियविरायमाणा अट्टालय-

तत्र-चक्राणि=रथाङ्गानि, गदाः=शस्त्रविशेषा मुमुण्डन्यः-शस्त्रविशेषा एव, अवरोध-
रथ्याद्वारे प्रतिभित्ति, शतधन्यः-या उपरितनदेगानिपातिता सय पुरुषगतानि प्रन्ति
ता, यमलकपाटानि=समभागद्रयोपेतानि कपाटानि, तान्येव घनानि=सान्द्राणि-दृढानि वा-
“घन सान्द्रे द्ढे द्ढर्धं विस्तारे मुद्देऽम्बुदे।” इति हम्फोशात्। एतै परचक्रादीना
दुष्प्रवेशा=दु खेन प्रवेशु योग्या परचक्रादिपराभवरहितेत्यर्थ, ‘धणुकुडिलवक्रपागारपरिक्खित्ता’
धनु कुटिलवक्रप्राकारपरिक्षिता-कुटिल च तद्वनु-धनु कुटिलम्, आर्षत्वाद्विशेषणस्य परनिपात,
कुटिलधनुषोऽपेक्षयाऽपि वक्रेण प्राकारेण परिक्षिता युक्त्यर्थ, ‘कविसीसगवट्टरइयसंठिय-
विरायमाणा’ कपिशीर्षकवृत्तरचितमस्थितविराजमाना, तत्र-कपिशीर्षका =प्राकारप्रभागा
‘कगुरा, इति भाषाप्रसिद्धा वृत्तरचिता =गोलाकारेण निर्मिता मस्थिता =सुन्दरमस्थान-
युक्तास्तैर्विराजमाना-सुन्दरकपिशीर्षकतया गोभाङ्गालिनीत्यर्थ, ‘अट्टालय-चरिय-दार-गोपुर-तो-
रण-समुण्णय-सुविभत्त-रायमग्गा’ अट्टालकचरिकाद्वारगोपुरतोरणसमुन्नतसुविभक्तराजमार्गां,

कोट था वह चक्र, गटा, मुमुदी, और अवरोध-रथ्याद्वार के पासकी दोहरी भीत से, शतघ्नी-जिनके
उपर से गिराने पर मैकडों व्यक्ति चूर्णित हो जाते है ऐसे अश्वविशेषों से या तोपों से, और
यमलकपाटघन-मजबूत, सम युगल कपाटों से युक्त था, अत एव दुष्प्रवेशा-उस नगरी में शत्रु प्रवेश
नहीं कर सकते थे। (धणुकुडिल-वक्र-पागार-परिक्खित्ता) इस नगरी का प्राकार (किला)
कि जिससे यह परिवेष्टित थी वह वक्र हुए धनुष में भी अधिक वक्र था। (कवि-
सीसगवट्टरइयसंठियविरायमाणा अट्टालय-चरिय दार-गोपुर-तोरण-समुण्णय-सुविभत्त-
रायमग्गा) कपिशीर्षक-कोट के कगूरे गोल आकारके थे एव रग-विरगे थे। इस कोटके

हत्ती तेनी आरे डोर जे डोट हुतो ते अक, गदा, मुमुदी, अने अवरोध-द्वारना
पासेनी जेवडी लीत-थी, शतधनी-जेने उपरथी पाडी नाभवाथी से डोरे व्यक्त
सुरेशुरा थध नथ छे जेवा अश्वविशेषथी, अथवा तोपोथी, अने मजबूत सम
युगल कपाटोथी युक्त हुती आ डारणुथी ते नगरीमा शत्रु प्रवेश करी शकता
नहोता (धणुकुडिल-वक्र-पागार-परिक्खित्ता) आ नगरीने प्राकार (किल्ला) के जेनाथी
ते घेरायेली हुती ते वाडा थयेला धनुषथी पशु वधारे वाडो हुतो (कविसी
सगवट्टरइयसंठियविरायमाणा अट्टालय चरिय-दार-गोपुर-तोरण-समुण्णय-सुविभत्त-राय-
मग्गा) डोटना डारण गोल आकारना हुता तेमज रगजरेगी हुता आ डोटनी
उपर अट्टालिकाओ (अगासीओ) बनायेली हुती डोटना मध्यभागमा न्या इरवाण

चरिय-दार-गोपुर-तोरणसमुपणयसुविभत्तरायमग्गा छेयायरिय- रइयदढफलिहइंदकीला विवणिवणिछेत्तसिप्पियाडणणिव्वुयसुहा

तत्र-अष्टालका -प्राकारोपरिवर्तित्यश्वेशेसा, चरिकाः=अट्टस्तप्रमागा पसति-
दुर्गांतरालवर्तिमार्गा 'दार' द्वागणि-प्रसिद्धानि, गोपुराणि-गोपुराणि हि नगरस्य मौन्दर्यार्थं
प्रतिद्वाराग्रे निर्मितानि विचित्रशोभामम्पन्नानि प्रवेशद्वागणि तोरणानि=प्रसिद्धानि,
एतैरष्टालकादिभि -उन्नता -दर्शनीयाः तदिगुगमन्पन्ना सुप्रभक्ता -सत्तत्स्थाने गमनाय
विभागरूपेण रचिता राजमागा यस्या सा। 'छेयायरियरइयदढफलिहइंदकीला'
छेकाचार्यरचितदढपरिघेन्द्रकीला-छेकाचार्येण निपुणागिन्पिना, रचित कृत, -परिघ =
अर्गला, इन्द्रकील =मयोजितरुपाटद्वयदढीकरणाय लौहमयकीलप्रशेष यत्र-रुपाटदढी-
करणाय लौहमयरुण्टकप्रशेष, यस्या सा तथा, 'विवणिवणिछेत्तसिप्पिया-
इण्णाणिव्वुयसुहा' निपुणागिक्खेत्रगिन्ध्याक्कीर्णनिर्वृतसुरा, तत्र-निपणीना=हृद्याना वणिजा
च 'छेत्त' क्षेत्र-स्थानरूपा या सा, प्रचुरहृदप्रचुरन्ध्यापारिगगसम्पन्नेयर्थ, तथा-गिन्पिभि =
कुम्भकारतन्तुत्रायादिभि -आक्कीर्णां=परिपूर्णा, अतएव जनाना प्रयोजनसिद्ध्या निर्वृत-

ऊपर अष्टालिकाएँ बनी हुई थीं, कोट के मध्यभाग में जहाँ पर दरवाजे थे वहाँ
आठ हाथ-प्रमाण चौड़ा मार्ग था। कोटमें प्रधान दरवाजे थे, जहाँ से नगरी में
प्रवेश किया जाता था। द्वारों पर तोरण बहुत उन्नत थे। भिन्न २ स्थानों पर
पहुँचने के लिये अलग २ मार्ग बने हुए थे। (छेयायरियरइयदढफलिहइंदकीला)
निपुण गिन्पीके द्वारा रचित-कृत अर्गला से एव इन्द्रकीला-दोनों किनाडोको परस्पर
में दढ करनेके लिये लगाये गये लोहनिर्मित कीलों से इस नगरीके द्वार युक्त थे।
(विवणिवणिछेत्तसिप्पियाइण्णाणिव्वुयसुहा) इसके बाजार अनेक दुकानों एव व्या-
पारियोंसे आकीर्ण रहते थे। नगरीमें कुमार और तन्तुवाय-जुलाहे बहुत थे, इससे

हता त्या आठ हाथना मापना पडोणो रन्ता हता डोटमा मुध्य दरवाण
हता नेभाथी नगरीमा प्रवेश करतो हतो ठारे। उपर तोरण घण्टा सरस
हता, जुडा जुडा स्थानो पर पडोयवा भाटे जुडा जुडा मार्ग भनेला हता
(छेयायरियरइयदढफलिहइंदकीला) निपुण शिल्पीथी जनावेल अर्गला (आग-
णीया)थी तेमण धरुडीला-जन्ने ठमाडोने परस्परमा दढ ठरवा भाटे लगाडवाभा
आवेल लोढाना जनावेल डीला (लोण) थी आ नगरीना द्वारे युक्त
हता (विवणिवणिछेत्तसिप्पियाइण्णाणिव्वुयसुहा) जेनी जन्नेर जनेक दुडानो
तेमण व्यापारीजोथी लरयठ रडेती हती नगरीमा कुलार जने वणुकर

प्रेक्षणीया, शोभासम्भारगालितया नगरी पर्यट्टिर्निमेवा प्रायो न पात्यते । 'पासाईया' प्रासादाया—प्रसादो मन प्रसन्नता प्रयोजन यस्या मा प्रासादीया—हृदिकोलासकारिणी-ति यावत् 'दरिसणिज्जा' दर्शनीया—रमणीयतया क्षणक्षण द्रष्टु योग्या, 'अभिरूवा' अभिरूपा—अभिमतमनुकूल रूप यस्या सा तथा, 'पडिरूवा' प्रतिरूपा—रूप्यते एपोऽयमिति निश्चीयतेऽनेनतिरूपमाकार—अभिमतम् असाधारण रूप यस्या मा अभिरूपा—सर्वथा दर्शकजननयनमनोहारिणीति निष्कर्ष ॥ सू १ ॥

शोभा—अपलक—निर्निमेप दृष्टि से ही देखने योग्य थी—यह नगरी इतनी अधिक सुन्दर थी की जिसे निर्निमेप होकर लोग निहारा करते थे—फिर भी नहीं अघाते थे । (पासाईया) देखकर मनमें बड़ाही प्रसन्नता होती थी । (दरिसणिज्जा) प्रदर्शनीकी वस्तु जैसी यह बनी हुई थी । अति रमणीय होनेकी वजहसे यह क्षण २ में देखनेके कानिल थी । (अभिरूवा पडिरूवा) इसका रूप अनुकूल था—मनको रुचे ऐसा था । इसीलिये यह अभिरूप एउ प्रतिरूप था—दर्शकजनके मनको सत्र प्रकारसे आनन्द प्रदान करनेवाला थी ।

भावार्थ—अवसर्पिणी कालके चतुर्थ ओरमें चपा नामकी नगरी थी । इसमें ऊचे २ मकान थे । ऋद्धिसे यह मडित थी । किसीभी प्रकारका यहा भय नहीं था । जनता हरएक प्रकारसे निर्भय होकर इसमें निर्विघ्न से रहा करती थी । नगरीमें ऐसा कोई भा स्थल नहा था जो भाग्यशाली जनसमूह से आर्काण न हो । इसके

नगरीनी शोभा निर्निमेप दृष्टिसे न केवा लायक હતી (દેખાઈ આવતી હતી) આ નગરી એટલી તો વધારે સુંદર હતી કે લોકો આખતુ મટકુ માર્યા વગર જોયા જ કરતા હતા છતા ધાકતા નહોતા (પાસાઈયા) જોધને મનમા ખૂબજ પ્રસન્નતા થતી હતી (દરિસણિજ્જા) પ્રદર્શનીની વસ્તુ જેવા એ બની ગઈ હતી અતિરમણીય હોવાને કારણે એ ક્ષણે ક્ષણે જોવા યોગ્ય હતી (અભિરૂવા પડિરૂવા) તેનુ રૂપ અનુકૂળ હતુ—મનને રૂચે એણુ હતુ, તેથી તો તે અભિરૂપ તેમજ પ્રતિરૂપ હતી જોનાર લોકોના મનને અર્વ પ્રકારથી આનન્દ પ્રદાન કરાવે તેવી હતી

ભાવાર્થ—અવસર્પિણી કાલના ચોથા આશમા ચપા નામે નગરી હતી તેમા ઉચા ઉચા મકાન હતા ઋદ્ધિથી તે શોભતી હતી ગોઈ પણ પ્રકારનો આહી ભય નહોતો લોકો હરેક પ્રકારથી નિર્ભય બનીને તેમા નિર્વિઘ્ને રહેતા હતા. નગરીમા એણુ કોઈ પણ સ્થળ નહોતુ કે જે ભાગ્યશાળી જનસમૂહથી

वाहिरकी जमान हजार हलोसे जुता करती थी । प्रयेक मौसमका धान्य टममे होता था । गाय-भैमाका इसमें कमी नहा थी । नगरीकी सीमामें गाव बहुत नजदीक बसे हुए थे । इन्नु आन्की उपज इसमें अधिक मात्रामें होनी थी । उडे सुन्दर एव विशाल बगीचे थे । इसमें जनताको कष्ट देनेवालाका नामोनिशा तक भी नहीं था । न यहाँ लंच लेने वाले थे, न प्रस्थिच्छेदक थे, न उचमे लुटेर ही थे । इसमें नर्तकियोंके स्थान भी अनेक थे । भिक्षुआँको प्रयेक समय यहाँ भिक्षा सुलभ थी । कुलपरम्परासे श्रीमत लोगोँका यहाँ अभाव नहीं था । मनोविनोद के साधन भी इस नगरीमें जगह-पर थे । नट थे, नाटककार थे, मञ्जुयुद्ध करनेवाले थे, मुष्टियुद्ध करनेवाले थे । कथा-कहानी सुनाकर लोगोँमें सुप्त शुद्धपुरुषार्थको जगानेवाले जनभी यहाँ थे । रास रचा-कर मानवोंको आनन्दित करने वाले खिलौनी व्यक्तिभी यहाँ रहा करते थे । तात्पर्य यह कि प्रयेक मनोविनोद की सामग्री यहाँ सतत प्रस्तुत रहा करती थी । नगरी के वाहिर-भीतर का प्रदेश आरामा, उद्यानों, कुना, वावडी एव जलाशय-तालाव आदि से सुशोभित था ।

अरेलु न डोय तेनी अडारनी भूमि हुलरो डुणोथी जेठाया करती डती प्रत्येक भोमभना धान्य तेमा उत्पन्न थता डता गाय-ले सोनी तेमा जेठ नडोती नगरीनी सीमामा गाभडा अहु नलुडमा वमेला डता शेरडी आदिनी उपज तेमा वधादे प्रभाषुमा थती डती भोटा सुहर तेमज विशाल अगीच्या डता तेमा डोकोने कष्ट देवावाणतु नामनिशान पषु नडोतु न तो अही लाय देवा वाणा डता डे न भिस्माकतडु डता वणी लु टारा पषु नडोता तेमा नायनारीओना स्थान पषु घणु डता भिक्षुओने प्रत्येक भभय अही नडेने भिक्षा भणी रडेती डती कुणपरपराथी श्रीमत डोकोने अही अलाव नडोतो मनोविनोदना साधन पषु आ नगरीमा ठेठेकाषु डता नट डता, नाटयडार डता, मल्लयुद्ध करवावाणा डता, मुष्टियुद्ध करवा वाणा डता, कथा-पारता मलजावी डोकोमा डकाथ रडेवे शुद्ध-पुत्र्पार्थ जगृत कराववावाणा डोको पषु अही डता रास रचावीने मानवोने आनन्दित करवावाणा जेलाडी व्यक्तियो पषु अही रडेता डता तात्पर्य अे डे प्रत्येक मनोविनोदनी सामग्री अही सतत प्रस्तुत रहा करती डती नगरीनी अडार तेमज अहरना प्रदेश आगमे उद्याने कुवा वावडी तेमज जलाशयो-तालाव आदिथी सुशोभित डता.

इस नगरी के बाहिर एक विशाल और बहुत गहरी खाई थी। नगरी का कोट वक्र धनुषकी अपेक्षा भी अधिक वक्र था, जिममें प्रत्येक आत्मरक्षण के साधन थे। किले में बड़े दरवाजे थे, दरवाजों में वक्र जैसे मजबूत फिवाट थे, फिवाटों में नुकीले कीले लगे हुए थे। कोट के ऊपर जो अट्टालिकाएँ थीं उनमें अनेक प्रकार के अस्त्र और शस्त्रों का संग्रह किया गया था। वह वहाँ सदा सुरक्षित रहता था। नगरीमें विस्तृत बाजार थे, बाजारोंमें बड़ी-बड़ी दुकानें थीं, दुकानों में क्रय-विक्रय की बहुमूल्य प्रत्येक आवश्यकीय वस्तुएँ संग्रहीत थीं। नगरी के राजमार्ग हर समय अपार जनकी भीड़ से, हाथियों से, पालकियों से, रथों से, और तामजाम आदि से सुकलित बने रहा करते थे। यहाँ के मकान धवल चूनासे पुते हुए रहने के कारण बड़े ही सुहावने मादम होते थे, तात्पर्य यह है कि यह नगरी बहुत ही सुन्दर और चित्त को लुभानेवाली थी। सब प्रकार से यहाँ जनताको आराम था। किसी भी त्रिलोकात् वस्तु का यहाँ अभाव नहीं था। अमरावती जैसी यह मली मादम होती थी।

आ नगरीनी गडदार एक विशाल अने धड़ी उड़ी भाँट होती नगरीने इरेतो वाङ्क धनुष उरता पणु वधारे वाङ्क डोट होती नेमा इरेक आत्मरक्षणना साधन होता किल्लाभा मोटा मोटा दरवाण्ड होता दरवाण्डभा वण्ड नेवा मजबूत कमाड होता कमाडभा आगणीआ तथा लोणगी लागवेला होता डोटना उपर ने अट्टारिओ होती तेमा अनेक प्रकारना अस्त्रो तथा शस्त्रो ने संग्रह उरेको डते ते त्या सदा सुरक्षित रहेतो डते। नगरीभा विस्तृत गण्डर होती गण्डरभा मोटी मोटी दुकानो होती दुकानोभा क्रय-विक्रयनी बहु-मूल्य (किमती) प्रत्येक आवश्यकीय वस्तुओ सघरेली होती नगरीना राजमार्ग इरेक समय अपार भाणुसोनी लीडथी, हाथीओथी, पालथीओथी, रथेथी अने तामजाम आदिथी लस्यक रक्षा करता डता अहीना मकान सकेद युनाथी पोतायेला रहेवाना डारणे गूण व देनकडार लागता डता तात्पर्य अे उ आ नगरी गडुण सुदर अने चित्तने जेखवावाणी होती इरेक प्रकारथी अही लोकोने आराम डते। डोण्ड पणु त्रिलोकागत (त्रणु लोकाभा थती) वस्तुने अही अलाव नडोते अमरावती नेवी आ सरम लागती डती

शका-काल और समय तो एक ही अर्थ के वाचक हैं फिर सूत्र में " तेण कालेणं तेणं समण्णं " ऐसा प्रयोग सूत्रकार ने क्यों किया ? उत्तर यह है—'काल' शब्द से अत्रमर्षिणी कालके चतुर्थ और का ग्रहण होता है, और 'समय' शब्द से यहाँ हीयमान लिया जाता है, तथा घड़ी घटा पक्ष मास सवासर आदिरूप से परिवर्तित होने वाला परिणामन लिया जाता है, अथवा—जिस प्रकार सत्रत् और मित्ती रसातां आदिम लीखी जाती हैं, ठीक इसीप्रकार यहा पर भी समझना चाहिये । यह चपा नगरी तो अत्र भी है फिर " अस्ति " ऐसा न कहकर सूत्रकार ' आसीत् ' इस भूतकालिक क्रिया का प्रयोग क्यों करते हैं ? अर्थात्—जिस समय औपपातिकसूत्रकी रचना हुई उस समय मे भी वह नगरी थी, फिर 'अस्ति' ऐसा न कहकर 'आसीत्' ऐसा क्यों कहा ? इसका उत्तर यह है कि जिस समय इस उपाग रूप आगम की वाचना हुई थी, उस समय यह नगरी सूत्र में कहे हुए विशेषणां से सर्वथा युक्त नहीं थी, न इस समय वैसी है, इसलिए 'अस्ति' क्रियापदका प्रयोग न करके सूत्रकार ने आसीत् इस भूतकालिक क्रियापदका प्रयोग किया है ॥ सू १ ॥

शका-काल अने समय तो अेकैव अर्थना वाचक छे छता सूत्रमा " तेण कालेण तेण समण्ण " अेवो प्रयोग सूत्रकारे केम कथे छे ? उत्तर अे छे के 'काल' शब्दथी अवमर्षिणी कालना अेथा आरानो अर्थ अडुणु थाय छे, अने 'समय' शब्दथी अही हीयमान लेवाय छे, तथा घड़ी कलाक पक्ष मास सवत्सर आदि रूपथी परिवर्तित थनार परिणुमन लेवाय छे अथवा ने प्रकारे सवत् तथा मित्ती शेषडा आदिमा लभवामा आवे छे तेवी न रीते अहीया पणु समणु' नेध अे आ यथा नगरी तो डुणु पणु छे छता ' अस्ति ' अेम न कडेता ' आसीत् ' अेम भूतकालिक क्रियानो प्रयोग केम करे छे ? अेटवे के ने समये औपपातिक-सूत्रनी रचना थध ते समयमा पणु ते नगरी छती तो पणु अन्ति अेम न कडेता आसीत् केम कहु ? तेनो नवाण अे छे के, ने समये आ उपागरूप आगमनी वाचना थध छती ते समये आ नगरी सूत्रमा कडेला विशेषणथी सर्वथा युक्त न छती अने आ समये पणु तेवी नथी रही अे माटे अस्ति क्रियापदना प्रयोग न करता सूत्रकारे आसीत् अेवा भूतकालिक क्रियापदना प्रयोग कथे छे (१)

इस नगरी के बाहिर एक विशाल और बहुत गहरी खाई थी। नगरी का कोट वक्र धनुषकी अपेक्षा भी अधिक वक्र था, जिममें प्रत्येक आत्मरक्षण के साधन थे। किले में बड़े २ दरवाजे थे, दरवाजों में वक्र जैसे मजबूत किनाड थे, किवाटों में नुकीले कीले लगे हुए थे। कोट के ऊपर जो अट्टालिकाएँ थीं उनमें अनेक प्रकार के अन्न और गन्नों का स्रष्ट किया गया था। वह वहा सदा सुरक्षित रहता था। नगरीमें विस्तृत बाजार थे, बाजारोंमें बड़ी २ दुकाने थीं, दुकानों में क्रय विक्रय की बहुमूल्य प्रत्येक आवश्यकीय वस्तुएँ संग्रहीत थीं। नगरी के राजमार्ग हर समय अपार जनकी भीड से, हाथियों से, पालकियों से, रथों से, और तामजाम आदि से सुकलित बने रहा करते थे। यहा के मकान धवल चूनासे पुते हुए रहने के कारण बड़े ही सुहावने मालूम होते थे, तात्पर्य यह है कि यह नगरी बहुत ही सुन्दर और चित्त को छुमानेवाली थी। सब प्रकार से यहा जनताको आराम था। किसी भी त्रिलोकगत वस्तु का यहा अभाव नहीं था। अमरावती जैसी यह भली मालूम होती थी।

आ नगरीनी गडार ओक विशाल अने घड़ी उड़ी भाई होती नगरीने इरते। वाकु धनुष करता पणु वधारे वाके कोट होती नेमा इरेक आत्मरक्षणना साधन होता किल्लाभा मोटा मोटा दरवाजा होता दरवाजाभा पणु नेवा मजबूत कमाड होता कमाडभा आगणीआ तथा लोणणे लगावेला होता कोटना उपर ने अट्टालिका होती तेमा अनेक प्रकारना अन्नो तथा शस्त्रो ने सश्रद्ध करेला होता ते त्या सदा सुरक्षित रहेतो होता। नगरीभा विस्तृत गडार होती गडारोभा मोटी मोटी दुकानो होती दुकानोभा क्रय-विक्रयनी गडु-भूद्य (किमती) प्रत्येक आवश्यकीय वस्तुओ सधरेली होती नगरीना राजमार्ग इरेक समय अपार भाणुसोनी लीडथी, छाथीओथी, पालभीओथी, रथोथी अने तामजाम आदिथी लस्यक रखा करता होता अहीना मकान सश्रेष्ठ सुनाथी पोतायेला रहेवाना कारणे भूषण न रैनकदार लागता होता तात्पर्य अे के आ नगरी गडुण सुदर अने चित्तने जेअवावाणी होती इरेक प्रकारथी अही लोडोने आराम होता ठोछ पणु त्रिलोकगत (त्रणु लोडमा थती) वस्तुने अही अभाव नहोतो अमरावती नेवी आ सरस लागती होती

सच्छत्ते सज्जए सघटे सपडागे पडागाइपडागमंडिए सलोमहत्थे
कयवेयदिए लाउल्लोइयमहिए गोसीससरसरत्तचंडणदहर-

प्रिडितम् । ' सच्छत्ते ' सच्छत्तम्-उत्तमण्डितम् । ' सज्जए ' मञ्ज-त्रजोच्छ्रायं
मश्रीकम् । ' सघटे ' सघट्टम् । ' सपडागे ' सपताकम् । ' पडागाइपडागमंडिए '
पताकाऽतिपताकामण्डितम्-पनाका = उतुपताका अनिपताका = त्रिशालपताका, ताभिर्मण्डितम् ।
' सलोमहत्थे ' मगमेहस्त-मृदुप्रमार्जनिकाया महितम् । ' कयवेयदिए ' वृत्तपि-
तर्दिकम् गचितवेदिकम् । ' लाउल्लोइयमहिए ' लापितोच्छोचितमहितम्, तत्र लापित-गोम-
यादिभिरङ्गणमित्यादेर्लेपनम्, उल्लोचितम्-गडिकादित्र्यैर्भित्यादीना चारुचिन्मययुक्तकरणम् ।
या, (कित्तिए) लोगों द्वारा भीतरह तरह की किन्दतियों (दन्तकथाओं) से यह कीर्तित हो रहा
था । (णाए) ऐसा कोई भी जन नहीं था जो उसके नामसे अपरिचित हो ।
सर्वत्र जनो में यह र्यातिप्राप्त स्थान था । (सच्छत्ते) वह उत्तमहित था ।
(सज्जए) ध्वजाओं से युक्त था, (सघटे) घटाओं से विशिष्ट था (सपडागे)
पताकाओं से उमकी शोभा अपूर्व जन रही थी । उसमें (पडागाइपडागमंडिए)
कोई २ ठोटी पताकाए थीं और कोई २ त्रिशाल पताकाए थीं, जिनसे वह मंडित
था । (सलोमहत्थे) मृदुप्रमार्जनिका-मयूरपिच्छकी पाठी से ही उमकी सफाई होती
थी, अत इतस्तत वे ही वहा रग्वी हुई रहती थीं, कठिन बुरारिया नहा । (कयवेयदिये)
इसमें वेदिका बनी हुई थी (लाउल्लोइयमहिये) इसके आगन की जमीन लापित-
गोमय से लिपी हुई रहती थी, उसकी भाते उल्लोचित-सफेद सटिया से पुती

धलो पुराणो छे ओ उपथी प्रमिद्धि-टोटिमा आवी गयो हुतो (कित्तिए)
दोडोदाग पणु नतनतनी छिवदतिओथी-दतकथाओथी ते कीर्तित
(भ्रथात) थर्ध रह्यो हुतो (णाए) ओयो डोध पणु माणुम नडोतो छे
वे ओना नामथी अपरिचित डोय भर्वत्र दोडोमा आ थ्याति पाभेलु स्थान
हुतु (सच्छत्ते) ते छत्रमंडित हुतु (सज्जए) धनओथी युक्त हुतु
(सघटे) घटाओथी विशिष्ट हुतु (सपडागे) पताकाओथी तेनी शोला
अपूर्व थर्ध रही हुती तेमा (पडागाइपडागमंडिए) डोध डोध नानी पताकाओ
हुती अने डोध डोध विशाल पताकाओ हुती नेथी ते शोभतु हुतु (सलोम-
हत्थे) मृदुप्रमार्जनिका-मोरना पीछानी पीछीथी न तेनी सक्षर्ध थती हुती,
आथी अही तही ते त्या राभवामा आवती हुती, उडणु आवरणुी नडि
(कयवेयदिए) तेमा वेदिका बनानेकी हुती (लाउल्लोइयमहिए) तेना आगणुानी
भूमि लापित-छाणुथी दी पाओदी रहोती हुती तेनी भीतो उल्लोचित-सक्षे

मूलम्—तीसे णं चंपाए णयरीए वहिया उत्तर-
पुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं पुण्णभद्दे णामं चेइए होत्था, चिराईए
पुव्वपुरिसपण्णत्ते पोरणे सहिए वित्तिए कित्तिए णाए

टीका—‘तीसे णं’ इत्यादि । ‘तीसे ण चंपाए णयरीए’ तस्या सल्ल चम्पाया नगर्यां -न
करोऽऽटावगविधस्तन्निवासिना राज्ञे देयो यस्या मा नगरो, अत्र ककारस्य गकाररूपो वर्णविपर्याय पृ-
षोदरादित्वात्, अष्टादशविध करोऽस्माभिरन्तर्हृदगाङ्गसूत्र प्रथमसूत्रस्य मुनिकुमुदचन्द्रिकाटीका-
यामुक्तस्ततो विज्ञेय । ‘वहिया’ बाह्ये, ‘उत्तरपुरत्थिमे’ उत्तरपौरस्त्ये-उत्तरस्या पूर्णस्या अन्तराठे-
ऐशान्येकोण इति यावत् । ‘दिसीभाए’ दिग्भागे । ‘पुण्णभद्दे णामं चेइए होत्था’
पूर्णभद्र नाम चैत्य-व्यन्तरायतनमासीत् । तत् कीदृशम् ? इत्याह—‘चिराईए’ चिराटिकम्
चिरकालिकम् अतएव—‘पुव्वपुरिसपण्णत्ते’ पूर्वपुरुषप्रज्ञत्तम्, पूर्वपुरुषै प्राचीन-
पुरुषै प्रजतम-कथित बहुकालत प्रसिद्धम् इत्यर्थ । यत् पोरणे-पुरातनमति-
प्राचीनम् ‘सहिए’ शब्दित-शब्द-प्रसिद्धि सञ्जातो यस्य तत्-शब्दितम्-
प्रसिद्धिप्राप्तम् । ‘वित्तिए’ वित्तिकम्-वित्त-प्रसिद्धिरस्यास्तीति वित्तिकम् प्रसिद्धे-
मित्यर्थ । ‘कित्तिए’ क्रीतितम्-प्रवर्णितम् ‘णाए’ प्रख्याततया ज्ञात-सकलजन-

‘तीसे ण चंपाए णयरीए०’ इत्यादि ।

(तीसे ण चंपाए णयरीए) उस चंपा नगरी के (वहिया)
बाहिर (उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए) उत्तर और पूर्व दिशा के बीच ईगानकोणमें
(पुण्णभद्दे णामं चेइए होत्था) पूर्णभद्र नाम का एक चैत्य-यक्षालय
था । (चिराईए पुव्वपुरिसपण्णत्ते) वह बहुत प्राचीन था । बड़े-बूढ़े पुराने पुरुष
भी इसको तारीफ करते आ रहे थे । इसलिये वह (पोरणे) बहुत पुराना
था । (सहिए) इसी प्रकार से इसकी प्रसिद्धि भी चली आरही थी । और इसी
कारण से वह (वित्तिए) बहुत पुराना है—इस रूपसे प्रसिद्धि-कोटि में आ गया

तीसे णं चंपाए णयरीए० इत्यादि

(तीसे णं चंपाए णयरीए) ते चंपा नगरीना (वहिया) णडाए (उत्तरपुरत्थिमे
दिसीभाए) उत्तर अने पूर्व दिशानी वन्धे-इशान कोणमा (पुण्णभद्दे णामं चेइए होत्था)
पूर्णभद्र नामने अके चैत्य-यक्षालय इतो (चिराईए पुव्वपुरिसपण्णत्ते) अ
धुवा प्राचीन इतो धुवा धुवा पुगुवा पुइय पथु तेनी प्रथ सा इरता आवता
इता, ते माटे ते (पोरणे) धुवा पुराणे इतो (सहिए) अथी
इते तेनी प्रसिद्धि पथु आसी आवती इती अने अे डारधुथी ते (वित्तिए)

दामकलावे पंचवणसरससुरभिमुक्कपुष्पपुंजोवयारकलिए काला-
गुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कध्रुवडञ्जंतमघमघंतगंधुद्दुयाभिरामे सुगंधवर-

कलाप = समूहो यत्र तत्. अथात्-उपर्यधोऽपि स्तूतं तुल्यप्रलम्बमानकुमुममाला-
कलापोपेतम् । 'पंचवणसरससुरभिमुक्कपुष्पपुंजोवयारकलिए' पञ्चवर्णसरस-
सुरभिमुक्कपुष्पपुंजोपचारकृतितम्-पञ्चवर्णानि कृष्णनालपीतरक्तधेतकान्तियुक्तानि मरसानि
सुरभीणि-सुगन्धीनि च तानि मुक्तानि-विक्रीर्णानि यानि पुष्पाणि तेषां पुष्पैरुपचाग-
रचनाविशेषा, तैः कलितं युक्तं त्रिधिवर्णकुमुमरचनासम्पन्नमिदं, 'कालागुरुपवर-
कुंदुरुक्कतुरुक्कध्रुवडञ्जंतमघमघंतगंधुद्दुयाभिरामे' कालागुरुप्रवरकुन्दरुक्कतुरुक्कध्रुवद्वय-
मानातिगयन्धोद्भूताऽभिरामम्-कालागुरु = कृष्णागुरु, प्रवरकुन्दुरुक्क = श्रेष्ठगन्धद्रव्यविशेष,
तुरुक्क = सिन्धु 'लोमान' इति भाषायाम्, धूप = गन्धद्रव्यमयोगजन्य
पदार्थ, एते दद्यमाना अग्नौ प्रक्षिप्यमाणास्तेषां 'मघमघत' अतिशयितो
यो गन्ध 'उद्भूय' उद्भूत = सर्जित प्रसृत, तेन अभिरामम् = मनोहरम् 'सुगंधवरगंध-

मद्दामकलावे) यक्षाद्यतनं मे भीतो के ऊपर और नीचे सर्वत्र विन्नीर्ण एव
गोलाकार लटकते हुए कुमुमकी मालाओं के कलाप का सजावट हो रही थी।
(पंचवणसरससुरभिमुक्कपुष्पपुंजोवयारकलिए) प्रतिस्थान पर यहा पंचवर्ण के
सरस एव सुगंधित पुष्पों के पुंजों से अनेक प्रकारकी रचना रचने में आई थी।
(कालागुरुपवरकुंदुरुक्कध्रुवडञ्जंतमघमघंतगंधुद्दुयाभिरामे) उस यक्षा-
द्यतनमें कृष्णागुरु, प्रवरकुन्दुरुक्क-श्रेष्ठगन्धद्रव्यविशेष, तुरुक्क-सेन्धारस-लोमान और
धूप ये सब सुगंधित पदार्थ अग्नि में ममय २ पर प्रक्षिप्त हुआ करते थे, इसलिये
वहा अद्भुत विशेष गंध भरी रहती थी, इसलिये वह सदा अतिशय

मल्लदामकलावे) यक्षाद्यतनमा लीतोनी उपर तथा नीचे सर्वत्र विन्नीर्ण
तेभ्य गोलाकार लटकावेली पुष्पेनी भाषाओना डलापनी सजावट (शोभा)
थई रही હતી (पंचवणसरससुरभिमुक्कपुष्पपुंजोवयारकलिए) દરેક સ્થાન
પર આહી પચ વર્ણના સરસ તેમજ સુગંધિત પુષ્પોના ઢગલાથી અનેક પ્રકાર
ની રચના બનાવવામા આવી હતી (કાલાગુરુપવરકુંદુરુક્કધ્રુવડજ્ઞંતમઘમઘંત
ગંધુદ્દુયાભિરામે) તે યક્ષાદ્યતનમા કૃષ્ણાગુરુ, પ્રવરકુન્દુરુક્ક-શ્રેષ્ઠ ગંધદ્રવ્ય વિશેષ,
તુરુક્ક-સેન્દહારસ-લોમાન અને ધૂપ, એ બધા સુગંધિત પદાર્થો અગ્નિમા વાર વાર
નાખવામા આવતા હતા, તેથી ત્યા બધુજ સુગંધભરી રહેતી હતી આથી તે
સદા મઘમઘતુ-બધી તરફથી સુગંધીથી સુગોભિત બની રહેતુ

दिष्णपंचगुलितले उवचियचंदणकलसे चंदणघडसुकय-
तोरणपडिदुवारदेसभाए आसत्तोसत्तविउलवट्टवगारियमल-

ताभ्या महित=युक्तम् । 'गोसीससरसरत्तचदणदहरदिष्णपचगुलितले' गोशीर्षमसरक्त-
चन्दनप्रचुरदत्तपञ्चाङ्गुलितलम्, गोशीर्ष-गोरोचन सरस रक्तचन्दनम्, एतेन चन्दनस्य
पीतवर्णता रक्ता च व्यन्यते, तेन पीतरक्तसरसचन्दनेन दर्दर-प्रचुर यथा स्यात्तथा दत्त
पञ्चानामङ्गलीना तल=शायतपञ्चाङ्गुलपागितल चपेटारूपम् अङ्गुन चिह्न यत्र तत्
तथा । 'उवचियचदणकलसे' उपचितचन्दनकलशम्-मङ्गलार्थं न्यस्तचन्दन-
लिमघटम् । 'चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभाए' चन्दनघटसुकृत-
तोरणप्रतिद्वारदेशभागम्-चन्दनघटाश्च सुष्ठु कृततोरणानि च प्रतिद्वारदेशभागे यस्य
तत्तथा, यत्र प्रतिद्वारे चन्दनलिप्तकलशा सुन्दरतोरणानि च सन्तीत्यर्थं, 'आसत्तोसत्त-
विउलवट्टवगारियमलदामकलावे' आसक्तोऽसक्तविपुलवृत्ताऽन्तारितमाल्यदाम-
कलापम्-आसक्तो-भूमिमसक्त असक्त- उपरिमसक्त, विपुलो विस्तारण, 'चट्टो'
वृत्तो-वर्तुलो गोलाकार, उपरिदेशात्-अवनारित प्रलम्भमानीकृत, -
'मलदामकलावे' मान्यानि-कुमुमानि, तोषा दामानि-माला पुष्पमाला, तेऽत्र माल्यदाम्ना

रहती थी । इस कारण रत्न महित-चमकती रहती थी । (गोसीससरसरत्तचदणदहरदिष्ण-
पचगुलितले) भित्तियों में जगह २ पर गोरोचन और सरस रक्तचन्दन के प्रचुरमात्रा
में हाथे लगाये हुए थे । (उवचियचदणकलसे) उस यक्षालयमें मंगल के
निमित्त चन्दन से लिम कलश स्थापित थे । (चदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभाए)
प्रत्येक द्वारों पर चन्दन के घट रचे हुए थे, एव अच्छी तरह से बनाए गये सुन्दर
तोरण दरवाजों के ऊपर सुशोभित हो रहे थे, अथवा चन्दन के छोटे २ कलशों से
दरवाजों पर तोरणों की रचना करने में आई थी । (आसत्तोसत्तविउलवट्टवगारिय-

पडीथा पीताम्बेडी रडेती इती ते ञरथे तेपूण महित-यमकती रडेती इती (गोसीस-
सरसरत्तचदणदहरदिष्णपचगुलितले) एतीतभा ठेठेठेकाथे गोरोचन अने सरस रक्त-
चन्दनना थापा पूण प्रभाषुभा लगावेला इता (उवचियचदणकलसे) ते
यक्षालयभा मंगलना निमित्त अहन लगावेला ज्येश्ठा स्थापित इता (चदणघड
सुकयतोरणपडिदुवारदेसभाए) प्रत्येक द्वारे उपर अहनवाजा घट राभेला
इता तेमज्जरस रीते जनावेला सुद्धर तोरथु दरवाजानी उपर सुशोभित
लटकी रडेला इता अथवा अहन लगावेला नाना नाना ज्येश्ठीही दरवाज
पर तोरथुानी रचना करवाभा आवी इती (आसत्तोसत्तविउलवट्टवगारिय-

आहुस्स आहुणिज्जे पाहुणिज्जे अच्चणिज्जे वंदणिज्जे नमंसणिज्जे
पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लणं मंगलं देवयं चेडयं
विणएणं पज्जुवासणिज्जे दिव्वे सच्चे सच्चोवाए सण्णिहियपाडिहेरे

विश्रुतकृत्तिकम्-बहुजनस्थ=पौरस्थ, जानपदस्थ=जनपदजातस्थ अर्थात्-नागरिकाणा
देशामिना च विश्रुतकृत्तिकम्-प्रमिद्विभुक्तम्, 'बहुजनस्स' बहुजनस्स, 'आहुस्स'
आहोतु-दातु-दानगीत्यस्य बहुजनस्य, 'आहुणिज्जे' आह्वनीयम् आह्वयते-दीयते
इमै इति आह्वनीय-सम्प्रदानरूपम्, 'पाहुणिज्जे' प्राह्वणीयम् - प्रकृष्टतया
सम्प्रदानरूपम्, 'अच्चणिज्जे' अर्चनीयम्-आत्तगपात्रम्, 'वदणिज्जे' वन्दनीय-स्तुतियोग्यम्,
'नमसणिज्जे' नमस्त्यनायम्, 'पूयणिज्जे' पूजनीय-प्रशामनीयम्, 'सक्कारणिज्जे'
सत्करणीयम्, 'सम्माणणिज्जे' सम्माननीयम्, 'कल्लण' कन्याणम् 'मंगलं'
मङ्गलम् 'देवयं' दैवतम्, 'चेडयं' चैयम्, 'विणएण' विनयेन, 'पज्जुवासणिज्जे'
पर्युषामनीयम्, 'दिव्वे' दिव्यम्, 'सच्चे' सय, 'सच्चोवाए' सयावपात-सफलसेवम्,

वयस्स विस्सुयकित्तिए) इस यक्षायतन क्क प्रमिद्वि अनेक्क पुरामियो एव अनेक्क
नगरनिवासियो तंक्क यी । (बहुजनस्स आहुस्स आहुणिज्जे) बहुत लोग इस
मे दान दिया करते थे । (वदणिज्जे णमसणिज्जे अच्चणिज्जे पूयणिज्जे सक्कार-
णिज्जे सम्माणणिज्जे) यहां के लोग इस यक्षको वन्दनीय, नमत्करणीय, अर्चनीय,
पूजनीय, सत्करणीय, और सम्माननीय मानते थे । (कल्लण मंगल देवयं चेडयं
विणएण पज्जुवासणिज्जे दिव्वे सच्चे सच्चोवाए सण्णिहियपाडिहेरे जागसहस्स-
भागपडिच्छए) तथा कन्याण, मंगल, दैवत मानते थे, और चैत्य अर्थात्
लोगों की अभिलाषा को जानने वाले मानते थे, विनय से उपासना करने के
योग्य मानते थे, दिव्य और सय मानते थे, सफल सेवा मानते थे, जगह २ इसके

वयस्स विस्सुयकित्तिए) आ यक्षायतननी प्रमिद्वि अनेक्क पुग्वासीओ तेभक्क
अनेक्क नगरवासीओ सुधी पडोसी हुती (बहुजनस्स आहुस्स आहुणिज्जे)
धष्ठा डोडो ओभा दान आप्था करता हुता (वदणिज्जे णमसणिज्जे अच्चणिज्जे
पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे) अहीना डोडो आ यक्षने वदनीय,
नमत्करणीय, अर्चनीय, पूजनीय, सत्करणीय, अने सम्माननीय मानता हुता
(कल्लण मंगल देवयं चेडयं विणएण पज्जुवासणिज्जे दिव्वे सच्चे सच्चोवाए सण्णिहिय-
पाडिहेरे जागसहस्सभागपडिच्छए) तथा उट्याणु, मंगल, दैवत मानता हुता
अने चैत्य अर्थात् डोडोनी अभिलाषाने लणुवावाणा मानता हुता, विनयधी
उपासना करवा योअ्य मानता हुता, दिव्य अने सय मानता हुता, सक्षल

गंधगंधिए गंधवट्टिभूए णड-णट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्टिय-वेलंवग-पवग-
कहग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणडल्ल-तुंववीणिय-भुयग-
मागह-परिगए बहुजणजाणवयस्स विस्सुयकित्तिए बहुजणस्स

गंधिए' सुगन्धवर्ग-वगंधितम्-नानाविधपुष्पसम्पादितगन्धद्रव्यै सुवासितम् ।
'गंधवट्टिभूए' गन्धवर्तिभूत-गन्धद्रव्यगुटिकासट्टगम्-सौरभ्यातिशयात् गन्धद्रव्यनिर्मितवद्
भाममानम् । 'णट्टगट्टे'-त्यादि, अत्रैव प्रथमसूत्रे व्याख्यातम्, नवरम्-'भुयगमागह-
परिगए' भोजकमागधपरिगतम्, भोजका-सेवकाः मागधा स्तुतिपाठका,
तै परिगत व्यासम् । 'बहुजणजाणवयस्स विस्सुयकित्तिए' बहुजनजानपदस्य

सुगंधि से सुशोभित बना रहता था । (सुगंधवरगंधिए) जनक प्रकार के
सुगंधित पुष्पों की गंध से भी वह सदा सुवासित होना रहता था (गंधवट्टिभूए)
इसलिये यह गंधकी बत्ती जैसा हो रहा था । ऐसा ज्ञात
होता था कि यह सुगंधित द्रव्यों के चूर्ण से ही मानो निरचित किया गया है ।
(णड-णट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्टिय-वेलवय-इत्यादि) नृत्य करने वालों से,
नाटक करने वालों से, डोरी पर नाचने वालों से, मुष्टियुद्ध करने वालों
से, बदर की तरह कूदने वालों से, भाड के जैसी नकल करने वालों से, तथा
कहाना कहने वालों से, राम रचने वालों से, शुभा-शुभ प्रकट करने वालों
से, वासके अफभाग पर खेलने वालों से, चित्रपट दिखल कर आजीविका कर्न
वालों से, चाण राजने वालों से, तुबी बजाने वालों से, भोजकों-सेवकों-से,
और मागधों-स्तुतिपाठकोंसे वह मंदिर सदा युक्त बना रहता था । (बहुजणजाण-

इतु (सुगंधवरगंधिए) अनेक प्रकारना सुगंधित पुष्पोंकी गंधकी
पथु तेहमेश सुवासित थध रडेतु इतु (गंधवट्टिभूए) अथी ते गंधना वाती नेपु
थध रडे इतु अेभए लागतु इतु के अे सुगंधित द्रव्योंना चूर्णकी व न्ने
थनाथु छे (णड-णट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्टिय-वेलवय-इत्यादि) नृत्य करनाराअोथी,
नाटककाराथी, डोरा उपर नाचवावाणाअोथी, मुष्टियुद्ध करनाराअोथी,
वाहरानी पेडे कूदवावाणाअोथी, भाड (लवाया) नेवी नकल करवावाणाअोथी,
तथा वाती कडेवावाणाअोथी, राम करनाराअोथी, शुभाशुभ प्रकट करनाराअोथी,
वाचनी टोच पर रभनागअोथी, चित्रपट देखाडीने आछविडा करवावाणाअोथी,
वीणा बगाठनाराअोथी, तुथुठ बगाठनाराअोथी, भोजके-सेवकेथी अने
मागधो-स्तुतिपाठकेथी ते मंदिर महा भरचक रडेतु इतु (बहुजणजाण-

आहुस्त आहुणिजे पाहुणिजे अच्चणिजे वंदणिजे नमंसणिजे
पूयणिजे सक्कारणिजे सम्माणणिजे कल्लाणं मंगलं देवयं चेडयं
विणएणं पज्जुवासणिजे दिव्वे सच्चे सच्चोवाए सण्णिहियपाडिहेरे

विश्रुतकीर्तिकम्-बहुजनस्य=पौरस्य, जानपदस्य=जनपदजातस्य अधंत्-नागरिणाणा
देशानामिना च विश्रुतकीर्तिकम्-प्रमिद्वियुक्तम्, 'बहुजणस्स' बहुजनस्य, 'आहुस्स'
आहोतु-दातु-दानार्थस्य बहुजनस्य, 'आहुणिज्जे' आहवनीयम् आह्वयते-दीयते
इमै इति आहवनीय-मन्त्रदानरूपम्, 'पाहुणिज्जे' प्राहवणीयम् - प्रष्टव्यया
मन्त्रदानरूपम्, 'अच्चणिज्जे' अर्चनीयम्-आदरणीयम्, 'वंदणिज्जे' वन्दनीय-स्तुतियोग्यम्,
'नमंसणिज्जे' नमस्सनीयम्, 'पूयणिज्जे' - पूजनीय-प्रशमनीयम्, 'सक्कारणिज्जे'
सक्करणीयम्, 'सम्माणणिज्जे' सम्माननीयम्, 'कल्लाण' कल्याणम् 'मंगलं'
मङ्गलम् 'देवय' देवनम्, 'चेडय' चैयम्, 'विणएण' विनयेन, 'पज्जुवामणिज्जे'
पुण्यमाननीयम्, 'दिव्वे' दिव्यम्, 'सच्चे' सत्यम्, 'सच्चोवाए' सयावपात-सफलसेवम्,

वयस्स विस्सुयकित्तिए) इम यथायतनं कौ प्रमिद्वि अनेकं पुग्गामियो एव अनेकं
नगरनिवासियो तस्स वी । (बहुजणस्स आहुस्स आहुणिज्जे) बहुत लोका इम
मे दानं दद्या कर्तते ये । (वंदणिज्जे णमंसणिज्जे अच्चणिज्जे पूयणिज्जे सक्कार-
णिज्जे सम्माणणिज्जे) यहा के लोका इम यत्तको वन्दनीय, नमस्करणीय, अर्चनीय,
पूजनीय, सक्करणीय, और सम्माननीय मानते ये । (कल्लाण मंगलं देवयं चेडयं
विणएणं पज्जुवासणिज्जे दिव्वे सच्चे सच्चोवाए सण्णिहियपाडिहेरे जागसहस्स-
भागपडिच्छए०) तथा कल्याण, मंगल, दैवत मानते ये, और चैय अर्थात्
लोगों को अभिधाया को जानने वाले मानते ये, विनय से उपासना करने के
योग्य मानते ये, दिव्य और सत्य मानते ये, सफल सेवा मानते ये, जगह २ इसके

वयस्स विस्सुयकित्तिए) आ यथायतनं प्रसिद्धि अनेकं पुग्गामिओ तेभं
अनेकं नगरवासीओ सुधी पडोथी इती (बहुजणस्स आहुस्स आहुणिज्जे)
धरुा होठो अेभा दानं आत्था इत्ता इती (वंदणिज्जे णमंसणिज्जे अच्चणिज्जे
पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे) अहीना होठो आ यक्षने वदनीय,
नमस्करणीय, अर्चनीय, पूजनीय, सक्करणीय, अने सम्माननीय मानता इती
(कल्लाण मंगलं देवयं चेडयं विणएणं पज्जुवामणिज्जे दिव्वे सच्चे सच्चोवाए सण्णिहिय-
पाडिहेरे जागसहस्सभागपडिच्छए) तथा कल्याण, मंगल, दैवत मानता इती
अने चैत्य अर्थात् होठोनी अलिहायाने नत्थुवावाणा मानता इती, विनयधी
उपासना रत्ता योअ्य मानता इती, दिव्य अने सत्य मानता इती, सक्षल

तिव्वच्छाए घणकडियकडिच्छाए रम्मे महामेहणिकुरंब-
भूए ॥ सू. ३ ॥

‘घणकडियकडिच्छाए’ ‘घनकटितकडिच्छायः’—परस्पर शाखानामनुप्रवेशाद् घन—सान्द्र,
कटित—कटाच्छादित इव निविड—बहुलनिरन्तरच्छाय इत्यर्थे । रम्य—रमणीयगुणयुक्त ।
‘महामेहणिकुरंबभूए’ महामेघनिकुरम्बभूत—महान्त—विशाला, मेघाः—जलधरा,
तेषां निकुरम्बम्—महामेघनिकुरम्बम् सजलजलदवृन्दम् तथाभूत—तत्सदृश—महामेघनिकुर-
म्बभूतः—महाजलदवृन्दोपम सश्रीरु श्यामतमो वनपण्ड इति यावत् ॥ सू. ३ ॥

पर इतनी चिकनी थी कि लोगों को इसकी प्रभा में भी चिकनाई लक्षित होती थी ।
वर्णादिक से यह तीव्र एव तीव्र छायावाला था । (घणकडियकडिच्छाए
रम्मे महामेहणिकुरवभूए) यहा जितने भी वृक्ष थे उन सबकी शाखाएँ एक
दूसरे वृक्षों की शाखाओं से परस्पर में मिल गई थीं, इससे यहा छाया की अत्यंत
सघनता रहा करती थी । यह वन बड़ा ही सुहावना लगता था । ऐसा मान्य पडता
था कि मानो महामेघों का यह एक विशाल समुदाय ही है । अथवा (किण्हे)
इत्यादि पदों की व्याख्या इस प्रकार भी हो सकती है—अत्यंत सघन होने से इस
वनखड मे सूर्य की किरणों का प्रवेश तक भी नहीं हो सकता था इसलिये इसमे चारों
ओर अधकार छाया रहता था, अतः यह काला जैसा प्रतीत होता था । जैसे मयूर का
कण्ठ नीला होता है यह भी उसी तरह नीला था । इसमे हरेर पत्तों की प्रचुरता
थी इसलिये इस वनकी काति भी तोते की पाखों—जैसी हरी ज्ञात होती थी । वन का

हृती के बोझोने जेनी प्रभाभा पक्षु चिकाश लागती हृती वर्णादिक (३परग) थी
अे तीव्र तेमज तीव्रछायावाणे हृतो (घणकडियकडिच्छाए रम्मे महा-
मेहणिकुरवभूए) अडी जेटला वृक्षो हृता ते अधायनी शाभाओ
अेक णील वृक्षोनी शाभाओ साथे परस्पर भणी गछ हृती आथी अडी
छाया अहुं ज घाटी थछ रह्डी हृती आ वन घणुं ज शोभायमान लागतुं हृतुं
अेम जण्णातु हृतुं के जण्णे महामेघोने अे अेक मोटो समुदाय ज छे
अथवा (किण्हे) धत्यादि पदोनी व्याख्या अेम पक्षु थछ शके छे के अत्यंत
घाटुं होवाथी आ वनअडमा सूर्यना किरणोने प्रवेश मात्र पक्षु थछ शकतो
नहि अथी तेमा आरे तरक्ष अधकार छवाछ रह्दो हृतो तेथी ते ठाणा
जेवु प्रतीत थतुं हृतुं जेम मोरने कठ लीवो होय छे तेम आ पक्षु लीवु
हृतुं अेमा लीलाधम पाडडा अहुं ज हृता, तेथी आ वननी काति पक्षु
चोपटनी पाओ जेवी लीवी जण्णाती हृती वनने स्पर्श ठडे अे ठारण्थी

मूलम्-ते ण पायवा मूलमंतो कंदमंतो
खंधमंतो तयामंतो सालमंतो पवालमंतो पत्तमंतो पुष्कमंतो

टीकाः—‘ते ण पायवा’ इत्यादि । ‘ते’ तसम्बन्धिन—तच्छब्दस्य लक्षणया तसम्बन्धिन इत्यर्थे, तच्छब्देन बुद्धिरस्यविषयपरामर्शात् वनखण्डस्य परामर्शे । वनखण्डसम्बन्धिन इत्यर्थे, पादपा वृक्षा, फीट्गास्ते वृक्षाः? इत्यत्राऽऽह—
‘मूलमंतो’ मूलवन्त—मूलानि सन्ति ण्णाम् इति मूलवन्त मूलसम्बद्धा वृक्षा इत्यर्थे ।
‘कंदमंतो’ कन्दवन्त—मूलानामुपरि प्रन्थिरूपा कन्दा, ते सन्ति येषां ते तथा ।
‘खंधमंतो’ स्कन्धवन्त—शाखाविभागस्थान स्कन्ध, ते स्कन्धा सन्त्येषां ते स्कन्ध-
वन्त । ‘तयामंतो’ त्वग्वन्त—त्वचो-रन्कलानि सन्त्येषामिति ते तथा । ‘सालमंतो’
शालावन्त—शाला शाखा सन्त्येषामिति । ‘पवालमंतो’ प्रवालवन्त—प्रवाला=वाल-

स्पर्शं ग्रीत इसलिये या किं यहा लताओं का कुञ्ज अधिक था । मरुतन के समान यह स्पर्श में चिक्न था । प्रभा के प्ररूप से इसकी प्रभा भी तीव्र थी । कृष्ण एव कृष्णावभास इन दो विशेषणों से सूत्रकार का यह अभिप्राय है कि यहा पर जो कृष्णता थी वह गाढ थी । ॥ सू० ३ ॥

‘ते ण पायवा०’ इत्यादि—

(ते ण पायवा मूलमंतो) उस वनखड के ये वृक्ष जमीन के भीतर गहरी फैली हुई बड़ी २ जड़ों वाले थे । (कंदमंतो खंधमंतो तयामंतो सालमंतो पवालमंतो पत्तमंतो पुष्कमंतो फलमंतो वीयमंतो) कंद-मूलों के ऊपर गाढ-वाले थे । स्कन्ध-शाखाओं के रहने के स्थानवाले थे । त्वचा-छाल युक्त थे । शालाओं-शाखाओं से विभिन्न थे । प्रवाल-फोपल सहित थे । पत्रों से भरे हुए थे, पुष्पों से युक्त थे ।

इतो ॐ अह्नी लताञ्जोना कुञ्ज वधारे इतो भाणणुना जेवो तेनो स्पर्शं
चिक्कणो इतो उन्नस वधारे डोवाथा तेनो उन्नस पणु तीव्र इतो कृष्णु
तेभन् कृष्णावभास जे जे विशेषणोधी सूत्रकारने जे अलिप्राय छे ॐ अह्नी
जे काणाश इती ते घेरी इती (सू ३)

१. ‘ते ण पायवा’ इत्यादि,

॥ (ते ण पायवा मूलमंतो) जे वनखडमा आ वृक्षा जमीननी अदर उडा
इलाध गथेला भोटा भोटा मूलवाणा इता (कंदमंतो खंधमंतो तयामंतो सालमंतो
पवालमंतो पत्तमंतो पुष्कमंतो फलमंतो वीयमंतो) कंद-मूल उपर गाढ-वाणा इता,
स्कन्ध-शाखाञ्जोने रडेवाना स्थानरूप इता त्वचा-छालयुक्त इता, शालाञ्जो-
शाखाञ्जोधी विशिष्ट इता, प्रवाल-कुपणोवाणा इता, पत्र-पादरुधी लरेला

तिव्वच्छाए , घणकडियकडिच्छाए रम्मे महामेहणिकुरंव-
भूए ॥ सू. ३ ॥

‘घणकडियकडिच्छाए’ ‘घनकटितकडिच्छायः’—परस्पर शारसानामनुप्रवेगाद् घन—सान्द्र ,
कटित—कटाच्छादित इव निमिड—बहुलनिरन्तरच्छाय इत्यर्थे । रम्यं—रमणीयगुणयुक्तं ।
‘महामेहणिकुरंवभूए’ महामेघनिकुरम्बभूत—महान्त—विशाल , मेघाः—जलरा ,
तेषा निकुरम्बम्—महामेघनिकुरम्बम् सजलजलदवृन्दम् तथाभूत तसदृश—महामेघनिकुर-
म्बभूतः—महाजलदवृन्दोपम सश्रीरु श्यामतमो वनपण्ड इति यावत् ॥ सू. ३ ॥

पर इतनी चिकनी थी कि लोगों को इसकी प्रभा में भी चिकनाई लक्षित होती थी ।
वर्णादिक से यह तीव्र एव तीव्र ज्ञायावाला था । (घणकडियकडिच्छाए
रम्मे महामेहणिकुरवभूए) यहा जितने भी वृक्ष थे उन सबकी शाखाएँ एक
दूसरे वृक्षों की शाखाओं से परस्पर में मिल गई थीं, इससे यहाँ छाया की अत्यंत
सघनता रहा करती थी । यह वन बड़ा ही सुहावना लगता था । ऐसा माझम पड़ता
था कि मानो महामेघों का यह एक विशाल समुदाय ही है । अथवा (किण्हे)
इत्यादि पदों की व्याख्या इस प्रकार भी हो सकती है—अत्यंत सघन होने से इस
वनखंड में सूर्य की किण्वों का प्रवेश तक भी नहीं हो सकता था इसलिये इसमें चारों
ओर अंधकार छाया रहता था, अतः यह काला जैसा प्रतीत होता था । जैसे मयूर का
कंठ नीला होता है यह भी उसी तरह नीला था । इसमें हरे-पत्तों की प्रचुरता
थी इसलिये इस वनकी कांति भी तोते की पाखों—जैसी हरी जात होती थी । वन का

हृत्ती के दोड़ोने नेनी प्रभांभां पषु चिकाश लागती हृती 'वर्णादिक (इपर गं) थी
ये तीव्र तेमर तीव्रछायावाणे हते। (घणकडियकडिच्छाए रम्मे महा-
मेहणिकुरवभूए) अडी नेटला वृक्षा हता ते अधायनी शाभाओ
अके पीला वृक्षानी शाभाओ साथे परस्पर भणी गछ हती आथी अडी
छाया अहुं व घाटी थध ग्ही हती आ वन घषु व शोलायमान लागतु हतु
अम वषुतु हतु के लखे भडाभेघानो अे अेड' भोटो समुदाय व छे
अथवा (किण्हे) इत्यादि पदानी व्याख्या अम पषु थध शडे छे के अत्यंत
घाटु डोवाथी आ वनअ उमा सूर्यना किरणानो प्रवेश मात्र पषु थध शकतो
नहि अेथी तेमा थारे तरक्ष अधकार छवार्थ रहेतो हते। तेथी ते नाना
नेपु प्रतीत थतु हतु अेभ भोरनो कठ लीवो डोय छे तेम आ पषु लीवु
हतु अेभा लीलाअम पाहडा अहुं व हता, तेथी आ वननी कांति पषु
पोपटनी पाणे नेवी लीली वषुती हती वननो अर्श' ठडो अे कारषुथी

मूलम्-ते ण पायवा मूलमंतो कंदमंतो
खंधमंतो तयामंतो सालमंतो पवालमंतो पत्तमंतो पुष्कमंतो

टीकाः—‘ते ण पायवा’ इत्यादि । ‘ते’ तसम्बन्धिन-तच्छब्दस्य लक्षणया तसम्बन्धिन इत्यर्थ, तच्छब्देन बुद्धिस्वप्रियपरामर्शात् वनखण्डस्य परामर्श । वनखण्डसम्बन्धिन इत्यर्थ, पादपा वृक्षा, कीटगारते वृक्षाः? इत्यत्राऽऽह-
‘मूलमंतो’ मूलवन्त-मूलानि सन्ति ण्णाम् इति मूलवन्त मूलमन्वद्वा वृक्षा इत्यर्थ ।
‘कंदमंतो’ कन्दवन्त-मूलानामुपरि प्रथिवरूपा कन्दा, ते सन्ति येषां ते तथा ।
‘खंधमंतो’ स्कन्धवन्त-गारसाविभागस्थान स्कन्ध, ते स्कन्धा मन्थेपा ते स्कन्ध-
वन्त । ‘तयामंतो’ त्वग्न्त-त्रचो-त्रकलानि सन्त्येपामिति ते तथा । ‘सालमंतो’
शालवन्त-शाला शाला सन्त्येपामिति । ‘पवालमंतो’ प्रवालवन्त-प्रवाला-वाल-

स्पर्श शीत इसलिये था कि यहा लताओं का रुज अधिक था । मकरान के समान यह स्पर्श में चिकन था । प्रमा के प्ररूप से इसकी प्रमा भी तीन थी । कृष्ण पत्र कृष्णावभास इन दो विशेषणों से सूत्रकार का यह अभिप्राय है कि यहा पर जो कृष्णता थी वह गाढ थी ॥ सू० ३ ॥

‘ते ण पायवा०’ इत्यादि—

(ते ण पायवा मूलमंतो) उस वनखड के ये वृक्ष जमीन के भीतर गहरी फेन्डी हुई बड़ी २ जड़ों वाले थे । (कंदमंतो खंधमंतो तयामंतो सालमंतो पवालमंतो पत्तमंतो पुष्कमंतो फलमंतो वीर्यमंतो) कंद-मूलों के ऊपर गाढ-वाले ये । स्कंध-शाखाओं के रहने के स्थानवाले ये । त्वचा-छाल युक्त ये । शालाओं-गारसाओं से विशिष्ट ये । प्रवाल-कोपल सहित थे । पत्रों से भरे हुए थे, पुष्पों से युक्त ये ।

इतो के अर्द्धी लताओंना कुञ्ज वधारे इता भाषणुना जेवो तेनो स्पर्श चिकणो इतो उन्नस वधारे डोवाथा तेनो उन्नस पणु तीत्र इतो कृष्ण तेभञ्ज कृष्णावलास जे जे विशेषणोथी सूत्रकारनो जे अलिप्राय छे जे अर्द्धी जे काणाश्च इती ते धेरी इती (सू० ३)

‘ते ण पायवा’ इत्यादि,

(ते ण पायवा मूलमंतो) जे वनख उभा आ वृक्षा जमीननी अहर उडा हैलाथ गयेला मोटा मोटा भूणवाणा इता (कंदमंतो खंधमंतो तयामंतो सालमंतो पवालमंतो पत्तमंतो पुष्कमंतो फलमंतो वीर्यमंतो) कंद-मूल उपर गाढ-वाणा इता, स्कंध-शाखाओंने रहैवाना स्थानरूप इता त्वचा-छालयुक्त इता, शालाओं-शाखाओंथी विशिष्ट इता, प्रवाल-कुपणोवाणा इता, पत्र-पाददार्थी लजेला

पत्त-पल्लव-कोमल-उज्जल-चलंत-किसलय-सुकुमाल-पवाल-सोहिय-
वरंकुर-ग्गसिहरा णिच्चं कुसुमिया णिच्चं मऊरिया णिच्चं पल्लविया

अन्धकार-गम्भीर-दर्शनीया—नवेन हरितेन भासमानो—दीप्यमानो य पत्रभार—पत्रसमूह,
तेन अन्धकारा =सान्धकारा, अतएव-गम्भीरदर्शनीया-गम्भीरम्-‘इदमीदृग्’-इति विवेक्तुमशक्य
यथा स्यात्तथा दृश्यन्ते इति गम्भीरदर्शनीया । ‘उवणिग्गय-णव-तरुण-पत्त-पल्लव-कोमल-
उज्जल-चलत-किसलय-सुकुमाल-पवाल-सोहिय-वरंकुर-ग्गसिहरा’ उपनिर्गत-नवतरुण-
पत्र-पल्लव-कोमलो-ज्ज्वल-चलत्किसलय-सुकुमार - प्रवाल - शोभित - वराऽङ्कुराऽप्रशिखरा -
तत्र-उपनिर्गतानि—सद्य प्रकटितानि, नवतरुणानि—नवीनागततरुणतासम्पन्नानि पत्रपल्लवानि—
पत्ररूपाणि गुच्छरूपाणि तै, तथा कोमलो-ज्ज्वलै—मृदुनिर्मलै, चलद्भि, किसलयै—
सद्योजातै पत्रविशेषै सुकुमारप्रवालै - कोमलपल्लवै, शोभितवराऽङ्कुराणि=सुन्दराङ्कुर-
युक्तानि अप्रशिखराणि—उपरितनभागा येषां ते तथा । अत्र विशेषणे अङ्कुरप्रवालपल्लव-
किसलयपत्राणि स्वल्पबहुबहुतरादिकालकृतावस्थाभेदाद्भिन्नानतीति भाव ।
‘णिच्च कुसुमिया’ नित्य कुसुमिता—सदा सर्वतुंसजातकुसुमोपेता—न तु ऋतुमेद-

मल-उज्जल-चलत-किसलय-सुकुमाल-पवाल-सोहिय-वरंकुर-ग्गसिहरा) इनके जो पत्र
एव पल्लव थे वे नवीन निकलने की वजह से नवीनतरुणता—सपन थे, कुम्हलाये या
मुझाये हुए नहीं थे । इन पर जो किसलय—कोपले थीं वे कोमल थीं उज्जल थीं
तथा मृदु पवन के झोके से हिलती रहती थीं । इनमें जो प्रवाल थे वे बहुत ही
कोमल थे । इस प्रकार पत्रों से, पल्लवों से, कोपलों से और प्रवालों से इनके उत्तम
अङ्कुर शोभित हो रहे थे, इन अङ्कुरों से इन वृक्षों का अप्रभाग लहलहा रहा था ।
[णिच्च कुसुमिया] ये वृक्ष सदा सर्व ऋतुओं के पुष्पों से फूले रहते थे ।

अशक्य इतुं (उवणिग्गय-णव-तरुण-पत्त-पल्लव-कोमल-उज्जल-चलत-किसलय-सुकुमाल-
पवाल-सोहिय-वरंकुर-ग्गसिहरा) येना ये पान तेभञ्ज पदलव इता ते नवीन
उगवाना ङारण्णुथी नवीन तइण्णुता—सपन्न इता करमाधं गयेला के थीमडाधं
गयेला नडोता तेना पर ये किसलय—कुपणो इता ते जामण इता, उल्लवण
इता तथा मद्द पवननी लडेरीथी इलता इता तेमा ये प्रवाल इता
ते अहुञ्ज डोमण इता आ प्रकारे पत्रोथी, पदलवोथी, कुपणोथी अने प्रवा
लोथी तेमना उत्तम अङ्कुरो शोभी रहेता इता ये अङ्कुरोथी ये वृक्षानो
आगणने लाग्ग सुशोभित इतो (णिच्च कुसुमिया) ये वृक्षा इमेशा सर्व
ऋतुयेना पुष्पोथी णिली रहेला रहेता इता (णिच्च मऊरिया) सर्वदा ये

णिच्चं थवडया णिच्चं गुलडया णिच्चं गोच्छिया णिच्चं जमलिया
णिच्चं जुवलिया णिच्चं विणमिया णिच्चं पणमिया णिच्चं कुसुमिय-

प्रतिबन्धितकुमुमा । ' णिच्च मऊरिया ' नित्य मयूरिता—मयूर सन्धेयामिति मयूरिताः
निय मयूरयुक्ता इत्यर्थ । ' णिच्च पल्लविया ' निय पल्लविता—सर्वदा पल्लवमम्पना ।
' णिच्च यवडया ' निय स्तनकिना—निय स्तनकन्त, गुच्छवन्त इत्यर्थ । ' णिच्च
गुलडया ' निय गुन्मिता जातिपूयिकाननमड्डिकादिलतावन्त, ' णिच्च गोच्छिया '
निय गुच्छिता सदापुष्पगुच्छयुक्ता । ' णिच्च जमलिया ' निय यमलिता समपक्ति-
तया स्थिता—अथवा यमला युग्मतया जाता, ते सन्ति येषां ते यमलिता । ' णिच्च
जुवलिया ' निय युगञ्जिता—युगलनया स्थिता । ' णिच्च विणमिया ' निय विनमिता—
फत्रपुष्पादिभारण नना । ' णिच्च पणमिया ' निय प्रणमिता—केचित् प्ररुपेण नम्रीभूता ।

[णिच्च मऊरिया] सर्वदा इन वृक्षों पर मोर रहते थे । (णिच्च पल्लविया) ये वृक्ष
नियपल्लवित रहते थे, अकाल में पतझड़ इनमें नहीं होता था । (णिच्च थवडया)
गुच्छों से ये हमेशा अल्वित बने हुए रहते थे [णिच्च गुलडया] इनपर सदा नवमड्डिका
आदि लताएँ लिपटी रहती थीं । ' णिच्च गोच्छिया ' ये हमेशा फूलों और फलों के
गुच्छों से युक्त रहते थे । ' णिच्च जमलिया णिच्च जुवलिया ' ये जितने भी वृक्ष
यहाँ पर थे वे सब जोड़े सहित एक ही कतार में आजू-बाजू रखे हुए थे ।
' णिच्च विणमिया ' ऐसा कोई सा भी समय नहीं था कि जब ये फल एवं
पुष्पादिक के भार से झुके नहीं रहते हों । ' णिच्च पणमिया ' कोई वृक्ष तो ऐसे
भी था जो पुष्पादिकों के भार से विलकुल जमीन तक भी झुके हुए था । [णिच्च-कुस-

वृक्षा पर मोर रहता होता (णिच्च पल्लविया) ये वृक्षा हमेशा पतलवित रहता
हता होता दुकाणमा पशु तेभना पान भरता नडोता (णिच्च थवडया)
शुच्छोथी ते हमेशा भर रहता होता (णिच्च गुलडया) तेभना पर सदा नव-
मड्डिका आदि लताओं (वेडो) वी टलायेदी रहती होती (णिच्च गोच्छिया) ते
हमेशा फूलो अने इणोना शुच्छोथी युक्त रहता होता (णिच्च जमलिया
णिच्च जुवलिया) ये जोड़े वृक्षा अडी होता ते पधा जोडे जोडे अंक व
हारमा आनुषानुमा उला होता (णिच्च विणमिया) अयो डोपपशु सभय
नडोता वे अयारे तेओ इव तेभन पुष्पादिकना भारथी जुडेला न रहता डोय
(णिच्च पणमिया) डोप डोप वृक्ष तो अयो पशु होता के ने पुष्पादिकना
भारथी णिलकुल नमीन सुधी नमी गयेला होता (णिच्च-कुसुमिय-मऊरिय-

पत्त-पल्लव-कोमल-उज्जल-चलंत-किसलय-सुकुमाल-पवाल-सोहिय-
वरंकर-ग्गसिहरा णिच्चं कुसुमिया णिच्चं मऊरिया णिच्चं पल्लवियां

अन्धकार-गम्भीर-दर्शनीया - नवेन हरितेन भासमानो-दीप्यमानो य पत्रमार - पत्रसमूह,
तेन अन्धकारा = सान्धकारा, अतएव-गम्भीरदर्शनीया-गम्भीरम्-‘इदमीदृग्’-इति विवेक्तुमशक्य
यथा स्यात्तथा दृश्यन्ते इति गम्भीरदर्शनीया । ‘उवणिग्गय-णव-तरुण-पत्त-पल्लव-कोमल-
उज्जल-चलंत-किसलय-सुकुमाल-पवाल-सोहिय-वरंकर-ग्गसिहरा’ उपनिर्गत-नवतरुण-
पत्र-पल्लव-कोमलो-ज्ज्वल-चलत्किसलय-सुकुमार - प्रवाल - गोमित - वराङ्कुराऽप्रशिखरा -
तत्र-उपनिर्गतानि-सद्य प्रकटितानि, नवतरुणानि-नवीनागततरुणतासम्पन्नानि पत्रपल्लवानि-
पत्ररूपाणि गुच्छरूपाणि तै, तथा कोमलोज्ज्वलै-मृदुनिर्मलै, चलद्भि, ‘किसलयै-
सद्योजातै पत्रविशेषै सुकुमारप्रवालै - कोमलपल्लवै, शोभितवराङ्कुराणि=सुन्दराङ्कुर-
युक्तानि अप्रशिखराणि-उपरितनभागा येषा ते तथा । अत्र विशेषणे अङ्कुरप्रवालपल्लव-
किसलयपत्राणि स्वल्पबहु-हतरादिकालकृतावस्थामेवाद्भिन्नानीति भाव ।
‘णिच्च कुसुमिया’ नित्य कुसुमिता-सदा सर्वतुंसजातकुसुमोपेता-न तु ऋतुभेद-

मल-उज्जल-चलंत-किसलय-सुकुमाल-पवाल-सोहिय-वरंकर-ग्गसिहरा) इनके जो पत्र
एव पल्लव थे वे नवीन निकलने की वजह से नवीनतरुणता-सपत्र थे, कुम्हलाये या
मुझाये हुए नहीं थे । इन पर जो किसलय-कोपले थीं वे कोमल थीं उज्जल थीं
तथा मृदु पवन के झोके से हिलती रहती थीं । इनमे जो प्रवाल थे वे बहुत ही
कोमल थे । इस प्रकार पत्रों से, पल्लवों से, कोपलों से और प्रवालों से इनके उत्तम
अङ्कुर शोभित हो रहे थे, इन अङ्कुरों से इन वृक्षों का अप्रभाग लहलहा रहा था ।
[णिच्च कुसुमिया] ये वृक्ष सदा सर्व ऋतुओं के पुष्पों से फूले रहते थे ।

अशक्य इतु (उवणिग्गयणव-तरुणपत्त-पल्लव-कोमल उज्जल-चलंत-किसलय-सुकुमाल-
पवाल-सोहिय-वरंकर-ग्गसिहरा) येना ये पान तेमज्ज पल्लव इता ते नवीन
उगवाना नारथुथी नवीन तरथुता-सपन्न इता इरमाथ गयेला के थीमडाथ
गयेला नडोता तेना पर ये किसलय-कुपणो इता ते डोमण इता, उज्जलवण
इता तथा मड पवननी लडेरीथी इलता इता तेमा ये प्रवाल इता
ते अहुं डोमण इता आ प्रकारे पत्रोथी, पल्लवोथी, कुपणोथी अने प्रवा-
लोथी तेमना उत्तम अङ्कुरे शोली रहेता इता ये अङ्कुरोथी ये वृक्षोना
आगणने लाग भुशोलित इते (णिच्च कुसुमिया) ये वृक्षो इमेशा-सर्व
ऋतुयेना पुष्पोथी थिली रहेला रहेता इता (णिच्च मऊरिया) सर्वदा ये

णिच्चं थवड्या णिच्चं गुलड्या णिच्चं गोच्छ्रिया णिच्चं जमलिया
णिच्चं जुवलिया णिच्चं विणमिया णिच्चं पणमिया णिच्चं कुसुमिय-

प्रतिरन्धितकुमुमा । 'णिच्च मऊरिया' निय मयूरिता—मयूग सन्धेपामिति मयूरिताः
निय मयूरयुक्ता इत्यर्थ । 'णिच्च पड्रविया' निय पड्रविता—सर्वदा पड्रवसम्पन्ना ।
'णिच्च थवड्या' निय स्तनक्रिता—निय स्तनकमन्त, गुच्छन्त इत्यर्थ । 'णिच्च
गुलड्या' निय गुन्मिता जातियूथिकाननमड्डिकादिलतावन्त, 'णिच्च गोच्छ्रिया'
निय गुच्छ्रिता मद्रापुष्पगुच्छयुक्ता । 'णिच्च जमलिया' निय यमलित्ता समपक्ति-
तया स्थिता—अथवा यमला युग्मतया जाता, ते सन्ति येषां ते यमन्ति । 'णिच्च
जुवलिया' निय युगद्विता—युगलनया स्थिता । 'णिच्च विणमिया' निय विनमिता—
फत्रपु'पादिभारण नना । 'णिच्च पणमिया' निय प्रणमिता—केचित् प्ररुपेण नन्नीभूता ।

[णिच्च मऊरिया] सर्वदा इन वृक्षों पर मोर रहते थे । (णिच्च पड्रविया) ये वृक्ष
नित्यपड्रवित रहते थे, अकाल में पतझड़ इनमें नहीं होता था । (णिच्च थवड्या)
गुच्छ्रां से ये हमेशा अन्धित बन हुए रहते थे [णिच्च गुलड्या] इनपर सदा ननमड्डिका
आदि लताएँ लिपटी रहती थीं । 'णिच्च गोच्छ्रिया' ये हमेशा फूलों और फलों के
गुच्छ्रां से युक्त रहते थे । 'णिच्च जमलिया णिच्च जुवलिया' ये जितने भी वृक्ष
यहां पर थे वे सन जोड़े सहित एक सी कतार में आजू-बाजू रखे हुए थे ।
'णिच्च विणमिया' ऐसा कोई सा भी समय नहीं था कि जन ये फल एवं
पुष्पादिक के भार से झुके न रहते हों । 'णिच्च पणमिया' कोई २ वृक्ष तो ऐसे
भां थे जो पुष्पादिकों के भार से विलकुल जमीन तक भी झुके हुए थे । [णिच्च-कुस-

वृक्षो पर मोर रहता होता (णिच्च पड्रविया) ये वृक्षो हमेशा पड्रवित रहता
रहता होता हुआगमा पथु तेमना पान भरता नडोता (णिच्च थवड्या)
शुन्धोथी ते हमेशा सभर रहता होता (णिच्च गुलड्या) तेमना पर सदा नव-
मदिलडा आदि लताओ (वेडो) वी टणाथेडी रहती होती (णिच्च गोच्छ्रिया) ते
हमेशा डूडो अने इणोना शुन्धोथी युक्त रहता होता (णिच्च जमलिया
णिच्च जुवलिया) ये नेटला वृक्षो अडी होता ते अथा नेडे नेडे अके ४
डारभा आनुणानुभा उला होता (णिच्च विणमिया) अथो डोथपथु नभय
नडतो डे न्याडे तेओ इल तेमन पुष्पादिकना भारथी अडेला न रहता डोथ
(णिच्च पणमिया) डोथ डोथ वृक्ष तो अथो पथु होता डे ने पुष्पादिकना
भारथी गिलकुल नमीन सुधी नभी गथेला होता (णिच्च-कुसुमिय-मऊरिय-

पत्त-पल्लव-कोमल-उज्जल-चलंत-किसलय-सुकुमाल-पवाल-सोहिय-
वरंकुर-ग्गसिहरा णिच्चं कुसुमिया णिच्चं मऊरिया णिच्चं पल्लविया

अन्धकार-गम्भीर-दर्शनीया—नवेन हरितेन भासमानो—दीव्यमानो य पत्रमार—पत्रसमूह,
तेन अन्धकारा =सान्धकारा, अतएव-गम्भीरदर्शनीया-गम्भीरम्-‘इदमीदृग्’-इति विवेक्तुमशक्य
यथा स्थातथा दृश्यन्ते इति गम्भीरदर्शनीया । ‘उवणिग्गय-णव-तरुण-पत्त-पल्लव-कोमल-
उज्जल-चलत-किसलय-सुकुमाल-पवाल-सोहिय-वरंकुर-ग्गसिहरा’ उपनिर्गत-नवतरुण-
पत्र-पल्लव-कोमलो-ज्ज्वल-चलत्किसलय-सुकुमार - प्रवाल - शोमित - वराङ्कुराऽप्रशिखरा -
तत्र-उपनिर्गतानि-सद्य प्रकटितानि, नवतरुणानि-नवीनागततरुणतासम्पन्नानि पत्रपल्लवानि-
पत्ररूपाणि गुच्छरूपाणि तै, तथा कोमलोज्ज्वलै-मृदुनिर्मलै, चलद्भि, किसलयै-
सद्योजातै पत्रविशेषै सुकुमारप्रवालै - कोमलपल्लवै, शोमितवराङ्कुराणि=मुन्दराङ्कुर-
युक्तानि अप्रशिखराणि-उपरितनभागा येषा ते तथा । अत्र विशेषणे अङ्कुरप्रवालपल्लव-
किसलयपत्राणि स्वप्नबहुबहुतरादि कालकृतावस्थाभेदाद्भिन्नानीति भाव ।
‘णिच्च कुसुमिया’ नित्य कुसुमिता—सदा सर्वतुंसजातकुसुमोपेता—न तु ऋतुभेद-

मल-उज्जल-चलत-किसलय-सुकुमाल-पवाल-सोहिय-वरंकुर-ग्गसिहरा) इनके जो पत्र
एव पल्लव ये वे नवीन निकलने की वजह से नवीनतरुणता—सपत्र थे, कुम्हलाये या
मुझाये हुए नहीं थे । इन पर जो किसलय—कोपले थीं वे कोमल थीं उज्जल थीं
तथा मृदु पवन के शोके से हिलती रहती थीं । इनमे जो प्रवाल थे, वे बहुत ही
कोमल थे । इस प्रकार पत्रों से, पल्लवों से, कोपलों से और प्रवालों से इनके उत्तम
अकुर शोमित हो रहे थे, इन अकुरों से इन वृक्षों का अप्रभाग लहलहा रहा था ।
[णिच्च कुसुमिया] ये वृक्ष सदा सर्व ऋतुओं के पुष्पों से फूले रहते थे ।

अशक्य इतु (उवणिग्गय-णव-तरुण पत्त-पल्लव-कोमल उज्जल चलत-किसलय-सुकुमाल-
पवाल-सोहिय-वरंकुर-ग्गसिहरा) अनेा वे पान तेमज पल्लव इता ते नवीन
उगवाना कारणुथी नवीन तइणुता-स पन्न इता करमाथ गयेला के थीमराथ
गयेला नडोता तेना पर वे किसलय-कु पणेा इता ते कोमण इता, उल्लवण
इता तथा मड पवननी लडेरीथी इलता इता तेमा वे प्रवाल इता
ते अहु व कोमण इता आ प्रकारे पत्रेथी, पल्लवोथी, कु पणेाथी अने प्रवा-
लोथी तेमना उत्तम अकुरे शोली रहेता इता अे अकुरेथी अे वृक्षेना
आगणनेा लाग सुशोभित इतेा (णिच्च कुसुमिया) अे वृक्षेा इभेशा - सर्व
ऋतुअेना पुष्पोथी णिली रहेला रहेता इता (णिच्चं मऊरिया) सर्वत्र अे

सुरम्मा संपिडिय-दरिय-भमर-महुयरि-पहकर-परिलित्त-मत्तछप्पय-कुसुमासव-लोल-महुर-गुमगुमत-गुजंत-देसभाया अविभतर-पुष्फ-

अन्नेज्जत-मधुर-स्वरनात्तिता । त७-शुक्रा = प्रसिद्धा, वहिण = मयूरा, मदनशाला - सारि-
काविशेषा 'भेना' इति प्रसिद्धा, कोकिला - प्रसिद्धा, कोभगरा - पक्षिविशेषा,
भृङ्गारका - पक्षिविशेषा, कोण्टका - पक्षिविशेषा, जीवजीवका - चक्रोरपक्षिण, नन्दीमुरसा -
पक्षिविशेषा, कपिला = पक्षिविशेषा, पिङ्गलाश्रका - पक्षिविशेषा, कारण्टका - पक्षिविशेषा,
चक्रवाका - चक्रवा इति प्रसिद्धा, कल्हसा, मारसा - प्रसिद्धा, शुक्रादि-
सारमान्ता येऽनके पतिगगान्तेषा मियुनानि श्रीपुसयुमानि, तैरिचित्ता = कृता शब्दोक्तता
उन्नतशब्दाः-दार्धशब्दा मधुगगन्तैरनात्तिता - विविधपक्षिकृतमधुरध्वनियुक्ता पादपा इत्यर्थ,
'सुरम्मा' सुरम्मा - अत्रात्र मगगाया । 'संपिडिय-दरिय-भमर-महुयरि-पहकर-परिलित्त-
मत्तछप्पय-कुसुमासव-लोल-महुर-गुमगुमत-गुजंत-देसभाया' सम्पिण्डित-दत्त-भ्रमर-
मधुकरा-प्रकर-परिमिल्लमत्तपद्पदा-कुसुमासव-लोल-मधुर-गुमगुमेति-गुज्जदेशभागा, तत्र-सम्पि-
ण्डिता परम्परममिच्छिता, तृप्ताना = मत्तमताना भ्रमरणा मधुकराणा = भ्रमरीणा प्रकारा = समूहास्तै
प्रकरै परिमिल्लनो ये मत्तपद्पदा, त एव पुन कुसुमाऽऽसवलोलश्च पुष्परमाऽऽत्वाद-

वहिण-मयूर, मदनशाला-भेना, कोकिल-कोयल, कोभगरा-पक्षिविशेष, भृङ्गारका-पक्षिवि-
शेष, कोण्टका-पक्षिविशेष, जीवजीव-चक्रोर, नदीमुरसा-पक्षिविशेष, कपिल-तीतर, पिङ्गला-
क्षर-बटेर, कारण्ट, चक्रवाका-चक्रवा, कल्हस-वतर, सारसा-इत्यादि अनेक पक्षि-
योंके जोड़ों की उन्नत एव मधुरस्वरवाली ध्वनियों से युक्त थे । [सुरम्मा) इस-
लिये बड़े ही आनन्दप्रद थे, देखनेवालों को बहुत ही सुहावने लगते थे । (संपिडिय-
दरिय-भमर-महुयरि-पहकर-परिलित्त-मत्तछप्पय-कुसुमासव-लोल-महुर-गुम-
गुमत-गुजंत-देसभाया) मद्य से उन्नत भ्रमर और भ्रमरियों के समुदाय जो पुष्पों के
रस के पान से उन्नत वने हुए थे, अथवा पुष्पों के रस को पान करने के लिये

गाइया)के वृक्षा पोपट अर्द्धिषु-मयूर, मदनशाला-भेना, कोकिल-कोयल, कोलक-
पक्षिविशेष, लुगाका-पक्षिविशेष, कोडल-पक्षिविशेष, एव एव-चक्रोर, नदी-
मुष-पक्षिविशेष, कपिल-तीतर, पिङ्गलाक्ष-अटेर, डार डक, चक्रवाक-चक्रवा,
कलहस-वतर, सारसा इत्यादि अनेक पक्षियोंना जोड़ानी उन्नत तेमज
मधुर स्वरवाणी वाणीथी युक्त होता (सुरम्मा) तेथी भूषण व आनन्दमय होता
जेनारने अर्द्ध व सुंदर लागता होता (संपिडिय-दरिय-भमर-महुयरि-पहकर-परि-
लित्त मत्तछप्पय-कुसुमासव-लोल-महुर-गुमगुमत-गुजंत देस भाया) मद्यथी उन्नत भ्रमर
अने भ्रमरीयोंना समुदाय के पुष्पोंना रस पीने उन्नत अन्थे होता अथवा

मऊरिय-पल्लविय-थवइय-गुलइय-गोच्छिय - जमलिय - जुवलिय-
 विणमिय-पणमिय-सुविभत्त-पिंड-मंजरी-वडिसय-धरा सुय-वरहिण-
 मयणसाल - कोइल-कोभगक-भिंगारग-कोडलग-जीवंजीवग-णं-
 दीमुह-कविल-पिंगलक्खग-कारंड-चक्कवाय-कलहंस-सारस-
 अणेग-सउणगण-मिहुण-विरइय-सद्दुण्णइय - महुर - सर-णाइया

‘णिच्च-कुसुमिय-मऊरिय-पल्लविय-थवइय-गुलइय-गोच्छिय-जमलिय-जुवलिय-
 विणमिय-पणमिय-सुविभत्त-पिंड-मजरी-वडिसय-धरा’ नि य-कुसुमित-मयूरित-
 -पल्लवित-स्तत्रकित - गुल्मित-गुच्छित-यमलित-युगलित-विनमित-प्रणमित-सुविभक्त-
 पिण्ड-मञ्जर्यवतसरुधरा, अत्र-कुसुमितादि-प्रणमितान्त प्रतिपद पूर्व व्याख्यातम्, कुसु-
 मित्तादय प्रणमितान्ता ये पादपाप्ते कीदृशा इत्याह-सुविभत्त इत्यादि, सुविभक्ता -
 पृथक्-पृथक् स्थिता पिण्डा = पिण्डीभूता -घनीभूता या मञ्जर्यस्ता एवाऽवतसका -
 शिरोभूषणभूता इव तासा धरा -धारका इत्यर्थे ।

पुनस्ते पादपाः कीदृशाः ? इत्याह-‘सुय-वरहिण-मयणसाल-
 कोइल-कोभगरु-भिंगारग-कोडलग- जीवजीवग-णंदीमुह-कविल-पिंगलक्खग-
 कारड-चक्कवाय-कलहस-सारस-अणेग-सउणगण-मिहुण-विरइय-सद्दुण्णइय-
 महुर-सर-णाइया’ शुरु-वहिं-मदनगाला-कोकिल-कोभगरु-भृङ्गारु-कोण्डलरु-जीवञ्जीवक-
 नन्दीमुख-कपिल पिङ्गलाक्षरु-कारण्ड-चक्रवाक-कलहस-सारसाऽनेरु-शकुनगण-मिथुन-विरचित-
 मिय-मऊरिय-पल्लविय-थवइय-गुलइय-गोच्छिय-जमलिय-जुवलिय-विणमिय-पणमिय-
 सुविभत्त-पिंड-मजरी-वडिसय-धरा] इस प्रकार ये सन के सब कुसुमित, मयूरित, पल्लवित,
 स्तत्रकित, गुल्मित, गुच्छित, यमलित, विनमित, युगलित और प्रणमित वृक्ष, पृथक् पृथक् घनीभूत
 मजरीरूप शिरोभूषणों से सदा युक्त बने हुए थे । (सुय-वरहिण-मयणसाल-कोइल-कोभगरु-
 भिंगारग-कोडलग-जीवजीवग-णंदीमुह-कविल-पिंगलक्खग-कारड-चक्कवाय-कलहससा-
 रस-अणेग-सउणगण-मिहुण-विरइय-सद्दुण्णइय-महुर-सर-णाइया) ये वृक्ष शुरु-[तोता]

पल्लविय-थवइय-गुलइय-गोच्छिय-जमलिय-जुवलिय-विणमिय-पणमिय-सुविभत्त-पिंड-म-
 जरी-वडिसय-धरा) आ प्रकारे ते तभाभे नभाभ वृक्षे कुसुमित, मयूरित, पल्लवित
 स्तत्रकित, शुद्धित, शुच्छित, यमलित, युगलित, विनमित अने प्रणमित थर्ध
 लुदा लुदा धाटा मञ्जरीरुप शिरोभूषणोथी सदा युक्त अनेला डता (सुय-वर-
 हिण-मयणसाल-कोइल-कोभगरु-भिंगारग-कोडलग-जीवजीवग-णंदीमुह-कविल-पिंगलक्ख-
 ग-कारड-चक्कवाय-कलहस-सारस-अणेग-सउणगण-मिहुण-विरइय-सद्दुण्णइय-महुर-सर-

वेसिय-रम्म-जाल-हरया पिंडिमणीहारिमं सुगंधिं सुह-सुरभि-
मणहरं च महयागंधद्वणिं मुयंता णाणाविह-गुच्छ-गुम्म-मंडवग-

विनिर्मितमण्डपैर्यै रम्या = रमणीया शोभिता = शोभासपनाश्च ते तथा । 'विचित्तसुहके-
उभूया' विचित्रमुखकेतुमृता-विचित्रसुराणा मित्रिधसुराणा प्राणनयनरमना-
हृदयप्रमोदाना केतुमृता । 'वावी-पुक्वरिणी-दीहियासु य मुनिवेसिय-रम्म-
जाल-हरया' वापी-पुष्करिणी-दीर्घिकासु च मुनिवेगित-रम्य-जाल-गृहका, तत्र-वापीपु-
चतुष्कोणरूपासु पुष्करिणीपु-गोलाकारासु कमलनतीपु वा, दीर्घिकासु आयामरूपासु
'मुनिवेसिय' मुनिवेगिता-सुष्टुप्रकारेण रचिता, 'रम्मजालहरया' रम्या-सुन्दर
जालगृहा-गवाक्षा 'जाली शरोव्या' इति मापाप्रसिद्धा यैस्ते तथा । 'पिंडिमणी-
हारिम' इयाद्रि, पिण्डिमनिहारिमा-शुभपुद्गलसमूहरूपेण दूरदेशगामिनीम् । 'सुगंधिं'
सुगन्धि-शोभनगन्धवतीम् । 'सुहसुरभिणहर' शुभसुगन्धमनोहरा श्रेष्ठसुगन्धमनोहारिणीं

हो रही थी । (विचित्तसुहकेउभूया) विचित्र सुराओं के केन्द्र बने हुए थे ।
(वावी-पुक्वरिणी-दीहियासु य मुनिवेसिय-रम्म-जाल-हरया) वनपण्ड में जितनी भी
वापी-चारकोने वाली बावडिया एवं पुष्करिणी-गोलाकार तथा कमलनियों से युक्त
बावडिया तथा दीर्घिकायें-रम्ये आकारवाली बावडिया थीं, इन सब पर वृक्षों के
यथायोग्य सन्निवेशसे स्थान २ पर सुन्दर जाली-शरोखे बने हुए थे । अर्थात्
बावडियों के ऊपर रहे हुए ये वृक्ष जाली-शरोखे के आकारवाले दीरखते थे ।
इस वनखड में कितनेक ऐसे भी वृक्ष थे जो (पिंडिमणीहारिम) शुभ पुद्गलों के
समूहरूप से दूर २ तक फैलनेवाली, (सुगंधिं) तथा जिसमें अच्छी गन्ध आती थी-

तेमनी शोभा अनोणी व थर्ध रडेती हती (विचित्तसुहकेउभूया) विचित्र सु
भोनु केन्द्र अनो गथा हता (वावी पुक्वरिणी-दीहियासु य मुनिवेसिय-रम्म-जाल हरया)
वनथ उभा नेटली ये वावो-चार भूषावाणी वावडियो तेमव पुष्करिणी-गोलाकार
तथा कमलिनीयोथी युक्त वावडियो तथा दीर्घिकायो-लाभा आकारवाणी
वावडियो हती ये भधी उपर वृक्षोना यथायोग्य सन्निवेशथी ठेठेकाखे
सुहर नणी-अरेभा अनोवेला हता अर्थात् वावडियोनी उपर बूझी रडेला
ये वृक्षो नणी अरेभाना आकारवाणा देभाता हता आ वनभ उभा डेटलाड
येवा पथु वृक्षो हतां के ने (पिंडिमणीहारिम) शुभ पुद्गलोना समूहउपथी
दूर दूर सुधी श्लार्ध ननारी (सुगंधिं) तथा नेभा सारी सुगंध आवती

फला बाहिरपत्तोच्छण्णा पत्तेहि य पुप्फेहि य ओच्छन्नवलिच्छत्ता
साउफला निरोयया अकंटया णाणाविह-गुच्छ-गुम्म-मंडवग-रम्म-
सोहिया विचित्तसुहकेउभूया वावीपुक्खरिणीदीहियासु य सुनि-

लोलुपा तेषा मधुर यथा तथा गुमगुमेत्यव्यक्तनादानुकरणे तैर्मधुरमृद्गसङ्गीतैर्गुञ्जन
देशभागो येषा पादपाना ते तथा । 'अभिंतरपुप्फफला' अभ्यन्तरपुप्फफला -अभ्यन्तर
पुष्पफलमभृता । 'बाहिरपत्तोच्छण्णा' बाह्यपत्रावच्छन्ना -बहि मजातपत्रसमूह-
प्रच्छन्ना । 'पत्तेहि य' पत्रैश्च, 'पुप्फेहि य' पुष्पैश्च, 'ओच्छन्नवलिच्छत्ते' अवच्छन्न-
प्रतिच्छन्न -सर्वथाऽऽच्छादित । 'साउफला' स्वादुफला 'निरोयया' नीरोगका
शीतविद्यदातपादिजनितोपघातरहिता । 'अकटया' अकण्टका - कण्टकरहिता,
'णाणाविह-गुच्छ-गुम्म-मंडवग-रम्म-सोहिया' नानाविध - गुच्छ-गुम्म-मण्डपक-
रम्य-शोभिता - नानाविधैर्बहुप्रकारैः गुच्छगुम्ममण्डपकैः = पुष्पस्तपक-लताप्रतान-

लालयित हो रहे थे, उनके 'गुमगुम' इस प्रकार के अव्यक्तनाद से गूँजते
रहते थे । [अभिंतरपुप्फफला] भीतर में पुष्प एव फल से [बाहिरपत्तोच्छण्णा]
तथा बाहिर में पत्तों से ये वृक्ष व्याप्त हो रहे थे । (पत्तेहि य पुप्फेहि य ओच्छन्न-
वलिच्छत्ते) इसलिये देखनेवालों को ऐसा मान्दम होता था कि ये पत्र और
पुष्पों से ही आच्छादित हो रहे हैं । (साउफला) ये माठे फलवाले थे,
(निरोयया) नारोग थे अर्थात् इनको न तो कभी विद्युत्पात का भय था और
न कभी आतप-जनित पीडा का ही त्रास था । [अकटया] कटक-रहित थे ।
[णाणाविह-गुच्छ-गुम्म-मंडवग-रम्म-सोहिया] ये अनेक प्रकार के गुच्छगुल्मों-पुष्प
स्तवकों से मडित लताप्रतानों के निकुञ्जों से युक्त थे, इससे इनही शोभा निराली

पीवाने भाटे अणी रडेतेो हुतो तेना गणुगण्णाटना अव्यक्त नादथी शुण्णत
हुता (अभिंतरपुप्फफला) अदरना लागभा पुष्प तेमज्झ इलथी (बाहिरपत्तोच्छण्णा)
तथा षड्ढाग्ना लागभा पानथी आ वृक्षो व्याप्त गनी रडेला हुता
(पत्तेहि य पुप्फेहि य ओच्छन्नवलिच्छत्ते) आथी लेनाराओने अेम जण्णातु हुतु के
आ वृक्षो पान अने पुष्पोथी ज्झ डकाओला रडे छे (साउफला) अे भीडा इणवाणा
हुता, (निरोयया) निरोग हुता अर्थात् तेमने न तो कही विज्जणी पडवाने
लय हुतो अने न तो तडकानी पीडाने त्रास हुतो (अकटया) कटा रडित
हुता (णाणाविह-गुच्छ-गुम्म-मंडवग-रम्म-सोहिया) अे अनेउ प्रकारना शुब्ध
शुद्धो-पुष्प स्तवडोथी शोभता लताप्रतानोना निड्ढेथी युक्त हुता तेथी

यणा सुरम्मा पासर्डिया दरिसणिजा अभिरूवा पडिरूवा ॥सू०१॥
मूलम्-तस्स ण वणसंडस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं
एक्के असोगवरपायवे पण्णत्ते, कुस-विकुस-विसुद्ध-रक्खमूले

अभिरूपा—मुन्दगकृतिमन्त, 'पडिरूवा' प्रतिरूपा—अभिमतरूपमन्त =सकलजनचि-
त्ताकर्षका वनपण्डस्य वृक्षा सन्तीर्यथ ॥सू०१॥

टीका—अशोकवृक्षवर्णनमाह— 'तस्स णं वणसंडस्स' इत्यादि । तस्य सल्ल
वनपण्डस्य—पूर्वजगितवनपण्डस्य 'बहुमज्झदेसभाए' बहुमध्यदेशभागं—सर्वथा
मध्यभागे इत्यर्थ, 'एत्थ णं' अत्र खल्ल—वनपण्डमध्यप्रदेशे 'मह' महान्—
अतिशयममुन्नत 'एक्के' एक प्रधान असोगवरपायवे 'अशोकवरपादपः=अशोक-नामक
श्रेष्ठवृक्ष 'पण्णत्ते' प्रजन, —कौटुम्बिकः सः 'इत्याह 'कुसविकुसविसुद्धरक्खमूले' कुश-विशुद्ध-
विशुद्धवृक्षमूलः—कुश दभाः, विशुद्धाः कुशभिन्नास्तम्बदृशान्तृगाविशेषा एव, तैर्विशुद्ध-
विरहित—नृगजर्जनमित्यर्थः, मूलम्—वृक्षाऽधःस्थल यस्य अशोकपादपस्य स तथा । पुनः
कौटुम्बिकः सः 'अत्राऽऽह—'मूलमते' मूलान्, 'रुद्धमते' रुद्धवान् 'जाव' यावच्छब्दात्—

हृदय—आहादक, दर्शनीय, मुन्दग आकृति से युक्त एव यथेच्छरूपविशिष्ट प्रति-
भामित होने ये ॥ सू० ४ ॥

'तस्स ण वणसंडस्स०' इत्यादि

[तस्स ण वणसंडस्स बहुमज्झदेसभाए] इस वनखंड के ठीक बीचो-
बीचवाले प्रदेश में (एत्थ णं) इसके निवाय अन्यत्र नहीं (मह एक्के असोगवर-
पायवे पण्णत्ते) एक विस्तृत अशोक नामका श्रेष्ठ वृक्ष था । (कुस-विकुस-विसुद्ध-
रक्खमूले) इसका अंगोभाग कुश एव कुश—जैसे अन्य तृणादिकों से गहित था । (मूलमते

इत्याहादक, दर्शनीय, सुन्दर आकृतिधी युक्त तेमन् यथेच्छरूपविशिष्ट
भावता इति (५ ४)

तस्स ण वणसंडस्स इत्यादि,

(तस्स ण वणसंडस्स बहुमज्झदेसभाए) या वनखंडना अशोक वृक्षोपस्थाना
भागमा (एत्थ णं) तेना निवाय भीन्ने नडि (मह एक्के असोगवरपायवे पण्णत्ते)
एके विशाल अशोक नामनु श्रेष्ठ वृक्ष इत्तु (कुस-विकुस-विसुद्ध-रक्खमूले)
तेनी नीचेना भाग कुश तेमन् कुश जेवा अन्य तृणादिकोधी रहित इति
(मूलमते कर्मते जाव परिमोचणे) जे वृक्षाना विषयनु वर्णन योथा अत्रमा

घरग-सुहसेउ-केउ-बहुला अणेग-रह-जाण-जुग-सिवियं - परिमो-

‘महयागधद्वणि’ महागन्धध्रागिम्-गन्ध एव ध्रागि अर्थात् गन्धवृषि, महती चासौ गन्धध्रा-
गिस्ता ‘मुयता’ मुञ्चन्त, पुन क्रीदृगा वृक्षा ‘अणाट्—‘णाणाविह-गुच्छ गुम्म-भडवग-
ग-घरग-सुहसेउ-केउ-बहुला’ नानाविध-गुच्छ-गुम्म-मण्डपक-गृहक-सुरमा-सुग्वकारका सेतय=मागा केतवध
नानाविधगुच्छगुम्माना मण्डपका, गृहका, सुरमा=सुग्वकारका सेतय=मागा केतवध
पताका बहुला=प्रचुरा येपु तेतथा, ‘अणेग-रह-जाण-जुग सिविय-परिमोयणा’ अनेक-
रथ-ज्ञान-युग्य-गिबिका-प्रिमोचना, अनके रथा, योनानि=अथादानि, युग्यानि शंकरादीनि,
गिबिका-पुरपवाहयानविशेषा—‘पालखी’ इति प्रसिद्धा, तासा रथादिगिबिकान्ताना
परिमोचन-स्थापन यत्र तादृगा, क्रीडावर्थमागताना जनाना रथादयस्तत्र तिष्ठन्तीति
भाव । ‘सुरम्मा’ सुरम्या—अतिगौरमणीया । ‘पासाईया’ प्रसादीया—
हृदयप्रसादकारका, ‘दरिसणिज्जा’ दर्शनीया—द्रष्टु योग्या, ‘अभिरुवा’

सुगधी से जो मडित थी, और इसीलिए (सुहसुरभिमणहर) जो अपनी इस शुभ-
सुरभिसे मन को आनदित करती थी ऐसी (महयागधद्वणि) विशिष्ट गंधध्राणि-
सुगध क्रीपरम्परा को (मुयता) छोड़ते थे। (णाणाविह-गुच्छ-गुम्म-भडवग-घरग-सुहसेउ-
केउ-बहुला) इस प्रकार ये वृक्ष गुच्छों और गुल्मों से बने हुए अनेक मडप, घर,
सुन्दर मार्ग और पातकाओं से सदा सुशोभित थे (‘अणेग-रह-जाण-जुग-सिविय-
परिमोयणा) इनके नाचे वनक्रीडा के निमित्त आये हुए व्यक्तियों के अनेक रथ,
यान, युग्य-तागा-वगैरह, पालखी आदि सवारियों के साधन रखे जाते थे (सुरम्मा,
पासाईया, दरिसणिज्जा, अभिरुवा, पडिरुवा,) इसलिये ये वृक्ष बड़े ही सुरम्य,

हुती सुगधधी ने लदेवी हुती अने तेथी ने (सुहसुरभिमणहर) ने पोतानी
आ शुभ सुवासधी मनने आनदित करती हुती अथी (महयागधद्वणि)
विशिष्ट गंधध्राणि-सुगधनी परपशने (मुयता) छोडता हुता
(‘णाणाविह-गुच्छ-गुम्म-भडवग-घरग-सुहसेउ-केउ-बहुला’) अे प्रकारे अे वृक्षे
गुच्छे अने शुभभाथी अनेला अनेक म डप, घर, सुहर भाग अने पताकाओथी
सदा सुशोभित रहेता हुता (अणेग-रह-जाण-जुग-सिविय-परिमोयणा) अेभनी
नीचे वनक्रीडाने निमित्ते आवेली व्यक्तियोना अनेउ रथ-यान, षगी, टागा
वगेरे, पालखी आदि सवारियोना साधन राभवामा आवता हुता (सुरम्मा,
पासाईया, दरिसणिज्जा, अभिरुवा, पडिरुवा) अथी ते वृक्षे अहुने सुरम्य,

धवेहि चंद्रणेहिं अज्जुणेहिं णीवेहिं कुडएहिं कलंवेहि सव्वेहिं
फणसेहि दाडिमेहि सालेहि तालेहिं तमालेहि पियएहि पियं-
गूहिं पुरोवगेहि रायरुखेहिं नंदिखेहिं सव्वओ समंता
संपरिखत्ते ॥ सू०६ ॥

तिरुक्कै 'उडलेहिं' उडुक्के 'लुडएहिं' लुकुक्के विहारादिदेशेषु (वडहर) इति रयातै—
'उत्तोवेहिं' उत्रोपे—वृक्षविशेषे । 'सिरीमेहिं' शिरीपे प्रसिद्धे पुष्पवृक्षे ।
'सत्तण्णेहिं' सप्तपर्ण, 'दहियण्णेहिं' दधिपर्ण—वृक्षविशेषे । 'लोद्धेहिं' लोत्रै—धेत-
रुक्कुमुमयुक्तैर्वृक्षविशेषे । 'ववेहिं' धनै प्रसिद्धे । 'चदणेहिं' चन्दनै 'अज्जुणेहिं'
अर्जुनै—वृक्षविशेषे । 'णीवेहिं' नीपे = रुद्रम्वै । 'कुडएहिं'—कुटज—गगनम-
ञ्जिकापत्राद्ये । 'रुठ्ठेहिं' रुद्रम्वै । 'सव्वेहिं' सव्यै—परुप्रद्वैवृक्षविशेषे ।
'फणसेहिं' पनसै । 'दाडिमेहिं' दाडिमै । 'सालेहिं' शालै । 'तालेहिं' तालै ।
'तमालेहिं' तमालै । 'पियं' प्रियै 'पियगूहिं' प्रियङ्गुभि—वृक्षविशेषे ।
'पुरोवगेहिं' पुरोपगौर्वृक्षभेदे । 'रायरुखेहिं' राजवृक्षैश्चरुचैः । 'णदिरुखेहिं'
नन्दिवृक्षे । 'सव्वओ' सर्वत—सर्वदिक्षु—'समता' समन्तात् परित । 'संपरिखत्ते'
सम्परिक्षिप्त—सम्यक् प्रकारेण वेष्टित' ॥ सू० ६ ॥

दहियण्णेहिं लोद्धेहिं धवेहिं लुकुक्क, (विहार आदि देशां मे इसे " वडहर "
रुहते है) उत्रोप—वृक्षविशेष, शिरीप, सप्तपर्ण, दधिपर्ण, लोत्र, धन (चदणेहिं अज्जुणेहिं,
णीवेहिं, कुडएहिं, रुठ्ठेहिं, सव्वेहिं, फणसेहिं, दाडिमेहिं) चन्दन, अर्जुन, नीप,
कुटज, रुद्रम्व, सव्य, पनस, दाडिम—अनार के वृक्ष, (सालेहिं तालेहिं तमालेहिं
पियं पियगूहिं पुरोवगेहिं रायरुखेहिं नदिरुखेहिं) शाल, ताल, तमाल, प्रिय,
प्रियगु, पुरोपग, पीपल और नदिवृक्ष, इन वृक्षां से यह अशोक वृक्ष (सव्वओ

सत्तण्णेहिं दहियण्णेहिं, लोद्धेहिं ववेहिं) लुकुक्क, (णिडार आदि देशोभा तेने
णडडर डडे छे) उत्रोप—वृक्षविशेष, शिरीप, सप्तपर्ण, दधिपर्ण, लोत्र, धन,
(चण्णेहिं, अज्जुणेहिं, णीवेहिं, कुडएहिं, कलवेहिं, सव्वेहिं, फणसेहिं, दाडिमेहिं)
चन्दन, अर्जुन, नीप, कुटज, रुद्रम्व, सव्य, पनस, दाडिम—अनाग्ना वृक्ष,
(सालेहिं तालेहिं तमालेहिं पियं पियगूहिं, पुरोवगेहिं राजरुखेहिं नदिरुखेहिं)
शाल, ताल, तमाल, प्रिय, प्रियगु, पुरोपग, पीपल अने नदिवृक्ष, ये
वृक्षाथी ते अशोक वृक्ष (सव्वओ समता संपरिखत्ते) सर्व दिशाओभा थारे

मूलमंते कंदमंते जाव परिमोयणे सुरम्मे पासाईए दरिसणिजे
अभिरूवे पडिरूवे ॥ सू. ५ ॥

मूलम्—से णं असोगवरपायवे अण्णेहिं बहूहिं तिलएहिं वउलेहिं-
लउएहिं छत्तोवेहिं सिरीसेहिं सत्तवण्णेहिं दहिवण्णेहिं लोद्धेहिं

स्कन्ध-त्वक्-शाला-प्रवाल-पत्र-पुष्प-फल-बीजानामपि ग्रहणम्, 'परिमोयणे'
परिमोचनः—अनेकरथादिवाहनाना परिमोचन स्थापन यत्र स तथा, ऋीडार्थमाग-
ताना जनाना रथादयस्तत्र तिष्ठन्तीति भावः । 'सुरम्मे' सुरम्यः—अतिशय-
रमणीयः । 'पासाईए' प्रासादीयः—प्रसादाय हितः प्रसादोयः स एव, मनः प्रसन्नताहेतुमूतः
'दरिसणिजे' दर्शनीयः—द्रष्टु योग्यः । 'अभिरूवे' अभिरूपः—अभिमत रूप यस्य स
तथा । 'पडिरूवे' प्रतिरूप—प्रति=विशिष्टम्—असाधारण रूप यस्य स तथा ॥मू०५॥

टीका—'से ण असोगवरपायवे' इत्यादि । स खन्चगोकरपादपः=
पूर्ववर्गितः अगोक्रनामकः श्रेष्ठवृक्षः, अन्धैः बहुभिःबहुविधैर्वृक्षैर्वेष्टितः, तथाहि 'तिलएहिं'

कदमते जाव परिमोयणे) जो वृक्षों के निपयका वर्णन चतुर्थ सूत्रमें आया है, उस
समस्त वर्णन से यह युक्त था । इसलिये यह भी [सुरम्मे पासाईए दरिसणिजे
अभिरूवे पडिरूवे) सुरम्य, चित्ताह्लादक, दर्शनीय, अभिरूप एव विशिष्ट आसाधारण
शोभा—सपन्न था ॥ सू. ५ ॥

'से ण असोगवरपायवे०' इत्यादि—

(से ण असोगवरपायवे) यह सुन्दर अशोक वृक्ष (अण्णेहिं बहूहिं)
अन्य अनेक प्रकारके वृक्षों से परिवेष्टित था, उनमें से कितनेक वृक्षोंके नाम ये हैं—
(तिलएहिं वउलेहिं) तिलक, वकुल (लउएहिं छत्तोवेहिं सिरीसेहिं सत्तवण्णेहिं

करवाभा आवेणु छे अे समस्त वर्षान्थी ते युक्ता इतु तेथी ते पणु
(सुरम्मे पासाईए दरिसणिजे अभिरूवे पडिरूवे) सुरम्य, चित्ताह्लादक,
दर्शनीय, अलिङ्ग्य तेभञ्ज विशिष्ट आसाधारण शोभा—सपन्न इतु (सू. ५)

'से ण असोगवरपायवे' इत्यादि

(से ण असोगवरपायवे) आ सुद्धर अशोक वृक्ष (अण्णेहिं बहूहिं) अन्य
अनेक प्रकारना वृक्षाथी वीटणाव्हेणु इतु तेभाथी केटलाक वृक्षाना नाम
आ प्रभाणु छे (तिलएहिं वउलेहिं) तिलक, पकुल (लउएहिं छत्तोवेहिं सिरीसेहिं

दरिसणिजा अभिरूवा पडिरूवा ॥ सू० ७ ॥

मूलम्—ते णं तिलया जाव णंदिरूक्खा अण्णेहिं
वहूहिं पउमलयाहिं णागलयाहिं असोगलयाहिं चंपगलयाहिं

ते तथा, क्रीडावर्थमागताना जनाना रथात्पयस्तत्र तिष्ठन्ताति भावः । 'सुरम्मा'
सुरम्माः—अतीपरमणीयाः । 'पासाईया' प्रासादीयाः—दृढयोद्धासकाः, 'दरिसणिजा'
दर्शनीयाः—दृष्ट योग्या 'अभिरूवा' अभिरूपाः—अभिमतमुन्दराकृतिमन्तः । 'पडिरूवा'
प्रतिरूपाः—असाधारणसौन्दर्यमन्तः ॥ सू० ७ ॥

टीका—अयमत्र वक्तव्योऽर्थ—यथाऽशोकवरपादपो बहुभिर्धैस्तिलकादिवृक्षै
परितो वेष्टित, तथैव ते वेष्टकृक्षा अपि अन्याभिर्वस्यमाणाभि बहुत्रिभिर्लिताभि परि-
वेष्टिता अमूवन । कास्ता परिवेष्टनसाधनीभूता लता इत्याहाह—'ते ण' ते खलु
अशोकवरपादपस्य परिवेष्टका 'तिलया जावणंदिरूक्खा' तिलका यावनन्दिवृक्षा पञ्चविंशति-
जातीया इयर्थः, ते पुन कोट्टा ? इत्याह—'अण्णेहिं वहूहिं' अन्याभिर्नह्वीभि—

जिस प्रकार रथा से लेकर त्रिजिक्कापर्यन्त के वाहन रखे जाते थे वैसे ही ये सत्र
वाहन इन वृक्षों के भी अधोभाग में रखे हुए रहते थे । (सुरम्मा पासाईया
दरिसणिजा अभिरूवा पडिरूवा) ये वृक्ष भी सुरम्य, प्रासादीय, दर्शनीय,
अभिरूप एवं प्रतिरूप—असाधारण सौन्दर्यवाले थे ॥ सू० ७ ॥

'ते ण तिलया जाव' इत्यादि,

जिस प्रकार अशोक वृक्ष अनेक प्रकारके तिलकादिक वृक्षों से चारों ओर
से घिरा हुआ था उसी प्रकार ये तिलकवृक्ष से लेकर नदिवृक्षतकके समस्त अशोक-
वृक्षको परिवेष्टित करनेवाले वृक्ष भी (अण्णेहिं वहूहिं पउमलयाहिं) अन्य अनेक

वाहन राश्वामा आपता हुता, ते ञ प्रकारे ते णधा आ वृक्षोनी नीये
पणु राश्वामा आपता हुता (सुरम्मा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा
पडिरूवा) ये वृक्षो पणु सुरम्य, प्रासादीय, दर्शनीय, अलिङ्ग्य तेभञ् प्रतिउप-
असाधारण सौन्दर्यवाला हुता (सू ७)

'ते ण तिलया जाव' इत्यादि,

ये प्रकारे अशोक वृक्ष अनेक प्रकारना तिलकादिक वृक्षोथी आरे आञ्ठी
घरायेहु हुतु ते ञ प्रकारे आ तिलक वृक्षोथी भाडीने न द्विवृक्ष सुधीना समन्त वृक्षो
के ये अशोक वृक्षने वी टणार्ध गयेला हुता ते पणु (अण्णेहिं वहूहिं पउमलयाहिं)

मलम्-ते णं तिलया वउला लउया जाव णंदिस्सखा
कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला मूलमंतो कंदमतो एएसिं वण्णओ
भाणियव्वो जाव सिवियपडिमोयणा सुरम्मा पासाईया

टीका-तस्य पूर्ववर्णितस्याऽगोक्रवृक्षस्य परिवेष्टका तिलका पूर्ववर्णिताऽशोक-
वृक्षवद् वर्गनीयाः, तथा बकुला लकुचा यावत्-शब्दस्योपादानात् नन्दिवृक्षेभ्यः
पूर्ववर्तिनः ऊत्रोपगिरिपसत्पर्णादयो राजवृक्षान्ताः सर्वे वृक्षा ग्राह्या, नन्दिवृक्षाः,
एते वृक्षाः क्रीदृशाः ' इत्याह- 'कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला' कुश-विकुश विशुद्धवृक्षमूला-
दर्भादिदृणापनयनात् निर्मलतरुतलाः, एतेषा पदाना 'वण्णओ' वर्णक-वर्णनम्,
'भाणियव्वो' भणितव्यः चतुर्थमूत्रवत् कथनीय इति यावत्, 'जाव' यावत् 'सिविय-
परिमोयणा' शिविकापरिमोचनाः-स्थादिशिविकान्त-वाहनाना परिमोचन स्थापन यत्र

समता सपरिविखत्ते) सब दिशाओ मे चारों ओर से अच्छी तरह घिरा
हुआ था ॥ सू. ६ ॥

‘ते ण तिलया वउला’ इत्यादि,

(ते ण तिलया वउला लउया जाव) यह सब तिलकबकुल लकुचवृक्ष से लगाकर
नदिवृक्ष-पर्यन्त-वृक्षसमूह (कुस-विकुस-विसुद्ध-रुक्खमूला) अपने २ नीचे भाग मे
कुस एव अन्य कुस जैसी घास आदि से रहित था (मूलमतो कदमतो एएसिं
वण्णओ भाणियव्वो जाव सिवियपरिमोयणा) पहिले ४ चतुर्थमूत्र मे जो “ मूलमत
कदमत ” इत्यादि पद वृक्षा के वर्णन करने मे कहे गये है उन सभी पदों का
अध्याहार इन वृक्षोंके वर्णन करने मे भी कर लेना चाहिये। उन वृक्षों के नीचे

आणुथी सागी रीते घेरायेछु डतु (सू. ६)

‘ते ण तिलया वउला’ इत्यादि,

(ते ण तिलया वउला लउया जाव) आ अधो तिलकबकुल लकुचवृक्षथी भाडीने
नदिवृक्ष सुधीनो वृक्षसमूह (कुस-विकुस-विसुद्ध रुक्खमूला) पोतपोताना नीचेना-
लागभा कुस तेमञ्ज णीण कुस नेवा घास आदिथी रहित डता (मूलमतो
कदमतो एएसिं वण्णओ भाणियव्वो जाव सिवियपरिमोयणा) थोथा सूत्रभा
“ मूलमत कदमत ” इत्यादि वृक्षाना वरुण करवाभा ने पदो डडेला
छे ते अधो पदोने अध्याहार आ वृक्षना वरुणभा पणु करी देवे नेधये
ते वृक्षानी नीचे ने प्रदारे थोथी भाडीने शिण्डा (पालणी) सुधीना

जाव वडिसयधराओ पासाईयाओ दरिसणिजाओ अभिरुवाओ
पडिरुवाओ ॥ सू. ९ ॥

मूलम्—तस्स णं असोगवरपायवस्स हेट्टा ईसि

कुमुमिता सद्रामजातपुष्पा । 'जाव वडिसयधराओ' यात्रद्रवतमरुधरा—शिशोभृषण—
मृषिता इव दृश्यमाना, यावच्छन्दोपादानात्—'मजरियलवडियधरुडयगुलुडय०' इत्यादि
द्रष्टव्यम्, मयूरितपल्लवितस्तत्रकितगुल्मितादानि विशेषानि लताम्बुपि न्योयानि,
अतएव—तादृशो लता—'पामाईयाओ' प्रामादीया—चित्तप्रमत्ताकाग्निष्य । 'दरि-
सणिजाओ' दर्शनीया—द्रष्टु योग्या । 'अभिरुवाओ' अभिरुषा,—अभिमत्—रूपवय
'पडिरुवाओ' प्रतिरुषा—प्रतिविगिष्टरूपत्रय ॥ ९ ॥

टीका—'तस्स णं असोगवरपायवस्स' इत्यादि । तस्य अशोकत्रयपात्रपत्र्य
'ईसि खणसमल्लीणे' इपत् स्कन्धमन्त्रेण—वृक्षस्कन्धममीपत्रती य 'हेट्टा' अशोक-

युक्त थी । (जाव वडिसयधराओ) अतएव पेमी जात होती थी कि माना इन्होंने शिशोभृषण
ही धारण कर रक्ता है । यहा 'यावत्' शब्द से "मयूरिण-पल्लवित-स्तत्रकित-गुल्मित"
इत्यादि विशेषणोंका प्रहण हुआ है । अतएव ये ग्राह्य भी (पामाईयाओ दरि-
सणिजाओ अभिरुवाओ पडिरुवाओ) देखने वालोंके चित्तको प्रमत्त करनवाल्
देखने योग्य, अभिरुष एव असाधारण शोभा से युक्त थी ॥ सू. ९ ॥

'तस्स णं असोगवरपायवस्स हेट्टा' इत्यादि,

(तस्स णं असोगवरपायवस्स हेट्टा) उस उत्तम अशोकवृक्षके नीचे (ईसि
खणसमल्लीणे) स्कन्ध (पेड) से कुछ दूरी पर (एत्य णं) किन्तु उमीके अप

प्रकुट्टित पुष्पोथी युक्त होती (जाव वडिसयधराओ) तथी अत्र लागतु हुतु
के लगे तेओओ शिशोभृषण (सुकुट) व धारण कहेला छे अही यावत्
शब्दथी 'मयूरित पल्लवित स्तत्रकित गुल्मित' इत्यादि विशेषणो लीधेला छे
तेवी लताओ पणु (पामाईयाओ दरिसणिजाओ अभिरुवाओ पडिरुवाओ) नेना-
गओना चित्तने प्रसन्न नवावाणी, जेवायोअ, अलिउप, तेम व अमाधारण
शोभायुक्त होती (सू. ९)

"तस्स णं असोगवरपायवस्स हेट्टा" इत्यादि,

(तस्स णं असोगवरपायवस्स हेट्टा) ते उत्तम अशोक वृक्षनी नीचे (ईसि
खणसमल्लीणे) स्कन्ध (पेड) थी वर इर (एत्य णं) पणु तेना नीचेना

चूयलयाहिं वणलयाहिं नासंतियलयाहिं अइमुत्तयलयाहिं कुंद-
लयाहिं सामलयाहिं सब्बओ समंता संपरिक्खित्ता ॥ सू ८ ॥

मूलम्—ताओ णं पउमलयाओ णिच्चं कुमुमियाओ

बहुविधामि । 'पउमलयाहिं' पक्कलतामि । 'णागलयाहिं'—नागलतामि । 'असोगलयाहिं'
अगोकलतामि । 'चपगलयाहिं' चम्पकलतामि, 'चूयलयाहिं' आम्रलतामि, 'वणलयाहिं'
वनलतामि, 'वासंतियलयाहिं' वासन्तिकलतामि, 'अइमुत्तयलयाहिं' अनिमुत्तकलतामि
'कुंदलयाहिं' कुन्दलतामि । 'सामलयाहिं' श्यामलतामि, इमामिदंशजातीया
भिरुतामि, 'सब्बओ समता संपरिक्खित्ता' सर्वत समन्तात्सम्परिक्षिमा—सर्वदिक्षु
पणित सम्यक परिवेष्टिता ॥ सू० ८ ॥

'ताओ णं पउमलयाओ' ता खल्ल पक्कलता—यामिस्तिलकादिनन्दिवृक्षान्ता
वृक्षा परितो वेष्टिता ता एता कीदृश्यं अगह—'णिच्चं कुमुमियाओ' नित्य
प्रकारकी पक्कलताओ मे (णागलयाहिं) नागलताओ से, (चपगलयाहिं) चपक-
लताओ से (चूयलयाहिं) आम्र—लताओ से, (वणलयाहिं) वनलताओ से
(वासंतियलयाहिं) वासन्तिकलताओ से, (अइमुत्तयलयाहिं) अतिमुत्तलताओ से
(कुंदलयाहिं) कुन्दलताओ से और (सामलयाहिं) श्यामलताओ से (सब्बओ
समता संपरिक्खित्ता) समस्त दिशाओमे चारों ओर से घिरे हुए थे ॥ सू ८ ॥

'ताओ णं पउमलयाओ' इत्यादि,

ये पक्कलता आदि लताएँ कि जिनसे तिलकसे प्रारम्भकर नदिवृक्ष तकके
समस्तवृक्ष परिवेष्टित बने हुए थे, वे (णिच्चं कुमुमियाओ) नित्य प्रफुल्लित पुष्पोः स

णी७ अनेक प्रकारकी पक्कलताओथी (णागलयाहिं) नागलताओथी (चपगल-
याहिं) चपकलताओथी (चूयलयाहिं) आम्रलताओथी (वणलयाहिं) वन-
लताओथी (वासंतियलयाहिं) वासन्तिकलताओथी (अइमुत्तयलयाहिं) अति
मुत्तलताओथी (कुंदलयाहिं) कुन्दलताओथी अने (सामलयाहिं) श्याम
लताओथी (सब्बओ समता संपरिक्खित्ता) समस्त दिशाओमा चारै
तरङ्गथी घेरायेला हुता (सू ८)

“ताओ णं पउमलयाओ” इत्यादि,

आ पक्कलता आदि लताओ के जेनापठे तिलकथी भाडीने नदिवृक्ष
सुधीना समस्त वृक्षो वीटणाओला हुता ते (णिच्चं कुमुमियाओ) नित्य

असणग-सणवन्धन-णील्लुप्लपत्तनिकर-अयसिकुसुम-प्पगासे मर-
गयमसार-कलित्त-णयणकीय-रासिवण्णे णिद्धघणे अट्टसिरे आयं-

अञ्जनरुनामको वृक्षः । घनः-नीलजलधरः । कृपाणः-खड्गः, कुण्डल-नीलकमलम्, हलधर-
कौशेय-बलभद्रकौशेय-बलदेववल्गुम् । आकाश-दूरतया-नालाऽनभासम् । केगाः-तरुगसम्बद्धा
एव तेषामतिकृष्णचात् । कज्जलाङ्गी-कज्जलकृष्ण यत्र पात्रे कज्जल स्थाप्यते, कज्जलकृषिका
इति यावत् । सञ्जन-खञ्जननामा वृष्णपक्षिमिश्रेण । शृङ्गभेदः-महिषशृङ्गखण्डः । रिष्टक-नील-
वर्णरत्न । जम्बूफलम्-अतिपक्वम्-जम्बूफलं नीलतमं भवति । 'असणग' असनकः-
वीर्यकाभिधानो वृक्षविशेषः । 'सणवन्धन-सणकुसुमवृन्तम् । नीलोपलपत्रनिकरः-
नीलकमलपत्रसमूहः । अतसीकुसुमम् 'अलसीफूल' इति भाषाप्रसिद्धं पुष्पम् । अत्र-अञ्जना-
घतसीकुसुमान्तानां प्रकाश इव प्रकाशो यस्य स तथा, अञ्जनादिसदृशप्यामवर्णवान्
पृथिवीशिलापट्टक इत्यर्थः । तथा-'मरगय-मसार-कलित्त-णयणकीय-रासिवण्णे'
मरकत-मसार-कटिप्र-नयनरुनीनिका-राशिवर्गः । तत्र मरकत-नीलमणिः पला इति भाषायाम् ।
मसारः-पाषाणस्य चिक्रगीरुगार्थं शिलाखण्ड एव अथवा-कपपट्टः-कसौटीति लोके-
ख्यातः, कटिप्र-कृष्णचर्मण एव निर्मितम् । नयनरुनीनिका-नयनरुनीनिका-एतेषां राशिः=
पुञ्जः, तस्य वर्ण इव वर्णा यस्य स तथा, णिद्धघण' स्निग्धघनः-सजलमेघ इव

बलदेवका बल, आकाश, केगा-युगापुरुष के गाल, कज्जलाङ्गी-कज्जल रत्ने की डिविया,
खजनपक्षी, शृङ्गभेद-महिष के शृङ्ग का टुकड़ा, रिष्टक-नीलवर्ण का रत्न, जम्बूफल-
अतिपक्व फल हुआ जासुन, अमनक-वीर्यक नामक वृक्षविशेष, सणवन्धन-सनके फूल का
बैंट, नीलोपलपत्रनिकर-नीलकमल के पत्रों का समूह, और अतसीकुसुम-अलसी का
पुष्प-इन सब के प्रकाश जैसा था । अर्थात् पृथिवीशिलापट्ट अञ्जन से लेकर अलसी
के फूल के समान श्यामवर्ण था । [मरगय-मसार-कलित्त-णयणकीय-रासिवण्णे]

कृपाणु-तलवार, कुण्डल-नीलकमल, हलधरकौशेय-बलदेवनामक, आकाश, केश-
धुवान् पुष्पनावाण, कज्जलाङ्गी-कज्जल राणवानी उष्णी, अञ्जन-अञ्जनपक्षी,
शृङ्गभेद-से सना शी गना उटका, रिष्टक-नीलवर्णना रत्न, जम्बूफल-
अतिपक्व फल हुआ, असनक-वीर्यक नामके वृक्षविशेष, सणवन्धन-सनके
फूलों के बैंट, नीलोपलपत्रनिकर-नीलकमलना पानने मभूड अने अतसी-
कुसुम-अजमीना पुष्प अने अधाना प्रकाश देवेो इतो अर्थात् पृथिवी-
शिलापट्ट अञ्जनथी भाडीने अजमीना फूलना देवेो श्यामवर्णनेो इतो

खंधसमह्रीणे एत्थ णं महं एक्के पुढविसिलापट्टए पण्णत्ते विक्खं-
भायामउस्सेहसुप्पमाणे किण्हे अंजण-घण-किवाण-कुवलय-हल-
हर-कोसेजा-गास-केस-कज्जलंगी खंजण-सिंगभेद-रिट्ठय-जंबूफल-

वृक्षस्य अध प्रदेश, आसीदिति शेष 'एत्थ ण महं एक्के पुढविसिलापट्टए पण्णत्ते'
अत्र-अस्मिन्-अध प्रदेशे 'महं' महान्, 'एक्के' एक 'पुढविसिलापट्टए'
पृथ्वीशिलापट्टक-पृथ्वीशिलापीठ इत्यर्थः । 'पण्णत्ते' प्रज्ञत कथित । स पृथ्वीशिलापीठ
कौदृश ? इत्याऽऽह- 'विक्खंभा-याम-उस्सेह-सुप्पमाणे' विक्कंभाऽऽ-यामो-त्सेध-सुप्रमाण,
विक्कंभ-पृथुत्व-परितो विगालवम् । 'आयामो' दीर्घवम् । 'उत्सेध'-उच्च वम् । एतैर्विक्कंभा-
ऽऽयामोत्सेधै सु-सुप्पुप्रमाण यस्य स विक्कंभाऽऽयामोत्सेधसुप्रमाण, 'कस्यापि' प्रमेयस्य
त्रिधा परिमाण भवति, तेषु विक्कंभ पृथुत्व-स्थूलत्व, आयामो दैर्घ्यम्, उत्सेध उच्चैस्त्वम्,
एतैस्त्रिभिः प्रमाणैः सुप्पु युक्त नातिन्यूननात्यधिकप्रमाणयुक्त इति भावः । तथा-'किण्हे'
कृष्ण-कृष्णवर्ण नील इति यावत् । कौदृश कृष्ण ? अत्राह-'अजण-
घण-किवाण-कुवलय-हलहरकोसेजा-गास-केस-कज्जलंगी खंजण-सिंगभेद-
रिट्ठय-जंबूफल-असणग-सणवधण-णीलुप्पलपत्तनिकर-अयसिकुसुम-प्पगासे'
अज्जन-घन-कृपाण-कुवलय-हलधरकौशेया-कास-केस-कज्जलाङ्गी खंजन-शृङ्गभेद-रिट्ठक-
जंबूफला-सनक-गणनन्धन-नीलोपलपत्तनिकराऽ-तसी-कुसुम-प्रकाशः, तत्र-अज्जनः-

प्रदेश मे (मह) विगाल (एक्के पुढविसिलापट्टए पण्णत्ते) एक पृथिवीशिलापट्ट था ।
(विक्खंभा-याम-उस्सेह-सुप्पमाणे) यह लम्बाई, चौड़ाई, एवं ऊंचाई में बराबर
प्रमाणवाला था, हीनाधिक-प्रमाणवाला नहीं था । (किण्हे) वर्ण इसका कृष्ण-श्याम था ।
(अजण-घण-किवाण-कुवलय हलहरकोसेजा-गास-केस-कज्जलंगी खंजण-सिंगभेद-
रिट्ठय-जंबूफल-असणग-सणवधण-णीलुप्पलपत्तनिकर-अयसिकुसुम-प्पगासे) अत
इसका प्रकाश अज्जनवृक्ष, घन-नीलमेघ, कृपाण-तलवार, कुवलय-नीलकमल, हलधरकौशेय-

आगभा (महं) विशाल (एक्के पुढविसिलापट्टए पण्णत्ते) एक पृथिवीशिला-
पट्ट होता (विक्खंभा-याम-उस्सेह-सुप्पमाणे) ये लम्बाई चौड़ाई एवं उंचाई में बराबर
प्रमाणवाला होता (किण्हे) वर्ण इसका कृष्ण-श्याम था । (अजण-घण-किवाण-कुवलय-हलहरकोसे-
जा-गास-केस-कज्जलंगी खंजण-सिंगभेद-रिट्ठय-जंबूफल-असणग-सणवधण-णीलुप्पल-
पत्तनिकर-अयसिकुसुम-प्पगासे) आगभा (महं) विशाल (एक्के पुढविसिलापट्टए पण्णत्ते) एक पृथिवीशिला-

णग-रुय-यूर-णवणीय-तूल-फरिसे सीहासणसंठिए पासाईए
दरिसणिजे अभिरूवे पडिरूवे ॥ सू. १० ॥

मूलम्—तत्थ णं चंपाए णयरीए कूणिए णामं राया परिवसइ

ईहापृगादिपद्मलतान्ताना भक्तयः—रचनाभिगोपाधिप्राणि, तामिधियः सुन्दरः । 'आईणग-
रुय-यूर-णवणीय-तूल-फरिसे' आजिनक-रुत-यूर-नवनीत-तूल-स्पर्शः । तत्र आजिनक-
चर्ममयवस्त्रम्, रुत-मृदुकापांसिरोपः, यूर-वृक्षविशेषः, नवनीतम्—'मक्खन' इति
प्रमिद्वम्, तूलम्—अर्कतूलम्, णतेपा स्पर्श इव स्पर्शां यन्व शिलापट्टकस्य स आजिनक-
रुत-यूर-नवनीत-तूल-स्पर्श—अत्यन्तक्रोमल इत्यर्थः, 'सीहासणसंठिए' सिंहासनमस्थित
सिंहासनाकारः । 'पासाईए' प्रामाण्यः—हृदयहर्षकः । 'दरिसणिजे' दर्शनीयः—नेत्रा-
ह्लादजनकः 'अभिरूवे' अभिरूपः, 'पडिरूवे' प्रतिरूपः ॥ सू. १० ॥

टीका—'तत्थ ण चंपाए णयरीए' इत्यादि—तत्र सल चम्पाया नगर्याम्,

चमर, कुन्नर-हाया, वनलता एव पद्मलता इव मन्त्रके चित्रो से यह सुन्दर था । (आई-
णग-रुय-यूर-णवणीय-तूल-फरिसे) इसका स्पर्श आजिनक-चर्ममयवस्त्र, रुत-रुई,
यूर-वृक्षविशेष, नवनीत-मक्खन और तूल-अर्कतूल इनके स्पर्श क ममान था ।
तात्पर्य यह अत्यन्त क्रोमल स्पर्शवाला था । (सीहासणसंठिए) इसका आकार सिंहा-
सन जैसा था । [पासाईए दरिसणिजे अभिरूवे पडिरूवे] हृदय को हर्ष देनेवाला,
नेत्रोंको आह्लादित करनेवाला, एव सुन्दर-आकृति सपन्न यह पृथिवीशिलापट्ट अपूर्व शोभा-
सपन्न था ॥ सू० १० ॥

'तत्थ ण चंपाए णयरीए' इत्यादि,

(तत्थ ण चंपाए णयरीए] उस चंपानगरा मे (कूणिए णाम राया)

होता (आईणग रुय-यूर-णवणीय-तूल-फरिसे) तेना स्पर्श आजिनक-चर्ममयवस्त्र,
रु-मृदुकापांस, यूर-वृक्षविशेष, नवनीत-माषण्ड अने तूल-अर्कतूल (आकडातु
३) तेना जेयो हतो मतलण डे ते अत्यन्त कामण स्पर्शवाणो हतो
(सीहासणसंठिए) तेना आकार सिंहासन जेयो हतो (पासाईए दरिसणिजे
अभिरूवे पडिरूवे) हृदयने हर्ष पमाउनार, नेत्रोने आह्लाददारक तेमज सुहर
आकृतिसपन्न आ पृथिवीशिलापट्ट अपूर्व शोभायुक्त हतो (सू १०)

'तत्थ ण चंपाए णयरीए' इत्यादि,

(तत्थ ण चंपाए णयरीए) ते चंपानगरीमा (कूणिए णाम राया) इच्छिके

सयतलोवमे सुरम्मे ईहामिय-उसभ-तुरग-गर-मगर-विहग-वालग-
किण्णर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्ति-चित्ते आई-

श्यामः । आकास्तस्य क्रीदृग इत्याह—‘अट्टसिरे’ अष्टगिरस्फः—अष्टकोण इत्यर्थः । ‘आय-
सयतलोवमे’ आदर्शतलोपमः—आदर्शतलस्य=द्वर्षगतलस्योपमा यस्य स तथा । ‘सुरम्मे’ अतीवर-
मगीयः । ‘ईहामिय-उसभ-तुरग नर-मगर-विहग-वालग-किण्णर-रुरु-सरभ-चमर-
कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्ति-चित्ते’ ईहामृग-वृषभ-तुरग-नर-मकर-विहग-व्यालक-
किन्नर-रुरु-शरभ चमर-कुञ्जर-वनलता-पद्मलता-भक्ति-चित्रः । तत्र-ईहामृगाः-वृकाः
‘भेटिया’ इति भाषाप्रसिद्धा । वृषभाः-त्रलीवर्दा, तुरगाः-अश्वः, नराः-मनुष्याः,
मकराः-म्राहाः, विहगाः-पक्षिगः, व्यालकाः-सर्पाः, किन्नराः-व्यन्तरदेवाः, रुरुवः-
मृगाः शरभाः-अष्टापदाः, कुञ्जराः-हृन्तिनः, वनलताः-प्रसिद्धा, पद्मलता-कमललताः,

मरकत-पत्ता, मसार-पत्थर को चिकना करने वाला पत्थर अथवा कसौटी, कटिन्न-
कृष्णचमडे की पत्ती हुई वस्तुविशेष और नयनकीका-नेत्र की कनानिका-इनसब के
पुज जैसा इसका वर्ण था । (गिद्धघणे) वह सजल-मेघ के समान श्याम था ।
[अट्टसिरे] आठ इसके कोन थे । [आयसयतलोवमे] इसका तलभाग आदर्श-काच-
द्वर्षण जैसा चमकीला था । (सुरम्मे) इससे यह देखने में विशेषकर, रमणीय लगती थी ।
(ईहामिय उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किण्णर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-
पउमलय-भत्ति-चित्ते) ईहामृग-वृक-भेटिया, वृषभ-बलावर्द, तुरग-अश्व, नर-मनुष्य,
मकर-म्राह, विहग-पक्षी, व्यालक-सर्प, किन्नर-व्यन्तरदेव, रुरु-मृग, सरभ-अष्टापद,

(मरगय मसार-कलित्त णयणकीय-रासि-वण्णे) मरकत-पत्ता, मसार-पत्थरने चिकण्डा
करवावाणो पत्थर अथवा कसौटी, कटिन्न-कृष्णु आमडानी णनावेली वस्तु-
विशेष अने नयनकीका-आणनी कनीनिडा-ओ अधाना पुण् णेवो तेनो वण्णु
इतो (गिद्धघणे) तं सजल मेघना णेवो श्याम इतो (अट्टसिरे) आठ तेना
भूण्णु इता (आयसयतलोवमे) अनेना तण्णियानो भाग आदर्श-काच-द्वर्षणु णेवो
अभकीवो इतो (सुरम्मे) तेथी ते णेवामा विशेष करीने रमणीय लागतो इतो ।
(ईहामिय-उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किण्णर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-
पउमलय-भत्ति-चित्ते) ईहामृग-वृक, वृषभ-पद्म, तुरग-अश्व, नर-मनुष्य, मकर-
म्राह, विहग-पक्षी, व्यालक-सर्प, किन्नर-व्यन्तरदेव, कुंजर-मृग, सरभ-अष्टापद,
अमर, कुंजर-डाथी, वनलता तेभ्य पद्मलता अने अधाना चित्रो वडे अने सुहर

हिसित्ते माउपिउसुजाए दयपत्ते सीमंकरे सीमंधरे खेमंकरे
खेमंधरे मणुस्सिंदे जणवयपिया जणवयपाले जणवयपुरोहिए

नीतिदयादाक्षिण्यादिभि ममृद्ध = सम्पन्न, 'मुडये' मुद्रित = प्रसन्न, अथवा 'मुडये' इति
निद्रोपमातृकाथो देशंजन्द्र । उक्त च 'मुडये जे होट जोणिसुद्धे' इति ।
निद्रोपमातृक - निद्रापाया मातुरपय पुमान् । 'रत्तिए' क्षत्रिय - शुद्धक्षत्रियगोत्रोपन्न ।
'मुद्धाहिसित्ते' मुद्धाभिपिक्त - सर्वरपि प्रयन्तगजै प्रतापमसहमानैर्नान्यथा-
ऽस्माक गतिरिति परिभाष्य मूर्द्धभिर्मस्तकैरभिपिक्त मम्मनितो मुद्धाभिपिक्त ।
'माउपिउसुजाए' मातापितृमुजात - मातृभक्त पितृनिदेशकारको त्रिनीतश्च
'दयपत्ते' दयाप्राप्त - निसर्गकारुणिक । 'सीमंकरे' सीमाकर - सीमा कुलमर्यादा,
तस्या कर = कारक । 'सीमंधरे' सीमांकर = कुलमर्यादाधारक 'खेमंकरे' क्षेमद्वर =
लब्धवस्तुपालनशील । 'खेमंधरे' क्षेमधर - क्षेमस्य धारक, लब्धस्य परिपालन क्षेम -

चित्त रत्ता करते ये । अथवा निद्रोप माता के ये पुत्र ये । (रत्तिए) शुद्ध
क्षत्रिय वंश में ये उपन्न हुए थे । (मुद्धाहिसित्ते) उनके प्रबल प्रताप को सहन
करने में असमर्थ हो उनके राज्य की चतुर्दिग्वर्ती सीमाओं के राजा लोग उनके
चरणों में अपना शिर नमाते थे । (माउपिउसुजाए) यह माताके भक्त एवं पिता
की आज्ञा के परमपालक थे । (दयपत्ते सीमंकरे सीमंधरे खेमंकरे खेमंधरे)
ये स्वभाव से दयालु थे, यह कुलमर्यादा के कारक थे, तथा उमका आराधक भी
थे, लब्ध वस्तु के पालक एवं उमके धारक भी थे । अर्थात्-प्रजा-हित के योग्य
वस्तुओं को प्राप्त करते थे, और प्राप्त वस्तुओं का रक्षण करते थे, उन पर स्वयं

समृद्ध होता (मुडये) ते सदा प्रमन्नचित्त रक्षा करता होता अथवा निद्रोप
माताना ते पुत्र होता (रत्तिए] शुद्ध क्षत्रियवंशमा ते उत्पन्न तथा होता
(मुद्धाहिसित्ते) तेभना प्रबल प्रतापने सहन करवाभा अभ्यर्थ, तेभना
राज्यनी आरेखान्जुनी भीमाञ्जोना राजद्वोडे तेभना अरक्षोभा पोताना
शिर नभावता होता (माउपिउसुजाए) ते माताना लडत, तेभन पितानी
आज्ञाना परम पालक होता (दयपत्ते सीमंकरे सीमंधरे खेमंकरे खेमंधरे)
तेञ्जे स्वभावे दयालु होता तेञ्जे कुलमर्यादानु पालन करता करता अने
तेना आराधक पणु होता भेणवेदी वस्तुना पालक तेभन तेना धराड पणु
होता अर्थात् प्रबलचित्तने योग्य वस्तुञ्जोने प्राप्त करता होता अने प्राप्त

महया - हिमवत-महंतमलय-मंदर-महिंदसारे अचंतविसुद्ध-
दीह-रायकुल-वंस-सुप्पसूए गिरंतरं रायलक्खण-विराडयंग-
पच्चगे बहुजणवहुमाणपूइए सच्चगुणसमिद्धे खत्तिए मुइए मुद्धा-

‘कूणिए णाम राया परिवसइ’ कूणिको नाम राजा परिवसति स्म, कूणिको भूप
क्रीडश ‘इयाह-‘महयाहिमवत-महंतमलय-मंदर-महिंदसारे’ महाहिमवन्महाम-
लयमन्दरमहेन्द्रसार-महाहिमवन्महामलय-मन्दर-महेन्द्राणाम् णत्तनामकगैलाना सार
=शक्तिरिव सारो यस्य स तथा। ‘अचतविसुद्ध-दीह-रायकुल-वंस-सुप्पसूए’
अत्यन्तविशुद्ध-दीर्घ-राजकुल-वज-सुप्रमूत अत्यन्तविशुद्धौ=सर्वातिगायिनिर्मलौ दार्ढ्यौ-
अतिपुगतनौ यौ राजा कुलवगौ=मातापितृवगौ तत्र सु-सुप्तु प्रमूत=प्रादुर्भूत-समुत्पन्न
इति यावत्, ‘गिरंतर’ निरन्तरम्, ‘रायलक्खण-विराडयंगपच्चगे’ राजलक्षण-
विराजिताङ्गप्रत्यङ्ग-राजलक्षणौ = सामुद्रिकगालोक्तैर्विराजितमङ्ग=हस्तादिक प्रत्यङ्गम्=
अङ्गुल्यादिक यस्य स तथा। ‘बहुजणवहुमाणपूइए’ बहुजनबहुमानपूजित-
बहुभिर्जनैर्बहुमानैरतिशयसत्कृत, ‘सच्चगुणसमिद्धे’ सर्वगुणसमृद्ध-सर्वे=अशेषै गुणै =

कूणिक नाम के राजा [परिवसइ] राज्य करते थे। (महया-हिमवत-महंतमलय-
मंदर-महिंदसारे) यह महाहिमवत पर्वत, महामलय पर्वत, मेरु पर्वत, और महेन्द्रपर्वत के
तुल्य श्रेष्ठ थे। (अचतविसुद्ध-दीह-रायकुल-वंस-सुप्पसूए) अत्यन्त विशुद्ध एवं अति-
प्राचीन मातापिता सभधी कुल एवं वजमे इनका जन्म हुआ था। (गिरतर-रायलक्खण-विरा-
डयंगपच्चगे) अशुद्धित राजचिह्नों से इनके अंग एवं उपाग सुशोभित थे। (बहुजणवहुमाणपूइए)
अनेकजनों द्वारा ये बहुमानपूर्वक सत्कृत होते रहते थे। (सच्चगुणसमिद्धे) अनेक
नीति, दया एवं दक्षिण्यादिक सदगुणों से समृद्ध थे। (मुइये) ये सदा प्रसन्न-

नाभे शान्त (परिवसइ) शान्त्य करते। (महया-हिमवत-महंत-मलय-मंदर-
महिंद-सारे) ये महाहिमवत पर्वत, महामलय पर्वत, मेरु पर्वत, अने महेन्द्र
पर्वतना जेभ श्रेष्ठ हुता (अचत विसुद्ध दीह रायकुल वंस सुप्पसूए) अत्यन्त
विशुद्ध तेभ अति प्राचीन मातापिता सभधी कुल तेभ
वशमा तेभने जन्म थयो हुतो (गिरतर-राय लक्खण विराडयंगपच्चगे)
अशुद्धित शान्तियुद्धोधी तेभना अंग तेभ उपाग सुशोभित हुता (बहुजण-
वहुमाण-पूइए) अनेक दोषोदारा ते बहुमान पूर्वक सत्कार पाभता हुता
(सच्चगुणसमिद्धे) अनेक नीति तेभ दक्षिण्य आदिक सदगुणोधी वधाइ

चतुष्टयकारकेषु जनेषु परमार्थचिन्तकतयाऽग्रेतर । 'पुरिससीहे' पुरुषसिंह, पुरुष
सिंह इव, सिंह इव निर्भयो नल्लाध्व इत्यर्थ, 'पुरिसवग्ने' पुरुषव्याघ्र—व्याघ्रसदृशशूर
इत्यर्थ, 'पुरिसासीविसे' पुरुषागीविष—अत्र ध्वकोपचादभुजस्तुल्य । 'पुरिसपुडरीए'
पुरुषपुण्डरीक—पुरुष पुण्डरीकमिव=श्वेतकमलमिव मृदुहृदयवत्वात्, जनाना सुखकरत्वाच्च ।
'पुरिसवरगंधहृत्पी' पुरुषवरगन्धहृत्पी—त्रिपक्षपक्षमर्दकतया राजा पुरुषवरगन्धहृत्पी-
स्तुच्यते । 'अड्डे' आढ्य—प्रचुग्धनस्वामिवात्, 'दित्ते' दत्त—दर्पवान्—अत्रुविजयकारित्वात्,
स्वदेशस्वधर्माभिमतवाच्च । 'वित्ते' वित्त—प्रत्यायात्, 'विच्छिण्ण-विउल-भवण-
सयणा-सण-जाण-वाहणा-इण्णे' विस्तीर्ण-विपुल-भवन-अयनाऽऽ-सन-यान-वाहनाकीर्ण,

मनुष्यों का ग्रहण हुआ है । उनमें श्रेष्ठ ये इसलिये थे कि ये कोश एव सैन्यनल
आदि से समृद्ध थे । पुरुष शब्द से चारों पुरुषार्थों को साधन करनेवाले मनुष्य-
विशेष का ग्रहण हुआ है, उनमें ये प्रधान इसलिये थे कि ये परमार्थ के चिन्तक
थे । (पुरिससीहे पुरिसवग्ने पुरिसासीविसे पुरिसपुडरीए पुरिसवरगंधहृत्पी
अड्डे दित्ते वित्ते विच्छिण्ण-विउल-भवण-सयणा-सण-जाण-वाहणा-इण्णे) पुरुषसिंह ये
इसलिये थे कि पुरुषों में ये सिंह के समान निर्भय एव बलिष्ठ थे । पुरुषव्याघ्र ये
इसलिये थे कि ये पुरुषों में व्याघ्र के समान शूर थे । पुरुषागीविष ये इसलिये
थे कि ये पुरुषों में सर्प के समान अव-यकोपवाले थे । पुरुषों में पुडरीक तुल्य ये

अने पुरुषोभा प्रधान-मुष्य हुता 'नर' आ शण्डथी अही साधारण्य मनुष्योभा
अर्थ देवाय छे तेमनाभा श्रेष्ठ तेयो अटला भाटे हुता के तेयो कोश
नेमण सैन्यनल आदिथी अमृद्ध हुता 'पुश्' शण्डथी आरे पुरुषार्थोभा
साधन करवावाणा मनुष्य विशेषनो अर्थ अल्लु करायो छे तेमनाभा तेयो
प्रधान (मुष्य) अटला भाटे हुता के तेयो परमार्थना चिन्तक हुता
(पुरिससीहे पुरिसवग्ने पुरिसासीविसे पुरिसपुडरीए पुरिसवरगंधहृत्पी
अड्डे दित्ते वित्ते विच्छिण्ण विउल भवण सयणा सण-जाण वाहणा-इण्णे) पुरुषसिंह
तेयो अटला भाटे हुता के पुरुषोभा तेयो सिहना जेवा निर्भय
तेमण बलिष्ठ हुता पुरुषव्याघ्र तेयो अटला भाटे कडेवाता के तेयो
पुरुषोभा वाधना जेवा शूर हुता पुरुषागीविष अटला भाटे हुता के पुरुषोभा
तेयो सर्पना जेवा अण-कोपवाणा हुता पुरुषोभा पु उरीक तुल्य तेयो अ
भाटे हुता के तेमनु हृदय गरीयो प्रति इयाद्र-कोमल हुतु, तेमण साधा

सेउकरे केउकरे णरपवरे पुरिसवरे पुरिससीहे पुरिसवघे पुरिसा-
सीविसे पुरिसपुंडरीए पुरिसवरगंधहत्थी अड्ढे दित्ते वित्ते विच्छिण्ण-

तस्य फारको धारकश्चेतिभाव । 'मणुस्सिंदे' मनुष्येन्द्र—मनुष्येषु इन्द्र इव परमै-
श्वर्यवान् । 'जणवयपिया' जनपदपिता—जनपदस्य—जनपदवासिना जनाना विनय-
शिक्षाप्रदानादरक्षणत् भरणपोषण—शीलतया च पितेव—पिता । 'जणवयपाले' जन-
पदपाल—जनपदवासिजीवमात्रप्रतिपालक । 'जगवयपुरोहिण' जनपदपुरोहित—
जनपदस्य=जनपदवासिना जनाना शान्तिकारितया पुरोहित इव पुरोहित, 'सेउकरे'
सेतुकर—मार्ग सेतुः मर्यादाऽपि सेतु, तदुभयस्य कर कर्त्तन्ति यावत् । 'केउकरे'
केतुकर=विह्वकारक, अद्भुतकार्यकरणात्, 'णरपवरे' नरप्रवर—नरा साधारणा
तेषु प्रवर=कोशसैन्यबलशालितया श्रेष्ठ, 'पुरिसवरे' पुरुषवर—पुरुषेषु—पुरुषार्थ-

देख-रेख रखते थे । [मणुस्सिंदे जणवयपिया जणवयपाले जणवयपुरोहिण]
मनुष्यों में ये इन्द्र समान परमैश्वर्यशाली थे । जनपदनिवासियों को विनय स्वर्धी
शिक्षा के दाता होने से एव उनका अच्छी तरह से रक्षण करने से तथा भरण-
पोषण करने से ये देश के पिता तुल्य थे । इसीलिये ये जनपदपालक ऐसा निरुद-
धारण किये हुए थे । और इसीलिये ये प्रजाजन के लिये पुरोहित—सत्रसे पहिले
हित में सावधान रहने वाले थे । [सेउकरे] ये उन्मार्गगामी मनुष्यों
को मार्ग पर लाते थे और उन्हें मर्यादा में स्थिर करते थे । [केउ-
करे] ये अक्षत कार्यों के करने वाले थे । [णरपवरे] ये मनुष्यों में श्रेष्ठ थे,
(पुरिसवरे) और पुरुषों में प्रधान थे । " नर " इस शब्द से यहा साधारण

पशुओंको रक्षण करता होता तेमना पर जाते हेअरेअ राअता होता (मणु-
स्सिंदे जणवयपिया जणवयपाले जणवयपुरोहिण) मनुष्योभा ते धन्द्र ममान
परम शैश्वर्यशाली होता जनपद निवासीओने विनय मणधी शिक्षा देवा
वाणा होवाधी तेमअ तेमनु मागी गीते रक्षण करवाधी तथा लरणपोषण
करवाधी तेओ हेथना पिता—तुल्य होता ते भाटे अ तेओ जनपदपालक ओसु
भिरद धारण करता होता अने ओटला भाटे अ प्रजजनने भाटे पुरोहित—स्वर्धी
पडेला हितमा सावधान रहेवावाणा होता (सेउकरे) तेओ उन्मार्गगामी मनुष्योने
मार्ग पर लावता होता अने तेमने मर्यादामा स्थिर करता होता (केउकरे) तेओ
अद्भुत कार्यों करनारा होता (णरपवरे) तेओ मनुष्योभा श्रेष्ठ होता (पुरिसवरे)

चतुष्टयकारकेषु जनपु परमार्थचिन्तकतयाऽग्रेसर । 'पुरिससीहे' पुरपसिंह, पुरप
सिंह इव, सिंह इव निर्भयो नल्नाश्च इत्यर्थ, 'पुरिसवग्ने' पुरुपव्यात्र—व्यात्रसदृशगूर
इत्यर्थ, 'पुरिसासीविसे' पुरुपाशीविष—अन्वध्यकोपवाद भुजङ्गतुल्य । 'पुरिसपुडरीण'
पुरपपुण्डरीक—पुरप पुण्डरीकमिव=शैतकमलमिव मृदुहृदयवत्वात्, जनानां सुखकरत्वाच्च ।
'पुरिसवरगधहत्थी' पुरपवरगन्धहस्ती—विपश्चक्षुमर्दकतया राजा पुरुपवरगन्धहस्ती
तुल्यते । 'अड्डे' आड्य—प्रचुग्धनस्वामिवात्, 'दित्ते' दस—द्रुपवान्—अनुविजयकारिवात्,
स्वदेशान्वधमांभिमतवाच । 'वित्ते' वित्त—ग्रन्थात्, 'विच्छिण्ण-विउल-भवण-
सयणा-सण-जाण-वाहणा-इण्णे' विस्तीर्ण-विपुल-भवन-शयनाऽऽ-सन-यान-वाहनाकीर्ण,

मनुष्या का ग्रहण हुआ है । उनमें श्रेष्ठ ये इसलिये थे कि ये कोग एव मैयनल
आदि से समृद्ध थे । पुरुप शब्द से चारों पुरुपाशों को साधन करनेवाले मनुष्य-
विशेष का ग्रहण हुआ है, उनमें ये प्रधान इसलिये थे कि ये परमार्थ के चिन्तक
थे । (पुरिससीहे पुरिसवग्ने पुरिसासीविसे पुरिसपुडरीण पुरिसवरगधहत्थी
अड्डे दित्ते वित्ते विच्छिण्ण-विउल-भवण-सयणा-सण-जाण-वाहणा-इण्णे) पुरुपसिंह ये
इसलिये थे कि पुरुपों में ये सिंह के समान निर्भय एव बलिष्ठ थे । पुरुपव्यात्र ये
इसलिये थे कि ये पुरुपों में व्यात्र के समान गूर थे । पुरुपाशीविष ये इसलिये
थे कि ये पुरुपों में सर्प के समान अवध्यकोपवाले थे । पुरुपों में पुडरीक तुल्य ये

अने पुष्पोभा प्रधान-मुष्य होता 'नर' या शण्डथी अही साधारण मनुष्योना
अर्थ लेवाय छे तेमनाभा श्रेष्ठ तेओ अटला भाटे हुता के तेओ डोश
नेमन् मैयनल आदिथी ममृद्ध हुता 'पुष्प' शण्डथी आरे पुष्पाशोने
साधन उरवावाणा मनुष्य विशेषेना अर्थ अड्डेषु कराथे छे तेमनाभा तेओ
प्रधान (मुष्य) अटला भाटे हुता के तेओ परमार्थना चिन्तक हुता
(पुरिससीहे पुरिसवग्ने पुरिसासीविसे पुरिसपुडरीण पुरिसवरगधहत्थी
अड्डे दित्ते वित्ते विच्छिण्ण विउल-भवण-सयणा सण-जाण वाहणा इण्णे) पुष्पमि हु
तेओ अटला भाटे हुता के पुष्पोभा तेओ सिद्धना जेवा निर्भय
तेमन् पतिष्ठ हुता पुष्पव्यात्र तेओ अटला भाटे कडेवाता के तेओ
पुष्पोभा वाधना जेवा शूरा हुता पुष्पाशीविष अटला भाटे हुता के पुष्पोभा
तेओ सर्पना जेवा सङ्ग-डोपवाणा हुता पुष्पोभा पुडरीक तुल्य तेओ अ
भाटे हुता के तेमनु हृदय गरीजा प्रति इयाद्र-डोमल हुतु, तेमन् साधा

सेउकरे केउकरे णरपवरे पुरिसवरे पुरिससीहे पुरिसवग्घे पुरिसा-
सीविसे पुरिसपुंडरीए पुरिसवरगंधहत्थी अड्ढे दित्ते वित्ते विच्छिण्ण-

तस्य फारको धारकश्चेतिभाव । 'मणुस्सिंदे' मनुष्येन्द्र—मनुष्येषु इन्द्र इव परमै-
श्वर्यवान् । 'जणत्रयपिया' जनपदपिता—जनपदस्य—जनपदवासिना जनानां विनय-
शिक्षाप्रदानादरक्षणत् भरणपोषण—शीलतया च पितेऽ—पिता । 'जणत्रयपाले' जन-
पदपाल—जनपदवासिजीवमात्रप्रतिपालक । 'जणत्रयपुरोहिण्ण' जनपदपुरोहित—
जनपदस्य=जनपदवासिना जनानां शान्तिकारितया पुरोहित इव पुरोहित, 'सेउकरे'
सेतुकर—मार्ग सेतुः मर्यादाऽपि सेतु, तदुभयस्य क्व कर्त्तव्यं यावत् । 'केउकरे'
केतुकर=चिह्नकारक, अद्भुतकार्यकरणात्, 'णरपवरे' नरप्रवर—नरा साधारणा
तेषु प्रवर=क्रोशसैन्यबलशालितया श्रेष्ठ, 'पुरिसवरे' पुरुषवर—पुरुषेषु—पुरुषार्थ-

देख-रेख रखते थे । [मणुस्सिंदे जणत्रयपिया जणत्रयपाले जणत्रयपुरोहिण्ण]
मनुष्यों में ये इन्द्र समान परमैश्वर्यवाली थे । जनपदनिवासियों को विनय स्वर्धी
शिक्षा के दाता होने से एव उनका अच्छी तरह से रक्षण करने से तथा भरण-
पोषण करने से ये देव के पिता तुल्य थे । इसीलिये ये जनपदपालक ऐसा निरुद-
धारण किये हुए थे । और इसीलिये ये प्रजाजन के लिये पुरोहित—सबसे पहिले
हित में सावधान रहने वाले थे । [सेउकरे] ये उन्मार्गगामी मनुष्यों
को मार्ग पर लाते थे और उन्हें मर्यादा में स्थिर करते थे । [केउ-
करे] ये अक्षत कार्यों के करने वाले थे । [णरपवरे] ये मनुष्यों में श्रेष्ठ थे
(पुरिसवरे) और पुरुषों में प्रधान थे । “ नर ” इस शब्द में यहाँ साधारण

वस्तुओंको रक्षण करता होता तेमना पर जाते देखरेण राणता होता (मणु-
स्सिंदे जणत्रयपिया जणत्रयपाले जणत्रयपुरोहिण्ण) मनुष्योंमा ते इन्द्र समान
परम शैश्वर्यवाली होता जनपद निवासीओंने विनय स्वर्धी शिक्षा देवा
वाणा होवाधी तेमने तेमनु सागी गीते रक्षण करवाधी तथा भरणपोषण
करवाधी तेओ देशना पिता—तुल्य होता ते माटे न तेओ जनपदपालक ओबु
भिरह धारण करता होता अने अटला माटे न प्रबलजनने माटे पुरोहित—स्वर्धी
पंडेला हितमा सावधान रहवावाणा होता (सेउकरे) तेओ उन्मार्गगामी मनुष्योंने
मार्ग पर लावता होता अने तेमने मर्यादामा स्थिर करता होता (केउकरे) तेओ
अद्भुत कार्यों करनारा होता (णरपवरे) तेओ मनुष्योंमा श्रेष्ठ होता (पुरिसवरे)

बहु-दासी-दास-गो-महिस-गवेलगप्पभूए पडिपुण्ण-जंत-कोस-
कोट्टागारा-उधागारे वलवं दुच्चलपच्चामित्ते ओहयकंटयं निहय-

भक्तपाणे ' विच्छिदितप्रचुरभक्तपान-विच्छिदिते=दत्ते प्रचुर=बहुल भक्तपाने=आहार-
पानीये येन स तथा, वितीर्णमहुतरालजल इत्यर्थ । ' बहु-दासी-दास-गो-महिस-
गवेलगप्पभूए ' बहु-दासी-दास-गो-महिस-गवेलगप्रभृत-महो दास्यो दामा गावो
महिस्यो गवेलका =मेपाध, तै प्रभृत =सुवृद्धिमुपगत । ' पडिपुण्ण-जंत-कोस-कोट्टा-
गारा-उधागारे' प्रतिपूर्ण-यन्त्र-कोश-कोशगार-SS-युगSSगार, तत्र-यन्त्र-शिल्पादि-
साधनरूप-जलयन्त्रादिक प्रस्तरप्रक्षेपणादिरूप च, कोशो-दानार-गत्नादिभाण्टागारम्,
कोशगार-धान्यगृहम्, आयुधागार=त्रिविधशस्त्रास्त्रगृह च प्रतिपूर्ण यस्य स तथा ।
'वलवं' वल्वान् - तनुवल्-धनवल-मैत्र्यवलमम्पल । ' दुच्चलपच्चामित्ते ' दुर्वल-

इनके रसोई घर में इतना भक्तपान बनता था, कि मक्के भोजन कर लने पर
भी बहुतसा बच जाता था, जो गरानों को दे दिया जाता था । (बहु-दासी-दास-गो-
महिस-गवेलग-प्पभूए) इनकी सेवा के लिये बहुत से दासी दाम इनके पास
रहते थे । और इनकी पशुशाला में गाय, भेस तथा भैंसाका झुण्डका झुण्ड
रहता था । (पडिपुण्ण-जंत-कोस-कोट्टागारा-उधागारे) उनका यन्त्रगार यन्त्रों से-शिल्प
के साधनों से, कुहारा के साधनों से, तथा पत्थर फेरने के साधनों से परिपूर्ण था,
इनका कोश सुवर्णमुद्रा रत्न आदि से भरा रहता था, अनेक प्रकार के वायों से
इनका कोशगार परिपूर्ण था, तथा इनका शस्त्रागार अनेक प्रकारों के अस्त्रशस्त्रों
से सदा भरा रहता था । (वलवं) ये राजा विशेष बलवान् थे, अर्थात् तनुवल

अष्टली तो रसोई बनती હતી કે બધા લોભન કરી લીધા પછી પણ ઘણીએ
રસોઈ વધી પડતી હતી કે જે ગરીબોને આપી દેવામાં આવતી (બહુ-દાસી-
દામ-ગો-મહિસ ગવેલગ-પ્પભૂએ) તેમની એવા માટે ઘણા દાનીદાન તેમની પાસે
નર્વદા રહ્યા કરતા હતા તેમની પશુશાલામાં ગાય ભેસ તથા ઘેટાના
ટોળાના ટોળા રહેતા હતા (પડિપુણ્ણ-જત-કોસ કોટ્ટાગારા ઉધાગારે) તેમના યન્ત્ર-
ગાર યન્ત્રોથી-શિલ્પના સાધનોથી, કુહારાના સાધનોથી, તથા પત્થર ફેરવાના
સાધનોથી પરિપૂર્ણ હતા તેમનો અસ્ત્રોનો એનાના શિલ્પો અને આદિથી
ભરપૂર રહેતો હતો અનેક પ્રકારના ધાન્યોથી તેમનો ડોહાર પરિપૂર્ણ હતો
તથા તેમનું શસ્ત્રાગાર અનેક પ્રકારના અસ્ત્રશસ્ત્રોથી સદા ભરેલું રહેતું

विउल-भवण-सयणा-सण-जाण-वाहणाइण्णे बहुधण्ण-बहु-
जायरूवरयए आओगपओगसंपउत्ते विच्छड्डिय-पउरभत्तपाणे

विस्तीर्णानि=विस्तारमुपगनानि, विपुलानि=प्रचुराणि, भवनानि=गृहा, शयनानि=शय्या, आसनानि, यानानि=रथा, वाहनानि=अथाय, तैगर्गीर्ण=परिपूर्ण, 'बहुधण्ण बहुजायरूवरयए' बहुधान्यबहुजातरूपरजत-बहूनि धान्यानि यस्य स बहुधान्य, बहूनि जातरूपरजतानि-जातरूपपाणि=सुपुर्णानि रजतानि=रूप्याणि च यस्य स बहुजातरूपरजत, बहुधान्य-श्यासौ बहुजातरूपरजतधेति तथा, बहुधान्यबहुसुवर्णरजत-परिपूर्ण इत्यर्थः । 'आओग-पओग-संपउत्ते' आयोग-प्रयोगसम्प्रयुक्त-आयोगो=धनलाभ, तस्य प्रयोगो=व्यवहार, तत्र सम्प्रयुक्तो=व्याप्त-कृतोद्यम इत्यर्थः । 'विच्छड्डियपउर-

इसलिये थे कि इनका हृदय गरीबों के प्रति दयार्द्र-कोमल था, एव साधारण से भी साधारण मनुष्य के लिये ये सुखकारी थे । पुरुषों में उत्तम गणहस्ती के तुल्य ये इसलिये थे कि ये शत्रुओं के मर्दक थे । प्रचुर धनका स्वामी होने से ये आढ्य थे । शत्रुओं के जीतनेवाले होने से ये दस्य थे । स्वदेश एव स्वधर्म का पालक होने से ये वित्त-प्रख्यात थे । इनके अनेक विस्तृत प्रासाद थे । बहुत अधिक अनेक प्रकार के शय्या, आसन, यान और वाहन इनके पास थे । [बहुधण्ण-बहुजायरूवरयए] इनका कोशाल गालि गोधूमद्रि धान्यों से भरा रहता था । तथा-इनका भण्डार सोने चान्दी से सदा भरा रहता था । [आओगपओगसंपउत्ते] धनके लाभके व्यवहार में ये सदा उद्यमशील रहते थे । (विच्छड्डिय-पउर-भत्त-पाणे)

शुभा पशु साधारण मनुष्यने भाटे तेओ सुपहाता इता पुशेभा उत्तम गणहस्तीना रेवा तेओ ओ भाटे इता के तेओ शत्रुओने मर्दन करनार इता धनना स्वामी होवाथी तेओ आढ्य इता शत्रुओने छतवा-वाण होवाथी तेओ दस इता स्वदेश तेभव स्वधर्मना पालक होवाथी तेओ वित्त-प्रख्यात इता तेभना अनेक मोटा मोटा महेदो इता गणुव वधारे अनेक प्रकारनी शय्या, आसन, यान (रथ) अने वाहनो तेभनी पासे इता (बहुधण्ण-बहुजायरूवरयए) तेभनो कोशाल (कोशाल) शालि गोधूम द्रि धान्योथी लरेदो रहेतो इतो तथा तेभनो लडार मोना यादीथी मदा लरपूर रहेतो इतो (आओग-पओग-संपउत्ते) धनना लाभना व्यवहारमा तेओ दुभेश उद्यमशील रहेता इता (विच्छड्डिय-पउर-भत्त-पाणे) तेभना रेओडामा

मलियसत्तुं उद्धियसत्तुं निज्जियसत्तुं पराडयसत्तुं ववगयदुब्भिव्खं
मारिभयविप्पमुक्कं खेमं सिवं सुभिव्खं पसांतडिंवडमरं रज्जं
पसासेमाणे विहरइ ॥ सू. ११ ॥

प्रमलप्रतापभयाद् अविद्यमाना ऋण्टका, यद्वा उपघात-निहनन-मल्लोद्धारणक्रियाभि-
निर्मूलकता ऋण्टका यस्मिन् तत्तथा। 'ओहयसत्तु' उपहतगणु-उपहता = नपत्ति-
हरणादिभिरुपघात प्राप्ता शत्रवो यत्र तत् उपहतगणु राज्य शासन वा, 'निहयसत्तु'
निहतगणु निहता = न्धादिभिर्दण्ड प्राप्ता शत्रवो यत्र तत्तथा, 'मलियसत्तु' मन्त्रितगणु-
प्रहारान्भिर्मन्त्रिता = मथिता शत्रवो यत्र तत्तथा, 'उद्धियसत्तु' उद्धृतगणु-स्वदेश-
वहिष्टृतगणु। 'निज्जियसत्तु' निर्जितगणु-तसैन्यमहारादिभि परिभूतशत्रु।
'पराडयसत्तु' पराजितगणु-पराजिता शत्रवो यत्र तत्तथा, वगीकृतगणु इत्यर्थे।
'ववगयदुब्भिव्ख' ज्यपगतदुर्भिक्षम्-दुर्लभा भिक्षादुर्भिक्षा, व्यपगता-दुर्भिक्षा यस्मात्
तद् व्यपगतदुर्भिक्ष भिक्षादौर्लभ्यरहितमित्यर्थे, 'मारिभयविप्पमुक्कं' मारीभयनिप्रमुक्तम्=
मरक्रीभयरहितम्। 'खेम' क्षेमम्-क्षेमयुक्त सकुशलम्, 'सिव' शिव-निरुपद्रवम्।
'सुभिव्ख' सुभिक्ष-सुलभा भिक्षा यत्र तत्तथा। 'पसांतडिंवडमर' प्रगान्त-

इन उपायों द्वारा तस्कर आदि काटों से रहित होकर सर्वथा अकटक बना हुआ था।
(ओहयसत्तु निहयसत्तु मलियसत्तु उद्धियसत्तु निज्जियसत्तु पराडयसत्तु) इसी प्रकार
इनका राज्य उपहतगणु, निहतगणु, मथितगणु, उद्धृतगणु, निर्जितगणु एव पराजितगणु
था। [ववगयदुब्भिव्ख मारिभयविप्पमुक्क] इनके राज्य में भिक्षुकों को भिक्षा
की दुर्लभता नहा थी। मरक्री का भयतक भी जनता को पीड़ित नहीं करता
था। अतः राज्य में सर्वत्र (क्षेम) कुशलता का सद्भाव था। (सिव) यहाँ
की जनता में कुशलता आने का एक कारण यह भी था कि यहाँ किसी भी

अन्धुं डंतु (ओहयसत्तु निहयसत्तु मलियसत्तु उद्धियसत्तु निज्जियसत्तु पराडय
सत्तु) ओ प्रकारे व तेनुं रान्थे उपहतशत्रु, निहतशत्रु, मथितशत्रु, उद्धृत
शत्रु, निर्जितशत्रु तेभ व पराजितशत्रु डंतु (ववगयदुब्भिव्ख मारिभयविप्प-
मुक्क) तेना रान्थेभा लिक्षुकेने लिक्षा भजणी दुर्लभ नडोती मरक्रीने लय
पणु प्रभने इ प् आपते नडि आभ रान्थेभा सर्वत्र (क्षेम) कुशलताने।
सद्भाव डंतो (सिव) अहीनी प्रभभा कुशलता छवार्थ ववानु ओड डारणु
ओ पणु डंतु डे अही डोधपणु प्रकारेने उपद्रव नडोती उपद्रवने अभाव

कंटयं मलियकंटयं उद्धियकंटयं अकंटयं ओहयसत्तुं निहयसत्तुं

प्रत्यमित्र—दुर्बल = बलहीन प्रत्यमित्रा = मित्रो यस्य स दुर्बलप्रत्यमित्र । अतः पर
सर्वांगि विशेषाणि राज्यस्य, प्रशासदिति क्रियाया वा सन्ति, तस्माद् विशेषणाना
नपुंसकत्वं द्वितीयैकवचनान्तत्वं च । 'ओहयकटय' उपहतकटकम्—उपहता =
मपत्तिहरणादिभिः उपघातः प्राप्ता कण्टका = कण्टकवत् अन्तःप्रविष्टतया वेदनाप्रदा
तस्करादयो यस्मिन् राज्ये, शासने वा, तत् तथा । 'निहयकटय' निहतकटकम्—
निहता = बन्धनादिभिर्दण्डः प्राप्ता कण्टका यत्र तत् 'मलियकटय' मलितकटकम्—
मलिता = प्रहारादिभिर्मथिता कण्टका यत्र तत् । 'उद्धियकटयं' उद्धृतकटकम्—
उद्धृता = निजजनपदाद्वहिष्कृता कण्टका यत्र तत् तथा । 'अकटय' अकण्टकम्—

धनबल एव सैन्यबल से मपन्न थे । (दुब्बलपच्चामित्ते) इनके जितने
भी वैरी थे वे सब दुर्बल-बलहीन थे । राज्य भी इनका (ओहयकटय निहयकटय मलिय-
कटय उद्धियकटय) उपहतकटक—भीतरप्रविष्ट होकर चुभनेवाले काटोकी तरह पजाको पीड़ित
करनेवाले तस्कर आदिकों से सर्वथा रहित था । निहतकटक इसलिये कि जितने भी राज्य
में चोर आदि थे वे सब बधनद्वारा बद्धकर कारावास में बन्द कर दिये गये थे ।
मलितकटक इसलिये था कि राज्य में जो भी चोर आदि थे वे सब प्रहारों द्वारा
मथित कर दिये गये थे । उद्धृतकटक इसलिये था कि राज्य के समस्त चोर आदि
अपने जनपद से बाहर कर दिये गये थे । इसप्रकार इनका राज्य (अकटय)

इतु (बल्लव) आ राज्ञे विशेष भणवान् इति अर्थात् तनुभल (शारीरिक
भण) धनभल तेभञ्च सैन्यभलथी स पन्न इति (दुब्बलपच्चामित्ते) तेभना जेटला
वेरी इति तेभो भधा दुर्बल भलहीन इति तेभनु रान्त्य पणु (ओहयकटयं निहयकटय
मलियकंटय उद्धियकटय) उपहतकटक अहरमा जतो रही दुब्बा करे तेवा काटाना जेवा
प्रणने दु भन्पीठा करेनार तस्कर आदिजोथी सर्वथा रक्षित इतु निहतकटक—
जेटला भाटे के रान्त्यमा जे कोथ चोर आदि इति तेभो भधाने भ धनथी भाधीने
कारावासमा 'पुरी मुठेला इति मलितकटक जेटला भाटे इतु के रान्त्यमा
जे कोथ चोर आदि इति तेभो भधाने प्रहारोथी मथित करवाभा (भारवाभा)
आव्या इति उद्धृतकटक जेटला भाटे इतु के रान्त्यना तमाभ चोर आदिने
पोताना देशथी भुहार करी देवाभा आव्या इति आ प्रकारे तेभनु रान्त्य
(अकटय) जे उपायो द्वारा तस्कर आदि काटाजोने काटीने सर्वथा निष्कटक

रीरा लक्ष्मण-व्रजण-गुणोववेया माणु-म्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-
सुजाय-सव्वंग-सुंदरंगी ससि-सोमाकार-कंत-पिय-दंसणा सुहुवा

नातिपीनानि नातिकृशानि पत्र इन्द्रियाणि यत्र तदहोनपरिपूर्णपञ्चेन्द्रिय, तादृश शरीर
यस्या सा अहानपरिपूर्णपञ्चेन्द्रियशरीरा-न्यूनाधिकवैकल्यादिदोषरहितलक्षणसहित-
पञ्चेन्द्रियपूर्णमुत्तमशरीरा इति यावत् । 'लक्ष्मण-व्रजण-गुणोववेया' लक्षण-व्यञ्जन-
गुणोपपेता, तत्र-लक्षणानि=चिह्नानि हस्तेरेवादिरूपाणि स्वस्तिकादीनि, व्यञ्जनानि=मगति-
लानि, तायेव गुणा=प्रशस्तरूपा तैरुपपेता=मुसम्पन्ना । 'माणु-म्माण-प्पमाण-
पडिपुण्ण सुजाय सव्वंग-सुंदरंगी' मानोन्मान-प्रमाण-प्रतिपूर्ण-मुजात-सर्वाङ्ग-सुन्दराङ्गी,
मान=जलादिपरिपूर्णकृष्णदिप्रविष्टे पुरुपादौ यदा द्रोणपरिमित जलादि निस्सरति तदा
स पुरुपादिमानवानुच्यते, तस्य शरीरावगाहनाविज्ञेयो मानमत्र गृह्यते । उन्मानम्=
ऊर्ध्वमान यत् तुल्यायामागेष्य तोलनेऽर्धभारप्रमाण भवति तत् । प्रमाण=निजाङ्गुलीभिर-
द्येत्तगताङ्गुलिपरिमितोच्छ्राय, मान च उन्मान च प्रमाण चेति मानोन्मानप्रमाणानि,
तै प्रतिपूर्णानि=मपन्नानि, अत एव मुजातानि=यथोचितावयवमनिवेशयुक्तानि, सर्वाणि=
सप्त गति, अङ्गानि=मस्तकादारभ्य चरणान्तानि यस्मिंस्तत् तादृशम्-अत एव सुन्दर-

दीर्घ और पाचो इन्द्रियों से परिपूर्ण था । (लक्ष्मण-व्रजण-गुणोववेया) लक्षण-
हस्तेरेवादिकरूप एव व्यञ्जन-मसलिल आदिकरूप चिह्नो से यह मुसम्पन्न थी । (माणु-
म्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंग-सुंदरंगी) मान, उन्मान एव प्रमाण से
परिपूर्ण होने के कारण यथोचित अवयवों की रचना से इसके मस्तक से लेकर
चरणतक के समस्त अंग एव उपाग वडे ही सुहावने थे, अत इसका शरीर सर्वाङ्ग-
सुन्दर था । (ससि-सोमाकार-कत-पियदसणा) चंद्रमा के तुल्य इसका स्वरूप

डे लाथु टुडु नडि तेवु अने पायेथ धन्त्रियेथी परिपूर्णुं हुतु (लक्ष्मण-
व्रजण-गुणोववेया) लक्ष्मण-हुन्त रेणादिदृश्य तेम ए व्यञ्जन-मसा तल आदि
इय चिह्नोथी ते सुमपन्न हुती (माणु-म्माण-प्पमाण पडिपुण्ण-सुजाय सव्वंग-
सुंदरंगी) मान, उन्मान तेम ए प्रमाणुथी परिपूर्णुं होवाना दारणे यथो
चित अवयवोनी रथनाथी तेना भाथाथी लधने पग सुधीना ममस्त अग
तेम ए उपागे धणु ए सुंदर हुतु तेथी तेवु शरीर सर्वाङ्ग-सुंदर हुतु
(ससि-सोमाकार-कत पियदसणा) चंद्रमा ममान तेवु स्वइय होवाथी ते

मूलम्—तस्स णं कोणियस्स रत्तो धारिणी णामं
देवी होत्था, सुकुमालपाणिपाया अहीण-पडिपुण्ण-पंचिदियस-

डिम्बडमरम्—विप्रकलहाभ्या रहितम्, एव यथा स्यात्तथा, एवमूत वा 'रज्ज'
राज्य—'पसासेमाणे' प्रजासत्—पालयन् 'विहरइ' विहरति=तिष्ठति ॥ सू. ११ ॥

टीका—तस्स णं कोणियस्स रत्तो' तस्य सल्ल कोणिकस्य राज्ञ
'धारिणी णाम देवी होत्था' धारिणी नाम देवी=राज्ञी आसीत्, सा धारिणी
राज्ञी कीदृशी? अत्रोच्यते—'सुकुमालपाणिपाया' सुकुमारपाणिपादा—पाणी च पादौ च
पाणिपादम्, प्राण्यङ्गत्वादेरुवदभाव, तत सुकुमार=कोमल पाणिपाद यस्या सा तथा,
सुकुमलकरचरणा । 'अहीण-पडिपुण्ण-पंचिदिय-सरीरा' अहीन परिपूर्ण-पञ्चेन्द्रिय-शरीरा-
लक्षणतोऽहीनानि=सम्पूर्णलक्षणानि, स्वरूपत परिपूर्णानि=नातिहृत्वानि नानिदीर्घाणि

प्रकार का उपद्रव नहीं था । उपद्रव का अभाव भी इसलिये था कि (सुभिक्ष)
इसमे लोगों को खाद्यसामग्री सुलभ थी । (पसातडिबडमर) विघ्न और कलहका
यहाँ नाम भी नहीं था । इस प्रकार, अथवा ऐसे [रज्ज पसासेमाणे विहरइ]
राज्य का पालन करते हुए कोणिक राजा राज्य करते थे ॥ सू० ११ ॥

'तस्स ण कोणियस्स रत्तो' इत्यादि,

(तस्स ण कोणियस्स रत्तो) उस कोणिक राजा की (धारिणी णाम)
धारिणी नाम की (देवी) रानी (होत्था) थी । (सुकुमालपाणिपाया) इसके
हाथ और पैर दोनों ही बड़े सुकुमार थे । (अहीण-पडिपुण्ण-पंचिदिय-सरीरा)
इसका शरीर लक्षणे अहीन एव स्वरूप से परिपूर्ण—न अतिहृत्व और न अति-

पथु अटला भाटे हुतो के (सुभिक्षम्) तेभा दोडोने भावानी सामग्री सुलभ
हुती (पसातडिबडमरं) विघ्न अने कलह (कलहा) नु नाम निशान न
नडोतु आ प्रकारे अथवा—अथवा (रज्ज पसासेमाणे विहरइ) राज्यतु पालन
करता थका डोणिक राज्ज राज्य करता हुता (सू. ११)

"तस्स ण कोणियस्स रत्तो" इत्यादि

(तस्स ण कोणियस्स रत्तो) ते डोणिक राज्ञी (धारिणी णाम) धारिणी नामनी
(देवी) राणी (होत्था) हुती (सुकुमाल-पाणि-पाया) तेना हाथ अने पग धन्नेय भहु
सुमार (कोमल) हुती (अहीण-पडिपुण्ण-पंचिदिय-सरीरा) तेतु शरीर
लक्षणतो अहीन तेम न स्वरूपतो परिपूर्ण—भहु नातु नडि तेम भहु भोडु

रीरा लक्ष्मण-व्रजण-गुणोववेया माणु-म्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-
सुजाय-सव्वंग-सुंदरंगी समि-सोमाकार-कंत-पिय-दंसणा सुख्वा

नातिपीनानि नातिकृशानि पद्म इन्द्रियाणि यत्र तदहीनपरिपूर्णपद्मेन्द्रिय, तादृश शरीर
यस्या सा अहीनपरिपूर्णपद्मेन्द्रियशरीरा-न्यूनाधिकवैकल्यादिदोषरहितलक्षणसहित-
पद्मेन्द्रियपूर्णमुन्दरशरीर इति यावत् । 'लक्ष्मण-व्रजण-गुणोववेया' लक्षण-व्यञ्जन-
गुणोपपेता, तत्र-लक्षणानि=चिह्नानि हस्तेर्गवादिरूपाणि स्वस्तिफादीनि, व्यञ्जनानि=मशति-
लादीनि, तान्येव गुणा=प्रशस्तरूपा तैरुपपेता=मुमम्पन्ना । 'माणु म्माण-प्पमाण-
पडिपुण्ण सुजाय सव्वंग-सुंदरंगी' मानो मान-प्रमाण-प्रतिपूर्ण-मुजात-सर्वाङ्ग-मुन्दराङ्गी,
मान=जलादिपरिपूर्णमुण्डादिप्रसिद्ध पुरुषादौ यद्वा द्रोणपरिमित जलात् निस्सरति तद्वा
स पुरुषादिर्मानवानुच्यते, तस्य शरीरगवाहनाविशेषो मानमत्र गद्यते । उन्मानम्=
ऊर्ध्वमान यत् तुल्यथामारोप्य तोलनेऽर्धभागप्रमाण भवति तत् । प्रमाण=निजाम्बुलीभिर-
द्योत्तरगताङ्गुलिपरिमितोद्ग्रय, मान च उन्मान च प्रमाण चेति मानोन्मानप्रमाणाणि,
तै प्रतिपूर्णानि=मपन्नानि, अत एव मुजातानि=यथोचितावयवमनिवेशयुक्तानि, सर्वाणि=
सप्त गति, अङ्गानि=मस्तकादारम्य चरणान्तानि यस्मिन्मस्तत् तादृशम्-अत एव मुन्दर-

दीर्घ और पाचां इन्द्रियों से परिपूर्ण था । (लक्ष्मण-व्रजण-गुणोववेया) लक्षण-
हस्तेरखादिकरूप एव व्यञ्जन-मसलिल आदिरूप चिह्नो से यह मुमपन्न थी । (माणु-
म्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंग-सुंदरंगी) मान, उन्मान एव प्रमाण से
परिपूर्ण होने के कारण यथोचित अवयवों की रचना से इसके मस्तक से लेकर
चरणतक के समस्त अंग एव उपाग वहे ही सुहावने थे, अत इसके शरीर सर्वाङ्ग-
मुन्दर था । (समि-सोमाकार-कंत-पियदंसणा) चद्रमा के तुल्य इसके स्वरूप

उे लायु डुडु नडि तेवु अने पाथेय धन्दिथेथी परिपूर्णे डतु (लक्ष्मण-
व्रजण-गुणोववेया) लक्ष्णु-डस्त देणादिडडुप तेम न व्यञ्जन-मसा तल आदि
डुप थिन्नीथी ते सुमपन्न डती (माणु-म्माण-प्पमाण पडिपुण्ण-सुजाय सव्वंग-
सुंदरंगी) मान, उन्मान तेम न प्रभायुथी परिपूर्णे डोपाना डारणे अथो
थित अवयवोनी रचनाथी तेना माथाथी लधने पग सुधीना सभस्त अग
तेम न उपागेो धयुा न सुडर डतु तेथी तेतु शरीर सर्वाङ्ग-सुडर डतु
(समि-सोमाकार-कत पियदंसणा) अद्रमा सभान तेतु स्वडुप डोपाथी ते

करयल-परिमिय-पसत्थ-तिवली-त्रलियमज्जा कुंडलु-ल्लिहिय-गंड-
लेहा कोमुइय-रयणियर-विमल-पडिपुण्ण-सोमवयणा सिंगारागार-

मङ्गल=वपुर्धम्या सा तथोक्ता 'ससि-सोमाकार-रुत-पिय-दसणा' अणि सौम्याकार-
कान्त-प्रियदर्शना, अशीव=चन्द्र इव सौम्य =सुन्दर आकार =स्वरूप यस्या सा तथा,
कान्ता=कमनीया-मनोहरा, प्रिय=हृदयाह्लादक दर्शन यस्या सा तथा । तत पदत्र-
यस्य कर्मधारय । 'सुरूवा' सुरूपा-शोभन रूप यस्या सा तथा । 'करयल-परि-
मिय-पसत्थ-तिवली-त्रलिय-मज्जा' करतल-परिमित-प्रगस्त-त्रिवली-वलित-
मध्या-करतलेन परिमित =प्रमाणित =मुष्टिप्राह्व इत्यर्थ, स चासौ प्रगस्त =शुभ, त्रिवली-
वलित =उदरोपरि वर्तमाना त्रिरेखा त्रिवलिस्तया वलितो=युक्तो मध्यो=मध्यभागा
यस्या सा तथा । 'कुडलु-ल्लिहिय-गडलेहा' कुण्डलो-ल्लिखित-गण्डलेखा, कुण्ड-
लाभ्यामुल्लिखिता=घृष्टा गण्डलेखा=कपोलमण्डले रचिता पत्रावली यस्या सा तथोक्ता,
'कोमुइय-रयणियर-विमल-पडिपुण्ण-सोमवयणा' कौमुदित-रजनीकर-विमल-परिपूर्ण-
सौम्यवदना, कौमुदित गरच्चन्द्रिकासहितो यो रजनीकर =पूर्णचन्द्रस्तद्वद् विमल

होने से यह देखनेवालों के लिये बड़ी ही कान्त-मनोहर लगती थी, इसलिये इसका
दर्शन हृदय का आह्लादक होता था । (सुरूवा) और यही कारण था कि
जिसकी वजह से यह सुरूपा थी । (करयल-परिमिय-पसत्थ-तिवली-त्रलियमज्जा)
इसका मध्यभाग-कटिप्रदेश करतलपरिमित अर्थात् मूठी में आसके इतना पतला था,
प्रगस्त था, तथा इसका उदर त्रिवलीयुक्त था । (कुडलु-ल्लिहिय-गडलेहा कोमु-
इय-रयणियर-विमल-पडिपुण्ण-सोमवयणा)इसके कपोलमण्डल पर जो पत्रावली
रचित थी वह कानों मे पहिरे हुए दोनों कुण्डलों से उल्लिखित-घृष्ट होती रहती थी ।
इसका जो सौम्यवदन-सुन्दर मुख या वह चन्द्रिका से समन्वित रजनीकर अर्थात्

नेनाग्गो भाटे घण्ठी ७ कात भनोहर लागती हुती तेथी तेणु दर्थन हृदयने
आह्लादक थणु हुणु (सुरूवा) अने ओणु कारणुथी ते सुइया हुती
(करयल परिमिय-पसत्थ त्रिवली-त्रलियमज्जा) तेना मध्यलाग-कटिप्रदेश करतल-
परिमित ओटले मुठीमा समाधु थके ओयो पातणो हुतो, प्रथन्त हुतो तथा
पेट त्रिवली (त्रलु वली) वाणु हुणु (कुडलु ल्लिहिय गडलेहा कोमुइय रयणियर-
विमल पडिपुण्ण सोमवयणा) तेना कपोलमण्डल (जे गाल) पर जे पत्रावली
(शोभा वधारवा जनावेल रचना) जनावेली हुती ते तेना कानमा पडेरेला
अन्ने कु उलोथी घसाती हुती तेणु जे सौम्य वदन-शुभ हुणु ते चन्द्रिकाथी

चारुवेसा संगय-गय-हसिय-भणिय-विहिय-विलास-सललिय-संलाव-
-णिउण-जुत्तोवयार-कुसला सुंदर-घण-जघण-वयण-कर-चरण-

परिपूर्ण मौम्य वदन मुख यस्या सा तथा । 'सिंगारागारचारुवेसा' शृङ्गाराऽऽगार-
चारुवेसा, शृङ्गारम्य=शृङ्गारसस्य अगारमिव=गृहमिव चारु=शोभनो वेपो=नपथ्य-
वक्त्राद्विगचना यस्याः सा तथा । 'सगय-गय-हसिय-भणिय-विहिय-विलास-
सललिय'-संलाव-णिउण-जुत्तोवयार-कुसला'-सद्गत-गत-हसित-भगित-विहित-
विलास-सललित-गप-निपुण-युक्तोपचार-कुसला, गगतेषु=मक्षुचितेषु गत-हमित-
भगित-विहित-विलास-सललित-मलापेषु निपुणा, तत्र-गत=गमन गजहसादित्रत्,
हमित=स्मित, भगित-वचन क्रोकिन्दीणादिस्वर्गेण च युक्त, विहित=चेष्टित,
विलासो=नेत्रचेष्टा, सललितमलाप-वक्रोक्त्याचलद्रांण सहित परस्परभाषण, तेषु
निपुणा=चतुरेत्यर्थ, तथा-युक्तोपचारेषु=सदय्यवहारेषु कुसला=दक्षेत्यर्थः, ततः पदत्रय-

चन्द्रमा के समान त्रिलुठ विमल था । [सिंगारागारचारुवेसा] इसका नेपथ्य
अर्थात् वेप शृङ्गार का घर था । [सगय-गय-हसिय-भणिय-विहिय-विलास-
सललिय-संलाव-णिउण-जुत्तोवयार-कुसला] इसकी गति गज एव हसादिका की
गति जैसी मनोमुग्धकारी थी, इसका स्मित बहुत सुन्दर था, एव इसका भाषण
क्रोकिन् और वीणा आदि के स्वर जैसा कर्णप्रिय था, इसकी चेष्टाएँ और विलास अति
मनोहर थे, तथा सललितमलाप-परस्परभाषण वक्रोक्ति आदि अलंकारों से युक्त था ।
मतलब कहने का यह है कि यह इन गमनादिक क्रियाओं में विशेष चतुर थी ।
साथ २ योग्य सदय्यवहारों में भी यह कुशल थी । [सुंदर-घण-जघण-वयण-

गोभता अद्रमा ममान्णिलकुल निर्भण इतु [सिंगारा-गार-
चारुवेसा] तेना नेपथ्य अर्थात् वेप जाले शृङ्गारतु घर इतु (सगय
गय हसिय भणिय विहिय विलास सललिय संलाव णिउण जुत्तोवयार - कुसला) तेनी
आल गव्य (हाथी) तेम ज इस आदिशेनी गति जेवी मनोमुग्धकारी
इती तेनु स्मित (हसित) अति सुन्दर इतु तेनी गोली डोयल अने वीणा
आदिना स्वर जेवा कर्णप्रिय इता तेनी चेष्टाओ अने विलास अति
मनोहर इता तथा सललितमलाप-परस्पर संलापेषु-वक्रोक्ति आदि अल-
ंकारोवाला इता जेवानी मतलब अे छे के ते गमन (आल) आदि क क्रिया-
ओमा जहु अतुर इती साथे साथे उचित सदय्यवहारोमा यथु ते कुश १

नयण-लावण-विलास-कलिया पासाईया दरिसणिजा अभिरूवा
पडिरूवा, कोणिएणं रण्णा भंभसारपुत्तेण सद्धिं अणुरत्ता अविरत्ता,
इट्ठे सद्-फरिस-रस-रूव-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोए पच्चणु-
भवमाणी विहरइ ॥ सू. १२ ॥

स्य कर्मधारय । 'सुदर-थण-जघण-वयण-कर-चरण-नयण-लावण-विलास-
-कलिया' सुन्दर-स्तन-जघन-वदन-कर-चरण-नयन-लावण्य-विलास-कलित्ता
'पासाईया' प्रासादीया-'दरिसणिजा' दर्शनीया । 'अभिरूवा' अभिरूपा 'पडि
रूवा' प्रतिरूपा, 'कोणिएण रण्णा भंभसारपुत्तेण' कोणिकेन राजा भंभसारपुत्तेण
'सद्धिं' सद्धि-सह । 'अणुरत्ता' अनुरक्ता-अनुरागवती, 'अविरत्ता' अविरक्ता-पत्यौ प्रति-
कृतेऽपि कोपरहिता, 'इट्ठे' इट्ठान्-मनोऽनुकूलान्, 'सद्-फरिस-रस-रूव-गंधे'
शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान्, 'पंचविहे' पञ्चविधान्, 'माणुस्सए कामभोए'
मानुष्यकान्=मनुष्यसम्बन्धिन कामभोगान्, 'पच्चणुभवमाणी' प्रत्यनुभवन्ती-भुञ्जाना
'विहरइ' विहरति स्म इति ॥ सू० १२ ॥

कर-चरण-नयण-लावण-विलास-कलिया] इसके पयोधरयुगल पुष्ट, जघन
कदलान्तम जैसे, वदन राकागशि जैसा अर्थात् पूर्णिमा के चन्द्र जैसा था, कमल जैसे
कोमल इसके कर चरण थे, नयनलावण्य अनुपम, एव विलास मनोहर था ।
[पासाईया] यह राजा के चित्त को प्रतिसमय प्रमुदित करती रहती थी ।
द्रष्टव्य वस्तुओं में यह मां एक [दरिसणिजा] द्रष्टव्य वस्तु थी । [अभि-
रूवा पडिरूवा] अभिरूप एव प्रतिरूप थी । (कोणिएण रण्णा भंभसारपुत्तेण
सद्धिं अणुरत्ता अविरत्ता इट्ठे सद्-फरिस-रस-रूव-गंधे पंचविहे माणुस्सए
कामभोए पच्चणुभवमाणी विहरइ] यह रानी अपने प्रियपति कोणिके राजा के साथ.

इती [सुदर-थण-जघण-वयण-कर-चरण-नयण-लावण-विलास-कलिया]
तेना अन्ने स्तने पुष्ट, जघन केजना स्तल जेवा, वदन-मुभ राकागशि-
अर्थात् पूषिमाना यद्द्र जेषु इतु कमल जेवा सुवाणा इथ पग इता
नेत्रनु लावण्य अनुपम तेम ज विलास मनोहर इतु (पासाईया) ते रावना
चित्तने इश्वभत भुशी इरती रहेती इती जेध शकथ तेवी वस्तुओभा ते
पथ्थ ओध (दरिसणिजा) जेवालायक इती [अभिरूवा पडिरूवा] अबिदप
तेम ज प्रतिदप इती (कोणिएण रण्णा भंभसारपुत्तेण सद्धिं अणुरत्ता अविरत्ता

मूलम्—तस्स णं कोणियस्स रण्णो एक्के पुरिसे
विउलकयवित्तिण् भगवओ पवित्तिवाउए भगवओ तद्देवसियं
पवित्तिं णिवेदेड ॥ सू०१३ ॥

टीका—‘तस्स णं कोणियस्स रण्णो’ इत्यादि । तस्य गच्छ कोणि-
कस्य राज्ञ ‘एक्के’ एक ‘पुरिसे’ पुरुष ‘विउलकयवित्तिण्’ विपुलकृतवृत्तिकः—
विपुला=अधिका इति वृत्तिराजीविका यस्मै स विपुलकृतवृत्तिक—उत्तप्रचुरजोषिक, ‘भगवओ’
भगवत मर्नविधैर्धर्यगतो महावीरस्य ‘पवित्तिवाउए’ प्रवृत्तिव्यापृत=प्रवृत्तौ—वार्ताया
रुपा मुनो विदित्य क प्राप्ते नगरे वा समवसृत ‘एतद्रूपायाम्—न्यापृत नियुक्त
‘भगवओ’ भगवत—यी महावीरस्य ‘तद्देवसियं’ तद्देवसिकी—तस्मिन् दिवसे भवा
तद्देवसिकी—ताम्, अर्थात् अस्मिन् दिवसेऽस्मान्नगरात् विहृत्याऽस्मिन्नगरे भगवान्
विगच्छतं, इत्येतद्रूपा द्विप्रसम्पन्धिनी ‘पवित्ति’, प्रवृत्ति वार्ता ‘णिवेदेड’ निवेदयति—
कथयतीति ॥ सू० १३ ॥

जो भगवत (त्रेणिक) का पुन था, अनुरक्त होतो हुई, उसके कोषित होने पर
भी प्रतिक्रमता से विमुक्त बन, इच्छित शब्द, स्पर्श, रस, रूप एवं गन्धरूप पाचां
इन्द्रियों के मानवोचित प्रधान कामभोगों का अनुभव करती हुई आनन्द से, अपना
समय व्यतान करती था ॥ सू० १२ ॥

‘तस्स णं कोणियस्स’ इत्यादि,

[तस्स णं कोणियस्स रण्णो] उन कोणिक राजा के यहा [एक्के पुरिसे]
एक ऐसा पुरुष नियुक्त था जिसे राजा की ओर से [विउलकयवित्तिण्] बड़ी

इष्टे सह—करिस—रस—रुच—गवे पंचविहं माणुस्सए कामभोए पच्चणुभयमाणी
विहरइ) ओ शाष्ठी पोताना प्रियपति कैखिड राण के ओ ललभार (श्रेखिड)
ने पुत्र इतो तेनी साथे अनुरक्त (प्रेमाण) इती राण कोषित थाय तो
यथु ते प्रतिक्रमताथी विमुण्ण इती, ओटवे अनुकृण इती मनने गमे तेवा
शुद्ध, अर्थ, रस, रूप तेम ओ गच्छप पाय धद्रिओना मानवोचित
मुष्य कामभोगोने अनुभव करनी आनन्दथी पोतानो समय व्यतीत
करनी इती (सू १२)

“तस्स णं कोणियस्स” इत्यादि

(तस्स णं कोणियस्स रण्णो) ते कैखिड राणने त्या [एक्के पुरिसे] ओड

मूलम्—तस्स णं पुरिसस्स वहवे अण्णे पुरिसा दिण्ण-
भइ-भत्त-वेयणा भगवओ पवित्तिवाउया भगवओ तद्देवसिअं
पवित्तिं णिवेदेति ॥ सू० १४ ॥

टीका—तस्स ण पुरिसस्स' इत्यादि, तस्य भगवद्वाताहरस्य पुरुषस्य
मृत्यस्य 'वहवे अण्णे पुरिसा' वहवोऽय्ये पुरुषा—राजसेवका, ते कादृशा ' इत्याह—
'दिण्ण-भइ-भत्त-वेयणा' दत्त-भृति-भक्त-वेतना—भृति स्वर्णमुद्रादिरूपा, भक्तम—

आजीविका मिलती थी। (भगवओ पवित्तिवाउए) “ भगवान्
कन कहा से विहार कर किस ग्राम में समवसृत हुण है ” इम समाचार को
जानने के लिये वह नियुक्त किया गया था। तथा [भगवओ तद्देवसिय पवित्ति
णिवेदेइ] भगवान् के दैनिक वृत्तान्त का भी—अर्थात्—आजदिन भगवान् इस नगर
से विहार कर इस नगर मे विराज रहे हैं इस प्रकार की उनकी दैनिक विहारवार्ता
का भी ध्यान रखता था। यह वृत्तान्त राजा के निकट निवेदन करता था ॥ सू० १३ ॥

‘ तस्स णं पुरिसस्स वहवे ’ इत्यादि,

[तस्स णं पुरिसस्स वहवे अण्णे पुरिसा] इम पुरुष के हाथ के नीचे
और भी बहुत से अनेक पुरुष कि जिन्हे (दिण्ण-भइ-भत्त-वेयणा) इसकी
तरफ से सुवर्णमुद्रादिरूप भृति, एव अन्नादिरूप भक्त इस प्रकार दोनों तरह का

अये। पुरुष राजसेवा करते थे जेने गण तदर्थी (विउलकयवित्तिए) मोटी
आलुविका भण्णती हुती [भगवओ पवित्तिवाउए] “ भगवान् इत्यारे
कथाथी विहार करी कथा गामभा समवसृत थया छे ” अे समाचार जलुवाने
भाटे तेनी निभलुक्क करेदी हुती तथा [भगवओ तद्देवसिय पवित्ति णिवेदेइ]
भगवान् के दैनिक वृत्तान्त—अर्थात्—आजदिन भगवान् आ नगरथी विहार
करने आ नगरभा भिगने छे अे प्रचारनी तेनी दैनिक (द्विस मण्ठी)
विहारवार्ता तु पण्ण ध्यान राखतो हुतो आ वृत्तान्त राजनी पासे निवेदन
करतो हुतो (सू १३)

“ तस्स ण पुरिसस्स वहवे ’ इत्यादि

(तस्स ण पुरिसस्स वहवे अण्णे पुरिसा) ते पुरुषना हाथ नीचे भीन
पण्ण धया पुरुषो हुता जेभने (दिण्ण-भइ-भत्त-वेयणा) तेना तदर्थी
सुवर्णमुद्रादिरूप भृति तेभण्ण अन्नादिरूप भक्त—पोराक अेभण्णने प्रकारनु वेतन

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं कोणिए राया भंभसारपुत्ते वाहिरियाए उवट्टाणसालाए अणेग-गणणायग-दंड-

अनरूपम्—इदं द्वित्रिभू वेतन—जापिका ढत्त येभ्य, ते दत्तमृत्ति—भक्तप्रेतना 'भगवओ पवित्तिवाउ-भा'—भगवत् प्रवृत्तिव्यावृत्ता—भगवद्विहारममवसरगाडिवृत्तान्त—निवेदन नियुक्ता, भगवत्तस्तदैवमिक्कां प्रवृत्तिं निवेदयन्ति—कथयन्तानि यावत्, नद्येकेन मृत्येन तादृगप्रतिप्रध्विहारिणो भगवत् विहारममवसरणयातानिवेदन मुलभम्—इति हेतोः कार्यं बहवो नियुक्ता इति भाव ॥ सू० १४ ॥

टीका—'तेण कालेण तेणं समएणं' इत्यादि, तस्मिन् काले तस्मिन् समये 'कोणिए राया भंभसारपुत्ते' कोणिको राजा भंभसारपुत्र—अयं कोणिको नृपो भंभसारस्य—श्रेणिकपरनामयता नृपस्य पुत्र, 'वाहिरियाए उवट्टाणसालाए' वाद्यायामुपस्थानशालायाम—जाये ममागृह—'अणेग-गणणायग-दंडणायग-राई-सर-तलवर-माड-

वेतन दिया जाता था। (भगवओ) वे भगवान् महावीर के (पवित्तिवाउया) विहार और ममवसरण आदि वृत्तान्त का निवेदन करन के लिये नियुक्त थे, [भगवओ तद्देसिय पवित्तिं णिवेदंति] इसलिये वे भगवान् की विहारमवधी एव समवसरणमयथा याता प्रतिदिन आकर के निवेदन करते थे ॥ सू० १४ ॥

'तेण कालेण तेण समएण' इत्यादि।

(तेण कालेण तेण समएण) उस काल उस समय (कोणिए राया भंभसारपुत्ते) भंभसार—श्रेणिक नृप के पुत्र कोणिक राजा (वाहिरियाए उवट्टाणसालाए) वाह्य की उपस्थान शाला में (अणेग—गणणायग—दंडणायग—

(पणार) आषवाभा आवतु (भगवओ) तेथो लगवान भडावीरना (पवित्तिवाउया) विहार अने ममवसरणु आदि वृत्तान्तु निवेदन उरवा भाटे सजेला हुता (भगवओ तद्देसिय पवित्तिं णिवेदंति) तेथी तेथो लगवाननी विहार मवधी तेमज ममवसरणु मवधी वार्ता दसरेज आवीने निवेदन उस्ता हुता (सू १४)

“ तेण कालेण तेण समएण ” इत्यादि.

(तेण कालेण तेण समएण) ते काल ते समये (कोणिए राया भंभसारपुत्ते) भंभसार—श्रेणिक राजाना पुत्र कोणिक राजा (वाहिरियाए उवट्टाणसालाए) विहारनी उपस्थान शालाभा (अणेग—गणणायग—दंडणायग—राई—सर—तलवर—माड-

णायग-राई-सर-तलवर-माडविय-कोडुविय-मंति-महामंति-गणग-
दोवारिय-अमच्च-चेड-पीढमद्-नागर-नेगम-सेट्टि-सेणावड-सत्थ-
वाह-दूय-संधिवाल सद्धि संपरिवुडे विहरड ॥ सू० १५ ॥

विय-कोडुविय-मंति-महामंति-गणग-दोवारिय-अमच्च-चेड-पीढमद्-नागर-नेगम-सेट्टि-
सेणावड-सत्थवाह-दूय-संधिवाल सद्धि' अनेक-गणनायक-दण्डनायक-राजेस्वर-तलवर-माड-
म्बिक-कौटुम्बिक-मन्त्रि-महामन्त्रि-गणक-दौवारिका-ऽमात्य-चेट-पीठमर्द-नागर-नेगम-श्रेष्ठि-सेना-
पति-सार्थवाह-दूत-संधिपालै सार्थम्, तत्र-अनेके ये गणनायका =समुत्पन्ने प्रयोजने ये गण
कुर्वन्ति ते गणनायका, गणप्रधाना इत्यर्थ, दण्डनायका-दण्डनातार, राजान-मण्डलाऽधिपा,
ईश्वरा-ऐश्वर्यसम्पन्ना युवराजा, तलवरा-तल-सौवर्णपद्मबन्ध, परितुष्टनरपतिप्रदत्तेन तेन
तलेन वरा, तलवरा-सन्तुष्टभूपप्रदत्तपद्मबन्धसुगोभितराजकन्या इत्यर्थ, 'माडविय'
माडम्बिका, ग्रामपञ्चशतीपतय इत्यर्थ, यद्वा-सार्थकोग-दूयपरिमितप्रान्तरैर्विच्छिद्य विच्छिद्य
स्थिताना ग्रामागामधिपतय, कोडुविय-कौटुम्बिका-बहुकुटुम्बभरणतलवरा, मन्त्रिण-

राई-सर-तलवर-माडविय-कोडुविय-मंति-महामंति-गणग-दोवारिय-अमच्च-चेड-
पीढमद्-नागर-नेगम-सेट्टि-सेणावड-सत्थवाह-दूय-संधिवाल सद्धि संपरिवुडे
विहरड) अनेक गणनायकों से-प्रयोजन उपस्थित होने पर जो गण तैयार करते
थे ऐसे लोगों से, दण्डनायकों से, माण्डलिक राजाओं से, ईश्वरों से=युवराजों से,
तलवरों से=राजाने सन्तुष्ट होकर जिन लोगों को सुवर्णका पद्मबन्ध दिया, उस पद्मबन्ध
से सुशोभित राजातुल्य पुरुषों से, माडम्बिकों से=पाँच सौ ग्रामों के अधिपतियों से,
अथवा-ढाई ढाई कोगका अन्तर जिन दो गामों के बीच में होता है ऐसे अनेक
गामों के अधिपतियों से, कौटुम्बिकों से=कुटुम्ब के भरण-पोषण में तलवर व्यक्तियों से

विय-कोडुविय-मंति-महामंति-गणग-दोवारिय-अमच्च-चेड-पीढमद्-नागर-नेगम-
सेट्टि-सेणावड-सत्थवाह-दूय-संधिवाल सद्धि संपरिवुडे विहरड) अनेक गणनाय-
कोधी=प्रयोजन उपस्थित थाय त्पारे के गण तैयार करता करता
तेवा लोकोधी, दण्डनायकोधी, माडलिक राजाओधी, ईश्वरओधी=युवराजओधी,
तलवरओधी=राजाने सन्तुष्ट थधने के लोकोने सुवर्णने पद्मबन्ध आप्थे
कोध ते पद्मबन्ध सुशोभित राजा केवा पुत्रोधी, माडम्बिकोधी=पाँचसौ
गामना अधिपतिओधी अथवा अही अही गाडुत अतर के के गामोनी
पन्थे होय ओषा अनेक गामोना अधिपतिओधी, कौटुम्बिकोधी=कुटुम्बना
परिवुडे पोषण तलवर व्यक्तिओधी, मात्रओधी,=कर्तव्यनी समीक्षा (निर्णय)

कर्तव्यालोचन मन्त्र , सोऽस्यास्तीति मन्त्री, बहुमस्यका मन्त्रिण , विचारकारका इत्यर्थे ,
 महामन्त्रिण—मन्त्रिमण्डलप्रधाना—सूक्ष्मात्मिसूक्ष्मविचारका इत्यर्थे , गणग—गणका—ज्योति-
 पिका—शुभाशुभफलप्रदेयकणि , ' दौवारिय ' दौवारिका द्वारपाला , अमात्या—राज्य-
 हितचिन्तका—अष्टादशाना प्रकृतीना—नागरिकश्रेणीना महत्तरा इति यावत् , चेटा
 दासा , पीठमर्दा—अङ्गमवाहका—आमनसमीपवर्तिन—सेनका , नागरा =नगरवासिनो
 नागरिका , नैगमा—पौरवणिज , श्रेष्ठिन—लक्ष्मीकृपामूचकपद्मालकृतका प्रधानव्यवहारिण
 ' सेणावृद्ध ' सेनापतय—चतुरङ्गसेनायाश्चतुर्विंश अधिपा , सार्थवाहा—सार्थ समानव्यव-
 सायिसमूह वाहयन्ति योगक्षेमाभ्या रक्षन्ति इति अथात्—समूहन दूरदेश गवा क्रय-
 विक्रयकर्तार । दूता—मन्देशहग , सन्धिपाला—युध्यमानेन राजा कृत सन्धि त पाल-
 यन्तीति सन्धिपाला । एतेषा द्वन्द्व विग्रय तैर्मगनायकादिमन्धिपालाऽन्तै सार्द्धम् , अत्र
 आर्षणात् सन्धिपालाशब्दोत्तरवर्तितृतीयाभिभक्त्ये लोप , ' सपरिवृढे ' सम्परिवृत—स-
 सम्यक्—समन्तद्विष्टित ' विहरड ' विहरति—सुखेन काल नयति स्मेति भाव ॥ सू० १५ ॥

मन्त्रियों से=कर्तव्य की समीक्षा करनेवाले विचारवान पुरुषों से, महामन्त्रियों से=
 सत्मात्मिसूक्ष्मविचारशील मन्त्रिमण्डल के प्रधानों से, गणकों से=शुभ, अशुभ फल
 दा निवेदन करनेवाले ज्योतिषियों से, दौवारिकों से=द्वारपालों से, अमात्यों से=राज्य
 के हित चिन्तकों से अर्थात् अठारह प्रकृतियों—जातियों के मुखियों से, चेटों से=दासों
 से, पीठमर्दकों से=अङ्गमर्दकों से अर्थात् समीप में रहनेवाले सेनकों से, नागरों से=
 नागरिक पुरुषों से, नैगमों से=पौरवणिग्जनों से, श्रेष्ठियों से=लक्ष्मी की कृपा का
 सूचक पद से सुशोभित मुख्य मुख्य सेठों से, सेनापतियों से=चतुरङ्गिणी सेना के
 नायकों से, सार्थवाहों से, दूतों से, तथा—सन्धिपालों से=गज्जु राजाओं के साथ सन्धि
 करने के लिये नियुक्त अधिकारी पुरुषों से परिवृत होकर बैठे हुए थे ॥ सू० १५ ॥

करनारा विद्यावान् पुत्रोऽथी, मङ्गलमन्त्रियोऽथी=सूक्ष्मात्मिसूक्ष्म विचारशील मन्त्रि-
 म उल्लाना प्रधानोऽथी, गणुकोऽथी=शुभ अशुभ इलाना निवेदन करवावाणा ज्यो-
 तिषियोऽथी, दौवारिकोऽथी=द्वारपालोऽथी, अमात्योऽथी,=राज्यहितचिन्तकोऽथी अर्थात्
 अठार प्रकृतियो—जातियोना मुखियोऽथी, चेटोऽथी=दासोऽथी, पीठमर्दकोऽथी-
 अङ्गमर्दकोऽथी अर्थात् पाससे रहनेवावाणा (लुब्धुगीया) सेवकोऽथी, नागरोऽथी=
 नागरिक पुत्रोऽथी, नैगमोऽथी=पौर वणिज जनोऽथी, श्रेष्ठियोऽथी=लक्ष्मीनी कृपाना
 सूचक पदोऽथी सुशोभित मुख्य मुख्य सेठोऽथी, सेनापतियोऽथी=चतुरङ्गिणी सेनाना
 नायकोऽथी, सार्थवाहोऽथी, इतोऽथी तथा मधिपाहोऽथी=शत्रु राजयोनी साथे सधि
 करने भाटे निमग्नोऽथी करेला अधिकारी पुत्रोऽथी वी टणाधने जेका हुता (सू. १५)

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महा-

टीका—‘तेण कालेण’ इत्यादि । अपुना चरमतीर्थकर भगवन्त श्रीमहावीरस्वामिन वर्णयति—‘तेण’ इति सूत्रेण । स गच्छु भगवान् वचनागोचरगुणनिकररुचिरो महावीरोऽप्रतिबन्धविहारक्रमेण पूर्णभद्रमुद्यान समवमर्तुकाम चम्पाया नगर्या समीप ग्राममुपागत इति वर्णयते ‘तेण कालेण तेण समएण’ इत्यादि । तस्मिन् खलु काले=चतुर्थारकल्क्षणे तस्मिन् समये=कोणिकभूपगामनसमये, ‘समणे’ श्रमण—श्रान्थति—तीव्रतपसि यतते, इति श्रमण । ‘भगव’ भगवान्—समप्रैश्वर्यसम्पन्न, ‘महावीरे’ महावीर—महावीरनाम्ना प्रसिद्धश्वरमतीर्थकर, गुणनिष्पन्नमिद नाम, अधुना महावीरगन्ध-व्युत्पत्तिमाह-विशेषतः शिपपदमियर्ति—गच्छतीति वीर अथवा विदारयति

‘तेण कालेण तेण समएण समणे भगवं महावीरे’ इत्यादि,

अत्र चरमतीर्थकर भगवान महावीर स्वामी का “तेण कालेण” इत्यादि १६ वे सूत्रद्वारा वर्णन किया जाता है । इसमें सर्वप्रथम वचन—अगोचर-प्रगस्त गुणों के समूह से विराजित वे प्रभु अप्रतिबन्ध विहार करते हुए पूर्णभद्र नाम के उद्यान में पधारने के निमित्त चपानगरी के समीपवता ग्राम में पधारे । (तेण कालेण तेण समएण) अवसर्पिणी कालके चतुर्थ आरे के उस समयमें कि जिस समय में कोणिक राजा गज्य करते थे, (समणे) श्रमण—तीव्र तपस्या करनेवाले (भगव) भगवान—समप्र ऐश्वर्य गपन्न (महावीरे) महावीर—जो अपुन—रागमनरूप से शिपपद को प्राप्त करते हैं वे वीर हैं, कर्मशत्रुओं का जो विदारण

“तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे” इत्यादि.

इसमें अरभ तीर्थकर भगवान महावीर वाभीतु वर्णन “तेण कालेण” इत्यादि १६वां सूत्रद्वारा उरवाभा आवे के तेभा सर्वथी प्रथम वचन अगोचर-प्रशस्त गुणाना नभूद्धथी विराजमान ते प्रभु अप्रतिबन्ध विहार करता करता पूष्यलद्र नामना उद्यानभा पधारवाना निमित्ते चपानगरीना नलुडना गामभा पधाया (तेण कालेण तेण समएण) अवसर्पिणी उद्वाना योथा आराना ते समये के ले समयभा डोषिड रान्त रान्त करता हुता, (समणे) श्रमण—तीव्र तपस्या उरवावाणा (भगव) भगवान-समप्र ऐश्वर्यसपन्न (महावीरे) महावीर—जे अपुनरागमन-इपथी शिव पदने प्राप्त उरे छे ते वीर छे, कर्मशत्रुओंना ले नाश उरे छे ते वीर छे.

वीरे आङ्गरे तित्थगरे सयंसंबुद्धे पुरिसुत्तमे पुरिससीहे पुरिस-

रिपुमयमिति वीर । यद्वा—अनन्याऽनुभूतमहातप त्रिया विगजते इति वीर, यद्वा जन्तुग-
मोहमहापलनिर्लनार्यमनन्ततपोवीर्यं -यापारयति इति तत्र सामान्यजिन, तदपेक्षया महाश्रासौ
वार महावीर । महत्प्रगुपयुक्तवीरमस्य त्रिगुणपरिपहोपमर्गनिपातेऽपि निश्चलत्वात् जन्मममरे
निब्रह्मण्डेन मेगेधालनाच्च । 'आङ्गरे' आदिकर-आदौ प्रथमत स्वगामनापेक्षया श्रुतचारित्रधर्म-
लक्षण कार्यं करोति तच्छील आदिकर । 'तित्थगरे' तीर्थकर-तीर्थते-पार्यते ससारमोहमहोद-

करते हैं—वे वीर हैं, जो अनन्य सदृश तपस्या की शोभा से विगजमान होते हैं वे
वीर हैं, निहाने अन्तर्ग-अन्त स्थित मोहके महाबल का नाश करने के लिये अपने
अनन्त तप वार्यका प्रयोग किया है—वे वीर हैं । इस प्रकार के वीरों—सामान्य जिनांकी
अपेक्षा भगवान महत्व गुणों से युक्त हैं, इसलिये वे महावीर हैं । अनेक परिपह
उपमर्ग उपस्थित होने पर भी वे निश्चल थे, जन्म समय में अपने अगूठे से
मेरु को हिलया था यही इनका महत्व है । ऐसे अन्तिम तीर्थकर महावीर प्रमु
जो इन निम्नलिखित विशेषणों से सज्ज हैं वे चपानगरी के समीपस्थ ग्राममें पशगे,
इस प्रकार इस सूत्रका सबन ल्याना चाहिये । वे महावीर प्रमु कैसे हैं ' इस
वात को नीचे लिखे हुए विशेषणों द्वारा मन्त्रकार स्पष्ट करते हैं । वे प्रमु (आङ्-
गरे) आदिकर—स्वशासन की अपेक्षा श्रुतचारित्ररूप धर्म की आदि करने वाले हैं,
(तित्थगरे) तीर्थकर हैं—जिसको प्राप्त कर जीव ससाररूपी महासमुद्र पार करते हैं

वे अनन्य-मदश तपस्यानी शोभावडे विशालमान छे ते वीर छे वेओओ
अतरग-अत स्थित मोहना मडाणलने नाश डवाने भाटे पोताना अनत
तपवीर्य (भल)ने प्रयोग ठ्यो छे ते वीर छे ओ प्रकाग्ना वीरानी—सामान्य
एनोनी अपेक्षा लगवान महत्त्व शुद्धोथी युक्त छे, तेथी तेओ मडावीर
वे अनेक पचीपड उपमर्ग उपस्थित थता पणु तेओ निश्चल गडेता, जन्म
ममये पोताना अशुभावडे भेड पर्वतने डलाओओ डतो ओओ तेमनु महत्त्व छे
ओवा अतिम तीर्थकर मडावीर प्रमु डे वे निम्न लिखित विशेषणोथी
सज्ज छे ते चपानगरीना नलुडना गामभा पधायो ओ प्रकडे आ सूत्रने।
मअध धटावयो ओओओ ते मडावीर प्रमु डेवा छे ते वातने नीचे लखेला
विशेषणोडारा सत्रडार स्पष्ट कडे वे ते प्रमु (आङ्गरे) आदिकर—स्वशास-
ननी अपेक्षा श्रुतचारित्ररूप धर्मने आदि करवावाणा छे, (तित्थगरे) तीर्थ-

ધિર્યેન તત્ તીર્થમ્—ચતુર્વિધ સદ્ધ, ત્ત્વરગગીલત્રાત તીર્થકા । ‘સયસત્તુદ્ધે’ સ્વયસમ્બુદ્ધ — સ્વય પરોપદેશમન્ત્રેણ સમ્બુદ્ધ = સમ્યક્તયા વોધ પ્રાપ્ત — સ્વયસમ્બુદ્ધ । ‘પુરિસુત્તમે’ પુરુપોત્તમ — પુરુપેપુ ઉત્તમ — શ્રેષ્ઠ — જાનાધનન્તગુગવત્વાત્પુરુપોત્તમ । ‘પુરિસસીહે’ પુરુપસિંહ — પુરુપેપુ સિંહ — રાગદ્વેષાદિકાન્નુપરાજયે દ્વષ્ટાડ્ઠમુતપરાક્રમત્વાત્ ઇતિ, યદ્વા — પુરુપ સિંહ ઇવ ઇતિ પુરુપસિંહ । ‘પુરિસવરપુડરીણ’ પુરુપવરપુણ્ડરીકમ્ — પુણ્ડરીક — ધવલ-કમલ, વરશ્ચ તત્પુણ્ડરીક વરપુણ્ડરીક = ધવલકમલપ્રધાન, પુરુપો વરપુણ્ડરીકમિવેત્યુપમિ-તસમાસે પુરુપવરપુણ્ડરીકમ્, ભગવતો વરપુણ્ડરીકોપમા ચ ત્રિનિર્ગતાડ્ઠરિત્વાડ્ઠશુભમલીમસ-ત્વાત્ સર્વે શુભાનુભાવૈ પરિશુદ્ધત્વાચ, યદ્વા યથા પુણ્ડરીક પદ્માજ્ઞાતમપિ સલિલે વર્દિતમપિ ચોભયસમ્પન્થમપહાય નિર્લેપ જલોપરિ રમણીય સદૃશ્યતે નિજાનુપમગુણ-ગગવલેન સુરાસુર-નર-નિકર-શિરોવારણીયતયાડ્ઠતિમહનીય પરમસુરત્વાડ્ઠસ્પદશ્ચ ભવતિ

ऐसे चतुर्विध सधरूप तीर्थ के 'कर्ता' हैं (सयसतुद्धे) परोपदेश के बिना स्वयमेव वोध को प्राप्त हुए हैं, इसलिये स्वयसबुद्ध है, (पुरिसुत्तमे) ज्ञानादिक अनन्तशुद्ध गुणों की जागृति-विगिष्ट होने से पुरुषों में उत्तम है, (पुरिससीहे) रागद्वेषादिक शत्रुओं के पराजित करने में अद्वितीय-पराक्रम प्रदर्शित करने के कारण पुरुपसिंह है । (पुरिसवरपुडरीण) पुरुपवरपुडरीक-समस्त प्रकार की, मलिनता के अभाव से पुरुषों में श्रेष्ठ शुभ्र कमल जैसे हैं । यहा भगवान् को जो वरपुडरीक की उपमा दी गई है उसका भाव यह है कि जिस प्रकार कमल कीचड़ से उद्भूत होने पर एव जल में वर्द्धित होने पर भी इन दोनों (कीचड़ और जल) के सबध से रहित होकर निर्लेप होता है, जल से भिन्न होकर उसीमें गहता हुआ भी जैसे

કર છે જેને પ્રાપ્ત કરીને જીવ સસારરૂપી મહાસમુદ્ર પાર કરે છે એવા ચતુર્વિધ સધરૂપ તીર્થના કર્તા છે (સયસતુદ્ધે) પરોપદેશના વગર પોતાની મેળેજ બોધને પ્રાપ્ત કર્યો છે તેથી સ્વયસબુદ્ધ છે (પુરિસુત્તમે) જ્ઞાનાદિક અનન્ત શુદ્ધ શુભોની જાગૃતિ-વિગિષ્ટ હોવાથી પુરૂષોમા ઉત્તમ છે (પુરિસસીહે) રાગ દ્વેષાદિક શત્રુઓને પરાજિત કરવામા અદ્વિતીય પરાક્રમ બતાવવાના કારણથી પુરૂષ-સિંહ છે (પુરિસવરપુડરીણ) પુરૂષવરપુડરીક-સમસ્ત પ્રકારની મલિનતાના અભાવથી પુરૂષોમા શ્રેષ્ઠ શુભ્ર કમલ જેવા છે અહીં ભગવાનને જે વરપુડરીકની ઉપમા આપેલી છે તેના ભાવ એ છે કે જે પ્રકારે કમલ કીચડથી ઉત્પન્ન થાય છે તેમજ જલમા વધતુ જાય છે છતાં પણ એ બંને (કીચડ અને જલ) ના સબધથી રહિત થઈને નિરૂપ રહે છે જલથી જુદા

वरपुंडरीए पुरिसवरगधहृत्थी लोयुत्तमे लोगनाहे लोगहिए लोग-

तथाऽयं भगवान् कर्मपद्मजातो भोगाऽभोजद्वित सत्रापि निर्लेपस्तदुभयमतिवर्तते.
गुणसम्पदाऽऽसम्पदतया च केवलान्द्रिगुणभावात्सिद्धभयजनशिरोधार्यार्थो भवतीति ।
'पुरिसवरगधहृत्थी' पुरुषवरगन्धहृत्थी—गन्धयुक्तो हृत्थी गन्धहृत्थी वरश्चासौ गन्ध
हृत्थी वरगन्धहृत्थी पुरुषो वरगन्धहृत्थी—पुरुषवरगन्धहृत्थी, गन्धहृत्थिश्चक्षण यथा—

यस्य गन्ध समात्राय, पलायन्ते परं गजा ।

त गन्धहृत्थिन विद्यान्वृपतेविजयावहम् ॥ इति ॥

अत एव यथा गन्धहृत्थिगन्धमात्राय अन्ये गजा इतस्ततो द्रुत पलाय्य क्वापि
निर्लीयन्ते तद्वदचिन्यातिशयप्रभाववशाद् मिहरणसमारणगन्धसमन्वयगन्धतोऽपि—इति-

सुन्दर विग्रहा है और सुग्, अमुर एव नरो द्वारा अपन २ शिरफ धारण क्रिये जाने
से अतिमहनीय एव अयत्त प्रगमनीय होता है, उसीप्रकार प्रभु भी कर्मरूप पद्म से
उद्भूत होने पर एव भोगरूप जड में वर्द्धित होने पर भी इन दोनों से निर्लिप्त
ही है एव ज्ञानाद्रिगुणरूपी सम्पत्ति के स्थान होने से अर्थात् केवलज्ञानाद्रिक
गुणों से विशिष्ट होने से समस्त भव्यजनों द्वारा शिरोधार्य है । (पुरिसवर-
गधहृत्थी) भगवान् पुरुषों में गधहृत्थी जैसे हैं । जिमकी गध से अन्य गज दूर
भाग जायें उसका नाम गधहृत्थी है । यह हृत्थी जिम राजा के पास होता है वह
नियम से शत्रुओं के बीच में रहने पर भी विजयलक्ष्मी प्राप्त करता है । इमा
प्रकार प्रभु के निहार की गध से मा उस २ स्थान से उमर—मरकी आदि उपद्रव

रहीने पशु तेमाज रहेता छता जेभ सुहर लागे छे अने सुर, अमुर
तेमज मनुष्योकाश पोतपोताने भाये धारण करवाभा आवता अतिमहनीय
तेमज अत्यंत प्रशंसनीय अने छे, तेम प्रभु पशु ठर्मरूप पड (कीचड) थी
उत्पन्न थया छता तेमज लोगरूप जलमा वृद्धि पाभ्या छता पशु ओ
गन्धेथी निर्लेपज गडेला छे तेमज ज्ञानाद्रिक गुणरूपी संपत्तिरु स्थान
डोवाथी अर्थात् केवल ज्ञानाद्रिक गुणोथी विशिष्ट डोवाथी समस्त लघ्य लघो
द्वारा शिरोधार्य अनेला छे (पुरिसवरगधहृत्थी) लगवान् पुरुषोभा गधहृत्थी
जेवा छे, जेनी गधथी जीवत डोवाथीओ इर लागी जय तेतु नाम गधहृत्थी
छे आ डोवाथी जे सान्नी पासे डोवा छे ते नियमथी शत्रुओनी वचमा गडेवा
जाता पशु विजयलक्ष्मी प्राप्त करे छे ओवी ज गीते प्रभुना विहारनी गधथी पशु

उमर-मरकादय उपद्रवा द्राग् त्रिभु प्रद्वन्तीति, गन्धगजाश्रितराजम् भगवदाश्रितो
 भव्यगग सर्वदा विजयवान् भवतीति भवयुभयोर्युक्त सादृश्यम् । 'लोगुत्तमे'
 लोकोत्तम-लोकेषु=भव्यसमाजेषु उत्तम=उत्कृष्टतम, चतुर्विंशतिगयपञ्चविंशद्वाणीगुणो-
 पेतत्वात् । 'लोगनाहे' लोकनाथ-लोकाना=भव्याना नाथ=नेता-योगक्षेमकरत्वात् ।
 'लोगहिए' लोकहित-लोक=एकेन्द्रियादि सर्वप्रागिगगस्तस्मै हित-तद्रक्षोपाय-
 प्रदर्शकत्वात् । 'लोगपर्इवे' लोकप्रदीप-लोकस्य=भव्यजनसमुदायस्य प्रदीप, तन्मनो-
 ऽभिनविष्टानादिभिध्यापतम पटल्यपगमेन विशिष्टात्मतत्त्वप्रकाशकत्वात्, यथा प्रदीपस्य
 सकलजीवार्थं तुल्यप्रकाशकत्वेऽपि चक्षुष्मन्त एव तत्प्रकाशसुरमाजो भवन्ति न त्वन्धा-
 स्तथा भव्या एव भगवदनुभावसमुद्भूतपरमानन्दसन्दोहभाजो भवन्ति नाभव्या इति

भा इतस्तत भाग जाते है । एव भगवान का भक्तजन भी सर्वदा विजयशील रहा
 करते है । (लोगुत्तमे) चौतीस अतिगय और पैंतीस वाणीगुणों से युक्त होने
 के कारण भगवान् भव्यरूपी लोक मे उत्कृष्टतम है । (लोगनाहे) लोकों के
 अर्थात् भव्यों के योगक्षेम करनेवाले होने से भगवान् लोकनाथ हे ।
 (लोगहिए) सभी प्राणियों की रक्षा के उपाय निरखाने के कारण भगवान् लोकों
 के अर्थात् एकेन्द्रिय आदि समा प्राणियों के हितकारक हे । इसलिये वे लोकहित
 हे । (लोगपर्इवे) भगवान् लोगों के=भव्यों के मन म वसे हुए अनादिभिध्यात्व
 पुञ्ज को दूर कर विशिष्ट आत्मतत्त्व प्रकाशित करने के कारण लोकप्रदीप है ।
 जैसे-प्रदीप यद्यपि सभी जीवों के लिये तुल्यप्रकाश देने वाला है, तथापि नेत्रवान्
 मनुष्य ही उसके प्रकाश का आनन्द ले सकता है, उसी प्रकार भव्यलोग ही

ते ते स्थानभाथी उमर, भरडी-आदि उपद्रव पञ्च आभतेम लागी जाय छे, तेभज
 लगवानना लकतजनो पञ्च सर्वदा विजयशील रह्या करे छे (लोगुत्तमे) चैत्रीस
 अतिशयो अने पान्त्रीस वाणी युक्त होवाना कारखे लगवान् लव्यइथी
 दोउभा उत्कृष्टतम छे, (लोगनाहे) लोकाना अर्थात् लव्योना योगक्षेम करवा
 वाजा होवाथी लगवान् लोकनाथ छे (लोगहिए) तमाम प्राणीओनी रक्षाना
 उपाय अतावनार होवाना कारखे लगवान् लोकाना अर्थात् एकेन्द्रिय आदि
 तमाम प्राणीओना हितकारक छे ते भाटे लोकहित छे (लोगपर्इवे) लगवान्
 लोकाना-लव्य लवोना मनमा वसेला अनादि भिध्यात्वपुञ्जे हर करीने
 विशिष्ट आत्मतत्त्व प्रकाशित करनारा होवाना कारखे लोकप्रदीप छे जेभके
 प्रदीप जे के जधा लवोने भाटे समान प्रकाश आपवावाजो होय छे, तोपञ्च

पडैवे लोगपञ्जोयगरे अभयदए चक्रवुदए मग्गदए सरण-

प्रतिमोपयितु प्रदीपदृष्टान्त अनण्व लोकरूपेन भयाना प्रहणम् ।
 'लोगपञ्जोयगरे' लोकरूपयोनकर-लोकरूपेनात्र लोकरूपेते-दृश्यते केवललोकेन यथा-
 वस्थिततयेति युपत्या लोफालोकरूपयोर्ग्रहणम् तेन-लोकरूप-लोफालोकरूप-अण्वस्य
 मकरूपदार्थस्य प्रयोक्त-लोफालोकरूपयोनस्त-रुगेतीयेव जीणे लोफालोकरूपयोनकर
 सर्वलोकरूपकाशकरगती । ता जीने कर्त्तरि ट प्रथय । 'अभयदये' अभयदय-
 न भयम्-अभयम्, भयानामभावो वा-अभयम्-अनोमल-अण आमनोऽवस्थानियेपो
 मोक्षसाधनमृतमु कृष्टपैर्यमिति यावत्, दयते-ददाताति न्य अभयस्य दय
 अभयदय, यदा-अभया-भयरहिता-दया-सर्वजीवनद्व-प्रतिमोचनस्वरूपाऽनुकम्पा
 यस्य सोऽभयस्य । 'चक्रवुदये' चक्रुदय-चक्रुजान-निग्विन्वस्तुतपाऽनभा-कृतया

भगवान् के प्रभास-जनित परमानन्द के भागी होने हे, अभय्य नहा । (लोगपञ्जो-
 यगरे) भगवान् लोफालोकरूप-अण ममी पदार्थों के प्रकाशक है, इसलिये वे लोकरूप-
 योनकर है । (अभयदए) भगवान् अभयदय हे-आत्माकी अभोभपण्णिनि का ना
 अभय है । दूसरे शब्द में इसे मोक्षका साधनमृत उद्धृत धैर्य भी कहते हे । प्रभुम
 इसे प्रदान करते हे, अत वे अभयदय कह गये हे । अथवा भयरहित दया जिनके
 पास है वे अभयदय ह । भगवान् की दया समस्त जीवा को नरुटो से छुडान
 वाली होती है, इसलिये प्रभु अभयदय है । (चक्रवुदये) भगवान् चक्रुदय हे ।
 जिन प्रकार हरिणादि जगली जानवरों से युक्त वन में चोगे द्वारा दृष्ट गये और

नेत्रवाणे मनुष्य च तेना प्रकाशने आनन्द लक्ष शब्दे छे, ते प्रकारे च लक्ष्य
 बोध च भगवानना प्रभावजनित परमानन्दना लागी थाय छे, अलक्ष्य नहि
 (लोगपञ्जोयगरे) भगवान् बोधबोध लक्ष्य तमाम पदार्थोना प्रकाशक छे,
 तेथी तेओ बोधप्रदीप छे (अभयदये) भगवान् अलक्ष्यता छे आत्माना
 क्षोभरहितपञ्चानी पण्डितु नाम अलक्ष्य छे जीन शब्दमा तेने मोक्षना
 साधनमृत उद्धृत धैर्य पण्ड छे प्रभु तेने प्रदान उवावाणा छे
 तेथी तेओ अलक्ष्य छे अथवा लक्ष्यरहित दया नेनी पाये छे ते
 अलक्ष्य छे भगवाननी दया समस्त जीवोने नउठेथी छोडाववावाणी
 छे छे ते उद्धृथी प्रभु अभयदय छे (चक्रवुदये) भगवान् चक्रुदय छे
 ते प्रकारे हरिण आदि च गली जानवोथी युक्त वनमा योगेद्राग लूटवाम

ચક્ષુ સાદૃયાત્ તસ્ય દયો દાયકશ્ચન્નુર્દય, યથા હરિણાદિગરણ્યેઽરણ્યે લુપ્ટાક-
લુપ્તિતેમ્ય પટ્ટિકાદિદાનેન ચક્ષુષિ પિધાય હસ્તપાદાદિ વદ્ધ્વા તૈર્ગતૈ પાતિતેમ્ય કશ્ચિ-
ત્પટ્ટિકાઽપનોદેન ચક્ષુર્દ્વા માર્ગ પ્રદર્શયતીતિ તથા ભગવાનપિ ભવારણ્યે રાગદ્વેપલુપ્ટાક-
લુપ્તિતાઽઽમગુગધનેમ્યો દુરાપ્રહપટ્ટિકાઽઽચ્ચાદિતજ્ઞાનચન્નુમ્યો મિથ્યાત્વગતૈ પાતિતેમ્યસ્ત-
દપનયનપૂર્વક જ્ઞાનચક્ષુર્દ્વા મોક્ષમાર્ગ પ્રદર્શયતિ । એતદેવ પ્રકારાન્તરેગાઽઽહ ‘મગ્ગદ્દ’
માર્ગદય—સમ્યગ્સ્તનત્રયલક્ષણ ણિવપુરપથ, યદ્વા—વિગિષ્ટગુણસ્થાનપ્રાપક ક્ષયોપગમમાવો

આર્ષો કે ઊપર પટ્ટી વાધકર એવ હાય પૈર વાધકર સ્વઙ્કે મેં પટ્ટકે ગયે પ્રાગિયો
કો કોઈ દયાલુ સજ્જન ઉનકી આર્ષો કી પટ્ટી રોલ કર એવ ઉન્હેં સ્વઙ્કે સે નિકાલ
કર માર્ગ દિરસલાતા હૈ ઓર ઇસ અપેક્ષા જૈસે વહ ઉન્હે વ્યાવહારિકરૂપ સે ચક્ષુ કા
દાતા કહા જાતા હૈ ઁસી પ્રકાર ભગવાન્ મી ઇસ સસારરૂપ અરણ્ય મેં રાગદ્વેપ આદિ
ચોરોં દ્વારા જિનકા આત્મગુણરૂપી ધન હરણ ક્રિયા જા ચુકા હૈ એવ દુરાપ્રહરૂપી
પટ્ટી દ્વારા જિનકે જ્ઞાનરૂપી નેત્ર ઢકે હુએ હૈ તથા જો મિથ્યાત્વરૂપી સ્વઙ્કે મેં પડે
હૈ એસે પ્રાગિયો કો ઁસ મિથ્યાત્વરૂપી સ્વઙ્કે સે નિકાલકર જ્ઞાનરૂપી ચક્ષુ દેકર ઉન્હેં
મુક્તિમાર્ગ દિસલાતે હૈ, અત પ્રમુ ચક્ષુર્દય હૈ । ઇસી વાતકો પ્રકારાન્તર સે સૂત્રકાર
પુન પ્રદર્શિત કરતે હૈ—(મગ્ગદ્દ) વે પ્રમુ માર્ગદય હે—સમ્યગ્દર્શનાદિ સ્તનત્રય મુક્તિ
કા માર્ગ હૈ, અથવા વિગિષ્ટ ગુણસ્થાનોં કા પ્રાપક ક્ષયોપશમભાવ મી માર્ગ હૈ ।
પ્રમુ ઇસકે દાતા હૈ । (સરણદ્દ) કર્મરૂપી ગત્તુઓં સે વગીકૃત હોને કે કારણ

આવેલા અને આખોના ઉપર પટ્ટી બાધીને તેમજ હાથ પણ બાધીને ખાડામા
નાખી દેવામા આવેલા પ્રાણિઓને કોઈ દયાળુ સજ્જન તેમની આખોની
પટ્ટી ખોલીને તેમજ તેમને ખાડામાથી બહાર કાઢીને રસ્તો બતાવે છે અને
તે અપેક્ષાએ તે જેમ તેના વ્યાવહારિકરૂપથી ચક્ષુનો દાતા કહેવાય છે, તેજ
પ્રકારે ભગવાન પણ આ સસારરૂપ અરણ્યમા રાગદ્વેપ આદિ ચોરો દ્વારા
જેના આત્મશુણ્કરૂપી ધન હુણ્ક કરવામા આવી ચુકેલ છે તેમજ દુરાપ્રહરૂપી
પટ્ટીદ્વારા જેના જ્ઞાનરૂપી નેત્ર ઢાંકી દીધેલા છે તથા જે મિથ્યાત્વરૂપી ખાડામા
પડયા છે તેવા પ્રાણિઓને તે મિથ્યાત્વરૂપી ખાડામાથી કાઢીને જ્ઞાનરૂપી ચક્ષુ
આખીને તેમને મુક્તિમાર્ગ બતાવે છે તેથી પ્રભુ ચક્ષુર્દય છે આ વાતને
પ્રકારાન્તરથી સૂત્રકાર ઇન્દ્રીને પ્રદર્શિત કરે છે, (મગ્ગદ્દ) તેઓ (પ્રભુ) માર્ગ-
દય છે—સમ્યગ્દર્શનાદિ સ્તનત્રય મુક્તિનો માર્ગ છે અથવા વિગિષ્ટ શુણ્કસ્થાનોને
પ્રાપ્ત કરાવનાર ક્ષયોપશમભાવ પણ માર્ગ છે પ્રભુ તેનો દાતા છે (સરણ-

दए जीवदए वोहिदए धम्मदए धम्मदेसए धम्मनायए धम्म-

मार्ग, तस्य दय - दाता, 'सरणदए' शरणदय - शरण-परित्राण कर्मरिपुवगीकृततया व्याकुलाना प्राणिना रत्नस्थान वा तस्य दय । 'जीवदए' जीवदय - जीवेषु-एकेन्द्रियादिसमस्तप्राणिषु दया-सद्वटमोचनलक्षण यस्त्रेति, यद्वा-जीवन्ति मुनयो येन स जीव - म्यमजीवित तस्य दय । 'वोहिदए' बोधदय - बोधि - चिनप्रणीतधर्ममूलमृता तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणसम्यग्दर्शनरूपा तस्या दय । 'धम्मदए' धर्मदय - धर्म - दुर्गति-प्रपतजन्तुसरक्षणलक्षण धुनचाग्रिनामकस्तस्य दय । 'धम्मदेसए' धर्मदेशक - धर्म = प्राकृतिपादितलक्षणस्तस्य देशक = उपदेशक । 'धम्मनायए' धर्मनायक -

व्याकुल हुए प्राणियों को प्रभु निर्भय स्थान के प्रदायक हे, (जीवदए) भगवान् की दया केवल सजी पचेन्द्रिय जीवों तक ही सीमित (व्याप्त) नहीं है किन्तु एकेन्द्रिय से लेकर समस्त सजी अमजी पचेन्द्रिय प्राणियोंतक भी वह एकरस होकर वह रही है, इसलिये वे जीवदय हे । अथवा-मुनिजन जिम जीवनसे जीते हैं ऐसा जो सयमरूप जीवित है उसके प्रणता होने से प्रभुको जीवदय कहा गया है । (वोहिदए) भगवान् समकितरूपी बोधको देने वाले हैं । (धम्मदए) दुर्गति में गिरते हुए प्राणियोंको जो धारण अर्थात् रक्षण करे वह श्रुतचारिणात्मक धर्म ही धर्म है । भगवान् उस धर्मके दाता हैं । (धम्मदेसए) भगवान् उक्तस्वरूप धर्मके उपदेशक हैं । (धम्मनायए) भगवान् उस धर्मके नायक=नेता अर्थात् प्रभुस्थान हैं ।

दए) धर्मरूपी शत्रुघ्नोधी वश दशमेला डोवाना दारणे व्याकुल थयेला प्राणियोंने प्रभु निर्भय स्थानने प्रदायक छे (जीवदये) भगवान्नी दया देवल अनी पचेन्द्रिय एवो सुधी व व्याप्त (महाहित) नथी, परतु येडे-द्रियथी भाडीने नभन्त अनी अमनी पचेन्द्रिय प्राणीयो सुधी पणु तेयो येडग्म थर्धने वडे छे, ते भाटे तेयो एवदय छे अथवा मुनिजन नेवु एवन एवे छे तेवु अथमउप एवन ने छे तेना प्रदाता डोवावी प्रभुने एवदय ठडेला छे (वोहिये) भगवान् समकितरूपी बोधने देवावाणा छे (धम्मदए) दुर्गतिमा पडता प्राणियोंने उद्धार अर्थात् रक्षण करे ते श्रुतचारिणात्मक धर्म व धर्म छे भगवान् ते धर्मना दाता छे (धम्मदेसए) भगवाने उपर ठडेला स्वरूप धर्मना उपदेशक छे (धम्मनायए) भगवान् ते धर्मना नायक=नेता अर्थात् प्रभव-स्थान छे (धम्मसारही) भगवान् धर्मरूप

સારથી ધમ્મચરચાઉરત-ચક્કવટ્ટી દીવો તાણં સરણગઈ પહટ્ટા

ધર્મસ્ય નાયક = નેતા પ્રમુખ इति यावत् । ‘ધમ્મસારથી’ ધર્મમાગયિ - ધર્મમ્ય સાગયિ, ભગવતિ સારથિત્વાગેપેણ ધર્મે રથ્વારોપો - ય-યત इति પરમ્પરિતરૂપકાલદ્વારસ્તસ્માદ્ યથા સારથી રથદ્વારા તત્સ્થમન્વનોન સુગ્ધપૂર્વકમર્મીષ્ટ સ્થાન નયતિ ઉન્માર્ગગમનાદિતશ્ચ પ્રતિરુણદ્ધિ તથા ભગવાન ધર્મદ્વાગ મોક્ષસ્થાનમિતિ ભાવ । ‘ધમ્મચર-ચાઉરત-ચક્કવટ્ટી’ ધર્મચરચાતુરન્તચક્રવર્તા-દાન-ગીલ-તપો-ભાવે ચતસૃણા નરકાદિગતાના ચતુર્ણાં વા કષાયાણામન્તો નાશો યસ્માત્, અથવા-ચતસ્રો ગતાશ્ચતુર કષાયાન્ વાડન્તયતિ નાશયતતિ, યદ્વા-ચતુર્ભિર્દાનગીલતપોભાવૈ કૃત્વાડન્તો રમ્ધોડયવા ચવારો દાનાદ્યોડન્તા-અવયવા

(ધમ્મસારથી) ભગવાન્ ધર્મરૂપ રથકા સચાલન કરનેવાલે હૈં । ભગવાનમે સારથિવકા આરોપ કરનેસે ધર્મમે રથવકા આરોપ વ્યક્તિત હોતા હૈ, ઇસલિયે યહાં પરમ્પરિતરૂપક અલકાર સમજના ચાહિયે । ઇસકા અભિપ્રાય યહ હે કિ, જૈસે સાગથી રથદ્વારા રથ પર બેઠે હુષ્ પયિકોંકો સુગ્ધપૂર્વક ડનકે અમીષ્ટ સ્થાનમે પહુંચાતા હૈ, ઉન્માર્ગગમન આદિસે ડનકો રોકના હૈ, ડસી પ્રકાર ભગવાન મો ધર્મરૂપ રથમેં ભવ્ય પ્રાગિયોંકો વૈઠાકર ડસકે દ્વારા ડનહે ડનકા અમીષ્ટ મોક્ષ સ્થાનતક સુગ્ધપૂર્વક પહુંચા દેતે હૈં ઓર ડનહે ડનમાર્ગસે રોકતે હૈ । ઇસલિયે ભગવાન્ ધર્મસારથિ કહે ગયે હૈ । (ધમ્મચર-ચાઉરતચક્કવટ્ટી) દાન, ગાલ, તપ, ઇવ ભાવ ડન ધર્મકે જિન ચાર પાયોં દ્વારા ચાર નરકાદિ ગતિયાકા અથવા ચાર ક્રોધાદિ કષાયકા નાશ હોતા હૈ, અથવા-ચાર ગતિયાંકા ઇવ ચાર કષાયકા જો નાશ કરતા હૈ, અથવા દાન, ગીલ, તપ ઇવ

રથના સચાલન કરવાવાળા છે ભગવાનમા સારથિત્વનો આરોપ કરવાથી ધર્મમા રથત્વનો આરોપ વ્યક્તિ (પ્રગટ) થાય છે તેથી અહીં પર પરિતરૂપક અલકાર સમજવો જોઈએ તેનો અભિપ્રાય એ છે કે જેમ સારથી રથ દ્વારા રથ પર બેઠા બેઠા પયિકોને સુગ્ધપૂર્વક તેના અભીષ્ટ સ્થાને પહોંચાડે છે, આઠા-અવળા માર્ગથી તેને રોકે છે, તેજ પ્રકારે ભગવાન પણ ધર્મરૂપ રથમા ભવ્ય પ્રાણિઓને જેમહીને તે દ્વારા તેમને તેમના અભીષ્ટ મોક્ષ સ્થાન-સુધી સુગ્ધપૂર્વક પહોંચાડી દે છે અને તેમને જોટા માર્ગથી રોકે છે આથી ભગવાન ધર્મસારથિ કહેવાય છે (ધમ્મચરચાઉરતચક્કવટ્ટી) દાન, ગીલ, તપ, તેમજ ભાવ એ ધર્મના જે ચાર પાયો છે તે વડે ચાર નરકાદિ ગતિઓનો અથવા ચાર કષાયોનો નાશ થાય છે અથવા ચાર ગતિઓનો તેમજ ચાર

यस्य, यद्वा-चवाणि दानादीनि अन्तानि स्वरूपाणि यस्य, 'अन्तोऽवयवे स्वरूपे च'-इति
हमचन्द्र । स चतुरन्त म एव स्वार्थिके प्रजाधणि चातुरन्त, चातुरन्त एव चक्र
जन्मजरामरणोच्छेदकत्वेन चक्रतुल्यमान, वरञ्च तत्-चातुरन्तचक्र वरचातुरन्तचक्रम्,
वरपदेन राजचक्रापेक्षयाऽस्य श्रेष्ठव व्ययते लोकरयसाधकत्वात्, धर्म एव वरचातुर-
न्तचक्र धर्मवत्चातुरन्तचक्र तादृशस्य धर्माऽतिरिक्तस्यासम्भवात् । अताएव मौगनादि-
धमाभासनिगम . तेषा तात्त्विकार्यप्रतिपादकत्वाभावेन श्रेष्ठत्वाभावात्, धर्मवत्चातुरन्त-
चक्रेण वर्तितु शील यस्येति धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती, चक्रवर्त्तिपदेन पट्टखण्डाधिपति-
सादृश्य व्ययते, तथाहि-चचार-उत्तरदिशि हिमवान् उपदिशु चोपाधिभेदेन ममुद्रा
अता सीमानस्तेषु स्वामिगेन भवध्रातुरन्त, चक्रेण-रत्नभूत-प्रहरणविशेषसदृशेन
चारिप्रत्नेन वर्तितु शील यस्य स चक्रवर्ती, चातुरन्तधासौ चक्रवर्ती च चातुरन्तचक्रवर्ती,

भाव इन चारको लंकार जो रम्य-श्रेष्ठ है, अथवा-दानादिक चार जिसके अवयव है,
अथवा-दानादिक चार जिसके स्वरूप है, वह चतुरन्त है, चतुरन्त शब्दसे स्वार्थमें
अणु प्रत्यय करने पर "चातुरन्त" बन जाता है, चातुरन्तही जन्म, जरा और
मरणका उच्छेदक होनेसे एक चक्र है, इसे वर शब्दके साथ संबधित करने पर
"वरचातुरन्तचक्र" ऐसा पद बन जाता है, वर पद इस चातुरन्तचक्रको राज-
चक्रका अपेक्षा श्रेष्ठ प्रकट करनेके लिये दिया गया है । राजचक्र तो केवल इस
लोकराही साधक होता है तब कि यह चातुरन्तचक्र इहलोक और परलोक इन दोनों
लोकोका साधक माना गया है । अब इस "वरचातुरन्तचक्र" पदको धर्मके साथ
मिलाने पर "धर्मवरचातुरन्तचक्र" इस प्रकारका पद निष्पन्न हो जाता है,

कथायोनो ने नाश करे छे अथवा दान शील, तब तेभज लाव ओ यारने
लधने ने रम्य-श्रेष्ठ छे अथवा दानादिक यार नेना अवयवो छे अथवा
दानादिक यार नेनु स्वरूप छे ते यतुरन्त छे यतुरन्त शब्दधी स्वार्थभा
अणु प्रत्यय क्त्वाधी यातुरन्त भने छे यातुरन्तज जन्म जरा भने मणुने
नाग जन्मा उपाधी यक छे, तेने वर शब्दनी साथे जोडवाधी 'वरयातु-
रन्तयक' ओलु पद भनी गथ छे वर पद या यातुरन्तयकने राज-
यकनी अपेक्षाओ श्रेष्ठ प्रकट करवा भाटे आपेलु छे राजयक तो केवल
याज लोकने साधक भने छे न्यारे या यातुरन्तयक छिलोक भने परलोक
ओ भन्ने लोकने साधक मानवाभा आवे छे हुवे या 'वरयातुरन्तयक'
पदने धर्मनी साथे जोडवाधा 'धर्मवरयातुरन्तयक' या प्रकारु पद

अप्पडिहय-वर-नाण-दंसण-धरे वियट्टच्छउमे जिणे जावए तिण्णे

धर्मेण-न्यायेन वरः श्रेष्ठ इतरतीर्थिकाऽपेक्षयेति धर्मरः, धर्मा पुण्य-यम-न्याय स्वभावा-
ऽऽचारसोमपा, इत्यमर, स चासौ चातुरन्तचक्रवर्ती च। यद्वा-चातुरन्त च तच्चक्र
चातुरन्तचक्र, वरश्च तच्चातुरन्तचक्र वरचातुरन्तचक्र धर्मो वरचातुरन्तचक्रमिव धर्मवरचातुरन्त-
चक्र, तेन वर्तितु वर्तयितु वा शील यस्य स तथा। 'द्वीवो' द्वीप-मसारसमुद्रे
निमज्जता द्वीपतुल्यत्वात्। 'ताण' राण कर्मकदर्थिताना भव्याना रक्षणसमर्थे। अत एव तेपा
'सरणगई' शरणगति-आश्रयस्थानम्। 'पड्डा' प्रतिष्ठा-कालत्रयेऽप्यग्निनाशिबेन
स्थित। 'अप्पडिहय-वर-नाण-दंसण-धरे' - अप्रतिहतपरजानदर्शनधर-प्रतिहत

जिसका अर्थ " धर्मही वरचातुरन्तचक्र है " ऐसा होता है। अन्य सौगतादिक धर्म
धर्मवरचातुरन्तचक्र नहीं है, क्योंकि उनमें तात्त्विकता का अभाव है। इसका भी कारण एक
यही है कि वे यथावस्थित अर्थका यथार्थ प्रतिपादन नहीं करते हैं। इस धर्मवर-
चातुरन्तचक्रके अनुसार जिसके वर्तन करनेका स्वभाव है वह धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती
है, अत एव भगवान् धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती है। भगवान् ससार समुद्रमें डूबनेवाले
प्राणियोंके द्वीपतुल्य है, इसलिये वे स्वयं (द्वीवो) द्वीप है। (ताण) कर्मों से
कदर्थित भव्योंके प्रभु रक्षक है इसलिये ज्ञाता कहे गये है, और इसी कारण वे
(सरणगई) भव्योंके लिये शरणस्वरूप है। (पड्डा) प्रभु स्वयं प्रतिष्ठास्वरूप
इसलिये है कि तीनों कालों में भी उनका कर्म भी विनाश नहीं होता है। (अप्प-
डिहय-वर-नाण-दंसणधरे) प्रभुका अनतज्ञान एव अनत दर्शन अप्रतिहत-निरा-

निष्पन्न थाय छे जेना अर्थ ' धर्म वरयातुरन्तचक्र ' छे जेवो थाय
छे जीव सौगत आदि, धर्म धर्मवरयातुरन्तचक्र नथी, केमके तेमा तात्त्विक
उतानो अभाव छे तेनु पणु ढारणु ओउ तो जे छे तेओ यथावस्थित
अर्थने यथार्थ (अशरण) प्रतिपादन उरता नथी आ धर्मवरयातुरन्तचक्रने
अनुसरीने जेना वर्तन उरवानो स्वभाव छे ते धर्मवरयातुरन्तचक्रवर्ती छे
ओउले वर भगवान धर्मवरयातुरन्तचक्रवर्ती छे भगवान मसार समुद्रमा
डूबवावाणा प्राणियोंना द्वीप जेवा छे तेथी तेओ पोते (द्वीवो) द्वीप छे
(ताण) कर्मोंथी कदर्थित भव्योंना प्रभु रक्षक छे ते माटे तेओ ज्ञाता उडे
वाय छे, अने ते वर ढारणुथी तेओ (सरणगई) भव्योंने माटे शरणस्वरूप
छे (पड्डा) प्रभु पोते प्रतिष्ठा-स्वरूप ओउला माटे छे ते जे जे कालमा पणु
तेभनो कहीओ विनाश थतो नथी (अप्पडिहय-वर-नाण-दंसण-धरे) प्रभुनु

तारए बुद्धे वोहए मुत्ते मोयगे सव्वन्नू सव्वदरिसी सिव-मयल-

भित्तायावगस्परलित न प्रतिहृतम्—अप्रतिहृत, ज्ञानञ्च दर्शनञ्चेति ज्ञानदर्शनं, वेरं श्रेष्ठं च ते ज्ञानदर्शने—वरज्ञानदर्शनं—केवलज्ञानकेवलदर्शनं, अप्रतिहृते चरज्ञानदर्शनं—अप्रतिहृतपरज्ञानदर्शनं, धरताति धर—अप्रतिहृतपरज्ञानदर्शनयोर्धर—अप्रतिहृतपरज्ञानदर्शनधर—आवगणरहितकेवलज्ञानकेवलदर्शनधारी । 'वियट्टञ्जउमे' व्यावृत्तच्छन्ना—छद्यते—आव्रियते केवलज्ञान—केवलदर्शनाद्या मनोऽननति उन्न—घातिकरुर्कर्मवृन्द—ज्ञानावरणायादिरूप कर्मजातम्, व्यावृत्त—निवृत्त उन्न यस्मात् स व्यावृत्तच्छन्ना । 'जिणे' जिन—रागद्वेषशत्रुविजेता । 'जाएए' जापक—जापयति=गगद्वेषादिशत्रून् जयन्त भव्यजीमण धर्म-देशनादिना प्रेरयताति जापक । 'तिण्णे' तीर्ण—स्वयं—मारौष तीर्ण—उत्तीर्ण । 'तारए' तारक—तारयति—उत्तोऽन्यान भव्यज्ञानान् प्रेरयताति तारक । 'बुद्धे' बुद्ध—स्वयं

परग एव वर=श्रेष्ठ है जयात् प्रभु अप्रणरहित केवलज्ञान, केवलदर्शन के धारक है । (वियट्टञ्जउमे) केवलज्ञान एव केवलदर्शनादिक जिसके द्वारा आवृत्त होते है वह यहा उन्न शब्दस गूहात हुआ है, अत इस दृष्टिसे 'छन्न' शब्दका अर्थ घातिक कर्म होता है, यह उन्न प्रभुका आभासे मर्या निवृत्त हो चुका है, इसलिये प्रभु व्यावृत्तछन्न है । (जिणे) गगादिक अन्तरग शत्रुओं पर विजय पान से प्रभु जिन है । (जाएए) ज्ञाननेपाले भयजोषों को प्रभु ने अपनी धर्मदेशना द्वारा आत्म-कृत्याग के मार्ग का जोर प्रेरित किया, इसलिये प्रभु जापक—जितानेवाले है । (तिण्णे) ससारसमुद्र से पार होन की वजह से प्रभु स्वयं तीर्ण है । (तारए) भगवान ने समासमुद्र से पार होन के उच्छापले जीवों को प्रेरित किया इसलिये

अनतरज्ञान तेमञ्च अनत दर्शन अप्रतिहृत—निशवरण तेमञ्च वर=श्रेष्ठ छे अर्थात् प्रभु आवगणरहित डेवलज्ञान अने डेवल दर्शनना धारक छे (वियट्टञ्जउमे) डेवलज्ञान तेमञ्च डेवल दर्शनादिक जेना द्वारा उच्छाद्यते छे ते अह्नी छन्न गण्ठथी लेवाना आवेल छे आभ अये दृष्टिथी छन्न शब्दने अर्थ घातिककर्म थाय ० आ छन्न प्रभुना आत्माथी सर्वथा निवृत्त थयेले छे भाटे प्रभु व्यावृत्त—छन्न छे (जिणे) गगादिक अन्तरग शत्रुओं पर विजय भेजववायी प्रभु जिन छे (जाएए) छतवावाणा लव्य छेवने प्रभुअये पोतानी धर्मदेशना द्वारा आत्मउत्थाणुना मार्गना तरङ्ग प्रेरित थया ते भाटे प्रभु लपट—छताववावाणा छे (तिण्णे) असार समुद्रथी पार थवाना कारणे प्रभु पोते तीणु छे (तारए) लजवाने ससार समुद्रथी पार थवाना उच्छावाणा छेवने

बोध प्राप्त । 'बोहए' बोधक बुध्यमानान् अन्यान् भव्यजीगान् प्रेरयतीति बोधक
 'मुत्ते' मुक्त—अमोचि स्वय कर्मपञ्जरादिति मुक्त । 'मोयए' मोचक—मुच्य-
 मानानन्यान् भव्यजीगान् प्रेरयतीति मोचक । 'सव्वण्णु' सर्वज—सर्व सकलद्रव्य-
 गुण—पर्यायलक्षण यस्तुजात याथातथ्येन जानातीति सर्वज । 'सव्वदरिसी'
 सर्वदर्शी—सर्व—समस्त पदार्थस्वरूप सामान्येन द्रष्टु गीलमस्याऽमौ सर्वदर्शी । 'सिव'
 शिव निखिलोपद्रव रहितत्वाच्छिव—कन्यागमय, स्थानमित्यस्य विशेषगमिदम् । शिवादीना
 सर्वेषा द्वितीयान्तानामप्रेतनेन संपाविउकामे—इत्यनेन सम्बध । 'अयल' अचल
 स्वाभाविकप्रायोगिकचलनक्रियाशून्यम् । 'अरुय' अरुजम्—अविद्यमाना रुजो यस्य

तारक है । (बुद्धे) स्वयं बोध को प्राप्त होने के कारण भगवान् बुद्ध है,
 (बोहए) बुध्यमान अनेक भव्य जीवों को प्रेरित करने से वे बोधक है,
 (मुत्ते) भगवान् ने स्वयं कर्मरूपी पाँजरे से मुक्ति प्राप्त की, इसलिये मुक्त हैं ।
 (मोयगे) और कर्मरूपी पाँजरे से मुक्त होने की इच्छावाले जीवों को उन्होंने ने
 मुक्त किया इसलिये वे मोचक हैं । (सव्वण्णु) सकलद्रव्यों के समस्त गुण और
 पर्यायों को युगपत् हस्तामलकवत् यथार्थ जानन से प्रभु सर्वज हैं । (सव्वदरिसी)
 तथा सामान्यरूप से त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यों के द्रष्टा होने से प्रभु सर्वदर्शी है ।
 (सिव—मयल—मरुय—मणत—मक्खय—मव्वावाह—मपुणरावत्ति सिद्धिगणामप्रेय
 ठाण संपाविउकामे) निखिल उपद्रव रहित होने से शिव=कन्यागमय, स्वाभाविक
 एव प्रायोगिक चलनक्रिया से शून्य होने के कारण अचल, गारर तथा मन से

प्रेरित कथां तेषां तेजो तारक छे (बुद्धे) पीते जोध पावेला
 डोवाना कारणे लगवान् बुद्ध छे (बोहए) बुध्यमान अनेक लव्य लोवाने
 जोध भाटे प्रेरित करवाथी तेजो जोधक छे (मुत्ते) लगवाने पीते कर्मरूपी
 पाँजराभाथी मुक्ति प्राप्त की तेथी तेजो मुक्त छे (मोयगे) अने कर्म-
 रूपी पाँजराभाथी मुक्त थवाना इच्छावाला लोवाने तेजो जे मुक्त कथां तेथी
 तेजो मोचक छे (सव्वण्णु) सकल द्रव्ये (पदार्थाना) समस्त गुण अने
 पर्यायाने युगपत् हस्तामलकवत् यथार्थरूपे लोवाथी प्रभु सर्वज छे
 (सव्वदरिसी) तथा सामान्य रूपी त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्येना द्रष्टा डोवाथी
 प्रभु सर्वदर्शी छे (सिव—मयल—मरुय—मणत—मक्खय—मव्वावाह—मपुणरावत्ति
 सिद्धिगणामप्रेय ठाण संपाविउकामे) सकल उपद्रव रहित डोवाथी शिव=कन्याग
 मय, स्वाभाविक तेमज प्रायोगिक चलन क्रियाथी शून्य डोवाना कारणे अचल,

मरुय-मणंत-मक्खय-मव्वावाह-मपुणरावित्ति सिद्धिगडणामधेयं
ठाणं संपाविउकामे अरहा जिणे केवली सत्तहत्थुस्सेहे समचउ-

तत्-अपिद्यमानगरीरमनस्कृत्वात्-आधिभ्याभिहितम् इत्यर्थ । 'अणत' अनन्तम्-
अपिद्यमानोऽन्तो नागो यस्य तत् । अत एव 'अक्खय' अभय-नाम्ति लेशतोऽपि
क्षयो यस्य तत्-अपिनागीत्यर्थ । 'अव्वावाह-अव्यावाध न विद्यते ज्यावाधा-पीडा
द्रव्यतो भावतश्च यत्र तत । 'अपुणरावित्ति' अपुनरावृत्ति-अविद्यमाना पुनरा-
वृत्ति-नसारे पुनर्यत्रण यस्मात् तत्, यत्र गत्वा न रुद्राचिद्रव्यामा विनिवर्तते,
सुमान्नातमन्यत्राऽपि-न स पुनर्यवर्तते, न स पुनर्यवर्तते-इति । इत्यमुक्तगिपत्वादि-
विशेषगविशिष्ट- 'सिद्धिगडणामधेय' सिद्धिगतिनामधेय-सिद्धिगतिगिति नामधेय=
प्रगस्त नाम यस्य तत्, 'ठाण' स्थानम्-स्थायितऽस्मिन् इति स्थान-लोकप्रलक्ष्यम् ।
'संपाविउकामे' सम्प्राप्तुकामे सम्यक् प्राप्तुप्रयत्नान् इत्यर्थ । 'अरहा' अरहा-अपिद्यमान
ह-निरोहित वस्तुजात यस्य सोऽहं, 'अरहस्' इति सकागन्त शब्द, केवलज्ञानपलात्
हस्तामलक्रीकृतलोकालोकवर्तिवस्तुक्रमाप इति यावत् । 'जिणे' चिन्-रागद्वेषादिविजेता ।
'केवली' केवली-केवलज्ञानसम्पन्न । 'सत्तहत्थुस्सेहे' सत्तहस्तोसेध-उसेय = उचैस्व

रहित होने के कारण अरह-आधिभ्याभिहित, अनन्त-नागहित, अतएव अक्षय,
अव्यावाध-द्रव्यपीडा एव भावपीडासे सर्वथा निर्मुक्त, अपुनरावृत्तिस्वरूप-जहा प्राप्त होने पर
पुन नसार मे वापिस जीव का आना न हो ऐसे स्वरूपवाले, सिद्धिगति इस प्रगस्त
नाम से प्रसिद्ध स्थान-लोकप्रस्थाज को प्राप्त करने वाले [अरहा] केवलज्ञान के
बल मे लोकालोकवर्ति ममस्त वस्तुजात को हस्तामलकवत् जानने वाले वे प्रभु हैं,
एव (जिणे) रागद्वेषादिके विजेता हैं [केवली] केवलज्ञानपन्न हैं । [सत्त-

शरीर तथा मनधी गदित होवाना कारणे अरह-आधि-व्याधि-रहित,
अनन्त-नाग रहित, अने तेरहा भाटे अक्षय, अव्यावाध-द्रव्यपीडा तेम
लावपीडाथी सर्वथा निर्मुक्त, अपुनरावृत्तिस्वरूप-व्या पडोव्या पडी इगीथी
संसारमा पाछा एवतु आवतु न थाय एवा स्वउपवाणा सिद्धिगति अ
प्रशस्त नामधी प्रसिद्ध स्थान-लोकप्र स्थानने प्राप्त कवावाणा (अरहा) देवल
जानना अणथी लोकलोकवती ममस्त वस्तुजातने हस्तामलकवत् लक्ष्मणवाणा
ते प्रभु हैं, तेम (जिणे) रागद्वेष आदिना विजेता हैं (केवली) देवलज्ञान-
सम्पन्न हैं (सत्तहत्थुस्सेहे) मात डाय उवा है (सम-चउरस-सठाण-सठिए)

रंस-संठाण-संठिए वज्ज-रिसह-नाराय-संघयणे अणुलोमवाउवेगे
कंकग्गहणी कवोयपरिणामे सउणिपोस-पिट्ठंतरोरुपरिणए पउमु-

सप्तहस्त उत्सेधो यस्य स सप्तहस्तोत्सेधेन -सप्तहस्तोच्छ्रित इत्यर्थ । 'सम-चउ-रस-
सठाण-सठिए' सम-चतुरस्र-मस्थान-मस्थित -समाः-तुन्या अन्यूनधिका, चतत्रोऽ-
स्रयः=हस्तपादोपर्यधोरूपाश्चत्वारोऽपि विभागा [शुभलक्षणोपेता] यस्य (मस्थानस्य)
तत् समचतुरस्र-तुन्यारोहपरिणाह तच्च मस्थानम्-आकारत्रिंशेष इति समचतुरस्र-
सस्थान, तेन सस्थित =युक्त । 'वज्ज-रिसह-नाराय-सघयणे' वज्रर्षभनाराचमहनन -
वज्र=कीलिकाकारमस्थि, ऋषभ -तदुपरिवेष्टनपद्माऽऽकृतिकोऽस्थिविशेष, नाराचम्-
उभयतोमर्कटबन्ध, तथा च द्वयोरस्थो परिवेष्टितयोरुपरि तदस्थित्रय पुनरपि दृढी-
कर्तुं तत्र निखात कीलिकाऽऽकार वज्रनामकमस्थि यत्र भवति तद् वज्रऋषभनाराच तत्
रहनम्-सहन्यन्ते=दृढीक्रियन्ते शरीरपुद्गला येन तत्महननम्-अस्थिनिचयो यस्य
स वज्रऋषभनाराचरहनन । 'अणुलोमवाउवेगे' अनुलोमवायुवेग -अनुलोमोऽनुकूलो
वायुवेग =शरीराऽन्तर्वर्ती वायुवेगो यस्य स तथा, वायुप्रकोपरहितदेह इत्यर्थ,
'कंकग्गहणी' कङ्कग्रहणी-कङ्क पक्षिविशेष, तस्य ग्रहणीव ग्रहणी यस्य स कङ्कग्रहणी-
कङ्कगुदाशयवद् गुदाशयवान् । 'कवोयपरिणामे' कपोतपरिणाम -कपोतस्येव परिणाम
आहारपरिपाको यस्य स तथा, यथा कपोतस्य जाठराऽनल पाषाणकणानपि
पाचयति तथा तस्यापि जाठरानलोऽन्तप्रान्तादिसर्वत्रिधाऽऽहारपरिपाचक । 'सउणि-

हृत्युत्सेहे] सात हाथ उँचे है । (समचउरस-सठाण-सठिए) समचतुरस्रसस्थान-
वाले [वज्ज-रिसह-नाराय-सघयणे] वज्र-ऋषभ-नाराच-रहनन से युक्त [अणु-
लोमवाउवेगे] अनुकूल शरीरान्तर्वर्ती वायु के वेग से समन्वित, [कंकग्गहणी]
ककपक्षी के गुदाशय के समान गुदाशयवाले, [कवोयपरिणामे] कपोत की
जठराग्नि जिस प्रकार करूर पत्थर के कणों को भा पचा देती है उसी प्रकार प्रभु
की जठराग्नि भी सब प्रकार के आहार को पचा देती है ऐसी जठराग्नि वाले,

समचतुरस्र सस्थानवाणा (वज्ज-रिसह-नाराय-सघयणे) वज्र-ऋषभ-नाराच-
सहननधी युक्त (अणुलोमवाउवेगे) अनुकूल शरीरान्तर्वर्ती वायुना वेगधी
समन्वित, (कंकग्गहणी) कक पक्षीना गुदाशयना जेवा गुदाशयवाणा
(कवोयपरिणामे) कपोतना जठराग्नि जे प्रकारे काकरा-पत्थरनी जठ्राग्निना पथु
पचावी हे छे तेज प्रकारे प्रभुना जठराग्नि पथु अन्त प्रान्तआदि सर्व प्रकारे

उत्पल-गन्ध-सरिस-निस्सास-सुरभि-वयणे छवी निरायक-उत्तम-पस-

पोस-पिट्ट-तरोरु-परिणए' शकुनि-पोस-पृथान्तरोरुपरिणत-शकुने पक्षिण पोमवत् पुरीपसम्पर्करहितो निरुपलेप पोस-गुदागयो यस्य स शकुनिपोस, पृष्ठञ्च अन्तरे च-पृष्ठोदरयोरन्तरालवर्तिनी अङ्गे-पाश्चाविति यावत्, ऊरू च जडे एतेषा प्राण्यङ्गत्वात्समाहार-द्वन्द्वे-पृष्ठा-ऽन्तरोरु पृष्ठपार्श्वजडम्-तत् परिणत-विशिष्टपरिणामवत्-सुजात यस्य स तथा, शकुनिपोसश्चासौ पृथान्तरोरुपरिणतश्च स शकुनिपोसपृष्ठाऽन्तरोरुपरिणत-निरुपमलद्वारसुन्दरपृष्ठपार्श्वजडावान्-इत्यर्थ । 'पउमु-उत्पल-गन्ध-सरिस-निस्सास-सुरभि-वयणे' पद्मोत्पल-गन्ध-सदृश-निश्वास-सुरभि-वदन-पद्म-कमलम्, उत्पल=नीलकमल तयोर्गन्ध, अथवा पद्म-पद्मकाभिधान गन्ध-द्रव्यम्, उत्पल च उत्पलकुण्ड तयोर्गन्ध, तेन सदृश-समो यो निश्वास-श्चासोऽश्वासपवन तेन सुरभि-सौरभमय वदन-मुख यस्य स तथा, परिमल-मयपदार्थसौरभसम्भारसम्भृतश्चासोऽश्वाससुरभितमुख इति भाव । 'छवी' छवि-छविमान्-दीपिदेदीप्यमानशरीर इत्यर्थ । 'निरायक-उत्तम-पसत्य-अइ-सेय-निरुवम-पले' निरातद्रोचमप्रगस्ताऽतिश्चेतनिरुपमपल, तत्र-आतङ्को रोगो निर्गतो यस्मात् तन्निरातङ्क नीरोगम्, उत्तमम्-उत्कृष्टतमम् अत एव प्रगस्तम्, अतिश्चेतम्-

(सउणिपोस-पिट्टतरोरु-परिणए) शकुनि-पक्षी के-गुदागय की तरह पुरीप के उत्सर्ग के मसर्ग से रहित गुदागयवाले, एव सुन्दर पृष्ठ, पार्श्व और जघावाले (पउमु-उत्पल-निस्सास-सुरभिवयणे) पद्म-कमल एव उत्पल-नीलकमल अथवा पद्म-पद्मकनामक गन्ध द्रव्य और उत्पल-उत्पलकुण्ड-सुगन्धद्रव्य विशेष, इनकी सुगन्ध के समान उच्छ्वासवायु से सुरभितमुखवाले [छवी] कान्तियुक्त शरीरवाले, [निरायक-उत्तम-पसत्य-अइसेय-निरुवम-पले] रोगमुक्त, सर्वोत्तमगुणयुक्त,

रना आहारने पथावी दे छे जेवा जठराग्निवाजा छे (सउणि-पोस-पिट्टतरोरु-परिणए) शकुनि-पक्षीना शुद्धशयनी पेटे भणना मन्गर्धी रक्षित शुद्धशयवाजा तेमज सुदर पृष्ठ (पीठ) पार्श्व (पडभा) अने जघा वाजा (पउमु-उत्पल-निस्सास-सुरभि-वयणे) पद्म-कमल तेमज उत्पल-नीलकमल, अथवा पद्म-पद्म नामक गन्ध द्रव्य अने उत्पल-उत्पल कुण्ड-सुगन्ध द्रव्य विशेष, जेमनी सुगन्धना जेवा उच्छ्वास वायुथी सुरभित-सुगन्धित मुखवाजा (छवी) अतियुक्त शरीरवाजा (निरायक-उत्तम-पसत्य-अइसेय-निरुवम-पले) रोगमुक्त,

स्थ-अडसेय-निरुवम-पले जल्ल-मल्ल-कलंक-सेय-रय-दोस-वज्जियसरी-
र-निरुवलेवे छाया-उज्जोडयग-पच्चगे घण-निचिय-सुवद्ध-लक्खण-
णय-कूडागारनिभ-पिंडिय-सिरए सामलिवांड-घणनिचिय-च्छोडिय-

अतिगयशुभ्रगुणयुक्त, निरुपमम्-अनुपम पल माप यस्य म, रोगमुक्तमप्राप्तम-
गुणयुक्तश्चेत्निरुपम-मासत्रान्-इत्यर्थ । 'जल्ल-मल्ल-कलङ्क-सेय-रय-दोस-वज्जिय-
शरीर-निरुवलेवे' जल्ल-मल्ल-कलङ्क-स्वेद-रजो-दोष-वर्जित-शरीर-निरुपलेप,
तत्र-जल्ल-शरीरमल शुष्कस्वेदरूप, 'जल्ल' इति देशीय शब्द, मल्ल-
शरीरगत प्रयनविशेषापनेय कठिनीभूत रज, कलङ्क-दुष्टमगतिलादिरूप, स्वेद-
प्रस्वेद, रज-धूलि, तेषा यो दोष-मलिनीकरणे तेन वर्जितम् अताप्य निरुपलेप-
निर्मल शरीर यस्य स तथा, त्रिभिधमलकलङ्कस्वेदरेणुदोषरहिततया निर्लेपनिर्मल-
शरीरवानित्यर्थ । 'छाया-उज्जोडय-गपच्चगे' शयोदचोत्तिताङ्गप्रत्यङ्ग-शयया-
कान्त्या उद्योतितानि-चाकचिक्ययुक्तानि अङ्गप्रत्यङ्गानि-अङ्गोपाङ्गानि यस्य स तथा,
अनुपमकान्त्या देदीप्यमानाऽङ्गप्रयङ्ग इत्यर्थ । 'घण-निचिय-सुवद्ध-लक्खणु णय-
कूडागारनिभ-पिंडिय सिरए' घन-निचित-सुवद्ध-लक्षगोत्रत-कूटाऽऽकारनिभ-पिण्डित-
शिरस्क, तत्र-घनम्-अतिगयेन निचित घननिचितम्-अतिनिविडम्, सुष्ठु-अतिगयेन

श्चेत् एव निरुपम मासत्राले [जल्ल-मल्ल-कलङ्क-सेय-रय-दोस-वज्जिय-सरीर-
निरुवलेवे] विविध प्रकार के मैल-शुष्कस्वेदरूप जल्ल, कठिनीभूत रज स्वरूप मल्ल,
दुष्ट मसल तिल आदिरूप कलङ्क, एव-स्वेद प्रस्वेद रज-धूलि के दोष से वर्जित
शरीर होने से निर्मल शरीरवाले, [छायाउज्जोडयगपच्चगे] कान्ति से चमकते हुए
अगोपागवाले, (घणनिचिय-सुवद्ध-लक्खणु-णय-कूडागारनिभ-पिंडिय-सिरए)
अतिनिविड, स्पष्टरीति से प्रकटित-शुभलक्षण-रूपन, उन्नत कूटाकार तुच्य एव

सर्वोत्तमशुशुभ्रयुक्त, श्रेयत, तेभ्य निउपम भागवाणा (जल्ल-मल्ल-कलङ्क-सेय-
रय-दोस-वज्जिय-सरीर-निरुवलेवे) विविध प्रकारना मैल-सुठार्येला परमेवा इप
बल्ल, षडण्ण यनेल रज्ज्वरुप भल्ल, दुष्ट मसा तल आदि इप षल ष, तेभ्य
स्वेद-प्रस्वेद रज-धूलना दोषथी वर्जित शरीर होवाथी निर्मल शरीरवाणा
(छाया-उज्जोडयगपच्चगे) शतित्थी अमकारा भारता अ ग उपागवाणा (घण-निचिय-
सुवद्ध-लक्खणु-णय-कूडागारनिभ-पिंडिय-सिरए) अतिनिविड, स्पष्ट गीतथी
प्रकटित शुभलक्षण-रूपन, उन्नत कूटाकार तुच्य तेभ्य निर्मल भागना

मिड-विसय-पसत्थ-सुहुम-लक्षवण-सुगंधि-सुंदर-भुयमोयग-भिग-
नेल-कज्जल-पहट्ट-भमरगण-णिद्ध-निकुरुव-निचिय-कुंचिय-पया-

वद्रानि-अप्रस्थितानि प्रकृतया विद्यमानानि लक्षणानि शिर मन्त्रन्धिगुभलक्षणानि यत्र
तत् सुवद्रलक्षणम्, उन्नतम्-मध्यभाग उच्च यत् ऋट तस्य य आकारस्तन्निभम्-
उन्नतकृटाकाम्मदृशमिति भाव । पिण्डित-निमागकर्मगा च्योजित शिगे यस्य स
घन निचित-मुपद्र-लक्षगोन्नत-कृटाशरनिभ-पिण्डित-शिरस्क । 'सामलिगोड-घणनिचिय-
च्योडिय-मिड-विसय पसत्थ-सुहुम-लक्षवण-सुगंधि-सुंदर भुयमोयग-भिग-नेल-कज्ज-
ल-पहट्ट-भमरगण-णिद्ध-निकुरुव-निचिय-कुंचिय-पयाहिणावत्त-मुद्ध-सिरए' आन्मलि-
वोण्ड-घननिचित-च्योडिन-मृदु विशद-प्रशस्त-मूक्षम-चक्षग-मुगन्धि-मुन्दर-भुजमोचक-भृङ्ग-नेल-
कज्ज प्रकृष्ट-भमरगण-शिरस्य - निकुरुव - निचिय - कुंचिय - प्रशमिगाऽऽवर्त - मूर्द्ध-
शिगेज - आन्मलि वृथापिगे, तस्य रोण्ट=फल, घननिचितम्-अनिनिपिट, ओटित-
रफोटित-तूलव्याप्त आन्मलि-फलरण्ट तद्वत् मृदव-मृदुलाः-इति आन्मलिरोण्डघननि-
चितच्योपितमृदव, अपस्तन्ते शिगेभाग ऋटिन, उपरिभागे आन्मलिफलरण्डगत-तूल-
वन्मृदुला केजा इति भाव । तथा-विशदा-निर्मला, प्रशस्ता-उत्तमा सक्ष्मा-
तनुतरा, लक्षगा-सुलक्षगयुक्त, मुगन्धय-शोभनगन्धयुक्ता, सुन्दरा-मनोहरा, तथा
भुजमोचकरत्न=नीलगुल्लविशेष इव, भृङ्गवत्-भ्रमरवत्, एव नैलवत्-नालीविकारवत्-

निर्माणनाम कर्म हाग मुगचित ऐसे मस्तकराले, [सामलिगोड-घणनिचिय-च्यो-
डिय-मिड-विसय-पसत्थ-सुहुम-लक्षवण-सुगंधि-सुंदर-भुयमोयग-भिग-नेल-
कज्जल-पहट्ट-भमरगण-णिद्ध-निकुरुव-निचिय - कुंचिय - पयाहिणावत्त-मुद्ध-
सिरए] सेमरवृक्ष के फलान्तर्गत तूल के समान मृदुल विशद-निर्मल, प्रशस्त-उत्तम,
सक्ष्म-तनुतर (पतले), लक्षग-सुलक्षगयुक्त, मुगन्ध-शोभनगन्ध पत्र, सुन्दर-मनोहर
तथा-नाल रत्नविशेष की तरह लच्छेदार, नीलगुल्लिका की तरह नीले, कज्जल की

वर्धनी सुरश्चित अथवा भक्तव्याजा (सामलिगोड-घणनिचिय - च्योडिय-मिड-
विसय-पसत्थ-सुहुम-लक्षवण-सुगंधि सुंदर-भुयमोयग-भिग-नेल-कज्जल-पहट्ट भमर
गण-निद्ध-निकुरुव-निचिय-कुंचिय-पयाहिणावत्त-मुद्ध - सिरए) सेमर वृक्षना
इलनी अतर्गत इना जेवा जेभण, विशद-निर्मल, प्रशस्त-उत्तम, सक्ष्म
उपव. पातजा, लक्षण-सुलक्षणयुक्त, सुगन्ध-शोभनगन्ध पत्र, सुन्दर-मनोहर
तथा नील रत्नविशेषनी पेठे लच्छेदार, नीलगुल्लिकानी जेभ लीला, डालणना

हिणावत्त-मुञ्जसिरए दालिमपुष्पप्पगास-नवणिज्ज-सरिस-निम्मल-
सुणिद्ध-केसंत-केसभूमी छत्तागारुत्तिमंगदेसे णिव्वण-सम-लट्ठ-
मट्ठ-चंदद्ध-सम-णिडाले उडुवइ-पडिपुण्ण-सोम्मवयणे अह्ठीण-

नीलीगुलिक्कावत्, कज्जलवत्-मपीवत्, प्रहृष्ट-भ्रमर-गगवत्-सोझास-भ्रमर-वृन्दवत्
स्निग्ध=कान्तियुक्तम्-अतीवश्याममित्यर्थ, निकुरम्भ=समूहो येषां ते भुजमोचक-भृङ्ग-नैल-
कज्जल-प्रहृष्ट-भ्रमर-गणस्निग्धनिकुरम्भा, ते च पुनर्निचिता=परस्पर श्लिष्टा कुञ्चिता=
वक्राभूता-कुण्डलवद्वर्तुल्यकारा प्रदक्षिणाऽऽवर्त्ता-प्रदक्षिणम् आवर्तन्ते ते तथा मूर्द्धनि-
मस्तके, शिरोजा-केशा यस्य स तथा-शाल्मलि-फलखण्डव क्रोमलातिश्यामल-कृष्णमणि-
भ्रमरकज्जलवत्कृष्णतर-परस्परश्लिष्ट-प्रदक्षिणावर्त-कुञ्चित-मस्तककेगवानिति यावत् ।
केगोत्पत्तिस्थानं वर्ण्यते-‘दालिम-पुष्प-प्पगास-तवणिज्ज-सरिस-निम्मल-सुणिद्ध-
केसत-केसभूमी’ दाडिम-पुष्प-प्रकाश-तपनीय-सदृश-निर्मल-सुस्निग्ध-केगान्त-
केशभूमि, तत्र-दाडिम-पुष्प-प्रकाशा रक्तवर्णेत्यर्थ, तपनीयसदृशी-अग्निप्रतप्त
सुवर्णसदृशवर्णा, तथा-निर्मल-उज्ज्वला, सुस्निग्धा-सुचिक्रगा, केगान्ते=केगसमीपे-
केगमूले केगभूमि-केगोत्पत्तिस्थान-मस्तकवक् यस्य स तथा, पूर्वोक्तमेव-विशेषण
प्रकारान्तरेणाह-‘छत्तागारुत्तिमंगदेसे’ छत्राऽऽकारोत्तमाङ्गदेग-छत्राऽऽकार-वर्तुलोज-
त वगुगयोगाच्छत्राऽऽकृति-उत्तमाङ्गदेग-मस्तकप्रदेगो यस्य स, अयुजतोत्तमाङ्गवान् इति

तरह काळे, प्रहृष्टभ्रमरगग की तरह कान्तियुक्त, परस्पर मे मश्लिष्ट-विरले नहीं,
ट्टे कुण्डल की तरह वर्तुल आकारयुक्त दक्षिणावर्त केशों मे युक्त थे, अर्थात्-
घुँघरवाल्वाले थे । [दालिमपुष्प-प्पगास - तवणिज्जसरिस - निम्मल-सुणिद्ध-
केसत-केस-भूमी] भगवान् के मस्तक की त्वचा दाडिम के पुष्प के समान
जाल, तथा ताये हुए सुवर्ण के समान निर्मल एव स्निग्ध=चिक्रण थी । (छत्ता-
गारुत्तिमंगदेसे) भगवान् का मस्तक छत्र समान गोलकार था । (णिव्वण-सम-

नेवा जाणा, प्रहृष्ट भ्रमरानी पेटे दातियुक्त, परस्परमा मश्लिष्ट, विरले नडि,
वाडा कुडलनी पेटे वरुण आठारवाणा दक्षिणावर्त केशोथी युक्त लगवान् हुता
अर्थात् घुँघरवाणा पाण पाणा हुता (दालिमपुष्प-प्पगास तवणिज्ज सरिस निम्मल-
सुणिद्ध-केसत केस भूमी) लगवान्ना मन्तकनी त्वचा [आमडी] हाउम ॥
पुष्पना नेवी लाड, तथा तावेला सुवर्णना नेवी निर्मण तेमञ्च स्निग्ध
चिक्रणी हुती, (छत्तागारुत्तिमंगदेसे) लगवान्नु मस्तक छत्रनी पेटे गोलाकार

**पमाणजुत्त-सत्रणे सुस्सत्रणे पीण-मंसल-कवोल-देसभाए आणा-
मिय-चाव-रुडल-किण्हव्वभराड-तणु-कसिण-गिद्ध-भमुहे अवदा-**

भाव, 'गिच्चण-सम-लट्ठ-मट्ठ-चदद्ध-सम-गिडाले' निर्वग-सम-लट्ठ-मृष्ट-चन्द्राई-सम-लट्ठ तत्र-निर्वग-अतर्हिततया वगकिगरहित, सम-विपमताग्रहित, लट्ठ-सुन्दर, मृष्ट-शुद्ध चन्द्राई-सम-अष्टमा-चन्द्र-मण्डलाऽऽकारम्, ललट-भाल्श्रल यस्य म, अष्टमी-चन्द्र-मण्डल-समानाकार-सुन्दर-ललट-इति भाव । 'उडुवड-पडिपुण्ण-सोम्मवयणे' उडुपति-प्रतिपूर्ण-सौम्यवदन उडुपति-आग्दीयपूर्णचन्द्रस्तद्वत् पारेपूर्ण-प्रभाममूहसम्भृत, सौम्य-सुन्दर, वदन-मुख यस्य म तथा, शारदपूर्णचन्द्र-समान-सुन्दर-मुख इत्यर्थ । 'अट्ठीण-पमाणजुत्त-सत्रणे' आलीन प्रमाणयुक्त-श्रवण-समुचितप्रमाणकर्णयुक्त, अत एव-सुस्सत्रणे' सुश्रवण, शोभनकर्णान् 'पीण-मंसल-कवोल-देसभाए' पीण-मासल-कपोल-देशभाग-पीनौ-पुट्टौ, मासलौ मासपूर्णौ कपोलदेशभागौ-कपोलवयवौ यस्य स तथा-सुपुष्टरूपोऽयुक्त इति भाव । 'आणामिय-चाव-रुडल-किण्हव्वभराड-तणु-कसिण-गिद्ध-भमुहे' आनामित चाप-रचिर-कृष्णाभराजि-तनु-कृष्ण-स्निग्ध-भ्रू-आनामित-चाप-वक्राङ्गनधनु, तद्दरचिरे-सुन्दरे तथा कृष्णा-भराजी इव ध्याममेवपङ्कती इव तनू-सूक्ष्मे, कृष्णे-श्यामे, स्निग्धे-चिकणे-भ्रुवौ यस्य स तथा, वक्रकृष्णमूक्ष्मचिक्रग-लट्ठ-मट्ठ-चदद्ध-सम-गिडाले) भगवान् का भाल्श्रल व्रग के चिह्न मे रहित, विपमता मे वर्जित, सुन्दर, शुद्ध एव अष्टमी के चद्रमा के समान था । [उडु-वड-पडिपुण्ण-सोम्मवयणे] प्रभु का मुख शरद ऋतु के पूर्णचन्द्रमण्डल समान सुन्दर और आह्लादक था । [अट्ठीण-पमाण-जुत्त-सत्रणे] कान प्रमाणयुक्त थे । [सुस्सत्रणे] इमलिये भगवान् सुन्दर कानवाले थे । (पीण-मंसल-कवोल-देसभाए) भगवान् के पुष्ट एव भरे हुए सुन्दर रूपोत्र थे । (आणामिय-चाव-रुडल-किण्ह-व्वभराड-तणु-कसिण-गिद्ध-भमुहे) वक्रित धनुष के समान रचिर, तथा कृष्णमेघ

इतु (गिच्चण-सम लट्ठ मट्ठ चदद्ध-सम-गिडाले) भगवान्तु ललाट मधुना चिह्नथी रहित, विपमतायी वर्जित, सुन्दर, शुद्ध तेमज्ज अष्टमीना चद्र ना जेषु इतु (उडुवड-पडिपुण्ण-सोम्म-वयणे) प्रभुतु मुख शरदऋतुना पूष्ये चद्रम उल्ल समान सुन्दर तथा आह्लादक इतु (अट्ठीण-पमाण-जुत्त-सत्रणे) कान भाषभर इता (सुस्सत्रणे) तेथी भगवान् सुष्ट कानवाणा इता (पीण-मंसल कवोल-देसभाए) भगवन्ना पुष्ट तेमज्ज अट्ठीना सुष्ट गाल इता (आणामिय-चाव-रुडल-किण्हव्वभराड-तणु-कसिण-गिद्ध-भमुहे) वज्ज थयेला धनुषना जेम इचिर, तथा कृष्णमेघ (काना वाहणा) नी डारना जेवी

लिय-पुंडरीय-णयणे कोआसिय-धवल-पत्तलच्छे गरुलायय-उज्जु
तुंग-णासे उवचिय-सिलप्पवाल-विंवफल-सण्णिमाहरोट्टे पंडुर-
ससि-सयल-विमल-णिम्मल-संख-गोक्वीर-फेण-कुंद-दगरय-मुणा-

सूयुक्त इत्यर्थ । 'अवदालिय-पुंडरीय-णयणे' अपद्रवित पुण्डरीक-नयन-अप्रलिते-
विकसिते, पुण्डरीके-श्वेतकमले इव नयने-नेत्रे यस्य स, विकसितश्वेतकमलमदृश-
नेत्र इति भाव । 'कोआसिय-धवल-पत्तलच्छे' विकसित धवल-पत्रलाऽक्ष-कमलान्द्र-
विकसिते धवले-श्वेते, पत्रले-पद्मयुक्ते, अक्षिणी नेत्रे यस्य स, विगालनप्रानित्यर्थ ।
'गरुला-यय-उज्जु-तुंग-णासे' गरुडा-यत-जुहुत्वा-नासिक-गरुडश्वेव-गरुडपक्षिचञ्चुवद-
आयता-दीर्घा, ऋज्वी-सरला, तुङ्गा-उन्नता, नासिका यस्य स तथा, गरुडचञ्चु-
वदीर्घसरलोच्चनासिकामान् इत्यर्थ । 'उवचिय-सिलप्पवाल-विंवफल-सण्णिमा-हरोट्टे'
उपचित गिलाप्रवाल विम्बफल-सन्निमाऽधरोष्ठ-उर्पचित वृत्तमस्कार यच्छिलाप्रवाल-विद्रुम,
विम्बफल-रक्तातिरक्त तयो सन्निभ-सदृशो रत्न अधरोष्ठो यस्य स, अतिरक्तोष्ठवान्-
इत्यर्थ । 'पंडुर-ससि-सयल-विमल-णिम्मल-संख-गोक्वीर-फेण-कुंद-दगरय-मुणा-
लिया-धवल-दत्तसेठी' पाण्डुर-शशि-शकल-विमल निर्मल-शम्भु गोक्षीर-फेण-कुन्द-दक-

की पक्ति के समान काला, पतली और चिकनी भगवान् की भौहें थीं । (अव-
दालिय-पुंडरीय-णयणे) विकसित श्वेतकमल के समान नेत्र थे । (कोआसिय-
धवल-पत्तलच्छे) वे नेत्र-विकसित, स्वच्छ एवं पद्मल-सुन्दर पीपणी वाले
थे । (गरुला-यय-उज्जु-तुंग-णासे) गरुड पक्षी की चंचु समान दीर्घ, सरल
एव उन्नत नासिका थी । (उवचिय-सिलप्पवाल-विंवफल-सण्णिमाहरोट्टे) । स्कार-
युक्त विद्रुम एवं रक्तातिरक्त-अतिशय लाल कुन्दुम्फल के समान अधरोष्ठ था ।
(पंडुर-ससिसयल-विमल-णिम्मल-संख-गोक्वीर-फेण-कुंद-दगरय-मुणालिया-

काणी, पातली अने चिकली लभने हुती (अवदालिय-पुंडरीय-णयणे-)
भीक्ष्ण श्वेत उभयना जेवा नेत्र हुता (कोआसिय-धवल-पत्तलच्छे) ते नेत्र
विकसेला म्वच्छ तेमञ्च पद्मल (सुद्ध पापक्षुवाणा) हुता (गरुला-यय-
उज्जु-तुंग-णासे) गरुड पक्षीनी आय समान लामा भरल तेमञ्च उन्नत
नासिका हुती (उवचिय-सिलप्पवाल-विंवफल-सण्णिमा-हरोट्टे) स रक्षाशुक्त
विद्रुम तेमञ्च रक्तातिरक्त-अतिशय लाल कुहुड क्षलना जेवा अधरोष्ठ
(हो) हुता (पंडुर-ससिसयल-विमल-णिम्मल-संख-गोक्वीर-फेण-कुंद-दग-

लिया-धवल-दंतसेढी अखंडदंते अफ्फुडियदंते अविरलदंते सुणि-
द्धदंते सुजायदंते एगदंतसेढीविव अणेगदंते हुयवह-णिद्धंत-

रजो-मृणात्रिका धवल-दन्तश्रेणि -पाण्डुर-श्वेत यत्-शशिगङ्गल-चन्द्ररण्ड, तद्द विमला, तथा
निर्मल-अतिस्वच्छ, शङ्ख प्रसिद्ध, गोक्षीर-गोदुग्धम्, फेन-जलोपरिवर्तमानो नवनीतस-
म, सुन्द-तनामक श्वेतकुमुमम्-जकरज-जलकग, मृगालिका-निसिनी-तद्द ववला-
महाश्वेता, दन्तश्रेणि-दन्तपङ्क्तिर्यस्य स तथा, शुभ्रातिशुभ्रदन्तपङ्क्तिमा-
निर्यथ । 'अखडदंते' अखडदन्त-दन्तपङ्क्तौ दन्तवैक-न्याभावात्,
'अफ्फुडियदंते' अफ्फुडितदन्त दन्तपङ्क्तौ दन्ताना-देशतोऽपि भङ्गाभावेत्,
'अविरलदंते' अविरलदन्त-अन्तरावकागरहितदन्त 'सुणिद्धदंते' सुस्निग्धदन्त-चिक्कण-
दन्तान्, 'सुजायदंते' सुजातदन्त-सुन्दरदन्तान्-इत्यर्थ । 'एगदंतसेढीविव
अणेगदंते' एगदन्तश्रेणीनाऽनकदन्त, 'हुतवह-णिद्धत-धोय-तत्त-तवणिज्ज-रत्त-
तल-तालुजीहे' हुतवह-निष्वात-धौत-तप्ततपनाय-रक्ततर-तालुजिह्व-हुतवहन-वह्निना-
पूर्वं निष्वात-निष्पेग न्ययोजित पश्चाज्जलादिना धौतम्, अत एव-तप्त-वह्निताप प्राप्त-

धवल-दंतसेढी) श्वेत चन्द्ररण्डके के समान विमल, तथा निर्मल शङ्ख, गोक्षीर,
फेन, श्वेतकुमुम, जकरज, एव मृगाल क समान धवल दन्तपङ्क्तियाँ थीं ।
(अखडदंते) भगवान के दाँत अखण्ड थे, (अफ्फुडियदंते) अत्रुटित थे,
(अविरलदंते) अणकाग रहित थे । (सुणिद्धदंते) चिक्कण थे, (सुजायदंते)
सुन्दर थे, (एगदंतसेढीविव अणेगदंते) एक दाँत की श्रेणी के समान सभी
दाँत मादम होते थे । (हुयवह-णिद्धत-धोय-तत्त-तवणिज्ज-रत्त-तल-तालुजीहे)
पहले अग्नि में तपाये गये पश्चात् जलादिक्र द्वारा धोये गये पुन अग्नि में तपाये

रय-मुगालिया-धवल-दन्त-सेढी) श्वेत यद्गुण उना नेवी विमल, तथा निर्मल
शङ्ख, गायत्रु इध, शीषु, श्वेतपुष्प, जलकणु (पाणीना लुद्ध) तेमज्ज
मृष्टाल ना नेवी अश्लेह हातनी डार डती (अखडदंते) भगवानना हात-
अण्ड डता (अफ्फुडियदंते) तूटया वगरना हात डता (अविरलदंते)
अवकाश (पोल) गडित डता, (सुणिद्धदंते) चिकणु डता,
(सुजायदंते) सुन्दर डता, (एगदंतसेढी विव अणेगदंते) अश्लेह हातनी
श्रेणी (डार) ना नेम अथा हात देभाता डता (हुतवह-णिद्धत-धोय-तत्त-
तवणिज्ज-रत्त-तल-तालुजीहे) पडेला अग्निमा तपायेला पाछलथी ज्जलादिदारा

धोयतत्तवणिज्ज-रत्तल-तालुजीहे अवट्टिय-सुविभत्त-चित्त-मंसू
मंसल-संठिय-पसत्थ-सद्दूल-विउल-हणुए चउरगुल-सुप्पमाण-कंबु-
वर-सरिसग्गीवे वरमहिस-वराह-सीह-सद्दूल-उसभ-नागवर-पडि-

यत्तपनीय=सुवर्णं तद्द रक्ततरम्-अतीरक्त, तालु च जिह्वा च यस्य स तथा, अतिरक्त-
तालुजिह्वावान् इत्यर्थ । 'अवट्टिय-सुविभत्त-चित्त-मंसू' अवस्थित-सुविभक्त-चित्त-
श्मश्रु-अवस्थितानि-अवर्द्धनशीलानि, सुविभक्तानि-द्विभागाभ्या विभक्ततया स्थितानि,
चित्राणि-शोभासम्पन्नानि श्मश्रूणि-'दाढी मूळ'-इति भाषाप्रसिद्धानि यस्य स, अवर्धन-
शील-सुविभक्त-सुशोभितश्मश्रुवान् इत्यर्थ । 'मंसल-संठिय-पसत्थ-सद्दूल-विउल-
हणुए' मासल-संस्थित-प्रशस्त-शार्दूल-विपुल-हनु-तत्र-मासल-पुष्ट, संस्थित-सुन्दरा-
ऽऽकार, प्रशस्त-अतिरमणीय, शार्दूलस्यैव व्याप्तस्यैव, विपुल-दीर्घ हनु=चिबुक यस्य स
तथा-शार्दूल-वसुन्दर-सुविशालचिबुक इति भाव । 'चउरगुल-सुप्पमाण-कंबुवर-
सरिस-ग्गीवे' चतुरङ्गुल-सुप्रमाण-कम्बुवरसदृश-प्रीव-भगवदङ्गुल्यपेक्षया चतुरङ्गुल-
सुप्रमाणा कम्बुवरसदृशी-उन्नततया त्रिवलिसद्भावाच्च श्रेष्ठशङ्खसदृशी प्रीवा यस्य सतथा,
चतुरङ्गुलप्रमाणोपेतश्रेष्ठशङ्खसदृशप्रीवावान् इत्यर्थ । 'वर-महिस-वराह-सीह-सद्दूल-
उसभ-नागवर-पडिपुण-विउल-वखंधे' वरमहिष-वराह-सिंह-शार्दूल-वृषभ-नागवर-परिपूर्ण-

गये सोने के समान अथतरक्त तालु और जिह्वा थी। (अवट्टिय-सुविभत्त-चित्त-
मंसू) अवर्द्धनशील एव दोभागों से विभक्त होकर अलग २ रही हुई दाढी एव
मूठे थीं। (मंसल-संठिय-पसत्थ-सद्दूल-विउल-हणुए) पुष्ट, सुन्दर आकार
युक्त, एव अतिरमणीय सिंह जैसी विपुल दाढी थी। (चउरगुल-सुप्पमाण-
कंबुवरसरिस-ग्गीवे) भगवान की अगुली की अपेक्षा चार अंगुलप्रमाणवाली एव
शख के समान त्रिवलीत्रिंशद प्रीवा थी। वरमहिस-वराह-सीह-सद्दूल-उसभ-

धोअेला सुवर्णनी पेटे अत्यंत लाल तालुअने एउल उता (अवट्टिय-सुवि-
भत्त-चित्त-मंसू) अवर्धनशील तेभअ ये लागोथी विलकृत यधने अलग
अलग रहेली दाढी तेभअ सुछे उती [मंसल-संठिय-पसत्थ-सद्दूल-विउल-
हणुए] पुष्ट, सुंदर आकारवाणी तेभअ अति रमणीय सिंह जेवी विपुल
दाढी उती (चउरगुल-सुप्पमाण-कंबुवरसरिस-ग्गीवे) भगवानना आगजानी
अपेक्षाअे आर आगजानी भापवाणी तेभअ शअनी पेटे त्रिवली (त्रय-
देणा) वाणी उठ (गरदन) उती [वरमहिस-वराह-सीह-सद्दूल-उसभ नाग-

पुण्ण-विउलक्खंधे जुगसन्निभ-पीण-रइय-पीवर-पउट्ट-सुसंठिय-
सुसिलिट्ट-विसिट्ट-घण-थिर-सुवद्ध-संधि-पुरवर-फलिह-वट्टिय-भुए

त्रिपुलस्कन्ध - श्रेष्ठमहिपवराह सिंहन्यात्रवृष गजवर। गामिव प्रतिपूर्णा-प्रमाणयुक्तौ-विपुलौ=विस्ती-
र्णा सामुद्रिकशाब्दोक्तलक्षणयुक्तौ स्कन्धौ यस्य म तथा, 'सिंहन्यात्राद्विस्त्सामुद्रि-
कोक्तलक्षणयुक्तप्रमाणमहितविशालस्कन्धान् इति भाव । 'जुगसन्निभ-पीण-रइय-
पीवर-पउट्ट-सुसंठिय-सुसिलिट्ट-विसिट्ट-घण-थिर-सुवद्ध-संधि-पुरवर-फलिह-वट्टियभुए'
युगमन्निभ-पीण-रतिट्ट-पीवर-प्रकोष्ठ-सुसंस्थित सुस्त्रिल्ल-विशिष्ट-घन - स्थिर-सुवद्ध-सन्धि-पुरवर-
परिघ-वर्तितमुज, युगेन=शकटाप्रायामस्थितकालेन सन्निभौ=तुन्धौ, पीनौ=पुष्टौ,
रतिट्टौ=प्रातिप्रदौ, पीवरप्रकोष्ठौ=कफोणे 'स्वणी' इति प्रसिद्धादधस्तान्मणिमन्धपर्यन्त
प्रकोष्ठ, पीवरौ पुष्टौ प्रकोष्ठौ ययोर्भुजयोस्तौ, सुसंस्थितौ=सुन्दरमस्थानवन्तौ, पुन
कौटुंबौ - सुस्त्रिल्ल-स्युक्ता, विशिष्टा-प्रधाना, घना-सघना, स्थिरा-दृढा-सुवद्धा =सुष्टु
वद्धा स्नायुभि सन्धय =सन्धिसयोगस्थानानि ययोस्तौ-सुस्त्रिल्लविशिष्टघनस्थिरसुवद्धसन्धी,
पुन-पुरवरपरिघवत्=नगरश्रेष्ठा-गंगलावत् वर्तितौ-वर्तुलौ बाहू=भुजौ यस्य स
तथा, सुन्दरनगरगंगलावत् दृढदीर्घमुजवान् इति भाव । 'भुयगीसर-
विउल-भोग-आयाण-पलिहउच्छट्ट-दीह-बाहू-भुजगेधर-विपुल-भोगा -दान-पर्यवक्षित-दीर्घ-

नागवर-पडिपुण्ण-विउल-क्खंधे) श्रेष्ठ महिप, वराह, सिंह, शार्दूल, वृषभ, एव
श्रेष्ठ हाथी के स्कन्ध जैसे विपुल स्कन्ध थे, (जुगसन्निभ-पीण-रइय-पीवर-पउट्ट-
सुसंठिय-सुसिलिट्ट-विसिट्ट-घण-थिर-सुवद्धसंधि-पुरवर-फलिह-वट्टियभुए) गाडी
के जुए के समान प्रीतिप्रद, पीवरप्रकोष्ठयुक्त-पुष्टपौचावाली, सुन्दर आकृतिमय ऐसे,
एव सुस्त्रिल्ल-स्युक्त-मिली हुई, विशिष्ट-उत्तम, घन-गठिली, मजबूत, स्थिर-स्नायुओं
से सुवद्ध ऐसी लधियों वाली, तथा नगर की परिघा-भोगल-जैसी वर्तुल भुजायें
थीं । (भुयगीसर-विउलभोग-आयाण-पलिहउच्छट्ट-दीह-बाहू) वाञ्छित वस्तु

वर-पडिपुण्ण-विउल-क्खंधे] श्रेष्ठ पाडा, वराह, मिह, शार्दूल, वृषभ, तेभञ्
श्रेष्ठ हाथीना भाधे वेवी विपुल भाधे हुती (जुगसन्निभ-पीण-रइय-पीवर-
पउट्ट-सुसंठिय-सुसिलिट्ट-विसिट्ट-घण-थिर-सुवद्ध-संधि-पुरवर-फलिह-वट्टियभुए)
गाडाना धोसरा वेवी पुष्ट, प्रीतिप्रद, पीवर प्रकोष्ठ-पुष्ट डाडा वाणी, सुद्ध
आकृतिवाणी तेभञ् सुस्त्रिल्ल-स्युक्ता-भिलित, विशिष्ट-उत्तम, घन-भराड,
स्थिर-मज्जभूत स्नायुओथी सुसुवद्ध संधिओवाणी तथा नगरनी भोगण
वेभ गोगाकार भुजओ हुती [भुयगी-सर-विउलभोग-आयाण-पलिहउच्छट्ट-

भुजगीसर-विउल-भोग-आयाण-पलिहउच्छ्रद्ध-दीह-वाहू रक्ततलो-
वड्य-मउय-मंसल - सुजाय लखण-पसत्य-अच्छिद्रजाल - पाणी
पीवर-कोमल-वर-गुली आयंवतंव-तलिण-सुइ-रुडल-णिद्ध-णखे

बाहु, भुजगेश्वर-सर्पराज, तस्य विपुलभोग-विशालदेह, म च आदानाय-चान्द्रितवस्तुप्रह-
णाय 'पलिहउच्छ्रद्ध' पर्यवसित प्रेरित-मर्मया ऋडयप्रसारित, तद्वत् र्नीर्धा=लम्बौ-
विशालौ, वाहू=भुजौ यस्य स तथा, लम्बविशालवाहुमान-इत्यर्थ । 'रक्ततलो-वड्य-
मउय-मंसल-सुजाय-लखणपसत्य-अच्छिद्र-जाल-पाणी' रक्ततलो पचित-मृदु-मासल-
सुजात-लक्षणप्रगन्ता-च्छिद्रजाल पाणि, तत्र रक्तनलौ-रक्ते तले ययोस्तौ तथा, तलभागे रक्त-
वर्णयुक्तौ इत्यर्थ, उपचितौ पृष्ठभागे उन्नतौ, मृदुकौ-कोमलौ, मासलौ-पुष्टौ, सुजातौ-सुन्दरौ
प्ररास्तलक्षणौ-शुभचिह्नयुतौ, अच्छिद्रजालौ-च्छिद्रजालवर्जितौ, पाणी-हस्तौ यस्य स तथा,
'पीवर-कोमल-वर-गुली' पीवर-कोमल-वराङ्गुलि-पीवरा-पुष्टा, कोमला-मृदुला,
वरा-श्रेष्ठा, अङ्गुलयो यस्य स तथा, 'आयतत-तलिण-सुइ-रुडल-णिद्ध-णखे'
'आताम्र-ताम्र तलिन-शुचि रुचिर-स्निग्धनस-आताम्रताम्रा =ईषद्रक्ता, तलिना =प्रतला
शुचय =शुद्धा, रुचिरा =मनोज्ञा, स्निग्धा =सरसा, नसा यस्य स तथा, 'चदपाणि-
लेहे' चन्द्रपाणिरस-चन्द्राकारा पाणौ रेखा यस्य स, चन्द्रेखाचिह्नितहस्तवानित्यर्थ,

को ग्रहण करने के लिये फैलाये हुए सर्पराज के शरीर समान दीर्घबाहु थे ।
(रक्ततलो-वड्य-मउय-मंसल-सुजाय-लखण-पसत्य-अच्छिद्रजाल-पाणी) तलभाग
में लाल, पृष्ठभाग में उन्नत, कोमल, पुष्ट, शुभचिह्ना से युक्त, एव उठ्ठों से रहित
हाथ थे । (पीवर-कोमल-वर-गुली) हाथों का अगुलियों पुष्ट, कोमल एव
सुन्दर था । (आयतत-तलिण-सुइ-रुडल-णिद्ध-णखे) ईषद्रक्त, पतले, शुद्ध,
सुन्दर, एव चिकने नख थे । (चदपाणिलेहे) हाथों में चन्द्रेखा थी ।

दीह-वाहू] कर्ष घञ्छित वन्तु लेवाने भाटे इलाचला सर्पराजना शरीर
समान बाणा बाहुं इति (रक्ततलो-वड्य-मउय-मंसल-सुजाय-लखण-पसत्य
अच्छिद्र-जाल-पाणी] तणीयाना भागमा लाल, पाछणना भागमा उन्नत,
कोमल, पुष्ट, शुभ चिह्नोन्धी युक्त तेमञ्छिद्रो वगरना हाथ इति
[पीवर-कोमल-वर-गुली] हाथोनी आगणीञ्चो पुष्ट, कोमल तेमञ्छुद्ध
इती [आयतत-तलिण-सुइ-रुडल-णिद्ध-णखे] ईषद्रक्त पातणा, शुद्ध,
सुद्ध तेमञ्छिद्धा नञ् इति (चदपाणिलेहे) हाथोमा चन्द्रेखा इती

चंदपाणिलेहे सूरपाणिलेहे संखपाणिलेहे चक्रपाणिलेहे दिसा-
सोत्थियपाणिलेहे चंद-सूर-संख-चक्र-दिसासोत्थिय-पाणिलेहे
कणग-सिलायलुज्जल - पसत्थ-समतल-उवचिय-विच्छिण्ण-
पिहुलवच्छे सिरिवच्छंक्रियवच्छे अकरंडुय-कणग-रुयय-निम्मल-

‘सूरपाणिलेहे’ गङ्गपाणिरेख-गङ्गमेखायुक्तहस्त इत्यर्थ, ‘चक्रपाणिलेहे’
चक्रपाणिरेख-चक्रमेखायुक्तहस्त, ‘दिसासोत्थियपाणिलेहे’ दिक्स्वस्तिकपाणिरेख-
दक्षिणाऽऽवर्तस्वस्तिकाऽऽकार-रेखा-युक्त-हस्तान् इति भाव । ‘च-मूर-संख-चक्र-
दिसासोत्थिय-पाणिलेहे’ चन्द्रसूरगङ्गचक्रदिक्स्वस्तिकपाणिरेख चन्द्रमूर्याद्विहस्तरेखा
हस्ते विद्यमाना प्रगस्तफलप्रदा भवन्ति, तामिध्रन्द्रादिरेखाभिश्चिह्नितहस्तवानित्यर्थ,
‘कणग-सिलायलु-ज्जल-पसत्थ-समतल-उवचिय-विच्छिण्ण-पिहुलवच्छे’ कनक-
शिलातलो-ज्वल-प्रगस्त-समतलो-पचित-विस्तीर्ण-पृथुल-वक्षस्क - कनकशिलातलवत्-सौ-
वर्णपट्टिकावत्, उज्वल-देदी-यमान प्रगस्त-सुलक्ष्णोपेत समतलञ्च-उन्नताऽऽनतरहितम्,
उपचित-पुष्ट, विस्तीर्णपृथुलम्, -अतिविशाल, वक्ष-उरस्थल यस्य स तथा,

(मूरपाणिलेहे) सूररेखा यी, (संखपाणिलेहे) गखरेखा यी, (चक्रपाणिलेहे)
चक्ररेखा यी, (दिसासोत्थियपाणिलेहे) दक्षिणावर्त स्वस्तिक रेखा यी, (चद-
मूर-संख-चक्र-दिसासोत्थिय-पाणिलेहे) इस प्रकार चन्द्रमा, सूर्य, गख, चक्र
एव दक्षिणावर्त स्वस्तिक की रेखायों से भगवान के हाथ सुगोभित थे । (कणग-
सिलायलु-ज्जल-पसत्थ-समतल-उवचिय-विच्छिण्ण-पिहुल-वच्छे) कनक शिला
के समान-सुवर्ण के पाट के समान देदीप्यमान, शुभलक्षणों से युक्त, सम, पुष्ट,
विस्तीर्ण एव अतिविशाल वक्षस्थल या । वह वक्षस्थल (सिरिवच्छंक्रियवच्छे)

(सूरपाणिलेहे) सूर्यरेखा इती [सूरपाणिलेहे] शूररेखा इती (चक्र
पाणिलेहे) चक्ररेखा इती, (दिसासोत्थियपाणिलेहे) दक्षिणावर्त स्वस्तिक रेखा
इती (चद-सूर-संख-चक्र-दिसासोत्थिय-पाणिलेहे) ये प्रकारे यद्रमा, सूर्य,
शंख, चक्र तेभ्य दक्षिणावर्त स्वस्तिकनी रेखाभ्योथी लगवानना इति
सुगोभित इति (कणग-सिलायलु-ज्जल-पसत्थ-समतल-उवचिय-विच्छिण्ण
पिहुल-वच्छे) कनक शिला समान-मोनानी पाटाना जेषु देदीप्यमान,
शुभलक्षणेषावाणु, सरथु, पुष्ट, विशाल तेभ्य षडु पडोणु वक्षस्थल [छाती]
इतु ते वक्षस्थल (सिरिवच्छंक्रियवच्छे) श्रीवत्सना चिह्नवाणु इतु अने

सुजाय-निरुवहय-देह-धारी अट्टसहस्र-पडिपुण्ण-वरपुरिस-लक्खण-धरे सण्णयपासे संगयपासे सुंदरपासे सुजायपासे मियमाइय-

‘सिरिवच्छंक्रियवन्त्रे’ श्रावसाद्धित्तपक्षक-श्रीवसेन=शुभचिह्नत्रिशेषेण अङ्कित=चिह्नित-वक्ष-हृत्पस्कल यस्य स तथा, ‘अकरडुय-कणग-रुयय-निम्मल-सुजाय-निरुवहय-देह-धारी, अकरण्डुक-कनक-रचक-निर्मल-सुजात-निरुपहत-देहधारी, अकरण्डुक-‘करडुय’ इति देशोय शब्द, अदृश्यमान करण्डुक=पृष्ठभागादिष्वक यस्य देहस्य स अकरण्डुक, तथा कनकरुचक-सुवर्णवर्णयुक्त, तथा-निर्मल, सुजात, निरुपहत=रोगादिवाधारहितो यो देहस्त देह धरतीत्येव गीलो य स तथा, ‘अट्टसहस्र-पडिपुण्ण-वरपुरिस-लक्खण-धरे’ अट्टसहस्र-प्रतिपूर्णा-वरपुरुष-लक्षगधर-अष्टोत्तर सहस्रम्-अष्टसहस्र, प्रतिपूर्णम्-अन्यून, वरपुरुषाणा लक्षण-स्वस्तिकादिकम्, तस्य धर-धारक, महापुरुषाणामष्टोत्तरसहस्रपरिमितानि मुल्लक्षणानि सन्ति, तेषा सर्वेषा धारक-इति भाव । ‘सण्णयपासे’ सन्नतपार्श्व-सन्नतौ अधोऽधोऽनतौ पार्श्वौ-पार्श्व-भागौ यस्य स सन्नतपार्श्व, ‘सगयपासे’ सङ्गतपार्श्व-सङ्गतौ-प्रमाणोचितौ, पार्श्वौ-भुजमूलदध प्रदेशौ यस्य स, प्रमाणयुक्तपार्श्वप्रदेशवानिति भाव । ‘सुंदरपासे’ सुन्दरपार्श्व-दर्शनीयपार्श्वयुक्त, ‘सुजायपासे’ सुजातपार्श्व-सुन्दरपार्श्ववानित्यर्थ ।

श्रीवत्सके चिह्न से युक्त था । और प्रभुका शरीर (अकरडुय-कणग-रुयय-निम्मल-सुजाय-निरुवहय-देह-धारी) अकरण्डुक-अदृश्यमान पृष्ठभाग की हड्डीयुक्त, तथा सुवर्ण के जैसा निर्मल एव रोगादिक बाधा से रहित था । भगवान् (अट्टसहस्र-पडिपुण्ण-वर-पुरिस-लक्खण-धरे) न्यूनतारहित ऐसे १००८ स्वस्तिकादिक उत्तम पुरुषों के योग्य लक्षणों के धारक थे । भगवान् के शरीरका पार्श्वभाग (सण्णयपासे सगयपासे सुंदरपासे सुजायपासे मियमाइय-पीण-रइय-पासे) कमिक अवनत

प्रभुतु शरीर (अकरडुय-कणग-रुयय-निम्मल-सुजाय-निरुवहय-देह-धारी) अउर डुक-अदृश्यमान-न देभाय तेवी गीते वात्ता-अरडा-नी उरैउवाणु तथा येनाना वरु वेणु निर्भण तेमञ्च रेगादिठनी पीडा वगरतु डतु लगवान् (अट्टसहस्र पडिपुण्ण वर-पुरिस-लक्खण-धरे) न्यूनतारहित येवा १००८ स्वस्तिक आदिक उत्तम पुरुषोने योग्य लक्षणाना धारक डता लगवानना शरीरने पडधाने लाग (सण्णयपासे सगयपासे सुंदरपासे सुजायपासे मियमाइय पीण-रइय पासे) कमथी नमेडो डतो, उगित प्रभाणु येो डतो, सुदर

पीण-रडय-पासे उज्जुय-सम-सहिय-जच्च-तणु-कसिण-णिद्ध-
आइज्ज-लडह-रमणिज्ज-रोम-राई झस-विहग-सुजाय-पीण-कुच्छी
झसोयरे सुडकरणे पउम-वियड-णामे गंगावत्तग-पयाहिणावत्त-

‘ मियमाइय-पीण-रडय-पासे ’ मितमात्रिक-पीन-रतिद-पार्थ, तत्र-मितमात्रिकौ-
समुचितपरिमाणवन्तौ, पीनो-पुटौ, रतिदौ-रम्यौ, पार्थी-रुक्षाम्यामघो चामदक्षिणगरीर-
भागौ यस्य स तथा, ‘ उज्जुय-सम-सहिय-जच्च-तणु-कसिण-णिद्ध-आइज्ज-लडह-
रमणिज्ज-रोमराई ’ ऋजु-सम-महित-जाय-तनु-कृष्ण-स्निग्धा-ऽऽदेय-ललित-
रमणीय-रोमराजि, ऋजुकाणा-सरलाना, समनहिताना-मिलिताना, जायाना-
त्वजातयेषूत्तमाना, तनुना-सूक्ष्माणा, स्निग्धाना-सरसानाम्, आदेयानाम् उपादेयाना,
‘ लडह ’ ललिताना=रमणीयाना-मनोरमाणा रोम्णा राजि-पङ्क्तिर्यस्य स तथा, सग्ल-
सूक्ष्म-कृष्ण-सरम-रम्य-रोमराजिमान् इत्यर्थः । ‘ झस-विहग-सुजाय-पीण-कुच्छी
झप-विहग-सुजात-पीन-कुक्षि-मत्स्य-पक्षिगोरिव सुजात =सुन्दर, पीन-पुष्ट, कुक्षि-उदर
यस्य स तथा, ‘ झसोयरे ’ झपोदर-मीनवत्सुन्दरोदरवान् इति भावः । ‘ सुडकरणे ’
शुचिकरण-शुचीनि-पवित्राणि, करणानि-इन्द्रियाणि यस्य स, इन्द्रियाणा मलमहिष्वेऽपि
भगवदतिगयाद्-निर्मलतया निर्मल-निरुपलपेन्द्रियवान् इति भावः । ‘ पउम-वियड-

था, उचित प्रमाण से युक्त था, सुन्दर था, गोमन था, तथा-परिमित मात्रावाला,
पुष्ट पत्र रम्य था । रोमराजि (उज्जुय-सम-सहिय-जच्च-तणु कसिण-णिद्ध-आइज्ज-लडह-
रमणिज्ज-रोम-राई) सरल, परस्पर मे मिलित, उत्तम, पतली, काली, चिकनी, उपादेय
एव अत्यन्त मनोहर थी । उनको कुक्षि (झस-विहग-सुजाय-पीण-कुच्छी) मत्स्य एव
पक्षी के समान सुन्दर और पुष्ट थी । (झसोयरे) उनका उदर मत्स्य के जैसा सुन्दर
था । (सुडकरणे) इन्द्रियों यद्यपि स्वभावात् मलमहिनी हे, तथापि अतिशय के प्रभाव

हते, शोभन हते, तथा भयाहित घाटने पुष्ट तेमञ् रम्य हते रोमराजि
(शरीर उपरना वाङ्मनी पङ्क्ति) (उज्जुय-समसहिय-जच्च-तणु-कसिण-णिद्ध-
आइज्ज-लडह-रमणिज्ज-रोम-राई) सरली, परस्परभा भणी गथेदी, उत्तम,
पातणी, क्षणी, चिकणी, उपादेय तेमञ् अङ्गुल मनोहर हती तेमनी षष्प
(अङ्गल) (झस-विहग-सुजाय-पीण-कुच्छी) मत्स्य तेमञ् पक्षीना जेवी सुदर
थने पुष्ट हती (झसोयरे) तेमञ् उदर (पेट) माछलीना जेषु सुदर हतु
(सुडकरणे) इन्द्रियो न्तेके-वभावथी मलमहिनी छे तो षष्प अतिशयना

तरंग-भंगुर-रवि-किरण तरुण-बोहिय-अकोसायंत-पउम-गंभीर-वि-
यड-णाभे साहय-सोणंद-मुसल-दप्पण-णिकरिय-वर-कणगच्छ-
रसरिस-वरवइर-वलियमज्जे पमुइय-वरतुरग-सीह-वर-वट्टिय-कडी

णाभे' पद्म-विक्रट-नाम-पद्मकोशवद् विक्रटा-गम्भीरा नाभिर्यस्य स तथा, 'गगावत्तग-
पयाहिणावत्त-तरग-भगुर-रवि-किरण-तरुण-बोहिय-अकोसायत-पउम-गभीर-
-वियडणाभे' गङ्गाऽऽवर्तक-प्रदक्षिणाऽऽवर्त-तरङ्ग-भङ्गुर-रवि-किरण-तरुण-बोधित-
विकसत्पद्म-गम्भीर - विक्रट-नाम-त्र - गङ्गाऽऽवर्तकसम्बन्धिप्रदक्षिणावर्ततरङ्गवद्भङ्गुरा-
चक्राकारवर्तुला, रविकिरणतरुणबोधितविकसत्पद्मवद् गम्भीरा, विक्रटा=विणाल च
नाभिर्यस्य स तथा, 'साहय-सोणद-मुसल-दप्पण-णिकरिय-वरकणगच्छ-
सरिस-वरवइर-वलिय-मज्जे' महत्-सोणन्द-मुसल-दर्पग-निकरित-वरकनकसह-
सदृश-वरवज्र-वलित-मध्य-महत्-दक्षिममध्य यत्-सोणन्द=त्रिकाष्ठिका, मुसल-प्रसिद्ध,
दर्पग-दर्पगदण्ड, निकरितवरकनकसरु=निकरित=सारीकृत सर्वथा मण्डित यद्
वरकनक-श्रेष्ठसुवर्ग, तस्य सरु-सर्जुमुष्टि, एतेवामितरतरयोगइन्द्र, तै सदृश-वर-

से भगवान का इन्द्रियो निर्लेप रहता थीं। (पउम-वियडणाभे) नाभि पद्मकोश के समान
गभार था, (गगावत्तग-पयाहिणावत्त-तरग-भगुर-रवि-किरण-तरुण-बोहिय-अकोसायत-
पउम-गभीर-वियड-णाभे) तथा-गगावर्तक-सबधी प्रदक्षिणावर्तयुक्त तरग की तरह भगुर,
चक्रसमान गोल, मयाहकालके सूर्यकी किरणों द्वारा विकसित पद्म के समान
गभीर एव विणाल थी। (साहय-सोणद-मुसल-दप्पण-णिकरिय-वरकणगच्छ-
सरिस-वरवइर-वलिय मज्जे) कटिप्रदेश त्रिकाष्ठिका के मध्यभाग समान, मूसल के
मध्यभाग समान, दर्पग के दण्ड के मध्यभाग समान, चलकते हुए सोनेकी

प्रलावधी अगवाननी छद्रियो निर्लेप रहेती हुती (पउम-वियडणाभे) नाभि
पद्मकोश जेवी गभीर हुती (गगावत्तग-पयाहिणावत्त-तरग-भगुर-रवि किरण-
तरुण-बोहिय-अकोसायत-पउम-गभीर-वियड-णाभे) तथा-गगावर्तक सधधी
प्रदक्षिणावर्तयुक्त तरगनी चेडे लशुर, अकना जेवी-गोण, मध्याह-
काणना सूर्यना किरणोधी विडनेला पद्म समान गभीर तेमज्ज विशाल हुती
(साहय-सोणद-मुसल दप्पण णिकरिय वरकणगच्छ-सरिस-वरवइर-वलिय-मज्जे)
कटिप्रदेश त्रिकाष्ठिका (घोडी अथवा तिरपाछ)ना मध्यभाग जेवो, मूसलना
मध्यभाग जेवो, दर्पणना दण्डना मध्यभाग जेवो, अण्डता सोनानी भाडु

वर-तुरग-सुजाय-गुञ्ज-देसे आङ्गण-हउव्व गिरुवलेवे वर-
वारण-तुल्ल-विक्रम-विलसिय-गई गय-ससण-सुजाय-सन्निभोरू

वज्र इव वलित = क्षाम - कृश, मध्य = मध्यभागो यस्य स तथा, 'पमुइय-वरतुरग-
सीह-वर-वट्टिय-कडी' प्रमुदित-वरतुरग-सिंहवर-वर्तित-कटि - प्रमुदितस्य रोगादि-
रहिततया प्रमन्नस्य, वरतुरगस्य-श्रेष्ठस्य, तादृशस्य सिंहस्य चैव वग=श्रेष्ठा वर्त्तिता-
वर्तुला, कटिर्यस्य स तथा, 'वर-तुरग-सुजाय-गुञ्ज-देसे' वर तुरग-सुजात-गुह्यदेश -
वरस्य=श्रेष्ठस्य अश्वस्येव सुजात-सुन्दरो गुह्यदेशो यस्य स तथा। 'आङ्गणहउव्व गिरुव-
लेवे' आकीर्णहय इव निरुपलेप-आकीर्ण = मुलक्षणयुक्त उत्तम-जातीयो यो ह्य = अश्व.,
स इव निरुपलेप = निर्गत उपलेपात्—मलिनसम्पर्कात् इति निरुपलेप-निर्मल
इत्यर्थ । 'वर-वारण-तुल्ल-विक्रम-विलसिय-गई' वर-वारण-तुल्य-विक्रम-विलसित-
गति-वरवारणस्य=श्रेष्ठगजस्य तुल्य = समान विक्रम = पराक्रम, तथा तत्तुल्या विलमिता=
चरणसचरणगणनरहिता गतिर्गमन यस्य स, गजेन्द्रवदतुल्यलज्जाली ललितगमनशीलश्चेति
भावः । 'गय-ससण-सुजाय-सन्निभोरू' गज-असन-सुजात-सन्निभोरू-गजअसनस्य=
हस्तिशुण्डादण्डस्य सुजातस्य=सुष्ठुत्पन्नस्य हस्तिअसनस्यैव सन्निभौ-सदृशौ

खड्गमुष्टि के मध्यभाग समान और व्रजके मध्यभाग समान पतला था । तथा
(पमुइय-वरतुरग-सीह-वर-वट्टिय-कडी) कटिप्रदेश रोगादिरहित होने से प्रसन्न श्रेष्ठ
घोड़े के समान और सिंह के समान गोल था । (वर-तुरग-सुजाय-गुञ्ज-देसे)
गुह्य प्रदेश सुन्दर घोड़े के गुह्य प्रदेश के समान था । (आङ्गणहउव्व गिरुवलेवे)
आकीर्ण जातीय घोड़े के गुह्य प्रदेश के समान भगवानका गुह्य प्रदेश निरुपलेप था ।
तथा (वर-वारण-तुल्ल-विक्रम-विलसिय-गई) भगवानका पराक्रम उत्तम हाथी के समान था,
तथा उनकी गति भी उसीके समान सुन्दर थी । (गय-ससण-सुजाय-सन्निभोरू) हस्तिशुण्डा-

शुडीना मध्यभाग जेवो अने वज्रना मध्यभाग जेवो पातणो हुतो तथा
(पमुइय-वरतुरग-सीह-वर-वट्टिय-कडी) कटिप्रदेश रोग आदिउथी रहित
छोवाथी प्रसन्न श्रेष्ठ घोडानी पेटे अने सिङ्गनी पेटे गोल हुतो (वरतुरग-सु-
जाय-गुञ्ज-देसे) गुह्यप्रदेश सुन्दर घोडाना गुह्यप्रदेशना जेवो हुतो (आङ्-
णहउव्व गिरुवलेवे) आकीर्ण-अतवान घोडाना गुह्यप्रदेशना जेवो भगवानने
गुह्यप्रदेश निरुपलेप हुतो तथा (वर-वारण-तुल्ल-विक्रम-विलसिय-गई)
भगवानसु पराक्रम उत्तम हाथीना जेवु हुतु, तथा तेमनी आल पणु तेना

समुग्ग-णिमग्ग-गूढ-जाणू एणी-कुरुविंदा-वत्त-वट्टा-णुपुव्व-जंघे संठिय-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-गूढ-गुप्फे सुपइट्ठिय-कुम्म-चारु-चलणे

ऊरु यस्य स तथा, सुन्दर-गजशुग्दादण्डसदृशोऽयुगलानिति भावः, 'समुग्ग-णिमग्ग गूढ-जाणू' समुद्ग-निमग्ग-गूढ-जानु-समुद्ग-सम्पुटक-तन्वोपगित्ताधस्तन-रूपयोर्भागयो सधिवत् निमग्गगूढे=अत्यन्तावृत्ते-मामपुष्टे इत्यर्थः, तादृशे जानुनी 'घुटना' इति प्रसिद्धे यस्य स तथा, उपचित्ताददृश्यमानजान्वरिक्क इत्यर्थः । 'एणी-कुरुविंदावत्त-वट्टा-णुपुव्व-जंघे' एणी-कुरुविन्द - वर्र वृत्ता-नुपूर्व्यजद्ध - एण्या-हरिण्या इव, कुरुविन्द-तृणविशेष, वर्र=मूत्रमलनक च, ते इव च वृत्ते-वर्तुले, आनुपूर्व्येण तनुरूपा जद्धे यस्य स तथा यद्वा-एणी-कुरुविन्दावर्त्त-वृत्ता-नुपूर्व्यजद्ध-इति ञ्छाया, तत्र-एण्या इव, कुरुविन्दावर्त्त =भूषणविशेष इव च वृत्ते=वर्तुले आनुपूर्व्येण तनुस्वरूपे जद्धे यस्य स तथा, 'संठिय-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-गूढ-गुप्फे' सस्थित-सुश्चित्त-विशिट्ठ-गूढ-गुल्फ-सरियतौ-सुसस्थानवन्ती, सुश्चित्तौ-

दण्ड के समान उन प्रभुकी दोना जघाएँ थीं । (समुग्ग-निमग्ग-गूढ-जाणू) डिब्बे के समान प्रभुके घुटने गुप्तदकनी से युक्त एव अन्तर रहित होनेसे सुन्दर थे । अर्थात् उपचित होनेसे प्रभुके जानु की अस्थियाँ दृष्टिगोचर नहीं होती थीं । (एणी-कुरुविंदा-वत्त-वट्टा-णुपुव्व-जंघे) एणी-हिरणी की जद्धा समान, तथा-कुरु-विन्द-तृणविशेष और टोरी के बलके समान अथवा कुरुविन्दावर्त्त नामक भूषणके समान गोल पतली-ऊपर से मोटी नीचेकी ओर उतरती २ पतली प्रभुकी दोनो जघाएँ थीं । (संठिय-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-गूढ-गुप्फे) गोमन आकारयुक्त, अच्छी

जेवीञ् सुद्धरु इती (गच ससण-सुजाय-सन्निभोर) इस्तिथु उड उना (छाथीना सूढना) जेवी ते प्रभुनी अन्ने जघायेो इती (समुग्ग-णिमग्ग गूढ-जाणू) उण्णानी पेठे प्रभुना धुट्ठो सुत्त ढाकणुवाणा तेमञ् अतर रहित 'छावाथी सुद्धरु इती, अर्थात् उपचित छावाथी प्रभुना धुट्ठुना छाउडा द्वेषाता नडता (एणी कुरुविंदा-वत्त वट्टा-णुपुव्व-जंघे) एणी-हिरणीनी जघा-समान, तथा-कुरुविन्द तृणविशेष, अने टोरीनी वल समान, अथवा 'कुरु-विन्दावर्त्त' नामक भूषण समान गोल पातली उपरती नडी तेमञ् नीचेनी तरङ्ग उतरती उतरती पातली प्रभुनी अन्ने जघायेो इती (संठिय-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-गूढ-गुप्फे) शोलायमान आकारवाणा, सारी रीते भण्डेला तेमञ्

अणुपुव्व-सुसंहयं-गुलीए उण्णय-तणुतंव-णिद्ध-णक्खे रत्तुप्पल-
पत्त-मउय-सुकुमाल-कोमल-तले नग-नगर-मगर-सागर-चक्क-क-

सुमिलितौ, गृहौ-मासलवात्-दृश्यौ गुल्फौ यस्य स तथा, पुष्टतया तिरोहितगुल्फ ।
'सुप्पइद्विय-कुम्म-चरुचलणे' सुप्रतिष्ठित-वृग्गचारु-चग्ण-सुप्रतिष्ठितौ शोभनरूपेण
नियतौ, कर्मवत्-कण्ठपान् चारु-मुन्दरौ चग्णौ यस्य स तथा, लकोचिताङ्गक-
चपपृष्ठचरणवानिति भाव । 'अणुपुव्व-सुसहय-गुलीए' आनुपूर्व्य-सुमहताऽङ्गु-
लीक-आनुपूर्व्येण-रुमेण हीयमाना वर्द्धमाना वा, तथा सुमहता-विभिन्ना अपि
समिलिता अद्भुत्य-चरगाङ्गुयो यस्य स तथा, 'उण्णय-तणु-तव-णिद्ध-
णक्खे' उन्नत-तनुताम्र-स्निग्ध-नर-समुन्नत-प्रतल-रक्तचिह्ण-नर-युक्त इयर्थ,
'रत्तुप्पल-पत्त-मउय-सुकुमाल-कोमल-तले' रक्तोपल-पत्र मृदुक-सुकुमार-कोमलतल-रक्त-रु-
मलदल-प्रदनि-कोमलारणवर्ण-चरणतलमानियर्थ । 'नग-नगर-मगर-सागर-चक्क-वरग-
मगल-किय-चलणे' नग-नगर-मकर-सागर-चक्राङ्क-वराङ्क-मङ्गलाङ्कित-चरण, तत्र-नग-पर्वत,

रीति से मिलित एव गृह-मासल-पुष्ट होनेसे अदृश्य ऐसे प्रभुके दोनों पैरोंके
गुल्फ ये । (सुप्पइद्विय-कुम्म-चारु-चलणे) प्रभुके पाँव सकुच कर बैठे हुए
कण्ठके समान मुन्दर ये । (अणुपुव्व-सुसहय-गुलीए) अनुक्रमसे उचित आकार-
रवाली एव भिन्न २ होने पर भी परस्पर में समिलित प्रभुके चरणोंकी अगुलिया थीं ।
(उन्नय-तणु-तव-णिद्ध-णक्खे) समुन्नत, प्रतल, रक्त एव चिक्कग प्रभुके नर
थे । (रत्तुप्पल-पत्त-मउय-सुकुमाल-कोमल-तले) रक्तकमलके दलके समान
अति कोमल लालवर्णके प्रभुके चरणोंके तले ये । (नग-नगर-मगर-सागर-
चक्क-क-वरग-मगल-किय-चलणे) नग-पर्वत, नगर-पुर, मकर-जलचरजीविशेष,

शूढ मानस पुष्ट डोवाथी न देणाय जेवा प्रभुना जन्ने पणना गोडल्लो डता
(सुप्पइद्विय कुम्म-चारु चलणे) प्रभुना पग न कुयार्थने जेठेला डायथानी
पेठे सुहर डता (अणुपुव्व सुसहय गुलीए) अनुक्रमथी उचित आकारवाणी
तेमज्ज बुद्धी बुद्धी डोवा छता पणु परस्परमा जेडाजेली प्रभुना थरल्लोनी
आगणीज्जो डती (उन्नय तणु तव-णिद्ध-णक्खे) समुन्नत, प्रतल, लाल
तेमज्ज थिडल्लो प्रभुना नथ डता (रत्तुप्पल पत्त-मउय-सुकुमाल-कोमल-तले),
रक्त कमलना दलना जेवा अतिशय कोमल लाल वर्णना प्रभुना थरल्लोना
तणिया डता (नग-नगर-मगर-सागर-चक्कक वरग-मगल-किय-चलणे)
नग पर्वत, नगर पुर, मकर-जलचर एव विशेष, सागर-समुद्र अने थक

वरंग-मंगलं-किय-चलणे विसिद्धरूवे हुयवह-निद्रूम-जलिय-तडि-
तडिय-तरुण-रवि-किरण-सरिस-तेए अणासवे अममे अकिंचणे

नगरं=पुर, मकर =जलचरजीविशेष, सागर =समुद्र, चक्र=प्रमिद्धम्, एतान्येव अङ्ग-
लक्षणानि, तथा वराऽङ्गाध=शुभमृचकस्वरितक्रादिलक्षणानि, मङ्गल =शुभलक्षण-
विशेषध, तैरलङ्कृतौ मुगोमितौ-चरणौ यस्य स तथा, नगनगरमकरादिचिह्न-स्वस्तिका-
दिचिह्न-मङ्गलचिह्नरूप-शुभलक्षणमुगोमितचरणयुगवानिति भाव । 'विसिद्धरूवे' विशि-
ष्टरूप-अतिसुन्दर, 'हुयवह-निद्रूम-जलिय-तडितडिय-तरुण-रवि-किरण-सरिस-तेए'
हुतवह - निर्द्रूम - ज्वलित - तटितडि - तरुण - रवि-किरण - सदृश - तेजस्क,
हुतवहनिर्द्रूमज्वलितस्य=अग्नेर्निर्द्रूमज्वालाया, तडितडित - धारावाहिकतया पुन
पुनर्विद्योतितविद्युत्, -तथा तरुणरविकिरणाना-सदृश=समान तेज -दीप्तिर्यस्य स
तथा, 'अणासवे' अनासव-अविद्यमाना आसवा यस्य स तथा,
कर्मोगमग्रहित इत्यर्थे, 'अममे' अमम-ममत्वरहित 'अकिंचणे' अकिंचन-नास्ति

सागर-समुद्र और चक्र इनके शुभ चिह्नों से, स्वस्तिकादि शुभ चिह्नों से तथा
मङ्गल नामक शुभ चिह्नसे मुगोमित प्रभुके दोनों चरण थे । (विसिद्धरूवे) प्रभुका
रूप विगिष्ट-असाधारण अर्थात् अनुपम था । (हुयवय-णिद्रूम-जलिय-तडित-
डिय-तरुण-रवि-किरण-सरिस-तेए) निर्द्रूम अग्नि के समान, बार बार चम-
कती हुई बिजला के समान तथा मध्याह्नकालिक रविकिरणोंके समान प्रभुका तेज
था । (अणासवे) नवीन कर्मोंके आसवसे प्रभु सर्वथा रहित थे । (अममे)
प्रभुके किसी भी पर पदार्थमे ममत्व नहीं था । (अकिंचणे) प्रभु अकिंचन-परिग्रह-
रहित थे । (छिन्नसोए) भगवानन अपनी भवपरम्पराको नष्ट कर दिया था ।

येना मुल चिह्नोथी-स्वस्तिकादि शुभचिह्नोथी, तथा भगवनाभक्त चिह्नोथी
सुशोभित प्रभुना अग्ने चरुणु हुता (विसिद्धरूवे) प्रभुनु ३५ विशिष्ट असाधा-
रुणु अर्थात् अनुपम हुतु (हुयवह णिद्रूम जलिय तडि तडिय-तरुण रवि-
किरण-सरिस तेए) धुमाडा वगरना अग्निना जेपु, बारबार अणकती विज-
लीना जेपु, तथा मध्याह्न काणना सूर्यना किरणो जेपु प्रभुनु तेज हुतु
(अणासवे) नवीन कर्मोना आसवथी प्रभु सर्वथा रहित हुता (अममे)
प्रभुने कोष्ठ पणु पर पदार्थभा भवत्व नहोतु (अकिंचणे) प्रभु अकिंचणु-परि-
ग्रह वगरना हुता (छिन्नसोए) भगवाने पोताना भवपरपरानो नाथ कदी

छिन्नसोए निरुवलेवे ववगय-पेम-राग-दोस-मोहे निग्गंथस्स
पवयणस्स देसए सत्थनायगे पइट्ठावए समणगपई समणग-

किञ्चन यस्य स तथा, परिग्रहप्रन्थिरहित । 'छिन्नसोए' छिन्नस्रोता-निवर्तित-
भवप्रवाह, 'निरुवलेवे' निरुपलेप-उपलेपो-मालिन्य, तद् द्विविध द्रव्यरूप भावरूपञ्च,
तादृगाद् द्विविधादुपलेपात्-निर्गतो निरुपलेप, द्रव्यतो निर्मलशरीर, भावत कर्मन्धहतु-
भूतोपलेपरहित । पूर्वोक्तमेवार्थं विशेषत स्पष्टयन्नाऽऽह 'ववगय-पेम-राग-दोस-मोहे'
व्यपगतप्रेमरागद्वेषमोहः-प्रेम च रागश्च द्वेषश्च मोहश्चेति प्रेमरागद्वेषमोहा । प्रेम-आसक्ति-
लक्षणम्, राग-विषयेषु अनुरागरूप, द्वेष-अप्रीतिरूप मोह-अज्ञानरूप, एते
प्रेमादयो व्यपगता-विनष्टा यस्य स तथा, 'निग्गयस्स पवयणस्स देसए'
निर्ग्रन्थस्य प्रवचनस्य देशक-निर्ग्रन्थस्य-निर्गत ग्रन्थाद् द्रव्यत सुवर्णादिरूपाद्,
भावतो मिथ्यात्वादिलक्षणात्-निर्ग्रन्थ तस्य निर्ग्रन्थस्य, प्रवचनस्य-प्रकर्षण-
उच्यते-परमकन्याणाय कथ्यते-इति प्रवचनम्-तस्य प्रवचनस्य देशक-उपदेशक-
निरारम्भ-निष्परिग्रह-धर्मोपदेशक इति भाव । 'सत्थनायगे' सार्थनायकः-सार्थस्य-
मोक्षप्रस्थितभन्व्यसमूहस्य, नेता-त्वामीयर्थ 'पइट्ठावए' प्रतिष्ठापक-श्रुतचारित्र-
लक्षणधर्मवस्थापक । 'समणगपई' श्रमणकपति-श्राम्यति=सोसाह कर्मनिर्जराय

(निरुवलेवे) द्रव्य एव भाव रूप दोनों प्रकारकी मलिनतासे प्रभु वर्जित थे ।
इसी बातको पुन विशेष रूपसे इन विशेषणों से सूत्रकार स्पष्ट करते हैं-(ववगय-
पेम-राग-दोस-मोहे) भगवानने अपनी आत्मा से प्रेम, राग द्वेष एव मोहको नष्ट
कर दिया था । (निग्गयस्स पवयणस्स देसए) प्रभु निर्ग्रन्थ प्रवचनके उपदेशक
थे । (सत्थनायगे) मोक्षकी ओर प्रस्थित भन्व्यसमूहके भगवान नेता थे । (पइ-
ट्ठावए) श्रुतचारित्ररूप धर्मके प्रभु स्थापक थे । (समणगपई) भगवान् तप एव

हीधे। हुतो (निरुवलेवे) द्रव्य तेभञ्ज लावइय णन्ने प्रक्षारणी मलिनताथी
प्रभु वर्जित हुता आ वातने इरीने विशेष इयथी तेमना अगोना विशे-
षल्ले।थी सूत्रकार स्पष्ट करे छे (ववगय पेम-राग-दोस मोहे) भगवाने
पोताना आत्माभाथी प्रेम, राग, द्वेष तेभञ्ज मोहनेना नाथ कथी हुतो
(निग्गयस्स पवयणस्स देसए) प्रभु निर्ग्रन्थ प्रवचनना उपदेशक हुता
(सत्थनायगे) मोक्षना तरङ्ग वणेला लव्यनभूहुना भगवान नेता हुता
(पइट्ठावए) श्रुत चारित्रइय धर्मना प्रभु सस्थापक हुता (समणगपई)

विन्द-परियड्ढिए चउत्तीस-बुद्धा-इसेस-पत्ते, पणतीस-सच्चयवणा-

श्रम कुर्वन्ति तप-स्वाध्यायादिषु इति श्रमगा-त एव श्रमगका, तेषा पति-चतुर्विधसद्धाधिपतिरिति भाव, 'समणग-विन्द-परियड्ढिए' श्रमगक-वृन्द-परिवर्द्धक-श्रमणकाना चतुर्विधाना, वृन्द-सद्ध-तस्य परिवर्द्धक-गृहिकारी। अथवा 'परियट्टए' पर्यट्टक-अग्रेसर, यद्वा पयायक-तै परिपूर्ण। 'चउत्तीस-बुद्धाइसेस पत्ते' चतुस्त्रिंशद्-बुद्धातिशेष-प्राप्त = चतुस्त्रिंशत् = चतुस्त्रिंशत्-रयका ये बुद्धाना-तीर्थकरागाम् अतिशेषा-अतिशया तान् प्राप्त, तत्र-अवृद्धिस्वभावक केगश्मश्रुगेमनसमिति प्रथमोऽतिशय, अन्येऽप्यतिशया समवायाङ्गसूत्रेऽभिहितास्ततोऽवगन्तव्या। 'पणतीस-सच्चयवणाइ-सेस-पत्ते' पञ्चत्रिंशत्सत्यवचनाऽतिशेषप्राप्त-पञ्चत्रिंशत्सत्प्रका ये सयवचनस्य अति-शेषा-अतिशया तान् प्राप्त, अथात् पञ्चत्रिंशद्वाणीगुणयुक्त इति भाव। पञ्चत्रिंशद्वाणीगुणा आचाराङ्गसूत्रस्य मत्कृताऽऽचारचि तामगिटीकाया प्रथमाध्ययने

स्वाध्याय आदि क्रियाओमे कर्मनिर्जराके लिये परिश्रम करनेवाले श्रमणोंके स्वामी ये। (समणग-विन्द-परियड्ढिए) चतुर्विध रघके वे प्रभु वर्द्धक थे। अथवा उसके अग्रेसर या उससे परिपूर्ण थे। (चउत्तीस-बुद्धाइसेस-पत्ते) तीर्थकरोंके चौत्तीस अतिशयोक्ते प्रभु विराजमान थे। इनमें नग, केग एवश्मश्रु-दाढी-मूँडका नहीं बढना यह पहला अतिशय है, अवशिष्ट अतिशय समवायाङ्ग सूत्र से जान लेना चाहिये। (पणतीस सच्चयवणा-इसेस-पत्ते) वागोंके पैतास गुणों से प्रभु युक्त थे। ३५वाणी-गुणरूप अतिशय आचाराग सूत्रके प्रथम अध्ययनकी आचारचितामगि टीका में कहे हैं, अत वहा से जान लेना चाहिये। (आगासगएण चकेग) आकाशगत

लगवान तप तेभञ्ज स्वाध्याय आदि क्रियाओमा कर्मनिर्जराने माटे परि श्रम करवावाण श्रमणाना स्वामी हुता (समणग विन्द परियड्ढिए) चतुर्विध सधना ते प्रभु वर्द्धक हुता अथवा तेना अत्रेअर डे तेनाथी परि पूर्ण हुता (चउत्तीसबुद्धा इसेसपत्ते) तीर्थकराना चोत्तीस अतिशयोक्ती प्रभु विराजमान हुता तेमा नथ केश तेभञ्ज श्मश्रु-दाढी मूँडतु न बधतु ओ पडेले अतिशय छे, आडीना अतिशय समवायाग सूत्रथी न्वाणी देवा जेधजे (पणतीस सच्च यवणाइसेस-पत्ते) वाणीना पात्तीस शुद्धोक्ती प्रभु युक्त हुता उप वाणी शुद्ध अतिशय आचाराग सूत्रना प्रथम अध्ययननी आचार चितामगि टीकाभा ठडेला छे, अटडे त्याथी ते न्वाणी देवा

इसेस-पत्ते आगासगएणं चक्रेणं आगासगएणं छत्तेणं आगास-
मियाहिं चामराहिं (आगामगएणं फालियामएणं सपायवीढेणं
सीहासणेणं) धम्मज्जएणं पुरओ पकडिज्जमाणेणं चउदसहिं सम-
णसाहस्सीहि छत्तीसाए अज्जियासाहस्सीहि सद्धिं संपडिबुडे

याग्याता, 'आगासगएण चक्रेण' आकाशगतनेन चक्रेण । 'आगासगएण-
उत्तेण' आकाशगतनेन उत्तरेण । 'आगाममियाहिं' आकाशमिताभ्याः=प्रागाभ्याः,
'चामराहिं' चामराभ्याः-अतिशयप्रभावाच्चक्रादिभिस्त्वप्युक्तं इति भावः । 'आगास-
गएण फालियामएण' आकाशगतनेन स्फटिकमयेन-आकाशस्थितेन स्फटिकनिर्मितेन
'सपायवीढेण' सपादपीठेन-पादस्थापनपीठमहितेन 'सीहासणेण' सिंहासननेन,
'धम्मज्जएण' धर्मव्यजनं, 'पुरओ' पुरतः-अग्रतः, 'पकडिज्जमाणेण' अतिशय-
महिम्ना प्रकटचमानेन 'चउदसहिं समणसाहस्सीहि' चतुर्दशभिः-अग्रगसाहस्रीभिः
श्रमगाना चतुर्दशमहत्तै 'उत्तीसाए अज्जियासाहस्सीहि' पट्टिगता आर्यिकासाह-
स्रीभिः-आर्यिकाणा पट्टिगतासहस्रै 'सद्धिं' सद्धिं-मह । 'सपडिबुडे' सम्पत्तिवृत्त -

चक्रसे, (आगासगएण उत्तेण) आकाशगत उत्तरे से (आगासमियाहिं चामराहिं)
आकाशगत चामरा से वे प्रसु उपलक्षित ये । (आगासगएण फालियामएण
सपायवीढेण- सीहासणेण धम्मज्जएण पुरओ पकडिज्जमाणेण) आकाशगत,
स्फटिकमय एव पादपाठमहित पैसे सिंहासन से एव अतिशय का महिमा से प्रकटित
और आग २ चलनवाले ऐमे धर्मव्यजा से युक्त, तथा-(चउदसहिं समणसाहस्सीहि
उत्तीसाए अज्जियासाहस्सीहि सद्धिं सपरिबुडे) १४ हजार श्रमणों के, एव

लोभश्चे (आगासगएण चक्रेण) आकाशगत चक्रेथी (आगासगएणं छत्तेण)
आकाशगत छत्तेथी (आगासमियाहिं चामराहिं) आकाशगत चामराथी ते
प्रभु उपलक्षित (दिखाता) हुता (आगामगएण फालियामएण सपायवीढेण सीहा
सणेण धम्मज्जएण पुरओ पकडिज्जमाणेण] आकाशगत, स्फटिकमय तेभव
पादपीठं महितं श्रेयाः सिंहासनथी तेभ्यः अतिशयनी महिमाथी प्रकटित
अने आगय आगय आलनाः श्रेयाः धर्मव्यजनथी युक्त [चउदसहिं समणसा
हस्सीहि उत्तीसाए अज्जियासाहस्सीहि सद्धिं सपरिबुडे] १४ हुता श्रमणानां तेभ्यः
छत्तीसहुता आर्याश्रेयाणां पट्टिगताथी युक्तं लक्षणं श्री महावीर प्रभु

पुव्वाणुपुर्वि चरमाणे गामाणुगामं दूडज्जमाणे सुहंसुहेणं विहर-
माणे चंपाए णयरीए वहिया उवणगरग्गामं उवागए चंपं नगरिं
पुण्णभदं चेइयं समोसरिउकामे ॥ सू० १६ ॥

भगवान्—श्रीमहावीर, 'पुव्वाणुपुर्वि' पूर्वानुपूर्व्या—तीर्थकरपरिपाट्या—तीर्थकरपर-
म्परया । 'चरमाणे' चरन्—विहरन्, 'गामाणुगाम' ग्रामानुग्रामम् एकस्माद्
ग्रामाद् ग्रामान्तरम्, 'दूडज्जमाणे' द्रवन्—गच्छन् एकस्माद् ग्रामादनन्तर ग्राममनुज्ज-
द्वघयन्नित्यर्थ, 'सुहंसुहेण' सुरससुखेन—नयनवाधारहितेन, 'विहरमाणे' विहरन्—अप्र-
तिनद्रविहार कुर्वन्, 'चंपाए नयरीए' चम्पाया नगर्या, 'वहिया' वहि
'उवणगरग्गाम' उपनगरग्रामम् नगरसमीपवर्तिन ग्रामम् । 'उवागए' उपागत—सम-
वमृत, किमर्थमुपागत इत्याह—'चप णयरीं' चम्पाया—चम्पानाम्प्या नगर्या
'पुण्णभद चेइयं समोसरिउकामे' पूर्णभद्र=पूर्णभद्रनामक चैत्यम्=उद्यान समबस-
तुकाम—आगन्तुकाम सन् उपागत इति सम्बन्ध ॥ सू० १६ ॥

उत्तीसहजार आर्थिकाओं के परिवार से युक्त भगवान् श्रीमहावीर प्रभु (पुव्वाणुपुर्वि
चरमाणे) तीर्थकरों की परंपरा के अनुसार विहार करते हुए (गामाणुगामं
दूडज्जमाणे) एकग्राम से दूसरे ग्राम पधारते हुए (सुहंसुहेणं विहरमाणे) सुख
सुख से विचरते हुए (चंपाए णयरीए वहिया उवणगरग्गाम उवागए) चंपा-
नगरी के बाहरभाग की ओर स्थित, परन्तु वहा से बहुत दूर नहीं, किन्तु थोड़ी
दूर पर रहे हुए ऐसे ग्राम में पधारें, यहा आने का कारण उनका यह था कि
वे प्रभु (चप णयरीं पुण्णभद चेइयं समोसरिउकामे) चंपानगरी के पूर्णभद्र नामक
उद्यान में पधारनेवाले थे ॥ सू० १६ ॥

(पुव्वाणुपुर्वि चरमाणे) तीर्थकरोंने परंपराने अनुसरने विहार करता
करता (गामाणुगामं दूडज्जमाणे) एक गाँवथी ओरने गाँव पधारता
(सुहंसुहेणं विहरमाणे) सुख सुखेथी विचरता (चंपाए णयरीए वहिया उव-
णगरग्गाम उवागए) यथा नगरीनी ओरनेना लाग तरङ्ग परन्तु ओनाथी ओहु
दूर नहि पणु नरा दूर आवेवा ओवा गाँवभा पधार्या ओही आवेवातु
कारण तेभने ओ हुतु वे ते प्रभु (चप णयरीं पुण्णभद चेइयं समोसरिउकामे)
चंपानगरीनी पूर्णभद्र नामना उद्यानभा पधारवावाणा हुता [सू. १६]

मूलम्—तए णं से पवित्तिवाउए इमीसे कहाए लद्धट्टे
समाणे हट्ट-तुट्ट-चित्त-माणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए

टीका—‘तए ण’ इत्यादि, तत गच्छ=यदा भगवान्-चम्पानगरीसमीपग्राम-
मुपागत तदनन्तर-तपश्चात्, ‘से पवित्तिवाउए’ म प्रवृत्तिव्यापृत =स
पूर्वोक्त-भगवद्वाक्ताऽऽनयन नियुक्त ‘इमीसे कहाए’ अस्या क्रियाया ‘लद्धट्टे
समाणे’ लब्धार्थ सन्-ज्ञातभगवद्गमनवृत्तान्त सन्, ‘हट्ट-तुट्ट-चित्त-माणंदिए’
हट्ट-तुट्ट-चित्त-नन्दित-हट्टतुट्ट=अतितुट्टम्, यदा हट्ट=हर्षितम्, तुट्टम् प्राप्तसन्तोष-
तादृश चित्त यस्य स हट्टतुट्टचित्त, अत एव आनन्दित =आनन्द प्राप्त सजात-
मानसोच्छास इत्यर्थ । सूत्रे ‘चित्तमाणंदिए’ इत्यत्र मकार प्राकृतत्वात् ।
‘पीइमणे’ प्रीतिमना-प्रीति-तृप्तिर्मनसि यस्य स प्रीतिमना-तृप्तमानस ।
‘परमसोमणस्सिए’ परमसौमनस्यित-परमम्-उच्छ्रुत् च तत् सौमनस्य प्रसन्नचित्तता
चेति परमसौमनस्य तदस्य सजात परमसौमनस्यित परमानुरागपूर्णमनस्क,

‘तए ण से पवित्तिवाउए’ इत्यादि—

(तए ण) जब भगवान् चपानगरी के समीपवर्ता ग्राम में पधारे तब
(से पवित्तिवाउए) भगवान् की वार्ता के लाने के लिये नियुक्त क्रिया हुआ
वह पुरुष (इमीसे कहाए) इस समाचार को (लद्धट्टे समाणे) जानकर कि
भगवान् चपानगरी के समीपवर्ता ग्राम में आकर विराजमान हो चुके हैं, (हट्ट-तुट्ट-
चित्त-माणंदिए) इससे उसके चित्त में अत्यन्त हर्ष और सन्तोष हुआ । अत
वह अत्यन्त आनन्दित हुआ, (पीइमणे) मन में प्रेम आ गया, (परमसोमणस्सिए)
अथ अनुराग से उसका मन भर गया (हरिस-वस-विसप्पमाण-दियए) अपार

‘तए ण से पवित्तिवाउए’ इत्यादि—

(तए ण) ल्यादे लगवान् चपानगरीना समीपवतीं गाभमा पधार्थी ल्यादे
(से पवित्तिवाउए) लगवान् की वार्ता-समाचार लध् जवा भाटे निभायेला
ते पुरे (इमीसे कहाए) ओ समाचारने (लद्धट्टे समाणे) ज्ञाया हे लगवान्
चपानगरीना समीपवतीं गाभमा आवीने विराजमान थध् चूक्या छे,
(हट्ट तुट्ट चित्त-माणंदिए) आथी तेना मनमा अत्यत हर्षं अने सतोष
थथी अने तेथी ते जहु आनन्द पाभ्ये, (पीइमणे) मनमा प्रेम छवाध
गथी, (परमसोमणस्सिए) अत्यत अनुरागथी तेनु मन लराध् गथु,

हरिस-वस-विसप्पमाण-हियए ण्हाए कयवलिकम्मे कय-कोउय-
मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पवेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवर परिहिए
अप्प-महग्घा-भरणा-लंकिय-सरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिम्ब-

‘हरिस-वस-विसप्पमाण-हियए’ हर्ष-वश-विसर्प-हृदय-हर्षवशेन विसर्पत्-परित
उच्छल्द् हृदय यस्य स तथा, भगवदर्शनादमन्दानन्दतरङ्गसमुच्छ्रितचित्त इत्यर्थः ।
‘ण्हाए’ स्नात-कृतस्नान, ‘कयवलिकम्मे’ कृतवलिकर्मा-स्नाने कृते पशुपक्ष्या-
घर्ष कृतान्नभाग ‘कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते’ कृत-कौतुक-मङ्गल-प्रायश्चित्त-
कृतानि कौतुकमङ्गलान्येव प्रायश्चित्तानि-दु स्वप्नादिविघातार्थमवश्यकरणीयत्वात् येन स
तथा, तत्र कौतुकानि=मपीतिलकादीनि, मङ्गलानि तु सिद्धार्थदध्यक्षतादीनि । ‘सुद्धप्प-
वेसाइ’ शुद्धप्रवेश्यानि-शुद्धानि=प्रक्षालितत्वात् निर्मलानि, प्रवेश्यानि=राजसभाप्रवेशाऽऽर्हाणि
-राजसभायोग्यानि ‘मंगलाइ’ मङ्गलानि-मङ्गलकारकाणि, ‘वत्थाइ’ वखाणि-विविधरूप-
प्रकाराणि—‘पवर’-प्रवराणि-मूल्यतो महार्घाणि, रूपत उज्ज्वलानि मृदूनि सान्द्राणि
च, प्राकृतत्वाद् विभक्तैर्लोप, ‘परिहिए’ परिहित-गरारे यथास्थान योजित ।
‘अप्प-महग्घा-भरणा-लंकिय-सरीरे’ अल्प-महार्घा-भरणा-सलकृत-शरीर-अल्पानि=

हर्ष से उसका हृदय उछलने लगा । फिर उसने क्रोणिक राजा के पास जाने की तैयारी
की । उसने (ण्हाए) स्नान किया, (कयवलिकम्मे) पश्चात् पशुपक्षी आदि के
लिये अन्न का विभागरूप बलिकर्म किया, (कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते)
दु स्वप्नादि निवारण के लिए मपीतिलकादि क्रिये और दही अक्षतादि धारण किये ।
(सुद्धप्पवेसाइ मंगलाइं वत्थाइ पवर परिहिए) पश्चात् उसने स्वच्छ, राजसभा में
जाने योग्य, मागलिक, बहुमूल्य, तथा रूप से उज्ज्वल वखों को धारण किये ।
(अप्प-महग्घा-भरणा-लंकिय-सरीरे) वख पहिर चुकने के अनन्तर फिर उसने

(हरिस-वस विसप्पमाण हियए) अपार दुर्घ्थी तेषु हृदय उछलणवा लाज्यु
पथी तेषु केच्छिउ राजनी पासे ज्वानी तैथारी ढरी तेषु (ण्हाए) स्नान
कथुं, (कयवलिकम्मे) पथी पशु पक्षि आदि ने भाटे अन्नना पव्वागइप
अलिउर्भ कथुं (कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते) दु स्वप्नादि टोपना-निवा-
रणने भाटे भपी-तिलक आदि कथां अने दडी अक्षत आदि धारणु ढथां
(सुद्धप्पवेसाइ मंगलाइ वत्थाइ पवर परिहिए) पथी तेषु स्वच्छ, राजसभाभा
पडेरी ज्वा योग्य, मागलिक, अहुमूल्य तथा इपथी उज्ज्वल वखो धारणु
कथां (अप्प-महग्घा-भरणा लंकिय सरीरे) वअ पडेरी वीधा पथी तेषु ओछा

मइ, पडिणिक्रवमिक्ता चंपाए णयरीए मज्झमज्झेणं जेणेव
कोणियस्स रण्णो गिहे जेणेव वाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव
कूणिए राया भिंभसारपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छि

परिमाणतो न्यूनानि, महार्थाणि—महान्=अतिशय—अर्थो=मूल्य येषा तानि, आश्रियन्ते=
सम्पत्तौ धार्यन्त इयामरणानि- अलङ्कारा, तैरलङ्कृत शरीर यस्य स तथा, अल्पमहुमूल्य-
भूषणभूषितदेह इत्यर्थे, 'सयाओ गिहाओ' स्वकार गृहाद्, 'पडिणिक्रवमइ'
प्रतिनिष्क्राम्यति—निर्गच्छति। 'पडिणिक्रवमिक्ता' प्रतिनिष्क्राम्य—निर्गय, 'चंपाए णयरीए'
चम्पाया नगर्यां, 'मज्झमज्झेण' मध्यमध्येन—चतुर्दिगपेक्षमध्यभागेन, 'जेणेव
कोणियस्स रण्णो गिहे' यत्रैव कोणिकस्य राज्ञो गृह—भवनम्, 'जेणेव
वाहिरिया उवट्टाणसाला' यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला—आस्थानमण्डप, 'जेणेव
कूणिए राया भिंभसारपुत्ते' यत्रैव कोणिको राजा भिंभसारपुत्र, 'तेणेव
उवागच्छइ' तत्रैवोपागच्छति, 'उवागच्छिता' उपागत, 'करयलपरिग्गहिय'

भार से अल्प एव बहुमूल्य आभरण भी शरीर पर धारण किये। इस प्रकार
सज-अधज कर वह (सयाओ गिहाओ पडिणिक्रवमइ) अपने घर से निकला,
(पडिणिक्रवमिक्ता चंपाए णयरीए मज्झमज्झेण जेणेव कोणियस्स रण्णो गिहे)
घर से निकलकर यह चंपानगरी के ठीक मध्य के मार्ग से होकर जहा कोणिक
राजा का प्रासाद था, (जेणेव वाहिरिया उवट्टाणसाला) जहा पर बाहरी
उपस्थानशाला थी, और (जेणेव कूणिए राया भिंभसारपुत्ते तेणेव उवागच्छइ)
उम उपस्थानशाला में, जहाँ भिंभसार के पुत्र कोणिक राजा बैठे हुए थे, वहा
पहुँचा। (उवागच्छिता) वहाँ पहुँचते ही सर्वप्रथम उसने (करयलपरिग्गहियं

परिगमना तेभ्यः बहुमूल्य आभरणेषु पथु शरीर उपर धारण कृत्या व्या
प्रकारे शल्लुगार ऽग्निने ते (सयाओ गिहाओ पडिणिक्रवमइ) पोताने घेरथी
नीडण्ये। (पडिणिक्रवमिक्ता चंपाए णयरीए मज्झमज्झेण जेणेव कोणियस्स रण्णो
गिहे) घेरथी नीडणीने ते अस्थानशरीराना अराअर मध्यलागमा यथने न्या
डोण्डिठ गबने मडेल डतो। (जेणेव वाहिरिया उवट्टाणसाला) अने न्या षाड
उपस्थान शाला डनी, तथा (जेणेव कूणिए राया भिंभसारपुत्ते तेणेव उवागच्छइ)
ते उपस्थान-शालाभा न्या ललसारना पुत्र डोण्डिक शल्लु भेडा डता त्या
पडोण्ये। (उवागच्छिता) त्या पडोण्यताण सर्व प्रथम तेणु (करयलपरिग्गहि

ता करयलपरिगृहीयं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं
विजएणं वद्धावेड, वद्धावित्ता एवं वयासी ॥ सू० १७ ॥

मूलम्—जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं कंखति, जस्स

करतलपरिगृहीत=करतलेन करतल परिगृहीत=परम्पर सङ्गिष्टम् । 'सिरसावत्तं'
गिरआवर्तम्-गिरसि=गिरसोऽप्रभागे आ-ममताद् रतते-परिभाम्यति इति गिर-
आवर्तस्तम् । 'अजलिं' समिलिनकरयुगम् । 'मत्थए' मस्तके-लज्जाददेणे,
'कट्टु'-कृवा 'जएण' जयेन-जय =उत्कर्षप्रामिरूप तेन-'जय जय महाराज'
इति रूपेण, 'विजएण' विजयेन-विजिष्ट प्रचण्डशत्रुनिग्रहरूपो जयो विजय
तेन-अर्थात्-विजयस्व विजयस्व महाराज इति रूपेण 'वद्धावेड' वर्द्धयति-जयेन
विजयेन वर्द्धस्वेति वृद्धिकामनारूपामागिण प्रयुङ्क्ते स्म, वर्द्धयित्वा 'एव वयासी'
एव=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् ॥ सू० १७ ॥

टीका—भगवद्विहारद्विवातानिवेदक पुरुष कोणिकरूप किमवादीत् ? इत्याह—
'जस्स ण' इत्यादि, यस्य भगवत श्रीमहावीरस्य गलु=निश्चयेन, हे देवानु-
प्रिया । 'दंसण' दर्शनं सबहुमान रूपावलोकन भवन्त 'कंखति' काङ्क्षन्ति—

सिरसावत्त मत्थए अजलिं कट्टु जएणं विजएण वद्धावेड, वद्धावित्ता एव
वयासी) दोनों हाथ जोड़कर और अञ्जलिरूप में परिणत उन्हें मस्तक के
दोँधे-बाँधे घुमाकर पश्चात् उन्हें मस्तक पर लगाकर अर्थात् नमस्कार कर "जय
हो महाराज की, विजय हो महाराज की"—इस प्रकार जय विजय शब्दों द्वारा
राजा को वधाया। वधाने के बाद फिर वह इस प्रकार बोला—॥सू० १७॥

'जस्स ण देवाणुप्पिया' इत्यादि—

(देवाणुप्पिया) हे देवानुप्रिय । (जस्स ण) जिनके सदा आप
(दंसण कंखति) दर्शनों की इच्छा किया करते हैं (जस्स ण देवाणुप्पिया

य सिरसावत्त मत्थए अजलिं कट्टु जएणं विजएण वद्धावेड वद्धावित्ता एव वयासी)
अन्ने ङ्गाथ नेडीने अने तेभने मस्तकनी जभएी अने डाणी णाणुअे
श्वेत्तीने अज्जि इपमा परिणुत्त क्खी माथे लगावीने अर्थात् नमस्कार करीने
"जय हो महाराजने, विजय हो महाराजने" अे प्रकारे जय विजय शब्दो
द्वारा राजने वधाव्या अने वधाव्या पछी ते नीअे प्रभाणे जात्थे (सू १७)

'जस्स ण देवाणुप्पिया' इत्यादि—

(देवाणुप्पिया) हे देवानुप्रिय । (जस्स ण) जेभना सदा आप (दंसण

णं देवाणुप्पिया दंसणं पीहति, जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं पत्थंति, जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं अभिलसंति, जस्स णं देवाणु-

अप्राप्त प्राप्तुमिच्छन्ति 'जस्स खलु देवाणुप्पिया दमण पीहति' हे देवानुप्रिया । यस्य भगवत श्रीमहावीरस्य गल्ल दर्शनाय भवन्त स्पृहयन्ति=कदा मे भगवदर्शनं भविष्यतीत्युक्कण्ठा सतत धरन्ति, प्राप्त सत पुनस्तपरित्यक्तु नेच्छन्तीति भाव । हे देवानुप्रिया । यस्य भगवत गल्ल 'दसण' दर्शन 'पत्थति' प्रार्थयन्ति-भवन्तो याचन्ते-ह भगवन । भवदर्शनादेव मम जमन सफलता स्यादतो भवन्तध्रणपङ्कज दर्शयन्तु-इति गृहसि पुन पुन प्रार्थना कुर्वन्ति, यद्वा-अस्मत्सदृशेभ्यो जनेभ्य सतत याचन्ते-भगवदर्शनं कारयतेति भाव । 'जस्स ण देवाणुप्पिया दसण अभिलसति' यस्य खलु देवानुप्रिया दर्शनमभिलष्यन्ति=कदाह भगवत्समीपमुपगय तपर्युपासन करिष्यामीत्यभिलाषमन्त करणे कुर्वन्तो भवन्त मन्ति । 'जस्स ण देवाणुप्पिया

दसणं पीहति) जिनके आप देवानुप्रिय दर्शन करने की सदा स्पृहा रखा करते हैं-कन मुझे भगवान् के दर्शन होंग इस प्रकार की उकठा निरन्तर किया करते हैं, (जस्स ण देवाणुप्पिया दसण पत्थति) हे देवानुप्रिय । जिनके दर्शना की याचना किया करते हैं, अर्थात्-ह भगवन् । आपके दर्शन से ही मेरा जन्म सफल होगा, इसलिये आप कृपा करके अपने चरणकमल का दर्शन दाजिये, इस प्रकार एकान्त में आप बार २ प्रार्थना किया करते हैं, अथवा-हमारे जैसे लोगों से आप प्रार्थना करते हैं कि-मुझे भगवान का दर्शन कराओ । (जस्स ण देवाणुप्पिया दसण अभिलसंति) हे देवानुप्रिय । आप जिनके दर्शनों की चित्तमें सदा अभिलाषा धारण किये रहते हैं कि कब मैं प्रभु के चरणोंमें उपस्थित होकर उनकी

कसति) दर्शननी छिन्हा कथा करे छी, (जस्स ण देवाणुप्पिया । दसण पीहति) जेभना आप दर्शन उवाणी महा मृडा राणे छे ते उवारे भने लगवानना दर्शन थरे-जे प्रकारनी उत्तर कथा करे छे, (जस्स ण देवाणुप्पिया । दसण पत्थति) छे देवानुप्रिय । जेभना दर्शनोनी याचना कथा करे छे, अर्थात् छे लगवान् । आपना दर्शनथीव भारे जन्म मइल थरे, जे भाटे आप कृपा करीने आपना चरखु कमलना दर्शन आपणे जे प्रकारे जोततभा आप बारबार प्रार्थना कथा करे छे, अथवा-अभारा जेवा लोडो पासे आप प्रार्थना करे छे ते भने लगवानना दर्शन करावे । (जस्स ण देवाणुप्पिया । दसण अभिलसति) छे देवानुप्रिय । आप जेना दर्शनोनी मनभा सदा अभिलाषा धारण

પિપ્યા નામગોયસ્સવિ સવળયાણ હૃદ્-તુદ્-જાવ-હિયયા ભવંતિ,
 સે ણં સમણે ભગવં મહાવીરે પુવ્વાણુપુલ્લિં ચરમાણે ગામાણુગામં
 દૂહ્જમાણે ચંપાણ ણયરીણ ઉવળગરગ્ગામં ઉવાગણ ચંપં ણયરિં
 પુણ્ણભદ્દં ચેડ્ડયં સમોસરિઉકામે । તં એવં દેવાણુપ્પિયાણં પિયટ્ટયાણ
 પિયં ણિવેદેમિ, પિયં તે ભવુ ॥ સૂ૦ ૧૮॥

નામગોયસ્સવિ સવળયાણ હૃદ્-તુદ્-જાવ-હિયયા ભવંતિ' યત્ય ભગવત સ્વલ્લ હે
 દેવાનુપ્રિય ! નામગોત્રસ્યાપિ-નામ='મહાવીર' ઇતિ, ગોત્ર=વશ-કાશ્યપ ગોત્રમ્ ઇતિ
 સંયોરિત્યર્થ, શ્રવગતયા-શ્રવણેન ઇત્યર્થ, સ્વાર્થિકસ્તાપ્રત્યયઃ પ્રાકૃત્તૈલીપ્રમવ ઇતિ,
 હૃદ-તુદ્-યાવત્-હૃદયા ભવન્તિ, 'સે ણ સમણે ભગવ મહાવીરે' સ સ્વલ્લ શ્રમણો
 ભગવાન્ મહાવીર-અતિગયમહિમાન્વિત શ્રમણ-સાધુ, ભગવાન્-પરમૈશ્વર્યસમ્પન્ન
 મહાવીર ઇતિ અન્વર્થનામા 'પુવ્વાણુપુલ્લિં ચરમાણે ગામાણુગામ દૂહ્જમાણે
 ચંપાણ ણયરીણ ઉવળગરગ્ગામ ઉવાગણ' પૂર્વાનુપૂર્વ્યાં ચરન્ પ્રામાનુપ્રામ ટ્વન્-ચંપાયા
 નગર્યા ઉપનગરપ્રામ-નગરસમીપવર્તિન્ પ્રામમ્ ઉપાગત-સમાગત । કિમર્થમ્ ? અગ્રાહ-
 'ચંપ ણયરિં પુણ્ણભદ્દ ચેડ્ડય સમોસરિઉકામે' ચંપ્યા નગરી પૂર્ણભદ્દનામકમ્
 ઉપાસના કરૂંઘા, (જસ્સ ણ દેવાણુપ્પિયા નામગોયસ્સવિ સવળયાણ હૃદ્-તુદ્-
 જાવ-હિયયા ભવંતિ) હે દેવાનુપ્રિય ! જિનકા નામ તથા ગોત્ર-વજ સુનકર મી
 આપકા હૃદય હૃદ તુદ્ હુઆ કરતા હૈ, (સે ણ સમણે ભગવ મહાવીરે) વે શ્રમણ
 ભગવાન્=પરમૈશ્વર્યસમ્પન્ન, ગુગનિષ્પન્ન નામવાલે મહાવીર (પુવ્વાણુપુલ્લિં ચરમાણે
 ગામાણુગામ દૂહ્જમાણે ચંપાણ ણયરીણ ઉવળગરગ્ગામ ઉવાગણ) પૂર્વાનુપૂર્વીરૂપ સે
 વિહાર કરતે હુણ, એક પ્રામ સે દૂસરે પ્રામ મેં વિચરતે હુણ આજ ચંપા નગરી કે
 સમીપ પ્રામ મેં પધારે હુણ હૈ, (ચંપ ણયરિં પુણ્ણભદ્દ ચેડ્ડય સમોસરિઉકામે) ઔર
 કર્યા કરો છો કે કર્યારે હુ પ્રભુના ચરણોમા ઉપસ્થિત થઈને તેમની ઉપાસના
 કરૂ, (જસ્સ ણં દેવાણુપ્પિયા' નામગોયસ્સવિ સવળયાણ હૃદ્-તુદ્-જાવ-હિયયા
 ભવંતિ) હે દેવાનુપ્રિય ! જેમનુ નામ તથા ગોત્ર-વશ સાલણીને પણ આપનુ
 હૃદય હૃદ-તુદ્ થઈ બધ છે, (સે ણ સમણે ભગવ મહાવીરે) તે શ્રમણ ભગવાન્
 પરમૈશ્વર્યસમ્પન્ન, શુભનિષ્પન્ન નામવાળા મહાવીર (પુવ્વાણુપુલ્લિં ચરમાણે
 ગામાણુગામ દૂહ્જમાણે ચંપાણ ણયરીણ ઉવળગરગ્ગામ ઉવાગણ) પૂર્વાનુપૂર્વી ૩૫થી
 વિહાર કરતા કરતા એક ગામથી બીજે ગામ વિચરતા વિચરતા આજ
 ચંપાનગરીની સમીપના ગામમા પધાર્યા છે (ચંપ ણયરિં પુણ્ણભદ્દ ચેડ્ડય

मूलम्—तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते तस्स पवित्तिवाउयस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा णिसम्म हट्ट-तुट्ट-जाव

उद्यान ममवमर्तुक्राम 'त एवं देवाणुप्पियाण पियट्टयाए' तदेव देवानुप्रियागा प्रियार्थनया=उक्कण्ठाविषयत्वादनुकूलार्थनया, एवम्=अमुना प्रकारेण तद् वृत्तम् 'पिय णिवेदेमि' प्रिय=प्रीतिकारक निवेदयामि=मविनय कथयामीति भाव । 'पिय ते भवउ' प्रिय ते भवतु ॥सू० १८॥

टीका—'तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते' इत्यादि । तत = तदनन्तर खलु म कृणिको राजा भममारपुत्र 'तस्स पवित्तिवाउयस्स अंतिए' तस्य प्रवृत्तिव्यापृतस्य भगवद्विहागनिवेदकस्य पुरुषस्य अन्तिके=समीपे-तन्मुग्धादिति भाव, 'एयमट्ट' एतमर्थम्-भगवदागमनरूपम्-'सोच्चा' श्रुत्वा-श्रवणविषय कृत्वा, 'णिसम्म' निगम्य-हृदि श्रुत्वा 'हट्ट-तुट्ट-जाव-दियए' हट्ट-तुट्ट-यावद्-हृदय =हर्षान्ति-

चम्पानगरी के पूर्णभद्रचैय में पधारेंगे, (तं एव देवाणुप्पियाणं पियट्टयाए पिय णिवेदेमि पियं ते भवउ) इसलिये ह देवानुप्रिय । मैं आपको यह प्रिय आत्म-हितकारी समाचार आपके हितके लिये मविनय निवेदन करता हूँ । आपका कन्याण हो ॥ सू० १८ ॥

'तए णं से कूणिए राया' इत्यादि—

(तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते) उसके बाद भमसार का पुत्र वह कौणिक राजा (तस्स पवित्तिवाउयस्स अंतिए) उम सदेगवाहक के मुख से (एयमट्ट सोच्चा) 'भगवान पत्रों हे' इस कर्णप्रिय समाचार को सुनकर (णिसम्म) और हृदय में अच्छी तरह धारण कर (हट्ट-तुट्ट-जाव-दियए)

समोसरिउकामे) अने चम्पानगरीना पूछुंलड थैत्यभा पधारथे (त एवं देवाणुप्पियाणं पिय णिवेदेमि पिय ते भवउ) आथी डे देवानुप्रिय । हु आपने आ प्रिय आत्महितकारी समाचार आपना हितने भाटे मविनय निवेदन वउ हु आपनु उल्याथु थाओ (सू १८)

'तए णं से कूणिए राया' इत्यादि—

(तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते) त्थारपती ललसाग्ना पुत्र ते नेछिडु शान (तस्स पवित्तिवाउयस्स अंतिए) ते मदेथवाडडना सुपथी (एयमट्ट सोच्चा) 'भगवान पधारथी ठे' ओ डरुप्रिय समाचार सालणीने (णिसम्म) अने हृदयभा भागी गीते धारणु ङीने (हट्ट-तुट्ट-जाव-दियए)

हियए धारा-हय-नीव-सुरहि-कुसुमं चंचुमालइय-ऊसविय-रोमकूवे
वियसिय-वर-कमल-णयण-वयणे पयलिय-वर-कडग-तुडिय-केऊर-

शयेन प्रमुदितहृदय, ' धारा हय-नीव-सुरहि-कुसुमं चंचुमालइय-ऊसविय-रोमकूवे '
धारा-हत-नीप-सुगमि-कुसुममिव रोमाश्रितो-च्छ्रित-रोमकूप, तत्र-धाराभि-
जलधरजलधाराभि आहत=भसित यत्-नीपस्य=रुदम्बस्य सुरभि=परिमलयुक्त
कुसुम=पुष्पम् तदिव 'चंचुमालइय' इति देशीय शब्द, रोमाश्रित इत्यर्थ,
अतएव-उच्छ्रित-उच्चता गतो रोमकूपो-रोमस्थान यस्य स उच्छ्रितरोमकूप,
तत पदद्वयस्य कर्मधारय । ' विअसिय-वर-कमल-णयण-वयणे ' विकसित वर-कमल-
नयन-चदन-विकसितवरकमलवलयनयनचदन यस्य स तथा, ' पयलिय-वर-कडग-
तुडिय-केऊर-मउड-कुंडल-हार-विरायत-रइय-वच्छे ' प्रचलित-वर कटक-त्रुटित-केयूर-
मुकुट-कुण्डल हार-विराजमान-रचित-वक्षस्क-प्रचलितानि=प्रकम्पितानि वर-कटक-त्रुटित-
केयूर-मुकुट-कुण्डलानि यस्य स तथा, तत्र-वरौ=श्रेष्ठौ, कटकौ=वलयौ, त्रुटिते-
बाहुरक्षरभूषणे, केयूरौ=माहुभूषण मुजन्वमिशेषौ, मुकुट=शिरोभूषणम्, कुण्डले=
कर्णभूषणे-इति, तथा हार =अष्टादशसरिकादिक, विराजमान =गोभमान, रचित =विन्यस्त -

बहुत ही हृष्ट तुष्ट एव आनन्दित हुए, (धारा-हय-नीव-सुरहि-कुसुमं चंचुमालइय-
ऊसविय-रोमकूवे) जिस प्रकार बरसात का धारा से सींचे जाने पर कदम्ब के
सुगन्धित फूल एकदम विकसित हो जाते हैं, उसी प्रकार भगवान् के पधारने का
समाचार सुनकर राजा के रोम खड़े हो गये, (वियसिय-वर-कमल-णयण-वयणे)
उनके नेत्र और मुख दोनों कमल के समान विकसित हो गये । (पयलिय-वर-
कडग-तुडिय-केऊर-मउड-कुंडल-हार-विरायत-रइय-वच्छे) अपार हर्ष के मारे
कम्पित इनके शरीर पर पृत श्रेष्ठ दोनों वलय, दोनों त्रुटित-बाहुरक्षरभूषण,

धृष्टान् हृष्ट तुष्ट तेभ्य आनन्दित तथा [धारा-हय-नीव-सुगमि-कुसुमं चंचु-
मालइय-ऊसविय-रोमकूवे] के प्रकारे वरमाहनी धाराथी सींचायेवा कडभना
सुगन्धित कूल श्रेष्ठम गीली नीकणे छे तेव प्रकारे लगवानना पधारवाना
समाचार सालणीने राजना रोमे रोम आनन्दथी पुलकित थर्ष उला तथा,
(वियसिय-वर-कमल-णयण-वयणे) तेभना नेत्र तथा मुख अन्ने कमलना
नेम विकसी गया (पयलिय-वर-कडग-तुडिय-केऊर-मउड-कुंडल-हार-विरायत-
रइय-वच्छे) अपार हर्षने लउने उपायमान तथा तेभना शरीर पर धारथु
उरेला श्रेष्ठ अन्ने वलय (उडा), अन्ने त्रुटित-माहुश्शक भूषण, अन्ने केयूर

मउड-कुंडल-हार-विरायंत-रइय-त्रच्छे पालंत्रपलंत्रमाण-घोलंत-
भूसणधरे ससंभमं तुरियं चवलं नरिंदे सीहासणाओ अचमुट्टेइ,
अचमुट्टित्ता पायपीठाओ पचोरुहड, पचोरुहित्ता वेरुलिय-वरिट्ट-रिट्ट-

परिशुत वभसि=वभ स्थले यस्य स तथा, तत पदत्रयस्य कर्मण्य ।

‘पालत्र-पलत्रमाण-त्रोलत-भूसण-त्ररे’ प्रालम्ब-प्रलम्बमान-त्रूर्णमान-भूपण-
धर-प्रालम्ब-कण्ठाभरणविशेष, स एव प्रलम्बमान=लम्बाकार पूर्णमान=दोलायमान
भूपण तस्य धर-धारक, एतादृश ‘नरिंदे’ नेन्द्र कृणिकरूप ‘ससभम’
ससम्भ्रम-सादर यथा स्यात्, ‘त्रुरिय’ त्वरित-शीघ्रतया यथा स्यात्, ‘चवल’
चपल-चञ्चलतया यथा स्यात् तथा ‘सीहासणाओ अचमुट्टेइ’ सिंहासनदभ्युत्तिष्ठति-
अवतरति, ‘अचमुट्टित्ता’ अभ्युत्थाय-अपतीर्थ ‘पायपीठाओ पचोरुहड’ पादपीठाप्र-
त्यगोहनि-अवतरति, प्रत्यग्रस्य-अपतीर्थ पादपीठादगोऽवतार्य ‘पाउआओ ओमुअड’
पादुके अपमुञ्चति, क्रीदृशे पादुके’ इत्याह-‘वेरुलिय’ इत्यादि, ‘वेरुलिय-वरिट्ट-

दोना केयूर-त्राजूवन्द, मुकुट, दोना कुण्डल, एव १८ त्रका हार, जो वक्षस्थल मे
धारण क्रिया हुआ था और जिसकी ओमा से वक्ष स्थल सुगोभित हो ग्या था,
ये सत्र के सत्र आभूषणादि रूपित हो उठे । (पलत्र-पालत्रमाण-त्रोलत-भूसण-
त्ररे) हर्ष-जनित क्रुप्य से चलायमान उनका प्रलम्बमान कण्ठाभरण उनकी ओमा
को बढ़ा रहा था । बाद मे (ससभम तुरिय चवल नरिंदे) गजा बडे ही
सभ्रम से-आदरपूर्वक, अर्थात् एकदम जैसे बैठे थे वैसे ही, शीघ्र ही चचल जैसा होकर
(सीहासणाओ अचमुट्टेइ) अपने सिंहासन से उठे, और (अचमुट्टित्ता पायपीठाओ
पचोरुहड) उठ कर पादपीठ पर पैर रखकर नीचे उतरे, (पचोरुहित्ता वेरु-

(पाल्लुषध), मुकुट, एन्ने कुंडल तेमत्र १८ सरनेो हार ने वक्ष स्थल उपर
धारण करवाभा आन्थेो डतो, एने नेनी शोलाथी वक्ष स्थल सुशोभित थर्ष रहु
डतु, ते तभाभे तभाभ आभूपषण् आदि डली रधा डता, (पालंत्र पलत्रमाण
घोलत-भूसण-त्ररे) डर्षथी उत्पन्न थता डपथी यलायमान थता तेना गजाभा
पडेरेला लाणा लटडता हार तेनी शोलाभा वधाशे डगी रधा डता पछी
(ससंभम तुरिय चवल नरिंदे) राव् धण्णु स भ्रमथी-आहरथी अर्थात् एडेडम नेवा
जेडेला डता तेवाज् उतावणा यथण नेवा थर्षने (सीहासणाओ अचमुट्टेइ)
पोताना मि डामन परथी उडया, एने (अचमुट्टित्ता पायपीठाओ पचोरुहड)
उडीने पादपीठ पर पग रापीने नीचे डतथा, (पचोरुहित्ता-वेरुलिय-वरिट्ट-रिट्ट-

अंजण-निउणो-विय-मिसिमिसंत-मणि-रयण-मंडियाओ पाउ-
याओ ओमुयइ, ओमुइत्ता अवहट्टु पंच रायककुहाइं, तंजहा-खगं
१, छत्तं २, उप्फेसं ३, वाहणाओ ४, वालवीयणं ५ । एगसाडियं

रिट्ठु-अजण-निउणो-विय-मिसिमिसंत-मणि-रयण-मडियाओ ' वैडूर्य-वरिष्ठ-
रिष्ठा-अजण-निपुणाऽप्ररोपित-चिकिचिकायमान-मणि-रत्न-मण्डिते, तत्र-वरिष्ठानि=श्रेष्ठानि
वैडूर्याणि रिष्ठानि अज्जनानि-एतन्नामकानि रत्नानि ययो पाटुक्रयोस्ते वैडूर्य-वरिष्ठ-
रिष्ठाज्जने, वैडूर्यादिभिश्चित्रिते इत्यर्थ, पुन ' निपुणारोपित-चिकिचिकायमान-
मणि-रत्न-मण्डिते ' -निपुणेन=गिन्पकल्लकुगल्लेन अप्ररोपितानि=परिकर्मितानि-
सस्कारितानि यथास्थानजटितानि यानि चिकिचिकायमानानि=चाकचिकयमयानि मणि-
रत्नानि तैर्मण्डिते, तत पदद्वयस्य कर्मधारय, अवमुच्य, ' अवहट्टु पंच रायककु-
हाइ ' अपहृत्प पञ्च राजककुदानि-अवतार्य पञ्चमस्त्यकानि राजचिह्नानि, तान्येव
पृथक्परिसख्याति-तथथा-त्तानि-इमानि १-' खगं ' सङ्ग त्यजति, २-' छत्त '
छत्र-जहाति । ३-उप्फेस-मुकुटम्-अवतारयति, ४ वाहणाओ-उपानहौ, पूर्व-
परित्यक्ते पाटुके अत्र ' वाहणाओ ' इति पदेन गृह्येते, त्यजति । ५-' वालवीयण '

लिय-वरिट्ठु-रिट्ठु-अजण-निउणो-विय-मिसिमिसत-मणि-रयण-मडियाओ पाउयाओ
ओमुयइ) नीचे उतर कर इन्होने फिर दोनों पैरों से पाटुकाएँ उतारीं, ये पाटुकाएँ
श्रेष्ठ वैडूर्य, रिष्ठ एव अजण नाम के रत्नों से खचित थीं, तथा गिन्पकल्लामे कुगल्ल
ऐसे कारीगरों द्वारा यथास्थान निवशित चमकते हुए अनेक रत्नों से मण्डित था ।
(ओमुइत्ता अवहट्टु पंच रायककुहाइ) पाटुकाएँ उतारने के बाद इन्होंने पांच राज-
चिह्नों का भी परित्याग कर दिया । वे पांच राजचिह्न ये हैं- (रग्गा छत्त उप्फेस
वाहणाओ वालवीयण) खड्ग, छत्र, उप्फेस=मुकुट, दोनों पैरों के जूते-पाटुकाएँ

अजण-निउणो-विय-मिसिमिसत-मणि-रयण-मंडियाओ पाउयाओ ओमुयइ) नीचे
उतारीने पछी तेभल्ले णन्ने पगम.थी पाडुकाओ उतारी नाथी, ओ पाडुकाओ
श्रेष्ठ वैडूर्य, रिष्ठ तेभज्ज अजण नामना रत्नोथी जडेली इती तथा शिल्पकल्लामा
कुशल्ले एवा कारीगरो द्वारा यथास्थान जेसाडेला यमकार भारता अनेक
रत्नोथी ते शोभित इती (ओमुइत्ता अवहट्टु पंच रायककुहाइ) पाडुकाओ
उतायां पछी तेभल्ले पाच राजचिह्नोना पणु परित्याग थ्यो ते पाच
राजचिह्न आ प्रभाणे, इता- (रग्गा छत्त उप्फेस वाहणाओ वालवीयण) खड्ग,
छत्र, उप्फेस=मुकुट, णन्ने पगमा जेडा-पाडुकाओ तेभज्ज यामर पछी

उत्तरासंगं करेड, करित्ता अंजलिमउलियहृत्ये तित्थगराभिमुहे
सत्तट्टपयाइं अणुगच्छड, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेड, अंचित्ता
दाहिणं जाणुं धरणितलंसि साहट्टु तिस्रुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि

वाल्लयजन-चामरयुगल त्यजति । त्यक्त्वा 'एगसाडिय उत्तरासग करेड' एरु-
शाट्टिकमुत्तगसङ्गं करोति, एरुशाट्टिकम्-अस्फाटिनमयोजितं सूतग्रहितम् उत्तरासङ्गम्-
=उत्तरीयवस्त्रं मुणोपणि यतनार्थं करोति-धरति 'करित्ता' कृत्वा 'अजलि-
मउलियहृत्ये' अजलिमुकुरितहस्त-अजलिना-अजलिग्रन्थेन मुकुलितौ-कमलमुकुल-
तुल्यौ, हस्तौ यस्य स तथा-वद्वाज्जलिपुट इत्यर्थे । 'तित्थगराभिमुहे' तीर्थङ्करा-
भिमुख-यस्या ङिति महावीरप्रभुर्वर्तते तस्या ङिति कृतमुग्र 'सत्तट्टपयाइं
अणुगच्छड' सम अष्ट पदानि अनुगच्छति-आनुकूयेन व्रजति-सिंहासनात्प्रभु-
सन्मुख सप्ताष्टपदानि गच्छति, 'अणुगच्छित्ता' अनुगम्य 'वामं जाणुं अंचेड' वाम
जानु आकुञ्चयति-उर्ध्वं करोति, 'अंचित्ता' वामं जान्वाकुञ्चय-उर्ध्वोक्त्य, 'दाहिणं
जाणुं धरणितलंसि साहट्टु' दक्षिणं जानु धरणितले सट्टय-अध सत्त्वाप्य,
'तिस्रुत्तो' त्रिक्रव-त्रिरावृत्त-त्रिवारमिति यावत्-'मुद्धाणं धरणितलंसि

एव दोनों चामर । फिर (एगसाडिय उत्तरासग करेड) पश्चात् अस्फाटित, अयो-
जित-पिना सीये ऐसे उत्तरीयवस्त्र को मुख के ऊपर यतनानिमित्त धारण किया ।
(करित्ता) धारण कर (अजलिमउलियहृत्ये तित्थगराभिमुहे सत्तट्टपयाइं अणु-
गच्छड) वद्द कमल के समान अजलिपुट करके जिस दिशामें तीर्थंकर त्रिराजमान
थे उस ओर सन्मुख होकर सात आठ पग आगे गये, (अणुगच्छित्ता वामं जाणुं
अंचेड) जाकर वहाँ उन्होंने अपने बायें घुटने को ऊपर किया और (दाहिणं
जाणुं धरणितलंसि साहट्टु) दाहिने घुटने को जमीन पर रखकर (तिस्रुत्तो

(एगसाडिय उत्तरासग करेड) अश्लक्षित, (श्लक्ष्ण वगर्तु) अथोन्नित श्रुत
रहित (भीष्मा वगर्तु) अथवा उत्तरीय वस्त्रने मुख उपर यतना निमित्त
धारण कर्तुं (करित्ता) धारण कर्तने (अजलिमउलियहृत्ये तित्थगराभिमुहे
सत्तट्टपयाइं अणुगच्छड) अध उभयग्री पेटे अजलिपुट करीने जे दिशाभा
तीर्थंकर त्रिराजमान हुंता ते तरङ्ग सन्मुख थधने मात आठ पगला आगण
गया, (अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेड) अधने त्या तेमणु पेटाने उणो
दी यणु उपर राधे अने (दाहिणं जाणुं धरणितलंसि साहट्टु) उभयु दी यणुने
जमीन उपर राधीने (तिस्रुत्तो मुद्धाण धरणितलंसि निवेसेड) त्रयु वार

निवेसेड, निवेसित्ता ईसिं पच्चुण्णमड, पच्चुण्णमित्ता कडग-
तुडिय-थंभियाओ भुयाओ पडिसाहरड, पडिसाहरित्ता करयल-
जाव-कट्टु एवं वयासी ॥ सू. १९ ॥

निवेसेड' मूद्रान धरणिनले निवेगयति=निजमस्तक भूमिसलग्न करोति । 'निवे-
सित्ता' निवे-य, 'ईसिं पच्चुण्णमड' ईपन् प्रयुजमति=अन्पनमीभूतकायो भवति,
'पच्चुण्णमित्ता' प्रयुन्नम्य-अन्पनमीभूतकायो भूवा 'कडग-तुडिय-थंभियाओ भुयाओ
पडिसाहरड' कटकवृद्धितस्तम्भितौ मुजौ प्रतिमहरति,=कटकवृद्धिताभ्या-कट्टण-भुजरक्षकाभ्या-
स्तम्भितौ=स्तम्भरूपौ यौ मुजौ तौ प्रतिसंहति=उच्चै नयति=उत्थापयतीत्यर्थ, 'पडिसाहरित्ता'
प्रतिमहरय=उत्थाप्य, 'करयल जाव कट्टु' करतल यावत् कृत्वा, अत्र-यावच्छब्देन-
परिगृहीत-परस्पर समिलित गिरावर्त मस्तकेऽङ्गलिं कृत्वेति बोध्यते, 'एवं वयासी' एव=
वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् ॥ सू० १९ ॥

मुद्राण धरणितलंसि निवेसेड) तीनार अपने मस्तक को जमीन पर झुकाया-
जमीन से माथे को लगाया । (निवेसित्ता ईसिं पच्चुण्णमड) लगाने के बाद
फिर ये जोड़े से उठे, (पच्चुण्णमित्ता कडग-तुडिय-थंभियाओ भुयाओ पडिसाहरड)
उसके पश्चात् इन्होंने अपने दोनों हाथों को कि जो ककण एव भुजरक्षक अलकारों
से स्तम्भित थे, उँचा किया, (पडिसाहरित्ता करयल-जाव-कट्टु एव वयासी)
ऊँचे करने के बाद फिर ये मस्तक पर अजलिपुट रख कर इस प्रकार बोले-

भावार्थ—सदेगहर से प्रसु के आगमन की वार्ता सुनकर कोणिकराजा मारं
अतिगय आनन्द के कारण उल्लसित हो गये । इस समाचार को सुनते ही ये
रोमाञ्चित हो उठे । कमल के ममान मुरा आनन्दातिरेक से सिल उठा । नयनों ने

घोताना भस्नकने जमीनपर नभाञ्छु-जमीनने माथु अडाञ्छु (निवेसित्ता
ईसिं पच्चुण्णमड) अडाडथा पछी तेओ जरा उडथा (पच्चुण्णमित्ता कडग
तुडिय-थंभियाओ भुयाओ पडिसाहरड) त्यार पछी तेओओ घोताना थन्ने डाथ
के ने कडल तेमज कडा लुज्जरक्षक वगेरे अलकारेथी स्तमित हुता ते
उथा थयाँ (पडिसाहरित्ता करयल जाव कट्टु एव वयासी) उथा ठरीने पछी
तेओओ मस्तक उपर अजलिपुट राधीने आ प्रभाणे कछु —

भावार्थ—सदेशवाहकद्वारा प्रसुना आगमनना समाचार सालणीने
केशिक राज अतिथय आनन्द धवाना डारणे उदसासमा आवी गया ओ
समाचार सालगता ज तेओ देभावित थध गया कमलनी घेठे मुथ आन दना

मूलम्—नमोत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं आडगराणं तित्थ-

टीका—‘नमोत्थु ण’ इत्यादि—

‘नमोत्थु ण’ नमोऽस्तु खलु, ‘अरिहंताणं’ अरिहन्तृभ्य - अरीन्-रागादिरूपान्-शत्रून् प्रन्ति-नाशयन्तीति व्युपत्याऽऽ मिद्वान्ऽऽतोरुभयोररिहन्तृपदेन प्रहण बोध्यम्, तेभ्य, ‘भगवंताण’ भगवद्भ्य, भगः-१ ज्ञान-सर्वार्थविषयकम्,

भा मुख का माथ दिया। हर्षातिगक के कारग इनका सम्पूर्ण शरीर कम्पित होने लगा, इस हतु धारण क्रिये हुए आमूषगादिक भी चचल हो उठे। ये एकदम सिंहासन से उठे, उठकर पादपीठपर पैर रखकर नीचे उतरे। मणि-वैडूर्य-रत्नित दोनों पादुकाएँ उतारीं। स्वर्ण आदि राजचिह्नों का परित्याग कर ये एकगाटिक उत्तरासग कर जिस दिशा की तरफ वे महावीर प्रमु विगजमान थे उस दिशाकी ओर सात आठ पैर आगे जाकर नमस्कारविधि के अनुसार प्रमुकी परोक्ष वदना करने लगे। उसमें यह पाठ बोले—॥ सू० १९ ॥

‘नमोत्थु ण’ इत्यादि—

(नमोत्थु ण अरिहंताण) रागादिकरूप शत्रुओं पर विजय पानेवाले अरिहतों को नमस्कार हो। (भगवंताण) भगवान के लिये नमस्कार हो, भग जिनके हो वे भगवान हैं। भग शब्द के दस (१०) अर्थ हैं। वे इस प्रकार हैं—ज्ञान=

अतिरेकथी भिली उठ्यु नेत्रोश्चे पथु मुषने माथ आभ्ये। दुर्षातिगैक थवाना क्षरश्चे तेभनु आभु शरीर धुज्वा लाज्यु अने तेथी शरीर पर धारण करेला आलूषणादिक पथु अथल (अणायमान) धर्ष गया तेओ अकदम आसन उपरथी उठ्या अने उडीने पादपीठ पर पग राणीने नीचे उतर्या मणिवैडूर्य जडेली अन्ने पादुकाओ उतारी अडग आदि राजचिह्नोंको परित्याग करी तेओ अकशाटिक उत्तरासग धारण करी जे दिशा तरक ते महावीर प्रमु गिराजमान उता ते दिशा तरक सात आठ पगला आगण जर्धने नमस्कार विधि अनुसार प्रमुनी परोक्ष वदना ज्वा लाज्या तेभा आ पाठ बोल्या (सू १९)

‘नमोत्थु ण’ इत्यादि

(नमोत्थु ण अरिहंताणं) रागादिकरूप शत्रुओं पर विजय भेजवा वाणा अरिहतोंने नमस्कार हो। (भगवंताण) भगवानने नमस्कार हो जेने लग होय ते भगवान छे भग शब्दना १० अर्थ छे, ते आ प्रकार छे

१ ज्ञान-अभन्त त्रयुकाणना पदार्थने युगपत् अणुनार देवजान,

पुरुषवरपुण्डरीकम् पुरुषवरपुण्डरीकञ्चेयादिरीयैकज्ञेये पुरुषवरपुण्डरीकाणि तेभ्यः ।
 भगवतो वरपुण्डरीकोपमा च विनिर्गताऽरिखलाऽशुभमलीमसवासर्वं शुभानुभावैः परिशु-
 द्धत्वाच्च, यदा यथा पुण्डरीकाणि पद्माज्जातान्यपि सन्निभे वर्धितान्यपि चोभयसम्बन्ध-
 मपहाय निर्लेपानीव जलोपरि रमणीयानि सन्दृश्यन्ते निजानुपमगुणगवलेन मुरासुर-
 नरनिकरगिरोधारणीयतयाऽतिमहनीयानि परममुराऽऽस्पदानि च भवन्ति, तथेमे
 भगवन्तः कर्मपद्माज्जाता भोगाऽम्भोजवर्दिता सन्तोऽपि निर्लेपास्तदुभयमतिवर्तन्ते, गुण-
 सम्पदास्पदतया च केवलद्रिगुणभावादखिलभन्व्यजनगिरोधारणीया भवन्तीति,
 विस्तरस्तु आखान्तरेऽत्रलोक्रनीय । 'पुरिसवरगंधहृत्यीग' पुरुषवरगन्धहृत्स्तिभ्यः -

उपमा से युक्त किया है उसका कारण यह है कि प्रभु की आत्मा से समस्त
 अशुभ मलिन कर्म नष्ट हो गये हैं एव शुभ अनुभावों से प्रभु सभी प्रकार से शुद्ध हैं ।
 धवल कमल जिस प्रकार कीचड़ से उद्भूत होने पर और जल में वर्द्धित होने
 पर भी उन दोनों से अलिप्त रहता है, जलके ऊपर बहुत ही रमणीय प्रतिभासित होता है, तथा
 सुर असुरादिकों द्वारा गिरोधार्य होने से वह अतिमहनीय एव परम सुगंध का आस्पद होता है
 उसी प्रकार प्रभु भी नामकर्म के उदय से, कर्मरूप पद से पैदा होने पर एव
 भोगरूप जल से सर्वर्द्धित होने पर भी इन दोनों के सन्ध से सर्वथा निर्लेप रहा
 करते हैं, एव गुणरूपसंपत्ति के आस्पद होने से तथा केवलज्ञान की जागृति होने
 से वे अखिल भन्व्यजनों द्वारा गिरोधार्य भी होते हैं । (पुरिसवरगंधहृत्यीग)
 पुरुषों में उत्तम गंधहृत्स्ती के समान जो होते हैं वे पुरुषवरगंधहृत्स्ती कहे जाते हैं,

ने वरपुण्डरीकनी उपमा आपी छे तेनु कारण्ये छे के प्रभुना आत्माभाषी
 समस्त अशुभ मलिन नष्ट भई गयी छे तेमज् शुभ अनुभावोधी प्रभु
 सांगी रीते शुद्ध छे, श्वेत कमल के प्रकारे प्रीत्युत्थी उत्पन्न थाय छे अने
 जलभा वधे छे छता पणु ते जन्नेधी अलिप्त रहे छे, जलनी उपर जलुज
 रमणीय प्रतिभासित थाय छे, तथा सुर असुर आदिकोधी गिरपर धागित
 होवाधी ते अतिमहनीय तेमज् परम सुभने आपनार अने छे, तेवीज रीते
 प्रभु पणु नाम कर्मना उदयधी, कर्मरूप पदधी येन थाय छता तेमज्
 भोगरूप जलधी सर्वर्धन पाभवा छता पणु अने जन्नेना सधधधी सर्वथा
 निर्लेप रहा कडे छे तेमज् गुणरूप संपत्तिना आपनार होवाधी तथा केवल
 ज्ञाननी जागृति थावाधी तेओ तमाम भन्व्यजनों द्वारा गिरोधार्य पणु थध
 जाय छे (पुरिस-वर-गंध-हृत्यीग) उश्रयोभा उत्तम गंधहृत्स्तीना नेवा ने होय

पुरिसवरगन्धहृत्थीणं लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं लोग-

गन्धयुक्ता हस्तिनो गन्धहस्तिन, वराश्च ते गन्धहस्तिनो वरगन्धहस्तिन, पुरुषा वरगन्ध-
हस्तिन इव पुरुषवरगन्धहस्तिनस्तेभ्य, गन्धहस्तिलक्षण यथा—

यस्य गन्ध समाघ्राय, पलायन्ते परे गजा ।

त गन्धहस्तिन विद्यान्वृपतेर्विजयावहम् ॥ इति ।

अतएव यथा गन्धहस्तिगन्धमाघ्राय गजान्तराणीतस्ततो द्रुत पलाय्य
प्रच्छन्नस्थान प्रान्नुवन्ति, तद्वदचिन्यातिशयप्रभाववशाद् भगवद्विहरणसमीरणगन्ध-
सम्बद्धगन्धतोऽपि—इति—डमर—भरकादय उपद्रवा द्राग् दिक्षु प्रव्रवन्तीति, गन्धग-
जाऽऽश्रितराजपद् भगवद्नाश्रितो भन्व्यगण सर्वदा विजयवान् भवतीति भवत्युभयो
सादृश्यम् । ‘लोगुत्तमाण’ लोकोत्तमेभ्य, लोकेषु—भन्व्यसमाजेषु उत्तमाश्चतुर्विंशदति-

उनके लिये नमस्कार हो, गन्धहस्तीका लक्षण इस प्रकार है—

“यस्य गन्धं समाघ्राय पलायन्ते परे गजाः ।

त गन्धहस्तिनं विद्यान्वृपतेर्विजयावहम्” ॥

जिसकी गंध को सूंघकर भी अन्य हाथी भाग जाते हैं वह गंधहस्ती कहलाता
है । यह जिस राजा के पास होता है वह अश्वय ही युद्ध में विजय प्राप्त करता है ।
तात्पर्य यह है कि—जिस प्रकार गंधहस्ती की गंध को सूंघकर अन्यगज भाग जाते हैं
उसी प्रकार प्रभु के विहार की गंध सूंघ कर, अर्थात्—प्रभुके विहार की वायु के सवध
से इति, डमर और भरकी आदि उपद्रव विलकुल शांत हो जाते हैं । (लोगुत्तमाण)

छे ते पुश्यवरगधहृत्ती छडेवाय छे तेभने नमस्कार छे। गधहृत्तीनु लक्षणे
आ प्रदारे छे—

“यस्य गन्ध समाघ्राय पलायन्ते परे गजा ।

त गन्धहस्तिन विद्यान्वृपतेर्विजयावहम्”

जेनी गध सूधवाभात्रथी थील छथी लागी नय ते गधहृत्ती
छडेवाय छे ते जे राननी पास छे ते अवश्यमेव युद्धमा विजय
प्राप्त करे छे तात्पर्य अ छे छे—ते प्रदारे गधहृत्तीनी गधने सुधीने
थील छथी लागी नय छे तेवी ज रीते प्रभुना विहारनी गधने सुधीने
अर्थात् प्रभुना विहारना वायुना न गधथी छति डमर अने भरकी आदि
उपद्रव विलकुल शांत थछ नय छे (लोगुत्तमाण) योत्रीश अतिशयो तेभज

शयपञ्चत्रिंशद्वाणीगुणोपेतत्वात्, तेभ्य 'लोगनाहाण' लोकनाथेभ्य, लोकानां= भग्याना नाथा=नेतारो योगक्षेमकारित्वानिति लोकनाथास्तेभ्य । 'लोगहियाण' लोकहितेभ्य -लोक -एकन्द्रियादि सर्वप्राणगणस्तम्भे हिता रक्षोपापप्रदर्शकवा- लोकहितास्तेभ्य । 'लोगपर्इवाण' लोकप्रतीपेभ्य, लोकस्थ=भग्यजनसमुदायस्य प्रदीपास्तन्मनोऽभिनिर्निष्ठाऽनादिमिथ्यावतम पटलवपगमेन त्रिणिष्टात्मतत्त्वप्रकाशक- त्वात्प्रदीपतुच्यस्तेभ्य । यथा प्रदीपस्य सकलजीवार्थं तुल्यप्रकाशकत्वेपि चक्षुष्मन्त एव तत्प्रकाशसुखभाजो भवन्ति ननुधास्तथा भग्या एव भगवदनुभासममुदभूत- परमात्तन्दसन्दोहभाजो भवन्ति नाऽभग्या इति प्रतिशोभयितु प्रदीपद्यन्त, अत एव च, लोकपदेन भग्यानामेव ग्रहणम् । 'लोगपज्जोयगराण' लोकप्रबोतकेभ्य -

चैतीस अंतिशयो एव पेंतीस वाणी के गुणों से युक्त होने से प्रभु लोकोत्तम कहल्यते है, ऐसे उनके लिये नमस्कार हो । (लोगनाहाण) भग्यजीवों के योग-क्षेम-कारी होने से लोकनाथ प्रभु को नमस्कार हो । (लोगहियाण) एकन्द्रिय प्राणियों से लेकर पचेन्द्रिय पर्यन्त समस्त जीवों से व्याप्त इस लोक, के लिये रक्षाके उपायभूत मार्ग के प्रदर्शक होने से लोकहितस्वरूप प्रभुके लिये नमस्कार हो । (लोगपर्इवाण) भग्यजनों के मन में अनादिकाल से ठसाठस भरे हुए मिथ्यात्वरूपी, अन्धकार के पटल के विनाश से त्रिणिष्ट आत्मतत्त्व के प्रकाशक होने से भगवान् प्रदीपतुच्य है, जिस प्रकार प्रदीपक सकल जीवों के लिये समान प्रकाशक होता हुआ भी चक्षुष्मान जीवों के लिये विशेष आनदप्रद होता है उसी प्रकार प्रभु को लखकर भग्य जीव ही अमन्द-आनद के सदोह से सुखी हुआ करते हैं, ऐसे लोकके प्रदापस्वरूप को नमस्कार

प्रात्रीश वाणीना शुषोथी युंक्त होवाथी प्रभु लोकोत्तम 'ठडेवाय छे,' तेभने नमस्कार हो (लोगनाहाण) लव्य लवोना योगक्षेम उरनार होवाथा लोकनाथ प्रभुने नमस्कार हो (लोगहियाण) अडे द्विय प्राणियेथी माडीने पचे द्विय पर्यन्त समस्त लवोथी व्याप्त आ लोकना भोटे रक्षाना उपायभूत मार्गना प्रदर्शक होवाथी लोकहितस्वरूप, प्रभुने नमस्कार हो (लोगपर्इवाण) लव्य लवोना मनमा अनादिकालथी ठसाठस लरेला मिथ्यात्वरूपी अ धकारना, समूहना विना- शथी विशिष्ट आत्मतत्त्वना प्रकाशक होवाथी भगवान् प्रदीप समान छे, लोभ हीवो जधा लवोने समान प्रकाशक होथ छे छता चक्षुवाणा लवोने विशेष आनदप्रद थाय छे तेवी रीते प्रभुने लोभ लव्य लवो ल धषो आनद भेजवीने शुभ प्राप्त करे छे, अेवा लोकना प्रतीपस्वरूपने नमस्कार हो [लोगपज्जोयगराण]

पडवाणं लोगपज्जोगराणं अभयदयाणं चमखुदयाणं मग्गदयाणं

लोकत्रेनाऽत्र लोभयते—दृ-यते केवलऽऽलोकेन यथापस्थिततयेति व्युपत्या लोका-
 लोकयोरुभयोर्प्र-गम्, तेन लोकस्य—लोकालोकलक्षणस्य सकल्पदार्थस्य प्रद्योत—लोक-
 लोकप्रद्योतस्त कर्तुं जीव येषां ते लोकालोकप्रद्योतकरा लोकालोकसकल्पदार्थ-
 प्रकाशकरगतीगस्तेभ्य । 'अभयदयाण' अभयदयेभ्य —न भयम् अभयम्, भया-
 नामभागे वा अभयम्, अशोभलक्षण आमनोऽत्रस्थानिगेपो मोक्षसाधनभूतमुत्कृष्टधैर्यमिति
 यावत्, दयन्ते=ददन्ति दया, दयधातो कर्तारि पचादिवाच्य, अभयस्य दया अभयदया,
 यदा अभया=भयनिर्गहिता दया=सर्वजीवमद्भटप्रतिमोचनस्वरूपा अनुकम्पा येषां तेऽभयदया-
 स्तेभ्य । 'चमखुदयाण' चक्षुर्दयेभ्य चक्षु—ज्ञान—निमित्तप्रस्तुतत्वाऽवभासकतया चक्षु—
 सादृश्यात्, तस्य न्या—दायकाश्चक्षुर्दयास्तेभ्य, यथा हरिणादिशरण्येऽरण्ये लुण्ठारु-

हो।(लोगपज्जोगराण)लोकालोकस्वरूप सकल्पदार्थों को प्रकाश करनेके स्वभाववाले लोक-
 प्रद्योतकों के लिये नमस्कारहो।(अभयदयाण)अभयदयों केलिये नमस्कार हो।आत्मा
 को अशोभलक्षण अवस्थाविशेष का नाम अभय है, इसे मोक्षसाधनरूप उत्कृष्ट धैर्य-
 स्वरूपा जानना चाहिये। इसे प्रदान करनेवाले होने से प्रभु अभयदय कहे गये हैं।
 अयना—जिनकी दया भयरहित है अर्थात् भगवान् द्वारा प्रतिपादित दया समस्त
 जीवों के सकटोंको दूर करनेवाली है, भगवानने इस प्रकार की दयाका स्वरूप
 प्रकट किया है कि जिससे जीवों के ऊपर कोई भी सकट नहीं आ सकता है।
 (चमखुदयाण) ज्ञानरूपचक्षु के दातार को नमस्कार हो। प्रभु चक्षुर्दय इसलिये
 कहे गये हे कि जिसप्रकार हरिणादि जन्तुओं से व्याप्त जगल मे लुटेरो से छटे गये

लोकालोक-स्वरूप सकल पदार्थोंने प्रकाश आपवाना स्वभाववाला लोकप्रद्यो-
 तकोंने नमस्कार हो [अभयदयाण]अलयदयोंने नमस्कार हो आत्माना अशोभ-
 लक्षण अवस्थाविशेषनु नाम अलय छे, अने मोक्ष साधनरूप उत्कृष्ट धैर्य-
 स्वरूप लक्षण जेधये अने प्रदान करवावाणा होवाथी प्रभु अलयदय कडेवाय
 छे अथवा—अभयनी दया लयरहित छे अर्थात् लगवान द्वारा प्रतिपादित
 दया समस्त लोकोना सकटने हर करवावाणी छे लगवाने अे प्रकारे दयानु'
 स्वरूप प्रकट क्युं छे के जेथी लोको उपर जोध पक्ष सकट न आवी 'शके
 (चमखुदयाण) ज्ञानरूप चक्षुना दातारने नमस्कार हो प्रभु चक्षुर्दय अेटला
 माटे कडेवाय छे के जे प्रकारे हरिण आदि जन्तुवरोथी व्याप्त जगलमा
 लुठाराथी लुटायेला पजी आपो पर पाटा पाधीने पाडा आदिमा धक्का

લુપ્તિતેભ્ય પટ્ટિકાદિદાનન ચક્ષુષિ વિધાય હસ્તપાદાદિ ચર્યા તૈર્ગતે પાતિતેભ્ય કશ્ચિ-
ત્પટ્ટિકાચપનોદનેન ચક્ષુર્દવા માર્ગ પ્રદર્શયન્તિ તથા મગવન્તોઽપિ મગાઽપ્યે ગગદ્રેષ-
લુપ્ટાકુલુપ્થિતાઽઽમગુણધનેભ્યો દુરાગ્રહપટ્ટિકાઽઽદિતજ્ઞાનચક્ષુર્મ્યાં મિથ્યાવોન્માર્ગે
પાતિતેભ્યસ્તદપનયનપૂર્વક જ્ઞાનચક્ષુર્દવા મોક્ષમાર્ગ પ્રદર્શયન્તિ । ણ્તદેવ મદ્ગ્યન્તોઽઽઽ
'મગદયાણ' માર્ગદયેભ્ય—માર્ગ=મમ્યગ્ત્નત્રયલક્ષ્ય ણિયપુગ્પય, યદ્વા—નિશિષ્ટ—

પથાત્ આસોં પર પટ્ટી વાધકર ગતિ આત્ મે ધક્કા દેકર પટકે ગયે માનવોં કે
લિયે કોઈ દયાલુ માનવ ઉનકી આસોંકી પટ્ટી રોલકર ચક્ષુર્દાતા વન ઉન્હેં માર્ગકા
પ્રદર્શન કરાતા હૈ, ડસી પ્રકાર પ્રમુ મી ઇસ અગરણ મવરૂપ અરપ્ય મે રાગદ્રેષ
આદિ લુટ્ટેરોં દ્વારા આત્મગુણરૂપ ધનોં કે અપહરણ હોને સે દીનહીન વને હુણ સમસ્ત
સસારી જીવોંકો કિ જિનકી જ્ઞાનરૂપ આસોં પર દુરાગ્રહરૂપી પટ્ટી કર્મેને વાધ રસી હૈ
ઔર ઇસીસે જિનકા જ્ઞાનરૂપ નેત્ર આચ્છાદિત હો રહા હૈ ઔર ઇસીકે વજહ સે જો
ઉન્માર્ગરૂપી ગતિ મે ધકેલ દિયે ગયે હૈ, પ્રમુને અપને દિવ્ય ઉપદેશ દ્વારા ઉન્હેં
સત્ જ્ઞાન દિયા, ઇસસે ઉનકા દુરાગ્રહ નષ્ટ હો ગયા, ઔર જ્ઞાનરૂપ અન્તરગ નેત્ર
નિર્મલ હો જાને સે પ્રમુને ઉન્હે મોક્ષમાર્ગ દિશ્વાયા । ઇસલિયે પ્રમુ ઉનકે ચક્ષુર્દાતા
સમાન માને ગયે હૈ । ઇસી વિષય કો વિશેષ સ્પષ્ટ કરને કે લિયે સૂત્રકાર પ્રકારાન્તર
સે કહતે હૈ—કિ (મગદયાણ) મોક્ષમાર્ગ મે લગાનેવાલોં કે લિયે નમસ્કાર હો ।
યહા રત્નત્રય યહી મોક્ષમાર્ગ હૈ, અથવા—ગુણસ્થાનોંકી પ્રાપ્તિ કરાનેવાલા ક્ષયોપશમ

દધને નાખી દેવાયેલા માણસને જેમ કોઈ દયાળુ માણસ તેની આખેના
પાટા ખોલીને ચક્ષુર્દાતા બની તેને માર્ગ બતાવે છે તેજ પ્રકારે પ્રભુ પ્રભુ
આ અશરણુ લવણ્ય અરણ્યમા રાગદ્રેષ આદિ લૂટારા દ્વારા આત્મશુભુરૂપ
સપત્તિ લૂટાઈ જતા દીનહીન બનેલા સમસ્ત સસારી જીવોને કે જેમની
જ્ઞાનરૂપ આખો પર દુરાગ્રહરૂપી પાટા ક્રમોંએ બાધી રાખેલા છે અને તેથીજ
જેના જ્ઞાનરૂપી નેત્ર ઢાંઢાઈ ગયા છે અને એજ ડારણુથી જે ખોટા માર્ગરૂપી
ખાડામા ધકેલાઈ ગયા છે તેમને પ્રભુએ પોતાના દિવ્ય ઉપદેશ દ્વારા સત્ જ્ઞાન
આપ્યુ, તેથી તેમના દુરાગ્રહ નાશ પામ્યા અને જ્ઞાનરૂપ અતરંગના નેત્ર
નિર્મળ થઈ જવાથી પ્રભુએ તેમને મોક્ષમાર્ગ દેખાડયો તેથી પ્રભુ તેમના
ચક્ષુર્દાતા સમાન મનાય છે આજ વિષયને વિશેષ સ્પષ્ટ કરવા માટે સૂત્રકાર
પ્રકારાતરથી ડહે છે કે (મગદયાણ) મોક્ષ માર્ગમા લગાડવાવાળાને નમસ્કાર
હો અહી રત્નત્રય એજ મોક્ષમાર્ગ છે અથવા શુભુસ્થાનોની પ્રાપ્તિ કરા-

सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाण धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं

गुणस्थानप्रापक क्षयोपशमभावो मार्गस्तस्य दया—दातारस्तेम्य । ' सरणदयाण ' शरणदयेम्य—शरण=शरित्राण—कर्मरिपुत्रगीकृततया व्याकुलाना प्राणिना रक्षगस्थान वा तस्य दयास्तेम्य । ' जीवदयाणं ' जीवदयेम्य—जीवेषु—एकेन्द्रियादिसमस्तप्राणिषु दया—सङ्कटमोचनलक्षणा येषामिति, यद्वा—जीवन्ति मुनयो येन स जीव—सयमजीवितं तस्य दयास्तेम्य । ' बोहिदयाण ' बोधिदयेम्य—बोधिजिनप्रणीतधर्ममूलभूता-तत्त्वार्थ-श्रद्धानलक्षणसम्भूद्दर्शनरूपा तस्या दया—बोधिदयास्तेम्य । ' धम्मदयाण ' धर्म-दयेम्य—धर्म—दुर्गतिप्रपतन्तुमरक्षणलक्षण श्रुतचारित्रात्मकस्तस्य दयास्तेम्य ।

भावरूप मार्ग है, मध्य जीवोंके लिये प्रभु इसके दातार हैं । इसलिये प्रभु मार्गदय है । (सरणदयाण) शरणदातारों के लिये नमस्कार हो । प्रभु शरणदातार इसलिये है कि उन्होंने कर्मरूपी रिपु द्वारा वशोक्त होनेके कारण व्याकुल बने हुए समस्त प्राणियों को निर्मय स्थान में पहुँचनेका उपदेश दिया, अथवा—तुम्हारी रक्षा कैसे हो सकती है इसका उपाय बतलाया । (जीवदयाण) जीवों के ऊपर दया रखने का उपदेश देनेवालों के लिये, अथवा—सयमरूप जीवन को प्रदान करनेवालों के लिये नमस्कार हो । (बोहिदयाण) बोधिके दातारोंको नमस्कार हो । प्रभुने समस्त ससारी जीवों को जो बोधामिलायी थे उन्हें तत्त्वार्थ के श्रद्धान करने रूप बोधि को प्रदान किया, क्योंकि आत्मकल्याण के मार्ग में सर्वप्रथम यही एक प्रधान साधक है । इसलिये प्रभु इस अपेक्षा से बोधिदातार कहे गये हैं । (धम्मदयाण) धर्मके

वनारा क्षयोपशमलावश्य मार्गं छे लब्ध एवोनेभाटे प्रभु तेना दातार छे तेथी प्रभु मार्गदय छे (सरणदयाण) शरणदातारोने नमस्कार हो प्रभु शरण-दातार अटला थाटे छे के तेमणे कर्मरूपी रिपुद्वारा वशीभूत थर्थ जवाना वरणे व्याकुल भनी जयेला समस्त प्राणियोने निर्मय स्थानमा पहुँ-चवानो उपदेश कियो, अथवा तेमनी रक्षा केम थर्थ शटे तेना उपाय बताव्यो (जीवदयाण) एवोना उपर दया राखवानो उपदेश देवावाणा अथवा सयमरूप एवन प्रदान करवा वाणाने नमस्कार हो (बोहिदयाण) बोधिना दातारोने नमस्कार हो प्रभुओ समस्त ससारी एवोने के बोधामिलायी हुता तेमने तत्त्वार्थश्रद्धानरूप बोधि प्रदान क्युं, केमके आत्मकल्याणना मार्गमा सीधी प्रथम आज् ओक मुख्य साधन छे ओ भाटे प्रभु ओ अपेक्षाओ बोधि दातार बडेवाय छे (धम्मदयाण) धर्मना दातारोने नमस्कार हो दुर्गतिमा

धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्म-र-चाउरंत-चक्र-वटीणं टीवो

इहोक्तेषु विशेषेषु त न्यन्ते इत्यपन्याग्यानम्, 'अधीगर्यट्ठयेशाम्' इति कर्मणि शेषविवक्षाया पठ्युपत्ते । शेषवाऽविनक्षायाम्, द्वितीयाया सत्त्वेऽपि 'कर्मण्यण्' इत्यणुपत्त्या अभयदायेभ्य इत्याद्यनिप्रयोगापत्तेर्दुवात्प्रात । 'धम्मदेसयाण' धर्मदेशकेभ्य - धर्म = प्राकृप्रतिपादितलक्षण, तस्य देशका उपदेशकास्तेभ्य । 'धम्मनायगाण' धर्मनायकेभ्य - धर्मस्य नायका = नेतार - जनानामन्त कृष्णे धर्मप्रचार-करणाद् इति यावत् - धर्मनायकास्तेभ्य । 'धम्मसारहीण' धर्मसारविभ्य - धर्मस्य सार-थय धर्मसारथयस्तेभ्य, भगवत्सु सारथिवाऽऽरोपेण धर्मं रथत्वागेषु व्यन्यते इति परम्परितरूपकमलङ्कारस्तस्माद्यथा सारथयो रथद्वारा रथस्यान् पथिकान् सुखपूर्वक-मभीष्ट स्थानं न्यन्त्युन्मार्गगमनादितश्च प्रतिस्थते, तथा भगवन्तो धर्मद्वारा मोक्षस्थान-

दातारोको नमस्कार हो । दुर्गति में पड़ने से जीवोंको रोकनेवाला एक सर्वज्ञ वीतराग प्रभु द्वारा प्रतिपादित श्रुतचारित्ररूप धर्म ही है । प्रभुने ऐसे धर्मका जीवों को अपनी दिव्यवाणी द्वारा उपदेश दिया, अत वे धर्मके दातार कहलाये । (धम्मदेसयाण) धर्मदेशकों के लिये नमस्कार हो । (धम्मनायगाण) धर्मके नायकों के लिये नमस्कार हो । प्रभु धर्म के नायक इसलिये कहलाये है कि, उन्होंने जनता के अन्तःकरण में धर्मका प्रचार किया है । (धम्मसारहीण) धर्मके सारथियों को नमस्कार हो । यहा परम्परितरूपकालकार है । क्योंकि भगवान् मे सारथिव का जन आरोप किया गया है तो धर्ममें रथत्वका आरोप प्रकट होता है । इसलिये जिसतरह सारथी रथ द्वारा रथस्थ पथिक को सुखपूर्वक अभीष्ट स्थान पर पहुँचा दिया करता है,

पठवाथी लोवोने शोठवावाजा ओक्क सर्वज्ञ वीतराग प्रभुद्वारा प्रतिपादित श्रुत चारित्ररूप धर्मञ्छे प्रभुञ्छे एवा धर्मोना लोवोने पोतानी दिव्यवाणी द्वारा उपदेश आये, भाटे तेञ्छो धर्मोना दातार कडेवाया (धम्मदेसयाण) धर्म-देशको ने नमस्कार हो । (धम्मनायगाण) धर्मोना नायकोने नमस्कार हो प्रभु धर्मोना नायक ओटला भाटे कडेवाय छे के तेमणे जनताना अन्तःकरणमा धर्मोना प्रचार ज्यो छे (धम्मसारहीण) धर्मोना सारथिञ्छोने नमस्कार हो-अही परपरित-रूपक अलकार छे, केमडे भगवान्मा सारथित्वोना आरोप करवाथी धर्ममा रथत्वोना आरोप प्रकट थाय छे आ भाटे जेवी रीते सारथी रथद्वारा रथमा जेसनार पथिकने सुखपूर्वक अभीष्ट स्थाने पडोवाडी हे छे तेमञ्छे जोटा भागथी तेनी रक्षा करे छे तेवीञ्छे रीते प्रभुञ्छे पणु

मितिभाव । ' धम्म-वर-चाउरत-चक्र-वृष्टीण '—धर्म-वर-चातुरन्त-चक्र-वर्तिम्य
दानशीलनपोभावैधनसृणा नरकादिगतीना चतुर्णां वा कृपायाणामन्तो नागो यस्मात्,
अयमा चतस्रो गतीश्चतुर कपायार् वा अन्तयति=नागयतीति, यद्वा-चतुर्भिर्दानशील-
तपोभावै कृपा अन्तो ग्य, ' मृताववसिते रम्ये समाप्तावन्त इप्यते ' इति
निधकोपात् । अथवा चत्वारो दानादयोऽन्ता=अवयवा यस्य, यद्वा चत्वागे दानादय
अन्ता स्वरूपाणि यस्य, ' अन्तोऽवयवे स्वरूपे च ' इति हमचन्द्र, स चतुरन्त
स एव चातुरन्त, स्वार्थिक प्रजाघण, चातुरन्त एव चक्र-

एव उन्मार्ग गमन से उमकी रक्षा करता है, उसी प्रकार प्रभु ने भी धर्मद्वारा
जीवों को उनके अभीष्ट स्थानरूप मुक्तिस्थान में पहुँचाया है, एवं कुमार्य-रुधर्म-से
उनकी रक्षा की है । (धम्म-वर-चाउरत-चक्र-वृष्टीण) दान, शील, तप एव भाव
इन चार का सहारा लेकर चार नरकादिगतियों का, अथवा-चार क्रोधादिक कपायों
का जिससे नाश होता है, अथवा-चार गतियों एवं चार कपायों का जो विनाश
करता है, अथवा दान, शील, तप एव भाव इनको लेकर जो रम्य है,
अथवा-ये चार दानादिक जिसके अवयव है, अथवा-ये चार दानादिक जिसके
निजस्वरूप है वह चातुरन्त है । अन्त शब्द के कोषों में " मृताववसिते रम्ये
समाप्तावन्त इप्यते " " अन्तोऽवयवे स्वरूपे च " इस प्रकार अनेक अर्थ हैं ।
उन्हीं अर्थों को लेकर यहाँ " अन्त " शब्द के अर्थ का स्पष्टीकरण किया गया
है । स्वार्थ में अण् प्रत्यय करने से " चातुरन्त " ऐसा पद निष्पन्न हो जाता

धर्मद्वारा जीवोंने तेमना अलीष्ट स्थानरूप मुक्तिस्थानमा पहुँचाया है
तेमन् कुमार्य रुधर्मथी तेमनी रक्षा करी है (धम्मवरचाउरतचक्रवृष्टीण)
दान, शील, तप, तेमन् भाव से जीवोंने आश्रय लधने चार नरकादि गति
जीवोंने, अथवा चार क्रोधादिक कपायोंने से विनाश करे है, अथवा दान,
शील, तप तेमन् भाव से लधने से रम्य है, अथवा से चार दानादिक
जेमना अवयव है, अथवा से चार दानादिक जेना निजस्वरूप है ते
चातुरन्त है अन्त शब्दना जेयोमा " मृताववसिते रम्ये समाप्तावन्त
इप्यते " " अन्तोऽवयवे स्वरूपे च " से प्रकाशे अनेक अर्थ है ते अर्थों
लधने अर्थात् अत शब्दना अर्थनु स्पष्टीकरण करवामा आवेलु है
स्वार्थमा अण् प्रत्यय करवाथी " चातुरन्त " सेलु पद निष्पन्न शब्द लय है
आ चातुरन्त न सेक थक है, जेमेके थक से प्रकारे जीवोंने उन्हेठ करे है

जन्मजरामरणोच्छेदकत्वेन चक्रतुल्यत्वात्, वर च तद्यत्तुल्यचक्रं वरचातुरन्तचक्रम्, वरपदेन राजचक्राऽपेक्षयाऽस्य श्रेष्ठत्वं व्यज्यते लोकद्वयसाधकत्वात्, धर्म एव वरचातुरन्तचक्र-धर्मवरचातुरन्तचक्र, तादृगस्य धर्मातिरिक्तस्याऽसम्भवात्, अत- एव सौगतादिधर्माऽऽभासनिरास, तेषां तात्त्विकार्थप्रतिपादकत्वाभावेन श्रेष्ठत्वाऽभावात्, धर्मवरचातुरन्तचक्रेण वर्तितुं शीलं येषामिति धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्तिनस्तेभ्यः । चक्रवर्तिपदेन पदस्वड्वाधिपतिसादृश्यं व्यज्यते, तथा हि चवार = उत्तरदिशि हिमवान् शेषदिक्षु चोपाधिभेदेन समुद्रा अन्ता = सीमानस्तेषु स्वामित्वेन मयाधातुरता, चक्रेण = रत्न-

है। यह चातुरन्त ही एक चक्र है, क्यों कि चक्र जिस प्रकार पर का उच्छेदक होता है उसी प्रकार यह “चातुरन्तचक्र” भी जीवों के जन्म, जरा एवं मरण का उच्छेदक है। इसलिये इसमें चक्र की उपमा सार्थक होती है। ‘वर’ शब्द का अर्थ उत्कृष्ट है, यह चातुरन्तचक्र में उत्कृष्टता धोतित करता है। राजचक्र की अपेक्षा यह चक्र उत्कृष्ट है। क्यों कि यह लोकद्वय में हित का साधक होता है। धर्म ही एक उत्कृष्ट चातुरन्त चक्र है, अन्य नहीं। इस कथन से अन्य सौगता- दिक ममत धर्म में धर्माभासता होने से तात्त्विक अर्थ को प्रतिपादन करने का अभाव कथित हुआ है, अतः उनमें श्रेष्ठता नहीं है। इस धर्मवरचातुरन्तचक्र के अनुसार जिनका वर्तन करने का स्वभाव है वे धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती कहे गये हैं। “चक्रवर्ती” पद से पदस्वड् के अधिपति का सादृश्य अभिव्यक्त होता है। “चत्वारःअन्ताः-चतुरन्ताः” यहाँ अन्त शब्द का अर्थ सीमा होता है। उत्तरदिशा में हिमवान् एवं शेष तीन दिशाओं में उपाधि के भेद से तीन समुद्र ये चतुरन्त पद से गृहीत

ते च प्रकारे आ चातुरन्तचक्रं पञ्च लोकोना जन्म, जरा तेभ्य भरषुनो उच्छेद करे छे अे भाटे आभा चकनी उपमा सार्थक थाय छे ‘वर’ शब्दने अर्थ उत्कृष्ट छे आ पद चातुरन्तचक्रमा उत्कृष्टता धोतित करे छे राजचक्रनी अपेक्षाअे आ चक्र उत्कृष्ट छे केभके आ अन्ने लोकमा हिततु साधक थाय छे धर्मअे अे उत्कृष्ट चातुरन्तचक्र छे, जीवु नहि । आ कथनथी जीवु सौगत आदिक ममत धर्ममा धर्माभासता डोवाथी तात्त्विक अर्थने प्रतिपादन कर- वानो असाव डडेवाभा आअे छे, भाटे तेमा श्रेष्ठता नथी आ धर्मवर चातुरन्तचक्र अनुसार जेतु वर्तन करवानो असाव छे ते धर्मवरचातुरन्त चक्रवर्ती डडेवाय छे “चक्रवर्ती” पदथी पद (छ) अडना अधिपतितु सादृश्य अलिव्यक्त थाय छे “चत्वारःअन्ता चतुरन्ता.” अडी अन्त शब्दने अर्थ सीमा थाय छे उत्तरदिशां हिमवान् तेभ्य शेष (पाडीनी)

भूतप्रहर्गाग्निशेषमदृशमस्यङ्गुचारिखरूपग्नन वर्तितु शील येषा ते चक्रवर्तिन,
 चातुगन्ताश्च ते चक्रवर्तिन चातुगन्तचक्रवर्तिन, धर्मण-न्यायेन वग श्रेष्ठ इतरतीर्थि-
 काऽपेक्षयेति धर्मवग, धमा=प्राणानिपातादिनिवृत्तिदानशीलादिख्या, 'धर्माः पुण्य-
 यम-न्याय-स्वभावाऽऽचार-सोमपा'-इयम, तैरग=श्रेष्ठ अन्यतीर्थिकापेक्षयेति
 धर्मवग, ते च ते चातुरन्तचक्रवर्तिनश्चेति-धर्मवगचातुगन्तचक्रवर्तिन । यद्वा
 चातुगन्त च तच्चक्र चातुगन्तचक्र, वग्न्न तथातुरन्तचक्र वगचातुगन्तचक्र, धर्मो वरचातुगन्त-
 चक्रमिव धर्मवगचातुगन्तचक्र तेन वर्तितु-वर्तयितु वा शील येषा ते धर्मवरचातुगन्तचक्रवर्तिन-
 स्तेभ्य, 'दीवो' द्वीपेभ्य-मसारसमुद्रे निमज्जता द्वीपतुन्यवात् । 'ताण' प्राणभ्य-कर्मकद-

क्रिये गये है । इन चार मीमांसा के जो स्वामी हैं वे चातुरन्त हैं । चक्रवन्द का
 अर्थ गनरूप प्रहर्गण-शस्त्रप्रियेप है । चक्रवर्ती के चौदह रत्ना मे एक रत्न चक्र
 भी होना है । चक्रवर्ती के चक्रगनसदृश सम्यङ्गुचारिखरूपी गन से वर्तन करन का
 जिनका स्वभाव है वे चक्रवर्ती हैं । धर्म शब्द का अर्थ न्याय और प्राणानि-
 पातादि-निवृत्ति, दान, शील, आदि भी है । धर्म से-न्याय से, अथवा-प्राणानि-
 पातादि-निवृत्ति, दान, शील-आदि से जो अन्यतीर्थिका का अपेक्षा उत्तम है
 वे धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती हैं । अथवा-चातुरन्तचक्रसदृश धर्म से जिनका वर्तन का
 स्वभाव है वे धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती हैं । ऐसे धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्तियों के लिये
 नमस्कार हो । 'दीवो' मसारसमुद्र मे डूबते हुए प्राणियों के जो द्वीप के समान
 आधार है ऐसे प्रभु के लिये नमस्कार हो । (ताण) कर्मों से कर्तव्यत प्राणियों

त्रयु द्विश्राभोभा उपाधिना लेख्यी त्रयु समुद्र ये यतुरन्त पद्वी लेवायु छे
 आ चार सीमाभोना ले च्वाभी छे ते यतुरन्त छे चक शब्दनेो अर्थ
 रत्नरूप प्रहर्षण अर्थात् शस्त्रविशेष छे चक्रवर्तीना यौद रत्नोभा अेक
 रत्न अक पणु डोय छे चक्रवर्तीना चक्ररत्नसदृश सम्यङ्गु
 रित्ररूपी रत्नथी वर्तन करवानेो लेनो स्वभाव छे ते चक्रवर्ती छे धर्म
 शब्दनेो अर्थ न्याय अने प्राणानिपातादिनिवृत्ति, दान, शील आदि पणु
 छे धर्मथी, न्यायथी अथवा प्राणानिपातादिनिवृत्ति, दान, शील आदिथी
 ले अन्यतीर्थिकोनी अपेक्षाये उत्तम छे ते धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती छे
 अथवा वरचातुरन्तचक्रसदृश धर्मथी लेनो वर्तवानो स्वभाव छे ते धर्मवर-
 चातुगन्तचक्रवर्ती छे अथवा धर्मवरचातुगन्तचक्रवर्तीओने नमस्कार हो
 (दीवो) मसारसमुद्रमे डूबता प्राणीओने द्वीपना समान ले आधार छे

ताणं सरणगई पडट्टा अप्पडिहय-वर-नाण-दंसण-धराणं वियट्ट-

र्थिताना भव्याना रक्षसक्षणेभ्य । अतएव तेषा भव्याना 'सरणगई' शरणगतिभ्य -
 आश्रयस्थानेभ्यः, 'पडट्टा' प्रतिष्ठाभ्य -कालत्रयेऽपि अग्निनाग्निनात् स्थितेभ्य, 'दीवो'
 इत्यादीनि 'पडट्टा' इत्यन्तानि चतुर्थ्यं प्रथमान्तानि, अत्रैकवचन नपुमकत्व स्त्रीत्व
 चाविवक्षितम् । 'अप्पडिहय-वर-नाण-दंसण-धराण' अप्रतिहतपर-ज्ञान
 दर्शन-धरेभ्य -प्रतिहत-मित्याद्याः शरणस्वरूपित-न प्रतिहतम्-अप्रतिहत, ज्ञानञ्च दर्शनञ्चेति
 ज्ञानदर्शने, यतोऽप्रतिहते अतएव वरे-श्रेष्ठे च ते ज्ञानदर्शने वरज्ञानदर्शने केवल-
 ज्ञानकेवलदर्शने, अप्रतिहते वरज्ञानदर्शने अप्रतिहतपरज्ञानदर्शने, तयोर्धरा -
 अप्रतिहतपरज्ञानदर्शनधरा - सम्पूर्णाऽपरगरहितकेवलज्ञानकेवलदर्शनधारिणस्तेभ्य ।
 'वियट्टच्छउमाण' व्यावृत्तच्छन्नभ्य -छद्यते=आप्रियते केवलज्ञानकेवलदर्शनगुणाद्या-
 त्मनोऽनेनेति छन्न-ज्ञानावरणीयादिक कर्माटक, व्यावृत्त-निवृत्त उन्न येभ्यस्ते व्यावृ-

के जो त्राता है ऐसे प्रभु के लिये नमस्कार हो । (सरणगई) भव्यों के लिये
 आश्रयस्थानस्वरूप प्रभु के लिये नमस्कार हो । (पडट्टा) कालत्रय में भी
 अविनाशस्वरूप प्रभु के लिये नमस्कार हो (दीवो) यहा से लेकर (पडट्टा)
 तक के समस्त विशेषण चतुर्थी विभक्ति के अर्थ में प्रथमान्त प्रयुक्त हुए हैं ।
 यहा एकवचन, नपुसकत्व एव स्त्रीत्व अप्रतिहित है । (अप्पडिहय-वर-नाण-
 दंसण-धराण) जो अप्रतिहत अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन के धारक है,
 उनके लिये नमस्कार हो । (वियट्टच्छउमाण) जिनके द्वारा आत्मा का स्वभावभूत
 केवलज्ञान एव केवल दर्शन आवृत्त होता है ऐसे आठों ही कर्म 'छन्न' शब्द से
 गृहीत हुए हैं, यह छन्न जिनकी आत्मा से सदा के लिये दूर हो चुका है

येवा प्रभुने नमस्कार डो (ताण) कर्मोथी अथडाता प्राण्णियोना ने त्राण्ण
 अर्थात् रक्षक छे येवा प्रभुने नमस्कार डो (सरणगई) लब्धोने भाटे आश्रय
 स्थान स्वरूप प्रभुने नमस्कार डो (पडट्टा) त्रण्णे डाणभा अविनाशीस्वरूप प्रभुने नम
 स्कार डो (दीवो) अही थी लब्धने (पडट्टा) सुधीना अधा विशेषणो चतुर्थी विभक्तिना
 अर्थमा प्रथमान्त वपरायेला छे, अही एकवचन नपुसकत्व (नान्यतर भक्ति)
 तेम न स्त्रीत्व [नागी भक्ति] अविवक्षित छे [अप्पडिहय वर नाण दंसण धराण]
 ने अप्रतिहित अनन्तज्ञान अने अनन्त दर्शनना धारक छे तेमने नमस्कार
 डो (वियट्टच्छउमाण) नेमना द्वारा आत्माना स्वभावभूत केवल ज्ञान तेमन
 केवल दर्शन आवृत्त थाय छे येवा आठेय कर्म 'छन्न' शब्दथी गृहीत थाय

च्छउमाणं जिणाणं जावयाणं तिण्णाणं तारयाणं बुद्धाणं वोह-
याणं मुत्ताणं मोयगाणं सब्वण्णूणं सब्वदरिसीणं सिव-मयल-

त्तञ्जानस्तेभ्य । 'जिणाण' जिनभ्य-स्वय रागद्वेषशत्रुजेतुभ्य, 'जावयाण' जापकेभ्य-जापयन्ति कर्मशत्रून् जयन्त भव्यजीवगण धर्मदेशनादिना प्रेरयन्तीति जापका, जिघातोर्णा 'क्रीड्जीना णां' इतिश्रुतेण आत्मे पुक्कि जापि इति प्यन्ताद्वातो-र्षुलि जापरूपप्रसिद्धि, तेभ्यो जापकेभ्य । 'तिन्नाण' तीर्णेभ्य-स्वय ससारौघ-ससारार्णव तीर्णा-उत्तीर्णास्तेभ्य । 'तारयाण' तारकेभ्य-तारयन्त्यन्यान् इति तारकास्तेभ्य । 'बुद्धाण' बुद्धेभ्य-स्वय बोध प्राप्तयेभ्य । 'वोहयाण' बोध-केभ्य-बोधयन्त्यन्यान् इति बोधकास्तेभ्य । 'मुत्ताण' मुक्तेभ्य-अमोचिपत् स्वय कर्ममन्धादिति मुक्तास्तेभ्य । 'मोयगाण' मोचकेभ्य-मुच्यमानान अन्यान् प्रेरय-

ऐसे व्यावृत्तछग्न्याले सिद्ध प्रभु के लिये नमस्कार हो। (जिणाण) राग द्वेष आदि अतरग शत्रुओं के विजेता ऐसे प्रभु के लिये नमस्कार हो। (जावयाण) जो कर्मशत्रुओं के जीतने के लिये उद्यत भव्यगणों को धर्मदेशनादि द्वारा प्रेरित करते हैं वे जापक हैं, ऐसे जापक सिद्ध प्रभु को नमस्कार हो। (तिन्नाण) स्वय-सार समुद्र से जो पार हुए हैं वे तीर्ण हैं, ऐसे तीर्ण सिद्ध प्रभु को नमस्कार हो। (तारयाण) जो पर को पार कर देते हैं वे तारक हैं, ऐसे तारक प्रभु को नमस्कार हो। (बुद्धाण) स्वय बोध को प्राप्त जो होते हैं वे बुद्ध कहलाते हैं उनको नमस्कार हो। (वोहयाण) पर को बोध करने वाले प्रभु के लिये नमस्कार हो। (मुत्ताण) मुक्त प्रभु के लिये नमस्कार हो। (मोयगाण)

छे आ 'छद्म' नेमना आत्माथी सहाने भाटे हर थध बुकेला छे जेवा व्या-वृत्तछद्मवाणा सिद्ध प्रभुने नमस्कार हो (जिणाण) रागद्वेष आदि अतरग शत्रुज्योना विजेता जेवा सिद्ध प्रभुने नमस्कार हो (जावयाण) जे कर्मशत्रु-ज्योने छतवाने भाटे उद्यत (तैयार) लव्यगणुने धर्मदेशना आदि द्वारा प्रेरित करे छे ते जापक छे जेवा जापक सिद्ध प्रभुने नमस्कार हो (तिन्नाण) जेने ससार समुद्रथी पार थजेला छे ते तीर्ण उडेवाथ छे जेवा तीर्ण सिद्ध प्रभुने नमस्कार हो (तारयाण) जे भीलने पार उतागी हे छे ते तारक छे जेवा तारक प्रभुने नमस्कार हो (बुद्धाण) जेते बोधने प्राप्त थयेला छे ते बुद्ध उडेवाथ छे तेभने नमस्कार हो (वोहयाण) जेते बोध करवावाणा प्रभुने नमस्कार हो (मुत्ताण) मुक्त प्रभुने नमस्कार हो (मोयगाण) जेते

मरुय-मणत-मखय-मव्वावाह-मपुणरावृत्ति सिद्धिगडनामधेय

तीति मोचकास्तेभ्य, 'सवन्नूण' सर्वज्ञेभ्य-सर्वज्ञ-मरुय-युगुण-पर्यायस्वरूप
वस्तुज्ञात याथातथ्येन जानतीति सर्वज्ञास्तेभ्य, 'सवदरिणी' सर्वज्ञिभ्य-
सर्वज्ञ-समस्त पदार्थस्वरूप सामान्येन द्रष्टुं शील येषां ते सर्वज्ञिभ्य, स्थान-
विशेषणमाह-'सिव' शिव-निखिलोपश्रवणरहित शिष्ट-रूपाणामयम्, 'अयल'
अचलम् स्वाभाविकप्रायोगिककृत्वनक्रियाशून्यम्, 'अरुज' अरुजम्-अविद्यमाना रज्जा
यत्र तत्, अविद्यमानशरीरमनस्कत्वाद् आधिक्यारिहितमित्यर्थ, 'अगत' अनन्तम्-
अविद्यमानोऽन्तो नागो यस्य तत्, अत एव-'अखय' अक्षयम्-नास्ति लेजतोऽ
पि क्षयो यस्य तत्-अविनाशीत्यर्थ, 'अव्वावाह' अव्यावाधम्-न विद्यते व्यावाधा-
पीडा द्रव्यतो भावतश्च यत्र तत् । 'अपुणरावृत्ति' अपुनरावृत्ति-न मसौ पुनरा-
वृत्ति-पुनरावृत्तरण यस्मात् तत्, यत्र गवा न कदाचिदप्यात्मा निवर्तते, समान्नातमन्य-

दूसरों को मुक्त कराने वाले सिद्ध प्रभु के लिये नमस्कार हो । (सवन्नूणं सवद-
रिणी) सर्वज्ञ-समस्त गुणपर्यायस्वरूप वस्तुसमूह के युगपत् यथार्थ ज्ञाता
के लिये नमस्कार हो, एव यथार्थ द्रष्टा के लिये नमस्कार हो । विशेषाकार बोध
का नाम जान एव सामान्याकार बोध का नाम दर्शन है । (सिव-मयल-मरुय-
मणत-मखय-मव्वावाह-मपुणरावृत्ति सिद्धिगडनामधेय ठाण सपत्ताण)
निखिल उपद्रवों से रहित होने के कारण शिव-रूपाणामय, अचल-स्वाभाविक एव
प्रायोगिक क्रिया से शून्य, अरुज-आरीरिक एव मानसिक व्याधि और आधि से
सर्वथा परिवर्जित, अनन्त, अविनाशी, अतएव अक्षयस्वरूप, अव्यावाध-द्रव्य और
भाव दोनों प्रकार की पीडा से निर्मुक्त, अपुनरावृत्ति-जहा जाकर फिर मसार मे

सुकत कराववावाणा सिद्ध प्रभुने नमस्कार हो । (सवन्नूणं सवदरिणी)
सर्वज्ञ मभस्त-शुष्क-पर्याय-स्वरूप वस्तुसमूहना युगपत् यथार्थ ज्ञाताने
नमस्कार हो, तेमज यथार्थ द्रष्टाने नमस्कार हो विशेषाकार बोधनु नाम
ज्ञान तेमज सामान्याकार बोधनु नाम दर्शन छे । (सिव-मयल-मरुय-मणत-मखय-
मव्वावाह-मपुणरावृत्ति सिद्धिगडनामधेय ठाण सपत्ताण) सवण उपद्रवोधी
रहित होवाना कारणे शिव-कल्याणमय, अचल-स्वाभाविक तेमज प्रायोगिक
क्रियाबोधी शून्य, अरुज-आरीरिक तेमज मानसिक व्याधि अने आधिधी सर्वथा
परिवर्जित (सुकत), अनन्त, अविनाशी अने तेधी अक्षय-स्वरूप, अव्यावाध द्रव्य
अने भाव अने प्रकारनी पीडाधी निर्मुक्त, अपुनरावृत्ति-जहा जाकर फिर मसार

टाणं संपत्ताणं, नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स

त्रापि- 'न म पुनगरर्त्तते न म पुनगरर्त्तते'—इति । इत्यम्—उक्तशिववादि-
 विशेषणविशिष्टम् । 'मिद्दिगज्जनामवेय' मिद्दिगतिनामवयम्, सिद्दिगतिरिति नाम-
 धेय=नाम यस्य तत्र. मिद्दिगतिनामकम् 'टाण' स्थानम्—स्थीयतेऽस्मिन् इति स्थान-
 लोकाप्रलक्षणम्, 'सपत्ताण' सम्प्राप्तेभ्य—समाश्रितभ्य । श्यदधि—समुच्चयेन सर्व-
 मिद्दिगपेक्षया विशेषणोपादानपूर्वकं नमस्काराद्ययमभिवाय सम्प्रति भगवन्महावीरोदेत्यक
 नमस्कारमभिवाये—'नमोत्थु ण' नमोऽस्तु ग्ल—'समणस्स भगवओ महावीरस्स'
 श्रमणाय भगवते—महावागय, अत्र श्रमणशब्देनायमर्थो धोद्वय्य—परकृतस्थान—निवासा-
 द्गमसम्, परीपहोपमर्गध्वप्रकम्पाद्गिगिसम्, तपस्नेजोमत्रादनलसम्, गम्भीरत्वाद्-

जात्र का अत्रग नही होये ऐसे मिद्दिगति नामक स्थान को—लोक के अग्रभाग
 म स्थित मुक्तिस्थान को—प्राप्त हुए श्री मिद्दिग को नमस्कार हो। यहा नरु के
 उन विशेषणों से समस्त मिद्दिगों की अपेक्षा से नमस्कार का कथन किया गया है।
 अत्र भगवान महावीर को उद्देश्य कर क यहा से नमस्कार करने का कथन
 सूत्रकार करते हैं—(नमोत्थु ण समणस्स भगवओ महावीरस्स आदिगरस्स
 तित्थगरस्स जात्र सपाण्डिकामस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स)
 श्रमण भगवान महावीर के लिये नमस्कार हो। श्रमण शब्द से सूत्रकार ने प्रभु
 महावीर में उन विशेषताओं का कथन किया है, वे कहते हैं भगवान महावीर
 सर्प की तरह परकृत स्थान में निवास करने के कारण सर्प—सदृश है। परीपह
 एव उपमर्गों के आने पर भी प्रभु अप्रकम्प थे, अत वे गिगिसम् हे। तप एव
 तेजके धारक होने से प्रभु अग्नि—जैसे प्रतापशाली है। गम्भीर एव जानादिकरूप

समागमा एवने अवतरणु न थाय जेवा सिद्दिगति नामना स्थानने श्लोकना
 अग्रभागमा रहेला मुक्तिस्थानने प्राप्त थयेल श्रीसिद्ध प्रभुने नमन्धार डो
 अही सुधीना आ विशेषणोयी नमन्त सिद्धोनी अपेक्षाये नमन्धारनु कथन
 थुं छे डवे लगवान महावीरने उद्देशीने अही थी नमन्धार करवानु कथन
 सूत्रकार करे छे—(नमोत्थु ण समणस्स भगवओ महावीरस्स आदिगरस्स तित्थ
 गरस्स जात्र सपाण्डिकामस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स) श्रमणु लगवान
 महावीरने नमन्धार डो श्रमणु शब्दथी सूत्रकारे प्रभु महावीरमा आ विशे
 पताओनु कथन थुं छे तेओ श्ले छे डे लगवान महावीर सर्पनी थैठे
 जीनये करेला निवागस्थानमा रहेवाने डारणु सर्प जेवा छे
 परीपह तेमत्र उपमर्गों आवता पणु प्रभु ध्रुणु जता नहि, माटे ते पर्वत

आदिगरस्स तित्थगरस्स जाव संपाविउकामस्स मम धम्माय-

जानाद्विग्लानाकृत्वात् मर्यादाधारकत्वात् मागरमम । निगलम्बनत्वाद्गगनसम । सुग्गु गयोरद-
 र्शितविकारभावाद् वृक्षसम । अनियतवृत्तित्वाद् भ्रमरसम । सत्सारभयोद्विग्नत्वात् मृगसम ।
 सर्वसहत्वाद् धरिणिसम । कामभोगोदभवत्प्रेऽपि विषयविरक्ततया पद्मजलोपरि वर्तमान-
 कमलमन्त्रिलेपत्वात् कमलसम । लोकालोकयोरत्रिणेपत्वेन प्रकाशकत्वाद्प्रिसम । सर्वत्रा-
 प्रतिहतवृत्तित्वात्पवनसम । म एवभूतो भगवानस्तीति भाव । भगवते-समप्रेष-
 र्ययुक्ताय, महावीराय-महाश्रासौ वार- 'वीर प्रिकान्तौ'-अम्माद्वातोस्सिगुपधवात्कप्रत्यये
 वीर-रूपायादिमहारिपुत्रिजेता इत्यर्थ, तस्मै महावीराय=अस्थामवसर्पिण्या चतुर्विंशतित-
 मचरमतीर्थङ्कराय । 'आदिगरस्स' आदिक्रमय, 'तित्थगरस्स' तीर्थकराय, 'जाव
 संपाविउकामस्स' यावत् सम्प्राप्तुकामाय-यावच्छब्दात्-'सयन्वुद्धस्स' इत्यारभ्य-

रत्नों से भरे हुए होने के कारण, एव मर्यादा के धारक होने के कारण प्रसु
 समुद्रतुल्य है । गगन की तरह निरालम्ब, वृक्षकी तरह सुख एव दुःख में
 अदर्शितविकारभावयुक्त, भ्रमर की तरह अनियतवृत्तिसम्पन्न, मृग की तरह इस
 गसाररूपा भय से अत्यन्त त्रस्त, धरिणी की तरह क्षमा के भंडार वे प्रसु हैं ।
 प्रसु कामभोग से उपन्न है तो भी विषयों से विरक्त होने के कारण पद्म से
 उत्पन्न एव जल से मन्त्रित कमल का तरह विलकुल वैषयिक भावों से निर्लिप्त
 है, इसलिये प्रसु कमल जैसे है । प्रसु लोक और अलोक के समानरूप से प्रका-
 शक है, इसलिये रवितुल्य है । प्रसु सर्वत्र अप्रतिहत-विहारी है, इसलिये वायु जैसे
 हैं । प्रसु समग्र ऐश्वर्यसम्पन्न है, इसलिये भगवान् है । प्रसु एक महावीर है,

जेवा छे तप तेमज्ज तेज्जना धारक होवाथी प्रभु अग्नि जेवा प्रतापशाली
 छे 'गालीथ' तेमज्ज जानाद्विकउप रत्नोथी लरेला होवाना कारणे, तेमज्ज
 मर्यादाना धारक होवाना कारणे प्रभु समुद्र समान छे आनाशनी पेटे निरा-
 लम्ब, वृक्षनी पेटे सुख तेमज्ज दुःखमा न देणाय जेना विकार जेवा,
 भ्रमरनी पेटे अनियतवृत्तिसम्पन्न, मृगनी पेटे आ-ससारइपी लयथी
 अत्यन्त त्रासी गथेला, धरनीनी पेटे क्षमाना लकार, ते प्रभु छे प्रभु काम
 भोगथी उत्पन्न थथेला छे तो पणु विषयोथी विरक्त होवाना कारणे डीयउथी
 पेदा थथेल तेमज्ज जलथी वधेला उभगनी पेटे विलकुल विषयना लावेथी
 निर्लेप छे, तेथी प्रभु कमल जेवा छे प्रभु लोक अने अलोकनो समानरूपथी
 प्रकाशक छे तेथी गवि (सूर्य) समान छे प्रभु समग्र-ऐश्वर्य-सम्पन्न छे
 तेथी लगवान छे प्रभु जेठ महान वीर छे, केमडे तेमज्जे उपाय आदिक

‘सिद्धिगङ्गनामधेय ठाण इयदवधि प्राहम् । अत्रैतावान् विशेष—‘ठाण सपत्ताण’ स्थान संप्राप्तेभ्य—इति प्रागुक्तम्, ऋ तु ‘सपाविडकामस्स’ संप्राप्तुकामाय—मोक्षगामिने—उच्युच्यते, चर्मस्य तार्थकरस्य कृणिककृतपञ्चासनकाले विद्यमानवात । ‘मम धम्मायरियस्स’ मम धमाऽऽचार्याय=ज्ञानाचारादिपञ्चभिन्नाचार्यारकाय, न तु कलाचार्याय,

क्यों कि उन्होंने कृपायादिक अन्तरग शत्रुओं पर विजय प्राप्त का है । महावार प्रभु इस अवसर्पिणी का के चौथीसरे अन्तिम तीर्थकर है । “आदिगरस्स” इस पद—द्वारा प्रभु में अपने शासन की अपेक्षा धर्म की जादिकर्तृता प्रकट का गयी है । भगवान महावार चतुर्विध ऋषि के स्थापक है । “जाव” पदसे “सयसजुद्धस्स” यहा से लेकर “सिद्धिगङ्गनामधेय ठाण” यहा तकका पाठ संगृहीत किया गया है । यहा इस पाठ में उतनी विशेषता पहिले पाठ की अपेक्षा जान लेनी चाहिये कि पहिले पाठ में “ठाण सपत्ताण—स्थान संप्राप्तेभ्यः” ऐसा पद रखा गया है और यहा पर “ठाण सपाविडकामस्स—स्थान संप्राप्तुकामाय” ऐसा पाठ रखा है, क्योंकि प्रभु महावीर अभी उस सिद्धिगतिनामक स्थान का प्राप्ति करनेवाले है । ‘मम धम्मायरियस्स’—कौणिक कहते है कि ये श्रमग भगवान् महावीर प्रभु, जो कि ज्ञानाचारादि पाँच प्रकार के आचारो के धारक होने के कारण मेरे धर्माचार्य है, कलाचार्य नहीं, उनके लिये नमस्कार है । इससे यह सूचित होता है कि जो ज्ञानाचारादि पाँच प्रकार के आचारों के धारक है वे ही धर्माचार्य कहे जाते है ।

अन्तरग शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर्षो है महावीर प्रभु का अवसर्पिणी कालना चौथीसमा अन्तिम तीर्थकर है, “आदिगरस्स” से पदथी प्रभुमा पोताना शासननी अपेक्षासे धर्मना आदिर्त्तापणु प्रग उर्यु है लग वान महावीर चतुर्विध ऋषिना स्थापक है ‘जाव’ पदथी “सयसजुद्धस्स” अहीथी लधने “सिद्धिगङ्गनामधेय ठाण” अही सुधीने पाठ लेवामा आये है अही का पाठमा अटली विशेषता पडेला पाठनी अपेक्षासे नलुवी नेध से डे पडेला पाठमा “ठाण सपत्ताण”—स्थान संप्राप्तेभ्यः” सेवु यह वधरायु है अने अही “ठाण सपाविडकामस्स—स्थान संप्राप्तुकामाय” सेवे पाठ लीधो है, डेभडे प्रभु महावीर उल्लु ते सिद्धिगतिनामक स्थानने प्राप्त करवावाजा है “मम धम्मायरियस्स” डेखिड डडे है डे ते श्रमणु भगवान् डे से ज्ञानाचारादि पाचप्रकारना आचारोना धारक होवाना डरसे मारा धर्माचार्य है, कलाचार्य नथी, सेवा प्रभु ने नमस्कार हो आथी सेम सूचित थाय है डे से ज्ञानाचारादि पाचप्रकारना आचारोना धारक होय

रियस्स धम्मोवदेसगस्स, वदामि णं भगवंतं तत्थ गयं इहगए,
पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयंति—कट्टु वंदइ णमसइ, वदित्ता

धर्माचार्यत्वमेव प्रकटीकरोति—‘धम्मोवदेसगस्स’ धर्मापदेशकाय, श्रुतचारित्र्यरूप-
धर्मप्ररूपकाय, ‘वदामि णं भगवत तत्थगय इहगए’ वन्दे गच्छ भगवत तत्रगतमिहगत इह
गत चम्पानगरास्थितोऽहम् कोणिक, तत्रगत=चम्पा नगराममाप—ग्रामं स्थित भगवत महावीर,
वन्दे—पूर्वोक्तस्तुत्या स्तुतिप्रिय करोमि । ‘पासउ मे भगव तत्थगए इहगय तिक्कट्टु’
पश्यतु मा भगवान् तत्रगत इहगतमिति कृत्वा—सर्वत्रात् तत्रगतो=दूरस्थितो भगवान्
इहगत=व्यवधानेन स्थित मा पश्यतु—इति क्रमा=उच्युत्वा—‘वदइ णमसइ, वदित्ता
णमसित्ता’ वन्दते—स्तौति, नमस्यति=पश्चाद्गननपूर्वक प्रगमति, वदित्ता नमस्थिना

‘धम्मोवदेसगस्स’ भगवान् वार श्रुतचारित्र्यरूप धर्मका उपदेश करते हैं, इसलिये वे
धर्मोपदेशक हैं, अतः ऐसे वीरप्रभु के लिये नमस्कार हो। कोणिक राजा इस प्रकार
कहकर प्रभुवार को परोक्ष वन्दन करते हैं कि—(तत्थगय इहगएत्ति कट्टु वदइ
णमसइ) वे वीरप्रभु कि जित्ते मैं इस समय नमस्कार कर रहा हूँ, यद्यपि मेरे प्रत्यक्ष
नहीं है तथापि वे इस चपानगरी के पास के ग्राम में विराजमान हैं और मैं यहाँ
पर हूँ, अतः यहाँ चपानगरी में रहा हुआ मैं उपनगरग्राम में विराजमान वीर
प्रभु को नमस्कार करता हूँ। “पासउ मे भगव तत्थगए इहगय” वे प्रभु
वहाँ पर विराजमान होते हुए व्यवधान से स्थित मुझे अपने जानरूपा नेत्र द्वारा
देखे। इस प्रकार कहकर कोणिक राजाने प्रभु को वन्दन किया एव नमस्कार किया—
पंचागननपूर्वक नमस्कार किया। (वदित्ता नमसित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे

छे तेभने ज धर्माचार्य उडेवाना आवे छे “धम्मोवदेसगस्स” लगवान
महावीर श्रुतचारित्र्यरूप धर्मना उपदेशउ छे तेथी तेओ धर्मोपदेशउ छे,
भाटे ओवा महावीर प्रभुने नमस्कार छे जे छिउरान्ना आ प्रजारे उडीने
प्रभु वीरने परोक्ष वदन उरे छे जे (तत्थगय इहगएत्ति कट्टु वदइ णमसइ)
ते वीर प्रभु जे जेभने हुं आ नभये नमस्कार उगी रह्यो छु ते जे जे भने
प्रत्यक्ष नथी तो प्रभु तेओ आ चपानगरीनी पानेना गाममा छे जेने
हुं अही छु, आथी हुं अही चपानगरीमा रह्योने उपनगर गाममा विश-
जमान वीर प्रभुने नमस्कार उउछु [पासउ मे भगव तत्थगए इहगय] प्रभु
त्या विशजमान होवा छना हर रह्यो ओवा भने पौताना ज्ञानरूपी
नेत्रद्वारा जेओ आ प्रजारे उडीने जे छिउरान्नाओ प्रभुने वदन उवा,

णमंसित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे निसीयइ, निसीइत्ता
तस्स पवित्तिवाउयस्स अट्टुत्तर सयसहस्सं पीइदाणं दलयइ,
दलइत्ता सक्कारेइ मम्मणेइ, सक्कारित्ता समाणित्ता एवं
वयासी ॥ सू० २० ॥

‘सीहासणवरगए’ सिंहासनवरगत, ‘पुरत्थाभिमुहे’ पौरस्त्याभिमुख, -पूर्वाभिमुख
सन ‘निसीयट’ निषादति-उपनिर्घाति, ‘निसीइत्ता’ निषद्य-उपनिर्घय ‘तस्स पवित्ति-
वाउयस्स’ तस्मै प्रवृत्तिव्यापृताय-भगवन्नागमननिवेदकाय, ‘अट्टुत्तर सयसह-
स्स पीइदाण दलयइ’ अष्टोत्तर शतमहत्त्व प्रीतिदान ददाति-अष्टाधिक
लक्षमित राजतमुद्रारूप प्रीतिदान=तुष्टिदान पारितोषिक ददाति । ‘दलइत्ता सक्कारेइ
समाणेइ’ त्वा सत्करोति-यथाप्तिना, स्मानयति आसनादिना, तान विधिसहितमेव
भय्यभ्य भवति-इति भाव । ‘सक्कारित्ता सम्माणित्ता एवं वयासी’ सत्कृत्य=
सन्तोष्य, स्मान्य=सम्मान त्रिषाय, एव=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् ॥ सू० २० ॥

निसीयइ) वदन नमन करके वह क्रोणिक राजा अपने सिंहासन पर पीठे जाकर
पूर्व का तरफ मुख करके बैठ गये। (निसीइत्ता तस्स पवित्तिवाउयस्स अट्टुत्तर
सयसहस्स पीइदाण दलयइ) बैठकर फिर उन्होंने उस गद्देगवाहक को प्रीतिदान
मे-पारितोषिकरूपसे १ लाख ८ चादी की मुद्राएँ दी। (दलइत्ता सक्कारेइ
सम्माणेइ) देकर उसका सूत्र सत्कार किया और स्मान किया, (सक्कारित्ता
समाणित्ता एव वयासी) आदर सत्कार कर चुकने पर फिर राजाने उससे इस
प्रकार कहा-॥सू० २०॥

तेभञ्ज नमन्तार कथा-प त्याग-नमन-पूर्वक नमस्कार कथा (वदित्ता नमसित्ता
सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे निसीयइ) वदन नमन्तार करीने ते डे।खि।कराण
पोताना सिंहासन पर पाछा जर्धने पूर्व तरफ मुख करीने जेसी गया
(निसीइत्ता तस्स पवित्तिवाउयस्स अट्टुत्तर सयसहस्स पीइदाण दलयइ) जेसीने
पत्री तेभञ्जे ते अ देशवाहुने प्रीतिदानभा पारितोषिक (धनाम) इपे
१ लाख ८ मुद्राओ आपी (दलइत्ता सक्कारेइ सम्माणेइ) इधने
तेना भूष्य मन्तार उर्थो अने सन्मान कर्थु (सक्कारित्ता समाणित्ता एव वयासी)
आदर सत्कार उर्थी सु.या पछी राजन्ने तेने आ प्रदारे उछु -(सू २०)

मूलम्—जया णं देवाणुप्पिया । समणे भगवं महा-
वीरे इहमागच्छेज्जा, इह समोसरिज्जा, इहेव चंपाए णयरीए
वहिया पुण्णभदे चेइए अहापडिरूव ओग्गहं ओगिण्हित्ताणं
अरहा जिणे केवली समणगणपरिवुडे संजमेणं तवसा अप्पाणं
भावेमाणे विहरेज्जा, तथा णं तुमं मम एयमट्ठं निवेदिज्जासि-त्ति
कट्ठु विसज्जिए ॥ सू० २१ ॥

टीका—राजा कृणिको भगवद्दार्तानिवेदक पुरुषमादिशति 'जया ण' इत्यादि ।
यदा खलु देवानुप्रिय ! श्रमणो भगवान् महावीर इहाऽऽगच्छेत्, इह समवसेत्,
इहैव चम्पाया नगर्या वाद्ये पूर्णभदे चैये यथाप्रतिरूपमवप्रहमवगृह्य अरहा जिन
केवली श्रमणगणपरिवृत सयमेन तपसाऽऽमान भावयन् विहरेत्, तदा खलु मह-
मेतमर्थं निवेदयेरितिकृत्वा विसर्जित ॥ सू० २१ ॥

'जया ण इत्यादि—

(देवाणुप्पिया) हे देवानुप्रिय ! (जया ण) जिस समय (समणे
भगवं महावीरे) श्रमण भगवान् महावीर प्रभु (इहमागच्छेज्जा) यहा पर विहार
करते हुए पधारें, (इह समोसरिज्जा) यहाँ समवसृत हों, और (इहेव चंपाए
णयरीए वहिया पुण्णभदे चेइए अहापडिरूव ओग्गहं ओगिण्हित्ताण अरहा जिणे
केवली समणगणपरिवुडे संजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरेज्जा) इस
चपानगरी के बाहर पूर्णभद्र नामक उद्यान मे यथाप्रतिरूप-साधु को कल्पने योग्य-
अवप्रह-वसति की आज्ञा वनमाली से ग्रहण कर के श्रमणगण से परिवृत अरहा जिन

'जया ण' इत्यादि—

(देवाणुप्पिया) हे देवानुप्रिय ! (जया ण) के समये (समणे भगव
महावीरे ; श्रमणु भगवान् महावीर प्रभु (इहमागच्छेज्जा) विहार करता करता
अही पधारें, (इह समोसरिज्जा) अही समवसृत थाय, अने (इहेव चंपाए
णयरीए वहिया पुण्णभदे चेइए अहापडिरूव ओग्गहं ओगिण्हित्ताण अरहा जिणे
केवली समणगणपरिवुडे संजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरेज्जा) अ
चपानगरीनी अहार पूर्णभद्र नामना उद्यानमा यथाप्रतिरूप-साधुने कल्पवा
योग्य अवप्रह-वसतिनी आज्ञा अहणु करीने तेज्जा श्रमणुगणुथी वीटणाज्जेला
अरहा जिन उवली भगवान् महावीर स्वामी सत्तर प्रकारना सयम वडे

मूलम्— तए णं समणे भगवं महावीरे कल्लं पाउप्प-
भायाए रयणीए फुल्लुप्पल-कमल-कोमलु-म्मीलियम्मि अहपंडुरे
पहाए रत्तासोग-प्पगास-किंसुय-सुयमुह-गुंजद्धराग-सरिसे कम-

टीका—‘तए ण’ इत्यादि । ततस्तदनन्तरं गल्लं श्रमणो भगवान् महावीर ‘कल्लं’
कन्ये द्वितीयदिवसे ‘पाउप्पभायाए रयणीए’ प्रादुप्रभाताया प्रकटीभूत-प्रभाताया रजन्या
‘फुल्लुप्पल-कमल-कोमलु-म्मीलियम्मि’ फुल्लो-त्पल कमल-कोमलोन्मीलिते-फुल्ल-विकसितं च
तत्-उत्पल-पद्म, कमलश्च=चित्रमृग-हृग्नित्रिषेप, तयो कोमल-मृदुकम्, उन्मीलित-
पत्राणा नयनयोश्चोन्मीलनं यस्मिन् तत्तथा तस्मिन्, इत् प्रभातत्रिषेपणम् । ‘अह’
अथ-अनन्तर-रजनीपर्यवसानाऽनन्तरम्-‘पडुरे’ पाण्डुरे-शुक्ले ‘पभाए’ प्रभाते-प्रातः काले,
अथ सूर्यत्रिषेपणान्याह-‘रत्तासोग’ इत्यादि । ‘रत्तासोग-प्पगास-किंसुय-सुयमुह-गुंज-
द्धराग-सरिसे’ रक्ताऽगोरु-प्रकाश-किंशुक-शुकमुग-गुंजाऽद्धराग-सदृशे, रक्ताऽ
केवली भगवान् महावीर स्वामी मरुह प्रकार के मयम से और बारह प्रकार के तप से
अपनी आत्मा को भावते हुए जब विचरें, (तया ण) तप तुम निश्चय से
(मम एयमट्ट निवेदिज्जासि) मुझे यह समाचार निवेदित करना, (च्चिकट्ट
विसज्जिए) ऐसा कहकर उसे निसर्जित कर दिया ॥सू०२१॥

‘तए ण’ इत्यादि—

(तए ण) तदनन्तर (समणे भगव महावीरे) श्रमण भगवान् महावीर
(कल्लं) दूसरे दिन (पाउप्पभायाए रयणीए) जिसमें प्रभात प्रकट हो चुका है
ऐसी रजनी के होने पर (फुल्लु-प्पल-कमल-कोमलु-म्मीलियम्मि अहपंडुरे पहाए)
तथा विकसित कमलपत्रों एवं चित्रमृग के नयनों का उन्मीलन जिसमें हो चुका
है ऐसे शुभ आभायुक्त प्रातः काल के होने पर, तथा (रत्तासोग-प्पगास-किंसुय-
अने पार प्रधारणा तप वडे पोताना आत्माने लावित इत्ता न्यारे विचरे
(तया ण) त्थारे तमे ७३२ (मम एयमट्ट निवेदिज्जासि) भने ये सभात्थार
निवेदन करणे (च्चिकट्ट विसज्जिए) येम छडीने तेने विदाय ठ्यो [सू २१]

‘तए ण’ इत्यादि

(तए ण) त्थार पछी (समणे भगव महावीरे) श्रमणु लगवान् महावीर
(कल्लं) पीछे द्विदिने (पाउप्पभायाए रयणीए) ते रात्रिनु न्यारे प्रभात
प्रकट थयु, (फुल्लु-प्पल-कमल-कोमलु-म्मीलियम्मि अहपंडुरे पहाए) तथा
विकसेवा ठमलपत्रो तेमञ्च चित्रमृगाना नयन न्यारे उधडी युत्था डोय येपी
शुभ आभावाणे प्रातः काल थये, तथा (रत्तासोग-प्पगास-किंसुय-सुयमुह-

लागर-संड-बोहए उट्टियम्मि सूरे सहस्सरसिसम्मि दिणयरे तेयसा जलते, जेणेव चपा णयरी, जेणेव पुण्णभदे चेडए, जेणेव वणसंडे,

शोक = प्रमिद्वृक्ष - तस्य प्रकाश = प्रभा, म ग्ताऽशोकप्रकाश मचकिशुक = पत्रगुण, शुकमुख च, गुञ्जा = रक्तहृग फत्रविशेष - नट्टं च ग्ताऽशोकभाग, एतथा यो गग - रक्तवर्ण तेन सदृश - समान तस्मिन् = तत्तुन्यत्पुण्युक्त, 'रमलागर-संड-बोहए' कमलाऽऽकर-पण्ड-बोधके-कमलानामाकर = कमलोपतिभ्यागति तटागत्य, तेषु-रमलाकरेषु यानि पण्डानि = कमलप्रानि, तेषा मोरक = प्रिकाशक तस्मिन्-कमल-प्राविकाशकारिणो यव, 'उट्टियम्मि' उचिते-उत्ति 'मरे' मर्ये, पुन कादृशे 'सहस्सरसिसमि दिणयरे तेयसा जलते' सहस्ररश्मौ दिनकरे तेजसा ज्वलति-महत्त्व-महत्त्वपरिमिता रम्य = किण्णा यस्य स तस्मिन् तादृशे दिनकरे-दिवसकारके, तेजसा-त्रिगणपुञ्जेन, ज्वलति-जा-प्रम्यमान सति, 'जेणेव चपा णयरी' यत्रैव चम्पा नगरी वर्तत इति शेष । 'जेणेव पुण्णभदे चेडए' यत्रैव पूर्णभद्र चैयमुद्यानमस्ति । 'जेणेव वणसंडे' यत्रैव वनपट्ट, 'जेणेव असोगवरपायवे' यत्रैवाशोकवरपादप, 'जेणेव पुढवीसिलापट्टए' यत्रैव पृथ्वी

सुयमुह-गुजद्वाराग-सरिसे कमलागर-संड-बोहए) रक्त-अशोक के प्रकाशतुन्य, पलाशपुष्प के समान, शुक के मुख के समान और गुजा के आधे भाग का ललाई के समान, कमलवर्णों को विकसित करनेवाला प्रभात होने पर (उट्टियम्मि सूरे) आकाश में सूर्य का उदय होने पर, और पश्चात् (सहस्सरसिसमि दिणयरे तेयसा जलते) सहस्रकिरणवाला दिनकर जब अपने तेजसे आकाश में चमकने लगा तत्र (जेणेव चपाणयरी जेणेव पुण्णभदे चेडए जेणेव वणसंडे जेणेव असोगवरपायवे जेणेव पुढवीसिलापट्टए तेणेव उवागच्छड) जहाँ वह चपानगरी थी, जहाँ वह पूर्णभद्र उद्यान था, जहाँ वह अशोक वरवृक्ष था, जहाँ पृथ्वीशिलापट्टक था, वहाँ

गुजद्वाराग-सरिसे) रक्त अशोकना प्रकाश समान, उट्टियम्मि-उत्तुडाना पुष्प समान, शुकमुख-पोपटना मुख समान, अने गुञ्जना अर्धलाजनी लालाश समान (कमलागरसंडबोहए) कमलना वनेने णीलववावाणु प्रभात थता (उट्टियम्मि सूरे) आकाशमा सूर्यने उदय थता अने पछी (सहस्सरसिसमि दिणयरे, तेयसा जलते) सहस्रकिरणवाणे सूर्य न्यारे पोताना तेजपडे, आकाशमा चमकवा लाग्ये त्यारे, (जेणेव चपाणयरी जेणेव पुण्णभदे चेडए जेणेव वणसंडे जेणेव असोगवरपायवे जेणेव पुढवीसिलापट्टए तेणेव उवागच्छड) न्या ते चपानगरी इती, न्या ते पृथ्वीलद्र उद्यान इतुं, न्या ते अशोक वरवृक्ष इतु अने न्या

जेणेव असोगवरपायवे जेणेव, पुढवीसिलापट्टए तेणेव उवा-
गच्छड, उवागच्छिता अहापडिरूवं ओगहं ओगिण्हिताणं
असोगवरपायवस्स अहे पुढविमिलापट्टगंसि पुरत्थाभिमुहे पलि-
यंकनिसन्ने- अरहा जिणे केवली समणगणपरिवुडे संजमेणं
तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥ सू० २२ ॥

शिलापट्टकोस्ति, 'तेणेव उवागच्छड' तत्रैवोपागच्छति, उपागय, 'अहापडिरूवं'
यथाप्रतिरूपम्-यथासाधुक्रुण्य, 'ओगह' अवग्रहम्-आज्ञाम्, 'ओगिण्हिता ण'
अवगृह्य-गृहीत्वा सख 'असोगवरपायवस्स अहे' अशोकवरपादपस्य अध =अध प्रदेशे,
'पुढविमिलापट्टगंसि' पृथ्वीशिलापट्टके-पृथ्वीशिलापट्टकोपरि, 'पुरत्थाभिमुहे' पौरुस्सगामि-
सुस-पूजांसिभिसुस. 'पलियकनिसन्ने' पन्यङ्गनिपण्ण-पन्यङ्केन-पल्यतिरितेन
आसनविशेषेण निपण्ण-उपनिष्ट, 'अरहा' अरहा-जविद्यमान-रह =पञ्चान्तम् तस्य
सोऽरहा-कैवल्यज्ञानरत्नेन सर्वज्ञ, 'जिणे' जिन-रागद्वेषविजेता, 'केवली' प्रान्तकेवल्यज्ञान,
'समणगणपरिवुडे' श्रमणगणपरिवृत-साधुपरिवारमयुक्त 'सजमेण तवसा अप्पाण
भावेमाणे' मयमेन तपसा आत्मान भावयन् 'विहरइ' विहरति स्म ॥ सू० २२ ॥

पधारे । (उवागच्छिता अहापडिरूवं ओगहं ओगिण्हिताणं असोगवरपायवस्स
अहे पुढवीसिलापट्टगंसि पुरत्थाभिमुहे पलियकनिसन्ने अरहा जिणे केवली
समणगणपरिवुडे संजमेणं तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ) पधारन के वाद
वे प्रभु साधुसमाचारी के अनुसार वनमाली की आज्ञा लेकर अशोकवृक्ष के नीचे
पृथ्वीशिलापट्टक पर पूर्वकी ओर मुख कर पर्यङ्क आसन से (पलयी मारक) विराज-
मान हुए । तथा श्रमणगणों से परिवृत वे अरहा केवली जिन महावीर प्रभु तप
पत्र न्यम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ॥ सू० २२ ॥

पृथिवीशिला-पट्टक इतो, त्या पधार्था (उवागच्छिता अहापडिरूवं ओगहं
ओगिण्हिताणं असोगवरपायवस्स अहे पुढवीसिलापट्टगंसि पुरत्थाभिमुहे पलियक
निसन्ने अरहा जिणे केवली समणगणपरिवुडे संजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे
विहरइ) पधार्था पठी ते साधु-समाचारी प्रभाषे वनमालीनी आज्ञा
वर्धने अशोकवृक्षनी नीचे पृथिवीशिलापट्टक उपर पूर्वदिशा तरश्च सुभ
राणीने पर्यङ्क आसनथी (पडोडी वाणीने) विराजमान तथा तथा श्रमण-
गणोथी पीटणाथने अरहा केवली जिन महावीर प्रभु, तप तेमञ्च सयमथी
पौताना आत्माने भावित उरता विचरवा लाज्या सू २२

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ
महावीरस्स अंतेवासी वहवे समणा भगवंतो, अप्पेगइया उग्ग-

टीका—चम्पाया नगर्या पूर्णभद्रोद्याने यदा भगवत श्रीमहावीरस्य समणसरण-
मभूत् तदा तेन सार्धं समागताना श्रमणाना वर्णनं कुर्वन्नाह—‘तेण कालेण’ इत्यादि ।
तस्मिन् खलु काले तस्मिन् खलु समये च श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य=श्रीमहावीर-
स्वामिन अन्तेवासिन—अन्ते=समापि चारित्रक्रियावर्थं वस्तु शीलं=स्वभावो येषां तेऽन्ते-
वासिन—शिष्या, ‘वहवे’—रहव—वहुनख्यका, ‘समणा’ श्रमणा—साधव ‘भग-
वतो’—भगवन्त—वैराग्येण श्रुतचारित्रलक्षणधर्मेण च युक्तवात् श्रमणा अपि भगवन्त
इत्युच्यन्ते । ‘अप्पेगइया’ अध्येके—अपि—समुच्चये, एके=केचिदित्यर्थ । ‘उग्गपवइया’
उग्रप्रव्रजिता—उग्ग=आदिनाथेन ये नगररक्षकत्वेन—आरक्षकत्वेन नियुक्तास्तद्राजा प्रव-
जिता=दाक्षिणा, उग्र इति क्षत्रियजातिभेद, तदन्त उग्ग उच्यन्ते, ते प्रव्रजिता इत्यर्थ ।

‘तेण कालेण’ इत्यादि

‘तेण कालेण तेण समएण’ उसी काल और उसी समयमें (समणस्स
भगवओ महावीरस्स अतेवासी वहवे समणा भगवंतो) श्रमण भगवान् महावीर के
बहुत से श्रमण भगवत अन्तेवासी=समीप में रह कर चारित्रिक्रिया आदिके आराधन करने
वाले शिष्य थे । शिष्यों का विशेषण जो “समणा भगवतो” है, उसका अभिप्राय
यह है कि वे मन श्रमण—साधु थे, और वैराग्य से, एव श्रुतचारित्ररूप धर्म से युक्त
थे । इनमें (अप्पेगइया) कितनेक (उग्गपवइया) उग्रव्रण के—आदिनाथ प्रभुने पहिले
जिन्हें नगरा की रक्षा के लिये नियुक्त किया था उन पुरुषों के वशके थे । कितनेक

“तेण कालेण” इत्यादि

(तेण कालेण तेण समएण) तेण काल अने तेण समयमा (समणस्स
भगवओ महावीरस्य अतेवासी वहवे समणा भगवंतो) श्रमणु लगवान भडा
वीरना धख्खाय श्रमणु लगवत अतेवानी=समीपमा रडीने चारित्रिक्रिया
आदिना आराधना करवावाणा शिष्यो हुता शिष्योनु विशेषण ने समणा
भगवतो छे, तेनो अबिप्राय अे छे के तेओ पधा श्रमणु=साधु हुता अने
वैराग्य तेमण श्रुतचारित्ररूप धर्मथी युक्त हुता तेओमा (अप्पेगइया)
केटलाओक (उग्गपवइया) उग्र वथना—आदिनाथ प्रभुअे पडेला नेओने
नगरानी रक्षा माटे नियुक्त कर्या हुता ते पुरोना वथना—हुता

पव्वइया, भोगपव्वइया, राइण्ण-णाय-कौरव्व-खत्तिय-पव्व-
इया, भडा जोहा सेणावई पसत्थारो सेट्टी इब्भा, अण्णे य वहव्वे

‘भोगपव्वइया’ भोगप्रजिता—रूपभद्वेन ये पूर्णं गुरुत्वेन स्थापितास्तद्वज्रा
भोगा इत्युच्यन्ते, भोगाश्च ते प्रजिता = दीक्षिता भोगप्रजिता, भोगकुलोपना दीक्षिता
इत्यर्थ । ‘राइण्ण-णाय-कौरव्व-खत्तिय-पव्वइया’ राजन्य-जात-कौरव-क्षत्रिय
प्रजिता—ये तेनैव मित्रत्वेन व्यवस्थापितास्तद्वज्राश्च राजन्या उच्यन्ते, जाता इस्वा-
कुपगणितेपे जाता, कौरवा—कुरुगणोपना, ‘खत्तिय’ क्षत्रिया—क्षतात् त्रयन्ते इति क्षत्रिया,
ते राजन्यादय प्रजिता, ‘भडा’—भटा—चाग्भटा—पदात्तय, ‘जोहा’—योधा—भटभ्यो
विशिष्टतरा सहस्रपरिमितैरपि रिपुसैनिकैरेकाकिनोऽपि योद्धु समर्था । ‘सेणावई’
सेनापतय—सैन्यनायका, ‘पसत्थारो’ प्रशास्तर—श्यासका नातिगात्रधुरीणा, ‘सेट्टी’
श्रेष्ठिन—लक्ष्मीदेवताऽध्यासितसौवर्णपट्टमण्डितमस्तका, ‘इब्भा’ इभ्या—इभो—हस्ती
तप्रमाणपरिमितसुवर्णादिरागिस्वामिन । एते सर्वे प्रजिता अन्तेऽसिनो जाता । ये—च—

(भोगपव्वइया) जिह्ने आदिनाथ प्रभुने गुरुरूप से स्थापित क्रिया या उन भोगा के वज्र के
ये । कितनेक (राइण्ण-णाय-कौरव्व-खत्तिय-पव्वइया) प्रभुने जिह्ने अपने मित्ररूप
से स्थापित क्रिया या उन राजन्यों के वज्र के थे, कितनेक जात=इस्वाकुपग के थे,
कितनेक कौरव=कुरुवज्र के थे, कितनेक क्षत्रियवज्र के थे । ऐसे ही (भडा जोहा
सेणावई पसत्थारो सेट्टी इब्भा) भट=सामान्यवार, योधा=अकेले हा हजारों गजुदैनिकों
से युद्ध करने में समर्थ वीर, तथा—सेनापति, प्रशास्ता=न्यायाधीश, सेठ=सर्वपेक्षा अधिक
धनी होने का सूचक राजप्रदत्त पट्टबन्ध को धारण करने वाले नगरसेठ, और इभ्य=
हाथी प्रमाण सुवर्णादि रागिके स्वामी भी भगवान् के समीप प्रजित हुए थे ।

क्रेटलायेक (भोगपव्वइया) जेभने आदिनाथ प्रभुजे शुद्धिपे स्थापित ठया
हुता ते लोग-वशना हुता क्रेटलायेक (राइण्ण-णाय-कौरव्व-खत्तिय-पव्वइया)
प्रभुजे जेभने पोताना मित्ररूपे स्थापित ठया हुता ते राजन्य-वशना
हुता क्रेटलायेक जात= इक्ष्वाकुवशना हुता क्रेटलाके कौरव=कुडवशना हुता,
क्रेटलाके क्षत्रियवशना हुता तेभज (भडा जोहा सेणावई पसत्थारो सेट्टी इब्भा)
लट=सामान्यवीर, योद्धा-येकलाज हुलारे शत्रु सैनिक साथे युद्धउरवाभा समर्थवीर,
तथा सेनापति, प्रशास्ता=धाराशास्त्रमा निपुण, सेठ=सर्वनी अपेक्षाये वधादे
पैसादार होवानु सूयक राजन्यतरक्षथी अपायेल पट्टण ध (धलटाण) धारण उरवा
वाणा नगरसेठ, अने इभ्य=हाथी जेवडा सुवर्णना ढगलाना स्वामी पणु लग
वान पासे प्रजित थया हुता (अण्णे य वहव्वे एवमाइणो) लगवाननी पासे णीण

एवमाङ्गो उत्तम-जाइ-कुल-रूव-विणय विण्णाण-वण्ण-
लावण्ण-विक्रम-पहाण-सोभग्ग-कंति-जुत्ता बहु-धण-धण्ण-

पुन 'अण्णे' अन्ये-उत्तातिगिका, 'उहणे' वहन-बहु-अण्णका । 'एवमाङ्गो'
एवमादय-अण्णकारा, 'उत्तम-जाइ-कुल-रूव-विणय-विण्णाण-वण्ण-विक्रम-पहाण-
सोभग्ग-कंति-जुत्ता' उत्तम-जाति-कुर-रूप-विनय-विज्ञान-वर्ण-लावण्य-विक्रम-प्रधान-
सौभाग्य-कान्ति-युक्ता-उत्तमा-श्रेष्ठ-जायाण्यो-विक्रमान्ता, तत्र-जातिमातुंग, कुल-
पितृवश, रूप-शरीराऽऽकार, विनय-कायिक-वाचिक-मानसिक-विशुद्धिर्नम्रता च, विज्ञान-
नसाराऽसाररूपं विगिहजान, वर्ण-कायकान्ति, लावण्यम्-आकारस्यैव-वृहर्णीयता, विक्रमः
पराक्रम, प्रधाने-श्रेष्ठे-ये-सौभाग्यकान्ती-सौभाग्य-सुन्दरमायम्, कान्ति-दीप्ति-एता-
भ्याम्-सौभाग्यकान्तिभ्याम्, तथा उत्तमजायादिभिर्युक्ता उत्तमजायादिमन्त-प्रव्रजिता, तथा
'बहु-धण-धण्ण-णिचय-परियाल-फिडिया' बहु-धन-धान्य-निचय-परिवार-

(अण्णे-य-उहणे-एवमाङ्गो) भगवान् के समीप और भी बहुत से प्रव्रजित हुए
थे, वे सत्र (उत्तम-जाइ-कुल-रूव-विणय-विण्णाण-वण्ण-लावण्ण-विक्रम-
पहाण-सोभग्ग-कंति-जुत्ता) उत्तमजाति=निर्मलमातृवश, उत्तमकुल=निर्मलपितृवश,
उत्तमरूप=सुन्दर आकार, विनय=कायिक वाचिक मानसिक विशुद्धि, अथवा नम्रता,
विज्ञान=ममार को असार समझने का बुद्धि, वर्ण=शरीरकान्ति, लावण्य=शरीर का
जगमगाहट, विक्रम=शारीरिक प्रयत्न, श्रेष्ठ सौभाग्य और उत्तम क्षति से युक्त थे।
(बहु-धण-धण्ण-णिचय-परियाल-फिडिया गरवड-गुणा-इरेगा इच्छियमोगा
सुहसपललिया) कितनेक इस शिष्यमंडला में ऐसे भी थे जो दीक्षित होने के
पहिले गणिम एव धरिमरूप धन की एव शाला आदि धान्य की रक्षियों से, और

पशु-धन्याय प्रव्रजित तथा होता तेथो अथा (उत्तम-जाइ-कुल-रूव-विणय-विण्णाण-वण्ण-
लावण्ण-विक्रम-पहाण-सोभग्ग-कंति-जुत्ता) उत्तमजाति=निर्मलमातृवश, उत्तम-
कुल=निर्मलपितृवश, उत्तमरूप=सुन्दरआकार, विनय=कायिक वाचिक मानसिक
विशुद्धि, नम्रता, विज्ञान-नसारेने-असार-समभवान्नीबुद्धि, वलुं=शरीरनी
कान्ति, लावण्य=शरीरने-जगमगाहट, विक्रम=शारीरिकप्रयत्न, श्रेष्ठ-सौभाग्य-तथा
उत्तम-दीप्तिवाणा-हता (बहुधण-धण्ण-णिचय-परियाल-फिडिया-गरवड-गुणा-इरेगा
इच्छियमोगा-सुहसपललिया) उटलायेठ आ-शिष्यम-उत्तीमा-येवा-पशु-हता
के-ने-दीक्षित-थया-पडेला-गल्लिम-तेम-धरिमउप-धनना, तेम-शादी
आदि-धान्यना-दगलाथी-अने-हासहासीये-आदि-परिवार-समुदायथी-राजनी

णिचय-परियाल-फिडिया णरवड-गुणा-डरेगा इच्छियभोगा
सुहसंपललिया किंपागफलोवमं च मुणिय विसयसोम्वं, जल-

स्फुटिना, तत्र-धनानि-गगिम-धग्मिादीनि, धान्यानि-ग्रान्यादीनि तेषा निचया रागय,
वह्नश्रामा धनग्रान्यनिचयाश्च, पगिवारा-ग्रामीग्रामादिपरिकरा, तै स्फुटिता=प्रकाशिता,
'नरवड-गुणाऽरेगा' नरपनि-गुणा-तिरेका, नरपनिगुणैर्मिमत्रपिलासान्भिरतिरेक
आभिस्य येषा ते तथा, 'इच्छियभोगा' ईप्सितभोगा-ईप्सिता-वाञ्छिता भोगा-
मुयन्त इति भोगा=शब्दरूपादयो विषया येषा ते तथा, परमविलासिन, 'सुहसप-
ल्लिया' सुगमम्प्रलाग्नि-मुगेन-अनुकूलवेदनीयेन-शुभपरिणामोपार्जितानुकूलशब्दा-
न्जिनकपुण्यपुञ्जेन सम्प्रलाग्निता-सम्यक् वर्धिता, एवविधा पूर्वं सुरिन्तोऽपि प्रव-
जिता, किं कृया प्रवजिता इत्याह-'किंपागफलोवमं च' इत्यादि। किम्पारू-फलो-
वमं=किंपाको वृक्षविशेषस्तफरुतुल्यम्, किम्पारूपफल दर्शन आस्वादे च मनोरम परिणामे
प्रागहारक भवति तद्भक्षित्यर्थः। 'विसयसोम्वं' विषयसौख्यम्-विषयाणां-शब्दस्पर्शां-
दीना सौख्यं सुखं 'मुणिय'-ज्ञावा, च-पुन 'जल-चुवुय-समाण' जल-चुदचुद-समा-

दासीग्राम आदि परिहार समुदाय से राजसी ठाठ वाले थे, जो वाञ्छित शब्द-
रूपात्तिक विषयों में तल्लीन थे, परम विलासी थे, एव पुण्य के पुत्र से ही जिनका
मानो लालन-पालन होना रहता था। (किंपारू-फलो-वमं च मुणिय विसय-
सोम्वं जलचुवुय-समाण कुसग्ग-जल-त्रिंदु-चचल जीविय य णाऊण)
इन्होंने म्या समझकर क लीला धारण की 'इस प्रश्न का समाधान करते हुए
सूत्रकार कहते हैं-उन्होंने यह समझा कि ये वैषयिक सुख किंपारूपलके समान
परिणाम में अनिष्टकारक है, और यह मानवजीवन पानी के बुलबुले के समान
क्षणमगुर है, एव कुस के अग्र पर रहे हुए जल के त्रिन्दु के समान चचल है

ठाठवाला होता, वे मनवाञ्छित शब्दरूप आदि विषयों में तल्लीन होता, जल-
विलासी होता, तेमन् पुण्यना दगलाथी ज वाणे वेमनु लालन पालन थतु
रहेतु इतु (किंपाग-फलो-वमं च मुणिय विसयसोम्वं जल-चुवुय-समाण कुस
ग्ग-जल-त्रिंदु-चचल जीविय य णाऊण) तेव्वा वे शु समञ्जने दीक्षा धारणु इगी
इती? वे प्रश्ननु समाधान वरता सूत्रकार डडे छे-तेव्वा वेम समन्त्या डे
आ विषयसुख छि पाठकेलनी पेंडे परिष्णामे अनिष्टकारक छे, अने आ मानव
एनन पाणीना परपोटानी पेंडे क्षणुलशुर छे, तेमन् कुशना ठेडापर रहेला
पाणीना दीपानी पेंडे अथल छे वेम वाणीने (अद्भुतमिण स्वमिध पडग

बुबुयसमाणं कुसग्ग-जल-विट्ठु-चंचलं जीवियं च णाऊण,
अद्भुवमिणं रयमिव पडग्गलग्गं संविधुणित्ताणं, चइत्ता हिरण्णं,
चिच्चा सुवण्णं, चिच्चा धणं, एवं धण्णं वलं वाहणं कोसं कोट्ठा-

नम्-यथा जले बुदबुदा प्राडुर्भन्ति शट्टियेव नश्यन्ति च तद्वत् आशुप्रिनाशि, तथा
' कुसग्ग-जलविट्ठु-चंचल ' कुशाग्र-जलविन्दु-चञ्चल-कुशाग्रे-दर्भपत्राप्रमाणे यो
जलविन्दु तद्वच्चञ्चल-शट्टिति पतनशील, ' जीविय ' जीवित-मनुष्यजीवनम्,
' णाऊण-जात्वा-अवागत्य, ' अद्भुवमिण ' अध्रुवमिदम्-इदं विषयसौरयधनादिसञ्च-
याऽऽदिकम्, अध्रुवम् अनियतरूप, ' पडग्गलग्ग ' पटाप्रलग्न, ' रयमिव-रज इव-धूलि-
कणमिव ' सविधुणित्ताण ' सविधुय-सम्यक्-विशेषरूपेण, पृथक्कृत्य, तथा ' चइत्ता '
त्यक्त्वा, ' हिरण्ण ' हिरण्य-रूप्यम्, ' चिच्चा सुवण्ण ' त्यक्त्वा सुवर्णम्, ' चिच्चा धण '
त्यक्त्वा धनम्, ' एवं ' एवम्-अनेन प्रकारेण ' धण्ण ' -धान्य-ग्रान्यादिसञ्चयम्,
वल-चतुर्विध सैन्यम्, ' वाहण ' वाहन-रथादिकम्, ' कोस ' कोठाम्-स्वर्णरजतादि-
गृहम्, ' कोट्ठागार ' कोष्ठागार धान्यराशिगृहम् ' रज्ज ' -राज्य-राजाधिकृतदेशम्

ऐसा जानकर (अद्भुवमिण रयमिव पडग्गलग्ग सविधुणित्ताण) तथा ये विषयसुख
एव धन आदि का सचय सब के सब अध्रुव-अनित्यस्वरूप है, ऐसा विचार कर,
उन्होंने पटके अग्रभाग में लगी हुई धूलि के समान उन्हे भावत मन से
सर्वथा दूर कर दिया। और ये द्रव्यत बाह्यरूप से भी (चइत्ता हिरण्ण, चिच्चा
सुवण्ण, चिच्चा धण एव धण्ण वल वाहण कोस कोट्ठागार रज्ज रट्ट पुर
अतेउर चिच्चा, विडल-धण-ऋण-रयण-मणि-मोत्तिय-सख-सिलप्पवाल-रत्तरयण-
माइय सत-सार-सावतेज्ज विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता, दाण च दाइयाण परिभायइत्ता,
मुडा भवित्ता, अगाराओ अणगारिय पव्वइया) हिरण्य-चान्दी का परित्याग कर, सुवर्ण
का परित्याग कर, सोनाचान्दी से अतिरिक्त धन का परित्याग कर, इसी तरह धान्य का,
लग्न सविधुणित्ताण) तथा आ विषयसुख तेभञ्ज धन आदिने। स चय तभाभे-
तभाभ अध्रुव-अनित्यस्वरूप छे, येभ चिच्चारिने तेओओ वञ्चना छेडा
उपर लागेव धूणनी नेभ तेभने सावपूर्वक मनभाथी तदन त्याग ठ्ये
अने तेओ द्रव्यथी आटाइये पणु (चइत्ता हिरण्ण, चिच्चा सुवण्ण, चिच्चा धणं,
एव धण्ण वल वाहण कोस कोट्ठागार रज्ज रट्ट पुर अतेउर चिच्चा, विडल-धण
ऋण-रयण-मणि-मोत्तिय-सख-सिलप्पवाल-रत्तरयण-माइय सत-सार-सावतेज्ज
विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता, दाण च दाइयाण परिभायइत्ता, मुडा भवित्ता, अगाराओ
अणगारिय पव्वइया) हिरण्य आदीने। परित्याग करीने, सुवर्णने। परित्याग करीने,

गारं रजं रट्टं पुरं अंतेउरं चिञ्चा, विउल-धण-कणग-रयण-
मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवाल-रत्तरयण-माडयं संत-सार-
सावतेजं विच्छड्डत्ता विगोवडत्ता, दाणं च दाइयाणं परिभाय-

एकमूपाजावशवर्तिदेशम् । ' रट्ट ' राष्ट्र-देशम्, ' पुर ' प्राकारयुक्त नगरम् । ' अंते-
उर ' अन्त पुर-राजव्रीणा निवासगृहम्, । ' चिञ्चा ' त्यक्त्वा ' विउल-रण-कणग-
रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवाल-रत्तरयण-माडय, विपुल-धन-कनक-रत्न-
मणि-मौक्तिक-शङ्ख-शिलाप्रवाल-रत्ननाडाडिकम्, तत्र-विपुलानि धनानि-गोवृषादीनि, कनक
सुवर्णम्-अघटितसुवर्णममूहम्, रत्नानि-कर्केतनादीनि, मणय-चन्द्रकान्तादय, मौक्ति-
कानि-मुक्ताफलानि, शङ्खा-पद्मशङ्खादय, शिलाप्रवालानि-विद्रुमणि, रत्नानि-पद्मरागा-
दीनि, आदिशब्दात् शय्यासिंहासनादिपरिग्रह । एतस्यसारभूत कथयति-' सत-सार-
सावतेज ' ससारस्वापतेयम्-सन्=विद्यमान सारो=बहुमूल्यता यत्र तत् ससार, स्वपतौ
साधु स्वापतेय-धन, ससारञ्च तस्वापतेय ससारस्वापतेय प्रधानधन त्यक्त्वा, पुन
' विच्छड्डत्ता ' विच्छर्दय-परियज्ज, विच्छर्दवत् कृतेत्यर्थ । ' विगोवडत्ता ' विगोय

चतुर्विध सैन्य का, रथाडिकरूप वाहनका,स्वर्ग रजत आदि के स्थानभूत कोशका,कोशगार
का, राज्यका, देशका, पुरका, अन्त पुरका परित्याग कर, एव विपुलधन-गोवृष-
भादिकका, कनक-सामान्य सुवर्णका, रत्न का, मणि-मौक्तिकका, शङ्ख-पद्मशङ्ख आदि
का, शिलाप्रवाल-विद्रुम का, रत्नरत्न-पद्मरागादिक मणियों का, आदि शब्द से गृहीत
शय्यासिंहासन वगैरह इन सनका परित्याग कर, तथा उत्तमसारभूत-कोहीनूर जैसे
बहुमूल्य होने से जिसमे सार नियमान है ऐसे स्वापतेय-प्रधानधन को भी छोडकर,
वमन के समान उससे ममत्व बुद्धि हटाकर, एव जो खजाने मे भी पहिले से गुप्त

भोजना चान्दीथी अतिरिक्त धनने परित्याग करीने, अने जेवी रीते धान्यने,
चतुर्विध सैन्यने, रथ आदिशय वाहनने, मोना आदी आदिना स्थानभूत अण-
नाने, कोषागारने, राज्यने, देशने, पुरने, अत पुरने परित्याग करीने, तेमज
विपुल (अहु) धनने-आय अणद आदिने, कनकने-सामान्य सुवर्णने, रत्नने,
मणिमोतीने, शङ्ख-पद्मशङ्ख आदिने, शिलाप्रवाल-विद्रुमने, रत्नरत्न-
पद्मराग आदि मणिज्योने, आदि शब्दथी जेभ समज्जवातु के शय्या
सिंहासन वगैरे जे अधाने परित्याग करीने, तथा उत्तम सारभूत कोहीनूर
जेवा किमती होवाथी जेभा सार भोजुद छे जेवा स्वापतेय-मुष्य धनने
पणु छोडीने, वमन (उलटी) नी चेठे तेभाथी भमत्व बुद्धि उटावी छेने
तेमज जे अणनाभा पणु पडेवेथी ज शुभ द्रव्य उतु तेने पणु अहार

इत्ता, भुंडा भवित्ता, अगाराओ अणगारियं पव्वडया; अप्पे-
गइया अद्धमासपरियाया, अप्पेगइया मासपरियाया, एवं दुमास-

यदपि गुप्त-निधौ निक्षिप्त धन प्रागासीत् तदपि प्रकृटीष्टय=नि मार्यं, उदारतापूर्वक
'दाण' दान दत्त्वा, 'दाइयाण' दयादेभ्य-स्वगोत्रिकेभ्य 'परिभायइत्ता' त्रिभागो-
दत्त्वा च 'मुडा भवित्ता' मुण्डा भूवा=द्रव्यत गिरोदुद्धनेन, भावत क्रोधाद्यपनयनत
च मुण्डिता भूत्वा, 'पव्वडया' प्रव्रजिता-श्रमगा जाता इत्यर्थः । 'अप्पेगइया'
अयेके-केचिद् 'अद्धमासपरियाया' अर्द्धमासपर्याया कथञ्चि प्रागवस्थायागेन अव-
स्थान्तराऽऽसौ पर्याय, स पर्यायो जन्मना दीक्षया चेति द्विविध, प्रथमो जन्मपर्याय,
द्वितीयो दीक्षापर्याय, अत्र दीक्षापर्यायो गृह्यते, केचिदर्द्धमासाद् गृहीतन्यमपर्याया ।
'अप्पेगइया' अयेके-केचन, 'मासपरियाया' मासपर्याया-मासाऽऽधे कालाद्
गृहीतश्रमणपर्याया । एवम्-अमुना प्रकारेण केचिद्विमासपर्याया, केचित् त्रिमास-

द्रव्य था उसे भी बाहर निकाल कर, और उदारतापूर्वक उसे दान में व्यय करके
तथा सगोत्रियों में विभक्त करके, मुडित हो-द्रव्यरूप से मस्तक लुचितकर एव
भावरूप से क्रोधादिक का परिहार कर प्रव्रजित हुए थे । (अप्पेगइया) कितनेक
(अद्धमासपरियाया) इनमें ऐसे थे जिन्हें दक्षा ग्रहण किये केवल अर्धमास ही
हुआ था । (अप्पेगइया मासपरियाया एव दुमासपरियाया त्रिमासपरियाया
जाव एक्कारसमासपरियाया) इसी प्रकार कितनेक ऐसे थे जिन्हें दीक्षा लिये
हुए दो मास हुए थे, कितनेक ऐसे थे जिन्हें दीक्षा लिये ३ मास हुए थे,
कितनेक ऐसे थे जिन्हें चार, पाच, छह, सात, आठ, नौ, दश एव ११ ग्यारह

हादीने अने उदारतापूर्वक तेना दानमा व्यय करीने तथा सगोत्रियोभा
वडेची इधने मुडित थई-द्रव्यरूपथी मस्तकने लुचित करीने तथा लावइपथी
क्रोधादिकने छोडीने प्रव्रजित थया हुता (अप्पेगइया) डेटलाअेक (अद्धमास
परियाया) अेभा अेवा हुता जेअेबाने दीक्षा लीधाने मात्र अरधे भडिनेा ज
थये हुते । (अप्पेगइया मासपरियाया एव दुमासपरियाया त्रिमासपरियाया
जाव एक्कारसमासपरियाया) तेवीज रीते डेटलाअेक तेअेभा अेवा हुता डे
जेअेबाने दीक्षा लीधाने अेक मास थये हुते, डेटलाअेक अेवा हुता डे जेअेबाने
दीक्षा लीधाने जे मास थया हुता, डेटलाअेक अेवा हुता डे जेअेबाने दीक्षा
लीधाने त्रिमास थया हुता, डेटलाअेक अेवा हुता जेअेबाने चार, पाच, छ,
सात, आठ, नव, दश तेभज अगिअार भडिना थया हुता (अप्पेगइया

परियाया, तिमासपरियाया जाव एक्कारसमासपरियाया, अप्पे-
गइया वासपरियाया, दुवासपरियाया, तिवासपरियाया, अप्पेग-
इया अणेगवासपरियाया संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा
विहरंति ॥ सू. २३ ॥

पर्याया यावदेकादशमामपर्याया, केचिद्वर्षपर्याया, केचिद् द्विवर्षपर्याया, केचित् त्रिवर्ष-
पर्याया, केचिदनेकवर्षपर्याया, 'सजमेण' त्वमेन समदशमिधेन, तपसा कर्मनिवारकेण
द्वादशमिधेन 'अप्पाण' आत्मान 'भावेमाणा' भावयन्तो विहरन्ति ॥ सू० २३ ॥

महिने हुए थे । (अप्पेगइया वासपरियाया दुवासपरियाया तिवासपरियाया)
कितनेक इनमें ऐसेभी थे कि जिन्हें दीक्षा लिये हुए १ वर्ष, २ वर्ष, एव
तानवर्ष आदि हो चुके थे । (अप्पेगइया अणेगवासपरियाया) कितनेक ऐसे भी
मुनिजन थे जिन्हें दीक्षा लिए हुए अनेक वर्ष व्यतीत हो चुके थे । ये सबके
सम मुनिजन (सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरंति) १७ प्रकार के
मयम से एव १२ प्रकारके तपसे अपनी आत्माको भावित करते हुए विचरते थे ॥

भावार्थ—भगवान् महावीर प्रभुकी शिष्यमंडली में अनेक मुनिजन थे ।
कोई उपकुलके थे, कोई भोगकुलके थे, कोई राजन्यकुलके थे । कोई कौरव वंश के थे,
कोई क्षत्रियवंश के थे । कितनेक भट-सामान्य वीर, योधा, सापति, प्रशासक,
श्रेष्ठी और इन्ध आदि थे । विनय विज्ञान आदि अनेक सद्गुणा से मय्य ये मुनिजन
दीक्षा लेने के पहिले अनेक प्रकार के धनादिक से, एव भोगोपभोग का सामग्रा

वासपरियाया दुवासपरियाया तिवासपरियाया) डेटलाअेक तेआमा अेवा पणु
डता डे जेभने दीक्षा लीधाने १ वर्ष, २ वर्ष, तेभज प्रणु वर्ष आदि थर्
गथा डता (अप्पेगइया अणेगवासपरियाया) डेटलाअेक अेवा पणु मुनि डता डे
जेअेने दीक्षा लीधाने अनेक वर्ष वीती गथेला डता ते तमाभे तमाभ मुनिअेने
(संजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणा विहरंति) १७ प्रकारना ययथी तेभज १२
प्रकारना तपथी चोताना आत्माने लावित वरता थता विचरता डता

भावार्थ—भगवान् महावीर प्रभुकी शिष्यमंडलीमें अनेक मुनिजन
डता डोर् उअुकुणना डता, डोर् लोअुकुणना डता, डोर् राजन्यकुणना डता,
डोर् कौरव वंशना डता, डोर् क्षत्रिय वंशना डता, डेटलाअेक भट सामान्यवीर,
योद्धा-विशिष्टवीर, सेनापति, प्रशासक, श्रेष्ठी अने धर्म्य आदि डता विनय
विज्ञान आदि अनेक सद्गुणोथी सपन्न अेवा आ मुनिजन दीक्षा लीधा पडेला

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ

टीका—'तेणं कालेण' इत्यादि,

तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य 'अतेवासी'

से युक्त थे। इनका वैभवविलास राजाओं के वैभवविलास तुल्य था। इन्होंने अपने जीवन में यह विचार किया था कि ये सासारिक विषयमोग क्रिपाकफल के समान बाहर से ही मनोहर लगते हैं, परिणाम में ये जीवको महान् दुखदायी है। जलबिन्दु के समान ये क्षणप्रिनधर हैं। जुगाप्रभागमें स्थित ओसकी बूद के तुल्य देखते २ नष्ट हो जाते हैं। अतः इनका परित्याग ही सर्वश्रेयस्कर है। ऐसा समझ कर ही इन्होंने समस्त धनधान्यादिक परिग्रहका परित्याग किया और प्रभु के पास दीक्षित हो गये। इनमें कितनेक मुनिजनोंकी दीक्षापर्याय १५ दिन, एकमास आदि की थी, कितनेक मुनिजनों की १ वर्ष २ वर्ष आदि की थी, एवं कितनेक मुनिजनों की अनेक वर्ष की थी ॥ सू. २३ ॥

'तेण कालेण' इत्यादि०

(तेण कालेण तेण समएणं) उस काल में और उस समयमें (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमण भगवान् महावीर के (बहवे) अनेक (अतेवासी) शिष्य

अनेक प्रकारना धन आदिक तेभज लोगोपयोगनी सामग्रीवाजा हुता तेभना वैभव विलास राजाओंना वैभवविलास जेवा हुता तेओओ पोताना लवनमा ओभ विचार ज्यो हुतो के आ सासारिक विषयलोग कि पाकइलनी पेठे अहारथी ज मनोहर लागे छे, परिष्ठाभमा ते आ लवने हु अहारथी छे पाणीना दीपानी पेठे ते क्षणमा नाश पाये तेवा छे कुशना अश्रमागमा रडेला ओसना दीपानी पेठे जेतजेताभाज नाश पायी जय छे आथी तेभना परित्याग ज सर्वश्रेयस्कर छे ओभ समलने तेओओ तभाम धन धान्य आदिक परिग्रहने परित्याग ज्यो, अने प्रभुनी पास दीक्षित थछ गथा तेओओ डेटलाओक मुनिजनेनी दीक्षापर्याय १५ दिवस, ओक मास वगेरे सुदतनी हुती, अने डेटलाओक मुनिजनेनी दीक्षापर्याय १ वर्ष २ वर्ष आदिनी हुती, तेभज डेटलाक मुनिजनेनी अनेक वर्षनी हुती (सू. २३)

“तेण कालेण” इत्यादि

(तेण कालेण तेण समएणं) ते कालमा अने ते समयमा (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमण भगवान् महावीरना (बहवे) अनेक (अतेवासी)

महावीरस्य अन्तेवासी वहवे निग्गथा भगवतो, अप्पेगइया आ-
भिणिवोहियणाणी जाव केवलणाणी, अप्पेगइया मणवलिया

अन्तेवासिन-गिभ्या 'वहवे' वहव-वहुसरयका, 'निग्गथा' निर्ग्रन्था-ग्रन्थो
द्विविध आभ्यन्तरो बाह्यश्च, तत्र-रूपायादिरूप आभ्यन्तर, धनधान्यादिपरिग्रहरूपो
बाह्य, तेन द्विविधेन वात्साभ्यन्तररूपेण ग्रन्थेन निर्मुक्ता निर्ग्रन्था, अथवा प्रत्यान्निर्गता
निर्ग्रन्था-क्रोधादिभिर्नादिभिश्च मुक्ता इत्यर्थ, भगवन्त 'अप्पेगइया' अप्येकके-
केचित् 'आभिणिवोहियणाणी' आभिनिबोधिकज्ञानिन- 'अभि' इति आभिमुग्ये,
'नि'-इति नैयत्ये, ततश्च-अभिमुग्ये=स्तुयोग्यदेशाऽऽरथानाऽपेक्षी बोध-अभिनि-
बोध, स एव आभिनिबोधिकम्, स्वार्थे विनयादित्वात् इरुण् प्रत्यय, क्वचिस्वार्थिको-
ऽपि प्रत्यय प्रकृति वचनश्चातिवर्तत, तेन अभिनिबोध्य पुस्त्येऽपि आभिनिबोधिकस्य
नपुसकत्व, यथा विनय एव वैनयिकम्, आभिनिबोधिक च तज्ज्ञानम् आभिनिबोधि-
कज्ञानम्, तदस्त्येपामित्याभिनिबोधिकज्ञानिन, 'जाव' यावत् 'केवलणाणी' केवल-
ज्ञानिन - केवल - शुद्ध - निर्मल - सरुलाऽऽरगमलकलङ्कप्रिगमसम्भूत जात्, अथवा

ये, जो (निग्गथा) बाह्य एव अन्तरग परिग्रह के सर्वथा त्यागी थे, तथा (भगवतो) त्याग
एव वैराग्य से जिनका अन्त करण भरपूर था। इनमें (अप्पेगइया) कितनेक (आभिणि-
वोहियणाणी) आभिनिबोधिक ज्ञानी थे। जो ज्ञान अभिमुख एव योग्यक्षेत्र में स्थित
वस्तु को इन्द्रिय और मनकी सहायता से जानता है वह अभिनिबोध है, अभिनिबोध ही
आभिनिबोधिक है। आभिनिबोधिक ज्ञान का दूसरा नाम मतिज्ञान है। इस ज्ञान से जो
युक्त थे वे आभिनिबोधिकज्ञानी कहे गये हैं। (जाव केवलणाणी) कितनेक श्रुतज्ञानी
थे, कितनेक अवधिज्ञानी थे, कितनेक मन पर्ययज्ञानी थे और कितनेक केवलज्ञानी

शिष्यो हुता (निग्गथा) ने बाह्य तेमञ् अतरग परिग्रहना सर्वथा त्यागी
हुता, तथा (भगवतो) त्याग तेमञ् वैराग्यथी नेमना अत करणु भरपूर हुता.
तेओभा (अप्पेगइया) डेटलाओक (आभिणिवोहियणाणी) आभिनिबोधि-
रानी हुता ने ज्ञान अलिमुण्य ओटले योज्य क्षेत्रमा रडेल वस्तुने धिन्द्रिय
अने मननी सहायताथी लण्णे छे ते अलिनिबोध छे अलिनिबोध ओञ्
आलिनिबोधिछे अलिनिबोधिज्ञाननुञ् णीणु नाम मतिज्ञान छे
आ ज्ञानथी ने युक्ता हुता तेमनेञ् आभिनिबोधिज्ञानी डडेवामा आवे
छे (जाव केवलणाणी) डेटलाओक श्रुतज्ञानी हुता, डेटलाओक अवधिज्ञानी हुता,
डेटलाओक मन पर्ययज्ञानी हुता, तथा डेटलाओक केवलज्ञानी हुता केवल

वयवलिया कायवलिया णाणवलिया दंसणवलिया चारित्तव-

सरुल-परिपूर्ण-सम्पूर्णज्ञेयमाहित्वात्, यद्वा केवलम् असाधारण ताट्याऽपरजानाऽभावात्, केवलञ्च तद् ज्ञान केवलज्ञान, तदस्ति येषां ते केवलज्ञानिनः । अत्र-आभिनिवोधिकज्ञानि-केवलज्ञानिनोर्मध्ये यावच्छ्रान्मयवधि-मन पर्ययज्ञानिनोऽपि गृण्यन्ते, विस्तरभयादेया व्याख्यातो विरम्यते, 'अप्पेगइया' अप्येकके-केचित् 'मणवलिया' मनोवलिका - अनुकूलप्रतिकूलपरिप-हेऽपि तत्सहनशीलतया मनोवलधारिण, 'मयवलिया' वागवलिका - प्रतिज्ञातार्थनिर्वाहक्षमा, 'कायवलिया' कायवलिका - क्षुधादि-परिपहणु तापेषु ग्लानिरहितदेहा, 'णाणवलिया'

थे । केवल शब्दका शुद्ध परिपूर्ण अथवा असाधारण ऐसा अर्थ है । यह ज्ञान शुद्ध इसलिये कहा गया है कि यह आत्मा में चतुर्विध धातिकर्मों के सर्वथा विनाश से उद्भूत होता है । परिपूर्ण-पूर्ण इसलिये है कि यह त्रिकालगत ममस्त ज्ञेयराशि को युगपत् जानता है । असाधारण इसलिये है कि इसके जैसा और कोई दूसरा ज्ञान नहीं है । यह केवलज्ञान जिनके आत्मामें अभिव्यक्तरूपमें विद्यमान है वे केवल-ज्ञानी हैं । (अप्पेगइया मणवलिया वयवलिया कायवलिया) कितनेक मनोवलधारी थे । इसत्र के प्रभाव से ही अनुकूल एव प्रतिकूल परिपहणों के सहनेमें शक्ति आत्मा को मिलती है । कितनेक वचनबल के धारी थे । प्रतिज्ञात अर्थ को निर्वाह करने की क्षमता इस बलद्वारा आत्मा को प्राप्त होती है । कितनेक कायबल के धारी थे । इसके द्वारा तीव्र क्षुधादिक परिपहणों के होने पर भी देहमें योडीसी भी ग्लानि उद्भूत नहा होने पाती है । (णाणवलिया दंसणवलिया चारित्तवलिया) कितनेक निरति-

शब्दनेो अर्थ शुद्ध परिपूर्ण अथवा असाधारण अथवा छे आ ज्ञान शुद्ध अटला भाटे कडेवामा आन्धु छे डे ते आत्माना चतुर्विध धातिकर्मोना सर्वथा विनाशथी उत्पन्न थाय छे, परिपूर्ण-पूर्ण अटला भाटे छे डे ते त्रणे काणमा ममस्त ज्ञेयराशिने युगपत् ज्ञे छे असाधारण अटला भाटे छे डे तेना जेपु जीणु कोथ ज्ञान नथी आ डेवज्ञान जेना आत्माना अलिव्यक्तइपमा विद्यमान छे ते डेवलज्ञानी छे (अप्पेगइया मणवलिया वय-वलिया कायवलिया) डेटलाअेक मनोवलधारी हुता, आ अलना प्रभावथीज अनुकूल तेमज प्रतिकूल परिपहोने सहन करवानी शक्ति आत्माने भजे छे डेटलाअेक वचनबलना धारी हुत, प्रतिज्ञात अर्थात् प्रतिज्ञा करेला अर्थनु पालन करवानी क्षमता आ अलथी ज आत्माने प्राप्त थाय छे डेटलाअेक कायबलना धारी हुता तेना द्वारा तीव्र क्षुधा आदिऽ परिपहो आवता पणु

लिया, अप्पेगड्या मणेणं सावा-णुग्गह-समत्था, एवं वएणं

ज्ञानवल्किा - निरतिचारज्ञानवन्त । 'दसगलिया' दर्शनवल्किा दर्शन-श्रद्धा तद्रूप बल्मत्येपामिति दर्शनवल्किा - सुरैरपि सम्यक्चर्यमत्तश्चालयितुमशक्या इत्यर्थ, 'चारित्तवल्किा' चारित्रवल्किा - दृढचारित्रवलयुक्ता, 'अप्पेगड्या' अयेरुके-केचित, 'मणेण सावा-णुग्गह-समत्था' मनसा शापाऽ-नुग्रह-समर्था - मनसैव मनोभावात्तिनैव पंग्पा शापाऽनुग्रहो=निग्रहाऽनुग्रहौ कर्तुं समथा, 'एव' एवम्-अनेन प्रकारेण 'वएण काएण' वाचा कायेन च निग्रहाऽनुग्रहयो समथा । 'अप्पेगड्या' अयेरुके-'खेलोसहिपत्ता' खेलौपप्रिप्राप्ता - खेल - लेप्पा, म एवौपधि सकलरोगादच-

चारज्ञानवान ये । कितनेक श्रद्धारूपवल्किा ये । इस बल का प्राप्ति होने पर सम्यक् रूप से चलायमान करने के लिये कोई भी शक्ति कार्यकर नहा हो सकती है । कितनेक चारित्ररूपवल्किा ये । इस शक्ति की जागृतिमें आत्मा अपने गृहीत चारित्र से रचमात्र भी जियलित नहा होता है । (अप्पेगड्या मणेण सावा-णुग्गह-समत्था एव वएण कायेण) कितनेक मन से ही शाप एव अनुग्रह करने में समर्थ थे । इसी तरह वचन और काय से भी समझ लेना चाहिये । (अप्पेगड्या खेलोसहिपत्ता, एव जल्लोसहिपत्ता, विप्पोसहिपत्ता, आमोसहिपत्ता, सच्चोसहिपत्ता) कितनेक ऐसे थे जिन्हे खेलौपप्रिप्राप्त थी । इस लप्पिवाले मुनिजन का स्वेदज मल भी समस्त शारीरिक उद्ब्रवों का अपहारक होता है । कितनेक ऐसे थे जिन्हे विप्रुडोपप्रि प्राप्त थी । इस लप्पिवाले मुनि के थूक की वृद्धे तक भी रोगापर ओपप्रिका

हेडमा ७२-७८वींके ज्ञानि उत्पन्न थती नथी (णाणवल्किा दसणवल्किा चारित्तवल्किा) डेटलायेड निगतिचार ज्ञानवान हुता डेटलायेड श्रद्धाऽप-गल-सपन्न हुता, आ गलनी प्राप्ति यता सम्यक्त्वथी यलायमान करवाने डोई पणु समर्थ नथी डेटलायेड चारित्रऽप गलविशिष्ट हुता आ शक्तिनी जगृतिमा आत्मा पोते अहुणु करैल चारित्रयी योडो पणु शिथिल थतो नथी (अप्पेगड्या मणेण सावाणुग्गहसमत्था एव वएण कायेण) डेटलायेड मनथी ७ शाप तेम ७ अनुग्रह करवामा समर्थ हुता येवी ७ रीते वचन अने धायाथी पणु समर्थ देवा जेईये (अप्पेगड्या खेलोसहिपत्ता, एव जल्लोसहिपत्ता विप्पोसहिपत्ता आमोसहिपत्ता सच्चोसहिपत्ता) डेटलायेड येवा हुता जेयेने ७ वलौपधि लण्ठि प्राप्त हुती आ लण्ठि (जिद्धि) वाणा मुनिजनना स्वेद (परसेवा) ना मल पणु समस्त यागीरिड उषद्रवोनो नाग रे हे डेटलायेड येवा हुता

काएणं, अप्पेगइया खेलोसहिपत्ता, एवं जल्लोसहिपत्ता, विप्पो-
सहिपत्ता, आमोसहिपत्ता, सब्बोसहिपत्ता, अप्पेगइया कोट्टबुद्धी, एवं

नर्थोपगमनहेतुवात्, ता प्राप्ता, येषां स्लेप्मस्पर्शेन सर्वे रोगा विनश्यन्ति ते इत्यर्थः,
एवम्—अमुना प्रकारेण 'जल्लोसहिपत्ता' जल्लोपधिप्राप्ता — जल्ल—स्वेदजो मल
स एवौपधि सकलव्याधिप्रशमनहेतुवात्ता प्राप्ता, येषां स्वदजमलस्पर्शेन रोगा
विनश्यन्ति ते इति भावः, 'विप्पोसहिपत्ता' विप्रुडोपधिप्राप्ता—विप्रुप—निष्ठी-
वनादिविन्दव, तद्रूपा औपधिस्ता प्राप्ता, 'आमोसहिपत्ता' आमर्षोपधिप्राप्ता—
आमर्षणम्—आमर्ष—हस्तादिमस्पर्श इति, स औपधिरिव इत्यामर्षोपधिस्ता प्राप्ता ।
'सब्बोसहिपत्ता' सर्वोपधिप्राप्ता—सर्वे पेलजल्लविप्रुट्केजनसादयस्ते सर्व एवौ
पधयस्ता प्राप्ता, एषु एकैकस्य सर्वविधरोगोपगमनकृतयोपधिवाऽऽरोप । 'अप्पे-
गइया' अप्पेकके—कैचित्—'कोट्टबुद्धी' कोट्टबुद्धय—कोष्ठनत्—कुश्लनत् सूत्रार्थ-
रूपधान्यस्य यथाहन्धस्याऽविस्मृतस्य आजीवनधारणात् कोट्टबुद्धय, यथा धान्य-

काम करती है । कितनेक ऐसे थे जिन्हें आमर्षोपधि प्राप्त हो चुकी थी । इस लब्धि
के प्रभाव से इस लब्धिप्राप्त मुनिजन का हस्तादिक स्पर्श औपधि का काम करता
है । कितनेक ऐसे भी मुनिजन थे जिन्हें सर्वौपधि नामकी लब्धि प्राप्त हो चुकी थी ।
इस लब्धिप्राप्त मुनिजन के खेल—स्लेप्मा, जल्ल—स्वेदज मेल, विप्रुट्—यूक आदि के
कण, केश और नखादिक सब औपधि का काम करते हैं । इन सब को औपधि इस-
लिये कहा गया है कि जिस प्रकार औपधिया रोगोपशामक होती है उसी प्रकार ये
सब भी रोगोपशामक होते हैं । (अप्पेगइया कोट्टबुद्धी, एव वीयबुद्धी, पडबुद्धी,
अप्पेगइया पयाणुसारी, अप्पेगइया समिन्नसोया) कितनेक ऐसे थे जिन्हें कोट्ट-

लेभने विप्रुडोपधि लब्धि प्राप्त होती आ लब्धिवाणा मुनिना थूकतु टीपु पणु
ओपधीनु काम करे छे उटलाअेक अेवा मुनिजनो उता लेअेअेने आमर्षोपधि
प्राप्त होती आ लब्धिना प्रलावथी आ लब्धिवाणा मुनिजनना हस्तादिठेनो स्पर्श
पणु ओपधीनु काम करे छे उटलाठ अेवा पणु मुनिजन उता, लेभने सर्वौपधि
नामनी लब्धि प्राप्त होती आ लब्धिवाणा मुनिजनना जेल—कक्, जटल—स्वेदज
मेल, विप्रुट्—यूक आदिना कणु, केश अने नख आदिठ पणु ओपधिनु काम करे
छे अे अधाने ओपधिअे अेटला भाटे कडेवामा आवे छे उे ले प्रगारे औपधीअे
रागने मटाडे छे ते ज प्रकारे अे पणु समस्त राग मटाडे छे (अप्पेगइया
कोट्टबुद्धी, एवं वीयबुद्धी, पडबुद्धी, अप्पेगइया पयाणुसारी, समिन्नसोया) उटलाअेक

वीजवृद्धी पटवृद्धी, अप्पेगइया पयाणुसारी, अप्पेगइया संभि-

सम्भृतकुशला इष्टदेवताऽनुग्रहप्रभावात्सदा पूणा आमते तथा प्रवर्धमानमेधापरिपूर्णा-
स्तेऽप्यन्तेवासिन इति भाव । 'एवम्'—इत्यम् 'वीजवृद्धी' बीजवृद्धय—त्रिविध-
सूत्रार्थागमरहस्याधिगमत्रिगालवृक्षजननाद् बीजमिव बुद्धिर्येषा ते बीजवृद्धय—अल्पेनापि
पदेन बह्वर्थप्रतिपादकबुद्धिशालिन इति भाव । 'पटवृद्धी' पटवृद्धय—अत्र पट-
शब्देन पटसदृशा विस्तीर्णां सूत्रार्थां गणन्ते, तद्विपर्यया बुद्धिर्येषा ते तथा, तन्तुसमु-
दायात्मकत्वव प्रभूतसूत्रार्थग्रहणसमर्थजानन्त इत्यर्थ । 'अप्पेगइया पयाणुसारी'
अप्येकके पदानुसारिग—पदेनेकेनैव सत्रपदेन तदनुकृतानि तदाकाङ्क्षितानि पदशतान्य-

बुद्धि प्राप्त यी । जिस प्रकार कोठा धान्य से इष्टदेवता के अनुग्रहवश सदा भरा हुआ
रहता है उसी प्रकार इस बुद्धि की प्राप्ति से मुनिजन भी सूत्रार्थरूप धान्य से जीवन-
पर्यन्त भंग हुए रहते हैं । वह इन्हे कभी भी विस्मृत नहीं होता है । कितनेक ऐसे
थे जिन्हे बीजवृद्धि प्राप्त थी । जिस प्रकार सूक्ष्म से भी सूक्ष्म बीज से विगालवृक्ष तैयार
हो जाता है उसी प्रकार इस बुद्धि के धारक मुनिजन भी त्रिविध सूत्रों के अर्थों के
अर्थात् अगमों के रहस्यों के ज्ञाता हो जाते हैं । अल्पपद से भी ये विस्तृत अर्थ के
प्रतिपादन करने की योग्यता से विशिष्ट बन जाते हैं । कितनेक पटवृद्धि के धारक थे ।
पट शब्द में यहा विस्तृत सूत्रार्थ गृहीत हुए हैं । जिस प्रकार वस्त्र तन्तुओंका समुदायात्मक
होता है उसी प्रकार उस बुद्धि के प्रभाव से मुनिजन भी विस्तृत-सूत्रार्थ के ज्ञानविशिष्ट
होते हैं । कितनेक पदानुसारी थे । एक ही सूत्र के पद से इतर तदनुकूल एव उस सूत्र

येवा इता डे नेमने डोषभुद्धि प्राप्त हुती, ने प्रकारे छष्टदेवताना अनुशुद्धी
डोषार धान्यथी महा लरेला रखा करे छे तेज प्रकारे आ भुद्धिनी प्राप्तिथी
मुनिजन पणु सूत्रना अर्थरूप धान्यथी एवनपर्यन्त लरेला रखा करे छे
तेमो तेने उही पणु लूली जता नथी

डेटलायेड येवा पणु इता डे नेमने भीजभुद्धि प्राप्त हुती ने प्रकारे
सक्षमना पणु सूक्ष्म भीजथी विशाल वृक्ष तैयार थड जय छे ते ज प्रकारे
आ भुद्धिना धारड मुनिजन पणु विविध सूत्रोना अर्थोने येडले आगमोना
रहयेने जणुनारा थड जय छे अल्पपदथी पणु विस्तृत अर्थनु प्रतिपादन
उरवानी येअथावाणा जनी जय छे डेटलायेड पटभुद्धिना धारक इता.
पट शब्दथी अही विस्तृत सूत्रार्थ लीधेल छे ने प्रकारे वस्त्र ये ततुओनु
समुदायात्मक होय छे तेज प्रकारे आ भुद्धिना प्रभावथी मुनिजन पणु विस्तृत
सूत्रार्थना ज्ञानविशिष्ट थाय छे डेटलाड पदानुसारी इता येड ज सूत्रना

काएणं, अप्पेगइया खेलोसहिपत्ता, एवं जल्लोसहिपत्ता, विप्पो-
सहिपत्ता, आमोसहिपत्ता, सब्बोसहिपत्ता, अप्पेगइया कोट्टुवुद्धी, एवं

नधोपगमनहेतुत्वात्, ता प्राप्ता, येषा स्लेप्मस्पर्शेन सर्पे रोगा विन-यन्ति ते इत्यर्थ, एवम्—अमुना प्रकारेण 'जल्लोसहिपत्ता' जडोपधिप्राप्ता — जल्ल—स्वेदजो मल स एवौपधि सकलव्याधिप्रशमनहेतुत्वात् प्राप्ता, येषा स्वेजमलस्पर्शन रोगा विनश्यन्ति ते इति भाव, 'विप्पोसहिपत्ता' विप्रुडोपधिप्राप्ता—विप्रुष—निष्ठी-वनादिनिन्दव, तद्रूपा ओपधिस्ता प्राप्ता, 'आमोसहिपत्ता' आमर्षोपधिप्राप्ता—आमर्षणम्—आमर्ष—हस्तादिमस्पर्श इति, स ओपधिरिव इयामर्षोपधिस्ता प्राप्ता । 'सब्बोसहिपत्ता' सर्वोपधिप्राप्ता—सर्वे रेलजल्लविप्रुट्केअनरादयस्ते सर्प एवौ-पधयस्ता प्राप्ता, एषु एकैकस्य सर्वविधरोगोपगमनकृतयोपधिवाऽऽरोप । 'अप्पे-गइया' अल्पेकके—केचित्—'कोट्टुवुद्धी' कोट्टुवुद्धय—कोष्ठनत्—कुगूलनत् सूत्रार्थ-रूपधान्यस्य यथालम्बस्याऽविसृष्टस्य आजीवनधारणात् कोट्टुवुद्धय, यथा धान्य-

काम करती है । कितनेक ऐसे थे जिन्हें आमर्षोपधि प्राप्त हो चुकी थी । इस लम्बि के प्रभाव से इस लम्बिप्राप्त मुनिजन का हस्तादिक स्पर्श औपधि का काम करता है । कितनेक ऐसे भी मुनिजन थे जिन्हे सर्वोपधि नामकी लम्बि प्राप्त हो चुकी थी । इस लम्बिप्राप्त मुनिजन के खेल—स्लेप्मा, जल्ल—स्वेदज मेल, विप्रुट्—थूक आदि के कण, केश और नखादिक सब औपधि का काम करते हैं । इन सब को औपधि इस-लिये कहा गया है कि जिस प्रकार औपधिया रोगोपशामक होती है उसी प्रकार ये सब भी रोगोपशामक होते हैं । (अप्पेगइया कोट्टुवुद्धी, एव वीयवुद्धी, पडवुद्धी, अप्पेगइया पयाणुसारी, अप्पेगइया सभिन्नसोया) कितनेक ऐसे थे जिन्हे कोष्ठ-

नेमने विप्रुडोपधि लम्बि प्राप्त हुती आ लम्बिवाणा मुनिना थूकनु टीपु पणु ओपधीनु काम करे छे डेटलाअेक अेवा मुनिअेनो हुता अेअेनो आभर्षोपधि प्राप्त हुती आ लम्बिना प्रभावथी आ लम्बिवाणा मुनिअेनना हुस्तादिअेनो स्पर्श पणु ओपधीनु काम करे छे डेटलाअेक अेवा पणु मुनिअेन हुता, नेमने सर्वोपधि नामनी लम्बि प्राप्त हुती आ लम्बिवाणा मुनिअेनना रेल—अेक, अेल—स्वेदज मेल, विप्रुट्—थूक आदिना कण, केश अने नख आदिक पणु ओपधिनु काम करे छे अे अधाने ओपधिअे अेटला भाटे उडेवाभा आवे छे डे अे प्रकारे औपधीअे शगने मटाडे छे ते अे प्रकारे अे पणु सभस्त शग मटाडे छे (अप्पेगइया कोट्टुवुद्धी, एव वीयवुद्धी, पडवुद्धी, अप्पेगइया पयाणुसारी, सभिन्नसोया) डेटलाअेक

गड्या सप्पियासवा, अप्पेगड्या अक्खीणमहाणसिया, एवं

मधुरवचनान्यास्रवन्ति येषां ते तथा, 'अप्पेगड्या सप्पियासवा' अप्येकके सर्पिरा-
स्रवा - धृतवच्छ्रेतृगा स्नेहातिशयमम्पादका, श्रोतृनेहानिशयमपादकत्वादेव ते
क्षीरास्रवमध्वाश्रवभ्यो भेदेन कथिता, 'अप्पेगड्या अक्खीणमहाणसिया' अप्येकके
अक्षीणमहानसिका - अक्षीणमहानसी नाम लज्जि प्राप्ता, अत्र महानसम्-अन्न-
पाकस्थान, तदाश्रितत्वाद्दन्नमपि महानममुच्यते, अनीग-भित्तिमागताय लज्जिप्रिये
धारिणे माध्वेऽन्नं प्रदत्ते सति तत्राश्रितमन्नं पुरुषगतसहस्रेभ्योऽपि नीर्यामनं न क्षीयते,
यावत्तदन्नस्वागी स्वयं न भुङ्क्ते, अपिच भिक्षापात्रगत तदन्नं लज्जिप्रियेप्रभावादेव साधु-
गतसहस्रेभ्योऽपि परिनिष्यमाणं न क्षीयते यावत् तदन्नभिक्षापात्रकं स्वयं न भुङ्क्ते,

निकल्य करते थे। क्षीरास्रलज्जि का काम यही है कि यह जिसे प्राप्त होता है
वह क्षीर के समान मधुर वचनों को सदा बोल करता है। कितनेक ऐसे मुनिजन
थे जो मध्वाश्रव थे, जिनके मुखरुमल से मधु के तुल्य मधुर वचन निकल्य करते
थे। कितनेक ऐसे थे जो सर्पिरास्रव धृत के समान स्नेहापादन करनेवाले वचनों
के प्रयोक्ता थे। कितनेक अक्षीणमहानसिक थे। इस लज्जिप्राप्त मुनिजन का यह
प्रभाव होता है कि यह जिस घर से भिक्षा ले आवे उस घर का अश्रित अन्न
जनतक देनेवाला स्वयं न ग्रा लेवे, तत्रतक लाग्य आदमियों को भी वितरित करने
पर स्रुता नहीं है। तथा उस साधुद्वारा लाया गया वह भिक्षालाभ जवतक
लानेवाला साधु स्वयं न ग्रा लेवे तत्रतक लाग्य साधुओं द्वारा आहारित होने पर भी

श्रोताजनेना प्रति ह्यपाक वेवा मधुर-भीडा वचन नीऽव्या करता हुता
क्षीरास्रव लज्जिनु काम जेव छे ते जेने प्राप्त थाय छे ते ह्यपाक
वेवा मधुर वचनो ज महाय जोऽव्या करे छे डेटलाज्जेव जेवा पणु मुनिजने
हुता जे म'वास्रव हुता जेमना सुअकमलभाथी मधना वेवा मधुर वचन नीऽजे
छे ते मध्वाश्रव छे डेटलाज्जेव जेवा हुता ते जे सर्पिरास्रव हुता, गीनी पेठे
स्नेहापादन करवावाणा वचनो जोलनारा हुता डेटलाज्जेव अक्षीणमहानसिक-
लज्जिधारी हुता, आ लज्जिप्राप्त मुनिजनने जेवो प्रभाव होय छे ते
जे घरथी भिक्षा लधने आवे ते घरनु गाक्षीनु अन्न न्या सुधी देवावाणो
पोते न पाय त्या सुधी लाणो माणुसोभा वडेथी आपे तो पणु ष्टी जनु
मथी तथा ते साधुज्जे लावेणु ते भिक्षानु अन्न पणु ते लध आवनार
साधु पोते पाय नहि, त्या सुधी लाणो साधुज्जे तेनो आहार करे तोय पणु

न्नसोया, अप्पेगड्या खीरासवा, अप्पेगड्या महुयामवा, अप्पे-

नुसरन्ति तच्छीग । अप्पेनाऽप्यान्पक्वका इत्यर्थ । ' अप्पेगड्या संमिन्नसोया ' अप्पेकके गभिन्नश्रोतार--मभिन्नान शब्दान-पृथक् २ युगपत्पृथक् इति मभिन्न श्रोतार, यद्वा सभिन्नानि-अन्तेन सपदाणि अदपात्काणि योनामि-सर्वांगीन्द्रियाणि येषां ते मभिन्नश्रोतस । ' अप्पेगड्या गीरासवा ' अन्येके क्षीराऽऽसवा-मधुस्त्वेन क्षीरवद्-दुग्धप्र-श्लेषाणां युगपत्पृथक् वचनान्याप्तवन्ति-गुरोभ्यो विनिर्गच्छन्ति येषां ते क्षीराऽऽसवा, ' अप्पेगड्या महुयासवा ' अन्येके महुयासवा-मधुवत्

में आकाशित अन्य सैकड़ों पदों का भी जो अनुसरण करनेवाले होते हैं वे पदानुसारी कहलाते हैं । कितनेक गभिन्नश्रोता ये । सभिन्नश्रोता मुनिजन अनेक भेदों से भिन्न २ शब्दों को भी युगपत् पृथक् २ रूप से सुन लिया करते हैं । एक ही साथ अनेक शब्द एकत्र हो रहे हों, तो भी मभिन्नश्रोता उन शब्दों को पृथक् २ रूप से युगपत् जान लिया करते हैं, अथवा ' श्रोतम् ' शब्द समस्त इन्द्रियों का वाचक है, इससे यह अर्थ लय होना है कि मभिन्नश्रोता मुनिजन की समस्त इन्द्रियाँ शब्दों से समझ रहा करती है, अर्थात् वह श्रोत्र-इन्द्रियका काम गेव चार इन्द्रियों से भी लेते हैं, एक इन्द्रिय से अन्य इन्द्रियों का काम लेते हैं । (अप्पेगड्या गीरासवा अप्पेगड्या महुयासवा अप्पेगड्या सप्पियासवा अप्पेगड्या अस्वीणमहाणसिया) कितनेक ऐसे भी थे जिनके मुख से श्रोताजनों के प्रति क्षीर के जैसे मधुर-मिठे वचन

पथी थीज तेने अनुकण तेमज ते सूत्रमा व्याकषित अन्य से उठा पढाना पणु जे अनुसरणु उवावाणा डोय छे ते पदानुसारी उडेवाय छे डेटलायेक सलिन-श्रोता हुवा मभिन्नश्रोता मुनिजनो अनेकभेदावाणा बुदा बुदा शब्दोने पणु युगपत् बुदा बुदा इपथी सालणी दे छे ऐकीमाथे अनेक शब्द ऐकत्र थर्ष तय छे तो पणु सलिनश्रोता ते शब्दोने बुदा बुदा इपथी युगपत् जाणी दे छे अथवा श्रोतम् शब्द छद्रियोनो वाचक छे तेथी ऐयो अर्थ नीकणे छे के सलिन-श्रोता मुनिजननी मभन्त छद्रियो शब्द साधे सणद्ध रह्या करे छे (जेडाऐकी रडे छे), अर्थात् ते श्रोत्र छद्रियनु काम भीलु चार छद्रियो पायेथी पणु दे छे ऐक छद्रिय पासे भीलु छद्रियोनु काम दे छे (अप्पेगड्या गीरासवा अप्पेगड्या महुयासवा अप्पेगड्या सप्पियासवा अप्पेगड्या अस्वीणमहाणसिया) डेटलायेक ऐवा पणु हुता, जेभना सुपथी

गड्या सप्पियासवा, अप्पेगड्या अक्खीणमहाणसिया, एवं

मधुरवचनान्यास्रन्ति येषां ते तथा, 'अप्पेगड्या सप्पियासवा' अल्पेकके सर्पिरा-
सवा - घृतवच्छेत्तृणा स्नेहातिशयमम्पात्का, श्रोत्रुच्छेहातिशयमपादकत्वादेव ते
क्षीरास्रमव्याप्त्येभ्यो भेदेन कथिता, 'अप्पेगड्या अक्खीणमहाणसिया' अल्पेकके
अक्षीणमहानसिका - अक्षीणमहानसा नाम लप्पि प्राप्ता, अत्र महानसम्-अन्न-
पाकस्थान, तत्राश्रितान्नान्नमपि महानममुच्यते, अनीग-भि नार्थमागताय लधिप्रियेप-
धारिणे साधयेऽन्ने प्रत्ते मति तत्राश्रितमन्न पुरुषजनमहत्त्वेभ्योऽपि तीर्यमन्नं न क्षीयते,
यावत्तदन्नस्वामी स्वयं न भुङ्क्ते, अपिच भिक्षापात्रगत तदन्नं लप्पिप्रियेपप्रभावादेव साधु-
गतमहत्त्वेभ्योऽपि परिप्रियमाणं न क्षीयते यावत् तदन्नमिवाप्राप्तकं स्वयं न भुङ्क्ते,

निकला करते थे। क्षीरास्रलप्पि का काम यही है कि यह जिसे प्राप्त होता है वह क्षीर के समान मधुर वचनों को सदा बोला करता है। कितनेक ऐसे मुनिजन थे जो मध्यास्र थे, जिनके मुखकमल से मधु के तुल्य मधुर वचन निकला करते थे। कितनेक ऐसे थे जो सर्पिरास्र व-घृत के समान स्नेहापादन करनेवाले वचनों के प्रयोक्ता थे। कितनेक अक्षीणमहानसिक थे। इस लप्पिप्राप्त मुनिजन का यह प्रमाण होता है कि यह जिस घर से भिना ले आवे उम घर का अवशिष्ट अन्न जनतक देनेवाला स्वयं न खा ले, तत्रतक लग्न आदमियां को भी वितरित करने पर स्रुता नहीं है। तथा उस साधुद्वारा लाया गया वह भिक्षाल भी जनतक लानेवाला साधु स्वयं न खा ले तत्रतक लग्न साधुओं द्वारा आहारित होने पर भी

श्रोताजनोना प्रति इधपाठ जेवा मधुर-भीडा वचन नीठण्णा करता उता क्षीरास्रव लधिनु काम जेव छे के ते जेने प्राप्त थाय छे ते इधपाठ जेवा मधुर वचनो ज महाय जोत्था जे छे डेटलाज्जेक जेवा पणु मुनिजनो उता जे म'वास्रव उता जेभना सुअठमलभाधी मधना जेवा मधुर वचन नीठणे छे ते मध्वास्रव छे डेटलाज्जेक जेवा उता डे जे सर्पिरास्रव उता, रीनी पेठे स्नेहापादन करवावाणा वचनो जोलनाग उता डेटलाज्जेक अक्षीणमहानसिक लधिधारी उता, आ लधिप्राप्त मुनिजननो जेवो प्रभाव डाय छे के ते जे वेश्ठी भिक्षा लधने आवे ते घरनु जाडीनु अन्न न्या सुधी देवावाणे पोते न जाय त्या सुधी लाणे भाणुयोभा वडेथी आपे तो पणु अठी जनु नथी तथा ते साधुज्जे लावेणु ते भिक्षानु अन्न पणु ते लध आवनार साधु पोते जाय नहि, त्या सुधी लाणे साधुज्जे तेना आधार जे तोय पणु

उज्जुमई, अप्पेगइया विउलमई विउव्वणिडिडपत्ता चारणा विज्जा-

एवम् 'उज्जुमई' ऋजुमतय -मनन मति, मनेदममिथ्ये -ऋणी सामान्यप्राहिणी मतिर्येपा ते ऋजुमतय । अर्द्धतृतीयोच्छ्रयाऽङ्गुलन्यूनमनुष्यक्षेत्रमतिंसजिपचेन्द्रिय-मनोद्रव्यप्रत्यक्षोरुणहेतुमन पर्ययजाननिशेषन्त इत्यर्थ । ऋजुमनिनामकलत्रि-विशेषधारिण इति भाव । अप्पेगइया विउलमई' अन्येकके त्रिपुलमतय - त्रिपुला सत्रिशेषणवस्तुप्राहितया विस्तीर्णा मति -मन पर्ययजान येपा ते त्रिपुलमतय । ऋजुमतिविपुलमतिमतामय तात्विके भेद, त्रिपुलमतय - घटोऽनेन चिन्तित, स घटो द्रव्यत - सुवर्णघटित, क्षेत्रत - पाटलिपुत्रनगरस्य, कालत - शारदीय, भावत - पीतवर्ण इत्येवमशेषत्रिशेषणयुक्त वस्तु जानन्ति, ऋजुमतयस्तु सामान्यत एव जानन्ति । अर्द्धतृतीयोच्छ्रयाऽङ्गुलन्यूने मनुजक्षेत्रे वर्तमानाना सजिपचेन्द्रि-

खूटता नहीं है । (एव उज्जुमई, अप्पेगइया विउलमई विउव्वणिडिडपत्ता चारणा विज्जाहरा आगासाइवाई) इस प्रकार कितनेक तपस्वी शिष्यजन ऋजुमति-मन पर्ययजानवाले थे । ऋजुमति-मन पर्ययजानी सामान्यत सर्जी-पचेन्द्रिय के मन के भावों को जानते हैं । कितनेक विपुलमति-मन पर्यय के धारक थे-विशेषणसहित वस्तु को ग्रहण करने की बुद्धिवाले थे । जैसे किसी ने द्रव्य की अपेक्षा सुवर्ण का, क्षेत्र की अपेक्षा पाटलिपुत्र का, काल की अपेक्षा शरदकाल का और भाव की अपेक्षा पीत वर्णका घट चिन्तित किया, विपुलमति इन समस्त विशेषणों सहित उस घट को जान लेते हैं । अर्द्धतृतीय अंगुलसे न्यून इस मनुष्य क्षेत्रमें वर्तमान सजि पचेन्द्रिय जीवा के मनमें स्थित वस्तु का सामान्यत जाननेवाला ऋजुमति-मन पर्य-

भूटतु नथी (एव उज्जुमई अप्पेगइया विउलमई विउव्वणिडिडपत्ता चारणा विज्जा हरा आगासाइवाई) तेऽ प्रकारे केटलाञ्छेक तपस्वी शिष्यजन ऋजुमति मन -पर्ययजानी हुता ऋजुमतिमन -पर्ययजानी सामान्यत सर्जी-पचेन्द्रियना मनना लावेने लब्धे छे केटलाञ्छेक विपुलमति-मन पर्ययना धारक हुता, विशेषणसहित वस्तुने लब्धुनारी बुद्धिवाणा हुता नेम के डोहञ्छे द्रव्यनी अपेक्षा सुवर्णना, क्षेत्रनी अपेक्षाञ्छे पाटलिपुत्रना, कालनी अपेक्षाञ्छे शरदकालना, अने लावनी अपेक्षाञ्छे पीणा रगना घटतु चितवन कथुं, त्यारे विपुलमति छे अथा विशेषणो सहित ते घटने लब्धि ले छे अर्द्धतृतीयअङ्गुलन्यून आ मनुष्य क्षेत्रमा वर्तमान सर्जी पचेन्द्रिय लोचाना मनमा रहेल वस्तुने सामान्यत लब्धुवा-वाणा ऋजुमति-मन पर्ययजान थाय छे, तेमञ्च सपुण् मनुष्यक्षेत्रमा वर्तमान

यागा मनोऽप्रस्थितवस्तुन मामान्यतो ग्राहिका ऋजुमति । सम्पूर्णे मनुजक्षेत्रेऽगोप-
विशेषस्तुग्राहिका विपुलमति । विपुलमतिनामऋत्विग्विशेषारिण इति भाव ।
'विउव्वणिद्धिपत्ता' विरुर्गणद्धिप्राप्ता—विरुर्वगा—वैक्रियऋगलन्नि सैव ऋद्धि,
ता प्राप्ता ये ते तथा । 'विरुर्व' विक्रियाम् इति पारिभाषिक सौत्रो धातु, अस्माद्वा-
तोर्धुच्चप्रत्यये विरुर्वगा, नानारूपा विक्रिया— रचनेयर्थ, बाह्यपुर्णत्वान् भवधारणीय-
शरीरानगगाढक्षेत्रप्रदेशवर्तिना वैक्रियममुद्घातेन गृहीचा एका विरुर्वगा क्रियते, एवम्
आम्यन्तगुर्णत्वान् भववारिणीयेनौदारिकेण वा शरीरेण ये क्षेत्रप्रदेशमवगाढास्तेष्वेव ये वर्तन्ते
तान् गृहीचा विज्ञेया । एव वाद्यान्तरपुद्गलयोगेन तृतीया विरुर्वगा बोध्या ।
स्थानाङ्गसूत्रे—(३ टा १३०) सप्रिस्तर वर्णिता । 'चारणा' चारणा—चरण=गम-
नम् अतिशययुक्तमस्ति येषां ते चारणा, 'ज्योम्नाद्विम्योऽण्' इति पाणिनिमूत्रान्मत्वर्थी-
योऽण्प्रयय । आकाशगमनागमनरूपलन्त्रिसम्पन्ना इत्यर्थ । ते द्विविधा—विद्याचारणा,
जघाचारणाश्च । तत्र विद्या—पूर्वगतप्रियक्षितश्रुतज्ञानाद्य, तदभ्याससमये पृथपृथनिरन्त-

पज्ञान होता है, एव सम्पूर्ण मनुष्यक्षेत्र में वर्तमान समस्त वस्तुओं—बाहर पदार्थों को
विशेषरूप से जाननेवाला विपुलमतिमन पर्यवज्ञान होता है । कितनेक वैक्रिय—लन्त्रि
के धारी ये । वैक्रियलन्त्रि अनेक प्रकार की होती है । इस ऋद्धि के धारी मुनिजन
अनेक प्रकार से अपन शरीर की विरुर्वणा कर लेते हैं । इसका विशेष वर्णन स्थानाग
सूत्र के तृतीय ठाण् के प्रथम उद्देशक में किया गया है । कितनेक चारगलन्त्रि के धारक
ये । चारगलन्त्रि के धारी मुनिजनों का गमन अतिशयसपन्न होता है । इस ऋद्धि के
धारक मुनियों का गमनागमन आकाश में होता है । चारणऋद्धिधारी मुनिजन दो
प्रकार के होते हैं—एक विद्याचारण, दूसरे जघाचारण । १४ पूर्वों में विवक्षित श्रुतज्ञान

सम्पन्न वस्तुओं बाहर पदार्थोंने विशेषरूपे लक्ष्यवावाणा विपुलमति—मन पर्यवज्ञान
थाय छे डेटलाय्येक वैक्रियलन्त्रिधना धारक हुता वैक्रियलन्त्रि अनेक प्रकारनी थाय
छे अने ऋद्धिना धारक मुनिजनों अनेक प्रकारथी पोताना शरीरनी विरुर्वणा करे
छे आनु विशेष वर्णन स्थानाग सूत्रना तृतीय ठाण् प्रथम उद्देशकमा करेछे छे
डेटलाके आरण्यलन्त्रिधना धारक हुता आरण्यलन्त्रिधना धारक मुनिजनोंनु गमन
अतिशयसपन्न होय छे आ ऋद्धिना धारक मुनिजनोंनु गमनागमन आकाश
भागें थाय छे आरण्य—ऋद्धिधारी मुनिजन जे प्रकारना थाय छे—अनेक विद्या-
आरण्य अने भीज जघाआरण्य १४ पूर्वोंमा विवक्षित श्रुतज्ञाननु अश विद्या

रतप करणेन द्विच शार्ङ्गद्वोपवर्जनपूर्वकसामिग्रहात्तप्रान्ततुच्छभाद्रिप्रहणरूपया पिण्ड-
विशुद्ध्या च विद्याचारणनामकरत्रिधिरुपयते, ये तथा ल या युक्तास्ते विद्याचारणा उच्यन्ते ।
यद्यपि पिण्डविशुद्ध्यात्त्रि मर्षेण माधूनामपेक्ष्य तथायत्रा तप्रात्तादिमाभिग्रहप्रहणभावयक्र-
मिति विशेष । विद्याचारणास्तिर्यग्गया प्रथमेनोपाते मानुषोत्तर पर्वत गच्छन्ति, ततो
द्वितीयोपातेनाष्टम नन्दीधर गच्छन्ति, तत पर तेषा गतिर्नाम्ति, नन्दीधरद्वीपात् प्रति-
निरर्तमाना एकेनैवोपातेन स्वस्थानमायान्ति । ते पुनरुर्ध्वगया मेरुं जिगमिष्व प्रथमे-

का अग विद्या हे । इस विद्या के अभ्यास के समय में मुनिजन अन्तररहित पष्ठ
पष्ठ तपस्या करते हैं, और पारगा के दिन ४२ नोचों को टालकर अन्तप्रान्त एव
तुच्छ-रूक्षादिक आहार ग्रहण करते हैं । इसपर भी अभिग्रह करते हैं । इस तरह
उन्हे विद्याचारण नामकी लय प्राप्त होती है । इस लय से युक्त मुनिजन विद्या-
चारण कहे गये है । यद्यपि पिण्डादिक की विशुद्धि समस्त साधुओं के लिये सापेक्ष
हे, तथापि इस ऋद्धि की प्राप्ति के लिये सामिग्रह अन्त-प्रान्तादि आहार का ग्रहण
करना आवश्यक है । विद्याचारण ऋद्धि के धारक मुनिजन यदि तिरछे गमन करें
तो इस ऋद्धि के प्रभाव से प्रथम उत्पात में मानुषोत्तर पर्वत तक चले जाते हैं ।
द्वितीय उत्पात से आठवे नदीधर द्वीप तक जाते हैं । इससे आगे उनका गमन
नहीं होता है । पुन एक ही उत्पात से ये नदीधर द्वीप से वापिस अपने स्थान-
पर आ जाते है । यदि ये ऊपर की ओर गमन करे, और मेरु पर्वत पर जाने
के इच्छुक हों तो प्रथम उत्पात से नदनवन तक जाते है और द्वितीय उत्पात से

छे आ विधाना अब्यासना समयमा मुनिजन अतररहित छठछठ तपस्या
करे छे अने पारणाने द्विवसे ४२ दोषोथी रहित अतप्रात तेमज तुच्छ
इक्ष आदिस आहार ग्रहण करे छे ते उपरात पणु अबिशुद्ध राणे छे
आवी रीते तेमने विद्याचारण नामनी लयि प्राप्त थाय छे आ लयिवाणा
मुनिजन विद्याचारण कलेवाय छे जे के पि डादिसनी विशुद्धि नमस्त साधुओ
भाटे सापेक्ष छे, तो पणु आ ऋद्धिनी प्राप्ति भाटे सामिग्रह अतप्रातादि
आहार ग्रहण करवे आवश्यक छे विद्याचारण ऋद्धिना धारत मुनिजन जे
तिरछा गमन करे तो आ ऋद्धिना प्रभावथी प्रथम उत्पातमा मानुषोत्तर
पर्वतसुधी आल्या जय छे, अनि उत्पातमा आठमा नदीधर द्वीप सुधी जय
छे तेनाथी आगण तेमनु गमन थतु नथी पाछा ओठ व उत्पातथी जे
नदीधर द्वीपथी पोता न स्थाने आनी जय छे जे तेओ उपरनी तरङ्ग गमन
करे अने मेरुपर्वत पर जवानी धम्हा होय तो प्रथम उत्पातथी नदनवन

નોપાતેન નન્નનમ ગચ્છન્તિ, તતો દ્વિતીયોપાતેન પ્ણટકવનમ, તન પ્રતિનિવર્તમાના
 ળ્કેનૈરોપાતેન સ્વસ્થાનમાગચ્છન્તિ । પ્ણટકવનાદૃર્ધ્વ તેષા ગતિનાસ્તિ ।

યેષ્ટમાષ્ટમનિગ્ન્ટરતપ ઋણેનાઽઽ માન ભાગ્યન્તિ તેષા જડ્ઘાચાર્ણનામઋ-
 લ્ધિ સમુપયતે, યે તયા લ્ધ્યા યુક્તાન્તે જડ્ઘાચાર્ણા ઉચ્યન્તે । જડ્ઘાચાર્ણા-
 સ્તિર્થશૂગયા ળ્કેનોપાતેનેતશ્ચયોત્થ ઋચકવદ્વીપ ગચ્છન્તિ, તત પર તેષા ગતિર્નાસ્તિ,
 તત્ પ્રતિનિવર્તમાના પ્રથમોપાતેન નન્દીશ્વરવ ટ્રીપમાગચ્છન્તિ, દ્વિતીયોપાતેન સ્વસ્થાનમ ।
 તે પુનઃસ્વર્ચગયા મેઋ જિગમિપર સ્વસ્થાનાદેકોપત્યા પ્ણટકવનમપ્રિગેહન્તિ । તત પ્રતિ-
 નિવર્તમાના પ્રથમોપાતેન નન્નનમમાગચ્છન્તિ, તતો દ્વિતીયોપાતેન સ્વસ્થાનમાયાન્તિ ।
 પ્ણટકવનાદૃર્ધ્વ જડ્ઘાચાર્ણાનામાપિ ગતિર્નાસ્તિ ।

પ્ણટકવન તરુ ચહે જાતે હૈં । ફિર વહા મે ભૌટકર ઈક હી ઊલાગ મં અપને સ્થાન
 પર વાપિમ આજાતે હૈં । પ્ણટકવન સે આગં ઇનકા ગમન નહા હૈં । જડ્ઘાચાર્ણ નામકી
 લ્ધિ ઊન માધુજનોં કો પ્રાપ્ત હોતી હૈં, જો નિરન્તર-અન્તરગ્રહિત અષ્ટમ કી તપસ્યા
 કરતે હૈં । ઇમ લ્ધિસપ્ત મુનિજન યદિ નિગટે ગમન કરે તો પ્રથમ હી ઉત્પાત
 મં તેરહવા દ્વાપ જો ઋચકવ દ્વીપ હૈં વહા તરુ પહુંચ જાતે હૈં, ઇસકે આગે નહીં
 જાતે હૈં । ક્યોં ફિ આગં ઇનકો ગતિ નહીં હોતી હૈં । વહા સે વાપિસ હોકર યે
 પ્રથમ ઉપાત મે નન્દીશ્વર દ્વીપ આ જાતે હૈં ઔર દ્વિતીય ઉત્પાત મં અપને સ્થાન પર
 આ જાતે હૈં । યદિ યે ઊપર કો ઔર ઉડે ઔર મેસ્પર્ષત પર જાને કી ઇચ્છાવાલે
 હોં તો અપને સ્થાન સે ઈક હા ઉપાત મે પ્ણટકવન મં પહુંચ જાતે હૈં । વહા સે
 જવ યે વાપિસ હોતે હે તો પ્રથમ ઉપાત મં યે નડનમ આજાતે હૈં ઔર ફિર
 દ્વિતીય ઉપાત સે અપન સ્થાન પર । પ્ણટકવન સે આગ જડ્ઘાચાર્ણાનોં કી મી ગતિ
 નહીં હૈં ।

સુધી બય છે, અને બીજા ઉત્પાતથી પ ડકવન સુધી આલ્યા બય છે પછી
 ત્યાથી પાછા આવતા એક જ છલાગમા પોતાના સ્થાનપર પાછા આવી બય
 છે પ ડકવનથી આગળ તેમનુ ગમન નથી

જડ્ઘાચાર્ણ નામની લ્ધિ એ સાધુઓને પ્રાપ્ત થાય છે કે જે નિરન્તર-
 સર્વત અષ્ટમ-અષ્ટમની તપસ્યા કરે છે આ લ્ધિવાળા મુનિઓને બે તિરછા
 ગમન કરે તો પ્રથમ જ ઉત્પાતમા તેરમો દ્વીપ જે ર્ચકવર નામે દ્વીપ છે,
 ત્યા સુધી પહોંચી બય છે, તેનાવી આગળ નથી જતા, કેમ કે આગળ
 તેમની ગતિ થતી નથી ત્યાથી પાછા વળતા તેઓ પ્રથમ ઉત્પાતમા નદી-
 શ્વરદ્વીપ આવી બય છે, અને બીજા ઉત્પાતમા પોતાના સ્થાનપર આવી બય

‘ ચારણલઘ્નિસમ્પન્નો દિ સાધુ સહ ભગવદ્ગિતગણિતાનુયોગ વિજાય, સ્વેન સ્વેન ગમ્ય દ્વીપવનાદિક વિલોકયિતુમૌમુસ્યવગાત્ સ્વસ્વલઘ્નિ સ્ફોટયિવા તત્ર તત્ર જિગમિપતિ । ગવા ચ તત્ર તત્ર યથાભગવદ્ગિત દ્વીપવનાદિક વિલોમ્ય સત્રાતાહ્લાદ-
 ધૈયાનિ વન્દતે, અથાત્ ભગવતોઽનન્તાનિ જ્ઞાનાનિ સ્તૌતિ, સ્તુયા પ્રતિનિવર્તતે, પ્રતિ-
 નિવૃત્ય ઇહ સ્વસ્થાનમાગચ્છતિ, આગય ઇહ ધૈયાનિ વન્દતે—અર્થાન્—જ્ઞાનાનિ સ્તૌતિ ।
 જ્ઞાનાનન્ત્યાદ્ વહુવચનમ્ । સર્વમેતદ્ ભગવતીમૃતેઽભિહિતમ્ । અધિકૃજિજ્ઞાસુમિસ્તત્ર દ્રઘ-
 વ્યમ્ । ‘ વિજાહરા ’ વિચાધરા—રોહિણીપ્રજ્ઞપ્યાદિત્રિપિધવિચાવિશેષધારિણ । ‘ આગા-

ચારણલઘ્નિમપ્ન સાધુજન પ્રમુદ્ધારા વર્ણિત ગણિતાનુયોગ કો જાન કરકે અપનેર દ્વારા ગમ્ય દ્વીપવનાદિક કો દેરને કે લિયે ઝકઠા કે વશવર્તી હો, અપનીર લઘ્નિ કો પ્રગટ કરતે હૈ ઓર વહાર જાતે હૈ । ભગવાન્ ને દ્વીપવનાદિક કા સ્વરૂપ જૈસા કહા હૈ વૈસા વે વહા ઉસે દેરતે હૈ ઓર અપાર આનદ સે પુલકિત હોતે હૈ । પ્રમુ કે અપાર જ્ઞાન કો અતિશય સ્તુતિ કરતે હૈ । ફિર વહા સે વાપિસ અપની જગહ પર આજાતે હૈ । આકર યહા પર મી ધૈયો કો અર્થાત્ પ્રમુ કે જ્ઞાન કો સ્તુતિ કરતે હૈ । યહ સર્વ પ્રકરણ ભગવતીમૂર મે કહા હુઆ હૈ । જિન્હે અધિક જાનને કો ઇચ્છા હો વહ વહા સે દેસ લેવે । કિતનેક મુનિ રોહિણી—પ્રજ્ઞપ્તિ—આદિ વિવિધ પ્રકાર કો વિદ્યાઓ કે ધારણ કરનેવાલે

છે જો તેઓ ઉપરની તરફ ઉડે અને મેઝ પર્વત પર જવાની ઈચ્છા કરે તો પોતાના સ્થાનથી એક જ ઉત્પાતમા પડકવનમા પહોચી જાય છે ત્યાથી જ્યારે તેઓ પાછા વળે ત્યારે પ્રથમ ઉત્પાતમા નદનવન આવી જાય છે, અને પછી બીજા ઉત્પાતમા પોતાના સ્થાન પર આવે છે પડકવનથી આગળ જ ધારણવાલાની પણ ગતિ હોતી નથી

ચારણલઘ્નિમપ્ન સાધુજન પ્રમુદ્ધે વહુવેલા ગણિતાનુયોગને જાણીને પોતપોતાથી ગમ્ય દ્વીપવન આદિકને જોવા માટે ઉત્ક્રાંતે વશવર્તી થઈને પોતપોતાની લઘ્નિને પ્રગટ કરે છે, અને ત્યા ત્યા જાય છે લગવાને દ્વીપવન આદિકના સ્વરૂપ જોવા કહેલા છે તેવા જ તેઓ ત્યા જુએ છે, અને અપાર આનદથી પુલકિત થાય છે પ્રભુના અપાર જ્ઞાનની અતિશય સ્તુતિ કરે છે. પછી ત્યાથી પાછા પોતાના સ્થાને આવી જાય છે આવીને અહી પણ મૈત્યની અર્થાત્ પ્રભુના જ્ઞાનની સ્તુતિ કરે છે કેટલાએક મુનિ શેહિણી પ્રશંસિ આદિ વિવિધ પ્રકારની વિદ્યાઓના ધારણ કરવાવાળા હતા કેટલાએક મુનિજન

હરા આગાસાડવાઈ, અપ્પેગડયા કળગાવલિતવોકમ્મં પડિવળ્ળા, એવં
 ઇગાવલિં સુહ્લાગસીહનિક્કીલિયં તવોકમ્મં પડિવળ્ળા, અપ્પેગડયા

સાડવાઈ' આકાશાનિપાતિન - આકાશ - વ્યોમ અનિપતન્તિ - અતિક્રામન્તિ - આકાશગામિ-
 વિદ્યાપ્રમાવાત્ - એ તે તથા । 'અપ્પેગડયા કળગાવલિતવોકમ્મં પડિવળ્ળા'
 અચ્ચેકકે કનકાવલીતપ કર્મ પ્રતિપન્ના, 'એવં' એવમ્ - અનેન પ્રકારેણ 'ઇગા-
 વલિં' ઇકાવલી પ્રતિપન્ના, ઇકાવલીનામકતપ કર્મણ આદ્વિનિગ્યયોક્તા - ટિનિ ન મા
 વિવિયતે । 'સુહ્લાગસીહનિક્કીલિયં તવોકમ્મં પડિવળ્ળા' હુલ્લક - મિહ - નિક્કી-
 ડિતમ્ - હુલ્લક - હુ, સિંહનિક્કીટિન - સિંહગમન તદ્વિય યત્તપન્નન્ મિહનીંકીટિનમ્, એત-
 ત્તપો વચ્ચમાળમહામિહનિક્કીટિતાડ્વેક્ષયા હુલ્લક, મિહગમનચ્ચ અતિક્રાન્તદેશાડ્વલોક-
 નતો મયનિ, એવમનિક્રાન્તતપ સેયનેન અપૂર્વતપમોડ્વનુષ્ઠાન યમ્મિન્ તત્ મિહનિક્કી-

યે । કિત્તનેક એસે મુનિજન યે જો આકાશગામી યે । ટનકે પાસ આકાશગામિની વિદ્યા થી ।
 ઉમકે હી પ્રમાવ સે યે આકાશમેં ઉડને યે । (અપ્પેગડયા કળગાવલિતવોકમ્મં પડિવળ્ળા
 એવં ઇગાવલિં સુહ્લાગસીહનિક્કીલિયં તવોકમ્મં પડિવળ્ળા) કિત્તનેક એસે મુનિજન યે
 જો કનકાવલી તપ કો તપતે યે, ઓર કિત્તનેક મુનિજન ઇકાવલી તપ તપતે યે ।
 કિત્તનેક એસે યે જો હુલ્લક-મિહનિક્કીટિત તપ કો આરાધના કરતે યે । ઇમ તપ કે
 સાથ "હુલ્લક" પદ્મ કા પ્રયોગ હુઆ હૈ મો મહામિહનિક્કીટિત તપકો અપેક્ષા
 સમક્ષના ચાહિયે । જિસ પ્રકાર સિંહ અપને દ્વારા અતિક્રાન્ત દેશ કો અવલોકન
 કરતે હુએ આગે ૨ ગમન કરતા હૈ । ડમી પ્રકાર ઇમ તપ મ મી અતિક્રાન્ત તપ
 કે સેયન કો અપેક્ષા રાખને હુએ અપૂર્વ ૨ તપો કા અનુષ્ઠાન ક્રિયા જાતા હૈ ।

એવા હતાકે જે આકાશગામી હતા તેમની પાસે આકાશગામિની
 વિદ્યા હતી તેનાજ પ્રલાવથી તેઓ આકાશમા ઉડતા હતા (અપ્પેગડયા
 કળગાવલિતવોકમ્મં પડિવળ્ળા, એવં ઇગાવલિં સુહ્લાગસીહનિક્કીલિયં તવોકમ્મં પડિ-
 વળ્ળા) ડેટલાએક એવા મુનિજનો હતા કે જે કનકાવલી તપ તપતા હતા,
 અને ડેટલાક મુનિજન એકાવલી તપ તપતા હતા ડેટલાક એવા હતા
 જે હુલ્લક-મિહનિક્કીટિન તપની આગધના કરતા હતા આ તપની સાથે
 "હુલ્લક" પદનો પ્રયોગ થયો છે, તે મહામિહનિક્કીટિત તપની અપેક્ષાએ
 સમજવો જોઈએ જે પ્રકારે મિહ પોતાથી અતિક્રાન્ત દેશને જોતો થકે
 આગળ આગળ ગમન કરે છે તેજ પ્રકારે આ તપમા પણ અતિક્રાન્ત તપના
 સેવનની અપેક્ષા રાખતા અપૂર્વ અપૂર્વ તપોનુ અનુષ્ઠાન કરવામા આવે છે

महालयं सीहनीक्रीलियं तवोकम्मं पडिवण्णा, भद्रपडिमं महाभद्रपडिमं सव्वओभद्रपडिमं आयंवल्लवद्धमाणं तवोकम्मं पडिवण्णा, मासियं भिक्खुपडिमं, एवं दोमासियं पडिमं, तिमासियं

डित तप कर्म प्रतिपन्ना, 'अप्पेगइया महालय सीहनीक्रीलिय तवोकम्म पडिवण्णा' अन्येकके महासिंहनिष्कीडित तप कर्म प्रतिपन्ना, 'भद्रपडिम' भद्र प्रतिमा 'महाभद्रपडिम' महाभद्रप्रतिमा, 'सव्वओभद्रपडिम' सर्वतोभद्रप्रतिमा प्रतिपन्ना, 'आयंवल्लवद्धमाण तवोकम्मं पडिवण्णा' आचामास्यवर्द्धमानक तप कर्म प्रतिपन्ना । 'मासिय भिक्खुपडिम' मासिकीं भिक्षुप्रतिमा—मासपरिमाणं मासिकी ता भिक्षुप्रतिमाम्—अभिग्रहरूपाम्, तत्र हि मास यावदेका दत्ति—अविच्छिन्नदानम्, अर्थात्—अविच्छिन्नधारया करस्थान्यादिभ्य यद् भक्त पान च पतति सा

(अप्पेगइया महालय सीहनीक्रीलिय तवोकम्म पडिवण्णा) कितनेक मुनिजन महासिंहनिष्कीडित तप करते थे । (भद्रपडिम महाभद्रपडिम सव्वओभद्रपडिम आयंवल्लवद्धमाण तवोकम्म पडिवण्णा) कितनेक मुनि ऐसे थे जो भद्रप्रतिमा, महाभद्रप्रतिमा एव सर्वतोभद्रप्रतिमा—रूप तप का आराधन करते थे । कितनेक ऐसे भी थे जो आयंवल्लवद्धमान तप को करते थे । इनका विस्तृत वर्णन अन्य शास्त्रों में है । (मासिय भिक्खुपडिम, एव दोमासिय पडिम तिमासिय पडिम जाव सत्तमासिय भिक्खुपडिम पडिवण्णा) कितनेक मुनिराज ऐसे थे जो एकमासिक भिक्षुप्रतिमा के धारी थे । इस प्रतिमा में एक महिने तक एक दत्ति होती है । भिक्षुपात्र में अविच्छिन्नधारापूर्वक जो भिक्षा दाता के हाथ अथवा वाली आदिसे गिरती

(अप्पेगइया महालय सीहनीक्रीलिय तवोकम्म पडिवण्णा) डेटलाक मुनिजन महासिंहनिष्कीडित तप करता हुता (भद्रपडिम महाभद्रपडिम सव्वओभद्रपडिम आयंवल्लवद्धमाण तवोकम्म पडिवण्णा) डेटलाकेक मुनियो एवा हुता के नेओ भद्रप्रतिमा महाभद्रप्रतिमा तेभज सर्वतोभद्रप्रतिमा इय तपणु आराधन करता हुता डेटलाक एवा पणु हुता ने आयंवल्लवद्धमान तप करता हुता आनु विस्तारपूर्वक वणुन अन्य शास्त्रोभा छे (मासिय भिक्खुपडिम, एव दोमासिय पडिम तिमासिय पडिम जाव सत्तमासिय भिक्खुपडिम पडिवण्णा) डेटलाकेक मुनिराज एवा हुता के ने केकमासिक भिक्षुप्रतिमाना धारक हुता आ प्रतिमाभा केक भडीना सुधी केक दत्ति थाय छे भिक्षु

પડિમં જાવ સત્તમાસિયં મિત્તુપડિમં પડિવળ્ણા, પઢમં સત્તરાઈં-
દિયં મિત્તુપડિમં પડિવળ્ણા જાવ તચ્ચં સત્તરાઈંદિયં મિત્તુ-

દત્તિ, ણવ દ્વિતીયાવા સમ્યન્તા ઇન્દ્રદત્તિવૃદ્ધિયુક્તા । ણવ 'દોમાસિય' ^૩
પડિમ' દ્વેમાસિકીં પ્રતિમામ્ પ્રતિપન્ના । 'તિમાસિય પડિમ' ત્રેમાસિકીં
પ્રતિમા પ્રતિપન્ના । 'જાવ સત્તમાસિય મિત્તુપડિમ પડિવળ્ણા' યાવત્
સપ્તમાસિકીં મિત્તુપ્રતિમા પ્રતિપન્ના । 'પઢમ સત્તરાઈંદિયં મિત્તુપડિમ પડિવળ્ણા
જાવ તચ્ચ સત્તરાઈંદિય મિત્તુપડિમ પડિવળ્ણા' પ્રથમા સપ્તરાત્રિન્દિવા મિત્તુ-
પ્રતિમા પ્રતિપન્ના—યાવત્તૃતીયા સત્તરાત્રિન્દિવા મિત્તુપ્રતિમા પ્રતિપન્ના । તન્ સપ્તરાત્રિન્દિવા-

હૈ ઉસકા નામ દત્તિ હૈ । ઇસ પ્રકાર ૧ મહાને તક્ર આહાર કી ઇક્ર દત્તિ ઔર
પાની કી ઇક્ર દત્તિ ગ્રહ્ણ કી જાતી હૈ । ઇસી પ્રકાર દોમાસ પ્રમાણવાલી-મિત્તુપ્રતિમા
કો, તૌન માસ કી પ્રમાણવાલી મિત્તુપ્રતિમા કો યાવત માતમામ પ્રમાણવાલી મિત્તુપ્રતિમા
કો પાલન કરનેવાલે મુનિજન થે । દિમાસિક મિત્તુપ્રતિમામ ૨ દત્તિયાં આહાર કા ૨
દત્તિયાં પાની કી લી જાતી હૈ । ઇમ ક્રમિક વૃદ્ધિ સે સાતમાસ-પ્રમાણવાલી સપ્ત-
મિત્તુપ્રતિમા મે ૭ દત્તિયાં આહાર કી ઔર સાત દત્તિયાં પાની કી લી જાતી હૈ ।
(પઢમ સત્તરાઈંદિય મિત્તુપડિમ પડિવળ્ણા જાવ તચ્ચ સત્તરાઈંદિય મિત્તુપડિમ
પડિવળ્ણા) ઔર પહલો માત ત્વિનરાત કી મિત્તુપ્રતિમા કે, દૂસરી સાત દિનરાત કી
મિત્તુપ્રતિમા કે, તથા તૌમરી સાત દિનરાત કી મિત્તુપ્રતિમા કે ધારી યે । ઇન તૌનો-

પાત્રમા અવિચ્છિન્ન-ધારાપૂર્વક એ ભિક્ષા દાતાના હોયે અથવા થાળીથી પકે
છે તેનુ નામ દત્તિ છે આ પ્રકારે એક મહિના સુપ્રી આહારની એક દત્તિ
અને પાણીની એક દત્તિ શ્રદ્ધુ કરાય છે એ પ્રકારે બે માસના પ્રમાણ
વાળી ભિક્ષુ-પ્રતિમાનુ, ત્રણ માસ પ્રમાણવાળી ભિક્ષુપ્રતિમાનુ, યાવત્ સાત
માસ પ્રમાણ વાળી ભિક્ષુપ્રતિમાનુ પાલન કરવાવાળા મુનિજન હતા
દિમાસિકભિક્ષુપ્રતિમામા ૨ દત્તિ આહારની, ૨ દત્તિ પાણીની લેવાના આવે
છે આ પ્રકારે ડમિક વૃદ્ધિથી માત માસના પ્રમાણવાળી નક્ષમ ભિક્ષુપ્રતિ-
મામા ૭ દત્તિ આહારની અને ૭ દત્તિ પાણીની લેવામા આવે છે (પઢમ
સત્તરાઈંદિય મિત્તુપડિમ પડિવળ્ણા જાવ તચ્ચ સત્તરાઈંદિય મિત્તુપડિમ પડિવળ્ણા)
અને પહેલી માત દિવસ રાતની ભિક્ષુપ્રતિમાના, બીજી માત દિવસ-રાતની
ભિક્ષુપ્રતિમાના તથા ત્રીજી માત દિવસરાતની ભિક્ષુપ્રતિમાનાં ધારદો હતા
આ ત્રણેય સાત દિવસ-રાતની ભિક્ષુપ્રતિમાઓની વિવિ આ પ્રકારે છે.—

पडिमं पडिवण्णा, अहोराइंदियं भिम्बुपडिमं पडिवण्णा, एक्कि-

सप्त रात्रिन्दिवानि=अहोरात्र यस्या सा सप्तरात्रिन्दवा-सप्ताऽहोरात्रप्रमाणा । प्रथमाया च चतुर्थचतुर्थेन पानकाऽऽहारभिरहित उत्तानको वा पार्श्वगायी वा निपद्योपगतो वा ग्रामादिभ्यो घर्हिर्विहरति । द्वितीया मप्तरात्रिन्त्रिंशद्व्येवत्रिभेन, नवरम्-दण्डाऽऽयतो वा लगण्डशायी वा उत्कुट्टको वा विहरति । ष्व तृतीया सप्तरात्रिन्दवाऽपि, नवर वीराऽऽसनिको वा गोदोहिकास्थितो वा आम्रकुञ्जको वाऽऽस्ते । ' अहोराइंदिय भिम्बुपडिम

सात दिनरात की भिक्षुप्रतिमाओं की विधि इस प्रकार है—प्रथम सप्तरात्रिन्दिव भिक्षुप्रतिमा में—अष्टमी भिक्षुप्रतिमा में—एकान्तर चउविहार उपवास करते हुए ग्राम से बाहर कायोत्सर्ग करे, और तीन आसन करे । उनके नाम (१) उत्तानासन=चित्त होकर सोना (२) एकरुपासनासन=एक करवट से सोना, और (३) निपद्यासन-पर्यङ्कासन से रहना । दूसरी और तासरी सात दिनरात की भिक्षुप्रतिमाये—नवमी तथा दसमी भिक्षुप्रतिमायें भी इसी प्रकार की है । केवल आसन के भेद है । नौमी के तीन आसन—दण्डासन, लगण्डासन, उत्कुट्टकासन । (१) दण्डासन=दण्ड के समान सीधे गयन करना । (२) लगण्डासन=ठेठे काठ के जैसे शयन करना अर्थात् मस्तक और पैँडी को पृथ्वी पर सटा कर पीठ को अधर रख कर सोना, (३) उत्कुट्टकासन=पैरों के बल बैठना । दसमी के तीन आसन—वीरासन, गोदोहिकासन, आम्रकुञ्जकासन । (१) वीरासन=पृथ्वी पर पैर रख कर सिंहा-

प्रथम सप्तरात्रिन्दिव भिक्षुप्रतिमाया—अष्टमी भिक्षुप्रतिमाया—एकान्तर चउविहार उपवास करता गाभथी अहार ऋध कायोत्सर्ग करवे। अने त्रयु आसन करवा तेमना नाम—(१) उत्तानासन—चित्ता यर्धने सुबु (२) ऐकपाश्वीसन—ऐक पउणे रडी सुबु, अने (३) निपद्यासन—पर्यङ्कासनथी रडेवु भील अने त्रील सात दिवस—रातनी भिक्षुप्रतिमाओ—नौमी अने दशमी भिक्षुप्रतिमाओ—पणु आ प्रकारनी छे देवल आसनमा शेर छे नवमी प्रतिमाना त्रयु आसन—दंडासन, लगडासन, उत्कुट्टकासन (१) दंडासन—दंडनी पेटे सीधा सुध ऋषु, (२) लगडासन—वाडा लाडडानी पेटे शयन करवु अर्थात् माथु अने ओडी (पानी) ने पृथ्वीपर लगाडी पीठने अधर राणी सुबु, (३) उत्कुट्टकासन—पगना अलथी (उलडक पगे) जेसवु ।

दशमी प्रतिमाना त्रयु आसन—वीरासन, गोदोहिकासन, आम्रकुञ्जकासन (१) वीरासन—पृथ्वीपर पग राणीने सिद्धासन पर जेठेदानी पेटे

राइंदियं भिक्खुपडिमं पडिवण्णा, सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं,

पडिवण्णा ' अहोरात्रिन्दवा भिक्षुप्रतिमा प्रतिपन्ना—आहोरात्रिकीमित्यर्थ । अत्र—रात्रि-
न्दिवगन्दो रात्रिपरो बोध्य । अस्याञ्च पष्ठोपवासिको ग्रामादिभ्यो वहि प्रलम्बमुज-
स्तिष्ठति । ' एकराइदिय भिक्खुपडिम पडिवण्णा ' एकरात्रिन्दिवाम्=एकरात्रप्रमाणा
भिक्षुप्रतिमा प्रतिपन्ना, अत्रापि ' रात्रिन्दिव ' जन्तो रात्रिपरो बोध्य । अस्या चाऽष्टम-
भक्तिको ग्रामाद् नहिरीपदननगात्रोऽनिमिपनयन शुष्कपुद्गलनिपददृष्टिर्जिनमुद्रास्थापि-

सन पर बैठे हुए के समान घुटने अलग २ ग्यसकृ विना सहारे स्थिर रहना, (२)
गोदोहिकासन—गोदोहिक के समान बैठना अर्थात् जैसे गाय दूहने वाला जब दूध दूहता
है तब वह अपने दोनों पैरों के अग्रभाग के सहारे बैठता है, उसी प्रकार बैठना ।

(३) आम्रकुञ्जकासन=आम्रफल के समान कुण्डे होकर स्थिर रहना । आठवां नौमी
दगमी प्रतिमा में तीन २ आसन बताये हैं, उन तीन तीन में से किसी एक आसन से
रहे । तथा (अहोराइदिय भिक्खुपडिम पडिवण्णा) ग्यारहवां अहोरात्रिक भिक्षुप्रतिमा
के धारक ये । इसमें चउनिहार बेल किया जाता है, और गाम के बाहर आठ प्रहरों
तक काउसग किया जाता है । (एकराइदिय भिक्खुपडिम पडिवण्णा) बाह्मर्ण
एकरात्रिक भिक्षुप्रतिमा के धारक ये । इसमें चउनिहार तेल के दिन गाम से बाहर
श्मशान भूमि में जाकर किसी एक पुद्गल पर दृष्टि स्थिर करके चार प्रहरों तक
कायोसर्ग किया जाता है । इन सभी प्रतिमाओं—अभिप्रहविशेषों में सभी का

गोहोला लुहा लुहा राणीने टेडे लीधा विना स्थिर रहेवु, (२) गोहोडिजामन-
गोहोडिजानी पेटे जेसवु अर्थात् जेभ गाय होडवावाणे न्यारे दूध दोडे छे
त्यारे ते पोताना अन्ने पगना अग्रभागने टेडे जेने छे, तेवी ज गीते जेअवु (३)
आअकुञ्जकामन—आअकुञ्जनी पेटे २ जडा थधने स्थिर रहेवु आठमी नोमी
अने इशमी प्रतिमाभा त्रणु त्रणु आसन जताव्या छे ते त्रणु त्रणुमाथी डोड
पणु जेअ आमनथी रहेवु तथा (अहोराइदिय भिक्खुपडिम पडिवण्णा) अहोरात्र-
दिवसरातनी अज्जारमी लिक्षुप्रतिमाना धारके हुता आभा यौविहार
छं जगय छे, अने गामनी जहार आठ पडोरने जठमग जराय छे (एकराइदिय
भिक्खुपडिम पडिवण्णा) आठमी जेजरात्रिद लिक्षु प्रतिमाना धारके हुता
आभा यौविहार तथा अहुंभने दिवमे गामथी जहार श्मशान भूमिमा जधने
जेअ पुद्गलपर दृष्टि स्थिर जनीने जायेत्सर्ग जराय छे आ जधी प्रतिमाजोभा

તપાદ્ પ્રલમ્બિતમુજ્જિત્' ઇતિ । પ્તામુ પ્રતિમામુ ન સર્વપામધિકાર , કિન્તુ ત્રિગિષ્ટમહનનવતામેવ । આહ ચ, 'પઢિવજ્જઇ ઇયાઓ, સવયગધિઙ્જુઓ મહાસત્તો । પઢિમાઝ ભાવિયપ્પા સમ્મ ગુરુણા અણુન્નાઓ ॥ ૧ ॥ ઇતિ, 'સત્તસત્તમિય મિમ્મુપઢિમ' સત્તમમમિકાં મિમ્મુ-પ્રતિમા—સપ સન્તમાનિ ઢિનાનિ યસ્યા સા સપસપમિકા, ઇય ચ સપમિઢિનાના સપકર્મવતિ અર્થાત્—સપ્તમિ સત્તાઠ્ઠૈરિતિ । તત્ત્ર ચ પ્રથમઢિને ઇકા દત્તિર્મત્કસ્ય, ઠ્ઠૈવ દત્તિ પાનકસ્ય, ઇવ ઢિતીયાઢિપુ ણિનેપુ ઠ્ઠમેગૈઠ્ઠૈઠ્ઠત્તિઠ્ઠદ્રચા સપમઢિને સપ દત્તય । ઇવમ્

અધિકાર નહા દૈ, કિન્તુ ત્રિગિષ્ટ મહનનગાલે દા ઇન પ્રતિમાઆ કા આરાધન કર સકતે હૈ । કહા મા હૈ—'પઢિવજ્જઇ ઇયાઓ, સવયગ—ધિઙ્—જુઓ મહાસત્તો । પઢિમાઝ ભાવિયપ્પા, સમ્મ ગુરુણા અણુન્નાઓ ॥' ઝયા—પ્રતિપદતે ઇતા મહનન-ધૃતિ-યુતો મહાસત્ત્વ । પ્રતિમા ભાવિતાત્મા, સમ્યગ્ગુરુણા અનુજાત ॥ અર્થાત્—મહાસત્ત્વગાલી, સહનન ઓર ધૈર્ય સે યુક્ત ભાવિતાત્મા મુનિજન હી ગુરુ સે સમ્યક્ અનુજાત હોકર ઇન પ્રતિમાઓ કો સ્વીકાર કરતે હૈ । તથા (સત્તસત્તમિય મિમ્મુપઢિમ) સાત, હૈ સાતવેં ઢિન જિસમે ઇસી મિમ્મુપ્રતિમા કે અર્થાત્ ડનપચાસ ઢિન કો મિમ્મુપ્રતિમા કે ધારક થે । યહ પ્રતિમા સાતસપ્તાહોં મે કી જાતી હૈ । ઇસમે પ્રથમ સપ્તાહ કે પ્રથમઢિન મે ઇક દત્તિ આહાર કી ઓર ઇક દત્તિ પાની કી લી જાતી હૈ, ઢિતીય-ઢિન મે ઢો દત્તિયોં આહાર કા ઓર ઢો દત્તિયોં પાની કી લી જાતી હૈ । ઇસી તરહ-પ્રતિઢિન ઇક ઇક દત્તિ કો વૃઢિ સે સાતવે ઢિન સાત દત્તિયોં આહાર કી ઓર

અભિગ્રહ વિશેષોમા બધાને અધિકાર નથી, પરતુ વિશિષ્ટસહનનવાલા જ આ બંધી પ્રતિમાઓનુ આરાધન ઠરી શકે છે કહ્યુ પણ છે—

“ પઢિવજ્જઇ ઇયાઓ, સવયગ—ધિઙ્—જુઓ મહાસત્તો ।

પઢિમાઝ ભાવિયપ્પા, સમ્મ ગુરુણા અણુન્નાઓ ” ॥

ઝયા—પ્રતિપદતે ઇતા સહનન-ધૃતિયુતો મહાસત્ત્વ ।

પ્રતિમા ભાવિતાત્મા, સમ્યગ્ગુરુણા અનુજાત ॥

અર્થાત્ મહાસત્ત્વશાલી સહનન અને ધૈર્યથી યુક્ત ભાવિતાત્મા મુનિજન સમ્યક્ અનુજાત થઈને અર્થાત્ ગુરુની આજા લઈને, પ્રતિમાઓને સ્વીકાર કરે છે તથા (સત્તસત્તમિય મિમ્મુપઢિમ) સાતઠે સાતમે ઢિવસ લેમા ઓવી ભિક્ષુપ્રતિમાના અર્થાત્ ઓગણપચાસ ઢિવસની ભિક્ષુપ્રતિમાના ધારક હતા, આ પ્રતિમા સાત સપ્તાહોમા કરાય છે તેમા પ્રથમ સપ્તાહના પ્રથમ ઢિવસે ઓઠ દત્તિ આહારની અને ઓક દત્તિ પાણીની લેવાય છે બીજે

अष्टमियं भिक्षुपडिमं, णवणवमियं भिक्षुपडिमं, दसदस-

अष्टमियं 'भिक्षुपडिम' अष्टमिका भिक्षुप्रतिमाम्, 'णवणवमिय' नवनमिका भिक्षुप्रतिमाम्, 'दसदसमिय' दशदशमिका भिक्षुप्रतिमाम्, नवरम्-दत्तिवृद्धि

त दत्तियाँ पानी की ली जाती है। इसी प्रकार दूसरे सप्ताह से लेकर सातवे सप्ताह तक की दत्तियों के नियम में भी समझना चाहिये। इस प्रकार आहार और पानी की सब दत्तियाँ ३९२ होती हैं। तथा (अष्टमिय भिक्षुपडिम) अष्टमिका भिक्षुप्रतिमा के धारक थे। यह भिक्षुप्रतिमा आठ अष्टाहों में अर्थात् चौसठ दिनों में ली जाती है। इसमें प्रथम अष्टाह के प्रथम दिन में एकदत्ति आहार की और एक दत्ति पानी की ली जाती है। प्रत्येक दिन में एक एक दत्ति की वृद्धि होने के कारण आठवें दिन में आठ दत्तियाँ आहार की और आठ दत्तियाँ पानी की ली जाती हैं। इसी प्रकार अत्रिंशत् सातों अष्टाहों के बारे में भी समझना चाहिये। इस प्रकार आहार और पानी की कुल दत्तियाँ ५७६ होती हैं। तथा (नवनवमिय भिक्षुपडिम) नवनवमिका भिक्षुप्रतिमा के धारक थे। यह भिक्षुप्रतिमा नौ नवाहों में अर्थात् ८१ दिनों में पूरी होती है। प्रत्येक नौ दिनों के अन्तिम दिन में एक एक दत्ति की वृद्धि होने से नौ दत्तियाँ आहार की और नौ दत्तियाँ पानी की होती हैं।

द्विसे जे दत्ति आहारनी अने जे दत्ति पाणीनी देवाय छे जेवी रीते प्रतिदिन जेक जेक दत्तिना वधाराथी सातमे द्विसे ७ दत्ति आहारनी अने ७ दत्ति पाणीनी देवाय छे आ प्रकारे जीण सप्ताहथी लधने ७ भा सप्ताह सुधीनी दत्तिजोना विषयभा पणु समणु देवु नेठजे आ प्रकारे आहार अने पाणीनी अधी दत्तिजो उलर थाय छे तथा (अष्टमिय भिक्षुपडिम) अष्टमिक भिक्षुप्रतिमाना धारके हुता आ भिक्षुप्रतिमा आठ अष्टाहोभा अथात् चौसठ द्विसेभा उराय छे तेभा प्रथम अष्टाहना (अठ्वाडियाना) प्रथम द्विसे जेक दत्ति आहारनी अने जेक दत्ति पाणीनी देवाय छे प्रत्येक द्विसे जेक जेक दत्तिना वधारे थवाना कारणे आठमे द्विसे आठ दत्तिजो आहारनी अने आठ दत्तिजो पाणीनी देवाय छे जेज प्रकारे आठना ७ अष्टाहो (अठ्वाडिया) ना पाराभा पणु समणु नेधजे जेवी रीते आहार अने पाणीनी कुल दत्तिजो ५७६ थाय छे तथा (नवनवमिय भिक्षुपडिम) नवनवमिका भिक्षुप्रतिमाना धारके हुता आ भिक्षुप्रतिमा नवनवाहोभा अर्थात् ८१ द्विसेभा पूरी थाय छे प्रत्येक नव

મિયં મિશ્નુપડિમં, સુહ્રિયં મોયપડિમં પડિવળ્ણા, મહદ્દિયં મોય-
પડિમં પડિવળ્ણા, જવમજ્ઞં ચંદપડિમં પડિવળ્ણા, વહર-

સહ્યાક્રમેણ કાર્યા । કેચિન્ 'સુહ્રિયં મોયપડિમ પડિવળ્ણા' ક્ષુહ્રિકા મોક-
પ્રતિમા પ્રતિપન્ના, અસ્યા ક્ષુહ્રકૃચ મહત્વપેક્ષયા ચો-યન્ । તયા 'મહલ્લિય મોય-
પડિમ પડિવળ્ણા' મદર્તા મોકપ્રતિમા પ્રતિપન્ના । અનયો પ્રતિમયોઝ્યાંરયા પ્રથા-
ન્તેરે વિલોકનીયા । 'જવમજ્ઞં ચંદપડિમ પડિવળ્ણા' યવમન્યા ચંદ્રપ્રતિમા પ્રતિ-
પન્ના—યવસ્યેવ મન્ય યમ્યા સા યવમધ્યા, ચંદ્ર ઇવ કચ્ચવૃદ્ધિહાનિમ્યા યા પ્રતિમા
સા ચંદ્રપ્રતિમા, તયા હિ શુક્લપ્રતિપદિ—એક કવલમ્ અમ્યવદ્વય પ્રતિન્નિમેકૈક-

इस प्रकार आहार और पानी की सब दत्तियाँ ८१० होती हैं । तथा (दसदसमिय
भिस्नुपडिम) दशदशमिका भिस्नुप्रतिमा के धारक थे । यह भिस्नुप्रतिमा दश दगाह
में, अर्थात् सौ दिनों में पूरी होती है । इसमें प्रत्येक दशमें दिनोंमें दस दत्तियाँ आहार
की और दस दत्तियाँ पानी की होती हैं । इस प्रकार आहार और पानी की कुल
दत्तियाँ ११०० होती हैं । कितनेक मुनिजन (सुह्रिय मोगपडिम पडिवण्णा) क्षुह्रक
मोकप्रतिमा के धारक थे । तथा—(महल्लिय मोगपडिम पडिवण्णा) महामोकप्रतिमा के
धारक थे । तथा कितनेक मुनिजन (जवमज्ज्ञ चदपडिम पडिवण्णा) यवमध्य चन्द्र-
प्रतिमा के धारक थे । इस प्रतिमा में शुक्ल पक्ष की एकम तिथि में एक कवल आहार
क्रिया जाता है । प्रतिदिन एक एक कवल की वृद्धि से पूर्णिमा में १५ कवल आहार

દિવસોના અતના દિવસે એક એક દત્તિની વૃદ્ધિ થવાથી નવ દત્તિઓ આહાર
રની અને નવ દત્તિઓ પાણીની થાય છે આ પ્રકારે આહાર અને પાણીની
બધી દત્તિઓ ૮૧૦ થાય છે તથા (દસદસમિય ભિસ્નુપડિમ) દશદશમિકા ભિક્ષુ
પ્રતિમાના ધારકો હતા આ ભિક્ષુપ્રતિમા દશ દશાહોમા અર્થાત સો દિવસોમા
પૂરી થાય છે એમા પ્રત્યેક દશમા દિવસે દશ દત્તિઓ આહારની અને દશ
દત્તિઓ પાણીની હોય છે આ પ્રકારે આહાર અને પાણીની કુલ દત્તિઓ ૧૧૦૦
થાય છે કેટલાક મુનિજન (સુહ્રિય મોયપડિમ પડિવળ્ણા) ક્ષુહ્રકમોકપ્રતિમાના
ધારક હતા તથા (મહલ્લિય મોયપડિમ પડિવળ્ણા) મહામોક પ્રતિમાના
ધારક હતા તથા કેટલાક મુનિજન (જવમજ્ઞ ચંદપડિમ પડિવળ્ણા)
યવમધ્ય ચંદ્રપ્રતિમાના ધારક હતા આ પ્રતિમામા શુક્લપક્ષની એકમ તિથિમા
એક કોળિઆનો આહાર કરાય છે પ્રતિદિન એક એક કોળિઆનો વધારો

मज्झं चंद्रपडिमं पडिवण्णा, विवेगपडिमं विओसग्गपडिमं उव-

कवलवृद्ध्या पञ्चदश पौर्णमास्या, कृष्णप्रतिपदि च पञ्चदशैव भुक्त्वा द्वितीयादौ प्रति-
दिनम् एकैककलहान्या अमावास्यायामेकमेव यस्या भुङ्क्ते सा स्थूलमध्यत्वाद् यव-
मध्येति ता प्रतिपन्ना । 'वइर-(रज्ज)मज्झं चंद्रपडिमं पडिवण्णा' वज्रमध्या चन्द्र-
प्रतिमा प्रतिपन्ना—वज्रस्येव मध्य यस्या सा तथा, यस्या हि कृष्णप्रतिपदि पञ्चदश कलान्
भुक्त्वा तत प्रतिदिनमेकैकहान्या अमावास्यायामेक, शुक्लप्रतिपद्यपि एकमेव, ततो द्विती-
यादौ पुनरेकैकवृद्ध्या पौर्णमास्या पञ्चदश भुङ्क्ते सा तु मध्यत्वाद् वज्रमध्या इति ता प्रति-

क्रिया जाता है । तथा कृष्णपक्ष की एरुम तिथि मे १५ कवल आहार क्रिया जाता
है, और द्वितीया से एक एक कल घटाने से अमावास्या तिथि में मात्र एक कवल
आहार क्रिया जाता है । जैसे—यव का मध्यभाग स्थूल होता है, उसी प्रकार इस
प्रतिमा का भी मध्यभाग पूर्णिमा और कृष्ण पक्षकी एकम, पन्द्रह पन्द्रह कवल आहार-
लेने के कारण स्थूल है । इसलिये इस प्रतिमा को 'यममध्यचन्द्रप्रतिमा' कहते हैं ।

तथा—हितनेरु मुनिजन (वइरमज्झं चंद्रपडिमं पडिवण्णा) वज्रमध्य चन्द्रप्रतिमा को
धारण क्रिये हुए थे । यह प्रतिमा कृष्णपक्ष की एरुम के दिन पन्द्रह कल आहार
कर के प्रारम्भ की जाती है । प्रतिदिन एक एक कवल घटाने से अमावास्या मे एक
कल तथा—शुक्लपक्ष की एरुमतिथि मे एक कल आहार क्रिया जाता है । फिर
प्रतिदिन एक एक कलकी वृद्धि से पूर्णिमा के दिन पन्द्रह कल आहार लिया जाता

करवानो ङोवाथी पूनभना हिवसे १५ डोणिआनो आहार कराय छे, तथा कृष्णपक्षनी
ओकम तिथिओ १५ डोणिआनो आहार कराय छे, अने भीरुथी ओक ओक
डोणिआनो आहार घटाउता अमावास्या तिथिमा मात्र ओक डोणि-
आनो आहार कराय छे नेम यवनो मध्यभाग स्थूल होय छे तेवी न रीते
आ प्रतिमाभा पणु मध्यभाग पूनभ अने कृष्णपक्षनी ओकम, पहर पहर
डोणिआ आहार लेवाने ठारखे, स्थूल छे, तेथी आ प्रतिमाने 'यवमध्य
चंद्रप्रतिमा' कडे छे तथा डेटलाक मुनिजन (वइरमज्झं चंद्रपडिमं पडिवण्णा)
पञ्चमध्यचंद्रप्रतिमाने धारणु करवावाणा हुता आ प्रतिमा कृष्णपक्षनी
ओकमने हिवसे पहर डोणिआ आहार लधने शङ् कराय छे प्रतिदिन ओक
ओक डोणिओ आहार घटाउता अमावास्थाने हिवसे ओक डोणिओ तथा
शुक्ल पक्षनी ओकम तिथिओ ओक डोणिओ आहार कराय छे पछी प्रतिदिन

हाणपडिमं पडिसंलीणपडिमं पडिवण्णा संजमेणं तवसा अप्पाणं
भावेमाणा विहरन्ति ॥ सू. २४ ॥

पत्ता । तथा—केचित 'विवेगपडिम' विवेकप्रतिमा—विवेचन विवेक = त्याग, म च
आन्तरागा कपायान्तेना ज्ञानाणा च गगशरीगनुचिनभक्तपानादीनाम्, तस्य प्रतिमा=प्रति
पत्तिर्विवेकप्रतिमा ता, 'विओसग्गपडिम' व्युत्सर्गप्रतिमा=कायोत्सर्गप्रतिमाम्,
'उवहाणपडिम' उपधानप्रतिमाम्—मोक्ष प्रति उप=सामीप्येन दधाति=नयतीत्युप-
धानम्—अनशनादिक तपस्तद्विषया प्रतिमा=अभिप्रस्तां, तथा 'पडिसंलीणपडिम'
प्रतिसंलीनप्रतिमा=क्रोधादिनिरोधाऽभिप्रह 'पडिवण्णा' प्रतिपत्ता मयमेन तपसा
आत्मानम् भावयन्त विहरन्ति ॥ सू० २४ ॥

है । जैसे वज्रका मध्यभाग पतला होता है उसी प्रकार इस प्रतिमा का भी मध्यभाग
अमावास्या और शुक्लपक्ष की एक-एक कवल आहार लेने के कारण पतला
है, इसीलिये इस प्रतिमा को 'वज्रमध्यचन्द्रप्रतिमा' कहते हैं । तथा कितनेक मुनिजन
'विवेगपडिम' विवेकप्रतिमाके अर्थात् आभ्य-तरिक कपायादिकों के, तथा—गण,
स्वशरीर और अकल्पनीय भक्तपानादिकों के त्याग की प्रतिमा के, 'विओसग्गपडिम'
व्युत्सर्गप्रतिमा के, अर्थात् कायोत्सर्गप्रतिमा के, 'उवहाणपडिम' उपधान प्रतिमा के
अर्थात् अनशनादिरूप उग्र तपस्या की प्रतिमा के, तथा—(पडिसंलीणपडिम)
प्रतिसंलीन प्रतिमा के अर्थात् क्रोध आदि कपायों के निरोध करने के अभिप्रह के
(पडिवण्णा) धारक थे । पूर्वोक्त सभी प्रकार के मुनिराज सत्रह प्रकार के समय से

એક એક કોળિએ વધારતા જઈ પૂનમને દિવસ પદર કોળિઆ આહાર લેવાય
છે જેમ વજ્રનો મધ્યભાગ પાતળો હોય છે તેવી જ રીતે આ પ્રતિમામા
પણ મધ્યભાગ—અમાવાસ્યા અને શુક્લ પક્ષની એકમ, એક એક કોળિએ
આહાર લેવાના કારણે પાતળો છે, એ માટે જ આ પ્રતિમાને “વજ્રમધ્ય-
ચંદ્રપ્રતિમા” કહેવાય છે તથા કેટલાએક મુનિજન (વિવેગપડિમ) વિવેક-
પ્રતિમાના અર્થાત આભ્ય-તરિક કપાય આદિના, તથા—ગણના, પોતાના-
શરીરના અને અકલ્પનીય લોજન પાન આદિના ત્યાગની પ્રતિમાના(વિઓસગ્ગપડિમ)
વ્યુત્સર્ગપ્રતિમા એટલે કાયોત્સર્ગપ્રતિમાના, (ઉવહાણપડિમ) ઉપધાનપ્રતિમાના
અર્થાત્ અનશન આદિરૂપ ઉગ્ર તપસ્યાની પ્રતિમાના, તથા (પડિસંલીણપડિમ)
પ્રતિસંલીનપ્રતિમાના અર્થાત્ ક્રોધ આદિ કપાયોના નિરોધ કરવાના અભિપ્રહના
(પડિવણ્ણા) ધારક હતા પૂર્વોક્ત સર્વ પ્રકારના મુનિરાજ સત્તર પ્રકારના સમ-

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीर-
स्स अंतेवासी वहवे थेरा भगवंतो जाइसंपण्णा कुलसंपण्णा
वलसंपण्णा रूवसंपण्णा विणयसंपण्णा णाणसंपण्णा दंसणसंपण्णा

टीका—‘तेण कालेण’ इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भग-
वतो महावीरस्य ‘अंतेवासी’ अन्तेवासिन-शिष्या वहव स्थविरा = चिरतरकाल-
पालितश्रामण्यपर्याया, भगवन्त = सयमगोभाशान्ति, एषा विशेषगान्याह—‘जाइ-
संपण्णा’ जातिसम्पन्ना-उत्तममातृवशयुक्ता, एवम् ‘कुलसंपण्णा’ कुलसम्पन्ना-श्रेष्ठ-
पैतृवशयुक्ता, ‘वलसंपण्णा’ वलसम्पन्ना-उल्ल-सहननसमुत्थित पराक्रम, तेन सम्पन्ना-
युक्ता, ‘रूवसंपण्णा’ रूपसम्पन्ना-रूपम्-आकृति-सुन्दराऽऽकारस्तेन युक्ता । ‘विण-

तथा वारह प्रकार के तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे ॥ सू० २४ ॥

‘तेण कालेण तेण समएण’ इत्यादि.

(तेण कालेण तेणं समएण) उसकाल उस समय में (समणस्स भगवओ महा-
वीरस्स अंतेवासी वहवे थेरा भगवतो) श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी-शिष्य
अनेक स्थविर भगवन्त थे । दीक्षापयाय से युक्त एव धर्म से प्रचलित को पुन धर्म में स्थिर
करनेवाले को स्थविर कहते हैं । सयमगोभासे जो युक्त हों उन्हें ‘भगवन्त’ कहते हैं ।
ये (जाइसंपण्णा) जातिसम्पन्न-उत्तममातृवश के थे, और (कुलसंपण्णा) कुल-
सम्पन्न-उत्तमपितृवश के थे । (वलसंपण्णा) सहनननामकर्मसे प्राप्त बल से विशिष्ट
थे । (रूवसंपण्णा) सुन्दर आकृतिवाले थे । (विणयसंपण्णा) जिससे अष्टविध कर्ममल

भथी तथा धार प्रकटना तपथी आत्माने भावित करता विचरता हुता (सू २४)

‘तेण कालेण तेण समएण’ इत्यादि

(तेण कालेणं तेण समएण) ते काल ते समयमा (समणस्स भगवओ
महावीरस्स अंतेवासी वहवे थेरा भगवतो) श्रमणु भगवान् महावीरना
अंतेवासी-शिष्य अनेक स्थविर भगवतो हुता धर्मथी अलायमान थता
साधुअने करीथी धर्ममा स्थिर करवावाजाने स्थविर कडे छे ने संयम-
शोभावाजा छाय तेभने भगवत कडे छे तेओ (जाइसंपण्णा)
जातिसम्पन्न-उत्तम मातृवशना हुता, अने (कुलसंपण्णा) कुल सम्पन्न-उत्तम
पितृवशना हुता (वलसंपण्णा) सहनननामकर्मथी प्राप्त थथेल अलवडे
विशिष्ट हुता (रूवसंपण्णा) सुन्दर आकृतिवाजा हुता (विणयसंपण्णा) नेनाथी

चरित्तसंपण्णा लज्जासंपण्णा लाघवसंपण्णा ओयंसी तेयंसी

यसपण्णा' विनयसम्पन्ना - विनीयतेऽपनीयते- सस्तेजकारकमष्टत्रिंशत् कर्मयेन स विनय - अभ्युत्थानादि-गुरुसेवालक्षण तेन युक्ता, 'णाणसपण्णा' ज्ञानसपन्ना, ज्ञान=श्रुतचारित्र-लक्षण तेन युक्ता, 'दसणसपण्णा' दर्शनसम्पन्ना - दर्शन-सम्यक्त्व तेन युक्ता 'चरित्त-सपण्णा' चरित्रसम्पन्ना चरित्र-समितिगुण्यात्किं तेन युक्ता, 'लज्जासपण्णा' लज्जा-सम्पन्ना लज्जा-सयमविराधनाया हृदयसंकोचरूपा तथा युक्ता, 'लाघवसपण्णा' लाघवसम्पन्ना लाघवद्रव्यतोऽन्वेषपथिता, भावतो गौरवत्रयत्याग - तेन युक्ता, 'ओयसी' ओजस्विन, ओजो-मानसी शक्तिस्तदन्त, 'तेयसी' तेजस्विन - तेज अन्तर्बहिर्देदीव्यमान तजेजोलेश्यादि वा तदन्त, 'वचसी' वचस्विन, वच - आदेयवचन-सौभाग्याद्युपेतमेवामर्त्ताति ते वचस्विन,

अपनीत-नष्ट होता है वह विनय है, ऐसे विनय से युक्त थे। गुरुओं के आने एवं जाने आदि पर खड़े होना इत्यादिक क्रियाएँ सत्र विनय के ही अन्तर्गत हैं। (णाण-सपण्णा) विशिष्टज्ञान से सपन्न थे। (दसण-सपण्णा) विशिष्टदर्शनसे-सम्यक्त्व से सपन्न थे। (चरित्तसपण्णा) समिति-गुणि-आदिरूप चारित्र से सपन्न थे। (लज्जा-सपन्ना) सयमविराधनामे जो स्वाभाविक हृदयका संकोच उसे लज्जा कहते हैं, उससे वे युक्त थे। (लाघवसपण्णा) अल्प-उपधिरूप द्रव्यलाघव एव तीन गौरवका परि-त्यागरूप भावलाघव से युक्त थे। (ओयसी) ये ओजस्वी थे, अर्थात् तप और सयम के प्रभाव से युक्त थे। (तेयसी) ये तेजस्वी थे, अर्थात् भीतर और बाहर देदीव्यमान थे, अथवा द्रव्यभावरूप तेजोलेश्या आदिसे युक्त थे। (वचसी) ये आदेयवचन से,

अष्टविध कर्मभ्रमल अपनीत-नष्ट थाय छे तेने विनय कडे छे जेवा विनयथी युक्त हुता शुद्धो आवे तेम व जय त्तारे उला थवु विगेरे क्रियाओ अधी विनयनी व अतर्गत छे (णाणसपण्णा) विशिष्टज्ञानवाला हुता (दसणसंपण्णा) विशिष्ट दर्शनथी-सम्यक्त्वथी सपन्न हुता (चरित्तसपण्णा) समितिशुद्धि-आदित्रय चारित्रथी सपन्न हुता (लज्जासपण्णा) सयमविराधनामा जे स्वाभाविक हृदयतेना सकोच थाय तेने लज्जा कडे छे तेनाथी युक्त हुता (लाघवसपण्णा) अल्प-उपधिश्य द्रव्यलाघव तेमव त्रषु गौरवना परित्यागश्य लावलाघवथी युक्त हुता. (ओयसी) तेओ ओजस्थी हुता, अर्थात् तप अने सयमना प्रलाववाला हुता (तेयसी) तेओ तेजस्थी हुता अर्थात् अदर अने गडार देदीव्यमान हुता, अथवा द्रव्यलावश्य तेजोलेश्या आदिवाला हुता (वचसी) तेओ आदेयवचनवाला, अथवा तप सयमना

વચ્ચંસી જિયકોહા જિયમાણા જિયમાયા જિયલોભા જિહંદિયા
જિયણિદ્વા જિયપરીસદ્દા જીવિયાસ-મરણ-ભય-વિપ્પમુક્કા વચ-

અથવા-વર્ચ તેજ પ્રભાવ-તદ્વન્તો વર્ચસ્વિન । ‘જસસી’ યશસ્વિન તપ સયમસમારા-
ધનલ્યાતિપ્રાપ્તા । ‘જિયકોહા’ જિતક્રોધા -જિત ક્રોધો યૈસ્તે જિત ક્રોધા , ક્રોધજય -ઉદયપ્રાપ્ત-
ક્રોધનિફલીકરણતો જાતચ્ય । ‘જિયમાણા’ જિતમાના , તત્ર માન -મન્યતેઽનેનેતિ માન -અભિ-
માન -જ્ઞાનાદિના અહમનુપમોઽસ્મીત્વભિમાનરૂપ -ગર્વ ઇતિ યાવત્ । ‘જિયમાયા’ જિતમાયા -
તત્ર માયા-પરવચ્ચનામિપ્રાયેગ શરીરાકારનપથ્યમનોના ક્ષાયકૌટિચ્યકરણરૂપા, સા જિતા
યૈસ્તે તથા, ઉદયપ્રાપ્તપરવચ્ચનકર્મનિફલીકારકા , ‘જિયલોભા’ જિતલોભા ‘જિહ-
દિયા’ જિતેન્દ્રિયા ‘જિયણિદ્વા’ જિતનિદ્રા ‘જિયપરીસદ્દા’ જિતપરીપદ્દા ‘જીવિ-
યાસ-મરણ-ભય-વિપ્પમુક્કા’ જીવિતાઽઽશા-મરણ-ભય-વિપ્રમુક્તા -જીવિતસ્ય-પ્રાણ-

અથવા તપમયમકે પ્રતાપને યુક્ત થે । (જસસી) થે યશસ્વી થે, અર્થાત્ તપ ઓર
સયમકી આરાધના સે પ્રસિદ્ધિ પાચે હુણ થે । (જિયકોહા) ક્રોધકો જિહોને જીત
લિયા થા । (જિયમાણા) માનકો જિહોને દૂર કર દિયા થા, અર્થાત્ “ મૈ જ્ઞાનાદિક
ગુણોસે અનુપમ હૂં ” ઇસ પ્રકાર અભિમાનરૂપ ગર્વકો જિહોને પરાસ્ત કર દિયા થા ।
(જિયમાયા) દૂસરોકો વચન કરનેકે અભિપ્રાયસે વેપ વનાના, એવ મન-વચન ઓર
કાચકો કુટિલતામે પરિણત કરના ઇસકા નામ માયા હૈ, ઇસ માયાકા મી જિહોને
અપની શુભપરિણતિ દ્વારા નિવારણ કર દિયા થા । (જિયલોભા) ઇસી પ્રકાર લોભકો
મી જિહોને નષ્ટ કર દિયા થા । (જિહંદિયા) ઇન્દ્રિયોકો જિહોને અચ્છી તરહ
અપને વચને કર રચા થા । (જિયણિદ્વા જિયપરીસદ્દા) નિદ્રા ઓર પરીપદ્દો કો
જિહોને જીત લિયા થા । (જિવિયાસ-મરણ-ભય-વિપ્પમુક્કા) જીવેકી આગા એવ મરણકે

પ્રતાપવાળા હતા (જસસી) તેઓ યશસ્વી હતા, અર્થાત્ તપ અને સયમની
આરાધનાથી પ્રસિદ્ધિ પામેલા હતા (જિયકોહા) ક્રોધ જેમણે હત્યો છે
(જિયમાણા) માન જેઓએ દૂર કરેલું છે, અર્થાત્ ‘ હું જ્ઞાનાદિક ગુણોથી
અનુપમ છું ’ એવા અભિમાનરૂપ ગર્વને જેઓએ પરાસ્ત કર્યો છે (જિયમાયા)
ખીબની વચના-છેતરપિ ડી કરવાના હેતુથી વેપ બનાવવા તેમ જ મન વચન-
કાચાથી કુટિલતા કરવી તેનું નામ માયા છે આ માયાનું પણ જેઓએ પોતાની
શુભપરિણતિથી નિવારણ કર્યું છે (જિયલોભા) તેવી જ રીતે લોભને પણ
જેઓએ નાશ કર્યો છે (જિહંદિયા) જેઓએ સારીગીતે ઈન્દ્રિયોને પોતાને વશ
કરી લીધી હતી (જિયણિદ્વા જિયપરીસદ્દા) નિદ્રા અને પરીપદ્દોને જેઓએ હતી

व्यपहाणा गुणव्यपहाणा करणव्यपहाणा चरणव्यपहाणा णिग्गहव्यपहाणा निच्छयव्यपहाणा अज्जवव्यपहाणा मद्दवव्यपहाणा लाघवव्यपहाणा

धारणस्य-आगा जीविताऽऽगा, मरणस्य भय=त्रास, पताभ्या विप्रमुक्ता, 'व्यपहाणा' व्रतप्रधाना -व्रत-सयम प्रधानम्-उत्तम-आग्यानिमिश्रुकाऽपेक्षया निर्प्रथवाद येषा ते व्रतप्रधाना, अथवा व्रतेन-सयमेन प्रधाना श्रेष्ठा -निर्प्रथमप्रमणा इत्यर्थे । ते च न केवल व्यवहारत एव इत्यत आह-'गुणव्यपहाणा' गुणप्रधाना -गुणा कारण्यादय, यथोक्त- 'परोपकारैकरतिर्निरोहता, विनीतता सयमनु यचित्तता । श्रुते विनोदोऽनुदिन न दीनता, गुणा इमे सत्त्वनता स्वभावजा । इति, एतैर्गुणै प्रधाना । 'करणव्यपहाणा' करण-प्रधाना -करण=क्रिया, तच्चेह पिण्डविशुद्ध्यादिरूप, तेन प्रधाना, अथवा करण-पिण्डविशुद्ध्यादिरूप प्रधान येषा ते करणप्रधाना, 'चरणव्यपहाणा' चरणप्रधाना -चरण=महाव्रतादिमूलगुणरूप तप्रधाना, 'णिग्गहव्यपहाणा' निग्रहप्रधाना -इन्द्रियनोऽन्द्रियदमनप्रधाना, 'निच्छयव्यपहाणा' निश्चयप्रधाना -निश्चय-तत्त्वनिर्णय, तत्र प्रधाना, अथवा अवश्यङ्करणीयासु मयमक्रियासु निश्चितचित्ता, 'अज्जवव्यपहाणा' आर्जवप्रधाना -आर्जव-मायाराहित्य तत्प्रधाना, कर्पूरवदन्तर्हिर्निर्मला, 'मद्दवव्यपहाणा' मार्दवप्रधाना -मार्दव-मानो-

भयसे जो सर्वथा विप्रमुक्त थे । (व्यपहाणा) व्रतपालन करनेके कारण प्रधान थे, (गुणव्यपहाणा) क्षान्त्यादि गुणोंसे प्रधान थे, (करणव्यपहाणा) पिण्डविशुद्ध्यादि रूप मुनियोंकी क्रियामे प्रधान थे, (चरणव्यपहाणा) महान्त आदि मूल गुणोंसे प्रधान थे, (णिग्गहव्यपहाणा) इन्द्रिय, नोऽन्द्रिय (मनके) दमन करनेमे प्रधान थे, (निच्छयव्यपहाणा) तत्त्वनिर्णय तथा अवश्य-करणीय मयम क्रियामे प्रधान थे । (अज्जवव्यपहाणा) सरलतामे प्रधान थे, अर्थात् कपूर के तुल्य अन्तर बाहर निर्मल थे । (मद्दवव्यपहाणा) मानके उदयका निरोध करनेवाले

लीला होता, (जीवियास मरण भय-विप्रमुक्ता) एववाणी आशा तेभ्य भरणाना लयथी नेत्रो सर्वथा मुक्त होता (व्यपहाणा) व्रतपालन करवाना कारणे प्रधान होता, (गुणव्यपहाणा) क्षान्ति आदि शुद्धोत्थी प्रधान (सुभ्य) होता, (करणव्यपहाणा) पिण्डविशुद्धि-आदि रूप मुनियोंकी क्रियामे प्रधान होता, (चरणव्यपहाणा) महाव्रत आदि मूलशुद्धोत्थी प्रधान होता, (णिग्गहव्यपहाणा) इन्द्रिय नोऽन्द्रियतु दमन करवाना प्रधान होता, (निच्छयव्यपहाणा) तत्त्व निर्णय तथा अवश्य करवाना मयमक्रियामे प्रधान होता (अज्जवव्यपहाणा) सरलतामे प्रधान होता, अर्थात् कपूरनी पेठे अन्तर छेदारी निर्मल होता, (मद्दवव्यपहाणा) मानना उदयना निरोध करवावाणा अर्थात् नन्त्यादि आठ प्रक

खन्तिप्पहाणा मुक्तिप्पहाणा विज्जापहाणा मन्तप्पहाणा वेयप्पहाणा
वंभप्पहाणा नयप्पहाणा नियमप्पहाणा सच्चप्पहाणा सोयप्पहाणा

दयनिरोध, तत्प्रधाना—जायायद्यन्निधमदवर्जिता, 'लाघवप्पहाणा' लाघवप्रधाना, लाघव-
द्रव्यतोऽन्वोपधिच भावतो गौरवत्रयव्याग, तत्प्रधाना । 'खन्तिप्पहाणा' क्षान्तिप्रधाना -
क्षान्ति-क्रोदोदयनिरोध-तत्प्रधाना । 'मुक्तिप्पहाणा' मुक्तिप्रधाना—मुक्तिर्लोभोदयनिरोध,
तत्प्रधाना, निर्लोभा इत्यर्थः । 'विज्जापहाणा' विद्याप्रधाना—वेदन विद्या—ससाधना
रोहिणीप्रज्ञमिप्रभृतिर्देव्यधिष्ठिता सा प्रधाना येपा ते विद्याप्रधाना । 'मन्तप्पहाणा'
मन्त्रप्रधाना, 'वेयप्पहाणा' वेदप्रधाना—वेद्यते ज्ञायते जीनाजीनादिस्वरूपमेगिरिति वेदा-
आचाराङ्गादय आगमा, तत्प्रधाना, 'वभप्पहाणा' ब्रह्मप्रधाना, ब्रह्म—ब्रह्मचर्यं—कुण-
लानुष्ठान तत्प्रधाना । 'नयप्पहाणा' नयप्रधाना—नयन्ति बोधयन्ति अनक्रयमात्मक्रयस्तुन
एकाग्रम् इति नया नैगमादय सप्त, तत्प्रधाना, 'नियमप्पहाणा' नियमप्रधाना, नियमो-
द्रव्य-क्षेत्रकालभावतो विविधमिग्रहग्रहणम् तत्प्रधाना, 'सच्चप्पहाणा' सत्यप्रधाना—जीवा-

अर्थात् जायादि आठ प्रकारके मदसे रहित थे । (लाघवप्पहाणा) द्रव्यसे अल्प-
उपधियुक्त होने कारण तथा भावसे गौरवत्रयरहित होनेके कारण प्रधान थे । (खन्ति-
प्पहाणा) क्रोधके उदयका निरोध करनेम प्रधान थे । (मुक्तिप्पहाणा) लोभ के उदयका
निरोध करने में प्रधान थे । (विज्जापहाणा) रोहिणी प्रज्ञा आदि
विद्याओंसे प्रधान थे । (मन्तप्पहाणा) मन्त्रसे प्रधान थे । (वेयप्पहाणा)
आचाराङ्ग आदि शास्त्रों से प्रधान थे । (वभप्पहाणा) ब्रह्मचर्यसे प्रधान थे । (नयप्पहाणा)
नैगमादि सात-नयोंके स्वरूप निरूपण करनेम प्रधान थे । (नियमप्पहाणा) द्रव्य क्षेत्र
काल भावसे विविध प्रकार के अभिग्रह करनेम प्रधान थे । (सच्चप्पहाणा) जीवा-

रना महती रहित होता, (लाघवप्पहाणा) द्रव्यही अल्प-उपधिवाला होवाना
कारण तथा लाघवी त्रय गौरवही रहित होवाना कारण प्रधान होता (खन्ति
प्पहाणा) क्रोधना उदयना निरोध करवाना प्रधान होता, (मुक्तिप्पहाणा) लोभना
उदयना निरोध करवाना प्रधान होता, (विज्जापहाणा) रोहिणी प्रज्ञा आदि
विद्याओंना प्रधान होता (मन्तप्पहाणा) मन्त्रही प्रधान होता (वेयप्पहाणा)
आचाराङ्ग आदि शास्त्रही प्रधान होता (वभप्पहाणा) ब्रह्मचर्यही प्रधान
होता, (नयप्पहाणा) नैगम आदि सात नयोंना स्वल्प निरूपण करवाना
प्रधान होता (नियमप्पहाणा) द्रव्य-क्षेत्र-काल-लाघवी विविध प्रकारना अलि-
ग्रह करवाना प्रधान होता, (सच्चप्पहाणा) सच अल्प आदि पदार्थोंना

ચારુવળ્લા લજ્જા-તવસ્સી-જિહ્વિયા સોહી અણિયાણા અપ્પોસુયા

જાનાદિપદાર્થના યથાવસ્થિત સ્વરૂપકથન સચ તપ્રધાના, 'સોયપ્પહાગા' શૌચપ્રધાના-શૌચમ્-મન્ત કરણશુદ્ધિરૂપમ્, તપ્રધાના । યચપ્યત્ર ચરણકરણપ્રહુણેઽપ્યાર્જનાદિક ગૃહેત ભવતિ, તથાપિ આર્જનાદીના પૃથક્કથન પ્રધાનતાસ્થાપનાર્થમ્-હૃદયગન્તન્યમ્ । 'ચારુવળ્લા' ચારુવળ્લા-વર્ણ-કાન્તિ, કીર્તિ, મતિશ્ચ;-ચારુવળ્ણો યેષા તે, ગૌરવર્ણયુક્તા, અથવા ઉત્તમકીર્તિમન્ત, પ્રશસ્તમતિયુક્તા વા, 'લજ્જા-તવ-સ્સી જિહ્વિયા' લજ્જાતપ-શ્રી-વિત્તેન્દ્રિયા-લજ્જયા-સમયમવિરાધનાયા હૃદયસકોચરૂપયા તપ શ્રિયા-તપસ્તેત્રસા જિનાનિ હિન્દ્રિયાણિ ચૈસ્તે તથા, યચપિ જિતેન્દ્રિયા इति પ્રાગુક્ત, તથાપ્યત્ર લજ્જાતપ શ્રીવિગોષિતવાન પુનરુક્તિદોષ । 'સોહી' શોધય-શોધિયોગાત્ શોધિરૂપા-શુદ્ધા-અકલ્પહૃદયા ક્યર્થ,

જીવાદિ પદાર્થોંકિ યથાવસ્થિત સ્વરૂપકથનકો સચ કહતે હૈ, ઉસસે વે પ્રધાન થે । (સોયપ્પહાગા) મન્ત કરણકી શુદ્ધિકો શૌચ કહતે હૈ, ઉસમેં વે પ્રધાન થે । (ચારુવળ્લા) વર્ણશબ્દકા પ્રયોગ કાન્તિ, કીર્તિ એવ મનિમે હોતા હૈ । હિસ અપેક્ષાસે યે સવ ગૌરવર્ણ વિશિષ્ટ થે, અથવા ઉત્તમકીર્તિમપત્ર થે, યા ઉત્તમશુદ્ધિ-આત્મકન્યાગમં આગર અધિકાધિકરૂપસે પ્રેરણા કરનેવાલી શુદ્ધિસે યુક્ત થે । (લજ્જા-તવ-સ્સી-જિહ્વિયા) લજ્જા-સમયમવિરાધનામેં સકોચ, એવ તપ શ્રી કે પ્રભાવસે હિન્દોને હિન્દિયોંકો જીત લિયા થા । યચપિ "જિહ્વિયા" હિસ પદ-દ્વારા ઉનમેં જિતેન્દ્રિયતા પ્રકટ કર દી ગઈ હૈ, ફિર મી યહા પર જો પુન જિતેન્દ્રિયતા વર્ણિત હુઈ હૈ, યહ લજ્જા એવ તપકે પ્રમાર સે ઉનમેં જિતેન્દ્રિયતા થી યહ વિશેષરૂપસે કથિત હુઆ હૈ, અત હિસ કથનમે પુન

યથાવસ્થિત સ્વરૂપનુ કથન ક્ષત્ય કહેવાય, તેમા તેઓ પ્રધાન હતા (સોય પ્પહાગા) અતઃકરણની શુદ્ધિને શૌચ કહે છે, તેમા તેઓ પ્રધાન હતા (ચારુવળ્લા) વર્ણ શબ્દનો પ્રયોગ કાન્તિ, કીર્તિ તેમજ મતિમા થાય છે આ અપેક્ષાએ તેઓ બધા ગૌરવર્ણવિશિષ્ટ હતા, અથવા ઉત્તમ કીર્તિ-સંપન્ન હતા, અથવા ઉત્તમશુદ્ધિ-આત્મકલ્યાણમા આગળ આગળ વધારેમા વધારે રૂપથી પ્રેરણા કરવાવાળી શુદ્ધિવાળા હતા (લજ્જા-તવસ્સી-જિહ્વિયા) લજ્જા-સમયમવિરાધનામા સકોચ તેમજ તપશ્રીના પ્રભાવથી તેઓએ ધિન્દ્રિયાને છતી લીધી હતી એ કે "જિહ્વિયા" એ પદથી તેમનામા જિતેન્દ્રિયપણુ પ્રકટ કરી દીધેલુ છે, છતાં પણ અહીં એ કરીને જિતેન્દ્રિયતાનુ વર્ણન કરવામા આબુ છે તે લજ્જા તેમજ તપના પ્રભાવથી તેમનામા જિતેન્દ્રિયપણુ હતુ તેનુ વિશેષરૂપથી કથન કર્યું છે માટે આ કથનમા પન

अवहिल्लेसा अप्पडिलेस्सा सुसामण्णरया दंता इणमेव णिग्गंथं
पावयणं पुरओकाउं विहरंति ॥ सू० २५ ॥

यद्वा—सुहृद्—प्राणिमात्रस्य मित्ररूपा, 'अणियाणा' अनिदाना—निद्रायते=उच्यते मोक्ष-
फलमनेन इति निदान—स्वर्गादिऋद्धिप्रार्थनम्, न विद्यते निदान येषां ते अनिदाना, 'अप्पो-
मुया' अप्पोमुक्या—अन्पम्—अपगतम् औमुक्यम्—उत्सुकता येषां ते—अप्पोमुक्या—
विषयौत्सुक्यरहिता, 'अवहिल्लेसा' अवहिल्लेसा—सयमादवहिर्भूता लेस्या मनोवृत्तयो येषां
ते इत्यर्थः । 'अप्पडिलेस्सा' अप्रतिलेस्या—अविद्यमाना प्रतिलेस्या—सदृशमनोवृत्तयो
येषां ते—अप्रतिलेस्या प्रवर्धमानपरिणामसम्पन्ना, 'सुसामण्णरया' सुश्रामण्यस्ता—श्रम-
णस्य भाव श्रामण्य, शोभन श्रामण्य सुश्रामण्य—सम्पूर्णं सकलसावधनिवृत्तिरूप सयम तस्मिन्
स्ता =सल्लाना, 'दंता' दान्ता—इन्द्रिय—नोइन्द्रियदमनपरायणा इति भावः । 'इणमेव'
इदमेव 'णिग्गंथं' नैर्प्रत्यय—निर्प्रस्थाना भावो नैर्प्रत्यय—श्रमणधर्ममयम् 'पावयणं' प्रव-
चन—प्र=प्रकृततया—उच्यते जीवादिस्वरूप यस्मिन् तत्प्रवचन जैनागम तत् 'पुरओकाउं'
पुरस्कर्य=प्रमाणीकृत्य 'विहरंति' विहरन्ति ॥ सू० २५ ॥

रुक्तिदोष नहीं आता है । (सोही) ये शोधि—अकलुषहृदयवाले थे, अथवा प्राणि-
मात्रके मित्रस्वरूप थे । (अणियाणा) मोक्षरूप फल जिसके द्वारा काट दिया जाता
है वह निदान है, इस निदानसे ये सर्वथा रहित थे । (अप्पोमुया) इनमें विषय-
सम्बन्धी कोई उत्सुकता नहीं थी । (अवहिल्लेसा) इनका मानसिक व्यापार सयमकी
आराधनासे बाहिरकी ओर थोड़ा भी नहीं जाता था । (अप्पडिलेस्सा) मनके साधा-
रण प्रवृत्तिको प्रतिलेस्या कहते हैं, परन्तु वे अप्रतिलेस्या से—प्रवर्द्धमान मनके शुभ
परिणामोंसे युक्त थे । (सुसामण्णरया) वे सुश्रामण्य में रत थे, अर्थात् सकल सावधकी

इक्ति दोष आवतो नथी (सोही) तेज्जो शोधि—अकलुषितहृदयवाणां हुता
अथवा प्राणिमात्रना मित्रस्वरूप हुता (अणियाणा) मोक्षरूप फल जेनाथी
कपार्थं अथ छे तेने निदान कडे छे, तेवा निदानथी तेज्जो सर्वथा रहित हुता.
(अप्पोमुया) तेमनामा विषयमअधी केअं उत्सुकता नडोती, (अवहिल्लेसा)
तेमने मानसिक व्यापार सयमनी आराधनाथी अडारनी तरइ जरापणु जतो
नडोते (अप्पडिलेस्सा) मननी साधारण प्रवृत्तिने प्रतिलेस्या कडे छे, परतु
तेज्जो अप्रतिलेस्याथी=प्रवर्द्धमान मनना शुभ परिणामोथी युक्त हुता (सुसा-
मण्णरया) तेज्जो सुश्रामण्यमा रत (लागी रहेला) हुता, अर्थात् सवधना सावधनी
निवृत्तिरूप सयममा तेज्जो सदा यलग्न रहेता हुता, (दंता) दान्त हुता—

मूलम्—तेसि ण भगवताणं आयावाया वि विदिता भवन्ति,
परवाया वि विदिता भवन्ति, आयावायं जमडत्ता नलवणमिव-

टीका—‘तेसि ण भगवताण’ इत्यादि । तथा गच्छ श्रीमहावीरशिष्याणा भगवता=सयमनिभूषितानाम् ‘आयावाया वि’ आ मयादा अपि—स्वसिद्धान्तवादा अपि-आर्हतवादा अपी यर्थ, विदिता-पिज्ञाता भवन्ति, ‘परवाया वि विदिता भवन्ति’ परवादा अपि विदिता भवन्ति—परेषा-शास्त्रादीना वादा—गतानि विदिता भवन्ति, स्वपर-निवृत्तिरूप सयममे ये सदा सलग्न रहते थे । (दत्ता) दान्त थे, अर्थात् इन्द्रिय और नोइन्द्रिय-मन के दमन करनेवाले थे । (इणमेव जिग्गथ पावयण पुरओकाउ विहरन्ति) ये मुनिजन इसी निर्वन्थ प्रवचनको आगे रगकर विचरते थे, अर्थात् इनको सब प्रवृत्ति आगमानुकूल ही होती थी ॥ सू० २५ ॥

‘तेसि ण भगवताण’ इत्यादि—

(तेसि णं भगवताण) भगवान् महावीर के सयम से निभूषित उन शिष्यों के (आयावाया वि) आत्मवाद—स्वसिद्धान्तप्रतिपादित—आर्हतवाद भी (विदिता भवन्ति) विदित था, अर्थात् भगवान् महावीर के ये शिष्य स्वसिद्धान्त—प्रतिपादित-तत्वों के पूर्ण ज्ञाता थे । (परवाया वि विदिता भवन्ति) तथा शास्त्रादिकों का क्या सिद्धान्त है, यह भी इन्हें विदित था । मतलग्न कहने का यह है कि ये मुनिजन स्वपरसिद्धान्त के पूर्णविक्ता थे । ऐसा कोई भी सिद्धान्त नहीं था जो इनकी

अर्थात् इन्द्रिय अपने नोइन्द्रियनु दमन करवावाणा हुआ, (इणमेव जिग्गथ पावयणं पुरओ काउ विहरन्ति) ते मुनिजनो आ निर्वन्थ प्रवचनने आगण शिषीने विचरता हुआ, अर्थात् तेमनी सर्वे प्रवृत्ति आगमने अनुकूल व थती हुती (सू २५)

‘तेसि ण भगवताण’ इत्यादि

(तेसि ण भगवताण) सयमभी विभूषित भगवान् महावीरना ते शिष्ये (आयावायावि) आत्मवाद—स्वसिद्धान्त—प्रतिपादित तत्त्व—आर्हतवाद पणु (विदिता भवन्ति) नलवता हुता, अर्थात् भगवान् महावीरना ते शिष्ये स्वसिद्धान्तप्रतिपादित तत्त्वोना स पूरुणं ज्ञाता हुता (परवायावि विदिता भवन्ति) तथा शास्त्र आदिदोना शु सिद्धान्त छे ते पणु तेओ नलवता हुता कडेवानो मतलग्न ओ छे के ते मुनिजनो स्वपर-सिद्धान्तना पूरुणं ज्ञाता हुता ओवो केओ पणु सिद्धान्त नहोतो के ओ तेमनी नजर अडार होय हुणु तेओ केवा

मत्तमातंगा अच्छिद्रपसिणवागरणा रयणकरंडगसमाणा कुत्तिया-

सिद्धान्तप्रवीणतया न किञ्चिद्विदितं तेषां भवताति भाव । पुनस्ते क्रीदृगा ? इत्यनकै-
विशेषणै रथयति-‘आयावायं जमइत्ता’ आमयादान् यमयित्वा-स्वसिद्धान्तान् पुन-
पुनरभ्यस्य-अतिपरिचितान् विधाय, ‘नलवणमिव मत्तमातगा’ नलवनमिव मत्त-
मातगा-क्रीडावर्धं पुन पुन प्रवेशेन कमलवन यथा मदीन्मत्ता गजेन्द्रा अतिपरिचित कुर्व-
न्ति तथैव ते पुन पुनरभ्यासेन निजसिद्धान्त परिचित कृतमन्तोऽनस्ते तत्तुल्या इत्यर्थ ।

‘अच्छिद्र-पसिण-वागरणा’ अच्छिद्र-प्रश्न-व्याकरणा-अच्छिद्रा-निरन्तरा-धारा-
वाहिकरूपा प्रश्ना, निरन्तराण्युत्तराणि येषु तादृशानि व्याकरणानि-विस्तारयुक्तव्याख्या-
नानि येषां ते-अच्छिद्रप्रश्नव्याकरणा-पुन पुन प्रश्नोत्तरसमुचितव्याख्यानिष्पन्ना,
अत एव-‘रयण-करंडग-समाणा’ रत्न-करण्डक-समाना-रत्नाना-मगिमागिक्रया-
दीना करण्डको मञ्जूषा तस्य समानास्तत्तुल्या, करण्डको यथा बंधुविघ्नरत्नपूर्णो भवति

दृष्टि से बाहर हो । और भी ये कैसे थे ? सो इस बात को आगे के विशेषणों
द्वारा सूत्रकार कहते हैं-(आयावाय जमइत्ता नलवणमिव मत्तमायगा) जिस
प्रकार मदीन्मत्त गजराज सरोवर आदि में क्रीडा करने के लिये पुन पुन प्रवेश कर
कमलवन से पूर्ण परिचित हो जाते हैं उसी प्रकार ये भी ज्ञानरूपी सरोवर में क्रीडा
करने के लिये पुन २ प्रवेश कर स्वपर-सिद्धान्तरूपी कमलवन से पूर्ण परिचित थे ।

(अच्छिद्र-पसिण-वागरणा) जब ये प्रवचन करते थे तब उसमें श्रोताजन धारा-
वाहिकरूप से प्रश्न किया करते थे, उनका उत्तर भी ये उसी ढंग से देते थे ।

(रयण-करण्डक-समाणा) इसलिये ये ऐसे ज्ञात होते थे कि मानों रत्नकरण्डक
है, जैसे रत्नों का करण्डक अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम अमूल्य रत्नों से भरपूर होता

हता ते वात आगणना विशेषणोद्धारो सूत्रकार कहे छे-(आयावाय जमइत्ता
नलवणमिव मत्तमायगा) जेवी रीते मदीन्मत्त गजेन्द्रा सरोवर आदिमा
क्रीडा करवा भाटे वारवार प्रवेश करीने कमलवाना वनथी पूर्ण परिचित थर्ध
भव छे, तेवीर रीते तेज्यो पणु ज्ञानरूपी सरोवरमा क्रीडा करवाना ठारण्ये
वारवार प्रवेश करीने स्वपर-सिद्धान्तरूपी कमलवनथी पूर्ण परिचित हता

(अच्छिद्र-पसिण-वागरणा) न्यारे तेज्यो प्रवचन करता हता त्यारे तेमा श्रोता-
जनो अकधारी रीते प्रश्न कथा करता हता अने तेना उत्तर पणु तेज्यो तेवीर गीते
आपना हता (रयण करण्डक-समाणा) जेथी तेज्यो जेवा लागता हता के नण्ये
रत्नो कर डिज्यो डोय जेभ रत्नोने ठर डिज्यो अनेक प्रकारना उवाभा उवा

वणभूया परवाइपमइणा आयारधरा चोइसपुन्वी दुवालसंगिणो

तथैव तेऽपि मुनिवरा सम्यग्ज्ञानादिगन्पूर्णां सति । पुनस्ते कीदृशा ? इयाह-‘कुत्तियावणभूया’ कुत्रिकाऽऽपणभूता = कृत्वा = स्वर्गमर्त्यपातालभूमीनां त्रिक, कुत्रिक, तास्व्यात् तदव्यपदेश इति कृत्वा तत्र स्थित वस्तुवपि कुत्रिकमुच्यते, कुत्रिकस्य आपण कुत्रिकापण । देवाधिष्ठितत्वेन स्वर्गमर्त्यपाताललोकत्रयसमविवस्तुसम्पादकदृष्ट इत्यर्थ, तद्भूता-समीहितार्थ-सम्पादनलब्धियुक्तत्वेन तत्तुल्या इति भावः । ‘परवाइपमइणा’ परवादिप्रमर्दना-परवादिना-शाक्यादीनां मतनिराकरणेन विजेतार इत्यर्थ । ‘आयारधरा’ आचारधरा-आचाराङ्गसूत्र-स्य धारका यावद्विपाकसूत्रधरा, ‘चोइसपुन्वी’ चतुर्दशपूर्विण-चतुर्दशपूर्वाणि विष्णते चेत्तां ते चतुर्दशपूर्विण पङ्गुणहानिवृद्धिरूपस्थानमस्थिता परस्पर भवन्ति न्यूनधिक्येन, तथाहि-यः कश्चित् सकलामिलाप्यवस्तुवेदितया चतुर्दशपूर्वीं स उत्कृष्ट, ततोऽन्ये सूत्रार्थतदुभयरूपतार-तम्याच्चतुर्दशपूर्वधरा । ‘दुवालसंगिणो’ द्वादशाङ्गिन-द्वादशानि-अङ्गानि आचाराङ्गादीनि सन्ति

है उसी प्रकार ये साधुजन भी सम्यग्दर्शन एव सम्यग्ज्ञान आदि विविध गुणरूप रत्नों से भरपूर थे । (कुत्तियावणभूया) ये कुत्रिकापण तुल्य थे । जिस आपण (दूकान) में स्वर्ग मर्त्य, पाताल-तीनों लोक की वस्तुएँ रहती हैं, उसको ‘कुत्रिका-पण’ कहते हैं । उस कुत्रिकापण से सभी अभिलषित वस्तुएँ मिलती हैं । ; उसी प्रकार ये अभिलषित तानों लोक के पदार्थों के सम्पादन करने की लब्धियों से युक्त थे । अत एव कुत्रिकापण-तुल्य थे । (परवाइपमइणा) परवादियों के मत को निराकरण करने से ये उनके विजेता थे । (आयारधरा) आचाराग सूत्र से लेकर विपाकसूत्रतक के आगमों के ये धारक थे । (चोइसपुन्वी) चौदहपूर्वों के ये पाठी थे । इस प्रकार ये सब के सब (दुवालसंगिणो) द्वादशाग के वेत्ता थे । (समत्त-

ठि मती रत्नोधी भरपूर होय छे तेम अये साधुजनो पण, सम्यग्दर्शन तेम, सम्यग्ज्ञान आदि विविध गुणरूप रत्नोधी भरपूर हुता, (कुत्तियावणभूया) - तेओ कुत्रिकापण जेवा हुता जे आपण (दूकान) मा स्वर्ग मर्त्य अने पाताल-त्रये लोकोनी वस्तुओ रहती होय तेने ‘कुत्रिकापण’ छडे छे ते कुत्रिकापण मा अधी छिछित वस्तुओ भजे छे, तेवी रीते तेओ पण तरे लोकोना छिछित पदार्थो भेजवानी लब्धिओवाजा हुता अथी तेओ । कुत्रिकापण जेवा हुता (आयारधरा) आचारागसूत्रथी दधने विपाकसूत्र सुधीना आगमोना तेओ धारक हुता (चोइसपुन्वी) चौदहपूर्वोना तेओ भाणुनारा हुता अये प्रजारे अये तमाभे तमाभ (दुवालसंगिणो) द्वादशागना साता हुता (समत्तगणिपिडगधरा) सभस्त

समस्तगणपिडगधरा सव्वक्खरसण्णिवाइणो सव्वभासाणुगामिणो
अजिणा जिणसंकासा जिणा इव अवितहं वागरमाणा संजमेणं
तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ॥ सू० २६ ॥

येषां ते द्वादशाङ्गिन-द्वादशाङ्गमजातार, द्वादशाङ्गजातृत्वेऽपि समस्तश्रुतधरत्वं न सिध्यती-
त्यत आह-‘समस्तगणपिडगधरा’ममस्तगणपिटकरा-गणो-गच्छ, गुणगणो वाऽस्याऽस्तीति
गणी-आचार्यं तस्य पिटकर इव पिटकरं सर्वस्वमित्यर्थं, समस्तस्य गणपिटकस्य धराः=धारका
अतएव-‘सव्वक्खर-सण्णिवाइणो’ सर्वाऽक्षरसन्निपातिन, यद्यपि न क्षरति-स्वभावात् कदाचित्प्र-
च्यवते इत्यक्षर पर तत्त्व केवलज्ञानादिरूपम्, तथाप्यत्र अक्षर-शब्दो स्वरव्यञ्जनमेदेन भिन्ने वर्णस-
मुदाये, ततश्च-अक्षराणां सन्निपाता मयोगा स्ववर्णपरवर्गे ममीळनानि-अक्षरसन्निपाता, सर्वे च-
तेऽक्षरसन्निपाता, ते सन्ति येषां ते सर्वाऽक्षरसन्निपातिन सर्वाक्षरज्ञानमन्त इति भावः । ‘सव्वभासा-
णुगामिणो’ सर्वभाषानुगामिन-सर्वाश्च ता भाषाः-भाषणानि, यदा भाष्यन्ते इति भाषा =
व्यक्तवचनानि, आसा भाषाणां सकृत्प्राकृताऽऽदय आर्याऽनार्यादयो बहवो भेदा
भवन्ति, ता सर्वभाषा अनुगच्छन्ति एव शीला सर्वभाषानुगामिन, ‘अजिणा’ अजिना-
असर्वज्ञत्वादिति भावः । जयन्ति कर्मरिपून् इति जिना =सर्वज्ञा, ये जिना न भवन्ति ते
अजिना-असर्वज्ञा, तथापि-‘जिनसंकासा, जिनमङ्कासा-जिनसदृशा पृष्टनिर्वचनकारि-

गणपिडग-धरा) समस्तगणपिटकर के धारक थे । (सव्वक्खरसण्णिवाइणो) यद्यपि
केवलज्ञानादिरूप तत्त्व-अक्षर शब्द से गृहीत होना चाहिये था, परन्तु ऐसा अक्षर
यहां गृहीत नहीं हुआ है, किन्तु स्वर एव व्यञ्जन के भेद से भिन्न वर्णसमुदाय का
ही यहां अक्षर शब्द से ग्रहण किया गया है । सन्निपात शब्द का अर्थ सयोग है ।
ये मुनिजन, सर्व प्रकार के अक्षरों के सयोग से क्या अर्थ होता है, उसके ज्ञाता थे ।
(सव्व-भासा-णुगामिणो) आर्य एव अनार्य सब देश की भाषा के ये सब जान-
कार थे । (अजिणा) ये सर्वज्ञ तो नहीं थे पर (जिणसंकासा) सर्वज्ञ के जैसे थे ।

गणपिडकना तेऽपि धारक इति (सव्वक्खरसण्णिवाइणो) ने के देवदशान
आदिश्च तत्त्व-अक्षर शब्दही लेवे लेधतो इति, परन्तु येवे अक्षर अर्थात्
लेवाये नथी, यद्य स्वर तेभ्य व्यञ्जनना लेधथी लुदा वर्णसमुदाय्य अर्थात्
अक्षर शब्दही लेवाभा आव्ये छे सन्निपात शब्दने अर्थ सयोग छे ये
मुनिजनो सर्व प्रकारना अक्षराना सयोगथी शु अर्थ थाय छे तेना ज्ञाता
इति (सव्व भासा-णुगामिणो) आर्य तेभ्य अनार्य यथा देशनी भाषाना तेऽपि
यथा लक्ष्यकार इति (अजिणा) तेऽपि सर्वज्ञ तो नहोता, यद्य (जिणसंकासा)

मूलम्-तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ
महावीरस्स अंतेवासी वहवे अणगारा भगवंतो, इरियासमिया

त्वाद अत्रिभवादिवचनत्वाच्चेति भाव । जिणा इव अत्रितह वागरमाणा' जिना इव अत्रितथ
व्याकुर्माणा -जिनवद् याथातथ्येन-यद्वस्तु यादृगेण तथा कथयन्त 'संजमेण' सयमेन-
सावधयोगविरमणलक्षणेन 'तपसा' तपसा 'अप्पाण भावेमाणा विहरति' आत्मानं
भावयन्तो विहरन्ति ॥ सू० २६ ॥

टीका-‘तेण कालेणं’ इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य
भगवतो महावीरस्य अन्तेवासिनो वहवोऽनगारा, ‘भगवतो’ भगवन्त -पयमशोभावन्त,
‘इरियासमिया’ ईर्यासमिता-ईरण-गमनमीर्या, तस्या समिता =पम्यरूपवृत्ता, गमने

(जिणा इव अत्रितह वागरमाणा) जिन-सर्वज्ञ-प्रभु जिस प्रकार यथार्थ की प्रेरु-
पणा करते हैं उसी प्रकार ये भी अत्रितथ-जो वस्तु जैसी थी उसी तरह से, उसकी
व्याख्या करने वाले थे । (सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणा विहरति) ये सब के
सब साधुजन सावधयोगविरमणलक्षणरूप १७ प्रकार के समय से एव अनगनादि
१२ प्रकार के तप से आत्मा को भावित करते हुए प्रभु के साथ विचरते थे ॥सू० २६॥

‘तेण कालेण तेण समएण’ इत्यादि—

(तेण कालेण तेण समएण) उस काल और उस समय में (समण-
स्स भगवओ महावीरस्स) श्रमण भगवान् महावीर के (अतेवासी) पास में
रहनेवाले (वहवे अणगारा भगवंतो) सभी अनगार भगवान् (इरियासमिया)
ईर्यासमिति से युक्त थे, अर्थात् अन्य जावों की किसी भी प्रकार से विराघना न

सर्वज्ञ जेवा हुता (जिणा इव अत्रितह वागरमाणा) जिन-सर्वज्ञ-प्रभु जे प्रकारे
यथार्थनी प्ररुपणा करे छे तेज प्रकारे तेजो पणु अत्रितथ-जे वस्तु जेवी
हुती तेवीज रीतथी तेनी व्याख्या करनारा हुता (सजमेण तवसा अप्पाण भावे
माणा विहरति) तेजो तमान साधुजनो सावधयोग विरमण लक्षणरूप-१७
प्रकारना सयमथी तेम ज अनशन आदि १२ प्रकारना तपथी आत्माने भावित
करता करता प्रभुनी साथे विचरता हुता (सू० २६)

“तेण कालेण तेण समएण” इत्यादि

(तेण कालेण तेणं समएण) ते काल अने ते समयभा (समणस्स
भगवओ महावीरस्स) श्रमण भगवान् महावीरना (अतेवासी) पासे रहेवावाणा
(वहवे अणगारा भगवतो) धणु अनगार भगवान् (इरियासमिया) इर्यासमिति

भासासमिया एसणासमिया आयाण-भंड-मत्त-निःखेवणा-समि-

दत्तावधाना इत्यर्थ, यथाऽन्यज्जीवस्य क्रयमपि विराधना न भवेत् तयोपयोगपूर्वकगमन-
शौक्य इति भाव । 'भासासमिया' भापासमिता - भापासमितियुक्ता - भापासमितिर्नि-
वधवचनप्रवृत्तिस्तया युक्ता इत्यर्थ । 'एसणासमिया' एषगाममिता - एषणायामुद्गमादि-
द्विचचारिगदोपपर्जननेन समिति - सम्यक्प्रवृत्तिरेषगासमितिस्तया युक्ता, विशुद्धाऽऽहा-
रादिप्रहृगान्वेषगोपयोगयुक्ता इत्यर्थ । 'आयाण-भंड-मत्त-निःखेवणा-समिया' आदा
न-भाण्ड-मात्र-निक्षेपगाममिता - आदान=ग्रहण-अस्य भाण्डमात्रयोरित्यनेन सम्बन्ध - प्रयास-
त्तिन्यायात्, साहचर्यादवा । देहलीदीपन्यायाद्वा भाण्डमात्रशब्दस्य आदाननिक्षेपाम्या
मन्वध, भाण्डमात्रयो - भाण्डस्य=पात्रस्य, मात्रस्य=वस्त्राद्युपकरणस्य चेत्यर्थ,

हो इस प्रकार उपयोगपूर्वक गमन करने के स्वभाववाले थे । (भासासमिया)
निवधवचनप्रवृत्ति से युक्त थे । (एमणासमिया) एषणा में उद्गमादिक ४२ दोषों
का परिवर्जनपूर्वक प्रवृत्ति करना इसका नाम एषणासमिति है । इस समिति से युक्त
एषणासमित है । ये साधुजन विशुद्ध आहारादिके ग्रहण में एव अन्वेषणमें उप-
योग-विशिष्ट थे । (आयाण-भंड-मत्त-निःखेवणा-समिया) आदान शब्द का
अर्थ ग्रहण है । इसका सम्बन्ध प्रयासत्तिन्याय से, अथवा साहचर्य से भाण्डमात्र के
साथ है । अथवा-भाण्डमात्र शब्द का सम्बन्ध ' देहली-दीपक ' न्याय से आदान
और निक्षेप इन दोनों के साथ होता है । ये साधुजन भाण्ड=पात्र एव मात्र=वस्त्रा-
दिक उपकरण के आदान-ग्रहण और निक्षेप-रखना रूप समिति से युक्त थे ।

वाजा हुता, अर्थात् पीला लुवोनी दोर्ध पशु प्रकृति विराधना न थाय शेवी
रीते उपयोगपूर्वक गमन करवाना स्वभाववाजा हुता (भासासमिया) निरवय
वचन-प्रवृत्तिवाजा हुता (एसणासमिया) अपेक्षाभा उद्गम आदि ४२ दोषोना
परिवर्जनपूर्वक प्रवृत्ति करवी तेनु नाम अपेक्षासमिति छे आ समितिथी
युक्त ले छे ते अपेक्षासमित छे ते साधुजनो विशुद्ध आहारादि देवाभा
तेमज तेना अन्वेषणभा उपयोगविशिष्ट हुता, (आयाण भंड मत्त निःखेवणा-समिया)
आदान शब्दको अर्थ अहुण छे, तेनो सणध प्रत्यासत्तिन्यायथी अथवा
साहचर्यथी लाडमात्रनी साथे छे अथवा लाडमात्र शब्दको सणध
'देहलीदीपक' न्यायथी आदान अने निक्षेप अपेक्षेनी साथे थाय छे, ते
मुनिओ लाडपात्रना अने वस्त्रादि उपकरणना आदान=अहुण अने निक्षेपण=
भूषणस्य समितिथी युक्त हुता, अर्थात् पात्र तेमज वस्त्रादि उपकरणना

या उच्चार-पासवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-पारिष्टावणिया-समिया मण- गुत्ता वयगुत्ता कायगुत्ता गुत्ता गुत्तिदिया गुत्तवंभयारी अममा अकिं-

तयोर्निक्षेपणे-अवस्थापने समिता -सुप्रतिलेखन-प्रमार्जनाद्युपयोगपूर्वकप्रवृत्तियुक्ता, 'उच्चार-
पासवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-पारिष्टावणिया-समिया' उच्चार-प्रसवण-श्लेष्मा-जल्ल-
शिंघाण-परिष्ठापनिका-समिता, तत्र-उच्चार-पुरीपम्, प्रसवण-मूत्र, श्लेष्मा, उपलक्षण
त्वानिष्टीवनस्यापि ग्रहणम्, जल्ल-स्वेदजमलम्, शिंघाण-नासिकामलम्, एतेषा परिष्ठापनिका-
परिष्ठापना-परित्याग-सैव परिष्ठापनिका, स्वार्थं क, तस्या समिता, शुद्धस्वच्छिन्नाश्रयणा-
त्सम्यगुपयुक्ता । 'मणगुत्ता' मनोगुत्ता-(१) त्रिविधा मनोगुत्तयः-आर्त्तैरौद्घ्यानानुबन्धि-
कल्पनाजालत्रियोग प्रथमा (२) शास्त्रानुसारिणी परलोकसाधिका धर्मव्यानानुबन्धिनी माध्यस्थ्य
परिणतिर्द्वितीया, (३) सकलमनोवृत्तिनिरोधेन योगनिरोधाऽवस्थाभाविनी-आमरणरूप

अर्थात् पात्र एव वत्सादिक उपकरणों के सुप्रतिलेखन प्रमार्जनादिक में ये सब उप-
योगपूर्वक प्रवृत्ति करने वाले थे । (उच्चार-पासवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-पारिष्टा-
वणिया-समिया) उच्चार-पुरीप, प्रसवण-मूत्र, खेल-श्लेष्मा, उपलक्षण से निष्टीवन
धूकना, जल्ल-स्वेदज मेल, शिंघाण-नासिका का मेल, इन सबके परिष्ठापन-रूप समिति
से युक्त थे । (मणगुत्ता वयगुत्ता कायगुत्ता) गुत्ति तीन प्रकार की है-मनोगुत्ति,
वचनगुत्ति और कायगुत्ति, इनमें मनोगुत्ति तीन प्रकारकी है-आर्त्त एव रौद्घ्यान का परित्याग
करना प्रथम मनोगुत्ति है, शास्त्र के अनुसार, परलोक की साधक और धर्मव्यान के साथ
अनुबन्ध रखने वाली माध्यस्थ्यपरिणतिरूप द्वितीय मनोगुत्ति है । सकल मनोवृत्ति के
निरोध से योगों की निरोधावस्था में होनेवाली परिणति-आत्मा में रमणरूप परिणति

सुप्रतिबिम्बन अने प्रमार्जन आदिकमा ते अथा उपयोगपूर्वक प्रवृत्ति करवावाणी
हता । (उच्चार पासवण-खेल-जल्ल सिंघाण पारिष्टावणिया-समिया) उच्चार=पुरीप,
प्रसवण=मूत्र, श्लेष्मा=श्लेष्मा, उपलक्षण=निष्ठीवन-धूकण, जल्ल-स्वेदजमल मेल,
शिंघाण-नासिका मेल, आ अधाना परिष्ठापनरूप समितिथी युक्त हता । (मणगुत्ता
वयगुत्ता कायगुत्ता) शुक्ति त्रय प्रकारनी छे मनोशुक्ति, वचनशुक्ति अने कायशुक्ति,
तेमा मनोशुक्ति त्रय प्रकारनी छे-आर्त्त तेमज रौद्घ्यानने परित्याग करवे अ
प्रथम मनोशुक्ति छे, शास्त्रने अनुसरनारी परलोकनी साधक अने धर्मव्याननी
साथ अनुबन्ध राखनारी माध्यस्थ्यपरिणतिरूप थील मनोशुक्ति छे अथी मनो
वृत्ति मात्रना निरोधथी योगानी निरोधावस्थामा थनारी परिणति-आत्मा

वृत्तीया । उक्त च योगशास्त्रे—

विमुक्तकल्पनाजाल समवे सुप्रतिष्ठितम् ।

आमाराम मनस्तज्जैर्मनोगुप्तिरदाहृता ॥ इति ॥

तया मनोगुप्त्या युक्ता—मनोगुप्ता । 'वयगुप्ता' वचोगुप्ता वचनगुप्तियुक्ता, वचन-
गुप्तिश्चतुर्विधा, उक्त च—

सच्चा तद्देव मोसा य सच्चामोसा तद्देव य ।

चउथी असच्चमोसा य, वयगुप्ती चउच्चिहा ॥ (उक्त० अ २४ गा २२)

छाया—सया तथैव मृषा च सयमृषा तथैव च ।

चतुर्थ्यसत्यमृषा च वचोगुप्तिश्चतुर्विधा ॥

वचोगुप्ति = वचनगुप्तिश्चतुर्विधा—सया, मृषा, सयमृषा असत्यमृषा चेति । जीव प्रति—'अय
जीव' इति कथन सत्या, जीव प्रति 'अयमजीव' इति कथन मृषा, पूर्वमनिर्णाय वदति—'अद्यास्मिन्

तीसरी मनोगुप्ति है । योगशास्त्र में यही बात कही है—

विमुक्तकल्पनाजाल समवे सुप्रतिष्ठितम् ॥

आमाराम मनस्तज्जैर्मनोगुप्तिरदाहृता ॥

इस मनोगुप्ति से युक्त होने का नाम मनोगुप्त है । वचनगुप्ति से युक्त होना
सो वचनगुप्त है । वचनगुप्ति ४ प्रकार की है—

“सच्चा तद्देव मोसा य, सच्चामोसा तद्देव य ॥

चउथी असच्चमोसा य वयगुप्ती चउच्चिहा ॥ (उक्त० अ० २४ गा २२)

अर्थ इस गाथा का इस प्रकार है । सत्य, मृषा, सत्यमृषा और असत्य-

मृषा, इस प्रकार वचन ४ प्रकार के होते हैं, (१) जिस वस्तु का जैसा स्वरूप

रमण्यरूप परिणति से त्रीण मनोगुप्ति से योगशास्त्रभा से वात कही से—

विमुक्तकल्पनाजाल, समवे सुप्रतिष्ठितम् ।

आमाराम मनस्तज्जै, - मर्नोगुप्तिरदाहृता ॥

आ मनोगुप्तिथी युक्त होवानु नाम मनोगुप्त से वचनगुप्तिथी युक्त
वचनगुप्त से वचनगुप्ति ४ प्रकारनी से

सच्चा तद्देव मोसा य सच्चामोसा तद्देव य ।

चउथी असच्चमोसा य वयगुप्ती चउच्चिहा ॥ (उक्त० अ० २४गा० २२)

गाथानो अर्थ आ प्रकारनी से सत्य १, मृषा २, सत्यमृषा ३ अने
असत्यमृषा ४—से प्रकारे वचन ४ प्रकारनी थाय से

(१) से वस्तु से स्वयं होय ते वस्तुने ते से स्वयंथी प्रकाशित

या उच्चार-पासवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-पारिष्टावणिया-समिया मण-
गुत्ता वयगुत्ता कायगुत्ता गुत्ता गुत्तिदिया गुत्तवंभयारी अममाअकि-

तयोर्निक्षेपणे-अवस्थापने समिता -सुप्रतिष्ठेरन-प्रमार्जनाद्युपयोगपूर्वकप्रवृत्तियुक्ता, 'उच्चार-
पासवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-पारिष्टावणिया-समिया' उच्चार-प्रसवण-श्लेष्म-श्लेष्म
शिंघाण-परिष्ठापनिका-समिता, तत्र-उच्चार-पुरीषम्, प्रसवण-मूत्र, तत्र-श्लेष्मा, उपलक्षण
त्वानिष्टीवनस्यापि ग्रहणम्, 'जल्ल-स्वेदजमलम्, शिंघाण-नामिकामलम्, एतेषा परिष्ठापनिका-
परिष्ठापना-परित्याग-सैव परिष्ठापनिका, स्वार्थ क, तस्या समिता, शुद्धस्थण्डिलप्रयणा-
त्सम्यगुपयुक्ता । 'मणगुत्ता' मनोगुमा -(१) त्रिविधा मनोगुमयः-आर्तरीद्रघ्यानानुबन्धि-
कल्पनाजालनियोग प्रथमा (२) शास्त्रानुसारिणी परलोकसाधिका धर्मव्यानानुबन्धिनी माध्यस्थ्य
परिणतिद्वितीया, (३) सकलमनोवृत्तिनिरोधेन योगनिरोधाऽनस्थाभाविनी-आमरमणरूपा

अर्थात् पात्र एव वखादिक उपकरणों के सुप्रतिष्ठेरन प्रमार्जनादिक में ये सब उप-
योगपूर्वक प्रवृत्ति करने वाले थे । (उच्चार-पासवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-पारिष्टा-
वणिया-समिया) उच्चार-पुरीष, प्रसवण-मूत्र, खेल-श्लेष्मा, उपलक्षण से निष्ठीवन
थूकना, जल्ल-स्वेदज मेल, शिंघाण-नासिका का मेल, इन सबके परिष्ठापन-रूप समिति
से युक्त थे । (मणगुत्ता वयगुत्ता कायगुत्ता) गुत्ति तीन प्रकार की है-मनोगुत्ति,
वचनगुत्ति और कायगुत्ति, इनमें मनोगुत्ति तीन प्रकारकी है-आर्त्त एव रौद्रघ्यान का परित्याग
करना प्रथम मनोगुत्ति है, शास्त्र के अनुसार, परलोक की साधक और धर्मघ्यान के साथ
अनुबन्ध रखने वाली माध्यस्थ्यपरिणतिरूप द्वितीय मनोगुत्ति है । सकल मनोवृत्ति के
निरोध से योगों की निरोधावस्था में होनेवाली परिणति-आत्मा में रमणरूप परिणति

सुप्रतिष्ठेणन अने प्रमार्जन आदिकमा ते यथा उपयोगपूर्वक प्रवृत्ति करवावाणा
हुता (उच्चार पासवण-खेल-जल्ल सिंघाण पारिष्टावणिया-समिया) उच्चार=पुरीष,
प्रसवण=मूत्र, खेल=श्लेष्मा, उपलक्षणयुथी निष्ठीवन-थूकणु, श्लेष्म-परसेवानो मेल,
शिंघाण-नासिको मेल, आ अधाना परिष्ठापनइष समितिथी युक्त हुता (मणगुत्ता
वयगुत्ता कायगुत्ता) गुत्ति त्रय प्रकारनी छे मनोगुत्ति, वचनगुत्ति अने कायगुत्ति,
तेमा मनोगुत्ति त्रय प्रकारनी छे-आर्त्त तेमज रौद्र ध्यानो परित्याग करवो अ
प्रथम मनोगुत्ति छे, शास्त्रे अनुसरनारी परलोकनी साधक अने धर्मध्याननी
साथे अनुबन्ध राखनारी माध्यस्थ्यपरिणतिइष थीछ मनोगुत्ति छे, यधी मनो-
वृत्ति मात्रना निरोधथी योगोनी निरोधावस्थाया थनारी परिणति-आत्माया

प्रतिलेखनाप्रमार्जनादिसमयोक्तक्रियाकलापपुर सर शयनासनादि विधेयम्, तत शयनासननि-
क्षेपादानादिपु स्वेच्छया चेष्टापगिहोरेण नियता=आह्वनियमानुसारिणी या कायचेष्टा सा द्वितीयेति ।

उक्त च—उपसर्गप्रसङ्गेऽपि कायोत्सर्गजुपो मुने ।

स्थिरीभाव शरीरस्य कायगुप्तिर्निगद्यते ॥१॥

शयनासननिक्षेपादानसक्रमणेषु च ।

स्थानेषु चेष्टानियम कायगुप्तिस्तु सा परा ॥२॥इति॥

तथा युक्ता । 'गुत्ता' गुप्ता—अशुभयोगनिग्रहो गुप्तिस्तया युक्ता, 'गुत्तिदिया'
गुप्तेन्द्रिया—गुप्तानि—असयमस्थानेभ्य सुरक्षितानि—इन्द्रियाणि यैस्ते गुप्तेन्द्रिया, 'गुत्त-

अथवा भूमि आदिकी प्रतिलेखना एव प्रमार्जन करते समय जो अपनी इच्छानुसार
शारीरिक चेष्टाओं का परित्याग करना है, एवं गुरु आदि की आज्ञानुसार शयन, आसन,
निक्षेपण एव आदानादिक मं कायचेष्टा का नियमन करना है वह दूसरी कायगुप्ति है ।
कहा भी है—उपसर्गप्रसङ्गेऽपि, कायोत्सर्गजुपो मुनेः । स्थिरीभावः शरीरस्य,
कायगुप्तिर्निगद्यते ॥१॥ शयनासननिक्षेपा,—दानसक्रमणेषु च । स्थानेषु चेष्टानियमः
कायगुप्तिस्तु सा परा ॥२॥ श्लोकों का अर्थ ऊपर लिखे भावके अनुसार है । ये
साधुजन कायगुप्ति के आराधक थे । अत एव (गुत्ता) अशुभ योग के निग्रहरूप
गुप्ति से ये मुनिजन युक्त थे । (गुत्तिदिया) असयमस्थानों से इन्द्रिया को सुर-
क्षित रखनेवाले ये, इसलिये इन्हें गुप्तेन्द्रिय कहा गया है । (गुत्तवभयारी) नौ-

निवृत्तिरूप पड़ेली कायगुप्ति छे शुरुने पृथीने शारीरिक क्रियाओंनी (शौचाद्विनी)
निवृत्तिना समये अथवा भूमि आद्विनी प्रतिक्षेपना तेमज प्रमार्जना करवाना
समये ते पोतानी धिच्छाप्रभाषे शारीरिक चेष्टाओंनी परित्याग करवाने
छे, तेमज शुरु आद्विनी आज्ञा—अनुसार शयन, आसन, निक्षेपण, तेमज
आदानादिकमा कायचेष्टानु नियमन करवानु डोय छे, ते भीछ कायगुप्ति छे
ठह्लु पणु छे डे— उपसर्गप्रसङ्गेऽपि, कायोत्सर्गजुपो मुने ।

स्थिरीभाव शरीरस्य, कायगुप्तिर्निगद्यते ॥

शयनासननिक्षेपा,—दानसक्रमणेषु च ।

स्थानेषु चेष्टानियम कायगुप्तिस्तु सा परा ॥

श्लोकोने अर्थ उपर लखेला लाव प्रभाषे छे ते साधुजने कायगुप्तिना
आराधक डता भाटेज (गुत्ता) अशुभयोगना निग्रहरूप गुप्तिथी ते मुनिजने
युक्त डता (गुत्तिदिया) असयमना स्थानोथी धिष्टियेने सुरक्षित राखवावाणा

नगरं शत बालका जाता 'इति तद्वया मय्यगणा । ' ग्या'यायमम तपा नाग्ति' इति कश्चन चतुर्थी असत्यगणा, यद्वचन न मय नापि गणा, मा चतुर्थीति, चतुर्विधवचनयोग-निवृत्तिर्वचोऽगुत्तिरिति भाव । ' कायगुत्ता' कायगुत्ता-गमनागमनप्रचलनादिक्रियाया गोपन-कायगुत्ति, कायगुत्तिर्द्विधा-चेष्टानिवृत्तिरूप, यथागम चेष्टा-नियमरूपा च । तत्र परीपहोपसर्गादि-भेदेऽपि यत् कायोगर्गाङ्गणात्पिना कायस्य निश्चयताङ्गणम्, सर्वयोगनिरोधा वस्थाया वा सर्वथा यत् कायचेङ्गनिरोधन सा प्रथमा । गुरुमापृच्छच्च शरीरमस्तारकभूम्यादि-

है उस वस्तु को उसी स्वरूप से प्रकाशित करनेवाला वचन सत्यवचन है, जैसे- यह जीव है । (२) जीव को अजीव कहना मृषावचन है । (३) मिश्रितवचन सत्य मृषा वचन है, जैसे-आज इस नगर में सौ बालक जन्मे हैं । यह वचन मिश्ररूप इसलिये है कि इसमें सौ का निर्णय नहीं है । (४) जो वचन मृषा भी न हो और सत्य भी न हो ऐसे वचन का नाम असत्यमृषा है, जैसे-स्वाध्याय समान तप नहीं है"-ऐसा वचन न सत्य है और न असत्य ही है, अर्थात् व्यवहार वचन है ।

इस ४ प्रकार के वचनयोग का वचनगुणि में निरोध हो जाता है । गमन-आगमन आदि क्रिया का जिसमें निरोध है वह कायगुणि है । यह कायगुणि २ प्रकारकी है-चेष्टा-निवृत्तिरूप १, यथा-आगम-चेष्टानियमनरूप २ । परीपह एव उपसर्ग के आनेपर भी शरीर से ममत्व का परित्याग कर जो उसे निश्चल करना है, अथवा सर्वयोगों की निरोध-अवस्था में जो सर्वथा काय की चेष्टाओं का निरोध करना है यह चेष्टानिवृत्तिरूप पहली कायगुणि है । गुरु से पूछकर शारीरिक क्रियाओं की निवृत्ति के समय,

करवावाणु वचन सत्यवचन छे जेभके आ लव छे (२) लवने अलव कडेवु अे मृषावचन छे (३) मिश्रवचन सत्यमृषावचन छे, जेभ के आने आ नगरमा से पाण्ड जन्म्या छे आ वचन मिश्ररूप अेटला भाटे छे के अेमा सेना निष्कथ नथी (४) जे वचन मृषा पणु न होय अने सत्य पणु न होय अेवा वचननु नाम असत्यमृषा छे, जेभ " स्वाध्यायना जेवु तप नथी " अेवा वचन नथी ते सत्य के नथी असत्य, अर्थात् व्यवहारवचन छे. आ आर प्रकारना वचनयोगनो वचनगुत्तिमा निरोध थछ नय छे गमन-आगमन-आदि क्रियाअेनो जेमा निरोध होय तेने कायगुत्ति कहे छे आ कायगुत्ति जे प्रकारनी छे-१ चेष्टानिवृत्तिरूप, अने २ यथा-आगम-चेष्टानियमनरूप परीपह तेभज उपसर्गना आववा छता पणु शरीरथी ममत्वनो त्याग करीने जे तेने निश्चल करवु, अथवा सर्व योगानी निरोध-अवस्थाभा जे सर्वथा कायनी चेष्टाअेनो निरोध करवु ते चेष्टा

प्रतिलेखनाप्रमार्जनादिसमयोक्तक्रियाकलापपुर सर शयनासनादि विधेयम्, तत शयनासननि-
क्षेपादानादिपु स्वेच्छया चेष्टापग्निहारेण नियता=आर्षानियमानुसारिणी या कायचेष्टा सा द्वितीयेति ।

उक्त च—उपसर्गप्रसङ्गेऽपि कायोत्सर्गजुपो मुने ।

स्थिरीभाव शरीरस्य कायगुप्तिर्निगद्यते ॥१॥

शयनासननिक्षेपादानसक्रमणेषु च ।

स्थानेषु चेष्टानियम कायगुप्तिस्तु सा परा ॥२॥इति॥

तथा युक्ता । 'गुत्ता' गुप्ता—अशुभयोगनिग्रहो गुप्तिस्तथा युक्ता, 'गुत्तिदिया'
गुप्तेन्द्रिया—गुप्तानि—असयमस्थानेभ्य सुरक्षितानि—इन्द्रियाणि यैस्ते गुप्तेन्द्रिया, 'गुत्त-

अथवा भूमि आदिकी प्रतिलेखना एव प्रमार्जन करते समय जो अपनी इच्छानुसार
शारीरिक चेष्टाओं का परित्याग करना है, एव गुरु आदि की आज्ञानुसार शयन, आसन,
निक्षेपण एव आदानादिक में कायचेष्टा का नियमन करना है वह दूसरी कायगुप्ति है ।
कहा भी है—उपसर्गप्रसङ्गेऽपि, कायोत्सर्गजुपो मुनेः । स्थिरीभावः शरीरस्य,
कायगुप्तिर्निगद्यते ॥१॥ शयनासननिक्षेपा,—दानसक्रमणेषु च । स्थानेषु चेष्टानियमः
कायगुप्तिस्तु सा परा ॥२॥ श्लोकों का अर्थ ऊपर लिखे भावके अनुसार है । ये
साधुजन कायगुप्ति के आराधक थे । अत एव (गुत्ता) अशुभ योग के निग्रहरूप
गुप्ति से ये मुनिजन युक्त थे । (गुत्तिदिया) असयमस्थानों से इन्द्रियों को सुर-
क्षित रखनेवाले थे, इसलिये इन्हें गुप्तेन्द्रिय कहा गया है । (गुत्तवभयारी) नौ-

निवृत्तिरूप पडेली कायगुप्ति छे गुरुने पृथीने शारीरिक क्रियाओंनी (गौथाहिनी)
निवृत्तिना समथे अथवा भूमि आदिनी प्रतिकेपना तेमज प्रमार्जना करवाना
समथे ते पोतानी धिच्छाप्रभाणु शारीरिक चेष्टाओंनी परित्याग करवानो
छे, तेमज गुरु आदिनी आज्ञा—अनुसार शयन, आसन, निक्षेपण, तेमज
आदानादिकमा कायचेष्टानु नियमन करवानु होय छे, ते पीछे कायगुप्ति छे
कहु पणु छे के— उपसर्गप्रसङ्गेऽपि, कायोत्सर्गजुपो मुने ।

स्थिरीभाव शरीरस्य, कायगुप्तिर्निगद्यते ॥

शयनासननिक्षेपा,—दानसक्रमणेषु च ।

स्थानेषु चेष्टानियम कायगुप्तिस्तु सा परा ॥

श्लोकानो अर्थ उपर लखेला भाव प्रभाणु छे ते साधुज्जो कायगुप्तिना
आराधक हुता भाटेज (गुत्ता) अशुभयोगना निग्रहरूप गुप्तिथी ते मुनिज्जो
युक्त हुता (गुत्तिदिया) असयमना स्थानोथी धिद्रियोने सुरक्षित राभवावाणा

चणा अकोहा अमाणा अमाया अलोभा संता पसंता उवसंता
परिणिव्वुया अणासवा अग्गंथा छिण्णग्गंथा छिण्णसेया निरुव्वेवा,

वभयारी' गुप्तब्रह्मचारिण—गुप्त नवभिर्गतचर्यगुप्तिर्भा रमित ब्रह्म—मैदुनपरिमणं चरन्ति
तच्छील, 'अममा' अममा—ममरहिता, 'अकिंचणा' अकिंचना—नास्ति किंचन
येषा ते अकिंचना—धर्मोपकरणतिरिक्तप्रस्तुगहिता । 'अकोहा' अकोहा=कोधरहिता,
'अमाणा' अमाना=मानरहिता, 'अमाया' अमाया=मायारहिता, 'अलोभा'
अलोभा=लोभरहिता, 'सता' शा-न्ता=शान्तिवृत्त्या शान्तियुक्ता, 'पसता' प्रशान्ता=
अन्तर्वृत्त्या शान्तियुक्ता, अत एव 'उवसता' उवशान्ता=शीतीभूता 'परिणिव्वुया'
परिनिवृता=कर्मकृतविकाररहिततात् स्वस्थीभूता, अतएव 'अणासवा' अनासवा=
आसवरहिता, 'अग्गंथा' अत्र या=निर्गंथा, 'छिण्णग्गंथा' छिन्नप्र-था ग्रन्थाति
वन्नाति आत्मानं कर्मणेति ग्रन्थ, स द्विविध—द्रव्यभावभेदात्, द्रव्य-हिरण्यादि,

वाटिका—सहित ब्रह्मचर्य के धारक थे, इसलिये गुप्तब्रह्मचारी थे । (अममा) ममत्व
से रहित थे । (अकिंचणा) धर्मोपकरण से अतिरिक्त और इनके पास कुछ नहीं था ।
(अकोहा) कोधरहित थे । (अमाणा) मानरहित थे । (अमाया) मायारहित थे ।
(अलोभा) लोभरहित थे । (सता) शाहरसे शान्तियुक्त थे, (पसता) आन्यन्तर से
शान्तियुक्त थे, अत एव (उवसता) शीतीभूत थे । (परिणिव्वुया) कर्मकृत विकार से
रहित होने के कारण स्वस्थ थे, अत एव (अणासवा) आसव से रहित थे । (अग्गंथा)
निर्ग्रन्थ थे । (छिण्णग्गंथा) जो आत्मा को कर्मों से जकड़े (बाँधे) उसका नाम ग्रन्थ है ।
यह दो प्रकार का होता है । १ द्रव्यग्रन्थ, दूसरा भावग्रन्थ । हिरण्यादि द्रव्यग्रन्थ है ।

हुता, तेथी तेभने शुभ्ते द्विय उडे छे (गुप्तवभयारी) नवपाटिका (वा३)
सहित ब्रह्मचर्यनु पालनं उरनार हुता (अममा) भमत्वथी रहित हुता
(अकिंचणा) धर्मोपकरणथी अतिरिक्त थीलु तेभनी पाये कर्ध नडोतु (अकोहा)
कोधरहित हुता (अमाणा) मानरहित हुता (अमाया) मायारहित हुता
(अलोभा) लोभरहित हुता (सता) शान्तिरथी शान्तियुक्त हुता (पसता)
आन्यन्तरथी शान्तियुक्त हुता, अत एव (उवसता) उपशान्त-शीतीभूत
अन्तर अने शान्तिरथी शीतल हुता (परिणिव्वुया) कर्मकृत विकारथी होवाने
कारण स्वस्थ हुता, अत एव (अणासवा) आसवथी रहित हुता (अग्गंथा)
निर्ग्रन्थ हुता (छिण्णग्गंथा) जे आत्माने कर्मोथी जकडी राये (बाँधे) तेनु
नाम ग्रन्थ छे जे जे प्रकारना थाय छे १ द्रव्यग्रन्थ अने २ भावग्रन्थ ।

कंसपाईव मुक्ततोया, संखडव निरंगणा, जीवो विव अप्पडिहयगई.

भावो मिथ्यावादि, स द्विप्रधो ग्रन्थच्छन्नो यैस्ते तथा । 'छिण्णसोया' छिन्नस्रोत-
स-छिन्नसमारप्रवाहा । 'निरुवलेवा' निरुपलेपा - कर्मग्रन्थहतरुपलेपो रागादिस्तेन रहिता,
निरुपलेपतामेव 'कसपाईव' इत्यादि- 'सुहुयहुयासणो इव' इत्यन्तैरुपमानोपमेयभावे
प्रदर्शयति, तत्र- 'कसपाईव मुक्ततोया' कास्यपात्राय मुक्ततोया-मुक्त-त्यक्त तोयमिव
ससारवन्धहतुवात्स्नेहो यैस्ते तथा, यथा कास्यपात्र्या पतितमपि जल लिप्त न भवति
तथा ममारवन्धहतुस्तेषु लिप्तो न भवताति भाव, 'सख इव निरंगणा' गच्छ इव

मिथ्यावादि भावग्रन्थ है। इन दोनों प्रकार के ग्रन्थ से रहित होने के कारण ये
'छिन्नग्रन्थ' कह गये हैं। (छिण्णसोया) ससार का प्रवाहरूप स्रोत इनसे अलग
हो चुका था। (निरुवलेवा) कर्मग्रन्थ में कारणभूत रागादिक लेप से भा ये रहित
थे, इसलिये निरुपलेप थे। इसी बात को जागे के 'कसपाईव' से लेकर 'सुहुय-
हुयासणो इव' यहाँ तक के उपमान पदों के द्वारा सूत्रकार प्रकट करते हैं।
(कसपाईव मुक्ततोया) कौंसे का भाजन जिस प्रकार पानी के ससर्ग से सर्वथा रहित
होता है उसी प्रकार जल के तुल्य स्नेह को ससार का बधन का हतु होना से
जिन्होंने सर्वथा छोड़ दिया, अथवा कौंसे के भाजन में गिरा हुआ जल जैसे लिप्त
नहीं होता उसी प्रकार ससारग्रन्थहतु आन्धव जिनमें लिप्त नहीं होता, अत वे
कौंसे के भाजन के समान निरुपलेप कह गये हैं। (सख इव निरंगणा) गच्छ में

द्विप्रध आदि द्व्यग्रथ छे मिथ्यात्व आदि लावग्रन्थ छे आ भन्ने
प्रकारना ग्रन्थोथी रहित होवाना वारण्ये तेज्जोने छिन्नग्रथ उडेवामा आव्या
छे (छिण्णसोया) ममारना प्रवाहइय स्रोत तेमनाथी अलग थई चुक्या हुता
(निरुवलेवा) कर्मग्रन्थमा कारणभूत रागादिदलेपथी पण्य तेज्जो रहित हुता,
तेथी निरुपलेप हुता आव वातने आगणना 'कसपाईव' थी लधने 'सुहुयहु-
यासणो इव' अडी सुधीना उपमानपदोथी सूत्रकार प्रकट करे छे (कसपाईव
मुक्ततोया) वासातु वासण्य जेम पाणीना मसर्गथी सर्वथा रहित होय छे
तेज गीते जलना तुल्य स्नेह जे, समानना बधनना डेतु छे तेने जेमण्ये
सर्वथा छोडी दीधे, अथवा वासाना वासण्यमा पडेला पाणी जेम लिप्त थता
(शोडता) नथी, तेवीज गीते मसारबधनना डेतु आवव जेज्जोमा लिप्त थतो
नथी, तेथी तेज्जोने जामाना वासण्यनी पेठे निरुपलेप उडेवामा आव्या छे
(सख इव निरंगणा) शथमा जेम डोई पण्य रग होतो नथी तेवीज गीते

जच्चकणगं पिव जायरूवा, आदरिसफलगा इव पागडभावा, कुम्भो

नीरङ्गणा—रङ्गण—रागाद्युपरस्त्रन तस्मान्निर्गता, शब्दे यथा किमपि रङ्गनद्रव्यं स्थितिं न लभते तथैतेष्वनगारुषु रागादयो न तिष्ठन्ती यर्थे । 'जीवो विव अप्पडिहयगई' जीव इव अप्रतिहतगनय—जीवो यथा शुभाशुभकर्मसमादायाहृतगया सर्वत्र याति तथा अप्रतिहता गतिर्येषां ते तथा, देशनगगन्धिषु अपानिन्त्रयत्रित्तरित्तेन वादादिषु—कुत्तीर्यिकमतानिगरकरगसामर्थ्योपतत्वेन च अस्खलितगतय, 'जच्चकणग पिव जायरूवा' जात्यकनकमिव जातरूपा—शोधितमुवर्गमिव निर्मला—रागादिरहिता इत्यर्थे । 'आदरिसफलगा इव पागडभावा' आदर्शफलका इव गरुडभावा—प्रकटा=प्रकृतिता, भावा—उत्पादव्ययध्रौव्यस्वभावका जीवाजीवादिपदार्थां यैस्ते तथा, आदर्शफलका

जैसे कोई भी रग स्थिति नहीं पा सकता, उसी प्रकार रागात्मिक भी उन अनगारों में ठहर नहीं सकते थे। अतः ये शरत के समान नीरङ्गण कह गये हैं। (जीवो विव अप्पडिहयगई) जीव जिस प्रकार शुभ और अशुभ कर्म के चक्र प्रेरित होकर अन्याहृत गति से सर्वत्र चला जाता है उसी प्रकार इनका भी देश, नगर आदिमें अप्रतिहतगतिविहार होने से एवं वाद-विवादादि में कुत्तीर्यिक मता के निराकरण करने की सामर्थ्य से युक्त होने से ये भी जीव के समान अस्खलितगतिवाले थे। (जच्चकणग पिव जायरूवा) शोधितमुवर्ग के समान ये निष्कुल निर्मल थे। (आदरिसफलगा इव पागडभावा) आदर्श अर्थात् काच जिस प्रकार प्रतिबिम्बित मुखादिक अवयवों को यथावस्थित प्रकट करता है उसी प्रकार ये भी अपने ज्ञान के द्वारा उत्पाद व्यय एवं ध्रौव्य-विशिष्ट जीवाजीवादिक पदार्थों को प्रकट करते थे। इनकी

रागादिक पक्षु ते अनगारोमा रडी शकता नथी, तेथी तेओ शअनी पडे नीर गणु डडेवाय छे (जीवोविव अप्पडिहयगई) एव नेम शुल अने अशुल कर्मवश प्रेरित थअने अव्याहृत गतिथी सर्वत्र आत्यो नय, तेम तेओानी पक्षु देश नगर आदिमा अप्रतिहृतगति-विहार होवाथी तेमए वादविवाद आदिमा कुत्तीर्यिकमतोतु निराकरणु करवातु सामर्थ्य होवाथी तेओ पक्षु एवनी पडे अस्खलितगतिवाजा हुता (जच्चकणग पिव जायरूवा) शोधेला सुवर्णना नेवा तेओ भिलकुल निर्मण हुता (आदरिसफलगा इव पागडभावा) आदर्श अर्थात् अगीसो नेम प्रतिबिम्बित मुख आदिक अवयवोने यथावस्थित प्रकट करे छे (दिपाडे छे) तेम तेओ पक्षु पोताना ज्ञानद्वारा उत्पाद, व्यय तेम ए ध्रौव्य-विशिष्ट एव-अएव-

इव गुत्तिदिया, पुक्खरपत्तं व निरुवलेवा, गगणमिव निरालंवणा,

यथा प्रतिनिश्चितान् सुखाद्ययवान् यथावस्थित प्रकटीकुरुति, तथा यन्त्रनदेशनया जनानां चित्तदर्पणे जीवाजीवादिमन्त्रपदार्थां सुस्पष्ट प्रकाशन्ते इत्यर्थः । 'कुम्भो इव गुत्तिदिया' कुम्भ इव गुप्तेन्द्रिया - कुम्भो यथा भयहेतौ मनि मयुतमर्बन्धियो भवति तथा स्मार-भ्रमणभयाद् गुप्तानि=विषयरूपायेभ्य मन्त्रितानि इन्द्रियाणि येषां ते गुप्तेन्द्रिया । 'पुक्खरपत्तं व निरुवलेवा' पुक्खरपत्रमिव निम्बलेपा - यथा कमलपत्रं निर्लिप्तं सत् जलोपरि निष्ठति तथा निरुपल्पा - पद्मजन्तुन्यस्वजनविषयमन्त्रपरहिता भवन्तीति भावः । 'गगणमिव निरालंवणा' गगणमिव निगलन्मना - कुलग्रामनगगद्यालम्बनवर्जिता ,

जीवाजीवादिविषयक देशना ऐसी होती थी कि जिससे मनुष्यों के चित्तरूपी दर्पण में उत्पादादि-स्वभाव वाले समस्त जीवादिक पदार्थ अच्छी तरह-स्पष्टरूप से प्रतिभासित होने लगते थे । (कुम्भो इव गुत्तिदिया) कृच्छ्रजिम प्रकार भय के कारणों के उपस्थित होने पर ममस्त इन्द्रियां को लोपित कर लेता है उसी प्रकार ये मुनिजन भी स्मारपरिभ्रमण के भयसे विषय-रूपायों की ओर से अपनी २ इन्द्रियों को सुरक्षित किये हुए रहते थे । (पुक्खरपत्तं व निरुवलेवा) जिस प्रकार कमलपत्र जल में निर्लिप्त होकर उम के ऊपर रहता है और कीचड़ से उपन्न होने पर भी जैसे वह उमके स्वर से गहित होता है उसी प्रकार ये साधुजन भा कीचड़ एव जन्तुन्य स्वजन, एव विषयों के सवन से त्रिलकुल रहित थे । (गगणमिव निरालंवणा) आकाश की तरह ये कुल, ग्राम और नगर आदि के महारे की अपेक्षा नहीं रखने थे । (अणिलो इव निराशया) पवन की तरह घर

आदि पदार्थोंने प्रवृत्त करता हुआ, तेमनी उवाचवादि विषयनी देशना ऐसी थती हुती के लेवी मनुष्येना चित्तदर्पी दर्षणुमा उत्पाद आदि स्व-भाववाणा समस्त उवादि पदार्थ मारी गीते स्पष्टउपे प्रतिभासित थती हुता (कुम्भो इव गुत्तिदिया) जयवे नेम लयना शरणे आवी पडता ममस्त धिन्द्रियेने न गोपित उगी वे छे तेम ऐ मुनिने पणु मसा-परिभ्रमणुना लयधी विषयउपायेनी तरुधी पोतपोतानी धिन्द्रियेने सुक्षित शयता हुता (पुक्खरपत्तं व निम्बलेवा) नेम उमणपत्र जलधी निर्लिप्त थधने तेनी उप गडे के अने कीचडधी उत्पन्न थथ छे तो पणु नेम ते तेना सभधधी रहित छेय छे तेवी न गीते साधुजन पणु कीचड तेम न जलतुल्य स्वरन तेम न विषयेना सभधधी त्रिलकुल रहित हुता (गगणमिव निरालंवणा) आकाशनी पेंठे तेओ कुण, ग्राम अने नगर आदिना आश्रयनी

अणिलो इव निरालया, चंदो इव सोमलेस्सा, सूर्यो इव दित्तेया,
सागरो इव गंभीरा, विहग इव सन्वओ विप्पमुक्का, मंदरो इव
अप्पकंपा, सारयसलिलं व सुद्धहियया, खग्गिविसाणं व एगजाया,

‘अणिलो इव निरालया’ अनिल इव निरालया—पवन इव गृहरहिता, ‘चंदो इव सोमलेस्सा’ चन्द्र इव सौम्यलेस्या—अनुपतापहतुमन परिणामधाग्गि, ‘सूर्यो इव दित्तेया’ सूर्य इव दीपतेजस—द्रव्यत शरीररूप्या भावतो ज्ञानेन च देदीयमाना । ‘सागर इव गंभीरा’ सागर इव गंभीरा—हर्षगोक्रान्तिकाग्गम्येगेऽपि निर्निकारचित्ता । ‘विहग इव सन्वओ विप्पमुक्का’ विहग इव सर्वतो विप्रमुक्ता—परिवाग्परि यागात् नियत—वासरहितत्राचेति भाव । ‘मंदरो इव अप्पकंपा’ मन्दर इव अप्रकम्पा—मेरुवत् परिपहोपसर्गपवनैरचलित्ता । ‘सारयसलिलं व सुद्धहियया’ शारदसल्लिमित्र शुद्ध—हृदया—यथा शरदृतौ जल निर्मल भवति तथा परमनिर्मलहृदया इति भाव । ‘खग्गिविसाणं

से रहित थे । (चंदो इव सोमलेस्सा) चन्द्र के समान उनका लेस्या सौम्य थी । (सूर्यो इव दित्तेया) सूर्य के समान ये दीप तेजमाले थे । शारीरिक काति द्रव्यतेज, एव ज्ञान यह भावतेज है । (सागर इव गंभीरा) सागर के तुल्य ये गंभीर प्रकृति के थे । हर्ष गोक्रान्ति के कारणों के उपस्थित होने पर भी इनके चित्त में किसी भी तरह का विकार उत्पन्न नहीं होता था । (विहग इव सन्वओ विप्पमुक्का) पक्षी की तरह ये नियमित निवास से रहित थे । (मंदरो इव अप्पकंपा) मेरुपर्वत की तरह परीपह एव उपसर्गरूप पवन से ये अचलित थे । (सारयसलिलं व सुद्धहियया) शरद ऋतु के जल समान उनका हृदय निर्मल था । (खग्गिविसाणं व एगजाया) खड्गी

अपेक्षा राभता नडत्ता (अणिलो इव निरालया) पवननी पेठे धरथी रहित
हुता (चंदो इव सोमलेस्सा) चंद्रनी पेठे तेमनी लेस्या सौम्य हुती (सूर्यो इव
दित्तेया) सूर्यनी पेठे तेस्यो दीप्त—तेजस्वी हुता शारीरिकः काति द्रव्यतेज
तेम ज्ञान ये भावतेज छे (सागर इव गंभीरा) सागरना जेवा गंभीर प्रकृतिना
तेस्यो हुता हर्ष शोक आदिना कारणो आवी जता पणु तेमना चित्तमा डोड
पणु नतनेो विकार उत्पन्न थते नडोते (विहग इव सन्वओ विप्पमुक्का)
पक्षीनी पेठे तेस्यो नियमित निवासथी रहित हुता (मंदरो इव अप्पकंपा)
मेरु पर्वतनी पेठे परीपह तेमज उपसर्गइय पवनथी तेस्यो अचलित हुता
(सारयसलिलं व सुद्धहियया) शरद ऋतुना जलनी पेठे तेमना हृदय निर्मल
हुता (खग्गिविसाणं व एगजाया) खड्गी (गेडा)ना थीगडानी पेठे,

भारंडपक्षीव अप्पमत्ता, कुजरो इव सोडीरा, वसभो इव जाय-

व एगजाया' गडिगविपागमिपैरुजाता - उद्गी=आण्वर्जीव - तस्य विपाग शृद्ध, तदेकमेव भवति, तद्विप एकजाता - एकैभूता-गगानिसहायगृहिता, उदुन्वादिमाहायवर्जिता इत्यर्थ । 'भारंडपक्षीव अप्पमत्ता' भाण्डपक्षीयाऽप्रमत्ता - भाण्डपक्षी=भाण्डश्वामौपक्षी च भाण्डपक्षी, अयं विज्ञानकर्त्रिचरणान्न द्वाभ्या प्रीवाभ्या द्वाभ्या मुग्गभ्या च युक्त, द्वयोर्जाययोगक्रमेणोदर भवति, तौ चायन्तमप्रमत्तनयेन निराह लभेते । यदि रुदाचिदैवात् नैकौऽपि जीव प्रमादं कृति, तदा उभयोर्नाशो भवति, तस्मात् सर्वदा चकितचित्तौ प्रमादगृहितौ तौ तिष्ठत । तद्वदप्रमत्ता - तप मयमादिधर्मरक्षण प्रमादगृहिता इत्यर्थ । 'कुजरो इव सोडीरा' कुजर इव औगडीरा - हस्ताय शूरा - कृपायादिरिपुभञ्जनगीय । 'वसभो इव जायत्यामा' वृषभ इव जातस्थामान - जात स्थाम - वृष येषां ते जातस्थामान - वृषभसज्जातपराक्रमा

(गैडा) के सींग की तरह, ये रागादिकों की सहायता से गृहित होने के कारण, एक-स्वरूप थे। (भारंडपक्षीव अप्पमत्ता) भारंड पक्षी की तरह ये अप्रमत्त थे। यह पक्षी दो जीववाग होता है। उसके तीन पैर होते हैं। प्रीवा और मुग्ग उसके दो होते हैं। उदर अथाऽपट पकृही होता है। ये दोनों जीव अयत्त अप्रमत्त होते हैं। यदि रुदाचित्त एक जीव प्रमाद कर तो दोनों का नाश होवे। इसलिये अप्रमत्तचित्त होकर ये दोनों बहुत ही सावधानी से रहते हैं। उसी तरह ये मुनिजन भी तप एव सयमादिक धर्म के रक्षण करने में प्रमादवर्जित थे। (कुजरो इव सोडीरा) कुजर के समान ये कृपायागिक के भजन में औगडीर-शूरीर थे। (वसभो इव जायत्यामा) वृषभ के

तेषां रागादिदोनी सहायताया रक्षित होवाने कारणे, ऐक्यव्युत्प हुता (भारंड-पक्षीव अप्पमत्ता) भाण्ड पक्षीनी पेटे तेषां अप्रमत्त हुता आ पक्षी के लुपवाणा होय छे तेने त्रय पंग होय छे ओक अने मुष्प तेने के होय छे उदर (पेट) तेने ऐक्य छे ते अन्ने लुप अहु अप्रमत्त होय छे जे रुदाचित्त ऐक्य लुप प्रमाद (बुद्ध) उठे छे तो अन्नेना नाश थाय छे तेथी अप्रमत्तचित्त (चतुर) थधने ते अन्ने अहु ल सावधानीथी रह्ये छे तेवी ल गीते ऐ मुनिजनो पशु तप तेभल मयम आदि धर्मना रक्षण्युत्पवामा प्रमादगृहित हुता (कुजरो इव सोडीरा) कुजर (हाथी)नी पेटे तेषां उपाय आदिना लग (नाश) करवामा गौडीर-शूरीर हुता. (वसभो इव जायत्यामा) वृषभनी पेटे तेषां अलिप्त हुता (सीहो इव दुद्ध-

त्थामा, सीहो इव दुद्धरिसा, वसुंधरा इव सव्वफासविसहा,
सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलंता ॥ सू० २७ ॥

इत्यर्थ । 'सीहो इव दुद्धरिसा' मित्र इव दुर्द्धपा - मित्रपरीपटादिमूर्द्धर्द्धपा इत्यर्थ ।
'वसुंधरा इव सव्वफासविसहा' वसुंधरा इव सर्वस्पर्शादिपटा - गृह्या यथा सर्व सप्त-
मसहा वा स्पर्शा सहेते सर्वमहति चोच्यते तथैवैत सागरोऽपि अनुकूलप्रतिकूलपरीपटोपमर्मा
सुसहा भवति । 'सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलंता' सुहुतहुताशन इव तेजसा
ज्वलन्त - सुहुत = सुष्टु हुत - घृतापाहुतिभिस्तर्पितो यो हुताशनो वह्नि - तद्वत्तेजसा - तप -
सयमतेजसा ज्वलन्तो दीप्यमाना इति भाव ॥

अत्र उपमानसप्राहकम् इदं गाथाद्वयम् —

'कसे १ मसे २ जीपे ३, जचे ऋणगे य ४ आठरिसे ५ ।

कुम्मे ६ पुनरपरपते ७, गयणे ८ अगिले ९ य चद्र १० सुरे य ११ ॥

सागर १२ विहगे १३ मडर १४, सारयसल्लि च १५ रगगी य १६ ।

भारडे १७ गय १८ वसहे १९, सीह २० वसुंधरा २१ सुहुयहुए

२२ ॥ २ ॥ इति ॥ सू० २७ ॥

समान ये बलिष्ठ थे । (सीहो इव दुद्धरिसा) सिंह के समान ये दुर्धर्ष थे । सिंह जैसे
मृगादिकों से अप्रभृष्य होता है, उसी प्रकार मृग जैसे परीपटादिकों से ये भी चलितचित्त
नहीं होते थे । (वसुंधरा इव सव्वफासविसहा) पृथिवी के समान सर्वस्पर्शसह
थे । पृथिवी जिस तरह सहने योग्य अथवा नहा सहन करने योग्य ऐसे भी स्पर्श
को सहती है उसी प्रकार ये मुनिजन भी अनुकूल एव प्रतिकूल परीपटों के उपनिपात
को अच्छी तरह सहन करते थे (सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलता) सुहुत
अग्नि की तरह ये तप और सयम के तेज से देदीप्यमान थे ॥ सू० २७ ॥

रिसा) सिद्धना जेवा तेज्जो दुर्धर्षं इत्ता सिद्ध जेम मृग आदिजोथी अप
धृष्य डोय छे तेवी ज रीते मृगसमान परीपड आदिजोथी तेज्जो पणु अलित
चित्त थता नडोता (वसुंधरा इव सव्वफासविसहा) पृथिवीनी पेठे सर्व स्पर्श
सहन करता इत्ता पृथिवी जेम सडेवा योग्य अथवा न सहन करवा योग्य
जेवा पणु स्पर्शने सहन करे छे तेवी ज रीते जे मुनिज्जो पणु अनुक्षण
तेम ज प्रतिक्षण परीपडोना उपनिपात ने सारी रीते सहन करता इत्ता
(सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलता) सुहुत अग्निनी पेठे तेज्जो तप अने सयमना
तेज्जो देदीप्यमान इत्ता (सू० २७)

मूलम्—नत्थि णं तेसि णं भगवंताणं कत्थइ पडिवंधे भवइ । से य पडिवंधे चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा-दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ । दव्वओ णं-सच्चित्ताच्चित्तमीसिएसु

टीका—‘ नत्थि ’ इत्यादि । नास्ति अय पत्न, यत् खलु ‘ तेसि ण भगवताणं ’ तेषा खलु भगवताम्—श्रीमहावीरस्वामिन गिण्घ्याणाम् ‘ कत्थइ ’ इति—कस्मिन्-नपि विषये ‘ पडिवंधे भवइ ’ प्रतिवन्ध-आसक्ति भवतीति, श्री महावीर-स्वामिनोऽन्तेवासिना समयप्रतिवन्धीभूत कोऽपि हेतु कुत्रापि न भवतीति भाव । ‘ से य पडिवंधे चउव्विहे पण्णत्ते ’ स च प्रतिवन्धश्चतुर्विध प्रजप ‘ त जहा ’ तथया-भेद-प्रकारधे यम्—द्रव्यत क्षेत्रत कालतो भावतश्च । तेषु ‘ दव्वओ णं ’ द्रव्यत खलु ‘ सच्चित्ता-च्चित्त-मीसिएसु दव्वेसु ’ सच्चित्ताऽच्चित्त-मिश्रितेषु द्रव्येषु । तत्र-सच्चित्त=गिण्घ्यादिकम्, अच्चित्त=वत्थात्तिकम्, मिश्रितम्=गिण्घ्यसहितवत्थात्तिकम्, एतेषु द्रव्येषु, ‘ खेत्तओ ’ क्षेत्रत -

‘ नत्थि णं ’ इत्यादि ।

(तेसि णं भगवताणं) भगवान महावीर के समीप मे रहनेवाले उन स्थविर भगवन्तो का (कत्थइ) किसी भी विषय में (पडिवंधे) प्रतिबंध (नत्थि) नहीं था । अर्थात् भगवान् वीर प्रभु के ये समस्त मुनिजन समय के विघातक किसी भी विषय में आसक्ति नहीं रखते थे । (से य पडिवंधे चउव्विहे पण्णत्ते) वह प्रतिबंध चार प्रकार का कहा गया है, (तजहा) वह इस प्रकार है—(दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ) द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से एवं भाव से । (दव्वओ णं सच्चित्ता-च्चित्त-मीसिएसु दव्वेसु) द्रव्य से प्रतिबंध ३ प्रकार का है—(१) सच्चित्त (२) अच्चित्त (३) सच्चित्ताच्चित्त ।

‘ नत्थि णं ’ इत्यादि

(तेसि णं भगवताणं) भगवान महावीरना समीपमा रहेवावाणा ते स्थविर भगवतोने (कत्थइ) केऽपि विषयमा (पडिवंधे) प्रतिवन्ध (नत्थि) न होतो, अर्थात्-भगवान् वीरप्रभुना ते समस्त मुनिजनो समयमना विघातक कोऽपि कोऽपि विषयमा आसक्ति राधता नहोता (से य पडिवंधे चउव्विहे पण्णत्ते) ते प्रतिवन्ध चार प्रकारना कहेला छे (तजहा) ते आ प्रकारे छे (दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ) द्रव्यथी, क्षेत्रथी, कालथी तेभञ्ज लावथी (दव्वओ णं सच्चित्ता-च्चित्त-मीसिएसु दव्वेसु) द्रव्यथी प्रतिवन्ध त्रयु प्रकारेना (२) अच्चित्त, (३) सच्चित्ताच्चित्त, शिष्य आदिक् सच्चित्त छे

त्थामा, सीहो इव दुद्धरिसा, वसुंधरा इव मन्व्यफासविमहा,
सुहृयहुयासणो इव तेयसा जलन्ता ॥ सू० २७ ॥

इत्यर्थः । 'सीहो इव दुद्धरिसा' सिंह इव दुर्दशा - मित्रपरीपहादिगूर्गैर्दुर्धर्षा इत्यर्थः ।
'वसुंधरा इव सन्वफासविमहा' वसुंधरा इव सर्वस्पर्शीपहा - पृथ्वी यथा मयं सप्त-
मसल वा स्पर्श सहते सर्वमद्वनि चोच्यते तथैत माग्नेऽपि अनुकूलप्रतिकूलपरीपहोपसर्ग
सुसहा भवति । 'सुहृयहुयासणो इव तेयसा जलन्ता' सुहृत्तुनाशन इव तेजसा
ज्वलन्त - सुहृत् = सुष्टु हृत् - घृताग्नाहुतिभिस्तर्पितो यो हुताशनो वह्नि - तद्भक्तेजसा - तप -
सयमतेजसा ज्वलन्तो दीप्यमाना इति भावः ॥

अत्र उपमानसम्राहकम् इदं गद्याद्वयम् —

'कसे १ मजे २ जीवे ३, जच्चे ऋणगे य ४ आदरिसे ५ ।

कुम्भे ६ पुस्वरपत्ते ७, गयणे ८ अगिले ९ य चङ् १० मृं य ११ ॥

सागर १२ विहगे १३ मडर १४, सारयसल्लि च १५ सग्गी य १६ ।

भारडे १७ गय १८ वसहे १९, सीह २० वसुंधरा २१ सुहृयहुए

२२ ॥ २ ॥ इति ॥ सू० २७ ॥

समान ये बलिष्ठ थे । (सीहो इव दुद्धरिसा) सिंह के समान ये दुर्धर्ष थे । सिंह जैसे
मृगादिकों से अप्रवृष्य होता है, उसी प्रकार मृग जैसे परीपहादिकों से ये भी चलितचित्त
नहीं होते थे । (वसुंधरा इव सन्वफासविमहा) पृथिवी के समान सर्वस्पर्शसह
थे । पृथिवी जिस तरह सहने योग्य अथवा नहीं सहन करने योग्य ऐसे भी स्पर्श
को सहती है उसी प्रकार ये मुनिजन भी अनुकूल एव प्रतिकूल परीपहों के उपनिपात
को अच्छी तरह सहन करते थे (सुहृयहुयासणो इव तेयसा जलन्ता) सुहृत्
अग्नि की तरह ये तप और सयम के तेज से देदीप्यमान थे ॥ सू० २७ ॥

रिसा) सिंहना जेवा तेजो दुर्धर्ष होता सिंहा जेभ मृग आदिदेधी अथ
धृष्य होय छे तेवी ज रीते मृगसमान परीपह आदिदेधी तेजो पथु चलित
चित्त थता नहोता (वसुंधरा इव सन्वफासविमहा) पृथिवीनी पेटे सर्व स्पर्श
सहन करता हुता पृथिवी जेभ मडेवा योग्य अथवा न सहन करता थोवा
जेवा पथु स्पर्शने सहन करे छे तेवी ज रीते जे मुनिजने पथु अनुकूल
तेभ ज प्रतिकूल परीपहोना उपनिपात ने सानी रीते सहन करता हुता
(सुहृयहुयासणो इव तेयसा जलन्ता) सुहृत् अग्निनी पेटे तेजो तप अने सयमना
तेजधी देदीप्यमान हुता (सू० २७)

मूलम्—नत्थि णं तेसि णं भगवंताणं कत्थइ पडिवंधे भवइ । से य पडिवंधे चउव्विहे पण्णत्ते; तंजहा-दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ । दव्वओ णं-सच्चित्ताच्चित्तमीसिएसु

टीका—‘ नत्थि ’ इत्यादि । नास्ति अय पक्ष, यत् खलु ‘ तेसि ण भगवताण ’ तेषा खलु भगवताम्—श्रीमहावीरस्वामिन गिण्याणाम् ‘ कत्थइ ’ चापि—कम्मिन्नपि विषये ‘ पडिवंधे भवइ ’ प्रतिपन्न—आसक्ति भवतीति, श्री महावीर-स्वामिनोऽन्तेयामिना सयमप्रतिपन्न-भीभूत कोऽपि हेतु कुत्राऽपि न भवतीति भाव । ‘ से य पडिवंधे चउव्विहे पण्णत्ते ’ स च प्रतिपन्नश्चतुर्विध प्रजम् ‘ त जहा ’ तदथा-भेद-प्रकारश्चेत्यम्—द्रव्यत क्षेत्रत कालतो भावतश्च । तेषु ‘ दव्वओ णं ’ द्रव्यत खलु ‘ सच्चित्ता-चित्त-मीसिएसु दव्वेसु ’ सच्चित्ताऽचित्त-मिश्रितेषु द्रव्येषु । तत्र—सच्चित्त=गिण्यादिकम्, अचित्त=ब्रह्मादिकम्, मिश्रितम्=गिण्यसहितवत्त्वादिकम्, एतेषु द्रव्येषु, ‘ खेत्तओ ’ क्षेत्रत —

‘ नत्थि णं ’ इत्यादि ।

(तेसि ण भगवताण) भगवान् महावीर के समीप में रहनेवाले उन स्थविर भगवन्तो का (कत्थइ) किसी भी विषय में (पडिवंधे) प्रतिबन्ध (नत्थि) नहीं था । अर्थात् भगवान् वीर प्रभु के ये समस्त मुनिजन सयम के विघातक किसी भी विषय में आसक्ति नहीं रखते थे । (से य पडिवंधे चउव्विहे पण्णत्ते) वह प्रतिबन्ध चार प्रकार का कहा गया है, (तजहा) वह इस प्रकार है—(दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ) द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से एव भाव से । (दव्वओ ण सच्चित्ता-चित्त-मीसिएसु दव्वेसु) द्रव्य से प्रतिपन्न ३ प्रकार का है—(१) सच्चित्त (२) अचित्त (३) सच्चित्ताचित्त ।

‘ नत्थि ण ’ इत्यादि

(तेसि ण भगवताण) भगवान् महावीरना समीपमा रहनेवाला ते स्थविर भगवतोने (कत्थइ) कौटुम्भिक विषयमा (पडिवंधे) प्रतिबन्ध (नत्थि) न होतो, अर्थात्—भगवान् वीरप्रभुना ते समस्त मुनिजनो सयमना विघातक होय अथवा कौटुम्भिक विषयमा आसक्ति गणता नहोता (से य पडिवंधे चउव्विहे पण्णत्ते) ते प्रतिबन्ध चार प्रकारना छेला छे (तजहा) ते आ प्रकारे छे (दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ) द्रव्यथी, क्षेत्रथी, कालथी तेभञ्ज लावथी (दव्वओ णं सच्चित्ता-चित्त-मीसिएसु दव्वेसु) द्रव्यथी प्रतिबन्ध त्रय प्रकारना छे—(१) सच्चित्त, (२) अचित्त, (३) सच्चित्ताचित्त, शिष्य आदिऽ सच्चित्त छे

दब्बेसु । खेतओ—गामे वा णयरे वा रण्णे वा खेत्ते वा खले वा घरे
वा अंगणे वा । कालओ—समए वा आवलियाए वा आणा-

‘गामे वा’ गामे वा, ‘णयरे वा’ नगरे वा ‘रण्णे वा’ अण्ये वा, ‘खेत्ते वा’ क्षेत्रे वा, खले= गायम
दत्तसगोत्रस्थाने वा, ‘घरे वा अंगणे वा’ गृहे वाऽङ्गणे वा । ‘काठओ समए वा आवलियाए
वा’ काल-समये सर्वातो जय्ये काले, ममयस्य विस्तृतोऽर्थ उपासरुद्दशाग्गामागधर्ममज्जावनी-
वृत्तिनोऽससेय । ‘आवलिकायाम्’ अन्वयात्समय रूपायाम् । ‘आणापाणुए वा’ आनप्राणे वा=

शिष्यादिक सचिन है । वखादिक अजीव पदार्थ अचित्त है । शिष्यसहित वखादिक
सचित्ताचित्त हैं । इनमें इन मुनिजनों को बिलकुल भी आमक्ति नहीं थी । (खेतओ
गामे वा णयरे वा रण्णे वा खेत्ते वा खले वा घरे वा अंगणे वा) इसी तरह क्षेत्र की
अपेक्षा—ग्राम में, नगर में, जंगल में, क्षेत्र में, खल—गत्यादिक के कूटने और फटकने के
स्थान ऐसे खलिहान में, घर में अथवा आगन में प्रतिषेध नहीं था । (कालओ
समए वा आवलियाए वा आणापाणुए वा थोवे वा लवे वा सुहुत्ते
वा अहोरत्ते वा पक्खे वा मासे वा अयणे वा अण्ययरे वा दीहकालसजोगे)
कालकी अपेक्षा से समय—सब से छोटे काल में, इस समय और कालका विस्तृत
अर्थ ‘उपासरुद्दशाग्ग’ की ‘अगारधर्मसज्जीवनी’ वृत्ति में कहा है, वहा से जान लेना चाहिये ।
आवलिका में, अन्वयात् समयकी एक आवलिका होती है, उच्छ्वामनिश्वासकालरूप
आनप्राण में, स्तोत्रमे—सप्तप्राणप्रमाणजाले कालविशेषमे—मात उच्छ्वासमे, लवमे—सात-

पश्चादिक अलव पदार्थ अचित्त छे शिष्यसहित पश्चादिक सचित्ताचित्त छे
तेमा अये सुनिज्जोने भिलकुल न आभक्ति नछोती (खेतओ गामे वा णयरे
वा रण्णे वा खेत्ते वा खले वा घरे वा अंगणे वा) तेवी न रीते क्षेत्रनी
अपेक्षा—ग्राममा, नगरमा, न जंगलमा, जेतणमा, खल—धान्य वगेरेने कूटवा
भाउवाना स्थानभूत अवेवा अलिहानमा, घरमा, आगण्णामा प्रतिषेध नछोती
(कालओ समए वा आवलियाए वा आणापाणुए वा थोवे वा लवे वा सुहुत्ते
वा अहोरत्ते वा पक्खे वा मासे वा अयणे वा अण्ययरे वा दीहकालसजोगे) कालनी
अपेक्षाअये समय—सौथी थोडा कालमा (या समय अने कालने विस्तृत
अर्थ ‘उपासरुद्दशाग्ग’ ‘अगारधर्मसज्जीवनी’ वृत्तिमा कहेवे छे तथा
नछोती वेवे नेधअये), आवलिकामा (असन्वयात् समयनी अेक आवलिका थाय
छे), उच्छ्वास—निश्वास—कालरूप आनप्राणमा, स्तोत्रमा—सप्तप्राणना प्रमाण

पाणुए वा थोवे वा लवे वा मुहुत्ते वा अहोरत्ते वा पक्खे वा मासे
वा अयणे वा अण्णयरे वा दीहकालसंजोगे । भावओ-कोहे वा
माणे वा मायाए वा लोहे वा भए वा हासे वा । एवं तेसिं ण भवइ
॥ सू० २८ ॥

उद्धमनि चासकाल इत्यर्थ, 'थोवे वा' स्तोके वा=सप्तप्राणमाने वा कालविशेषे,
'सप्त पागाणि से योरे' इयुक्ते । 'लवे वा'-'सप्त थोवाणि से लवे'
इति सप्तस्तोक्रमिते काले वा, 'मुहुत्ते वा' मुहूर्ते वा-लगाना सप्तमतिप्रमाणे काले,
'अहोरत्ते वा' अत्रोत्रे वा-रात्रिद्विसप्तप्रमाणे काले वा, 'पक्खे वा' पक्षे-पञ्चदशद्विसप्त-
प्रमाणके काले वा 'मासे वा' त्रिंशद्विसप्तप्रमाणके काले वा, 'अयणे वा' अयने-
उत्तरायणदक्षिणायनमेढ्रादद्वित्रिषे षण्मासप्रमिते काले वा, 'अण्णयरे वा दीहकालसंजोगे'
अयतरस्मिन् वा दीर्घकालमयोगे-उक्तप्रमेदाद् भिन्ने वा सप्तसरादिरूपे काले । 'भावओ'
मासत - 'कोहे वा' कोधे वा 'माणे वा'-माने वा, 'मायाए वा'-मायाया वा, 'लोहे वा'
लोभे वा 'भए वा' भये वा, हासे वा । 'एव तेसिं ण भवइ' एव तेषा न भवति,
एव-पूर्ववर्णितप्रकारेण तत्र तत्र प्रतिबन्ध-आसक्तिस्तेषा मुनीना न भवति ॥ सू० २८ ॥

स्तोके अर्थात् ४९ उच्छ्वास-प्रमित कालमें, मुहूर्त्तम्-७७ लवोसे प्रमित कालमें, अहो-
रात्रम्, पक्ष-१५ दिनके कालमें, मास-३० दिन-प्रमाण समयमें, अयनमें-उत्तरायण-
दक्षिणायन रूप उ छ महित्तोमें, एव और भी सप्तसरादिरूप वृहत्समयमें प्रतिबन्ध नहीं था ।
(भावओ) भावकी अपेक्षासे (कोहे वा माणे वा मायाए वा लोहे वा भए वा हासे वा
एव तेसिं ण भवइ) कोपमें, मानमें, मायामें, लोभमें, भयमें, अथवा हास्यमें उन
मुनिजनोंको किसीभी तरहका प्रतिबन्ध नहीं था ॥ सू० २८ ॥

बेटला काणविशेषमा-सात उद्धममा, लवमा-सात स्तोके अर्थात् ४९
उद्धमसना प्रमाणना काणमा, मुहूर्त्तमा-७७ लवोधी प्रमित काणमा, अण्डो-
गत्रिमा, पक्ष-१५ द्विसना काणमा, मास-३० द्विसना समयमा, अयनमा-
उत्तरायण-दक्षिणायनइय छ छ महिनामा, तेमञ्ज जीवपणु सप्तसर आदिइय
लाणा समयमा प्रतिबन्ध नहोतो (भावओ) लावनी अपेक्षासे (कोहे वा
माणे वा मायाए वा लोहे वा भए वा हासे वा एव तेसिं ण भवइ) कोधमा,
मानमा, मायामा, लोभमा, लयमा अथवा हास्यमा ते मुनिज्जोने कोध पणु
तरहेने प्रतिबन्ध नहोतो (सू २८)

मूलम्—ते णं भगवंतो वासावासवज्जं अट्ट गिम्हहेमतियाणि
मासाणि गामे एगराइया णयरे पंचराइया, वासीचंदणसमाण-

‘ते ण, भगवतो’ इत्यादि। ते=श्रीवर्षमानस्वामिन णिप्या रगु भगवतो
‘वासावासवज्ज’ वर्षावासवर्षम् ‘अट्ट गिम्हहेमतियाणि’ अष्टौ ग्रैम्हहेमन्तिकान ‘मासाणि’
मासान्, ‘गामे एगराइया’ ग्रामे एकरात्रिका—यस्मिन् द्विवसेऽनगारा ग्राममागच्छन्ति स
दिवस पुनर्यात्रान्तर्गते तावपर्यन्त काल एकरात्रयदेन गृह्यते, तेनैकसमाहृतिनासिन इत्यर्थः।
‘णयरे पंचराइया’—नगरे पञ्चरात्रिका—यस्मिन् द्विवसेऽनगारा नगरमागच्छन्ति स द्विवस
पञ्चवारमावर्तितं पञ्चरात्रमुच्यते, तेनैकौनत्रिगदिसनामिन इत्यर्थः। स्थविरकल्पिना उपकाले
एकस्मिन् नगरे मासकल्पविहारिणात्। ‘वासी—चदण—समाण—रूप्पा’ वासी—चन्दन—
समान—कल्पा, वासी—‘वसुला’ इति प्रसिद्ध काष्ठतक्षणशस्त्रविशेष, वासीय वासी अपकारी,
ता चन्दनसमान—चन्दनवत् कल्पयन्ति=मन्यन्ते ये ते वासीचन्दनसमानकल्पा—अपकारिण-
मप्युपकाररूत्वेन मन्यमाना इत्यर्थः। तथा चोक्तम्—

‘तेण भगवतो’ इत्यादि,

(तेण भगवतो) वर्द्धमान स्वामी के षे सयमी णिप्यजन (वासावासवज्ज)
वर्षाकाल—चौमासा ठोडकर (अट्ट गिम्हहेमतियाणि मासाणि) ग्रीष्मकाल एव शीत-
कालके ८ महानामे (गामे) छोटे गाममें (एगराइया) एकरात्रिपर्यन्त—एक सप्ताह तक
और (णयरे) नगरमें (पंचराइया) पांच रात्रितक—२९ दिवस—पर्यन्त ठहरते थे।
(वासी—चदण—समाण—रूप्पा) ये अपने अपकाराजनको भी उपकारीरूपसे मानते थे।
अथवा कोई चाहे इन्हे वसुलासे छान्ने, चाहे चदनसे चर्चे, दोनों पर समान दृष्टि रखते
थे। कहा भी है

‘तेण भगवतो’ इत्यादि

(तेण भगवतो) वर्द्धमान स्वामीना ते सयमी शिष्यजनो (वासावास-
वज्ज) वर्षाकाल—चौमासु ठोडीने (अट्ट गिम्हहेमतियाणि मासाणि) ग्रीष्मकाल
तेभ्यः शीतकालना आठ महिनामा (गामे) नाना गाममा (एगराइया)
अष्ट रात्रि सुधी—अष्ट अठवाडीया सुधी, अने (णयरे) नगरमा (पंचराइया)
पाच रात्रि सुधी—२९ दिवस सुधी राजता हुता (वासीचदणसमाणकल्पा) ते
चोताना अपकारीजनोने पणु उपकारीरूप गणुता हुता अथवा कोर्छे लक्षे
तेभ्यो वासलाधी छोडे डे लक्षे चदनथी अर्थे जेउपर समान दृष्टि राधता
हुता कहुं पणु छे—

“ यो मामपकरोत्येप, तत्त्वेनोपकरोत्यसौ ॥

शिरामोक्षाद्युपायेन, कुर्वाण इव नीरुजम् ॥ ” इति ॥

यदा-वास्या चन्तनसमान कल्प आचारे येषां ते वासीचन्दनसमानकल्पा,

यो मामपकरोत्येप तत्त्वेनोपकरोत्यसौ ।

शिरामोक्षाद्युपायेन, कुर्वाण इव नीरुजम् ॥ १ ॥

सज्जनोका जन्म कोई मनुष्य अपकार करता है, तब वे ऐसा समझते हैं कि यह जो मेरा अपकार है सो तो वस्तुतः उपकारी ही है। क्या कि इसके अपकार से हमारी सहनशीलता आदि गुणोंका परीक्षा होता है, शत्रु-भित्रमं, निन्दा-स्तुति-आदिमें सम-दृष्टिता बढ़ती है। अतः यह मेरा अपकारी नहीं, प्रत्युत उपकारी है। जैसे किसीकी गर्दनकी नस यदि चढ़ जाती है, उसको यथास्थानमें बैठानेके वैद्य उसका शिर पकड़-कर बायें-दायें घुमाता है, उस समय रोगीको पीडा होती है, परन्तु नसके अपने स्थान पर बैठ जाने पर पीडितकी पीडा शान्त हो जाती है, वह नीरोग हो जाता है, उसी प्रकार अपकारी भी अपकारके द्वारा सज्जनोकी आत्माको, जो अनाविकालसे स्व-स्थानच्युत हो ससारमें भ्रमण कर रही है, स्वस्थानमें स्थित करता है। इसलिये सज्जन अपने अपकारीको उपकारीही मानते हैं, उस पर आक्रोश कभी भी नहीं करते

यो मामपकरोत्येप तत्त्वेनोपकरोत्यसौ ।

शिरामोक्षाद्युपायेन कुर्वाण इव नीरुजम् ॥ १ ॥

सज्जनोको कोई मनुष्य क्यारे अपकार करे छे त्यारे तेओओ ओभ सभजे छे के आ के अमारो अपकारी छे ते तो अगरीते उपकारी ज छे केभके तेना अपकारथी अमागी महुनशीलता आदिशुष्णोनी परीक्षा थाय छे, शत्रु-भित्रमा, निन्दा-स्तुति आदिमा समदृष्टिपक्षु वधे छे तेथी ते अमारो अपकारी नथी, परतु उपकारी छे केभजे कोछनी गरदननी नस जे यडी जय छे तो ते अरापर ठेकाछे जेसाडी देवाने माटे वैद्य तेनु माथु पक-डीने जमल्लु-डालु इरेवे छे ते वणते रोगीने पीडा थाय छे, परतु नसने पोताने ठेकाछे जेनी जवाथी ते रोगीनी पीडा शात थध जय छे, अने ते निरोगी थध जय छे तेवीज रीते अपकारी पक्षु अपकारद्वारा सज्जनोना आत्माने-जे के अनाविकालथी पोताना स्थानथी च्युत थध ससारमा भ्रमल्लु कसी रहडेओ छे तेने-पोताना स्थानमा स्थिर करे छे तेथी सज्जन पोताना अपकारीने उपकारीज माने छे तेना पर शुष्मो वदी पक्षु करता नथी

कप्पा समलेदुकंचणा समसुहदुक्खा इहलोग-परलोग-अप्पडिबद्धा
संसारपारगामी कम्मणिग्घायणद्वारे अब्भुट्टिया विहरंति ॥सू. २९॥

तथाचोक्तम्—

“अपकारपरेऽपि परे, कुर्वन्त्युपकारमेव हि महान्तः ।

सुरभीकरोति वासी, मलयजमपि तक्षमाणमपि ॥” इति ।

‘समलेदुकंचणा’ समलेदुकाचना =लेष्टु -मृत्तिकाराण्ड, फाखन-सुवर्ण, ते उभे ममे
तुन्ये’येषा ते तथा, ‘समसुहदुक्खा’ समसुहदुखा, सुते दुते च समानपणिगामा

है, अथवा-वासी-अपकारीमें चदनके समान है आचार जिनका ऐसे वे साधुजन थे।
चदन वासी द्वारा-वसूला द्वारा-काट जाने पर भी वसूलके मुखको सुवासित करता है।
रुहा भी है-

अपकारपरेऽपि परे, कुर्वन्त्युपकारमेव हि महान्तः ।

सुरभीकरोति वासी मलयजमपि तक्षमाणमपि ॥ १ ॥

तथा दुष्ट-स्वभाववाले मनुष्य यद्यपि सज्जनोंका निरन्तर अपकार ही करते रहते हैं,
तो भी वे सज्जन उन अपकारियों पर कभी भी क्रुद्ध नहीं होते हैं, उनका कभी भी अपकार
नहीं करते हैं। प्रत्युत वे अपकारियोंका भी उपकार ही करते हैं। जैसे चदनवृक्ष अपने
अङ्गको काटनेवाले मनुष्यको, काटने के साधन कुठारके मुखको भी सुरमित्त ही करता है ॥१॥

(समलेदुकंचणा) पापाण और सुवर्ण इन दोनों को बराबर समझते थे। (समसुह-

अथवा वासी-अपकारी प्रति चदनना सरजो आचार छे जेभनो जेवा ते
साधुजनो हुता चदन वासीद्वारा-वासलाथी कपाध जवा छता पणु वासलाना
सुभने सुवासित करे छे कहु पणु छे—

अपकारपरेऽपि परे, कुर्वन्त्युपकारमेव हि महान्तः ।

सुरभीकरोति वासी मलयजमपि तक्षमाणमपि ॥

तथा ते दुष्ट स्वभाववाणा मनुष्य जे ते सज्जनोने उभेश अपकार ज
ठ्यां करे छे तो पणु ते सज्जनो ते अपकारीजो उपर कही पणु डोध करता
नथी, कही पणु तेभनो अपकार करता नथी, परंतु ते अपकारीजो उपर पणु
उपकार ज करे छे जेभ चदनवृक्ष पोताना अगने कापवावाणा मनुष्यने,
अने कापवाना साधन कुठाराना सुभने पणु सुगंधित करे छे (१) (समलेदु-
कंचणा) पापाण अने सुवर्ण जे जनेने जराजर समजता हुता (समसुह-

मूलम्—तेसि णं भगवताणं एएणं विहारेणं विहरमा-

इयर्थे । 'इहलोग-परलोग-अप्पडिवद्धा' इहलोकपरलोकाऽप्रतिवद्धा - लोकरुदयसुखासक्तिरहिता, 'ससार-पार-गामी' ससार-पार-गामिन-भयसमुद्रत स्वपरामतारका, 'कम्मणिग्वायणट्ठाए अब्भुट्ठिया विहरति' कर्मनिघातनार्थमभ्युथिता - सकलकर्मनिर्जरणार्थं वृत्तोद्यमा विहरन्ति ॥ सू० २९ ॥

टीका—'तेसि ण' इत्यादि । तेषा श्रीमहावीरस्वामिशिष्याणां 'भगवताण' भगवता-तप-यमशोभाशान्तिनाम्, 'एएण विहारेण विहरमाणाण' एतेन विहारेण विहस्ताम्-तत्र विहार = विचरण-मुनिचर्या, यद्वा विविधैरनेकरूपकारैरुपभ्रिभारवहन-पादचलन-परोपहसहनादिक्रमैः कायकलेऽत्रैः कर्माणि हियन्तेऽनेनेति विहार, एतेन विहारेण-ग्रामनगरा-

दुःखा) सुख एव दुःखमे समान परिणाम वाले थे । सुखमें हर्ष एव दुःखमें विषाद इस प्रकार विषमता लिये इनके परिणाम नहीं थे । (इहलोग परलोग-अप्पडिवद्धा) इस लोक-यज्ञो एव परलोक यज्ञो सुराकी आसक्ति इनके हृदयमें नहीं थी । (संसार-पारगामी) ये भयरूपी समुद्रको तिरनेवाले थे । (कम्मणिग्वायणट्ठाए अब्भुट्ठिया विहरति) समस्त कर्मोंकी निर्जरा करनेके लिये ही सयमाराधनमे तत्पर होकर विचरते थे ॥ सू० २९ ॥

'तेसि ण भगवताण' इत्यादि,

(तेसि ण भगवताण) महावीर स्वामाके इन स्थविर भगवन्तोका जो (एएण विहारेण विहरमाणाण) इस प्रकारके विहार करते थे । विहार शब्दका अर्थ मुनिचर्या

दुःखा) सुख तेमञ्ज दुःखमा नमान परिष्ठाभवाणा इता सुखमा दुर्ष तेमञ्ज दुःखमा विषाद (शोड) येवी विषमता तेमनामा नडोती (इहलोग-परलोग-अप्पडिवद्धा) आ लोड-सणधी तेमञ्ज परलोड-सणधी सुखोनी आसक्ति तेमना दुःखमा नडोती (संसारपारगामी) तेओ लवड्डी समुद्रने तस्वावाणा इता (कम्मणिग्वायणट्ठाए अब्भुट्ठिया विहरति) समस्त कर्मोनी निर्जरा करवा माटे ञ् सयम-आराधनमा तत्पर थडने विचरता इता (सू २९)

'तेसि ण भगवताणं' इत्यादि,

(तेसि ण भगवताण) ये महावीर स्वामीना ते स्थविर भगवतो (एएण विहारेण विहरमाणाण) आ प्रकारे विहार करते इता, विहार शब्दने

जहा—इत्तरिण य १ आवकहिण य २ । से किं तं इत्तरिण ? इत्तरिण अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—चउत्थभत्ते १ छट्ठभत्ते २ अट्ठमभत्ते

रिक् च—एति—गच्छति तच्छीग्म् इत्तर, तदेव—इत्तरिक्म्—अन्यत्रिक्म्, यथा श्रीमहावीर-
स्वामिनस्तीर्थे नमस्कारसहितप्रयाग्नानकाजदारम्य पम्भामपर्यन्तम्, श्रीनाभेयतीर्थेद्वर-
तीर्थे गवसरपर्यन्तम्—इति १ । 'आयकहिण य' याव कथिकवच—यावत्—यदवधिर्मनुष्योऽ-
यमिति मुख्यव्यवहाररूपा कथा यात्रकथा, तत्र भव गात्र कथिक—जीवनपर्यन्तम् अनगनमिति ।
अनयोरित्तरिक् पृच्छति—'से किं त इत्तरिण' अथ किन्तद इत्तरिक्म्, अम्योत्तरमाह—
'इत्तरिण अणेगविहे पण्णत्ते' इत्तरिक्म् अनकथि प्रज्ञपम्, 'त जहा'—तद्यथा—तानि
यदूपाणि सन्ति तथा कथयति—'चउत्थभत्ते' चतुर्थभक्तम्—एक उपवासम् १ । 'छट्ठभत्ते'
षष्ठभक्तम्—निरन्तरदिनद्वयोपवासरूपम् २ । 'अट्ठमभत्ते' अष्टमभक्त—निरन्तरदिनत्रयोपवासरू-

स्वामी के तीर्थ में इत्तरिक् तप नमस्कारसहित—नौकारसी प्रत्याग्यान काळ से लेकर उह
मांसपर्यन्त का कहा गया है । श्री आदिनाथ तीर्थकर के शासनमें इसका मर्यादा नौका-
रसी से लेकर एकवर्ष पर्यन्त का थी । शेष २२ तीर्थकरों के शासनमें अष्टमास पर्यन्त इसकी
अवधि थी । (से किं त इत्तरिण ?) इत्तरिक् तप क्या है ? उत्तर—(इत्तरिण अणेग-
विहे पण्णत्ते) यह इत्तरिक् तप अनेक प्रकार का चहा गया है, (त जहा) वे प्रकार ये हैं—
(चउत्थभत्ते छट्ठभत्ते अट्ठमभत्ते दसमभत्ते बारसभत्ते चउदसभत्ते सोलसभत्ते अट्ठमासिय-
भत्ते मासियभत्ते दोमासियभत्ते तेमासियभत्ते चउमासियभत्ते पचमासियभत्ते छम्मा-
सियभत्ते) चतुर्थभक्त—एक उपवास, षष्ठभक्त—दो उपवास—निरन्तर—लगातार—दो दिन का
उपवास, अष्टमभक्त—निरन्तर तीन दिन तक उपवास, दशमभक्त—चार—उपवास—लगातार

स्वामीना तीर्थमा धत्तरिक् तप नमस्कारसहित—नौकारसी प्रत्याग्यानकालधी
लधने छ मास सुधीनु कडेलु छे श्री आदिनाथ तीर्थ करना समये तीर्थमा
तेनी मर्यादा नौकारसीधी लधने अेक वर्ष सुधीनी हुती पाडीना २२ तीर्थ-
कराना तीर्थमा ८ मास सुधीनी तेनी अवधि हुती (से किं तं इत्तरिण ?)
धत्तरिक् तप शु छे ? उत्तर—(इत्तरिण अणेगविहे पण्णत्ते) आ धत्तरिक् तप
अनेक प्रकारनु कडेलु छे, (तजहा) ते आभ छे (चउत्थभत्ते छट्ठभत्ते अट्ठम
भत्ते दसमभत्ते बारसभत्ते चउदसभत्ते सोलसभत्ते अट्ठमासियभत्ते मासियमभत्ते
दोमासियभत्ते तेमासियमभत्ते चउमासियमभत्ते पचमासियभत्ते छम्मासियभत्ते)
चतुर्थ—लक्ष्म अेक उपवास, षष्ठलक्ष्म—दो उपवास—निरन्तर—लगातार दो दिव-
सनी उपवास, अष्टमलक्ष्म—अेक साथे त्रयुदिवसनी उपवास—त्रयु उपवास, दशम

३ दसमभक्ते ४ वारसभक्ते ५ चउदसभक्ते ६ सोलसभक्ते ७ अद्ध-
मासियभक्ते ८ मासियभक्ते ९ दोमासियभक्ते १० तेमासियभक्ते ११
चउमासियभक्ते १२ पंचमासियभक्ते १३ छम्मासियभक्ते १४,

पम् ३ । 'दसमभक्ते' दशमभक्तम्—निरन्तरदिनचतुष्टयोपवासरूपम् ४ । 'वारसभक्ते' द्वादश-
भक्तम्—निरन्तरदिनपञ्चक्रोपवासनम् ५ । 'चउदसभक्ते' चतुर्दशभक्तम्—निरन्तरदिनसप्त-
क्रोपवासरूपम् ६ । 'सोलसभक्ते' षोडशभक्तम्—निरन्तरदिनसप्तक्रोपवासरूपम् ७ । 'अद्धमासिय-
भक्ते' अर्द्धमासिकभक्तम्—निरन्तरपञ्चदशदिनसप्तोपवासरूपम् ८ । 'मासियभक्ते' मासिकभक्तम्—
निरन्तरत्रिंशदिनोपवासरूपम् ९ । 'दोमासियभक्ते' द्वैमासिकभक्तम् 'तेमासियभक्ते' त्रैमा-
सिकभक्तम् । 'चउमासियभक्ते' चातुर्मासिकभक्तम् । 'पंचमासियभक्ते' पाञ्चमासिकभक्तम् ।
'छम्मासियभक्ते' षाण्मासिकभक्तम् । 'से त इत्तरिए' तदेतदिवरिकम् । 'से किं त
'आवकहिए' अथ किन्तद् यावत्कथिकम् 'आपकहिए' यावत्कथिकम्—यावत्—यदवधि

४ दिन के उपवास, द्वादशभक्त—पाँच उपवास—लगातार पाँच दिन तक उपवास, चतुर्दशभक्त-
उ उपवास—लगातार ६ दिनतक उपवास करना, षोडशभक्त—७ दिन उपवास—लगातार ७
दिनतक उपवास करना, अर्द्धमासिकभक्त—निरन्तर—लगातार १५ दिनतक उपवास करना,
मासिकभक्त—लगातार एक महीने भरके उपवास करना, द्वैमासिकभक्त—लगातार एकही साथ
दोमास के उपवास, त्रैमासिकभक्त—लगातार—एकही साथ ३ मास के उपवास, चातुर्मा-
सिकभक्त—लगातार—एकहीसाथ चार महिने का उपवास, पाञ्चमासिकभक्त—पाँच महिने के
लगातार उपवास, और षाण्मासिकभक्त—लगातार छह महिने के उपवास करना । यह सब
इत्वरिक नामका अनशन तप है । यावत्कथिक का मतलब है—जतक " यह मनुष्य है " इस

लक्षत—चार उपवास—ऐक साथे ७ चार दिवसने उपवास, द्वादशलक्षत—पाच उप-
वास—ऐकसाथे पाच दिवस सुधी उपवास, चतुर्दशलक्षत—ऐक साथे ६ दिवसो
सुधी उपवास करवो, षोडशलक्षत—७ दिवस ऐक साथे उपवास करवो, अर्ध-
मासिकलक्षत निरन्तर ऐक साथे १५ दिवस सुधी उपवास करवो, मासिकलक्षत—
ऐक साथे ऐक महिना सुधी उपवास करवो, द्वैमासिकलक्षत—ऐक साथे दो
महीना सुधीना उपवास, त्रैमासिक लक्षत—ऐक साथे त्रय मास सुधी उपवास,
चातुर्मासिक लक्षत—ऐक साथे चार महिनाना उपवास, पाचमासिकलक्षत—पाच
महिना सुधी ऐकसाथे उपवास, अने षाण्मासिक लक्षत—छ महिना सुधी
ऐकसाथे उपवास करवो आ षड्धु इत्वरिकनामनु अनशन तप छे यावत्क-

जहा-इत्तरिए य १ आवकहिए य २ । से किं तं इत्तरिए ? इत्तरिए
अणेगविहे पणत्ते, तं जहा-चउत्थभत्ते १ छट्ठभत्ते २ अट्ठमभत्ते

रिक च-एति-गच्छति तच्छीग्म् इत्तर, तदेव-इत्तरिकम्-अन्यमन्त्रिकम्, यथा श्रीमहावीर-
स्वामिनस्तीर्थे नमस्कारसहितप्रयागयात्राकालान्तरभ्य पण्मासपर्यन्तम्, श्रीनाभेयतीर्थद्वर-
तीर्थे ग्वत्सरपर्यन्तम्-इति १ । 'आवकहिए य' यात्र कथिकस्य-यात्र-यदवधिर्मनुष्योऽ-
यमिति मुख्यव्यवहाररूपा कथा यात्रकथा, तत्र भव याव कथिक-आयनपर्यन्तम् अनयनमिति ।
अनयोर्विस्विक पृच्छति-'से किं त इत्तरिए' अथ कि-तद् इत्तरिकम्, अत्योत्तरमाह-
'इत्तरिए अणेगविहे पणत्ते' इत्तरिकम् अनेकविध प्रज्ञपम्, 'त जहा'-तद्यथा-तानि
यदूपाणि सन्ति तथा कथयति-'चउत्थभत्ते' चतुर्थभक्तम्-एकोपवासरूपम् १ । 'छट्ठभत्ते'
षष्ठभक्तम्-निरन्तरदिनद्वयोपवासरूपम् २ । 'अट्ठमभत्ते' अष्टमभक्त-निरन्तरदिनत्रयोपवासरू-

स्वामी के तीर्थ में इत्वरिक तप नमस्कारसहित-नौकारसी प्रत्यागयात्रा काल से लेकर छह
मासपर्यन्त का कहा गया है । श्री आदिनाथ तीर्थकर के शासनमे इसकी मर्यादा नौकार-
सी से लेकर एकवर्ष पर्यन्त की थी । शेष २२ तीर्थकरों के शासनमे अष्टमास पर्यन्त इसकी
अवधि थी । (से किं त इत्तरिए ?) इत्वरिक तप क्या है ? उत्तर-(इत्तरिए अणेग-
विहे पणत्ते) यह इत्वरिक तप अनेक प्रकार का कहा गया है, (त जहा) वे प्रकार ये हैं-
(चउत्थभत्ते छट्ठभत्ते अट्ठमभत्ते दसमभत्ते बारसभत्ते चउत्सभत्ते सोलसभत्ते अद्धमासिय-
भत्ते मासियभत्ते दोमासियभत्ते तेमासियभत्ते चउमासियभत्ते पचमासियभत्ते छम्मा-
सियभत्ते) चतुर्थभक्त-एक उपवास, षष्ठभक्त-दो उपवास-निरन्तर-लगातार-दो दिन का
उपवास, अष्टमभक्त-निरन्तर तीन दिन तक उपवास, दशमभक्त-चार-उपवास-लगातार

स्वामीना तीर्थभा इत्वरिक तप नमस्कारसहित-नौकारसी प्रत्यागयात्राकालधी
लधने छ मास सुधीनु कहेलु छे श्री आदिनाथ तीर्थकरना समये तीर्थभा
तेनी मर्यादा नौकारसीधी लधने अेक वर्ष सुधीनी हुती आकीना २२ तीर्थ-
कराना तीर्थभा ८ मास सुधीनी तेनी अवधि हुती (से किं त इत्तरिए ?)
इत्वरिक तप शु छे ? उत्तर-(इत्तरिए अणेगविहे पणत्ते) आ इत्वरिक तप
अनेक प्रकारनु कहेलु छे, (तजहा) ते आभ छे (चउत्थभत्ते छट्ठभत्ते अट्ठम
भत्ते दसमभत्ते बारसभत्ते चउत्सभत्ते सोलसभत्ते अद्धमासियभत्ते मासियमभत्ते
दोमासियभत्ते तेमासियमभत्ते चउमासियमभत्ते पचमासियभत्ते छम्मासियभत्ते)
चतुर्थ-लक्ष्म अेक उपवास, षष्ठलक्ष्म-दो उपवास-निरन्तर-लगातार दो दिव
सनेो उपवास, अष्टमलक्ष्म-अेक साथे त्रयुदिवसनेो उपवास-त्रयु उपवास, दशम

वगमणे ? पाओवगमणे दुविहे पणत्ते; तं जहा—वाघाइमे य ?
निव्वाघाइमे य २ नियमा अप्पडिकम्मे । से तं पाओवगमणे ।
से किं तं भत्तपच्चक्खाणे ? भत्तपच्चक्खाणे दुविहे पणत्ते, तं

पगमन द्विविध प्रज्ञमम्, 'त जहा' तद्यथा—'वाघाइमे य' व्याघातवच्च—व्याघात—व्याघ्र-
सिंह—दावानलान्ति—सजातोपद्रव, तेन सहित व्याघातवत् । 'निव्वाघाइमे य' निर्व्याघातवच्च—
सिंहदावानलाद्युपद्रवग्रहित य प्रतिपद्यते तत् निर्व्याघातवत्, व्याघातनिरहितमि यर्थ । एतद् द्विविध
'नियमा अप्पडिकम्मे' नियमादप्रतिकर्म=नियमत शरीरचलनादिक्रियारहित भवति ।
'से त पाओवगमणे' नदेत पादपोपगमनम् । 'से किं त भत्तपच्चक्खाणे ?' अथ
किं तद् भक्तप्रत्याख्यानम्?—'भत्तपच्चक्खाणे दुविहे पणत्ते' भक्तप्रयारयान द्विविध
प्रज्ञमम्, तत्र—भक्तप्रयारयान—चतुर्विधस्याऽऽहारस्य, त्रिविधस्य पानकरहितस्य वाऽऽहारस्य
वर्जनरूप द्विविध प्रज्ञमम्—द्विप्रकारक कथितम् । 'त जहा' तद्यथा—'वाघाइमे य'

प्रकार से—(वाघाइमे य १ निव्वाघाइमे य २ नियमा अप्पडिकम्मे) १ व्याघातवत्, २
निर्व्याघातवत् । जो व्याघ्र, सिंह एव दावानल आदि से उद्भूत उपद्रव से सहित होता है
वह व्याघातवत् है । जिसमें उस प्रकार के उपद्रव न हों वह निर्व्याघातवत् है । यह पादपोप-
गमन नियमत शारीरिक हलनचलन आदि क्रियाओं से रहित होता है । तथा इसमें औषधो-
पचार आदि नहीं किया जाता है । (से त पाओवगमणे) यह पादपोपगमन सन्धारा है ।
अप भक्तप्रत्याख्यान का वर्णन करते हैं—(से किं त भत्तपच्चक्खाणे) यह भक्तप्रत्या-
ख्यान कितने प्रकार का होता है, (भत्तपच्चक्खाणे दुविहे पणत्ते) यह भक्तप्रत्या-
ख्यान दो प्रकार का है, (त जहा) वह इस प्रकार—(वाघाइमे य निव्वाघाइमे य

छे—(त जहा) ते आ प्रकारे—(वाघाइमे य १ निव्वाघाइमे २ य नियमा
अप्पडिकम्मे) १ व्याघातवत् अने भीले निर्व्याघातवत् २ वाघ (भाप))
तेभञ्ज दावानलधी यता उपद्रववाणा डोय छे ते व्याघातवत् छे २ेमा अे
प्रकारना उपद्रव न डोय ते निर्व्याघातवत् छे आ पादपोपगमन नियम प्रभाण्णे
शारीरिड हलनचलन आदि क्रियाओधी रहित डोय छे, तथा २ेमा औषधो-
पचार आदि नधी २रता (से त पाओवगमणे) अे पादपोपगमन सन्धारे आ
प्रभाण्णे थाय छे डुवे लक्षतप्रत्याख्याननु वलुंन २रे छे—(से किं त भत्तपच्चक्खाणे ?)
आ लक्षतप्रत्याख्यान डेटवा प्रकारना थाय छे ? (भत्तपच्चक्खाणे दुविहे पणत्ते)
अे अे ११-१२-१३ छे—(त जहा) ते आ प्रकारे—(वाघाइमे य निव्वाघाइमे य नियमा

-से तं इत्तरिण् । से किं तं आवकहिण् ? आवकहिण् दुविहे पणत्ते,
तं जहा-पाओवगमणे य ? भत्तपच्चक्खाणे य २ । से किं तं पाओ-

कथा-‘मनुष्योऽयम्’ एतद्रूपा सा यात्कथा, तत्र भव यावत्कथिकम्-यावज्जीवनमित्यर्थ, तद् ‘दुविहे पणत्ते’ द्वित्रिष प्रज्ञप्तम् । ‘त जहा’ तद्यथा-‘पाओवगमणे य भत्तच्चक्खाणे य’ पादपोषगमनं च भक्तप्रत्याएयान च, तत्र-पादपस्येव वृक्षस्येवोपगमनम्-अस्पन्दतया-निश्चलतयाऽऽस्थान पादपोषगमनम्-चतुर्विधाऽऽहारपरित्यागेन शरीरप्रतिक्रियायार्जनेन च वृक्षवनिश्चलवस्थानमित्यर्थ । ‘से किं त पाओवगमणे’-अथ किन्तत्पादपोषगमनम्?-पादपोषगमन कीदृशम्? अत्राह-‘पाओवगमणे दुविहे पणत्ते’ पादपो-

प्रकार का उसके-तप करने वाले के-साथ व्यवहार चलता रहे तत्रतक जो व्रत क्रिया जाय वह यावत्कथिक है-जीवनपर्यन्त आराधित अनशन व्रत यावत्कथिक है । (से किं त आवकहिण् ?) यावत्कथिक तप कितने प्रकार का है ? उत्तर-(आवकहिण् दुविहे पणत्ते) यह तप दो प्रकार का है-(त जहा) वह उस प्रकारसे (पाओवगमणे य भत्तपच्चक्खाणे य) पादपोषगमन और दूसरा भक्तप्रत्याएयान । जिसमे कटे वृक्ष की तरह निश्चल हो कर स्थिति रहे वह पादपोषगमन है-चारो प्रकार के आहार के परित्याग से एव शरीर की शुश्रूषा आदि क्रियाओं के परित्याग से कटे वृक्ष की तरह निश्चल हो जाना इसका नाम पादपोषगमन है । (से किं तं पाओवगमणे ?) पादपोषगमन कितने प्रकार का है ? (पाओवगमणे दुविहे पणत्ते) यह पादपोषगमन सूत्रा दो प्रकार का है, (त जहा) वह इस

थिकनी मतलब छे, ज्या सुधी “ आ भुण्ध्य छे ” जे प्रकारना तेना-तप करनारना साथे व्यवहार चालतो रहे त्या सुधी जे व्रत करवामा आवे ते यावत्कथिक छे-एवपर्यन्त आराधित अनशन व्रत यावत्कथिक छे (से किं त आवकहिण्) यावत्कथिक व्रत डेटला प्रकारना छे ? उत्तर (आवकहिण् दुविहे पणत्ते) आ तप जे प्रकारनु छे (त जहा) ते आ प्रकारे छे (पाओवगमणे य भत्तपच्चक्खाणे य) (१) पादपोषगमन अने णीणु लक्ष्मणप्रना ध्यान जेमा कापेला वृक्षनी पेठे निश्चल जेवी स्थिति रहे ते पादपोषगमन छे-आरिष प्रकारना आहारना त्याग करीने तेमज्ज शरीरनी जेवा-शुश्रूषा आदि क्रियाओंना त्याग करीने नापेला वृक्षनी पेठे निश्चल थई एवु तेनु नाम पादपोषगमन छे (से किं त पाओवगमणे ?) पादपोषगमन डेटला प्रकारना छे ? (पाओवगमणे दुविहे पणत्ते) आ पादपोषगमन सूत्रा जे प्रकारना

યરિયા ય ૨ । સે કિં તં દ્વોમોયરિયા ? દ્વોમોયરિયા દુવિહા
પણ્ણત્તા, તં જહા—ઉવગરણદ્વોમોરિયા ય ? ભક્તપાણદ્વોમો-
યરિયા ય ૨ । સે કિં તં ઉવગરણદ્વોમોયરિયા ? ઉવગરણદ્વોમો-
યરિયા તિવિહા પણ્ણત્તા, તં જહા—એગે વત્થે ? એગે પાણ ૨ ચિય-

રા કવિતા 'ત જહા' તથા—'દ્વોમોયરિયા ય' દ્રવ્યાવમોદરિકા ચ । 'ભાવોમોયરિયા
ય' ભાવાડમોદરિકા ચ । 'સે કિં તં દ્વોમોયરિયા ?' અથ કા સા દ્રવ્યાડમોદરિકા ,
'દ્વોમોયરિયા દુવિહા પણ્ણત્તા' દ્રવ્યાવમોદરિકા દ્વિવિધા પ્રજ્ઞા, 'ત જહા'—તથા
'ઉવગરણદ્વોમોયરિયા ય' ઉવગરણદ્રવ્યાવમોદરિકા ચ ૧ । 'ભક્તપાણદ્વોમોય-
રિયા ય' ભક્તપાણદ્રવ્યાવમોદરિકા ચ ૨ । 'સે કિં તં ઉવગરણદ્વોમોયરિયા' અથ
કા સા ઉવગરણદ્રવ્યાવમોદરિકા ? 'ઉવગરણદ્વોમોયરિયા તિવિહા પણ્ણત્તા' ઉવગરણ-
દ્રવ્યાવમોદરિકા ત્રિવિધા પ્રજ્ઞા, 'ત જહા' તથા—૧ 'એગે વત્થે' એક વલ્લમ્—એક-
ચોલપદરૂપ વલ્લ ન દ્વિતીયમ્, ૨—'એગે પાણ' એક પાત્રમ્, ૩—'ચિયત્તોવગરણસાઙ્-
્ગો પ્રકારકા' હૈ, [ત જહા] વે ડો પ્રકાર યે હૈ—[દ્વોમોયરિયા ય ભાવોમોયરિયા ય]
એક દ્રવ્યાવમોદરિકા ઓર દૂસરી ભાવાવમોદરિકા । [સે કિં તં દ્વોમોયરિયા] પ્રશ્ન-
વહ દ્રવ્યાવમોદરિકા ક્યા હૈ—કિંતને મેદવાલી હૈ ? ઉત્તર—[દ્વોમોયરિયા દુવિહા પણ્ણ-
ત્તા] દ્રવ્યાવમોદરિકા નો મેદવાલી હૈ, [ત જહા] વે ડો પ્રકાર ઇસ તરહ હૈ—[ઉવગરણ-
દ્વોમોયરિયા ય ભક્તપાણદ્વોમોયરિયા ય] ૧ ઉવગરણદ્રવ્યાવમોદરિકા ઓર ૨
ભક્તપાણદ્રવ્યાવમોદરિકા । [ઉવગરણદ્વોમોયરિયા તિવિહા પણ્ણત્તા] ઇનમે ઉવગરણ-
દ્રવ્યાવમોદરિકા ત્રીન પ્રકાર કો હૈ । (ત જહા) વે ત્રીન પ્રકાર યે હૈ—[એગે વત્થે એગે પાણ
ચિયત્તોવગરણસાઙ્ગણયા] એક વલ્લ ૧, એક પાત્ર ૨, ઓર ત્રીસરા ત્યક્તોપકરણસ્વાદનતા

છે (ત જહા) તે બે પ્રકાર આ છે—(દ્વોમોયરિયા ય ભાવોમોયરિયા
ય) એક દ્રવ્યાવમોદરિકા અને બીજી ભાવાવમોદરિકા (સે કિં તં
દ્વોમોયરિયા) પ્રશ્ન—એ દ્રવ્યાવમોદરિકા શુ છે ? કેટલા પ્રકારની છે ?
(દ્વોમોયરિયા દુવિહા પણ્ણત્તા) ઉત્તર—તે બે પ્રકારની છે—(તં જહા) તે
બે પ્રકાર આવી રીતે છે (ઉવગરણદ્વોમોયરિયા ય ભક્તપાણદ્વોમોયરિયા
ય) ૧ ઉવગરણદ્રવ્યાવમોદરિકા અને બીજી ભક્તપાણદ્રવ્યાવમોદરિકા (ઉવગ-
રણદ્વોમોયરિયા તિવિહા પણ્ણત્તા) તેમા ઉવગરણદ્રવ્યાવમોદરિકા ત્રણ પ્રકાર-
ની છે (ત જહા) તે ત્રણ પ્રકાર આ છે—(એગે વત્થે એગે પાણ ચિયત્તોવગરણસા
ઙ્ગણયા) ૧ એક વલ્લ, બીજી એક પાત્ર, અને ત્રીજી ત્યક્તોપકરણસ્વા-

जहा—वाघाइमे य १ निव्वाघाइमे य २ णियमा सप्पडिकम्मे । से तं भत्तपच्चक्खाणे । से तं अणसणे । से किं तं ओमोयरिया ? ओमोयरिया दुविहा पणत्ता, तं जहा—दब्बोमोयरिया य १ भावोमो-

व्याघातवच्च विन्नयुक्तञ्च । 'निव्वाघाइमे य' निर्व्याघातवच्च—विन्नरहित च । एतद् द्वय 'णियमा सप्पडिकम्मे' नियमात् सप्रतिकर्म—नियमत शरीरचलनादिक्रियासहित भवति । तेन बाह्योपधोपचारो वैयावृत्य च तस्य भवति । 'से तं भत्तपच्चक्खाणे' तदेतद् भक्तप्रत्याख्यानम् । 'से तं अणसणे' तदेतदनशनम् ।

'से किं तं ओमोयरिया' अथ का साऽनमोदरिका ?, 'ओमोयरिया दुविहा पणत्ता' अवमोदरिका द्विविधा प्रज्ञप्ता—अवमोदरिका—अवमम्—ऊनम्, उदर यस्मिन् भोजने तद् अवमोदर, तदस्त्यस्यामिति अवमोदरिका—तपोरूपा क्रिया, सा द्विविधा प्रज्ञप्ता,—द्विप्रका-

नियमा सप्पडिकम्मे) १ व्याघातवत् २ निर्व्याघातवत् । इस भक्तप्रत्याख्यान में चौ-
पिहार एव त्रिपिहार दोनों किया जाता है । विन्नयुक्त का नाम व्याघातवत् एव विन्नरहित
का नाम निर्व्याघातवत् है । इस तप में नियमत शारीरिक हलन—चलनादिक क्रियाएँ होती
हैं । उनका इसमें परित्याग नहीं है । इसलिये इसमें बाह्य औपधोपचार, एव वैयावृत्य किये
जाते हैं । (से तं भत्तपच्चक्खाणे) यह भक्तप्रत्याख्यान के भेदों का वर्णन है ।
(से तं अणसणे) इस प्रकार तपके १२ भेदों में से अनशन नामका १ प्रथम बाह्यतप का
वर्णन सम्पूर्ण हुआ । (से किं तं ओमोयरिया ?) प्रश्न—अनमोदरिका जिसे कहते हैं
और वह कितने प्रकार की है ? (ओमोयरिया दुविहा पणत्ता) उत्तर—यह अवमोदरिका

सप्पडिकम्मे) १ व्याघातवत् २ निर्व्याघातवत् आ लक्षतप्रत्याख्यानमा औविहार-
४ चारे प्रकारना आहारना त्याग तेमञ्च तेविहार अन्ने करवाभा आवे छे विघ्न-
वाणानु नाम व्याघातवत् तेमञ्च विघ्नरहिततनु नाम निर्व्याघातवत् छे आ तपमा
नियमप्रभाण्णे शारीरिक हलनचलन आदिक क्रियाओ थाय छे तेना आमा
परित्याग नथी तेथी आमा बाह्य औपधोपचार तेमञ्च वैयावृत्य कराय छे
(से तं भत्तपच्चक्खाणे) आ लक्षतप्रत्याख्यानना लेटोनु वर्धुन छे (से तं
अणसणे) ओ प्रकारे तपना १२ लेटोमाथी अनशननामना १ प्रथम बाह्य-
तपनु वर्धुन सपूणुं थयु

(से किं तं ओमोयरिया) प्रश्न—अवमोदरिका होने कहे छे ? अने ते केटला
प्रकारनी छे ? (ओमोयरिया दुविहा पणत्ता) उत्तर—ओ अवमोदरिका जे प्रकारनी

માણે અપ્પાહારે ૧. દુવાલસ કુકુડિયંડગપ્પમાણમેત્તે કવલે આહાર-
માણે અવ્વહ્મોમોયરિયા ૨, સોલસ કુકુડિયંડગપ્પમાણમેત્તે કવલે
આહારમાણે દુભાગપત્તોમોયરિયા ૩, ચડવીસ કુકુડિયંડગપ્પ-

પ્પટકપ્રમાણમાત્રાન કવલાન ય આહરન મવતિ, તસ્ય મ આહાર અપ્પાહાર । દ્વાત્રિઞ-
ત્પરિમિતૈ કવલૈ પુરુપાઽઽહાર પયામ, તત્ર ચતુર્થાઞસ્ય પ્રથનાદપ્પાહારાન્તેનૈવ મક્કપાન-
દ્વ્યાવમોત્તરિકાઽપિ મિદ્ધા (૧) । 'દુવાલસ કુકુડિયંડગપ્પમાણમેત્તે કવલે આહારમાણે
અવ્વહ્મોમોયરિયા' દ્વાદશ કુકુડાઽપ્પટકપ્રમાણમાત્રાન્ કવલાન્ આહરન યો મવતિ તસ્ય સ
આહાર અપાદ્ધાવમોત્તરિકા, પોડગ કવલા અર્દ્ધમ, તસ્માત્ અપરુદ્ધા = ન્યૂના દ્વાદશકવલા મકવાદ
યાઽવમોત્તરિકા સા-અપાદ્ધાઽવમોત્તરિકા (૨) । 'સોલસ કુકુડિયંડગપ્પમાણમેત્તે કવલે
આહારમાણે દુભાગપત્તોમોયરિયા' પોડગ કુકુડાપ્પટકપ્રમાણમાત્રાન્ કવલાન્ આહરન્
દ્વિમાગપ્રાપ્તાઽવમોત્તરિકા-પોડગ કુકુડાપ્પટકપ્રમાણમાત્રાન્ કવલાન આહરન યો મવતિ તસ્ય
સ આહારો દ્વિમાગપ્રાપ્તાવમોત્તરિકા=દ્વિતીયમાગપ્રાપ્તાવમોત્તરિકા મવતિ । અય માપ-
પયામપુરુપાહારદ્વાત્રિઞ કવલાના ભાગદ્વયે કૃતે સતિ પ્રાપાન્ પોડગ કવલાન્ મુખ્નાનસ્ય
દ્વિમાગપ્રાપ્તાવમોત્તરિકા તપસ્યા મવતીતિ (૩) । 'ચડવીસ કુકુડિયંડગપ્પમાણમેત્તે કવલે
કુકુડકે અણ્ડ પ્રમાણ આઠ કવલ કા આહાર હોતા હૈ । પુરુપ કે ત્વિયે ૩૨ કવલપ્રમાણ આહાર
પયામ હોતા હૈ । ઇત્તમેં ચતુર્થાઞ-આઠ કવલ પ્રમાણ આહાર કે લેન સે યહ અપ્પાહાર ક્વા ગયા
હૈ (૧) । (દુવાલસ કુકુડિયંડગપ્પમાણમેત્તે કવલે આહારમાણે અવ્વહ્મોમોયરિયા)
દ્વસરા મેદ અપાર્દ્ધ-અવમોત્તરિકા હૈ, ઇત્તમેં-કુકુડ અડ પ્રમાણ ૧૨ કવલોં કા આહાર ત્વિયા
જાતા હૈ (૨) । (સોલસ કુકુડિયંડગપ્પમાણમેત્તે કવલે આહારમાણે દુભાગપત્તોમોય-
રિયા) ત્રીસરા મેદ ત્રિમાગપ્રાપ્તાવમોત્તરિકા હૈ, ઇત્તમેં-કુકુડ-અડ-પ્રમાણ ૧૬ કવલોં કા
આહાર ક્રિયા જાતા હૈ (૩) । (ચડવીસ કુકુડિયંડગપ્પમાણમેત્તે કવલે આહારમાણે

નેટલો-ડોળિઆનો આહાર થાય છે પુરુપને માટે ૩૦ ડોળિઆ નેટલો આહાર
પયામ વાય છે તેમાથી ચતુર્થાઞ ડોળિઆ-નેટલો આહાર દેવાથી એને
અપ્પાહાર ન્હેવાય છે (૧) (દુવાલસ કુકુડિયંડગપ્પમાણમેત્તે કવલે આહારમાણે
અવ્વહ્મોમોયરિયા) બીજો ભેદ અપાર્દ્ધ-અવમોત્તરિકા છે એમા કુવડાના ધડા
નેવડા ૧૨ ડોળિઆનો આહાર દેવાય છે (૨) (સોલસ કુકુડિયંડગપ્પમાણમેત્તે
કવલે આહારમાણે દુભાગપત્તોમોયરિયા) ત્રીજો ભેદ દ્વિમાગપ્રાપ્તાવમોત્તરિકા છે
એમા કુવડાના ધડા નેવડા ૧૬ ડોળિઆનો આહાર દેવાય છે (૩) (ચડ
વીસ કુકુડિયંડગપ્પમાણમેત્તે કવલે આહારમાણે પત્તોમોયરિયા) ચોથો ભેદ પ્રાપ્તાવ

ત્તોવગરણસાહજ્જળયા ૩ સે તં ઉવગરણદવ્વોમોયરિયા । સે કિં
તં ભત્તપાણદવ્વોમોયરિયા ? ભત્તપાણદવ્વોમોરિયા-અણેગવિહા
પણ્ણત્તા, તં જહા-અટ્ટ કુક્કુલિયંડગપ્પમાણમેત્તે કવલે આહાર-

જ્જળયા' વ્યક્તોપકરણસ્વાદનતા, વ્યક્તા-ઉપકરણસ્વ સ્વાદનતા-આસક્તિર્યત્યામવમોદરિકાયા
સા તથા, માળ્ડોપકરણાદિપુ મૂર્છાપરિત્યાગિતેત્યર્થ । 'સે ત ઉવગરણદવ્વોમોયરિયા'
સૈવા ઉપકરણદ્રવ્યાવમોદરિકા । 'સે કિં ત ભત્તપાણદવ્વોમોયરિયા' અથ કા સા ભત્તપાન-
દ્રવ્યાવમોદરિકા ? 'ભત્તપાણદવ્વોમોયરિયા' -ભત્તપાનદ્રવ્યાવમોદરિકા- 'અણેગવિહા
પણ્ણત્તા' અનેકવિધા પ્રજ્ઞા, 'ત જહા' તથા- 'અટ્ટ કુક્કુલિયંડગપ્પમાણમેત્તે કવલે આહાર-
માણે અપ્પાહારે' અટ્ટો કુક્કુટાણ્ટકપ્રમાણમાત્રાન્ કમ્પલાન આહરન્નપાહાર-અટ્ટ કુક્કુટા-

૩ । વસ્ત્ર મેં ત્રક હી વસ્ત્ર રલના, જૈસે કોઈ ચોલ્લપટ્ટ રલતા હૈ તો વહ વહી રલેગા, અન્ય
દૂસરા વસ્ત્ર નહીં રલ સક્તા । દૂસરે પ્રકાર મેં એક હી પાત્ર રલના દૂસરા પાત્ર
નહીં । જિસ અપમોદરિકા મેં ઉપકરણ કા આસક્તિ વ્યક્ત હો જાતી હૈ વહ ઉસકા-તીસરા
પ્રકાર હૈ, અર્થાત્-માળ્ડોપકરણ મેં મૂર્છા કા પરિત્યાગ । (સે ત ઉવગરણદવ્વોમોયરિયા)
ઇસ પ્રકાર યે તીન મેટ્ટ ઉપકરણદ્રવ્યાવમોદરિકા કે કહ ગયે હૈ । [સે કિં ત ભત્તપાણ-
દવ્વોમોયરિયા] પ્રશ્ન-ભત્તપાનદ્રવ્યાવમોદરિકા ક્યા હૈ ? અર્થાત્-ભત્તપાનદ્રવ્યાવમોદરિકા
કે કિત્તને મેટ્ટ હૈ ? (ભત્તપાણદવ્વોમોયરિયા અણેગવિહા પણ્ણત્તા) યહ ભત્તપાન-
દ્રવ્યાવમોદરિકા અનેક પ્રકાર કી રહી ગયી હૈ, (ત જહા) વે પ્રકાર યે હૈ-(અટ્ટ-કુક્કુલિ-
યંડગપ્પમાણમેત્તે કવલે આહારમાણે અપ્પાહારે) પ્રથમ મેટ્ટ અપ્પાહાર હૈ, ઇસમે

દનતા વસ્ત્રમા એકજ વસ્ત્ર રાખવુ જેમ ડોઈ ચોલપટ્ટ રાખે છે તે તે જ રાખે,
ખીલુ વસ્ત્ર રાખી શકે નહિ ખીલુ પ્રહારમા એક જ પાત્ર રાખવુ ખીલુ
(દ્વિતીયાદિક) પાત્ર નહિ જે અવમોદરિકામા ઉપકરણની આસક્તિ વ્યક્ત થઈ
બંધ છે તે તેમા ત્રીજે પ્રકાર છે અર્થાત્ ભાડોપકરણમા મૂર્છાનો પરિત્યાગ
(સે ત ઉવગરણદવ્વોમોયરિયા) એ પ્રકારના આ ત્રણ ભેદ ઉપકરણદ્રવ્યાવ
મોદરિકાના કહેલા છે- (સે કિં ત ભત્તપાણદવ્વોમોયરિયા) પ્રશ્ન-ભત્તપાનદ્રવ્યાવ
મોદરિકા શુ છે ? અર્થાત્ ભત્તપાનદ્રવ્યાવમોદરિકાના ટેટલા પ્રકાર છે ?
(ભત્તપાણદવ્વોમોયરિયા અણેગવિહા પણ્ણત્તા) આ ભત્તપાનદ્રવ્યાવમોદરિકા
અનેક પ્રકારની કહેલી છે, (તજહા) તે આ પ્રકાર છે-(અટ્ટ કુક્કુલિયંડગપ્પમાણ
મેત્તે કવલે આહારમાણે અપ્પાહારે) પ્રથમ ભેદ અપ્પાહાર છે તેમા કુકુટાના ઘંડા

भोडत्ति वृत्तत्वं सिया । से तं भक्तपाणद्व्वोमोयरिया । से तं
द्व्वोमोयरिया । से किं तं भावोमोयरिया ? भावोमोयरिया अणेग-
विहा पणत्ता; तं जहा—अप्पक्कोहे १, अप्पमाणे २, अप्पमाणे ३,

लेभ्य—एकेनाऽपि प्राप्तेनोत्तरमाहारमाहरन् श्रमणो निर्भ्रंशो नो प्रकामरसभोजी-नात्यन्तभोजन-
शीलोऽस्तीति वक्तव्यम् स्यात्, अयं भाग—किंचिदूनावमोदरिका तपस्या कुर्वन् 'प्रकामभोजी'
इति नोच्यते इति । 'से तं भक्तपाणद्व्वोमोयरिया' मैषा भक्तपानद्रव्यावमोदरिका ।
अतः परं भावाऽमोदरिकासाह—'से किं तं भावोमोयरिया' अयं का सा भावाऽवमोद-
रिका ? 'भावोमोयरिया अणेगविहा पणत्ता' भावाऽमोदरिका अनेकविधा प्रजज्ञा, 'तं
जहा' तद्वथा 'अप्पक्कोहे' अल्पक्रोध-क्रोधन क्रोध-क्रोधमोहनीयोदयसम्पाद्य अक्षमापरिण-
तिरूप, अल्पशब्दाऽत्र प्रतनुवाचक—तेन अल्प—स्वल्प क्रोध—अल्पक्रोध । 'अप्पमाणे'

निर्भ्रंश एक कृत्वा भी आहार कम करते हैं वे प्रकामभोजी नहीं हैं, अर्थात् जिह्वा-
इन्द्रिय के विजेता हैं—ऐसा समझना चाहिये । (से तं भक्तपाणद्व्वोमोयरिया) इस
प्रकार यहा तक भक्तपानद्रव्यावमोदरिका का कथन किया, अर्थात् इस पूर्वोक्त प्रकार
से भक्तपानद्रव्यावमोदरिका का स्वरूप है । (से तं द्व्वोमोयरिया) इस प्रकार यह
द्रव्यावमोदरिका का स्वरूप है । यहा से आगे अत्र भावावमोदरिका का कथन करते
हैं—(से किं तं भावोमोयरिया ?) प्रश्न—यह भावावमोदरिका क्या है? कितने प्रकार की
है? (भावोमोयरिया अणेगविहा पणत्ता) उत्तर—भावावमोदरिका अनेक प्रकार की
कही गई है, (तं जहा) जैसे—(अप्पक्कोहे) अल्पक्रोध—अक्षमापरिणतिका नाम क्रोध
है, अल्पशब्द प्रतनुवाची है, अर्थात् क्रोधरूपाय मे अल्पता करना । (अप्प-

अक्ष कोजियो पणु आहार ओछो करे ते प्रकामलोला नथी, अर्थात् लल-
लद्रियनो विजेता छे—अभ समञ्जसु लोछये (से तं भक्तपाणद्व्वोमोयरिया) अ
प्रकारे अही सुधी लक्षतपानद्रव्यावमोदरिकातु कथन करुं, अर्थात् अ
पूर्वोक्त प्रकारे लक्षतपानद्रव्यावमोदरिकातु स्वरूप छे (से तं द्व्वोमोयरिया)
आ प्रकारे आ द्रव्यावमोदरिकातु स्वरूप छे अहिथी आगण हुवे लावा-
वमोदरिकातु कथन करे छे—(से किं तं भावोमोयरिया ?) प्रश्न—आ लावावमोदरिका
शु छे, केटला प्रकारनी कडेवाय छे ? (भावोमोयरिया अणेगविहा पणत्ता) उत्तर
लावावमोदरिका घणुा प्रकारनी कडेवाय छे (तं जहा) नेभके (अप्पक्कोहे)
अल्पक्रोध, अक्षमा-परिणतितु नाम क्रोध छे, अल्प शब्द प्रतनुवाची
छे—अर्थात् क्रोधरूपायमा अल्पपणु (ओछु) करु (अप्पमाणे अप्पमाणे)

माणमेत्ते कवले आहारमाणे पत्तोमोयरिया ४, एकतीसं कुक्कुडियं-
डगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाणे किंचूणोमोयरिया ५, वत्तीसं
कुक्कुडियंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाणे पमाणपत्ते, एत्तो एगेण
वि घासेणं ऊणयं आहारमाहारेमाणे समणे निग्गथे णो पकामरस-

आहारमाणे पत्तोमोयरिया'—चतुर्विंशतिं कुक्कुटाण्डकप्रमाणमात्रान् कवलान् आहरन्
प्राप्ताऽवमोदरिका—द्वात्रिंशत्कवलानां चतुर्थान्यन्यूनमाहारम् आहरन् यो भवति, तस्य स
आहार प्राप्तावमोदरिका—पादमात्रेणतथा प्राप्तेनाऽवमोदरिका प्राप्तावमोदरिका भवति, ॥४॥
'एकतीसं कुक्कुडियडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाणे किंचूणोमोयरिया' एक-
त्रिंशत् कुक्कुटाण्डकप्रमाणमात्रान् कवलान् आहरन् यो भवति तस्य किञ्चिद्भावमोदरिका=
कवलैरन्यूनान् अवमोदरिका भवति ॥५॥ 'वत्तीसं कुक्कुडियगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाणे
पमाणपत्ते' द्वात्रिंशत् कुक्कुटाण्डकप्रमाणमात्रान् कवलान् आहरन् प्रमाणप्राप्त = प्रमाणप्रमिता-
ऽऽहारयुक्तो भवतीत्यर्थ, 'एत्तो एगेण वि घासेण ऊणय आहारमाहारेमाणे समणे
निग्गथे णो पकामरसभोइत्ति वत्तव्वं सिया' इत एकेनापि प्रासेन ऊनरुम् आहरम्
आहरन् श्रमणो निर्प्रथो नो प्रकामरसभोजीति वक्तव्यं स्यात्—इत—एतेभ्य—द्वात्रिंशत्कव-

पत्तोमोयरिया) चौथा भेद प्राप्तावमोदरिका है, इसमें कुक्कुटाण्डप्रमाण २४ कवलों का आहार
क्रिया जाता है (४) । (एकतीसं कुक्कुडियडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाणे किंचू-
णोमोयरिया) पाँचवाँ भेद किंचित्—न्यून—अवमोदरिका है । इसमें कुक्कुट अड प्रमाण ३१
कवलों का आहार लिया जाता है । (वत्तीसं कुक्कुडियडगप्पमाणमेत्ते कवले आहा-
रमाणे पमाणपत्ते) ३२—कवल—प्रमाण आहार करना पर्याप्त आहार है । यह अवमो-
दरिका तप नहीं है । (एत्तो एगेणवि घासेण ऊणय आहारमाहारेमाणे समणे
निग्गथे णो पकामरसभोइत्ति वत्तव्वं सिया) ३२ कवलप्रमाण आहार में से जो श्रमण

भोदरिका छे येमा कुडडाना छंडा जेवडा २४ डोजिआने आहार कराय छे
(४) (एकतीसं कुक्कुडियडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाणे किंचूणोमोयरिया) पाचवो
भेद किंचित्—न्यून—अवमोदरिका छे तेमा कुडडाना छंडा जेवडा ३१ डोजिआने
आहार देवाय छे (वत्तीसं कुक्कुडियडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाणे पमाण-
पत्ते) ३२ डोजिआ जेटवो आहार करवो ये भयाड्डा छे आ अवमोदरिका
तप नथी (एत्तो एगेणवि घासेण ऊणय आहारमाहारेमाणे समणे निग्गथे णो पकाम-
रसभोइत्ति वत्तव्वं सिया) ३२ डोजिया जेटवो आहारभाथी जे श्रमणु तिर्थ थ

खेत्ताभिग्गहचरण २, कालाभिग्गहचरण ३, भावाभिग्गहचरण ४,
उक्खित्तचरण ५, णिक्खित्तचरण ६, उक्खित्तणिक्खित्तचरण ७,

चरति=भिभामटति, द्रव्याश्रिताऽभिग्रह वा चरति—आसेवते य म द्रव्याभिग्रहचरक, इह
च भिक्षाचर्याया प्रकान्ताया यद् द्रव्याभिग्रहचरक द्रयुक्त तद्दर्मप्रमिणोर्भेदप्रिवक्षणात् ।
द्रव्याभिग्रहश्च लपञ्जान्द्रव्यत्रिपय । १ । 'खेत्ताभिग्गहचरण' क्षेत्राऽभिग्रहचरक—क्षेत्राऽभिग्रह
'अमुकस्थाने प्रहोभ्यामि' इत्यादिरूप । २ । 'कालाभिग्गहचरण' कालाभिग्रहचरक, काला-
भिग्रह—प्राहणाद्विपय । ३ । 'भावाभिग्गहचरण' भावाभिग्रहचरक—भावाभिग्रहो-
गानहसनादिप्रवृत्तपुरुपाद्विपय, तेन चरतीति । ४ । 'उक्खित्तचरण' उक्खित्तचरक—
उक्खित्त—गृहस्थेन स्वप्रयोजनाय पाकभाजनादुद्धृत तदर्थमभिग्रहतश्चरति—गच्छती युक्खित्तचरक ।
५ । 'णिक्खित्तचरण' निक्खित्तचरक—निक्खित्त—पाकादिभाजनादुद्धृत्य अन्यभाजने स्थापित,
तदर्थमभिग्रह कृत्वा चरति—इति निक्खित्तचरक । ६ । 'उक्खित्त-णिक्खित्त-चरण' उक्खित्त-
निक्खित्तचरक—पाकभाजनादुक्खित्त तदेव अन्यत्र स्थाने निक्खित्त यत् तदुक्खित्तनिक्खित्तम्,

मिलेगी तो ही लूगा, अन्यथा नहीं । भिक्षाचर्या का यद्यपि प्रकरण है, परन्तु जा “द्रव्या-
भिग्रहचरक” ऐसा निर्देश किया है वह धर्म और धर्मां म अमेद की विवक्षासे ममसना
चाहिये । २ क्षेत्राभिग्रहचरक—अमुक स्थान म मिल्गगा तो लूगा । ३ कालाभिग्रहचरक-
अमुक समय म लूगा । ४ भावाभिग्रहचरक—अमुक प्रकार का दाता देगा तो लूगा ।
५—(उक्खित्तचरण) उक्खित्तचरक—गृहस्थने पाकभाजन से अपने लिये निकाला हो,
उसमें से यद्वि देगा तो लूगा । (६) (निक्खित्तचरण) निक्खित्तचरक—गृहस्थने पाक भाजन
से निकाल कर अन्य भाजन म रख दिया हो, उसमें से देगा तो लूगा । ७—(उक्खित्त-

लिखित्तचरण—मुनि अलिखित्त करे छे डे मनेने अमुक वस्तु लिखाभा मणशे ते न
हु लक्ष्मि, भील नहि लिखायथांतु जे डे प्रकरण छे, परंतु जे 'द्रव्यालि-
खित्तचरण' अम निर्देश करेले छे ते धर्म अने धर्मांभा अलेदनी विवक्षाअे
समभवे जेधअे [२] क्षेत्रालिखित्तचरण—अमुक स्थानभा मणशे तो लक्ष्मि,
[३] कालालिखित्तचरण—अमुक समयभा लक्ष्मि, [४] भावालिखित्तचरण—अमुक
प्रकारने दाता आपशे तो लक्ष्मि, [५] (उक्खित्तचरण) उक्खित्तचरण—गृहस्थे
राधवाना पात्रमाथी पोताने भाटे ढाढेहु डोय तेमाथी जे आपशे तो लक्ष्मि,
[६] (निक्खित्तचरण) निक्खित्तचरण—गृहस्थे राधवाना पात्रमाथी ढाढीने भील
पात्रभा राभी दीधु डोय तेमाथी आपशे तो लक्ष्मि [७] (उक्खित्त-निक्खित्त-

अप्पलोहे ४, अप्पसदे ५, अप्पकलहे ६, अप्पझंझे ७ । से तं भावोमोयरिया । से तं ओमोयरिया । से किं तं भिक्खायरिया ? भिक्खायरिया अणेगविहा पणत्ता; तं जहा-द्व्वाभिग्गहचरणे ?,

अन्पमान—जात्याद्यभिमानराहित्यम् । ‘अप्पमाए’ अन्पमाया, ‘अप्पलोहे’ अन्पलोम,— ‘अप्पसदे’ अन्पशब्द,—‘अप्पकलहे’ अन्पकलह=कलहाभात्, ‘अप्पझंझे’ अन्पझञ्ज=परस्परभेदोपादकवचनन्यापारो झञ्ज, तस्याभात् । ‘से तं भावोमोयरिया’ सैषा भावाऽवमोदरिका । ‘से तं ओमोयरिया’ सैषाऽवमोदरिका ।

‘से किं तं भिक्खायरिया’ अथ का सा भिक्षाचर्या, ‘भिक्खायरिया अणेगविहा पणत्ता’ भिक्षाचर्या अनेकविधा प्रज्ञा, ‘तं जहा’ तद्यथा—द्व्वाभिग्गहचरणे’ द्रव्याभिग्रहचरणे—द्रव्याऽऽश्रिताभिग्रहेण ‘अमुकवस्तु ग्रहीष्यामि’ इति रूपेण

माणे अप्पमाए अप्पलोहे अप्पसदे अप्पकलहे अप्पझंझे) मान को अन्य करना, माया को अन्य करना, लोभ को अन्य करना, शब्द को अन्य करना अर्थात् कम बोलना, कलह को अल्प करना—अभाव करना, झञ्जा को अर्थात्—गण मं जिस वचन से छेद—भेद उत्पन्न होता है उस वचनका अन्य करना—अभाव करना, यहाँ पर ‘अन्प’ शब्द अभावार्थक है । (से तं भावोमोयरिया) ये सभी भावावमोदरिका हैं । (से तं ओमोयरिया) यह अवमोदरिका तपका वर्णन सपूर्ण हुआ ।

(से किं तं भिक्खायरिया ?) भिक्षाचर्या क्या है—कितन तरह की है ?

उत्तर—(भिक्खायरिया अणेगविहा पणत्ता) भिक्षाचर्या अनेक तरह की कही गई है । (तं जहा) जैसे (द्व्वाभिग्गहचरणे, खेत्ताभिग्गहचरणे, कालाभिग्गहचरणे भावाभिग्गहचरणे) ? द्रव्याभिग्गहचरणे—मुनि अभिग्रह लेता है कि मुझे जो अमुक वस्तु भिक्षा में

अप्पलोहे अप्पसदे अप्पकलहे अप्पझंझे) मान अल्प(ओष्ठ) करतु, माया अल्प करवी, लोभ अल्प करवो, शब्द अल्प करवा अर्थात् ओष्ठ जोलतु, कलह (कडास) ओष्ठा करवा, अज अर्थात् दोडोना समूहमा ने वचनोवी छेद—भेद उत्पन्न थाय ओवा वचन नही जोलवा, (से तं भावोमोयरिया) आ यथा भावावमोदरिका छे. (से तं ओमोयरिया) आ अवमोदरिका तपतु वर्णन सपूर्ण थय (से किं तं भिक्खायरिया) भिक्षाचर्या शु छे—उत्तरा नतनी छे ? उत्तर (भिक्खायरिया अणेगविहा पणत्ता) भिक्षाचर्या अनेकनतनी कडेवाय छे (तं जहा) नेभडे (द्व्वाभिग्गहचरणे, खेत्ताभिग्गहचरणे, कालाभिग्गहचरणे, भाराभिग्गहचरणे) ? द्रव्या-

સ્વેત્તાભિગ્ગહચરણ ૨, કાલાભિગ્ગહચરણ ૩, ભાવાભિગ્ગહચરણ ૪,
ઉક્ષિત્તચરણ ૫, ણિક્ષિત્તચરણ ૬, ઉક્ષિત્તણિક્ષિત્તચરણ ૭,

ચરતિ=ભિક્ષામટતિ, દ્રવ્યાશ્રિતાઽભિગ્ગહ વા ચરતિ-આસેવતે ય સ દ્રવ્યાભિગ્ગહચરક, इह
च भिक्षाचर्याया प्रक्रान्ताया यद् द्रव्याभिग्नहचरक इयुक्त तद्दर्शमभिग्नोरभेदविवक्षणात् ।
द्रव्याभिग्नहश्च ल्पक्रतादिद्रव्यत्रિपय । ૧। 'સ્વેત્તાભિગ્ગહચરણ' ક્ષેત્રાઽભિગ્ગહચરક-ક્ષેત્રાઽભિગ્ગહ
'અમુકસ્થાને પ્રહોત્યામિ' ટ્યાદિરુપ ૧૨। 'કાલાભિગ્ગહચરણ' કાલાભિગ્ગહચરક, કાલા-
ભિગ્ગહ-પૂવાહ્ણાદિત્રિપય ૧૩। 'ભાવાભિગ્ગહચરણ' ભાવાભિગ્ગહચરક-ભાવાભિગ્ગહો-
ગાનહસનાદિપ્રવૃત્તપુરુપાદિત્રિપય, તેન ચરતીતિ । ૪। 'ઉક્ષિત્તચરણ' ઉક્ષિત્તચરક-
ઉક્ષિત્ત-ગૃહસ્થેન સ્વપ્રયોજનાય પાકભાજનાદુદ્ઘૃત તદર્થમભિગ્ગહત્થરતિ-ગચ્છતી યુક્ષિત્તચરક ।
૫। 'ણિક્ષિત્તચરણ' નિક્ષિત્તચરક-નિક્ષિત્ત-પાકાદિભાજનાદુદ્ઘૃત્ય અન્યભાજને સ્થાપિત,
તદર્થમભિગ્ગહ કૃવા ચરતિ-ઇતિ નિક્ષિત્તચરક । ૬। 'ઉક્ષિત્ત-ણિક્ષિત્ત-ચરણ' ઉક્ષિત્ત-
નિક્ષિત્તચરક-પાકભાજનાદુક્ષિત્ત તદેવ અન્યત્ર સ્થાને નિક્ષિત્ત યત્ તદુક્ષિત્તનિક્ષિત્તમ્,

મિલેગી તો હી લૂગા, અન્યથા નહીં । ભિક્ષાચર્યા કા યદપિ પ્રકરણ હૈ, પરન્તુ જા " દ્રવ્યા-
ભિગ્ગહચરક " એસા નિર્દેશ ક્રિયા હૈ વહ ધર્મ ઓર ધર્મા મે અભેદ કી વિવક્ષાસે સમજના
ચાહિયે । ૨ ક્ષેત્રાભિગ્ગહચરક-અમુક સ્થાન મે મિલેગા તો લૂગા । ૩ કાલાભિગ્ગહચરક-
અમુક સમય મ લૂગા । ૪ ભાવાભિગ્ગહચરક-અમુક પ્રકાર કા ઘાતા દેગા તો લૂગા ।
૫-(ઉક્ષિત્તચરણ) ઉક્ષિત્તચરક-ગૃહસ્થને પાકભાજન સે અપને લિયે નિકાલા હો,
ઉસમેં સે યદિ દેગા તો લૂગા । (૬) (નિક્ષિત્તચરણ) નિક્ષિત્તચરક-ગૃહસ્થને પાક ભાજન
સે નિકાલ કર અન્ય ભાજન મે રસ દિયા હો, ઉસમે સે દેગા તો લૂગા । ૭-(ઉક્ષિત્ત-

લિગ્ગહચરક-મુનિ અલિગ્ગહ કરે છે કે મને જે અમુક વસ્તુ લિક્ષામા મળશે તે જ
હું લઈશ, બીજી નહિ લિક્ષાચર્યાતુ જે કે પ્રકરણ છે, પરતુ જે 'દ્રવ્યાલિ-
ગ્ગહચરક' એમ નિર્દેશ કરેલો છે તે ધર્મ અને ધર્મીના અલેક્ષની વિવક્ષાએ
સમજવો જોઈએ [૨] ક્ષેત્રાલિગ્ગહચરક-અમુક સ્થાનમા મળશે તો લઈશ,
[૩] કાલાલિગ્ગહચરક-અમુક સમયમા લઈશ, [૪] ભાવાલિગ્ગહચરક-અમુક
પ્રકારનો ઘાતા આપશે તો લઈશ, [૫] (ઉક્ષિત્તચરણ) ઉક્ષિત્તચરક-ગૃહસ્થે
રાધવાના પાત્રમાથી પોતાને માટે કાઢેલું હોય તેમાથી જે આપશે તો લઈશ,
[૬] (નિક્ષિત્તચરણ) નિક્ષિત્તચરક-ગૃહસ્થે રાધવાના પાત્રમાથી કાઢીને બીજા
વાત્રમા રાખી દીધું હોય તેમાથી આપશે તો લઈશ [૭] (ઉક્ષિત્ત-નિક્ષિત્ત-

णिक्रिवत्तउक्रिवत्तचरण ८, वट्टिज्जमाणचरण ९, साहरिज्जमाणचरण
१०, उवणीयचरण ११, अवणीयचरण १२, उवणीय-अवणीयचरण

तदर्थमभिग्रहतश्चरति स उक्रिवत्तनिक्षिप्तचरण इत्युच्यते । ७। 'णिक्रिवत्त-उक्रिवत्त-चरण'
निक्षिप्तोक्षिप्तचरण-निक्षिप्त-पाकभाजनादन्यत्र स्थापितमुक्षिप्त-तदेव पुनरुद्धृत-हस्ते
गृहीत, तदर्थमभिग्रह कृत्वा चरति स निक्षिप्तोक्षिप्तचरण । ८। 'वट्टिज्जमाणचरण' उर्य
मानचरण-वर्त्यमान-परिनिष्यमाणं ग्रहीतु चरति स वर्त्यमानचरण । ९। 'साहरिज्जमाणचरण'
सहियमाणचरण-अत्युष्ण व्यञ्जनसूपादि गीतलीकरणाय स्थान्यादिषु विस्तारित तपुनर्माजने
क्षिप्यमाण सहियमाणमुच्यते, तद् ग्रहीतु चरति-इति सहियमाणचरण । १०। 'उवणीयचरण'
उपनीतम्-अन्येन केनचिद् गृहस्थाय प्रेषित यत् तदुपनीत, तदेव ग्रहीतु चरति-इत्युपनीत-
चरण । ११। 'अवणीयचरण' अपनीतचरण-अपनीत गृहस्थेन अन्यस्मै कस्मै चिदाहु

निक्रिवत्त-चरण) उक्रिवत्तनिक्षिप्तचरण-दाताने पहले पाकभाजन से अन्नादिक निकाला,
फिर उसको उसने अन्य पात्रमे रखा, उसमें से यदि देगा तो लूगा । ८-(निक्रिवत्त-
उक्रिवत्त-चरण) निक्षिप्तउक्रिवत्तचरण-दाताने पाकभाजन से अन्नादिक को निकाल कर
दूसरे पात्र में रख दिया हो, उसीको हाथ मे उठाया हुआ हो, उससे यदि देगा तो
लूगा । ९-(वट्टिज्जमाणचरण) वर्त्यमानचरण-दाता द्वारा परोसी जाती हुई वस्तु म से
देगा तो लूगा । १०-(साहरिज्जमाणचरण) सहियमाणचरण-दाताने उष्ण व्यञ्जन एव
सूपादिक को ठंडा करने के लिये स्थाली आदि मे रखा, फिर उस व्यञ्जनादिक को उसा
पात्र में रखता हुआ उसमें से देगा तो लूगा । ११-(उवणीयचरण) उपनीतचरण-दाता
से मै उमी पदार्थ को लूगा जो उसके लिये अन्य किसी व्यक्तिने भेजा होगा । १२
(अवणीयचरण) अपनीतचरण-मै दाता से वही पदार्थ लूगा जो उसने अन्य किसी

त्तचरण) उक्रिवत्तनिक्षिप्तचरण-दाताये पहले साधवाना वासणुभाथी अन्नादिक
वदथु पछी तेने तेणे धीन वासणुभा रापथु डोय, तेभाथी ये आपथे तो
लधथ [८] (वट्टिज्जमाणचरण) वर्त्यमानचरण-दाता द्वारा पीरभपाभां आपती
वस्तुभाथी आपथे तो लधथ [९] (साहरिज्जमाणचरण) सहियमाणचरण-
दाताये गरम व्यञ्जन तेमञ्ज रूप (दात) आदि ने ङ डा करवा भाटे थाणी
आदिभा रापथा डोय, पछी ते व्यञ्जन आदिकने तेञ्ज पात्रभा रापथा तेभाथी
आपथे तो लधथ [१०] (उवणीयचरण) उपनीतचरण-दाता पासेथी हु
ये ञ पदार्थ लधथ के ञे धीन डोयये तेने भाटे मोकटये डोय [११]
(अवणीयचरण) अपनीतचरण-हुं दाता पासेथी तेञ्ज पदार्थ लधथ के ञे

१३, अवणीय-उवणीयचरण १४, संसट्टचरण १५, असंसट्टचरण
१६, तज्जायमंसट्टचरण १७, अण्णायचरण १८, मोणचरण १९,

नि मायान्तरं स्थापितं तदेव अपनीतं, तर्था चरति-इत्यपनीतचरण १२२। 'उवणीय-
अवणीय-चरण' उपनीतापनीतचरण-यदेव उपनीतम्-अन्येन प्रेषितं तदेव अपनीतं स्थानान्तरे
स्थापितं तदं ग्रन्थं चरति इत्युपनीताऽपनीतचरण १२३। 'अवणीय-उवणीय-चरण' अपनीतो-
पनीतचरण-अपनीतम्=कर्म चित् अन्यस्मै दातुं नि मायान्तरं स्थापितं, तदेव उपनीतम्=यस्य
गृहस्थस्य मर्माप प्रेषितं तस्य गृहस्थस्य गृहं प्रापितं तदपनीतोपनीतं, तर्था चरतीत्यपनी-
तोपनीतचरण १२४। 'संसट्टचरण' संसट्टचरण-संसट्टेन=अग्रगणितेन हस्तादिना दीयमानं
संसट्टमुच्यते, तद् ग्रहातुं चरति-इति संसट्टचरण १२५। 'असंसट्टचरण' असंसट्टचरण-
असंसट्टेन=अग्रगणितेन चरति-इत्यसंसट्टचरण १२६। 'तज्जायसंसट्टचरण' तज्जात-
मंसट्टचरण-तज्जातेन=परिनिष्यमाणद्वयेण यत्संसट्टं हस्तादि, तेन दीयमानं वस्तु ग्रहातुं य-

दूसरे को देने के लिये निकाल कर रख दिया होगा। १३-(उवणीय-अवणीय-चरण)
उपनीत-अपनीतचरण-मैं वहीं पदार्थ लूंगा जो उस दाता के लिये किसी दूसरे ने उसके
पाम बना होगा, और दाताने उसी पदार्थ को यदि दूसरे को देने के लिये एक तरफ
रख डाला होगा। १४-(अवणीय-उवणीय-चरण) अपनीतउपनीतचरण-किसी गृह-
स्थने किसी व्यक्ति को देने के लिये अन्नादिक अन्यत्र स्थापित कर रखा होगा और उसको
उसने उसके यत्र भेज दिया होगा, तथा वह उसके घर भी पहुँच चुका होगा, उममें
से देगा तो लूगा। १५-(संसट्टचरण) मंसट्टचरण-भरे हुए हाथ से देगा तो लूगा।
१६-(अमंसट्टचरण) अमंसट्टचरण-बिना भरे हुए हाथ से देगा तो लूगा। १७ (तज्जा-
यमंसट्टचरण) तज्जानमंसट्टचरण-हाथ जिस चीज से संसट्ट भरा रहा होगा वही चीज यदि

तेषु भीन्तं डोषं माणुसने देवाने भाटे ङाढी राणेडो डोय [१३] (उवणीय-
अवणीयचरण) उपनीत-अपनीत-चरण-तु ते व पदार्थं लघंश डे ने डोषं
भीन्तये ते दाताने भाटे तेनी पात्रे मोडल्यो डोय अने दाताये ते व पदार्थने
डोषं भीन्तने देवा भाटे अेक तरङ्ग राणी भूडयो डोय [१४] (अवणीय
उवणीयचरण) अपनीत-उपनीत-चरण-डोषं गृहस्थे डोषं व्यक्तितने देवा भाटे
अन्नादिके भीन्ते डेडाळे राणी मुकेलु डोय अने ते तेषु तेने त्या मोडली दीधु
डोय अने ते तेने घेर पणु पडोयी गयु डोय तेमाथी आपशे तो लघंश
[१५] (संसट्टचरण) संसट्टचरण-शाक आदिथी लरेला डायथी आपशे तो
लघंश [१६] (असंसट्टचरण) असंसट्टचरण वगर लरेला डायथी आपशे तो लघंश

दिट्टलाभिए २०, अदिट्टलाभिए २१. पुट्टलाभिए २२, अपुट्टलाभिए

धरति स तज्जातससृष्टचरक ११७। 'अण्णायचरए' अज्जातचरक—अज्जातम्—अज्जात-
साधुनियम कुल चरति य सोऽज्जातचरक ११८। 'मोणचरए' मौनचरक—मौनम्=
वाक्मयमन, तेन चरति य स मौनचरक ११९। 'दिट्टलाभिए' दृष्टलाभिक—दृष्टस्यैव
भक्तादेर्लाभो दृष्टलाभ, यद्वा दृष्टा-प्रथमदृष्टादेव दातुर्गृहाद्वा लाभो दृष्टलाभ, सोऽस्ति यस्य
स दृष्टलाभिक १२०। 'अदिट्टलाभिए' अदृष्टलाभिक—अदृष्टस्य—आवरणाऽऽच्छादितस्य
दात्रादिभि कृतोपयोगस्य भक्तादेर्लाभ, अथवा अदृष्टात्=पूर्वं कदापि न दृष्टाद् दायकात्लाभ,
सोऽस्याऽस्ती-यदृष्टलाभिक १२१। 'पुट्टलाभिए' पृष्टलाभिक—मिक्षार्थं समागत य साधु
'भो साधो! त्व किमिच्छसि?' एव कश्चिद् गृहस्थ पृच्छति स पृष्ट इत्युच्यते, तस्य साधो-

मुझे देगा तो लूगा। १८—(अण्णायचरए) अज्जातचरक—जो साधुओं के नियमों से अन-
भिज्ञ होगा उसी कुल की मैं भिक्षा लूगा। १९—(मोणचरए) मौनचरक—मैं वहीं से भिक्षा-
प्राप्त करूँगा जो मेरे बिना बोले मुझे भिक्षा लाकर देगा। २०—(दिट्टलाभिए) दृष्टला-
भिक—मैं वहीं भिक्षा लूगा जो सर्वप्रथम मेरी दृष्टि में आवेगी, अथवा मैं उसीसे भिक्षा
लूगा जो सर्वप्रथम मुझे दिखाई देगा, अथवा मैं उसी स्थान से भिक्षा लूगा जो सबसे
पहिले मुझे दिख जायगा। २१—(अदिट्टलाभिए) अदृष्टलाभिक—जो अग्नादिक आवरण
से आच्छादित होने की वजह से दितलाई तो न पड़े, परन्तु दाता उसे अपरे उपयोग में
ला चुका हो, उसमें से भिक्षा देगा तो लूगा, अथवा—जिस दाता को मैं पहिले कभी
भी नहीं देखा वह देगा तो लूँगा। २२—(पुट्टलाभिए) पृष्टलाभिक—दाता यदि पूछेगा,

[१७] (तज्जायससृष्टचरए) तज्जायससृष्टचरक—हाथ ने चीन्धी ससृष्ट थर्ध नय ते
चीन् ने भने आपसे तो लधश (१८) (अण्णायचरए) अज्जातचरक—ने
साधुओंना नियमोथी अज्जात होय अथा कुण्णी हु भिक्षा लधश (१९)
(मोणचरए) मौनचरक—हु तेना पायेथी भिक्षा लधश के ने भारा जेव्या
बिनाञ्च भने भिक्षा लावीने आपी देशे (२०) (दिट्टलाभिए) दृष्टलाभिक—हु
अे ञ् भिक्षा लधश उे नेने हु सर्वथी पड़ेला नेधश अथवा हु तेना ञ्
हाथथी भिक्षा लधश ने भाषुस भारे सर्वप्रथम नेवामा आवशे, अथवा
हु तेञ् ञ्थाथी भिक्षा लधश ने ञ्था भारे सर्व-प्रथम देभाशे (२१)
(अदिट्टलाभिए) अदृष्टलाभिक—ने भावाना पदाथी ढाकण्णुथी ढाडेला होवाना
कारणुथी देभाथ नहि पणु हाता तेने पोताना उपयोगमा लानी चूकेला होय
तेमाथी भिक्षा आपसे तो लधश अथवा ने हाताने मे पड़ेला उदी नेथेला
न होय ते आपसे तो लधश (२२) (पुट्टलाभिए) पृष्टलाभिक—दाता ने

२३, भिक्षालाभिए २४, अभिक्षालाभिए २५, अण्णगिलायए

स्तस्माद् गृहस्थाद् यो लभ स पृथ्वाभ, सोऽस्याऽस्तीति पृथ्वाभिक ॥२३॥ 'अपुट्टलाभिए' अपुट्टलाभिक—केनचिद् गृहस्थेनाऽपुट्टस्थैव साधोर्यस्तस्माद् गृहस्थान्नाभ सोऽपुट्टलाभ, सोऽस्याऽस्ती यपुट्टलाभिक ॥२३॥ 'भिक्षालाभिए' भिक्षालाभिक—कस्यचित् क्षेत्राद् गृहाद्वा याचिवा गृहस्थेन समानीततुच्छन्नन्नचक्रकौट्टवाद्रिकनिष्पादित आहारो भिक्षा, तस्या लभोऽस्यास्तीति भिक्षालाभिक ॥२४॥ 'अभिक्षालाभिए' अभिक्षालाभिक—अयाचितलाभ—अभिक्षा, तस्या लभोऽस्याऽस्ती यभिक्षालाभिक ॥२५॥ 'अण्णगिलायए' अन्नगिलायक—अन्नेन—आहारेण विना ग्लायक, गरिनिष्पन्नमन्न प्रहीयामी यमग्रह कृत्वा भिक्षाचरक इत्यर्थ, पर्युषितान्नभिक्षाचरक इति भाव ॥२६॥ 'ओवणिहिए' औपनिहितिक—उपनिहित—कथञ्चिद् गृहस्थेन स्वसमीपे समानीतमन्नाद्रिकम्, तेन चरति इत्यौपनिहितिक

महाराज! आप क्या चाहते हैं, तमी लूंगा। २३—(अपुट्टलाभिए) अपुट्टलाभिक—दाता यदि नहीं पूछेगा तमी लूंगा। २४—(भिक्षालाभिए) भिक्षालाभिक—दाता गृहस्थ बाल चना एव कौट्ट आदि अन्न को किसी के खेत से अथवा किसी के घर से माग कर लाया होगा उस अन्न से निष्पादित आहारमं से यदि देगा तो लूंगा। २५ (अभिक्षालाभिए) अभिक्षालाभिक—दाता माँग कर जो पदार्थ नहीं लाया होगा उसमें से देगा तो लूंगा। २६—(अन्नगिलायए) अन्नग्लायक—जो अगनादिक रात्रिमें पकाया गया होगा वही लूंगा, अर्थात्—पर्युषित अन्न की भिक्षा लेने का अभिग्रह लेनेवाला समीप जन अन्नग्लायक है। २७ (ओवणिहिए) औपनिहितिक—गृहस्थ अपने समीप में किसी प्रकार से लाया गया अगनादिक में से देगा तो लूंगा। २८—(परिमियपिंड-

पूछशे के भडागज्। आपने शु नेधंछे छे त्यारे लधश (२३) (अपुट्टलाभिए) अपुट्टलाभिक—दाता ने नहि पूछशे तो ज लधश (२४) (भिक्षालाभिए) भिक्षालाभिक—दाता गृहस्थ ने वाल यण्ण तेमज् डोहरा आदि अन्याज् डोधना भेतरथी अथवा डोधने घेरथी भागीने लाव्या डोय ते अन्नथी णनावेला आहार भाथी आपशे तो लधश (२५) (अभिक्षालाभिए) अभिक्षालाभिक—दाताये भागीने ने पदार्थ नही लाव्यो डोय तेभाथी आपशे तो लधश (२६) (अन्नगिलायए) अन्नग्लायक—ने लोजन रातमा राधेछु डशे ते ज लधश—अर्थात् वाग्नी अन्ननी भिक्षा देवानो अभिक्षण्ड लेनार स यमी जन अन्नग्लायक छे (२७) (ओवणिहिए) औपनिहितिक—गृहस्थ पोतानी समीपमा डोध यण्ण प्रुकारे लावेला लोजनभाथी

२६, ओषधिहिए २७, परिमितपिण्डवाइए २८, सुद्धेसणिए २९,
संखादत्तिए ३०। से तं भिक्षवायरिया ॥ सू. ३० ॥

।२७। 'परिमियपिण्डवाइए' परिमितपिण्डपातिक—परिमितपिण्डस्य—प्रमाणोपेनपिण्डस्य
पातो लाभ परिमितपिण्डपात, सोऽस्यास्तानि परिमितपिण्डपातिक—आधाकर्मादिदोषरहित
भक्तादिकमेकस्माद् गृहाद्यदि पर्याप्त लभ्येत तदा प्राणम्—इत्यभिग्रहवान् ।२८। 'सुद्धेसणिए'
शुद्धैपणिक—शुद्धैपणा—शुद्धादिदोषरहितता, शुद्धस्य=उद्गमादिदोषरहितस्य वा षण्णा,
साऽस्याऽस्तीति शुद्धैपणिक, सर्वथा शुद्धमेव प्रायमित्यभिग्रहधाराति भाव ।२९। 'संखा-
दत्तिए' सरयादत्तिक—सरयाप्रधाना दत्ति सरयादत्ति, तथा चरतीति सरयादत्तिक ।
दर्वीकटोरकादितोऽविच्छिन्नधारया या भिक्षा पतति सा, तथा—एकक्षेपरूपा च भिक्षा
दत्तिरित्युच्यते ।३०। 'से त भिक्षवायरिया' सैषा भिक्षाचया ॥ सू. ३० ॥

वाइए) परिमितपिण्डपातिक—आधाकर्मादिक दोषों से रहित भक्तादिक यदि एक ही गृह
से पर्याप्तमात्रा में मिल जाय तो ढेंगा । २९ (सुद्धेसणिए) शुद्धैपणिक—शुद्धादिक दोषों
से रहित अथवा उद्गमादिक दोषों से वर्जित आहार लेने वाला । ३० ('संखादत्तिए')
सरयादत्तिक वह है जो इस प्रकार का सरूप ऋता है कि दर्वी—कडली एवं कटोरी
आदि से अविच्छिन्न धारारूप में जो भिक्षा भोगे पात्र में पड़ जायगी उतना ही भिक्षा
ग्रहण करेगा । ('से त भिक्षवायरिया') भिक्षाचर्या के ये ३० भेद हैं ॥ सू० ३० ॥

आपशे तो लधथ (२८) (परिमियपिण्डवाइए) परिमितपिण्डपातिक—आधा-
कर्मादिक दोषों से रहित भक्तादिक जो एक ही गृह से पर्याप्तमात्रा में मिल जाय तो ढेंगा । २९ (सुद्धेसणिए) शुद्धैपणिक—शुद्धादिक दोषों से रहित अथवा उद्गमादिक दोषों से वर्जित आहार लेने वाला । ३० (संखादत्तिए) सरयादत्तिक वह है जो इस प्रकार का सरूप ऋता है कि दर्वी—कडली एवं कटोरी आदि से अविच्छिन्न धारारूप में जो भिक्षा भोगे पात्र में पड़ जायगी उतना ही भिक्षा ग्रहण करेगा । ('से त भिक्षवायरिया') भिक्षाचर्या के ये ३० भेद हैं ॥ सू० ३० ॥

मूलम्—से किं तं रसपरिच्चाए ? रसपरिच्चाए अणेगविहे
पण्णत्ते, तं जहा १ निच्चिङ्ग, २ पणीयरसपरिच्चाए, ३ आयविलिए,

टीका—‘से किं तं’ इत्यादि—‘से किं तं रसपरिच्चाए’ अथ कोऽसौ रस-
परित्यागः, ‘रसपरिच्चाए’ रसपरित्याग ‘अणेगविहे पण्णत्ते’ अनेकविध प्रजम,
‘तं जहा’ तद्वथा—तत्प्रकृतिमन्व चैवम्—‘निच्चिङ्ग’ निर्विकृतिः—निर्गता घृतादिरूपा
विकृतिर्यस्मात् न निर्विकृतिः १, ‘पणीयरसपरिच्चाए’ प्रणीतरसपरित्याग—प्रणीतरस
प्रचुगत्वात् द्रवद्रव्यविन्दुसन्दोहोऽपूपादि, तस्य परित्याग २, ‘आयविलिए’ आचामाम्लम्—
विकृतिरहिता नामान्नभर्जितवगकाटीना रूक्षान्नानामचित्त उदक प्रविच्यैकामनस्थेन
सकृद्भोजनमाचामाम्ल नाम तप उच्यते । तथा चोक्तम्—

‘से किं तं रसपरिच्चाए ?’ इत्यादि ।

(से किं तं रसपरिच्चाए ?) रसपरित्याग तप किसे कहते हैं वह कितने
प्रकार का है ? इस प्रकार शिष्य प्रश्न करता है । उत्तर—(रसपरिच्चाए) रसपरित्याग
तप (अणेगविहे पण्णत्ते) अनेक प्रकारका कहा गया है । वह इस प्रकार से है—(निच्चि-
ङ्ग) निर्विकृतिः—जिस आहार से घृतादिक विकृति निर्गत हो चुकी हो ऐसे आहारका
ग्रहण करना सो निर्विकृतिः है । अर्थात्—विषय नहा लना (१) । (पणीयरसपरिच्चाए)
प्रणीतरसपरित्याग—अपूप अर्थात् मालपुआ आदि सरस आहार का परित्याग करना (२) ।
(आयविलिए) आचामाम्ल—विषयग्रहित ओदन, भूँजे हुए चने आदि रूक्ष अन्नको
अचित्त पानी में डालकर एकस्थान पर बैठ एक वार ही खाना सो आचामाम्ल तप है ।

‘से किं तं रसपरिच्चाए ?’ इत्यादि

(से किं तं रसपरिच्चाए) इवे अच्छी रसपरित्याग तप डोने ठडे छे—ते
ठेटला प्रकारना छे ? आ प्रकारे शिष्य प्रश्न करे छे उत्तर (रसपरिच्चाए) रस-
परित्याग तप (अणेगविहे पण्णत्ते) अनेक प्रकारना छडेवाय छे ते आ प्रकारे
छे—(निच्चिङ्ग) निर्विकृतिः—आहारमाथी धी वगेरेनी विकृति नीकणी गध डाय
अवे आहार वेवे ते निर्विकृतिः छे अर्थात् विषय (धी—दूध वगेरे)
वेवु नछि (१) (पणीयरसपरिच्चाए) प्रणीतरसपरित्याग—अपूप अर्थात् मालपुआ
आदि सरस आहारने परित्याग करवे (२) (आयविलिए) आचामाम्ल—
विषयग्रहित भात, लुनेल अणु आदि लुथु अन्न अचित्त पाणीमा नाणी

४ आयामसित्थभोई, ५ अरसाहारे, ६ विरसाहारे, ७ अंताहारे,

विगइरहियस्स ओयण, - भज्जियचणगाइलुक्ख-अन्नस्स ।

खित्ता जले अचित्ते, खाण आयणिल जाण ॥ ३ ॥ इति

‘आयाम-सित्थ-भोई’ आयाम-सित्थ भोजी, = अन्नवावणगतसित्थभोक्ता, ४ ‘अर-साहारे’ अरसाऽऽहार - अरस = जीरक-हिङ्गुवादिभिरमस्कृत आहारो यस्य सोऽरसाऽऽहार ५ । ‘विरसाहारे’ विरसाऽऽहार - विरस = विगतरस - पुराणधान्यौदनादि आहारो यस्य स विरसाहार ६ । ‘अंताहारे’ अन्त्याऽऽहार - अन्ते भवम् अन्त्य-जघन्यधान्य कोद्रवादि तदेवाऽऽहारो यस्य सोऽन्त्याहार ७ । ‘पताहारे’ प्रान्ताऽऽहार - प्रकर्षणान्त प्रान्त-पाक-पात्रादन्ते नि सारिते तत्पात्रच्छिष्ट द्रव्यादिना घर्षणेन नि सारितमन्न, वल्लचणकादिनिष्पादि-

कहा भी है—“विगइरहियस्स ओयणभज्जियचणगाइलुक्खअन्नस्स । खित्ता जले अचित्ते खाण आयणिल जाण” इसका अर्थ आयणिल का जो अर्थ क्रिया है वही है (३) । (आयामसित्थभोई) आयामसित्थभोजी—ओसामण, में आये हुए सीथ मात्र का आहार करना (४) । (अरसाहारे) अरसाहार—जारे हींग आदि से विना बघारे हुए आहार का लेना (५) (विरसाहारे) विरसाहार—विगत रस वाले पुराने धान्य का आहार लेना (६) । (अंताहारे) अन्ताहार-कोद्रव आदि तुच्छ धान्य का आहार लेना (७) । (पताहारे) प्रान्ताहार—पकाने के वर्तन में से अन्न के निकालने पर करछली आदि के घर्षण से पात्र में लगा हुआ जो कुछ अन्न निकाल जाता है वह, अथवा वल्ल चगा आदि से बना हुआ पश्चात् सती उछ से मिश्रित अन्नादि

એક ઠેકાણે એમી એકવાર ખાવું તે આયામારૂલ તપ છે “વિગइरहियस्स ओयणभज्जियचणगाइलुक्खअन्नस्स । खित्ता जले अचित्ते खाण आयणिल जाण” आने। अर्थ आयणिलने। જે અર્થ ઢર્યો છે તે જ છે (૩) (आयामसित्थभोई) આયામસિત્થભોજી—ઓસામણમાં આવેલા સીથનો જ માત્ર આહાર કરવો (૪) (अरसाहारे) अरसाहार—जारे हींग आदिથી बघारो वगरना लोअनने। आहार करवो (६) (विरसाहारे) विरसाहार—रस वगरना लुना धान्यथी भनेलु आहार लेवो (अंताहारे) अंताहार—कोद्रव आदि तुच्छ धान्यने आहार लेवो (७) (पताहारे) प्रान्ताहार—राधवाना पात्रादिमाथी अन्न ठाढी लीधा पछी कडछी आदिना घर्षणथी पात्रमा लागेलु जे कछ अन्न निकालवामा आवे छे ते अथवा वाल -अथवा आदिने। भनेलो (लोट) पछी पाटी छायमा भेजवी राधेलु अन्न आदि ते

८ पंताहारे, ९ लूहाहारे, १० तुच्छाहारे, से तं रसपरिचाए ।

से किं तं कायकिलेसे ? कायकिलेसे अणेगविहे प-
णत्ते, तंजहा-ठाणट्टिइए १, उकुडुयासणिए २, पडिमट्टाई ३,

तमम्लनकमिश्रित पर्युषित प्राशन, तदाहारो यस्य स तथा ८ । 'लूहाहारे' रूक्षाहार-
रूक्षम्=अग्निग्धमन्नमेवाहारो यस्य स तथा ९ । 'तुच्छाहारे' तुच्छाहार तुच्छ-अन्पोऽसारश्च
स्यामाकाद्रिनिष्पाद्रित जाहागो यस्य स तथा १० इति । उपनहन्नाह- 'से त रसपरिचाए'
स ण्य रसपरित्याग इति ।

इत्थं दशत्रिंश रसपरित्याग वर्णयित्वा कायक्लेज वर्णयति- 'से किं त कायकिलेसे'
अथ कोऽसौ कायक्लेज 'उत्तरमाह- 'कायकिलेसे अणेगविहे पणत्ते' कायक्लेजोऽनेकत्रिंश
प्रज्ञम । 'तजहा' तद्यथा- 'ठाणट्टिइए' स्थानस्थितिक-स्थान कायोसर्ग, तेन स्थितिर्यस्य
स स्थानस्थितिक । १ । 'उकुडुयासणिए' उकुडुकाऽऽसनिक-भूमावसलम्नपुतेन

प्रात है, अथवा प्रान्तका अर्थ वासी अन भी है । इसका आहार करना प्रान्ताहार ह (९) ।
(लूहाहारे) रूक्षाहार-रूक्षस्वभाववाला कुलथी आदि का आहार रूक्षाहार है (९) ।
(तुच्छाहारे) तुच्छाहार-असार-जिसमें कुछ भी सार नहीं है ऐसा श्यामाक, मरीचा आदि
तुच्छ धान्य का आहार तुच्छाहार है (१०) । (से त रसपरिचाए) ये दस प्रकार के रस-
परित्याग तप है । अन कायक्लेज का वर्णन सूत्रकार करते है-(से किं त कायकिलेसे?)
प्रश्न-वह कायक्लेज तप कितने प्रकार का है? (कायकिलेसे अणेगविहे पणत्ते) उत्तर-
कायक्लेज तप अनेक प्रकार का है, (त जहा) वे प्रकार इस तरह हैं-(ठाणट्टिइए) स्थान-
स्थितिक, स्थान शब्द का अर्थ कायोसर्ग है, इस कायोसर्ग से जिसकी स्थिति सर्वदा रहती
है वह स्थानस्थितिक है । (उकुडुयासणिए) उकुडुकासनिक-उकुडु-आसन से बैठना

प्रान्त छे, अथवा-प्रान्तनो अर्थ वाग्नी अन्न पशु छे, तेनो आहार उरवे।
ते प्रान्ताहार छे (८) (लूहाहारे) रूक्षाहार-रूक्ष स्वभावना कुणथी आदि नो
आहार रूक्षाहार छे (९) (तुच्छाहारे) तुच्छाहार-असार-जे अन्नमा काछ
पशु सार नथी जेवु सामो मलीया आदि तुच्छ धान्यनो आहार ते
तुच्छाहार छे (१०) (से त रसपरिचाए) आ दस प्रकारना रसपरित्याग तप छे
डेवे कायकिलेशतु वर्णन सूत्रकार उरे छे-(से किं त कायकिलेसे) प्रश्न-ते कायकिलेश
तप केटला प्रकारना छे ?-(कायकिलेसे अणेगविहे पणत्ते) ढालकिलेश अनेक प्रका-
रना छे, (त जहा) ते प्रकार आम छे-(ठाणट्टिइए) स्थानस्थितिक=स्थान शब्दनो
अर्थ कायोसर्ग छे आ कायोसर्गथी जेनी स्थिति सर्वदा रहे छे ते

वीरासणिए ४, नेसजिए ५, दडायइए ६, लउडसाई ७, आया-

वद्वाञ्जलिपुटेन भूमौ चरणतलमारोप्योपवेगनम्—उत्कुटुक, तदासनमस्यास्ताति उकुटुकाऽऽसनिक १२। 'पडिमट्टाई' प्रतिमास्थायी—प्रतिमा=मासिन्यादय नियमविशेषा, ताभिस्तिष्ठति तच्छील प्रतिमास्थायी १३। 'वीरासणिए' वाराऽऽसनिक—सिंहासनोपरि समुपविष्टस्य भूमिस्थितचरणस्य सिंहासनापनयने कृते सिंहासनोपविष्टवदवस्थान वारासन, तदस्यास्तीति वीरासनिक १४। 'नेसजिए' नैपधिक—निषद्या—पुताम्या भूम्यामुपवेगन, तथा चरतीति नैपधिक १५। 'दडायइए' दण्डायतिक—दण्डस्येयायतम्=आयामोऽस्याऽस्तीति

यह उकुटुक—आसन है, जो इस आसन से बैठता है वह उकुटुकासनिक है। इस आसन में भूमि पर दोनों चरणों के तलियों को जमाया जाता है और पुत-(वेठक) जमीन को स्पर्श नहा करते, तथा दोनों हाथों की अङ्गुली बधी रहती है। (पडिमट्टाई) प्रतिमास्थायी—साधु की १२ प्रतिमाओं का धारण करने वाला प्रतिमास्थायी है। (वीरासणिए) वीरासनिक—वीरासन से ठहरनेवाला वीरासनिक है। इस आसन का यह लक्षण है—कोई मनुष्य सिंहासन पर बैठा हुआ है, उस सिंहासन को हटा लेने पर वह जैसे ही खड़ा रह जाय, उसे 'वीरासन' कहते हैं। उस आसन से तप करनेवाले को वीरासनिक कहते हैं। (नेसजिए) नैपधिक—निषद्याका अर्थ है—पालथी मार कर बैठना। इस आसन से तप करनेवाले को नैपधिक कहते हैं। (दडायइए) दण्डायतिक—दड की तरह लवा होकर आसन में स्थिति करनेवाला दडायतिक है। (लउडसायी) लकुटुशायी—चक्राष्ट का नाम

स्थानस्थितिक छे (उकुटुयासणिए) उत्कुटुकासनिक=उठकु आसनथी जेसपु ते उत्कुटुक आसन छे जे आ आसन करे छे ते उत्कुटुकासनिक छे आ आसनमा भूमि उपर अन्ने पगना तणियाने जभावी देवामा आवे छे अने पुत (वेठक) जमीनने स्पर्श करती नथी तथा अन्ने हाथनी अजलि जाधेली रहे छे (पडिमट्टाई) प्रतिमास्थायी—साधुनी १२ प्रतिमाओंको धारण करवावाणो प्रतिमास्थायी छे (वीरासणिए) वीरासनिक—वीरासनथी जेसनार वीरासनिक छे आ आसननु जे लक्षण छे के—कोई मनुष्य सिंहासन उपर जेठा होय ते सिंहासनने हटावी लेवाथी ते ज प्रभाणे जेरो रही जाय तेने वीरासन ठडे छे ते आसनथी तप करवावाणाने वीरासनिक छडे छे (नेसजिए) नैपधिक—निषद्याको अर्थ छे पलाठी भारीने जेसपु आ आसनथी तप करवावाणाने नैपधिक छडे छे (दडायइए) दडायतिक—दडनी पेटे लाणा थर्छने आसनमा स्थिति करवावाणा दडायतिक छे (लउडसाई) लकुटुशायी—वाका लाकडानु नाम

वए ८; अवाउडए ९, अकंडुयए १०, अणिट्टूहए ११, सव्वगाय-
परिकम्म-विभूस-विप्पमुक्के १२, से तं कायकिलेसे।

दण्डायतिक १६। 'लउडसाई' लउटशायी-लउटो=नक्रकाष्ठ तद्वच्छेते तच्छीलो लउट-
शायी-उत्तान सन शयित्वा पाणिंक्रुदय ('ण्डी' इति भाषाप्रसिद्धय) शिरश्चेति त्रय भूमौ
स्थापयिवा शंते तच्छील १७। 'आयावए' आतापक -आतापयति शीतोष्णादिभिर्देह सतापयति-
हेयती यातापक, आतापना च सूर्यातपादिसहनम् १८। 'अवाउडए' अप्रावृत्तक -शीतकाले
प्रावरणरहित -सदोरकमुसवब्रिकाचोल्पपद्मातिरिक्तनखरहित १९। 'अकडूयए' अकण्डयक -
कण्डयन-गात्रवर्षण, तद्रहित ११०। 'अणिट्टूहए' अनिष्ठीवक -निष्ठीवनरहित १११।
'सव्वगाय-परिकम्म-विभूस-विप्पमुक्के' सर्वगात्र-परिकर्म-विभूषा-विप्रमुक्त =सर्वस्य
गात्रस्य परिकर्म-मार्जन विभूषा-विभूषण च, तान्या विप्रमुक्त -त्यक्तसमार्जनविभूषण ११२।
'से तं कायकिलेसे' स एष कायकेश १।

लउट है। इस तरह होकर जो शयन करता है वह लउटशायी है। ऊपर मुँह कर पहिले
सोना पश्चात् दोनों पैरों की एडियों को एव शिर को जमीन पर टेकना, इस प्रकार शरीर को
अधर रखकर आसन करना 'लउटशयनासन' है। (आयावए) आतापक-सूर्यादि की
आतापना लेने वाला, (अवाउडए) अप्रावृत्तक-शीतकाल में सदोरक मुँहपत्ती एवं चोल-
पद्म के अतिरिक्त अयवस्त्रों से रहित हो खुले शरीर से शीतको सहन करनेवाला अप्रावृत्तक है।
(अकडूयए) अकण्डयक-खुजली चलने पर भी शरीर को नहीं खुजलाने वाला अकण्डयक है।
(अणिट्टूहए) अनिष्ठीवक-थूँक आने पर भी नहीं थूँकनेवाला अनिष्ठीवक है।
(सव्वगाय-परिकम्म-विभूस-विप्पमुक्के) सर्वगात्रपरिकर्मविभूषाविप्रमुक्त-शरीर की
सर्वथा शुभ्रूषा-विभूषा नहीं करनेवाला सर्वगात्रपरिकर्मविभूषाविप्रमुक्त है। (से तं काय-

लउट छे ओवी रीते थधने ने शयन करे छे ते लउटशायी छे उपर मोहु
राष्ठीने पडेला सुवु, पथी धन्ने पगनी ओडीओने तेमळ शिरने जमीन
उपर टेठाववु-आ प्रकारे शरीरने अधर राष्ठीने आसन करवु ते 'लउट-
शयनासन' छे (आयावए) आतापक-सूर्यआदिनी आतापना देवावाजा, (अवा
उडए) अप्रावृत्तक-शीतकालमा होराभाये मुहुपत्ती तेमळ ओलपद्म मिवायना
धीन वओ रहित थधने खुव्वे शरीरे शीतने महुन ठरवावाजा अप्रावृत्तक
छे (अकडूयए) अक डूयक-खुजली आवता छता पळु ने शरीरने अळवाये
नडि ते अक डूयक छे (अणिट्टूहए) अनिष्ठीवक-थूँक आववा छता पळु न
थूँकवावाजा अनिष्ठीवक छे (सव्वगाय परिकम्म विभूस-विप्पमुक्के) सर्वगात्रपरिकर्म

से किं तं पडिसंलीयणा? पडिसंलीणया चउच्चिहा पण्णत्ता; तंजहा—१ इंदियपडिसंलीणया, २ कसायपडिसंलीणया, ३ जोग-पडिसंलीणया, ४ विवित्त-सयणा-सण-सेवणया । से किं तं इंदियप-डिसंलीणया ? इंदियपडिसंलीणया पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—

‘से किं तं पडिसंलीणया?’ अथ का सा प्रतिसलीनता=प्रतिसलीनता=गोपन, सा कतिविधा? उत्तरमाह—‘पडिसंलीणया’ ‘प्रतिसलीनता’—‘चउच्चिहा पण्णत्ता’ चतुर्विधा प्रजता, ‘तं जहा’ तद्यथा १—‘इंदियपडिसंलीणया’ इन्द्रियप्रतिसलीनता—इन्द्रिय-निरोधकरणशीलता । २—‘कसायपडिसंलीणया’ कषायप्रतिसलीनता । ३—‘जोग-पडिसंलीणया’ योगप्रतिसलीनता । ४—‘विवित्त-सयणा-सण-सेवणया’ विवित्त-शयना-सन-सेवनता। ‘से किं तं इंदियपडिसंलीणया’ अथ का सा इन्द्रियप्रतिसलीनता?, ‘इंदिय-

किलेसे) कायक्लेश के ये १२ भेद है। (से किं तं पडिसंलीणया) प्रतिसलीनता तप कितने प्रकार का है? (पडिसंलीणया चउच्चिहा पण्णत्ता) प्रतिसलीनता तप चार प्रकार का है। (तं जहा) वे चार प्रकार ये हैं—(इंदियपडिसंलीणया) इन्द्रियप्रतिसलीनता—इन्द्रियों को गोप करके रखना। (कसायपडिसंलीणया) कषायप्रतिसलीनता—क्रोधादिकषायों को गोप करके रखना, (जोगपडिसंलीणया) योगप्रतिसलीनता—मन वचन काया के व्यापार को गोप करके रखना (विवित्त-सयणा-सण-सेवणया) विवित्तशयनासनसेवनता-स्त्री-पशु-पण्डक-रहित स्थान में शयनासन करना। (से किं तं इंदियपडिसंलीणया) इन्द्रियप्रतिसलीनता कितने प्रकार की है? (इंदियपडिसंलीणया पंचविहा पण्णत्ता) यह

विभूषाविप्रभुक्त-शरीरनी सर्वथा शुश्रूषा (मेवा शष्पुगार) न करवा-वाणाने सर्वगात्रपरिकर्माविभूषाविप्रभुक्त उडे छे (से तं कायक्लेशे) कायक्लेशना आ १२ प्रकार थाय छे (से किं तं पडिसंलीणया) प्रतिसलीनता तप डेटला प्रकारना छे? (पडिसंलीणया चउच्चिहा पण्णत्ता) प्रतिसलीनता तप आर प्रकारना छे (तं जहा) ते आर प्रकार आ प्रभाण्णे छे (इंदियपडिसंलीणया) इन्द्रियोने गोपी राभवी (कसायपडिसंलीणया) कषायप्रतिसलीनता—क्रोध आदि कषायोने शैकी राभवा (जोगपडिसंलीणया) योगप्रतिसलीनता—वाणी, मन अने जायाना व्यापारने शैकी राभवा (विवित्त-सयणा-सण-सेवणया) विवित्तशयनासनसेवनता स्त्रीपशुपण्डक-रहित स्थानमा शयनासन करवु (से किं तं इंदियपडिसंलीणया) इन्द्रियप्रतिसलीनता डेटला प्रकारनी छे? (इंदियपडिसंलीणया पंचविहा पण्णत्ता)

सोडंडिय-विसय-प्पयार-निरोहो वा सोडंडिय-विसय-पत्तेसु अत्येसु
रागदोसनिग्गहो वा १, चर्म्मिन्द्रिय-विसय-प्पयार-निरोहो वा चर्म्मिन्द्र-

पडिसलीणया' इन्द्रियप्रतिमलीनता 'पचप्पिणा पण्णात्ता' पचप्पिणा प्रज्ञा, 'त जहा'
तयथा-'सोडंडिय-विसय-पयार-निरोहो वा, सोडंडिय-विसय-पत्तेसु अत्येसु राग-
दोसनिग्गहो वा' श्रोत्रेन्द्रियविषयप्रचारनिरोधो वा श्रोत्रेन्द्रियविषयप्राप्तेऽर्थेषु गगद्वेपनिग्रहो
वा-श्रोत्रेन्द्रिय=कर्णस्य विषये=शब्दे, प्रचारम्य=प्रवृत्ते, निरोध-निषेध, मयमगीन्त्राविधा-
तक शब्दो न श्रोतव्य, यच्चक्रस्मात्कर्णमुहरगत स्यात् तदा यकार्यं तदाह-श्रोत्रेन्द्रिय-विषय-
प्राप्तेऽर्थेषु=श्रुतेषु भावेषु, रागद्वेषयोर्निग्रहो विषय, अर्धान-मधुरमृदङ्गमर्द्दातेषु-अनुगो न
कर्तव्य, आक्रोशादिषु शब्देषु द्वेष-अप्रीतिरक्षणश्चित्तविकारो न कार्य १। 'चर्म्मिन्द्रिय-
विसय-प्पयार-निरोहो वा, चर्म्मिन्द्रिय-विसय-पत्तेसु अत्येसु रागदोसनिग्ग-
हो वा' चक्षुर्गिन्द्रियविषयप्रचारनिरोधो वा चक्षुर्गिन्द्रियविषयप्राप्तेऽर्थेषु रागद्वेपनिग्रहो वा-

इन्द्रियप्रतिमलीनता पाच प्रकार की है, (त जहा) वे प्रकार ये हैं-(सोडंडिय-विसय-प्पयार-
निरोहो वा, सोडंडिय-विसय-पत्तेसु अत्येसु रागदोसनिग्गहो वा) श्रोत्र-इन्द्रिय को
विषय-शब्द में प्रवृत्ति करने से गेरुना, मयम एव श्रोत्र को विधात करनेवाले शब्दों को
नहीं सुनना, यदि अक्रस्मात् इस प्रकार के शब्द कानमें आकर पड़ भी जावें तो उस विषयमें
राग-द्वेष नहीं करना, यह प्रथम प्रकार है १। मतलब इसका यह है कि मधुर मृदङ्ग सर्द्धान
आदि प्रिय एव आक्रोशादि अप्रिय शब्दों क प्रति प्रीति-अप्रीतिरक्षणरूप चित्तविकार नहीं
करना सो श्रोत्रेन्द्रियविषयप्रचारनिरोध, एव श्रोत्रेन्द्रियविषयप्राप्त्यारगद्वेपनिग्रहनामक प्रथम
प्रकार है १। चर्म्मिन्द्रिय-विसय-प्पयार-निरोहो वा चर्म्मिन्द्रिय-विसय-पत्तेसु अत्येसु
रागदोसनिग्गहो वा) चक्षु इन्द्रिय को अपने विषयमूल पदार्थों में प्रवृत्त होने से गेरुना,

आ धन्द्रियप्रतिमलीनता ५ प्रकार की है-(त जहा) ते प्रकार आ छे-
(सोडंडिय-विसय-पयार-निरोहो वा, सोडंडिय विसय पत्तेसु अत्येसु रागदोसनिग्गहो वा)
श्रोत्र-धन्द्रियने विषय-शब्दमा प्रवृत्ति करवाथी रोकथी, मयम तेमज्ज शीलने
विधात उवावाणा शब्दो मालज्जा नहि ने अक्रस्मात् आवा प्रज्ञाना शब्द
कानमा आधीने पडी पणु जय तो ते विषयमा गगद्वेष न करवे। अ १ प्रथम
प्रकार छे मतलब तेनी अ १ छे डे मधुर मृदङ्ग मगीत आदि प्रिय, तेमज्ज
आक्रोश आदि अप्रिय शब्दोमा प्रीति अप्रीति-रक्षणरूप चित्तविकार न करवे। ते
श्रोत्रेन्द्रियविषय-प्रचारनिरोध तेमज्ज श्रोत्रेन्द्रियविषयप्राप्त्यारगद्वेपनिग्रह नामने।
प्रथम प्रकार छे (चर्म्मिन्द्रिय विसय-प्पयार-निरोहो वा चर्म्मिन्द्रिय विसय पत्तेसु अत्येसु

दिय-विसय-पत्तेसु अत्थेसुरागदोसनिग्गहो वा २, घाणिंदिय-विसय-
प्पयार-निरोहो वा घाणिंदिय-विसय-पत्तेसु अत्थेसु रागदोसनि-
ग्गहो वा ३, जिब्भदिय-विसय-प्पयार-निरोहो वा जिब्भदिय-वि-
सय-पत्तेसु अत्थेसु रागदोसनिग्गहो वा ४, फासिंदिय-विसय-प्पयार-

चक्षुरिन्द्रियस्य=नेत्रस्य विषये=रूपे प्रचारस्य=प्रवृत्तेर्निषेध कार्य, वा-अथवा चक्षुरिन्द्रिय-
विषयप्राप्तेषु=दृष्टेषु अर्थेषु-मनोजामनोजरूपेषु रागद्वेषयोर्निग्रह कर्तव्य इति शेष । २।
'घाणिंदिय-विसय-प्पयार-निरोहो वा, घाणिंदिय-विसय-पत्तेसु अत्थेसु रागदोस-
निग्गहो वा' घ्राणेन्द्रियविषयप्रचारनिरोधो वा घ्राणेन्द्रियविषयप्राप्त्यर्थेषु रागद्वेषनिग्रहो वा-
घ्राणेन्द्रिय=नासिका, तस्य विषयो=गन्धस्तस्य प्रवृत्तेर्निषेधो विषेय-सुरभिगन्धे दुरभि-
गन्धे वा नासिकामागते रागद्वेषौ निराकर्तव्यौ । ३। 'जिब्भदिय-विसय-प्पयार-निरोहो
वा, जिब्भदिय-विसय-पत्तेसु अत्थेसु रागदोसनिग्गहो वा' जिह्वेन्द्रियविषयस्य
भोजनरसस्य प्रचारनिषेध, जिह्वायामागतेऽपि मनोजामनोजरसे रागद्वेषयोर्निग्रह । ४। 'फासिं-

अथवा प्रवृत्त होने पर उसके विषय में राग और द्वेष नहीं करना, यह द्वितीय प्रकार है २।
(घाणिंदिय-विषय-प्पयार-निरोहो वा, घाणिंदिय-विसय-पत्तेसु अत्थेसु रागदोस-
निग्गहो वा) घ्राण-इन्द्रिय को अपने विषय में प्रवृत्त होने से रोकना, तथा प्रवृत्त होने पर
उस विषयमें राग द्वेष नहीं करना, यह तृतीय प्रकार है ३। (जिब्भदिय-विसय-प्पयार-
निरोहो वा जिब्भदिय-विसय-पत्तेसु अत्थेसु रागदोसनिग्गहो वा) जिह्वा-इन्द्रिय
को अपने विषयमें प्रवृत्त होने से रोकना, एव उस विषय में उसके प्रवृत्त होने पर प्राप्त
विषयमें राग-द्वेषका निग्रह करना, यह चौथा प्रकार है ४। (फासिंदिय-विसय-प्पयार-निरोहो
वा, फासिंदिय-विसय-पत्तेसु अत्थेसु रागदोसनिग्गहो वा) इसी प्रकार स्पर्शन, इन्द्रिय

रागदोसनिग्गहो वा) अक्षु धद्रियना विषयभूत पदार्थोभा तेनी प्रवृत्ति रोकवी अथवा
प्रवृत्ति थध जता ते भाषत राग अने द्वेष न करवे। अे भीजे प्रकार छे
(घाणिंदिय विसय-प्पयार निरोहो वा घाणिंदिय विसय-पत्तेसु अत्थेसु रागदोसनिग्गहो वा)
घ्राण-धद्रियना-विषयभा तेनी प्रवृत्ति रोकवी, अथवा प्रवृत्ति थध जता ते
भाषतभा राग-द्वेष न करवे। अे त्रीजे प्रकार छे (जिब्भदिय विसय-प्पयार-निरो-
हो वा जिब्भदिय विसय पत्तेसु अत्थेसु रागदोसनिग्गहो वा) अक्षु धद्रियना विषयभा-
प्रवृत्ति रोकवी तेभज तेना विषयभा ते प्रवृत्त थध जत तो पछी प्राप्त
भाषतभा राग द्वेष थता रोकवे। अे चौथे प्रकार छे (फासिंदिय-विसय

निरोहो वा फासिंदिय-विसय-पत्तेसु अत्येसु रागदोसनिग्गहो वा ५,
से तं इंदियपडिसंलीणया । से किं तं कसायपडिसंलीणया ?
कसायपडिसंलीणया चउच्चिहा पणत्ता, तं जहा—१ कोहस्सुदय-
निरोहो वा, उदयपत्तस्स वा कोहस्स विफलीकरणं । २ माण-

दिय-विसय-प्पयार-निरोहो वा, फासिंदिय-विसय-पत्तेसु अत्येसु रागदोस-
निग्गहो वा 'स्पर्गेन्द्रियप्रियप्रचारनिरोधो वा स्वर्गेन्द्रियविषयप्राप्तेष्वर्थेषु रागद्वेषनिग्रहा वा-
स्पर्गेन्द्रिय=वक्, तस्य प्रिय स्पर्श=शीतोष्णादिक, तत्र प्रवृत्ते प्रतिषेध, प्राप्तेष्वपि
शुभाशुभस्पर्शेषु रागद्वेषयोर्निषेध । 'से त इंदियपडिसंलीणया' सैषा इन्द्रियप्रति-
सलीनता । 'से किं त कसायपडिसंलीणया' अथ का मा कपायप्रतिसलीनता, 'कसाय-
पडिसंलीणया' कपायप्रतिसलीनता 'चउच्चिहा पणत्ता' चतुर्विधा प्रज्ञता, 'त जहा'
तद्यथा—'कोहस्सुदयनिरोहो वा, उदयपत्तस्स वा कोहस्स विफलीकरणं' क्रोधस्योदय-
निरोधो वा, उदयप्राप्तस्य वा क्रोधस्य विफलीकरणम्—प्रथमतस्तु क्रोधस्य उदय एव निषे-

को भी अपने प्रिय म प्रवृत्त होने से रोकना एव उस विषय में उसके प्रवृत्त होने
पर उसमें राग द्वेष होने का वर्जन करना, यह पाचवौं प्रकार है । इन पाचों प्रकारों का
भाव यही है कि इन्द्रियों पर प्रिय प्राप्त करना, तथा प्राप्त उनके अपने २ मनोज एव
अमनोज प्रियों के ऊपर राग एव द्वेषकी परिणति से विरक्त रहना । (से त इंदियपडि-
संलीणया) यह सब इन्द्रियप्रतिसलीनता है । (से किं त कसायपडिसंलीणया)
कपायप्रतिसलीनता क्या है? (कसायपडिसंलीणया चउच्चिहा पणत्ता) कपायप्रतिसलीनता
चार प्रकार की है । (त जहा) वह इस प्रकार से है—(१—कोहस्सुदयनिरोहो वा, उदय-

प्पयार-निरोहो वा फासिंदियविसयपत्तेसु अत्येसु रागदोसनिग्गहो वा) ओ प्रकारे
स्पर्शन-धंद्रियना विषयभा तेनी प्रवृत्ति शेकवी तेभञ्ज ते विषयभा
तेनी प्रवृत्ति थध न्दथ तो ते भाटे राग द्वेष न करवो ओ पाथ्यमे
प्रकार छे आ पाथ्येय प्रकारेनो लाव ओ ञ्ज छे के धंद्रियेओ उपर विज्य प्राप्त
करवो, तथा ते प्राप्त थता पोतपोताना मनोज तेभञ्ज अभनोज विषयो उपर
राग के द्वेषनी परिष्णुतिथी विरजत रडेपु (से त इंदियपडिसंलीणया) आ ण्णु
धंद्रियप्रतिसलीनता छे (से किं त कसायपडिसंलीणया) प्रश्न-कपायप्रतिसलीनता
शु छे ? उत्तर—(कपायपडिसंलीणया चउच्चिहा पणत्ता) कपायप्रतिसलीनता चार
प्रकारनी छे (त जहा) ते आ प्रकारे छे—(कोहस्सुदयनिरोहो वा उदयपत्तस्स वा

स्सुदयनिरोहो वा, उदयपत्तस्स वा माणस्स विफल.

३ मायाउदयणिरोहो वा, उदयपत्ताए वा मायाए ।

करणं । ४ लोहस्सुदयणिरोहो वा, उदयपत्तस्स वा लो.

धनीय, यथा क्रोधो नोदयेत तथा यतितन्व्यम्, अथापि यदि क्रोध उदय प्रानुया-
तदा तस्य विफलीकरणम्=व्यर्थीकरणम् । १। 'माणस्सुदयनिरोहो वा, उदयपत्तस्स वा
माणस्स विफलीकरण'—मानस्योदयनिरोधो वा उदयप्राप्तस्य वा मानस्य विफलीकरणम्—
मानस्य—अभिमानस्योदय एव निषेधितव्य, माने उदय प्राप्तेऽपि विफलीकरणम्=सतोऽपि
असत इव करणम् । २। 'माया—उदय—निरोहो वा, उदयपत्ताए वा मायाए
विफलीकरण' मायाया उदयनिरोधो वा, उदयप्राप्ताया वा मायाया विफलीकरणम्—
उदयमानाया एव मायाया =परवचनारूपाया निषेध कर्तव्य, कथञ्चिदुदिताया वा मायाया =
कपटक्रियाया विफलीकरणम् । ३। 'लोहस्सुदयणिरोहो वा, उदयपत्तस्स वा लोहस्स

पत्तस्स वा कोहस्स विफलीकरण, २—माणस्सुदयनिरोहो वा, उदयपत्तस्स वा
माणस्स विफलीकरण, ३ मायाउदयनिरोहो वा, उदयपत्ताए वा मायाए विफली-
करण, ४ लोहस्सुदयणिरोहो वा उदयपत्तस्स वा लोहस्स विफलीकरण) प्रथम तो
क्रोध के उदय का ही निरोध करना, यह सर्वोत्तम पक्ष है, उदयनिरोध होने से क्रोध का
मूल विनष्ट हो जाता है । यदि क्रोध उदित हो जाय तो उसे विफल कर देना चाहिये १ ।
प्रथम तो ऐसा ही यत्न करना चाहिये कि जिससे मानरूपाय का उदय ही न हो, यदि
मानरूपाय उदित हो जाय तो उसे विफल कर देना चाहिये २ । उत्तम बात यही है कि
मायाकूपाय आमा में उदित न हो, यदि वह उदित हो जाती है तो उसको विफल बना देना

कोहस्स विफलीकरण, माणस्सुदयनिरोहो वा उदयपत्तस्स वा माणस्स विफलीकरण, माया-
उदयनिरोहो वा उदयपत्ताए वा मायाए विफलीकरण, लोहस्सुदयणिरोहो वा उदयपत्तस्स वा
लोहस्स विफलीकरण) प्रथम तो क्रोधको उदय यथा ७ निरोध करवो ७
सर्वोत्तम पक्ष छे उदयनिरोध थवाथी क्रोधतु भूण ७ नाश थामे छे ७
क्रोधको उदय थर्ध ७य तो तेने विक्षल करी देवो ७ १ पडैला ता
७येवो ७ यत्न करवो ७ ७थी मानकपायको उदय ७ न थाय ७
मानकपायको उदय थर्ध ७य तो तेने विक्षल करी देवो ७ २ उत्तम
वात ७ ७ छे के मायाकपाय पणु आत्माभा उदय न थर्ध थके ७
वातनी प्रवृत्ति करवी ७ ७तेना उदय थर्ध युक्तयो होय तो तेने
विक्षल करी देवु ७ ३ ७ ७ प्रकारे दोल पणु आत्माभा उदित न थाय

विफलीकरणं, से तं कसायपडिसलीणया । से किं तं जोगपडिसलीणया ? जोगपडिसलीणया त्रिविहा पणत्ता, तं जहा-१ मणजोगपडिसलीणया, २ वयजोगपडिसलीणया, ३ कायजोगपडिसली-

विफलीकरण 'लोभस्योन्वयनिरोधो वा, उदयप्राप्तस्य वा लोभस्य विफलीकरणम्-परस्व-
प्रहणालमा लोभस्तन्वोन्वय एव निराकरणीय, कथञ्चित्त्वापि वस्तुनि लोभे सत्यपि स
लोभ उदितोऽपि निषेधनीय । १। 'से त कसायपडिसलीणया' सैषा कृपायप्रति-
मर्त्तनता । १। 'से किं तं जोगपडिसलीणया' अथ का सा योगप्रतिसलीनता ?
'जोगपडिसलीणया' गोगप्रतिमर्त्तनता-'त्रिविहा पणत्ता' त्रिविधा प्रज्ञा 'त जहा'
तयथा 'मणजोगपडिसलीणया' मनोयोगप्रतिमर्त्तनता-योगो=बन्ध, कर्मणा सह मनसो
योगो-मनोयोग, तस्य प्रतिसलीनता-निरोधशीलता १। 'वयजोगपडिसलीणया'-वाग्-
योगप्रतिमर्त्तनता २। 'कायजोगपडिसलीणया' काययोगप्रतिमर्त्तनता ३। 'से किं तं

चाहिये ३ । इसी प्रकार लोभ भी आत्मा में उदित न हो सके, इस प्रकार प्रवृत्ति करनी
चाहिये, यदि वह उदित हो चुका हो तो उसे विफल कर देना चाहिये ४ । तात्पर्य यह है कि
चारों कृपाओं को जैसे भी बने उस प्रकार से जीतना । (से त कसायपडिसलीणया)
यह कृपायप्रतिसलीनता है । (से किं तं जोगपडिसलीणया) योगप्रतिसलीनता क्या
है ? (जोगपडिसलीणया त्रिविहा पणत्ता) योगप्रतिसलीनता तीन प्रकार की रही
गई है, (तजहा) वह इस तरह से, (मणजोगपडिसलीणया वयजोगपडिसलीणया
कायजोगपडिसलीणया) कर्मों के साथ मनका बधन होना सो मनोयोग है, उसका
गोपन करना मनोयोगप्रतिसलीनता है । वचनयोगप्रतिसलीनता एव काययोगप्रतिमर्त्तनता भी
वचनयोग को गोपना एव काययोग को गोपना है । इसी विषय को आगे के सूत्राद्य से सूत्र-

आ भाटे प्रथत्त उरये न्नेधये क्कहाथ ते उदित थध युक्थे छोथ तो तेने
निष्केण करी देवु न्नेधये ४

तात्पर्य ये छे उे थारिये कथायेने नेम अने तेवा प्रकारे छुतवा (से त कसाय
डिसलीणया) आ कृपायप्रतिसलीनता छे (से किं तं जोगपडिसलीणया) प्रश्न-योग
प्रतिसलीनता शु छे ? उत्तर-(जोगपडिसलीणया त्रिविहा पणत्ता) योगप्रतिसलीनता
प्रथु प्रकारनी उडेवाथ छे, (त जहा) ते आ प्रभाण्णे छे-(मणजोगपडिसलीणया वय-
जोगपडिसलीणया कायजोगपडिसलीणया) उर्भेनी साथे मननु अधन थाथ ते
मनोयोग छे तेनु गोपन उरवु ते मनोयोगप्रतिसलीनता छे वचनयोगप्रति-
सलीनता तेमञ्ज काययोगप्रतिसलीनता प्रथु वचनयोगने गोपवु तेमञ्ज काय-

स्सुदयनिरोहो वा, उदयपत्तस्स वा माणस्स विफलीकरणं ।
३ मायाउदयणिरोहो वा, उदयपत्ताए वा मायाए विफली-
करणं । ४ लोहस्सुदयणिरोहो वा, उदयपत्तस्स वा लोहस्स

धनीय, यथा क्रोधो नोदयेत तथा यतितञ्जम्, अथापि यदि क्रोध उदय प्राप्नुयात्
तदा तस्य विफलीकरणम्=व्यर्थोकरणम् । १। 'माणस्सुदयनिरोहो वा, उदयपत्तस्स वा
माणस्स विफलीकरण'—मानस्योदयनिरोधो वा उदयप्राप्तस्य वा मानस्य विफलीकरणम्—
मानस्य—अभिमानस्योदय एव निषेधितञ्ज, माने उदय प्राप्तेऽपि विफलीकरणम्=सतोऽपि
असत् इव करणम् । २। 'माया—उदय—निरोहो वा, उदयपत्ताए वा मायाए
विफलीकरण' मायाया उदयनिरोधो वा, उदयप्राप्ताया वा मायाया विफलीकरणम्—
उदयमानाया एव मायाया =परवचनारूपाया निषेध कर्तव्य, कथञ्चिदुदिताया वा मायाया =
कपटक्रियाया विफलीकरणम् । ३। 'लोहस्सुदयणिरोहो वा, उदयपत्तस्स वा लोहस्स

पत्तस्स वा लोहस्स विफलीकरण, २—माणस्सुदयनिरोहो वा, उदयपत्तस्स वा
माणस्स विफलीकरण, ३ मायाउदयनिरोहो वा, उदयपत्ताए वा मायाए विफली-
करण, ४ लोहस्सुदयणिरोहो वा उदयपत्तस्स वा लोहस्स विफलीकरण) प्रथम तो
क्रोध के उदय का ही निरोध करना, यह सर्वोत्तम पक्ष है, उदयनिरोध होने से क्रोध का
मूल विनष्ट हो जाता है । यदि क्रोध उदित हो जाय तो उसे विफल कर देना चाहिये १ ।
प्रथम तो ऐसा ही यत्न करना चाहिये कि जिससे मानरूपाय का उदय ही न हो, यदि
मानरूपाय उदित हो जाय तो उसे विफल कर देना चाहिये २ । उत्तम बात यही है कि
मायारूपाय आमा में उदित न हो, यदि वह उदित हो जाती है तो उसको विफल बना देना

लोहस्स विफलीकरण, माणस्सुदयनिरोहो वा उदयपत्तस्स वा माणस्स विफलीकरण, माया-
उदयनिरोहो वा उदयपत्ताए वा मायाए विफलीकरण, लोहस्सुदयणिरोहो वा उदयपत्तस्स वा
लोहस्स विफलीकरण) प्रथम तो क्रोधने उदय थता न निरोध करवे। ओ
सर्वोत्तम पक्ष छे उदयनिरोध थवाथी क्रोधनु मूण न नाश पावे छे जे
क्रोधने उदय थर्ध नथ तो तेने विक्षल करी देवे। जेधजे १ पडैला तो
जेवे न यत्न करवे। जेधजे के जेथी मानरूपायने उदय न थाय जे
मानरूपायने उदय थर्ध नथ तो तेने विक्षल करी देवे। जेधजे २ उत्तम
वात जे न छे के मायारूपाय पणु आत्माभा उदय न थर्ध शके जेवी
नतनी प्रवृत्ति करी जेधजे जे तेने उदय थर्ध थुकये छाय तो तेने
विक्षल करी देवे जेधजे ३ जे न प्रदारे दोष पणु आत्माभा उदित न थाय

कायजोगपडिसंलीणया—जं णं सुसमाहियपाणिपाए कुम्मो इव गुत्तिदिए सब्वगायपडिसंलीणे चिट्ठइ, से तं कायजोगपडिसंलीणया। से किं तं विवित्त-सयणा-सण-सेवणया? विवित्त-सयणा-सण-सेवणया—जं णं आरामेसु उज्जाणेसु देवकुलेसु सहासु पवासु पणि-

काययोगप्रतिमलीनतामाह—‘ से किं तं कायजोगपडिसंलीणया? अथ का सा काययोगप्रतिमलीनता ’ ‘ कायजोगपडिसंलीणया ’ काययोगप्रतिसंलीनता नाम—‘ जं णं सुसमाहियपाणिपाए कुम्मो इव गुत्तिदिए सब्वगायपडिसंलीणे चिट्ठइ ’ यत् खलु सुसमाहितपाणिपाद कूर्म इव गुत्तेन्द्रिय सर्वगात्रप्रतिसंलीनस्तिष्ठति । यत् खलु=निश्चयेन सुसमाहितपाणिपाद =सुसथतहस्तचरण , अत एव कच्छपवद् गुत्तेन्द्रिय =सुरक्षितमर्नेन्द्रिय , सर्वगात्रप्रतिसंलीन —सर्वं गात्रै =अवयवै प्रतिसंलीन —निवारितवृत्तिस्तिष्ठति—कायिक-सावयाऽनुष्ठानजितो भवति । ‘ से तं कायजोगपडिसंलीणया ’ संपा काययोगप्रतिसंलीनता । ‘ से किं तं विवित्त-सयणा-सण-सेवणया ’ अथ का सा विविक्रययनाऽऽमनसेऽनता ? विविक्रानि=दोषरहितानि शयनासनानि, तेषां सेवनता—सेवनम्, सा क्रीदृशी? इति प्रश्न, उत्तरमाह—‘ विवित्त-सयणा-सण-सेवणया—जं णं आरामेसु उज्जाणेसु देवकुलेसु सहासु पवासु पणियगिहेसु पणियसालासु इत्थी-पसु-पडग-संसत्त-विरहियासु वसहीसु फासुएसणिज्ज पीढ-फन्ग-सेज्जा-सथारंगं उवसपज्जित्ताण

पडिसंलीणया—जं णं सुसमाहियपाणिपाए कुम्मो इव गुत्तिदिए सब्वगायपडिसंलीणे चिट्ठइ, से तं कायजोगपडिसंलीणया) हाथ पैरों को तथा इन्द्रियों को कच्छप के समान अच्छी तरह विषयों से गोप कर रखना काययोगप्रतिसंलीनता है । (से किं तं विवित्त-सयणा-सण-सेवणया) विविक्रययनासन—दोषरहित शयन तथा आसन की सेवनता क्या है? (विवित्त-सयणा-सण-सेवणया—जं णं आरामेसु उज्जाणेसु देवकुलेसु, सहासु, पवासु, पणियगिहेसु, पणियसालासु, इत्थीपसुपडगससत्तविरहियासु

काययोगप्रतिसंलीनता शेषु नाम छे?—(कायजोगपडिसंलीणया—जं णं सुसमाहियपाणिपाए कुम्मो इव गुत्तिदिए सब्वगायपडिसंलीणे चिट्ठइ, से तं कायजोगपडिसंलीणया) हाथ, पैर, तथा इन्द्रियोंने कायआनी पेटे सारी रीते विषयैथी गोपनी राखवा ते काययोगप्रतिसंलीनता छे (से किं तं विवित्त-सयणा सण सेवणया) विविक्रययनासन—दोषरहित शयन तेमज्ज आसनसु सेवनं शु छे? (विवित्त-सयणा-सण सेवणया—जं णं आरामेसु उज्जाणेसु देवकुलेसु सहासु पवासु पणियगिहेसु पणियसालासु,

णया । से कि तं मणजोगपडिसंलीणया ? मणजोगपडिसंलीणया—१ अकुसलमणनिरोहो वा, २ कुसलमणउदीरणं वा । से तं मण-जोग-पडिसंलीणया । से किं तं वयजोगपडिसंलीणया ? वयजोगपडिसंलीणया—१ अकुसलवयणिरोहो वा, २ कुसलवयउदीरणं वा । से तं वयजोगपडिसंलीणया । से कि तं कायजोगपडिसंलीणया ?

मणजोगपडिसलीणया 'अथ का सा मनोयोगप्रतिसलीनता' 'मणजोगपडिसलीणया' मनोयोगप्रतिसलीनता 'अकुसल-मण-णिरोहो वा' अकुशलमनोनिरोधो वा, 'कुसल-मण-उदीरण वा' कुशलमनउदीरण वा, शुभमनस उदीरण=प्रवर्तनम्, 'से त मण-जोग-पडिसलीणया' सैषा मनोयोगप्रतिसलीनता, 'से किं त वयजोगपडिसलीणया' अथ का सा वाग्योगप्रतिसलीनता ? 'वयजोगपडिसलीणया' वाग्योगप्रतिसलीनता-अकुसलवयनिरोहो वा' अकुशलवाङ्निरोधो वा, 'कुसलवयउदीरण वा' कुशलवागुदीरण वा २ । 'से त वयजोगपडिसलीणया' सैषा वाग्योगप्रतिसलीनता ।

कार प्रकट करते हैं— (से किं त मणजोगपडिसलीणया) वह मनोयोगप्रतिमलानता क्या है ? (मणजोगपडिसलीणया-अकुसलमणनिरोहो, कुसलमणउदीरण वा, से त मणजोगपडिसलीणया) अकुशल-अशुभ मनका निरोध होना, अथवा शुभमन का प्रवर्तन होना सो यह मनोयोगप्रतिसलीनता है । (से किं त वयजोगपडिसलीणया) वचनयोगप्रतिसलीनता क्या है ? (वयजोगपडिसलीणया अकुसलवयनिरोहो वा कुसलवयउदीरण वा, से त वयजोगपडिसलीणया) अकुशलवाणी का निरोध करना अथवा कुशलवाणी का उदीरण करना, यह वचनयोगप्रतिसलीनता है । (से किं त कायजोगपडिसलीणया) काययोगप्रतिसलीनता किसका नाम है ? (कायजोग-

योगने गोपधु अं छे आ विषयने आगजना सूत्रना अशभा सूत्रकार प्रकट करे छे— (से किं त मणजोगपडिसलीणया) ते मनोयोगप्रतिसलीनता शु छे ? (मणजोगपडिसलीणया अकुसलमणनिरोहो कुसलमणउदीरण वा, से त मणजोगपडिसलीणया)-अकुशल-अशुभ मनने निरोध थवे, अथवा शुभ मनमा प्रवर्तन थवु ते मनोयोगप्रतिसलीनता छे (से किं त वयजोगपडिसलीणया)-वचनयोगप्रतिसलीनता शु छे ? (वयजोगपडिसलीणया अकुसलवयनिरोहो वा कुसलवयउदीरण वा, से त वयजोगपडिसलीणया)-अकुशल वाणीने निरोध करवे, अथवा 'शल वाणीनु उदीरण थवु ते वचनयोगप्रतिसलीनता छे (से किं त कायजोगपडिसलीणया)

मूलम्—से किं तं अर्द्धिभतरए तवे ? अर्द्धिभतरए तवे छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—१ पायच्छित्त, २ विणए, ३ वेयावच्चं ४ सज्जाओ, ५ ज्ञाणं, ६ विउसग्गो।

णाय=निरवयम पाठफळरुगयासस्तरुम उरमम्पय विहरति। 'से त विवित्त-सयणा-सण-सेवणया' सैवा विवित्त-शयना-सन-सेवनता। 'से त पडिसलीणया' सैवा प्रतिसलीनता, 'से त वाहिरए तवे' तद्विद्व प्राय तप ॥ सू० ३० ॥

टीका—आभ्यन्तर तप प्रोच्यते—'से किं त अर्द्धिभतरए तवे?' अथ किं तद् आभ्यन्तर तप, उत्तरमाह—'अर्द्धिभतरए तवे छव्विहे पण्णत्ते' आभ्यन्तर तप पड्विन प्रज्ञम, 'त जहा' तवया—१ 'पायच्छित्त' प्रायश्चित्तम्, २—'विणए' विनय, ३ 'वेयावच्च' वैयावृत्यम्, ४—'सज्जाओ' स्वाध्याय, ५—'ज्ञाणं' ध्यानम्, ६—'विउसग्गो' व्युसर्ग इति। तत्र प्रायश्चित्तमाह—'से किं त पायच्छित्त' अथ किं

शय्या एव मस्तारक अगीकार कर विचरता है, (से त विवित्त-सयणा-सण-सेवणया) यह विवित्तशयनासनसेवनता है। (से त पडिसलीणया) इस प्रकार यह प्रतिमलीनता है। (से त वाहिरए तवे) इस प्रकार यह उह प्रकार के बाह्य तप के भेद-प्रभेद कहे गये हैं ॥ सू० ३० ॥

अथ आभ्यन्तर तप का सूत्रकार वर्णन करते हैं—'से किं त अर्द्धिभतरए तवे?' इत्यादि।

(से किं त अर्द्धिभतरए तवे?) आभ्यन्तर तप क्या है—कितन प्रकार का है? (अर्द्धिभतरए तवे छव्विहे पण्णत्ते) आभ्यन्तर तप उह प्रकार का है, (त जहा) वह इस प्रकार से है, (पायच्छित्त, विणए, वेयावच्च, सज्जाओ, ज्ञाण, विउसग्गो) १ प्रायश्चित्त, २ विनय, ३ वैयावृत्य, ४ स्वाध्याय, ५ ध्यान और ६

पीठ, इलक, शय्या तेमञ्ज सन्तारक अगीकार करीने विचरे छे (से तं विवित्त सयणा-सण-सेवणया) ते विवित्त शयनासनसेवनता छे (से त पडिसलीणया) आ प्रकारे आ प्रतिमलीनता छे (से त वाहिरए तवे) आ प्रकारे ते छ प्रकारना आहतपना लेह-प्रलेह कडेला छे (सू ३०)

इधे आभ्यन्तर तपनु सूत्रकार वर्णन करे छे—'से किं त अर्द्धिभतरए तवे?' इत्यादि

(से किं त अर्द्धिभतरए तवे?) अर्द्धिभतरए तप शु छे? उटला प्रकारना छे? (अर्द्धिभतरए तवे छव्विहे पण्णत्ते) उत्तर-आभ्यन्तर तप छ प्रकारना छे (त जहा) ते आ प्रकारे छे—(पायच्छित्त विणए वेयावच्च, सज्जाओ ज्ञाण विउसग्गो) १ प्रायश्चित्त, २-विनय, ३ वैयावृत्य, ४ स्वाध्याय, ५ ध्यान ६

यगिहेसु पणियसालासु इत्थी-पसु-पंडग-संसत्त-विरहियासु वसहीसु
 फासुएसणिज्जं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ,
 से तं विवित्तसयणासणसेवणया । से त पडिसंलीणया । से तं
 वाहिरए तवे ॥ सू०३० ॥

विहरइ' विरिक्तशयनासनसेवना—यत् गन्धार्गमेपु उद्यानेपु देवकुलेपु प्रपासु पणित-
 गृहेपु पणितशालासु स्त्री-पशु-पण्डक-ससक्त-विरहितासु रसनिपु प्रासुकैपगीय पीठ-
 फलक-शय्या-सस्तारकम् उपसम्पद्य विहरति, 'स्त्री-पशु-पण्डक-ससक्त-विरहितासु'
 इत्यस्य लिङ्गविपरिणामेन आरामादिपदेष्वप्यन्वयः कार्य, ततश्च—यत् गृह=निश्चयेन अनगार,
 स्त्री-पशु-पण्डक-ससक्त-विरहितेषु=स्त्रिय, पशव, पण्डका =नपुसका, एतै सर्वै ससक्त=
 सयोग, तेन विरहितेषु आरामेषु=कृत्रिमवनेषु, उद्यानेषु=कुसुमकाननेषु, देवकुलेषु=यक्षकुलेषु,
 तथा स्यादिससक्तनिर्जितासु सभासु, प्रपासु=पानीयशालासु, पणितगृहेषु=व्यावहारिक-
 जनोचितेषु पण्यगृहेषु, पणितशालासु = बहुग्राहकदायकजनयोग्यासु, स्यादि-
 ससर्गरहितासु वसतिषु=सामान्यगृहगृहेषु, एवविधानेकस्थानेषु 'फासुएसणिज्ज' प्रासु-
 कैपगीय-प्रगता असव=असुमन्त प्राणिनो यस्मात् तत्प्रासुकम्=अचित्तम्, अत एव एष-

वसहीसु फासुएसणिज्ज पीढफलगसेज्जासथारग उवसंपज्जित्ताण विहरइ) दोषरहित
 शयन एव आसन की सेवना यह इम प्रकार से होती है—जो अनगार स्त्रियों, पशुओं, एवं
 नपुसकों से रहित आरामों में—कृत्रिमवनों में, उद्यानों में—कुसुमित काननों में, देवकुलों
 में—यक्षायतनों में, सभाओं में, प्रपाओं में—पानीयशालाओं में, पणितगृहों में—व्यावहारिक-
 जनोचित पण्यगृहों में, पणितशालाओं में—अनेक ग्राहक एवं दायक जनो के योग्य ऐसे
 स्थानों में, वसतियों में—सामान्य गृहस्थजनों के घरों में, अचित्त एवं निरवध पीठ, फलक,

इत्थीपसुपंडगससत्तविरहियासु वसहीसु फासुएसणिज्ज पीढफलगसेज्जासथारग उवस-
 पज्जित्ताण विहरइ, से त पडिसंलीणया) दोषरहित आसन तेभञ्ज शयनतु सेवना
 करुषु ते आ प्रकारे थाय छे टे ने अनगार स्त्रीओ, पशुओ, तेभञ्ज पंडको-
 नपुसकोथी रहित आरामोभा—ओटले कृत्रिमवनोभा, उद्यानोभा—कुलवाडीओभा,
 देवकुलोभा—यक्षायतनोभा, सलाओभा, प्रपाओभा—पानीयशालाओभा (परधना
 स्थानभा) पणितगृहोभा—व्यवहारिक-दोकोथित दुकानोभा, पणितशालाओभा
 —अनेक श्राद्धको तेभञ्ज दायको (देनारा) दोकोने योग्य ओवा स्थानोभा ओटले
 गोदाओभा, वसतिओभा—सामान्य गृहस्थ लोकोना धरोभा, अचित्त तेभञ्ज निरवध

यदर्हति मित्राचर्यादौ गजानमतिचारजात तदालोचनाहं, तद्विद्योयकमालोचनालक्षण प्रायश्चित्तरूप कार्यमपि अनिचाररूपे ऋग्णे ऋयोपचागदालोचनार्हमियुध्यते । 'पडिक्कमणारिहे' प्रतिक्रमणार्हम्-प्रतिक्रमण = प्रतिनिवर्तन-शुभयोगादशुभयोगान्क्रान्तस्यामन पुन शुभयोगं प्रयानयन, मिथ्यादुष्टप्रदानरूपि, अर्थ । अय भाव-गुप्तित्रये समितिपञ्चके च महसाकारतोऽनाभोगतो वा कथमपि प्रमादे मनि मिथ्यादुष्टप्रदानलक्षण प्रतिक्रमणम् । तत्र महसाकारतोऽनाभोगतो वा यदि मनमा ट्पिचिन्तित, तथा वचमा दुर्भाषित, कायेन दुःचेष्टित, तथा-ईर्याया यदि कथा कथयन् प्रजेत, भाषायामपि यदि गृहस्थभाषया, प्रहररात्र्यनन्तर-

प्रायश्चित्त है । भिक्षाचर्या आदि में लगे हुए अनिचारस्वरूप पापों की गुरु के समीप विद्युद्धि के लिये आलोचना की जाती है, अतः ये पाप आलोचना के योग्य हैं । आलोचना के योग्य जो प्रायश्चित्त को कहा है वह कारण में कार्य के उपचार से जानना चाहिये । (पडिक्कमणारिहे) प्रतिक्रमण शब्द का अर्थ पीछे हटना है, शुभ योग से अशुभ योग की तर्फ झुके हुए आमा को पुन शुभ योग में लाने के लिये मिथ्यादुष्ट देना सो प्रतिक्रमण के योग्य प्रायश्चित्त है । इसका भाव यह है-तीन गुणियों में, एव पाच ममितियों में अक्रमात्-सहसाकार से, अथवा अनाभोग-अनुपयोग से कथमपि प्रमाद के हा जाने पर मिथ्यादुष्टप्रदान करना सो प्रतिक्रमण है । इसमें यदि सहसाकार से अथवा अनाभोग में मन द्वारा रोटा चिन्तन हा गया हा, वचन से दुर्भाषण हा गया हा, एव काय से-दुःचेष्टित हो गया हो, तथा ईयापथ में प्रवृत्ति करते (भागमें चलते) समय यदि कथा कही गयी हो, भाषासमिति में यदि गृहस्थ की भाषा के अनुसार, अथवा प्रहररात्रि के

आदिमा लागेला अतिचारस्वरूप पापोनी गुरुनी यामे विद्युद्धिने भाटे आलोचना कराय छे आथी ते पाप आलोचनायोग्य छे आलोचनाने योग्य जे प्रायश्चित्त ने उल्लु छे ते उरल्लुमा उर्याना उपचारथी लल्लु लोधये १ (पडिक्कमणारिहे) प्रतिक्रमण शब्दने अर्थ 'पाछु हटवु' छे शुभयोगथी हटी लधने अशुभ योगनी तरङ्क वणता चित्तने इग्गिने शुभयोगमा लाववा भाटे मिथ्यादुष्टप्रदान देवु ते प्रतिक्रमणने योग्य प्रायश्चित्त छे तेने आ लाव छे-त्रल्लु गुप्तिओमा, तेमज पाच समितिओमा अक्रमात्-अचानक, अथवा अनाभोग-अनुपयोगथी उरल्लु पल्लु प्रमाद थरल्लुता मिथ्यादुष्टप्रदान करवु ते प्रतिक्रमण छे आमा जे अचानक अथवा अनालोगे मनथी जोट्टु चितवन थरल्लु गयु डोय, वचनथी भरल्लु लावण थयु डोय, तेमज उयाथी जगल्लु थेष्ट थरल्लु डोय, तथा धर्यापथमा प्रवृत्ति करता (भागें आलता) जे उथा उडेवाध गध डोय, भाषासमितिमा जे गृहस्थनी भाषा

સે કિં તં પાયચ્છિત્તે ? પાયચ્છિત્તે-દસવિહે પળ્ણત્તે;
તં જહા-આલોચનારિહે ૧, પઢિક્કમળ્ણારિહે ૨, તદુભયારિહે ૩, વિવે-

તપ્રાયશ્ચિત્તમ્—પ્રાયશ્ચિત્ત કિંસ્વરૂપ કતિવિચિત્તેતિ પૃચ્છતિ, ઉત્તરમાહ—‘પાયચ્છિત્તે
દસવિહે પળ્ણત્તે’ પ્રાયશ્ચિત્ત દશવિધ પ્રજ્ઞમમ્—પ્રાય = પાપ, તસ્માત્ ચિત્ત = જીવ શોધ-
યતિ = કર્મમલિન વિમલીકરોતીતિ પ્રાયશ્ચિત્તમિતિ । યદ્વા-પ્રાયો = ગાહુચ્ચેન ચિત્તમ્ =
અન્તઃકરણ સ્વેન સ્વરૂપેણ અસ્મિન્ સતિ ભવતિ-इति પ્રાયશ્ચિત્તમ્—અનુપ્રાનવિશેષ ।
સવરાદેરપિ તથૈવાત્મન શુદ્ધિકરણાત્ પ્રાયોપ્રહણમિતિ । અસ્ય દશવિધવ તર્કયતિ—
‘ત જહા’ તથથા—‘આલોચનારિહે’ આલોચનાર્હમ્—આલોચના ગુત્સમીપે પાપસ્ય નિવે-
દન, તાવન્માત્રેણૈવ યસ્ય પાપસ્ય શુદ્ધિસ્તદાલોચનાર્હમ્ । આલોચના = ગુરુનિવેદના વિશુદ્ધયે

વ્યુત્સર્ગ । (સે કિં તં પાયચ્છિત્તે) પ્રાયશ્ચિત્ત કિતને પ્રકાર કા હૈ—(પાયચ્છિત્તે
દસવિહે પળ્ણત્તે) — પ્રાયશ્ચિત્ત ૧૦ પ્રકારકા હૈ । (ત જહા) વે પ્રકાર યે હૈ—
(આલોચનારિહે પઢિક્કમળ્ણારિહે તદુભયારિહે વિવેગારિહે વિહસગ્ગારિહે ત્વારિહે
છેયારિહે મૂલારિહે અળવટ્ટપ્પારિહે પારચિયારિહે) કર્મો સે મલિન ચિત્ત—જીવકા મગો-
ધન જિસસે હોતા હૈ, અથવા જિસકે હોને પર પ્રાય કરકે અન્ત ક્રુણ અપને સ્વરૂપ મે
સ્થિત હોતા હૈ, વહ પ્રાયશ્ચિત્ત હૈ । મનરાદિક સે મી આત્મા કી શુદ્ધિ હોતી હૈ ઇસલિયે
અને ઇસે પૃથક્ કરનેકે લિયે પ્રાયશ્ચિત્ત મે ‘પ્રાય’ શબ્દકા પ્રયોગ હુઆ હૈ । ઇસ મેં પ્રથમ
પ્રાયશ્ચિત્ત આલોચનાર્હ હોતા હૈ । ગુરુ કે સમીપ પાપો કા નિવેદન કરના ઇસકા નામ
આલોચના હૈ । ઇસ આલોચનામાત્ર સે જિસ પાપ કી શુદ્ધિ હો જાતી હૈ વહ આલોચનાર્હ

વ્યુત્સર્ગ (સે કિં તં પાયચ્છિત્તે) પ્રાયશ્ચિત્ત કેટલા પ્રકારના છે ? (પાયચ્છિત્તે દસવિહે
પળ્ણત્તે) —પ્રાયશ્ચિત્ત ૧૦ પ્રકારના છે (ત જહા) તે આ પ્રકારે છે—
(આલોચનારિહે પઢિક્કમળ્ણારિહે તદુભયારિહે વિવેગારિહે વિહસગ્ગારિહે ત્વારિહે
છેયારિહે મૂલારિહે અળવટ્ટપ્પારિહે પારચિયારિહે, સે તં પાયચ્છિત્તે) કર્મોથી મલિન
થયેલા ચિત્તનુ સ શોધન જેનાથી થાય છે અથવા જે થવાથી પ્રાય
અ તંકરણુ પોતાના સ્વરૂપમા આવી નય છે તે પ્રાયશ્ચિત્ત છે સવરાદિવથી
પણુ આત્માની શુદ્ધિ થાય છે તેથી તેનાથી આને બુદ્ધ કરવા માટે પ્રાયશ્ચિત્તમા
પ્રાયઃ શબ્દ લીધો છે આમા પ્રથમ પ્રાયશ્ચિત્ત આલોચનાર્હ થાય છે શુદ્ધી
પાસે પાપોનુ નિવેદન કરવુ તેનુ નામ આલોચના છે આ આલોચનામાત્રથી
જે પાપની શુદ્ધિ થઈ નય છે તે આલોચનાર્હ પ્રાયશ્ચિત્ત છે લિક્ષાચર્યા

गारिहे ४, विउस्सगारिहे ५, तवारिहे ६, छेदारिहे ७, मूलारिहे ८, अणवट्टप्पारिहे ९, पारंचियारिहे १०। से तं पायच्छित्ते ।

योग्यम् । ३। 'विवेगारिहे' विवेकाऽर्हम्-विवेक-अनेपणीयभक्ताद्विपरित्याग, तदहम् । ४। 'विउस्सगारिहे' व्युसर्गाऽर्हम्-व्युसर्ग = कायोसर्ग, तदयोग्यम् । ५। 'तवारिहे' तपोऽर्हम्-तप = नमस्कारसहितकालाद्रागम्य पण्मासपर्यन्तमनशनम्, तत्र कस्यापि तपसो योग्य तपोऽर्हम्-अताचार, तद्विशोधकत्वात् प्रायश्चित्तमपि तपोऽर्हमुच्यते-इति । ६। 'छेदारिहे' छेदाऽर्हम्-छेद-दिनप्रकाशदास्य पण्मासपर्यन्त साधुपर्यायस्य न्यूनताकरण, तदहम् । ७। 'मूलारिहे' मूलाऽर्हम्-मूल-पुनर्गतस्थोपस्थापनम्-पुनर्दीक्षारोपणम्, तदहम् । ८। 'अणवट्टप्पारिहे' अनवस्थाप्याऽर्हम्-यस्मिन् आसेविते कं चन कालव्रतेषु अनवस्थाप्य कृत्वा पश्चात्तपश्चर्गातया तदोपोपगतो व्रतेषु स्थाप्यते तद्वनवस्थाप्याऽर्हम् ।

योग्य होता है वह तदुभयार्ह प्रायश्चित्त है ३ । (विवेगारिहे) अनेपणीय भक्तादिक्र का परित्याग करना विवेक है, इसके योग्य जो प्रायश्चित्त है वह विवेकाऽर्ह प्रायश्चित्त है ४ । (विउसगारिहे) व्युसर्ग शब्द का अर्थ कायोसर्ग है । इसके योग्य प्रायश्चित्त का नाम व्युसर्गाऽर्ह प्रायश्चित्त है ५ । (तवारिहे) जो प्रायश्चित्त तपस्या के योग्य होता है वह तपोऽर्ह प्रायश्चित्त है । यह प्रायश्चित्त नोकारसी से लेकर छ मास तक होता है ६ । (छेदारिहे) साधुपर्याय में पाँच दिनसे लेकर छ मास तक की साधुपर्याय की न्यूनता करना छेदाऽर्ह प्रायश्चित्त है ७ । (मूलारिहे) जो प्रायश्चित्त पुन दीक्षा आरोपण के योग्य होता है वह मूलाऽर्ह प्रायश्चित्त है ८ । (अणवट्टप्पारिहे) जिस दोषके सेवन करने पर मयमीजन कुछ काल तक महानतो के विषय में अनवस्थापित अलग-अलग दिये जाते हैं,

प्रतिक्रमण, अनेपणीय भोजन आदिको परित्याग करके ते विवेक छे तेने योग्य के प्रायश्चित्त छे ते विवेकाऽर्ह प्रायश्चित्त छे ४. (विउसगारिहे) व्युत्सर्ग शब्दको अर्थ कायोत्सर्ग छे तेने योग्य प्रायश्चित्तनु नाम व्युत्सर्गाऽर्ह प्रायश्चित्त छे ५ (तवारिहे) के प्रायश्चित्त तपस्याने योग्य होय छे ते तपोऽर्ह प्रायश्चित्त छे आ प्रायश्चित्त नोकारसीथी लधने छ मास सुधी थाय छे ६. (छेदारिहे) साधुपर्यायमा पाय द्विसथी लधने छ मास सुधीनी साधुपर्यायनी न्यूनता करवी ते छेदाऽर्ह प्रायश्चित्त छे ७ (मूलारिहे) के प्रायश्चित्त करीने दीक्षा आरोपणने योग्य होय छे ते मूलाऽर्ह प्रायश्चित्त छे ८ (अणवट्टप्पारिहे) के दोषनु सेवन करवाथी मयमी जन केटलाक काण सुधी भडामतोना विषयमा

मुच्चै स्वरेण वा, अन्यथा सावयवचनेन भापेत, तथा—ण्णगाया=भक्तपानगवेपणगवेलाया-
मनुपयुक्त सदोषमाहारादिक गृह्णीयात्, तथा सहसाऽनाभोगतो वा भाण्डोपकरणस्या-
दान निक्षेप प्रमार्जन प्रतिलेखन च कुर्यात्, तथा—अप्रत्युपेक्षिते स्थण्डिले उच्चारादीना
परिष्ठापन सहसाऽनाभोगतो वा कुर्यात् । उपलक्ष्यमेतत्—तेन यदि चतुर्विधा विकथा,
क्रोधादय कषाया, शब्दादित्रिषयेष्व्वासक्तिर्वा सहसाऽनाभोगतो वा कृता स्यात्, तदा
एतेषु सर्वेषु स्थानेषु मिथ्यादुष्कृतप्रदानलक्षण प्रायश्चित्त, तच्च पूर्ववत् कारणे कार्योप-
चारात्प्रतिक्रमणार्हमित्युच्यते । २। 'तदुभयारिहे' तदुभयाऽर्हम्—आलोचनाप्रतिक्रमणोभय-

अनन्तर उच्चस्वर से वचनक्री प्रवृत्ति हो गई हो, या सावयवचन निकल गया हो, एषणा-
समिति में—भक्तपानगवेपण के काल में अनुपयुक्त होकर यदि सदोष आहार ग्रहण करने में
आगया हो, अनाभोग से—अनुपयोग से अथवा सहसाकार से भाण्डोपकरण का आदान
एव निक्षेपण, प्रमार्जन या प्रतिलेखन हो गया हो, तथा अप्रत्युपेक्षित स्थण्डिल में उच्चर
आदिका परिष्ठापन सहसाकार से या अनाभोग से कर दिया गया हो, इसी तरह यदि
सहसाकार से एव अनाभोग से चार विकथाओं में, चार क्रोधादिक कषायों में, एव
शब्दादि पाच इन्द्रियों के त्रिषयों में आसक्ति हो गई हो तो इन समस्त स्थानों में “ मेरे
दुष्कृत मिथ्या हों ” इस प्रकार मिथ्यादुष्कृतप्रदानस्वरूप यह प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त है ।
पहिले की तरह यह प्रायश्चित्त भी कारण में कार्य के उपचार से प्रतिक्रमणार्ह कहा
गया है २ । (तदुभयारिहे) जो प्रायश्चित्त आलोचना एव प्रतिक्रमण इन दोनों के

अनुसार अथवा प्रहररात्रि वीत्या पक्षी उच्यते स्वरथी वचन जोलाई गयु
डोय, अथवा सावयव वचन नीउणी गयु डोय, अेषणुसमितिमा—आहारपालुना
गवेषणु कालमा अनुपयुक्त यधने जे सदोष आहार अक्षु करवामा आवी
गयो डोय, अनाभोगथी अथवा अयानक भाडोपकरणना आदान तेमज् निक्षे-
पणु, प्रमार्जन अथवा प्रतिलेखन यध गयु डोय, तथा अप्रत्युपेक्षित स्थण्डिलमा
उच्चर आदिनु परिष्ठापन सहसाकारथी जे अनाभोगथी (अयानक जे अना-
भोगथी) कराय गयु डोय, अेषी ज् रीते जे सहसाकारथी जे अनाभोगथी
यार विकथाओमा, यार क्रोधादिक कषायोमा, तेमज् शब्दादि पाच धद्रिओना
विषयोमा आसक्ति यध गयु डोय तो अेष अथा स्थानोमा “ माइ दुष्कृत
मिथ्या थाओ ” जे प्रकारे मिथ्यादुष्कृतप्रदानस्वरूप या प्रतिक्रमण—प्राय-
श्चित्त छे पडेलानी पडे या प्रायश्चित्त पणु करणुमा कार्यना उपचारथी
प्रतिक्रमणार्ह कहवाय छे २ (तदुभयारिहे) जे प्रायश्चित्त आलोचना तेमज्

तदनन्तर व्रतेषु स्थाप्यते । सहननादिगुणयुक्त ण्वानवस्थाप्य क्रियते, अन्यस्य तु मूलमेव दीयते । सहननादिगुणयुक्तोऽपि यदि अनन्यसाध्यमुल्लाणसङ्घकार्यकारी बहुजनसाध्य-कार्यकारी वा भवेत्, तर्हि द्वित्रयोऽन्यवस्थाप्य सङ्घ गुरुमुखात् सङ्घसाक्षितया च स्तोत्र-स्तोत्रतर वा मासद्वय मामैरुमात्र वा अनवस्थाप्यतपो वहत् । यद्वा—चतुर्विधमघाधारभूतोऽय परमभद्रक स्वयमेव तपश्चर्यादिनाऽनवस्थाप्यगोप्यमतीचारमल क्षालयिष्यतीति कृत्वा सर्वं मुञ्चेत्=अनवस्थाप्यतपो न कारयेत्ति ।

और उकृष्ट से गारह वर्ष का । इस प्रकार तपस्या करने के बाद वह साधु महाव्रतों में स्थापित किया जाता है । सहननादिगुणयुक्त ही इस प्रायश्चित्त के अधिकारी है । दूसरे को तो मूलार्ह प्रायश्चित्त ही दिया जाता है । सहननादिगुणयुक्त साधु यदि दूसरों से असाध्य ऐसे कुल गण सघ के कार्य करनेवाला हो, अथवा कुल गण सघ का जो कार्य बहुजनसाध्य हो उस कार्य को वह अकेले ही करनेवाला हो तो ऐसे आशातनाऽन-वस्थाप्य और प्रतिसेवनाऽनवस्थाप्य साधु के लिये सघकी साक्षी में गुरुके मुख से स्तोत्र—त्रो मास का, अथवा स्तोत्रतर—एकमास का तप दिया जाता है । तदनन्तर वह महाव्रतों में स्थापित किया जाता है । अथवा यदि कोई साधु चतुर्विध सघ का आधार हो, परमभद्रक हो, वह स्वयमेव तपस्या करके अनवस्थाप्य तप के द्वारा विशोधनीय पापमल का प्रक्षालन कर लेगा, ऐसा विश्वास हो, तो ऐसे साधु को अनवस्थाप्य प्राय-श्चित्त नहीं दिया जाता है ।

आ प्रायश्चित्त ऋधन्यथी अेक वर्षनु थाय ऐ अने उत्कृष्टथी णार वर्षनु थाय ऐ आ प्रकारे तपस्या कर्या पछी ते साधु भडावतोभा स्थापित कराय छे सहननादिगुणयुक्त न ते प्रायश्चित्तना अधिकारी छे णीअने तो भूलाडं प्रायश्चित्त न अपाय छे सहननादिगुणयुक्त साधु ने णीअथी असाध्य (न णने) अेवा कुल गण सघना कार्य उरवावाणेो डोय अथवा कुल गण सघना ने कार्य भहुजनसाध्य डोय, अेवा ायेोने ते अेकलेो न उरवावाणेो डोय तो अेवा आशातनानवस्थाप्य अने प्रतिसेवनानवस्थाप्य साधुने भाटे सघनी साक्षीभा शुद्धना सुभथी स्तोत्र—त्रो मासतु, अथवा त्तोऽतर—अेक मासतु तप अपाय छे त्पार पछी ते भडावतोभा स्थापित कराय छे अथवा ने कोछं माधु चतुर्विध सघनेो आधार डोय, परमभद्रक डोय, ते पोते न तपस्या करीने अनवस्थाप्य तप द्वारा विगोधनीय पापमल घाछं नाअशे अेवो विश्वाअ डोय तो अेवा साधुने अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त अपातु नथी ।'

અય મ્વા - અનવસ્થાપ્યો દ્વિવિધો ભવતિ-આગાતનાડનવસ્થાપ્ય, પ્રતિસેવનાનવસ્થાપ્ય'ત્તેતિ । તત્ર તાર્થકર-૮૪-શ્રુતા-ડસચાર્યો-પાપ્યાય-ગણધર-મહર્ષિકાન આગાતયન્ અનવસ્થાપ્યાર્હ-નામક નવમ પ્રાયશ્ચિત્ત પ્રાપ્નોતિ । સ જઘન્યેન પપ્માસાન્ ઉર્કર્પન મતસર ચાત્રત તપ કુર્વન્ આગાતનતપોડનવસ્થાપ્ય કર્તવ્ય । તાવતા ચ તપસા ક્ષપિતાડસગાતનાનિતકર્મવા-દૂર્ઘ્વ મહાવ્રતેપુ સ્થાપ્યતે । પ્રતિસેવનાનવસ્થાપ્યસ્તુ સાધર્મિકાડન્યધર્મિકરસ્તુસ્તૈન્યામ્યા હસ્ત-તાલદિભિશ્ચ ભવતિ । સ ચ જઘન્યતો વર્ષમ્ ઉકૃષ્ટતો દ્વાદશ વર્ષાણિ તપ કુર્મન્ ભવતિ,

एव पुन उस दोष के निवारण के लिये तपस्या में लगाये जाते हैं, इस प्रकार, जब तपसे उस दोषकी पूर्णतया शुद्धि हो जाती है तब दोषोपरत वे सयमी महान्तों में स्थापित कर दिये जाते हैं । इस प्रकार क प्रायश्चित्त का नाम अनवस्थाप्यार्ह है, मतलब इसका यह है-अनवस्थाप्य दो प्रकारका होता है-१ आगतनानवस्थाप्य, २ प्रतिसेवनानवस्थाप्य । जो तीर्थकर, मन्व, श्रुत, आचार्य, उपाध्याय, गणधर एव लब्धिधारियों की आगतना करता है एसा सयमी इस अनवस्थाप्यार्ह नामक नवम प्रायश्चित्त का भागी होता है । इनसे आगा-तनाजन्य दोष की शुद्धि के लिये जघन्य से उहमाह तक, और उत्कृष्ट से एक वर्ष तक तप कराया जाता है । इतने तप से आगतनाजन्य दोष की जन शुद्धि हो जाता है तत्र बाद में वह साधु महाव्रतों में स्थापित कर दिया जाता है । जो स्वधर्मी और अन्यधर्मी की वस्तु चुराता है, अथवा दयारहित बुद्धि से थप्पड़ आदि मारता है, उसे प्रतिसेवनाडन-वस्थाप्यार्ह प्रायश्चित्त करना पडता है । यह प्रायश्चित्त जघन्य से एक वर्ष का होता है,

અનવસ્થાપિત કરવામા આવે છે, તેમજ પાછા તે દોષના નિવારણ માટે તપ-સ્યામા લગાડવામા આવે છે, એ પ્રકારે ન્યારે તપસેવનથી દોષની મ પૂર્ણ શુદ્ધિ થઈ જાય છે ત્યારે દોષોપરત (દોષમુક્ત) તે સયમી મહાવ્રતોમા સ્થાપિત કરવામા આવે છે આ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્તનુ નામ અનવસ્થાપ્યાર્હ છે એની મતલબ એ છે કે-અનવસ્થાપ્ય બે પ્રકારના થાય છે ૧ આશા-તનાનવસ્થાપ્ય અને ૨ પ્રતિસેવનાનવસ્થાપ્ય 'જે તીર્થકર, સ ઘ, શ્રુત, આચાર્ય, ઉપાધ્યાય, ગણધર, તેમજ લબ્ધિધારિઓની આશાતના ઠરે છે, એવા સયમી આ અનવસ્થાપ્યાર્હ નામના નવમા પ્રાયશ્ચિત્તના ભાગી થાય છે તેનાથી આશાતનાન્ય દોષની શુદ્ધિને માટે જઘન્યથી છ મહિના સુધી અને ઉત્કૃષ્ટથી એક વર્ષ સુધી તપ કરાય છે એટલા તપથી આશાતનાન્ય દોષની ન્યારે શુદ્ધિ થઈ જાય છે ત્યાર બાદ તે સાધુ મહાવ્રતોમા સ્થાપિત કરી દેવાય છે જે સાધર્મીની અને અન્યધર્મીની વસ્તુને ચોરી લે છે, અથવા દયારહિત બુદ્ધિથી લાક્ષી આદિ મારે છે તેને પ્રતિસેવનાનવસ્થાપ્યાર્હ પ્રાયશ્ચિત્ત ઠરવુ પડે છે

द्भिर्न प्रतिलेख्यम्, न चाय भयना प्रतिलेखयिष्यति । भक्तपानमस्मै न देय, नाप्यस्माद्ग्राह्यम्, अनेन सार्धं नोपवेष्टव्यम्, न चाप्यनेन सङ्क्रमण्डन्या भोक्तव्यम्, अनेन सार्धं किमपि न कार्यमिति ।" अय नःपीयित साधु ऋन्ते, एन न कोऽपि ऋन्ते, ग्रीष्मे चतुर्थपष्टाष्टमानि, शिशिरे षष्टाष्टमद्गमानि, वर्षाण्यष्टमन्धमद्गमानि जघन्यम यमोऽरुणानि, पारणके च निर्लेप, एवरूप सुदुश्चर तपश्चरति । अस्य गण्डेन सह वास एकक्षेत्रे एकपाश्र्वे एकस्मिन् पार्श्वे उपमाधुपरिभोग्यप्रदेशे ऋन्ते, नाल्पनाडीनि शेषाणि । गेगाण्यो समुपत्रे सति रोगादिनिवृत्तिपर्यन्त

इसके उपकरण की प्रतिलेखना तुम लोग मत करना, यह भी तुम लोगोंके उपकरण की प्रतिलेखना नहीं करेगा, न तुम लोग इसे भक्तपान दो, न इससे भक्तपान लो, न इसके साथ बैठो, न इसके साथ एक मण्डली म आहारादि करो, और न इसका सहकार लेकर कोई अन्य कार्य करो ।" यह साधु नवदीक्षित साधु की वन्दना करता है, इसको वन्दना कोई भी नहीं करता । यह साधु ग्रीष्म ऋतु में—जघन्य से उपवास, मध्यम से वेला, और उत्कृष्ट से तेला करता है, शिशिर ऋतु में—जघन्य से वेला, मध्यम से तेला और उत्कृष्ट से चौला करता है, एवं वर्षा ऋतु में—जघन्य से तेला, मध्यम से चौला और उत्कृष्ट से पंचौला करता है, पारणा में त्रिकृतिवर्जित आहार लेता है । अनवस्थाप्य—प्रायश्चित्ती इस प्रकार का दुष्कर तप करता है । इस साधु को अन्य साधुओं के वसतियोग्य प्रदेश में रहना ऋन्ता है । यह गच्छ के साथ एकक्षेत्र म, एक उपाश्र्व म, एक ही पार्श्व में रह सकता है, किन्तु इसको आलपन (वातचीत) आदि नहीं

उपकरणनी प्रतिवेचना तमारे न कवी ते पञ्च तमारा उपकरणनी प्रतिवेचना नहि ऋरे न तमारे तेने आहारपाण्डी देवा छे न तेनी पार्श्वेथी आहारपाण्डी देवा न तेनी साथे जेसपु, न तेनी साथे जेकम उलीमा आहार आदि करवा अने न तेना मङ्कार लधने केछि अन्य कार्य करवु" आ साधु नव दीक्षित साधुनी वदना ऋरे छे, तेनी वदना केछि पञ्च करतु नथी आ साधु ग्रीष्मऋतुमा जघन्यथी उपवास, मध्यमथी जेला, अने उत्कृष्टथी तेला करे छे, शिशिरऋतुमा जघन्यथी जेला, मध्यमथी तेला अने उत्कृष्टथी चौला करे छे, तेमज वर्षाऋतुमा जघन्यथी तेला, मध्यमथी चौला अने उत्कृष्टथी पंचौला करे छे पारण्यमा त्रिकृतिवर्जित आहार ले छे अनवस्थाप्यप्रायश्चित्ती आ प्रकारतु दुष्कर तप करे छे आ साधुने अन्य साधुजोना वसतियोग्य प्रदेशमा रडेवु कल्पे छे ते गच्छनी साथे जेक क्षेत्रमा, जेक उपाश्र्वमा, जेक पार्श्वमा रही शके छे परतु तेने आलपन (वातचीत) आदि कल्पतु

અનવસ્થાપ્યતપોવિધિચ્યતે—અનવસ્થાપ્યપ્રાયશ્ચિત્તી માધુ પ્રશસ્તેષુ દ્ર વ્યક્તકાલભાવેષુ
 ગુરુસમીપે સરલભાવેન સ્વાતિચારમાલોચયતિ। આલોચનાઽન તર ગુરુ ક્ષાયો સર્ગે કારયતિ, તથાદિ
 ઈર્યાપથિકીં સમપ્રા શ્રાવયતિ, 'તસ્મુત્તરીકરણેણ' ડ્યામ્ય યાત્—'અપ્પાણ વોસિરામિ
 ઇતિ પઠિત્વા ક્ષાયો સર્ગે વારદ્રય ચતુર્વિંશતિસ્તવમનુચિન્ય પાગયિત્વા પુનશ્ચતુર્વિંશતિસ્તવમુચાર્યા
 ચાર્ય સાધૂનામન્ય વદતિ—“પ્પોઽનવસ્થાપ્યો મુનિસ્તપ પ્રતિપદ્યતે, એપ યુષ્માન્નાલ્પિચ્યતિ
 યુષ્માભિરપિ નાલપનીય, એપ સૂત્રાર્ય શરીરવાતાં મુસગતાત્પિરૂપા વા ન પ્રદ્યતિ, યુષ્માગિરપિ ન
 પ્રણ્ય, પરિષ્ઠાપનાદિક્રમસ્ય ભવદ્વિર્ન કર્તવ્યમ્, ન ચાઽય મત્તા કરિચ્યતિ। ઉપકરણમસ્ય ભવ-

અવ અનવસ્થાપ્યપ્રાયશ્ચિત્ત કી વિધિ કહતે હૈ—અનવસ્થાપ્ય પ્રાયશ્ચિત્ત લેને વાલા સાધુ
 પ્રશસ્ત દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાલ ભાવમે ગુરુ કે નિકટ સરલ ભાવસે અપને અતીચારો કી આલોચના કરતા
 હૈ। જવ વહ આલોચના કર ચુકતા હૈ તમ ગુરુ મહારાજ ઉસે ક્ષાયોસર્ગ કરવાતે હૈં। વહ ઇસ પ્રકાર
 હૈ—ગુરુ મહારાજ પહેલે સમપ્ર ઈર્યાપથિકી મુનાતે હૈં, ફિર 'તસ્મુત્તરીકરણેણ' યદા સે લેકર
 “અપ્પાણ વોસિરામિ” યહોં તક પઢકર ક્ષાયોસર્ગ મેં દો વાર ચતુર્વિંશતિસ્તવ કી
 અનુચિન્તના કર, પાલ કર, ફિર એકવાર ચતુર્વિંશતિસ્તવ કા ઉચ્ચારણ કરતે હૈ, ઔર
 આચાર્ય તથા સાધુઓં કો બુલાકર ઇસ પ્રકાર કહતે હૈ—“યહ અનવસ્થાપ્ય મુનિ તપસ્યા કર
 રહા હૈ, યહ ન તુમ લોગોં સે વોલેગા, ન તુમ લોગ ઇસસે વોલના। યદ તુમ લોગોં સે સૂત્રાર્ય
 ઔર શરીર કી મુસગતા આદિ નહીં પૂછેગા, તુમ લોગ મી ઇસ સે મત પૂઠના। ઇસકી
 પરિષ્ઠાપનિકા આદિ તુમ લોગ મત કરના, યહ મી તુમ લોગોં કી નહીં કરેગા।

હવે અનવસ્થાપ્ય પ્રાયશ્ચિત્તની વિધિ કહે છે -

અનવસ્થાપ્ય પ્રાયશ્ચિત્ત દેવાવાણે સાધુ પ્રશસ્ત દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાલ અને
 ભાવમા શુઙ્ગી પાસે સરલભાવથી પોતાના અતીચારોની આલોચના કરે છે
 ન્યારે તે આલોચના કરી લે છે ત્યારે શુઙ્ગ મહારાજ તેને ક્ષાયોસર્ગ કરાવે
 છે તે આ પ્રકારે છે—શુઙ્ગ મહારાજ પહેલા સમગ્ર ઈર્યાપથિકી સભાવાવે છે
 પછી 'તસ્મુત્તરીકરણેણ' અહીંથી લઈને 'અપ્પાણ વોસિરામિ' અહીં સુધી
 લઈને ક્ષાયોસર્ગમા ચતુર્વિંશતિસ્તવની અનુચિન્તના કરીને, પાળીને, પછી
 ચતુર્વિંશતિસ્તવનું ઉચ્ચારણ કરે છે, અને આચાર્ય તથા સાધુઓને બોલાવીને
 આ પ્રકારે કહે છે—“આ અનવસ્થાપ્ય મુનિ તપસ્યા કરી રહ્યો છે, તે ન તો
 તમારી સાથે બોલશે અને ન તમારે એને બોલાવવો એ તમોને સૂત્રાર્ય અને
 શરીરની મુશ્કાતા આદિ નહિ પૂછે અને તમારે પણ તેને પૂછવું નહિ તેની
 પરિષ્ઠાપનિકા આદિ તમારે ન કરવી અને તે પણ તમારી નહિ કરે તેના

आशातनापाराश्रिक । तस्य पागश्चिकार्हनामकदशम प्रायश्चित्त प्राप्नोति । म जन्म्येन पग्मासान्,
उत्कर्षतो द्वादश मामान् गच्छतो नि मागितस्तपसि निदिति । प्रतिसेवनापागश्चिकत्रिभिः—दुष्ट,
प्रमत्त, अन्योन्य क्रुमांगश्चेति । तत्र दुष्टो द्विभिः—रूपायदुष्टो, विषयदुष्टश्चेति । तत्र कपायदुष्टो
द्विभिः स्वपक्षदुष्ट, परपक्षदुष्ट । अत्र चतुर्भङ्गा, तदयथा—स्वपक्ष स्वपक्षे दुष्ट १, स्वपक्ष
परपक्षे दुष्ट २, परपक्ष स्वपक्षे दुष्ट ३, परपक्ष परपक्षे दुष्ट ४ । प्रथमभङ्गे—मृतगुरुदन्तमञ्जक
१, गुरुगर्भक २, नेत्रोरसातक ३, दन्तैर्दंशक ४, इयादान्युत्पाहृणानि । द्वितीयभङ्गे—
राजादिगृहस्थमयक २, तृतीये—यथा केनापि गृहस्थानरथाया नादे पराजित कश्चिद् आसीन्,

कृता है वह 'आशातनापाराश्रिक' है । इसे 'पागश्चिकार्ह' नामक दशवाँ
प्रायश्चित्त दिया जाता है । यह जन्म से ४ मास तक और उद्दृष्ट से चारह मास
तक गच्छ से ऋद्धिप्लव होकर तपस्या करता है । 'प्रतिसेवनापाराश्रिक' तीन
प्रकार का होता है । वे प्रकार ये हैं—(१) दुष्ट, (२) प्रमत्त और (३) अन्योऽन्य-
क्रुमाण । इनमें 'दुष्ट' दो प्रकार का होता है—(१) रूपायदुष्ट और (२) विषय-
दुष्ट । रूपायदुष्ट दो प्रकार का है—(१) स्वपक्षदुष्ट और (२) परपक्षदुष्ट । यहाँ
पर चतुर्भङ्गा होती है । चतुर्भङ्गा का प्रकार इस प्रकार है—(१) स्वपक्ष, स्वपक्ष में
दुष्ट—साधुओं से द्वेष करनेवाला साधु । इसका उदाहरण है—मृत गुरु का दाँत
पाटनेवाला, मृत गुरु की गर्दन मगेडनेवाला, मृत गुरु तथा साधु की आँसों को
निकालनेवाला, दाँतों में साधु को काटनेवाला—माधु । (२) स्वपक्ष—परपक्ष में दुष्ट—
गृहस्थों से द्वेष करनेवाला साधु । इसका उदाहरण है—राजा आदि गृहस्थों का वध

श्रुत, आचार्य, गणधर अने लब्धिधानीनी आशातना उते छे ते 'आशातना-
पाराश्रिक' छे तेने पाराश्रिकाह नामक दशम प्रायश्चित्त देवाय छे अने
जन्म्यथी छ मास सुधी अने उत्कृष्टथी पार मास सुधी गच्छवी ऋद्धिप्लव
थधने तपस्या करे छे 'प्रतिसेवनापाराश्रिक' त्रय प्रकारना वाय छे ते आ
प्रकारे छे—(१) दुष्ट, (२) प्रमत्त अने (३) अन्योऽन्यक्रुमाण तेमा 'दुष्ट'
के प्रकारना थाय छे (१) रूपायदुष्ट अने (२) विषयदुष्ट रूपायदुष्ट के
प्रकारना छे—(१) स्वपक्षदुष्ट अने (२) परपक्षदुष्ट अही अतुर्भङ्गी थाय
छे अतुर्भङ्गीना प्रकार आम छे—(१) स्वपक्ष, स्वपक्षमा दुष्ट—साधुओंना द्वेष
करवावाणो साधु तेतु उदाहरण छे—मरेला शुडना दात पाटवावाणो, मरेला
शुडनी गर्दन मगेडवावाणो, मरेला शुड तथा साधुनी आणो ढाही लेवावाणो,
दातेथी साधुने षटका लरवावाणो साधु (२) स्वपक्ष, परपक्षमा दुष्ट—गृहस्थोंना
द्वेष करवावाणो साधु तेतु उदाहरण छे—राजा आदि गृहस्थोंना वध करवा

તદ્વૈયાવૃત્ય કરણીય, તસ્મિન્નિવૃત્તે સતિ પુનસ્તપસિ મસ્થાન્ય । इति मक्षेपतोऽननवस्थाप्यतपो-
विधि । इदं नवमं प्रायश्चित्तम् । ૧૧।

‘પારંચિયારિહે’ પારાશ્ચિકાઠ્ઠમ્—પાર=તૌર તપસાઽપરાધસ્ય અઘ્નતિ=ગચ્છતિ તતો
દીક્ષયતે ય સ પારાશ્ચી, સ ઇવ પારાશ્ચિક, તસ્ય યદર્હ તત્ પારાશ્ચિકાર્હ ઽગમ પ્રાયશ્ચિત્તમ્ ।
યદા—પારમન્ત પ્રાયશ્ચિત્તાના તત ઉકૃષ્ટતરપ્રાયશ્ચિત્તાઽભાગાદ્ અઘ્નતિ—ગચ્છતી—ધેવગીઠ સાધુ
પારાશ્ચિકસ્તદર્હ પ્રાયશ્ચિત્તમ્ । ૧૦। પારાશ્ચિક સક્ષેપતો દ્વિવિધ—આગાતનાપારાશ્ચિક, પ્રતિ-
સેવનાપારાશ્ચિકથેતિ । તન—તીર્થંકર—સઘ—શ્રુતાચાર્ય—ગણધર—મહર્દિકાન્ આશાતયતિ ય સ

કલ્પતા હૈ । यदि उस साधु को रोगादि हो जाय तो जन्तक रोगादि की निवृत्ति
न हो तबतक अन्य साधु उसकी वैयावृत्य कर सकते हैं । जब वह साधु रोग से
निर्मुक्त हो जाय तो फिर उससे तपस्या करानी चाहिये । यह अनवस्थाप्यार्ह नामक
नवमा प्रायश्चित्त हुआ ।

‘પારંચિયારિહે’ જો સાધુ તપ કે દ્વારા અપને ક્રિયે હુણ અપરાધ કો પાર
કરતા હૈ, અર્થાત્ અપરાધજનિત પાપસે મુક્ત હોતા હૈ, ફિર ઉસે દીક્ષા દી જાતી હૈ,
વહ સાધુ ‘પારાશ્ચિક’ હૈ । ઉસ સાધુ કો પાપવિગોધનાર્થ જો પ્રાયશ્ચિત્ત દિયા
જાતા હૈ, વહ ‘પારાશ્ચિકાર્હ’ પ્રાયશ્ચિત્ત હૈ । અથવા જો સાધુ ઉકૃષ્ટતર અન્ય પ્રાય-
શ્ચિત્ત કે ન હોને કે કારણ માત્ર અન્તિમ પ્રાયશ્ચિત્ત કા અધિકારી હોતા હૈ વહ
‘પારાશ્ચિક’ કહા જાતા હૈ । ઉસ અન્તિમ પ્રાયશ્ચિત્ત કો ‘પારાશ્ચિકાર્હ’ કહતે હૈ ।
પારાશ્ચિક સાધુ દો પ્રકાર કા હૈ—પહલ આશાતનાપારાશ્ચિક, દૂસરા પ્રતિસેવના
પારાશ્ચિક । જો તીર્થંકર, સઘ, શ્રુત, આચાર્ય, ગણધર ઓર લઘ્વિધારી કી આગાતના

नहीं जे ते साधुने रोगादि थर्ह जय ते ज्यो सुधी रोगादिनी निवृत्ति न
थाय त्या सुधी अन्य साधु तेनु वैयावृत्य करी शके छे ज्यारे ते साधु
रोगथी निर्मुक्त थर्ह जय त्यार पछी तेनी पासे तपस्या कराववी जेठजे आ
अनवस्थाप्यार्ह नामनु नवमु प्रायश्चित्त थयु

‘પારંચિયારિહે’ જે સાધુ તપદ્વારા પોતે કરેલા અપરાધને પાર કરે છે અર્થાત્
અપરાધજનિત પાપથી મુક્ત થાય છે તેને ત્યાર પછી દીક્ષા દેવાય છે તે સાધુ
‘પારાશ્ચિક’ છે તે સાધુને પાપવિગોધનાર્થ જે પ્રાયશ્ચિત્ત દેવાય છે તે ‘પારાશ્ચિકાર્હ’
પ્રાયશ્ચિત્ત છે, અથવા જે સાધુ ઉકૃષ્ટતર અન્ય પ્રાયશ્ચિત્ત ન હોવાના કારણ
માત્રથી અતિમ પ્રાયશ્ચિત્તને અધિકારી છે તે ‘પારાશ્ચિક’ કહેવાય છે તે
અતિમ પ્રાયશ્ચિત્તને ‘પારાશ્ચિકાર્હ’ કહેવાય છે. પારાશ્ચિક સાધુ જે પ્રગરના
છે—પહેલા આશાતનાપારાશ્ચિક, ખીલ પ્રતિસેવનાપારાશ્ચિક જે તીર્થંકર, સઘ,

पाराश्रिकार्हं प्रायश्चित्त कर्तव्यम् । तत साधुवेपपरित्यागेन म गुरुनिर्देगत कपर्दिना वणिम्यो याचिचा गुरवे प्रदर्शयति, ततो गुरुमुनिवेप दत्त्वा दीक्षा ददाति । पाराश्रिकतपोविधान प्रागुक्तानवस्थाप्यतपोनद ग्रीष्मे चतुर्थपश्याष्टमानि, शिशिरे पश्याष्टमदशमानि, वर्षात्त्वष्टम- दशमद्वादशानि जघन्यमध्यमोक्कृष्टानि, पारणके च निर्लेप इति ।

द्वितीयभङ्गेऽपि चानुपरत प्रथमभङ्गवत् साधुवेपापहारेण गच्छाद् वहिष्करणीय , उपर-

ऐसे साधु को गुरु पाराश्रिकार्हं प्रायश्चित्त दें । ऐसा साधु साधुवेप का परित्याग कर शिर के ऊपर कपडा बाँधकर गुरु की आज्ञा से बाजार में जाकर व्यापारियों से अपना पाप- निवेदनपूर्वक एक एक कौड़ी माँगता है, माँग कर उन कौड़ियों को गुरु महाराज को दिखलाता है । तब गुरु महाराज उसे मुनिवेप देकर फिर से दीक्षा देते हैं । पाराश्रिक तप का विधान पूर्वोक्त अनवस्थाप्य तप के समान है । इस तपस्या में वह साधु प्राण ऋतु में जघन्य से उपवास, मध्यम से वेला, उत्कृष्ट से तेल, शिशिर ऋतु में जघन्य से वेला, मध्यम से तेल, उत्कृष्ट से चौरा, और वर्षा ऋतु में जघन्य से तेल, मध्यम से चौरा, उत्कृष्ट से पँचोला करता है । पारणा में विकृतिवर्जित आहार लेता है ।

द्वितीयभङ्ग में जो साधु अनुपरत है अर्थात् राजा आदि गृहस्थों के घातरूप व्यापार से निवृत्त नहीं होता है, ऐसे साधु का साधुवेप छीनकर गुरु महाराज उसे गच्छ से निकाल दे । जो साधु राजादिक गृहस्थ के घातरूप व्यापार

साधु हात पाउवा आदि दुष्कृत्येथी निवृत्त थर्ध ज्ञय छे अने नियम करे छे के-‘छेवे छु इगीने जेवु काम नछि करे’ जेवा साधुने शुर् पाराश्रिकार्हं प्राय- श्रित्त आपे जेवो साधु, साधुनो वेप छोडी दध शिरना उपर कपडु आधी शुर्नी आज्ञा लध जणरमा ज्ञय छे अने व्यापारीज्योनी पासो पोतातु पापनु निवेदन करी जेक जेक छोडी भागे छे भागीने ते छोडिज्योने शुर् भडाराजने जतावे छे त्यारे शुर् भडाराज तेने मुनिवेप आपीने इरीने दीक्षा आपे छे पाराश्रिक तपनु विधान आगज कहेल अनवस्थाप्य तपना समान छे आ तपस्यामा ते साधु श्रीभ्रमरुतुमा जघन्यथी उपवास, मध्यमथी जेला, उत्कृष्टथी तेल, शिशिररुतुमा जघन्यथी जेला, मध्यमथी तेल, उत्कृष्टथी चौरा, अने वर्षारुतुमा जघन्यथी तेल, मध्यमथी चौरा, उत्कृष्टथी पंचोला करे छे पारणांमा विकृतिवर्जित आहार ले छे

द्वितीयलजमा-जे साधु अनुपरत होय अर्थात् राजा आदि गृहस्थाना घातरूप व्यापारथी निवृत्त थतो नथी, जेवा साधुनो साधुवेप छीनवी लधने

स तस्य गृहस्थावस्थाया प्रिजयिन सामोर्गिको जात, गया स्कन्दकुमारस्य पालक इति । ३।
यो राजो युवराजस्य वा वधक स चतुर्थमदान्तर्गत । अर्थाभित्तात् वधक परपक्ष, राजा
तु परपक्ष एवास्ति । ४।

प्रथममङ्ग्ले योऽनुपरत स प्रायश्चित्तानर्ह, तस्मात् तस्य साधुनेपमपह्य गुरुणा
बहिर्निस्सारण करणीयम्, यस्तुपरत 'धुनर्नैव करिष्यामी' ति प्रतिजानाति तस्य तपोरूप

करनेवाला साधु । (३) परपक्ष, स्वपक्ष में दुष्ट-साधु से द्वेष करनेवाला गृहस्थ ।
इसका उदाहरण इस प्रकार है-किसी साधुन गृहस्थावस्था में वादप्रियाद में किसी
को पराजित किया था । पराजित मनुष्य उसका वैरी हो गया । वाद में विजयी
मनुष्यने दाक्षा लेकर साधुत्व को अङ्गीकार किया, उस समय पराजित मनुष्य तीन
वैरानुबन्ध के कारण उस साधु को मार डाला । जैसे-पालकने स्कन्दक आदि पाँचसौ
मुनियों को मार डाला । तथा (४) परपक्ष-परपक्ष में दुष्ट-गृहस्थ से द्वेष करनेवाला
गृहस्थ । इसका उदाहरण है-राजा वा युवराज का वध करनेवाला गृहस्थ । हत्या
करनेवाला अदीक्षित होने के कारण परपक्षी है, राजा आदि तो परपक्षी है ही, इसलिये
यह चतुर्थ मङ्गल का उदाहरण है ।

प्रथममङ्गल में जो साधु अनुपरत है, अर्थात् मृतगुरु के दात पाडना आदि दुष्कृत्य से
निवृत्त नहीं होता है, वह प्रायश्चित्त का अधिकारी नहा है । गुरु को चाहिये कि ऐसे साधु का
वेप छीन ले, और गच्छ से उसको निकाल दें । जो साधु दात पाडना आदि दुष्कृत्यों से
निवृत्त हो जाता है, और प्रतिज्ञा करता है कि "मैं अब फिर कभी ऐसा काम नहा करूँगा"

वाणो साधु (३) परपक्ष, स्वपक्षमा दुष्ट-साधुने द्वेष करवावाणो गृहस्थ आतु
उदाहरण्य आम छे-कोई साधुने गृहस्थाश्रममा वादप्रियादमा कोषने पराजित
कथे छतो पराजित साधुन तेनो वेरी थर्ध गथे पत्री विजयी मनुष्ये दीक्षा
लभ साधुत्व अगीकार कथुं, ते समये पराजित मनुष्ये तीन वैरानुबन्धने
कारणे ते साधुने मारी नाप्ये नेम, पालके स्कन्द आदि पाचसौ
मुनियोने मारी नाप्ये तथा (४) परपक्ष, परपक्षमा दुष्ट-गृहस्थानो
द्वेष करवावाणो गृहस्थ तेतु उदाहरण्य छे-राज अथवा युवराजने वध
करवावाणो गृहस्थ छत्या करवावाणो अदीक्षित होवाने कारणे परपक्षी छे,
राज आदि तो परपक्षी छे, आधी से चतुर्थमङ्गल उदाहरण्य छे

प्रथम मङ्गलमा-ने साधु अनुपरत ते अर्थात् मरेला शुद्धा दात पाडना
आदि दुष्कृत्यथी निवृत्त थतो नथी ते प्रायश्चित्तने अधिकारी नथी शुद्धे सेवा
साधुने वेप छीनवी देवे नेधे अने गच्छथी तेनो अधिकार करवे नेधे ने

परपक्ष परपक्षे दृष्ट २ । तत्र-बालाया तरुण्या वा सात्याया य माधुदुष्ट = जील्भङ्गकारक, म प्रथमो भङ्ग । माधुग्न अथातगृह्णियामन्यताधिक्याया वा अच्युपपन्न इति द्वितीय । गृहस्थो बालाया तरुण्या वा सात्याया उपपन्न इति तृतीय । गृहस्थो गृहस्थायामिति चतुर्थ । एव विषयदुष्टोऽपि चतुर्विधो भवति य ।

तत्र-प्रथमभङ्गे वर्तमानो योऽनुपगत म विद्वापागच्छिक कर्तव्य-साधुवेषाप-होमग मर्यादा ग्राह्य इति प्रायश्चित्तम् । यस्तूपगत = उपगतान्त 'पुनरेव कर्ष्यामी'-ति प्रति-ज्ञानानि, तस्मात् पागच्छिकार्ह तपोरूप प्रायश्चित्त कारयति तत साधुवेषमनप य दीक्षाप्रदान कर्तव्यम् उपगतम् विषयदुष्टस्य विद्वापागच्छिकवर्तिमानभावात् ।

परतार्थिक का खा से व्यभिचार करनेवाला साधु । (३) परपक्ष, स्वपक्ष में दुष्ट=बाला या तरुणा सात्या का जील्भङ्ग करनेवाला गृहस्थ । (४) परपक्ष, परपक्ष में दुष्ट-गृहस्थ स्त्री क साथ व्यभिचार करने वाला गृहस्थ । विषयदुष्टके ये चार भङ्ग हुए । उनमें प्रथम-भङ्ग में वर्तमान साधु अपने दुष्कर्म में निवृत्त न हो तो गुरु उमको लिङ्गपाराश्रिक कर दें, अथात्-उसका साधुवेष छे लें, और उमका गच्छ से सर्वथा वहिष्कार कर दें । जो साधु अपने दुष्कर्म से निवृत्त एवं उपगतान्त होकर ऐसी प्रतिज्ञा करे कि "मैं अब फिर कभी भी ऐसा नही करूँगा" उमको गुरु पागच्छिकार्ह तपोरूप प्रायश्चित्त देते हैं । ऐसे साधुका साधु-वेष नहीं छीना जाता है, मात्र उसे नयी दीक्षा दी जाती है । अपने दुष्कर्म से निवृत्त विषयदुष्ट के लिये लिङ्गपाराश्रिक का विधान नहीं है, अथात्-उमका वेष नहीं छीना जाता है ।

परपक्षमा दुष्ट-शय्यातग्नी श्री अथवा परतीर्थिऽनी श्रीथी व्यलिच्यार डरवा-वाणो साधु (३) परपक्ष, स्वपक्षमा दुष्ट-पाला अथवा तरुणी साध्वीतु शीथण लग डरवावाणो गृहस्थ (४) परपक्ष, परपक्षमा दुष्ट-गृहस्थ श्रीनी साथ व्यलिच्यार डरवावाणो गृहस्थ विषयदुष्टना आ चार लग थया तेमा प्रथम लगमा वर्तमान साधु पोताना दुष्कर्मथी निवृत्त न थाय तो शुद्ध तेने लिङ्गपाराश्रिक करी दे, अर्थात् तेनो साधु वेष लछ दे अने गच्छमाथी तेनो मर्यादा पाडिडार करी दे ते साधु पोताना दुष्कर्मथी निवृत्त तेम ल उपशात थरने जेवी प्रतिज्ञा करे के 'हुँ हुँवे करीने करी जेपु नहिँ कर' तेने शुद्ध पागच्छिकार्ह-नपोडप प्रायश्चित्त आपे दे जेवा साधुनो साधुवेष छीनधी देवातो नथी मात्र तेने नवी दीक्षा अपाय दे पोताना दुष्कर्मथी निवृत्त विषयदुष्टने माटे लिङ्गपाराश्रिकनु विधान नथी अर्थात् तेनो वेष छीनधी देवातो नथी

तश्चेत् तर्हि तस्य न पाराश्रिकतप करण, नापि च मातुनेपापहार, किं तु पुनः प्रदानमात्र प्रायश्चित्तम् ।

तृतीयभङ्गे चतुर्थभङ्गे च—यद्यतिगयज्ञानी 'उपशातोऽयम्' इति गयते, तदा स्वदेशे दीक्षितु न कल्पते, किन्तु अन्यस्मिन् देशे गवा दीक्षा दातव्या ।

विषयदुष्टोऽपि पूर्ववद् द्विविध—स्वपक्षदुष्ट, परपक्षदुष्टचेति । तत्रापि चतुर्भङ्गी-
तदयथा—स्वपक्ष स्वपक्षे दुष्ट १, स्वपक्ष परपक्षे दुष्ट २, परपक्ष स्वपक्षे दुष्ट ३,

से निवृत्त हो जाय तो उससे गुरु पाराश्रिक तप नही कराये, न उमका मातुनेप ही दीक्षा, किन्तु उसे क्षेत्रपाराश्रिक करके फिर से दीक्षा दे, यह उमका प्रायश्चित्त है ।

तृतीयभङ्ग में—जो गृहस्थ साधु का घातक है वह यदि दीक्षा लेना चाहे, गुरुमहाराज को वह उपशात जात हो तो उस गुरुमहाराज अन्यदेश में ले जाकर दीक्षा दे । क्या कि स्वदेश में उसके लिये दीक्षा नही कल्पता है । चतुर्थभङ्ग में—जो कोई गृहस्थ, राजा युवराज आदि गृहस्थ का घातक है, वह यदि दीक्षा लेना चाहे और गुरु महाराज को वह उपशान्त मान्य हो, तो उसको परदेश में ले जाकर दीक्षा दे । स्वदेश में उसके लिये दीक्षा नही कल्पती है ।

विषयदुष्ट भी पूर्ववत् दो प्रकार का होता है—स्वपक्षदुष्ट और परपक्षदुष्ट । यहाँ पर भी चतुर्भङ्गी है । वह इस प्रकार है—(१) स्वपक्ष, स्वपक्ष में दुष्ट—बाला या तरणा साध्वी का शील भङ्ग करनेवाला साधु । (२) स्वपक्ष, परपक्ष में दुष्ट—अन्यातर की स्त्री या

शुद्ध भङ्गाराज्ये तेने गच्छथी भङ्गार करवो जे साधु-राजद्विड गृहस्थना घातइय व्यापारथी निवृत्त थथ नथ तो तेने शुद्ध पाराश्रिक तप न करावे, न तेने साधुवेश-पणु जीनवी ले, परंतु तेने क्षेत्रपाराश्रिक करीने करीथी तेने दीक्षा आपे, ओ न तेनु प्रायश्चित्त ७

तृतीयभङ्गमा—गृहस्थ साधुना घातक होयते जे दीक्षा लेवा चाहे तो अतिशयज्ञानी शुद्धभङ्गाराज्ये जे ते उपशात जणाय तो तेने शुद्धभङ्गाराज्य अन्य देशमा लक्ष-जघने दीक्षा आपे उमके स्वदेशमा तेने भाटे दीक्षा कल्पती नथी चतुर्थभङ्गमा—जे कोठ गृहस्थ, राजा युवराज आदि गृहस्थना घातक होय, ते जे दीक्षा लेवाने चाहे तो तेने परदेशमा लक्ष-जघने दीक्षा देवी स्वदेशमा तेने भाटे दीक्षा कल्पती नथी

विषयदुष्ट पणु पूर्व प्रमाणे जे प्रकारना थाय ७ स्वपक्षदुष्ट अने परपक्ष दुष्ट-अर्ही पणु चतुर्भङ्गी छे ते आ प्रकारे ७—(१) स्वपक्ष, स्वपक्षमा दुष्ट—आला अथवा तइछी नाथीतु तीयण ल ग करवावाणो साधु (२) स्वपक्ष,

नगर्यां यस्मिन् गृहस्थकुले दोष उत्पन्न, उपस्यते वा, तद्विषये जुहे प्रवेष्टु चारणीय। तथा—यत्र निर्गमप्रवेशयोर्द्वारमेकमेवास्ति तत्र, तथा द्वयोप्रामयोरपान्तराले यत्र द्व्यादिगृहाणा सनिवेश-स्तत्रापि गमनागमन चारणीयम्। अय क्षेत्रपाराश्रिक इत्युच्यते।

द्विषेऽपि दुष्टपाराश्रिके प्रथमभङ्गाधिकार। शेषाणि पुनर्द्वितीयभङ्गादीनि शिष्य-बुद्धिवैश्वार्थं प्रदर्शितानि।

अथ प्रमत्तपाराश्रिक उच्यते—स्थानर्द्धिनिद्रावान् प्रमत्तपाराश्रिक, तस्य सामान्य-लोकबलाद् द्विगुण त्रिगुण चतुर्गुण वा बल भवति, तस्मात्सौ गुरुणा एव प्रजापनीय—सौम्य! लिङ्गं मुञ्च, चारित्रं तत्र नास्ति। यद्येव गुरुणा सानुनयमुक्त साधुवेषं मुञ्चति, तत

जिन ग्रामनगरादि स्थानों में विहार करता है वहाँ विहार नहीं करने दिया जाता है। द्वितीयभङ्ग के साधु को जिस नगर में, जिस कुलमें उससे दोष हो गया और होने की भावना है, वहाँ नहीं जाने दिया जाता है, और जहाँ निकलने तथा प्रवेश करने का द्वार एक ही है वहाँ, तथा दो गावों के बीच में जहाँ दो तीन घर बसे हुए हों वहाँ भी, इस साधु का गमनागमन रोक दिया जाता है। यही क्षेत्रपाराश्रिक कहा जाता है।

प्रतिसेवनापाराश्रिक के दुष्ट नामक प्रथम भेद के कृपायदुष्ट और विषयदुष्ट ये दो भेद हुए। इन दोनों भेदों में प्रथम भङ्गका ही यहाँ अधिकार है, क्योंकि प्रथम भङ्ग में ही पाराश्रिकार्ह प्रायश्चित्त दिया जाता है। द्वितीयभङ्ग आदि तो शिष्यों की बुद्धि विशद हो, इसलिये दिखलाये गये हैं।

अब प्रमत्तपाराश्रिक कहते हैं। स्थानर्द्धिनिद्रावान् साधु प्रमत्तपाराश्रिक है। उसे सामान्य लोगों के बलसे द्विगुण, त्रिगुण वा चतुर्गुण बल होता है। ऐसे साधु को

द्वितीय लगना साधुने, जे नगरीमा जे कुणमा तेनाथी दोष थर्छ गथे। डोय अने डोवानी सलावना डोय त्या जवा देवाता नथी अने न्या नीकण-वानु तथा प्रवेश करवानु द्वार अेक जे डोय त्या, तथा जे गामेनी वच्चे न्या जे त्रणु घर वसेदा डोय त्या पणु ते साधुनु गमनागमन रोकवाभा आवे छे, आ जे क्षेत्रपाराश्रिक छे डेवाय छे।

प्रतिसेवनापाराश्रिकना दुष्ट नामना प्रथम लेदना कृपायदुष्ट अने विषय-दुष्ट, अे जे प्रकार थया अे अन्ने प्रकारेमा प्रथम लगना जे अडी अधिकार छे, केभके प्रथम लगना जे पाराश्रिकार्ह प्रायश्चित्त देवाय छे। द्वितीय लग आदि तो शिष्येनी बुद्धि विशद थाय ते भाटे जनाव्या छे।

डवे प्रमत्तपाराश्रिक छे डे। स्थानर्द्धिनिद्रावान् साधु प्रमत्तपाराश्रिक छे तेनामा सामान्यलोकेना जण करता जमणु त्रणुगणु अथवा चारगणु जण

द्वितीयभङ्गेऽपि वर्तमानो योऽनुपस्त स गव लिङ्गपाराश्रिक कर्तव्य, उपरस्तु न लिङ्गत पाश्रिक कर्तव्य, क्षेत्रत एव पाश्रिक कर्तव्य, पुनर्दीक्षाप्रदानमात्र तस्य प्रायश्चित्तम् । तृतीये चतुर्थे च भङ्गे यद्युपगान्तस्तन्नाऽन्यभिन् देशे दीक्षा दातव्या, अत्र पाराश्रिकतपन प्रस्तुतवात् परपक्षे तस्यासम्भवात् । यद्यनुपगातस्तर्हि दीक्षा न दातव्या । येषु ग्रामादिषु ता साध्वो विहरन्ति तेषु तेषु स्थानेषु विहर्तुं स प्रथममङ्गे वर्तमान साधुर्निर्गच्छते । द्वितीयादिष्वपि भङ्गेषु तानि स्थानानि ग्रामादीनि परिहर्तव्यानि । गतदुक्त भवति-द्वितीयमङ्गे यस्या

द्वितीयमङ्गमें वर्तमान साधु यदि अपने दुष्कर्म से निवृत्त न हो तो गुरु महाराज उस साधुको लिङ्गपाराश्रिक कर दें, अर्थात् उसका साधुवेष लेकर उमको गच्छ से सर्वथा क लिये निकाल दें । जो साधु निवृत्त हो जाय उसको लिङ्गसे पाराश्रिक न करें, अर्थात् उसका साधुवेष नहीं छीने, किन्तु उसको क्षेत्र से पाराश्रिक कर दें । ऐसे साधुको फिर से दीक्षा दें । यही इसके लिये प्रायश्चित्त है । तृतीय चतुर्थ मङ्गमें वर्तमान गृहस्थ उपगान्त अर्थात् अपने दुष्कर्म से निवृत्त हो तो उसको अन्यदेश में दीक्षा देने चाहिये । यदि वह उपगान्त न हो तो अन्य देश में भी दीक्षा नहीं दें । यहाँ पाराश्रिक का प्रस्ताव, अर्थात्-उपक्रम है, पाराश्रिक तप परपक्ष अर्थात् गृहस्थ के लिये सम्भवित नहीं है, इसलिये गृहस्थ के लिये देशान्तर में दीक्षा देने का विधान किया है ।

प्रथममङ्ग के साधु को, जिन साध्वियों का उसने शील भङ्ग किया है वे साध्वियाँ

द्वितीयलंगमा वर्तमान साधु ने पोताना दुष्कर्मथी निवृत्त न थाय तो शुद्ध ते साधुने विगपाराश्रिक करी हे, अर्थात् तेना साधु वेष लर्ष ले अने तेने गच्छथी भर्षथा भाटे णडिष्कार करे ने साधु निवृत्त थथ नथ तेने विगथी पाराश्रिक न करे, अर्थात् तेना साधुवेष न लर्ष ले परतु तेने क्षेत्रथी (ते स्थणथी) पाराश्रिक करे अथवा साधुने करीने दीक्षा हे, अथ तेने भाटे प्रायश्चित्त छे

तृतीय अर्थात् लंगमा वर्तमान गृहस्थ उपशात अर्थात् पोताना दुष्कर्मथी निवृत्त थाय तो तेने जीवत देशमा दीक्षा देवी नेछअने ने ते उपशात न थाय तो जीवत देशमा पणु दीक्षा न देवी अडी पाराश्रिकने प्रस्ताव, अर्थात् उपक्रम छे, पाराश्रिक तप परपक्ष अर्थात् गृहस्थने भाटे सम्भवित नथी, तेथी गृहस्थने भाटे देशांतरमा दीक्षा देवानु विधान कथुं छे

प्रथम लंगमा साधुने, ने साध्वीओनु तेणे शीललंग कथुं होय ते साध्वीओ ने गाम नगरादि स्थानोमा विहार करती होय त्या विहार करवा देवामा आवतो नथी.

શ્રાવકવ મમ્યકૃત્વ યા નેષ્ટતિ, તત્ત તસ્ય સહવાસો વર્જનીય ।

અર્થાન્વ્યોન્યકુર્વાંગપારાગ્નિક ઉચ્યતે—મુગ્ધપાયુભ્યા મૈથુની અન્યોન્યકુર્વાંગપારાગ્નિક ।
સ પુનર્ન દીક્ષગીય । યત્તિ તુ અતિશયજ્ઞાની આચાર્ય —‘અથ ન પુનરેવ કરિષ્યતિ’ ઇતિ
જાનાતિ, તદા પારાગ્નિકાર્હ તદ કારથિવા પુનસ્તસ્મૈ દાક્ષા પ્રદેયા ।

નિપયદુષ્ટોડનુપગત એવ લિન્નત પારાગ્નિક ક્રિયતે । યસ્તુ નિપયદુષ્ટ ઉપરત સ
ઉપાશ્રયાલિક્ષેતત એવ પારાગ્નિક ક્રિયતે, ન તુ લિન્નત । ઇંવા ક્વાયદુષ્ટપ્રમત્તાન્યોન્યકુર્વાંગા
નિયમાલિન્નપારાગ્નિકા ક્રિયન્તે ।

વહ શ્રાવકવ અવના સમ્યક્ત્વ યા સ્વીકાર કરના નહા યાદ, તત્ત મધ ઉસકા સહવાસ
કર્મી મી નહી ક્રે, સર્વદા ક લિયે ઉમકા વદિષ્કાર કર ડે ।

અત્ત અન્યોડન્યકુર્વાંગ પારાગ્નિક કહતે હ—જો સાધુ મુગ્ધમૈથુની ઓર ગુદા-
મૈથુની હો, તદ્ ‘અન્યોડન્યકુર્વાંગ પારાગ્નિક’ હ । એસે સાધુ કો ફિર સે દીક્ષા નહીં દી જાતી
હ । યદિ અતિશયજ્ઞાની ગુરુ મહાગરુ કો એસા અનુમત્ત હો કિ—યદ્દ ફિર એસા નહીં કરેગા,
તત્ત વે ઉસસે પારાગ્નિકાર્હ તપ કરા કર ફિર સે ઉસે દીક્ષા ડે ।

નિપયદુષ્ટ સાધુ યદિ અપને દુષ્કર્મ સે નિવૃત્ત નહા હોતા હે તો વહ લિન્નપારાગ્નિક
હોતા હે, અર્થાત્ ઉમકા સાધુવેષ લે લિયા જાતા હે, ઓર ઉસે ગચ્છ સે નિકાલ ડિયા જાતા
હ । જો નિપયદુષ્ટ સાધુ અપને દુષ્કર્મ સે નિવૃત્ત હો જાતા હે, વહ ઉપાશ્રયાલિ ક્ષેત્ર સે હી
પારાગ્નિક ક્રિયા જાતા હે, અર્થાત્ વહ અન્ય પ્રદેશ મે મેજ ડિયા જાતા હે, ઉસકા સાધુવેષ

ને તે શ્રાવકત્વ અથવા મમ્યકૃત્વનો સ્વીકાર કરવા ન ચાહે તે સધ તેનો
સહવાસ કદી પણ કરે નહિ, સર્વદા માટે તેનો ગણિષ્કાર કરી દે

હવે અન્યોડન્યકુર્વાણ-પારાગ્નિક કહે છે—ને સાધુ મુગ્ધમૈથુની અને ગુદા
મૈથુની હોય તે ‘અન્યોડન્યકુર્વાણ-પારાગ્નિક’ છે એવા સાધુને ક્ષીને દીક્ષા અપાતી
નથી જે અતિશયજ્ઞાની ગુરુમહારાજને એવો અનુભવ થાય કે આ ક્ષીને એવું
નહિ કરે, તે તેઓ તેની પામે પારાગ્નિકાર્હ તપ કરાવીને ક્ષીને તેને દીક્ષા આપે

નિપયદુષ્ટ સાધુ જે પોતાના દુષ્કર્મથી નિવૃત્ત ન થાય તે તેને લિગ-
પારાગ્નિક કરાય છે, અર્થાત્ તેનો સાધુવેષ લઈ લેવાય છે, અને તેને ગચ્છથી
કાઠી મૂકવામા આવે છે જે નિપયદુષ્ટ સાધુ પોતાના દુષ્કર્મથી નિવૃત્ત થઈ બચ
છે તે ઉપાશ્રયાલિ ક્ષેત્રમાથી જ પારાગ્નિક કરાય છે, અર્થાત્ તેને બીજા પ્રદેશમા
મોકલવામા આવે છે તેનો સાધુવેષ લઈ લેવામા આવતો નથી નિપયદુષ્ટથી
બુદ્ધા જે ઉપાયદુષ્ટ, પ્રમત્ત અને અન્યોડન્યકુર્વાણ છે, એ ત્રણને નિયમપ્રમાણે
લિગપારાગ્નિક કરવામા આવે છે, અર્થાત્ તેમનો સાધુવેષ લઈ લેવાય છે

शोभनम् । अथ न मुञ्चति तत सपो मित्रिया तस्य साधुवेष हृगति, न त्वेक एव जन, तस्यैकस्योपरि प्रद्वेषमभावात्, प्रद्वेषयुक्तस्य स तस्य हिंसनमपि कुर्यात् । तस्मै पुनराज्ञा न दीयते । यस्तु जानातिगयवान् आचार्य एव जानाति—'यत्र पुनर्गतस्य स्यान्नर्दिनिद्रोदयो भविष्यतीति, तत पाराश्रिकार्हं प्रायश्चित्त कारयित्वा तस्मै दीक्षा ददाति । मंधेन मित्रिया तस्य साधुवेषापहारे कृते पुनराचार्य एवमुपपन्निति—स्थूलप्राणातिपातविरमणात्पीनि देश-व्रतानि गृह्णाण, तानि चेत् प्रतिपत्तु न समर्थस्ततो दर्शन (सम्यक्तत्र) गृह्णाग । अथैवमुक्तोऽपि

गुरुमहाराज इस प्रकार कहें—“सौम्य! तुम साधुवेष छोड़ दो, क्या कि तुम म चारित्र का अभाव है । गुरु से इस प्रकार सरल भाव से कहें जाने पर यदि वह साधुवेष का परित्याग कर दे तो अच्छा है, नहीं तो मद्य मिलकर उमका साधुवेष छीन ले, अकेले नहीं, क्यों कि साधुवेष छीने जाने के समय उस साधु को द्वेष उपन्न होगा, और द्वेषयुक्त वह साधु मनुष्य की हिंसा भी कर सकता है । ऐसे साधु को फिर से दीक्षा नहीं दी जाती है । यदि अतिशयजाना गुरु को ऐसा अनुभव हो कि यह प्रकृतिमद्भक्त है, इसे अत्र स्यान्नर्दिनिद्रा आदि नहीं होगी, तो गुरु उस साधु को पाराश्रिकार्हं प्रायश्चित्त देकर फिर से दीक्षा दे । लघु मिलकर उस साधु का जन वेष छीन ले, तत्र गुरु महाराज स्यान्नर्दिनिद्रावान् प्रमत्तपाराश्रिक साधु को इस प्रकार उपदेश दे—आज से तुम स्थूलप्राणातिपातविरमणरूप श्रावक धर्म को स्वीकार करो । यदि तुम इसका आचरण करने में असमर्थ हो तो तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व को स्वीकार करो । इस प्रकार उपदेश देने पर भी यदि

छोड़ छे जेवा साधुने गुडमहाराज आ प्रभावे कहे—“सौम्य! तु साधुवेष छोड़ी हे, डेभडे ताराभा चारित्रने अभाव छे गुड तरक्षी आ प्रदारे भरल लावे कहेवाभा आवता जे ते साधुवेषने परित्याग करी हे तो साधु छे, नहि तो मद्य भजीने तेने साधुवेष छीनवी जेवा, अकेलाअे नहि डेभडे साधुवेष छीनवी जेती वभते ते साधुने द्वेष उत्पन्न थसे, अने द्वेषवाणे ते साधु मनुष्यनी हिंसा पण करी शडे छे जेवा साधुने इरीने दीक्षा देवाती नथी जे अतिशय ज्ञानवान् गुडने जेवा अनुभव थाय जे आ प्रकृतिलभद्रक छे, हुवे जेने स्यान्नर्दिनिद्रा आदि नहि थाय तो गुड ते साधुने पाराश्रिकार्हं प्रायश्चित्त हथने इरीने दीक्षा आपे सद्य भजीने ते साधुने न्यारे वेष छीनवी जे त्याजे गुडमहाराज स्यान्नर्दिनिद्रावान् प्रमत्तपाराश्रिक साधुने आ प्रदारे उपदेश आपे—आजथी तु स्थूलप्राणातिपातविरमणरूप श्रावक धर्मने स्वीकार कर जे तु तेनु आचरण करवाभा अत्रमर्थ छेय तो तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्वने स्वीकार कर आ प्रदारे उपदेश देवा छता पण

से किं तं विणए ? विणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा-

गच्छन्नि सारितोऽम्भीलशुभो भाव स्वप्नतरोऽपि न विद्यते स एवविधगुणसम्पन्न
। पाराश्रिक प्रायश्चित्तं कर्तुमर्हति । यस्त्वेतद्गुणरहितस्तस्य पाराश्रिकापत्तिं प्राप्तस्य मूलमेव
यश्चित्तं भवति ।

आशातनापाराश्रिको जघन्येन पण्मासान्, उत्कर्षतश्च द्वादश मामान् भवति, एतावन्त
ल गच्छन्निर्यूढ (निष्काशित) स्तिष्ठति । प्रतिसेवनापाराश्रिको जघन्येन ममसरमुत्कर्षतो
। दश वर्षाणि निर्यूढ आस्ते । विस्तरस्तु—अन्यत्र द्रष्टव्य । ‘से त पायच्छित्ते’ तदेत-
त्प्रायश्चित्तम् ।

‘से किं तं विणए’ अथ कोऽसौ विनय ? विनय किंस्वरूप इति प्रश्न ।
उत्तरमाह—‘विणए’ विनय—विनयति—अपनयति अष्टविधकर्मार्णोति विनय = अभ्युत्थानप्रन्दन-

गया हैं’ यह अशुभ भाव अणुमात्र भी न हो, इस प्रकार के गुणों से युक्त ही साधु पारा-
श्रिक प्रायश्चित्त का अधिकारी है । जो साधु इन गुणों से रहित है, उससे पाराश्रिकार्ह
प्रायश्चित्त योग्य अपराध हो गया है, उसको मूलार्ह प्रायश्चित्त ही दिया जाता है ।

आशातनापाराश्रिक साधु जघन्य से छ मास तक और उत्कर्ष से बारह मास-
तक गच्छ से वहिष्कृत रहता है । प्रतिसेवनापाराश्रिक साधु जघन्य से एक वर्ष और
उत्कर्ष से बारह वर्ष गच्छ से वहिष्कृत रहता है । इसका विस्तृत वर्णन अन्यत्र देरना
चाहिये । (से त पायच्छित्ते) ये दस प्रकार के प्रायश्चित्त है ॥ सू० ३० ॥

(से किं तं विणए) विनय का क्या स्वरूप है? (विणए सत्तविहे
पण्णत्ते) विनय सात प्रकार का है । जो अष्टविध कर्मों को दूर करता है, वह विनय है ।

माथी डाढेला छता पण्णेना भनभा ‘हु गच्छथी णडिष्कार पाभेतो छु’
अे अशुभ लाव अल्लुमात्र पण्ण न होय, अे प्रदरना शुष्णोवाणे न साधु
पाराश्रिक प्रायश्चित्तने अधिकारी छे न साधु अे शुष्णोथी रहित छे तेनाथी
पाराश्रिकार्ह प्रायश्चित्त योग्य अपराध थर्ध गयो होय तो तेने मूलार्ह प्राय-
श्चित्त न अपाय छे आशातनापाराश्रिक साधु जघन्यथी छ मास सुधी
अने उत्कर्षथी णार मास सुधी गच्छथी णडिष्कृत रहे छे प्रतिसेवना-
पाराश्रिक साधु जघन्यथी अेऽ वर्ष अने उत्कर्षथी णार वर्ष सुधी गच्छथी
णडिष्कृत रहे छे तेनु विस्तृत वर्णन नीनेथी नेध लेवु नेध अे (से तं-
पायच्छित्ते) आ दश प्रदरना प्रायश्चित्त छे (सू० ३०)

(से किं तं विणए) विनय तपनु स्वइप शु छे? उत्तर—(विणए सत्तविहे पण्णत्ते) ते सात

यस्तु साधु कर्मदोषात् पाराश्रिकपत्तियोग्यात् उक्लृष्टमपराधपद प्राप्त , स यदि भद्रक 'पुनरेव न करिष्यामी'-ति व्यवसितस्तदा स तप पाराश्रिक -अर्थात् तप समाराधन-तत्पर पाराश्रिक क्रियते । तस्य तप ऋगयोग्यता यथा भवति तदुच्यते-वज्ररूपमनाराच सहनन, वज्रकुडचसमान वीर्यं, सागरवदगम्भीरता, मेरुवद्भीरता, आगमज्ञान-जघन्येन नवम-पूर्वान्तर्गतमाचाराख्य तृतीय वस्तु, उरुर्पतो दशमपूर्वं मपूर्णं, तच्च सूत्रतोऽर्थतश्च यदि परिचित भवति । एतै सहननादिभि सम्पन्न, तथा सिंहविक्रीडितादितप कर्मभावित, इन्द्रिय-कषायाणा निग्रहे समर्थ, प्रवचनरहस्यार्थज्ञानसम्पन्नश्च, तथा गच्छन्नि सारितस्यापि यस्य

नहीं छीना जाता है । विषयदुष्ट से भिन्न जो ऋपायदुष्ट, प्रमत्त और अन्योऽन्यनुर्वाण हैं, ये तीन नियमत लिङ्गपाराश्रिक क्रिये जाते हैं, अर्थात् इनका साधुवेप ले लिया जाता है ।

जिस दुष्कर्म से साधु पाराश्रिक होता है, उस दुष्कर्म के कारण जो साधु उक्लृष्ट अपराधी हो गया हो, वह साधु यदि भद्रक हो और वह ऐसा नियम करे कि "मै अब फिर कभी भी ऐसा नहीं करूँगा " तब वह साधु तप पाराश्रिक क्रिया जाता है, अर्थात् उससे पाराश्रिक तप कराया जाता है । पाराश्रिक तप करने की योग्यता जैसे होती है सो कहते हैं-जो साधु वज्र-रूपम-नाराच-महननवाला हो, वज्र की भीत के समान दृढ जिसका वीर्य=परा-क्रम हो, समुद्र के समान जिसमें गाम्भीर्य हो, मेरु के समान जिसमें धीरता हो, तथा जो आगम को जानने वाला हो अर्थात् जघन्य से नवमपूर्वान्तर्गत आचाराख्य तृतीय वस्तु को, उक्लृष्ट से सम्पूर्ण दशम पूर्व को सूत्र से और अर्थ से जानने वाला हो, सिंहविक्रीडित आदि तप कर चुका हो, इन्द्रिय और ऋपायों के निग्रह करने में समर्थ हो, प्रवचन के गूढार्थ को जानने वाला हो, गच्छ से निकाले जाने पर भा जिसके मनमें 'मै गच्छ से निकाल

ने दुष्कर्मथी साधु पाराश्रिक थाय छे ते दुष्कर्मना डारण्णे ने साधु उक्लृष्ट अपराधी थयो डोय ते साधु ने प्रकृतिलद्रक डोय अने ने ते अेवी प्रतिज्ञा करे के 'हु डवे इरीने ठही आवु नडि ठइ' तो ते साधु तप पाराश्रिक कराय छे, अर्थात् तेनी पासे पाराश्रिक तप कराववाभा आवे छे पाराश्रिक तप करवानी योग्यता उेवी डोय ते उडे छे-ने साधु वज्ररूपमनाराच-सहननवाणा डोय, वज्रनी लीतना नेवा दढ नेतु वीर्य-पराक्रम डोय, समुद्रनी नेम नेनाभा गालीर्य डोय, मेरुनी पेठे नेनाभा धीरता डोय, तथा ने आगमने लक्षुवावाणा डोय अर्थात् जघन्यथी नवमपूर्वगत आचाराख्य त्रील वस्तुने, उक्लृष्टथी स पूर्ण दशम पूर्वने सूत्रथी तथा अर्थथी लक्षु-नारा डोय, सिंहविक्रीडित आदि तप ठरी चूकया डोय, इन्द्रिय अने कषायेना निग्रह करवामा समर्थ डोय, प्रवचनना गूढार्थने लक्षुवावाणा डोय, गच्छ

से किं तं विणए ? विणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा-

गच्छन्ति सामितोऽस्मीत्यशुभो भाव स्वल्पतरोऽपि न विद्यते स एवविप्रगुणसम्पन्नपाराश्रिक प्रायश्चित्तं कर्तुमर्हति । यस्त्वेतद्गुणरहितस्तस्य पागाश्रिकापत्तिं प्राप्तस्य मूलमेव धत्त भवति ।

आशातनापाराश्रिको जघन्येन पण्णामान्, उत्कर्षतश्च द्वादश मामान् भवति, एतान्तच्छान्तिर्युद्ध (निष्काशित) स्तिष्ठति । प्रतिसेवनापाराश्रिको जघन्येन ममसरमुत्कर्षतो द्वादश वर्षाणि निर्युद्ध आस्ते । विस्तरस्तु—अन्यत्र द्रष्टव्य । 'से त पायच्छित्ते' तदेतत्प्रायश्चित्तम् ।

'से किं त विणए' अथ कोऽसौ विनय ' विनय किंस्वरूप इति प्रश्न । उत्तरमाह—'विणए' विनय—विनयति—अपनयति अष्टविधकर्मार्णोति विनय =अभ्युपानवन्दन-

गया ह्ये' यह अशुभ भाव अणुमात्र भी न हो, इस प्रकार के गुणों से युक्त ही साधु पाराश्रिक प्रायश्चित्त का अधिकारी है । जो साधु इन गुणों से रहित है, उससे पाराश्रिकार्ह प्रायश्चित्त योग्य अपराध हो गया है, उमको मूलार्ह प्रायश्चित्त ही दिया जाता है ।

आशातनापाराश्रिक साधु जघन्य से छ मास तक और उत्कर्ष से बारह मास तक गच्छ से वहिष्कृत रहता है । प्रतिसेवनापाराश्रिक साधु जघन्य से एक वर्ष और उत्कर्ष से बारह वर्ष गच्छ से वहिष्कृत रहता है । इसका विस्तृत वर्णन अन्यत्र देखना चाहिये । (से त पायच्छित्ते) ये दस प्रकार के प्रायश्चित्त है ॥ सू० ३० ॥

(से किं त विणए) विनय का क्या स्वरूप है? (विणए सत्तविहे पण्णत्ते) विनय सात प्रकार का है । जो अष्टविध कर्मों को दूर करता है, वह विनय है ।

माथी डाढेला छता पणु नेना मनमा 'हु गच्छथी अहिष्कार पाभेदो छु' अथ अशुभ लाव अणुमात्र पणु न होय, अथ प्रदरना शुद्धोवाणे न साधु पाराश्रिक प्रायश्चित्तने अधिकारी छे ने साधु अथ शुद्धोथी रहित छे तेनाथी पाराश्रिकाह प्रायश्चित्त योग्य अपराध धर्ष गयो होय तो तेने मूलाह प्रायश्चित्त न अपाय छे आशातनापाराश्रिक साधु जघन्यथी छ मास सुधी अने उत्कर्षथी पार मास सुधी गच्छथी अहिष्कृत रहे छे प्रतिसेवनापाराश्रिक साधु जघन्यथी अठ वर्ष अने उत्कर्षथी पार वर्ष सुधी गच्छथी अहिष्कृत रहे छे तेनु विस्तृत वर्णन नीचेथी लेख लेवु लेख अथ (से त पायच्छित्ते) आ दश प्रकारना प्रायश्चित्त छे (सू० ३०)

(से किं त विणए) विनय तपनु स्वरूप शु छे? उत्तर—(विणए सत्तविहे पण्णत्ते) ते मात

यस्तु साधु कर्मदोषात् पाराशिकापत्तियोग्यात् उच्छ्रुतमपराधपद प्राप्त., स यदि भद्रक 'पुनरेव न करिष्यामी'-ति व्यवसितस्तदा स तप पाराशिक-—अर्थात् तप समागमन-त्त्पर पाराशिक क्रियते। तस्य तप ऋगयोग्यता यदा भवति तदुच्यते—वज्ररूपमनाराच सहनन, वज्रकुड्यसमान वीर्य, सागरवदगम्भीरता, मेरुवद्भीरता, आगमज्ञान—जघन्येन नवम-पूर्वान्तर्गतमाचाराख्य तृतीय वस्तु, उत्कर्षतो दशमपूर्व सम्पूर्ण, तच्च सूत्रतोऽर्थतश्च यदि परिचित भवति। एतै महननादिभि सम्पन्न, तथा सिंहविक्रीडितादितप कर्मभाषित, इन्द्रिय-कषायाणा निग्रहे समर्थ, प्रवचनरहस्यार्थज्ञानसम्पन्नश्च, तथा गच्छन्ति सारित्त्यापि यस्य

नहीं छीना जाता है। विषयदुष्ट से भिन्न जो कषायदुष्ट, प्रमत्त और अन्योऽन्यकुर्वाण हैं, ये तीन नियमत लिङ्गपाराशिक क्रिये जाते हैं, अर्थात् इनका साधुवेष ले लिया जाता है।

जिस दुष्कर्म से साधु पाराशिक होता है, उस दुष्कर्म के कारण जो साधु उत्कृष्ट अपराधी हो गया हो, वह साधु यदि भद्रक हो और वह ऐसा नियम करे कि "मैं अब फिर कभी भी ऐसा नहा करूँगा" तब वह साधु तप पाराशिक किया जाता है, अर्थात् उससे पाराशिक तप कराया जाता है। पाराशिक तप करने की योग्यता जैसे होती है सो कहते हैं—जो साधु वज्र-रूपम-नाराच-महननवाला हो, वज्र की भाँति के समान दृढ जिसका वीर्य=परा-क्रम हो, समुद्र के समान जिसमें गम्भार्य हो, मेरु के समान जिममें धीरता हो, तथा जो आगम को जानने वाला हो अर्थात् जघन्य से नवमपूर्वान्तर्गत आचाराख्य तृतीय वस्तु को, उत्कृष्ट से सम्पूर्ण दशम पूर्व को सूत्र से और अर्थ से जानने वाला हो, सिंहविक्रीडित आदि तप कर चुका हो, इन्द्रिय और कषायों के निग्रह करने में समर्थ हो, प्रवचन के गूढार्थ को जानने वाला हो, गच्छ से निकाले जाने पर भा जिसके मनमें 'मैं गच्छ से निकाल

ने दुष्कर्मधी साधु पाराशिक थाय छे ते दुष्कर्मना क्षरणे ने साधु उत्कृष्ट अपराधी थये होय ते साधु ने प्रकृतिवद्रक होय अने ने ते ज्येवी प्रतिज्ञा करे के 'हु छवे इरिने उही आधु नहि कइ' तो ते साधु तप पाराशिक कराय छे, अर्थात् तेनी पाने पाराशिक तप कराववाभा आवे छे पाराशिक तप करवानी योग्यता जेवी होय ते उछे छे—ने साधु वज्ररूपमनाराच-सहननवाणा होय, वज्रनी भीतना जेवा दृढ जेनु वीर्य-पराक्रम होय, समुद्रनी जेम जेनाभा गालीर्य होय, मेरुनी चठे जेनाभा धीरता होय, तथा ने आगमने लक्षणावाणा होय अर्थात् जघन्यथी नवमपूर्वगत आचा-राख्य त्रीण वस्तुने, उत्कृष्टथी न पूर्ण दशम पूर्वने सूत्रथी तथा अर्थथी लक्षु-नारा होय, सिंहविक्रीडित आदि तप कजी चूक्या होय, छद्रिय अने कषायोना निग्रह करवाभा समर्थ होय, प्रवचनना गूढार्थने लक्षणावाणा होय, गच्छ

मणपञ्चवर्णाणविणए ४, केवलणाणविणए ५। मे किं तं दंसण-
विणए ? दसणविणए दुविहे पणत्ते तं जहा-सुस्सूसणाविणए १,
अणच्चासायणाविणए २। से किं तं सुस्सूसणाविणए ? सुस्सू-

विणए' श्रुतज्ञानविनय, 'ओद्धिणाणविणए' अविज्ञानविनय 'मणपञ्चवर्णाण-
विणए' मन पर्ययज्ञानविनय, 'केवलणाणविणए' केवलज्ञानविनय । अथ दर्शनविनय
पृच्छति—'मे किं तं दसणविणए' अथ कोऽमौ दर्शनविनय 'दसणविणए' दर्शन-
विनय—दर्शनमोहनीयभयात्त्रिजनिस्तत्त्वश्रद्धानरूप आमपरिणामो दर्शन, तन्मन्त्रा विनय
दर्शनविनय, स 'दुविहे पणत्ते' द्विविध प्रज्ञा, द्वैविध्य दर्शयति—'त जहा तथा—
'सुम्मसणाविणए' शुश्रूषणाविनय—विभिन्नसामान्येन गुणैरे सेन शुश्रूषणा, तद्रूपो
विनय । 'अणच्चासायणाविणए' अनयाशातनाविनय—'अति=ज्जात, आय =
सम्यक्त्वान्तिष्ठाम—अत्याय, तस्य शातना=व्यसना—अयाशातना, तन्निपेधरूपो विनयोऽनया-
शातनाविनय, गुणैर्गवर्गवादादिनिरागमम् । प्रपौडगदिन्वासिद्धि ।

णाणविणए, ओद्धिणाणविणए मणपञ्चवर्णाणविणए केवलणाणविणए) अभिनिवोधिक-
ज्ञानविनय, श्रुतज्ञानविनय, अविज्ञानविनय, मन पर्ययज्ञानविनय, एव केवलज्ञानविनय ।
(से किं तं दसणविणए) दर्शनविनय कितने प्रकार का है ? (दसणविणए
दुविहे पणत्ते) दर्शनविनय दो प्रकार का है । (त जहा) वे प्रकार ये हैं—(सुम्मसणा-
विणए अणच्चासायणाविणए) पहला—शुश्रूषाविनय—गुरु आदि के समीप रह कर विप्रि-
पर्वक सेवा करना । दूसरा—अनयाशातनाविनय—सम्यक्वादि के लाम को जो नष्ट करता
है वह अनयाशातना है, उसका निपेधरूप जो विनय है वह अनयाशातनाविनय है । गुरु
आदि के अवर्गवाद को दूर करना—निरागण करना, उसका नाम अनयाशातनाविनय है ।

मणपञ्चवर्णाणविणए, केवलणाणविणए) १ आभिनिवोधिकज्ञानविनय, २ श्रुतज्ञान
विनय, ३ अविज्ञानविनय, ४ मन पर्ययज्ञानविनय, ५ केवलज्ञानविनय
प्रश्न—(से किं तं दसणविणए) दर्शनविनय कितने प्रकार का है ? उत्तर—(दसण-
विणए दुविहे पणत्ते) दर्शनविनय दो प्रकार का है, (त जहा) वे
छे—(सुम्मसणाविणए अणच्चासायणाविणए) पहले—शुश्रूषाविनय—गुरु आदिनी
पाने उद्धीने विधिपूर्वक सेवा करनी, भीने अनत्याशातनाविनय—सम्यक्त्व
आदिना लाभने के नाश के छे ते अनत्याशातना छे, तेना निपेधश्च ते
विनय छे ते अनत्याशातनाविनय छे गुरु आदिना अवर्णवाहने इह कव्ये—तेनु
निवाणु उरु तेनु नाम अनत्याशातनाविनय छे प्रश्न—(से किं तं सुम्मसणा

णाणविणए १, दंसणविणए २, चरित्तविणए ३, मणविणए ४, वयविणए ५, कायविणए ६, लोगोवय्यारविणए ७ । से किं तं णाणविणए ? णाणविणए पंचविहे पणत्ते, तं जहा- आभिणि- वोहियणाणविणए १, सुयणाणविणए २, ओहिणाणविणए ३,

भक्त्यादिरूप, स 'सत्तत्रिहे पणत्ते' सप्तत्रिध प्रज्ञप । 'त जहा' तद्यथा-१-'णाणविणए' ज्ञानविनय, २-'दसणविणए' दर्शनविनय, ३-'चरित्तविणए' चारित्रविनय, ४ 'मणोविणए' मनोविनय, ५-'वइविणए' वाग्विनय, ६ 'कायविणए' काय विनय, ७-'लोगोवय्यारविणए' लोकोपचारविनय । एष सप्तत्रिणोऽपि विनय क्रमेण स्वरूपतो भेदतश्च निरूप्यते-'से किं त णाणविणए' अथ कोऽसौ ज्ञानविनय ? उत्तरमाह-

'णाणविणए' ज्ञानविनय 'पचविहे पणत्ते' पञ्चत्रिध प्रज्ञप्त, 'त जहा' तद्यथा- तत्पञ्चत्रिधत्व दर्शयति-'आभिणिवोहियणाणविणए'आभिनित्रोधिकज्ञानविनय, 'सुयणाण- यह विनय गुरु आदि के आने पर रूडे हो जाना, तथा वदना, शुश्रूषा, भक्ति आदि करना, इस रूप से गालों में प्रतिपादित किया गया है । (त जहा) विनय के सात प्रकार ये हे-(णाण- विणए, दंसणविणए, चरित्तविणए, मणविणए, वइविणए, कायविणए, लोगोवय्यारविणए) ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय, मनोविनय, वचनविनय, कायविनय, और लोकोप- चारविनय । अत्र यथाक्रम इनके स्वरूप और भेदों का वर्णन सूत्रकार करते हैं-(से किं त णाणविणए) वह ज्ञानविनय क्या है 'अर्थात् जिसमें ज्ञान का विनय किया जाता है' ऐसा वह ज्ञानविनय कितने प्रकार का है, (णाणविणए पचविहे पणत्ते) ज्ञानविनय पांच प्रकार का कहा है । (त जहा) वे पांच प्रकार ये हैं-(आभिणिवोहियणाणविणए, सुय-

प्रकारना छे जे आठ वतना उमेने इर करे छे ते विनय छे आ विनय तप, शुद्धि आदि पधारता उला थध जपु, तथा वदना, शुश्रूषा आदि करवा, जे रूपे शास्त्रोभा प्रतिपादन क्युं छे (त जहा) विनय तपना ते सात प्रकार आ छे-(णाणविणए दसणविणए चरित्तविणए मणविणए वयविणए कायविणए लोगोवय्यारविणए) १ ज्ञानविनय, २ दर्शनविनय, ३ चारित्रविनय, ४ मनोविनय, ५ वचनविनय, ६ काय विनय, अने ७ लोकोपचारविनय छे तेनु कभवार स्पष्ट तथा प्रकारानुवर्धन सूत्रकार करे छे-(से किं त णाणविणए) ते ज्ञानविनय शु छे ? , अर्थात् जेभा ज्ञानने विनय कराय छे जेवे ते ज्ञानविनय डेटला प्रकारने छे ? (णाणविणए पचविहे पणत्ते) ज्ञानविनय पाच प्रकारने उडेले छे (त जहा) ते पाच प्रकार आ छे-(आभिणिवोहियणाणविणए, सुयणाणविणए, ओहिणाणविणए,

स्स अणुगच्छणया ८, ठियस्स पज्जुवासणया ९, गच्छंतस्स पडि-
संसाहणया १०, से तं सुस्ससणाविणए । से किं त अणच्चासाय-
णाविणए ? अणच्चासायणाविणए पणयालीसविहे पणत्ते, तं जहा-
अरहंताणं अणच्चासायणया १, अरहंतपणत्तस्स धम्मस्स अण-

‘अजलिप्पगहे इ वा’ अजलिप्रग्रह इति वा—अजलिप्रग्रह=गुरुमुने अजलौकर-
णम् । ७। ‘एतस्स अणुगच्छणया’ आगच्छतोऽनुगमनता—गुणात्क्रिम आयात्त प्रति म्मुत्ते
गमनम् । ८। ‘ठियस्स पज्जुवासणया’ स्थित्त्य पर्युपामनता—उपविष्टस्य गुणदिरिच्छानु-
कूलसेवा । ९। ‘गच्छंतस्स पडिससाहणया’ गच्छत प्रतिग्राहयन्ता—गच्छतो गुणदि-
पचाद् गमनशीलता । १०। ‘से तं सुस्ससणाविणए’ स एव शुश्रूषणाविनय । अनत्यागा-
तना पृच्छति—‘से किं त अणच्चासायणाविणए’ अथ कोऽसौ अनत्यागतनाविनय ।
‘अणच्चासायणाविणए’ अनत्यागतनाविनय—‘पणयालीसविहे पणत्ते’ पञ्च परि-
शद्विध प्रज्ञम् । ‘त जहा’ तद्यथा—‘अरहंताण अणच्चासायणया’ अर्हतामनत्यागतनता—

दिकों की सविधि वन्दना करना (६) । (अजलिप्पगहे इ वा) गुरु के सन्मुख गनों हाथ
जोड़ना (७) । (एतस्स अणुगच्छणया) गुवात्तिक आ रहे हाँ तो उनके सन्मुख जाना
(८) । (ठियस्स पज्जुवासणया) जत्र वे बैठे हाँ तो उनकी उच्छ्रानुकूल सेवा करना
(९) । (गच्छंतस्स पडिससाहणया) जत्र वे जाने लगे तो उनके पाठे २ चरना (१०) ।
(से तं सुस्ससणाविणए) यह सब शुश्रूषणाविनय है । (से किं त अणच्चासायणावि-
णए) अनत्यागतनाविनय कितने प्रकार का है ? (अणच्चासायणाविणए पणया-
लीसविहे पणत्ते) अनत्यागतनाविनय पैतालीस प्रकार का है, (त जहा) वे प्रकार
ये हैं—(अरहंताणं अणच्चासायणया) अर्हंत भगवान् का अर्पणार्थ आदि नहीं करना (१),

स्मे इ वा) यथाविधि व दना ४२वीं ओ कृतिऽर्भं छे, अथात् शुभु आदिडोनी सविधि
व दना ४२वीं (६) (अजलिप्पगहे इ वा) शुभुनी आमे ष ने हाथ जोडवा (७)
(एतस्स अणुगच्छणया) शुभु आदि पधारता डोय त्यारे तेमनी सामे ७पु (८)
(ठियस्स पज्जुवासणया) न्यारे तेओ जेडा डोय त्यारे तेमनी धन्धाने अनुकूल
सेवा ४२वीं (९) (गच्छंतस्स पडिससाहणया) न्यारे तेओ जवा लागे त्यारे तेमनी
पाछण पाछण आसु (१०) (से तं सुस्ससणाविणए) ओ षधा शुश्रूषणाविनय छे
प्रश्न—(से किं तं अणच्चासायणाविणए) अनत्यागतनाविनय डेटला प्रजारने छे ?
उत्तर—(अणच्चासायणाविणए पणयालीसविहे पणत्ते) अनत्यागतना विनय पिसता-
लीस प्रजारने छे, (त जहा) ते प्रकार था छे—(अरहंताण अणच्चासायणया) अर्हं त

सणाविणए अणेगविहे पणत्ते; तं जहा—अब्भुट्टाणे इ वा १,
 आसणाभिग्गहे इ वा २, आसणप्पदाणे इ वा ३, सक्कारे इ वा ४,
 सम्माणे इ वा ५, किङ्कम्मे इ वा ६; अंजलिप्पग्गहे इ वा ७, एत-

‘से किं त सुस्सुसणाविणए’ अय कोऽसौ शुश्रूषणाविनय —‘सुस्सुसणाविणए’
 शुश्रूषणाविनय ‘अणेगविहे पणत्ते’ अनेकविध प्रज्ञान —‘त जहा’ तद्यथा—‘अब्भुट्टाणे इ वा’
 अभ्युत्थानमिति वा, ‘इति’ ‘वा’ इति पदद्वय वाक्यालङ्कारे, ण्वमप्रेऽपि बोध्यम् । अभ्युत्थानम्—
 आचार्यादिरागतस्य अभिमुखम्—नत्थानम् अभ्युत्थानम्—विनयाऽर्हस्य दर्शनादेवाऽऽसनयाग । १।
 ‘आसणाभिग्गहे इ वा’ आसनाभिग्रह इति वा, आसनाभिग्रह—गुर्वादिर्यत्र यत्रोपवेष्टुमिच्छति
 तत्र तत्राऽऽसनप्रापणम् । २। ‘आसणप्पदाणे इ वा’ आसनप्रदान मिति वा, गुरो समागते सति
 आसनदानम् । ३। ‘सक्कारे इ वा’ सत्कार इति वा—विनयाऽर्हस्य गुवादि वन्दनादिनाऽऽदरकरण-
 सत्कार । ४। ‘समाणे इ वा’ सम्मान इति वा, ममानो वा—गुवादि आहारवत्त्वादिप्रगस्त-
 वस्तुना समानम् । ५। ‘किङ्कम्मे इ वा’ कृत्तिकर्म इति वा—कृत्तिकर्म=यथाविधि वन्दनम् । ६।

(से किं त सुस्सुसणाविणए) शुश्रूषणाविनय कितने प्रकार का है ? (सुस्सुसणाविणए अणे-
 गविहे पणत्ते) शुश्रूषणाविनय अनेक प्रकार का है, (त जहा) जैसे—(अब्भुट्टाणे इ वा) आये
 हुए आचार्य आदि के आने पर खड़े होना । विनय के योग्य साधुजन को देखते ही आसन का
 परित्याग करना (१) । (आसणाभिग्गहे इ वा) गुर्वादिक जहा २ बैठना चाहें वहा २ आसन
 लेकर उपस्थित रहना, अथवा आसन पहुँचाना (२) । (आसणप्पदाणे इ वा) गुरुके आने पर
 आसन प्रदान करना (३) (सक्कारे इ वा) विनययोग्य गुर्वादिक का वन्दना आदि द्वारा सत्कार
 करना (४) । (समाणे इ वा) गुर्वादिकों का आहार, वत्त्वादि प्रगस्तवस्तुओं द्वारा समान
 करना (५) । (किङ्कम्मे इ वा) यथाविधि वन्दना करना यह कृत्तिकर्म है, अर्थात्—गुर्वा-

विणए) शुश्रूषणाविनय डेटला प्रकारने छे ? (सुस्सुसणाविणए
 अणेगविहे पणत्ते) शुश्रूषणाविनय अनेक प्रकारने छे, (त जहा) जेभ डे—(अब्भु
 ट्टाणे इ वा) अडी “इ” “वा” ओ जे शब्दो वाक्यालङ्कारमा वपराया छे पधा
 रेला आचार्य आदिनी सामे ज्जु, विनयने योग्य साधुजनोने जेतो ज्ज आसनने
 परित्याग करवो (१) (आसणाभिग्गहे इ वा) शुरु आदिठ न्या न्या जेसवा थाडे
 त्या त्या आसन लधने डाज्ज रडेवु, अथवा आसन पडोथाडवु (२) (आसणप्प-
 दाणे इ वा) शुरु आवे त्यारे आसन प्रदान करवु (३) (सक्कारे इ वा) विनय योग्य
 शुरु आदिठने वदना आदि द्वारा सत्कार करवो (४) (समाणे इ वा) शुरु
 आदिठनु आहार—वत्त्वादि प्रगस्त वस्तुओंथी सम्मान करवु (५) (किङ्क-

१२, ओहिणाणस्स १३, मणपज्जवणाणस्स १४, केवलणाणस्स
१५, एएसिं चैव भत्तिवहुमाणे ३०, एएसिं चैव वण्णसंजलणया
४५, से तं अणच्चासायणाविणए । से किं तं चरित्तविणए ?

‘ओहिणाणस्स’ अधिज्ञानस्य । १३। ‘मणपज्जवणाणस्स’ मन पर्यवज्ञानस्य । १४।
‘केवलणाणस्स’ केवलज्ञानस्य । १५। ‘एएसिं चैव भत्तिवहुमाणे’ एतेषाञ्चैव भक्तिवहु-
मानम्—भक्तियुक्त बहुमानम् ‘अरहताण’ इत्यारभ्य ‘केवलणाणस्स’ इति—पर्यन्तानामनया-
शातनता पञ्चदशविधा, पुनरेतेषामेव अर्हदादीना भक्तिवहुमानयोगे त्रिद्विधचम् । पुन—‘ए-
एसिं चैव वण्णसंजलणया’ एतेषामेव वर्णमन्वजनता=सद्भूतगुणोत्कीर्तनता, अत्रेद
बोध्यम्—अनयाशातनाविनयो हि पञ्चचचारिणद्विध प्रोक्त, तत्र—अर्हदादिप्रिनया पञ्चदश,
अर्हदादिभक्तिवहुमानानि पञ्चदश, अर्हदादीना वर्णमन्वजनताञ्च पञ्चदश, तद्विधमनयाशा-
तनाविनय पञ्चचचारिणद्विध इति । उपन्हरन्नाह—‘से त अणच्चासायणाविणए’ स एषोऽ
नयाशातनाविनय । इति । ‘से किं त चरित्तविणए ?’ अथ कोसौ चारित्र-

(१२), (ओहिणाणस्स) अधिज्ञान का (१३), (मणपज्जवणाणस्स) मन पर्यवज्ञान
का (१४) और (केवलणाणस्स) केवलज्ञान का अवर्णवाद नष्ट करना (१५)। (एएसिं
चैव भत्तिवहुमाणे) तथा इन्हीं पन्द्रह भेदों का भक्तिपूर्वक बहुमान करना । इस प्रकार
इन पन्द्रह भेदों को भक्तिवहुमान क साथ द्विगुणित करने से तीस भेद हो जाते हैं ।
पुन (एएसिं चैव वण्णसंजलणया) इन्हा के सद्भूत गुणों का उत्कीर्तन करना । इस
तरह तीस में पन्द्रह वर्णमन्वजनता मिलाने से पैतालस भेद अनयाशातनाविनय के होते हैं ।
इस प्रकार (से त अणच्चासायणाविणए) यह सत्र अन्त्याशातनाविनय है ।
प्रश्न—(से किं त चरित्तविणए) चारित्रविनय कितने प्रकार का है ? उत्तर—(चरित्त-

(१०), (ओहिणाणस्स) अधिज्ञानने। (१३), (मणपज्जवणाणस्स) मन पर्यवज्ञानने।
(१४), अने (केवलणाणस्स) केवलज्ञानने अवर्णवाद न भोलेवे। (१५) (एएसिं चैव
भत्तिवहुमाणे) तथा आ ७ प ६२ प्रकारेणु लक्षितपूर्वक बहुमान करवा ये प्रकारे
प ६२ प्रकारेणु लक्षितबहुमाननी साथे जमणु करवाथी तीस प्रकार थई
अथ छे वणी (एएसिं चैव वण्णसंजलणया) तेभना सद्भूत गुणोनु उत्कीर्तन
करवु ये रीते तीस भा प ६२ वर्णमन्वजनता जेणववाथी पिसतालीस प्रकार
अनत्याशातनाविनयना साथ छे (से त अणच्चासायणाविणए) आ प्रकारे ये अथा
अनत्याशातनाविनय छे प्रश्न—(से किं त चरित्तविणए) चारित्रविनय—केटला
प्रकारेणु छे ? उत्तर—(चरित्तविणए पचविहे पण्णत्ते) चारित्रविनय पाथ प्रकारेणु

चासायणया २, आयरियाणं अणचासायणया ३, एवं उवज्जायाणं ४, थेराणं ५, कुलस्स ६, गणस्स ७, संघस्स ८, किरियाणं ९, संभोगस्स १०, आभिणित्रोहियणाणस्स ११, सुयणाणस्स

अर्हदभगनतामवर्णनादादिनिवारणम् । १। 'अरहतपणत्तस्स धम्मस्स अणचासायणया' अर्हप्रज्जस्य धर्मस्य अनत्यागातनता—सर्वजकथितधर्मस्थाऽवर्णनादादिनिवारणम् । २। 'आयरियाण अणचासायणया' आचार्याणामनयागातनता । ३। एवम्—'उवज्जायाणं' उपाध्यायानाम् । ४। 'थेराण' स्थविराणाम् । ५। 'कुलस्स' कुलस्य—एकाचार्यसन्ततिरूपस्य समानाऽऽचारस्ताधुसमूहस्य । ६। 'गणस्स' गणस्य—परस्परसापेक्षाऽनेककुलताधुसमुदायस्य । ७। 'संघस्स' संघस्य—सम्यग्दर्शनादियुक्तसाधुसाध्वीश्रावकश्रानिकारूपस्य । ८। 'किरियाण' क्रियाणाम्—ईर्यापथिकादीनाम् । ९। 'संभोगस्स' सम्भोगस्य—सम्भोगो=भोजन—भोग—समानसामाचारी तथा साधूना परस्परमुपध्यादिदानग्रहणमन्यवहारस्तस्य, एकसामाचारिकताया इत्यर्थः । १०। 'आभिणित्रोहियणाणस्स' अभिनित्रोधिकज्ञानस्य । ११। 'सुयणाणस्स' श्रुतज्ञानस्य । १२।

(अरहतपणत्तस्स धम्मस्स अणचासायणया) अर्हत् भगवान् द्वारा प्रजप्त धर्मका अवर्णवाद आदि नहीं करना (२), (आयरियाण अणचासायणया) आचार्य महाराज का अवर्णवाद नहीं करना (३), इसी तरह (उवज्जायाणं) उपाध्याय का (४), (थेराण) स्थविरों का (५), (कुलस्स) एक आचार्य के सन्ततिरूप समान आचार वाले साधुओं के समूह का (६), (गणस्स) परस्पर मापेक्ष अनेककुल वाले साधुप्रदाय का (७), (संघस्स) सम्यग्दर्शन आदि से युक्त साधु, साध्वी, श्रावक, श्रानिकारूप संघ का (८), (किरियाण) ईर्यापथिक आदि क्रियाओं का (९), (संभोगस्स) भोग—एकसामाचारिकता का (१०), (आभिणित्रोहियणाणस्स) अभिनित्रोधिक ज्ञान का (११), (सुयणाणस्स) श्रुतज्ञान का

लगवानेने अवर्णवाद न होलवे (१), (अरहतपणत्तस्स धम्मस्स अणचासायणया) अर्हत् त लगवान द्वारा प्रजप्त धर्मने अवर्णवाद न होलवे (२), (आयरियाण अणचासायणया) आचार्य महाराजने अवर्णवाद न होलवे (३), ये रीते (उवज्जायाण) उपाध्यायने (४), (थेराण) स्थविरने (५), (कुलस्स) एक आचार्यना सन्ततिरूप समान आचारवाला साधुनेना समूहने (६), (गणस्स) परस्परमापेक्ष अनेक कुलवाला साधुस प्रदायने (७), (संघस्स) सम्यग्दर्शन आदिथी युक्त साधु—साध्वी—श्रावक—श्राविका रूप संघने (८), (किरियाण) ईर्यापथिक आदि क्रियाओने (९), (संभोगस्स) भोग—एकसामाचारिकताने (१०), (आभिनित्रोहियणाणस्स) आभिनित्रोधिक ज्ञानने (११), (सुयणाणस्स) श्रुतज्ञानने

छेदोपस्थापणियचरित्तविणए २, परिहारविशुद्धिचरित्तविणए ३,
सूक्ष्मसंपरायचरित्तविणए ४, अहकस्वायचरित्तविणए ५, से तं

नय । १। 'छेदोपस्थापणियचरित्तविणए' छेदोपस्थापनीयचाग्निप्रिनय - छेदेन=पूर्वपयाय-
छेदन उपस्थापयते=आरोग्यते यन्महान्नलक्ष्म चाग्नि तच्छेदोपस्थापनायम्, तच्च तच्चा
ग्नि च, तसम्बन्धा प्रिनय । २। 'परिहारविशुद्धिचरित्तविणए' परिहारविशुद्धि-
चारित्रिनय - परिहरण-परिहारस्तपाविशेष, तेन कर्मनिर्जरारूपा विशुद्धिर्यस्मिन् चारित्रे
तपरिहारविशुद्धि, तादृश चाग्नि, तसम्बन्धा प्रिनय । ३। 'सूक्ष्मसंपरायचरित्तविणए'
सूक्ष्मसंपरायचाग्निप्रिनय - सम्प्रथेति त्साग्निमनति सम्पराय =रूपायोदय, सूक्ष्मो लोभाशान-
शेष सम्परायो यत्र तसूक्ष्मसम्पराय, तद्रूप यच्चाग्नि, तसम्बन्धा प्रिनय, । ४। 'अह-
कस्वायचरित्तविणए' यथायथातचारित्रिनय - याथातथ्येनाऽभिप्रिधिना च यदाख्यात

कर पुन महाव्रतों का जिसम आगेपण क्रिया जाता है वह छेदोपस्थापनीयचारित्र है ।
इस चारित्रमधी जो प्रिनय है वह छेदोपस्थापनीयचारित्रप्रिनय है २। "परिहरण परिहारः"
परिहरण अर्थात् गच्छ का परित्याग करने का नाम परिहार है, यह परिहार एक प्रकार का
विशेष तप है । इससे कर्मों की निर्जरारूप विशुद्धि जिस चारित्र म होती है उसका नाम
परिहारविशुद्धिचारित्र है, इस चारित्रमधी जो प्रिनय है वह परिहारविशुद्धिचाग्निप्रिनय
है ३। 'संपराय' शब्द का अर्थ कषाय है, क्या कि इसाके वग म होकर जीव रूसार में
परिभ्रमण क्रिया करता है । जिस चारित्र में सूक्ष्म लोभ के अश का सद्भाव पाया जाता है
वह सूक्ष्मसंपरायचारित्र है । इस चारित्र के प्रिनय करने का नाम सूक्ष्मसंपरायचारित्रप्रिनय
है ४। तार्थकर प्रभु ने जिस यथार्थता एव अभिप्रिधि के अनुसार चाग्नि का प्रतिपादन क्रिया

आभायिष्ठ चारित्रिनो के प्रिनय ते साभायिष्ठचारित्रप्रिनय छे पूर्व दीक्षा-
पर्यायनु छेदन ङी क्षीने भडाव्रतानु केभा आगेपणु उराय छे ते छेदोप-
स्थापनीयचारित्र छे आ चारित्रमधी के प्रिनय छे ते छेदोपस्थापनीय-
चाग्निप्रिनय छे "परिहरणं परिहार," परिहरणु अर्थात् गच्छने परित्याग
करवानु नाम परिहार छे, आ परिहार अेक प्रकारनु विशेष तप छे तेनाथी
ऽर्भोनी निर्जरारूप विशुद्धि के चारित्रमा थाय छे तेनु नाम परिहारविशुद्धि-
चारित्र छे आ चारित्रमधी के प्रिनय छे ते परिहारविशुद्धिचारित्रप्रिनय
छे 'संपराय' शब्दने अर्थ कषाय छे, केमडे अेने व वश थर्धने एव स नारभा
परिभ्रमणु अर्था उरे छे के चाग्निमा सूक्ष्मलोभना अशने सद्भाव मणे छे ते
सूक्ष्मसंपरायचारित्र छे आ चारित्रना प्रिनयनु नाम सूक्ष्मसंपरायचाग्निप्रिनय

ચરિત્તવિણ્ણે પંચવિહે પળ્ણત્તે, તં જહા—સામાઙ્ગચરિત્તવિણ્ણે ૧,

વિનય '—અનક્રન્મસન્નિતાઽટ્ટવિધકર્મસન્નયરણ તયાય ચરણ ચારિત્—સર્વવિરતિત્તક્ષણમ્, તત્સમ્બન્ધી વિનયથારિત્રવિનય, સ ક્રતિવિધ, ઈતિ પ્રથા, ઉત્તરમાહ—'ચરિત્તવિણ્ણે પચ-વિહે પળ્ણત્તે' ચાગ્નિવિનય પચવિધ પ્રજ્ઞ 'ત જહા' તથા—'સામાઙ્ગચરિત્તવિણ્ણે' સામાયિક્કચારિત્રવિનય—સર્વજીવેષુ રાગદ્વેષપરિહિતો માત્ર સમ, તસ્ય સમસ્ય=પ્રતિક્ષણમ-પૂર્વાપૂર્વકર્મનિર્જરાદેહુભૂતાયા વિશુદ્ધેગયો લાભ સમાય, સ એવ સામાયિક્કમ્—સાવધયોગ-વિરતિરૂપમ્, વિનયાદિત્વાત્ સ્વાયં ઠહુ, તદ્રૂપ ચારિત્ર, તસ્ય વિનય—સામાયિક્કચારિત્રવિ-

વિણ્ણે પચવિહે પળ્ણત્તે) અનેક જન્મ મ ઉપાર્જિત આઠ પ્રકાર કે કર્મો કે ક્ષય કે લિયે જો આચરણ ક્રિયા જાય વટ સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્ર હૈ । હસ ચારિત્ર કા વિનય કરના સો ચારિત્રવિનય હૈ । વહ પાંચ પ્રકાર કા હૈ । (ત જહા) વે પ્રકાર યે હૈ—(સામા-ઙ્ગચરિત્તવિણ્ણે છેદોવદ્વાપણિયચરિત્તવિણ્ણે પરિહારવિશુદ્ધિચરિત્તવિણ્ણે સુહુમ સપરાયચરિત્તવિણ્ણે અહમ્સ્વાગચરિત્તવિણ્ણે) સામાયિકરૂપ ચારિત્ર કા વિનય, છેદો-પસ્થાપનીયચારિત્ર કા વિનય, પરિહારવિશુદ્ધિચારિત્ર કા વિનય, સૂક્ષ્મસમ્પરાયચારિત્ર કા વિનય, એવ યથાહ્યાતચારિત્ર કા વિનય । સમસ્ત જીવો મેં રાગ એવ દ્વેષ કી પરિણતિ કા પરિહાર કરના હસકા નામ "સમ" હૈ । પ્રતિક્ષણ અપૂર્વ અપૂર્વ કર્મનિર્જરા કે કારણ હસ સમરૂપ વિશુદ્ધિ કા આય=લાભ હોના હસકા નામ 'સમાય' હૈ । "સમાય" હી સામાયિક હૈ । યહ સામાયિક સર્વસાવધયોગવિરતિરૂપ હૈ । હસ પ્રકાર હસ સર્વસાવધયોગવિરતિરૂપ સામાયિક્કચારિત્ર કા જો વિનય હૈ વહ સામાયિક્કચારિત્રવિનય હૈ ૧ । પૂર્વદીક્ષાપર્યાય કા છેદન

છે અનેક જન્મમા ઉપાર્જિત આઠ પ્રકારના કર્મોના ક્ષયને માટે જે આચરણ કરાય છે તે સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્ર છે (ત જહા) તે પ્રકાર આ છે—(સામાઙ્ગ-ચરિત્તવિણ્ણે છેદોવદ્વાપણિયચરિત્તવિણ્ણે પરિહારવિશુદ્ધિચરિત્તવિણ્ણે, સુહુમસપરાય ચરિત્તવિણ્ણે, અહમ્સ્વાગચરિત્તવિણ્ણે) સામાયિકરૂપચારિત્રનો વિનય, છેદો-પસ્થાપનીયચારિત્રનો વિનય, પરિહારવિશુદ્ધિચારિત્રનો વિનય, સૂક્ષ્મસપ-રાયચારિત્રનો વિનય, તેમ જ યથાહ્યાતચારિત્રનો વિનય સમસ્ત જીવોમા રાગ તેમજ દ્વેષની પરિણતિનો પરિહાર (ત્યાગ) કરવો તેનું નામ "સમ" છે પ્રતિક્ષણે અપૂર્વ અપૂર્વ કર્મનિર્જરાના કારણભૂત આ સમરૂપ વિશુદ્ધિનો લાભ થવો તેનું નામ "આય" છે સમ અને આય એ બંને પદોને મેળવવાથી 'સમાય' એવું પદ બની જાય છે સમાય એ જ સામાયિક છે આ સામાયિક સર્વસાવધયોગવિરતિરૂપ છે આ પ્રકારે આ સર્વસાવધયોગવિરતિરૂપ

सकिरिए २, सककसे ३, कडुए ४, णिट्टुरे ५, फरुसे ६, अण्हयकरे ७, छेयकरे ८, भेयकरे ९, परितावणकरे १०, उद्ववणकरे ११, भूओवघाइए १२, तहप्पगारं मणो णो पहारेज्जा, से तं अप्पस-

य मणे' यच्च मन - 'सावज्जे' मावध-सपापम् । १। 'सकिरिए' सक्रियम्=प्राणातिपाताधार-
म्भक्रियायुक्तम् । २। 'सककसे' सकर्कश्यम्=कर्कगतसहितम् । ३। 'कडुए' कटुकम्-
त्वस्य परस्य च कटुकरसवद उद्वेजकम् । ४। 'णिट्टुरे' निष्ठुर-द्वयारहितम् । ५। 'फरुसे'
परुष-कठोरम् । ६। 'अण्हयकरे' आस्रवकम्=आस्रवकारि । ७। 'छेयकरे' छेदकम्=
मयममाधिप्रिनागकम् । ८। 'भेयकरे' भेदकम्=समाधिविघातकम् । ९। 'परितावणकरे'
परितापनकरम्-प्राणिना सन्तापजनकम् । १०। 'उद्ववणकरे' उपद्रवणकरम्-प्राणान्तकृष्टकारकम्
। ११। 'भूओवघाइए' भूतोपघातिकम्-भूताना=प्राणिनामुपघातो हिंसा, सोऽस्याऽस्तीति भूतोप-
घातिकम् । १२। 'तहप्पगार मणो णो पहारेज्जा' तथाप्रकार=तादृश मनो नो प्रधारयेत्
=नो प्रवर्तयेत्-असयमक्रियासु मनो नोदीरयेत् । 'से त अप्पसत्थमणविणए' स एपोऽ-
प्रशस्तमनोविनय । 'से किं त पसत्थमणविणए' अथ कोऽसौ प्रशस्तमनोविनय :-

अण्हयकरे ७, छेयकरे ८, भेयकरे ९, परितावणकरे १०, उद्ववणकरे ११, भूओ-
वघाइए १२)-जो मन सावध-पापसहित हो १, सक्रिय-प्राणातिपातादिक आरम्भक्रिया-
युक्त हो २, सकर्कग-प्रेमभाव से रहित हो ३, कटुक-अपने तथा पर के लिये कटुकरस के
समान उद्वेजक हो ४, निष्ठुर-द्वयारहित हो ५, परुष-कठोर हो ६, आस्रवकर-आस्रवकारी
हो ७, छेदकर-मयमरूपसमाधि का विध्वंसक हो ८, भेदकर-समाधिविघातक हो ९, परिताप-
नकर-प्राणियों को सन्ताप का जनक हो १०, उपद्रवणकर-उपद्रव का कर्ता हो ११, एव भूतो-
पघातिक-प्राणियोंका प्राणहर्ता हो १२, वह मन अप्रशस्त है । (तहप्पगार मणो णो पहारेज्जा)
ऐसे मन को असयम क्रियाओं में प्रवृत्त नहीं करना । (से त अप्पसत्थमणविणए) वह
अप्रशस्तमनोविनय है । (से किं त पसत्थमणविणए) प्रशस्तमनोविनय क्या है ? उत्तर-

ये मन सावध-पापसहित होय, सक्रिय-प्राणातिपातादिक आरम्भक्रियायुक्त
होय, प्रेमभावशीर रहित होय, पोताना तथा पारका भाटे कडवा रसनी पेटे उपद्रव-
जनक होय, निष्ठुर-द्वयारहित होय, परुष-कठोर होय, आस्रवकारी होय, सयम-
रूप समाधिने विध्वंसक होय, शरीररहित दुःखेक होय, प्राणियोंने सन्तापजनक
होय, उपद्रव करनारु होय, तेम प्राणियोंनु प्राण लेनारु होय ते मन अप्रशस्त
है (तहप्पगार मणो णो पहारेज्जा) जेवा मनने असयम क्रियाओंमा प्रवृत्त न करवु,
से त अप्पसत्थमणविणए) ते अप्रशस्तमनोविनय छे प्रश्न-(से किं त पसत्थमणविणए)

चरित्तविणए । से किं तं मणविणए ? मणविणए दुविहे पणत्ते,
तं जहा—पसत्थमणविणए १, अप्पसत्थमणविणए २ । से किं तं
अप्पसत्थमणविणए ? अप्पसत्थमणविणए—जे य मणे सावज्जे १,

तीर्थकरै कथितमरुपाय चारित्रमिति तत् यथाख्यातचारित्र, तस्य कयायरहितचारित्रस्य
विनय १५ । 'से त चरित्तविणए' स एष चाग्रिन्विनय । 'से किं त मणविणए'
अथ कोऽसौ मनोविनय २ उत्तरमाह—'मणविणए'—मनोविनय—मन्यते चिन्त्यतेऽनेनेति
मन, तत्सम्बन्धी विनय, 'दुविहे पणत्ते' द्विविध प्रज्ञ, 'त जहा' तद्यथा—'पसत्थमण-
विणए' प्रशस्तमनोविनय—प्रशस्तम्=अपरहित मनोऽन्त करणं, तस्य विनय ११।
'अप्पसत्थमणविणए' अप्रशस्तमनोविनय—अप्रशस्तमनसो विनय १२। 'से किं त अप्प
सत्थमणविणए' अथ कोऽसौ अप्रशस्तमनोविनय १ उत्तरमाह—'अप्पसत्थमणविणए—जे

है, इस रूप के चारित्र का नाम यथाख्यातचारित्र है । इस चारित्र का विनय करना सो
यथाख्यातचारित्रविनय है ५। (से त चरित्तविणए) यह सब चारित्रविनय है । प्रश्न—
(से किं त मणविणए) मन का विनय कितने प्रकार का है ? उत्तर—(मणविणए
दुविहे पणत्ते) मनोविनय दो प्रकार का कहा गया है, (त जहा) जैसे—(पसत्थमणविणए)
प्रशस्त मन का विनय—पारहित मन को अपनाना प्रशस्तमनोविनय है । (अप्पसत्थ-
मणविणए) अप्रशस्त मन का विनय करना सो अप्रशस्तमनोविनय है । प्रश्न—(से किं
त अप्पसत्थमणविणए) अप्रशस्तमनोविनय क्या है ? उत्तर—(अप्पसत्थमणविणए जे
य मणे सावज्जे १, सकिरिए २, सकक्खसे ३, कड्डुए ४, णिट्ठरे ५, फरुसे ६,

छे तीर्थं कर प्रभुञ्जे जे यथार्थता तेमञ्ज अल्लिविधिना अनुसार चारित्रनु
प्रतिपादन कर्तुं छे ते इपना चारित्रनु नाम यथाख्यातचारित्र छे आ चारित्रने।
विनय करवो ते यथाख्यातचारित्रविनय छे (से त चरित्तविणए) आ अथा
चारित्रविनय छे

प्रश्न—(से किं त मणविणए) मनने विनय शु छे ? केटला प्रकारने छे ?

उत्तर—(मणविणए दुविहे पणत्ते) मनोविनय छे प्रकारने कडेदो छे (त
जहा) जे म के—(पसत्थमणविणए) प्रशस्त मनने विनय—पारहित मनने अपनाववु
ते प्रशस्तमनोविनय छे (अप्पसत्थमणविणए) अप्रशस्त मनने विनय करवो ते
अप्रशस्तमनोविनय छे प्रश्न—(से किं त अप्पसत्थमणविणए) अप्रशस्तमनोविनय
शु छे ? उत्तर—(अप्पसत्थमणविणए—जे य मणे सावज्जे, सकिरिए, सकक्खसे, कड्डुए,
णिट्ठरे, फरुसे, अण्हयकरे, छेयकरे, भेयकरे परितावणकरे, उइवणकरे, भूओवघाइए)

सकिरिए २, सककसे ३, कट्टुए ४, णिट्टुरे ५, फरुसे ६, अण्हयकरे ७, छेयकरे ८, भेयकरे ९, परितावणकरे १०, उद्ववणकरे ११, भूओवघाइए १२, तहप्पगारं मणो णो पहारेज्जा, से तं अप्पस-

य मणे' यच्च मन - 'सावज्जे' सावध-सपापम् । १। 'सकिरिए' सक्रियम्=प्राणातिपाताधार-
म्भक्तियायुक्तम् । २। 'सककसे' सकर्कश्यम्=कर्कशतासहितम् । ३। 'कट्टुए' कटुकम्-
स्वस्य परस्य च कटुकरसवद् उद्वेजरुम् । ४। 'णिट्टुरे' निष्ठुर-दयारहितम् । ५। 'फरुसे'
परुप-कठोरम् । ६। 'अण्हयकरे' आस्रवकरम्=आस्रवकारि । ७। 'छेयकरे' छेदकरम्=
मयमसमाधिपिनाशकरम् । ८। 'भेयकरे' भेदकरम्=समाधिनिघातकरम् । ९। 'परितावणकरे'
परितापनकरम्-प्राणिना सन्तापजनकरम् । १०। 'उद्ववणकरे' उपद्रवणकरम्-प्राणान्तकष्टकारकम्
। ११। 'भूओवघाइए' भूतोपघातिकम्-भूताना=प्राणिनामुपघातो हिंसा, सोऽस्याऽस्तीति भूतोप-
घातिकम् । १२॥ 'तहप्पगार मणो णो पहारेज्जा' तथाप्रकार=नादश मनो नो प्रधारयेत्
=नो प्रवर्तयेत्-असयमक्रियासु मनो नोद्विग्येत । 'से त अप्पसत्थमणविणए' स प्पोऽ-
प्रशस्तमनोविनय । 'से णिं त पसत्थमणविणए' अथ कोऽसौ प्रशस्तमनोविनय ।-

अण्हयकरे ७, छेयकरे ८, भेयकरे ९, परितावणकरे १०, उद्ववणकरे ११, भूओ-
वघाइए १२)-जो मन सावध-पापसहित हो १, सक्रिय-प्राणातिपातादिक आरम्भक्रिया-
युक्त हो २, सकर्कश-प्रेमभाव से रहित हो ३, कटुक-अपने तथा पर के लिये कटुकम के
समान उद्वेजरु हो ४, निष्ठुर-दयारहित हो ५, परुप-कठोर हो ६, आस्रवकर-आस्रवकारी
हो ७, छेदकर-मयमरूपसमाधि का विध्वंसकर हो ८, भेदकर-समाधिविघातकर हो ९, परिताप-
नकर-प्राणियों को सन्ताप का जनक हो १०, उपद्रवणकर-उपद्रव का कर्ता हो ११, एव भूतो-
पघातिक-प्राणियोंका प्राणहर्ता हो १२, वह मन अप्रगस्त है । (तहप्पगार मणो णो पहारेज्जा)
ऐसे मन को असयम क्रियाओं में प्रवृत्त नहीं करना । (से त अप्पसत्थमणविणए) वह
अप्रगस्तमनोविनय है । (से णिं त पसत्थमणविणए) प्रशस्तमनोविनय क्या है ? उत्तर-

जो मन सावध-पापसहित होय, सक्रिय-प्राणातिपातादिक आरम्भक्रियायुक्त
होय, प्रेमभावशी रहित होय, योताना तथा पारका भाटे कडवा रसनी पेटे उपद्रव-
जनक होय, निष्ठुर-दयारहित होय, परुप-कठोर होय, आस्रवकारी होय, सयम-
रूप समाधिने विध्वंसक होय, शरीरादिकनु छेदक होय, प्राणियोंने सन्तापजनक
होय, उपद्रव करनारु होय, तेमज प्राणियोंनु प्राणु लेनारु होय ते मन अप्रशस्त
छे (तहप्पगार मणो णो पहारेज्जा) जेवा मनने असयम क्रियाओंमा प्रवृत्त न करुवु,
'से त अप्पसत्थमणविणए' ते अप्रशस्तमनोविनय छे प्रश्न-(से कि त पसत्थमणविणए)

त्थमणविणए । से किं तं पसत्थमणविणए ? पसत्थमणविणए-
तं चेव पसत्थं णेयव्वं । एवं चेव वड्ढिणओवि एएहिं पएहिं चेव
णेयव्वो । से तं वड्ढिणए ।

‘पसत्थमणोविणए’ प्रशान्तमनोविनय ‘त चेव पसत्थ णेयव्व’ तदेव प्रशस्त
नेतव्यम्=अप्रशस्ते यद्विशेषण तदेव प्रशान्तस्वपेग परिवर्तनीयम्, यथा—प्राज्ञ तत्र मान्य-
मित्युक्त, अत्र तु निरप्रयमिति वाच्यम् । इत्थ सर्वाणि विशेषणाणि परिवर्तनीयानि, तथा सति
प्रशस्तमनोविनय । ‘एव चेव वड्ढिणओवि एएहिं पएहिं चेव णेयव्वो’ एवमेव वाग्-

(पसत्थमणविणए तं चेव पसत्थ णेयव्व) अप्रशस्त मन के जो विशेषण है उनका प्रश-
स्तरूप में परिवर्तन करने से प्रशस्तमन होता है । जैसे—जो मन निरवध—पापहित हो १,
अक्रिय—प्राणातिपातात्तिक क्रिया से विरत हो २, अकुकुश—प्रेमसहित हो ३, अकटुक-
स्वपर का उद्वेग करने वाला नहीं हो ४, अनिन्दुर—दयायुक्त हो ५, अपरुप—कोमल हो ६,
अनास्रवकर—तरयुक्त हो ७, अच्छेदकर—छेदकर नहीं हो, अर्थात् स्यमसमाधि से युक्त हो ८,
अभेदकर—भेदकर नहीं हो, अर्थात् समाधियुक्त हो ९, अपरितापनकर—प्राणियों के लिये
सतापकर नहीं हो, अर्थात् शान्तिजनक हो १०, अनुपद्रवकर—प्राणियों का उपद्रवकारी
नहीं हो ११, और अभूतोपघातिक—प्राणियों का उपघात करनेवाला नहीं हो १२। ऐसा मन
प्रशस्तमन कहा गया है । इसका जो विनय—आदर सो प्रशस्तमनोविनय है । (एव चेव
वड्ढिणओवि एएहिं पएहिं चेव णेयव्वो) इसी प्रकार वचन का विनय भी प्रशस्त

प्रशान्तमनोविनय नु छे ? उत्तर—(पसत्थमणविणए-त चेव पसत्थ णेयव्व) अप्रशस्त
मनना के विशेषण छे तेमनु प्रशस्त उपमा परिवर्तन करवाथी प्रशान्त मन थाय छे
जेभके—जे मन निरवध—पापहित होय, अक्रिय—प्राणातिपातात्तिक क्रियाशून्य
विरत होय, अकुकुश—प्रेमसहित होय, अकटुक—स्वपरने उद्वेग करवावाणु न होय,
अनिन्दुर—दयावाणु होय, अपरुप—कोमल होय, अनास्रवकर—सर्वरवाणु होय,
अच्छेदकर—छेदन करवावाणु न होय अर्थात् सयमसमाधिशी युक्त होय,
अभेदकर—भेद करनार न होय, अर्थात् समाधियुक्त होय, अपरितापनकर-
प्राणियोंने माटे सतापकर न होय, अर्थात् शान्तिजनक होय, अनुपद्रवकर-
प्राणियोंने उपद्रवकारी न होय अने अभूतोपघातिक—प्राणियोंने उपघात
करनार न होय, ओलु मन प्रशस्तमन उडेवाय छे तेने के विनय—आदर
ते प्रशस्तमनोविनय छे (एव चेव वड्ढिणओवि एएहिं पएहिं चेव णेयव्वो) ओ न

विनयोऽप्येते पदैरेव नतस्य—प्रथम प्रशस्ताऽप्रशस्तभेदेन द्विविध विनाय, तत परम्
अप्रशस्तवाग्विनये मापयान्निशेषगानि टेषानि, प्रशस्तवाग्विनये निरवधादीनि विशेष-

और अप्रशस्त भेद से दो प्रकार का है । जो वचन सायध-पापमहित हो, सक्रिय-प्राणा-
तिपातान्त्रिक का आग्मक्रिया से युक्त हो, सकर्कश-कर्कशता से युक्त हो, कटुक-स्वपर
को कटुकरस के समान उद्विग्न करने वाला हो, निष्ठुर-दयारहित हो, परुष-कठोर हो,
आश्रवकर-आश्रवका उपादक हो, उदकर-त्यमसमाधि का विनाशक हो, भेदकर-समाधि का
विनाशक हो, परितापनकर-प्राणियों के लिये सन्तापजनक हो, उपद्रवणकर-प्राणियों के
लिये उपद्रवकारी हो, तथा भूतोपधातिक-प्राणियों की हिंसा करने वाला हो, ऐसा
वचन अप्रशस्तवचन है । इस तरह का वचन नहीं बोलना अप्रशस्तवचनविनय है ।
तथा-जो वचन निरवध-पापरहित हो, अक्रिय-प्राणातिपातादिक क्रिया से विरत हो,
अकर्कश-प्रेमसहित हो, अकटुक-स्वपर के लिये उद्वेगजनक नहीं हो, अनिष्ठुर-दया
-सहित हो, अपरुष-कोमल हो, अनाश्रवकर-परयुक्त हो, अश्लेढकर-श्लेढकर नही हो
अर्थात् त्यमसमाधि से युक्त हो, अमेदकर-भेदकर नहीं हो, अर्थात् समाधियुक्त हो,
अपरितापनकर-प्राणियों को सन्ताप देने वाला नहीं हो, अनुपद्रवणकर-प्राणियों के लिये
उपद्रव करने वाला नहीं हो, और अभूतोपधातिक-प्राणियों की हिंसा करने वाला नहीं हो,

प्रकारे वचनने। विनय पणु प्रशस्त अने अप्रशस्त भेदे करीने जे प्रकारने।
छे जे वचन सायध-पापमहित होय, सक्रिय-प्राणातिपातादिकनी आर ल-
क्रियाथी युक्त होय, सकर्कश-कर्कशतावाणु होय, कटुक-स्वपरना कटु (कडवा)
रसनी पेटे उद्विग्न करवावाणु होय, निष्ठुर-दयारहित होय, परुष-कठोर होय,
आश्रवकर-आश्रवणु उत्पादक होय, श्लेढकर-त्यम समाधिनु विनाशक होय,
भेदकर-समाधिनु विधातक होय, उपद्रवणुकर-प्राणियोंने माटे उपद्रवकारी
होय, तथा भूतोपधातिक-प्राणियोंनी हिंसा करनारु होय, जेवु वचन अप्र-
शस्त वचन छे जेवी नतनु वचन जेवु नहि ते अप्रशस्तवचनविनय
छे तथा जे वचन निरवध-पापरहित होय, अक्रिय-प्राणातिपातादिक क्रियाथी
विरत होय, अकर्कश-प्रेमसहित होय, अकटुक-स्वपरना माटे उद्वेगजनक
न होय, अनिष्ठुर-दयावाणु होय, अपरुष-कोमल होय, अनाश्रवकर-पर
युक्त होय, अश्लेढकर-श्लेढकर न होय, अर्थात् त्यम-समाधिवाणु होय,
अभेदकर-भेदकर न होय, अर्थात् समाधियुक्त होय, अपरितापनकर-प्राणि-
योंने सन्ताप आपनार न होय, अनुपद्रवणकर-प्राणियोंने माटे उपद्रव करनारु
न होय अने अभूतोपधातिक-प्राणियोंनी हिंसा करवावाणु न होय जेवा

से किं तं कायविणए?, कायविणए दुविहे पण्णत्ते; तं जहा-पसत्थकायविणए १, अप्पसत्थकायविणए २ । से किं तं अप्पसत्थकायविणए ? अप्पसत्थकायविणए सत्तविहे पण्णत्ते; तं जहा-अणाउत्तं गमणे १, अणाउत्तं ठाणे २, अणाउत्तं

णानि योजनीयानि । 'से त वइविणए' स ण्प वाग्ग्विनय ।

कायविनय पृच्छति—'से किं त कायविणए' अथ कोऽसौ कायविनय ? उत्तरमाह—'कायविणए'—कायविनय 'दुविहे पण्णत्ते' द्विभिध प्रज्ञम, १ 'पसत्थ-कायविणए' प्रशस्तकायविनय, २—'अप्पसत्थकायविणए' अप्रशस्तकायविनय । 'से किं त अप्पसत्थकायविणए' अथ कोऽसौ अप्रशस्तकायविनय ? 'अप्पसत्थ-कायविणए' अप्रशस्तकायविनय 'सत्तविहे पण्णत्ते' सत्तविध प्रज्ञम । सत्तविधत्व दर्शयति—'त जहा' तद्यथा—'अणाउत्त गमणे' अनायुक्त गमनम्=एर्यापथिक्यामत्ता-वधानतया गमनम् । १। 'अणाउत्त ठाणे' अनायुक्त स्थानम्=उपयोगाभावेन अवस्थानम्

ऐसे वचन को प्रशस्तवचन कहते हैं । ऐसे वचन का धोलना सो प्रशस्तवचनविनय है । (से त वइविणए) सो यह पूर्वोक्त वचनविनय है । अत्र कायविनय क्या है ? इस बात को शिष्य पृच्छता—है (से किं त कायविणए) कायविनय क्या—कितने प्रकार का है ? उत्तर (कायविणए दुविहे पण्णत्ते) कायविनय दो प्रकार का है (पसत्थकायविणए अप्पसत्थकायविणए) एक प्रशस्तकायविनय और दूसरा अप्रशस्तकायविनय । 'से किं त अप्पसत्थकायविणए ?' अप्रशस्तकायविनय कितने प्रकार का है ? 'अप्पसत्थकायविणए सत्तविहे पण्णत्ते' अप्रशस्तकायविनय सात प्रकार का है, (त जहा) जैसे—(अणाउत्त गमणे) अनुपयुक्त गमन—ईर्यापथ मे विना उपयोग के गमन करना, (अणाउत्त ठाणे) विना उपयोग के खडा होना, (अणाउत्त निसीयणे)

वचनने प्रशस्त वचन कडे छे जेवा वचन जोलवा ते प्रशस्तवचनविनय छे जेवे कायविनय शु छे ? ते वात शिष्य पूछे छे—(से किं त कायविणए) कायविनय शु छे—कैटला प्रकारने छे ? उत्तर—(कायविणए दुविहे पण्णत्ते) कायविनय जे प्रकारने छे—(पसत्थकायविणए अप्पसत्थकायविणए) जेऽ-प्रशस्तकायविनय अने णीजे—अप्रशस्त कायविनय (से किं त अप्पसत्थकायविणए) अप्रशस्तकायविनय कैटला प्रकारने छे ? (अप्पसत्थकायविणए सत्तविहे पण्णत्ते) अप्रशस्तकायविनय सात प्रकारने छे, (त जहा) जेमे जे (अणाउत्त गमणे) अनुपयुक्त गमन—ईर्यापथमे विना उपयोगनु गमन करवु, (अणाउत्त ठाणे) विना उपयोगनु उला रडेवु (अणाउत्त निसीयणे)

निसीयणे ३, अणाउत्तं तुयट्टणे ४, अणाउत्तं उल्लंघणे ५, अणाउत्तं पल्लंघणे ६, अणाउत्तं सच्चिदियकायजोगजुंजणया ७, से तं अप्पसत्थकायविणए १। पसत्थकायविणए एवं चेव पसत्थं भाणियव्वं। से तं पसत्थकायविणए । से तं कायविणए । से किं

।२। 'अणाउत्त निसीयणे' अनायुक्त निपट्टनम्=अनुपयोगनोपवेगनम् ।३। 'अणाउत्त तुयट्टणे' अनायुक्त त्वगूर्तनम्=अनप्रधानतया त्वगूर्तनम्=मस्ताग्के पार्श्वपरिवर्तनम् ।४। 'अणाउत्त उल्लंघणे' अनायुक्तमुल्लंघनम्=कर्दमादीनामनिक्रमणम् ।५। 'अणाउत्तं पल्लंघणे' अनायुक्त प्रोद्धनम्=पुन पुनरुद्धनम् ।६। 'अणाउत्त सच्चिदियकाय-जोगजुंजणया' अनायुक्त सर्वेन्द्रियकाययोगयोजनता=सर्वेपामिन्द्रियाणां काययोगस्य च योजनम्=प्रवर्तनम्-असावधानतया सर्वेन्द्रियकाययोगव्यापारणम् ।७। 'से त अप्पसत्थकाय-विणए' स ण्पोऽप्रशस्तकायविनय । 'से किं त पसत्थकायविणए' अथ कोऽसौ प्रशस्तकायविनय ? 'पसत्थकायविणए' प्रशस्तकायविनय - 'एवं चेव पसत्थ भाणियव्व' एवमेव=अप्रशस्तप्रदेव प्रशस्तकायविनयो भाणितव्य =वक्तव्य, यथा तत्राना-

विना उपयोग के बैठना, (अणाउत्त तुयट्टणे) विना उपयोग के विस्तर पर करबट बदलना, (अणाउत्त उल्लंघणे) विना उपयोग के क्रीचड़ आदि का लाघना, (अणाउत्तं पल्लंघणे) विना उपयोग के बार बार क्रीचड़ आदिका उल्लघन करना । (अणाउत्त सच्चिदियकायजोगजुंजणया) विना उपयोग के समस्त इन्द्रियों की एव काययोग क्री प्रवृत्ति करना, (से त अप्पसत्थकायविणए) इन सभी अप्रशस्त क्रियाओं से काय को रोकना अप्रशस्तकायविनय है । प्रश्न-(से किं त पसत्थकायविणए) प्रशस्तकायविनय क्या है ? उत्तर-(पसत्थकायविणए एवं चेव भाणियव्व से त पसत्थकायविणए) इसी तरह प्रशस्तकाय-विनय है, अर्थात् अप्रशस्तकायविनय मे अनुपयुक्त अवस्था से होने वाली गमनादिक्रियाएँ रोकी

विना उपयोगनु भेषु, (अणाउत्त तुयट्टणे) विना उपयोगनु पथागीमा पास। भक्षणा, (अणाउत्त उल्लंघणे) विना उपयोगे शीथल वगेरे टपु, (अणाउत्त पल्लंघणे) उपयोगवगर वार वार शीथल विगेरेनु उल्लघन करु, (अणाउत्तं सच्चिदियकायजोगजुंजणया) विना उपयोगनु सभन्त छट्ठियेनी तेम ७ णाययोगनी प्रवृत्ति करनी, (से तं अप्पसत्थकायविणए) अे षधी अप्रशन्त क्रियाओधी डायाने शकवी ते अप्रशन्तकायविनय छे प्रश्न-(से किं तं पसत्थकायविणए) प्रशस्तकाय-विनय शु छे ? उत्तर-(पसत्थकायविणए-एवं चेव भाणियव्व से तं पसत्थकायविणए) प्रशस्तकायविनय आ व नीते छे अर्थात् अप्रशस्तकायविनयमा अनुपयोगी अप

तं लोगोवयारविणए ? लोगोवयारविणए सत्तविहे पण्णत्ते; तं
जहा—अब्भासवत्तियं १, परच्छंदाणुवत्तियं २, कज्जहेओ ३,
कयपडिकिरिया ४, अत्तगवेसणया ५, देसकालण्णया ६, सव्वट्टेमु
अप्पडिलोमया ७, से तं लोगोवयारविणए । से तं विणए
॥ सू० ३० ॥

युक्तमुक्तम्, अत्र सोपयोग गमनादिक वाच्यमित्यर्थ । 'से तं पसत्थकायविणए' स एष
प्रशस्तकायविनय । 'से त कायविणए' स एष कायविनय । 'से किं त लोगोवयार-
विणए' अथ कोऽसौ लोकोपचारविनय । लोकानामुपचरण लोकोपचार, तसम्बन्धी विनयो,
लोकोपचारविनय, लोकव्यवहारसाधको विनय इत्यर्थ, 'लोगोवयारविणए सत्तविहे
पण्णत्ते' लोकोपचारविनय समविध प्रज्ञाप,—'त जहा' तद्यथा—'अब्भासवत्तियं'
अभ्यासवृत्तिता=कलाचार्यादिममीपस्थितिशीलता । १। 'परच्छंदाणुवत्तियं' परच्छन्दानु-
वर्तिता=पराभिप्रायानुवर्तनम् । २। 'कज्जहेओ' कार्यहेतो =विद्यादिप्राप्तिनिमित्त—'श्रुत

जाती है और इस प्रशस्तकायविनय में ये सब ही कायमयी क्रियाएँ उपयुक्त होकर की
जाती है । प्रश्न—(से किं त लोगोवयारविणए) लोकोपचार विनय क्या—कितने प्रकार
का है ? उत्तर—(लोगोवयारविणए सत्तविहे पण्णत्ते) लोकव्यवहारसाधक यह लोकोपचारविनय
सात प्रकार का कहा गया है, (त जहा) वे सात सात प्रकार ये हैं—(अब्भासवत्तियं) अभ्यास-
वर्तिता—कलाचार्य आदि के समीप में स्थितिशीलता, अर्थात्—गुरु आदि के निकट रहने
का स्वभाव होना, (परच्छंदाणुवत्तिया) परच्छन्दानुवर्तिता—गुरु आदि की आज्ञा के
अनुकूल अपनी प्रवृत्ति रचना, (कज्जहेओ) विद्या आदि की प्राप्ति के निमित्त भक्तपान

स्थाथी यथावाणी गमनव्यादिक क्रियाओंने शैक्य छे अने आ प्रशस्तकायविनयमा
ते अधी कायस षधी क्रियाओ उपयोगी अवरथाथी कराय छे प्रश्न—(से किं त
लोगोवयारविणए) लोकोपचार विनय शु छे—कैटला प्रकारने छे ? उत्तर—(लोगोव-
यारविणए सत्तविहे पण्णत्ते) लोकव्यवहारसाधक आ लोकोपचारविनय सात प्रकारने
कहेला छे, (त जहा) त सात प्रकार आ छे—(अब्भासवत्तियं) अभ्यासवर्तिता—
कलाचार्यआदिना समीपमा स्थितिशीलता, अर्थात् शुभ्र आदिनी पाये रहैवाने
स्वभाव छेवो, (परच्छंदाणुवत्तिया) परच्छंदाणुवर्तिता—गुरु आदिनी आज्ञाने
अनुकूल पोतानी प्रवृत्ति राखनी, (कज्जहेओ) विद्या आदिनी प्राप्तिने निमित्त

मूलम्—से किं तं वेयावच्चे ? वेयावच्चे दसविहे पणत्ते;

प्रापितोऽहमनेन—ति हेतो शुश्रूषा । ३ । 'ऋयपडिकिरिया' वृत्तप्रतिक्रिया "भक्तादिनोपचारं कृते सति प्रसन्ना गुरवो मे श्रुतदानरूपा प्रतिक्रिया—प्रत्युपकार करिष्यता"ति बुद्ध्या गुरुणा शुश्रूषाभरणम् । ४ । 'अत्तगवेसणया' आर्त्तगवेपणता—आर्त्तस्य=दुःखिनस्य गवेपणता—औपम्यै-पयात्तिना पाठितस्योपकार इत्यर्थे । ५ । 'देसकालणुया' देशकालजता=देशकालोचितार्थ-मम्पानम् । ६ । 'सव्वट्टेसु अप्पडिलोमया' सर्वार्थेषु अप्रतिरोमता=सर्वप्रयोजनेषु अनुकूल्यम् । 'से त लोकोवयारविणए, से त विणए' म एष लोकोपचारविनय, स एष विनय ॥ सू० ३० ॥

टीका—आभ्यन्तरतपसस्तृतीयभेद वैयावृत्य नाम तप पृच्छति—'से किं त वेयावच्चे' अथ किं तद् वैयावृत्यम् 'माधूनामाहागंपादिभि माहाय्यकरण वैयावृत्यम्, तत् आदि लोकर देना, (ऋयपडिकिरिया) वृत्तप्रतिक्रिया—वृत्त उपकार का ध्यान रम्यकर प्रत्युपकार करने का भावना से प्रीतियुक्त व्यवहार करना, (अत्तगवेसणया) आर्त्तगवे-पणता—रोगादि अस्वस्था से युक्त गुरु महाराज आदि का औपम्य-भेदन द्वारा उपचार करना, (देसकालणुया) देशकालजता—देशकाल के अनुसार प्रवृत्ति करना, (सव्वट्टेसु अप्प-डिलोमया) सर्व कार्यो म अप्रतिहृतता अर्थात् अनुकूलता रचना । (से त लोको-वयारविणए) यह सप्त लोकोपचारविनय है । (से त विणए) इस प्रकार विनय तप का वर्णन जानना चाहिये ॥ सू० ३० ॥

'से किं त वेयावच्चे' ।

सूत्रकार अत्र आभ्यन्तर तप का जो तृतीय भेद वैयावृत्य तप है उसका

पान-पान आदि लावी आपषु, (ऋयपडिकिरिया) वृत्तप्रतिक्रिया—दरेका उपकारने ध्यानभा राशीने प्रत्युपकार करवानी भावनावी प्रीतियुक्त व्यवहार करवो, (अत्तगवेसणया) आर्त्तगवेपणता—रोगादि अस्वस्थावाणा शुरुभङ्गारण आदिने औपम्य-भेदधी उपचार करवो, (देसकालणुया) देशकालजता—देश कालने अनुसरीने प्रवृत्ति करवी, (सव्वट्टेसु अप्पडिलोमया) यथा ऽर्थोभा अप्रतिहृतता अर्थात् अनुकूलता राषवी (से त लोकोवयारविणए) अथ यथा बोधोपचारविनय छे (से त विणए) अथ प्रकारे विनय तपतु वर्णन लक्ष्यु नोद्यथे (सू ३०)

'से किं तं वेयावच्चे' इत्यादि

सूत्रकार हवे आभ्यन्तर तपने के त्रीन्ने लेख वैयावृत्य तप के तेषु

तं जहा—आयरियवेयावच्चे १, उवज्जायवेयावच्चे २, सेहवेयावच्चे ३,
गिलाणवेयावच्चे ४, तवस्सिवेयावच्चे ५, थेरवेयावच्चे ६, साहम्मिय-

‘दसविहे पण्णत्ते’ ऋग्निध प्रजमम, त जहा—तयथा ‘आयरियवेयावच्चे’ आचार्य-
वैयावृत्यम्—आचार्यस्य वैयावृत्यम्=आहारादिभि शुश्रूषाकरणम् । १। ‘उवज्जायवेयावच्चे’
उपाध्यायवैयावृत्यम् । २। ‘सेहवेयावच्चे’ शैक्षत्रैयावृत्यम्—नवनीक्षितो माल शैक्ष, तस्य
मयमसाहायदानम् । ३। ‘गिलाणवेयावच्चे’ ग्लानत्रैयावृत्यम्—ग्लानस्य=नामा रुजया वा
सिन्नस्य वैयावृत्यम् । ४। ‘तवस्सिवेयावच्चे’ तपस्विवैयावृत्यम्=निरन्तर चतुर्भक्तादि-
करणगीलस्य मासक्षणगादिकरणगालस्य वा वैयावृत्यम्, ‘थेरवेयावच्चे’ स्वविरवैयावृत्यम्—स्थवि-

वर्णन करते हैं । गिण्य पूछता हे-हे भवन्त ! (से किं त वेयावच्चे) वैयावृत्य तप
क्या—कितने प्रकार का है उत्तर—(वेयावच्चे दसविहे पण्णत्ते) यह वैयावृत्यतप दस
प्रकार का है । आहार औषध आदि द्वारा सहायता करना वैयावृत्य है । (त जहा) उसके
वे दस भेद इस प्रकार से है—(आयरियवेयावच्चे, उवज्जायवेयावच्चे, सेहवेयावच्चे,
गिलाणवेयावच्चे, तवस्सिवेयावच्चे, थेरवेयावच्चे, साहम्मियवेयावच्चे, कुलवेयावच्चे,
गणवेयावच्चे, सववेयावच्चे, से त वेयावच्चे) आचार्य महाराज का वैयावृत्य—आहार
पानी आदि द्वारा सेवा करना, उपाध्याय का वैयावृत्य, शैक्ष—नवदीक्षित साधु का वैया-
वृत्य, ग्लान—तपस्या से अथवा रोग से ग्लान माधु का वैयावृत्य, तपस्वी—निरन्तर चतुर्भक्त
आदि तपस्या करने वाले अथवा मासक्षणगादि को तपस्या करनेवाले तपस्वी महाराज का
वैयावृत्य, स्वविर—जरा से जर्जगित अथवा ज्ञान से वृद्ध साधु का वैयावृत्य, सार्धमिक—समान

वर्णन करे छे शिष्य पूछे छे-छे भवन्त ! (से किं त वेयावच्चे) वैयावृत्य तप
शु छे—केटला प्रकारतु छे ? उत्तर—(वेयावच्चे दसविहे पण्णत्ते) आ वैयावृत्य
तप १० प्रकारतु छे आहार औषध आदि द्वारा सहायता करणी ते वैयावृत्य
छे (त जहा) तेना अ्ये दस भेद आ प्रकारे छे (आयरियवेयावच्चे, उवज्जाय
वेयावच्चे, सेहवेयावच्चे, गिलाणवेयावच्चे, तवस्सिवेयावच्चे, थेरवेयावच्चे, साह-
म्मियवेयावच्चे, कुलवेयावच्चे, गणवेयावच्चे, सववेयावच्चे, से त वेयावच्चे) आचार्य
महाराजतु वैयावृत्य—आहार पाणी आदि द्वारा सेवा करणी, उपाध्यायतु,
वैयावृत्य, शैक्ष—नवदीक्षित साधुतु वैयावृत्य, ग्लान—तपस्याथी अथवा रोगथी
कलान्त (दुर्बल) साधुतु वैयावृत्य, तपस्वी—निरन्तर अतुर्थभक्त आदि तपस्या
करवावाणा अथवा मासक्षण आदिनी तपस्या करवावाणा तपस्वी महाराजतु
वैयावृत्य, स्वविर—वृद्धावस्थाथी जर्जगित अथवा ज्ञानथी वृद्ध साधुतु वैया

वैयावृत्ते ७, कुलवैयावृत्ते ८, गणवैयावृत्ते ९, संघवैयावृत्ते १०, से तं वैयावृत्ते । से किं तं सञ्ज्ञाए ? सञ्ज्ञाए पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा-वायणा १, पुच्छणा २, परियट्ठणा ३, अणुप्पेहा ४, धम्म-

रस्य=जगज्जीर्णस्य ज्ञानवृद्धस्य वा वैयावृत्यम् । ६। 'सादृश्यावैयावृत्ते' सादृश्यावैयावृत्यम्-
 समानप्रमंसा वैयावृत्यम् । ७। 'कुलवैयावृत्ते' कुलवैयावृत्यम्-एवाचार्यसन्ततिरूप कुल, तस्य
 वैयावृत्यम् । ८। 'गणवैयावृत्ते' गणवैयावृत्यम्-कुलानां समूहो गणो-गच्छस्तस्य वैयावृत्यम्
 । ९। 'संघवैयावृत्ते' संघवैयावृत्यम्-गगानां समुदाय इह तस्य वैयावृत्यम् । १०। 'से
 तं वैयावृत्ते' तदेतद् वैयावृत्यम् । 'से किं तं सञ्ज्ञाए' अथ क म स्वाध्याय 'स्वाध्याय
 क्रित्वरूप कनिष्ठि ? इति प्रश्ने-उत्तरमाह-'सञ्ज्ञाए पंचविहे पण्णत्ते' स्वाध्याय पञ्चविध
 प्रज्ञ, स्वाध्याय -सु=सुप्तु आ=मर्यात्या जालवेलापहिगेण पौरुष्यपेभया वा अध्याय =श्रुतस्य
 अध्ययन स्वाध्याय । तपञ्चविधं दर्शयति-'तं जहा' तद्यथा-'वायणा' वाचना-अध्यापनम्,

धर्मवाला का वैयावृत्य, कुल-एक आचार्य का अतिरूप मुनिजनों का वैयावृत्य, गण-कुल-
 समूहरूप गच्छ का वैयावृत्य और गग के समूहरूप मरका वैयावृत्य करना सो यह सब
 वैयावृत्य तप के भेद हैं । प्रश्न-'से किं तं सञ्ज्ञाए' स्वाध्याय तप क्या-किनने प्रकार का
 है' उत्तर-(सञ्ज्ञाए पंचविहे पण्णत्ते) स्वाध्याय तप पांच प्रकार का है । अकाल-बेला का
 परिहार करते हुए अपनी शक्ति के अनुसार श्रुतका अध्ययन करना स्वाध्याय है, उसके वे पांच
 प्रकार ये हैं-(वायणा, पुच्छणा, परियट्ठणा, अणुप्पेहा, धम्मकहा) वाचना, प्रच्छना, परिवर्तना,
 अपुप्पेहा एव धर्मकथा । (से तं सञ्ज्ञाए) इस प्रकार स्वाध्याय पांच प्रकार का है । आचार्यादि क

वृत्य, साधर्मिक-समानधर्मवाणानु वैयावृत्य, कुण-श्रेष्ठ आचार्यनी अतिरूप
 मुनिजनानु वैयावृत्य, गणु-कुणसमूहसुप गच्छनु वैयावृत्य, अने गणुना समूहसुप
 अधनु वैयावृत्य उरु, अथवा वैयावृत्य तपना भेद छे प्रश्न-(से किं तं सञ्ज्ञाए)
 स्वाध्याय तप थु छे-उत्तरा प्रदाणु छे ? उत्तर-(सञ्ज्ञाए पंचविहे पण्णत्ते) स्वाध्याय
 तप पांच प्रकारनु छे अदालवेणानो त्याग करीने पोतानी शक्ति अनुमा
 श्रुतनु अध्ययन उरु ते स्वाध्याय छे तेना अथ पांच प्रकार आ छे-(वायणा,
 पुच्छणा, परियट्ठणा, अणुप्पेहा, धम्मकहा) वाचना, प्रच्छना, परिवर्तना, अनु-
 प्रेक्षा तेभज्ज धर्मकथा (से तं सञ्ज्ञाए) आ प्रकारे स्वाध्याय पांच प्रकारना छे
 आचार्य आदि पात्रेथी अत्र आदि उरुवा ते 'वाचना' छे अत्र
 आदिने पूढना ते 'प्रच्छना' छे जीभावेला अत्रनु विम्भणु न थध तथ ते

कहा ५, से तं सज्ज्ञाए । से किं तं ज्ञाणे ? ज्ञाणे चउव्विहे पणत्ते,
तं जहा—अट्टज्ज्ञाणे १, रुद्धज्ज्ञाणे २, धम्मज्ज्ञाणे ३, सुक्कज्ज्ञाणे ४ ।

‘पुच्छणा’ प्रच्छना, १२। ‘परिवर्तना’ परिवर्तना=अशीनस्य सूत्रस्य ‘मा भूद विस्मरण’—मिति कर्मनिर्गम्यं पुन पुन कस्मिंश्चिदेकस्मिन् वस्तुनि अन्तर्मुहूर्तमात्रकालं चित्तं स्थिराग्र्यं चिन्तनं, तपठनं, सूत्रस्य गुणनमित्यर्थः । ३। ‘अनुपेक्षा’ अनुप्रेक्षा—सूत्रवर्त्येऽपि विस्मरणं भवति, अतः साऽपि परिभावनोपयुक्तं—चित्तनिकेयर्थः । ४। ‘धम्मकथा’ धर्मकथा—धर्मस्य=श्रुतरूपस्य वा कथा=व्याख्या सा । ५। ‘से तं सज्ज्ञाए’ स एष स्वाध्यायः । ‘से किं त ज्ञाणे’ अथ किं तद् ध्यानम्, ‘ज्ञाणे चउव्विहे पणत्ते’ ध्यानं चतुर्विधं प्रजम्, तज्ज्ञा—तद्यथा—१—‘अट्टज्ज्ञाणे’ आर्तध्यानम्—रुत=दुःखं, तस्य निमित्तं, यद्वा—तत्र भवम्—आर्तं तच्च तद् ध्यानम्, आर्तस्य=दुःखितस्य वा ध्यानम्—आर्तध्यानम्—मनोज्ञमनोज्ञवस्तुमयोगप्रियोगादि-निबन्धनचित्तवैश्वर्यरूपम् । तथा चोक्तम्—

से मूत्रादिक का ग्रहण करना ‘वाचना’ है । सूत्र आदि का पठना ‘प्रच्छना’ है । अत्र सूत्र का विस्मरण न हो जाय, इस विचार से पुन पुन उसकी आवृत्ति करना ‘परिवर्तना’ है । सत्रार्थ का पुन पुन चिन्तन करना ‘अनुप्रेक्षा’ है । तथा धर्म की कथा करना—‘धर्मकथा’ है । प्रश्न—(से किं त ज्ञाणे) ध्यानका क्या स्वरूप है—वह कितने प्रकार है ? उत्तर—(ज्ञाणे चउव्विहे पणत्ते) ध्यान के चार प्रकार हैं, (तं जहा) वे चार प्रकार ये हैं—(अट्टज्ज्ञाणे, रुद्धज्ज्ञाणे, धम्मज्ज्ञाणे, सुक्कज्ज्ञाणे) आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, एव शुक्लध्यान । इनमें दुःख के निमित्त अथवा दुःख में जो ध्यान होता है वह आर्तध्यान है, मनोज्ञ एव अमनोज्ञ वस्तु के मयोग और प्रियोग में जो एक प्रकार की चित्त में विकलता होती है वह आर्तध्यान है । कहा भी है—

विचारथी इरी इगीने तेनी आवृत्ति करवी ते ‘परिवर्तना’ छे सूत्रना अर्थतु इरी इगीने चित्तन करवु ते ‘अनुप्रेक्षा’ छे तथा धर्मनी उथा करवी ‘धर्म-उथा’ छे प्रश्न—(से किं त ज्ञाणे) ध्यानतु शुभ्वश्य छे ? ते कटला प्रकारतु छे ? उत्तर—(ज्ञाणे चउव्विहे पणत्ते) ध्यानना चार प्रकार छे, (तं जहा) ते आ छे—(अट्टज्ज्ञाणे, रुद्धज्ज्ञाणे, धम्मज्ज्ञाणे, सुक्कज्ज्ञाणे,) आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्म-ध्यान तेमज् शुक्लध्यान तेमा दुःखने निमित्ते अथवा दुःखने समये के ध्यान थाय छे ते आर्तध्यान छे, मनोज्ञ तेमज् अमनोज्ञ वस्तुना मयोगथी तेमज् प्रियोगथी के अर्थ प्रकारनी चित्तमा विकलता थाय छे ते आर्तध्यान छे इदु पद्य छे—

राज्योपभोगशयनासनवाहनेषु, स्वीगन्धमाल्यमणिरत्नविभूषणेषु ।

इच्छामिहापमतिमात्रमुपैति मोहाद्, ध्यान तदार्त्तमिति सप्रवदन्ति तज्जा ॥१॥

२-‘रुद्रज्जाणे’ गैद्रध्यानम्-गेन्द्रयत्पगन इति रुद्र = प्राण्युपयातादिपणितो जीवन्तस्य

कर्म गैद्रम्-हिंसावतिक्रूरतारूप, तरूप ध्यान गैद्र ध्यानम् । तदुक्तम्—

रुद्रैर्नैर्दहनभजनमारणैश्च न्यप्रहारमनैर्विनिकृन्तनैश्च ।

यो याति रागमुपयाति च नानुरुम्पा ध्यान तु गैद्रमिति तत्प्रवदन्ति तज्जा ॥२॥ इति ।

राज्योपभोगशयनासनवाहनेषु, स्वीगन्धमाल्यमणिरत्नविभूषणेषु ।

इच्छामिहापमतिमात्रमुपैति मोहाद्, ध्यान तदार्त्तमिति नप्रवदन्ति तज्जा ” ॥ १ इति॥

राज्य का उपभोग, पद्म आदि सुशोभल शय्या, सुन्दर आमन, घोड़े हाथी आदि वाहन, मनोरागिणा वियाँ, टन आदि सुगन्धित वस्तुएँ, सुन्दर सुन्दर पुष्पो की सुलभित मालाय, तथा मणिरत्नमय आभूषण, इन मनों में मोह के कारण जो मनुष्य की उरुद अभिलाषा है, उस अभिलाषा को विज जन ‘आर्त्त-ध्यान’ कहते हैं ॥ १ ॥

“रौद्रयति अपरान् इति रुद्रः” जो क्रमों को रगता है वह रुद्र है, अर्थात् प्राणियों की उपवास आदि क्रिया में व्यगन जो जीव है वह रुद्र है, रुद्र का जो कर्म वह गैद्र है । उसका हिंसादिक अतिक्रूरतारूप जो ध्यान है वह रौद्रध्यान है ॥ रुद्रा भी है—

संश्रुतैर्दहनभजनमारणैश्च न्यप्रहारमनैर्विनिकृन्तनैश्च ।

यो याति रागमुपयाति च नानुरुम्पा, ध्यान तु रौद्रमिति तत्प्रवदन्ति तज्जाः ॥२॥

राज्योपभोगशयनासनवाहनेषु स्वीगन्धमाल्यमणिरत्नविभूषणेषु ।

इच्छामिहापमतिमात्रमुपैति मोहाद्, ध्यान तदार्त्तमिति सप्रवदन्ति तज्जा ॥१॥

गन्धनो उपभोग, पद्म आदि सुशोभल शय्या, सुन्दर आमन, घोड़ा हाथी आदि वाहन, मनोहासिणी श्रीयो, अर्त्त आदि सुगन्धित वस्तुओ, सुन्दर सुन्दर पुष्पेनी बनायेकी सुलभित भाजाओ, तथा मणिरत्नमय आभूषणो, आ भवामा मोहनो कारणे से मनुष्यनी उरुद अलिखापा छे ते अलिखापाने विठानो ‘आर्त्त-ध्यान’ उडे छे (१)

“रौद्रयति अपरान् इति रुद्रः” के धीन्दने भवगये ते रुद्र छे, अर्थात् प्राणियोनी उपधात (भाष्य) आदि क्रियाओमा लवकीन गडेता के एव छे ते रुद्र छे, रुद्रतु से कर्म ते गैद्र छे तेनु डि सादिक अतिक्रूरतारूप से ध्यान छे ते गैद्रध्यान छे उछु पछु छे -

संश्रुतैर्दहनभजनमारणैश्च, न्यप्रहारमनैर्विनिकृन्तनैश्च ।

यो याति रागमुपयाति च नानुरुम्पा, ध्यान तु रौद्रमिति तत्प्रवदन्ति तज्जा ॥२॥

३-‘धम्मज्झाणे’ धर्मध्यानम्=सर्वज्ञाऽऽज्ञाघनुचिन्तनम् । उक्तञ्च—

“ सूत्रार्थसाधनमहाव्रतधारणेषु,

बन्धप्रमोक्षगमनागमनेषु चिन्ता ।

पञ्चेन्द्रियव्युपरमश्च दया च भूते,

ध्यान तु धर्ममिति सप्रवदन्ति तज्ज्ञा ” ॥३॥ इति ।

जो मनुष्य छेदन, दहन अर्थात् जलाना, भङ्गन—तोडना—भँगना, मारण—प्राणरहित करना, बाँधना, प्रहार करना, दमन करना, काटना आदि क्रियाओं में आनन्द मानता है, प्राणियों पर जिसको अनुकम्पा नहीं होती है, ऐसे मनुष्य की उन दुःप्रवृत्तियों को विज्ञ जन ‘रौद्रध्यान’ कहते हैं ॥ २ ॥

सर्वज्ञ का आज्ञा आदि का अनुचिन्तनरूप धर्मध्यान है । कहा भी है—

सूत्रार्थसाधनमहाव्रतधारणेषु, बन्धप्रमोक्षगमनागमनेषु चिन्ता ।

पञ्चेन्द्रियव्युपरमश्च दया च भूते, ध्यान तु धर्ममिति सप्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥३॥

सूत्र और सूत्र के अर्थ का चिन्तन करना, साधन का चिन्तन करना, अर्थात् साधूपकरण की प्रतिलेखना करने में तत्परता रखना, महाव्रत धारण का चिन्तन करना अर्थात् महाव्रत जो धारण किये हैं उनमें कोई अतिचार न लगे इसके लिये सर्वदा प्रयत्नशील होना, बन्ध और मोक्ष के स्वरूप का चिन्तन करना, ‘चतुर्गतिक’-सार में जीव का गमनागमन किस कारण से होता है’ उसका चिन्तन करना, पाँचों इन्द्रियों का निग्रह करना,

जो मनुष्य छेदन, दहन अर्थात् भाग्य, लज्जन=तोडनु—लागनु, मारण—प्राणरहित करनु, बाधनु, प्रहार करणे, दमन करनु, कापनु आदि क्रियाओंमा आनन्द माने छे, प्राणियों उपर जेने दया नथी आवती जेवा मनुष्यना जे दुःप्रवृत्तियोंने विद्वानो ‘रौद्रध्यान’ कहे छे (२)

सर्वज्ञनी आज्ञा आदिनु अनुचिन्तनरूप धर्मध्यान छे कहु पणु छे -

सूत्रार्थसाधनमहाव्रतधारणेषु, बन्धप्रमोक्षगमनागमनेषु चिन्ता ।

पञ्चेन्द्रियव्युपरमश्च दया च भूते, ध्यान तु धर्ममिति सप्रवदन्ति तज्ज्ञा ॥३॥

सूत्र अने सूत्रना अर्थनु चिन्तन करनु, साधननु चिन्तन करनु अर्थात् साधुना उपकरणनी प्रतिबोधना करवामा तत्परता राखी, महाव्रत धारणनु चिन्तन करनु, अर्थात् महाव्रत जे धारणु जयाँ छे तेमा कौछ अतिचार न लागे ते भाटे सर्वदा प्रयत्नशील रहैनु, बाध अने मोक्षना स्वरूपनु चिन्तन करनु, चतुर्गतिके सारमा जवतु आववा—जवानु शु धारणुथी थाय छे ?

૪-‘શુક્લજ્ઞાણે’ શુક્લધ્યાનમ્-શુક્લ=શોક ક્રમયતિ=અપનયતીતિ શુક્લ- ભવશ્યકારણ,
શુક્લ ચ તદ્ ધ્યાન શુક્લધ્યાનમ્ । તથા ચૌક્તમ્—

“યસ્યેન્દ્રિયાણિ વિપયેષુ પરાહ્મુસ્વાનિ,

નકલ્પકલ્પનવિકલ્પવિકારદોષૈ ।

યોગૈ સ ચ ત્રિભિરહો નિમૃતાન્તરાત્મા,

ધ્યાનોત્તમ પ્રવરશુક્લમિદ વદન્તિ ॥ ૩ ॥ ઇતિ ।

એવ સમી પ્રાગ્ધ્યાન પર દયા રચના, ઇસ પ્રકાર કો આત્મા કો શુભ પ્રવૃત્તિ કો વિજ્ઞ જન
‘ધર્મધ્યાન’ કહતે હૈ ॥૩॥

“શુક્લ-શોક ક્રમયતીતિ શુક્લ” શોક કો જો નટ કંઈ વહ ‘શુક્લ’ હૈ । “શુક્લ
ચ તદ્ ધ્યાન ચ શુક્લધ્યાન” શુક્લરૂપ જો ધ્યાન વહ શુક્લધ્યાન હ । અર્થાત્ જો ભવશ્ય
કારણ હોના હૈ અથવા જિસસે શોક કા અપનયન હોતા હૈ, વહ શુક્લધ્યાન હૈ । કહામી હૈ-

યસ્યેન્દ્રિયાણિ વિપયેષુ પરાહ્મુસ્વાનિ, સકલ્પકલ્પનવિકલ્પવિકારદોષૈ ।

યોગૈ: સ ચ ત્રિભિરહો નિમૃતાન્તરાત્મા, ધ્યાનોત્તમ પ્રવરશુક્લમિદ વદન્તિ ॥

જિનકો ઇન્દ્રિયા વિપયપ્રવૃત્તિયો સે સંહિત હૈ, જો મકલ્પ-વિકલ્પ-જનિત વિકાર-દોષો સે
વર્જિત હૈ, કાયિક, વાચિક, માનસિક તોનો યોગો કો વશ કર લેને કે કારણ જિનકો આત્મા
નિસ્કલ હૈ, એસે મહામાર્ગો કો પ્રગલ્ભ પાગ્ધ્યાન કો વિજ્ઞ જન ‘શુક્લધ્યાન’ કહતે હૈ ॥ ૪ ॥

તેનુ ચિ તન કલ્પુ, પાચેય ધંદ્રિઓનો નિમ્મલ કરવો, તેમ જ બધા પ્રાણિઓ ઉપર
હયા સમવી, એ પ્રકારની આત્માની શુભ પ્રવૃત્તિને વિદ્વાનો ‘ધર્મધ્યાન’ કહે છે

“શુક્લ-શોકે કલ્મયતીતિ શુક્લ” શોકનો જે નાશ કરે તે ‘શુક્લ’
છે “શુક્લ ચ તદ્ ધ્યાન ચ-શુક્લધ્યાન” શુક્લરૂપ જે ધ્યાન તે શુક્લધ્યાન છે,
અર્થાત્ જે ભવશ્યનુ કારણ હોય છે અથવા જેનાથી શોકનુ અપનયન થાય
છે તે શુક્લધ્યાન છે કહ્યુ પણ છે-

યસ્યેન્દ્રિયાણિ વિપયેષુ પરાહ્મુસ્વાનિ, સંકલ્પકલ્પનવિકલ્પવિકારદોષૈ ।

યોગૈ સ ચ ત્રિભિરહો નિમૃતાન્તરાત્મા, ધ્યાનોત્તમ પ્રવરશુક્લમિદ વદન્તિ ॥૧॥

જેની ધંદ્રિયો વિપયપ્રવૃત્તિથી સંહિત છે, જે સકલ્પવિકલ્પજનિત
વિકારદોષોથી વર્જિત છે, કાયિક, વાચિક, માનસિક, ત્રણેય યોગોને વશ કરી
લેવાના કારણે જેનો આત્મા નિસ્કલ છે, એવા મહાત્માઓની પ્રગલ્ભ પરિણ
તિને વિદ્વાનો ‘શુક્લધ્યાન’ કહે છે (૧)

અટ્ટઙ્ગાણે ચઽવિવ્રહે પળ્લત્તે; તં જહા—અમણુણ્ણસંપઓગ-
સંપહત્તે તસ્સ વિપ્પઓગસહસમળ્ણાગણ યાવિ ભવહ ? , મણુણ્ણ-

एषु चतुर्विधेषु ध्यानेषु प्रथममार्तध्यानं चतुर्विंशतिमाह—‘अट्टङ्गाणे चउव्विह्वे पण्णत्ते’
आर्तध्यानं चतुर्विधं प्रथमम्, ‘तं जहा’ तत्रया—१—‘अमणुण्णसपओगमपउत्ते तस्स विप्प-
ओगसइसमण्णागण यानि भवइ’ अमनोज्ञसम्प्रयोगसम्प्रयुक्तस्तस्य विप्रयोगस्मृतिसमन्वा-
गतश्चापि भवति—अमनोज्ञ = अनिष्टो यः शब्दादि, तस्य सम्प्रयोगा = योगस्तेन सम्प्रयुक्तो यः
स तथापि सन् तस्य अमनोज्ञशब्दादेः विप्रयोगस्मृति = नियोगचिन्ता, तथा समन्वागत =
अनुगतश्चापि भवति, एतद् आर्तध्यानम्, ध्यानध्यानतोरभेदोपचाराद् ध्यानज्ञानपि ध्यान-
मुच्यते, एवमग्रेऽपि बोध्यम् । २—मणुण्णसपओगमपउत्ते तस्स अविप्पओगसइस-

इन चार प्रकार के ध्यानों में प्रथम जो आर्तध्यान है, वह चार प्रकार का
है, इसी बात को बताने के लिये उक्त प्रकार कहते हैं—(अट्टङ्गाणे चउव्विह्वे पण्णत्ते)
आर्तध्यान ४ प्रकार का कहा गया है । (तं जहा) वह इस प्रकार से—(अमणुण्णसप-
ओगसपउत्ते तस्स विप्पओगसइसमण्णागण यानि भवइ) अमनोज्ञ—अनिष्ट शब्दादि के
सम्बन्ध होने पर उसके विप्रयोग—दूर करने के लिये जो बारबार विचार किया जाता है वह
अनिष्टसयोगज्ञ आर्तध्यान है । यहा ध्याता को जो ध्यान कहा है वह ध्यान और ध्यान-
वान् में अभेद के उपचार से जानना चाहिये । इसी तरह से आगे के ध्यानों में भी अभेद
का उपचार जानना । (मणुण्णसपओगसपउत्ते तस्स अविप्पओगसइसमण्णागण यानि

આ ચારેય પ્રકારના ધ્યાનોમાથી પ્રથમ જે આર્તધ્યાન છે તે ચાર
પ્રકારનું છે, એ વાત ઠહેવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—(અટ્ટઙ્ગાણે ચઽવિવ્રહે પળ્લત્તે)
આર્તધ્યાન ચાર પ્રકારના ઠહેલા છે (તં જહા) તે આ પ્રકારે છે—(અમણુણ્ણસપ-
ઓગસપહત્તે તસ્સ વિપ્પઓગસહસમળ્ણાગણ યાવિ ભવહ) અમનોજ્ઞ—અનિષ્ટ
શબ્દાદિકનો સંબંધ થતા તેને વિપ્રયોગ—દૂર કરવા માટે જે વારવાર વિચાર
કરવામા આવે છે તે અનિષ્ટવિપ્રયોગ—આર્તધ્યાન છે અહીં ધ્યાન
કરનારને જે ધ્યાન કહેવામા આવ્યું છે તે ધ્યાન અને ધ્યાનવાનના અભેદ
(એકતા)ના ઉપચારથી થયો છે તેમ જાણવું જોઈએ, એ જ રીતે આગળના
ધ્યાનોમા પણ અભેદનો ઉપચાર જણી લેવો (મણુણ્ણસંપઓગસપહત્તે તસ્સ
અવિપ્પઓગસહસમળ્ણાગણ યાવિ ભવહ) મનોજ્ઞ—ઇષ્ટ શબ્દાદિક વિપ્રયોગની

संपओगसंपउत्ते तस्स अविप्पओगसइसमण्णागए यावि भवइ २, आयंकसंपओगसंपउत्ते तस्स विप्पओगसइसमण्णागए यावि भवइ ३, परिजूसियकामभोगसपउत्ते तस्स अविप्पओगसइसमण्णागए यावि भवइ ४। अट्टस्स ण ज्ञाणस्स चत्तारि ल-

मण्णागए यावि भवइ ' मनोजमम्प्रयोगमम्प्रयुक्तगन्ध्याऽत्रिप्रयागम्प्रतिममन्वागतश्चापि भवति-मनोज =इष्टो य अन्नादि, तस्य म-प्रयोग =प्रयोगस्वन मम्प्रयुक्त मन् तस्य = मनोजशब्देऽत्रिप्रयोगस्मृति =अप्रियोगचिन्ता, तथा ममन्वागत =अयुक्तश्चापि भवति । ३ - आयकमपयोगसपउत्ते तस्स विप्पओगसइसमण्णागए यावि भवइ ' आतङ्कमम्प्रयोगमम्प्रयुक्तस्तस्य त्रिप्रयागम्प्रतिममन्वागतश्चापि भवति-आतङ्को रोग, तस्य मम्प्रयोग =प्रयोग, तेन मम्प्रयुक्त मन् तस्याऽनङ्कस्य त्रिप्रयोगस्मृति =प्रियोगचिन्ता, तथा ममन्वागतश्चापि भवति । ४ - 'परिजूसियकामभोगसपओगसपउत्ते तस्स अविप्पओगसइसमण्णागए यावि भवइ ' परिजुष्टकामभोगसम्प्रयोगसम्प्रयुक्तस्तस्याऽत्रिप्रयोगस्मृति समन्वागतश्चापि भवति, परि =समन्तान्, जुष्ट =संश्रित -प्रीतो वा य कामभोगस्तस्य प्रयोगेण म्प्रयुक्त मन्, तस्य कामभोगस्य अत्रिप्रयोगस्मृति =अप्रियोगचिन्ता तथा, समन्वागत =सयुक्तश्चापि भवति । 'अट्टस्स ण ज्ञाणस्स चत्तारि लङ्गवणा पणत्ता' जार्त्तस्य गृह्य व्या-

भवइ) मनोज-इष्ट शब्दादिकं त्रिप्रयो का मप्राप्ति होन पर उनके अत्रिप्रयोग-प्रियोग न होने का कारण चिन्तन करना सो वह इष्टमयोगज आर्त्त-व्यान है । (आयकसपओगसपउत्ते तस्स विप्पओगसइसमण्णागए यावि भवइ) आतङ्क-रोग क प्रयोग-प्रयोग होने पर जो उमके प्रियोग होने का कारण चिन्तन करना है वह वेत्ताजन्य आर्त्त-व्यान है । (परिजूसियकामभोगसपओगसपउत्ते तस्स अविप्पओगसइसमण्णागए यावि भवइ) संश्रित कामभोगों का प्राप्ति होन पर उनका काम भा प्रियोग न हो ऐसा विचार करना सो यह चौथा आर्त्त-व्यान है । (अट्टस्स ण ज्ञाणस्स चत्तारि लङ्गवणा

य प्राप्ति यथा तेभनो अविप्रयोग-वियोग न थाय तेनु वारवार चितवन वृष्टु ते इष्ट-प्रयोग-जन्य आर्त्त-व्यान ७ (आयकसपओगसपउत्ते तस्स विप्पओगसइसमण्णागए यावि भवइ) आतङ्क-रोगनो मप्रयोग-प्रयोग यथा ७ तेनो वियोग यवानु वारवार चितवन वृष्टु ते वेदनाजन्य आर्त्त-व्यान ७ (परिजूसियकामभोगसपओगसपउत्ते तस्स अविप्पओगसइसमण्णागए यावि भवइ) जेवन वरेक्ष कामभोगोनी प्राप्ति यथा तेभनो उद्दी पणु वियोग न थाय

क्वणा पणत्ता, तं जहा—कंदणया १, सोयणया २, तिप्पणया
३, विलवणया ४ । रुद्वज्जाणे चउव्विहे पणत्ते; न जहा—
हिंसाणुवंधी १, मोसाणुवंधी २, तेणाणुवंधी ३, सारक्वणा-

नस्य च चारि लक्षणानि प्रज्ञानानि, 'त जहा' तद्यथा—१ 'कंदणया' कन्दनना=मगन्दाऽ-
श्रुप्रक्षेपरूपा । २ 'सोयणया' शोचनता=मानमगलनिरूपा । ३ 'तिप्पणया' तेपनता=
निश्चिन्दाश्रुमोचनम् । ४ 'विलवणया' विलपनता=पुन पुन स्वकृताश्रुभकर्माणामुच्चा-
रणम्, "क्रीडया पूर्वजन्मनि मया दुष्कृतमाचरित यफग्मयुनेदया मया लभ्यते" इत्यादिरूपम् ।
'रुद्वज्जाणे चउव्विहे पणत्ते' रौद्रयान चतुर्विध प्रज्ञम्, 'त जहा' तद्यथा—१ 'हिंसा-
णुवधी' हिंसानुबन्धि—हिंसा=परप्राणहरणरूपामनुबन्धाति=करोतीति हिंसानुबन्धि, २—'मोसा-

पणत्ता) इस आर्तयान के ४ चार लक्षण बतलाए गये हैं, (त जहा) वे इस प्रकार
हैं—(कंदणया सोयणया तिप्पणया विलवणया) कन्दनता—अन्सहित आसुओं को
निकालते हुए रोना (१) । शोचनता—मानसिक ग्लानि करना (२) । तेपनता—ऐसा रोदन
हो कि जिसमें रोने का आवाज आवे नहा, परन्तु आँसू निकलते रहें (३) । विलपनता—
वारवार अपन किये हुए क्रमों का जिसमें चिन्तन करते हुए उच्चारण हो, जैसे—मैं
पूर्वजन्म में कैसे पाप किये, जिसका फल मुझे भोगना पड़ रहा है, ये सब आर्तयान के
लक्षण हैं । इन लक्षणों से आर्तयान की सत्ता जानी जाती है । (रुद्वज्जाणे चउव्विहे
पणत्ते) रौद्रयान चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—(हिंसाणुवधी, मोसाणुवधी, तेणाणु-
वधी, सारक्वणाणुवधी) जिस यान में हिंसा का अनुबन्ध हो वह हिंसानुवधा रौद्रयान है ।

अथैवा विचार करवो ते आ शैथु आर्तध्यान छे (अदृस्त ण ज्ञानस्स चत्तारि
लक्खणा पणत्ता) आ आर्तध्यानना चार लक्षणु गतावेला छे, (त जहा)
ते आ प्रकारे छे—(कंदणया सोयणया तिप्पणया विलवणया) कन्दन-शण्ड साथे
आसुओं का उता २३वु (१), शोचन—मानसिक ग्लानि करवी (२),
तेपन—असु रोदन थाय के जेभा रोवानो अवाज आवे नछि, परन्तु आसु
वहेला रहे (३), विलपन—वारवार पोते करेला उमोनु चितवन करता मोटेथी
विलाप करवो, जेभके—जे पूर्व जन्ममा केवा पाप कया के जेनु क्षण मारे
लोगवसु पडे छे आ गधा आर्तध्यानना लक्षणु छे अे लक्षणेथी आर्तध्याननी
सत्ता लक्षी लेवाय छे (रुद्वज्जाणे चउव्विहे पणत्ते) रौद्रध्यान चार प्रकारनु
कहेलु छे, (त जहा) जेभ के (हिंसाणुवधी, मोसाणुवधी, तेणाणुवधी, सारक्वणाणुवधी)

गुबंधी ४। रुद्रस्स णं ज्ञाणस्स चत्तारि लक्खणा पणत्ता, तं जहा-
उसण्णदोसे १, बहुदोसे २, अण्णाणदोसे ३, आमरणंतदोसे

गुणधी' मृपानुग्धि-मृपा=अमय, तदनुग्धनाति=करोतीति मृपानुग्धि, असत्यप्रचनेन धर्माप-
पातकुर्मार्गप्ररूपगनिन्द्रादिकागमिथर्थ । ३-'तेगाणुग्धी' स्तैन्यानुग्धि=अदत्तागनकार-
रुम्, ४ 'सारखणाणुग्धी' सगक्षणाणुग्धि-त्रिपयमात्रनस्य धनादिकस्य गक्षणे अनुग्धि =
सम्प्रोदस्यास्तीति तत् सरखणाणुग्धि । 'रुद्रस्स णं ज्ञाणस्स चत्तारि लक्खणा
पणत्ता' रौद्रस्य गच्छ ध्यानस्य चत्तारि लक्षणानि प्रजपानि, 'त जहा' तद्यथा - 'उसण्ण-
दोसे' ग्राह्यदोष - अनुपगततया ग्राह्येन=प्राचुर्येण दोषो हिंसाऽनृताऽदत्ताऽऽदानसगक्षणा-
नामन्यतम - ग्राह्येण । 'उसन्न' इति ग्राह्येणार्थे देवीयग्रन्थ । १। तथा - 'बहुदोसे' बहु-
दोष - गृह्यु हिंसादिषु प्रवृत्तिलक्षणो दोषो बहुदोष । २। 'अण्णाणदोसे' अज्ञानदोष - अनाना-
त्=कुशाखादिसंस्कारात् हिंसादिषु अधर्मस्वरूपेषु धर्मनुद्धया प्रवृत्तिलक्षणो दोषोऽज्ञानदोष । ३।

जिस ध्यान म मृपा-झूठ का अनुग्रह हो वह मृपानुग्धी रौद्रध्यान है । जिस ध्यान मे चोरी
करने का अनुग्रह हो वह स्तैन्यानुग्धी रौद्रध्यान है । जिस ध्यान म त्रिपय के साधनभूत
धनादिक के गक्षण का अनुग्रह है वह सरखणाणुग्धी रौद्र ध्यान है । (रुद्रस्स णं ज्ञाणस्स चत्ता-
रि लक्खणा पणत्ता) इस रौद्रध्यान के ४ लक्षण कहे हुए है, जैसे-(उसण्णदोसे, बहु-
दोसे, अण्णाणदोसे आमरणतदोसे) हिंसा, झूठ, चोरी आदि पापकर्मों मे से किसी एक
पापकर्म म जो ग्राह्येन प्रवृत्ति होना सो उसन्नदोष है । हिंसादिक समा पाप कर्मों मे जो
ग्राह्येन प्रवृत्ति होना सो बहुदोष है । कुशाखादिक के संस्कारजन्य अज्ञान से हिंसादिकों
मे धर्मबुद्धि से प्रवृत्त होना सो अज्ञानदोष है । मरणपर्यन्त पश्चात्ताप नहीं करते हुए हिंसा-

ने ध्यानमा हिंसां अनुग्रह होय ते हिंसाणुग्धी रौद्रध्यान हे ने ध्यानमा
मृपा-कुशाखानो अनुग्रह होय ते मृपानुग्धी रौद्रध्यान हे ने ध्यानमा चोरी
करवानो अनुग्रह होय ते स्तैन्याणुग्धी रौद्रध्यान हे ने ध्यानमा विषयना
साधनभूत धन आदिकना संरक्षणो अनुग्रह हे ते सरखणाणुग्धी रौद्रध्यान
हे (रुद्रस्स णं ज्ञाणस्स चत्तारि लक्खणा पणत्ता) आ रौद्रध्यानना आर लक्षणु ठहेला
हे, (त जहा) नेम हे-(उसण्णदोसे, बहुदोसे, अण्णाणदोसे, आमरणतदोसे) हिंसा,
कुशाखु, चोरी, आदि पापकर्मोंमाथी केह पणु ओठ पापकर्ममा ने भगवान प्रवृत्ति
थवी ते उन्नदोष हे हिंसादिक यथा पापकर्मोंमा ने भगवान प्रवृत्ति थवी ते बहु
दोष हे कुशाखादिकना संस्कारजन्य अज्ञानथी हिंसादिकमा धर्मबुद्धिथी प्रवृत्ति
थवी ते अज्ञानदोष हे मरणपर्यन्त पश्चात्ताप ठयां वगर हिंसादिक ठमोंमा

४। धम्मज्जाणे चउच्चिहे चउप्पडोयारे पण्णत्ते; तं जहा-आणा-

‘आमरणतदोसे’ जामग्गान्तदोष-मग्गमेव अतो मग्गान्त, मग्गपर्यन्तममन्नातानु-
 तापम्य काळ्यौररिक्कादेवि या हिंसादिषु प्रवृत्ति सा प्रवृत्तिरयं जामग्गान्तदोष । १। एषु
 यानपु आर्तगंठे थाये र्मेशुधे तु माये । ‘धम्मज्जाणे चउच्चिहे चउप्पडोयारे पण्णत्ते’
 र्मेश्यान चतुर्विधं चतुप्रथमतार प्रज्ञपम् । र्मेश्यान चतुर्विध-चतस्रो विधा-स्वरूप-
 लक्षणानुपेक्षा रूपा प्रकार यस्मिन् तन्तयोक्तम् । चतुप्रथमतार च-स्वरूपान्पिपुण्ड्रकस्य
 चतुप्रकारतया प्रथमतागे-विचारणीयत्वेन अतस्त्वं यस्मिन् तत्, प्रथमे चतुर्विधमिथये, प्रज्ञ
 पम् । तत्र स्वरूपस्य चतुर्विधमाह-तथा-‘आणाविचए’ आज्ञाविचयम्-आज्ञा=जिनप्रवचन,
 तस्या विचय =वशाशेचन यत्र तत्तथा, आज्ञागुणाऽनुचिन्तनमिथये, आज्ञामेव चिन्तयेत्-आज्ञा
 भगवत सर्वस्य पूजापरिशुद्धा निरग्रजनीयकायहिताऽनया महाया महानुभावा निपुणजन-
 दिका म प्रवृत्तिशाल रहना सो आमरणा तदोष ह । इन चार व्याप्ता म आर्त-रौद्र-ध्यान छोड़ने
 योग्य है, और धर्म यान पच शुद्ध ध्यान ये दो यान प्राय हैं । अब धर्म यान का भेद कहते
 हैं-(धम्मज्जाणे चउच्चिह चउप्पडोयारे पण्णत्ते) धर्म ध्यान-स्वरूप, लक्षण, आलम्बन,
 पय अनुपेक्षा क भेद से चार प्रकार का है, इन चारों म भी एक एक के चार चार भेद
 होते हैं । इस प्रकार कुल इसके १६ भेद हो जाते हैं । धर्म ध्यान के चार स्वरूप ये हैं-
 (आणाविचए, अजायविचए, विरागविचए, सठाणविचए,) अज्ञाविचय, अपायविचय,
 विपाकविचय और स्थानविचय । तार्थकर प्रभु की आज्ञा का निश्चय विचार किया जाय
 वह आज्ञाविचय र्मेश्यान है । तार्थकर प्रभु की आज्ञा का चिन्तन इसम इस प्रकार किया
 जाता है-भगवान का आज्ञारूप प्रवचन पूजापर में निद्राप है, निरग्रज जी को का हितकर्ता
 प्रवृत्तिगीत श्लेषु ते आभञ्ज्यात् दोष ७ आ आश्वेय व्यान्तामा आर्त-रौद्र
 ध्यान छोड़ना योग्य है अने धर्म यान तेमज शुद्ध ध्यान ये दो ध्यान ब्रह्म
 उरवा आश्वेय ७ छुवे धर्म ध्यानना प्रकार छोड़े- (धम्मज्जाणे चउच्चिह चउप्प-
 डोयारे पण्णत्ते) धर्म ध्यान, स्वरूप, लक्षण, आलम्बन तेमज अनुपेक्षा ना लेदधी
 चार प्रकारतु छे ७। आन्ता पण्णत्ते येदयेतना चार चार भेद बाध छे
 ये गीते कुल तेना सोण (१६) भेद वध तय ७ (तज्जहा) धर्म ध्यानना चार ४
 स्वरूप आ ७-(आणाविचए, अजायविचए, विरागविचए, सठाणविचए) आज्ञा
 विचय, अपायविचय, विपाकविचय अने म-ध्यानविचय, तीर्थ कर प्रभुनी
 आज्ञानो जेमा विचार करवाभा आवे ते आज्ञाविचय धर्म ध्यान ७ तीर्थ-
 कर प्रभुनी आज्ञानु चितवन जेमा आ गीते उगय ७-भगवाननु आज्ञाप
 प्रवचन पूजापरमा निर्दोष छे, तमाभ छेवोने हितठना ७, अनवध ७,

विचए १ अवायविचए २. विवागविचए ३ संठाणविचए ४।

धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पणत्ता, त जहा-आणा-

विचयेया द्रव्यपयायप्रपन्नोपिनी अनाधनन्ता नप्रपन्नमोचनान नरकनिगोदाट्टि ग्विचिसिनी कर्म-
गन्धिभेदिनी विचये । २- 'अपायविचए' अपायविचयम्-अपाया=रागद्वेषादिजन्या अन-
धास्तेषा विचयो यत्र तत्तथा, विषयतोपाऽनुचितनमित्यर्थ । ३ 'विवागविचए' विषाकवि-
चयम्-विषाक=कर्मफल, तस्य विचयो यत्र तत्तथा कर्मफलऽनुचितनमित्यर्थ । ४-
'संठाणविचए' मस्थानविचयम्-मस्थानानि=शेकटापममुद्रायाऽत्रय, तेषा विचयो यत्र तत्
तथा, 'धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पणत्ता' धर्मस्य गत्व ध्यानस्य चत्तारि लक्ख-
णानि प्रज्ञपानि, 'त जहा' तद्यथा-१-'आणारुड' आज्ञारचि-आज्ञा=मर्वजप्रचनरूपा, तथा

हे, अनपच हे, गभीर हे, प्रभाजगाला हे, निपुगजनविचये हे, द्रव्य एव पयाया का बोधक
हे, अनादि एव अनन्त हे, -साग का अन्त कर्म गाला हे नरक एव निगोदाट्टिक के दुःखो
का विनाशक हे और कर्मगन्धि का उच्छेदक हे ॥१॥ अपायविचय-रागद्वेष आदि से जन्म
धन्यों का नाम अपाय हे । इनका विचारना जिसमें होता है-अथान् अन्नादि विषयों के
दोषों का अनुचिन्तन जिसमें क्रिया जाता है वह अपायविचय धर्मध्यान है ॥२॥ विषाक-
विचय-कर्मफल का नाम विषाक हे, इसका चिन्तन करना अथान् कर्म में उद्भू हो आमा
चतुर्गति-साग म भ्रमण करता है ऐसा जो विचारना मो विषाकविचय हे ॥३॥ मस्थान-
विचय-चौथा भेद हे, मस्थानका अर्थ लोकद्वय एव ममुद्रादिक का आकार हे, इनका
विचार करना सो मस्थानविचय है ॥४॥ (धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पणत्ता)

गली० हे, प्रभावशाली हे, निपुण बोधोत्थी ज्ञानवा योग्य हे, द्रव्य तेमज
पयाथेतु आवक हे, अनादि अनन्त हे, मस्थानो अत उरवावाणु हे,
नरक तेमज निगोद आदिना हु योतु विनाशक हे, उर्मनी अन्धितु उच्छे-
दक हे (१) अपायविचय-रागद्वेष आन्धित्ये यथा अनयोतु नाम अपाय हे
तेनो विचार नेमा उराय हे अर्थात् शब्दादि विषयोना दोषोतु अनुचितन
नेमा उराय हे ते अपायविचय धर्मध्यान हे (२) विषाकविचय-कर्मफलतु
नाम विषाक हे तेतु चितन उरुतु, अर्थात् उर्मथी यथायेदो आत्मा
चतुर्गति-मस्थाना भ्रमणु उरे हे अथ ने विचारतु ते विषाकविचय
हे (३) मस्थानविचय योश्चे प्रकार हे मस्थाननो अर्थ बोध, द्वीप तेमज
ममुद्रादि, नो आकार हे, तेनो विचार उरयो ते मस्थानविचय हे (४)
(धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पणत्ता) धर्मध्यानना चार लक्षणु उद्धा हे

रुई १, गिसगरुई २, उवएसरुई ३, सुत्तरुई ४। धम्मस्स ण
झाणस्स चत्तारि आलंबणा पणत्ता, तं जहा-त्रायणा १, पुच्छणा

धर्मानुष्ठानगता रुचि = श्रद्धानम् । २- 'गिसगरुई' निसर्गरुचि = स्वभावतत्त्वप्रधानम् ।
३- 'उवएसरुई' उपदेशरुचि = साधुपदेशात्तत्त्वप्रधानम् । ४- 'सुत्तरुई' सूत्ररुचि मृते = आगम
रुचि = श्रद्धानम् । आज्ञाऽऽराधनविषया रुचि - आज्ञारुचि 'आज्ञा पूजापरिशुद्धाऽनवद्या'-एतद्रूपा
याऽऽगमविषया रुचि सा सूत्ररुचिगिति तयोर्भेदः । 'धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि आलंबणा
पणत्ता' धर्मस्य सत्त्व ध्यानस्य च त्रयालम्बनानि प्रजनानि-धर्मध्यानविशुद्धिपरिणामं यान्या-
लम्बयन्ते = आश्रीयन्ते तान्यालम्बनानि चतुर्विधानि कथितानि, 'तज्जा' तद्यथा-१- 'त्रायणा'

धर्मध्यान के चार लक्षण कह गये हैं, (त जहा) वे इस प्रकार से हैं-(आणारुई, गिसगरुई,
रुई, उवएसरुई, सुत्तरुई) आज्ञारुचि, निसर्गरुचि, उपदेशरुचि, सूत्ररुचि । तीर्थंकर भगवान्
की आज्ञा के आराधन करने में श्रद्धा का उत्पन्न होना आज्ञारुचि है १ । स्वभाव से जिन-
प्ररूपित तत्वों में श्रद्धा होना निसर्गरुचि है २ । साधु-मुनिराजों के उपदेश से तत्वों में
श्रद्धा होना उपदेशरुचि है ३ । जेनागमों में श्रद्धा होना सूत्ररुचि है ४ । आज्ञारुचि और
सूत्ररुचि में क्या भेद है? इसका उत्तर यह है कि तीर्थंकर भगवान् का आज्ञा का आराधन
करना-आज्ञारुचि है, तथा तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा पूजापरिशुद्ध है अनवद्य है-इस
प्रकार आगम क विषय में दृढश्रद्धा होना-सूत्ररुचि है । यही इन दोनों में भेद है ।
(धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि आलंबणा पणत्ता) धर्म ध्यान के आलम्बन ४ चार हैं । ये
आलम्बन धर्मध्यान के विश्वर पर चढ़ने के लिये जायों को सटार का काम देते हैं, (त जहा)

(त जहा) ते आ प्रकारे ७-(आणारुई, गिसगरुई, उवएसरुई, सुत्तरुई) आज्ञारुचि,
निसर्गरुचि, उपदेशरुचि, सूत्ररुचि तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा का आराधन
करना-आज्ञारुचि है, तथा तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा पूजापरिशुद्ध है अनवद्य है-इस
प्रकार आगम क विषय में दृढश्रद्धा होना-सूत्ररुचि है । यही इन दोनों में भेद है ।
(धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि आलंबणा पणत्ता) धर्म ध्यान के आलम्बन ४ चार हैं । ये
आलम्बन धर्मध्यान के विश्वर पर चढ़ने के लिये जायों को सटार का काम देते हैं, (त जहा)

૨, પરિચટ્ટણા ૩, ધમ્મકહા ૪। ધમ્મસ્સ ણં ડ્રાણસ્સ ચત્તારિ
અણુપ્પેહાઓ પણ્ણત્તાઓ, તં જહા-અણિચ્છાણુપ્પેહા ૧, અસર-
ણાણુપ્પેહા ૨, ઇગત્તાણુપ્પેહા ૩, સસારાણુપ્પેહા ૪।

વાચના, ૨ 'પુચ્છણા' પ્રચ્છના, ૩-'પરિચટ્ટણા' પરિવર્તના, ૪-'ધમ્મકહા' ધર્મકથા,
'ધમ્મસ ણ ડ્રાણસ્સ ચત્તારિ અણુપ્પેહાઓ પણ્ણત્તાઓ' ધર્મસ્ય ગત્તુ ધ્યાનસ્ય ચતત્ત્વોઽનુપ્રેક્ષા
પ્રજ્ઞા 'ત જહા' તથા-'અણિચ્છાણુપ્પેહા' અનિયાનુપ્રેક્ષા=અનિ ચચિન્તનિકા, તથા ચોક્તમ્-

“ કાય મનિહિતાપાય, સપદ પદમાપદામ્ ।

સમાગમા સાપગમા, સર્વમુત્પાદિ ભક્કરમ્ ” ॥ ૧ ॥ ટ્ઠિ ॥

તે ટ્ઠ સ પ્રકાર હૈ—(વાચણા) વાચના ૧, (પુચ્છણા) પ્રચ્છના ૨, (પરિચટ્ટણા) પરિવર્તના
૩, (ધમ્મકહા) ધર્મકથા ૪ । ટ્ઠના સ્વરૂપ પીઠે કહ દિયા ગયા હ । (ધમ્મસ્સ ણ
ડ્રાણસ્સ ચત્તારિ અણુપ્પેહાઓ પણ્ણત્તાઓ) ધર્મધ્યાન કો ચાર અનુપ્રેક્ષા કહી હૈ, (તં
જહા) તે યે હે—(અણિચ્છાણુપ્પેહા) અનિયાનુપ્રેક્ષા-ટ્ઠસમ સમસ્ત પોદ્ગલિક પદાર્થો કા
અનિયરૂપ સે ચિન્તવન ક્રિયા જાતા હૈ, જૈસે—

કાયઃ સનિહિતાપાયઃ, સપદઃ પદમાપદામ્ ।

સમાગમાઃ સાપગમાઃ, સર્વમુત્પાદિ ભક્કરમ્ ॥૧॥

કમ ગરીર ક પાઠે અપાય-રોગાદિ લગા હુઆ હૈ । કમલિયે યહ નષ્ટ હોને વાલા
હૈ । યહ ધનગાન્ધાદિ સમ્પત્તિ, આપત્તિયો કા સ્થાન હૈ । ક્યો કિ ડસોંકે કારણ સ્ત્રી, પુત્ર,
મિત્ર, સ્વજન, પરિજન ઓર ગ્રામજન આદિ સે ગચ્છતા હોતા હૈ, લડાઈ હોતી હૈ, અન્ત મે

હે, (ત જહા) તે આ પ્રમાણે હે—(વાચણા) વાચણા-વાચણુ ૧, (પ્રચ્છણા) પ્રચ્છણા-
પુચ્છણુ ૨, (પરિચટ્ટણા) પરિવર્તના-આવૃત્તિ ઠરવી ૩, (ધમ્મકહા) ધર્મકથા ૪,
એમનુ સ્વરૂપ પાછળ ઠહેલાઈ ગયુ હે (ધમ્મસ્સ ણ ડ્રાણસ્સ ચત્તારિ અણુપ્પેહાઓ
પણ્ણત્તાઓ) ધર્મધ્યાનની આર અનુપ્રેક્ષા કહી હે, (ત જહા) તે આ પ્રમાણે
હે—(અણિચ્છાણુપ્પેહા) અનિયાનુપ્રેક્ષા-આમા સમસ્ત પોદ્ગલિક પદાર્થોનુ
અનિત્યરૂપથી ચિન્તવન ઠરવામા આવે હે જેમકે—

કાય સનિહિતાપાય, સપદ પદમાપદામ્ ।

સમાગમા સાપગમા, સર્વમુત્પાદિ ભક્કરમ્ ॥ ૧ ॥

આ ગરીરની પાછળ અપાય-રોગ-આદિ લાગી ગહેલા હે, તે માટે તે
નાશ પામવાવાળુ હે આ ધન-ધાન્યાદિ-સમ્પત્તિ આપત્તિઓનુ સ્થાન હે

‘અસરણાણુત્પેદા’ અગરણાનુપ્રેક્ષા—અગરણપર્યાયોચના યમ્યા ગમ્તી ન
 ફરયાપિ રક્ત પ્તદ્રૂપા, ઝમઝગમગમમયૈર્ગમિદ્રુત યાધિપદનાપ્રસ્તે જિનરગ્વચનાદન્
 ગમ્ણ સ્વચિત્તોક્ત—દ્વયેત્તમગ્રાણમ્ય=અગ્રાણસ્ય અનુપ્રેક્ષા=પર્યાયોચના ।

પ્રાણ તક્ર સ્વોના પડતા હ । જિન જિન અભિગ્વિન પ્રિય સ્ત્રી, પુત્ર, ધન આદિ કા મ
 અર્થાત્ પ્રાપ્તિ હોતી હ, ય સત્ર મિન્દુહન વાલે હ । ત્યો કિ નયોગ કે વાદ વિયોગ
 હોતા હ । અધિક ત્યો, જો જો ઉપન્ન હોતા હ, ત્હ સત્ર નિયમત નાઃ મા હોતા ।
 વ્યો કિ ઉપત્તિશીલ સમી પદાર્થ વિનશ્વર અર્થાત્ નાશવાન્ હોત હ । તેમ વિનશ્વર પદાર્થો મ
 ફિર આસક્તિ ઓર પ્રેમ ત્યો ’ ઁચિત યદ્ હ કિ જો ધર્મ ક્રમા મી નષ્ટ હોને ગાજી નહીં હૈ
 ઁસી પર મુઝે આકર્ષણ હોના ચાટિયે, ઁન વિનશ્વર સાસારિક પદાર્થો પર નહીં ’ ઁસ પ્રકાર
 સાસારિક સમસ્ત પદાર્થો કે પ્રતિ અનિયત્વ કા ચિન્તન કરના અનિયાનુપ્રેક્ષા હૈ ॥૧॥

(અસરણાણુત્પેદા) અગરણાનુપ્રેક્ષા—મમાર મ ઁમ જીવ કા કોદે મી શરણ
 નહા હૈ । જન્મ, જરા ઁવ મગ્ણ ક મય સે ત્યાનુલ હુગ ઁવ ત્યાધિ ઓર વેદના સે પ્રસ્ત
 વન હુગ ઁમ પ્રાણા કા યદિ લોક મે કોદે ગરણ હૈ તો વહ ઁક જિનર કા ધર્મ હી હૈ,
 ઓર કોદ નહા ’ ઁસ પ્રકાર સે ઁસ અનુપ્રેક્ષા મ વિચાર ક્રિયા જાતા હ । કહા મી હ—

કેમકે તેના જ ઁગણ્ણે સ્ત્રી, પુત્ર, મિત્ર, સ્વજન, પરિજન અને ગામના લોકો
 આદિ માથે શત્રુતા થાય છે, લડાઈ (ઁગડા) થાય છે, આખરે પ્રાણુ સુધી
 ખોવો પડે છે જે જે અભિલષિત પ્રિય સ્ત્રી, પુત્ર, ધન આદિનો સમાગમ
 અર્થાત્ પ્રાપ્તિ થાય છે તે ઁધા વિષ્ટા પડનાર છે, કેમકે સયોગ પછી વિયોગ
 અવશ્ય થાય છે, વધારે શુ ? જે જે ઉત્પન્ન થાય છે તે ઁધુ નિયમપ્રમાણે
 નાશ પણ પામે છે જ, કેમકે ઉત્પત્તિશીલ તમામ પદાર્થ વિનશ્વર અર્થાત્
 નાશવાન હોય છે, તો એવા વિનશ્વર પદાર્થોમા વળી આસક્તિ અને પ્રેમ
 શા માટે ? ઉચિત તો એ છે કે—જે ધર્મ કદી પણ નાશ પામનાર નથી
 તે ઉપર જ મને આકર્ષણ થવુ જોઈએ, આ વિનશ્વર સાસારિક પદાર્થો પર
 નહિ એ પ્રકારે સાસારિક તમામ પદાર્થો માટે અનિત્યપણાનુ ચિતન કરવુ
 તે અનિયાનુપ્રેક્ષા છે (૧) (અસરણાણુત્પેદા) અશરણાનુપ્રેક્ષા—મમારમા આ
 હવનુ કોઈ પણ શરણુ નથી જન્મ, જરા તેમજ મરણના લયથી વ્યાકુળ
 થતા તેમજ વ્યાધિ અને વેદનાથી ઁસ્ત ઁની જતા આ પ્રાણીનુ જે કોઈ
 શરણુ (આશ્રય) હોય તો તે એકમાત્ર આ લોહમા જિનવરનો ધર્મ જ છે,
 બીજુ કોઈ નહિ આ પ્રકારના આ અનુપ્રેક્ષામા વિચાર કરવામા આવે છે
 કહુ પણ છે—

कलत्रमित्रपुत्रादि-स्नेहग्रहनिवृत्तये ।

इति शुद्धमति कुर्यादगरण्यत्वभावनाम् ॥१॥

अगरणभावना चैवम—

इन्द्रोपेन्द्रादयोऽप्येते यन्मृत्योर्यान्ति गोचरम् ।

अहो तदन्तकातङ्के क शरण्य शरीरिणाम् ॥१॥

पितुर्मातुः स्वसुभ्रातृस्तनयाना च पश्यताम् ।

अत्राणो नीयते जन्तुः कर्मभिर्यमसद्मनि ॥२॥

कलत्रमित्रपुत्रादि,-स्नेहग्रहनिवृत्तये ।

इति शुद्धमतिः कुर्यादगरण्यत्वभावनाम् ॥१॥

शुद्धबुद्धियुक्त भव्य प्राणी स्त्री, पुत्र, मित्र, स्वजन-सम्बन्धी आत्मा क स्नेह-बन्धन से मुक्त होने के लिये इस प्रकार से अग्रणभावना की चिन्ता करे ।

अग्रणभावना इस प्रकार से करनी चाहिये—

इन्द्रोपेन्द्रादयोऽप्येते, यन्मृत्योर्यान्ति गोचरम् ।

अहो ' तदन्तकातङ्के, कः शरण्यः शरीरिणाम् ॥१॥

ये महापगुरुमी अजेय इन्द्र, उपेन्द्र आदियों को भी जब कालने कवलित कर-लिया, तो, अरे ! इस मसार में साधारण मनुष्य की फिर गणना ही क्या है ' उस सर्वविजयी काल के आन पर मनुष्य का क्या कोट त्राण, शरण हो सकता है ' कोई नहीं ' ॥१॥

पितुर्मातुः स्वसुभ्रातृस्तनयाना च पश्यताम् ।

अत्राणो नीयते जन्तुः, कर्मभिर्यमसद्मनि ॥२॥

कलत्रमित्रपुत्रादि-स्नेहग्रहनिवृत्तये ।

इति शुद्धमति कुर्यादगरण्यत्वभावनाम् ॥१॥

शुद्धबुद्धियुक्त भव्य प्राणी स्त्री, पुत्र, मित्र, स्वजन, सम्बन्धी आदिना स्नेह-अधनथी मुक्त थवा भाटे आ प्रकारे अशरलुभावनानी चिता अरे अशरलुभावना आ प्रकारे अरवी जेधये—

इन्द्रोपेन्द्रादयोऽप्येते, यन्मृत्योर्यान्ति गोचरम् ।

अहो ! तदन्तकातङ्के, क शरण्य शरीरिणाम् ॥१॥

ये महापराकृमी अजेय इन्द्र, उपेन्द्र आदिशेने पशु न्यारे जाल डेजिओ करी गयो, तो अरे ! आ न मारभा साधारण मनुष्यनी पनी गण-त्री न शु छे ? ते अधानो विजेता येवे जाल आवी जता मनुष्यनु शु केध रक्षण के शरण थध थके छे ? कोध न नहि (२)

शोचन्ति स्वजनानन्त नीयमानान् स्वकर्मभिः ।
 नेष्यमाण न शोचन्ति स्वामान मूढबुद्धयः ॥३॥
 ससारे दुःखदावाग्नि-ज्वलज्ज्वालाकरालिते ।
 वने मृगार्भकस्येव शरण नास्ति देहिनः ॥४॥

असहाय जीव अपन कर्मों के द्वारा मृत्यु के समीप पहुँचाये जाते हैं । अर्थात्-माता, पिता, भाई, जहन, पुत्र, पुत्री, स्त्री आदि के देखते ही देखते जीव को उसका स्वकृत कर्म मृत्यु के लिये समर्पित कर देता है, उस समय उस जीव के प्राण कर्म में माता पिता आदि कोई भी समर्थ नहीं होते हैं, जीव अकला ही मृत्यु प्राप्त कर स्वकृत कर्मानुसार फल भोगता है ॥२॥

शोचन्ति स्वजनानन्त, नीयमानान् स्वकर्मभिः ।

नेष्यमाण न शोचन्ति, स्वात्मान मूढबुद्धयः ॥३॥

अज्ञाना जीव स्वकृत कर्मों के द्वारा मरते हुए स्वजना के लिये शोक करता है, परन्तु वह अज्ञानी जीव अपन लिये नहीं सोचता है, जो वह स्वयं अपन कर्म के द्वारा स्वयं मृत्यु के निकट पहुँच रहा है ॥३॥

ससारे दुःखदावाग्नि-ज्वलज्ज्वालाकरालिते ।

वने मृगार्भकस्येव, शरण नास्ति देहिनः ॥४॥

पितुर्मातु स्वमुभ्रातु-स्तनयाना च पश्यताम् ।

अत्राणो नीयते जन्तु, कर्मभिर्यमसङ्गनि ॥३॥

पिता, माता, भाई, पुत्र, पुत्री, स्त्री आदिना जेतजेतामा व अमहाय एव पोताना उभेद्वारा मृत्युनी समीपे गत्ये, अर्थात्-माता, पिता, भाई, भाई, पुत्र, पुत्री, स्त्री आदिना जेतजेतामा व एवने तेन पोतानु कर्म मृत्युने समर्पण करी है, तो समर्थे ते एवतु रक्षण करवाभा माता पिता आदि केषिषण्य अमर्थं यता नथी एव शोकलो व मृत्यु प्राप्त करीने स्वकृत (पोते उभेदा) कर्मानुसार शरण भोगये छे (२)

शोचन्ति स्वजनानन्त, नीयमानान् स्वकर्मभिः ।

नेष्यमाण न शोचन्ति, स्वात्मान मूढबुद्धयः ॥३॥

अज्ञानी एव स्वकृत कर्मोंद्वारा मरी जाता स्वजनों भाटे शोक करे छे, परन्तु ते अज्ञानी एव पोताने भाटे नथी विचार उरता उ ते पोते पोताना कर्म द्वारा मृत्युनी पाते पड़ोनी रह्या छे (३)

ससारे दुःखदावाग्नि-ज्वलज्ज्वालाकरालिते ।

वने मृगार्भकस्येव, शरण नास्ति देहिनः ॥४॥

अन्यत्र—परलोकसहायार्थं पिता माता न तिष्ठत ।
न पुत्रदार न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवल ॥१॥

३- 'एगत्ताणुप्पेहा' एकवानुप्रेक्षा-आमन एकाकि चिन्तनम्, तथा चोक्तम्—
उपघते जन्तुरिहेक एव विपद्यते चैक एव दुःखी ।
कमाजिययेक एव चित्तम् आसेयते तफलमेक एव ॥१॥

जैसे प्रचण्ड ज्वालानि की ज्वाला से जलते हुए वन में मृग के उधे का कोट रक्षक नही होना है, उसी प्रकार दुःखरूपी ज्वालानि की प्रचण्ड ज्वाला से जलते हुए उस ममार में आमा का कोट रक्षक नहीं है ॥१॥ और भी कहा है—

परलोकसहायार्थं, पिता माता न तिष्ठतः ।
न पुत्रदार न ज्ञाति-धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥

माता-पिता परलोक में जीव को सहायता के लिये नही जाते हैं, न स्त्री, पुत्र, स्वजन-स्वमी आदि ही जाते हैं। मात्र एक धर्म ही परलोक में जीव के साथ जाना है ॥१॥

—उस प्रकार से चिन्तन करना सो अशरणानुप्रेक्षा है।

(एगत्ताणुप्पेहा) एकवानुप्रेक्षा-आत्मा अकेला है। उस प्रकार से चिन्तन करना-एकवानुप्रेक्षा है। एकवानुप्रेक्षा का चिन्तन इस प्रकार से करना चाहिये, जैसे-कर्म के फलों को यह जीव अकेला ही भोगता है। माता पिता आदि कोई भी इस जीव को साथ नही देते हैं। सब अपन २ स्वार्थ के हैं। कहा भी है—

लेम प्रत्येद हावाग्निनी ल्वालाथी षणता वनमा मृगना अन्थाओनो
केरि रक्षक थतो नथी, तेव प्रकारे दु भइथी हावाग्निनी प्रत्येद ल्वालाथी
षणता आ न सारमा आत्मानो केरि रक्षक नथी (४)

वणी पणु उधु छे—

परलोकसहायार्थं, पिता माता न तिष्ठत ।

न पुत्रदार न ज्ञाति, -धर्मस्तिष्ठति केवल ॥१॥

माता-पिता परलोकमा लुवनी सहायता माटे जता नथी, न स्त्री,
पुत्र, स्वजन, स्वमी आदि पणु नथ छे मात्र ओक धर्म ए परलोकमा
लुवनी साथे नथ छे आ प्रजे चित्तन करवु ते अशरणानुप्रेक्षा छे (५)
(एगत्ताणुप्पेहा) ओत्तवानुप्रेक्षा-आत्मा ओकेलो छे ओ प्रजे चित्तन
करवु ते ओत्तवानुप्रेक्षा छे ओत्तवानुप्रेक्षा चित्तन आ सीते करवु ओरिओ,
नेमके-कर्मना इणने आ लुव ओत्तलो ए भोगवे छे, माता पिता आदि
केरि पणु आ लुवने साथ देता नथी औ पोतपोताना स्वार्थना छे

यज्जीवेन धन स्वय बहुविधैः ऋष्टैरिहोपार्ज्यते,
 तत्सभूय कलत्रमित्रतनयैर्भ्रात्रादिभिर्भुज्यते ।
 तत्तत्कर्मवशाच्च नारकनरस्ववासितिर्यग्भवे—
 प्लेक सैप मुदु सहानि सहते दुःखान्यसह्यायतो ॥२॥

उत्पद्यते जन्तुरिहैक एव, विपद्यते चैक एव दुःखी ।
 कर्माजित्येक एव चित्रम्, आसेवते तत्फलमेक एव ॥१॥

जीव अकेला ही इस मसार में उत्पन्न होता है, अकेला ही अपार दुःख का अनुभव करते हुए मृत्यु को प्राप्त होता है, अकेला ही वह नानाविध कर्मों का उपार्जन करता है, तथा अकेला ही उनका फल भोगता है ॥१॥

यज्जीवेन धन स्वय बहुविधैः ऋष्टैरिहोपार्ज्यते,
 तत्सभूय कलत्रमित्रतनयैर्भ्रात्रादिभिर्भुज्यते ।
 तत्तत्कर्मवशाच्च नारकनरस्ववासितिर्यग्भवे—
 प्लेकः सैप मुदु सहानि सहते दुःखान्यसह्यायतो ॥२॥

जाव जो अनकविध कर्मों से स्वय धनोपार्जन करता है, उस जन का उपभोग स्त्री, पुत्र, भाई—बन्धु, मित्र, स्वजन—सम्बन्धी आदि करते हैं । परन्तु धनोपार्जन करनेवाला वह जीव तो स्वकृत उन उन कर्मों के अनुसार देव मनुष्य नारक तिर्यक् आदि-

०६ पथ्ये —

उत्पद्यते जन्तुरिहैक एव विपद्यते चैक एव दुःखी ।
 कर्माजित्येक एव चित्रम्, आसेवते तत्फलमेक एव ॥१॥

एव ऐकलो व आ ससारमा उत्पन्न थाय छे, ऐकलो व अपार दुःखो अनुभव करतो करतो मृत्युने प्राप्त थाय छे, ऐकलो व ते अनेक प्रकारना कर्मोनु उपार्जन करे छे, तथा ऐकलो व तेनु इण लोगवे छे (१)

यज्जीवेन धन स्वय बहुविधैः ऋष्टैरिहोपार्ज्यते,
 तत्सभूय कलत्रमित्रतनयैर्भ्रात्रादिभिर्भुज्यते ।
 तत्तत्कर्मवशाच्च नारकनरस्ववासितिर्यग्भवे—
 प्लेक सैप मुदु सहानि सहते दुःखान्यसह्यायतो ॥२॥

एव जे विधविध अनेक ०६०धी पोते धन उपार्जन करे छे ते धनो उपभोग स्त्री, पुत्र, भाई—बन्धु, मित्र, स्वजन—सम्बन्धी आदि करे छे परन्तु धनोपार्जन करवावाणो ते एव तो पोते करेला ते ते कर्मो अनुसार देव मनुष्य नारक तिर्यक् आदि लोकोमा ऐकलो व अतिदुःख अनत

जीवो यस्य कृते भ्रमत्यनुदिनं दैन्यं समालम्बते,
धर्माद् भ्रश्यति वञ्चयत्यतिहितान् न्यायादपक्रामति ।
देह सोऽपि महात्मना न पद्मप्येकं परस्मिन् भवे,
गच्छत्यस्य ततः कथं वदत भो ! साहाय्यमाधास्यति ॥३॥
स्वार्थैरुनिष्टं स्वजनस्वदेह, - मुख्यं ततः सर्वमवेत्य सम्यक् ।
सर्वस्य कल्याणनिमित्तमेक, धर्मं सहायं विन्दीत धीमान् ॥इति॥

भरों में अकेला ही अतिदुःख अनन्त दुःखों को सहता रहता है। अहो ! इस जगत् में कोई भी अपना नहीं है ॥ २ ॥ और भी कहा है—

जीवो यस्य कृते भ्रमत्यनुदिनं दैन्यं समालम्बते,
धर्माद् भ्रश्यति वञ्चयत्यतिहितान् न्यायादपक्रामति ।
देहः सोऽपि महात्मना न पद्मप्येकः परस्मिन् भवे,
गच्छत्यस्य ततः कथं वदत भोः ! साहाय्यमाधास्यति ॥३॥

जगत् जिस शरीर के लिये चारों दिशाओं में रूम्ता-फिरता रहता है, पीनता प्रदर्शित करता है, धर्म से भ्रष्ट होता है, अपने अत्यन्त हितैषियों को भी टगता है, न्यायमार्ग से चलित होता है, वह शरीर भी जीव के साथ परमवर्त्म एक पग भी नहीं साथ देता। हे भगवन् ! सोचो-विचारो ! यह जगत् तुम्हारी क्या सहायता कर सकता है, कुछ नहीं ॥३॥ और भी कहा है—

स्वार्थैरुनिष्टं स्वजनस्वदेह, - मुख्यं ततः सर्वमवेत्य सम्यक् ।
सर्वस्य कल्याणनिमित्तमेक, धर्मं सहायं विन्दीत धीमान् ॥४॥

दुःखोंने सहन करतो रहते छे अछे। आ सभारभा कोछे आपणु नथी (२)
पीणु पणु कछु छे—

जीवो यस्य कृते भ्रमत्यनुदिनं दैन्यं समालम्बते,
धर्माद् भ्रश्यति वञ्चयत्यतिहितान् न्यायादपक्रामति ।
देह सोऽपि महात्मना न पद्मप्येकं परस्मिन् भवे,
गच्छत्यस्य ततः कथं वदत भो ! साहाय्यमाधास्यति ॥३॥

एव जे शरीरने भाटे आरिध दिशाओभा लटकतो करतो रहते छे, पीनता जातावे छे, धर्मशी भ्रष्ट थाय छे, पीनाना अत्यन्त हितैषियोंने पणु टगे छे, न्यायमार्गशी अलित थाय छे, ते शरीर पणु एवनी साथे पर लवभा ओके टगलुओ साथे आपणु नथी छे लव्ये। शोचो-विचारो ! आ शरीर तभारी शु सहायता करी सकरो ? कोछे पणु नहि !

૪—‘સસારાણુપ્પેહા’ સસારાણુપ્પેહા—સસારસ્ય ચતત્તપુ ગતિણુ મત્તાનુ વાનુ સમગ્ગાલ્લયગ્ગસ્ય અણુપ્પેહા—તથા ચોક્કમ્ —

માતા પરમ્ભવે પુત્રી સૈવ જન્માન્તરે સ્વસા ।

પુનર્ભાર્યા ભવેત્ સૈવ પ્રાણિના ગતિરીદૃશી ॥૧॥

માતા, પિતા, સ્ત્રી, પુત્ર, સ્વજન, મત્રથી જાતિ મમી મી મ્યાર્થ કે છે, અપના શરીર સ્વાર્થ કા હો છે, ઇસલિયે બુદ્ધિમાન્ મનુષ્ય ઇન સર્ગ પ્રિયયો પર અન્ત્રી તરત વિચાર કા સમી કા કન્યાણ કરને તાલે ધર્મ કા હી સહાયક બનાવે ॥૧॥

—ઇમ પ્રકાર સે ચિતન કરના ણકવાણુપ્પેહા ઠ

(સંસારાણુપ્પેહા) સસારાણુપ્પેહા—ચતુર્ગતિલક્ષણમ નમાર કે પ્રિયય મ ચિન્તન કરના—સસારાણુપ્પેહા છે । કહા મી છે—

માતા પરમ્ભવે પુત્રી, સૈવ જન્માન્તરે સ્વસા ।

પુનર્ભાર્યા ભવેત્ સૈવ પ્રાણિના ગતિરીદૃશી ॥૧॥

ઇસ મત્ર મે ઇસ જીવ કી જો માતા હોતી છે, વહ દૂસરે મત્ર મે ઇસકી પુત્રા હો જાતી છે, ફિર મવાન્તર મ ઇસકી વહન હો જાતી ઠ, ઇસકે વાદ અન્ય જન્મ મે ફિર વહ ઇસકી માયા હો જાતા છે । અધિક કયા કહા જાય! નસાર કી કુઠ એમી હી વિચિત્ર વગા છે ॥ ૧ ॥ ઓર મા કહા છે—

કરી પણ કહ્યુ છે—

સ્વાર્થકનિઠ સ્વજન સ્વવેદ, મુલ્ય તન સર્વમવેલ્ય સમ્યક્ ।

સર્વસ્ય કલ્યાણનિમિત્તમેક, વર્મ મહાર્ય વિદ્ધીત ધીમાન્ ॥૪॥

માતા, પિતા સ્ત્રી, પુત્ર, સ્વજન—સ બધી જાતિ બધા સ્વાર્થના છે પોતાનુ શરીર પણ સ્વાર્થનુ જ છે, તેથી બુદ્ધિમાન્ મનુષ્ય એ બધા વિષયો ઉપર સારી રીતે વિચાર કરી સર્વનુ કલ્યાણ કરવવાણા ધર્મને જ સહાયક બનાવે આ પ્રકારે ચિતન મ્બુ તે એકવાણુપ્પેહા છે (૫)

(સસારાણુપ્પેહા) સસારાણુપ્પેહા—ચતુર્ગતિલક્ષણવાણા સસારના વિષયમા ચિતન કરવુ તે સસારાણુપ્પેહા છે કહ્યુ પણ છે—

માતા પરમ્ભવે પુત્રી, સૈવ જન્માન્તરે સ્વસા ।

પુનર્ભાર્યા ભવેત્ સૈવ પ્રાણિના ગતિરીદૃશી ॥૧॥

આ ભવમા જે આ જીવની માતા હોય છે તે જ જીવન ભવમા તેની પુત્રી થઇ બંધ છે વળી ભવાન્તરમા તેની બહેન થઈ બંધ છે ત્યાર પછી જીવન જન્મમા વળી તે તેની સ્ત્રી થઈ બંધ છે વધારે કુ કહેવાય! મમા રની કોઈ એવી જ વિચિત્ર વગા છે (૧) કરી પણ કહ્યુ છે—

પિતા પરમત્વ પુત્ર સ તુ ભ્રાતા ભવાન્તરે ।
 પુનસ્તાત પુન પુત્ર પ્રાણિના ગતિરીદૃશી ॥૨॥
 માતાપિતૃમહસ્રાણિ પુત્રદારશતાનિ ચ ।
 સસારેષ્વનુભૂતાનિ યાન્તિ યાસ્યન્તિ ચાપરે ॥૩॥
 કૃષ્ટેગ્રામેધ્યમધ્યે નિયમિતતનુભિ સ્વીયતે ગર્ભવાસે,
 કાન્તાવિશ્લેષ્ટુઃસ્વન્યતિકરવિપમે યૌવને ચોપભોગ ।

પિતા પરમત્વે પુત્રઃ, સ તુ ભ્રાતા ભવાન્તરે ।

પુનસ્તાતઃ પુનઃ પુત્રઃ, પ્રાણિના ગતિરીદૃશી ॥૨॥

દસ સમાર મ જીવ કી પર્યાય ઠક્સા ગાશ્વત નહા ગ્હતી હૈ । જો દસ ભવ મે પિતા હોતા હૈ, ત્હા પરમત્વ મ પુત્ર જન જાતા હૈ, ણ્વ ભવાન્તર મ ભ્રાતા મી હો જાતા હૈ, પશ્ચાત્ત ફિર પિતા હો જાતા હૈ, ફિર પુત્ર હો જાતા હૈ । દસ સમાર મે પ્રાણિયા કી ઈસા હી કુઠ વિચિત્ર ગતિ હ ॥૨॥ ઓર મી કહા હૈ—

માતાપિતૃસહસ્રાણિ, પુત્રદારશતાનિ ચ ।

સસારેષ્વનુભૂતાનિ, યાન્તિ યાસ્યન્તિ ચાપરે ॥૩॥

દસ સમાર મ દસ જીવ કે દજારાં માતા ઓર પિતા વન ચુકે હૈ, હજારો પુત્ર-કલ્ત્ર હો ચુકે હૈ । દસ સમય મી ઈ માતા, પિતા પુત્ર ઓર કલ્ત્ર દસ જાવકે હૈ, ઓર આગ મી ઈ હોંગ ॥૩॥ ઓર મી કહા હૈ—

કૃષ્ટેગ્રામેધ્યમધ્યે નિયમિતતનુભિઃ, સ્વીયતે ગર્ભવાસે,

કાન્તાવિશ્લેષ્ટુઃસ્વન્યતિકરવિપમે યૌવને ચોપભોગઃ ।

પિતા પરમત્વે પુત્ર મ તુ ભ્રાતા ભવાન્તરે ।

પુનસ્તાત પુન પુત્ર, પ્રાણિના ગતિરીદૃશી ॥૨॥

આ સ સારમા ઈવના પર્યાય એક એવી કાયમ રહેતી નથી જે આ ભવમા પિતા હોય છે તેજ પરભવમા પુત્ર થઈ બન્ય છે, તેમજ ભવાન્તરમા ભાઈ પણ થઈ બન્ય છે પછી પિતા થઈ બન્ય છે વળી પુત્ર થઈ બન્ય છે આ સ સારમા પ્રાણિઓની એવીજ ઠંઠ વિચિત્ર ગતિ છે (૨) ફરી પણ કહ્યું છે—

માતાપિતૃસહસ્રાણિ, પુત્રદારશતાનિ ચ ।

સસારેષ્વનુભૂતાનિ, યાન્તિ યાસ્યન્તિ ચાપરે ॥૩॥

આ સ સારમા આ ઈવના હબરો માતાપિતા થઈ સુક્યા છે હબરો પુત્ર-કલ્ત્ર થઈ સુક્યા છે આ સમયે પણ એ માતા, પિતા, પુત્ર અને કલ્ત્ર આ ઈવના છે, અને આગળ પણ આ માતા-પિતા આદિ આ ઈવને થશે જ (૩) વળી કહ્યું પણ છે

સુકઙ્ગાણે ચરવિહે ચરપ્પહોયારે પળ્ણત્તે, તં જહા

નારીણામપ્યવજ્ઞા વિલસતિ નિયત વૃદ્ધભાવેડપ્યસાધુ,
સસારે રે મનુષ્યા! વદત યદિ મુલ્લ સ્વરૂપમપ્યસ્તિ કિંચિત્ ॥૪॥
—ઇદ ધર્મધ્યાનમ્ ॥

‘સુકઙ્ગાણે ચરવિહે ચરપ્પહોયારે પળ્ણત્તે’ શુક્લધ્યાન ચતુર્થિં ચતુષ્પ-

નારીણામપ્યવજ્ઞા વિલસતિ નિયત વૃદ્ધભાવેડપ્યસાધુ,
સસારે રે મનુષ્યા! વદત યદિ મુલ્લ સ્વરૂપમપ્યસ્તિ કિંચિત્ ॥૪॥

અત્યંત અપવિત્ર ગર્ભવાસ મેં રહ કર યહ જીવ અનેક કષ્ટા કો મહતા રહતા હૈ । વહોં ઇસકા ગરીર સિકુડા રહતા હૈ । યૌવન અવસ્થા મ યહ જીવ ત્રિપય ભોગ કે સમય સ્ત્રીવિયોગજનિત દુ સ્વ સે અત્યંત દુ સ્વી હોતા હૈ । સ્ત્રી યદિ જીવિત રહ તો વૃદ્ધાવસ્થા મેં યહ અપની ઉસી સ્ત્રી કા અસહ્ય અપમાન સહન કરતા હૈ । ફિર હૈ મન્યા! તુમ હા કહો, ઇસ સસાર મેં કિંચિન્માત્ર મી સુલ્લ હૈ / કુઠ મી નહા ॥૫॥

ઇસ પ્રકાર જીવ કો સસાર કે વિપય મેં ત્રિચાર કરના ચાહિયે । ઇસ પ્રકાર ધર્મ યાન સમજના ચાહિયે ।

અવ શુક્લધ્યાન કહતે હૈ-(સુકઙ્ગાણે ચરવિહે ચરપ્પહોયારે પળ્ણત્તે) શુક્લધ્યાન ચાર પ્રકાર કા હૈ, ઓર યહ સ્વરૂપ લક્ષણ, આલમન ઇવ અનુપ્રેક્ષા કે ભેદ સે સોઠ્ઠ

કુચ્છેણામેધ્યમધ્યે નિયમિતતનુમિ સ્વીયતે ગર્ભવાસે,
કાન્તાન્નિક્ષેષદુ લ્લગ્યતિક્ષરવિષમે યૌવને ચોપભોગ ।
નારીણામપ્યવજ્ઞા વિલસતિ નિયત વૃદ્ધભાવેડપ્યસાધુ,
સસારે રે મનુષ્યા ! વદત યદિ મુલ્લ સ્વરૂપમપ્યસ્તિ કિંચિત્ ॥૪॥

અત્યંત અપવિત્ર ગર્ભવાસમા રહીને આ જીવ અનેક કષ્ટોને સહન કરતો રહે છે ત્યા તેનું શરીર સકોચાઈને રહે છે જીવાન અવસ્થામા આ જીવ વિષયલોગના સમયે સ્ત્રીવિયોગથી ઉત્પન્ન થતા દુ ખથી બહુ જ દુ ખી થાય છે સ્ત્રી ને જીવતી હોય તો પોતાની વૃદ્ધાવસ્થામા તે પોતાની તે જ સ્ત્રીનું અસહ્ય અપમાન સહન કરે છે માટે હે ભગ્યો ! તમે જ કહો, આ સસારમા જરાપણ સુખ છે ? જરાય નહિ (૮)

આ પ્રકારે જીવને સસારના વિષયમા વિચાર કરવો જોઈએ એ પ્રકારે ધર્મ-ધ્યાન સમજવું જોઈએ

હવે શુક્લધ્યાન કહે છે (સુકઙ્ગાણે ચરવિહે ચરપ્પહોયારે પળ્ણત્તે) શુક્લધ્યાન ચાર પ્રકારનું છે, અને તે સ્વરૂપ લક્ષણ, આલ-

पुहुत्तवियके सवियारी १, एगत्तवियके अवियारि २, सुहुमकिरिए अप्पडिवार्ड ३, समुच्छिन्नकिरिए अणियट्टी ४। सुक्कस्स णं ज्ञाणस्स

व्यवतार प्रजनम् । यथा मलापगमेन शुचिताधमाभिसम्बन्धात् पट शुक्ल इत्युच्यते, तथा रागद्वेषमलापनयनाच्छुचिताधर्मसम्बन्धाद् ध्यानमपि शुक्लमित्युच्यते, तच्चतुर्विधं प्रजनम्, तद् यथा—‘पुहुत्तवियके सवियारी’ पृथक्त्ववितर्कसविचारि १, ‘एगत्तवियके अवियारि’ एकत्ववितर्कसविचारि २, ‘सुहुमकिरिए अप्पडिवार्ड’ सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाति, ३, ‘समुच्छिन्नकिरिए अणियट्टी’ समुच्छिन्नक्रियमनिवर्ति ४—इति ।

तत्र पूर्वगतश्रुतज्ञानानुसारेण ध्येयविशेषगतोत्पादादिनानापर्यायाणां द्रव्यार्थिकं पर्यायार्थिकादिनानान्यैरर्थव्यञ्जनयोगमक्रान्तिसहितानुचिन्तनं पृथक्त्ववितर्कसविचारम् ॥ १ ॥

प्रकार का कहा गया है । जिस तरह मैल के दूर होने से वह बिलकुल साफ हो जाता है और “शुक्लः पटः” इस प्रकार कहा जाता है, उसी तरह रागद्वेषरूपी मैल के अपगमसे ध्यान भी शुद्ध हो जाता है और इसीसे वह शुक्लध्यान कहा जाता है । (तं जहा) इसके वे चार प्रकार ये हैं (पुहुत्तवियके सवियारी) पृथक्त्ववितर्कसविचार, (एगत्तवियके अवियारि) एकत्ववितर्कसविचार, (सुहुमकिरिए अप्पडिवार्ड) सूक्ष्मक्रिय—अप्रतिपाती, (समुच्छिन्नकिरिए अणियट्टी) समुच्छिन्नक्रिय—अनिवर्ति । इनका वर्णन इस प्रकार है—पूर्वगत श्रुतज्ञान के अनुसार ध्येयविशेषगत उत्पाद, व्यय एव ध्रौव्य आदि पर्यायों का द्रव्यार्थिक एव पर्यायार्थिक नयों से अर्थ कान्ति, व्यजनमक्रान्ति एव योगमक्रान्ति युक्त होकर विचार करना सो पृथक्त्ववितर्कसविचार शुक्लध्यान का प्रथम भेद है ॥१॥ जिस तरह सिद्धगारुटिक आदि

धन तेभञ् अनुपेक्षाना लेदथी सोण प्रकारनु कडेवाय छे जेवी रीते मैल धोवावर्ड
जवाथी वस्त्र बिलकुल माइ थधं नय छे अने “शुक्ल पट” जे प्रकारे
कडेवाय छे, जे जे रीते रागद्वेषरूपी मैल दूर थधं जवाथी ध्यान पणु शुद्ध
थधं नय छे, अने ते कारणुथी तेने शुक्लध्यान कडेवाय छे (तं जहा)
तेना चार प्रकार आ छे—(पुहुत्तवियके सवियारी) पृथक्त्ववितर्कसविचार
(एगत्तवियके अवियारि) एकत्ववितर्कसविचार (सुहुमकिरिए अप्पडिवार्ड)
सूक्ष्मक्रिय—अप्रतिपाती (समुच्छिन्नकिरिए अणियट्टी) समुच्छिन्नक्रिय—अनिवृत्ति
पूर्वगत श्रुतज्ञान अनुसार ध्येयविशेषथी यथा उत्पाद, व्यय तेभञ्
ध्रौव्य आदि पर्यायाना द्रव्यार्थिक नयेथी, अर्थसं कान्ति, व्यजनसं कान्ति तेभञ्
योगसं कान्तिथी युक्त थधने विचार करये। ते पृथक्त्ववितर्कसविचार शुक्ल-
ध्यानने प्रथम प्रकार छे (१)

यथा सिद्धगारुडिकादिमन्त्र सकलगरीगस्यापि त्रिपम त्रिप मन्त्रमामर्शेन सवान-
यवेभ्य समाकृष्य दशस्थाने समानीय मस्तम्भयति, तथा पूर्वगतश्रुतानुमारतोऽर्थव्यञ्जनयोग-
सक्रान्तिराहित्येनाशेषत्रिपयेभ्य सहचैकस्मिन्नेव पर्याये योगस्य निश्चानस्थान दीपगिम्बावत
स्थिरीकरणम् एकत्ववितर्काऽविचारम् ॥२॥

यत्र जघन्ययोगस्त सत्रिपर्याप्तस्य मनोद्रव्यागि समये निम्न्यन असत्प्रातसमये
सपूर्ण मनोयोग तत्पश्चात् पर्याप्तद्वीन्द्रियस्य वायोगपर्याप्ततोऽसत्प्रातगुणयूनवायोगपया
यान् प्रतिसमय निरन्धन् असत्प्रातसमये सपूर्ण वाग्योग, ततश्च प्रथमसमयसमुत्पन्ननिगो-
दजीवस्य जघन्यकाययोगपर्याप्ततोऽसत्प्रातगुणहीनकाययोग प्रतिसमय निरन्धन्, असत्प्रात-

मत्रवाला पुरुष समस्त शरीर के अत्रयवों में व्याप्त त्रिपम त्रिप को मत्र के प्रभाव से
खेचकर काटे हुए स्थानपर स्तम्भित कर देता है उसीतरह पूर्वगतश्रुतज्ञान के अनुमार
अर्थ, व्यञ्जन एव योगों की सक्रान्ति से रहित होने के कारण, अशेषत्रिपयों से योगों को हटा-
कर एक ही पर्याय में योग का, वातरहित स्थान में दीपक की लौ की तरह, स्थिर करना
सो एकत्ववितर्क-अविचार-नामक शुक्लध्यान का दूसरा भेद है ॥२॥ सूक्ष्मक्रिय-अप्रति-
पाति शुक्लध्यान सिर्फ सूक्ष्मकाययोगवाले जीव को होता है। सूक्ष्मक्रिय-अप्रतिपाति शुक्ल-
ध्यान के सन्मुख हुआ जीव सर्वप्रथम मनोद्रव्यों का प्रतिसमय निरोध करता हुआ असत्प्रा-
तसमयप्रमाणकाल में समस्तमनोयोग का, इसीतरह प्रतिसमय वाग्योगपर्यायों का निरोध
करता हुआ असत्प्रातसमयप्रमाणकाल में समस्तवाग्योग का, एव प्रथम समयमें
समुत्पन्न निगोदजीवकी जघन्य-अवगाहनास्वरूप काययोगपर्यायों से असत्प्रात-

जैवी रीते सिद्ध गारुडिक आदि मत्रवाणो पुरुष आभा शरीरना अवधु-
वोभा प्रसरला विषम जेरने मत्रना प्रभावधी जे चीने करडेला स्थान उपर
स्तम्भित करी हे छे, तेवी ज रीते पूर्वगत श्रुतज्ञान अनुसार अर्थ, व्यञ्जन
तेमज योगानी सक्रान्ति रहित होवाने कारणे, भीज विषयोधी योगाने
हटावीने अेक ज पर्यायभा योगने हवा वगरना स्थानभा दीपकनी ज्योतनी चेटे
स्थिर जरेवो ते शुक्लध्यानना अेकत्ववितर्कअविचार नामने भीजे प्रकार छे (२)

सूक्ष्मक्रिय-अप्रतिपाति शुक्लध्यानने सन्मुख थयेले एव
सर्वप्रथम मनोद्रव्योना हस्तप्रात निरोध करता करता असत्प्रात-समय-
प्रमाण काले मस्त मनोयोगने, तेम ज वारवार वाग्योगपर्यायोना
निरोध करता जरेता असत्प्रात-समय-प्रमाणे जणे मस्त वाग्योगने,
तेम ज प्रथम समयभा समुत्पन्न निगोद एवनी जघन्यअवगाहनास्वउप
काययोगनी पर्यायोधी अमत्प्रातशुक्लहीनकाययोगने वागवार निरोध जरेता

समयैर्वाद्दरकाययोग च सर्वथा निरुद्धि, तदेदं सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपाति-यानुपक्रमते ॥३॥
 ताश्चासौच्छ्वासस्वरूप सूक्ष्ममपि काययोग निरुध्य अयोगि-व प्राप्य शैलेशीमरस्था प्रतिपद्यते,
 मध्यमकालेन 'अ इ उ ऋ लृ' इत्येवरूप पञ्चलघ्वभरोच्चारणसमकालस्थितिक समुच्छिन्न-
 क्रियमनिवर्ति ध्यानमनुभवति ॥४॥ ऋग्वैकालिकसूत्रस्याचारमणिमञ्जूपाटीकायामस्माभि
 सविन्ता शुक्लध्यानवर्णन कृतम्, अतस्ततोऽगन्तव्यम् ।

तथा-तत् शुक्लध्यान चतुःप्रयत्नतार प्रजनम् । 'सुकस्स ण ज्ञाणस्स चत्तारि
 लक्खणा पण्णत्ता' शुक्लम्य खलु ध्यानस्य चचारि लक्षणानि प्रजानानि । 'त जहा' तद्यथा

गुगहीनकाययोग को प्रति समय म निरोध करता हुआ अथवा तसमयप्रमाणकाल में वादरकाययोग
 ता सर्वथा निरोध कर देता है, तब जाकर इसे सूक्ष्मक्रिय-अप्रतिपातिनामक शुक्लध्यान की
 प्राप्ति होती है, यह सूक्ष्मक्रिय-अप्रतिपातिनामक तीसरा भेद है ।३। इस अवस्थामे
 चासौच्छ्वासरूप सूक्ष्मकाययोगका भी निरोध कर, अयोगि-अवस्था को प्राप्त हो, शैलेशी
 अवस्था को प्राप्त कर लेता है, वहा 'अ इ उ ऋ लृ' इन पांच लघु अक्षरों के मध्यम
 काल से उच्चारण करने में जितना समय लगता है उतने समय तक वहा ठहर कर समु-
 च्छिन्नक्रिय-अनिवर्तिनामक शुक्लध्यानका अनुभव करता है ।४। इस शुक्लध्यान
 का विशेष विस्तारपूर्वक वर्णन ऋग्वैकालिक सूत्र के चौथे अध्ययन की 'आचारमणिमञ्जूपा'
 नामकी टीका में लिखा गया है, अत विशेषार्थी को इसका विशेष वर्णन वहा से
 देख लेना चाहिये । (सुकस्स ण ज्ञाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता) इस शुक्ल-
 ध्यान के चार लक्षण है, (त जहा) वे इस प्रकार हैं- (विवेगे) विवेक-देह से आत्माको

करता असंभ्यातसमयप्रभाषु क्षणे वादरकाययोगने सर्वथा निरोध करी
 दे छे, त्यारे तेने सूक्ष्मक्रिय-अप्रतिपाति नामक शुक्लध्याननी प्राप्ति थाय
 छे आ सूक्ष्मक्रिय-अप्रतिपाति नामे त्रीन्ने प्रकार छे (३)

ते अवस्थामा श्वाभ्योच्छ्वासस्य सूक्ष्मकाययोगने पशु निरोध करी, अयोगि
 अवस्थाने प्राप्त थछ, शैलेशी अवस्थाने प्राप्त करी दे छे त्या अ इ उ ऋ लृ आ
 पाच लघु अक्षरानु मध्यमकालथी उच्चारणु करवाभा नेटवो समय लागे तेटला
 मध्यसुधी शैलाधने समुच्छिन्नक्रिय-अनिवर्ति नामक शुक्लध्यानने अनुभव करे
 छे (४) आ शुक्लध्याननु विशेष विस्तारपूर्वक वर्णन ऋग्वैकालिकसूत्रना योथा
 अध्ययननी आचारमणिमञ्जूपा नामनी टीकाभा लणवांभा आण्यु छे तेथी
 विशेष लणुवावाणने भाटे तेनु विशेष वर्णन त्याथी नेछ वेणु नेछण्

(सुकस्स ण ज्ञाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता) आ शुक्लध्यानना चार
 लक्षणु छे. (त जहा) ते आ प्रकारे छे- (विवेगे) विवेक-देहथी आत्माने लुहो लणुवे,

यथा सिद्धगारुडिकादिमन्त्र सकलगरीरस्यापि त्रिषम त्रिष मन्त्रमामर्शेन मत्रा-
यवेभ्य समाकृष्य दशस्थाने समानीय मस्तम्भयति, तथा पूर्वगतश्रुतानुमात्तोऽर्थव्यञ्जनयोग-
संक्रान्तिराहित्येनाशेषत्रिषयेभ्य सहयैकस्मिन्नेव पर्याये योगस्य निर्गतस्थाने दीपशिखावत्
स्थिरीकरणम् एकत्ववितर्काऽविचारम् ॥२॥

यदा जघन्ययोगतः सन्निपर्याप्तस्य मनोद्रव्यागि समये निरन्तरं अमर्यातसमयै
संपूर्णं मनोयोग तत्पश्चात् पर्याप्तद्वीन्द्रियस्य वायोगपर्यायतोऽमर्यातगुणयूनवायोगपया
यान् प्रतिसमय निरन्धन् अमर्यातसमयै संपूर्णं वायोग, ततश्च प्रथमसमयसमुत्पन्ननिगो-
दजीवस्य जघन्यकाययोगपर्यायतोऽमर्यातगुणहीनकाययोग प्रतिसमय निरन्धन्, अमर्यात-

मत्रवाला पुरुष समस्त शरीर के अवयवों में व्याप्त त्रिषम त्रिष को मत्र के प्रभाव से
खेचकर काटे हुए स्थानपर स्तम्भित कर देता है उसीतरह पूर्वगतश्रुतज्ञान के अनुमात्
अर्थ, व्यञ्जन एव योगों की संक्रान्ति से रहित होने के कारण, अशेषत्रिषयों से योगों को हटा-
कर एक ही पर्याय में योग का, वातरहित स्थान में दीपक की लौ की तरह, स्थिर करना
सो एकत्ववितर्क-अविचार-नामक शुक्ल-ज्यान का दूसरा भेद है ॥२॥ सूक्ष्मक्रिय-अप्रति-
पाति शुक्लध्यान सिर्फ सूक्ष्मकाययोगवाले जीव को होता है। सूक्ष्मक्रिय-अप्रतिपाति शुक्ल-
ध्यान के सम्मुख हुआ जीव सर्वप्रथम मनोद्रव्यों का प्रतिसमय निरोध करता हुआ अमर्यात-
तसमयप्रमाणकाल में समस्तमनोयोग का, इसीतरह प्रतिसमय वायोगपर्यायों का निरोध
करता हुआ अमर्यातसमयप्रमाणकाल में समस्तवायोग का, एव प्रथम समयमें
समुत्पन्न निगोदजीवकी जघन्य-अवगाहनास्वरूप काययोगपर्यायों से अमर्यात

जैवी रीते सिद्ध गारुडिक आदि मत्रवाणो पुरुष आभा शरीरना अवय-
वोभा प्रसरेला विषम अेरने मत्रना प्रभावधी जेथीने करडेला स्थान उपर
स्तम्भित करी दे छे, तेवी ज रीते पूर्वगत श्रुतज्ञान अनुमात् अर्थ, व्यञ्जन
तेमज योगोनी संक्रान्ति रहित होवाने कारणे, शीला विषयोधी योगोने
हटावीने अेक ज पर्यायभा योगने हुवा वगरना स्थानभा दीपकनी ज्योतनी चेटे
स्थिर करवेा ते शुक्लध्यानना अेकत्ववितर्कअविचार नामने शीजे प्रजात छे (२)

सूक्ष्मक्रिय-अप्रतिपाति शुक्लध्यानने मन्मुख थयेला एव
सर्वप्रथम मनोद्रव्योना हस्तगत निरोध करता करता असंख्यात-समय-
प्रमाण काले समस्त मनोयोगो, तेम ज वारवार वायोगपर्यायोनी
निरोध करता करता असंख्यात-समय-प्रमाणे जाणे समस्त वायोगो,
तेम ज प्रथम समयभा समुत्पन्न निगोद एवनी जघन्यअवगाहनास्वरूप
काययोगनी पर्यायोधी असंख्यातशुक्लहीनकाययोगो वा वार निरोध करता

पं ज्ञाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पणत्ताओ; तं जहा-अवा-
याणुप्पेहा १ असुभाणुप्पेहा २ अणंतवत्तियाणुप्पेहा ३ विपरि-
णामाणुप्पेहा ४। से तं ज्ञाणे ॥ सू० ३० ॥

खलु ध्यानस्य चतस्रोऽनुप्रेक्षा प्रजमा, 'त जहा' तद्यथा-'अवायाणुप्पेहा' अपाया-
नुप्रेक्षा-अपायाना प्राणातिपाताद्यान्त्रद्वारजनितानाम् अनर्थानामनुचिन्तनम् ॥१॥ 'असुभा-
णुप्पेहा' अशुभानुप्रेक्षा-मसारास्यैव अशुभस्वरूपतयाऽनुचिन्तनम् ॥२॥ 'अणतवत्तियाणुप्पेहा'
अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा-अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा-तैल्लिङ्गचक्रयोजितस्य घृपस्य मार्गाऽनवसानवत्कदाप्यस-
मामिगील्लता तस्या अनुप्रेक्षा-अनुचिन्तनम् ॥३॥ 'विपरिणामाणुप्पेहा' विपरिणामानुप्रेक्षा-
उपादव्ययध्रौन्यस्वभावाना पत्न्याना यो विपरिणाम-प्रतिक्षण नवनवपर्यायरूप तस्यानु
चिन्तनम्-॥४॥ 'से त ज्ञाणे' तदेतद् ध्यानम् ॥ सू० ३० ॥

अपायो का अर्थात् प्राणातिपातादिक पाप, जो कर्मों के आस्रव के लिये द्वार जैसे है उनसे जनित
अनर्थों का वारवार विचार करना सो अपायानुप्रेक्षा है १। (असुभाणुप्पेहा) अशुभानु-
प्रेक्षा-ससार स्वय अशुभस्वरूप है, ऐसा वाग्वार विचार करना सो अशुभानुप्रेक्षा है २।
(अणतवत्तियाणुप्पेहा) अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा-भवपरपग की अनन्तवृत्ति का विचार करना,
अर्थात् जिस प्रकार तेली का बैल कोन्ह में जोता जाने पर चकर काटता है उसी प्रकार इस
जीव के भी, जबतक यह ससार में रहता है तबतक इसके भ्रमण की कभी भी समाप्ति नहीं होती
है, इस प्रकार का अनुचिन्तन करना अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा है ३। (विपरिणामाणुप्पेहा) विपरि-
णामानुप्रेक्षा-प्रत्येक द्रव्य, उपाद, व्यय एव ध्रौन्य स्वभाववाले हैं, अत वस्तु प्रतिसमय

अपायानुप्रेक्षा-अपायानो अर्थात्-प्राणातिपातादिक पाप के कर्मोंना आस्रवने
भाटे का लेवा छे तेमनाथी थता अनर्थानो वारवार विचार करवो ते
अपायानुप्रेक्षा छे (असुभाणुप्पेहा) अशुभानुप्रेक्षा-ससार पोते अशुभस्वरूप
छे, ओयो वारवार विचार करवो ते अशुभानुप्रेक्षा छे (अणतवत्तियाणुप्पेहा)
अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा-भवपरपरानी अनन्तवृत्तितानो विचार करवो, अर्थात्
लेवी रीते धाचीनो णणह धाणीमा नेडाईने यद्धरे- (आठ) इथा करे छे
ओवी रीते आ एव पणु न्या सुधी सनारमा रहे छे त्या सुधी तेना भ्रम
णुनी कही पणु समाप्ति थती नथी, ओ प्रकारनु अनुचिन्तन करवु ते अनन्त
वृत्तितानुप्रेक्षा छे (विपरिणामाणुप्पेहा) विपरिणामानुप्रेक्षा-प्रत्येक द्रव्य
उत्पाद, व्यय तेमत्र ध्रौन्य स्वभाववाणो छे, तेथी हरवत्त वस्तु परिणामन

चत्वारि लम्बणा पण्णत्ता; तं जहा—विवेगे १, विउस्सग्गे २, अव्वहे ३, असम्मोहे ४। सुक्कस्स णं ज्ञाणस्स चत्वारि आलंबणा पण्णत्ता, तं जहा—खंती १, मुत्ती २, अज्जवे ३, मह्वे ४। सुक्कस्स

‘विवेगे’ विवेक—पृथकरण, स च पृथक्कार—देहाद्यमनो बुद्ध्या विवेचनम् ॥१॥ ‘विउस्सग्गे’ व्युत्सर्ग—निस्सङ्गतया देहोपधियाग ॥२॥ ‘अव्वहे’ अव्ययम्—देवाद्युपमर्गजनित भय व्यथा—तया रहितम् ॥३॥ ‘असम्मोहे’ असमोह—देवमायाजनितस्य मूढत्वस्य निषेध ॥४॥ ‘सुक्कस्स णं ज्ञाणस्स चत्वारि आलंबणा पण्णत्ता’ शुक्लस्य गन्तु ध्यानस्य चत्वार्यालम्बनानि प्रजानि, ‘त जहा’ तथया—‘खती’ क्षान्ति—परकृताऽपकारसहनम् ॥१॥ ‘मुत्ती’ मुक्ति—निर्लोभता ॥२॥ ‘अज्जवे’ अर्जव—सग्लता ॥३॥ ‘मह्वे’ मार्दव—मृदुता ॥४॥ ‘सुक्कस्स णं ज्ञाणस्स चत्वारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ’ शुक्लस्य

भिन्न जानना १। (विउस्सग्गे) व्युत्सर्ग—देह तथा उपधि का परित्याग करना २। (अव्वहे) अव्यय—व्यथारहित होना—देवादिकृत उपसर्गजनित भय का नाम व्यथा है, इससे रहित का नाम अव्यय है, अर्थात्—देवादिकृत उपसर्गों का निश्चल भावसे सहन करना ३। (असम्मोहे) असमोह—मोहरहित होना—देवादिक द्वारा प्रदर्शित मायाकी ओर आकृष्ट नहीं होना ४। (सुक्कस्स णं ज्ञाणस्स चत्वारि आलंबणा पण्णत्ता) शुक्लध्यान के चार आलंबन हैं, (त जहा) वे इस प्रकार हैं—(खती) क्षान्ति—परकृत अपकार का सहन करना १, (मुत्ती) मुक्ति—लोभका परित्याग करना २, (अज्जवे) अर्जव—चित्त में सग्लता रखना ३, और (मह्वे) मार्दव गुणका होना ४। (सुक्कस्स णं ज्ञाणस्स चत्वारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ) शुक्लध्यान की चार अनुप्रेक्षा है, (त जहा) वे ये हैं—(अवायाणुप्पेहा) अपायानुप्रेक्षा—

(विउस्सग्गे) व्युत्सर्ग—देह तथा उपधिने परित्याग करवो, (अव्वहे) अव्यय—व्यथारहित होवो—देवादिकृत उपसर्गोंकी थथेल लयन नाम व्यथा छे, तेनाथी रहितनु नाम अव्यय छे, अर्थात्—देवादिकृत उपसर्गोंने निश्चल भावथी सहन करवा (असम्मोहे) असमोह मोहरहित थवु—देवादिकद्वारा प्रदर्शित माया तरक आठपौवु रहि (सुक्कस्स णं ज्ञाणस्स चत्वारि आलंबणा पण्णत्ता) शुक्लध्यानना चार आलंबन छे, (त जहा) ते आ प्रकारे छे—(खती) क्षान्ति—परकृत अपकार सहने सहन करवो, (मुत्ती) मुक्ति—लोभने परित्याग करवो, (अज्जवे) अर्जव चित्तमा सग्लता राखणी, अने (मह्वे) मार्दव—मृदुता शुष्ण थवु (सुक्कस्स णं ज्ञाणस्स चत्वारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ) शुक्लध्याननी चार अनुप्रेक्षा छे, (त जहा) ते आ छे (अवायाणुप्पेहा)

विउस्सग्गे, २ गणविउस्सग्गे, ३ उव्हिविउस्सग्गे, ४ भत्तपाणविउस्सग्गे । से तं दव्वविउस्सग्गे । से किं तं भावविउस्सग्गे ? भावविउस्सग्गे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा-१ कसायविउस्सग्गे, २ संसारविउस्स-

‘गणविउस्सग्गे’ गणव्युत्सर्ग १२। ‘उव्हिविउस्सग्गे’ उपधिव्युत्सर्ग—उपधेरूपकरणस्य त्याग १३। ‘भत्तपाणविउस्सग्गे’ भक्तपानव्युत्सर्ग—अन्नजलत्याग १४। ‘से त दव्वविउस्सग्गे’ स एष द्रव्यव्युत्सर्ग । ‘से किं त भावविउस्सग्गे’ अथ कोऽमौ भावव्युत्सर्ग । ‘भावविउस्सग्गे तिविहे पण्णत्ते’ भावव्युत्सर्ग त्रिभिः प्रजम्, ‘त जहा’ तद्यथा—‘कसायविउस्सग्गे’ कषायव्युत्सर्ग ११। ‘ससारविउस्सग्गे’ २ सारव्युत्सर्ग १२। ‘कम्मविउस्सग्गे’ कर्मव्युत्सर्ग १३। ‘से किं त कसायविउस्सग्गे’ अथ कोऽमौ कषायव्युत्सर्ग । ‘कसाय-

(शरीरविउस्सग्गे १, गणविउस्सग्गे २, उव्हिविउस्सग्गे ३, भत्तपाणविउस्सग्गे ४) शरीरव्युत्सर्ग १, गणव्युत्सर्ग २, उपधिव्युत्सर्ग ३, और भक्तपानव्युत्सर्ग ४ । इनमें शरीर के ममत्व का त्याग करना सो शरीरव्युत्सर्ग है १ । पडिमा आदि आराधन करने के लिये गण—संप्रदाय से ममत्वका त्याग करना सो गणव्युत्सर्ग है २ । बह्वादि उपधि के ममत्व का त्याग करना सो उपधिव्युत्सर्ग है ३ । भोजन एवं पानी का त्याग करना सो भक्तपानव्युत्सर्ग है ४ । (से त दव्वविउस्सग्गे) यह सत्र द्रव्यव्युत्सर्ग है । (से किं त भावविउस्सग्गे) भावव्युत्सर्ग क्या—कितने प्रकार का है ? (भावविउस्सग्गे तिविहे पण्णत्ते) भावव्युत्सर्ग तीन प्रकार का है, (तं जहा) वे प्रकार ये हैं—(कसायविउस्सग्गे १ ससारविउस्सग्गे २ कम्मविउस्सग्गे ३) कषायव्युत्सर्ग १, सारव्युत्सर्ग २, एवं कर्मव्युत्सर्ग ३ । (से किं त कसायविउस्सग्गे) कषायव्युत्सर्ग क्या कितने प्रकारका है ? (कसाय-

वेभङ्के—(शरीरविउस्सग्गे गणविउस्सग्गे उव्हिविउस्सग्गे भत्तपाणविउस्सग्गे) शरीरव्युत्सर्ग, गणव्युत्सर्ग, उपधिव्युत्सर्ग अने भक्तपानव्युत्सर्ग तेभा शरीरना भमत्वने त्याग करवे ते शरीरव्युत्सर्ग छे पडिमा आदि आराधन करवा भाटे गणु—संप्रदायधी भमत्वने त्याग करवे ते गणव्युत्सर्ग छे वआदि उपधिवि भमत्वने त्याग करवे ते उपधिव्युत्सर्ग छे लोअन तेभअ पाणुने त्याग करवे ते भक्तपानव्युत्सर्ग छे आ अथा द्रव्यव्युत्सर्ग ७ (से किं त भावविउस्सग्गे) भावव्युत्सर्ग शु—खेटला प्रदाग्गे छे ? (भावविउस्सग्गे तिविहे पण्णत्ते) भावव्युत्सर्ग त्रयु प्रकारने छे, (त जहा) ते आ प्रदाग्गे ७—(कसायविउस्सग्गे ससारविउस्सग्गे कम्मविउस्सग्गे) कषायव्युत्सर्ग, २ सारव्युत्सर्ग तेभअ कर्मव्युत्सर्ग

મૂલમ્—સે કિં તં વિડસ્સગ્ગે ? વિડસ્સગ્ગે દુવિહે પળ્ણત્તે;
તં જહા—૧ દવ્વવિડસ્સગ્ગે, ૨ ભાવવિડસ્સગ્ગે ય । સે કિં તં
દવ્વવિડસ્સગ્ગે ? દવ્વવિડસ્સગ્ગે ચડવ્વિહે પળ્ણત્તે, તં જહા--૧ સરીર-

ટીકા—આમ્યન્તરતપમ પછમેદમાહ—‘ સે કિં ત વિડસ્સગ્ગે ’ અથ કોડ્ડો
વ્યુત્સર્ગ ? વ્યુત્સર્ગ કિંસ્વરૂપ ક્રતિવિધેતિ પ્રશ્ન । વ્યુત્સર્ગ—વિ=વિશેષણ, ઉત્=ઉત્કૃષ્ટ-
ભાવનયા સર્ગ =ત્યાગ । ‘વિડસ્સગ્ગે દુવિહે પળ્ણત્તે’ વ્યુત્સર્ગો દ્વિવિધ પ્રજન્ત, ‘ત જહા’ તથા
૧—‘દવ્વવિડસ્સગ્ગે’ દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગ, ૨—‘ભાવવિડસ્સગ્ગે’ ભાવવ્યુત્સર્ગ । ‘સે કિં
ત દવ્વવિડસ્સગ્ગે ?’ અથ કોડ્ડમો દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગ ? ‘દવ્વવિડસ્સગ્ગે ચડવ્વિહે પળ્ણત્તે’
દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગ—ચતુર્વિધ પ્રજન્ત, ‘ત જહા’ તથા—‘સરીરવિડસ્સગ્ગે’ શરીરવ્યુત્સર્ગ । ૧।

પરિણમતી રહતી હૈ । ઇસ પ્રકાર જો ચિન્તન કરના ઇસકા નામ વિપરિણામાનુપ્રેક્ષા હૈ ।
(સે ત જ્ઞાણે) ઇસ પ્રકાર ચાર ધ્યાનકા વર્ણન હુઆ ॥ મૂં ૩૦ ॥

‘સે કિં ત વિડસ્સગ્ગે’ ઇત્યાદિ,

અથ આમ્યન્તર તપકા જો ઊઠા મેદ વ્યુત્સર્ગ હૈ ઇસકા વર્ણન કરતે હૈ—(સે
કિં તં વિડસ્સગ્ગે) વિશેષ રીતિ સે ઉત્કૃષ્ટ ભાવનાપૂર્વક પરિત્યાગ કરના વ્યુત્સર્ગ હૈ, વહ
વ્યુત્સર્ગતપ કયા-કિતને પ્રકાર કા હૈ ? (વિડસ્સગ્ગે દુવિહે પળ્ણત્તે) વ્યુત્સર્ગ કે દો
મેદ હૈ, (ત જહા) વે યે હૈ—(દવ્વવિડસ્સગ્ગે ભાવવિડસ્સગ્ગે) ૧—દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગ ઓર ૨—
ભાવવ્યુત્સર્ગ । (સે કિં ત દવ્વવિડસ્સગ્ગે) દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગ કયા-કિતને પ્રકાર કા હૈ ?
(દવ્વવિડસ્સગ્ગે ચડવ્વિહે પળ્ણત્તે) દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગ ચાર પ્રકાર કા હૈ । (ત જહા) જૈસે—

ઠરતી હાથ છે, એવ ન રૂપે કહી નથી રહેતી એ પ્રકારે જે ચિન્તન ઠરવું તેનું
નામ વિપરિણામાનુપ્રેક્ષા એ (સે ત જ્ઞાણે) એ પ્રમાણે ચાર ધ્યાનનું વર્ણન થયું
(મૂં ૩૦)

‘સે કિં ત વિડસ્સગ્ગે’ ઇત્યાદિ

હવે સૂત્રઠાર આમ્યન્તર તપના જે છટ્ટો પ્રકાર વ્યુત્સર્ગ છે તેનું વર્ણન ઠરે
છે—(સે કિં ત વિડસ્સગ્ગે) વિશેષરીતિથી ઉત્કૃષ્ટભાવનાપૂર્વક પરિત્યાગ કરવો તે
વ્યુત્સર્ગ છે વ્યુત્સર્ગ તપ કેટલા પ્રકારનું છે ? (વિડસ્સગ્ગે દુવિહે પળ્ણત્તે)
એના જે પ્રકાર છે,—(ત જહા) તે આ છે—(દવ્વવિડસ્સગ્ગે ભાવવિડસ્સગ્ગે ય)
૧ દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગ અને ૨ ભાવવ્યુત્સર્ગ દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગ શુ—કેટલા પ્રકારનું છે ?
(દવ્વવિડસ્સગ્ગે ચડવ્વિહે પળ્ણત્તે) એ દ્રવ્યવ્યુત્સર્ગ ચાર પ્રકારનું છે (ત જહા)

यसंसारविउस्सग्गे, ३ मणुयसंसारविउस्सग्गे, ४ देवसंसारविउ-
स्सग्गे । से तं संसारविउस्सग्गे । से किं तं कम्मविउस्सग्गे ? कम्म-
विउस्सग्गे अट्टविहे पणत्ते, तं जहा, १ णाणावरणिज्जकम्मविउ-
स्सग्गे, २ दरिसणावरणिज्जकम्मविउस्सग्गे, ३ वेयणिज्जकम्मविउस्स-
ग्गे, ४ मोहणिज्जकम्मविउस्सग्गे, ५ आउकम्मविउस्सग्गे, ६ णामक-
म्मविउस्सग्गे ७, गोयकम्मविउस्सग्गे ८, अंतरायकम्मविउस्सग्गे ।
से त कम्मविउस्सग्गे । से तं भावविउस्सग्गे ॥ सू० ३० ॥

स्सग्गे' मनुजसंसारव्युत्सर्ग ॥३॥ 'देवसंसारविउस्सग्गे' देवस्मारव्युत्सर्ग ॥४॥
'से त संसारविउस्सग्गे' म ण्य संसारव्युत्सर्ग । 'से किं त कम्मविउस्सग्गे' अथ
कोऽसौ कर्मव्युत्सर्ग 'कम्मविउस्सग्गे अट्टविहे पणत्ते' कर्मव्युत्सर्ग अष्टविध प्रजप । 'त
जहा' तद्यथा—'णाणावरणिज्जकम्मविउस्सग्गे' ज्ञानावरणीयकर्मव्युत्सर्ग ॥१॥ 'दरि-
सिणावरणिज्जकम्मविउस्सग्गे' दर्शनाऽवरणीयकर्मव्युत्सर्ग ॥२॥ 'वेयणिज्जकम्मवि-
उस्सग्गे' वेदनीयकर्मव्युत्सर्ग ॥३॥ 'मोहणिज्जकम्मविउस्सग्गे' मोहनीयकर्म-

ग्गे ३, देवसंसारविउस्सग्गे ४) नैरयिकसंसारव्युत्सर्ग, तिर्यक्-स्मारव्युत्सर्ग, मनुजसंसारव्युत्सर्ग,
एव देवस्मारव्युत्सर्ग, (से त संसारविउस्सग्गे) इस प्रकार चारगतिरूप-संसार का यह व्युत्सर्ग
(परित्याग)-स्मारव्युत्सर्ग है। (से किं त कम्मविउस्सग्गे) कर्मव्युत्सर्ग क्या-कितने प्रकार का
है। (कम्मविउस्सग्गे अट्टविहे पणत्ते) जिसमें आठ प्रकार के कर्मों का व्युत्सर्ग—परित्याग हो
वह कर्मव्युत्सर्ग आठ प्रकार का है, (त जहा) जैसे (णाणावरणिज्जकम्मविउस्सग्गे १, दरि-
सणावरणिज्जकम्मविउस्सग्गे २, वेयणिज्जकम्मविउस्सग्गे ३, मोहणिज्जकम्मविउस्सग्गे

देवसंसारविउस्सग्गे) नैरयिकसंसारव्युत्सर्ग, तिर्यक्-संसारव्युत्सर्ग, मनुज-
संसारव्युत्सर्ग तेभञ्ज देवसंसारव्युत्सर्ग (से त संसारविउस्सग्गे) ये प्रकारे
आर्येय गतिश्च संसारो आ व्युत्सर्ग (परित्याग) ते संसारव्युत्सर्ग छे
(से किं त कम्मविउस्सग्गे) कर्मव्युत्सर्ग केटला प्रकारो छे ? (कम्मविउस्सग्गे
अट्टविहे पणत्ते) तेभा आठेय प्रकारो कर्मो आ व्युत्सर्ग—परित्याग थं गथ
छे येवे आ कर्मव्युत्सर्ग आठ प्रकारो छे, (त जहा) तेभञ्जे—(णाणावरणिज्ज-
कम्मविउस्सग्गे, दरिसणावरणिज्जकम्मविउस्सग्गे, वेयणिज्जकम्मविउस्सग्गे, मोहणि-

गो, ३ कम्मविउस्सग्गे । से किं तं कसायविउस्सग्गे, ? कसायविउ-
स्सग्गे चउव्विहे पण्णत्ते; तं जहा-कोहकसायविउस्सग्गे, २ माणक-
साय विउस्सग्गे, ३ मायाकसायविउस्सग्गे, ४ लोहकसायविउस्सग्गे ।
से तं कसायविउस्सग्गे । से किं तं संसारविउस्सग्गे ? संसारविउस्स-
ग्गे चउव्विहे पण्णत्ते; तं जहा-१ णेरइयसंसारविउस्सग्गे, २ तिरि-

विउस्सग्गे चउव्विहे पण्णत्ते' कपायव्युसर्गं चतुर्विधं प्रजप्तं, 'तं जहा' तद्यथा- 'कोहकसाय-
विउस्सग्गे' क्रोधरूपायव्युसर्गं । १। 'माणकसायविउस्सग्गे' मानरूपायव्युसर्गं ।
'मायाकसायविउस्सग्गे' मायारूपायव्युसर्गं । ३। 'लोहकसायविउस्सग्गे' लोभ-
कपायव्युसर्गं । ४। 'से तं कसायविउस्सग्गे' स ण्य कपायव्युसर्गं । 'से किं
संसारविउस्सग्गे' अथ कोऽसौ संसारव्युसर्गं ? 'संसारविउस्सग्गे चउव्विहे पण्णत्ते संसार-
व्युसर्गं चतुर्विधं प्रजप्तं, 'तं जहा' तद्यथा- 'णेरइयसंसारविउस्सग्गे' नैरयिकसंसार-
व्युसर्गं । १। 'तिरियसंसारविउस्सग्गे' तिर्यकसंसारव्युसर्गं । २। 'मणुयसंसारविउ-

विउस्सग्गे चउव्विहे पण्णत्ते) रूपायव्युसर्गं चार प्रकारका है । (तं जहा) वे चार प्रकार ये
हैं- (कोहकसायविउस्सग्गे १, माणकसायविउस्सग्गे २, मायाकसायविउस्सग्गे ३,
लोहकसायविउस्सग्गे ४) क्रोधरूपायव्युसर्गं १, मानरूपायव्युसर्गं २, मायाकपायव्युसर्गं ३ एवं
लोभकपायव्युसर्गं ४ । (से तं कसायविउस्सग्गे) इन क्रोधादि चार रूपायोंका परित्याग करना
यह कपायव्युसर्गं है । (से किं तं संसारविउस्सग्गे) संसारव्युसर्गं क्या-कितने प्रकार का है ?
(संसारविउस्सग्गे चउव्विहे पण्णत्ते) संसारव्युसर्गं चार प्रकार का है, (तं जहा) वे चार
प्रकार ये हैं- (णेरइयसंसारविउस्सग्गे १ तिरियसंसारविउस्सग्गे २ मणुयसंसारविउस्स-

(से किं तं कसायविउस्सग्गे) कपायव्युसर्गं डेटला प्रकाशनां छे ? (कसायविउस्सग्गे
चउव्विहे पण्णत्ते) कपायव्युसर्गं चार प्रकारनां छे (तं जहा) वे भडे- (कोहकसा-
यविउस्सग्गे माणकसायविउस्सग्गे मायाकसायविउस्सग्गे लोहकसायविउस्सग्गे) क्रोध-
रूपायव्युसर्गं, मानकपायव्युसर्गं, मायाकपायव्युसर्गं, ते भज्ज लोभकपायव्युसर्गं
(से तं कसायविउस्सग्गे) ये क्रोधादि चारैय कपायैनां परित्यागं उरवे ते आ कपाय-
व्युसर्गं छे (से किं तं संसारविउस्सग्गे) संसारव्युसर्गं डेटला प्रकाशनां छे ? (संसार
विउस्सग्गे चउव्विहे पण्णत्ते) संसारव्युसर्गं चार प्रकारनां छे, (तं जहा) ते चार
प्रकार आ छे- (णेरइयसंसारविउस्सग्गे तिरियसंसारविउस्सग्गे मणुयसंसारविउस्सग्गे

जाव विवागसुयधरा तत्थ तत्थ तर्हि तर्हि देसे देसे गच्छागच्छि
गुम्मागुम्मि फड्डाफड्ढि अप्पेगइया वायन्ति, अप्पेगइया पडि-

सुमायका आमन्, तेषु ग्रन्थेषु 'अप्पेगइया' अप्पेकके=केचित्—'आयारधरा जाव
विवागसुयधरा' आचारधरा यावद् विपाकश्रुतधरा—आचाराद्वादि-विपाकान्त-मर्वश्रुत-
धागिग, इमे पूर्ण वर्णिता, 'तत्थ तत्थ तर्हि तर्हि देसे देसे' तत्र तत्र तस्मिन् तस्मिन्
देशे देशे-अत्र वीत्सया स्थानमाहुल्यकथनासाधूनामधिकता अप्रतिबन्धप्रिचरण च
सूचितम्, तथा बहवो बहुविधप्रामनगरवनादिषु गता इति च गम्यते। 'गच्छागच्छि'
गच्छागच्छि-गच्छाचार्यपरिवारो गच्छ-गच्छेन गच्छेन विभन्त्य वाचनादिकं प्रवृत्तम्, इति
भिप्रह 'तत्र तेनेदमिति सरूपे' इत्यनेन गच्छागच्छि, इत्यस्य साधुत्तम्। एव
'गुम्मागुम्मि' गुम्मागुम्मि-गुम्म-गच्छैकभाग, गुम्मेन गुम्मेन विभन्त्य इदं वाचनादिकं
प्रवृत्तमिति गुम्मागुम्मि। 'फड्डाफड्ढि' फड्डकाफड्डकि-फड्डक=लघुतगे गच्छैकभाग,
फड्डकेन फड्डकेन विभन्त्येदं वाचनादिकं प्रवृत्तम्, इत्यर्थे फड्डकाफड्डकि-एषु प्रयोगेषु समासे
कृते पूर्वपदस्य दीर्घ समासान्त इच्-प्रत्ययश्च। 'अप्पेगइया वायन्ति' अप्पेकके

से अनगार भगवत थे, उनमें (अप्पेगइया) कितनेक (आयारधरा जाव विवागसुयधरा)
आचारागसूत्र के धारक थे, 'यावत्' शब्द से कितनेक सूत्रकृताङ्ग से लेकर प्रख्याकरण
पर्यन्त सूत्रों में से एक २ सूत्र के धारक थे और कितनेक विपाकश्रुत के धारक थे, उपलक्षणसे
कितनेक सबके भा धारक थे। (तत्थ तत्थ तर्हि तर्हि देसे देसे) वे उमी वर्गाचे मं भिन्न २
जगह पर (गच्छागच्छि) गच्छ गच्छरूप में विभक्त होकर, (गुम्मागुम्मि) गच्छ के एक
२ भाग में विभक्त होकर (फड्डाफड्ढि) फुटकर फुटकर रूप में विभक्त होकर निराजते थे।
इनमें से (अप्पेगइया वायन्ति) कितनेक सूत्र की वाचना प्रदान करते थे-सूत्र पढाते

अनगार लगव तो होता, तेमनाभा (अप्पेगइया) डेटलाक (आयारधरा जाव विवाग
सुयधरा) आचाराग सूत्रना धारक होता, 'यावत्' गण्ठथी डेटलाक सूत्रकृतागथी
दधने प्रख्याकरण सुधीना सूत्रीभाथी ओठ ओठ सूत्रना धारक होता, अने डेटलाक
विपाकसूत्रना धारक होता, उपलक्षणथी डेटलाक अथा सूत्राना धारक होता (तत्थ तत्थ
तर्हि तर्हि देसे देसे) ते २ गणीयाभा लुदी लुदी गण्थाओ (गच्छागच्छि) गच्छ गच्छ
इपभा विलक्षत थधने, (गुम्मागुम्मि) गच्छना ओठ ओठ लागभा विलक्षत थधने
(फड्डाफड्ढि) टटा-टवाया इपभा विलक्षत थधने विराजता होता तेमनाभाथी
(अप्पेगइया वायन्ति) डेटलाक सूत्रनी वाचना आपता होता-सूत्र लघुवता

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ
महावीरस्स वहवे अणगारा भगवंतो अप्पेगइया आयायधरा

व्युसर्ग १४। 'आउकम्मविउस्सग्गे' आयुक्कर्मव्युसर्गः । १५। 'णामकम्मविउ
स्सग्गे' नामकर्मव्युसर्ग १६। 'गोयकम्मविउस्सग्गे' गोत्रकर्मव्युसर्ग १७। 'अत
रायकम्मविउस्सग्गे' अन्तरायकर्मव्युसर्ग १८। 'से त कम्मविउस्सग्गे' स एण
कर्मव्युसर्ग, 'से त भावविउस्सग्गे' स एण भावव्युसर्ग । इयमनशानादिभेदेन
पडविध वाह्य प्रायश्चित्तादिभेदेन पडविधमाम्यतर च तपो व्याप्यातम् ॥ सू० ३० ॥

टीका—'तेण कालेणं तेण समएण' इत्यादि। तस्मिन् काले तस्मिन्
समये 'समणस्स भगवओ महावीरस्स' श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य 'वहवे
अणगारा भगवंतो' उहोऽणगारा भगवत—वर्णिता पुनर्वर्ष्यमाना श्रमण

४, आउकम्मविउस्सग्गे ५, णामकम्मविउस्सग्गे ६, गोयकम्मविउस्सग्गे, ७
अतरायकम्मविउस्सग्गे ८) जानावरणीयकर्मव्युसर्ग १, दर्शनावरणीयकर्मव्युसर्ग २,
वेदनीयकर्मव्युसर्ग ३, मोहनीयकर्मव्युसर्ग ४, आयुक्कर्मव्युसर्ग ५, नामकर्मव्युसर्ग ६,
गोत्रकर्मव्युसर्ग ७, एव अतरायकर्मव्युसर्ग ८, (से तं भावविउस्सग्गे) ये सब भाव
व्युसर्ग हैं । इस तरह यहा तक अनशनादिक के भेद से उह प्रकार वाह्यतप का और
प्रायश्चित्त आदि के भेद से उह प्रकार आभ्यतर तप का वर्णन हुआ ॥ सू० ३० ॥

'तेण कालेण तेण समएणं' इत्यादि।

(तेण कालेण तेणं समएण) उस काल और उस समय (समणस्स भगवओ
महावीरस्स) श्रमण भगवान् महावीर प्रभु के, जो (वहवे अणगारा भगवतो) बहुत

उज्जकम्मविउस्सग्गे, आउकम्मविउस्सग्गे, णामकम्मविउस्सग्गे, गोयकम्मविउस्सग्गे,
अंतरायकम्मविउस्सग्गे) ज्ञानावरणीयकर्मव्युसर्ग, दर्शनावरणीयकर्मव्युसर्ग,
वेदनीयकर्मव्युसर्ग, मोहनीयकर्मव्युसर्ग, आयुक्कर्मव्युसर्ग, नामकर्मव्युसर्ग,
गोत्रकर्मव्युसर्ग तेमए अतरायकर्मव्युसर्ग, (से त कम्मविउस्सग्गे) आ प्रडारे
आ कर्मव्युसर्ग आह प्रकारने छ (से तं भावविउस्सग्गे) अे पधा
भावव्युसर्ग छ अे रीते अही सुधी अनशन आदिना लेदथी छ प्रकारना
आहानपनु अने प्रायश्चित्त आदिना लेदथी छ प्रकारना आभ्यतर तपनु
पणुंन थयु (सू० ३०)

'तेण कालेण तेण समएण' इत्यादि

(तेण कालेण तेण समएण) ते काल अने ते समये (समणस्स भगवओ
महावीरस्स) श्रमण भगवान् महावीर प्रभुना अे (वहवे अणगारा भगवतो) धणु।

बहुविहाओ कहाओ कहंति, अप्पेगडया उड्डजाणू अहोसिरा
झाणकोट्टोवगया संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति

॥ सू० ३१ ॥

=पैगयान् विनीयते वाभिस्ता, एतादृशा बहुविधा कथा कथयन्ति=श्रावयन्ति। या विविधा
कथा शृण्वन् श्रोता मोहं परिगम्य तत्प्रति आश्रितो भवति, तथा विक्षिप्त =कुमार्गविमुखो
भवति, एव सर्वदनीय =मोक्षमुराभिगयी, निर्विण्ण =ससारादुद्विग्नो भवति। 'अप्पेगडया
उड्डजाणू अहोसिरा' अत्रैकके ऊर्जानत्र, अत्र गिग्म =अयोमुखा-नोर्व्वं तिर्यग् वा
दत्तदृश्य 'झाणकोट्टोवगया' ध्यानकोट्टोपगता -ध्यानरूपो य कोट्टस्तमुपगता, सयमेन
तपमाऽऽत्मान भावयन्तो विहरन्ति ॥ सू० ३१ ॥

जिस कथा के सुनने से प्राणी मोक्षमुरा की अमिलापावाला बन जाता है उस कथा का
नाम 'संवेदनी कथा' है ३, जिस कथा के सुनने से प्राणी ज्वार से निरक्त हो जाता
है उस कथा का नाम 'निर्वेदनी कथा' है ४। इन कथाओं का सुनने वाला श्रोता मोह
का परित्याग कर तत्त्व के प्रति आकृष्ट होता है, कुमार्ग से विमुख होता है, मोक्ष सुखका
अमिलापी होता है और निर्विण्ण-सागसे-उद्विग्न-होता है। (अप्पेगडया उड्डजाणू
अहोसिरा झाणकोट्टोवगया संजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणा विहरन्ति) कितनेक
मुनिजन दोनों घुटनों को ऊँचा कर नाचे मस्तक किये हुए-माथा झुकाये हुए-ध्यानरूपी
कोष्ठ में प्राप्त थे। उस प्रकार तप्यम और तपसे अपनी आत्मा को भावित करते हुए
साधुगण विचर रहे थे ॥सू० ३१॥

भोक्षणा मुष्ण भाटे अबिलापावाणो अने छे ते कथानु नाम 'संवेदनी कथा'
छे, जे कथा नालणवादी प्राणी स माग्धी विवृत्त थाय ते ते कथानु नाम
'निर्वेदनी कथा' छे आ कथाओना नालणना श्रोता भोक्षेना परित्याग
करीने तरपना तरक्ष आवर्षित थाय ते, कुमार्गधी विमुख थाय छे,
भोक्षणा मुष्णा अबिलापावाणा थाय छे अने ससारधी निर्विण्ण-
उद्विग्न थाय छे (अप्पेगडया उड्डजाणू अहोसिरा झाणकोट्टोवगया संजमेण तवसा
अप्पाण भावेमाणा विहरन्ति) जेटलाक मुनिजन अन्ने घुटण्णो उथा राणी,
माथु नीचे राणी-माथु नीचे करीने-ध्यानरूपी डोडाभा प्राप्त हुता अत्रैकके
सयम अने तपशी पोताना आत्माने भावित करता साधुगण विचरता हुता,
(सू० ३१)

पुच्छन्ति, अप्पेगइया परियट्ति, अप्पेगइया अणुप्पेहन्ति, अप्पे-
गइया अक्खेवणीओ विक्खेवणीओ सवेयणीओ णिव्वेयणीओ

वाचयन्ति—सूत्रवाचना दन्ते—गण्डैरुदेश गगाऽवट्ठेदमभिष्टित विमाय सूत्रवाचना
वाचयन्ति । 'अप्पेगइया पडिपुच्छति' अयेरुके प्रनिपुच्छति=सूत्रार्थी पृच्छति,
'अप्पेगइया परियट्ति' अयेरुके परिवर्तयन्ति=सूत्रार्थी पुन पुनग्भ्यन्वन्ति । 'अप्पेगइया
अणुप्पेहति' अयेरुके अनुप्रेक्षन्ते=परिचितयति । 'अप्पेगइया अक्खेवणीओ
विक्खेवणीओ सवेयणीओ णिव्वेयणीओ बहुविहाओ कहाओ कहति' अयेरुके
आक्षेपणी विक्षेपणी =वेदिनी निर्वेदिनीरुविधा क्वा क्ययन्ति, मोहादपनीय तत्व
प्रति आक्षिप्यते=आकृष्यते प्राणी यामिस्ता आक्षेपण्यस्ता—'कथा' इत्यस्य विशेषणम् ।
विक्षेपणी—विक्षिप्यते=कुमार्ग प्रसक्त प्राणी कुमार्गापृथक् क्रियते यामिस्ता विक्षेपण्यस्ता ।
सवेदिनी—वेद्यते=मोक्षसुराभिलाष क्रियते यामिस्ता । निर्वेदिनी—निर्वेद्यते=मसागद् निर्विण्णो

ये, (अप्पेगइया) कित्तेक (पडिपुच्छति) सूत्र और अर्थ को पूछते ये, (अप्पेगइया)
कित्तेक (परियट्ति) सूत्र और अर्थ की आवृत्ति करते ये, (अप्पेगइया) कित्तेक (अणु-
प्पेहति) सूत्र—अर्थ की अनुप्रेक्षा—परिचिन्तन करते ये, (अप्पेगइया) कित्तेक (अक्खे-
वणीओ १, विक्खेवणीओ २, सवेयणीओ ३, णिव्वेयणीओ ४, बहुविहाओ कहाओ
कहति) आक्षेपणी, विक्षेपणी, सवेदिनी, और निर्वेदिनी, इन अनेक प्रकार की कथाओं
को कहते ये । मोह से दूर कराकर प्राणी जिस कथा के द्वारा तत्व के प्रति आवृष्ट क्रिया
जाता है उस कथा का नाम 'आक्षेपणी कथा' है १, कुमार्ग में रत प्राणी जिस कथा से
उस कुमार्ग की ओर से पृथक् क्रिया जाता है उस कथा का नाम 'विक्षेपणी कथा' है २,

इता, (अप्पेगइया) डेटलाऽ (पडिपुच्छति) सूत्र तथा अर्थ पृच्छता इता
(अप्पेगइया) डेटलाऽ (परियट्ति) सूत्र तथा अर्थनी आवृत्ति करता इता
(अप्पेगइया) डेटलाऽ (अणुप्पेहति) सूत्र—अर्थनी अनुप्रेक्षा—परिचिन्तन करता
इता (अप्पेगइया) डेटलाऽ (अक्खेवणीओ, विक्खेवणीओ, सवेयणीओ णिव्वे
यणीओ, बहुविहाओ कहाओ कहति) आक्षेपणी, विक्षेपणी, सवेदिनी, अने
निर्वेदिनी, ये प्रकारे अनेक प्रकारनी कथाओ करता इता मोडथी हर
इरीने ने कथा तत्त्वना तरइ आकर्षणु करे छे ते कथानु नाम 'आक्षेपणी
कथा' छे कुमार्गमा भन्न थयेला प्राणीने ने कथाथी ते कुमार्ग तरइथी बुद्धो
करावाय ते कथानु नाम 'विक्षेपणी कथा' छे ने कथा मालजवाथी प्राणी

चिन्ता-पसंग-पसरिय-वह-बंध-महल्ल-विउल-कल्लोल-कलुण-
विलविय-लोभ-कलकलंत-बोलबहुलं अवमाणण-फेण-तिव्व-

काइलामाह-‘सजोग-विओग-वीड-चिन्ता-पसग-पसरिय वह-वय महल्ल-विउल-कल्लोल-
कलुण-विलविय-लोभ-कलकलंत-बोल-बहुल’ सयोग-पियोग वीचि-चिन्ताप्रसङ्ग-प्रसूत-
यय-बन्ध-महाविपुल-कल्लोल-करुण-त्रिलपित-लोभ-कलकलयमान-बोल-(ध्वनि)-बहुलम्-सयोग-
पियोगा = अप्रियशब्दादिसयोग-प्रियशब्दादियोगा एव वीचय = तद्गद्गा यत्र सागरे स सयोग-
पियोगवीचि, चिन्ताप्रसङ्ग = पुन पुनश्चिन्ताप्राप्ति म एय प्रसूत = प्रसरण यस्य स तथा,
यय = हननानि, यथा = मयमनानि, त एव महान्तो = दार्ता, विपुला = विस्तीर्णा
कल्लोला - महोर्मयो यत्र स बधबन्धमहाविपुलकल्लोल, करुणानि = करुणारसजनकानि विल-
पितानि = त्रिलापत्रचनानि, लोभा = लोभसम्भूताऽऽक्रोशाश्च त एव कलकलयमाना बोला = चनयो
बहुला यत्र स तथा, तत सयोगपियोगवीचिश्चामौ चिन्ताप्रसङ्गप्रसूतश्च तथा बधबन्धमहा-
विपुलकल्लोलश्चामौ करुणविलपितलोभकलकलबोलबहुलश्च स तथा, त तादृश, योगादितर-
ङ्गतगङ्गित चिन्ताविस्तीर्णं बधबन्धकल्लोल करुणत्रिलपिलोभसम्भूताक्रोशप्रचण्डनादनादितमि यर्थ ।
पुन कथन्मूतम् ? ‘अवमाणणफेणतिव्वर्षिसणपुलपुलप्पभूयरोगवेयणपरिभवविणिवाय-

(सजोग-विओग-वीड-चिन्तापसग-पसरिय-वह-वय-महल्ल-विउल-कल्लोल-कलुण-विल-
विय-लोभ-कलकलंत-बोल-बहुल) सयोग = अमनोज्ञ शब्दादिकों का सवध, पियोग = मनोज्ञ
शब्दादिकोंका अभाव, ये जिसमें वीचि-कल्लोल है, चिन्ता जिसका विस्तार है, बध एव बधन ही
जिमम विस्तृत तर्गो हे, करुणारसजनक त्रिलापत्रचन एव लोभ से नभूत आक्रोशत्रचन, ये दो
जिसकी बहुल कलकलयमान ध्वनिया है-गर्जना है, (अवमाणण-फेण-तिव्व-र्षिसण-पुलपुल-
प्पभूय-रोगवेयण-परिभव-विणिवाय-परिस-परिसणा-समावडिय-कटिण-कम्म-पत्थर-
तरग-रगत-निच्चमच्चुभय-तौयपट्ट) अपमान ही जिमम फेनगणि हे । दु सहनिदा, निर-

(सजोग-विओग वीड-चिन्तापसग पसरिय-वह बध महल्ल विउल-कल्लोल-कलुण-त्रिलविय-
लोभ-कलकलंत-बोल-बहुलं) सयोग-भनने न गमे तेवा शब्द आदितोने
स भव, भनने गमे तेवा शब्द आदितोने वियोग, ये लेभा वीचि-कल्लोला
छे, चिन्ता लेने विस्तार छे, वय तेमव बधन व लेभा मोटा मोटा छे,
उत्थानमचन विलापवचन तेमव बोलाथी उत्पन्न थयेल आक्रोशवचन
ये ये लेनी मोटी उलकलाट ध्वनियो छे-गर्जना छे, (अवमाणण फेण तिव्व-
र्षिसण-पुलपुल-पभूय-रोगवेयण-परिभव-विणिवाय-परिस - धर्मिणा - समावडिय
कटिण-कम्म-पत्थर- तरग-रगत-निच्चमच्चुभय-तौयपट्ट) अपमान व लेभा तीघना

मूलम्—संसारभउव्विग्गा भीया जम्मण-जर-मरण- गंभीर-दुक्ख-पक्खुभिय-पउर-सलिलं संजोग-विओग-वीड-

टीका—भगवत् श्रीमहावीरस्वामिनोऽनगारा पुन कौटूआ ' इयाह—'ससार-
भउव्विग्गा' इयादि । ससारभयोद्विग्गा -चतुर्गतिभ्रमणञ्जगसमाग्भयादुद्विग्गा = यादुग्ग ,
'केनोपायेन ससारसागरात् तरिध्याम' इतिचिन्ताजाल-कुला इत्यर्थ । अत एव 'भीया'-भीता =
भययुक्ता, अस्य तरन्ती यत्रान्वय । सूत्रकार ससारसागर उर्गयति—'जम्मण-जर-मरण-
करण-गंभीर-दुक्ख पक्खुभिय-पउर सलिल' जन्म-जरा-मरण करण-गंभीर दु ए-प्रभुभित-
प्रचुर-सलिलम्-जन्मजरामरणान्येन करणानि=साग्गानि यस्य तत् तथा, तदेव गंभीर-
दु ख=प्रगाढदु ख, तदेव प्रभुभित=प्रचलितम्, प्रचुर=विपुल सलिल=जल यस्मिन् स जन्म-
जरा-मरण-करण-गंभीर-दु ख-प्रभुभित-प्रचुरसलिलस्त, पुन कौटूग ससारसागरम् ' इत्या-

'ससारभउव्विग्गा' इत्यादि ।

भगवान् महावीर के अनगार और भी कैसे थे ' इस बातको प्रकट करने के लिये
सूत्रकार इस सूत्रकी प्ररूपणा करते हुए कहते हैं कि—भगवान् महावीर स्वामी के ये अन-
गार (ससारभउव्विग्गा) चतुर्गति में भ्रमण करने रूप ससार के भय से उद्विग्न थे, 'किस
उपाय से हम लोग इस अथाह ससारसागर से पार होंगे' इस प्रकार का चिन्तन सर्वदा
करते रहते थे । (भीया) इसलिये ये ससारभीरु थे । अब यहाँ से यह ससारसागर कैसा
है ' इस बात को नाचे लिखित विशेषणों द्वारा सूत्रकार स्पष्ट करते हैं—(जम्मण-जर-मरण
करण-गंभीर-दुक्ख-पक्खुभिय-पउरसलिल) जन्म, जरा और मरण, ये ही जिसके
साधन हैं ऐसा प्रगाढ दु ख ही जिसमें उठलता हुआ अगाध जल भरा हुआ है, तथा

'ससारभउव्विग्गा' इत्यादि

भगवान् महावीरना अनगार इरीपणु देवा हुता ? ते वातने प्रकट करवा
सूत्रकार आ सूत्रनी प्ररूपणा करता कडे छे डे-भगवान् महावीर स्वामीना
ते अनगार (ससारभउव्विग्गा) चतुर्गतिमा भ्रमणु उराववाइए ससारना
लयथी उद्विग्न हुता, 'इया उपायथी अमे आ अगाध ससारसागरथी पार
थअंजे' ओ प्रकटनु चिंतन सर्वदा उर्या करता हुता (भीया) अथी तेओ
ससारभीरु हुता हुवे अर्हीथी ओ ससारसागर देवा छे ? ते वात नीचे
लपेला विशेषणो द्वारा सूत्रकार स्पष्ट करे छे—(जम्मण-जर-मरण करण गंभीर-
दुक्ख पक्खुभिय-पउरसलिल) जन्म, जरा अने मरण, ओ जनेना साधन छे
ओवा प्रगाढ दु ख ओमा विस्तारथी उछणता पाणीना ओम लरेला छे तथा

કલુસ-જલ-સંચયં પડ્ભય અપરિમિય-મહિચ્છ-કલુસમહ-
 વાઉવેગ-ઉદ્દુમ્મમાળ-દ્ગરચ-ચયધાર-વરફેણ-પર-આસા-

વાયુપ્રવિગ્નો-ટોકા સ્ ૩૨ સસારસાગરવર્ણનમ । 'પડ્ભય' પ્રતિભયમ્=મહાભયદ્ગમ્, 'અપરિમિય-
 મહિચ્છ' કલુસમહ-વાઉવેગ-ઉદ્દુમ્મમાળ-દ્ગરચ-ચયધાર-વરફેણ-પર-આસા-પિવાસ-
 ધવરુ' અપરિમિત-મહચ્છ-કલુસમનિ-વાયુવેગો-દ્ગમ્યમાનો-દ્ગરજોગ્યાઽન્ધકાર-વરફેણ-પ્રચુગાઽઽગ્ના-
 પિવામા-વરમ્-અપરિમિતા =અચધિકા યે મહચ્છા -તીર્થાભિલાપવન્તો લોકા, તેષા કલુપા=
 મન્થિના યા મનિ સર્વ વાયુમગન ઉદ્ગમ્યમાનમ્-ઉદ્ગરજોરચ-જલક્રમમમ્હ, તન અન્ધકાર
 ઇત યત્ર મ તથા ઘર્ષનમ્નિ-આગાપિવામાભિર્ધવલ ઇવ ધવલો ય મ તથા ત, તત્રાપ્રાપ્તાર્થાના
 પ્રાપ્તિ-ભાવના આગા, ધનસન્ધિચરતાલ્લાલસા પિવાસા । 'મોહમહાવત્તમોગમમમાળ ગુપ્પ-
 માણુચ્છ' વ્તવચ્છોગિયત્તપાણિયપમાયચડવહુદુદ્ગસાચયસમાહ્યુદ્ગાયમાણપચ્ચાર - વોર-
 કવિયમહારવરવત-ભેરવ-વ-મોહમહાવત્તમોગમમમ્યદ્ગુપ્પ્યદુચ્છલ્લપ્રત્યવનિપત્તપાનાયપ્રમાદચ્છલ-

મત્ત રૂપ હા જિમમે કલુસ-મલિત-જલ કા સચય હ, (પડ્ભય) મહાભયદ્ગર હૈ । (અપરિ-મિય-
 મહિચ્છ કલુસમહ-વાઉવેગ-ઉદ્દુમ્મમાળ દ્ગરચચયધાર-વરફેણ-પર-આસા પિવાસ-
 ધવરુ) અપરિમિત-અ ચધિક અભિગ્રાવાગલા મનુ'યા કી જો વિવિધ પ્રકાર કી બુદ્ધિયા હે
 યે હા માના ઇમકે વાયુકે જ્ઞોકોં સે ઉઢાયે હુણ જલક્રમ હ, ઇનસે યહ સસારમમુદ્ર અધ-
 કાર સે યુક્ત જેમા હો ગ્તુ ા આગા ઇવ પિવાસારૂપ પ્રચુર ફેણ સે યહ ધવલિન હો રહ્વા હૈ ।
 અપ્રાપ્ત અર્થ કા પ્રાપ્તિ કા ભાવના કા નામ આગા હૈ, ઓર ધન મધી તીવ્ર લાલસા કા નામ પિવાસા
 હૈ । (મોહ-મહાવત્ત-મોગ-મમમાળ ગુપ્પમાણુ ચ્છલત-વચ્છોગિયત્ત-પાણિય-પમાય-ચડ-
 વહુદુદ્ગ-સાચયસમાહ્યુદ્ગાયમાણ-પચ્ચાર વોર-કવિય-મહારવરવત-ભેરવ-વ) ઇત ા સાર

મ જલ-સચય) લાગો ભવરૂપ જ જેમા ઠલુપ-મેલા પાણીનો સ ચય છે, (પડ્ભય)
 મહાભય ઠ છે (અપરિમિય-મહિચ્છ કલુસમહ વાઉવેગ ઉદ્દુમ્મમાળ-દ્ગરચ-ચયધ-
 યાર વરફેણ પર આસા પિવાસ વચ્છ) અપરિમિત-અહુ જ અભિલાપાવાળી મનુ-
 ષ્યોની જે વિવિધ પ્રકારની યુદ્ધિ છે તે બધ્ણે તેના વાયુના અપાટાથી ઉડતા
 જલઠણો છે તેનાથી આ સસારસમુદ્ર અવઠારથી ભરેલ જેવો થઈ ગયો
 છે આગા તેમજ પિવામા (તૃષ્ણા) રૂપ પ્રચુર ક્રીણુથી તે સફેદ થઈ રહેલો
 છે અપ્રાપ્ત અર્થની પ્રાપ્તિની અભાવનાનું નામ આગા છે અને ધન
 મધ્યથી તીવ્ર લાલસાનું નામ પિવામા છે (મોહ મહાવત્ત મોગ મમમાળ-ગુપ્પમાણુ
 ચ્છલત-વચ્છોગિયત્ત-પાણિય પમાય-ચડ વહુદુદ્ગ-સાચય-સમાહ્યુદ્ગાયમાણ પચ્ચાર-વોર-

खिसण-पुलंपुल (पलुंपण)-पभूयरोग-वेयण-परिभव-विणिवाय-
फरुस-धरिसणा-समावडिय-कठिण-कम्म-पत्थर-तरंग-रंगंत-
निच्चमच्चुभयतोयपट्टं कसाय-पायाल-संकुलं भवसयसहस्स-

फरुसधरिसणासमावडियकठिणकम्मपत्थरतरंगगतमच्चुभयतोयपट्टं अपमानन-फेन
तीव्र-खिसण-पुलंपुल-प्रभूत-गोग-वेदना-पग्ग्भवा-विनिपात-पग्ग्-धर्षणा-समापत्ति-कठिनकर्म-
प्रस्तग-तरङ्ग-रङ्गानि यमृत्पुभय तोयपृष्ठम्-अपमाननमेव फनो यत्र सोऽपमाननफेन, तथा-तीव्र-
खिसणम्=दु सहनिन्दा, पुलंपुलप्रभूता=निरन्तरममुपला या गोगवेदना पग्ग्भवा =अनादरा,
विनिपाता =नाशा, अथवा परिभवविनिपात-परिभव =पगभव पराजयो हानिर्ना, तस्य
विनिपात =प्राप्ति परुधर्षणा-निष्टुरवचननिर्भर्सानानि, तथा-समापत्तानि=वद्धानि यानि
कठिनानि=कठोरोदयानि कर्माग्नि=ज्ञानाऽऽरणीयादानि, ण्तायेव प्रस्तग-पापाणास्तै
कृत्वा तन्वद्वेन प्राप्य समुचितै, तरङ्गै, रिद्धत=प्रचलत्, निय=पुव यमृत्पुभय=मरणमीति
तदेव तोयपृष्ठ=जलोपरितनभागो यत्र स तथा तादृशम्, पुन कीदृश 'कसायपायालसंकुल'
कपायपातालसंकुलम्-रूपाया एव पाताल =पातालकल्पा-अवस्तानि तै संकुल-व्याप्त-
स्तम्। 'भवसयसहस्स-कलुस-जल-सचय' भवगतसहस्रकलुपजलसञ्चयम्-भवगतसह-

न्तर समुत्पन्न रोगवेदना, पराभव, विनिपात-विनाश, अथवा पराभव की प्राप्ति, निष्टुर
वचन, अपमान क वचन, एव कठोर उदयजाल सचित ज्ञानारणीय आदि आठ कर्म, ये
ही जिसमें पापाण हैं, और इन पापाणा के उदयन से अनेक प्रकार की आत्रिव्याधिरूप
तरङ्ग उत्पन्न होती हैं, इन तरंगों द्वारा चलायमान अवश्यभावी मृत्युभय ही जिमम तोय
पृष्ठ-जल का उपरितनभाग है, ऐसा यह न मारसागर है। तथा यह (कसाय-पायाल-
संकुल) कपायरूप पातालकल्पा से व्याप्त है। (भव सयसहस्स-कलुस-जल-सचय) लाखों

दशलाक्ष छे, ६ सड़ निहा, निरन्तर थती रोगवेदना, पराभव, विनिपात
विनाश, अथवा पराभवकी प्राप्ति, निष्टुर वचन, अपमानना वचन, तेभव
कठोर उदयवाणा मचित नानावर्णीय आदि आठ कर्म, ये न नेमा पापाण
(अठडो) छे, अने आ पापाणो साथे लठकावावी ने अनेक प्रकारना आधि
व्याधिरूप भोज उत्पन्न थता रडे न अने ते द्वारा चलायमान अवश्यभावी मृत्यु-
भय न नेमा पाणीनी मपाटीना लाग छे, जेवो आ न माऽसागर छे तथा आ
(कसायपायालसंकुल) कपायर्ष पातालजलोथी व्याप्त छे (भव सयसहस्स कलु

च्छपरिहृत्थ-अणिहुयिंदिय-महामगर-तुरिय-चरिय-खोखुव्भमाण-
नच्चत-चवल-चंचल-चलंत-घुम्मंत-जल-समूहं अरड-भय-विसाय-
मोग-मिच्छत्त-सेल-सकड अणाइसंताण-कम्मबंधण-किलेस-

गगापक्र-त्वग्निचरित-चोऽभ्यमाण-नृत्यचपलाचञ्चल-चलत्-पूर्णज-समूहम्-अजानान्येव
भमन्तो मर्या प्रतिहस्ता जलजन्तुविशेषा, यस्मिन् समागसागं स तथा, अनिभृतानि-
अनुपशान्तानि यानीन्द्रियाणि तान्येव महामक्रगस्तेषा यानि त्परितानि=शीत्राणि वेष्टितानि
=यथा ते-चोऽभ्यमाण अयन्तमुच्छलन् नृत्यन्निव नृत्यन्, चपलाचञ्चल यथा स्यात् तथा
पत्रा र्णन=विद्युत्समानवेगन चञ्चकाकार भ्रमन जलसमूह, पारपक्षे तु जटसमूहो=विशेष
जलचिन्ताना समूहो यत्र स तथा, तत पदद्वयस्य कर्मकारय, त तादृशम् । 'अरड-भय-
विसाय-मोग मिच्छत्त-सेल-सकड' अरतिभयविगादशोकमि यावयैलसङ्कटम्-अरति, भय,
विषाट्, शोक, मिथ्यात्वम् प्तानि प्रतिरोधकतया शैल्येव तै मङ्कट =अतिविफट, त तादृशम्,
'अणाइ-सताण-कम्म-बंधण-किलेस-चिक्खिल्ल-सुदुत्तार' अनादि सन्तान-कर्मवन्धन-क्लेष-
कर्ममुत्तम-अनादिस तानम्=अनादिप्रवाह यत्कर्मबन्धन तच्च, क्लेशाश्च गगादयस्तल्लक्षण यत्

दसरसागर समुद्र मे अजान ही घूमते हुए मर्या एव परिहस्त-जलजन्तुविशेष हैं । अनुपशान्त
इन्द्रिया ही इसमें विकराल मगर हैं । इन इन्द्रियरूप महामक्रों के चञ्चल चेष्टाओं से
दमम अजानिया का समूहरूप जलसमूह लुप्त हो रहा है, नाच रहा है, विद्युद्वेग मे चक्र-
वत् घूम रहा है । (अरड-भय-विसाय मोग-मिच्छत्त-सेल-सकड) अरति अप्रीति, भय-भीति,
विषाट्, शोक एव मिथ्यात्वरूप पर्वतों से यह दसरसमुद्र अत्यंत विफट बना हुआ है ।
(अणाइ सताणकम्मबंधणकिलेस-चिक्खिल्ल-सुदुत्तार) अनादिकाल से दम जीव के साथ

भमाण नच्चत चवलचंचल-चलन घुम्मंत जल समूह) आ मत्सरसमुद्रमा अजान
व घुमता भाञ्जता तेभ्य परिहृन्त-जलजन्तुविशेषे अनुपशान्त
इन्द्रियो व शोभा विहराण मगरे ते इन्द्रियउप मङ्कामङ्कशेनी यत्रण चेष्टा
शोथी तेमा अज्ञानीशोना समूहइय जलसमूह क्षुब्ध थर्ष रक्षो हे, नाची
रक्षा हे, वीरजीवेजे थङ्कनी पेठे इगी रक्षो हे (अरड-भय-विसाय-मोग-मि-
च्छत्त-सेल सकड) अरति-अप्रीति, भय-भीति, विषाट्-शोक, तेभ्य मिथ्यात्व
उप पर्वतोथी आ मत्सरसमुद्र अत्यंत विफट अनेको हे (अणाइ-सताण-
कम्म बंधण किलेस चिक्खिल्ल सुदुत्तार) अनादि काली आ एवनी साथे धवन

पिवास-धवलं मोहमहावत्त-भोग-भममाण-गुप्पमाण-च्छलंत-
पचोगियत्त-पाणिय-पमाय-चंड-बहुदुष्ट-सावय-समाहयुद्धाय-
माण-पठभार-घोर-कंठियमहारवरवंत-भेरवरवं अण्णाण-भमंतम-

बहुदुष्टधाप-समाहतो जाव प्राग्भागघोरक्रन्दितमहाग-भेरवरव-मो-रूप गुप्प-भोग
एव भ्राम्यत-चक्राकारं भ्रमत्, गुप्पत्=चपरीभवत्, उच्छलन्त-
'पचोगिय' पचयन्तिपतत्-अपतत्, पानीय=जल या स तथा, प्रमादा=भयात्प्रमत्त
ण चच्छलन्तुदुष्टधाप-चण्डा=क्रोधगीया बहुदुष्टा=शतिदुष्टस्वभावा, धापदा-प्रमत्त
जीवास्तेषां 'समान्य' समाहता=प्रहता-आघात प्राता 'उद्धायमाण' उद्धान्त=
उच्छलन्त विविध चेटमाना वा ममुद्रपक्षे मस्यादय ससागपक्षे पुरपादय, तेषां 'पठभार'
प्राग्भार-ममूहो यत्र स तथा, तथा घोगेय क्रन्दितमहागव=रोदनमहागव स एव भ्रमन्त-
प्रतिगन्त-प्रतिव्यन्ति कुर्वन् भेरवरवो=भयानकगवो यत्र स तथा, ततत्रयाणा पन्ना कर्मधारय,
तम्-अण्णाण भमत मच्छ-परिहृत्य-अणिहृयिदिय-महासागर-तुरिय-चरिय-खोखुभ-
माण-नचत-चवलचवल-चलत्-घुम्मत-जलसमूह' अज्ञान-भ्रमन्मत्स्य-परिहस्तानिभृतेन्द्रिय

समुद्र के मोहरूप महा-आघात में भोगरूप जल चक्राकार से घूम रहा है, अथवा चवल
हो रहा है, उठल रहा है, उठल कर फिर नीचे गिर रहा है। तथा-इस सार समुद्र में
प्रमाद आदि हा क्रोधी एव अतिदुष्ट स्वभाव वाले हिंसक जीव हैं। इन के द्वारा आघात
को प्राप्त होकर समस्त सारी जीवों-पुरुष आदि (समुद्रपक्ष में मत्स्यादिक जलचर जीवों) का
ममूह धर-उपर भागता फिरता है। उन्हीं ससारी जीवों के भयकर आक्रन्दन की महाभाषण
प्रतिगन्ति इस सार समुद्र में हो रही है। तथा-(अण्णाणभमतमच्छपरिहृत्य अणिहृयिदि-
य-महासागर-तुरिय-चरिय खोखुभमाणनचत-चवल चंचल-चलत्-घुम्मत-जलसमूह)

कदिय-महार-रवंत-भेर-रव) आ स सार समुद्रना मोहइय मडा आवर्तना
लोगउय जलचकनी पेटे धूमी रहु छे णहु वेज थध रधो छे, उछणी
रहु छे उछणीने पाछु नीचे पजे छे तथा-आ स सारसमुद्रमा प्रमाद
आदि ज छोपी तेम अतिदुष्ट स्वभाववाणा हिंसक एव छे, तेमना ठारा
आघात पानीने समस्त ससारी एवो-पुरुष आदि (समुद्र पक्षमा मत्स्या
दिक जलचर एवो)नो नमड आभतेम लागनारा उरे छे ते सभागी
एवोनो लयउ आकहननो मडालीपणु पठयो आ स सारसमुद्रमा पजे
छे तथा (अण्णाण-भमत मच्छ परिहृत्य अणिहृयिदिय-महासागर-तुरिय चरिय खोखु

भीमदरिसणिजं तरन्ति, धिङ-ध्रणिय-निष्पङ्कपेण तुरिय-चवलं
 संवर-वेरग-तुंगकूवय-सुसंपउत्तेण णाण-सिय-विमल-भूसि-
 णं सम्मत्त-विमुद्ध-लद्ध-णिज्जामएणं धीरा संजमपोएण मीलक-

‘ससारमागरु त्रन्ति, -अस्य ‘मयमपोतेन’ इत्यमे व यमाणेन सम्भव । -साग्भयो-
 रिणा - यमिा यमपोतेन तगु पागन्ता पर्ये । किम्भूतन यमपोतेयाह-‘प्रिद्धणि-
 यनिष्पङ्कपेण’ धृति-निकनिप्रदग्गेग-भूतिरूपेण ग्लुपन्तन अनिरुम्=अ यर्थ निष्पङ्कप =
 म्भनरहितस्तेन - मपोतेन, ‘तुरियचवळ’ (वृत्तिचपलम्=अतिशीघ्रम्, -‘सवर-वेरग-तुंग-
 कूवय मुसपउत्तेण’ - म प्रैगग्य-नुद्ध रूपक-मु-प्रयुक्तेन तत्र - म =प्राणानिपातान्निवृत्ति-
 रूप, वैगग्य=विषयानभिपद्य एतदूो यस्तुद्ध =अ युक्त रूपक -पोतम यस्थित स्तम्भ,,
 तन मुदु म्भप्रयुक्त -मभ्यङ्गनया प्रयाजिनस्तेन, ‘णाण सिय-विमल-भूसिण’ ज्ञान-मित-
 विमलोऽनेन, ज्ञानमेव मित=एत वय तत्र विमलम् उचिहूत यत्र तेन, मूले
 मन्तर प्राङ्गतान । पत्रनाकम्पिन-वपटमण्डमण्डितपटाकृपणन नौका वेगगामिनी
 भवति । सति साग्भोपेनेऽपि पोते कर्गमारग भा-यमि याह-‘सम्मत्तविमुद्धलद्धणिज्जाम-

(प्रिद्धणियनिष्पङ्कपेण) अतिरप रजुपत्रन से जो अत्यन्त निष्पङ्कप है । (तुरियचवल)
 गति जिसका अत्यन्त शीघ्रगामी है (सवर-वेरग-तुंग कूवय-सुसपउत्तेण) मर-प्राणाति-
 पातादि से निवृत्तिरूप भिरति एव वैगग्य-विपत्रां मे अनभिपङ्करूप वृत्ति-ये दोनों ही
 क्रिमके बीच म एङ ऊँचा रूपक-स्तम्भ है । (णाण-सिय-विमल-भूसिण) ज्ञानरूपी सफेद-
 वस्त्र का जिसम पाल तना हुआ है । नौका म एक लकड़ा का रम लगा रहता है जिस
 पर एक कपटा बना रहता है । उससे हवा की स्कावट होन से नौका बडे वेग से चलती
 है । यत्र रूपक यहा वदित किया गया है । (सम्मत्त-विमुद्ध-लद्ध-णिज्जामएण) जिसमे

सत्रात् उडे है-(विद्धणियनिष्पङ्कपेण) धृतिउप हो-डाना अ धनथी रे अहुं
 नि-प्रउ प (इड) है (तुरियचवल) गति लेनी अत्यन्त वेगवाणी है (सवर वेरग
 तुंग कूवय मुसपउत्तेण) म व-प्राणानिपातान्निथी निवृत्तिउप विगति तेमव
 वेगग्य विपथेमा अनाभक्तिउप वृत्ति-अे अन्ने लेना वच्यमा अेड उथे
 कपउत्तल है (णाण-सिय विमल भूसिण) ज्ञानरूपी अक्षेद वच्यने लेमा सड
 डोय है वडाणुमा अेड लाडडाना थाअडेो लागेडेो डोय है लेना पर अेड कपडु
 (मड) ताणेडेो डोय छे तेमा डवा गेडार्ध वय छे तेथी लगार्धने वडाणु अहु
 वेगथी आवे छे आ १ इपड अड्डी वगवेडु है (सम्मत्त-विमुद्ध लद्ध णिज्जामएण)

चिम्बिल-सुदुत्तारं अमर-णर-तिरिय-णरयगड-गमण-कुडिल-
परियत्त-विउलवेल चउरंतं महत्सणवदग्ग रुइं संसारसागरं

‘चिम्बिल’-कर्म, तेन सुदु दुस्तर म तथा तम् । ‘अमर-णर-तिरिय-णरय-गड-गमण-
कुडिल-परियत्त-विउल-वेल’-अमर-नर-तिर्यङ्ग-णरक-गतिगमन-कुडिल-परिगत-त्रिपुत्र-वेलम्,
सुर-नर-तिर्यङ्ग-नरक-गतिपु-चतस्रपु-गमन-तदत्र-कुटि-परिगता = नरक-भ्रमा-न-एव-त्रिपुत्र =
विद्याला-वला-यस्मिन्-स-तथा-त-चतुर्गतिगमनरूप-कुटिल-वर्त-त्रिपुल-तटम् । ‘चउरत’
चतुरन्तम्-द्विभेदगतिभेदाभ्या-चतुर्विभागम् । ‘महत्’-महा-तम्=विद्यालयम् । ‘अणवदग्ग’
अनवदग्गम्-अपर्ययमानम् । ‘रुइं’-गौडम्-भयजनकम् । ‘भीमदरिसणिज्ज’-भामदर्शनायम-
भीम-यथा-भयती-येव-दृ-यते-य-स-भीमदर्शनीयस्तम्, य-ग-दर्शनाद्-भयमुपयते-तमित्यर्थः ।

वधन अवस्था को प्राप्त-चण आ रहा जो कर्म एव इनसे उद्भूत जो गगादिक परिमाण है,
ये ही जहा चिकना कादन है। इसीसे इसका तिग्ना दुष्कर हो रहा है। (अमर-णर-
तिरिय-णरयगड-गमण-कुडिल-परियत्त-विउल-वेल) देवगति, मनुयगति, तिर्यन्गति एव
नरकगति इन चार गतियों में जो निरन्तर जीव का परिभ्रमण है वह। इसका वक्र परिदर्शमान
विस्तृत वेला है। (चउरत) चतुर्गतिरूप चार दिशाओं के चार विभागों से जो विभक्त है।
(महत्) जो बड़ी विद्या है। (अणवदग्ग) जिसका पार पाना बहुत ही कठिन है।
(रुइं) जो बड़ा ही विकरालरूप वाला है। (भीमदरिसणिज्ज) जिसका देखने मात्र से ही
भय का उत्पन्न होता है। ऐसा यह संसारसमुद्र है। इसका पार पाना बिना यमरूप
जहाज के हो नहीं सकता है। अत्र यहा से जयमरूप जहाज का वर्णन सूत्रकार करते हैं-

अवस्थायी आत्मा आवाता ने उर्भ तेमज तेमनायी पेहा थता ने गगादिक
पण्णाम छे ते व चीउण्णे ङाएव छे अने तेथी तेने तस्सु सुरङ्कल वाय छे
(अमर-णर-तिरिय-णरय-गड-गमण-कुडिल-परियत्त-विउल-वेल) देवगति, मनुयगति,
तिर्यन्गति तेमज नरकगति आ आउ गतिओमा ने निरतउ एउतु परिवमल
छे ते व तेनी वाडी, पण्विधिंत थती विगाण वेला छे (चउरत) चतुर्गतिउप
चार दिशाओना आर विभागेयी ने विलज्जा उ (महत्) ने णडु भोटी छे
(अणवदग्ग) नेने पार पाभवे णडु व उडु छे (रुइं) ने णडु व विउराण
स्वइपवाणे छे (भीमदरिसणिज्ज) नेना दर्शन भावयी व लगने म आर
थाय छे ओवे आ संसारसमुद्र छे तेने पाउ पाभवे ते नयमउप नाव
वगर णनी थकतो नथी उवे अहीथी नयमउप नाव (वडाण)उ वणुन

वयवर-भंडु-भरियसारा जिणवर-वयणोवदिद्व-मग्गेण अकुडिलेण
सिद्धिमहापट्टणाभिमुहा समणवर-सत्थवाहा सुसुड-सुसभास-

महावत तदेव भाण्ट = क्रयगी वस्तुजात रूप, गृह = थापित सागे = रनात्स्वरूप पदार्थ जैसे
तथा, केन पया प्रयान्तन्तस्ता यत्राह - 'जिणवरयणोवदिद्वमग्गेण' जिनवचनोपदिष्टमार्गण
जिनवचनम = आगमरूपता उपदिष्ट = कथित - मार्ग = यमपथ - तेन, 'अकुडिलेण' अकुटि-
ल्लन - क्रापट्यादिनेपरन्तिना, 'सिद्धिपट्टणाभिमुहा' सिद्धिपत्तनाभिमुहा - सिद्धिरेव पत्तन
वगिभपुर तदभिमुहा - तस्य मुहा । 'समणवरमत्थवाहा' श्रमणवर्मार्थवाहा - श्रमण-

प्रमाद का परित्याग एव यत्रताय जयान मोक्ष प्राप्त करत का दृढ निश्चय, इन दोनों
मूर्त्यास गृहीत-ज्ञान वरात-गुणान्तर-भाण्डा का क्रयगीय वस्तुना का-कि जो निर्जरा,
यतना, उपयोग, ज्ञान, दर्शन एव [चाग्रि] स गिद्युद्ध हे, जिनम साग भग हुआ है ऐसे मुनिजन
इस साररूप महाममुद्र से पार होत है । किम मार्ग पर चरते हुए ये पार होते हे
सो बताते है- (जिणवरयणोवदिद्वमग्गेण) जिनवर का जो वचन है-आगम है, उसके
द्वारा उपदिष्ट जो यमरूप मार्ग है, उस पर चलकर ही ये मुनिजन इस साररूप समुद्र
को पार करते है । यह मार्ग केसा है, उसका लिये सकार (अकुडिलेण) इस विशेषण से
स्पष्ट करते है-यह मार्ग कपटता जाति सेवा से रहित है, अर्थात्-मरल है-आडा-ढढा
नहा है । ऐसे मार्ग से प्रयाग करने वाले ये मुनिजन पुन कैस हाने है यह अब यहा से
स्पष्ट किया जाता है-(सिद्धिपट्टणाभिमुहा) इस प्रकार के मार्ग से प्रयाग करने वाले

प्रमादनेो परित्याग तेमज व्यवनाथ अर्थात् मोक्ष प्राप्त करवानेो दृढ निश्चय,
अे भन्ने मूद्य (दि मत) थी लीधेल-वेयाता लीधेल १२ वत-महावतइप वास
णोना-वेयाती लीपेदी वस्तुजोना डे ले निजरा, यतना, उपयोग, ज्ञान, दर्शन
तेमज आरित्रीथी विगुद्ध हे जेभा नाउ बरेलो हे अेवा गुनिजन आ म सारइप
महानसुद्रथी पार थरु लय हे उथा माग पर्यालता तेया पार थाय हे ? ते
अतापे हे- (जिणवरयणोवदिद्वमग्गेण) जिनवइतु ले वचन हे-आगम हे-तेना
ठाग उपदेशाखेल ले सथमइप मार्ग हे, तेना पर्यातीने ज ते मुनिजनो
आ म नाइप नसुद्रने पार उरे हे आ मार्ग उेवा हे ? ते भाटे सूत्रकार
(अकुडिलेण) आ विशेषणथी -पष्ट उरे हे आ मार्ग कपटता आदि दोषोथी
गडित हे-अर्थात् नरण हे, आगेटेणे नथी अेवा मार्गथी प्रयाणु वरनारा अे
मुनिजनो वणी उेवा डोय हे ते अथु आडीगी पष्ट उवाभा आवे छे
(सिद्धिपट्टणाभिमुहा) अे प्रारना मार्गे प्रयाणु वरवावाणा मुनिजनो सिद्धिइप

लिया पसत्थज्ज्ञाण-तत्र-प्राय-पणोद्वियपहाविण्णं उज्जमववसाय-
ग्गहिय-णिज्जरण-जयण-उवओग-णाण-इसण-[चरित्त] विमुद्ध-

एण' सम्यक्प्रविशुद्ध-अभियोगेण न-पत्तरणा विशुद्धे नि विंत्ता = प्राप्ते निर्याम =
कर्माभारा-नौकाग्रहको यत्र स तथा तेन, सम्यक् प्रपणोद्वियपहाविण्णं धर्ये, अम-स्विस्य
भावा, 'सज्जमपोएण' - प्रमोतेन = यमपौक्या। 'गीठकणिया' शात्कणिया = जयण-
सहस्रशीलाङ्गवधारका-गीठकुळा, 'पसत्ताज्ज्ञाणतत्रप्रायपणोद्वियपहाविण्ण' प्रगस्त-
ध्यानतपोजातप्रगोदितप्रप्रवित्तेन-पञ्चम ध्यान धर्मशुभात्क तद्रूप तप तदेव वातो=वातु,
तेन प्रणोदित = प्रेरित, जनणा प्रप्रवित्तनेन, 'उज्जम ववसाय-ग्गहिय-णिज्जरण जयण-
उवओगगाणइमग्गचरित्तविमुद्धवयवरभटभरियसारा'-उज्जम तामायगृहानिर्जरणयत्तनो-
पयोगज्ञानदर्शनचारित्रिशुद्धतत्रप्रमाणडभूतमाग-उज्जम = प्रमादपरि याग वृत्त्यां प्रो=मो-नप्राप्ति-
निश्चय-नाभ्या मूच्यरूपाभ्या यद्गृहान-काल निर्जरणयत्तनोपयोगज्ञानदर्शनचारित्रिशुद्ध तत्वर =

विशुद्ध सम्यक्प्र हा नियामक-कर्मकार के स्थानापत्र है, अत्रान् विशुद्ध ममकिन का लाम
जिसम गवटिया के समान है। (पसत्थ ज्ज्ञाणतत्र-प्राय पणोद्विय-पहाविण्ण) प्रगस्त ध्यान-
रूप तपरूपा वायु से प्रेरित होकर जो आग २ चढता रहता है। इस तरह इन
पूर्वोक्त विशेषों से निश्चित दम यमरूपा जटाज के द्वारा इस तमारूप अपार दुग्तर
समुद्र को (धीन) धारण स्थिर समावसात् मुनिजन ही (तरति) पार करते हैं। अत्र यहा
से मुनिजना के शिष्य प्रयुक्त विजयगा का अर्थ स्पष्ट किया जाता है-(सीलकलिया)
ये मुनिजा-गीठ-१८ तज्जागजाठ क मत्ता को वाग्ग करन गले ह। (उज्जम-ववसाय-ग्गहिय-
णिज्जरण-जयण-उवओग णाण-इसण [चरित्त]विमुद्धवयवरभटभरियसारा) उज्जम अर्थात्

जेभा विशुद्ध सम्यक्त्व ११ निर्यामठ-उर्ध्वधारने च्याने (सुजानी) के, अर्थात् विशुद्ध
अभक्तिनो लाल ११ जेभा सुजानीना समान के (पसत्थ ज्ज्ञाण तत्र प्राय पणो
द्विय पहाविण्ण) प्रगस्त ध्यानउप तपइपी वायुशी प्रेरित यधने जे
आगण आगण वधतो रहे के ओ गीत ते पूवाङ्ग विशेषशेयी विशिष्ट आ
अयमउपी वडाधुटांग न नारउप अपा-दुग्तर असुद्धने धीर वीर शिष्य स्वभाव
वाणा मुनिजनो १ (तरति) पाठ रहे के हवे अही श्री मुनिजनो भाटे लगाडेला
विशेषहोना अर्थ स्पष्ट दरवाभा आवे के-(सीलकलिया) ओ मुनिजनो सील-
१८ दुग्तर गीलना प्रजरने धाग्ग ववावागा के (उज्जम-ववसाय-ग्गहिय-णिज्ज
रण जयण उवओग णाण-इसण [चरित्त] विमुद्ध वयवर भट भरिय-सारा) उज्जम अर्थात्

जिडदिया णिब्भया गयभया सच्चित्ताचित्तमीसिएसु दब्बेसु
विरागयं गया सजया [विरता] मुत्ता लहुया णिरवकंखा साहू
णिहुया चरंति धम्मं ॥ सू० ३२ ॥

या गयभया ' निर्भया गतभया, 'सच्चित्ताचित्तमीसिएसु दब्बेसु' सच्चित्ताचित्तमित्थित्तेपु
द्रव्येषु=वस्तुषु 'विरागय गया' विगगता गता-वैगय प्राप्ता । 'सजया' मयता =जयम-
वन्त । 'विरता' विरता =हिंसादिभ्यो निवृत्ता, 'मुत्ता' मुक्ता-लोभरहिता, 'लहुया' लघुका-
स्वप्नोपनिगमित्या लघुभूता । 'णिरवकंखा' निरवकाङ्क्षा =उभयलोकसुराभिलाषपरिजिता,
यत् पूवाक्तगुगत्रिगिष्टा, अतएव 'साहू' मापय-मोक्षसाधका । 'णिहुया' निभृता-
विनीता जा यादिमद्वर्जिता इत्यर्थे, ' धम्म' धर्म-श्रुतचारित्रलक्षणम् । 'चरंति' चर-
न्ति=आगच्छन्ति ॥ सू० ३२ ॥

(णिब्भया गयभया) निर्भय ये, उम हतु इन्हे कहीं भी भय नहा लगता
था, (सच्चित्ताचित्तमीसिएसु दब्बेसु विरागय गया) सचित्त, अचित्त और
सच्चित्ताचित्त द्रव्यों में ये वैगय युक्त थे, (सजया विरता मुत्ता) जयमशाली, हिंसादि-
निवृत्त और लोभरहित थे, [लहुया] स्वप्न उपनि के धारक होने से ये लघु-लाघवगुण-
वन्त थे, (णिरवकंखा) इहलोक और परलोक के सुखों की अभिलाषा से रहित थे, अत
एव ये मुनि गग (साहू) मायु, अर्थात् मोक्षसाधक थे । भगवान महावीरके ये साधु
(णिहुया) निभृत-जा यादि मद से रहित होनेके कारण विनीत होकर (धम्म) श्रुत-
चारित्रलक्षण धर्म की (चरंति) आराधना करते थे ॥ सू० ३२ ॥

आ साधुओ जितेन्द्रिय हुता, (णिब्भया गयभया) निर्भय हुता, तेथी
तेभने जेध ठेडाण्णे लय लागतु नहि तेओ (सच्चित्ताचित्तमीसिएसु दब्बेसु विरागय
गया) सचित्त, अचित्त अने सच्चित्ताचित्त द्रव्येभामा वैराग्यवान हुता,
(सजया विरता मुत्ता) जयमशाली, हिंसादिथी निवृत्त अने लोभरहित
हुता, (लहुया) स्वप्न उपधिना धारक होवाथी तेओ लघु-लाघवशुभ
म पन्न हुता, (णिरवकंखा) ईडिडोड अने परलोडना सुणेनी अबिलाषाथी
रहित हुता तेथी ए ते मुनिओ (साहू) साधु ओटवे मोक्षसाधक हुता
भगवान महावीरना आ साधुओ (णिहुया) निभृत-जत्यादि भदथी रंडित
होवाने डाण्णे विनीत थधने (धम्म) श्रुतचारित्रद्वय धर्मनी (चरंति) आरा-
धना कृता हुता (सू ३२)

सुपणह-सासा गामे गामे एगरायं णयरे णयरे पंचरायं दूडज्जता

श्रेष्ठा-सार्थवाहा - धाम्नायामाथिन । 'सुमु-सुसभास सुपणह सासा' सुश्रुति(सुश्रुचि) सुसम्भाषा-सुप्रथ-स्वाशा-सुष्टु श्रुतयो येषा त सुश्रुतय -सम्पत्प्रथा-ममिप्रन्ता, अथवा सुश्रुचय-सम्पत्प्रथिमत् । सुग =सुगजनक सम्भाषो येषा ते सुसम्भाषा न्ना-चिदपि कद्रचारण न कुर्वन्त । शोभना प्रथा येषा ते सुग-ना-प्रमितसुश्रुचिप्रथकांगे, शोभना आशा येषा ते स्वाशा-मुक्तिमात्रे-उप, चतुर्गामपा कर्मवाग्ये-सुश्रुतिमुस-भाषासुप्रथ-स्वाशा, ष्यविधा मन्त- 'गामे गामे एगराय' गाम गामे एगराय-प्रतिग्रामम-एकराय, अस्य 'दूडज्जता' ज्यनेन सहाज्य । 'णयरे णयरे पंचराय' नगरे नगरे पञ्चराय-प्रतिनगर पञ्चराय, 'दूडज्जता' द्रवन्त =वसन्त, वातूनामनेकार्थवात्, 'जिडदिया' जितन्द्रिया 'जिन्म

मुनिजन सिद्धिरूप पद-पत्तन क म-सुग होते हैं । (समणपरसत्ववाहा) इनके साथ श्रमश्रेष्ठरूप सार्थवाह उपमाथिन जेते हैं । (सुमु-सुसभास सुपणहसासा) सतमिद्धाती के ये पारगत होने हैं, अथवा इनका सिद्धान्त समीचीन-निर्दोष होना है, अथवा ये विशिष्ट-शुद्धि-पुन्य होते हैं । भाषा इनकी बड़ा ही मनोसुग्धकारी होता है । कभी मां ये कटुक भाषा का उच्चारण नहा करते हैं । ये जो भा प्र-न करते हैं वह प्रमागोपेत होता है-व्यर्थ के अक्षरों का उसम समावेश नहीं रहता । सासारिक पदार्थों में किसी म भां इनकी इच्छा जागृत नहीं होती, सिर्फ मुक्ति प्राप्त करने का भावना ही एक इनकी रहा करती है । (गामे गामे एगराय णयरे पंचरायं दूडज्जता) ये साधु ग्रामों में एक रात और नगरों में पांच रात निवास करते हैं । (जिडदिया) ये जितन्द्रिय हैं

पद-पत्तन-नी स-सुग होय छे (समणपरसत्ववाहा) तेभना साथी श्रमश्रेष्ठ रूप सार्थवाह-व्यवसायी जन होय छे (सुमु-सुसभास सुपणहसासा) सत-मिद्धा तोभा तेओ पारगत होय छे अथवा-तेओना निदान्ता-निर्दोष होय छे, अथवा तेओ विशिष्ट शुद्धि-पुन्य होय छे भाषा तेभनी णहुं न मनोसुग्ध करवावाणी होय छे उदीपण तेओ उडवीलापानो उच्चार उता नयी तेओ के ठाई प्रश्न करे छे ते प्रमाणवाणी होय छे-यर्थ अक्षरोंने तेभा नभावेश रहेतो नयी सासारिक पदार्थोंमा जेधमा पण तेभनी धरुण जागृत थती नयी मात्र मुक्ति प्राप्त करवाणी लावना न ओउ तेभने उद्या करे छे (गामे गामे एगराय णयरे णयरे पंचरायं दूडज्जता) आ साधुओ गामठाओमा ओ गत सुधी अने नगरीमा पांच रात सुधी निवास करता छता (जिडदिया)

सिय-सयवत्तमित्र पत्तलनिम्मला-ईसी-सिय-रत्त-तंवणयणा गरुला-
यय-उज्जु-तुंग-णासा ओयविय-सिलप्पवाल-विंवफल-सण्णिभा-
हरोट्टा पंडुर-समिसयल-विमल-णिम्मल-संख-गोखीर-फेण-दगरय-

सिय-रत्त-तत्र-णयणा' पत्तल निर्मलेपसिन-रक्त-ताम्र-नयना -परगति-प-भवन्ति-सूक्ष्मरो-
मयुक्तानि, तथा निर्मलानि तथा ईपन् मितानि-वेतानि तथा ईपट्कानि तथा ईपत्तात्राणि=
अरुणानि नयनानि येषां ने तथा-विकसितगनपत्रतुन्व्यकिञ्चिदुभ्रक्तनेत्रा इत्यर्थः ।
'गरुला-यय-उज्जु-तुंग-णासा' गरुलाऽऽयतर्जुनुङ्गनामिका -गरुदन्येन आयता=दीर्घा,
रुना=सरला तुङ्गा=उचा नासिका येषां ते तथा-सरलदीर्घमुन्दरनामिकावन्तः । 'ओयविय-
सिलप्पवाल-विंवफल-सण्णिभा-हरोट्टा' उपचित-शिलाप्रवाल-विम्बफल-सन्निभाऽ-
धोष्ठा -उपचित =पुष्टो य शिलाप्रवाल =विद्रुम, विम्बफलम्-अतीमारुण पुष्ट वनमड्डीफलम्,
तसन्निभौ तुन्व्यौ अरुणोऽङ्गौ-ओपट्टय्य येषां ते, तथा-विद्रुमविम्बफलम् अतीमरुक्तोपट्टय्यन्तः,
'पंडुर-ससियल-विमल-णिम्मल-सख-गोखीर-फेण दगरय-मुणालिया ववन्न-दत्तसेदी'
पाण्डुर-शशिशकल-विमल-निर्मल-शङ्ख-गोखीर-फेण-दकरजो-मृणालिका-धवल-दन्तश्रेणय, पाण्डुर-
शशिशकल-गुभ्रचन्द्ररसट, तद्द्विर्मलनिर्मला -विमलेष्वपि निर्मला -अतीवोच्चवा, अनणव-शङ्ख-

इनकेनेत्र ये। (पत्तल-णिम्मला-ईसी-सिय-रत्त तत्र-णयणा) ये नेत्र पद्मल धे-सूक्ष्म रोमयुक्त
ये, निर्मल धे, कुट धेत धे, ईपट्क धे, और कुट र लाल भी धे। (गरुला-यय-उज्जुतुंग-णासा)
गरुड के समान दीर्घ, रुन्वी-सरल एव ऊँची इनकी नामिका थी। (ओयविय-सिलप्पवाल-
विंवफल-सण्णिभा हरोट्टा) पुष्ट शिलाप्रवाल-विद्रुम (मूंगा), एव अतीव अरुण विम्बफल
के समान लाल इनके दोनों ओष्ठ धे। (पंडुर-ससि-सयल-विमल-णिम्मल-
सख-गोखीर-फेण-दगरय-मुणालिया-धवल-दत्तसेदी) धवलचन्द्र के खट के

धन्दीवर-उभलना जेवा ज्येभना नेत्र हुता (पत्तल निम्मला ईसी मिय रत्ततत्रणयणा)
ज्ये नेत्र पद्मल हुता-सूक्ष्म रोम (वाण) युक्त हुता, निर्भण हुता, उ धंठ धोणा
हुता, धियट्टवत हुता, अने जग जरा लाल पणु हुता (गरुलायय उज्जु तुंग-णासा) गडु-
उना जेवी लाणी, मरल अने जे च्छी ज्येभनी नामिका हुती (ओयविय सिलप्पवाल
विंवफल-सण्णिभा हरोट्टा) पुष्ट शिलाप्रवाल विद्रुम (मूंगा) अने अतिशय लाल पणुना
णिम्बफलना जेवा राता ज्येभना अन्ने डोठ हुता (पंडुर-ससिसयल-विमल
णिम्मल-संख-गोखीर-फेण-दगरय-मुणालिया-धवल-दत्तसेदी) अइह च्छे धण उना

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ
महावीरस्स वहवे असुरकुमारा देवा अंतियं पाउब्भवित्था, काल-
महानील-सरिस-णील-गुलिय-गवल-अयसिकुसुम-प्पगासा विय-

टीका—‘तेण कालेण तेण समएण’ इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन्
समये श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ‘वहवे असुरकुमारा देवा अतिय पाउब्भवित्था’
वहवोऽसुरकुमारा देवा अन्तिक प्रादुरभूवन्—भगवत श्रीमहावीरस्वामिनोऽतिक=समीपमागय
प्रादुर्भूता । असुरकुमाराणा वर्णनमाह—‘काल-महानील-सरिस-णील-गुलिय-गवल-अय
सिकुसुम-प्पगासा’ काल-महानील सदृश नील-गुलिक गजलाऽनसीकुसुम प्रकाशा—कालो यो
महानीलो—मणित्रिशेष, त सदृशा वर्णतो ये ते तथा, पुनर्नीलो मणित्रिशेष, गुलिका=नीली-
गुटिका, गवल=माहिप शृङ्गम्, अतसीकुसुम च, एतेषा प्रकाश इव प्रकाशो येषा ते तथा ।
‘वियसिय-सयवत्तमिव’ विकसितगतपत्रमिव=प्रकुलेन्द्रीवरतुल्य ‘पत्तल-णिम्मला-ईसी-

‘तेण कालेण तेण समएण’ इत्यादि ।

इस सूत्रद्वारा सूत्रकार श्रमण भगवान महावीर के निकट आये हुए असुरकुमार
देवों का वर्णन करते हैं— (तेण कालेण तेण समएण) उस काल एव उस समय मे
(समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमण भगवान महावीर के (अतिय) समीप (वहवे)
अनेक (असुरकुमारादेवा) असुरकुमार देव (पाउब्भवित्था) प्रकट हुए । (काल-महानील-
सरिस-णील गुलिय-गवल-अयसिकुसुम-प्पगासा) कृष्ण महानील मणि, नीलमणि, गुलिका,
मैस के साग के अन्दरका भाग, अलसीका फूल, इन सबों के समान ये असुरकुमार कृष्णवर्ण
थे । (वियसियसयवत्तमिव) विकसित गतपत्र के समान—अर्थात् इन्दीवर—कमल—के तुल्य

“तेण कालेण तेण समएण” इत्यादि

आ सूत्र द्वारा श्रमणु लगवान भडाधीरनी पासे आवेला असुर-
कुमार देवानु वधुंन करवाभा आवे छे (तेण कालेण तेण समएण) ते काल ते
समयने विषे (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणु लगवान भडाधीरनी (अतियं)
पासे (वहवे) अनेक (असुरकुमारा देवा) असुरकुमार देव (पाउब्भवित्था) प्रकट
थथा तेभना शरीरनेो वधुं कडे छे—(काल-महानील-सरिस णील गुलिय-गवल
अयसिकुसुम-प्पगासा) कृष्णु भडानील भधुि, नीलभधुि, गुलिका, लेसना शी ग-
डानी अहरनेो लाग अने अणशीना डूल, आ सर्वनी समान ते असुरकुमार
कृष्णु वधुंनो डुता (वियसियसयवत्तमिव) विकसेला शतपत्रना समान, अर्थात्

साड असंकलिद्वाडं सुहुमाडं वत्थाड पवरपरिहिया, वयं च पढमं
समडकंता विडय च असंपत्ता भवे जोव्वणे वट्टमाणा, तलभंगय-

पृष्ठच दनचर्चितशरग । अय वयविशषणाग्याह-ईमी मिलिन्ध-पुष्फ-प्पगासाट-ईपत् मिली-
न्प्रपुन्प्रकाशानि मनाग्मित्री-प्रमुमुप्रभाग्नि-ईपत्सितानी चर्य, मित्री प्रमुमु-वर्षर्ता भूमि-
भित्ता उत्रकमिप वट्ठिर्निम्भगति, मता तोरे तु ण्त मुमुभ रक्तवर्णमिध प्राप्य यतोऽमुग रक्तमना प्रायो
भयतानि । पुन क्रीदृशानि वस्त्राणि अत्राऽऽह 'सुहुमाडं' मूमाणि 'असंकलिद्वाड' अन्निष्टा-
नि-दृषणरहितानि । 'वत्थाडं' वत्थाग्नि- 'पवरपरिहिया' प्रवरपरिहिता -प्रवरम्-उच्छृष्ट
यथा तथा परिहिता = परिधृतवन्त । 'वयं च पढमं समडकता' वयश्च प्रथमम् = पोटशवर्षपर्य-

दनका समस्त शरीर लिपि था । (इसी-सिलिन्ध-पुष्फ-प्पगासाट) इहोन् जो वल पहिन रखे
ये वे कुछ कम मफद ये, जैसे सिलिन्ध पुष्फका प्रकाश होता है वैसा ही दनका प्रकाश था ।
वपारुतु में जमीन को फोड़ कर ट्टर के आकार जैसा जो पुष्प उपन्न होता है उसका नाम
मिर्गन्त्र है । किन्हीं २ का मत है कि यह पुष्प रक्तवर्ण भी होता है । जत इसके ग्रहण से
उनके वल रक्तवर्ण के ये पैमा ही समझना चाहिये । क्यों कि असुर जाति के देव प्राय
लालपत्र वाण करने वाले होते हैं । (सुहुमाड) ये वल-जिन्हे इन्होंने पहिन रंगे ये, अयन्त
मम्म-पतले ये, (असंकलिद्वाड) और दापरहित ये । (वत्थाडं पवरपरिहिया) ऐसे वल इन्होंने
अच्छी तरह से अपन शरीर पर धागण कर रंगे ये । (वयं च पढमं समडकता) प्रथम
वय को ये उलट्घन कर चुके ये, अर्थात् ये सन सोलह वर्ष में ऊपर के जैसे मादम होते

आड (बीना) अन्दन (सूण्ड) वणे तेमना आणा शरीर लिपि हुता
(इसी-सिलिन्ध-पुष्फ-प्पगासाड) तेओओे के वत्था पडेया हुता ते
उधउ ओओा मडेह हुता केयो मिलिन्ध पुष्फने प्रकाश होय के तेवे के तेमने
प्रकाश हुता वपारुतुमा जमीनने झडीने छत्रना आकार केवा के पुष्प उत्पन्न
थाय छे तेनु नाम सिलिन्ध छे उधउ केईना मत छे के आ पुष्प लाल-
रगना थाय छे त्याके ओे अर्थ अहणु इग्वायी तेमना वत्त्र लालरगना हुता-
ओेम के मभज्जु ओेईओे डेमडे असुग् वतिना देव धातु उगीने लालवस्त्र
धारणु उरवावाणा होय छे (सुहुमाड) आ वस्त्र के तेओओे पडेया हुता ते
अत्यंत सूक्ष्म-पातणा हुता (असंकलिद्वाड) अने दोपरहित हुता (वत्थाड
पवर परिहिया) ओेवा वस्त्रो तेओओे मागी गीते पोताना २ गीरे धाणु कया हुता
(वयं च पढमं समडकता) प्रथम वयनु तेओओे उलट्घन करी चूकया हुता, अर्थात्

मुणालिया-धवल-दंतसेढी, हुयवह-णिद्ध-धोय-तत्त-वणिज्ज-रत्त-
तल-तालुजीहा अंजण-घणकसिण-रुयग-रमणिज्ज-णिद्ध-केसा, वा-
मेग-कुंडलधरा अद्-चंदणा-णुलित्त-गत्ता ईसी-सिलिंध-पुष्फ-पगा-

गोक्षीरफेनदकरजोमृणालिकावदधराग इतत्रेणयो येषा ते तथा, तत्रदकरज -त्रत्तण । 'हुत
वह-णिद्धत धोय-तत्त-वणिज्ज-रत्त-तल-तालुजीहा' हुतवह-निमान-धोन-तपतपनीश्रक्तन-
लतालुजिहा -हुतवहेन-रदिना निम्मातं-प्रतापित, धौत-त्रत्तप्रमाजितं तत्त यत्त तपनाय-सुवर्ण,
तद्दत्त रत्त-तल-म-अहणोपरिप्रदेग तालुजिहा येषा ते तथा-अतिप्रतपममष्टमुवर्ण-वर्णतालुजिह्वान्त ।
'अजण-घणकसिण-रुयग-रमणिज्ज-णिद्ध-केसा' अन्ननधन-गरुचकरमर्गायस्तिगकेसा -
अज्जन-रुज्जल, घने-मेघ, णत्तसदृशा कण्ठा कण्ठरगां, तथा रचको-मणिगिणेष,
तदत्त स्निग्धा -चिक्कणा -केसा येषा ते तथा, 'वामेगकुंडलधरा' वामेककुण्डलधरा -वामे
कर्णे-एककुण्डलधारिण, न तु दक्षिण कर्णे, तज्जातायस्वभावात् णत्तस्मिन्नेव कर्णे कुण्डलधारका
दक्षिणे कर्णे अन्याभरणधारिण इतिभाव । 'अद्-चंदणाणुलित्त-गत्ता आर्द्र-चन्दनानुलित्तगत्ता -सधो-

समान शुभ्र, एवं शङ्ख, गोक्षीर, फेन, जलकण, और मृणाल के समान अचत निर्मल
इनकी दन्तपङ्क्ति थी। (हुतवह-णिद्धत-धोय-तत्त-वणिज्ज-रत्त-तल-तालुजीहा) पहिले वहि में
तपाये गये पश्चात् तेजाव मे धोये गये पुन अग्नि में तपाकर उज्जल किये गये सुवर्ण के
समान रक्तलगले इनके तालु और जिहा थी। (अंजण-घण-कसिण-रुयग-रमणिज्ज-
णिद्ध-केसा) इनके केश अज्जन एवं काले मेघ के समान काले तथा रचक के समान चिकने
थे । (वामेगकुंडलधरा) इनके वाम कर्ण मे कुण्डल गोभित हो रहा था । इनमे ऐसा प्रथा
है कि, ये लोग बाये कान में कुण्डल पहनते है और दाहिने कान मे अन्य आभूषण । दाहिने
कान मे ये कमी भी कुण्डल नहा पहनते है । (अद्-चंदणाणुलित्त-गत्ता) आर्द्र चन्दन से

समान शुभ्र अने शभ्र, गोक्षीर (दूध), झीण्ड, जलकण अने मृणाल (कमल
कह) ना जेवी अत्यन्त निर्मल अेभनी दन्तपङ्क्तियो हुती (हुतवह णिद्धत धोय
तत्त-वणिज्ज रत्तल तालु जीहा) पहिले अग्निमा तपावेला पछी तेजणमा धोअेला
सुवर्णना जेवा लाल तथा वाजा अेभना ताणवा अने उज्जल हुता (अजण घण
कसिण रुयग रमणिज्ज णिद्ध केसा) अेभना वाज आण्णु अने काणा वाहणा जेवा
काणा तथा रुचकना जेवा चिकण्णु हुता (वामेगकुंडलधरा) अेभना उाणा
कानमा कु उण शोली रक्षा हुता अेअेमा अेवी प्रथा छे ञे अे दोक उाणा
कानमा कु उण पडेरे छे अने ञभण्णु कानमा णीणु धरेण्णु आ दोगे
ञभण्णु कानमा कयाडे पण्णु कु उण पडेरेता नथी (अद्-चंदणाणुलित्त-गत्ता)

महच्चला महासोम्या महानुभागा हार-विराडय-वच्छा कडग-
तुडिय-थंभिय-भुया अंगय-कुंडल - मट्ट - गंडयल - कण्णपीढधारी
विचित्त-वत्या-भरणा विचित्त-मा ङा-मउलि मउडा कह्णणग-पवर-

स्वग । 'महच्चला' महानल - विशेषप्रत्ययान्ति । 'महायसा' महायसाम - विशालकार्ति-
मत, 'महासोम्या' महामौल्या - विशिष्टसुगमम्पन्ना । 'महाणुभागा' महानुभागा -
अचिन्त्यप्रभावरुक्ता । 'हारविराडयवच्छा' हारविगजितप्रक्षम । 'कडगतुडियथंभियभुया'
कटकट्टिकरुन्तम्भिनभुजा - कटकै = वरथ वुटिकै - राट्टुभरुभूपगविशेषे स्तम्भिता - सज्जिता
भुजा येषा ते तथा । 'अंगय कुंडल-मट्ट-गडयल-कण्णपीढ-धारी' अगद-मुण्डल-मृष्ट-गण्डतल-
कर्गपाठ-गण्णि - अङ्गदानि = ग्राह्यभरणानि कुण्डलमृष्टगण्डतलानि कर्गपादानि - कृणाभरणा-
विशेषान् धरन्ति तच्छील्य । 'विचित्त-वत्या-भरणा' - विचित्र-वत्याभरणा - विचित्राणि =

ज्जुड्या) शरणा एव आभरण आदि की विशिष्ट प्रभा से ये माण्डत थ । (महच्चला) विशेष
शक्तिसम्पन्न ये । (महायसा) इनकी कर्त्ति दिग्दिगन्त म फैला हुआ थी । (महासोम्या)
विशिष्ट सुख के भोक्ता थे । (महाणुभागा) अचिन्त्यप्रभाव के धारक थे । (हार-विराडय-
वच्छा) इनका वस्त्र स्थल हार से शोभायमान था । (कडग-तुडिय-थंभिय-भुया) कटक,
उल्य एव वुटिक-भुजप्रत्य से इनकी भुजाये सज्जित था । (अंगय-कुंडल मट्ट-गडयल-
कण्णपीढ-धारी) अगद-वाज्रमन्ध, मुण्डल-कृणाभरणविशेष कि जिमसे इनका कपोल घर्षित-
हो रह है - इन दोनों को एन और भी अन्य विशिष्ट कृणाभरणो को ये गण्ण किये हुये थे ।
(विचित्तवत्याभरणा) विविध प्रकार के वस्त्र एन आभरणो को ये पहन हुए थे । (विचित्त-

रुद्धियी आ सर्व द्वेषो स पन्न उता (महज्जुड्या) विशिष्ट शरीर अने
आलक्ष्य आदिनी प्रलाथी तेओ म उित उता (महच्चला) विशेषशक्तिम पन्न
उता (महायसा) तेमनी शीर्ति श्रोतरक डेलाठ गध उती (महासोम्या) विशिष्ट
सुखना तेओ लोउता उती, (महाणुभागा) अचिन्त्य प्रलापना धाउ उता (हार-
विराडय-वच्छा) तेमनु वक्ष्मथल (छाती) डार वणे शोभायमान उतु, (कडग
तुडिय थंभिय भुया) उट्ट-उल्य अने वुटिक-भुजप्रत्यथी तेमनी लुनयो सज्जित
उती (अंगय कुंडल मट्ट गडयल कण्णपीढधारी) अगद पाल्पमन्ध, कु उल-दानोना
आलक्ष्य विशेष डे लेना वणे तेमना गाल घर्षित थता उता, ये थन्ने तथा
ते उपगत थील विशिष्ट कर्णु आलक्ष्योने तेओओे वाण्णु उथा उता (विचि-
त्तवत्याभरणा) विविध प्रकारना वस्त्र तथा आलक्ष्योने तेओओे धाण्णु उथा उता

तुडिय - पवर - भूसण - णिम्मल-मणि-रयण-मंडिय-भुया दसमुद्दा-
मंडिय-ग्गहत्था चूलामणि-चिंध-गया सुरूवा महडिडया महज्जुडया

न्तमतिक्रान्ता । 'विड्य च असपत्ता' द्वितीययाऽम्प्राणा - द्वितीय-तरण वय , अ-प्राणा =
नाद्यापि प्रापन्त । अतएव - 'भदे जोव्वणे वट्टमाणा' भदे यौवने वर्तमाना - सदा यौवनवयो
धारिण । 'तलभगय-तुडिय-पवरभूसण-णिम्मल मणि-रयण-मंडिय-भुया' तलभगय-तुडिय-
प्रवरभूपण-निर्मल-मणि-रत्नमण्डित-भुजा - तलभगय = वाहुराभरणम्, तुटिकाणि च बाहुरक्षकाणि,
तान्येव भूषणानि तैर्निर्मलमणिरत्नैश्च मण्डिता भुजा येषां ते तथा - त्रिभिधपरभूषणमगिरनभूषित
भुजा इत्यर्थः, 'दसमुद्दामडियग्गहत्था' षडमुद्रामण्डिताऽपटस्ता - उगमिर्मुद्राभि = मुद्रिकाभि
मण्डिता = भूषिता - अपटस्ता अङ्गुलयो येषां ते तथा । 'चूलामणिचिंधगया' चूडामणिचिंधगता -
चूडामणिरूपचिहधारका इत्यर्थः । 'सुरूवा' मुरूवा - सुन्दराऽऽकारा 'महडिडया' महर्दिका-
विशिष्टविमानपरिवारादियुक्ता । 'महज्जुडया' महाद्युनिना - विशिष्टशरीराऽऽभरणादिप्रभाभा

थे, (विड्य च असपत्ता) और अभीतक ये तरण अरथा को जैसे प्राप्त नहीं हुए हैं ऐसे
दीखते थे । इसलिये ये सदा (भदे जोव्वणे वट्टमाणा) अभिनव यौवन अरथासे सम्पन्न
थे । (तलभगय तुडिय-पवरभूपण-णिम्मल-मणि-रयण मडिय-भुया) इनकी भुजाएँ तल-
भगय-बाहु के एक आभरण एव तुटिक-बाहुरक्षक-भुजा इन उत्तम दोनों आभूषणों से और
निर्मल मणिरत्न से मण्डित थीं । (दसमुद्दा-मडिय-ग्गहत्था) हाथ की सबकी सत्र अगुलियों
दस मुद्रिकाओं से मण्डित थीं, अर्थात्-हाथ की दसों अगुलियों में मुद्रिकायें थीं । (चूडाम-
णि-चिंध-गया) चूडामणिचिंध के ये धारक थे । (सुरूवा) इनका रूप बड़ा ही सुन्दर था ।
(महडिडया) विशिष्ट विमान एव परिवारादि रूप कद्वि के ये सभी देव धारक थे । (मह

तेज्जो जथा भोग पर्थयी उपरता होय जेवा देयाता उता (विड्यं च असपत्ता)
अने उल्लु सुधी तेज्जो जे तुरुल्लु अवस्थाने प्राप्त न करी होय जेवा तेज्जो
देयाता उता, आथी तेज्जो भदा (भदे जोव्वणे वट्टमाणा) अभिनव यौवन अव-
स्थाधी सम्पन्न उता । (तलभगय तुडिय पवर भूसण णिम्मल मणि रयण मडिय भुया)
तेमनी लुब्धज्जो तलल गड-गाहुना आलरपु अने तुटिक-गाहुरक्षक-लुब्ध
जध जे अन्ने उत्तम आलूषणोत्थी तथा निर्भण भपिस्तोत्थी मडित उती (दस
मुद्दा मडिय गहत्था) छावनी तमाभेतमाभ आगणीज्जो दण मुद्रिकाज्जोत्थी (वीटी-
ज्जोत्थी) मडित उती अर्थात् छावनी इथेय आगणीज्जोत्थी मुद्रिकाज्जो उती,
(चूलामणि चिंध गया) चूडामणिविह्वना धारक तेज्जो उता (सुरूवा) तेमन- ३५
जहुब्ब सुद्धर उता (महडिडया) विशिष्ट विमान अने परिवार आदि ३५

एवं फासेणं संघाएणं मंठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए जुईए पभाए
छायाए अच्चीए, दिव्वेण तेएणं दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ
उज्जोयमाणा पभासेमाणा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं

रूपेण' न्तियेन रूपेण 'एवं फामेणं' एव स्वर्गेण 'सत्राएणं' च्छननेन । 'संठाणेणं'
'स्थानेन—समचतुरस्ररूपेण । 'दिव्वाए इड्ढीए' दिव्यया ऋद्ध्या—देवोचितया परिवारादि-
रूपया । 'दिव्वाए जुईए' दिव्यया ध्रुया, 'दिव्वाए पभाए' दिव्यया प्रभया—प्रभया=
विमानदीन्या । 'दिव्वाए छायाए' दिव्यया छायाया—शोभाया । 'दिव्वाए अच्चीए' दिव्यया
अर्चिया—शरीरमन्थरनादितेजोवाल्या । 'तेएण तेजसा—शरीरमन्थरिणं चिपा, प्रभावेण वा ।
'दिव्वाए लेसाए' दिव्यया लस्यया—शरीरकाया 'दस दिसाओ उज्जोयमाणा' दश
दिना उदचोतयत प्रकाशकरणेन, 'पभासेमाणा' प्रभामयन्त—शोभयन्त 'समणस्स
भगवओ महावीरस्स' श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य 'अतिय' अन्तिक—समीपम्—
'आगम्मागम्म' आगयाऽऽगय—आगममुपेय । 'रत्ता' रक्ता—मानुरागा 'समणं भगव

जुईए पभाए छायाए अच्चीए दिव्वेण तेएण दिव्वाए लेसाए) दिव्य ऋद्धि से, दिव्य
ध्रुति से, दिव्य प्रभासे—विमान आदिनी दीप्ति से, दिव्य छाया से—शोभासे, शरीरस्य रत्न
आदि के दिव्य तेज से, दिव्य शरीरिक कान्ति से एव दिव्यलंकासे (दस दिसाओ उज्जोय-
माणा) दस दिशाओं को उदचोतयुक्त करते हुए (समणस्स भगवओ) श्रमण भगवान्
(महावीरस्स) महावीर के (अतिय) समीप (आगम्मागम्म) बारबार आ आकर (रत्ता)
वडी भक्ति के साथ (समण भगव महावीर) श्रमण भगवान् महावीर को (तिक्खुत्तो) तीन

दिव्य वर्ण वणे, दिव्य गंध वणे, दिव्य स्वरूप वणे, ते ७ प्रकाश दिव्य स्पर्श
वणे, दिव्य महानन वणे, समचतुरस्र समयोगसन्म स्थान वणे, तथा—(दिव्वाए इड्ढी-
ए जुईए पभाए छायाए अच्चीए दिव्वेण तेएण दिव्वाए लेसाए) दिव्य ऋद्धि वणे,
दिव्य ध्रुति वणे, दिव्य प्रभा वणे—विमान आदिनी दीप्ति वणे, दिव्य छाया अटले
शोभा वणे, शरीर उपरना रत्न आदिना दिव्य तेज वणे, दिव्य शरीरिक कान्ति
वणे, अने दिव्य लंका वणे (दस दिसाओ उज्जोयमाणा) दश दिशाओंने
उदचोत—युक्त (प्रकाशित) कृता तथा (समणस्स भगवओ) श्रमणु लगवान्
(महावीरस्स) महावीरनी (अतियं) पाने (आगम्मागम्म) बारबार आवी
आनीने (रत्ता) बहुत ७ भक्तिपूर्वक (समण भगव महावीर) श्रमणु लगवान्
महावीरने (तिक्खुत्तो) त्रयुना (आयाहिण—पयाहिण) अल्लिपुट आनीने तेने

वत्थ-परिहिया कल्लाणग-पवर-मल्ला-णुलेवणा भासुरवोदी पल-
ववणमालधरा दिव्वेणं वणणेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं रूवेणं

त्रिभिधानि वत्ताग्नि आभग्गानि च येपा ते तथा, 'त्रिचित्तमाला' त्रिचित्तमाला-त्रिचित्त =
विविधाऽऽकारा माला पुष्पनजो येपा ते तथा, 'मउल्लिमउडा' मौल्लिमुकुटा -मौल्लिपु=मस्तकेपु
मुकुटानि येपा ते तथा 'कल्लाणग पवर-वत्थ परिहिया' कल्याणक प्रवर-वत्थ-परिहिता -कल्याण-
कानि=माङ्गलिकानि प्रवराणि=श्रेष्ठानि वत्ताग्नि परिहिता =परिधृत-वत्त-परिधृतमाङ्गलिकश्रेष्ठ-
वत्ताः । 'कल्लाणग-पवर-मल्ला णुलेवणा' कल्याणक प्रवर मान्यानुत्पना -कल्याणकाराणि
प्रवराणि मान्यान्यनुत्पनानि च येपा ते तथा, माङ्गलिकमान्यान्यनुत्पनवन्त । 'भासुरवोदी'
भास्वरदेहा -देदीप्यमानशरीरा 'पल्ल-वणमाल-वरा' प्रलम्बनमालाधरा , प्रलम्ब-
सुम्बनक तद्युक्ता वनमाला तस्या धरा , वनमाला कण्ठतो जानुपर्यन्त लम्बमाना भवति तस्या
धारका , 'दिव्वेण वणणेण' दिव्येण वर्णेन-'दिव्वेण गण्णेण' दिव्येण गन्धेन-'दिव्वेणं

माला) इहां ने जो मालाये धारण कर रसा था वे विचित्र पुष्पो से गूँथी हुई थी । अत ये
विचित्र-अनेक प्रकार की मालाओं को धारण किये हुए थे । (मउल्लिमउडा) इनके मस्तक
मुकुटों से शोभित थे । (कल्लाणग-पवर-वत्थ-परिहिया) कल्याणकारी एवं विशेष कीमती
वस्त्रों को इन्होंने धारण कर रखा था । (कल्लाणग-पवर-मल्ला णुलेवणा) आनन्ददायक
एवं सुन्दर आकार युक्त मालाओं से एवं विज्ञेपनों से इनका शरीर सज्जित हो रहा था ।
(भासुरवोदी) इनका शरीर विशिष्ट आभा से युक्त हो रहा था । (पल्लववणमालधरा)
इन्होंने जो वनमालाये धारण कर रखी थीं वे घुटनों तक लटक रही थीं । ये मन्व (दिव्वेण)
रूवेण एवं फासेण सघाएण सठाणेण दिव्य वर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्वरूपमे, इसी
प्रकार दिव्य स्पर्श से, दिव्य सहनन से, समचतुरन्व सस्थान से, तथा-(दिव्वाए इड्डीए

(त्रिचित्तमाला) तेओओ ने भाणाओओ धाणु ओओली हुती ते विचित्र पुष्पोथी
शु थाओओली हुती आभ तेओओओ विचित्र-अनेक प्रकारनी भाणाओओ धारणु करी
हुती (मउल्लिमउडा) तेभना मस्तक मुकुटो वणे शोली रह्या हुता (कल्लाणग
पवर-वत्थ परिहिया) कल्याणकारी अने विशेष किमती वओओ तेओओओ धारणु करी
राओओला हुता (कल्लाणग-पवर-मल्ला-णुलेवणा) आन हदायक अने सुन्दर आकार
युक्त भाणाओओथी तेभन विज्ञेपनोथी तेभना शरीर सज्जित हुता (भासु-
रवोदी) तेभना शरीर विशिष्ट आभा वणे युक्त हुता (पल्लव-वणमालधरा)
तेओओओ ने वनमालाओओ धाणु करी हुती ते घुटणु मुधी लटकी रही हुती
आ अथा (दिव्वेण वणणेण दिव्वेणं गण्णेण दिव्वेण रूवेण एवं फासेण सघाएण सठाणेण)

**મૂલમ્-તેણં કાલેણં તેણં સમણં સમણસ્સ મગવઓ મહા-
વીરસ્સ વહવે અસુરિંદવજ્ઞિયા ભવણવાસી દેવા અંતિયં પાડમ્ભ-**

ટીકા-અગ્નિદેવાન્ ભવનવામિના વર્ણગણાહ-‘તેણ કાલેણ તેણં સમણ’ ટ્યાદિ । તન્મિન કાલે તન્મિન્ સમયે ‘સમણમ્સ મગવઓ મહાવીરસ્સ’ શ્રમણમ્થ મગવતો મહાવીરમ્થ, ‘વહવે અસુરિંદવજ્ઞિયા મગવામી દેવા અંતિય’ વત્તોઅપુન્નવર્જિના ભવનવામિનો દેવા અન્તિક ‘પાડમ્ભવિત્થા’ પ્રાટુર્વમ્ભુવુ-મગવત શ્રીમહાવીરમ્થ સમાપ પ્રાટુર્ભૂતા ટ્યર્ય । ભવનવામિદેવાના જાતિભેન્માશ્રિય દશ મેન્ના મગવન્તિ, તથાહિ-
અમુગ = અમુરકુમારા નાગકુમારા મુપર્ણકુમારા ત્રિદ્યુકુમારા અગ્નિકુમારા દ્વીપ-
કુમારા ઉદધિકુમારા ત્રિશાકુમારા પવનકુમારા સ્તનિતકુમારાએતિ । કુમારવત્ ક્રીડન-
પરાશ્ચૈતે કુમારા ઉચ્ચન્તે । મગવપુ=પાતાલ્યેકદેવાઃસામવિશેષેપુ વમન્તિ તર્ચ્છાન્ના મગવ-

મગવાન કે નિકટ આવે હુગ મગવવામી દેવા કે મેદસ્વરૂપ અમુરકુમારોના વર્ણન કર, એમ પૂરકાર અગ્નિદેવ મગવવાસી દેવા ના વર્ણન કરતે હ-‘તેણ કાલેણ’ ટ્યાદિ ।

(તેણ કાલેણ તેણ સમણ) એસ કાલે ઓર એમ સમય મ (સમણમ્સ મગવઓ મહાવીરસ્સ) શ્રમણ મગવાન મહાવીર કે (અતિય) પાસ (વહવે) અન્નેક (અસુરિંદવજ્ઞિયા) અમુરેન્દ્રો ઓ ડોટકાર (ભવણવાસી દેવા) મગવવાસી દેવ (પાડમ્ભવિત્થા) પ્રકટિત હુદ । એન મગવવાસી દેવો કે દસ મેદ, જાતિ મેદકો લેકર હોતે હે । જેસે-અમુરકુમાર ૧, નાગ-
કુમાર ૨, મુપર્ણકુમાર ૩, ત્રિદ્યુકુમાર ૪, અગ્નિકુમાર ૫, દ્વીપકુમાર ૬, ઉદધિકુમાર ૭, ત્રિશાકુમાર ૮, પવનકુમાર ૯, સ્તનિતકુમાર ૧૦ । કુમાર ક્રી તરહ યે વ્રીટા કરને મે મદા તપર મ્હતે હ, ટમલિયે એનકો કુમાર જ્ઞા હૈ । પાતાલ લોક મ જો દેવો કે આવાસ-

લગવાનની પામે આવેલા ભવનવામી દેવોના ભેદ-અવરૂપ અમુર કુમારો શેતુ વર્ણન કરે છે-‘તેણ કાલેણ’ ટ્યાદિ (તેણ કાલેણ તેણ સમણ) તે કાલે અને તે સમયમા (સમણમ્સ મગવઓ મહાવીરસ્સ) શ્રમણ લગવાન મહાવીરની (અતિય) પામે (વહવે) અનેક (અસુરિંદવજ્ઞિયા) અમુરેન્દ્રો છોડીને બીજા (મગવવાસી દેવા) ભવનવામી દેવો (પાડમ્ભવિત્થા) પ્રગટ થયા આ ભવનવામી દેવોના દશ ભેદ બાલિભેદને લઈને થાય છે, જેમકે-અમુરકુમાર ૧, નાગ-
કુમાર ૨, મુપર્ણકુમાર ૩, ત્રિદ્યુકુમાર ૪, અગ્નિકુમાર ૫, દ્વીપકુમાર ૬, ઉદધિકુમાર ૭, ત્રિશાકુમાર ૮, પવનકુમાર ૯, સ્તનિતકુમાર ૧૦ કુમાર-બાળકની પેઠે તેઓ ક્રીડા કરવામા મહા તત્પર રહે છે એ વાળુથી તેમની કુમાર મ જ્ઞા છે પાતાલ લોકમા જે દેવોના આવાસ-વિશેષ છે તેમા તેઓ રહે છે તે વાળુથી તેઓ ભવનવામી કહેવાય છે નવગણ ગણવા

आगम्मागम्म रत्ता समणं भगवं महावीरं तिवसुत्तो आयाहिण-
पयाहिणं करेति, करित्ता वदंति नमंसंति, वदित्ता नमंसित्ता
साइं साइ नामगोयाइं सावेति, णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूस
माणा नमंसमाणा अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा पज्जुवासति
॥ सू० ३३ ॥

महावीरं तिवसुत्तो आयाहिणपयाहिण करेति' श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य विहृत
आदग्निप्रदक्षिणम्—अञ्जलिपुट वदन्ना त वद्व्राञ्जलिपुट दक्षिणकर्णमूलत आरम्य ललाटप्रदेशत
वामकर्णान्तिकेन चक्राकार त्रि परिध्याम्य ललाटदशे स्थापनरूपं कुरन्ति, कृत्वा 'वंदंति'
वन्दन्ते=स्तुवन्ति, 'नमसति' नमस्यन्ति—नमस्कृत्यन्ति, 'वदित्ता' वदित्वा 'नमसित्ता' नम-
स्यित्वा 'साइ साइ णामगोयाइ सावेति' स्वानि स्यान्ति नामगोत्राणि श्रावयन्ति=कथयन्ति ।
'णच्चासण्णे णाइदूरे' ना यासन्न नातिदूरे 'सुस्सूसमाणा' शुश्रूषमाणा—सेवा कुमाणा
'नमसमाणा' नमस्यन्त =नमस्कृत्यन्त 'अभिमुहा' अभिमुखा 'विणएणं' त्रिनयेन
'पंजलिउडा' प्राञ्जलिपुटा—पद्माञ्जलय पज्जुवासति' पर्युपासत=सेवन्ते ॥ सू० ३३ ॥

वार (आयाहिणपयाहिण) अञ्जलिपुट बाँध कर उमे दक्षिण कान से लगा कर मस्तक के
पास से बायें कान तक चक्राकार घुमाते हुए पुन मस्तक पर (करेति) रखते थे, (करित्ता)
रखकर (वदति नमसति) वन्दना करते थे, नमस्कार करते थे, (वदित्ता नमसित्ता) वन्दना
नमस्कार करके (साइ साइ नामगोयाइ सावेति) अपने अपने नाम एव गोत्रों का उच्चारण
करते थे । (णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणा नमसमाणा अभिमुहा विणएण पज्जलि-
उडा पज्जुवासति) न अतिसमीप और न अति दूर हा, अर्थात्—भगवान से थोड़ी दूर पर
भगवान के सामने बैठ कर विनयपूर्वक दोनों हाथ जोट कर सेवा करने लगें ॥ सू० ३३ ॥

अभयु कानथी लडने भक्तकनी पासथी डाया वान मुधी चक्राकार इरवीने,
इरीने भक्तक पर (करेति) गथता इता (करित्ता) गथीने (वदति नमसति)
वदन उरता इता, नमस्कार करेता इता (वदित्ता नमसित्ता) वदना—नमस्कार
करीने (साइ साइ नामगोयाइ सावेति) पोत—पोताना नाम जेव गोत्रना
उन्थायु उरता इता (णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणा नमसमाणा अभिमुहा
विणएण पज्जलिउडा पज्जुवासति) अहु सभीप नडि, तेम अहु हर नडि,
अर्थात् भगवानथी योरे अ ह भगवाननी सामे जेसीने विनयपूर्वक अन्ने
हाथ जोडी सेवा करवा लाग्या (सू ३३)

कलस-सीह-हयवर-गयंक-मयरंक-वर-मउड-वङ्गमाण-णिज्जुत्त-वि-
चित्त-चिधगया मुरुवा महिडिड्या, सेसं तं चेव जाव पज्जुवा-
संति ॥ सू० ३४ ॥

हूनानि, उदधिनुमागगा मुकुटप्वधचिह्नानि, दिशाकुमागगा मुकुटेषु हस्तिचिह्नानि, पवन-
कुमागगा उगमुकुटेषु मकरचिह्नानि, तथा स्तनितकुमागगा मुकुटेषु वर्धमानचिह्नानि भवन्ति, तानि
नागफगादानि वर्धमाना तानि 'निज्जुत्त' निर्युक्तानि-मुकुटेषु स्थितानि, 'विचित्त' विचित्राणि-नाना-
विगानि, 'चिंय' चिह्नानि गता = प्राप्ता ये ते तथा, नागफगादीनि वर्धमानान्तानि यथा-
स्थानस्थितानि विचित्ररूपाणि लक्षणानि तेषां मुकुटेषु भवन्तीत्यर्थः । 'मुरुवाः' मुरुवा -
सुन्दरऽऽकारः । 'महिडिड्या' - महद्विक्र - महत्या क्रद्ध्या युक्ता । 'मेम त चेव' अथ
तदेव-अथम=अपशिष्टं तदेव=पूर्वमेव वाच्यम्, क्रियदवधि वाच्यम्, इत्याह- 'जाव
पज्जुवासति' यावत् पर्युपासते-इति । ते नागकुमागदय नवनिक्रायभवनवासिदेवा अमुर-
कुमागद भगवन्तः सेवन्ते इति भावः ॥ सू० ३४ ॥

म सिंहका चिह्नं है ॥५॥ उदधिनुमाग के मुकुट में अश्वका चिह्न है ॥६॥ दिशाकुमारों के
मुकुटों में हाथीका चिह्न है ॥७॥ पवनकुमारों के उत्तम मुकुटों में मगरका चिह्न है ॥८॥
तथा स्तनितकुमारों के मुकुटों में वर्धमान (स्वस्तिक) का चिह्न है ॥९॥ ये सप्त चिह्न निर्युक्त-
यथास्थान स्थित हैं, और विचित्र रूपवाले हैं । (मुरुवा) ये सप्त देव सुन्दर आकार रूप,
एव (महिडिड्या) महता क्रद्धि से युक्त हैं । (मेम त चेव जाव पज्जुवासति) ये सप्त
भवनवासी देवों का नौ प्रकार के निक्राय अमुरकुमाग देवोंका तरह भगवान की सेवा करने
लगे ॥ सू० ३५ ॥

पवनकु चिह्नं छे उ अग्निकुमागेना मुकुटमा पूर्ण-उदधतु चिह्नं छे ४
दीपकुमागेना मुकुटमा निहंतु चिह्नं छे ५ उदधिकुमागेना मुकुटोमा
अश्वतु चिह्नं छे ६ दिशाकुमागेना मुकुटमा हाथीतु चिह्नं छे ७
पवनकुमागेना मुकुटमा मगरतु चिह्नं छे ८ तथा स्तनितकुमागेना मुकु-
टमा वर्धमान (स्वस्तिक)तु चिह्नं छे ९ आ अथा चिह्नो निर्युक्त-यथास्थान
होय छे अने विचित्र-उपवाणो होय छे (मुरुवा) आ अथा देवो सुन्दर
आकार-म पन्न, अथ (महिडिड्या) महान क्रद्धिशी युक्त होय छे (मेम त चेव
जाव पज्जुवासति) आ अथा लवन-वासी देवोना नव प्रजाग्ना निजाय अमुर
कुमार देवोनी पेटे लगवाननी अथा उरवा लाया (सू ३४)

विष्ठा-णागपइणो सुवण्णा विज्जू अग्गीय दीव उदही दिसाकुमा-
रा य पवणा थणिया य भवणवासी णागफडा-गरुल-वडर-पुण्ण-

वासिन इयुप्पन्ते—भवनवासिनामेतेषु दशसु भेदेषु प्रथमभेद परि य य न भवान्न दरीयनि-
'णागपइणो' नागपतयो—नागकुमारा । 'सुवण्णा' सुपर्णकुमारा । 'विज्जू'—विद्युत्कुमारा
'अग्गी य' अग्निकुमारा । 'दीवा' द्वीपकुमारा । 'उदही' उदधिकुमारा । 'दिसा
कुमारा य' दिशाकुमारा । 'पवणा' पवनकुमारा । 'थणिया य' स्तनित-
कुमारा । एते 'भवणवासी' भवनवाग्नि । एतेषां नागकुमारादीनां नागफणादीनि
चिह्नानि भवन्ति, तानि क्रमशो दर्शयन्नाह—'णागफडा—गरुल—वडर—पुण्णकलस—
सीह—हयवर—गयक—मयरक—वरमउड—वद्धमाण णिज्जुत्त विचित्त—चिधगया' नागफणा-
गरुड—वज्र—पूर्णकलश सिंह—हयवर—नागाङ्ग—मकराङ्ग—चरमुट्ट—वर्द्धमान—निर्युक्त—विचित्र—चिह्नगता-
नागकुमाराणां मुकुटेषु नागफणाचिह्नानि, सुपर्णकुमाराणां मुकुटेषु गरुडचिह्नानि, विद्युत्कुमाराणां
मुकुटेषु वज्रचिह्नानि, अग्निकुमाराणां मुकुटेषु पूर्णकलशचिह्नानि, द्वीपकुमाराणां मुकुटेषु सिंहचि-

विशेष है उनमें ये रहते हैं, इसलिये ये भवनवासी कहलाते हैं । सूत्रकार इन्हीं भवनवागियों
के प्रथम भेदको ओटकर अन्य नौ भेदों को यहाँ बतला रहा है—(णागपइणो) नागपति—
नागकुमार (सुवण्णा) सुपर्णकुमार (विज्जू) विद्युत्कुमार (अग्गी य) अग्निकुमार (दीवा)
द्वीपकुमार (उदही) उदधिकुमार (दीसाकुमारा य) दिशाकुमार (पवणा) पवनकुमार
(थणिया य) स्तनितकुमार (भवणवासी) ये इस प्रकार भवनवासी देवा के भेद हैं ।
इनमें (णागफडा—गरुल—वडर—पुण्णकलस—सिंह—हयवर—गयक—मयरक—वरमउड—
वद्धमाण—णिज्जुत्त—विचित्त—चिध—गया) नागकुमारों के मुकुटमें नागकी फणाका चिह्न
है ॥१॥ सुपर्णकुमारों के मुकुटमें गरुडका चिह्न है ॥२॥ विद्युत्कुमारों के मुकुटों में वज्रका
चिह्न है ॥३॥ अग्निकुमारों के मुकुटों में पूर्णकलशका चिह्न है ॥४॥ द्वीपकुमारों के मुकुटों

लवनवाग्निज्जोना प्रथम भेद छोडीने अही जीण नव लेहोने
गतावे छे—(णागपइणो) नागपति—नागकुमार (सुवण्णा) सुपर्णकुमार (विज्जू)
विद्युत्कुमार (अग्गी य) अग्निकुमार, (दीवा) द्वीपकुमार (उदही) उदधिकुमार
(दिसाकुमारा य) दिशाकुमार (पवणा) पवनकुमार (थणिया य) स्तनितकुमार,
(भवणवासी) आ दश प्रकारे लवनवाग्नी देवोना भेद छे आभा (णागफडा-
गरुल—वडर पुण्णकलस—सिंह—हयवर—गयक—मयरक—वरमउड—वद्धमाण—णिज्जुत्त-
विचित्त—चिध—गया) नागकुमारोना मुकुटमा नागनी क्खुणु चिह्न छे १
सुपर्णकुमारोना मुकुटमा गरुड चिह्न छे २ विद्युत्कुमारोना मुकुटमा

रम्बसा किन्नर-किंपुरिस-भुयगपडणो य महाकाया गंधव्व-णिकाय-
गणा णिउण-गंधव्वगीय-रडणो अणवणिय-पणवणिय-डसिवा-
डय-भूयवाडय-कंदिय-महाकंदिया य कुहंड-पययदेवा चंचल-च-

२, 'जम्ब-रम्बसा' यथा ३, गन्धमा ४, 'किन्नर-किंपुरिस-भुयगपडणो'
किन्नर-किंपुरिप भुजगपतय - किन्नग ५, किंपुरुषा ६, भुजगपतय - महोरगा
७, 'महाकाया' महाकाया = विशालशरीरधारिण, ८, 'गंधव्व-णिकाय-गणा'
गन्धर्वनिकायगणा - गन्धर्वसमूहगणा, गन्धर्वजातय इत्यर्थ, 'णिउण-गंधव्व-गीय-रडणो'
निपुण-गान्धर्व-गीत-रतय - निपुण-प्रशस्त, गान्धर्व = नाट्योपेत गान, गानञ्च नाट्यचर्चितगान,
तत्र गतिर्येषां ते तथा, 'अणवणिय-पणवणिय-डसिवाडय-भूयवाडय-कंदिय-महाकंदिया
य कुहंड-पयय-देवा' अप्रजप्तिक-पञ्चप्रजप्तिक-रूपिमादिक-भूतमादिक-कृदित-महाकृदितश्च
हूमाण्ड-पतगदेवा - एतेऽद्यै व्यतरा निकायविशेषभूता स्तनप्रभापृथिव्या उपगितनयोजन

रम्बसा किन्नर-किंपुरिस-भुयगपडणो य महाकाया गंधव्वणिकायगणा) पिशाच १,
भूत २, यत् ३, गन्धस ४, किन्नर ५, किंपुरुष ६, भुजगपति ७, एव विशाल शरीर धारण
करनशाला महोरग ८, गन्धर्वनिकायगणा, अर्थात्-गन्धर्व ९, ये व्यन्तर देव १०। ये सप्त
(णिउण-गंधव्व-गीय-रडणो) प्रशस्त नाटकीयगान म एव नाट्यचर्चित गानत्रिया म
रति स्तनशाले होते हैं। (अणवणिय-पणवणिय-डसिवाडय-भूयवाडय-कंदिय-महा-
कंदिया य कुहंड-पययदेवा) अप्रजप्तिक, पञ्चप्रजप्तिक, रूपिमादिक, भूतमादिक, कृदित,
महाकृदित, हूमाण्ड और पतगदेव, ये भी आठ व्यन्तरनिकाय के देव हैं। इन सप्त का
निवास स्तनप्रभापृथिवी के ऊपरी भाग म १०० योजन तक है। ये कैसे होते हैं / सो

भूया य जम्ब-रम्बसा किन्नर-किंपुरिस-भुयगपडणो य महाकाया गंधव्वणिकाय
गणा) पिशाच १, भूत २, यत् ३ गन्धस ४, किन्नर ५, किंपुरुष ६,
भुजगपति ७, एव विशाल शरीर धारण करवावाणा महोरग ८, गन्धर्व
निकायगण अर्थात् गन्धर्व ९, ये व्यन्तर देव १० आ अथा (णिउण-
गंधव्व-गीय-रडणो) प्रशस्त नाटकीय गानमा, तेभ्यः नाट्य-चर्चित
गानत्रियाभा प्रेम गणवावाणा होय १० (अणवणिय-पणवणिय-डसिवाडय-भूयवा
डय-कंदिय-महाकंदिया य कुहंड-पयय-देवा) अप्रजप्तिक, पञ्चप्रजप्तिक, रूपि-
मादिक, भूतमादिक, कृदित, महाकृदित, हूमाण्ड अने पतगदेव आ पणु
आठ व्यन्तर निकायना देव छे आ अथानो निवास स्तनप्रभा पृथिवीना उप-
रना भागमा १०० योजन सुप्री छे तेओ देवा होय १० ते उडे १०-(चंचल-

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समणं समणस्स भगवओ महावीरस्स
वहवे वाणमतरा देवा अंतियं पाउवभवित्था-पिसाय-भूया य जक्ख-

टीका—‘तेणं कालेण तेणं समणं’ इत्यादि। तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमण-
स्य भगवतो महावीरस्य ‘वहवे वाणमतरा देवा अंतियं पाउवभवित्था’ वहवा व्यतर
देवा अन्तिकं प्रादुर्बभूवु, तत्र-व्यन्तरा-अन्तरम्=अवकाश, तद्येदाश्रयरूपम्, त्रिपियम् अन्तर=
परितान्तरं रुन्दरान्तरं वनान्तरं वा आश्रयरूपं येषां ते व्यन्तरा—देवत्रिधा, यद्वा—‘वाणमन्तरा’
इतिञ्छया। तत्रेयं व्युत्पत्ति—पानानामन्तराणि वनान्तर्गता, तेषु भया वानमन्तरं, पृषोदरा-
दिना-मध्ये मन्तरागम। भगवन्महावीरस्वामिसन्निधौ सममरणं व्यन्तरं देवा प्रकटीभूता
इत्यर्थः, ते कतिपिधा ‘अत्रास्स’—‘पिसाय-भूया य’ पिशाचा १, भूताश्च

‘तेण कालेण’ इत्यादि।

(तेण कालेणं तेण समणं) उस काल और उस समय में (समणस्स भगवओ
महावीरस्स) श्रमण भगवान महावीर के (अंतियं) समीप (वहवे) अनेक (वाणमतरा देवा)
व्यतर देव (पाउवभवित्था) आये। व्यन्तर इनका नाम इसलिए है कि इनका अन्तर=अव-
काश अथवा निवासस्थान अनेक प्रकार के हैं, जैसे—पर्वत, गिरिकन्दरा, वन आदि।
अथवा—‘वाणमन्तर’ की संस्कृत शब्दा ‘वानमन्तर’ भी होती है। वनांतरों में—वनों का
मध्य में—जिनका रहना हो वे वानमन्तर हैं। ये वानमन्तर भगवान महावीर के समवसरण
में उपस्थित हुए। ये व्यन्तर देव कितने प्रकार के हैं? इस प्रकार की आशंका होने पर
मूत्रकार उसका समाधान करते हुए उनके भेदों को गिनाते हैं—(पिसाय-भूया य जक्ख-

‘तेण कालेण’ इत्यादि

(तेण कालेण तेण समणं) ने काल अने ते समयने विषे (समणस्स
भगवओ महावीरस्स) श्रमण भगवान महावीरानी (अंतियं) पासै (वहवे)
अनेक (वाणमतरा देवा) व्यतर देवा (पाउवभवित्था) आव्या व्यतर अेषु
तेभनु नाम अे वारणुथी ते ते तेभनु अन्तर-अवकाश, अर्थात्—निवास
स्थान, अनेक प्रकारतु ते तेभदे पर्वतो, पर्वतोनी शुका, तथा वन आदि
अथवा ‘वाणमन्तर’नी संस्कृत शब्दा ‘वानमन्तर’ थाय ते वनान्तराभा-वनाना
मध्यभा-तेभनु रहैवानु थाय ते वानमन्तर अे आ वानमन्तर भगवान
महावीरना समवसरणभा उपस्थित थया आ व्यन्तर देव केटला प्रकारना
अे? आवी शकानु समाधान करता सत्रकार तेना बोदो कळे अे—(पिसाय

विभूषण-धरा सञ्चोउय-सुरभि-कुसुम-सुरइय-पलत्र-सोभत-कंत-
वियसंत-चित्त-वणमाल-रइय-वच्छा कामगमा कामरूवधारी णा-
णाविह-वण्ण-राग--वरवत्थ--चित्त-चिल्लय-णियंसणा विविह-देस-

तान्ये चारविभूषणानि तेषा धरा । 'सञ्चोउय-सुरभि-कुसुम-सुरइय-पलत्र-सोभत-कंत-
-वियसंत-चित्त-वणमाल-रइय-वच्छा' सर्तु-सुरभि-कुसुम-सुगचित-प्रलम्ब-शोभमान-कान्त-
-पिकुमधित्रपनमाल-रति-वक्षम-सर्पेणु ऋतुपु सुरभोगि यानि उमुमानि तै सुरचिता प्रलम्बा च
शोभमाना च कान्ता च विक्रमन्ती च चित्रा=विचित्रा चासौ वनमाला=पुष्पस्रक्, तथा रति-
दानि=मुन्दरागि वधासि येषा ते तथा, 'कामगमा' कामगाभिन-इच्छागामिन । 'काम-
रूवधारी' कामरूपधारिण-स्वेच्छानुसाररूपधारका । 'णाणाविह-वण्ण-राग-वरवत्थ-
चित्त-चिल्लिय-णियंसणा' नानाविध-वर्ण-राग प्रवृत्त-चित्र-देद्रीप्यमान-निवसना नानाविध-
वगा रागो येषु तानि-नानाविध-वर्ण-रागाणि तानि तथाभूतानि वरवत्थाणि चित्राणि-विचित्राणि
'चिल्लिय' देद्रीप्यमानानि, निरमनानि=परिधानानि येषा ते तथा, 'चिल्लिय' इतिदेगीयगन्ध,
ग्लादिनहुविपग्निगनप्रसनानि परिधानानि इत्यर्थ । 'विविह-देसणेवच्छ-गहिय-वेसा'
विभिन्न देश-नेपथ्य-गृहीत-वेषा-विधिधानाम्=अनकेषा देशाना नेपथ्यै =प्रसाधनविशेषै गृहीत

है । (सञ्चोउय-सुरभि-कुसुम-सुरइय-पलत्र-सोभत-कंत-वियसंत-चित्त-वन-
माल-रइय-वच्छा) इनके वक्ष स्थल, मदा समस्त ऋतुओं के सुगन्धित पुष्पों द्वारा रचित
रत्ना २ मुन्दर विक्रमित चित्र-विचित्र वनमालाओं द्वारा सुहावने रहा करते हैं ।
(कामगमा) इनका गमन इच्छानुसार हुआ करता है । (कामरूवधारी) इच्छानुसार
ये रूपों को धारण करते रहते हैं । (णाणाविह-वण्ण-राग-वरवत्थ-चित्त-चिल्लिय-
णियंसणा) अनेक प्रकार के रगवाले तथा चित्र-विचित्र प्रभाववाले ऐसे चमकते हुए
वस्त्रों को ये पहिरा करते हैं । (विविह-देसी-णेवच्छ-गहिय-वेसा) अनेक देशों

(सञ्चोउय-सुरभि-कुसुम-सुरइय-पलत्र-सोभत-कंत-वियसंत-चित्त-वनमाल-रइय-वच्छा)
तेभना वक्षस्थल हुमेशा समस्त ऋतुओंना सुहर पुष्पो द्वारा बनावेली
लाणीलाणी सुहर विक्रमित चित्र-विचित्र वनमालाओंथी शोलायमान रहे छे
(कामगमा) तेभनु गमन इच्छानुसार थतु डोय छे (कामरूवधारी) इच्छा-
नुसार तेओ इप धारणु करता रहे छे (णाणाविह-वण्ण-राग-वरवत्थ-चित्त-चिल्लिय-
णियंसणा) अनेक प्रकारना रगवाणा तथा चित्रविचित्र प्रभाववाणा ओषा
अभङ्गदार पओ तेओ पडेरे छे (विविह-देसी-णेवच्छ-गहिय-वेसा) अनेक देशेओना
तेओ पोशाड पडेरे छे (पमुइय-कदम्प-कलह-केली-कोलाहल-पिया) प्रमुहितोना

वल्-चित्त-कीलण-द्व-प्पिया गंभीर-हसिय-भणिय-पीयगीय-णच्च- ण-रई वणमाला-मेल-मउड-कुंडल-सच्छंद-विउच्चियाहरण-चारु-

गतप्रतिन, ते कीदृशा 'अत्राऽऽ-चचल-चवल-चित्त-कीलण-द्व-प्पिया' चत्र-चपल-चित्त-क्राडन-द्र-प्रिया-चक्षलादपि चपयानि चित्तानि येषां ते चत्रलचपलचिना = अनिचपल-मानमा, क्रीडन-क्रीडा, द्रपथ परिहास क्रीडात्रयी प्रियौ येषां त क्रीडात्रयप्रिया, तत पद-द्वयस्य कर्मधारय । 'गंभीर-हसिय-भणिय-पीय-गीय-णच्चण-रई' गंभीर-हसित-भणित-प्रिय-गीत-नर्तन-रतय-गंभीरम्-दत्तरैरज्ञेय हसित-हास्यम्, भणित-ब्राह्मयोग, प्रिय येषां त गंभीर-हमित-भणित-प्रिया, गीतनर्तनयो रतिर्येषां ते गीतनर्तनरतय, तत पदद्वयस्य कर्मधारय ।

'वणमाला-मेल-मउड-कुंडल-सच्छंद-विउच्चिया हरण-चारु-विभूषण-वरा' वनमाला-ऽऽमेल-मुकुट-कुण्डल-स्वच्छन्द-विभुर्विताऽऽभरण-चारु-विभूषण-धरा-वनमाला-रत्नादिमयाऽऽभरणविशेष, आमेल-पुष्परचितालङ्कारविशेष, मुकुट-सुवर्णमयशिरोभूषणम्, कुण्डल-कर्णाभरणम्, एतदतिरिक्तानि-स्वच्छदविभुर्वितानि-एवामिप्रायानुसारास्य प्रकटीकृतानि आभरणानि,

रूहते है-(चचल-चवल-चित्त-कीलण-द्व-प्पिया) अनि चपल चित्तत्राले ये व्यन्तर देव, क्रीडा एव परिहास-प्रिय हुआ करते है । (गंभीर-हसिय-भणिय-पीय-गीय-णच्च-णरई) दूसरा द्वारा अज्ञेय ऐसे हसित-हँसन म तथा खेलने की चतुराई में ये विशेष निपुण होते है, अथवा हमित एव भणित, ये दो जाने इन्हें विशेष प्रिय होती हे । गीत और नर्तन म इन्हें विशेष अनुराग होता हे । (वणमाला-मेल-मउड-कुंडल-सच्छंद-विउच्चिया-हरण-चारु-विभूषण-वरा) वनमाला-रत्नादि द्वारा निर्मित आभरणविशेष, आमेल-पुष्पों द्वारा रचित अलंकार विशेष, मुकुट-सुवर्णमयशिरोभूषण, कुंडल-कर्णाभरण, एव अपनी इच्छानुसार निष्पादिन और भी अन्य आभरण ये ही जिनके सुहावने आभूषण

चवल-चित्त-कीलण-द्व-प्पिया) अहुं न यथय चित्तवाणा ते व्यन्तर देव क्रीडा शेष परिहामप्रिय होय छे (गंभीर हसिय-भणिय पीय-गीय णच्चण रई) गीतन्ती न लक्ष्मी शक्य शेषा हमित-हंसवामा तेम न लक्षित-जालवामा तेओ विशेष निपुण्य होय छे अथवा हसित शेष लक्षित आ जे वाते तेमने विशेष प्रिय होय छे गीत अने नाचमा तेमने विशेष अनुराग होय छे (वणमाला-मेल मउड कुंडल सच्छंद विउच्चिया हरण चारु विभूषण धरा) वनमाला-रत्नादि द्वारा निर्मित आभरण्य विशेष, आमेल-पुष्पा द्वारा रचित अलंकार विशेष, मुकुट-सुवर्णमय शिरोभूषण, कुंडल-कर्णाभरण, तेम न पीतानी ईच्छा नुसार निष्पादित गीत पण आभरण्यो, अ न जेमना मोहामण्य आभूषण्यो छे

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महा-
वीरस्स जोइसिया देवा अंतियं पाउब्भवित्था—विहस्सई चंद-
सूर-सुक-सणिच्छरा राहू धूमकेतु-बुहा य अंगारका य तत्त-तवणिज्ज-

टीका—‘तेण कालेण तेण समएण’ इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये
श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ‘जोइसिया देवा अंतियं पाउब्भवित्था’ ज्योतिष्का देवा अन्ति-
के प्रादुर्भवु—श्रीमहावीरस्य समीपे प्रकटीभूता । नामभिर्ज्योतिष्कान् कथयति—‘विहस्सई’
बृहस्पति—ज्योतिष्काणाममर्यातत्वात् प्रत्येक ते बहव सन्ति-इति । ‘चंद-सूर-सुक-स-
णि-च्छरा’ चन्द्रसूर्यशुक्रशनिेश्वरा, ‘राहू’ राहव, ‘धूमकेतु-बुहा य’ धूमकेतुबुधाध, ‘अगा-
रका य’ अङ्गारका—मङ्गलाध, किंवाणां एते इत्याह—तत्त-तवणिज्ज—कणग-वण्णा’
तप्त-तपनीय-कनक-वर्णा—तप्ततनीयं=रक्तसुवर्णं, कनक=पीतसुवर्णं तद्द्वयं येषां ते तथा ।
केचिद्रक्ता केचिपीता इत्यर्थं, तथा—जे य गहा जोइसमि चारं चरति’ ये च ग्रहा ज्योतिषे

‘तेण कालेणं’ इत्यादि ।

(तेण कालेण तेण समएण) उस काल एव उस समय में (समणस्स
भगवओ महावीरस्स) श्रमण भगवान् महावीर के (अतियं) समीप (जोइसिया
देवा) ज्योतिषी देव (पाउब्भवित्था) प्रकटित हुए । ज्योतिषी देवों के ये नाम हैं—
(विहस्सई चंद-सूर-सुक-सणिच्छरा राहू, धूमकेतु-बुहा य अंगारका य)
बृहस्पति, चंद्र, सूर्य, शुक्र, शनिेश्वर, राहु, धूमकेतु, बुध और अंगारक-मंगल । (तत्त-
तवणिज्ज-कणग-वण्णा) ये देव तप्ततपनीय-रक्त सुवर्ण और कनक-पीत सुवर्ण
इनके समान वर्णवाले होते हैं । (जे य गहा जोइसमि चारं चरति) उक्त से अतिरिक्त

‘तेण कालेण’ इत्यादि

(तेण कालेण तेण समएणं) ते काल तेभञ्जे ते समयभा (समणस्स भग
वओ महावीरस्स) श्रमण भगवान् महावीरनी (अतियं) समीपे (जोइसिया देवा)
ज्योतिषी देव (पाउब्भवित्था) प्रकट तथा ज्योतिषी देवाना नाम आ प्रभाण्णे
छे—(विहस्सई चंद सूर सुक-सणिच्छरा राहू धूमकेतु बुहा य अंगारका य) बृहस्पति,
चंद्र, सूर्य, शुक्र, शनिेश्वर, राहु, धूमकेतु, बुध अने अंगारक-मंगल (तत्त
तवणिज्ज-कणग वण्णा) ते देवा तप्त तपनीय-रक्त सुवर्ण अने कनक-पीता
सुवर्णाना देवा वर्णवाणा छाय छे अर्थात् केंदलाञ्छेक लालवर्णवाणा तथा
केंदलाञ्छेक पीलावर्णवाणा छाय छे (जे य गहा जोइसमि चारं चरति) उक्त

णेवच्छ-गहिय-वेसा पमुइय-कंदप्प-कलह-केली-कोलाहल-प्पिया
हास-बोल-बहुला अणेग-मणि-रयण-विविह-णिज्जुत्त-विचित्त-चिं-
धगया सुरूवा महिड्ढिया जाव पज्जुवासंति ॥ सू० ३५ ॥

=कृत वेप =शरीरगोमाऽऽधायकप्रसाधनयैस्ते तथा, तत्र नेपप्य-‘पोगाक’-इतिमायाप्रसिद्धम्,
‘पमुइय कदप्प-कलह-केली-कोलाहल प्पिया’ प्रमुदित-कन्दर्प-कलह-केलि-कोलाहल-प्रिया-
प्रमुदिताना य कन्दर्पप्रधान कलह केली=क्रीडा, तज्ज्य कोलाहल-कलकल प्रियो येषा
ते तथा, कामकलहक्रीडाकोलाहलपरायणा इत्यर्थे । ‘हास-बोल बहुला’ हामब्बनिबहुला
‘अणेग-मणि-रयण विविह-णिज्जुत्त-विचित्त-चिंध-गया’ अनेक-मणि-रत्न-निविध निर्युक्त-
विचित्र-चिह्नगता-अनेकानि-यानि मणिरत्नानि तानि विविधनिर्युक्तानि=विविधप्रकारेण यथास्था
नस्थितानि, तान्येव विचित्रचिह्नानि तानि गता=प्राप्ता । ‘सुरूवा’ सुरूपा-सुन्दराऽऽकारा ।
‘महिड्ढिया’ महिड्ढिका-महासम्पत्तियुक्ता । ‘जाव पज्जुवासंति’ यावपर्युपासते-आद-
क्षिणप्रदक्षिण-वन्दनादीनि पूर्ववत् कृत्वा भगवत् श्रीमहावीरस्याभिमुखे स्थिता कृतप्राञ्जलिपुटा
भगवन्त श्रीमहावीर सेवन्ते-इति ॥ सू० ३५ ॥

की ये पोशाक धारण किये रहते हैं । (पमुइय-कदप्प-कलह-केली-कोलाहल-प्पिया)
प्रमुदितों का जो कन्दर्पप्रधान कलह एव क्रीडा होती है इससे जन्म जो कोलाहल होता
है वह इन्हे अधिक प्रिय रहा करता है । (हास-बोल-बहुला) ये हँसी-मजाक करने
में बड़े चतुर होते हैं । (अणेग-मणि-रयण-विविह-णिज्जुत्त-विचित्त-चिंध-गया)
अनेक मणिरत्न, जो कि विविध प्रकार से यथास्थान पर निवेशित रहा करते हैं वे ही जिनके
विचित्र चिह्न हैं ऐसे, (सुरूवा) सुन्दर आकार विशिष्ट, (महिड्ढिया) एव महाकद्वियुक्त
वे व्यन्तर देव (जाव पज्जुवासंति) पूर्ववर्णित असुरकुमारों की तरह दोनों हाथ
जोड़कर वदना एव नमस्कार करके प्रभु महावीर की सेवा में लग्न हुए ॥ सू० ३५ ॥

ने कन्दर्पप्रधान कलह एव क्रीडा थाय छे तेमाथी ने कोलाहल उत्पन्न
थाय छे ते तेमने अधिक प्रिय लागे छे (हास बोल बहुला) हसी-मजाक
करवाभा आ पहु न चतुर होथ छे (अणेग मणि रयण विविह णिज्जुत्त विचित्त
चिंध गया) अनेक मणिरत्न के ने विविध प्रकारे यथास्थान निवेशित रहे
छे ते न नेओना विचित्र चिह्न छे ओवा (सुरूवा) सुन्दर आकार युक्त
(महिड्ढिया) एव महा-कद्वियुक्त ते व्यन्तरदेव (जाव पज्जुवासति) पूर्व कहेला
असुरकुमारोनी पेटे पन्ने हाथ जोडी वदना तेमन नमस्कार करीने प्रभु
महावीरनी सेवाभा लग्न थया (सू ३५)

पंचवण्णाओ ताराओ ठियलेसा चारिणो य अविस्साममंडलगई
 पत्तेयं णामंकापागडियचिंधमउडा महिडिडया जाव पज्जुवासंति
 ॥ सू० ३६ ॥

णताम-पयका णव । नभ्रमगया उक्ता एव । अश्याशीनिर्गहा । एकस्य खलु
 चन्द्रमस्तारा क्रोशाना क्रोटच णतामयो भवन्ति-पट्टपट्टिमहत्ताणि नव च शतानि पञ्चम-
 तयपिकानि 'णाणा-सठाण-सठियाओ' नाना-स्थान-स्थिता, 'पंचवण्णाओ' पञ्चमर्गा,
 'ताराओ' तारा, 'ठियलेसा' स्थितलेस्या निश्चलप्रकाशा । 'चारिणो य' चाग्णियध-
 मवर्णशोला, 'अविस्साम-मंडल-गई' अविश्राम-मण्डल-गतय-निर्न्तरनचरणशोला,
 'पत्तेय' प्रयेकम-मृथरु मृथरु 'णामंकापागडिय-चिंध-मउडा' नामाऽङ्ग-प्रकटित चिह्न-
 मुकुटा-नामाङ्गानि-नामाङ्गानि-नामाङ्गयुक्तानि प्रकटितचिह्नानि-स्पष्टचिह्नयुक्तानि मुकुटानि
 येया ते तथा, 'महिडिडया' महर्दिका-महर्दियुक्ता मन्तो ज्योतिष्का देवा 'जाव पज्जु-
 वासति' यावत्-पूर्वव-प्रतिगवन्दनादिमि पर्युपामते ॥ सू० ३६ ॥

मीं टमीं प्रकार ममझनी चाहिये । यह अष्टमी है । नक्षत्र की मग्या ऊपर कही गयी है ।
 प्रकीर्णताकाओं में केवळ चन्द्रमा के ही परिवार के तां ६६९७५ (ठियामठ हजार नौ
 सौ पचहत्तर) कोटाकोटी है । टमीं तरह और के मीं तारा के परिवार आखान्तर
 से ममझना ।

(णाणा-सठाण-सठियाओ) इन ताराओं का आकार एकमा निश्चित नहीं
 है, इनका आकार अनेक प्रकार का है । (पंचवण्णाओ) ये पांच वर्णियाले हैं ।
 (ठियलेसा) इनकी लेस्या स्थिर है-इनकी लेस्या में क्रोट परिवर्तन नहीं होता है ।
 (चारिणो य) ये चरण-शोला है । अतः (अविस्साम-मंडल-गई) निरन्तर गमन

अर्थनी मग्या अश्याशीनिर्गहा छे अश्यानी मग्या पणु अश्याली ७ अमठ
 बेवी लेठये अड ८८ छे नक्षत्रनी मग्या ८५० लडी छे प्रकीर्णतागयोमा
 देवण अश्याना पञ्चिवागना ताग ६६९७५ (छासठ हजार नवयो पीचोते))
 कोटाकोटी छे अश्याली ७ गीते शील अश्याना पणु ताग-पञ्चिवाग शास्त्रान्तगथी
 नमठ देवा

(णाणा सठाण सठियाओ) आ तागयोना आजा अश्या लेवे निश्चित
 नथी. तेमना आजा अनेक प्रकारना छे (पंचवण्णाओ) तेयो पाच वर्णवाणा
 छे (ठियलेसा) तेमनी लेस्या स्थिर छे, तेमनी लेस्यामा कोट इक्षार थतो
 नथी (चारिणो य) तेयो अचरणशील छे (अविस्साम-मंडल-गई) आभ नि-

कणग-वण्णा, जे य गहा जोइसंमि चारं चरंति केऊ य गइरइया
अट्टावीसविहा य णक्खत्तदेवगणा णाणा-संटाण-संठियाओ य

चारं चरन्ति—उक्तातिरिक्ता ये ग्रहा ज्योतिषे=ज्योतिषके—चक्रप्रदग्नासमानं ज्योति-
र्मण्डले भ्रमण कुर्वन्ति । बहुवाद् बहुवचनम् । ' केऊ य गइरइया ' केनपथ गतिगतिना —
केतवो—जलकेवाद्य, किंभूता ' अगः३३ह—गतिरिचिता—मनुष्येणापेक्षया गतिमन्त ।
' अट्टावीसविहा य णक्खत्त-देव-गणा ' अष्टाविंशतिविधाश्च नक्षत्रदेवगणा—अष्टाविंश
तिर्नक्षत्रदेवता । अत्र-प्रसङ्गादन्येषामपि ज्योतिःकदेवाना मर्या उच्यन्ते—ज्योतिष्कदेवा
पञ्चविधा भवन्ति, सूर्या १, चन्द्रमस २, ग्रहा ३, नक्षत्राणि ४, प्रकीर्णताराकाश्च ५,
तत्र द्वौ सूर्यो जम्बूद्वीपे, लग्ने च वार, धातकीखण्डे द्वादश, कालोदधी द्विचवारिणत्,
पुष्करार्द्धे द्विसप्तति—इयेव मनुष्यलोके द्वारिणदधिक गत सूर्या सन्ति, चन्द्रमसोऽपि

जो ग्रह ज्योतिषक में—चक्र की तरह प्रतिभासमान इस ज्योतिर्मण्डलमें—भ्रमण करते
है वे (केऊ य गइरइया) जलकेतु आदि 'केतुग्रह', जो कि मनुष्यलोक की अपेक्षा ही सदा
गतिविशिष्ट हैं । अर्थात् यह समस्त ज्योतिषक इस मनुष्यलोक रूप द्वीप में ही
गति विशिष्ट है, अन्यत्र नहीं । (अट्टावीसविहा य णक्खत्तदेवगणा) तथा जो अट्टाईस
(२८) प्रकार के नक्षत्र जाति के देवता है ।

यहाँ पर प्रसंगवश अन्य ज्योतिषी देवों की भी मर्या कहते हैं । ज्योतिषी देव
पाँच प्रकार के हैं—सूर्य १, चन्द्रमा २, ग्रह ३, नक्षत्र ४, और प्रकीर्ण तारा ५ । इन
सबों में प्रत्येक की मर्या इस प्रकार है—जम्बूद्वीप में दो सूर्य हैं, लग्न समुद्र में चार सूर्य
हैं, धातकीखण्ड में बारह सूर्य हैं, कालोदधि में बयालीस सूर्य हैं और पुष्करार्द्ध में बहत्तर
सूर्य हैं । इस प्रकार मनुष्यलोक में सूर्य की मर्या एक सौ बत्तीस है । चन्द्रमा की मर्या

षण्णवैलाशी णीण्ण ते अहो ज्योतिश्चक्रमा—चक्रनी चैठे प्रतिभासित आ ज्योति
र्भ उलमा—भ्रमण कुर्वंते ते (केऊ य गइरइया) णक्खत्तु आदि केतुअह के ते मनुष्य
लोकांनी अपेक्षा ज उभेथा गति-विशिष्ट छे अर्थात्—आ भ्रमन्त ज्योतिश्चक्र
आ मनुष्यलोकाङ्गप अही द्वीपमा, गतिविशिष्ट छे, णीणे नडि (अट्टा
वीसविहा य णक्खत्त-देवगणा) तथा ते २८ प्रकारना नक्षत्र जातिना देवता छे
अही प्रसंगवश णीण्ण ज्योतिषी देवोनी पणु सण्णा कडे छे ज्यो-
तिषी देव पाच प्रकारना छे—सूर्य १ चन्द्रमा २ अह ३ नक्षत्र ४ तथा प्रकीर्ण
तारा ५ आ णधामा प्रत्येकनी मण्णा ' आ प्रकारे छे—जम्बूद्वीपमा २ सूर्य
छे, लग्न समुद्रमा चार सूर्य छे धातकीखण्डमा १२ सूर्य छे कालोदधिमा
४२ सूर्य छे तथा पुष्करार्द्धमा ७० सूर्य छे आ प्रकारे मनुष्यलोका

अच्युयवई पहिद्वा देवा जिण-दंसणु-स्सुया-गमण-जणिय-हासा
पालग-पुप्फग-सोमणस-सिरिवच्छ-णदियावत्त-कामगम-पीडगम-

सौभर्मादच्युताऽन्ता कप्पा सन्ति, एषु वैमानिका देवा भवन्ति, अत एव सौभर्मादच्युतान्ताना
देवलोकाना पतय =स्वामिन 'पहिद्वा' प्रहृष्टा =अतिहर्षं प्राप्ता देवा =वैमानिका । 'जिण-
दंसणु-स्सुया-गमण-जणिय-हासा' जिन-दर्शनो मुक्ता-ऽऽगमन-जनित-हामा -जिनदर्शना-
र्थो मुक्तानाम् एषा, देवानामागमन, तेन जनितो हास =आनन्दो येषां ते तथा । जिनेन्द्रदर्श-
नात्कृष्ठाऽऽगमनजातप्रमोदा । सौभर्मादिद्वादशकृष्णा दशान्यका इन्द्रा मग्नि, तत्र नवम-
दशमयोरैक इन्द्रो भवति । शक्रादीनामच्युतान्ताना दशानामिन्द्राणा पालकादीनि सर्वतोभद्रान्तानि
दश विमानानि भवन्ति, तान्याह- 'पालग १, पुप्फग २, सोमणस ३, सिरिवच्छ ४,
णदियावत्त ५, कामगम ६, पीडगम ७, मणोगम ८, विमल ९, सव्वओभइ १०
-सरिसणामधेज्जेहिं विमाणेहिं ओडण्णा' पालक-पुप्फक-सौमनस-श्रीयस-नन्द्यार्त-काम-
गम-प्रीतिगम-मनोगम-विमल-सर्वतोभद्र-सदृशनामधेयैर्विमानैर्ग्रतोणा =ते दश इन्द्रा पाल-

महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत ये देवलोक हैं । ये सौभर्मादिक,
वैमानिक देवताओं के रहने के स्थान हैं । ये देवलोक १२ हैं । इनकी रूप रत्ना हैं ।
ये वैमानिक देव इनके पति हैं । इन कप्पा में जो उपन्न होते हैं वे वैमानिक या रूपवासी
देव कहलाते हैं । (पहिद्वा) अतिहर्ष को प्राप्त हुए (देवा) ये वैमानिक देवेन्द्र कि
जिन्हे (जिण-दंसणु-स्सुया-गमण-जणिय-हासा) जिनेन्द्र के दर्शन के लिये
उत्सुकतापूर्वक आगमन से अति आनन्द हुआ है । (पालग-पुप्फग-सोमणस सिरिवच्छ-
णदियावत्त कामगम-पीडगम-मणोगम-विमल-सव्वओभइ-सरिस-णामधेज्जेहिं
विमाणेहिं) वे दस वैमानिक देवेन्द्र अपने २ पालक, १ पुप्फक २ सौमनस, ३ श्रीवत्स,

६, महाशुक्र ७, सहस्रार ८, आनत ९, प्राणत १०, आरण ११, अच्युत १२, आ देवलोके छे आ सौभर्मादिक, वैमानिक देवताओंना रहे
पाना स्थान छे ते देवलोके १२ छे तेमनी रूप रत्ना छे तेमना स्वामी
१० छे आ कथोभा ने उत्पन्न थाय छे ते वैमानिक अथवा रूपवासी देव
कहेथाय छे (पहिद्वा) षड् हर्षं प्राप्त यथा (देवा) आ वैमानिक देवेन्द्र तेने
(जिण-दंसणु-स्सुया-गमण-जणिय-हासा) जिनेन्द्रना दर्शन भाटे उत्सुकतापूर्वक
आगमनथी अति आनन्द थये छे (पालग-पुप्फग-सोमणस-सिरिवच्छ-णदिया-
वत्त-कामगम-पीडगम-विमल-सव्वओभइ-सरिसणामधेज्जेहिं विमाणेहिं) ते दश

मूलम्—तेण कालेण तेणं समएणं समणस्स भगवओ महा-
वीरस्स वेमाणिया देवा अंतियं पाउब्भविट्था, सोहम्मी-साण-सणं-
कुमार-मार्हिंद-बंभ-लंतग-महासुक्क-सहस्सारा-णय-पाणया-रण-

टीका—‘तेणं कालेण तेण समएणं’ इत्यादि। तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रम-
णस्य भगवतो महावीरस्य ‘वेमाणिया देवा अंतियं पाउब्भविट्था’ वैमानिका देवा अन्तिके
प्रादुर्धभ्यु । के ते वैमानिका देवा ? इत्याह—सोहम्मी-साण-सणंकुमार-मार्हिंद-बंभ-लंतग
महासुक्क-सहस्सारा-णय-पाणया-रण-अच्चुययई’ सौधर्मे १-ज्ञान २-सनत्कुमार ३-माहेन्द्र ४,
ब्रह्म ५-लान्तक ६-महाशुक्र ७-सहस्रारा ८-संत ९-प्राणता १०-स-रणा ११-च्युतपतय १२,

करते रहना यही इनका स्वभाव है। (पत्तेयं णामक-पागडिय-विंध-मउडा)
प्रत्येक के मुट्ट अपने अपन नामों से युक्त एव स्पष्ट निह वाळे हैं। (महिडिदया) ये
एव महाकृदि के धारी हैं। (जाव पज्जुवासति) पूर्व में वर्णित असुरकुमारों की तरह
ये सब ज्योतिषी देव भी भगवान् महावीर की सेवा करने लगे ॥ सू० ३६ ॥

‘तेण कालेण’ इत्यादि।

(तेण कालेण तेण समएणं) उस काल और उस समय में (समणस्स
भगवओ महावीरस्स) श्रमण भगवान् महावीर के (अतिय) समीप (वेमाणिया
देवा) वैमानिकदेव (पाउब्भविट्था) प्रकट हुए। वैमानिक देव कौन हैं? सो कहते
हैं—(सोहम्मी-साण-सणंकुमार-मार्हिंद-बंभ-लंतग-महासुक्क-सहस्सारा-णय-
पाणया-रण-अच्चुय-यई) सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक

तर गभन ००ता २डेवु अे ७ तेभने स्वभाव छे (पत्तेयं णामक-पागडिय
विंध मउडा) प्रत्येकना मुट्ट पोतपोताना नामोथी युक्त अेव न्यथ सिद्धवाण
छे (महिडिदया) अे णधा महाकृदिना धारठ छे, (जाव पज्जुवासति) पूर्व ३डेव
असुरकुमारोनी पठे आ णधा ज्योतिषीदेव पणु भगवान् महावीरनी सेवा
करवा लाया (सू०३६)

‘तेण कालेण’ इत्यादि

(तेण कालेण तेण समएणं) ते काल अने ते समयमा (समणस्स भगवओ
महावीरस्स) श्रमणु भगवान् महावीरनी (अतिय) पासै (वेमाणिया देवा) वैमा-
निक देव (पाउब्भविट्था) प्रकट थया ते वैमानिक देवो कौन छे? ते कडे छे-
(सोहम्मी साण-मणकुमार-मार्हिंद बंभ लंतग-महासुक्क सहस्सारा णय पाणया-रण अच्चुय
यई) सौधर्म १, ईशान २, सनत्कुमार ३, माहेन्द्र ४, ब्रह्मलोक ५, लान्तक

धारी कुंडल-उज्जोविया-गणा मउड-दित्त-सिरया रत्ताभा पउम-पम्ह-

नि येपा ते तथा । तत्र रूपभो वृषभ, मृगमहिपादिचिह्नयुक्तमुकुटमहिता 'पसिद्विल-वर-मउड-तिरीड-धारी' प्रशिथिल-वर्केगविन्याम-किरीटधारिण, प्रशिथिल्य ये 'वरमउड' वर्केगविन्यासा = प्रशस्तकेगविन्यासा किरीटाश्च तान् धरन्ति ये ते तथा, 'मउड' इति केग-विन्यासार्थको देगोशब्द । 'कुंडल-उज्जोविया-गणा' कुण्डलो-इचोत्तिता-नना - कुण्डल उदचोत्तित = प्रकाशितम् आनन = मुग्ग येपा ते तथा, कुण्डलोद्गामितमुग्वा इत्यर्थ । 'मउड-दित्त-सिरया' मुकुट-दीप-गिराजा - मुकुटन रन-खचितेन दामा गिराजा = केशा येपा ते तथा, 'रत्ताभा' रत्ताऽऽभा = अरुगकान्तिमन्त । 'पउम-पम्ह-गोरा'

हय = घोडा, गजपति-गजेन्द्र, मुजग-सर्प, रत्न और वृषभ इनके चिह्न^१ थे । (पसिद्विल-वर-मउड-तिरीड-धारी) प्रशिथिल उत्तम मउड = केगविन्यास एव किरीट-मुकुट को ये धारण क्रिये हुए थे, अर्थात् भगवान् के दर्शन करते की त्वग में इनके प्रशस्त केग-विन्यास और मुकुट शिथिल हो गये थे । (कुंडल-उज्जोविया-गणा) कुण्डलों की विशिष्ट आभा से इनका मुग्गमण्डल प्रकाशित हो रहा था । (मउड-दित्त-सिरया)

(१) ये चिह्न १० हैं, देवलोक १२ हैं । पर इनके इन्द्र १० हैं-(१) सौधर्मका इन्द्र, (२) ईशानका इन्द्र, (३) सन कुमारका इन्द्र, (४) माहेन्द्र का इन्द्र, (५) ब्रह्मलोक का इन्द्र, (६) लन्तकका इन्द्र, (७) महाशुक्रका इन्द्र, (८) सहस्रारका इन्द्र, (९) आनत एव प्राण-तका इन्द्र और (१०) आरण एव अच्युत देवलोकका इन्द्र, इस प्रकार ये १० इन्द्र इन १२ कर्णों के हैं । इन इन्द्रों के ये क्रमग पालकादिक १० विमान होते हैं । मृग महिप आदिके क्रमग ये १० चिह्न मुकुटों में इनके होते हैं ।

पति [हाथी], कुजग-सर्प, ऋद्धा अने वृषभ [वृषभ], येना चिह्न^१ हुता (पसिद्विल-वर-मउड-तिरीड-धारी) प्रशिथिल उत्तम मउड-केगविन्याम एव किरीट-मुकुट तेमण्डे धारण कथा हुता अर्थात् भगवानना दर्शन करवानी उतापणभा तेमना प्रशस्त देश-विन्याम अने मुकुट शिथिल थथ गया हुता (कुंडल-उज्जोविया-गणा) कुण्डलोनी विशिष्ट आला (प्रकाश)थी तेमना मुग्ग

(१) आ चिह्न १० छे, देवलोक १२ छे, पणु तेना धद्र १० छे (१) सौ-धर्मनो धद्र, (२) ईशाननो धद्र, (३) सनतकुमारनो धद्र, (४) माहेन्द्रनो धद्र, (५) ब्रह्मलोकनो धद्र, (६) लान्तकनो धद्र, (७) महाशुक्रनो धद्र, (८) सहस्रारनो धद्र, (९) आनत एव प्राणतनो धद्र, तथा (१०) आरणु एव अच्युत देवलोकनो धद्र आ प्रदारे आ १० धद्र आ १२ उटपोना छे आ धद्रोना कभथी पालड

विमल-सव्वओभद-सरिसणामधेजेहिं विमाणेहिं ओडण्णा वंदगा
जिणिंदं मिग-महिस-वराह-छगल-ददुर-हय-गयवड-भुयग-खग्ग-
उसभंक-विडिम-पागडिय-चिंध-मउडा पसिडिल-वरमउड - तिरीड-

कादिसर्वतोभद्रान्तनामकै, तथा तसदृशनामकै - पूर्णभद्र - सुभद्रादिनामकै ध्वान्थै विमानै-
रन्येऽपि देवा 'ओडण्णा' = अततीर्णा = भुजमागता । 'वदगा जिणिंदं' वन्दका जिनन्त्रस्य
= जिनेन्द्र वन्दितुकामा इत्यर्थ । 'मिग-महिस-वराह-छगल ददुर-हय-गयवड-भुयग-खग्ग-
उसभरु-विडिम-पागडिय-चिंध-मउडा' मृग-महिष-वराह-छगल-ददुर-हय-गजपति-सुजग-
खड्ग-रूपभाङ्क-विडिम-प्रकटित चिह्नमुकुटा, मृगमहिषादि-रूपमान्ता अङ्गा - चिह्नानि विडि-
मेपु = विस्तीर्णभागेषु येषा मुकुटाना तानि मृगमहिषवराह-छगल-ददुर-हय-गजपति-सुजग-
रूपभाङ्क-विडिमानि, तानि अतएव प्रकटितचिह्नानि = रत्नादिदीप्या प्रकाशितचिह्नयुक्तानि मुकुटा-

४ नवावर्त, ५ कामगम, ६ प्रीतिगम, ७ मनोगम, ८ विमल, ९ सर्वतोभद्र १० इन
नामवाले विमानों से और पूर्वांक विमाना से अतिरिक्त पूर्णभद्र सुभद्र आदि विमानों से दश
देवेन्द्रा से भिन्न अन्य वैमानिक देव (ओडण्णा) पृथ्वी पर अवतरित हुए-आये, अर्थात्-
इन पूर्वोंक नामवाले विमाना द्वारा दस देवेन्द्र, तथा और भी अन्य देव अपने अपने
विमानों द्वारा इस भूमण्डल पर अवतीर्ण हुए-उतरे। क्यों कि ये सब (वदगा जिणिंदं)
जिनेन्द्र की वन्दना करने की कामना वाले थे। (मिग-महिस-वराह-छगल-ददुर-
हय-गयवड-भुयग-खग्ग-उसभरु-विडिम-पागडिय-चिंध-मउडा) इनके मुकु-
टोंके विडिमों-विस्तीर्ण भागों में क्रमशः मृग, महिष, वराह, छगल-बकरा, ददुर-मेढक,

वैमानिक देवेन्द्रो पोतपोताना पालक १, 'पुष्पक २, सौमनस ३, श्रीवत्स ४,
नवावर्त ५, कामगम ६, प्रीतिगम ७, मनोगम ८, विमल ९, सर्वतोभद्र १०,
आ नामवाणा विमानोथी, तथा पूर्वोक्त विमानोथी अतिरिक्त पूर्वोक्त
सुभद्र आदि विमानोथी दश देवेन्द्रोथी भिन्न भील वैमानिक देवे (ओडण्णा)
पृथ्वी पर आव्या अर्थात् आ पूर्वोक्त-नामवाणा विमानो द्वारा ते देवेन्द्र
तथा भील पथु देव पोतपोताना विमानो द्वारा आ भूम उल पर उतरी
आव्या केमके अथवा (वदगा जिणिंदं) जिनेन्द्रनी वदना करवाणी कामना
वाणा उता (मिग-महिस-वराह-छगल-ददुर-हय-गयवड-भुयग-खग्ग-उसभरु-
विडिम पागडिय चिंध मउडा) तेभना मुकुटोना विडिमो-विस्तीर्ण भागोभा कभश
मृग, महिष, वराह, छगल-बकरा, ददुर-मेढक [दुडुदे], हय-घोडा, गज-

मूलम्—तए णं चपाए णयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-
चउम्मुह-महापह-पहेसु महया जणसद्दे इ वा जणवूहे इ वा

टीका—‘तए ण’ इत्यादि । तत = नदनन्तर—चतुर्निकायदेवानामागमना-
नन्तर, सल्ल ‘चपाए णयरीए’ चम्पाया नगर्याम् ‘सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-
चउम्मुह-महापह-पहेसु’ शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चवर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु-तत्र-
शृङ्गाटक-‘सिंघाडा’ इति भाषाप्रसिद्ध जलज फल, तदाकार स्थान, त्रिकोणमित्यर्थ,
त्रिक-मिन्त्रित्रिमार्गस्थानम्, चतुष्क-यत्र चवारो मागा मिन्त्रिता सन्ति तत्-‘चौराहा’
इति भाषाप्रसिद्ध स्थानम्, चवर=बहुमार्गमेलनस्थानम्, चतुर्मुख=चतुर्द्वार स्थानम्-आग-
न्तुकान्तीना विश्रामस्थानम्, महापथ-राजमार्ग, पन्था-स्थायामात्रम्, तेषु सर्वेषु स्थानेषु
यत्र ‘महया जणसद्दे इ वा’ महान् जनशब्द-परस्परऽऽन्वापादिरूपो भवति ‘इकारो’
वाक्यालङ्कारार्थ, ‘वा’-प्रकारार्थ, तथा ‘जणवूहे इ वा’ जनसूह-लोकसमूह, ‘जण-

‘तए ण चपाए णयरीए’ इत्यादि ।

(तए ण) चतुर्निकाय के देवों के आगमन के अनन्तर (चपाए णयरीए)
चपा नगरी में (सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु) शृङ्गाटक-
तीनकोनवाले स्थान पर, त्रिक-जहा पर तीन रास्ते आकर मिलते हैं ऐसे स्थान पर,
चतुष्क-जहा पर चार मार्ग आकर मिले रहते हैं ऐसे चौराहे पर, चत्वर-अनेकमार्गोंका
समेलन जहाँ होता है ऐसे स्थान पर, चतुर्मुख-आगन्तुक जनों के विश्रामार्थ निर्मापित
स्थान पर, महापथ-राजमार्ग पर, एव पथ अर्थात् जहाँ से गली निकलती हो ऐसे स्थान
पर, (महया जणसद्दे इ वा) महान् जन शब्द होने लगा-परस्पर मिलजुल कर लोग
वातचीत करने लगे । (जणवूहे इ वा) एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से पूजने लगा, अथवा-

पूर्वे ऽडेला असुरकुमारोनी पेठे त्रलुवार अजलिपूर्व ऽ सविधि पढना
ऽरीने त्रलुनी सेवा करवा लाया (सू ३७)

‘तए ण चपाए णयरीए’ इत्यादि

(तए ण) चतुर्निकायना देवाना आगमन पंथी (चपाए णयरीए) यथा
नगरीसा (सिंघाडग तिय चउक्क चच्चर-चउम्मुह महापह पहेसु) शृङ्गाटक-त्रलु
डोखुवाणा स्थान पर, त्रिक-न्या त्रलु रन्ता आवीने भणे छे जेवा स्थान पर,
चतुष्क-न्या चार मार्ग आवीने भणे छे जेवा चौटा पर, चत्वर-अनेक
मार्गोंतु समेलन न्या थाय छे जेवा स्थान पर, चतुर्मुख-आवनार भाषु-
मोना विश्राम भाटे मुकरर करेला स्थान पर, महापथ-राजमार्ग पर, जेव
पथ-अर्थात् न्याथी गली नीकणी डोय तेवा स्थानो पर, (महया जणसद्दे इ वा)
महान् जन-शब्द यथा लाया-परस्पर मेलामलाप ऽरी दोडे वातचीत

गोरा सेया सुभ-वण-गंध-फासा उत्तमवेउच्चिणो विविह-वत्थ-गंध-
मल्ल-धारी महिद्धिया महज्जुइया जाव पंजलिउडा पज्जु-
वासंति ॥ सू०३७ ॥

पदम पश्म-गोरा पत्रकिञ्जकन्द गौरवर्णा । 'सेया' श्वेता-शुभक्रान्ति-शालिनी ।
'सुभ वण-गंध-फासा' शुभ-वर्ण-गन्ध-स्पर्शा । 'उत्तम-वेउच्चिणो' उत्तम विदुर्विग =
उत्तमविदुर्विगणकारिण 'विविह-वत्थ-गंध-मल्ल-धारी' विविध-वत्स-गन्ध-मान्य-धाग्णि
'महिद्धिया' महद्विका-महासम्पत्तिशालिनी । 'महज्जुइया' महाधुतिका-अतिशय
धुतिमन्त । 'जाव पजलिउडा पज्जुवासति' यान् प्राञ्जलिपुटा पर्युपासते-यावच्छब्दात्
-पूर्वपत् त्रिकृत्व, आदक्षिणप्रदक्षिण-वन्दन-नमनादय सूच्यन्ते, प्राञ्जलिपुटा = वद्राऽञ्जलय
पर्युपासते = समन्तादुपासना कुर्वते ॥ सू० ३७ ॥

मस्तक की केजपक्ति मुकुट की कति से दीत हो रही थी। (रत्ताभा) इनका कति
अरुण-लाल थी, (पउम-पम्ह-गोरा) पर इनका शरीर कमल के केजरो के समान गौर-
वर्णवाला था। इसलिये (सेया) ये शुभक्रान्ति से शोभित थे। (सुभ-गंध-वण-
फासा) इनके शरीर के गंध, वर्ण और स्पर्श शुभ थे। (उत्तमवेउच्चिणो) ये उत्तम
वैक्रिय शरीर करनेवाले थे। (विविह-वत्थ-गंध-मल्ल-धारी) अनेक प्रकार के
उत्तमोत्तम चत्वा को ये धारण किये हुए थे। गले में इनके सुगन्धित पुष्पों की माला
सुशोभित हो रही थी। तथा ये (महिद्धिया) महद्विक थे। एव (महज्जुइया) महा-
धुतिधारी थे। (जाव पजलिउडा पज्जुवासति) ये पूर्ववर्णित असुरकुमारों की तरह
तीन बार अजलिपूर्वक मविधि वन्दना कर प्रभु की सेवा करने लगे ॥ सू० ३७ ॥

भ उद्य प्रकाशित थर्ह रह्या हुता (मउड-वित्त-सिरया) मस्तकनी केशपकित
मुकुटनी शतिथी दीपी उठती हुती (रत्ताभा) तेमनी शति अरुण-लाल हुती
(पउम-पम्ह-गोरा) यषु तेमना शरीर उमलना केशरे नेवा गौर वर्णना हुती
आथी (सेया) तेओ शुभक्रान्तिथी शोभता हुता (सुभ-गंध-वण-फासा) अेमना
शरीरना गन्ध, वर्ण अने स्पर्श शुभ हुता । (उत्तमवेउच्चिणो) तेओ उत्तम
वैक्रिय-शरीर धारषु करवावाणा हुता (विविह-वत्थ-गंध-मल्ल-धारी) अनेक
प्रकारना उत्तमोत्तम वन्त्रो तेमणु धारषु कथा हुता, तेमना गणाभा सुगन्धित
पुष्पोनी भाणा शोभी रही हुती तथा तेओ (महिद्धिया) महद्विक हुता
अेव (महज्जुइया) महाधुतिधारी हुता (जाव पजलिउडा पज्जुवासति) तेओ

आदि १० विमान डोय छे भूय मडिप, आदिना अनुक्रमे तेओना मुकु
टमा चिहो डोय छे

**मूलम्—तए णं चपाए णयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-
चउम्मुह-महापह-पहेसु महया जणसद्दे इ वा जणवूहे इ वा**

टीका—‘तए ण’ इत्यादि । तत् = नदनन्तर—चतुर्निकायदेवानामागमना-
नन्तर, सख ‘चपाए णयरीए’ चपाया नगर्याम् ‘सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-
चउम्मुह-महापह-पहेसु’ शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चवर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु-तन-
शृङ्गाटक-‘सिंघाडा’ इति भाषाप्रसिद्ध जलज फल, तदाकार स्थान, त्रिकोणमित्यर्थ,
त्रिक-मिन्त्रिर्मागस्थानम्, चतुष्क-यत्र चत्वारो मार्गा मिलिता सन्ति तत्-‘चौराहा’
इति भाषाप्रसिद्ध स्थानम्, चवर=बहुमार्गमेलनस्थानम्, चतुर्मुख=चतुर्द्वार स्थानम्-आग-
न्तुकानीना विश्रामस्थानम्, महापथ-राजमार्ग, पन्था-रथ्यामात्रम्, तेषु सर्वेषु स्थानेषु
यत्र ‘महया जणसद्दे इ वा’ महान् जनशब्द-परस्पराऽऽलापद्विरूपो भवति ‘इकारो’
वाक्यालङ्कारार्थ, ‘वा’-प्रकारार्थ, तथा ‘जणवूहे इ वा’ जनव्यूह-लोकसमूह, ‘जण-

‘तए ण चपाए णयरीए’ इत्यादि ।

(तए ण) चतुर्निकाय के देवों के आगमन के अनन्तर (चपाए णयरीए)

चपा नगरी में (सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु) शृङ्गाटक-
तीनकोनवाले स्थान पर, त्रिक-जहा पर तीन रास्ते आकर मिलते हैं ऐसे स्थान पर,
चतुष्क-जहा पर चार मार्ग आकर मिले रहते हैं ऐसे चौराहे पर, चत्वर-अनेकमार्गोंका
समेलन जहाँ होता है ऐसे स्थान पर, चतुर्मुख-आगन्तुक जनो के विश्रामार्थ निर्मापित
स्थान पर, महापथ-राजमार्ग पर, एव पथ अर्थात् जहाँ से गली निकलती हो ऐसे स्थान
पर, (महया जणसद्दे इ वा) महान् जन शब्द होने लगा-परस्पर मिलजुल कर लोग
वातचात करने लगे । (जणवूहे इ वा) एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से पूछने लगा, अथवा-

पूवे ढडेला असुरकुमारोनी पेडे त्रलुवार अजलिपूर्वक सविधि वदना
ठरीने त्रलुनी जेवा करवा लाज्या (सू ३७)

‘तए णं चपाए णयरीए’ इत्यादि

(तए ण) चतुर्निकायना देवाना आगमन पत्री (चपाए णयरीए) चपा

नगरीसा (सिंघाडग तिय चउक्क चच्चर-चउम्मुह महापह पहेसु) शृङ्गाटक-त्रलु
डोषुवाणा स्थान पर, त्रिक-ज्या त्रलु रस्ता आवीने भजे छे जेवा स्थान पर,
चतुष्क-ज्या चार मार्ग आवीने भजे छे जेवा चौटा पर, चत्वर-अनेक
मार्गोंतु समेलन ज्या थाय छे जेवा स्थान पर, चतुर्मुख-आवन्तार भाषु
सोना विश्राम भाटे सुठरर करेला स्थान पर, महापथ-राजमार्गपर, जेव
पथ-अर्थात् ज्याथी गली नीकणी डोय तेवा स्थानो पर, (महया जणसद्दे इ वा)
महान् जन-शब्द थवा लाज्या-परस्पर मेलामलाप ठरी दोडे वातचीत

गोरा सेया सुभ-वण-गंध-फासा उत्तमवेउच्चिणो विविह-वत्थ-गंध-
मल्ल-धारी महिद्धिया महज्जुइया जाव पंजलिउडा पज्जु-
वासति ॥ सू०३७ ॥

पद्म पद्म-गौरा -पद्मकिञ्जकम्बु गौरवर्णा । 'सेया' श्वेता-शुभक्रान्ति-गालिन ।
'सुभ-वण-गंध-फासा' शुभ-वर्ण-गन्ध-स्पर्शा । 'उत्तम-वेउच्चिणो' उत्तम विरुविग =
उत्तमविरुर्णाकारिण 'विविह-वत्थ-गंध-मल्ल-धारी' विविध-वत्थ-गन्ध-मान्य धारिण
'महिद्धिया' महद्विका-महासम्पत्तिशालिन । 'महज्जुइया' महायुक्तिका-अतिगन्ध
धुतिमन्त । 'जाव पंजलिउडा पज्जुवासति' यावप्राञ्जलिपुटा पर्युपासते-यावच्छब्दात्
-पूर्वम्बु विक्रव, आदक्षिणप्रदक्षिण-वन्दन-नमनादय सूच्यन्ते, प्राञ्जलिपुटा =मन्त्राऽञ्जलय
पर्युपासते=समन्तादुपासना युर्वते ॥ सू०३७ ॥

मस्तक की केजपक्ति मुकुट की काति से दीप्त हो रही थी। (रत्ताभा) इनकी काति
अरुण-लाल थी, (पउम-पम्ह-गोरा) पर इनका शरीर कमल के केजरो के समान गौर-
वर्णमाला था। इसलिये (सेया) ये शुभक्रान्ति से गोमित थे। (सुभ-गंध-वण-
फासा) इनके शरीर के गंध, वर्ण और स्पर्श शुभ थे। (उत्तमवेउच्चिणो) ये उत्तम
वैक्रिय शरीर करनेवाले थे। (विविह-वत्थ-गंध-मल्ल-धारी) अनेक प्रकार के
उत्तमोत्तम वस्तुओं को ये धारण किये हुए थे। गले में इनके सुगन्धित पुष्पों की माला
सुगोमित हो रही थी। तथा ये (महिद्धिया) महद्विक थे। एव (महज्जुइया) महा-
धुतिधारी थे। (जाव पंजलिउडा पज्जुवासति) ये पूर्ववर्णित असुरकुमारों की तरह
तीन बार अनलिपूर्वक सविधि वन्दना कर प्रभु की सेवा करने लगे ॥ सू० ३७ ॥

भ उण प्रकाशित थछ रक्षा हुता (मउड-दित्त-सिरया) मस्तकनी केशपडित
मुकुटनी कातिथी दीपी उडती हुती (रत्ताभा) तेभनी काति अउणु-लाद हुती
(पउम-पम्ह-गोरा) पणु तेभना शरीर उभलना केशरो लेवा गौ० वर्णना हुता,
आथी (सेया) तेओ शुभक्रान्तिवी शोभता हुता (सुभ-गंध-वण-फासा) तेभना
शरीरना गन्ध, वर्णु अने स्पर्श शुभ हुता (उत्तमवेउच्चिणो) तेओ उत्तम
वैक्रिय-शरीर धारणु करवावाणा हुता (विविह-वत्थ-गंध-मल्ल-धारी) अनेक
प्रकारना उत्तमोत्तम वस्तु तेभणु धारणु थया हुता, तेभना गणामा सुगन्धित
पुष्पानी माला गोली ग्ही हुती तथा तेओ (महिद्धिया) महद्विक हुता
एव (महज्जुइया) महाधुतिधारी हुता (जाव पंजलिउडा पज्जुवासति) तेओ

आदि १० विमान डोय छे भृगु महिष, आदिना अनुक्रमे तेओना सुक
टमा थिहो डोय छे

समणे भगवं महावीरे आङ्गरे तित्थगरे सयंसंबुद्धे पुरिसुत्तमे
जात्र संपाविडकामे पुब्बाणुपुत्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे
इहमागए इह संपत्ते, इह समोसढे, इहेव चंपाए णयरीए वहिं

किं कथयतीति सूत्रकार आत्—‘एव खलु देवाणुप्पिया’ इत्यादि । एव खलु भो
देवानुप्रिया । श्रमणो भगवान् महावीर, ‘आङ्गरे तित्थगरे सयसंबुद्धे’
आदिकरस्तीर्थकर स्वयमबुद्ध, ‘पुरिसुत्तमे’ पुण्योत्तम, ‘जात्र संपाविडकामे’ यावत्-
सम्प्राप्तुकाम—मिद्विगतितानामधेय स्थान सम्प्राप्तुकाम इति भाव । ‘पुब्बाणुपुत्विं’
पूर्वानुपूर्वा—तीर्थकरपरम्परागतमर्यादाम् ‘चरमाणे’ चगन्—आचगन्, ‘गामाणुगाम
दूइज्जमाणे’ ग्रामानुग्राम इवन्—प्रयेक ग्राम गच्छन्—क्रमप्राप्तग्राममयजन, ‘इहमागए’
इहाऽऽगत, इह=चम्पायामागत इति भाव, ‘इह संपत्ते’ इह सम्प्राप्त, इह पूर्णभटे

कोई बिना पूछे ही दूसरे से इस प्रकार कहने लगे, (एवं परबुद्धे) कोई कोई पूछे जाने
पर दूसरे से इस प्रकार कहने लगे। क्या कहने लगे ‘इसको सूत्रकार कहते हैं—
(एव खलु देवाणुप्पिया) हे देवानुप्रियो ! (समणे भगव महावीरे) श्रमण
भगवान् महावीर कि, (आङ्गरे तित्थगरे सयसंबुद्धे पुरिसुत्तमे जात्र संपाविडकामे
पुब्बाणुपुत्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागए इह संपत्ते इह समोसढे)
जो अपने शासन को अपेक्षा से धर्म के आदि कारक हैं, चतुर्विध म्घ के गत्यापक हैं,
स्वयमबुद्ध हैं, एव पुरुषों में उत्तम हैं, यावत् मोक्ष प्राप्त करने के कामी हैं, वे अन्य तीर्थ-
करों की परम्परा से आगत मर्यादा का भ्रक्षण करते हुए एव ग्रामानुग्राम विचरण करते
हुए आज यहाँ पधारे हुए हैं, यहा सम्प्राप्त हुए हैं, साधुसमाचारि के अनुसार यहाँ समवसूत

वगर न् णीण्णथी आ प्रकामे इडेवा लाज्या, (एव परबुद्धे) दोरिं दोरिं पृथवा-
पर णीण्णथी इडेवा लाज्या शु इडेवा लाज्या ? आ वातने सुत्रदार प्रकट
करे छे—(एव खलु देवाणुप्पिया) हे देवानुप्रियो (समणे भगव महावीरे) श्रमण
भगवान् महावीर (आङ्गरे तित्थगरे सयसंबुद्धे पुरिसुत्तमे जात्र संपाविडकामे
पुब्बाणुपुत्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागए इह संपत्ते इह समोसढे) जेज्यो
पोतानी श्रानननी अपेक्षाथी धर्मना आदिकारक छे, चतुर्विध सधना
सस्थापक छे, स्वयसबुद्ध छे तेभन् पुद्गोभा उत्तम छे, यावत् मोक्षप्राप्त
करवानी कामनावाला छे, तेज्यो अन्य तीर्थ दर्शनी पद पराथी ब्यासती भयो
दानु भ्रक्षण करता करता, जेव ग्रामानुग्राम विचरता विचरता ब्याजे अडी
पधाया छे अडी सम्प्राप्त थया छे, साधुसमाचारिने अनुसार अडी

जणबोले इ वा जणकलकले इ वा जणुम्मी इ वा जणुकलिया इ वा
जणसण्णिवाए इ वा; बहुजणो अणमणस्स एवमाइक्खइ, एवं
भासइ, एवं पणवेइ, एवं परूवेइ; एवं खलु देवाणुप्पिया ।

बोले इ वा 'जनानामयत्को धनिर्वा, 'जणकलकले इ वा' जनकलकलो—जनाना
व्यक्तवर्गामको नाद 'जणुम्मी इ वा' जनोर्मि = जन-माध—तरङ्गवज्जनानामुपर्युपरि समा-
गमनम्, 'जणुकलिया इ वा' जनोक्लिका वा—जनाना लघुतर समुदाय, 'जण-
सण्णिवाए इ वा' जनसन्निपात—जनाना स्पर्परूपेण मिलन भवति, तत्र—'बहुजणो'
बहुजन 'अणमणस्स एवमाइक्खइ' अन्योऽन्यमेवमाचष्ट—एकोऽपर वदति सामान्य-
रूपेण, 'एव भासइ' एव भाषते—वक्ष्यमाणप्रकारेण विशेषत कथयति 'एव पणवेइ'
प्रजापयति—अष्ट सन् कथयति 'एव परूवेइ' एव प्ररूपयति—पृष्ट सन् कथयति,

मनुष्यों का एकत्र जमघट होने लगा । (जणबोले इ वा) मनुष्यों की अव्यक्तध्वनि होने
लगी । (जणकलकले इ वा) प्रगट रूप में कहीं २ मनुष्यों का कलकल अर्थात् स्पष्ट
ध्वनि सुनाई देने लगी । (जणुम्मी इ वा) समुद्र के तरंग समान ऊपर के ऊपर लोगों के
झुड आने लगे । कहीं २ पर (जणुकलिया इ वा) सामान्य रूप से जनसमुदाय एकत्रित
हुआ । (जणसण्णिवाए इ वा) कहीं २ पर मनुष्यों का इतना अधिक सघट हुआ कि वे
सब परस्पर मे एक दूसरे से सघृष्ट होने लगे । इन सब मे (बहुजणो) अनेक मनुष्य
(अणमणस्स एवमाइक्खइ) परस्पर मे एक दूसरे से इस प्रकार सामान्यरूप मे कहने
लगे, (एव भासइ) कोई २ इस प्रकार विशेषरूप से कहने लगे, (एव पणवेइ) कोई

करवा लाग्या (जणबूहे इ वा) ओक भाषुस भीलने पूछवा लाग्या—अथवा भाषु
सोतु टोणु ओकत्र थवा लाग्यु (जणबोले इ वा) दोकोनी अव्यक्त ध्वनि थवा
लागी (जणकलकले इ वा) प्रगटरूपे कथाक कथाक मनुष्योंनी कलकल अर्थात्
स्पष्ट ध्वनि सलगावा लागी (जणुम्मी इ वा) समुद्रना भोलनी पेटे उपर-
उपर दोकोना टोणा आववा लाग्या (जणुकलिया इ वा) सामान्यरूपे जन
समुदाय ओकत्रित थये (जणसण्णिवाए इ वा) टोण कोण स्थाने मनुष्यो ओटला
ओकठा थया के ते थया परस्परमा ओक भीलनी साथे अथडावा लाग्या
आ थयाभा (बहुजणो) अनेक मनुष्य (अणमणस्स एवमाइक्खइ) परस्परमा
ओक भीलने आ प्रकारे सामान्यरूपमा उडेवा लाग्या (एव भासइ) कोण
कोण आ प्रकारे विशेषरूपमा उडेवा लाग्या, (एव पणवेइ) कोण कोण पूछवा

पुण अभिगमण-व्रंदण-णमसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ?
एगस्सवि आयरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए,
किमंग ! पुण विउलस्स अट्टस्स गहणयाए ? तं गच्छामो णं

आयुष्मन् । तेषामभिगमनन, वन्दनेन=स्तवेन, नमस्यनेन=नमस्कारेण, प्रतिप्रच्छनेन=प्रतिप्र-
श्नेन, पर्युपासनया=सेवनया पुन यत् फल भवति तत् किं वक्तव्यम्, अकथितमपि सुबुद्ध
भवतीति भाव । 'एगस्स वि आयरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए' एक-
स्यापि आचार्यस्स धार्मिकस्य सुप्रचनस्य श्रवणतया-एकस्याऽपि आचार्यस्य-आचार्यप्रोक्तस्य,
धार्मिकस्य=धर्मप्रयोजनस्य, अत एव सुप्रचनस्य=मनुष्यदेशस्य श्रवणतया=श्रवणेन महाफल भवति,
'किमंग पुण विउलस्स अट्टस्स गहणयाए' किमङ्ग ! पुनर्निर्गुल्म्यार्थस्य ग्रहणतया-यानुपदि-
ष्टस्य अर्थस्य ग्रहणेन किं वक्तव्यम्, यावत्प्रोक्तार्थग्रहणेन सर्वथा कृतार्थो भवतीति भाव । 'त'
तत्-तस्मात् खलु 'देवाणुप्पिया' इ देवानुप्रिया । 'गच्छामो' गच्छाम =तदन्तिकं व्रजाम ,

वासणयाए) इ अग-आयुष्मन् । उनके समीप जाने से, उनको वन्दना करने से-उनकी
स्तुति करने से, उन्हें नमन करने से, प्रश्न पूछने से और उनकी पर्युपासना करने से जीनों
को किम अनुपम फल की प्राप्ति न होता होगी, अर्थात् सब कुछ फल की प्राप्ति होगी,
इममे मदेह के लिये अन्यमात्र भी स्थान नहीं है । (एगस्सवि आयरियस्स धम्मियस्स
सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्टस्स गहणयाए) जब तथारूप आचार्य
अग्निहन्त भगवन्त से रहे हुए धार्मिक मनुष्यरूप एक भी वचन के सुनने से जीव महा-
फल का भागी होता है, तब ही आयुष्मन् । उनके द्वारा कथित विपुल अर्थों के ग्रहण
करने से जो फल होता है उसके विषय में तो कहना ही क्या ? (त गच्छामो ण देवा-

न्वाथी, तेमने वहना उवाथी, तेमनी स्तुति उरवाथी, तेमने नमस्कार कर
वाथी, तेमने प्रश्न पूछवाथी तथा तेमनी पर्युपासना उरवाथी उच्येने क्या
अनुपम फलकी प्राप्ति न थर्ध थडे ? अर्थात् सर्व फलकी प्राप्ति थडे
येमा न देहे भाटे अल्पमात्र पणु स्थान नथी (एगस्स वि आयरियस्स धम्मिय-
स्स सुवयणस्स सवणयाए किमंग पुण विउलस्स अट्टस्स गहणयाए) अर्थात् तथाइप
अग्निहन्त भगवन्त तद्गृथी उडेवाभा अवता धार्मिक मनुष्यरूप अके पणु
वचनने नाभजवाथी एव महाफलना लागी वाय हे त्थारे हे आयुष्मन् ।
तेमना द्वारा उडेवाभा अवता विपुल अर्थोनु ब्रह्मणु उरवाथी वे फल थाय
हे ते विषयमा तो उडेवातु अ शु ? (त गच्छामो ण देवाणुप्पिया) भाटे हे

पुण्णभदे चेइए अहापडिरुवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा
अप्पाणं भावेमाणे विहरइ । तं महप्फलं खलु भो देवाणुप्पिया ।
तहारूवाणं अरहंताणं णामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग

सप्राप्त इति भाव , ' इह समोसदे ' इह समससुत , सायुक्कय्यायप्रहे समससुत इति भाव ,
तदेवाह—' इहेव चपाए णयरीए ' इयादि, इहैव चपाया नगर्यां , ' वहिं ' वहि -रति-
भवे प्रदेशे , ' पुण्णभदे चेइए ' पूर्णभदे चैये—पूर्णभद्रनामक उद्याने , ' अहापडिरुव उग्गह
उग्गिण्हित्ता ' यथाप्रतिरूपमउग्रहमवगृह्य—पयमानुकूलमाचामस्थान याचिवा , ' संजमेण
तरसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ ' नयमेन तपमाऽऽमान भावयन् विहरति ।

' तं महप्फलं खलु भो देवाणुप्पिया ! ' तन्महत्फलं गच्छ भो देवानुप्रिया !
' तहारूवाणं अरहंताणं भगवताणं णामगोत्तस्सपि सवणयाए ' तथारूपसामर्थता भग
वता नामगोत्रयोरपि श्रवणतया—तादृशाना सर्वातिशयवता भगवता तीर्थद्वाराणा नामगोत्रश्रव-
णेनापि महत्फलं भवति , ' किमंग पुण अभिगमण—वदण—णमसण—पडिपुच्छण—पज्जु-
वासणयाए ' किमङ्ग पुनरभिगमन—वन्दन—नमस्सन—प्रतिप्रच्छन—पर्युपासनया—हे अङ्ग !—हे

हुए हैं, और (इहेव चपाए णयरीए वहिं पुण्णभदे चेइए अहापडिरुव उग्गह उग्गि-
ण्हित्ता संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ) इस चम्पा नगरी के राह
पूर्णभद्र उदद्यान में ठहरने के लिये वनपाल को आज्ञा लेकर मयम एवं तप से अपनी आत्मा
को भावित करते हुए विचार रहे हैं । इसलिये (भो देवाणुप्पिया) हे देवानुप्रिय ! जत्र
(तहारूवाण अरहताण भगवताणं णामगोयस्स वि सवणयाए) तथारूप सर्वातिशय-
मपन्न भगवान् तीर्थरुद्रों के नाम एवं गोत्र के श्रवण से भो (महप्फल) जीवों को महाफल
प्राप्त होना है, तत्र (किमंग ! पुण अभिगमण—वदण—णमसण—पडिपुच्छण—पज्जु-

सभवसत तथा छे तथा तेथो (इहेव चपाणयरीए वहिं पुण्णभदे चेइए अहापडि-
रुव उग्गह उग्गिण्हित्ता संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ) आ अ पानुगरीनी
णडारि पूळुलद उद्यानमा उत्तरवा भाटे वनपालनी आज्ञा लधने सयम तेमज
तपथी चोताना आत्माने भावित करता विचरे छे आ भाटे (भो देवाणुप्पिया)
हे देवानुप्रिय ! न्यारे (तहारूवाण अरहताण भगवताणं णामगोयस्सवि सवणयाए)
तथाइप सर्वातिशयसपन्न भगवान् तीर्थ ठरेना नाम तेमज गोत्रना श्रवणुथी
पञ्च (महप्फल) एवमे मडाइल प्राप्त थाय छे, तथाछे (किमंग पुण अभिगमण-
वदण—णमसण—पडिपुच्छण—पज्जुवासणयाए) छे अ ग—आयुधमन् ! तेभना सभीप

आणुगामियत्ताए भविस्सइ-त्ति कट्टु वहवे उग्गा उग्गपुत्ता भोगा भोगपुत्ता, एवं दुपडोयारेणं राइण्णा खत्तिया माहणा भडा जोहा

हिताय=जीवनादिनिवाहाय, 'सुहाए' सुराया=भोगसंपादानन्दाय, 'खमाए' क्षमाय=समुचितसुखसामर्थ्याय, 'गिस्सेयसाए' नि श्रेयसाय=भाग्योदयाय, 'आणुगामियत्ताए' आणुगामिकृतार्थै=अनुगमनशीलत्वेन भगवत्परम्पराऽनुसन्धिमुख्याय मन्त्रिभ्यति । 'त्तिकट्टु' इति कृत्वा इति=एव कृत्वा=आख्यान भाषण प्रज्ञापना प्ररूपणा च अन्योऽन्य कृत्वा 'वहवे' बहव, 'उग्गा उग्गपुत्ता' उग्र उग्रपुत्रा, तत्र-उग्र-आदिदेवाऽस्थापिता रक्षकवज्रा, उग्रपुत्रा-त एव कुमारवस्थासम्पन्ना, 'भोगा भोगपुत्ता' भोगा-भोगपुत्रा-भोगा=आदिदेवावस्थापिता गुरुवज्रा, भोगपुत्रा-त एव कुमारवस्थासम्पन्ना, 'एवं दुपडोयारेणं' एव द्विपदोच्चारणेन-ते च तत्पुत्राश्चेति द्विवारोच्चारणेन 'राइण्णा' राज-या-भगवत्त्वयस्यपुत्रा, राजन्यपुत्रा-राज-आनन्द प्राप्ति के लिये (खमाए) समुचित सुख देने के लिये (गिस्सेयसाए) नि श्रेयस अर्थात् भाग्योदय के लिये, तथा (आणुगामियत्ताए) जन्म-जन्मान्तर में सुख देने के लिये (भविस्सइ) होगा, (त्तिकट्टु) इस प्रकार विचार कर (वहवे) बहुत से (उग्गा) भगवान् आदिनाथ प्रभु द्वारा स्थापित रक्षकवज्र में उत्पन्न 'उग्र' कहलाते हैं, ऐसे उग्रपुत्रा लोग, और (उग्गपुत्ता) उन उग्रवर्गीय लोगों के पुत्र, तथा बहुत से (भोगा) भगवान् आदिनाथ प्रभु द्वारा स्थापित गुरुवज्र में उत्पन्न 'भोग' कहलाते हैं, ऐसे भोगवर्गीय लोग और (भोग-पुत्ता) उन भोगवर्गीय लोगों के पुत्र, (एव दुपडोयारेणं) इसी तरह आगे के पदों का भी दुवार उच्चारण करना चाहिये, जैसे-'राइण्णा राइण्णपुत्ता' इत्यादि । तथा-बहुत से (राइण्णा) राजन्य-अर्थात् भगवान् आदिनाथ के मित्रों के वंशज एव उनके पुत्र, (खत्तिया)

भाटे, (सुहाए) सुभ भाटे अर्थात् लोगजनित आनन्द प्राप्ति भाटे, (खमाए) समुचित सुख देवा भाटे (गिस्सेयसाए) निश्रेयस् अर्थात् लाभ्योदयने भाटे, तथा (आणुगामियत्ताए) जन्म-जन्मान्तरभा सुभ देवा भाटे (भविस्सइ) धरो. (त्तिकट्टु) आ प्रकारे विचार करीने (वहवे) धरु लोके (उग्गा) भगवान् आदिनाथ प्रभु द्वारा स्थापित रक्षकवज्रमा उत्पन्न 'उग्र' कहेवाय छे, जेवा उग्रवर्गीय लोक, तथा (उग्गपुत्ता) ते उग्रवर्गीय लोकाना पुत्र, (भोगा) भगवान् आदिनाथ प्रभु द्वारा स्थापित गुरुवज्रमा उत्पन्न 'भोग' कहेवाय छे, जेवा भोगवर्गीय लोक, तथा (भोगपुत्ता) ते भोगवर्गीय लोकाना पुत्र, (एव दुपडोयारेणं) जे रीते आगणना पढोना पणु णीलवार उच्चारणु करवु जेधये, जेभके-"राइण्णा, राइण्णपुत्ता" इत्यादि, तथा धरु (राइण्णा) राजन्य-अर्थात् भगवान् आदिनाथना मित्राना वंशज जेव तेभना पुत्र, (खत्तिया) क्षत्रिय

देवानुप्पिया । समणं भगवं महावीरं वंदामो णमंसामो सक्कारेमो
सम्माणेमो कल्लणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासामो ।
एयं णे इहभवे पेच्चभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए

‘समणं भगव महावीरं वंदामो’ श्रमण भगवत् महावीर वन्दामहे—स्तुम गुणगानेन,
‘णमंसामो’ नमस्कृर्म पश्चाद्गनमनन, ‘सक्कारेमो’ सजुर्म अम्युथानादिना, ‘समाणेमो’
सम्मानयाम—परमादेग—भक्तिवहुमानेनेत्यर्थ, ‘कल्लणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं
पज्जुवासामो’ कन्याण मङ्गल दैवत चैय विनयेन पर्युपासमहे—कन्याण=कन्याणप्राप्तिकारणम्,
मङ्गल=दुरितदूरीकरणकारणम्, दैवत=देवोचितप्रभावोपचितम्, चैय=केवलज्ञानयुक्तं—चित्त-
प्रसादहेतु वा एतादृश भगवन्त पर्युपासमहे=विनयेन सेवामहे, ‘एयं णे’ एतन्न—एतद्=भग-
वद्वन्दनादि, न—अस्माकम्, ‘इहभवे पेच्चभवे य’ इहभवे प्रेयमवे—परमवे च ‘हियाए’

पुप्पिया) इसलिये हे देवानुप्रिय ! उनके पास अपने चले, वहा जाकर (समण भगव
महावीर) श्रमण भगवान् महावीर को (वंदामो) वन्दना करें अर्थात् उनका गुणगान
करे । (णमंसामो) पचाग—नमन—पूर्वक नमस्कार करें । (सक्कारेमो) अम्युथानादिक
क्रियाओं द्वारा उनका सत्कार करे । (समाणेमो) भक्ति बहुमान के साथ उनका सम्मान
करे । (कल्लणं) कन्याण प्राप्ति के कारणभूत, (मंगलं) पापों को दूर करने के लिये
निमित्तरूप, (देवयं) देवाधिदेव के प्रभाव से युक्त, (चेइयं) केवलज्ञान युक्त, ऐसे श्री भग-
वान् महावीर स्वामी को (विणएणं) विनयपूर्वक (पज्जुवासामो) सेवा करें । (एयं णे
इहभवे पेच्चभवे य) यह भगवान का वन्दन और नमस्कार आदि इस भव मे और पर-
भव में (हियाए) आजीवन कन्याण के लिये (सुहाए) सुख के लिये अर्थात् भोगजनित

देवानुप्रिय ! तेमनी पासे आपणु ज्धञ्जे, त्या ज्धने (समणं भगव महावीर)
श्रमणु लगवान भडावीरने (वंदामो) वदना करीञ्जे अर्थात् तेमना गुणुगान करीञ्जे
(णमंसामो) पचाग—नमनपूर्वक नमस्कार करीञ्जे (सक्कारेमो) अम्युथान आदि
क्रियाञ्जे द्वारा तेमने सत्कार करीञ्जे (समाणेमो) लदित बहुमान साथे
तेमनु सम्मान करीञ्जे (कल्लणं) कल्याणु प्राप्तिना कारणभूत, (मंगलं) पापोंने
नाश करवा भाटे निमित्तरूप, (देवयं) देवाधिदेवना प्रभावधी युक्त, (चेइयं)
केवलज्ञान युक्त, जेवा श्री लगवान भडावीर स्वामीनी (विणएणं) विनयपूर्वक
(पज्जुवासामो) सेवा करीञ्जे (एयं णे इहभवे पेच्चभवे य) आ लगवानने वदना
तथा नमस्कार आदि आ लवभा तथा परलवभा (हियाए) आजीवन कल्याणु

यद्वा-बहुकुट्टमुच्यते, इत्या-उभो हस्ती, तप्रमाण द्रव्यमर्हन्तीति तथा, ते च जघन्यमध्यमो कृष्टभेदात् त्रिप्रकारास्तत्र हस्तिपरिमितमगिमुक्ताप्रवालसुवर्णरजतादिद्रव्यराशि-स्वामिनो जघन्या, हस्तिपरिमितवज्रहीरकमगिमाणिक्यगणिस्वामिनो मध्यमा, हस्तिपरि-मितकेवलवज्रहीरकगणिस्वामिन उच्यते, हस्तिप्रमाणोच्छ्रितधनगणिस्वामिन उच्यते इत्यर्थः । श्रेष्ठिणः = लक्ष्मीकृपाकटाक्षप्रत्यक्षलक्ष्यमाणद्रविणलक्षलक्षणविलक्षणहिरण्यपट्टसमलङ्कृतमूर्धानो नगरप्रधानन्यग्रहतांग, सेनापतय = चतुरङ्गसेन्यनायका, सार्थवाहा = गणिम-धरिम-मेय-

हस्ति प्रमाण द्रव्यमपल धनिक जन, ये जघन्य, मध्यम एव उच्यते के भेद से ३ प्रकार के होने हैं, इनमें जिनके पास हस्तिप्रमाणपरिमित मगि, मुक्ता, प्रवाल, सुवर्ण एव रजत आदि द्रव्य की राशि होता है वे जघन्य इत्यर्थ हैं, जिनके पास हस्तिप्रमाण परिमित वज्र हीर, मगि, माणिक्य की राशि होती है वे मध्यम इत्यर्थ हैं, परन्तु जिनके पास केवल हस्ति-प्रमाण-परिमित वज्र हीर की राशि होती है वे उच्यते इत्यर्थ हैं । श्रेष्ठी-लक्ष्मी की जिन पर पूरी २ कृपा हो, उस कृपाकोरके कारण जिनके लक्षणों के गजाने हों, तथा जिनके शिर पर उन्हीं को मंचित करने वाला चान्डी का विलक्षण पट्ट शोभायमान हो रहा हो, जो नगर क प्रधान व्यापारी हों, उन्हें श्रेष्ठी कहते हैं, ऐसे श्रेष्ठी जन, सेनापति=चतुरङ्ग सेना के नायक, सार्थवाह-जो गणिम=गिन कर खरीदने-वेचने योग्य नारियल, सुपारी, केला आदि वस्तुओं को, धरिम=तौलकर खरीदने-वेचने योग्य धान, जौ, नमक, गन्धक आदि वस्तुओं को, मेय=सरावा, आदि छोटे वर्तन आदि से माप कर खरीदने वेचन योग्य दूध,

पाणा, ध्वज-हस्ति-प्रमाण-द्रव्य-मपल धनिक जनो, आ जघन्य, मध्यम तेमज उच्यते लक्ष्मी उ प्रकारना होय छे तेमा जेमनी पास हस्तिप्रमाण-परिमित मगि, मुक्ता, प्रवाल, सुवर्ण तेमज आदि आदि द्रव्यना ढगला होय ते जघन्य ध्वज छे, जेनी पास हस्तिप्रमाणपरिमित वज्र, हीरा, मगि, माणिक्यना ढगला होय ते मध्यम ध्वज छे परतु जेमनी पास केवल हस्ति प्रमाणपरिमित वज्र हीराना ढगला होय ते उच्यते ध्वज जन छे श्रेष्ठी-लक्ष्मीनी जेमना पर पुण्येपुगी कृपा होय, ते कृपाना कारणे जेना लापोना जन्तना होय तथा जेमना भाथा उपर तेनु सूच्यन उवावाणा आदीना विलक्षण पट्ट (पाघडी) शोभा उड़ी होय, जे नगरना मुख्य व्यापारी होय तेमने श्रेष्ठी उहोवाय छे जेवा श्रेष्ठीजन, सेनापति-चतुरंग सेनाना नायक, सार्थवाह-जे गणिम=गणुतरी ढगीने अरीहाय तथा वेचय तेने योग्य नारियल, मोपारी, केला आदि वस्तुओं, धरिम=तौलीने अरीहाय, वेचवा योग्य धान, जौ, नमक, गन्धक आदि वस्तुओं, मेय=पावणु जे उगे जेवा नाना वस्तुध्वज

पसत्थारो मल्लई लेच्छई लेच्छइपुत्ता अण्णे य वहवे राई-सर-
तलवर-माडविय-कोडुंविय-डम्भ-सेट्टि-सेणावड-सत्थवाह-

न्यकुमाराध, 'स्वत्तिया' क्षत्रिया, क्षत्रियकुमाराध, 'माहणा' ब्राह्मणा, ब्राह्मणकुमागध, 'भडा' भटा-भटकुमाराध, 'जोहा' योधा-युद्धव्यवसायवन्त, तेपा कुमाराध, 'पसत्थारो' प्रजास्ता-धर्मशास्त्रपाठका, तेपा पुत्राध, 'मल्लई' मल्लकिन् = विगिष्टक्षत्रियजातीया, तेपा पुत्राध, 'लेच्छई' लेच्छकिन्-क्षत्रियजातिभेदवन्त, 'लेच्छइपुत्ता' लेच्छकिपुत्रा, 'अण्णे य वहवे' अये च वहव 'राई-सर-तलवर-माडविय-कोडुंविय-डम्भ-सेट्टि-सेणावड-सत्थवाह-प्पभिडओ' राजे-धर-तलवर-माडम्बिक-कौटुम्बिके-भ्य-श्रेष्ठि-सेनापति-सार्वनाह-प्रभृतय, तत्र-राजानो=माण्डलिका नरपतय, ईश्वरा = ऐश्वर्यनपन्ना युवराजा, तत्रग = तुष्ट-भूपालदत्तपट्टवन्धपरिभूषिता राजकृपा, माडम्बिका = ग्रामपञ्चशतीपतय, यदा-सार्धकोशद्वय-परिमितप्रान्तरैर्विच्छिद्य विच्छिद्य स्थिताना ग्रामाणामधिपतय, कौटुम्बिका = कुटुम्भभरणे तपरा,

क्षत्रिय और उनके पुत्र, (माहणा) ब्राह्मण और ब्राह्मणपुत्र, (भडा) भट और भटपुत्र, (जोहा) योधा-युद्ध के व्यवसायवाले व्यक्ति और उनके पुत्र, (पसत्थारो) धर्मशास्त्रपाठक और उनके पुत्र, (मल्लई) - मल्लकी-मल्लकि जाति के क्षत्रिय और उनके पुत्र, (लेच्छई) लेच्छकी-लेच्छकी जाति के क्षत्रिय और (लेच्छइपुत्ता) लेच्छकियों के पुत्र, तथा और भी बहुत से (राई-सर-तलवर-माडविय-कोडुविय-डम्भ-सेट्टि-सेणावड-सत्थवाह-प्पभिडओ) राजा-माडलिक नृपति, ईश्वर-ऐश्वर्यनपन्न युवराज, तलवर-मनुष्ट हुए नृपतिद्वारा प्रदत्त पट्टवध से परिभूषित राजा जैसे विगिष्ट व्यक्ति, माडम्बिक-पाचसौ गाव के अधिपति, अथवा ढाई २ कोस पर बसे हुए ग्रामों के स्वामी, कौटुम्बिक-अपने-कुटुम्ब का भरण-पोषण करने वाले, अथवा-बहुत कुटुम्ब का पालनपोषण करने वाले, इभ्य

तथा तेभना पुत्र, (माहणा) ब्राह्मण तथा ब्राह्मणपुत्र, (भडा) लट तथा लट-पुत्र, (जोहा) योधा-युद्धमा व्यवसायवाला लोक तथा तेभना पुत्र, (पसत्थारो) धर्मशास्त्रपाठक तथा तेभना पुत्र, (मल्लई) मल्ल-मल्लजातिना क्षत्रिय अने तेना पुत्र, (लेच्छई) लेच्छकी-लेच्छकी जातिना क्षत्रिय तथा (लेच्छइपुत्ता) लेच्छकिज्योना पुत्र तथा भील पण्ण धणा (राई-सर-तलवर-माडविय-कोडुविय-डम्भ-सेट्टि-सेणावड-सत्थवाह-प्पभिडओ) राजा-माडलिक नृपति, ईश्वर-ऐश्वर्य-सपन्न युवराज, तलवर-सतोष पाभेला नृपति द्वारा प्रदत्त पट्टवधयी परिभूषित राजा जेवा विगिष्ट लोक, माडम्बिक-पाचसौ गाभना अधिपति, अथवा अही २ कोस पर बसेला गाभोना स्वामी, कौटुम्बिक-पोताना कुटुम्भना लरण-पोषण करवावाणा, अथवा धणा उट्टेणना पालन पोषण करवा

गइया अट्टविणिच्छयहेउ अस्सुयाडं सुणेस्सामो सुयाइं निस्सं-
कियाडं करिस्सामो, अप्पेगइया अट्टाईं हेऊडं कारणाडं वागर-
णाडं पुच्छिस्सामो, अप्पेगइया सव्वओ समंता मुंडे भवित्ता

अपूर्वदृष्टदर्शनार्थमित्यर्थः । 'अप्पेगइया' अच्येकके-केचित् 'अट्ट-विणिच्छय-हेउ'
अर्थविनिश्चयहेतु-अर्थाना=जीवाजावादिभावाना यत् स्वरूप तस्य विनिश्चयो हतुर्यस्मिस्तत्,
जीवाजीवादिस्वरूपविनिश्चयार्थमित्यर्थः, 'अस्सुयाट्' अथुतानि आगमरहस्यानि, 'सुणेस्सामो'
श्रोष्याम इत्याशया, 'सुयाइं निस्संक्रियाइं करिस्सामो' भुनानि निःशब्दितानि करिष्याम -
इत्याशया, 'अप्पेगइया' अच्येकके-केचित्-अट्टाईं हेऊड कारणाइ वागरणाइं'
अर्थान हेतून् कारणानि व्याकरणाणि, तत्र-अर्थान्-जीवाजीवादिनरतत्त्वरूपान
भावान्, हतून् - जीवादिस्वरूपसाधकान्, कारणानि=अन्यथानुपपत्तिमात्ररूपाणि
व्याकरणानि=परप्रथार्थोत्तररूपाणि 'पुच्छिस्सामो' प्रक्ष्याम, 'अप्पेगइया' अच्येकके,
'सव्वओ समंता मुंडे भवित्ता' सर्वत समन्ताद् मुण्डा भूया-सर्वत सावधान्यापार-

(अप्पेगइया) कितनेक (अट्टविणिच्छयहेउं) जीव अजीव-आदि पदार्थों के स्वरूप
को निश्चय करने के लिये, तथा (अस्सुयाट् सुणेस्सामो) आगम के रहस्य जो पहिले
कभी सुनने में नहीं आये हे उन्हें सुनेगे, और (सुयाइ निस्सक्रियाइ करिस्सामो) जो
आगम के रहस्य सुने है उन्हें शक्य रहित करेंगे इस प्रकार की भावना से, (अप्पेगइया)
और कितनेक (अट्टाईं हेऊड कारणाइ वागरणाइ पुच्छिस्सामो) जाव अजीव आदि नव
तत्त्वरूप भावों को, जीवादिक के स्वरूप के माधकरूप हतुओं को, अन्यथानुपपत्तिरूप कारणों
को, एवं पर के द्वारा पूछे गये अर्थ के उत्तररूप व्याकरण को पूछेग इस प्रकार की भावना
से, (अप्पेगइया) कितनेक (सव्वओ समंता मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारिय पव्व-

नद्धि तेथी तेभने जेवा भाटे, (अप्पेगइया) डेटलाड (अट्टविणिच्छयहेउ)
एव-अएव आदि पदार्थोंना स्वरूपनो निश्चय कव्याने भाटे तथा (अस्सुयाइ
सुणेस्सामो) आगमना उदस्य जे पडेला डदी मालज्या नडेता ते मालज्यु,
तथा (सुयाइ निस्सक्रियाइ करिस्सामो) जे आगमनु उदस्य मालज्यु ते तेने
शुकारडित कज्यु जे प्रकारनी भावनाथी, (अप्पेगइया) तथा डेटलाड (अट्टाइ
हेऊड कारणाइ वागरणाइ पुच्छिस्सामो) एव अएव आदि नवतत्त्वरूप लावेने,
एव आदिकना स्वरूपना साधउउप हेतुज्जोने, अन्यथानुपपत्ति रूप कारण्णोने तेभज्ज
भीज्ज द्वारा पूछाता अर्थना उत्तररूप व्याकरणुने पूछ्यु-जे प्रकारनी भाव
नाथी, (अप्पेगइया) डेटलाड (सव्वओ समंता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगा

पुष्पभिङ्गो अप्पेगइया वंदणवत्तियं अप्पेगइया पूयणवत्तियं एव
सक्कारवत्तियं सम्माणवत्तियं दंसणवत्तियं कोऊहलवत्तियं, अप्पे-

परिच्छेद्यरूपकेयविकेयवस्तुजातमादाय लभेच्छया देशान्तराणि व्रजता सार्यं चाहयन्ति=योग-
क्षेमाभ्या परिपालयन्तीति, दीनजनोपकाराय मूल्येन दत्त्वा तान समर्पयन्तीति तथा, एत-
त्प्रभृतय, एषु—‘अप्पेगइया’ अप्येकके—केचित्—‘वन्दणवत्तियं’ वन्दनवृत्तिकम्—वन्दनाय
वृत्ति = प्रवृत्तिर्यस्मिन् कर्मणि तत् तथा, क्रियानिशेषणमिदं, वन्दनार्थमियर्थ, ‘अप्पेगइया’
अप्येकके—केचित् ‘पूयणवत्तियं’ पूजनवृत्तिकम्—सेवाकरणार्थम्, ‘सक्कारवत्तियं’
सक्कारवृत्तिकम्—सत्कारार्थम्, ‘सम्माणवत्तियं’ सम्मानवृत्तिकम्—सम्मानार्थम्, ‘दंसण-
वत्तियं’ दर्शनवृत्तिकम्—दर्शनार्थम्, ‘कोऊहलवत्तियं’ कौतूहलवृत्तिकम्—कौतूहलार्थम्—

घी, तेल आदि वस्तुओं को, तथा—परिच्छेद्य=कसौटी आदि पर परीक्षा करके खरीदने के लिये
योग्य मणि, मोती, मूगा, गहना आदि वस्तुओं को लेकर नफा के लिये देशान्तर में जाने
वाले सार्य (समूह) को ले जाते हैं, तथा योग (नवी वस्तु की प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्त
वस्तु की रक्षा) के द्वारा उनका पालन करते हैं, गरीबों की मलाई के लिये उन्हें पूँजी
देकर व्यापार द्वारा उन्हें धनवान बनाते हैं, वे सार्थवाह कहलाते हैं, ऐसे सार्थवाह लोग,
इनमें से—(अप्पेगइया) कितनेक (वंदणवत्तियं) वन्दना करने के लिये (अप्पेगइया) कित-
नेक (पूयणवत्तियं) सेवा करने के लिये, (एव) इसी तरह (सक्कारवत्तियं) सत्कार करने
के लिये, (सम्माणवत्तियं) सम्मान करने के लिये, (दंसणवत्तियं) दर्शन करने के लिये,
(कोऊहलवत्तियं) पहिले कभी भी भगवान को नहीं देखे थे, अत उनको देखने के लिये,

भाषीने भरीदवा वेचवा येज्य इध, घी, तेल आदि वस्तुओं तथा परिच्छेद्य
=कसौटी आदि उपर परीक्षा करीने भरीदवा वेचवा येज्य भण्डि, भोती,
परवाणा, धरेषु आदि वस्तुओं लधने नक्षे करवा भाटे देशातरमा ज्वावाणा
सार्य (समूह)ने लध जय छे, तथा योग (नवी वस्तुनी प्राप्ति) अने क्षेम
(प्राप्त वस्तुनी रक्षा) द्वारा तेमस्तु पालन करे छे, गरीबाना लला भाटे तेमने
पुछ धने व्यापार द्वारा धनवान बनावे छे ते सार्थवाह कहलाय छे जेवा
जेवा सार्थवाह लोक, जेमाना (अप्पेगइया) केटलाक (वंदणवत्तियं) वन्दना करवा
भाटे (अप्पेगइया) केटलाक (पूयणवत्तियं) सेवा करवा भाटे, (एव) जेवी रीते
(सक्कारवत्तियं) सत्कार करवा भाटे (सम्माणवत्तियं) सम्मान करवा भाटे (दंसण-
वत्तियं) दर्शन करवा भाटे (कोऊहलवत्तियं) पहिले कभी पक्ष भगवानने जेयेक्षा

पायच्छ्रुता, सिरसा कंठे मालकडा आविद्ध-मणि-सुवर्णा कल्पिय-
हार-द्धार-तिसर-पालत्र-पलत्रमाण-कटिसुत्त-सुकय-सोहा-
भरणा पवर-वत्थ-परिहिया चंदणो-ल्लित्त-गाय-सरीरा, अप्पे-

कृत कौतुक=मपीपुण्डादिक, मङ्गल-दध्यक्षतादि, एतद्वय प्रायश्चित्त तु स्वप्नादिप्रगमन-
त्वेनावग्यकरणाय चाद् धेते तथा, कौतुकमङ्गलरूप प्रायश्चित्त कृतवन्त इत्यर्थ । 'सिरसा
कंठे मालकडा' शिरसि कंठे कृतमाला 'आविद्ध-मणि-सुवर्णा' आविद्ध-मणि-
सुवर्णा-परिभृतमणिकनकमूपगा, भूषणान्येव नामभिर्निर्दिशति-'कल्पिय-हार-द्धार-
तिसर-पालत्र-पलत्रमाण-कटिसुत्त-सुकय-सोहाभरणा' कल्पित-हारा-सर्द्धहार-तिसर-
प्रालम्बप्रलम्बमान-कटिमूत्र-सुकृत-शोभाऽऽभरणा, तत्र-हार अर्द्धहार तिसरकश्च प्रसिद्ध,
तथा प्रालम्ब = झुम्पनक स एव प्रलम्बमान यत्र तत् कटिमूत्र च तानि सुकृतशोभानि आभरणानि
कल्पितानि-रूतानि यैस्ते तथा, विप्रिभूषणभृतिगरीग इत्यर्थ, तथा-'पवर-वत्थ-
परिहिया' प्रवग्बलपग्हिता-श्रेष्ठप्रयधारका, 'चंदणो-ल्लित्त-गाय-सरीरा' चन्दनो-ल्लित्त-
गाय-गरीरा-चन्दनचचित्तगगग । 'अप्पेगइया' अव्यक्के-'हयगया एव गयगया रहगया

मपानिकरु दधि अक्षत आदि धारण क्रिये, (सिरसा कंठे मालकडा आविद्ध-मणि-सुव-
र्णा) मस्तक एव कठ म मागार्ण धारण क्रिये, जिनमें मणि जडे हुए हैं ऐसे सुवर्णों के
आभूषण पहिन, तथा (कल्पिय-हार-द्धार-तिसर-पालत्र-पलत्रमाण-कटिसुत्त-सुकय-
सोहा भरणा) शरीरशोभावर्द्धक अठारह लर के हार, ९ लर के अर्धहार, तीन लर के
तिसरक, और नीचे का ओर लटकते हुए झूमके वाले कटिमूत्र पहिरे, (पवर-वत्थ-परि-
हिया) अच्छे २ सुन्दर बहुमूल्य वस्त्र पहिरे, (चंदणो-ल्लित्त-गाय सरीरा) शरीर पर
चन्दन लगाये, जम इस प्रकार वहाँ को जनता सज-धज कर तैयार हो चुकी तब उसमें से
(अप्पेगइया) किन्तेक (चउने के लिये), (हयगया) घोड़ों पर सवार हुए, (एव गयगया)

मालकडा आविद्ध मणि-सुवर्णा) मस्तक तेमज कठमा मालाओ धारण करी,
जेमा मणि जडेला डोथ ओवा सुवर्णना आभूषण पडेयां, तथा (कल्पिय हार-द्धार-
हार-तिसर-पालत्र-पलत्रमाण-कटिसुत्त-सुकय-सोहाभरणा) शरीरशोभावर्द्धक अठार
१० (लट)ना डार, ९ मना अर्धडार, त्रण सरना डार, नीचेनी तरङ्ग
लटकता नूमआवाणा कटिसूत्र पडेयां, (पवर-वत्थ-परिहिया) सारा सारा
सुन्दर बहुमूल्य वस्त्रो पडेयां, (चंदणो-ल्लित्त-गाय सरीरा) शरीर पर
चन्दन लगाव्यु न्यारे आ प्रडारे त्यागी जनता मल्लधरने तैयार थर्ध
गर्ध त्यारे तेमावी (अप्पेगइया) उटलाड थालवा भाटे (हयगया) घोडा थ

अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामो, [अप्पेगइया] पंचाणुव्वइयं
सत्तसिस्सवावडयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामो, अप्पे-
गइया जीयमेयंति कट्टु, ण्हाया कयवलिकम्मा कय-कोउय-मंगल-

विरतिपूर्वक मुण्डिता - वृत्तकशुद्धिना सम्पद्य 'अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामो' अण-
राट्=गृहाद् अनगारिकता=साधुच प्रव्रजिष्याम =प्राप्त्याम -अनगारा भविष्याम, 'अप्पेगइया'
अप्येकके 'पचाणुव्वइयं सत्तसिस्सवावडयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामो' वृत्त-
पचानुव्रतिक मतशिक्षाव्रतिक द्वादशविध गृहिधर्मं प्रव्रजिष्याम, 'अप्पेगइया' अप्येकके-

'जिण-भत्ति-रागेण' जिनभक्तिरागेण, 'अप्पेगइया' अप्येकके, 'जीयमेयंति कट्टु'
जातमेतदिति कृत्वा-कुलाचारोऽयमिति मत्वा, 'ण्हाया' स्नाता - 'कयवलिकम्मा' वृत्त-
बलिन्माग, 'कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता' उत-कौतुक-मङ्गल-प्रायश्चित्ता -

इस्सामो) सावध व्यापारा से सर्वथा विरत होकर, कथलचनपूर्वक गार्हस्थ्यिक अवस्था का
परित्याग कर अनगार वनेग-इस प्रकार की भावना से, तथा कितनक-(पचाणुव्वइयं

सिचसिस्सवावडयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामो) पाच अनुव्रत एव सात शिक्षा-
व्रत के भेद से १२ भेदरूप गृहस्थ के धर्म को स्वीकार करेग-इस भावना से, (अप्पे-

गइया) कितनेक (जिणभत्तिरागेण) जिनद्व की भक्ति करेंगे इस प्रकार भक्ति के अनु-
राग से, (अप्पेगइया,) कितनेक (जीयमेयंति कट्टु) यह हम लोगों का कुलाचार है-इस

प्रकार मान कर, (ण्हाया) स्नान किये, (कयवलिकम्मा) काक आदि को अन्नादि दान
रूप वलिकर्म किये, (कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता) दुःस्वप्नादि निवारण के लिये

रिय पव्वइस्सामो) सावध व्यापारोधी सर्वथा विरत थधने केशलु यनपूर्वक
गार्हस्थ्यिक अवस्थानो परित्याग करीने अनगार अनशु-ओ प्रकान्ती भाव
नाधी, तथा उटलाड (पचाणुव्वइयं सत्तसिस्सवावडयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडि-

वज्जिस्सामो) पाच अणुव्रत तेभव मात शिक्षाव्रतना वेदधी १० वेद ३५
गृहस्थना धर्मनो स्वीकार उशु ओपी भावनायी, (अप्पेगइया) उटलाड

(जिणभत्तिरागेण) जिनेन्द्रनी भक्ति उशु ओ प्रकान्ती भक्तिना अनुगगधी,
(अप्पेगइया) उटलाड (जीयमेयंति कट्टु) आ अभारो कुलाचार उ-ओ प्रक

रनी मान्यताधी, (ण्हाया) स्नान करी (कय-वलिकम्मा) दानदा आदिने
अन्न आदि दानउप बलिउर्म करी, (कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता) उ स्वप्नादि

निवारणने भाटे भसी तिलक हड्डी योभा आदि धारण करी, (सिरसा कटे

मज्झेणं णिग्गच्छंति, णिग्गच्छित्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेडए तेणेव
उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूर-
सामंते छत्ताईए तित्थयराइसेसे पासंति, पासित्ता जाणवाहणाइं
ठवेंति, ठवित्ता जाणवाहणेहिंतो पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता जेणेव

चम्पानगर महाकोलाहलमयां कुर्वत, 'चंपाए णयरीए' चम्पायानगया 'मज्झ-मज्झेण'
मध्यमव्येन-मर्मतो मध्यमार्गेण 'णिग्गच्छति' निर्गच्छन्ति, 'णिग्गच्छित्ता' निर्गय 'जेणेव पुण्ण-
भद्दे चेडए' यत्रैव पूर्णमद्र चैयम्, 'तेणेव उवागच्छति' तत्रैवोपागच्छन्ति, 'उवागच्छित्ता'
उवागय, 'समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामते' श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य
अदूरसमीप- 'उत्ताईए तित्थयराइसेसे पासति' उत्रादान तीर्थरुगतियेषान्-तीर्थरुगतिय-
द्योतकानि कानिचिच्छ्रादीनि चिह्नानि पश्यन्ति, 'पासित्ता' वृद्धा 'जाणवा-
हणाइं ठवेंति' यानवाहनानि स्थापयन्ति, 'ठवित्ता' स्थापयित्वा 'जाणवाहणेहिंतो

मित महाममुद्र के महाध्वनि से मानो युक्त करते हुए, (चंपाए णयरीए) उम चंपा नगर।
क (मज्झमज्झेण) ठीक बीचो बीच के मार्गसे (णिग्गच्छति) निकले, (णिग्गच्छित्ता)
ये मन निकल कर (जेणेव पुण्णभद्दे चेडए) जहा पर वह पूर्णमद्र नामका उद्यान था
(तेणेव उवागच्छति) वहाँ पर पहुँचे, (उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स
अदूरसामते छत्ताईए तित्थयराइसेसे पासति) वहाँ पहुँच कर उन्होंने भगवान् महा-
वीर के न अनिदुर और न अतिनिकट तीर्थरुओं के अतिशय स्वरूप उत्र आदिकों को देखा,
ये उत्रादिक तीर्थरुओं के अनिशय द्योतक चिह्न माने गये हैं, (पासित्ता जाणवाहणाइं
ठवेंति) इन चिह्नों के देखते ही उन सबों ने अपने २ यानवाहनादिकों को वहाँ रोक

प्रशुभित महाभमुद्रना महाध्वनिथी नेम युक्त उरता होय तेम (चंपाए णयरीए) ते
य पा नगरीनी (मज्झमज्झेण) पारापर वच्चोवच्चयना मार्गथी (णिग्गच्छंति) नीकल्या,
(णिग्गच्छित्ता) ते अधा नीकलीने (जेणेव पुण्णभद्दे चेडए) ल्या ते पूषुंलद्र नामतु
उद्यान इतु (तेणेव उवागच्छति) त्या पडोअ्या, (उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ
महावीरस्स अदूरसामते छत्ताईए तित्थयराइसेसे पासति) त्या पडोअीने तेअ्याअ्ये
लगवान महावीरथी अहु हरे नडि तेम तीर्थं करेना अतिशयस्वइय छत्र
आदिने नेया, आ छत्र आदिक तीर्थं करेना अतिशयद्योतक चिह्न बनाय
छे, (पासित्ता जाणवाहणाइं ठवेंति) अे चिहोने नेता अ ते अधाअ्ये येत

गइया हयगया एत्रं गयगया रहगया सिवियागया संदमाणियागया, अप्पेगइया पाय-विहार-चारिणो पुरिस-वग्गुरा-परिक्खित्ता महया उक्किट्ठि-सीह-णाय-बोल-कलकल-रवेणं पक्खुभिय-महासमुद्द-रव-भूयं पिव करेमाणा चंपाए णयरीए मज्झं-

सिवियागया संदमाणियागया 'हयगता एव गजगता रथगता त्रिविक्रगता स्यन्दमानिकागता -तत्र शक्रटोपणि दत्ता त्रिविक्रैत्र स्यन्दमानिका, 'अप्पेगइया' अप्येकके 'पाय-विहार-चारिणो' पादविहारचारिण 'पुरिस-वग्गुरापरिक्खित्ता' पुरुषवागुरापरिक्खिता -पुरुषममूहेन परिवेष्टिता, 'महया' महता 'उक्किट्ठि-सीहणाय-बोल-कलकल-रवेण' उक्किट्ठि-सिहनाद-बोल-कलकल-रवेण - उक्किट्ठि = आनन्दमहाध्वनि, सिहनाद = प्रसिद्ध, बोल = वर्गव्यक्तिसहितो ध्वनि, कलकल = वर्गव्यक्तिरहितो ध्वनि, एषा समाहार, तदेव यो रथ स तथा तेन, 'पक्खुभिय-महासमुद्द-रवभूय पिव' प्रक्षुभित-महासमुद्द-रवभूत-मिव-प्रक्षुभितमहासमुद्दस्य यो रवभूत = सजातशब्दस्तमिव = तद्वत् नगर 'करेमाणा' कुर्वन्त -

इमी प्रकार कितनेक हाथी पर आरूढ़ हुए, (रहगया) कितनेक रथों पर बैठे, (सिवियागया) कितनेक पालखियों में चढ़े, (संदमाणियागया) कितनेक बहेलियों-पालकीविशेष में बैठे, (अप्पेगइया) तथा कितनेक (पुरिस-वग्गुरा-परिक्खित्ता) पुरुषों के समूह -से धिरे हुए होकर (पाय-विहार-चारिणो) पैदल ही निकले, ये सभी (महया) महान् (उक्किट्ठि-सीहणाय-बोल-कलकल-रवेण) 'उक्किट्ठि'-उक्किट्ठि-अतिशय आनन्द जनित-ध्वनि से, (सीहणाय) सिहनाद-सिहनाद से, 'बोल'-व्यक्तवर्णयुक्त ध्वनिसे, तथा 'कलकलरव'-अव्यक्त ध्वनि से (पक्खुभिय-महासमुद्द-रवभूय पिव) चम्पानपरी को प्रक्षु-

भवार तथा (एव गयगया) आ प्रकारे डेटलाड ड्वाधीपर आइड तथा (रहगया) डेटलाड रथ उपर जेडा (सिवियागया) डेटलाड पालभीओभा यरथा (संदमाणियागया) डेटलाड पालभीविशेषोभा जेडा, (अप्पेगइया) तथा डेटलाड (पुरिस-वग्गुरा-परिक्खित्ता) पुरोधेना टोणा आथे धीमे-धीमे पगले (पाय-विहार-चारिणो) पैदल नीडण्था, आ पधा (महया) महान् (उक्किट्ठि-सीहणाय-बोल-कलकलरवेण) 'उक्किट्ठि' उक्किट्ठि-अतिशय आनन्द जनित ध्वनिथी, (सीहणाय) सिहनाद-सिहनादथी, (बोल) व्यक्तवर्णयुक्त ध्वनिथी तथा (कलकलरव) अव्यक्त ध्वनिथी (पक्खुभिय-महासमुद्द-रवभूय पिव) यथा नगरीने

मूलम्—तए णं से पविच्छिवाउए इमीसे कहाए लद्धट्टे
समाणे हट्ट-तुट्ट-जाव-हियए ण्हाए जाव अप्प-महग्घा-भरणा-

टीका—‘तए ण से पविच्छिवाउए’ इत्यादि ।

‘तए णं से पविच्छिवाउए’ तत एल्ल स प्रवृत्तिव्यापृत = भगवद्विहारादिवृत्ता-
न्तनिवेदनेऽधिष्ठित, ‘इमीसे कहाए लद्धट्टे समाणे’ अस्या कथाया लब्धार्थं सन् ‘हट्ट-
तुट्ट-जाव-हियए’ हट्ट-तुट्ट-यावद्दय ‘ण्हाए जाव अप्प-महग्घा-भरणा-लंकिय-
सरीरे’ स्नातो यावदन्पमहाघाभरणाऽन्डकृतगरीर ‘सयाओ गिहाओ’ स्वकाद्गृहात् ‘पडिणि-

कर चुकने बाद फिर उस आगत जनसमूहने (वदति नमस्सति) वन्दना एव नमस्कार
क्रिया, (वदित्ता णमस्सित्ता णच्चासण्णे णाऽदूरे सुस्सममाणा णमसमाणा अभिमुहा
विणएण पजलिउडा पज्जुवासति) वदना एव नमस्कार करने के पश्चात् भगवान से, न
अतिसमीप में एव न अतिदूर ही उनके सामने उचित स्थान पर बैठ कर वे सब विनय-
पूर्वक हाथ जोड़कर सेवा करने लगे ॥ सू ३८ ॥

‘तए ण से पविच्छिवाउए’ इत्यादि ।

(तए ण) इस के बाद (से पविच्छिवाउए) वह भगवान के विहार आदि के
समाचार लाने में नियुक्त किया हुआ व्यक्ति, (इमीसे कहाए) इस कथासे—भगवान के
आगमन के वृत्तान्त से (लद्धट्टे समाणे) परिचित होकर, (हट्ट-तुट्ट-जाव-हियए) अपने
अन्त करण में विशेषरूप से हर्षित एवं उत्तुष्ट हुआ, फिर उसने (ण्हाए
जाव अप्प — महग्घा — भरणा — लंकिय — सरीरे) स्नान किया, पश्चात् थोड़े

भभूडे (वदति णमस्सति) वदना तेभञ्ज नमस्कार उर्या, (वदित्ता णमस्सित्ता
णच्चासण्णे णाऽदूरे सुस्सममाणा णमसमाणा अभिमुहा विणएण पजलिउडा पज्जु-
वासति) वदना तेभञ्ज नमस्कार उर्या पछी भगवानथी णहुं हूर नडि तेभ णहुं
नभीप नडि अम तेमनी आभा उचित स्थान पर जेभीने ते णधा विनय-
पूर्वक हाथ जोडीने सेवा उरवा लाग्या (सू ३८)

‘तए ण से पविच्छिवाउए’ इत्यादि

(तए ण) त्थार पछी (से पविच्छिवाउए) ते भगवानना विहार आदिना
समाचार लाववा भाटे नियुक्त करेल भाणुस (इमीसे कहाए) आ वातथी-
भगवानना आगमनना वृत्तान्तथी (लद्धट्टे समाणे) परिचित थधने (हट्ट-तुट्ट जाव-
हियए) पोताना अत करथुमा विशेषरूपथी उर्षित तेभञ्ज उत्तुष्ट थयो पछी तेणे
(ण्हाए जाव अप्प महग्घा भरणा-लंकिय सरीरे) स्नान उर्यु पछी थोडा लोखवाणा तथा

समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता समणं
 भगवं महावीरं तिवखुत्तो, आयाहिणं पयाहिणं करेति, करित्ता
 वंदन्ति णमस्सन्ति, वंदित्ता णमस्सित्ता णच्चासण्णे णाडदूरे सुम्स-
 समाणा णमंसमाणा अभिमुहा । त्रिणण्णं पंजलिउडा
 पज्जुवासन्ति ॥ सू० ३८ ॥

पचोरुहन्ति' यानवाहनेभ्य प्रयवरोहन्ति—अथस्तादवतरन्ति, 'पचोरुहित्ता' प्रयवस्थ, 'जेणेव समणे भगव महावीरे' यत्रैव श्रमणो भगवान् महावीर [विराजते] 'तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता' तत्रैवोपागच्छन्ति, उपाग य 'समण भगवं महावीरं तिवखुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेति' श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य त्रिकुव आदक्षिण प्रदक्षिण कुर्वन्ति—त्रिरारमादक्षिणप्रदक्षिण कुर्वन्ति, 'करित्ता' कृत्वा 'वंदन्ति' वन्दन्ते—स्तुयन्ति, 'णमस्सन्ति' नमस्यन्ति=प्रणमन्ति, 'वंदित्ता णमस्सित्ता' वन्दित्वा नमस्यित्वा 'णच्चासण्णे णाडदूरे' नात्यासत्त्वे नातिदूरे 'सुम्ससमाणा' श्रमणमाणा 'णमसमाणा' नमस्यन्त 'अभिमुहा' अभिमुहा =समुहा, 'त्रिणण्णं पंजलिउडा' त्रिनयेन प्राञ्जलिपुटा—त्रिनय-विनम्रप्रवृत्तलय, 'पज्जुवासन्ति' पर्युपासते—उपासना कुर्वन्ति ॥ सू० ३८ ॥

द्विजे, (ठवित्ता जाणवाहणेहितो पचोरुहन्ति) जब वे अच्छी तरह रुक चुके तब वे सब-के-सब अपने २ वाहनों से नाचे उतरे, (पचोरुहित्ता जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छन्ति) उतर कर फिर वे सब लोगजहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे वहाँ पहुँचे, (उवागच्छित्ता समण भगव महावीरं तिवखुत्तो आयाहिण पयाहिण करेति) बाद उन्होंने भगवान् महावीर को तानवार हाथ जोड़कर प्रदक्षिणा की, (करित्ता) प्रदक्षिणा

पोताना, यानवाहनादिकाने त्याज्ये, रोक्ये, दीया, (ठवित्ता जाणवाहणेहितो पचोरु हन्ति) न्यारे तेथ्या, मारी, रीते रोक्ये गया त्यारे ते अथा पोतपोताना वाहनाभाठी नीचे उतरा, (पचोरुहित्ता जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छन्ति) उतरावे पत्री ते दोदा अथा न्या श्रमण भगवान् महावीर विराज मान हुता त्या पडोत्या (उवागच्छित्ता समण भगव महावीरं तिवखुत्तो आया हिण पयाहिण करेति), गाढ तेथ्याथे लगवान् महावीरने त्रणुवार हाथ जोडीने प्रदक्षिणा की (करित्ता) प्रदक्षिणा करी लीवा पत्री पणी ते

व्या जाव गिसीयड, गिसीडत्ता तस्स पविच्चिवाउयस्स अद्ध-
त्तेरस-सयसहस्साडं पीडटाणं दलयड, दलडत्ता सकारेड सम्मा-
णेड सकारित्ता सम्माणित्ता पडिविसजेड ॥ सू०३९ ॥

तत्रोपनिश्रययात्र 'नमोऽत्युणं' पठति 'जाव' यात्र मिहामने 'गिसीयड' निनीदति=उपनि-
श्रयति, 'गिसीडत्ता' निषद्य=उपनिश्रय, 'तस्स पविच्चिवाउयस्स अद्धत्तेरससयसहस्साड पीड-
टाणं दलयड' तस्मै प्रवृत्तिव्यापृताय अर्द्धत्रयोदशगतसहस्राणि प्रीतिदानं ददाति-सार्द्ध-
द्वात्रिंशत्सहस्राणि गजतमुद्रा प्रीतिदानं=पारितोषिकं समर्पयति । 'श्रमणो भगवान् महा-
श्रीस्वामी चम्पानगया उपनगरग्राममुपागत चम्पानगरं पूर्णभद्रचैय समवमर्तुकाम'
इति निवेदित प्रवृत्तिव्यापृतेन, अतस्तदाऽद्योत्तरैकलक्षण्यक गजतमुद्रारूपं प्रातिदानं प्रद-
त्तम् । अत्र तु अस्यामेव चम्पानगयाम् अतिमन्त्रिकृष्टे स्थाने पूर्णभद्रचैये समवसूत-इति
वार्ता निवेदिता, अतो ह्यप्रातिश्रयादेतद्वार्तानिवेदने सार्धद्वादशलक्षराजतमुद्रारूपं प्राति-
दानं प्रवृत्तिव्यापृताय दत्तम्-इति भावः । 'दलडत्ता सकारेड सम्माणेड' इत्या मकार-
यति-यन्त्रादिनाङ्गैः, सम्मानयति-प्रियवचनेन, 'सकारित्ता सम्माणित्ता पडिविसजेड'
सकृद्य सम्मान्य प्रतिनिमर्जयति ॥ सू०३९ ॥

वे एकदम मिहामन से उठ के खडे हुए और नीचे उतरकर जिस दिशा में भगवान् विराज-
मान थे, उस दिशा की ओर, सात आठ पग जाकर और बैठकर निम्नपूर्वक "नमोऽत्युणं"
किये । बाद सिंहासन पर बैठे, (गिसीडत्ता तरस पविच्चिवाउयस्स अद्धत्तेरस-सय-
सहस्साड पीडटाणं दलयड) बैठ कर उन्होंने उस प्रदेशवाहक क लिये माठे बारह लाख
चादा का मुद्राओं का प्रीतिदान-पारितोषिक प्रदान किया, (दलडत्ता) प्रातिदान देकर
उन्होंने (सकारेड) उसका सकार किया (सम्माणेड) मधुर वचना से सम्मान किया । इस
प्रकार (सकारित्ता सम्माणित्ता) मकार एव सम्मान करके उन्हें न उसे (पडिविसजेड)

७४ तेजो ज्येष्ठम भिडासनेथी उड़ीने उला तथा तथा नीचे उतरने ले
दिशाभा लगवान विराजमान हुता ते दिशानी तरङ्ग मात आठ पगला ७४ने
तथा जेसीने विधिपूर्वक " नमोऽत्यु ण " हीधु जाह भिडासनपर जेडा,
(गिसीडत्ता तस्स पविच्चिवाउयस्स अद्धत्तेरससयसहस्साड पीडटाणं दलयड) जेभीने
तेजोजे ते अ देशवाहुकने माटे साठगार लाख आदीना भिडासनेतु प्रीति-
दान-पारितोषिक प्रदान कर्तुं (दलडत्ता) प्रीतिदान आधीने तेजोजे (सकारेड)
तेना सत्कार कर्तुं, (सम्माणेड) मधुर वचनोथी सम्मान कर्तुं आ प्रकाशे

लंकिय-सरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिम्खमइ, पडिणिम्खमिता
चंपाणयरिं मऽञ्जमज्जेणं जेणव वाहिरिया सा चेव हेट्टिल्ला वत्त-

वखमइ पडिणिकवमिता'प्रतिनिष्क्रान्ति,प्रतिनिष्क्र-य, 'चंपाणयरिं मऽञ्जमज्जेणं'चंपानगया
म-यमध्येन, 'जेणव वाहिरिया'यत्रैव वागा उपस्थानगया, 'सा चेव हेट्टिल्ला वत्तव्वया'मगाऽ
धस्ताद् वक्तव्यता, अर्थात्-यत्रैव गज कोणिकरुप गह र्या'य कागिको गजा भग्भमारपुत्रस्त-
त्रैवोपागच्छति, उपागय करतत्परिगृहीत गिरवावत्तं मस्तकेऽन्नं च वा जयेन विजयेन
वर्धयति,वर्धयित्वा एवमनादीन्=भगवत् समवसरणसर्वित्तर निगदितवान्,तदनुभूयो भगवदाग-
मनश्रत्वा हृष्टुष्ट सन् मिहासनादु वायगत्रचिद्धानि परिय य भगवदभिमुख्य सनाष्टपदानि गत्वा

भार वाले तथा बहुमुख्य आभरणों से अलग्नशरीर होकर (सयाओ गिहाओ पडि-
णिकवमइ)अपन पर से निकला, (पडिणिम्खमिता) निष्कर(चंपाणयरिं मऽञ्जमज्जेण)
ठीक चंपा नगर के बीचोबीच मार्ग से होता हुआ, (जेणव वाहिरिया सा चेव हेट्टिल्ला
वत्तव्वया जाव पिसीयइ) जहा नीचे बाहिर का ओर वह उपस्थानगाला थी, एव जहा
राजा कोणिक का गह था, तथा जहा पर वे विराजमान थे, वहा पर वह पहुँचा, पहुँचकर
दोना हाथा को जोडकर उसने कोणिक नरेशको सादर नमस्कार किया, पश्चात् आपकी जय
हो और विजय हो-इस रूपसे उन्हें बधाई दी। बधाई दे चुकने के अनन्तर फिर उमने 'ह
राजन्! आज श्रमण भगवान महावीर प्रभु चंपानगरी के पूर्णभद्र उद्यान में समवसृत हुए ह'-
इत्यादि विस्तृत रूप से भगवान् के समवसरण का वृत्तान्त कहा। राजा ने जब प्रभु के
आगमन का वृत्तान्त सुना तब वे भी चित्त में अधिक प्रसन्न एवं स्तुष्ट हुए। मारे हर्ष के

अहु भूद्वयवाजा आलश्लोथी शरीरने गलुगारीने ते (सयाओ गिहाओ पडिणिकवमइ)
पोताना वेरथी नीकज्जे, (पडिणिकवमिता) नीकजीने(चंपाणयरिं मऽञ्जमज्जेण) अरा
अर य पानगरीनी वत्थोवत्थने मार्गे थधने (जेणव वाहिरिया सा चेव हेट्टिल्ला वत्त
व्वया जाव पिसीयइ) न्या नीचे अहाग्नी तरुते उपस्थानगाला डती तेन्य न्या
राज्जे डोण्डुत्तु गृह डत्तु तथा न्या ते विराजमान डता त्या पडोत्थो, पडोत्थीने
अन्ने डाय जेडीने तेणु डोण्डुत्तु नरेशने सादर नमस्कार कर्या पथी आपनी जय थायो
तथा विजय थायो अे इथे तेणु वधाथ आयी वधाथ हथ सुत्थ्या पथी तेणु डहु,
डे राजन्! आगे श्रमणु भगवान महावीर प्रभु चंपानगरीना पृथ्वलद्र
उद्यानमा समवसृत थया छे आ प्रकारे तेणु विस्तृतइपथी भगवानना
समवसरणुना वृत्तान्त कथो राज्जे न्यारे प्रभुना आगमने वृत्तान्त साज्जो
त्यारे तेथो पथु भनमा अहु प्रसन्न तेभ्य सत्तु थया आनदमा आवी

पया । आभिसेकं हस्तिरयणं पडिकप्पेहि, हय-गय-रह-पवर-
जोहकलियं च चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेहि, सुभदापमुहाण
य देवीणं वाहिरियाए उवट्टाणसालाए पाडियक्कपाडियक्काडं
जत्ताभिमुहाडं जुत्ताडं जाणाडं उवट्टवेहि, चंपं च णयरिं सच्चि-

पडिकप्पेहि' आभिषेक्य हस्तिरत्न परिकल्पय-पट्टहस्तिरत्न मञ्जित कुरु, 'हय-गय-रह-पवर-
जोह-कलियं च चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेहि' हय-गज-रथ-प्रवरयोः-कलिता च
चतुरङ्गिणी सेना मन्नाहय=सुसज्जिता कुरु, 'सुभदापमुहाण य देवीण' सुभद्राप्रमुखानाञ्च
देवीनाम् 'वाहिरियाए उवट्टाणसालाए' वाह्यायामुपस्थानशालायाम्, 'पाडियक्कपा-
डियक्काडं' प्रत्येकप्रत्येकानि-सवासा पृथक् पृथक् 'जत्ताभिमुहाड' यात्राभिमुखानि-
गमनार्थमुद्यतानि, 'जुत्ताडं' युक्तानि-योजितप्रलीवदानि 'जाणाड' यानानि=धार्मिकरथान
'उवट्टवेहि' उपस्थापय=सज्जीकृत्य समानय, 'चंपं च णयरिं सच्चिभतरवाहिरिय'

मेव भो देवाणुप्पिया) ह देवानुप्रिय ! जीव ही (आभिसेकं हस्तिरयणं पडिकप्पेहि)
तुम पट्टहस्तिरत्न को सज्जित करो, (हय-गय-रह-पवरजोह-कलियं च चाउरंगिणिं सेणं
सण्णाहेहि) साथ में घोड़ों, हाथियों, रथों एवं उत्तम योद्धाओं से युक्त चतुरङ्गिणी सेना को
भी सुसज्जित करना, तथा (सुभदापमुहाण य देवीण वाहिरियाए उवट्टाणसालाए)
सुभद्राप्रमुख देवियों के लिये भी वाहिर उपस्थानशाला में (पाडियक्कपाडियक्काड)
अलग २ रूप में (जत्ताभिमुहाडं) चलन में अच्छे (जुत्ताड) एवं अच्छे बैलों वाले
(जाणाड) धार्मिक रथों को (उवट्टवेहि) सज्जित करके ले आओ । (चंपं च णयरिं सच्चिभ-

४६- (सिप्पामेव भो देवाणुप्पिया) हे देवानुप्रिय ! शीघ्र ४ (आभिसेक
हस्तिरयणं पडिकप्पेहि) तमे पट्ट हस्तिरत्नने सज्जित करो (हय-गय-रह-पवर-
जोह-कलियं च चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेहि) साथमा घोडा, हाथी, रथो, तेभञ्ज
उत्तम योद्धाओथी युक्त चतुरंगिणी सेनाने पण सुसज्जित करो तथा
(सुभदापमुहाण य देवीण वाहिरियाए उवट्टाणसालाए) सुभद्राप्रमुख देवीओने
भाटे पण गार्हरी उपस्थानशालामा (पाडियक्क-पाडियक्काड) अलग अलग
रूपमा (जत्ताभिमुहाड) आलवामा मारा (जुत्ताड) तेभञ्ज माग षण्हवाणा
(जाणाड) धार्मिक रथाने (उवट्टवेहि) सज्जित करीने लक्ष आवो (चंपं च
णयरिं सच्चिभतरवाहिरिय) य पानगरीने अट्टं तेभञ्ज गार्हरी (आसित्त-सित्त-

मूलम्—तए णं से कृणिए राया भंभसारपुत्ते बल-
चाउयं आमंतेइ, आमंतित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणु-

टीका—‘तए ण से’ इत्यादि। ‘तए णं’ तत् सत् ‘से कृणिए राया भमसारपुत्ते’ स
कृणिको राजा भमसारपुत्र ‘बलचाउयं’ वक्ष्यापृत=सै-वक्ष्यापारपरायण—सेनापतिभिर्यं,
‘आमंतेइ’ आमन्त्रयति=आह्वयति, ‘आमंतित्ता’ आमन्त्रय=आह्वय, ‘एवं वयासी’—एवम-
वादीत्—‘खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया’ क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिय ! ‘आमिसेक इत्थिरयण

निदा क्रिया। श्रमग भगवान् महावीर स्वामी चपानगरी के उपनगरग्राम में पधार हुए हैं
और वं चपानगरी के पूर्णभद्र उद्यान में पधारनेवाले हैं—इस प्रकार का समाचार कौणिक राजा
को जब इस देगवाहक न मुनाया था तब उस समय राजाने उसे पारितोषिक रूप में
१ लाख चांदी की मुद्राएँ दी थीं। परंतु जब उसने यह खबर दी कि प्रभु चपानगरा के
पूर्णभद्र उद्यान में पधार चुके हैं तब इस बात को सुनकर उन्हें अत्यंत हर्षका आवेग बढ़ा,
और इस आवेग के प्रभाव से उन्होंने उसे १२॥ लाख चांदी की मुद्राएँ दीं ॥ मृ० ३९॥

‘तए ण से कृणिए राया’ इत्यादि।

(तए णं) इसके अनन्तर (भमसारपुत्ते) भमसार अर्थात् श्रेणिक का पुत्र (से
कृणिए राया) उक्त कृणिक राजा ने (बलचाउयं) अपने बलव्यापृत—सेनापति को
(आमंतेइ) बुलाया, (आमंतित्ता) बुलाकर (एवं वयासी) इस प्रकार कहा—(खिप्पा-

(सम्कारित्ता सम्मानित्ता) सत्कार तेमञ्च सम्मान गरीने तेमञ्छे तेने (पडिविस
ज्जेइ) विदाय उथीं श्रमञ्छु लगवान भडावीर स्वामी चपानगरीना उपनगर
आममा पधार्या छे तथा तेञ्छो चपानगरीना पूर्णभद्र उद्यानमा पधारवाना
छे—अे प्रजारना भमात्थार डोण्डिक राजने न्यारे आ स देशवाहडे सलजाव्या
त्यारे ते समथे राजञ्छे तेने पारितोषिकइपमा अेकलाण आठ थादीना
सिक्काञ्छो आभ्या हुता परंतु न्यारे तेञ्छे आ भणर आपी डे प्रभु चपान-
नगरीना पूर्णभद्र उद्यानमा पधारी बुड्या छे त्यारे आ वात सालणी तेमने
अत्यंत हर्षने आवेग पधे अने आवेगना प्रभावथी तेमञ्छे तेने १२॥
लाख थादीनी भडोणे आपी (स. ३६) -

‘तए ण से कृणिए राया’ इत्यादि

(तए णं) त्वार पत्री (भमसारपुत्ते) भमसार अर्थात् श्रेणिकना पुत्र
(से कृणिए राया) ते कृणिक राजञ्छे (बलचाउयं) चेताना बलव्यापृत—सेना-
पतिने (आमंतेइ) बुलाव्या, (आमंतित्ता) बुलाव्याने (एवं वयासी) आ प्रकडे

करेहि य कारवेहि य, करेत्ता य कारवेत्ता य एयमाणत्तियं
पञ्चप्पिणाहि, णिज्जाहिस्सामि समणं भगवं महावीर अभि-
वंदिउं ॥ सू. ४० ॥

ह्योऽयं' इति देशीय शब्द, गोमयादिना भूमौ यद् न्येन सेटिकादिना कुड्यादिषु च
यद् धमन्त तद् 'लाउल्लोऽथ' तेन महिताम्=मुन्नाजिनाम्, 'गोमीस-सरस-रक्तचन्दन-
जाव-गंधवट्टिभूयं करेहि य' गोशीर्ष-सरस-रक्तचन्दन-याव-गन्धवर्तिभूता कुरु-गोशीर्षे =
चन्दनत्रिशेषं सरसरक्तचन्दनेन यावद् गन्धवर्तिभूता=समुपचितगन्धद्रव्यरूपा कुरु,
'कारवेहि य' कारय च, अन्यापि तथा कर्तुं प्रेरय, 'करेत्ता य कारवेत्ता य' कृता च
कारयिना च 'एयमाणत्तिय पञ्चप्पिणाहि' पत्तामाजा प्रयर्षय, आज्ञापिताऽर्थान् सम्याद्य
मह्य कथय, 'णिज्जाहिस्सामि समणं भगवं महावीर अभिवंदिउ' नियात्स्यामि=
निर्गमिष्यामि श्रमण भगवन्त महावीरमभिवन्दितुम् ॥ सू. ४० ॥

और भीतो को खटी से पुतनाओ, (गोमीस-सरस-रक्तचन्दन-जाव-गंधवट्टि-भूयं) गोशीर्ष-
चन्दन विशेष, एव सरस रक्तचन्दन से समस्त नगर को सुगन्धित बनवाओ ताकि वह सुगन्ध-
पुज जैसा मात्रम पटन लगे। (करेहि य कारवेहि य) यह सब काम स्वयं करो तथा
दूसरों को भी इस तरह करने के लिये प्रेरित करो। (करेत्ता य कारवेत्ता य) करके एव करवा
करके(एयमाणत्तिय पञ्चप्पिणाहि) इस मेरी आज्ञा को पुन मुझे प्रयर्षित करो-आपकी आज्ञा-
नुसार सब काम हो चुके हैं इसकी मुझे खबर लो। (णिज्जाहिस्सामि समण भगव
महावीर अभिवंदिउ) बाद में मैं श्रमण भगवान महावीर की वन्दना के लिये निकरूंगा
॥ सू. ४० ॥

वर्षिणोने ली पावो अने ली तोने षडीथी धोणावो (गोमीस-सरस-रक्तचन्दन
जाव-गंधवट्टि-भूयं) गोशीर्ष-चन्दन विशेष तेभर सरस रक्तचन्दनथी नभस्त
नगरने सुगन्धित बनावो जेथी ते सुगन्धपुष्प जेवी जलुपा लागे (करेहि
य कारवेहि य) आ अथु काम लते करो तथा भीतने पथु जेवी गीते
करवा प्रेरित करो, (करेत्ता य कारवेत्ता य) करीने तेभर करवावीने (एयमाणत्तियं
पञ्चप्पिणाहि) आ भागी आनाने पाधी भने प्रत्यर्षित करो-आपनी आज्ञानु-
सार अथु काम थर्ष शुक्यु छे जेनी भने अथर हो। (णिज्जाहिस्सामि समण
भगव महावीर अभिवंदिउ) बाद हु श्रमणु लगवान महावीरनी वन्दना भाटे
नीकजीश (सू. ४०)

तरवाहिरियं आसित्त-सित्त-मुड-सम्मट्ट-रत्थंतरा-वण-वीहियं मंचा-
इमंच-कलियं णाणाविह-राग-उच्छिय-ज्झय-पडागा-उपडाग-मंडि-
यं लाउल्लोइयमहियं गोसीस-सरस-रत्तचंदण-जाव-गंधवट्टिभूयं

चम्पा च नगरी साम्यतराणाम्, 'आसित्त-सित्त-मुड-सम्मट्ट-रत्थतरावण-वीहियं'
आसित्त-मित्त-शुचि-समृष्ट-ग्ध्यान्तरा - SSपग - वीधिकाम् - आसित्तानि=ईपतसित्तानि,
सित्तानि=भूयसा जठन धौतानि अतण्व शुचीनि=पत्रिणागि मग्धानि=रुचरापनयनन
सशोधितानि रथ्यान्तगणि=ग्ध्यामप्यानि आपणवीथयश्च-हट्टमार्गां यस्या सा आमिक्त-सित्त-
शुचि-समृष्ट-ग्ध्यान्तराSSपग-वीधिका, ताम्, 'मंचा-इमंच-कलियं' मञ्चा-निमञ्च कडिताम-
मञ्चा =मालका -दुर्गकजनोपवेशनयोग्या, अतिमञ्चा =मञ्चोपरिमञ्चा, 'त कडिता-युक्ता
ताम्, 'णाणाविह-राग-उच्छिय-ज्झय-पडागा-उपडाग-मंडियं' नानाविध-रागो-च्छित्त-
ध्वज-पताकासतिपताका-मण्डिताम्-नानाविधरागा =त्रिविधवर्णां ये उच्छ्रिता ध्वजा, पताका-
निपताका - पताका - व्यजाप्रतिचेल्लालानि, पताकामतिक्रान्ता अतिपताका
=पताकोपरिवर्त्तित्य पताका, ताभिर्मण्डिताम्=सुगोभिताम्-नानाविधवर्णसमुच्छ्रितध्वज-
पताकासतिपताकाभिर्मण्डितामित्यर्थ । 'लाउल्लोइयमहियं' लाउल्लोइयमहिताम्-'लाउ-

तरवाहिरियं) चपानगरी को भीतर एव बाहिर से (आसित्त-सित्त-मुड-सम्मट्ट-रत्थतरा-
वणवीहियं) पहिले थोडे से जल से छिडकरा कर पीठे अधिक जल से छिडकराकर गलियों के
एव बजारों के रस्ता को साफ-सफ करवाओ और जहा भी कूडा-कंकट पडा हो उसे झड-
वाकर साफ करवाओ, (मंचा-इमंच-कलियं णाणाविह-राग-उच्छिय-ज्झय-पडागा-
उपडाग-मंडियं) मार्ग मे आजू-बाजू मंचा पर मंच जमवाकर लगवा दो, ताकि लोग उन
पर अच्छी तरह से बैठ सकें । अनेक रंगों की ऊँची २ ध्वजाएँ, पताकाएँ एव अतिपता-
काएँ नगर भर म लगाओ, (लाउल्लोइयमहियं) जगह २ पर गोबर से जमीन को लिपवाओ

सुड-सम्मट्ट-रत्थतरावण-वीहियं) पडेला थोडाठ पाणीने छ टकाव ळरीने पडी
वधारे पाणी छ टापीने गलियोना तेमज्ज धन्नेना रस्ताओने साइसूइ ळरावे,
अने नया पणु उडा-उडंट (उथरेपूने) पडथे डोय तेने आडु भरावी साइ ळरावे।
(मंचा-इमंच-कलियं णाणाविह-राग-उच्छिय-ज्झय-पडागा-उपडाग-मंडियं) मार्गभा
आणुआणु मय उपर मय गोठवावी हो जेथी दोडो तेभनापर सारी रीते
जेसी शके अनेक रंगोनी उथी उथी धन्नेओ, पताकाओ तेमज्ज अति
पताकाओ नगरभरभा लगाओ (लाउल्लोइयमहियं) जगा जगापर छाणुथी

करेहि य कारवेहि य, करेत्ता य कारवेत्ता य एयमाणत्तियं
पञ्चपिणाहि, णिज्जाहिस्सामि समणं भगवं महावीरं अभि-
वदिउं ॥ सू. ४० ॥

छोड़्य' इति देशीय शब्द, गोमयादिना भूमौ यद् लेपन सेटिकादिना कुड्यादिषु च
यद् धवलन तद् 'लाउल्लोड्य' तेन महिताम्=सुमन्त्रिणाम्, 'गोसीस सरस-रक्तचंदण-
जाव-गंधवट्टि-भूयं करेहि य' गोशीर्ष-मरस-रक्तचंदन-यावद्-गन्धवर्तिभूता कुरु-गोशीर्षे =
चन्दनविशेषं सरसरक्तचन्दनेन यावद् गन्धवर्तिभूता=समुपचितगन्धद्रव्यरूपा कुरु,
'कारवेहि य' कारय च, अन्यानपि तथा कर्तुं प्रेरय, 'करेत्ता य कारवेत्ता य' कृवा च
कारयिना च, 'एयमाणत्तिय पञ्चपिणाहि' एतामाजा प्रत्यर्षय, आज्ञापिताऽर्थान् सम्पाद्य
महा कथय, 'णिज्जाहिस्सामि समणं भगवं महावीरं अभिवदिउ' निर्यास्यामि=
निर्गमिष्यामि श्रमण भगवन्त महावीरमभिवन्दितुम् ॥ सू. ४० ॥

और भीतों को खड़ी से पुतवाओ, (गोसीस-सरस-रक्तचंदण-जाव-गंधवट्टि-भूय) गोशीर्ष-
चंदन विशेष, एव सरस रक्तचंदन से समस्त नगर को सुगंधित बनवाओ ताकि वट सुगंध-
पुज जैसा मादम पडन लगे। (करेहि य कारवेहि य) यह सब काम स्वयं करे तथा
दूसरों को भी इस तरह करने के लिये प्रेरित करो। (करेत्ता य कारवेत्ता य) करके एव करवा
करके (एयमाणत्तिय पञ्चपिणाहि) इस मेरी आज्ञा को पुन मुझे प्रत्यर्पित करो-आपकी आज्ञा-
नुसार सब काम हो चुके हैं इसकी मुझे खबर दो। (णिज्जाहिस्सामि समण भगव
महावीरं अभिवदिउ) बाद में मैं श्रमण भगवान महावीर की वन्दना के लिये निरूद्धगा
॥ सू. ४० ॥

जमीनने ली पावे। अने ली तोने ञडीथी धोणावे। (गोसीस-सरस-रक्तचंदण
जाव-गंधवट्टि-भूय) गोशीर्ष-चन्दन विशेष तेमज सरस रक्तचंदनथी नभस्त
नगरने सुगंधित अनावे। जेथी ते सुगंधपुज जेवी जल्हावा लागे (करेहि
य कारवेहि य) आ जधु काम जते करे तथा जीवने पधु जेवी रीते
' करेत्ता प्रेरित करे, (करेत्ता य कारवेत्ता य) करीने तेमज करीवीने (एयमाणत्तिय
पञ्चपिणाहि) आ भारी आज्ञाने पाछी भने प्रत्यर्पित करे-आपनी आज्ञानु-
सार जधु काम थर्छ थूकथु छे जेनी भने जपर हो (णिज्जाहिस्सामि समण
भगव महावीरं अभिवदिउ) जाह हु श्रमणु लगवान महावीरनी वदना भाटे
नीकजीथ (सू. ४०)

तरवाहिरियं आसित्त-सित्त-सुड-सम्मट्ट-रत्थतरा-वण-वीहियं मंचा-
इमंच-कलिय णाणाविह-राग-उच्छिय-ज्झय-पडागा-इपडाग-मंडि-
यं लाउल्लोइयमहियं गोसीस-सरस-रत्तचंदण-जाव-गंधवट्टिमूयं

चम्पा च नगरां साम्यतराणां, 'आसित्त-सित्त-सुड-सम्मट्ट-रत्थतरावण-वीहियं'
आसित्त-मित्त-शुचि-समृष्ट-रथ्या तरा - सपग - वीयिकाम् - आसित्तानि=संपत्तिकानि,
सित्तानि=भूयना जलेन धौतानि अतएव शुचीनि=पवित्राणि समृष्टानि=रुचिरापनयनेन
सशोधितानि रथ्यान्तराणि=रथ्यामथ्यानि आपणवीययथ-हृदमागा यस्या सा आमिक्त-सित्त-
शुचि-समृष्ट-रथ्याऽन्तराऽसपग-वीयिका, ताम्, 'मंचा-इमंच-कलियं' मच्चा निमच्च-कलिताम्-
मच्चा =मालका -उर्गकजनोपदेशनयोग्या, अनिमच्चा =मच्चोपरिमच्चा, तै कलित-युक्ता
ताम्, 'णाणाविह-राग-उच्छिय-ज्झय-पडागा-इपडाग-मंडियं' नानाविध-रागो-च्छित्त-
ध्वज-पताकाऽतिपताका-मण्डिताम्-नानाविधरागा =त्रिविधवर्णा ये उच्छ्रिता ध्वजा, पताका-
निपताका - पताका - ध्वजाप्रवृत्तिचेलाञ्जलानि, पताकामतिक्रान्ता अतिपताका
=पताकोपरिवर्त्तन्य पताका, ताभिर्मण्डिताम्=सुगोभिताम्-नानाविधवर्णसमुच्छ्रितध्वज-
पताकाऽतिपताकाभिर्मण्डितामित्यर्थः । 'लाउल्लोइय-महियं' लाउल्लोइयमहिताम्-'लाउ-

तरवाहिरियं) चंपानगरी को भातर एव बाहिर से (आसित्त-सित्त-सुड-सम्मट्ट-रत्थतरा-
वणवीहियं) पहिले थोडे से जल से छिडकवा कर पीठे अधिक जल से छिडकवाकर गलियों के
एव बजारों के रस्ता को साफ-सफ करवाओ और जहा भी कूडा-कूट पडा हो उसे झड-
वाकर साफ कराओ, (मंचा-इमंच-कलिय णाणाविह-राग-उच्छिय-ज्झय-पडागा-
इपडाग-मंडियं) मार्ग म आजू-बाजू मच्चों पर मच्च जमवाकर लगावा दो, ताकि लोग उन
पर अच्छी तरह से बैठ सकें । अनेक रगां की ऊँची २ ध्वजाएँ, पताकाएँ एव अनिपता-
काए नगर भर मे लगाओ, (लाउल्लोइयमहियं) जगह २ पर गोबर से जमीन को लिपवाओ

सुड-सम्मट्ट-रत्थतरावण-वीहियं) पड़ेला थोडा ८ पाणीने छ टकाव करीने पडी
पधारे पाणी छ टावीने गलियोना तेमज्ज अन्नरोना रस्ताओने साइसइ करावो,
अने न्या पणु इडा-उकट (कथरोपूले) पडयो डोय तेने जाडु मरावी साइ करावो
(मंचा-इमंच-कलिय णाणाविह-राग-उच्छिय-ज्झय-पडागा-इपडाग-मंडियं) मार्गभा
आनुआनु मच्च उपर मच्च गोडवावी हो जेथी दोडो तेमनापर सारी रीते
जेसी शकें अनेक २ गोनी उथी उथी धनओ, पताकाओ तेमज्ज अति
पताकाओ नगरभरभा लगाओ (लाउल्लोइयमहियं) जगा जगापर छाणुथी

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! कूणियस्स-रण्णो भंभसारपुत्तस्स
आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेहि, हय-गय-रह-पवरजोह-कलियं
चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेहि, सण्णाहेत्ता एयमाणत्तियं पच्च-
प्पिणाहि ॥ सू० ४१ ॥

आमतेइ' हस्तिव्यापृतमामन्त्रयति=महामात्रमाह्वयति, 'आमंतेत्ता' आमन्त्र्य-आह्वय
'एवं वयासी' ण्वमवादीन्-'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! कूणियस्स रण्णो
भंभसारपुत्तस्स आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेहि' क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिय ! कूणिकस्य
राज्ञो भंभसारपुत्तस्य आभिषेक्य हस्तिरत्न परिकल्पय, आभिषेक्य हस्तिरत्न=प्राप्ताभिषेक,
सुरय हस्तिरत्न परिकल्पय=मुसज्जित कुरु, 'हय-गय-रह-पवरजोह-कलियं' हय-गज-
रथ-प्रवरयोध-कलिताम्, 'चाउरंगिणिं सेणं' चतुरङ्गिणीं सेनाम्, 'सण्णाहेहि'
=नाहय-सन्नद्धा कुरु, 'एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि' एतामाज्जिका प्रत्यर्षय-इमा
मनीयामांजा सम्पाद्य मय निवेदय-इत्थ गजाऽऽज्जतो चलन्यापृतो हस्तिव्यापृत-
माजापयामास ॥ सू० ४१ ॥

(पडिसुणित्ता हत्थिवाउय आमंतेइ) राजा का आदेश प्रमाण कर उसने तुरत ही
हाथिया के अधिकारी को बुलाया, (आमंतेत्ता) बुलाकर (एव) इस प्रकार (वयासी) वह
बोला-(खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया) हे देवानुप्रिय ! तुम शीघ्र ही (कूणियस्स रण्णो
भंभसारपुत्तस्स आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेहि) भंभसार अर्थात् श्रेणिक राजा के
पुत्र कूणिक राजा के पड़हस्तां को सुसज्जित करो। (हय-गय-रह-पवरजोह-कलियं चाउ-
रगिणिं सेणं सण्णाहेहि) साथ में हय-अथ, गज-अथहाथी, रथ, प्रवरभट इनसे युक्त

आदेशने रवींजर करी लीधे। (पडिसुणित्ता हत्थिवाउय आमतेइ) राजना आदे
गने प्रभाणु करी तेणु तत्तज्ज डाधीओना आधकारीने जोलाओ। (आमतेत्ता)
जोलावीने (एव) आ प्रकडे (वयासी) तेणु उहु -(खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया)
हे देवानुप्रिय ! तमे तुरत च (कूणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस आभिसेक्कं
हत्थिरयणं पडिकप्पेहि) भंभसार अर्थात् श्रेणिक राजना पुत्र कूणिक राजना
पड़हस्ताने तैथार करे। (हय-गय-रह-पवरजोह-कलियं चाउरगिणिं सेणं सण्णा-
हेहि) साथे साथे हय घोडा, गज-भीजा डाधी, रथ, प्रवरभट अथी युक्त
चतुरगिणी सेनाने पणु तैथार करे। (सण्णाहेत्ता) सन्नद्ध करीने (एयमाणत्तियं

मूलम्—तए णं से वलवाउए' कृणिएणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे
 हेदुत्तुए—जाव—हियए' करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए
 अंजलिं कट्ठु एवं सामित्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ,
 पडिसुणित्ता हत्थिवाउयं आमंतेइ, आमंतेत्ता एवं वयासी-

टीका—'तए णं' इत्यादि । 'तए णं से वलवाउए' तत एल्ल म बल्ल्यापूत—
 सेनापति 'कृणिएणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे' कृणिकेन राजा एवमुक्त सन्, 'हेदुत्तुए
 जाव-हियए' एदुत्तुएयावद्दुदय 'करयलपरिग्गहियं' करतलपरिग्गहीत—बद्धकरतल्लुगाल्लम्,
 'सिरसावत्तं' गिरआवत्तं 'मत्थए अंजलिं कट्ठु' मस्तके अजलिं कृत्वा 'एवं
 सामित्ति आणाए विणएण वयण पडिसुणेइ,' एव स्वामिन्' इति आज्ञाया विनयेन
 वचन प्रतिशृणोति=एव स्वामिन्' यथाजापयति देवस्तत्तथैत्र म्पादयामि—इयुक्त्वा
 आज्ञाया वचन सनिनय प्रतिशृणोति=स्वीकरोति, प्रतिश्रुय=स्वीकृत्य—'हत्थिवाउयं

'तए णं से वलवाउए' इत्यादि ।

(तए णं) इसके बाद (से वलवाउए) वह सेनापति (रण्णा एववुत्ते समाणे)
 राजा के द्वारा इस प्रकार से आज्ञापित होता हुआ (हेदुत्तुए—जाव—हियए करयल—परि-
 ग्गहिय सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्ठु एव सामित्ति आणाए विणएण वयण पडि-
 सुणेइ) विशेष हर्षित एव मत्तुए हुआ, यावत् अन्त करण मे प्रफुल्लित हो गया ।—दोनों
 हाथों को जोड़कर मस्तरूप अजलिरूप मे उन्हें स्थापित करते हुए फिर वह इस प्रकार
 बोला कि हे स्वामिन्! आपने जिस प्रकार का आदेश प्रदान किया है वह मैं उसी प्रकार
 से म्पादित करूँगा। इस रीति से विनयपूर्वक उसने राजा के आदेश को स्वीकार कर लिया ।

'तए णं से वलवाउए' इत्यादि ।

(तए णं) स्वामी (से वलवाउए) ते सेनापति (रण्णा एव वुत्ते समाणे)
 राजा के द्वारा आज्ञापित होता हुआ (हेदुत्तुए—जाव—हियए करयल—परिग्गहिय
 सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्ठु एव सामित्ति आणाए विणएण वयण पडिसुणेइ)
 विशेष हर्षित तेमंज संत्तुए थयो, यावत् अतः अरुणमा प्रकुटिलत थय-गथो
 जन्ने हाथो जेडीने मस्तकं उपरं अर्जलक्षणे तेमने स्थापित करी पत्री ते
 आ प्रदारे जाल्लो-के डे स्वाभिन्' आपने जो आदेश प्रदान कियो छे
 ते हु तेवीर रीते म्पादित करीथ आ रीते विनयपूर्वक तेले राजाना

हव्व-परिवर्तियं सुसज्जं धम्मिय-सण्णद्ध-वद्ध-कवडय-उप्पी-
लिय-कच्छ-वच्छ-गेवेय-वद्ध-गलवर-भूषण-विरायंत अहिय-
तेय-जुत्तं सललिय-वर-कण्णपूर-विराइयं पलंव-ओचूल-महुयर-

णेवत्थ-हव्व-परिवर्तियं' उ-वल्-नेप य-शीत्र-परिवर्तितम्-उच्चवन्नेप येन=निर्मल-
वेपरचनया ज्ञात्र, परिवर्तित-आच्छादितम्, अलकृतमिथर्य अनापव 'सुसज्जं'
कृतसन्नाहम्, 'धम्मिय-सण्णद्ध-वद्ध-कवडय-उप्पीलिय-कच्छ-वच्छ-गेवेय-
वद्ध-गलवर-भूषण-विरायंत' धार्मिक-सन्नद्ध-वद्ध-कवचिको-पीडित-कल-वलो-
प्रैवेय-वद्ध-गलवर-भूषण-विराजमानम्, धार्मिक सन्नद्ध=सजीवित वद्ध यत् कवच=सन्नाह-
विशेष, तदस्यास्तीति-धार्मिकसन्नद्ध-वद्धकवचिकम्, उपीडिता=आकृत्य वद्धा, कक्षा=वन्धन-
रज्जु, वक्षमि=वक्ष स्थले यस्य तत् तथा, प्रैवेयक=प्रोवाभूषण वद्ध गले=कण्ठे यस्य
तत् तथा, वरभूषणै = अन्यैर्गजस्य श्रेष्ठाभरणैर्विराजमानम् 'अहियतेयजुत्त'
अधिरुतेजोयुक्तम्=परमतेजस्वि, 'सललिय-वरकण्णपूर-विराइय' सललित-वरकण्णपूर-

यों के शृंगार करने वाले (सुणिउणेहिं) निपुण व्यक्तियों से (उज्जल-णेवत्थ-हव्व-परि-
वर्तिय) हाथीका शृंगार करवाया, इसमें सर्वप्रथम उन कुशल पुरुषों ने उसे निर्मल
भूषणों की रचना से अलकृत किया। (सुसज्जं) उस पर अच्छी तरह से झूलें वगैरह
सजायीं। (धम्मिय-सण्णद्ध-वद्ध-कवडय-उप्पीलिय-कच्छ-वच्छ-गेवेय-वद्ध-गलवर-भूषण-
विरायत) धार्मिक उसर के समय जैसा हाथी का शृंगार होता है ठीक वैसा ही शृंगार
इसका किया गया। पेट या छाती पर इसके मजबूत कवच कसकर बाधा गया। गले में
इसके आभूषण पहिनाए गये। और इसके अग-उपागों में सुदर २ उसके योग्य आभूषण

द्वारा विविध प्रकारेण हाथीकोना शृंगार कर्वावाणा (सुणिउणेहिं) निपुण
व्यक्तियों द्वारा (उज्जलणेवत्थहव्वपरिवर्तिय) हाथीका शृंगार करवाया,
तेमा सर्वथी प्रथम ते कुशलपुष्पोये तेने सुन्दर अलकागेनी रचनाथी
अलकृत उथा, (सुसज्जं) तेना उपर आरी गीते झूला वगेरे सलली (धम्मिय
सण्णद्ध-वद्ध-कवडय-उप्पीलिय-कच्छ-वच्छ-गेवेय-वद्ध-गलवर-भूषण-विरायत)
धार्मिक उत्सवना नभये तेवे हाथीकोना शृंगार होय छे तेवे व अरापर
शृंगार तेना उथे पेट अथवा छाती उपर मजबूत कवच उथीने तेने
आधु गणाभा तेने आभूषणो पडेरवावाभा आव्या तेना पीठ अगे
तथा उपागोभा सुदर सुदर तेने योग्य आभूषणो पडेरवावा (अहिय-

मृलम्—तए णं से हत्थिवाउए वलवाउयस्स एयमट्टं
सोच्चा आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता छेया-
यरिय-उवएस-मइ-कप्पणा-विकप्पेहिं सुणित्ताणेहिं उज्जल-णेवत्थ-

टीका—‘तए ण से’ इत्यादि । ‘तए ण’ तत =अन्त्यापृताज्ञानन्तर
खल ‘से हत्थिवाउए’ म हस्तिव्यापृत—महामात्र, ‘वलवाउयस्स एयमट्टं सोच्चा’
बलव्यापृतस्य ण्तमर्थं=सुमञ्जितगजाऽऽनयनान्तिरूप वचन श्रुत्वा, ‘आणाए विणएणं
वयणं पडिसुणेइ’ आज्ञाया विनयेन उचन प्रतिशृणोति—विनयपूर्वकमाज्ञावचन=सेनापति-
निदेशिमर्द्दाकरोति, ‘पडिसुणित्ता’ प्रतिश्रुय ‘छेयायरिय-उवएस-मइ-कप्पणा-
विकप्पेहिं’ छेकाऽऽचार्यो—पदेइ—मति—कल्पना—विकल्पै—छेकाचार्यस्य=पटुतरगिन्पशिक्षक-
स्योपदेइगजाता या मति=बुद्धि तथा या कल्पना=सज्जना—हस्तिना शृङ्गारसमारचना, ता
विविधप्रकारेण कल्पयति ये ते तथा तै सुगिक्षकोपदेइगलधबुद्ध्या विशिष्टगिन्पकल्पना-
कारकैरित्यर्थ, अताए ‘सुणित्ताणेहिं’ सुनिपुणै—गजादिशृङ्गाररचनाकुशलै ‘उज्जल-

चतुरगिणा सेना को भी सुसज्जित करो । (सण्णाहेत्ता) सन्नद्ध करके (एयमाणत्तिय पच्च-
प्पिणाहि) बाद मे इस मेरी आज्ञा के यथावत् पालन करने की हमें पीछे खबर दो ॥म् ४१॥

‘तए ण से हत्थिवाउए’ इत्यादि ।

(तए ण) सेनापति के आदेश देने के बाद (से हत्थिवाउए) वह हाथियों का
अधिकारी (वलवाउयस्स) सेनापति के (एयमट्टं) इस बातको (सोच्चा) सुनकर (आणाए
वयणं) आज्ञा के वचन को (विणएणं) विनयपूर्वक (पडिसुणेइ) स्वीकार किया । (पडि-
सुणित्ता) स्वीकार कर उसने (छेयायरिय-उवएस-मइ-कप्पणा विकप्पेहिं) छेकाचार्य-
विशिष्टनिपुणगिन्पशिक्षक के उपदेश से उद्भूत बुद्धि द्वारा विविध प्रकारका रचना से हाथि-

पच्चप्पिणाहि) पश्री आ भारी आशाने यथावत् पाणी तेनी भने पाछी
अखर आपो (सू ४१)

‘तए ण से हत्थिवाउए’ इत्यादि

(तए ण) सेनापतिसे आदेश दीया पछी (से हत्थिवाउए) ते हाथीओना
अधिकारी (वलवाउयस्स) सेनापतिनी (एयमट्टं) से बातने (सोच्चा) सालणीने
(आणाए वयणं) आशाना वचनने (विणएणं) विनयपूर्वक (पडिसुणेइ) स्वीकार
किया, (पडिसुणित्ता) स्वीकार करीने तेणे (छेयायरिय-उवएस-मइ-कप्पणा विक-
प्पेहिं) छेकाचार्य-विशिष्ट निपुण शिक्षकना उपदेशधी उद्भवेली बुद्धि-

हृव्व-परिवर्त्थियं सुसज्जं धम्मिय-सण्णद्ध-वद्ध-कवडय-उप्पी-
लिय-कच्छ-वच्छ-गेवेय-वद्ध-गलवर-भूपण-विरायंतं अहिय-
तेय-जुत्तं सललिय-वर-कण्णपूर-विराइयं पलंव-ओचूल-महुयर-

णेवत्थ-हृव्व-परिवर्त्थिय ' उ-वृ-नप-प-शी-परिवर्त्थितम्-उच्चवर्त्थनप येन=निर्मल-
वेपरचनया शी, परिवर्त्थित-आच्छादितम्, अलङ्कृतमित्यर्थ अतएव 'सुसज्जं'
उत्तसन्नाहम्, 'धम्मिय-सण्णद्ध-वद्ध-कवडय-उप्पीलिय-कच्छ-वच्छ-गेवेय-
वद्ध-गलवर-भूपण-विरायंतं' धार्मिक-सन्नद्ध-वद्ध-कवचिको-पीडित-रुध-वन्तो-
प्रैवेय-वद्ध-गलवर-भूपण-विराजमानम्, धार्मिक सन्नद्ध=सजीवित नद्ध यत् कवच=सन्नाह-
निशेष, तदस्वान्ताति-धार्मिकसन्नद्ध नद्धकवचिकम्, उपीडिता=आत्रप्य वदा, कक्षा=न्धन-
रज्जु, वक्षसि=वक्षस्वले यस्य तत् तथा, प्रैवेयरु=प्रोगाभूपण वद्ध गले=कण्ठे यस्य
तत् तथा, वरभूपणै = अन्वैर्गजस्य श्रेष्ठाभरणैर्विराजमानम् 'अहियतेयजुत्त'
अधिकृतेजोयुक्तम्=परमतेजस्वि, 'सललिय-वरकण्णपूर-विराइय' सललित-वरकण्णपूर-

यो के शृगार करने वाले (सुणिउणेहिं) निपुण व्यक्तियों से (उज्जल णेवत्थ-हृव्व-परि-
वर्त्थिय) हाथीका शृगार करवाया, इसमें सर्वप्रथम उन कुशल पुरुषों ने उमे निर्मल
भूषणों की रचना से अलङ्कृत किया। (सुसज्जं) उस पर अच्छी तरह से झूले वगैरह
सजाया। (धम्मिय-सण्णद्ध-वद्ध-कवडय-उप्पीलिय-कच्छ-वच्छ-गेवेय-वद्ध-गलवर-भूपण-
विरायत) धार्मिक उसर के समय जैसा हाथी का शृगार होता है ठीक वैसा ही शृगार
इसका किया गया। पेट या छाती पर इसके मजबूत कवच कमकर गाथा गया। गले में
इसके आभूषण पहिनाए गये। और इसके अग-उपागों में सुदूर उमके योग्य आभूषण

द्वारा विविध प्रकारेण हाथीकोना शृगार करवावाणा (सुणिउणेहिं) निपुण
व्यक्तितो द्वारा (उज्जल णेवत्थ हृव्व परिवर्त्थिय) हाथीना शृगार कराव्या,
तेमा अर्वाथी प्रथम ते कुशल पुरुषोअे तेने सुन्दर अलङ्कारेणी रचनाथी
अलङ्कृतं अर्थो, (सुसज्जं) तेना उपर आरी गीते अज्जे वगेरे मण्ठवी (धम्मिय
सण्णद्ध-वद्ध-कवडय-उप्पीलिय-कच्छ-वच्छ-गेवेय-वद्ध-गलवर-भूपण-विरायतं)
धार्मिक उत्सवना नभये जेवे हाथीने शृगार डोय छे तेवे व अरापर
शृगार तेने कर्ये पेट अथवा छाती उपर भूषण कवच करीने तेने
आधु गणामा तेने आभूषणो पहिराववामा आव्या तेना अन्त अगे
तथा उपागोमा सुदूर सुदूर तेने योग्य आभूषणो पहिराव्या (अहिय-

कथंधयारं चित्त-परित्योम-पच्छयं पहरणा-वरण-भरिय-जुद्ध-

विराजितम्-सललितो=ललिययुक्तौ यौ वरुणपूरौ-प्रगस्तकृणाभरणे ताभ्या विराजितम्,
 'पल्लव-ओचूल-महुयर - कथंधयार' प्रलम्बाऽनचूलमधुकरकृताऽन्धकारम् - प्रलम्बानि
 अवचूलानि=गजप्रदं प्रलम्बिशृङ्गारवलागरूपाणि यस्य तत्तथा, तथा मधुकरैर्मदज्जलान्द-
 ल्भ्यै कृत अन्धकारो यत्र तत्तथा, तत -अनयो कर्मधारय, 'तत', 'चित्त-परिच्छेय-
 पच्छय' चित्र-परिच्छेक-प्रच्छदम्-चित्रो=विचित्र परिच्छेको=लघु प्रच्छद-आच्छादन-
 वखविशेषो यस्य तत्तथा तत्, 'पहरणा-वरण-भरिय जुद्ध-सज्ज' प्रहरणा-वरण-भूतयुद्ध-
 सज्जम्-प्रहरणावरणैरायुधकरैर्भूत=सम्भूतम्, अत एव युद्धसज्ज=युद्धाय समुद्यतम्, 'सच्छत्त'

पहिरा दिये गये । (अहियतेयजुत्त) इससे स्वाभाविकरूप से तेज मपन्न वह गजराज
 देखने में और अधिक तेजस्वी दीखने लगा । (सललिय वर-कृष्णपूर-विराडयं) इसके
 कान में जो आभूषण-कृष्णपूर पहिराने में आये थे वे चलते समय इधर उधर जब हिलत
 थे तब उनके द्वारा यह गजराज बड़ा ही सुहावना लगता था । (पल्लव ओचूल-महुयर-
 कथंधयार) इस पर जो झूल डाली गई थी वह पीठ से नीचे तक लटक रही थी । इसके
 कपोल स्थल से जो मदजल झर रहा था और उसकी सुगन्धि से जो भ्रमरसमूह उसके
 आसपास मटारा रहा था वह ऐसा मादम होता था कि मानो इसकी शरण में अन्धकार ही
 आया है । (चित्त-परित्योम-पच्छयं) इसकी पीठ पर झूल के ऊपर जो छोटा सा आ-
 च्छादकवख डाला गया था वह मुन्दर वेलवृष्टियों से युक्त था । (पहरणा-वरण-भरिय-
 जुद्ध-सज्ज) प्रहरण-शस्त्र और आवरण-कवच से सुसज्जित यह हार्थी ऐसा मादम पड़ता
 था कि मानो यह युद्ध के लिये ही सजाया गया है । (सच्छत्त) यह उन्नतसहित था ।

तेयजुत्त) आथी आभाविद्ध तेजथी मपन्न ते गजराज वधारे तेजस्वी
 देभातो इतो (सललिय वर-कृष्णपूर-विराडयं) तेना कानमा के आभूषण-
 कृष्णपूर पडेशवचामा आव्या इता ते आलती वपते न्यारे आभतेम डालता
 इता त्यारे तेनाथी आ गजराज गहुं व शोलायमान लागतो इतो (पल्लव
 ओचूल-महुयर-कथंधयार) तेना पर के झूल राभी इती ते पीठथी नीचे सुधी
 लटकी रही इती तेना ग उस्थलथी के मदजल अरी रहुं इतुं तथा तेनी
 सुगन्धथी के लभराओना समूह तेनी आसपास इरतो रडेतो इतो तेथी
 ओम वषातु इतु के नष्टे तेना शरषुमा अन्धकार व आव्यो छे (चित्त-
 परिच्छेय पच्छय) तेनी पीठ पर झूल ऊपर के नानु ढाकेलु वख नाभ्यु इतुं
 ते मुद्दर वेल-वृष्टियोथी युक्ता इतु (पहरणा वरण भरिय जुद्ध-सज्ज) प्रहरण-
 शस्त्र अने आवरण-कवचथी सुसज्जित आ इथी ओयो लागतो इतो के

सज्जं सच्छत्तं सज्जयं सघटं सपडागं पंचामेलय-परिमंडिया-
भिरामं ओसारिय-जमल-जुयल-घटं विज्जुपिणद्धं व कालमेहं
उप्पाइयपव्वयं व चंक्रमंतं मत्तं गुलगुलंतं मण-पवण-जडण-वेगं

सच्छत्रम्-छत्रयुक्तम्, 'सज्जय' सध्वजम्-ध्वजयुक्तम् 'सघटं' सघण्टम्-घण्टाभूषितो-
भयपार्श्वम्, 'पंचामेलय-परिमंडिया-भिराम' पञ्चामेलक-परिमण्डिताभिरामम्-
पञ्चभिरामेलकैः=पञ्चवर्णाभिः पुष्पमालाभिः परिमण्डितम्-अतएव अभिराम=सुन्दर यत्तथा
तत्, 'ओसारिय-जमल-जुयल-घट' अत्रसागित-यमल-युगल-घण्टम्-अवसारितम्=
अधोऽवलम्बित यमल=सम युगल=द्विक्र घण्टयोर्यत्र तत् तथा तत्, 'विज्जुपिणद्धं' विद्यु-
पिनद्धम्-विद्युद्विद्योतित 'कालमेहं व' कालमेघमिव-गजस्य कृष्णवर्णचात उच्चतया च
मेघोपमा, 'उप्पाइय-पव्वय व' औपातिकपर्वतमिव-अरुस्मान्-नृतनसमुद्भूतपर्वतमिव,
'चंक्रमंत' चङ्क्रममाणम्-अनिशयेन क्राम्यन्-स्वामापरिकपर्वतो हि न चङ्क्रम्यते इति
भाष्ये । 'गुलगुलंतं' ध्वनन्-महामेघवद ध्वनिं कुर्वन्-इत्यर्थे, 'मण-पवण-जडण-वेग'

(सज्जय) ध्वजासहित था (सघट) घटाओं से इसके उभयपार्श्व युक्त थे। (पंचामेलय-
परिमंडिया-भिरामं) पाचवर्ण के पुष्पमाला पहनाने के कारण यह अत्यन्त सुन्दर लगता
था। (ओसारिय-जमल-जुयल-घट) नीचे तरफ एक ही साथ लटकते हुए दो घटों
से यह आभूषित था। (विज्जुपिणद्ध) इस पर जो भी आभूषण सजाये गये वे वे विजली
के समान चमकते थे, अतः यह गजराज (कालमेह व) कृष्णवर्ण होने से काल मेघ के
जैसा जात होता था। (चंक्रमत उप्पाइयपव्वय व) चलते समय यह औपातिक पर्वत
के समान दिखायी देता था। (गुलगुलत) जब यह चिंघाटता था तो ऐसा प्रतीत होता

जैसे जैसे बुझने भाटे न सनयेवे। (सच्छत्त) जैसे छत्रसहित होते।
(सज्जय) ध्वजसहित होते। (सघट) घटाओं के अन्तर्गत आने लटकती होती
(पंचामेलय-परिमंडिया-भिरामं) पाच वर्णों की पुष्पमाला पहनेवाली थी जैसे सुंदर
लागता है। (ओसारिय-जमल-जुयल-घट) नीचे मुधी जैसे नीचे लटकता
वे घटाओं की ते शोभते है। (विज्जुपिणद्ध) तेना पर नै डोई आलक्षु
सज्जयेला होता ते वीज्जुपिणा जेवा चमकता हुना आथी आ गन्तराज
(कालमेह व) कृष्णवर्ण होवाथी काल मेघना जेवा ज्युतो होता। (चंक्रमत उप्पा
इयपव्वय व) आलती वधते जैसे औत्पातिक पर्वतना जेवा देखातो होता।
(गुलगुलत) क्यारे ते अराइतो-होते।-इत्यर्थे जैसे प्रतीत थतु हुतु ते वैसे

भीमं संगामियाओज्जं आभिसेकं हत्थिरयणं पडिकप्पेइ, पडि-
कप्पित्ता हय - गय-रह - पवरजोह-कलियं चाउरंगिणीं सेणं
सण्णाहेइ, जेणेव वलवाउए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ ॥ सू० ४२ ॥

मन पवनजयिवेग-ग या मन पवनाधिकरेगयुक्त, 'भीमं' भयङ्करम्, 'सगामियाओज्जं'
सामामिकाऽऽयोग्यम् - ग्राम एव सामामिक तस्मिन् आयोग्यम्=आयोजनीय-ग्राम-
योग्यमित्यर्थ, 'आभिसेकं हत्थिरयण' आभिषेक्य हस्तिरत्नम् - अभिषेकहं
हस्तिश्रेष्ठम्, 'पडिकप्पेइ' परिकल्पयति, 'पडिकप्पित्ता' परिचय्य, 'हय-गय-रह-
पवरजोह-कलिय' हय-गज-रथ-प्रवरयोः-कलिता-हयैर्गजै रथं प्रवरयोश्च महारथिभि
र्युक्ताम्, 'चाउरंगिणीं सेणं' चतुरङ्गिणीं सेनाम्=चतुरङ्गवर्ता सेनाम्, 'सण्णाहेइ' सना-
हयति, 'जेणेव वलवाउए' यत्रैव वलव्यापृत-सेनापति, 'तेणेव उवागच्छइ'
तत्रैवोपागच्छति, 'उवागच्छित्ता' उवागय, 'एयमाणत्तियं' एतामाज्ञामिकां-सेना-
पतेराज्ञाम् 'पच्चप्पिणइ' प्रवर्षयति-तदीयामाज्ञा सन्पाद्य पश्चान्निवेदयति, भवदाज्ञानुसारेण
मर्षं मयादित्तमस्माभिरिति ॥ ४२ ॥

कि मानो महामेघकी गर्जना हो रही है। (मण-पवण-जङ्गण-वेग) इसकी गति मन और
पवन के वेग को जीतने वाली थी, (भीम) देखने में यह बड़ा भयङ्कर जैसा लगता था।
(सगामियाओज्जं) उस के ऊपर जितनी भी सामग्रियाँ रखने में आई थीं वे सब लगाम
के योग्य थीं। (आभिसेक हत्थिरयण) इस प्रकार हम पट्टहस्ति को (पडिकप्पेइ)
उन निपुण मतिवाले पुरुषों से सज्जवाया, (पडिकप्पित्ता) मज्जवाने के बाद फिर उस हाथी
के अधिकारी ने उन निपुण पुरुषों से (हय-गय-रह-पवरजोह-कलियं चाउरंगिणीं सेणं सण्णाहेइ)

भडाभेधनी गर्जना थाय छे (मण-पवण-जङ्गण-वेग) तेनी गति मन तथा
'पवनना वेगने श्रुते श्रेवी हती (भीम) नेवाया श्रे अहु लथउर-नेवे
-लागतो हतो (सगामियाओज्जं) तेना उपर नेटलीये सामथीये राधवाभा
-आवी हती ते अधी न आभने येज्य हती (आभिसेक हत्थिरयण) आ
प्रकारे श्रे पट्टहन्तिने (पडिकप्पेइ) ते निपुण पुद्धिवाला पुद्धोये सलन्थो
हतो (पडिकप्पित्ता) तैयार कनी लीधा पछी ते हाथीना आधिकारीये ते
निपुण पुद्धोदाग (हय-गय-रह-पवर-जोहकलियं चाउरंगिणीं सेणं सण्णाहेइ) घोडा,

मूलम्—तए णं से बलवाउए जाणसालियं सदावेइ, सदावित्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया । सुभद्दापमुहाणं देवीणं वाहिरियाए उवट्टाणसालाए पाडियक्कपाडियक्काइं

टीका—‘तए णं से’ इत्यादि । ‘तए ण से बलवाउए’ तत सल्ल स बलव्यापृत—तदनन्तरम्—चतुरङ्गिणासेनासज्जीकरणानन्तर स सेनापति ‘जाणसालिय’ यानशालिक=यानशालाधिकृतम्, ‘सदावेइ’ शब्दयति=आह्वयति, ‘सदावित्ता एव वयासी’ शब्दयि वा ण्वमयादीत् ‘खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ।’ क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिय ! ‘सुभद्दापमुहाण देवीण’ सुभद्राप्रमुखाना=सुभद्रादीना देवीना ‘वाहिरियाए उवट्टाण-

सेण सण्णाहेइ) घोडा, हाथी, रथ एव सुभद्रों से युक्त चतुरगिणी सेना सज्जायी, सज्जा कर (जेणेव बलवाउए) जहाँ पर सेनापति थे (तेणेव उवागच्छइ) वहाँ पर गया, (उवागच्छित्ता) पहुँचकर (एयमाणत्तिय पच्चप्पिणइ) उसने निवेदन किया कि आपने जो आज्ञा प्रदान का थी वह सज्जा मैंने आपकी आज्ञानुसार ठीक कर लिया है ॥ सू० ४२ ॥

‘तए ण से बलवाउए’ इत्यादि ।

(तए णं) चतुरगिणी सेना जन सजी जा चुको तत्र (से बलवाउए) उस सेनापतिने (जाणसालिय) यानशाला के अधिकारी को (सदावेइ) बुलाया, (सदावित्ता) बुलाकर (एव वयासी) इस प्रकार कहा—(खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया) हे देवानुप्रिय ! तुम शीघ्र ही (सुभद्दापमुहाण देवीण) सुभद्रा आदि देवियों के लिये (वाहिरियाए उवट्टाणसालाए) बाहर की उपस्थानशाला में (पाडियक्कपाडियक्काइं) एक एक रानी

हाथी, रथ तेभज्ज सुभद्रोत्थी युक्त चतुर गिणी सेना तैयार करावी. तैयार करावीने (जेणेव बलवाउए) न्या सेनापति हुता (तेणेव उवागच्छइ)त्या गया, (उवागच्छित्ता) तेषु त्या पडोत्थीने (एयमाणत्तिय पच्चप्पिणइ) निवेदन कर्तुं के आपे ने आज्ञा आपी हुती ते अधु मे आपनी आज्ञाप्रमाणे ठीक करी लीधु छे (सू० ४२)

‘तए ण से बलवाउए’ इत्यादि

(तए णं) चतुर गिणी सेना न्यारे तैयार थर्ध चुकी त्यारे (से बलवाउए) ते सेनापतिने (जाणसालिय) यानशालाना अधिकारीने (सदावेइ) बोलाये, (सदावित्ता) बोलावीने (एव वयासी) आ प्रतीरे उह्यु—(खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया) हे देवानुप्रिय ! तमे जलही (सुभद्दापमुहाण देवीण) सुभद्रा आदि देवीये भाटे (वाहिरियाए उवट्टाणसालाए) अहारनी उपस्थानशालामा (पाडियक्क

जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं उवट्टवेहि, उवट्टवित्ता एयमणत्तियं पच्चप्पिणाहि ॥ सू० ४३ ॥

मूलम्—तए णं से जाणसालिए वलवाउयस्स एयमट्टं

सालाए' वातायामुपस्थानशालायाम्, 'पाडियक्कपाडियक्काइं' प्रयेक प्रयेकम्=प्रयेकाऽर्थम्, 'जत्ताभिमुहाइ' यात्राभिमुखानि=भगवद्दर्शनार्थगमनानुवृत्तानि 'जुत्ताइं' युक्तानि 'जाणाइ' यानानि 'उवट्टवेहि' उपस्थापय—सज्जीकृत्य समानय, 'उवट्टवित्ता' उपस्थाप्य 'एयमाणत्तिय पच्चप्पिणाहि' एतामाजमिका प्रत्यर्पय—मदीयामाजा पश्चात् समर्पय—सर्वं सम्पादितम् इति नूहि ॥ सू० ४३ ॥

टीका—'तए ण से' इत्यादि ।

तत रसु स 'जाणसालिए वलवाउयस्स एयमट्ट' यानशालिको बलव्यावृत्तस्यैतमर्थम्=यानसज्जीकरणेऽऽनयनरूप निर्देशं श्रुत्वा, आज्ञाया विनयेन वचन 'पडिसुणेइ'

के बैठने योग्य अलग २ रूप मे (जत्ताभिमुहाइ) यात्रा के लायक—भगवान के दर्शन करने के लिये जिसमे बैठकर जाया जाता है ऐसे (जुत्ताइ) एव अच्छे २ बेलों से युक्त (जाणाइ) रथादिक वाहनों को (उवट्टवेहि) उपस्थित करो, (उवट्टवित्ता) उपस्थित करके (एयमाणत्तिय पच्चप्पिणेहि) इस मेरी आज्ञा को यथावत् पालन करने की खबर पीठे मुझे बहुत जल्दी भेजो ॥ सू० ४३ ॥

'तए ण से जाणसालिए' इत्यादि ।

(तए ण) सेनापति के आदेश देने के बाद (से जाणसालिए) उस यानशाला के अधिकारी ने (वलवाउयस्स) सेनापति के (एयमट्ट) यान को सज्जित करके लानेकी

पाडियक्काइ) ओक ओक राष्ठीने जेसवा येअज्ज अलग अलग इपभा (जत्ताभिमुहाइ) यात्राने लायक भगवानना दर्शन करवा भाटे जेभा जेसीने जवाथ जेवा, (जुत्ताइ) तेभज्ज सारा सारा भण्णहोथी युत्त (जाणाइ) रथ आदिक वाडनेने (उवट्टवेहि) डाअर करे (उवट्टवित्ता) डाअर करीने (एयमाणत्तिय पच्चप्पिणेहि) आ भागी आशानु पालन करवानी भण्णर पछी भने भइ ज्जदी भेडले (सू० ४३)

“ तए ण से जाणसालिए ” इत्यादि

(तए ण) सेनापतिना आदेश दीधा पछी (से जाणसालिए) ते यानशालाना अधिकारीजे (वलवाउयस्स) सेनापतिनी (एयमट्ट) यानने तैथार करीने लाव

आणाए विणएण वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता जेणेव जाण-
साला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाणाइ पच्चुवेक्खेइ, पच्चु-
वेक्खित्ता जाणाइ संपमज्जेइ, संपमज्जित्ता जाणाइ संवट्टेइ, संवट्टित्ता
जाणाइ णीणेइ, णीणित्ता जाणाणं दूसे पवीणेइ, पवीणित्ता जाणाइं

प्रतिगृहोति=स्वीकरोति, प्रतिश्रुय=आज्ञावचन स्वीकृत्य यत्रैव यानशाला तत्रैवोपागच्छति,
उपागत्य 'जाणाइ पच्चुवेक्खेइ' यानानि प्रत्युपेक्षते=सम्यक् पश्यति, प्रत्युपेक्ष्य=दृष्ट्वा
'जाणाइ संपमज्जेइ' यानानि सम्प्रमार्जयति-विगतरजासि तुरस्ते, सम्प्रमार्ज्य, 'जाणाइं
संवट्टेइ' यानानि व्यर्त्तयति-एकस्मिन् स्थाने स्थापयति, 'संवट्टित्ता' अर्त्थ 'जाणाइं
णीणेइ' यानानि नयति-शालातो बहिःफरोति, नांवा 'जाणाण' यानाना 'दूसे'
दूष्याणि=आच्छादनवस्त्राणि 'पवीणेइ' प्रविनयति=अपसारयति, प्रविनाय-अपसार्य,

आज्ञाको मुनकर (आणाए विणएण वयण) उस आज्ञावचन को विनयपूर्वक (पडिसु-
णेइ) स्वीकार किया, (पडिसुणित्ता) स्वीकार करके फिर वह (जेणेव जाणसाला)
जहा यानशाला था (तेणेव उवागच्छइ) वहाँ पहुँचा, (उवागच्छित्ता) पहुँचकर
(जाणाइ पच्चुवेक्खेइ) उसने वहा पहिले रथ आदि यानों को अच्छी तरह से देखा ।
(पच्चुवेक्खित्ता) देखकर (जाणाइ संपमज्जेइ) उसने उन्हे अच्छी तरह झाड़-झूट कर
साफ किया । (संपमज्जित्ता जाणाइं संवट्टेइ) साफ करने के बाद उसने फिर जितने
चाहिये थे उतने यान एक जगह एकत्रित किये । (संवट्टित्ता) टकड़ करने के बाद
(जाणाइ णीणेइ) वहा से उसने उन सब को बाहिर निकाला । (णीणित्ता) बाहिर

यानी आज्ञा सालाणीने (आणाए विणएण वयण) ते आज्ञावचनने विनयपूर्वक
(पडिसुणेइ) स्वीकार कथी (पडिसुणित्ता) स्वीकार करीने पछी ते (जेणेव
जाणसाला) तथा यानशाला छती (तेणेव उवागच्छइ) तथा पडेला तथा (उवाग
च्छित्ता) पडेलाथीने (जाणाइ पच्चुवेक्खेइ) तेथे तथा पडेला रथ आदि यानोने
मागी रीते जेया. (पच्चुवेक्खित्ता) जेधने (जाणाइ संपमज्जेइ) ते तेथे
मागी रीते वाणी-बूडी माइ तथा (संपमज्जित्ता जाणाइ संवट्टेइ) माइ उगी
वीधा पछी तेथे जेटला जेधता छता तेटला यान (वाडन) जेज जगाथे
जेकडा कथा (संवट्टित्ता) जेकडा करी वीधा पछी (जाणाइ णीणेइ) तथाथी
तेथे जे गधाने गडार गडया (णीणित्ता) गडार गडीने (जाणाण दूसे

जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं उवट्टवेहि, उवट्टवित्ता एयमणत्तियं
पच्चप्पिणाहि ॥ सू० ४३ ॥

मूलम्—तए णं से जाणसालिए वलवाउयस्स एयमट्ट

सालाए' यात्रायामुपस्थानशालायाम्, 'पाडियवपाडियक्काइं' प्रयेक प्रयेकम्=प्रत्ये-
काऽर्थम्, 'जत्ताभिमुहाइ' यात्राभिमुत्तानि=भगवद्दर्शनार्थगमनानुत्तानि 'जुत्ताइ' युक्तानि
'जाणाइ' यानानि 'उवट्टवेहि' उपस्थापय-सज्जीकृत्य समानय, 'उवट्टवित्ता' उपस्थाप्य
'एयमाणत्तिय पच्चप्पिणाहि' एतामाजमिका प्रयर्पय-मठीयामाजा पश्चात् समर्पय-सर्वं
सम्पादितम् इति नूहि ॥ सू० ४३ ॥

टीका—'तए ण से' इत्यादि ।

तत सल्ल स 'जाणसालिए वलवाउयस्स एयमट्ट' यानशालिको वलव्यावृत्त-
स्यैतमर्थम्=यानसज्जीकरणाऽऽनयनरूप निर्देशं श्रुत्वा, आज्ञाया विनयेन वचन 'पडिसुणेइ'

के बैठने योग्य अलग २ रूप मे (जत्ताभिमुहाइ) यात्रा के लयकर-भगवान के दर्शन
करने के लिये जिसमे बैठकर जाया जाता है ऐसे (जुत्ताइ) एव अच्छे २ बेलों से युक्त
(जाणाइ) रथादिक वाहनों को (उवट्टवेहि) उपस्थित करो, (उवट्टवित्ता) उपस्थित करके
(एयमाणत्तिय पच्चप्पिणेहि) इस मेरी आज्ञा को यथावत् पालन करने की खबर
पीछे मुझे बहुत जन्दी भेजो ॥ सू० ४३ ॥

'तए ण से जाणसालिए' इत्यादि ।

(तए ण) सेनापति के आदेश देने के बाद (से जाणसालिए) उस यानशाला
के अधिकारी ने (वलवाउयस्स) सेनापति के (एयमट्ट) यान को सज्जित करके लानेकी

पाडियक्काइ) ओठ ओठ राखीने भेम्बा योज्य अलग अलग रूपमा (जत्ता
भिमुहाइ) यात्राने लायठ भगवानना दर्शन करवा भाटे नेमा भेसीने ज्वाय
ओवा, (जुत्ताइ) तेमज्ज सारा मारा णणहोथी सुत्त (जाणाइ) रथ आदिठ
वाडनेने (उवट्टवेहि) डाव्ठर करे (उवट्टवित्ता) डाव्ठर करीने (एयमाणत्तिय
पच्चप्पिणेहि) आ मारी आशानु पालन करवानी णणर पछी भने णहु
ज्ठदी भोडवे। (सू० ४३)

“ तए ण से जाणसालिए ” इत्यादि

(तए ण) सेनापतिना आदेश दीधा पछी (से जाणसालिए) ते यानशालाना
अधिकारीजे (वलवाउयस्स) सेनापतिनी (एयमट्ट) यानने तैथार करीने लाव

आणाए विणएण वयणं पडिसुणेड, पडिसुणित्ता जेणेव जाण-
साला तेणेव उवागच्छड, उवागच्छित्ता जाणाडं पञ्चुवेक्खेड. पञ्चु-
वेक्खित्ता जाणाड संपमज्जेड, संपमज्जित्ता जाणाडं संवट्टेड, संवट्टित्ता
जाणाडं णीणेड, णीणित्ता जाणाणं दूसे पवीणेड, पवीणित्ता जाणाडं

प्रतिगृहोति=स्वीकरोति, प्रतिश्रुय=आज्ञावचन स्वीकृत्य यत्रैव यानशाला तत्रैवोपागच्छति,
उपागय 'जाणाड पञ्चुवेक्खेड' यानानि प्रायुपेक्षते=सम्यक् पश्यति, प्रायुपेक्ष्य=दृष्ट्वा
'जाणाड संपमज्जेड' यानानि सम्प्रमार्जयति-विगतरजासि कुरुते, सम्प्रमार्ज्य, 'जाणाडं
संवट्टेड' यानानि न्यतयति-सुकृस्मिन् स्थाने स्थापयति, 'संवट्टित्ता' अर्थ 'जाणाडं
णीणेड' यानानि नयति-शालातो वहिष्करोति, नावा 'जाणाण' यानाना 'दूसे'
दूष्याणि=आच्छादनवस्त्राणि 'पवीणेड' प्रविनयति=अपसारयति, प्रविनाय-अपसार्य,

आज्ञाको मुनकर (आणाए विणएण वयण) उस आज्ञावचन को विनयपूर्वक (पडिसु-
णेड) स्वाकार किया, (पडिसुणित्ता) स्वाकार करके फिर वह (जेणेव जाणसाला)
जहा यानशाला थी (तेणेव उवागच्छड) वहाँ पहुँचा, (उवागच्छित्ता) पहुँचकर
(जाणाड पञ्चुवेक्खेड) उसने वहाँ पहिले रथ आदि यानों को अच्छी तरह से देखा।
(पञ्चुवेक्खित्ता) देखकर (जाणाडं संपमज्जेड) उसने उठे अच्छी तरह झाड़-झड़ कर
साफ किया। (संपमज्जित्ता जाणाडं संवट्टेड) साफ करने के बाद उसने फिर जितने
चाहिये वे उतने यान एक जगह एकत्रित किये। (संवट्टित्ता) टकट कराने के बाद
(जाणाड णीणेड) वहाँ से उसने उन सब को बाहर निकाला। (णीणित्ता) बाहर

वाणी आज्ञा आलणीने (आणाए विणएण वयण) ते आज्ञावचनने। विनयपूर्वक
(पडिसुणेड) स्वीकार कर्था (पडिसुणित्ता) स्वीकार करीने पछी ते (जेणेव
जाणसाला) त्या यानशाला होती (तेणेव उवागच्छड) त्या पडेलाथे। (उवाग-
च्छित्ता) पडेलाथीने (जाणाड पञ्चुवेक्खेड) तेथे त्या पडेला रथ आदि यानोने
मागी गीते जेथे। (पञ्चुवेक्खित्ता) जेथेने (जाणाड संपमज्जेड) ते तेथे
मागी गीते वाणी-बुडी माझ कर्था (संपमज्जिता जाणाड संवट्टेड) माझ कडी
लीधा पछी तेथे बेटला जेथेता होता तेटला यान (वाहन) जेव जगाथे
जेथेता कर्था (संवट्टित्ता) जेथेता करी लीधा पछी (जाणाड णीणेड) त्याथी
तेथे जे जेथेने पडार दाढया (णीणित्ता) पडार दाडीने (जाणाण दूसे

समलंकरेइ, समलंकरित्ता जाणाइं वरभडगमंडियाइं करेइ, करित्ता जेणेव वाहणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वाहणसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता वाहणाइं पञ्चुवेस्खेइ, पञ्चुवेस्खित्ता वाहणाइं सपमज्जइ, सपमज्जित्ता वाहणाइं णीणेइ, णीणित्ता वाह-

‘जाणाइ समलंकरेइ’ यानानि समलंकरेइति=य-प्रयोगादिभि रूनालद्वाराणि करोति, समलंकरय ‘जाणाइ वरभडगमंडियाइ’ यानानि वरभाण्टकमण्डितानि=वरभरणभूषितानि ‘करेइ’ करोति, क्वा यत्रैव वाहनशाला तत्रैवोपागच्छति, उपागय, वाहनशाला-मनुप्रतिशानि, अनुप्रविश्य ‘वाहणाइं पञ्चुवेस्खेइ’ वाहनानि प्रयुपेभन्ते, तेषामङ्गप्रयत्न-सौन्दर्यं पश्यति, दृष्ट्वा-वाहनानि ‘सपमज्जइ’ सम्प्रमार्जयति=निर्मलीकरोति, सम्प्रमार्ज्यं वाह-

निकालकर (जाणाण वृत्ते पवीणेइ) उनके ऊपर के बलों को उसने दूर किया। (पवीणित्ता) जब वह कि जिनसे ये दूरे हुए थे दूर हो चुके तब उमने (जाणाइ समलंकरेइ) उन सब यानों को अलङ्कृत किया। (समलंकरित्ता) जब वे अच्छी तरह अलङ्कृत हो चुके तब (जाणाइ वरभडगमंडियाइं करेइ) उन यानों को उसने अच्छी राति से गादी-तक्रिया आदि उपकरणों से मंडित किया। (करित्ता) सुसज्जित कर (जेणेव वाहणसाला तेणेव उवागच्छइ) फिर वह जहा वाहनशाला था वहाँ पहुँचा, (उवागच्छित्ता) पहुँच कर (वाहणसाला अणुपविसइ) वर उस वाहनशाला के भीतर प्रविष्ट हुआ। (अणुपविसित्ता) प्रविष्ट होकर (वाहणाइ पञ्चुवेस्खेइ) उमने वाहना को देखा (पञ्चुवे-

पवीणेइ) तेभन्ता उपन्ता पञ्चोने तेणे इइ मूकया (पवीणित्ता) न्यारे ते पञ्चो उे जेनायी ते दकया हुता ते इइ थर्ध गया त्यारे तेणे (जाणाइ समलंकरेइ) ते यथा यानोने शशुगाथां (समलंकरित्ता) न्यारे ते नारी गीते अलङ्कृत थर्ध युक्ता त्यारे (जाणाइ वरभडगमंडियाइ करेइ) ते यानोने तेणे नारीगीतथी गादी तक्रिया आदि उपकरणोथी मंडित थयां (करित्ता) सुसज्जित करीने (जेणेव वाहणसाला तेणेव उवागच्छइ) पछी ते न्या वाहनशाला हुती त्या पडोन्था (उवागच्छित्ता) पडोन्थीने (वाहणसाला अणुपविसइ) ते जे वाहनशालानी अहर दापल थया (अणुपविसित्ता) दापल थर्धने (वाहणाइ पञ्चुवेस्खेइ) तेणे वाहनोने जेथा (पञ्चुवेस्खित्ता) जेथने (वाह-

गाडं अप्फालेड, अप्फालित्ता दूसे पवीणेड, पवीणित्ता वाहणाडं
समलंकरेड, समलंकरित्ता वाहणाडं वरभंडगमंडियाडं करेड, करित्ता
वाहणाड जाणाडं जोएड, जोडत्ता पओयलट्टि पओयधरण य

नानि 'णीणेड' नप्रति=प्रतिष्करोति, नीचा वाहनानि 'अप्फालेड' आस्फालयति=हस्तेन
आस्फालयति, आस्फाल्य 'दूसे पवीणेड' दूष्याणि प्रमिनयति=आच्छादनपश्चात्प्रमिनयति,
प्रविनीय 'वाहणाड समलंकरेड' वाहनानि समलङ्करोति, समलङ्कृत्य वाहनानि
'वरभंडगमंडियाडं करेड' वरभागडकमण्डितानि करोति, कृत्वा 'वाहणाड जाणाडं
जोएड' वाहनानि यानेषु योजयति, योजयित्वा यानशालिक 'पओयलट्टि' प्रतोदयति
वाहनचालनार्थं यष्टि 'पराणी' इति भाषाप्रसिद्धा 'पओयधरण य' प्रतोदधरण=
अकटवाहकान् सम=युगपत्-एकस्मिन् काले 'आडहट्ट' आहरति=एकस्मिन् स्थाने सवा-

खित्ता) देयकर (वाहणाड संपमज्जइ) उसन उन्हें साफ किया । (सपमज्जित्ता) साफ-
सूफ कर (वाहणाड णीणेड) वाहनो को उमन वहा से बाहिर निकाल, (णीणित्ता) बाहिर
निकालकर (वाहणाड अप्फालेड) उमने फिर उनके पीठ पर हाथ फिराया, (अप्फालित्ता)
हाथ फिरकर (दूसे पवीणेड) फिर उसने उनकी गोलियों को अलग किया । (पवीणित्ता)
उन गोलियां उनकी अलग हो चुकां तब फिर उमने (वाहणाडं समलंकरेड) उन वाह-
नोंको श्रमागति किया । (समलंकरित्ता) जब वे अच्छी तरह से सजा दिये गये तब
(वाहणाड वरभंडगमंडियाड करेड) उसन उनको उपकरणों से मटित किया, (करित्ता)
करा के बाद (वाहणाड जाणाडं जोएड) फिर उसने उन वाहनो-त्रैल्यो को रथा में
जोने, (जोडत्ता) जोतन के बाद (पओयलट्टि पओयधरण य सम आडहट्ट) उमने

गाड सपमज्ज) तेषु तेभने माइ वथा (सपमज्जित्ता) माइ-सूक ऽग्गिने
(वाहणाड णीणेड) वाडनोने तेणे त्याथी अड्ढा ऽढया (णीणित्ता) अड्ढा
ऽढीने (वाहणाड अप्फालेड) तेषु क्शीने तेभनी पी० उपर डाय इग्ग्ये
(अप्फालित्ता) डाय इक्खीने (दूसे पवीणेड) पछी तेषु तेभनी जेणोने लुदी
ऽग्गी, (पवीणित्ता) न्यादे जेणो तेभनी लुदी इग्गध गध त्यार पछी तेषु
(वाहणाड समलंकरेड) ते वाडनोने शणुगाथा, (समलंकरित्ता) न्यादे ते मारी
दीते तैथा ऽथ (मन्दध) गया त्यारे (वाहणाड वरभंडगमंडियाडं करेड) तेषु
तेभने उपरखेयाथी भडित वथा (करित्ता) वथा पछी (वाहणाड जाणाड जोएड)
तेषु ते वाडनोना अणोने रथेभा नेडाव्या, (जोडत्ता) नेडाव्या पछी (पओयलट्टि

समं आडहड, आडहिता वट्टमग्गं गाहेड, गाहिता जेणेव वलवाउए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता वलवाउयस्स एयमाणत्तियं पच्चप्पिणड् ॥ सू० ४४ ॥

मूलम्—तए णं से वलवाउए णयरगुत्तियं आमंतेइ,

हंनयानानि तेषु प्रतोदयणी प्रतोदधरान्=अकटवाहकाश्च स्थापयति । 'आडहिता' आह्वय, 'वट्टमग्ग' वर्तमार्गम्=अकटादिगम्यमार्गं-राजमार्गं 'गाहेड' ग्राहयति, ग्राहयिवा यत्रैव बलव्यापृतस्तत्रैवोपागच्छति, उपाग य 'वलवाउयस्स एयमाणत्तियं पच्चप्पिणड' बलव्यापृताय एतामाजसिका प्रत्यर्पयति=आज्ञा सम्पाद्य पश्चान्निवेदयतीत्यर्थः ॥ सू० ४४ ॥

टीका—'तए ण' इत्यादि । 'तए ण से वलवाउए' तत गच्छ स बलव्यापृतो

उन यानों मे हाकने का चावुकों एव हाकने वालों को एक ही साथ स्थापित कर दिया, (आडहिता) चावुक लेकर हाकने वाले जन अच्छी तरह उन यानों पर जमकर बैठ चुके तब (वट्टमग्गं गाहेड) उसने उन यानों को राजमार्ग पर उपस्थित किये । (गाहिता जेणेव वलवाउए तेणेव उवागच्छइ) उन्हें राजमार्ग पर उपस्थित कर फिर वह यान गलिधिकारी जहा सेनापति थे वहा पहुचा । (उवागच्छिता वलवाउयस्स एयमाणत्तियं पच्चप्पिणड) पहुँचकर उसने कहा कि हे स्वामिन् ! आपके आजानुसार सभी यान तैयार है ॥ सू० ४४ ॥

'तए ण से वलवाउए' इत्यादि ।

(तए ण) उसके बाद (से वलवाउए) उस सेनापतिने (णयरगुत्तियं) नगर की रक्षा

पओयधरण य सम आडहड) तेषु ते यानोभा डाठवानी आणुडो तेभए डाठवावाणाने अेठ ए साथे स्थापित करी दीधा (आडहिता) आणुक लधने डाठवावाणा न्यारे मारी गीते ते यानो उपर जेभी युक्कया त्यारे (वट्टमग्ग गाहेड) तेषु ते यानोने गजमार्ग पर डाउर कर्या, (गाहिता जेणेव वलवाउए तेणेव उवागच्छइ) तेभने राजमार्ग पर डाउर करीने पछी ते यानशाणाधिकारी सेनापतिनी याने पडोअ्ये (उवागच्छिता वलवाउयस्स एयमाणत्तियं पच्चप्पिणड) पडोअ्येने तेषु कहु डे डे स्वामिन् ' आपनी आज्ञाप्रभासे गधा यान तैयार छे (सू० ४४)

“ तए ण से वलवाउए ” इत्यादि

(तए ण) त्पार पछी (से वलवाउए) ते सेनापतिसे (णयरगुत्तियं) नगरनी

आमंतित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया । चंपं णयरिं
सन्धिभतरवाहिरियं आसित्त जाव कारवेत्ता एयमाणत्तियं
पच्चप्पिणाहि ॥ सू० ४५ ॥

'णयरगुत्तिय' नगरगुत्तिकरु=नगरगोमार्गम् 'आमतेइ' आमन्त्रयति=आहयति, -'आमतित्ता
'एव वयासी' आमन्त्रयैमरादीत् 'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया'
हिप्रमेव भो देवानुप्रिय । 'चप णयरिं' चम्पा नगर 'सन्धिभतरवाहिरिय' साम्यन्तर-
वाद्याम् 'आसित्त जाव कारवेत्ता' आसित्तशुचिसमृद्ध्यान्तरापगर्वीयिका यावद्गन्ध
वर्जिभूता कुरु, कारय, कृ गा, कारयित्वा 'एयमाणत्तिय' एतामाजमिका 'पच्चप्पिणाहि'
प्रत्यर्पय ॥ सू० ४५ ॥

कर्मगले कोटमाल को (आमतेइ) बुलाया, और (आमतित्ता) बुलाकर (एवं वयासी) इस प्रकार
कहा—(खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया) हे देवानुप्रिय । तुम ज्ञात्र ही (चप णयरिं) इस चपा
नगर की (सन्धिभतरवाहिरिय) भातर बाहिर से सफाई करओ। पाना से इसमें छिड़काव कराओ ।
जगत् २ इसे पानी से बुलवाओ । कहा भी कूडा-कर्मक का नाम न मिले, इस तरह से
इसमें सफाई हो जाना चाहिये । प्रत्येक गली एत्र बाजारा के मार्ग सब बहुत ही अच्छा
तरह से साफमूफ किये जाये । जगह २ सुगन्धित जल का, गोरोचन का एव सरस लाल
चदन का छिड़काव हो, जिससे यह नगर सुगन्धित द्रव्य जैसी बन जावे । तुम से यही
कहना है, जाओ और इस आदेश की शीघ्र से शीघ्र पूति करो और उन कामों को पूरा
कर के मुझे शीघ्र सूचित करो ॥ सू० ४५ ॥

रक्षा करवाणा डेटवावने (आमतेइ) भोलाव्या अने (आमतित्ता) भोलावीने
(एव वयासी) आ प्रकारे उछु (खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया) हे देवानुप्रिय ।
तमे नलदीथी (चप णयरिं) आ अ पानगरीनी (सन्धिभतरवाहिरिय) अहर तथा
अडारथी सक्षार्थ करावो, तेमा पाणीने छटकाव करावो, ठेक-ठेकाण्णे
तेने पाणीथी धोवरावो उथाय पणु उडाउरउटतु नाम न रहे अमे तेनी
सक्षार्थ थवी नेधअे प्रत्येउ गली तेमअ अजरना रन्ता पृअअ सागी रीते
साकसूद करवा ठेठेकाण्णे सुगन्धित नलने, गोगीर्ष-सुअडने तेमअ सरस
रकत अहनने छटकाव डोय, नेथी आ नगरी सुगन्धित थीअ नेवी अनी
अथ तमने अेअ कडेवानु छे नलने अने आदेशने नलदी पूर्ण करे अने
ते कामे पूरा उनीने अने नलदी अअर डरे (सू० ४५)

समं आडहइ, आडहिता वट्टमगं गाहेइ, गाहिता जेणेव बलवाउए
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता बलवाउयस्स एयमाणत्तियं पच्च-
प्पिणइ ॥ सू० ४४ ॥

मूलम्—तए णं से बलवाउए णयरगुत्तियं आमतेइ,

हनयानानि तेषु प्रतोदयष्टी प्रतोदंधरान्=अकटवाहकाश्च स्थापयति । 'आडहिता' आह्वय,
'वट्टमगं' वर्तमार्गम्=अकटादिगम्यमार्गं-राजमार्गं 'गाहेइ' ग्राहयति, ग्राहयिवा यत्रैव
बलव्यापृतस्त्रयवोपागच्छति, उवागच्छ 'बलवाउयस्स एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ' बलव्या-
पृताय एतामाजमिका प्रत्यर्पयति=आजा सम्पाद्य पश्चान्निवेदयतीत्यर्थः ॥ सू० ४४ ॥

टीका—'तए णं' इत्यादि । 'तए णं से बलवाउए' ततः सखु स बलव्यापृता

उन यानों में हाकने की चाबुका णं हाकने वालों को एक ही साथ स्थापित कर दिया,
(आडहिता) चाबुक लेकर हाकने वाले जन अच्छी तरह उन यानों पर जमकर बैठ चुके
तब (वट्टमगं गाहेइ) उसने उन यानों को राजमार्ग पर उपस्थित किये । (गाहिता
जेणेव बलवाउए तेणेव उवागच्छइ) उन्हें राजमार्ग पर उपस्थित कर फिर वह यान
शालधिकारी जहा सेनापति थे वत्त पहुंचा । (उवागच्छिता बलवाउयस्स एयमाण-
त्तियं पच्चप्पिणइ) पहुँचकर उसने कहा कि हे स्वामिन् ! आपके आज्ञानुसार सभी यान
तैयार हैं ॥ सू० ४४ ॥

'तए णं से बलवाउए' इत्यादि ।

(तए णं) उसके बाद (से बलवाउए) उम सेनापतिने (णयरगुत्तियं) नगर का रक्षा

पओयधरण य सम आडहइ) तेषु ते यानोभा डाडवाणी थायुके तेभञ्ज डाड-
वावाणाने अड व साथे स्थापित करी दीधा (आडहिता) थायुके लधने
डाडवावाणा न्यारे मारी गीते ते यानो उपर जेसी थुक्या त्यारे (वट्टमगं गाहेइ)
तेषु ते यानोने राजमार्ग पर डाडर थ्या, (गाहिता जेणेव बलवाउए तेणेव उवा
गच्छइ) तेभने राजमार्ग पर डाडर करीने पधी ते यानशाणाधिकारी सेना
पतिनी पाने पडोथ्ये (उवागच्छिता बलवाउयस्स एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ)
पडोथ्येने तेषु ठुठु डे डे स्वामिन्' थापनी थाज्ञाप्रभाषे थधा यान तैयार
छे (सू० ४४)

“तए णं से बलवाउए” इत्यादि

(तए णं) त्थार पधी (से बलवाउए) ते सेनापतिथे (णयरगुत्तियं) नगरनी

आमंतित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चंप णयरिं
संभितरवाहिरियं आसित्त जाव कारवेत्ता एयमाणत्तियं
पच्चप्पिणाहि ॥ सू० ४५ ॥

‘णयरगुत्तिय’ नगरगुत्तिकरु=नगरगोनाम् ‘आमतेइ’ आमन्त्रयति=आह्वयति,—‘आमंतित्ता
‘एव वयासी’ आमन्त्रयैवमवादीत ‘खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया’
त्त्रिमेव भो देवानुप्रिय ! ‘चंप णयरिं’ चम्पा नगरा ‘संभितरवाहिरिय’ साम्बन्तर-
वाद्याम् ‘आसित्त जाव कारवेत्ता’ आमिकशुचिसमष्टरयान्तरापगर्गीयिका यावद्गन्ध-
वर्धिभूता कुरु, कारय, कृ मा, कारयिच्चा ‘एयमाणत्तिय’ एतामाजमिका ‘पच्चप्पिणाहि’
प्रत्यर्पय ॥ सू० ४५ ॥

कर्मगले कोटवाल को (आमतेइ) बुलाया, और (आमंतित्ता) बुलाकर (एवं वयासी) इस प्रकार
कहा—(खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया) हे देवानुप्रिय ! तुम जीत्र ही (चंप णयरिं) इस चंपा
नगर की (संभितरवाहिरिय) भीतर बाहिर से सफाई करओ। पाना से इसमें छिडकाव कराओ।
जगह २ इसे पाना से बुलाओ। कहा भी कूटा—करकट का नाम न मिले, इस तरह से
इसमें सफाई हो जानी चाहिये। प्रत्येक गला एव बाजारो के मार्ग सब बहुत ही अच्छी
तरह से साफसूफ किये जाये। जगह २ सुगंधित जल का, गोरोचन का एव सरस लाल
चंदन का छिडकाव हो, जिससे यह नगरी सुगन्धित द्रव्य जैसी बन जावे। तुम से यही
कहना है, जाओ और इस आदेश की शात्र से जीत्र पूति करो और उन कामों को पूरा
कर के मुझे जीत्र सूचित करो ॥ सू० ४५ ॥

रक्षा करवाणा कोटवालने (आमतेइ) बोलाव्या अने (आमंतित्ता) बोलावीने
(एव वयासी) या प्रकारे उहु (खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया) हे देवानुप्रिय !
तमे जलदीधी (चंप णयरिं) या चंपानगरीनी (संभितरवाहिरिय) अहर तथा
भंडारधी सड़ाई करावो, तेमा पाणीना छटावाव करावो, ठेक-ठेकाणु
तेने पाणीधी धोवरावो जयाय पणु ढडाउरउटनु नाम न रहे अेम तेनी
सड़ाई थवी जेधये प्रत्येक गली तेमज अणरना रत्ता पूणज सागी रीते
भाईसूई करा ठेकठेकाणु सुगंधित जलनो, गोलीधं-सुअडनो तेमज सरस
रक्त अहननो छटावाव डोय, जेथी या नगरी सुगंधित थीज जेवी अनी
जय तमने अेज डडेवानु छे वज्या अने आदेशाने जट्टी पूणु करे अने
ते कामो पूरा करीने अने जट्टी अणर करे (सू० ४५)

मूलम—तत्र ण से णयरगुत्तिण् बलवाउयस्स एयमट्टं
(सोच्चा) आगाण् विणण्ण वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता
चप णयग्गि मट्ठिभतरवाहिरियं आसित्त जाव कारवेत्ता जेणेव

टीका—'तत्र ण' इत्यादि। 'तत्र ण से णयरगुत्तिण्' तत्र गच्छ स नगर-
गुणका 'उत्त्वाउयस्स एयमट्टं' उत्त्वाउयस्स एयमट्टं 'सोच्चा' श्रुत्वा 'आगाण् विणण्ण
वयणं पडिसुणेइ' आगाण् विणण्ण वयणं पडिसुणेइ 'पडिसुणित्ता चपं णयग्गि
मट्ठिभतरवाहिरियं आसित्त जाव कारवेत्ता' प्रतिश्रुय चम्पा नगरं साम्यन्तरवाहा-
मामिन्त्र यावत् कारवेत्ता जेणेव उत्त्वाउयस्स तत्र उवागच्छत्तं' यत्रैव बलव्यापृतस्त

'तत्र ण से णयरगुत्तिण्' इत्यादि।

(तत्र ण) इत्यत्र तत्र (स णयरगुत्तिण्) उम नगरगच्छत्तं होटवात्तं (उत्त्वा-
उयस्स) मेनापत्तिना (एयमट्टं) नगरं स मफाट् नगरं क आदेश को (सोच्चा)
श्रुत्वा (आगाण् वयणं विणण्ण) आज्ञा क वचन का उडे विनय क साथ (पडि-
सुणेइ) स्थाकार इत्यादि। (पडिसुणित्ता चपं णयग्गि मट्ठिभतरवाहिरियं) स्वाकार
करन तत्र तत्र उमन चपानगरी क भातर वाहिरि मत्र तत्रक स (आसित्त जाव कारवेत्ता)
सफाया करवात्ता। पडिसु उमन उम मत्र जगह पाना क छिडकाय स मिचवाया। गल्ल-कूचो
म जो इडा करकट पडा इत्यादि उमका मफाट् करवात्ता। आज्ञा क गच्छत्तं को तथा
नालिया का अर्थ तत्र स ज्ञाट पाठकर साफ करवाया, मतलब यह कि सफाई में
किसी भी तरह का झुट नग गया। जत्र नगर अट्टा तरह भातर-वाहिरि से साफ हो

'तत्र ण से णयरगुत्तिण्' इत्यादि

(तत्र ण) तत्र ५३ (स णयरगुत्तिण्) तत्र नगरगच्छत्तं होटवात्तं (उत्त्वाउयस्स)
मेनापत्तिना (एयमट्टं) नगरं स मफाट् नगरं क आदेशको (सोच्चा) श्रुत्वा (आगाण्
वयणं विणण्ण) आज्ञा क वचन का उडे विनयपूर्वक (पडिसुणेइ) स्वी
कार कयो, (पडिसुणित्त चपं णयग्गि मट्ठिभतरवाहिरियं) स्वीकार तथा पत्री ७ तेषु
य पानगरीनी अर्थ अने अर्थ अर्थ अर्थ (आसित्त जाव कारवेत्ता) मक्षार्थ
उपनी स्वीरी पडेता तेषु तेषु अर्थ ७ अर्थ पाष्ठीन छट्ठाव उपन्या
गवीशु जीना तत्र उच्यते पूजे पडेता छते तेनी मक्षार्थ उरावी अन्व-
शेना उन्ता सागी जीने मक्षार्थ उरावी मक्षार्थ उरावी मक्षार्थ उरावी मक्षार्थ
को उपल प्रसारनी बुद्धि राष्ठी नहि क्यारे नगरी नारी दीते अहर अने

बलवाउए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणड ॥ सू० ४६ ॥

मूलम्—तए णं से बलवाउए कोणियस्स रण्णो भंभ-
सारपुत्तस्स आभिसेक्क हत्थिरयणं पडिकप्पियं पासइ. हय-गय-

त्रैवोपागच्छति 'उवागच्छिता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणड' उपागयं गतामाजमिका
प्रयर्षयति ॥ सू० ४६ ॥

टीका—'तए ण' इत्यादि । 'तए ण से बलवाउए' तत स्वल्ल स
बलव्यापृत 'कोणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स' कृणिकस्य राज्ञो भंभसारपुत्तस्य 'आभि-
सेक्क हत्थिरयणं पडिकप्पियं' आभिषेकस्य हस्तिरत्नं परिकल्पितं 'पासइ' पश्यति,
'हयगय जाव सण्णाहियं' हय-गज यावत् ननाहिता 'पासइ' पश्यति, अत्र यावच्छन्देन

चुकी तव फिर यह कोटवाल (जेणेव बलवाउए तेणेव उवागच्छइ) जहाँ सेनापति था
वहाँ पर पहुँचा। पहुँच कर उसने नगरी साफ हो चुकी है इस बात की उसे
खबर दी ॥ सू० ४६ ॥

'तए ण से बलवाउए' इत्यादि ।

(तए ण) इसके बाद (से बलवाउए) उस सेनापतिन (भंभसारपुत्तस्स)
भंभसार अर्थात् श्रेणिक के पुत्र (कोणियस्स रण्णो) कृणिक राजा के (आभिसेक्क)
अभिषेक-पट्ट (हत्थिरयण) हस्तिरत्नको (पडिकप्पियं) अच्छी तरह से शृंगारित किया
हुआ (पासइ) देखा । (हयगय जाव सण्णाहियं पासइ) तथा-हय-गज आदि से
युक्त चतुरगिणी सेना को भी सन्नद्ध देखा । (सुभद्दामुद्दाण देवीण

अक्षरथी माइ थर्ध त्यारे वणी ते डोटवाल (जेणेव बलवाउए तेणेव उवागच्छइ)
ज्या सेनापति हुता त्या पडोऽथो अने पडोऽथीने तेणे नगरी माइ थर्ध गध
छे, जे वातनी तेने अक्षर दीधी (सू० ४६)

'तए ण से बलवाउए' इत्यादि

(तए ण) त्थारपथी [से बलवाउए] ते सेनापतिजे [भंभसारपुत्तस्स] ल लभार
अर्थात् श्रेणिकना पुत्र (कोणियस्स रण्णो) शृङ्खिल राजना [आभिसेक्क] आभिषेक-
पट्ट (हत्थिरयण) अक्षरत्नने (पडिकप्पियं) सारी रीते शृङ्खिलारेडो (पासइ) जेथो
(हयगय जाव सण्णाहियं पासइ) तथा-हय गज आदिथी युक्त चतुरगिणी

जाव-सृणाहिय पासड. सुभद्रापमुहाणं देवीणं पडिजाणाडं
उवट्टवियाडं पामड, चंपं णयरिं सन्निभतर जाव गंधवट्टिभूयं कयं
पासड, पासित्ता हट्टतुट्टचित्तमाणंदिए पीयमणे जाव हियए
जेणेव कूणिए राया भभसारपुत्ते तेणेव उवागच्छड, उवागच्छित्ता

‘गंध-प्रवगयोध-कलिता च चतुरद्विणीं सेनाम्’ इति दृश्यम्, ‘सुभद्रापमुहाणं देवीणं’
सुभद्राप्रमुग्गणा-सुभद्रादीना देवाना ‘पडिजाणाड उवट्टवियाड’ प्रतियानानि-अकटानि
उपस्थापितानि ‘पासड’ प-यति, ‘चंपं णयरिं सन्निभतर जाव गंधवट्टिभूयं कयं
पासड’ चम्पा नगरा साऽभ्यन्तरा यावद् गन्धर्वाभिभूता कृता प-यति, दृष्ट्वा ‘हट्ट-तुट्ट-चित्त-
माणंदिए’ हट्टतुट्टचित्ताऽऽनन्ति ‘पीयमणे जाव हियए’ प्रीतमना यावद् हृद्यो
‘जेणेव कूणिए राया भभसारपुत्ते’ यत्रैव कूणिरो राजा भभसारपुत्र, ‘तेणेव
उवागच्छड’ तत्रैवोपागच्छति, ‘उवागच्छित्ता’ उपागत्य ‘करयल जाव एव वयासी’

पडिजाणाड उवट्टवियाडं पासड) सुभद्राप्रमुख देविया के लिये आये हुए
गंधा को भा देगा। (चंप णयरिं सन्निभतर जाव गंधवट्टिभूयं कय पासड)
और यह भा देगा कि चंपानगर भातर वालि से अच्छा तरह से स्वच्छ हो चुकी है, एवं
उमस सुगंधि का महक उठ रहा है। (पासित्ता हट्ट-तुट्ट-चित्त-माणदिए पीयमणे
जाव हियए जेणेव कूणिए राया भभसारपुत्ते तेणेव उवागच्छड) यह सन देखकर
वह बहुत हा खुश हुआ हर्ष के मारे वह फूटा नहीं ममाया। प्रसन्न मन होकर वह
शात्रु ही जहा श्रेणिक के पुत्र कूणिक राजा थे वहा पहुँचा। (उवागच्छित्ता करयल
जाव एव वयासी) पहुँचकर उसन सर्वप्रथम राजा को दो हाथ जोटकर प्रणाम किया और

ननाने पणु पायेज् जेधं (सुभद्रापमुहाणं देवीणं पडिजाणाड उवट्टवियाड पासड)
सुभद्राप्रमुख देवीज्योतनं माटे आवेला रथेने पणु जेधा (चंप णयरिं
सन्निभतर जाव गंधवट्टिभूयं कय पासड) अने जे पणु जेधु के चंपानगरी
अहर अने गच्छाथी मारी गीते अन्ध थर्ध गधं छे, तेभज् तेभाथी सुग धीनी
भद्ध थाली रडी छे (पासित्ता हट्ट-तुट्ट-चित्त-माणदिए पीयमणे जाव हियए
जेणेव कूणिए राया भभसारपुत्ते तेणेव उवागच्छड) आ पणु जेधने ते पणु अ
पुश थये अने अत्यंत हर्षित थर्ध गये। मन प्रमन्न थवाथी सुग अ
न्या श्रेणिकना पुत्र कूणिक राजा हुता त्या पडो-थे। (उवागच्छित्ता करयल जाव

करयल जाव एवं वयासी-कप्पिए णं देवाणुप्पियाणं आभिसेक्के
हत्थिरयणे, हय-गय-जाव-पवर-जोह-कलिया य चाउरंगिणी सेणा
सण्णाहिया, सुभदापमुहाण य देवीणं वाहिरियाए उवट्टाणसालाए
पाडियक्कपाडियक्काइं जत्ताभिमुहाइ जुत्ताइं जाणाइं उवट्टावियाइं,

करतल यावदेवम् अवादीत-‘ कृप्पिए णं देवाणुप्पियाण आभिसेक्के हत्थिरयणे ’
कृन्पित स्वलु देवानुप्रियाणामाभिपेक्क्य हस्तिरत्नम् ‘ हयगयरहपवरजोहकलिया य ’
हयगजरथप्ररयोधकलित्ता च ‘ चाउरगिणी सेणा सण्णाहिया ’ चतुरङ्गिणी सेना संनाहिता,
‘ सुभदापमुहाण य देवीणं ’ सुभद्राप्रमुखाना च देवीना ‘ वाहिरियाए उवट्टाणसालाए ’
नाद्यायामुपस्थानशालाया ‘ पाडियक्कपाडियक्काइ ’ प्रत्येक प्रत्येक ‘ जत्ताभिमुहाइ
जुत्ताइ जाणाइ उवट्टावियाइ ’ यात्राभिमुखानि युक्तानि यानानि उपस्थापितानि,

फिर इस प्रकार कहने लगा कि (कृप्पिए णं देवाणुप्पियाणं आभिसेक्के हत्थिरयणे)
हं देवानुप्रिय ! आपका आभिपेक्क्य हस्तिरत्न शृंगारित हो चुका है । (हय-गय-रह-
पवरजोह-कलिया य चाउरंगिणी सेणा सण्णाहिया) घोड़े, हाथी, रथ एवं सुभद्रों
से युक्त चतुरगिणी सेना भी सज्ज-बजाकर तैयार की जा चुकी है । (सुभदापमुहाण य
देवीणं वाहिरियाए उवट्टाणसालाए पाडियक्कपाडियक्काइ जत्ताभिमुहाइ जुत्ताइं जाणाइ
उवट्टावियाइं सुभद्राप्रमुख देविया के भी वाहिर का उपस्थानशाला में अलग २ बैठने
के लिये, यात्रा के योग्य एवं अच्छे २ बैलों से युक्त ऐसे ग्य लाकर उपस्थित कर दिये

एवं वयासी) पड़ोसीने तेण्हे सर्वथी पड़ेला राजने अन्ने हाथ भेडी प्रथाम
थीं अन्ने पछी ते आ प्रदारे उड़ेवा लाये छे (कप्पिए ण देवाणुप्पियाण
आभिसेक्के हत्थिरयणे) छे देवानुप्रिय ! आपने आभिपेक्क्य हाथीरत्न
शृंगारार्थ गये छे (हय-गय-रह-पवरजोह-कलिया य चाउरगिणी सेणा सण्णा
हिया) घोडा, हाथी, रथ तेमन् सुभद्रोथी युक्त चतुरगिणी सेना पञ्च
सन्ध थर्त्त गध छे (सुभदापमुहाण य देवीण वाहिरियाए उवट्टाणसालाए
पाडियक्कपाडियक्काइ जत्ताभिमुहाइ जुत्ताइ जाणाइ उवट्टावियाइ) सुभद्राप्रमुख
देवीआने भाटे पञ्च अडारनी उपस्थानशालामा अलग अलग भेसवाने
साइ, यात्राने योग्य तेमन् मारा सारा अणहथी युक्त भेवा रथ लर्त्त आवी
हाजर सभेला छे (चपा णवरी सम्भतरवाहिरिया आसित्त-जाव गधवट्टिभूया कया)

चंपा णयरी सन्निभतरवाहिरिया आसित्त जाव गंधवट्टिभूया कया,
त णिज्जंतु णं देवाणुप्पिया । समणं भगवं महावीरं अभिवंदितुं
॥ सू० ४७ ॥

मूलम्—तए णं से कूणिए राया भभसारपुत्ते बल-

‘चंपा णयरी सन्निभतरवाहिरिया’ चंपा नगरी साऽभ्यन्तरग्याया ‘आसित्त जाव गंधवट्टि-
भूया कया’ आमिक यावद् गन्तवर्तिभूता क्ता, ‘त णिज्जंतु ण देवाणुप्पिया’ तन्निर्यांतु
गल देवानुप्रिया । ‘समणं भगवं महावीरं अभिवंदितुं’ भगवत्त महावीरमभिवन्दितुम्
॥ सू० ४७ ॥

टीका—‘तए णं’ इत्यादि । ‘तए णं’ तत = मेनापतिनिवेदनानन्तर खल
‘से कूणिए राया भभसारपुत्ते’ स कूणिको राजा भभसारपुत्र ‘बलवाउयस्स अतिए’
बलव्यापुत्रस्याऽन्तिक = बलव्यापुत्रमुग्यात् ‘एयमट्टं’ एतमर्थ—‘भगवज्जानुसारेण सर्वं सम्पा-

है । (चंपा णयरी सन्निभतरवाहिरिया आमित्त जाव गंधवट्टिभूया कया)
तथा चंपानगरी भा भीतर गहिर से अच्छी तरह झटवाकर साफ करा दी गई है । उसमें
जल भी छिड़कवा दिया गया है, यावत् यह सुगन्धित द्रव्य जैसी बन चुकी है,
(त देवाणुप्पिया) अतः हे देवानुप्रिय । (समणं भगवं महावीरं अभिवंदितुं णिज्जंतु)
अब आप श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना करने के लिये पधारो ॥ सू० ४७ ॥

‘तए णं से कूणिए राया भभसारपुत्ते’ इत्यादि ।

(तए णं) उसके नाम (भभसारपुत्ते) से कूणिए राया) भभसार अर्थात् श्रेणिक के पुत्र
कूणिक राजा (बलवाउयस्स) मेनापति के पुत्र से (एयमट्टं सोच्चा) हाथ आदि का

तथा चंपानगरी पक्ष अहं-अहंरथी नारी रीते वाणीश्री साश् ३रावी
दीप्री ठे तेभा पाष्ठी पल छटाव्यु छे लेवी ते सुगन्धित द्रव्य लेवी पनी
गध ठे (त देवाणुप्पिया) भाटे छे देवानुप्रिय ! (समणं भगवं महावीरं अभिवंदितुं
णिज्जंतु) छे अथ श्रमणु लगवान महावीरने वन्दना करवा भाउ पधारो
(सू० ४७)

‘तए णं से कूणिए राया भभसारपुत्ते’ इत्यादि

(तए णं) त्थार पछी (भभसारपुत्ते) से कूणिए राया) ल लनार अर्थात् श्रेणिकना
पुत्र कूणिक राजा (बलवाउयस्स) सेनापतिना सुपथी [एयमट्टं सोच्चा] हाथी

त्रायस्स अंति एयमट्टं मोच्चा णिसम्म हट्टुट्ट जाव हियए
जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छड, उवागच्छत्ता अट्टणसालं
अणुपविसड, अणुपविसित्ता अणेग-वायाम-जोग्ग-वग्गण-वामद्दण-
मल्लजुद्ध-करणेहिं संते परिस्संते सयपागसहस्सपागेहिं सुगंध-

न्तिम - एतद्रूपा रार्ता 'मोच्चा' श्रुत्वा 'णिसम्म' निशम्य-दृष्टिं कृत्वा, 'हट्टु-तुट्टु जाव
हियए' श्रुत्वा-तुष्ट-यावद्द्रव्य-परमप्रमत्तमानस मन 'जेणेव' यत्रैव 'अट्टणसाला'
अट्टणसाला-व्यायामसाला 'तेणेव उवागच्छड' तत्रैवोपागच्छति, 'उवागच्छत्ता'
उपागम्य 'अट्टणसाला अणुपविसड' अट्टणसालामनुप्रविशति, 'अणुपविसित्ता'
अनुप्रविश्य 'अणेग-वायाम-जोग्ग-वग्गण-वामद्दण-मल्लजुद्ध-करणेहिं' अनक-
व्यायाम-योग्य-वग्गण-व्यामर्त्तन-मल्लजुद्ध-करणे-अनके ये व्यायामा-आगारिकपरिश्रमा
तदयोग्य-तत्तनुकूल, वग्गण-वर्द्धन, व्यामर्त्तन-परम्परवाद्याद्यङ्गमोदन, मल्लजुद्ध-मल्लकीडनम्,
करणानि-मुद्गरादिचालनानि तै मर्त्त 'संते' श्रान्त-सामान्यत, 'परिस्संते'

पूरा तयाग के समाचार को सुनकर (णिसम्म) एव अच्छी तरह से विचार कर (हट्टु-तुट्टु-
जाव-हियए) अपन मनम बहुत ही अग्रिम हर्षित हुए एव न्तुष्ट हुए। (जेणेव अट्टण-
साला तेणेव उवागच्छड) पश्चात् वे जहा व्यायामसाला थी वहाँ पर पहुँचे। (उवा-
गच्छत्ता अट्टणसाला अणुपविसड) पहुँचत ही वे उमम प्रविष्ट हुए। (अणुपविसित्ता
अणेग-वायाम-जोग्ग-वग्गण-वामद्दण-मल्लजुद्ध-करणेहिं संते परिस्संते) प्रविष्ट
होकर उन्होंने वहा पर अनेक प्रकार का व्यायाम-आगारिक परिश्रम क्रिया, आगारिक परि-
श्रम क योग्य नौडना-कृत्ना प्रारम्भ क्रिया। अपन अग उपागाका अच्छी तरह से मर्दन

आदिनी पुत्रेपुत्री तैथानीना नभाच्याग्ने मालणीने (णिसम्म) तेमज्ज सारी
गीते विचार करीने (हट्टु-तुट्टु-जाव-हियए) पोताना मनभा अलुङ्ग डर्षित थया,
तेमज्ज मत्तुष्ट थया (जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छड) पछी तेथो न्या
व्यायामसाला इती त्या पडोव्या (उवागच्छत्ता अट्टणसाला अणुपविसड) पडो-
व्यताए ते तेमा दाअल थया (अणुपविसित्ता अणेग-वायाम-जोग्ग-वग्गण-वाम
द्दण-मल्लजुद्ध-करणेहिं संते परिस्संते) दाअल थरने तेमणे त्या अनेक प्रकारना
व्यायाम-आगारिक उभरत करी आगारिक परिश्रमने थोव्य होउवा-वृद्धवाने
प्रारम्भ करी पोताना अग-उपागोने आभ तेम वाप्या मल्लोनी माथे कुन्ती
करी त्या राअवाभा आवेल मुद्गरणे हेरव्या या क्रियाथोथी तेथो पडोला

तेलमाइएहिं पीणणिजेहिं दप्पणिजेहिं मयणिजेहिं विहणिजेहिं
सर्विदियगायपल्हायणिजेहिं अन्निभगेहिं अन्निभगिए

परिश्रान्त—अङ्गप्रत्यङ्गापेक्षया, 'सयपाग-सहस्सपागेहिं' शतपाकसहस्रपाकं, शतशत
पाको येषु ते शतपाका, शतस्यस्यकौषधिमिश्रणेन वा पाको येषु ते, शतकापापणमूल्यक-
द्रव्यमिश्रणेन वा पाको येषु ते शतपाकास्तैलविशेषा, एव सहस्रपाका अपि, ततस्तयो
द्वन्द्व, तैस्तैलविशेषै, सुगन्धितैलादिकै 'पीणणिजेहिं' प्रीणनीयै = मरुधिरादिपातुमुग्रप्रदै,
'दप्पणिजेहिं' दर्पणीयै = बलवर्द्धकै, 'मयणिजेहिं' मदनीयै = कामवर्द्धकै,
'विहणिजेहिं' बृहणीयै—मासोपचयकारिभि, 'सर्विदिय-गाय-पल्हायणिजेहिं'
सर्वेन्द्रिय-गात्र-प्रहादनीयै, सर्वेषाम् इन्द्रियाणाम्, गात्राणा प्रहादनीयै—प्रहादजनकै,

क्रिया। मल्लो के साथ कुस्ती लडी। वहा पर रखे हुए सुद्वारा को भी फिगया। इन क्रियाओं
से वह पहिले साधारण श्रान्त हुए एव बाद में अधिक परिश्रान्त हुए। इस तरह जब अच्छी
रीति से वे खूब व्यायाम कर चुके तब (सयपागसहस्सपागेहिं) उन्होंने शत *पाकवाले
एव सहस्रपाकवाले तैला से (पीणणिजेहिं दप्पणिजेहिं) जो तेल प्रीणनीय-रस-रुचिर
आदिवर्धक एव दर्पणीय-बलवर्द्धक होते हैं, (मयणिजेहिं) कामवर्द्धक होते हैं, (विह-
णिजेहिं) बृहणीय-मासप्रदानेवाले होते हैं, (सर्विदिय-गाय-पल्हायणिजेहिं) समस्त
इन्द्रिय एव समस्त शरीर को आनन्द देनेवाले होते हैं ऐसे तैलों से तथा (अन्निभगेहिं)

* सौ बार पकाये गये, अथवा सौ प्रकार का औषधियों को मिश्रित कर पकाये गये,
अथवा सौ रुपये मूल्यवाला औषधियां को गलाकर पकाये गये ऐसे तैला से। इसी प्रकार सहस्र-
पाक में भी समझना चाहिये।

साधारण थाक्या, तेमज त्थार पछी वधारे थाक लाज्ये। आवी गीते न्यारे
अहुं कसरत कगी लीधी त्थारे (मयपागसहस्सपागेहिं) तेमणे शतपाकवाणा
तेमज सहस्रपाकवाणा तेजेथी के तेजे (पीणणिजेहिं दप्पणिजेहिं) प्रीणनीय
रस रुचिर आदि वर्धक तेमज दर्पणीय-बलवर्धक होय छे, (मयणिजेहिं)
कामवर्धक होय छे, (विहणिजेहिं) बृहणीय-मासवर्धक होय छे, (सर्वि-
दिय-गाय-पल्हायणिजेहिं) समस्त धर्तियो तेमज समस्त शरीरने आनन्द

[१] मोवार पकावेलु अथवा मो प्रकारनी औषधीओथी मिश्रित कगी
पकावेलु अथवा मो रुपियाणी कि मननी औषधीओने गाणीने पकावेलु ओवा
तेजे। आज गीते सहस्रपाकमा पञ्च समज्यु नेछये

समाणे तैलचर्मसि पडिपुण्ण-पाणि-पाय-सुउमाल-कोमल-तलेहिं
पुरिसेहिं छेएहिं दक्खेहिं पट्टेहिं कुसलेहिं मेहावीहिं निउण-

‘अञ्जिगेहिं’ अन्यङ्गं—नेहने ‘अञ्जिगिए समाणे’ अभ्यङ्कित—कृताभ्यङ्ग मन्
‘तैलचर्ममि’ तैलचर्मणा, अत्र तृतीयार्थे सपमा, तैलानुल्लिपशरीरस्य मर्दनसाधनरूप
चर्म ‘तैलचर्म’ इयुच्यते, ‘मवाहिए समाणे’ मवाहित मन—इयुत्तरेण अन्वय, कै
मवाहित इयाह—‘पुरिसेहिं’ पुम्पै—अङ्ग—माहननियुक्तमृत्पै, तै की—शरीरियाह—
‘पडिपुण्ण-पाणिपाय-सुउमाल-कोमल-तलेहिं’ प्रतिपूर्ण—पाणिपाद—सुकुमार—कोमल—
तले—प्रतिपूर्णानाम्=अपिकल्पना, पाणिपादाना सुकुमारकोमलानि=भतिप्रदुलानि तलानि
येषां ते तथा तै, ‘छेएहिं’ छेकै=मर्दनकल्पानिपुणं, ‘दक्खेहिं’ दक्षे=अप्रिलम्बित-
काग्निभि, मर्दनकार्येऽप्रेमै, ‘पट्टेहिं’ प्रष्टे, ‘कुसलेहिं’ कुशलै=मर्दनविधिज्ञै,
‘मेहावीहिं’ मेहाविभि—प्रतिभागाग्निभि, ‘निउण-सिप्पो-वगएहिं’ निपुणशिल्पोपगतै,
उवटनो से (अञ्जिगिए समाणे) शरीर की गूब मालिश करवाटे । * (तैलचर्मसि) तैल-
चर्ममे मालिश करनवाट (पुरिसेहिं) पुम्पा न कि जिनके (पडिपुण्ण-पाणि-पाय-सुउ-
माल-तलेहिं) हाथ और पैर क तलवे अपिक सुकुमार ये, (छेएहिं) मर्दन करनेकी कला
में जो अपिक निपुण ये, (दक्खेहिं) दर्माळिये जो टम कला के जाननेवालों में सर्वप्रथम
गिन जाते ये, (पट्टेहिं) मर्दन करने का विधि क्या है और किम ढग से किस समय कैसा
मर्दन करना चाहिये—इयादि जाता में जो विशेष पट्ट ये, (मेहावीहिं) नवीन २ रीति से

* यहा तृतीया क अर्थ म सपमा विभक्ति हुई है, तैल से चिकन हुए शरीर को मर्दन
करने का साधनरूप चर्म तैलचर्म कहलाता है ।

देवावाणा डोय ठे, जेवा तेलोथी, तथा (अञ्जिगेहिं) उवटनोथी (अञ्जिगिए
समाणे) शरीरनी अणु मालिश करावी १ (तैलचर्मसि) तैलचर्मथी मालिश
करवावाला (पुरिसेहिं) पुउपा ठे जेना (पडिपुण्ण-पाणि-पाय-सुउमाल-तलेहिं)
हाथ तथा पगना तथा अहु सुकुमार जोमण हुता, (छेएहिं) मर्दन करवाणी
ज्यामा ले अहु निपुण हुता, (दक्खेहिं) आथी ले आ कजाना नक्षुडारमा
सर्वप्रथम गच्छाता हुता, (पट्टेहिं) मर्दन करवाणी विधि शु छे अने डेवी
गीते देवा समये डेम मर्दन करवु जेधजे—धत्यादि वातोगा ले विशेष
कुशल हुता, (मेहावीहिं) नवी नवी गीते ले मर्दन करवाणी कलाना आवि

[२] अही तृतीयाना अर्थमा नसमी विवक्षित थछ छे तेलथी थीअधु
थयेल शरीरने मर्दन करवावु साधनउप अर्म तैलचर्म कडेवाय छे

सिप्पो-त्रगएहिं अर्द्धिभगण-परिमदणु-च्चलण-करणगुण-णिम्मा-
एहिं अट्टिसुहाए मंससुहाए तयासुहाए रोमसुहाए चउच्चिहाए

निपुणानि=मूढमाणि यानि शिन्पानि=अङ्गमर्दनाट्टानि ता युपगतानि=अधिगतानि यस्ते तथा
तै, अङ्गमर्दनक्रियाज्ञानसम्पन्नैरिग्रियर्षं । 'अर्द्धिभगण-परिमदणु-च्चलण-करण-गुण-णिम्मा-
एहिं'अभ्यञ्जन-परिमर्दनो दलन-करण गुण निर्मातृभि-अभ्यञ्जनम्=अभ्यङ्ग-तैलमर्दनम्,परिमर्द-
नम्=अङ्गमवाहनम्, उद्वलनम्=उद्वर्तनम् तेषां करण ये गुणा शरीरस्वास्थ्यकान्तितुष्टिपुष्टिस्फू-
त्यादिरूपा, तेषां निर्मातृभि=विधायकै, कया मवाहित ' इत्यत्राऽऽह-' अट्टिसुहाए '
अस्थिसुखया=अस्थिसुखकाणिण्या, 'मंससुहाए' मांससुखया=मामसुखकाणिण्या, 'तयासु-
हाए' त्वरुसुखया, 'रोमसुहाए' रोमसुखया, 'चउच्चिहाए' चतुर्विधया, 'सवाहणाए'

जो मर्दन करने का कला क आविष्कारक य, (निउण-सिप्पो-त्रगएहिं) मूढ से मूढ
भी अगमर्दन आदि क्रियाओं के जो पूर्णरूप से ज्ञाता थे, अथवा जिन्होंने इस क्रिया को
निपुण कलाचार्य से सीखा था । (अर्द्धिभगण-परिमदणु-च्चलण-करण-गुण-निम्मा-
एहिं) अभ्यञ्जन-तैलमर्दन, परिमर्दन-अग के मवाहन एवं उद्वलन-उद्वर्तन करने से जो
शरीरस्वास्थ्य, कान्ति, तुष्टि-पुष्टि तथा हर एक कार्य में स्फूर्ति आदि गुण होते हैं, उन
गुणों को वे अपने अभ्यङ्गन आदि कला के द्वारा प्रत्यक्ष कर देते थे । इनलोगों ने राजा का
किस प्रकार से मवाहन किया सो कहते हैं-(अट्टिसुहाए) हृदयों में सुखकारी (मंससुहाए)
मांस में सुखकारी (तयासुहाए) चमड़ी में सुखकारी (रोमसुहाए) रोम २ में सुखकारक,
इस प्रकार अस्थिसुखजनक, मांससुखजनक, चर्मसुखजनक एवं रोमसुखजनक रूप से
(चउच्चिहाए) चार प्रकार की (सवाहणाए) मालिनी क्रिया से (मवाहिए समाणे)

भकारक होता, (निउण-सिप्पो-त्रगएहिं) सूक्ष्ममा सूक्ष्म पणु अगमर्दन आदि
क्रियाओंका जो संपूर्ण ज्ञाता होता, अथवा जेज्यो आ क्रियाओं निपुण
कलाचार्य पायेथी शीभेला होता, (अर्द्धिभगण-परिमदणु-च्चलण-करण-गुण
निम्माएहिं) अभ्यञ्जन तैलमर्दन, परिमर्दन-अगनु मवाहन तेमज उद्वलन उद्व-
र्तन करवाथी जे शरीरस्वास्थ्य, कान्ति, तुष्टि-पुष्टि तथा इदरेक कार्यमा स्फूर्ति
आदि गुण होथे ते गुणोने तेज्यो पोताना अभ्यञ्जन आदि उलाज्यो
द्वारा प्रत्यक्ष करी देता होता ते लोकोज्ये शान्तु देवा प्रकारे सवाहन कर्युं
ते कहे छे-(अट्टिसुहाए) हृदयका सुखकारी (मंससुहाए) मांसमा सुखकारी
(तयासुहाए) चामडीमा सुखकारी (रोमसुहाए) रोम रोममा सुखकारी, जे
रीते अस्थिसुखजनक, मांससुखजनक, चर्मसुखजनक तेमज रोमसुख-

संवाहणाए संवाहिए समाणे अवगय-खेय-परिस्समे अट्टण-
सालाओ पडिणिकखमड, पडिणिकखमित्ता जेणेव मज्जणघरे
तेणेव उवागच्छड, उवागच्छत्ता मज्जणघरं अणुपविसड, अणुप-
विसित्ता समुत्त-जाला-उला-भिरामे विचित्तमणि-रण-

संवाहनया=मर्दनेन 'संवाहिए समाणे' संवाहितो=मर्दिन स्नान, 'अवगय-खेय-परि-
स्समे' अपगत-खेद-परिश्रम =समपनीतखेदपरिश्रम, 'अट्टणसालाओ' अट्टणशा-
लात =व्यायामशालात 'पडिणिकखमड' प्रतिनिष्क्रामति, 'पडिणिकखमित्ता' प्रतिनि-
ष्क्रम्य, 'जेणेव मज्जणघर तेणेव उवागच्छड' यत्रैव मज्जनगृह तत्रैवोपागच्छति, 'उवा-
गच्छत्ता' उपाग य, 'मज्जणघरं अणुपविसड' मज्जनगृहमनुप्रविगति, 'अणुपविसित्ता'
अनुप्रविश्य 'समुत्त-जाला-उला-भिरामे' समुत्त-जात्र-SSकुला-Sभिरामे-समुत्त-
जालेन=मुक्तासहितेन जालेन=गवाक्षेण आमुलो=व्याप्त, अतएव अभिराम =मुन्दरस्तस्मिन्,
'वित्त-मणि-रण-कुट्टिम-तले' विचित्र-मणि-रत्न-कुट्टिम-तले-विचित्रमणिर-

राजा की खून मालिग की । जब राजा की अच्छी तरह से मालिग हो चुकी तब वे (अव-
गय-खेय-परिस्समे) परिश्रम एवं खेद से रहित हो (अट्टणमालाओ) उस व्यायाम-
शाला से (पडिणिकखमड) बाहर निकले, (पडिणिकखमित्ता) निकल कर (जेणेव
मज्जणघरे तेणेव उवागच्छड) जहा स्नान घर था वहाँ पहुँचे । (उवागच्छत्ता मज्ज-
णघर अणुपविसड) पहुँच कर स्नानघर मे प्रविष्ट हुए । (अणुपविसित्ता) वहाँ प्रविष्ट
होकर (समुत्त-जाला-उला-भिरामे) मोतियों की लडियों वाले गोखलो से युक्त होने
के कारण अति सुन्दर (वित्त-मणिररण-कुट्टिम-तले) तथा विविध मणियों से जटित

७११३३पी (खव्विहाए) चार प्रकारनी (संवाहणाए) भादिशथी (संवाहिए समाणे)
शान्ती भूष भादिश थरी न्यारे शान्ती सागी गीते भादिश थध रडी
त्यारे तेओ (अवगय-खेय परिस्समे) परिश्रम तेम ७ जेदथी मुक्त थध (अट्टण
सालाओ) ते व्यायामशालाभाथी (पडिणिकखमड) अडार नीकथ्या (पडिणिकख-
मित्ता) नीकणीने (जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छड) न्या स्नानघर डतु त्या
पडोथ्या (उवागच्छत्ता मज्जणघर अणुपविसड) पडोथीने स्नानघरभा दाअल
थया (अणुपविसित्ता) तेभा दाअल थधने (समुत्त जाला उला भिरामे) भातिओानी
लटिओवाणा गोअलाओथी युक्त डोवाना डारथे अतिसुद, (वित्त

कुट्टिमयले रमणिजे ष्हाणमंडवसि णाणा-मणि-रयणभत्ति-
चित्तंसि ष्हाणपीढंसि सुहणिसण्णे सुद्धोदएहिं गंधोदएहिं पुप्फो-
दएहिं सुहोदएहिं पुणो पुणो कल्लाणग-पवर-मज्जण-विहीए
मज्जिए, तत्थ कोउयसएहि वहुविहेहिं कल्लाणग-पवर-मज्जणा-

लै सचित कुट्टिमतल=भृभागो यस्य स तथा तस्मिन्, 'रमणिजे' रमणिये=मनोहरं,
'ष्हाणमडवसि' स्नानमण्डपे, 'णाणा-मणि-रयण-भत्ति-चित्तसि' नाना-मणि-रत्न-
भक्ति-चित्रे=विविध-मणि-रत्न-रचनाचित्रे, 'ष्हाणपीढसि' स्नानपांठे 'सुहणिसण्णे'
सुरानिपण्ण =सुराऽऽसान, 'सुद्धोदएहिं' शुद्धोदकै =निरवधजलै 'गंधोदएहिं' गन्धो-
दकै =श्रीगण्डादिमिश्रितै जले, 'पुप्फोदएहिं' पुष्पोदकै =पुष्पमिश्रितजलै, 'सुहोदएहिं'
सुहोदकै =नातिश्रातो'गै 'पुणो पुणो' पुन पुन 'कल्लाणग पवर-मज्जण-विहीए' कल्याणक-
प्रवर-मज्जन-विधिना=रुग्गागकारक-श्रेष्ठस्नान-विधानेन, 'मज्जिए' मज्जित-स्नपित',
'तत्थ' तत्र=स्नानानंतरं, 'कोउयसएहिं' कौतुकगतै, कौतुकाना=दृष्टिदोषनिवारणार्थ

अगन वाले (रमणिजे) मनोहर (ष्हाणमडवसि) स्नानमण्डप मे रखे हुए (णाणा-मणि-
रयण-भत्ति-चित्तसि) अनेक मणि और रत्नों की रचना से युक्त (ष्हाणपीढसि) ऐसे
स्नान करने के पीठ (वाजोट) पर (सुहणिसण्णे) सुरस से बैठे, और वहा बैठ कर (सुद्धो-
दएहि) शुद्ध-निर्मल जलसे, (गंधोदएहिं) गंधोदक-चन्दनमिश्रित जल से (पुप्फोदएहिं)
पुष्पमिश्रितजल से, (सुहोदएहि) किंचिदृष्ण जल से (पुणो पुणो) बार बार । (कल्लाणग-
पवर-मज्जण-विहीए मज्जिए) उन्हाने कल्याणकारक श्रेष्ठ स्नानविधि-से स्नान किया ।
(तत्थ कोउयसएहि वहुविहेहिं) उस अवसर मे विविध प्रकार के अनेक कौतुका से दृष्टि-

मणि रयण कुट्टिम तले) तथा विविध भण्डिभ्योथी ञडित आगध्यावाणा, (रमणिजे)
मनोहर (ष्हाणमडवसि) स्नानमण्डपमा राभेला (णाणा-मणि-रयण-भत्ति-
चित्तसि) अनेकभण्डि तथा रत्नोनी भनावटथी युक्त (ष्हाणपीढसि) भ्येपी
स्नान उठवानी पीठ (आजेठ) उपर (सुहणिसण्णे) सुभेथी जेठा अने
जमीने (सुद्धोदएहिं) शुद्ध-निर्मल जल वडे, (गंधोदएहिं) गंधोदक-चन्दन-
मिश्रित जलवडे, (पुप्फोदएहिं) पुष्पमिश्रित जल वडे, (सुहोदएहिं): जस
उभय जलवडे, (पुणो पुणो) बार बार (कल्लाणग-पवर-मज्जण-विहीए मज्जिए)
तेभण्णे उठ्याणुठोठ श्रेष्ठ स्नानविधिथी स्नान कथुं (तत्थ कोउयसएहिं

वसाणे पम्हल-सुकुमाल-गंध-कासाडय-लृहियंगे सरस-सुरहि-
गोसीस-चंदणा-णुलित्त-गत्ते [अहय-सुमहग्घ-दूस-रयण-सुसंबुए

रक्षान्धनादीना गतै = बहुविधैर्युक्त 'कृष्णग-पवर-मज्जणा-वसाणे' कथाणक-
प्रवरमज्जनावसाने, स्नानानन्तरमित्यर्थ, 'पम्हल-सुकुमाड-गण-कासाडय-लृहियंगे'
पद्मल-सुकुमार-गन्धकापायिका-रुक्षिताङ्ग, पद्मल=उचितमन्तवुगमृहयुक्ता, सा च
सुकुमारा=सुकुमला गन्धवती च एतादृशी या कापायिका=रुपायरक्तवाटिका-अद्भुप्रोञ्छ-
निका तथा रुक्षिताङ्ग-निर्जलीकृतशरीर, 'सरस-सुरहि-गोसीस-चदणा-णुलित्त-
गत्ते' सरस-सुरभि-गोशीर्ष-चन्दना-नुल्मि-भात्र, तत्र-गोशार्पचन्दन=गोशार्पनाम्ना प्रसिद्ध
चन्दनम् । 'अहय-सुमहग्घ-दूस-रयण-सुसंबुए' अहत्-सुमहा र्ये-दूष्य-रत्न-सुस-
वृत्-अहत्तम्-अखण्डित=क्रीटमूपिकादिभिरकृतित नूतनमिति भाव, सुमहा=रि=रहुमूच्य यद्
दूष्यरत्न=प्रधानवस्त्रं तेन सुसंबुत्त=सुसुष्टु आच्छादित, पणित्तनतनरहुमूच्यरत्न इत्यर्थ ।

दोष निवारणार्थं रक्षावधनादिका के अनेक प्रकारों से युक्त उन गजा ने (कृष्णग-पवर-
मज्जणा-वसाने) जब उस कल्याणकारक श्रेष्ठ स्नान का ममानि हो चुका तब (पम्हल-
सुकुमाल-गंध-कासाडय-लृहियंगे) पद्मल-उठे हुए कोमल तलु वाले सुकुमार एवं
सुगंधित कपाय रंग की तोलिया से अपने समस्त शरीर को पाँटा । पश्चात् (सरस-सुरहि-
गोसीसचंदणा-णुलित्त-गत्ते) समस्त शरीर पर सगम सुगंधित गोशार्पचन्दन का लेप
किया । (अहय-सुमहग्घ-दूसरयण-सुसंबुए) जब लप अच्छा तरह से शुष्क हो चुका
तब अहत्त-क्रीटमूपक आदि से नहीं काट गये, नवीन-ऐसे बहुमूच्य प्राधान वस्त्रों को उन्होंने
शरीर पर धारण किया । (सुड-माला-वण्णग-विलेवणे) पश्चात् शुद्धपुष्पों की माला

बहुविधैर्हि) ते अवभरे विविध प्रकारना अनेक जौतुंदा वडे-दृष्टिदोष-निवा-
रणाथ रक्षावधनादि अनेक प्रकारयुक्त ते रावन्ने (कृष्णग-पवर-मज्जणा-
वसाने) न्यारे ते कल्याणकारक श्रेष्ठ स्नाननी नभामि थर्त्त चुडी त्यारे
(पम्हल सुकुमाल-गंधकासाडय-लृहियंगे) पद्मल-उपनी आवेला सुवाणा सुतवाणा
डोभण तेमन् सुगंधित कपाय रगना टुवाल वडे पेताना अभत्त शरीरने
सुर्ध नाच्यु पछी (सरस-सुरहि गोसीस चदणा णुलित्त गत्ते) अभत्त शरीर पर
सरस तेमन् सुगंधित गोशीर्ष अहनने दोष ठ्ये (अहय सुमहग्घ दूसरयण
सुसंबुए) न्यारे दोष सारी गीते सुगर्ध गथे त्यारे अहत्त-क्रीटमूपक (क्रीडा
के उद्दर) आदिथी कपायेला नडि जेवा, नवीन-जेवा जहुटिभती वओने
तेमन्ने शरीर उपर धारण ठ्या (सुड-माला-वण्णग-विलेवणे) पछी शुद्ध पुष्पानी

सुद्ध-माला-वर्णग-विलेपणे आविद्ध-मणि-सुवर्णे कपिय-
हार-द्वहार-तिसरय-पालव-पलत्रमाण-कडिसुत्त-सुकय-सोभे
पिणद्ध-गेविज्ज-अंगुलिज्जग-ललियंगय-ललिय-कयाभरणे वर-

‘सुद्ध-माला-वर्णग-विलेपणे’ शुद्धि-माला-वर्णक-त्रिलेपण-शुद्धि=शुद्ध यत् माला-
वर्णकत्रिलेपन-त्र-माला=पुष्पमाला, वर्णक=अक्षरागविशेष तस्य त्रिलेपन, एतद्वय यस्य
स तथा, ‘आविद्ध-मणि-सुवर्णे’ आविद्ध-मणि-सुवर्ण=परिहितमणिकनक-भूषण

‘कपिय-हार-द्वहार-तिसरय-पालव-पलत्रमाण-कडिसुत्त-सुकय-सोभे’ कपि-
न हारा-द्वहार-तिसरक-प्रालम्ब-प्रलम्बमान-कटिमूत्र-सुकृत-शोभ, कपित=परिधृत,
हार=अष्टादशसरिक, अर्धहार=नवसरिक, तिसरिक=‘तिलडीहार’ इति प्रसिद्ध येन
स तथा, प्रालम्ब-सुम्ननक, प्रलम्बमानो यस्मिन् कटिमूत्रे तत् तेन कटिमूत्रेण=
‘कन्दोरा’ इति भाषाप्रसिद्धेन सुकृता=सुष्ठु रचिता शोभा येन स तथा, पदद्वयस्य
कर्मधारय, हारादिधारणेन परमशोभासम्पन्न इत्यर्थे । ‘पिणद्ध-गेविज्जग-
अंगुलिज्जग-ललियंगय-ललिय-कयाभरणे’ पिणद्ध-प्रैवेयका-ङ्गुलीयक-ललिता-
ङ्गक-ललित-कृताऽऽभरण, पिण्डानि प्रैवेयकाणि=ग्रीवामूषणानि, अङ्गुलीयकानि च, येन स
तथा, ललिताङ्गक=मुन्दरशरारे ललित यथा स्यात् तथा कृत=विन्यस्तमाभरण येन स तथा,

पहनी, एव शुद्ध सुगन्धित द्रव्य का विलेपन क्रिया । (आविद्ध-मणि-सुवर्णे) पुन सुवर्ण
के आभूषण कि जिनमें मणि जटे हुए थे पहिने । (कपिय-हार-द्वहार-तिसरय-पालव-
पलत्रमाण-कडिसुत्त-सुकय-सोभे) अठारह लरका हार पहिरा, नव लर का हार पहिरा,
तीन लर का हार पहिरा और लम्बा लटकता हुआ कटिमूत्र (कन्दोरा) पहिरा । (पिणद्ध-
गेविज्जग-अंगुलिज्जग-ललियंगय-ललिय-कयाभरणे) गले में और भी मुन्दर आभू-
षण धारण क्रिये । हाथों की अंगुलियों में मुद्रिकाएँ पहिरीं तथा शरीर पर उस समय के

भाजा पड़ेरी तेमज शुद्ध सुगन्धित द्रव्यतु विलेपन कर्तुं (आविद्ध-मणि-सुवर्णे)
वर्ण सुवर्णना धरेखा दे नेमा भण्डि जडेला डता ते पड़ेर्या (कपिय-हार
द्वहार-तिसरय-पालव-पलत्रमाण-कडिसुत्त-सुकय-सोभे) अठार सरने डार पड़ेर्यो,
नव सरने डार पड़ेर्यो, त्रय सरने डार पड़ेर्यो तथा लाणो लटकतो कटि-
सूत्र (कन्दोरा) धरमा धारण कर्तुं (पिणद्ध-गेविज्जग-अंगुलिज्जग-ललियंगय-
ललिय-कयाभरणे) गणामा णडु ज सुद्ध आभूषण धारण कर्तुं डारोना
आगणामा वीटीओ पड़ेरी तथा शरीर उपर ते समयने उचित णीण पण

कडग-तुडिय-थंभिय-भुए अहिय-रूव-सस्सिरीए मुद्दिया-
पिंगलगुलीए कुंडल-उज्जोविया-णणे मउड-दित्त-सिरए हारोत्थय-
सुकय-रइय-वच्छे पालव-पलवमाण-पड-सुकय-उत्तरिज्जे णाणा-

तत्तस्यो कर्मधारय । यद्वा-पिनद्धानि यानि प्रैवेयकाणि अङ्गुलीयकानि च तैर्लेलिताङ्गक,
तत्र ललित क्रममाभरणम्=अन्यद् भूपगजात येन स तथा । 'वरकडग-तुडिय-थंभिय-भुए'
वरकटक-त्रुटिक-स्तम्भित - भुज, वरकटकत्रुटिकै =श्रेष्ठप्रत्यवाहुरक्षकारयैर्मृषणैर्मृषित-
वाहु, 'अहिय-रूव-सस्सिरीए' अधिकरूपसत्रीक - अधिकसौन्दर्येण गोभासम्पन्न,
'मुद्दिया-पिंगल-गुलीए' मुट्टिका-पिङ्गला-ङ्गुलीक-मुट्टिकाभि =अङ्गुलीयकै पिङ्गला
अङ्गुयो यस्य स तथा, 'कुंडलउज्जोवियाणणे' कुण्डलोद्घोतिताऽऽनन -कुण्डलद्वीप्या
विद्योतितमुत्त, 'मउड-दित्त-सिरए' मुकुट-शीम-गिरस्क, 'हारो-त्थय-सुकय-
रइय-वच्छे' हारा-वन्तृत-सुकृत-रतिद-वक्षा-होर्ग अवस्तृतम्=आच्छादित मुकुट=
गोमनीकृतम् अतएव रतिद=ट्टिसुखद वक्षो यस्य स तथा, 'पालव-पलवमाण-पड-
सुकय-उत्तरिज्जे' प्रालम्ब-प्रलम्बमान-पट - सुकृतो - त्तरीय - प्रालम्बेन=दीर्घेण

उचित और भी आमृषण धारण क्रिये । (वर-कडग-तुडिय-थंभिय-भुए) दोनों हाथों
में सुन्दर कटे पहिरे एव बाहुओं पर भुजवध बाधे, (अहियरूवसस्सिरीए) इस प्रकार
उनके शरीर की गोभा और भी अधिक द्विगुणित हो गई । (मुद्दिया-पिंगल-गुलीए) उनने
जो मुट्टिकाएँ अगुलियों में पहिरे रखी थीं उनसे उनकी अगुलिया सब पीली झायीं से
चमकन लगीं । (कुंडलउज्जोवियाणणे) कुण्डल से मुग्ध चमकने लगा । (मउड-दित्त-
सिरए) मुकुट से मस्तक गोभित होने लगा । (हारोत्थय-सुकय-रइय-वच्छे) हार से
आच्छादित उनका वक्ष स्थल बटा ही मनोहर मादम होने लगा, अत देखनेवालों को
आनन्द होता था । (पालव-पलवमाण-पड-सुकय-उत्तरिज्जे) अधिक लंबे बज का इनने

आभूषण धारण उथा (वर-कडग-तुडिय-थंभिय-भुए) अन्ने ङाथमा सु६० ६१।
पडेथा, तेम० आहुओ ७५० भु०अध आध्या (अहिय-रूव-सस्सिरीए) आ
प्रकारे तेना शरीरनी शोभा अहु वधारे थ० ग० (मुद्दिया-पिंगल-गुलीए)
तेमछे ने वीटीओ आगणामा पडेरी छती तेनाथी तेमनी अधी आगणामो
पीणी आधथी चमकवा लागी (कुंडल-उज्जोविया-णणे) कुण्डोथी भुअ चम-
०वा लाग्यु (मउड-दित्त-सिरए) मुकुटथी भन्त० शोभवा लाग्यु (हारोत्थय-सुकय-
रइय-वच्छे) हारथी ढकाथेव तंतु वक्षस्थल (छाती) अहु० मनोहर देणानु

मणि-कणग-रयण-विमल-महरिह-णिउणो-विय-मिसिमिसत-विर-
इय-सुसिलिट्ट-विसिट्ट-लट्ट-संठिय-पसत्थ-आविद्ध-वीर-वल्लय,]

प्रलम्बमानेन पटेन=वस्त्रेण सुरत=सुविन्ध्यस्तम् उत्तरीयम्=उत्तरामङ्गवल् येन स तथा,
'णाणा-मणि-कणग-रयण-विमल-महरिह-णिउणो-विय-मिसिमिसत-विरइय-
सुसिलिट्ट-विसिट्ट-लट्ट-संठिय-पसत्थ-आविद्ध-वीर-वल्लय' नाना-मणि-कनक-
रत्न-विमल-महार्ह-निपुण-परिकर्मित-देदीप्यमान-विरचित-मुष्णित-विगिट-लट्ट -
स्थित-प्रशस्ता - ऽऽविद्ध-वीर - वल्लय - नानाविधानि मणिजनकरत्नानि = चन्द्रकान्ता-
दिमणि-सुवर्ण-कर्कतनादि-रत्नानि यस्मिन् स, अत एव विमल = निर्मल महार्ह =
महता योग्यश्च, तथा-निपुणपरकर्मितदेदीप्यमान - निपुणेन=गिन्पकलादक्षेण त्रिन्पिना
'उविय' परिकर्मित = मस्कारमापादित, तत एव 'मिसिमिसत' देदीप्यमान =
दीप्तिस्म्पन्नश्च, पुन - विरचित - मुष्णित-विगिट-मस्थित - विरचित=निर्मित-मुष्णित,
शोभनसन्धिक विशिष्टम्=उत्कृष्टम् लट्ट=मनोहर मस्थित=मस्थानम्-आकारो यरय स तथा,
अत एव-प्रशस्त = प्रशसनाय, एतादृग आविद्ध = परिभृत वीरवल्लयो=विजयवल्लयो येन

उत्तराक्षग क्रिया था। (णाणा-मणि-कणग-रयण-विमल-महरिह-निउणो-विय-
मिसिमिसत-विरइय-सुसिलिट्ट-विसिट्ट-लट्ट-संठिय-पसत्थ-आविद्ध-वीरवल्लये) देदी-
प्यमान तथा निपुण कारीगरो द्वारा सुमस्कारित एव बडे भाग्यशालियों के धारण
करने योग्य ऐसे निर्मल अनेक मणियां एव रत्नों से युक्त सुवर्ण के बने हुए वीरवल्लय का
कि जो सुसधि से स्मरन, उत्कृष्ट, मनोहर और सुन्दर आकार से विगिट तथा प्रशसनीय था
इन्ने धारण कर रक्खा था। जिस वल्लय (कडे) को धारण कर शत्रु पर विजय प्राप्त की
जाती है उस वल्लय का नाम वीरवल्लय है अथवा-जो इस वल्लय को धारण करता है वह

हंतु, आधी जेनारने आनद थतो हंतो (पालव पलवमाण पड-सुकय-उत्तरिज्जे)
धण्डा लाभा वरुतु तेमणे उत्तराग (पछेडी) कथुं हंतु (णाणा-मणि-कणग
रयण विमल महरिह निउगो विय मिसिमिसत-विरइय सुसिलिट्ट विसिट्ट-लट्ट संठिय पस-
त्थ आविद्ध-वीरवल्लये) देदीप्यमान अने निपुण कारीगरो द्वारा सुस स्कारित,
तेमण लाग्यथाणीओने धारणु उरवा योग्य ओवा निर्माण, अनेक मणियो
तथा रत्नोपडे युक्त सोनानु अनावेलु वीरवल्लय ने सुसधिथी सपन्न,
उत्कृष्ट, मनोहर अने सुंदर आकारथी विशिष्ट तथा प्रशसनीय हंतु ते तेणे
धारणु कथुं हंतु ने वल्लय (कडा)ने धारणु करवाथी शत्रु उपर विजय
मेणवाय छे ते वल्लयु नाम वीरवल्लय छे अथवा ने आ वल्लयने धारणु

किं बहुणा ! कप्परुक्खए चेव अलंकिय-विभूसिए णरवई सको-
रंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं उभओ चउ-चामर-वाल-वीइ-

स तथा, य वलय धृत्या विजयते तादृशवलयधारक इत्यर्थः । यद्वा—यदि कश्चिदस्ति वीर-
स्तदाऽमौ मा विजिय मम हस्तादवहिष्करोवेत वलयमिति स्पर्धयन् य ऋटक हस्ते परिघत्ते
स वीरवलय इत्युच्यते । 'किं बहुणा' किम्बहुना—किमधिकेन वर्णनेन ? 'कप्परुक्खए
चेव अलंकियविभूसिए णरवई' रूपवृक्ष इवाऽलङ्कृतविभूषितो नरपति—अलङ्कृतो
मगिरत्नाऽऽभूषणै, विभूषितश्च महार्हपरिधानायादिविचित्रवसनै नरपति कृणिको राजा
साभारूपवृक्ष इव शोभते इति भावः । स नरपति 'सकोरट-मल्ल-दामेण' सकोरट-
मान्य-दाम्ना-कोण्टस्य मान्यानि=कुमुमानि तेषा दामानि=मालास्तै महितेन 'छत्तेण
धरिज्जमाणेण' उत्रेण प्रियमाणेण शोभमान, 'उभओ चउ-चामर-वाल-वीइयगे'
उभयत चतुश्चामरमालवीजिताङ्ग, 'मंगल-जयसद्-कया-लोए' मङ्गल-जयशब्द-कृताऽऽयोः-

इम वात की घोषणा करता है कि जो भी कोई वीर हो वह मेरा हाथ से इम वलय को
पने-छुडाने, इस प्रकार का स्पर्धा से वीरों द्वारा जो वलय धारण किया जाता है वह भी
शोभलय कहा गया है । (किं बहुणा) अत्रि कया कहा जाय ? (अलंकिय-विभूसिए)
महोत्सविक के आभूषणों से अलङ्कृत पत्र बहुमूल्य अनक प्रकार के मुद्र मुद्र वस्त्रों से
विभूषित (णरवई) ने राजा (रूपवृक्षए चेव) रूपवृक्षकी तरह शोभित होने लगे । उनके ऊपर
(सकोरट-मल्ल-दामेणं छत्तेण धरिज्जमाणेणं) कोण्ट के पुष्पों की मालाओं से युक्त उत्र धरा
हुआ था, पत्र उनके ऊपर (उभओ चउ-चामर-वाल-वीइयगे) दोनों ओर से चार चामर दोगे
जा रहे थे, (मंगल-जयसद्-कया-लोए) तथा उनके देवते ही मनुष्यों ने 'मंगल हो, ब्रह्म

उरे छे ते अे वातनी घोषणा उरे छे डे ने डोई पणु वीर डोय ते भारी
पायेथी हाथभाथी आ वलयने जेथीने छोडाथी नय आ प्रकारनी स्पर्धाथी
वीरों द्वारा ने वलय धारण करवाभा आरे छे तेने वीरवलय
ढेगाभा आवे छे (किं बहुणा) वधारे शु ढडेपु डोय । (अलंकिय-
विभूसिए) महोत्सविक आभूषणोथी अलङ्कृत तेमन् षड्भूषण (धणु
दिमती) अनेक प्रकारना सुहर वओथी विभूषित (णरवई) ते गण (कप्प-
रुक्खए चेव) ऋटपवृक्षनी पेडे शोभवा लाया तेमना उपर (सकोरट मल्ल दामेणं
छत्तेण धरिज्जमाणेण) दोरटना पुष्पानी माला वडे युक्त छत्र धारण करायेल
इतु तेमन् तेमना उपर (उभओ चउ-चामर-वालवीइयगे) पन्ने पाणुअे
भगी आऽआभऽ डोणाथे रखा इता (मंगल-जयसद्-कया-लोए) तथा तेमने

यंगे, मंगल-जयसद-कयालोए मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ,
पडिणिक्खमित्ता अणेग-गणनायग-दंडनायग-राई-सर-तलवर-
माडंविउ-कोडुंविउ-इब्भ-सेट्टि-सेणावड-सत्थवाह-दूय-संधिवाल
सद्धिं सपडिबुडे धवल-महामेह-णिग्गए इव गहगण-दिप्पंत-

मङ्गलरूपो जयशब्द कृतो जनेन जालोके=दर्शन यस्य स तथा, 'मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ'
मज्जनगृहात्प्रतिनिष्क्रामति=प्रतिनिर्गच्छति, 'पडिणिक्खमित्ता' प्रतिनिष्क्रम्य 'अणेग-
गणनायग-दंडनायग-राई-सर-तलवर-माडंविउ-कोडुंविउ-इब्भ-सेट्टि-सेणा-
वड-सत्थवाह-दूय-संधिवाल सद्धिं सपडिबुडे' अनेक-गणनायक-दण्डनायक-
राजेश्वर-तलवर-माडम्बिक-कौटुम्बिकेभ्य-श्रेष्ठि-सेनापति-सार्थवाह-दूत-सन्धिपाले
सार्द्धं सम्पगृहृत-अत्र यानि पदानि प्राग्-व्याख्यातानि, मज्जनगृहान्निष्क्रान्तो नरपति क इव
शोभते इत्याह-'धवल' इत्यादि। 'धवल-महामेह-णिग्गए इव' धवल महामेषनिर्गत इव-
धवलमहामेषतो निर्गत=मेषावरणविनिर्मुक्त इव 'गहगण-दिप्पंत-रिक्ख-तारागणाण मज्जे

हो' इस प्रकार का शब्द करने लग। इस प्रकार वे राजा (मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ)
स्नान घर से निकले। (पडिणिक्खमित्ता) निकलते ही (अणेग-गणनायग-दंडना-
यग राई-सर-तलवर-माडविउ-कोडुविउ-इब्भ-सेट्टि-सेणावड-सत्थवाह-दूय-संधिवाल
सद्धिं सपडिबुडे) अनेक गणनायकों, अनेक दंडनायकों, राजा, ईश्वर, तलवर, माडविक,
कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, दूत एव सन्धिपालों से घिरे हुए वे राजा
(धवल-महामेह-णिग्गए इव) धवल महामेष के आवरण से रहित (गहगण दिप्पंत-
रिक्ख-तारागणाण मज्जे ससिच्च) प्रहगणों के बीच में वर्तमान तथा दीप्यमान ऐसे

नेतान् अनुभूये 'मंगल डो जय डो' ये प्रकारना शब्द ज्ञेयवा लाज्या
आधी शीते ते राजा (मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ) स्नान घरभाथी नीकण्ठा
(पडिणिक्खमित्ता) नीकण्ठा ज (अणेग-गणनायग-दंडनायग-राई-सर-तलवर-माड
विउ-कोडुविउ-इब्भ-सेट्टि-सेणावड-सत्थवाह-दूय-संधिवाल सद्धिं सपडिबुडे) अनेक
गणनायकों, अनेक दंडनायकों, राजा, ईश्वर, तलवर, माडविक, कौटुम्बिक, इभ्य,
श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, इत तेभज सन्धिपालोंकी घेरायेला (गरवई)
ते राजा (धवल-महामेह-णिग्गए इव) धवल महामेषना आवरणथी मुक्त (गह
गण-दिप्पंत-रिक्ख-तारागणाण मज्जे ससिच्च) अङ्गणुना पथभा वर्तमान तथा

खिख-तारागणाण मञ्जे ससिच्च पियदंसणे णरवई जेणेव वाहि-
रिया उवट्टाणसाला जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवाग-
च्छइ, उवागच्छित्ता अंजण-गिरिकूड-सण्णिभं गयवइं णरवई
दुरूढे ॥ सू० ४८ ॥

ससिच्च' प्रहृगग दीप्यमान-रुक्ष तारागणाना मध्ये शशीर=दीप्यमानानाम् रुक्षाणा=नक्ष-
त्राणा तारागणाना च मध्ये चन्द्र इव, 'पियदंसणे' प्रियदर्शन 'णरवई' नरपति 'जेणेव
वाहिरिया उवट्टाणसाला' यत्रैव बाह्योपस्थानशाला, 'जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे'
यत्रैवाऽभिषेक्य=पट्ट हस्तिरत्नम्, 'तेणेव उवागच्छइ' तत्रैवोपागच्छति, 'उवागच्छित्ता'
उपागत 'अजणगिरि-कूड-सण्णिभ गयवइं णरवई दुरूढे' अज्जनगिरिकूटसन्निभ
गजपति नरपतिर्दुरूढ = अज्जनपर्वतगिरिखराऽऽकार गजेन्द्र नरेन्द्रो दुरूढ = आरूढवान्
॥ सू० ४८ ॥

नक्षत्र एव तारागणों के मध्य में सुशोभित चद्रमा के समान (पियदंसणे) देवने में बहुत
ही सुन्दर मान्य होते थे । मतलब इसका यह है कि यहाँ पर राजा को चद्रमा की और
उनके स्नान घर को शुभ्र मेघों की, तथा गणनायक आदि को नक्षत्र और ताराओं की
उपमा दी गई है । इस प्रकार से वे राजा (जेणेव वाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव
आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ) जहा पर बाहिर की ओर उपस्थानशाला थी
और जहा वह आभिषेक्य हस्तिरत्न खडा हुआ था वहा पहुँचे । (उवागच्छित्ता अजण-
गिरि-कूड-सण्णिभ गयवइं णरवई दुरूढे) पहुँचते ही वे अंजनगिरि के गिरिखर के
समान उस हाथी पर आरूढ हो गये ॥ सू० ४८ ॥

दीप्यमान जेवा नक्षत्र तेमज्ज तारागणोना मध्यमा सुशोभित चद्रमा जेवा
(पियदंसणे) जेवाभा अहुञ्ज सुद्धर लागता इता मतलब जे छे डे अडी
राजने चद्रमानी अने तेमना स्नानघरने शुभ्रमेघोनी तथा गणुनायक आदिने
नक्षत्र अने ताराजोनी उपमा आयी छे आ प्रकारे ते राजा (जेणेव वाहिरिया
उवट्टाणसाला जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ) न्या अडारनी
आलुजे उपस्थानशाला इती अने न्या ते आभिषेक्य इथीरत्न उषो
रथो इतो त्या पडोअ्या (उवागच्छित्ता अजणगिरि-कूड-संनिभं गयवई णरवई
दुरूढे) पडोअ्यता ज् अज्जनगिरिना शिखरना जेवा ते इथी उपर आउढ
थई गया (सू० ४८)

मूलम्—तए णं तस्स कूणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स
आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरुद्धस्स समाणस्स तप्पढमयाए इमे
अट्टट्ट मंगलया पुरओ अहाणुपुञ्जीए सपट्टिया, तंजहा-सोवत्थिय-

टीका—गन्त्रेऽधिकृतो नग्रेऽपि भगवदभिमुग यियामताति तस्य पुत्र प्रयानम्
अष्टमङ्गलादिपट्टायनीकान्त कान्त राजोचितरत्तुजात वर्णयति—‘तए ण’ इत्यादि ।
‘तए ण’ तत = तदन तरम्—सेनापतिममानात्तपट्टाजर नममधिगेहणाऽनतर ‘तस्स कूणि-
यस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरुद्धस्स समाणस्स’ तरय कूणि
रुद्ध राजो भंभसागपुत्रस्याऽऽभिप्रेत्य हस्तिरत्नमधिकृतस्य मत ‘तप्पढमयाए इमे अट्टट्ट
मंगलया पुरओ अहाणुपुञ्जीए सपट्टिया’ तत्प्रथमतया इमान्याथाष्ट मङ्गलानि पुत्रो
यथानुपुञ्ज्या स्प्रस्थितानि, ‘तजहा’—तद्यथा—‘ सोवत्थिय—सिरिवच्छ—णदियावत्त-
वद्धमाणग—भदासण—कलस—मच्छ—दप्पणा’—सौवस्तिक—श्रीवत्स—नन्धावर्त — वर्द्धमा-
नक—भद्रासन—कलत्र—मत्स्य—दर्पणा, तत्र—मत्स्य—चित्रपटलिखितमत्स्यरूप । एते

‘तए ण तस्स कूणियस्स’ इत्यादि ।

(तए ण) इसके नाम (भंभसारपुत्तस्स) भंभसार अर्थात् श्रेणिक के पुत्र (तस्स
कूणियस्स रण्णो) उस कूणिक राजा के (आभिसेक्कं हत्थिरयण) आभिप्रेत्य हस्तिरत्न के
ऊपर (दुरुद्धस्स समाणस्स) सवार होते ही (तप्पढमयाए) सर्वप्रथम उनके (पुरओ) आगे
आगे (इमे अट्टट्ट मंगलया अहाणुपुञ्जीए सपट्टिया) ये आठ आठ मागलिक द्रव्य अनुक्रम से
सप्रतिष्ठित हुए—चलने लगे, (तं जहा) वे मागलिक द्रव्य ये हैं, (सोवत्थिय—सिरिवच्छ-
णदियावत्त-वद्धमाणग—भदासण—कलस—मच्छ—दप्पणा) स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्धावर्त,
वर्द्धमानक, भद्रासन, कलत्र, मत्स्य और दर्पण । इनमें से स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्धावर्त

“ तए ण तस्स कूणियस्स ” इत्यादि

(तए ण) त्वार पछी (भंभसारपुत्तस्स) भंभसार अर्थात् श्रेणिकना पुत्र
(तस्स कूणियस्स रण्णो) ते इच्छित रावणा (आभिसेक्कं हत्थिरयण) आभिप्रेत्य इच्छित
रत्नना ऊपर (दुरुद्धस्स समाणस्स) सवार यह जाता व (तप्पढमयाए) सर्वथी
पछेला तेमनी (पुरओ) आगे आगे (इमे अट्टट्ट मंगलया अहाणुपुञ्जीए
सपट्टिया) आ आठ आठ मागलिक द्रव्य अनुक्रमेण गौडवाभा आया,
(तजहा) ते मागलिक द्रव्य आ जाता (सोवत्थिय—सिरिवच्छ—णदियावत्त वद्धमाणग
भदासण—कलस मच्छ दप्पणा) १ स्वस्तिक, २ श्रीवत्स, ३ नन्धावर्त, ४ वर्द्ध-

सिरिवच्छ-गंदियावत्त-वद्धमाणग-भद्दासण-कलस-मच्छ-दप्पणा ।
 तयाणंतरं च णं पुण्ण-कलस-भिगारं दिव्वा य छत्तपडागा
 सचामरा दंसण-रडय-आलोय-दरिसणिज्जा वाउ-द्धूय-विजय-

माङ्गलिकतया यात्रायामुपयुक्ता । तदनन्तरं च खड्ग 'पुण्ण-कलस-भिगार' पूर्ण-कलस-
 गद्दार, जलपरिपूर्णा धटा मृद्धारश्च, तत्र मृद्धार - 'झारी' इति प्रसिद्ध, ण्ते पुर प्रस्थिता ।
 'दिव्वा य' दिव्या-शोभना च 'छत्तपडागा' छत्रपताका-छत्रेण सहिता पताका-छत्र-
 पताका 'सचामरा' सचामरा=चामराभ्या युक्ता च, 'दंसण-रडय-आलोय-दरिसणिज्जा'
 दर्शनरचिता-लोक-दर्शनाया दर्शने=राजो दृष्टिप्रिये रचिता=कृता, आ=समन्तात् लोकै =जनै-
 दर्शनीया=रूपा च, 'वाउ-द्धूय-विजय-वेजयती य' वातो-द्धूत-विजय-वैजयन्ती
 च-वातोद्धूता = पवनप्रकम्पिता चासौ विजयवैजयन्ती च = विजयवृत्तिका ध्वजपताका

और वर्धमानक ये सायिये कहलाते हैं । मत्स्य से यहा चित्रपट में लिखित मत्स्य का ग्रहण
 किया हुआ समझना चाहिये । ये आठ भगवत्स्वरूप होने से प्रस्थान में उपयुक्त गिने जाते हैं ।
 (तयाणंतरं च ण) इसके बाद (पुण्णकलसभिगारं दिव्वा य छत्तपडागा सचामरा दंसण-
 रडय-आलोय-दरिसणिज्जा वाउ-द्धूय-विजय-वेजयती य ऊसिया गगणतलमणु-
 लिहती पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टिया) कितनेक लोग पूर्णकलस=जल से भरे हुए कलस,
 तथा जल से भरी हुई झारियां लेकर आगे २ चलने लगे । कितनेक चामरसहित सुन्दर
 छत्र-पताकाओं को लेकर आगे २ चलने लगे । और कितनेक तो राजा का दृष्टि में आ सकें
 इस प्रकार से रानी हुई, देखने में सुन्दर ऊँची अत एव आकाश को छूती हुई ऐसी विजय-

मानके, ५ अद्दानन, ६ दलश, ७ मत्स्य अने ८ दर्षणु अेभाथी न्वस्तिङ,
 श्रीवत्स, नन्धावर्त अने वर्धमानऽ अे नाथिया उडेवाय छे मत्स्य अेटले
 अडी चित्रपटभा आणेजेला माछलानु चित्र नमछ लेवु आ आठ भगल
 न्वडूष डोवाथी प्रस्थान (अद्दार जती वणते) उपयोगी गंछुाय छे (तयाणतर
 च ण) त्थार पडी (पुण्णकलसभिगार दिव्वा य छत्तपडागा सचामरा दंसण-
 रडय-आलोय-दरिसणिज्जा वाउ-द्धूय-विजय-वेजयती य ऊसिया गगणतलमणुलिहती
 पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टिया) डेटलाऽ लोऽ पूषूँ दलश-७दयी भरेला कण्ठे
 तथा जलथी लरेदी आरीअे लधने आगण आगण आलवा लाग्या डेटलाऽके
 आभर सडित सुंदर छत्र पताकाअेने लठने आगण आगण आलवा लाग्या,
 अने डेटलाऽ तो सबनी नजर पडी शडे अेम राणेदी, नेवाभा सुंदर

वेजयंती य ऊसिया गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुञ्चीए
संपट्टिया । तयाणंतरं च णं वेरुलिय-भिसंत-विमल-दंडं पलव-
कोरंट-मल्लदामो-वसोभियं चंदमंडलणिभं समूसियं विमलं आय-
वत्तं पवरं सीहासणं वरमणिरयणपादपीठं सपाउयाजोयसमा-

‘ऊसिया’ उरूना-उथापिता, अतएव ‘गगणतलमणुलिहन्ती’ गगनतलमणु-
लिखन्ती=व्योमतल स्पृशन्ती-अत्युचा, पुरतो यथानुपूर्व्यां सम्प्ररिथता=प्रचलिता । उत्र वर्ण-
यज्ञाह-‘वेरुलिय’ इत्यादि । तदनन्तर खलु ‘वेरुलिय-भिसंत-विमल-दंड’ वैदूर्यभास-
मान-विमल-दण्डम्-वैदूर्यस्य=रनरिणोपस्य भासमानो=नीथमानो विमलो दण्डो यत्र तत् ताद-
शम्, -‘पलव-कोरंट-मल्ल-दामोवसोभिय’ प्रलम्बमान-कोरण्ट-मान्यदामोपशोभितम्
प्रलम्बमानेन कोरण्टारयमालोपयोगिकुसुमाना दान्ना=मालया उपशोभितम् । अतएव-‘चंद-
मंडलणिभं’ चन्द्रमण्डलनिभ-चन्द्रमण्डलेन समानम्, ‘समूसियं’ समुच्छ्रितम्=विस्तारितम्,
‘विमल आयवत्तं’ विमलम् आतपत्रम्, सिंहासन वर्णयज्ञाह-‘पवर-सीहासण’ इति, प्रवर-
सिंहासनम्, तत् कीदृशम् ? इत्याह-‘वर-मणि-रयण-पाद-पीठ’ वर-मणि-रत्न-पाद-

वैजयन्ती-विजयवर्जो को लेकर आगे २ चलने लगे । (तयाणतरं च णं) इसके बाद (वेरु-
लिय-भिसंत-विमल-दंड पलव-कोरंट-मल्ल-दामो-वसोभिय चंदमंडलणिभं समू-
सियं विमल आयवत्तं पवर सीहासण वर-मणि-रयण-पादपीठ सपाउयाजोयसमा-
उत्तं बहु-किंकर-कम्मकर-पुरिस-पायत्त-परिक्खत्त पुरओ अहाणुपुञ्चीए सपट्टिय)
कितनेक लोग वैदूर्य मणि की प्रभा से प्रकाशित दण्डवाले, लटकती हुईं कोरंटमाला से
सुशोभित, चद्रमण्डलसदृश तथा ऊँचे उठाये हुए ऐसे ऊत्र को लेकर आगे २ चल । तथा
बहुत से नौकर-चारु और सैनिक लोग श्रेष्ठ सिंहासनको तथा पादुकासहित, उत्तम मणि-

उत्थी ओटले डे आकाशने अउती डोय तेवी विजयवैजयन्ती विजयध्वज
ओने लधने आगण आगण आलवा लाया (तयाणतरं च णं) तयार पछी
(वेरुलिय-भिसंत-विमल-दंड पलव-कोरंट-मल्ल-दामो-वसोभिय चंद-मंडल-णिभ
समूसियं विमल आयवत्तं पवर सीहासण वर-मणि-रयण-पाद-पीठ सपाउया-
जोय-समाउत्तं बहु-किंकर-कम्मकर-पुरिस-पायत्त-परिक्खत्त पुरओ अहाणुपुञ्चीए
सपट्टिय) डेटलाड लोड वैदूर्यमणिनी प्रभाथी प्रकाशित हउवाणा, लटकती
कोरंटमालाथी शोभता, अद्रम उल जेवा, तथा उत्रे उपाडेला छत्रने लध

उत्तं बहु-किकर-कम्मकर-पुरिस-पायत्त-परिक्खित्तं पुरओ अहाणुपु-
व्वीए संपट्टियं । तयाणंतरं च णं बहवे लट्ठिग्गाहा कुंतग्गाहा चाव-
ग्गाहा चामरग्गाहा पासग्गाहा पोत्थयग्गाहा फलगग्गाहा पीढग्गा-
हा वीणग्गाहा कूवग्गाहा हडप्पयग्गाहा पुरओ अहाणुपुव्वीए संप-

पीठम्-श्रेष्ठ-मणि-रत्न-स्वचित्त-पादस्थापनपाठ-सहितम्, 'सपाउया-जोय-समाउत्तं' स्व-
पादुकायोग-समायुक्तम्-स्वमादुकर्योर्योग =स्वन्ध, तेन समायुक्तम्, 'बहु-किंकर-कम्म-
कर-पुरिस-पायत्त-परिक्खित्तं' बहु-किङ्कर-कर्मकर-पुरुष-पादात्-परिक्षितम्-बहुभि =अनेकै
किङ्करै =स्वामिनपृष्ठा कार्यकरै, कर्मकरै =भृत्यै, पुरुषै =साधारणजनै, पादातेन=पदातिसमूहेन
परिक्षितम्=उत्थापितम्, पुरतो यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थितम् । 'तयाणतरं च णं' तदनन्तरञ्च ग्वल्लं
'बहवे लट्ठिग्गाहा' बहवो यत्प्राहिण, 'कुंतग्गाहा' कुन्तप्राहिण =मल्लधारका 'चाव-
ग्गाहा' चापप्राहिण =धनुर्धारिण, 'चामरग्गाहा' चामरप्राहिण, 'पासग्गाहा' पाशप्रा-
हिण-उद्धतगजाश्वादिन्धनसाधन पाशस्तस्य धारका । 'पोत्थयग्गाहा' पुस्तकप्राहिण,
'फलगग्गाहा' फलकप्राहिण-फलक = 'ढाल' इतिरयातस्तस्य धारका, 'पीढग्गाहा' पीठ-
प्राहिण-पीठानि=आसनविशेषास्तेषा धारका इत्यर्थ । 'वीणग्गाहा' वीणाप्राहिण-वीणा=वाद्य-

रत्नों के बने हुए पादपीठ को लेकर आगे २ चलने लगे । इसके बाद (बहवे लट्ठिग्गाहा)
अनेक लाठीगारी चलने लगे । (कुंतग्गाहा) अनेक मल्लधारी (चावग्गाहा) धनुर्धारी (चामर-
ग्गाहा) चामरधारी (पासग्गाहा) उद्धत हाथी और घोड़ों को जिनके द्वारा वज्र में किया
जाये ऐसे पाश को धारण करने वाले, (पोत्थयग्गाहा) पुस्तकधारी, (फलगग्गाहा) ढाल
को धारण करने वाले (पीढग्गाहा) आसनविशेष के धारी (वीणग्गाहा) वीणाधारी (कुतु-

आगण आगण आत्था, तथा धल्ला नोकर-आकर अने नैनिक्क दोक्क श्रेष्ठ
सिद्धात्तने तथा पाहुकासद्धित उत्तम भल्लिरत्तनेनी अनेली पादपीठने लधने
आगण आगण आत्था त्तार पथी (बहवे लट्ठिग्गाहा) अनेठ लाठीधारी
आलवा लात्था (कुंतग्गाहा) अनेक लालाधारी, (चावग्गाहा) धनुर्धारी,
(चामरग्गाहा) चामरधारी, (पासग्गाहा) उद्धत हाथी अने घोडाने नेना द्वारा
पथमा लध शकय जेवा पाशने धारणु करवावाणा, (पोत्थयग्गाहा) पुस्तकधारी,
(फलगग्गाहा) ढालने धारणु करवावाणा, (पीढग्गाहा) आसन विशेषना धारणु करवा-
वाणा, (वीणग्गाहा) वीणाधारी, (कुतुवग्गाहा) कुतुप अर्थात् आमडाना तेल पात्रने

द्विया । तयाणंतरं च णं बहवे दंडिणो मुंडिणो सिंहडिणो जडिणो पि-
च्छिणो हासकरा डमरुयकरा चाडुकरा वादकरा कंदप्पकरा दवकरा
कोकुड्या किडुकरा य वायंता य गायंता य हसंता य णचंता य भासं-

विशेषस्तस्या धारका इत्यर्थः, 'कुतुपग्गाहा' कुतुपग्राहिण - तैत्रादीना चर्ममय पात्र कुतुपस्त
स्य धारका, 'हडप्पयग्गाहा' हडप्पग्राहिण - ताम्बूलान्निभाजन हटप्पस्तस्य धारका इत्यर्थः,
'पुरओ अहाणुपुञ्चीए सपट्टिया' पुरतो यथानुपूर्व्यां मप्रस्थिता । 'तयाणतरं च णं'
तदनन्तरं च खलु 'बहवे' बहवो 'दडिणो' दण्डिन 'मुडिणो' मुण्डिन 'सिहडिणो'
शिखाधरिण = शिरसाशिराधारिण, 'जडिणो' जटिन = जटावन्त, 'पिच्छिणो' पिच्छिन = मयू-
रादिपिच्छवन्त 'हासकरा' हास्यकरा 'डमरुयकरा' डमरुकरा = 'डुगडुगी' - त्रिप्रमिद्ववा-
चवादिन, 'चाडुकरा' चाटुकारिण = प्रियवचनवादिन, 'वादकरा' वादकारिण, 'कदप्पकरा'
कन्दर्पकारिण = कामकथाकारिण, 'दवकरा' दवकरा = परिहासकारिण 'कोकुड्या' कौतु-
किका = कुतूहलकारिण, 'कीडुकरा' क्रीडाकरा, 'वायंता य' वादयन्तश्च - मृदङ्गादिक

वग्गाहा) कुतुप अर्थात् चमडे के तैलपात्र को धारण करने वाले, (हडप्पयग्गाहा) तथा
हटप्प-ताम्बूल पात्र को धारण करने वाले अनुक्रम से आगे २ चलने लगे । (तयाणतर
च ण) इसके बाद (बहवे) बहुत से (दडिणो) दडी, (मुडिणो) मुण्डी, (सिहडिणो)
शिखाधारी, (जडिणो) जटाधारी, (पिच्छिणो) मयूर आदि पिच्छ के धारी (हासकरा)
हँसाने वाले (डमरुयकरा) डुगडुगी बजाने वाले, (चाडुकरा) प्रिय वचन बोलने वाले,
(वादकरा) वादप्रवाद करने वाले, (कदप्पकरा) कामकथा करने वाले, (दवकरा) हँसा
मजाक करने वाले, (कोकुड्या) कुतूहल करने वाले, (किडुकरा य) खेल-तमाशा करने वाले,
(वायंता य) मृदगादिक बाजे बजाने वाले (गायंता य) गाना गाने वाले, (हसता य) विना कारण

(कु पीओने) धारण करनेवाला, (हडप्पयग्गाहा) तथा हटप्प- (ताम्बूलपात्र) ने धारण
करनेवाला अनुक्रम से आगे चलने लगे । (तयाणतरं च ण) त्पश्चात् पछी
(बहवे) अनेको (दडिणो) दडी (मुडिणो) मुण्डी (सिहडिणो) शिखाधारी
(जडिणो) जटाधारी (पिच्छिणो) मयूर आदि पिच्छ धारण करनेवाला (हासकरा)
हँसानेवाला (विद्वक्के) (डमरुयकरा) डुगडुगी बजावनेवाला (चाडुकरा) प्रियवचन
बोलनेवाला, (वादकरा) वादप्रवाद करनेवाला, (कदप्पकरा) कामकथा करनेवाला,
(दवकरा) हँसीमजाक करनेवाला, (कोकुड्या) कुतूहल करनेवाला, (किडुकरा) खेल
तमाशा करनेवाला, (वायंता य) मृदगादिक (बाजे) बजावनेवाला, (गायंता य)

ता य सावेता य रस्वता य आलोयं च करेमाणा जयसद्द पउजमाणा
पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टिया । तयाणंतरं च णं जच्चाणं तर-
मल्लिहायणाणं हरिमेलामउलमल्लियच्छाणं चंचुच्चियललिय-

नादयन्त, 'गायता' गायन्त = गान्धर्वमनुनिष्ठन्त, 'हसता' हसन्त, च-पुन
'णञ्चता' वृ यन्त, 'भासता' भायमाणा 'सावेता' श्रायन्त = भूत-भविष्यद्-वादिन,
'रस्वता' रस्वन्त - राज्ञो देहृक्षा कुर्वन्त, 'आशोय च करेमाणा' आलोक च
कुर्वन्त - राजादिदर्शन कुर्वन्त, 'जयसद्द पउजमाणा' जयशब्द प्रयुञ्जाना = यदन्त ।
'पुरओ' पुरत - अप्रत, 'अहाणुपुव्वीए' यथानुपूर्व्या = क्रमेण 'सपट्टिया' सम्प्रस्थिता
- प्रचलिता । 'तयाणतरं च णं' तदनन्तरश्च रस्व 'जच्चाण' जायानाम् - उत्तमजाति-
भयानाम, 'तर-मल्लि-हायणाण' तगेमल्लिहायनाना - तगे = वेग तस्य मल्लि = धारक -
'मउ मल्ल धारणे' इति धातुपाठे स्थितान्मन्त्रजातो कर्तरि इ, ततश्च तरोमल्लि = वेगधारक
हासन = चसगे येषां ते तगेमल्लिहायना - यौवनवय स्थितारतेषाम्, तुरगाणामिदमेण
अन्वय, पुन कीदृशानाम् अत्रास्स - 'हरिमेलामउलमल्लियच्छाण' हरिमेलाम-
सुमुलमल्लिकाम - भागाम - हरिमेलाम = वृत्तविशेष तस्य मुमुल = कलिका, मल्लिकाम = वमन्तज

हंसने वाले, (णञ्चता य) नाचने वाले, (भासता य) भायण करने वाले, (सावेता य) भूत-भवि-
ष्यन् कहने वाले, (रस्वता य) राजा के आमन्त्रक, (आशोय च करेमाणा) राजा का
दर्शन करने वाले पुरुष, तथा - (जयसद्द पउजमाणा) 'जय जय' शब्द करने वाले, ये
सभी (पुरओ) आगे २ (अहाणुपुव्वीए) यथाक्रम से (सपट्टिया) चलने लग। (तयाण-
तरं च ण) इसके बाद (जच्चाण तरमल्लिहायणाणं) उत्तम जाति के, वेगवाले नौजवान
घोड़े चलने लग। (हरिमेलामउलमल्लियच्छाण) ये घोड़े हरिमेलाम-वृक्षविशेष की

गायन गानाग, (हसता च) विनाशरथ्युद्धयनाग, (णञ्चता य) नाचनारा, (भासता य)
भाषण्युद्धयनाग, (सावेता य) भूतलविष्य उद्देनाग, (रस्वता य) गानना आत्म
२३८, (आलोय च करेमाणा) गानना दर्शन इन्द्रनाश, तथा (जयसद्द पउजमाणा)
'जय जय' शब्द इवावाणा, ये अथा (पुरओ) आगम आगण (अहाणु
पुव्वीए) यथाक्रमेण (सपट्टिया) आलवा लाज्या (तयाणतरं च ण)
त्या ५ ग्री (जच्चाण तरमल्लिहायणाण) उत्तम जातिना वेगवाणा नवयुवान
घोरा आलवा लाज्या (हरिमेलामउलमल्लियच्छाण) आ घोरा
इन्द्रियेला-वृक्षविशेषनी इती तेमज मल्लिकामपुष्प-वेदाना इल नेवी आभो-

पुलिय-चल-चवल-चंचल-गईणं लंघण-वग्गण-धावण-धोरण-तिव-
ई-जइण-सिक्खिय-गईणं ललंत-लाम-गललाय-वर-भूसणाणं मुह-

कुमुमविशेष 'धेली' इतित्यातस्तद्वदक्षिणी येषां ते तथा तेषां, 'चचु-च्चिय-ललिय-
पुलिय-चल-चवल-चंचल-गईणं' चञ्चु-घित-ललित-पुलित-चउ-चपल चञ्चल-गतीनाम्,
चञ्चु = शुरुचञ्चु - तद्वदवकृतया उघित = चरणयोरुद्घापन तेन ललित = सविलाम यत्
पुलित = गमनविशेष - गतद्रूपा-चलानां = गतिमता चपलचञ्चल = अतिचञ्चला, यद्वा-चपला-
त्रिघुत्, तद्वचञ्चला गतिर्येषां ते तथा तेषां, चरुपदभेपगमनविशेषाऽतिगयचञ्चलगमनवताम्,
'लघण-वग्गण-धावण-धोरण-तिवई-जइण-सिक्खिय-गईणं' लद्धन वन्गन धावन-
धोरण-त्रिपदी-जयिनी-शिक्षित-गतीनाम् लद्धन-गत्तदिरलद्धनम्, वन्गनम् = उच्छूर्दनम्,
धावन = शीघ्रतापूर्वक दौडना, धोरण = गतिचातुर्यम्, त्रिपदी = भूमौ पदत्रयव्याप, जयिनी = जयिन्या-
ख्या अतितीव्रगति, एता शिक्षिता = अभ्यस्ता गतयो यैस्ते तथा तेषाम् । 'ललंत-लाम-गल-
लाय-वर-भूसणाणं' लल-लामद-गललाय-वर-भूपणानाम्-ललन्ति = दोलायमानानि, लामन्ति =
रम्याणि, गललायानि = प्रीतिस्थितानि वरभूपणानि येषां ते तथा तेषां, चञ्चलमुन्दरप्रीवामरण-

फली एव मल्लिकापुष्प-वेला के फूल-के समान आरोंवाले थे । (चचु-च्चिय-ललिय-पुलिय-
चल-चवल-चंचल-गईणं) शुरु की चचु के समान चक्र पैर उठा कर सविलास चलने के
कारण वे बहुत भले मादम होते थे, तथा चलने में विजली के समान चंचल थे । (लंघण
वग्गण-धावण-धोरण-तिवई-जइण-सिक्खियगईणं) लधन-खड्ग आदि का लाधना,
वन्गन-कूदना, धावन-शीघ्रतापूर्वक दौडना, धोरण-सूगर के समान नीचे सिर कर के दौडना,
त्रिपदी-तीन पैरों से खडा होना, जयिनी-अतितीव्र-चालका चलना, -इन सगों में ये अति-
निपुण थे । (ललंत-लाम-गललाय-वर-भूसणाणं) इनके गले में जो आभूषण थे वे
इधर उधर हिलते डुलते थे और बहुत ही सुन्दर थे । (मुहभंडग-ओचूलग-धासग-अहि-

पाणा इता (चंचु चिय-ललिय पुलिय चल चवल चंचल गईणं) पोपटनी आथनी
जेम वाका पग उपाडीने विलास करता आलवाना डारणे तेओ अहु लला
लागता इता, तथा आलवाभा विजणीनी पेठे यच्चण इता (लघण-वग्गण
धावण-धोरण तिवई जइण सिक्खिय गईणं) लधन-अङ्ग आहिने लाधपु (टपपु)
वत्गन-कूडपु, धावन-अडपथी टोडपु, धोरण-सूकरनी पेठे नीचु माथु राणी
टोडपु, त्रिपदी-त्रषु पगे उला रडेपु, जयिनी-अति' अडपवाणा आलथी
आलपु आ अथाभा तेओ निपुणु इता (ललंत-लाम गललाय-वर भूसणाणं)
तेभना गणाभा ओ आभूषणु इता ते आभतेम डालता-डालता इता अने

भंडग-ओचूलग-थासग-अहिलाण-चामर-गड - परिमंडिय - कडीणं
किंकर-वर-तरुण-परिगहियाणं अट्टसयं वरतुरगाणं पुरओ अहाणु-
पुञ्जीए संपट्टियं। तयाणंतरं च णं ईसीदंताणं ईसीमत्ताणं ईसीतुंगाणं

भूषितानाम् । 'मुहभडग-ओचूलग-थासग-अहिलाण-चामरगड-परिमंडिय-कडीण'
मुखभाण्डका अवचूलक-स्थासका-भिरान-चामरगण्ट-परिमण्डित-कटीनाम् - मुखभाण्टक=मुखा-
भरणम्, अवचूला = प्रलम्बमानगुच्छा, स्थासका = दर्पणाकारा अलङ्कारा, अभिलाना = मुख-
नन्धविशेषाश्च, येषां ते, तथा चामरगण्टे = चामरसमूह, परिमण्डिता कटिर्हेषां ते तथा, तत
पद्मस्य कर्मधारय, तेषां तथाभूतानाम् । किंकर-वर-तरुण-परिगहियाणं' किङ्कर-
वरतरुण-परिगृहीतानाम्-किंकरवराश्च ते तरुणा-तरुकिङ्करश्चेष्टा, तैः परिगृहीतानाम्,
'अट्टसयं वरतुरगाणं' अष्टगत वरतुरगाणां=श्रेष्ठहयानामष्टाधिकं गतम्, 'पुरओ अहाणु-
पुञ्जीए संपट्टियं' पुरतो यथानुपूर्व्यां सम्प्रस्थितम् । 'तयाणतरं च णं' तदनन्तरं च खल्ल-
ईसीदताणं' ईपदन्तानाम्=अपदन्तप्रताम् 'ईसीमत्ताणं' ईपन्तानाम्=किञ्चिन्मदशालिनाम्,

लाण-चामरगड-परिमंडिय-कडीण) मुखभाण्टक-मुख का आभूषण, अवचूल-प्रलम्ब-
मान गुच्छे जो मस्तक के ऊपर मुर्गे की कलगी के समान लगाये जाते हैं, स्थासक-दर्पण
के आकार जैसे आभरणविशेष, तथा-अहिलाण-मुखनन्धविशेष से ये गोभित हो
रहे थे, तथा चामरगड - चामरसमूह-से इनका कटिभाग विशेष अलंकृत हो
रहा था । (किंकर-वरतरुण-परिगहियाणं) इनको पकड़ने वाले सईस उत्तम 'एव
तरुण अवस्था वाले थे। (अट्टसयं वर तुरगाण पुरओ अहाणुपुञ्जीए संपट्टियं) इस प्रकार १०८
घोड़े आगे आगे अनुक्रम से चलने लगे । (तयाणतरं च णं ईसीदताणं ईसीमत्ताणं ईसीतुंगाणं

७६७ सु ४२ इति (मुहभडग ओचूलग थासग-अहिलाण चामरगड परिमंडिय-कडीण)
मुखभाण्डक-मुखनू आभूषण, अवचूल-प्रलम्बमान गुच्छा जे मस्तकना उपर
कुंडलीनी कलगीना जेम लगावाय छे, स्थासक-दर्पणुना आकार जेवा आल
रखु विशेष, तथा अहिलाण-मुखनन्धविशेष, जे पधाथी तेजो शोभित
थई रह्या इति, अने चामरगड-चामरसमूहथी तेमने केउने लाग
विशेष अलंकृत थई रह्यो इति । (किंकर-वर-तरुण-परिगहियाण)
तेमने पडउनारा सईस उत्तम तेमज तरुण अवस्थाना इति
(अट्टसयं वर तुरगाण पुरओ अहाणुपुञ्जीए संपट्टियं) आ प्रकारना १०८ घोडा
अनुक्रमेण आगण आगण आलवा जाय्या (तयाणतरं च णं ईसीदताणं ईसी

ईसी-उच्छंग-विसाल-धवल-दत्ताणं कंचण-कोसी-पविट्ट-दंताणं कंचण-मणि-रयण-भूसियाणं वर-पुरिसा-रोहग-संपउत्ताणं अट्टसयं गयाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टियं । तयाणंतरं च णं सच्छ-

‘ईसीतुगाण’ ईपत्तुहानाम्=मनागुन्नतानाम्, ‘ईसी-उच्छंग-विसाल-धवल-दत्ताण’ ईपदुत्तङ्ग-विशाल-धवल-दत्तानाम्-ईपदुत्तङ्गे=मध्यभागे विशाला अन्पयत्तुत्तात्, तथा धवला दन्ता येषां ते धवलदन्ता, तत पदद्वयस्य कर्मधारय, तेषाम्, ‘कंचण-कोसी-पविट्ट-दत्ताण’ काञ्चन-कोश-प्रविष्ट-दन्तानाम्, कंचण-मणि-रयण-भूसियाण’ काञ्चनमणिरत्न-भूषितानाम्, ‘वर-पुरिसा-रोहग-संपउत्ताण’ वर-पुरुषा-ऽऽरोहक-सम्प्रयुक्तानाम् वरपुरुषा =श्रेष्ठपुरुषाधामी-आरोहका तै सम्प्रयुक्तानाम्=युक्तानाम्, एतादृशा-‘गयाणं’ गजानाम्=हस्तिनाम्, ‘अट्टसयं’ अट्टगतम्=अष्टांगिक गतम्, ‘पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टियं’ पुरतो यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थितम् । अथ रथाना वर्णनमाह-‘तयाणंतरं’ इत्यादि । ‘तयाणंतर

ईसी-उच्छंग-विसाल-धवल-दत्ताण कंचण-कोसी-पविट्ट-दत्ताण कंचण-मणि-रयण-भूसियाण वर-पुरिसा-रोहग-संपउत्ताणं अट्टसयं गयाण पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टियं) इनके बाद आगे आगे १०८ हाथी चले, ये हाथी अन्पदतवाले थे, पूरे दात इनके बाहिर नहीं निकल पाये थे । किंचित् मदशाली थे । थोड़े ही ऊँचे थे, अधिक नहा, इनका मध्यभाग भी अधिक विगल नहीं था । दात इनके अयत धवल थे । इनके दातों में सोन की रोलियाँ पहनायी गयी थीं । ये सुवर्ण एव मणिरत्नों से विभूषित हो रहे थे । इनके ऊपर श्रेष्ठ पुरुष बैठे हुए थे । (तयाणंतरं च णं सच्छत्ताणं सञ्जयाणं सघटाणं सपडागाणं सतोरणवराणं सणदिघोसाणं स-खिखिणी-जाल-परिक्खत्ताणं हेमवय-चित्त-

मत्ताण ईसीतुगाण ईसी-उच्छंग विसाल धवल दत्ताण कंचण कोसी पविट्ट दंताण कंचण-मणि-रयण भूसियाण वर पुरिसा-रोहग संपउत्ताण अट्टसय गयाण पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टियं) त्थारंपछी आगण आगण १०८ हाथी आट्या आ हाथी अटप हात वाणा हाता-तेना हाते पूरा पहार नीकणेलो नहोता । ऽथित् महशाणी हाता थोडाक उआ हाता अहु नहि तेमने पीठने लाग वधारे पडोणो नहोतो तेमना हात अहु धोणा हाता तेमना हातमा सोनानी जोणो पहारावी हाती तेओ सुवर्ण तेमअ मणिरत्नो वडे विभूषित अन्या हाता तेमना उपर श्रेष्ठ पुरुष ठडा हाता (तयाणंतरं च णं सच्छत्ताणं सञ्जयाणं सघटाणं सपडागाणं सतोरणवराणं सणदिघोसाणं स-खिखिणी-जाल-परिक्खत्ताणं हेमवय-चित्त-तिणिस-कण्ण-

चाणं सज्जयाणं सघंटाणं सपडागाणं सतोरणवराणं सणदि-

च ण' तदन्तरं गल 'सच्छताण' सच्छतागा=छत्रयुक्तानाम्, 'सज्जयाण' सध्वजानाम्-
ध्वजयुक्तानाम् 'सघंटाणं' सघण्टानाम्, 'सपडागाण' सपताकानाम्-ध्वजो गरुटान्चिह्न-
युक्तस्तदन्त्या तु पताका तद्वताम्. 'सतोरणवराण' सतोरणवराणाम्=श्रेयतोरणवराणाम्, 'सण-
दिरोसाण' मनन्दिरोपागाम्-नन्दी=द्वादशविधवाचविधोप, तद् यथा-१ भमा, २ मउद,
३ मइल, ४ कउम, ५ झल्लरि, ६ हुडुक्, ७ कसाला । ८ काहल, ९ तलिमा, १० वसो,
११ न्वो, १२ णवो य वारसमो ॥ १ ॥ तत्र-'भमा' भम्मा=मेरी १, 'मउद' मुकुन्द =
वाद्यविशेष २, 'मइल' मईल=मृदङ्ग ३, 'कउम' कउम्न=वाद्यविशेष ४, 'झल्लरि'
झल्लरी-शालर' इति रयातो वाद्यविशेष ५, 'हुडुक्' हुडुक्क=वाद्यविशेष, अय देशीय शब्द ६,
'कसाला' कास्थाल=वाद्यविशेष ७, 'काहल' काहल=वाद्यविशेष ८, 'तलिमा' तलिमा=

तिगिस-रुणग-णिज्जुत्त-दारुयाण कालायस-सुकय-णेमि-जत-कम्माण) इनके
वाद आगे आगे १०८ रथ चल रहे थे, ये रथ उग्रसहित थे, वज्रासहित थे, इनके ऊपर
ध्वजाएँ फहरा रही थीं, इनमें घण्टे लटक रह थे, जिससे चलते समय इनकी मधुर आवाज
आती थी । पताकासहित थे । (गरुट आदि के चिह्नो से युक्त का नाम ध्वजा है और
चिह्नरहित का नाम पताका है ।) इन रथों पर तोरण बंधे हुए थे । ये रथ नन्दिघोष
सहित थे । बारह प्रकार के वाद्यों का नाम नन्दिघोष है, वे १२ बारह प्रकार के वाजे ये
हैं-भमा-मेरी, मउद-मुकुन्द (यह एक जात का वाजा होता है), मईल-मृदङ्ग, कउम-(यह
भी एक जात का वाजा होता है), झल्लरी-शालर, हुडुक्क (यह भी एक जात का वाजा
विशेष होता है), कसाल-(यह भी एक जातका वाजाविशेष है), काहल-(यह भी एक
जात का वाजा विशेष है), तलिमा-वाद्यविशेष, वग-वाद्यविशेष, शख, एव १२वा पवण-

णिज्जुत्त-दारुयाण कालायस-सुकय-णेमि-जत-कम्माण) त्थार पछी आगण आगण
१०८ रथ आसता हुता आ रथ छत्रवाणा हुता ध्वजवाणा हुता तेमना
उपर ध्वज झरकी रही हुती तेमा घट लटकी रखा हुता जेथी आसती
पणते तेमना मधुर अवाज आवते हुते पताकावाणा हुता (गरुड आदिना
चिह्नो जेमा डोय ते ध्वज ढडेवाय अने जे सिद्धविनानी पताका
(कडेवाय) आ रथो उपर तोरणु आधेला हुता नदिघोषवा
रना वाद्यो (वाज)ना नाम नदिघोष छे तेज्जो १०
छे-भमा-मेरी, मउद-मुकुन्द (आ अेक जततु वाणु
हुडुक्क (आ पणु अेक अमुक जततु वाणु डोय छे) क
वाणु विशेष छे) काहल-आ पणु अेक अमुक जततु वा

ईसी उच्छंग-विसाल-धवल-दंताणं कंचण-कोसी-पत्रिट्ट-दंताणं क-
चण-मणि-रयण-भूसियाणं वर-पुरिसा-रोहग-संपउत्ताणं अट्टसयं
गयाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टियं । तयाणंतरं च णं सच्छ-

ईसीतुगाणं ईपत्तुहानाम्=मनागुन्नतानाम्, 'ईसी-उच्छंग-विसाल-धवल-दंताणं' इष-
दुत्तह-त्रिगाल-धवल-दंतानाम्-ईपत्तुसह्ने=मध्यभाग त्रिगाला अन्पयस्कृवात्, तथा
धवला दन्ता येषां ते धवलदन्ता, तत पदद्वयस्य कर्मधारय, तेषाम्, 'कंचण-कोसी पत्रिट्ट-
दंताणं' काश्चन-कोश ग्रथित-दंतानाम्, कंचण-मणि-रयण-भूसियाणं काश्चनमणि-
रत्न-भूषितानाम्, 'वर-पुरिसा-रोहग-संपउत्ताणं' वर-पुरुषा-ऽऽरोहक-सम्प्रयुक्तानाम् वर
पुरुषा =श्रेष्ठपुरुषाधामी-आरोहका तै सम्प्रयुक्तानाम्=युक्तानाम्, एतादृशा- 'गयाणं' गजा-
नाम्=हस्तिनाम्, 'अट्टसयं' अट्टगन्तम्=अटाधिक गन्तम्, 'पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टियं'
पुरतो यथानुपूर्व्या सम्प्रतियतम् । अथ रथाना वर्णनमाह- 'तयाणतरं' इत्यादि । 'तयाणतरं

ईसी-उच्छंग-विसाल-धवल-दंताणं कंचण-कोसी-पत्रिट्ट-दंताणं कचण-मणि-रयण-भूसि-
याणं वर-पुरिसा-रोहग-संपउत्ताणं अट्टसयं गयाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टियं)
इनके बाद आगे आगे १०८ हाथी चले, ये हाथी अन्पदतवाले थे, पूरे दात इनके बाहिर नहीं
निकल पाये थे । किंचित् मदशाली थे । थोटे हा ऊँचे थे, अधिक नहा, इनका मध्यभाग भी
अधिक विगल नहीं था । दात इनके अयत धवल थे । इनके दातों में सोन की रोलियाँ
पहनायी गयी थीं । ये सुवर्ण एव मणिरत्नों से विभूषित हो रहे थे । इनके ऊपर श्रेष्ठ
पुरुष बैठे हुए थे । (तयाणतरं च णं सच्छत्ताणं सज्झयाणं सघटाणं सपडागाणं
सत्तोरणवराणं सणदिघोसाणं स-विखिणी-जाल-परिक्खत्ताणं हेमवय-चित्त-

मत्ताणं ईसीतुगाणं ईसी-उच्छंग विसाल धवल दंताणं कंचण कोसी पत्रिट्ट दंताणं कचण-
मणि-रयण भूसियाणं वर पुरिसा-रोहग संपउत्ताणं अट्टसयं गयाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए
संपट्टियं) त्यारपछी आगण आगणं '१०८' हाथी आत्था आ हाथी अत्थ दात-
वाणा इता-तेना दात पूरा गडार नीकणेला नडोता । अचित् भइशाणी इता
थोडाक उत्था इता गडु नडि तेमनो पीठनो लाग धंधारे पडोणो नडोतो तेमना
दात गडु धोणा इता तेमना दातमा सोनांणी ओणो पडेशवी इती तेओ -
सुवर्णं तेमं भुत्तिरत्तो वडे विभूषित अन्या इता तेमना उपर श्रेष्ठ पुरुष जेडा
इता (तयाणतरं च णं सच्छत्ताणं सज्झयाणं सघटाणं सपडागाणं सत्तोरणवराणं
सणदिघोसाणं स-विखिणी-जाल-परिक्खत्ताणं हेमवय-चित्त-तिगिस-वृणण-

लिङ्ग-वृत्त-मंडल-धुराणं आडण-वर-तुरग-संपउत्ताणं कुसल-नर-
 च्छेय-सारहि-सुसंपगहियाणं वृत्तीस-तोरण-परिमंडियाणं सकंकड-
 वडेंसगाणं सचाव-सर-पहरणा-वरण-भरिय-जुड-सजाणं अट्टसयं

वृत्तमण्डलधुराणम् । ' आडण - वर - तुरग - संपउत्ताण ' आकार्ग - वर-
 तुरग-मम्प्रयुक्तानाम् - योजितोत्तमज्ञानिमदधोटकानाम्, ' कुमल-नर-च्छेय-सारहि-
 सुसंपगहियाण ' कुमल-नर-च्छेय-सारहि-सुसंपगह्रीनानाम्-कुमल-नर-च्छेय-
 ण्व ये छेय = निपुणा सारथ्य ते सुसंपगह्रीनानाम् = सञ्चायितानाम् । ' वृत्तीस-तोर-
 ण-परिमंडियाण ' द्वात्रिंशत्तोरणपरिमण्डिताना-तोरणानि = अर्धवर्तुगऽऽत्रागणि द्वागणि-
 तैर्द्वात्रिंशद्दृश्यैः तोरैः = वन्दनार्थं परिमण्डिताना, प्रतिव्य द्वात्रिंशद्वन्दनत्रागणि
 सन्तीति भाव । ' सकंकडवडेंसगाण ' सकंकडवडेंसगाणाम्-कंकड = कवचा, अत्र-
 तमका = शिख्रागानि ' टोप ' इति प्रसिद्धा, त युक्ता सकंकडवडेंसगाण तेषाम्- ' सचाव-
 सर-पहरणा-वरण-भरिय-जुड-सजाणा ' सचाव-शर-प्रहरणा-ऽऽवरण-वृत्त-
 जुड-सञ्ज्ञानाम-चापैः सहिता अग, सचावशर प्रहरणानि = गद्गादीनि, आवरणानि = ' द्वात्र'

(आडण-वर-तुरग-संपउत्ताण) इनमें जो फोटे जोतन म आवे ये व वृत्त ही उत्तम
 ज्ञानि के ये । (कुमल-नर-च्छेय-सारहि-सुसंपगहियाण) इनके जो सारथी ये वे
 अथ चापन किया म पिंडो निपुण य । ये ही इहे चरा रह य । (वृत्तीस-तोरण-परि-
 मंडियाण) प्रत्येक रथों पर वर्तीस ० वन्दनार्थं ३ ही टुटे रथी । (सकंकडवडेंसगाण)
 उनम कवच और शिख्राग-गैट के टोप भा गये हुए ये । (सचाव-सर-पहरणा-वरण-
 भरिय-जुड-सजाणां) ये सब रथ चाप-शर, शर-आण, प्रहरण-द्वियाण ण्व आव-
 रण-दाल आदिकां ने मंग हुए ये, अत देखन वाला को पंमे माटम पडने ये कि मानो

तेमना ध्यानग अहुं भरणन तेमन गौण आवांता हुता (आडणवरतुरग-
 संपउत्ताण) तेमा ते गेड त्तेऽवामा आव्या हुता ते अहुं उत्तम वलतिना
 हुता (कुमल नर-च्छेय-सारहि-सुसंपगहियाण) तेना ते सारथी हुता ते
 अथैन आसन द्वियामा विशेष निपुण्य हुता, तेओऽ तेमने अलापता हुता
 (वृत्तीस-तोरण-परिमंडियाण) प्रत्येक रथोना उपर अत्रीम अत्रीस वदनभागे
 आधी हुती (सकंकडवडेंसगाण) तेमा वष्य अने शिख्राण-दोडाना टोप पधुं
 गणेशा हुता (सचाव-सर-पहरणा-वरण-भरिय-जुड-सजाणां) ओ अधा
 र्व चाप-वनुष, शर-आण, प्रहरण-द्वियाण तेमन आवण्य-दाल आदिवी

घोसाणं सुखिखिणीजालपरिखित्ताणं हेमवय-चित्त-तिणिस-कण-
ग-णिज्जुत्त-दारुयाणं कालायस-सुकय-णेमि-जंत-कम्माणं सुसि-

वाधविशेष ९, 'ससो' वश = वाधविशेष १०, 'ससो' शब्द प्रसिद्ध, 'पणयो य वार-
ससो' पणयश्च द्वादश - तत्र पणय - पट्ट 'ढोल' इति प्रसिद्ध । 'स-विखिणी-जाल-
परिखित्ताणं' सक्रिद्धिणी-जाल-परिखित्तानाम्-सत् क्रिद्धिणाभि = बुद्धिणाभि सहित
यजालक = आमरणविशेष तेन जालकेन परिक्षिप्त्वा = सुगोभितास्तपाम्, 'हेमवय-चित्त-तेणिस-
कणग-णिज्जुत्त-दारुयाणं' हेमवत-चित्त-तैनि-कनक-निर्युक्त-दारुकाणाम्-हेमवतानि =
हिमवद्गिरिसम्भूतानि, चित्राणि = विचित्राणि, तैनानि = तिनशनामकतरसम्बन्धीनि, कन-
कनिर्युक्तानि = सुवर्णरसचित्तानि, दारुकाणि = काष्ठानि येषु रथेषु तेषाम्, 'कालायस-सुकय-
णेमि-जंतकम्माणं' कालायस-सुकृत-नेमि-यन्त्र-कर्मणाम्-कालायसेन = कर्कशलौहं सुसु-
कृत नेमे = चक्रधाराया यन्त्रकर्म = यथनक्रिया येषां ते तथा तेषां कर्कशलौहसम्पादितनेमि-
बन्धनसद्धानाम्, 'सुसिलि-वत्त-मंडलधुराणं' सुसिलि-वत्त-मण्डल-धुराणाम्-
सुसु-श्लिष्टा वृत्तमण्डल - अग्रन्तगोत्राकारा धूर्तया ते तथा तेषां दृढघटित-

पट्ट-ढोल । इन बारह प्रकार के वाद्यों से विविष्ट ये रथ थे । इन पर जो जालक-
आमरणविशेष सजाने में आये थे, अथवा इन रथों में जो जालिया थीं वे सत्र बुद्ध-ओटी
छोटी घटियों से युक्त थीं । इनसे रथों की गोमा में अधिक वृद्धि हो रही थी । ये रथ
जिस काष्ठ के बने हुए थे, वह काष्ठ तिनश नामका था । यह हिमवत गिरि से मगाया
गया था और बहुत सुन्दर था । इस काष्ठ के ऊपर सुवर्ण का काम किया हुआ था ।
ये रथ इन्हीं काष्ठों के बने हुए थे । इनके पहियों पर मजबूत लोहे के पट्टे चढाये हुए थे ।
(सुसिलि-वत्त मण्डल धुराण) इनका धुराण बहुत ही मजबूत एव गोल आकार का थीं ।

वाधविशेष = ये १२ वस्तु वाष्पु, वश-वामसु वाधविशेष, श भ, अने आरभु पणव-
पट्ट-ढोल आ आरिय प्रसारना वाञ्छित्थी विशिष्ट आ रथ हुता तेना उपर
ने लाल आभरणविशेष नन्दववाभा आव्या हुता, अथवा आ च्याभा ने
लणीये। हुती ते अग्नी बुद्ध-नानी नानी घट्टीओवाणी हुती येनाथी
रथानी शोभाभा अधिक वृद्धि थती रहेती हुती आ रथ ने लाडडानो
अनाव्या हुता ते लाडडा तिनश नामना हुता ये हिमवत गिरिथी मगा-
वेला हुता अने अहु व सुदर हुता आ लाडडानी उपर सुवर्णु काम
करवाभा आवेलु हुतु ये रथ आ व लाडडाना अनाव्या हुता तेमना
चैदा उपर मजबूत लोहाना पट्टा अडाय्या हुता (सुसिलि-वत्त-मण्डल-धुराण)

मूलम्—तए णं से कृणिए राया हारोत्थय-सुकय-
रडय-वच्छे कुंडलउज्जोइयाणणे मउडदित्तसिरए णरसीहे णरवई
णरिंदे णरवसहे मणुयरायवसहकप्पे अट्ठभहियं रायतेयलच्छी-

टीका—‘तए ण से’ इयादि । ‘तए ण’ ततस्तदनन्तरम्=अष्टमङ्गलमृद्गा-
ग्निहयगजादिप्रस्थानानन्तरं खल्ल ‘मे कृणिए राया’ स कृणिको राजा ‘हारोत्थय-
सुकय-रडय-वच्छे’ हागवस्तुत्त-सुद्ध-रत्तिद-वक्षा-हागवस्तुत्त=हारप्रावृत्त, मुद्धत=
सुगचित्तम् अनएव रत्तिदम्-प्रीतिप्रद वक्ष-दृढयदेशो यस्य स तथा, ‘कुंडल-उज्जोइया-
णणे’ मुण्डलोदयोनिताऽऽनन, मुकुटदीनगिररक, ‘णरसीहे’ नरसिंहो, ‘णरवई’ नरपति,
‘णरिंदे’ नरेन्द्र ‘णरवसहे’ नरवृषभ-अर्द्धाद्वित्तनार्यभारनिर्वाहकवात् । ‘मणुय-

‘तए ण से कृणिए राया’ इयादि ।

(तए णं) उसके बाद (से कृणिए राया) वह कृणिक राजा कि जिनका वक्षत्थल
(हारोत्थय-सुकय-रडय वच्छे) हागे से व्याप्त, सुरचित और रत्तिद-प्रीतिप्रद था, (कुंडल-
उज्जोइया-णणे) जिनका मुगकुटली की आभा से अधिक दानि-पन्न हो रहा था। (मउड-
दित्त-सिरए) मुकुट धारण करने से जिनका मन्तक सुगोभित हो रहा था। (णरसीहे)
जो मनुष्यों में सिंह जैसे थे। (णरवई) जो मनुष्या क त्वामी थे, क्यों कि हर तरह से
उनका पालन-पोषण करते थे। इसलिये (णरिंदे) जो नर में इन्द्र जैसे थे। (णरवसहे)
जो नरों में वृषभसमान थे, क्यों कि ये अपने ऊपर जो कार्य लेते थे उसे अवश्यमेव पूरा
करते थे। (मणुयराय-वसह-कप्पे) मानवा के राजाओं के भी जो राजा-चक्रवर्ती-जैसे

‘तए ण से कृणिए राया’ इत्यादि

(तए णं) त्थार पछी (से कृणिए राया) ते इच्छिउ गण डे नेतु वस-
त्थल (छानी) (हागोत्थय-सुकय-रडय-वच्छे) छारीथी व्याप्त, सुरचित थने
प्रीतिप्रद इतु (कुंडल-उज्जोइया-णणे) नेभतु मुष कु उणेनी आला-अकाश
पडे अधिउ दीप्तिमयन्न थरु ँहु इतु (मउड-दित्त-सिरए) मुकुट धारण
इवाथी नेतु भन्तु सुगोभित थरु ँहु इतु (णरसीहे) ने मनुष्येभा
सिद्ध नेवा इता, (णरवई) ने मनुष्येभा स्वाभी इता, नेभडे इउ तडेइथी
तेभतु पालन-पोषण करता इता आथी (णरिंदे) तेओ नरेना धरु नेवा
इता (णरवसहे) ने पुण्येभा वृषभ-समान इता, नेभडे तेओ पोताना
उपर ने कार्य लेता इता ते अवश्यमेव पूरा करता इता (मणुयराय-वसह-

रहाणं पुरओ अहाणुपुञ्चीए संपट्टियं । तयाणंतरं च णं असि-
सत्ति-कुंत-तोमर-सूल-लउल-भिडिमाल-धणु-पाणि-सज्जं पायत्ताणी-
यं पुरओ अहाणुपुञ्चीए संपट्टियं ॥ सू० ४९ ॥

इति प्रसिद्धानि, तैर्भृता, अतएव युवाय इव सज्जाम्तेषा 'रहाणं' रथानाम् 'अट्टमय' अट्टम-
तम्=अष्टाधिकशत 'पुरओ अहाणुपुञ्चीए संपट्टियं' पुरतो यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थितम् ;
अथ पदातिसैन्यवर्णनमाह- 'तयाणतरं च णं' इत्यादि। तदनन्तरम् गच्छ 'असि-सत्ति-
कुंत-तोमर-सूल-लउल-भिडिमाल-धणु-पाणि-सज्जं' असि=शक्ति-कुन्त-तोमर-
शूल-लकुट-भिन्दिपाल-धनु-पाणि-सज्जम्-असि=रथ, शक्ति=अश्वविशेष, कुन्त=
भल्ल, तोमर=नाणविशेष, शूलम्=एकरथम्-'वरठी' इति प्रसिद्धम्, 'लउल' लकु-
ट=यष्टि, 'भिडिमाल' भिन्दिपाल-अश्वविशेष, 'गोफग' इति भाषाप्रसिद्ध, धनु-
प्रसिद्धम्, एतानि पाणौ हस्ते यस्य तत् तथा, तच्च तत् सज्जं चेति समास, तादृशम्,
'पायत्ताणीय' पदात्यनीकम्=पदातिसैन्यम्, 'पुरओ अहाणुपुञ्चीए संपट्टियं' पुरता
यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थितम् ॥ सू० ४९ ॥

ये युद्ध के मैदान में जाने के लिये ही तैयार किये गये हैं, ऐसे (रहाणं अट्टमय) १०८
एक सौ आठ रथ (पुरओ) आगे २ (अहाणुपुञ्चीए) यथाक्रम से (संपट्टियं) चलने लगे।
(तयाणंतरं च ण असि-सत्ति-कुंत-तोमर-सूल-लउल-भिडिमाल-धणु-पाणि-सज्जं
पायत्ताणीय पुरओ अहाणुपुञ्चीए संपट्टियं) इनके आगे २ असि-तलवार, शक्ति-अश्वविशेष,
कुन्त-भाला, तोमर-अश्वविशेष, शूल-वरठी, लकुट-लाठियाँ, भिडिमाल-भिन्दिपाल-गोफग
और धनु ये सब उनके हाथों में थे, ऐसे पदातिसैन्य अनुक्रम से चलन लगे ॥ सू० ४९ ॥

लरेखा इति आथो ज्ञेनारने अेमञ्ज लागे डे वल्ले युद्धना मैदानमा ववा
भाटे व तैयार रथा छे अेवा (रहाण अट्टमय) अेवसे आठ १०८ रथ
(पुरओ) आगण आगण (अहाणुपुञ्चीए) यथाक्रमथी (संपट्टियं) आलवा लाज्या
(तयाणतरं च ण असि सत्ति-कुंत-तोमर-सूल लउल-भिडिमाल-धणु-पाणि-सज्जं
पायत्ताणीय पुरओ अहाणुपुञ्चीए संपट्टियं) तेभनी आगण आगण असि-तल-
वार, शक्ति-अश्वविशेष, कुन्त लाला, तोमर-अश्वविशेष, शूल-वरठी, लकुट-
लाठडीयो, भिडिमाल-भिन्दिपाल-गोफणु अने धनुष अे अथा जेता हाथोमा
इता अेवा पदातिसैन्य अनुक्रमे आलवा लाज्या (सू ४९)

लियाए चाउरंगिणीए सेणाए समणुगम्ममाणमग्गे जेणेव पुण्ण-
भदे चेडए तेणेव पहारेत्थ गमणाए ॥ सू० ५० ॥

मूलम्—तए णं तस्स कूणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स

प्रथितक्रीतिं, 'हय-गय-पवर-जोह-कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए' हयगजरथ-
प्रवरयोधकलितया चतुरङ्गिण्या सेनया-हयेगैज रथै प्रवरयोधै रथभिर्महारथिभि कलितया=
युक्तया, चत्वारि बह्नानि यस्या मा चतुरङ्गिणी तथा-हयगजरथपदातिरूपैश्चतुर्भिरङ्गै ममे-
तया सेनया 'समणुगम्ममाणमग्गे' समनुगम्यमानमार्गो-समनुगम्यमानो मार्गो यस्य
स तथा, 'जेणेव पुण्णभदे चेडए' यत्रैव पूर्णमद्र चैव 'तेणेव' तत्रैव 'पहारेत्थ'
प्रधारितवान् 'गमणाए' गमनाय=पूर्णमद्रोद्यान गन्तु मनसि निश्चय कृतवान् ॥ सू० ५० ॥

'तए ण' इत्यादि । 'तए ण तस्स कूणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स
पुरओ' तत सल्ल तस्य कूणिकस्य राजो भंभसारपुत्तस्य पुरत 'मह' महान्त =उच्चा,
'आसा' अश्वा =तुरङ्गमा, 'आसवरा' अश्ववरा-जात्या शृङ्गारेण च वरा =श्रेष्ठ अश्वा

समान ऋद्धि के कारण नित्यात क्रीतिजाले ये (हय-गय-पवरजोह-कलियाए चाउरंगि-
णीए सेणाए समणुगम्ममाणमग्गे जेणेव पुण्णभदे चेडए तेणेव पहारेत्थ गमणाए)
घोडा, हाथी और श्रेष्ठ योद्धाओं से युक्त चतुरगिणी सेना से युक्त हो जहाँ पूर्णमद्र नामका
उद्यान था उस ओर चले ॥ सू. ५० ॥

'तए णं तस्स कूणियस्स रण्णो' इत्यादि ।

(तए णं) इसके बाद (तस्स कूणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स) भंभसार के
पुत्र उन कूणिक राजा के (पुरओ) आगे आगे (मह आसा) बड़े उँचे २ घोड़े एवं
(आसवरा) जाति और शृंगार से उत्तम घोड़े चलने लगे । (उभओ पारिं णागा णाग-

गय-पवरजोह-कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए समणुगम्ममाणमग्गे जेणेव पुण्णभदे
चेडए तेणेव पहारेत्थ गमणाए) घोडा, हाथी અને श्रेष्ठ योद्धाओंथी युक्त
चतुरगिणी सेनाथी युक्त थध न्या पूर्णमद्र नामनु उद्यान हंतुं ते तस्स
आत्था (सू ५०)

'तए णं तस्स कूणियस्स रण्णो' इत्यादि

(तए णं) त्थार पधी (तस्स कूणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स) ललसारना
पुत्र ते इच्छिउ रावन्नी (पुरओ) आगण आगण (मह आसा) थहु उत्था
उत्था घोडा तेभन् (आसवरा) नति तथा शशुगाथी उत्तम घोडा आत्था

ए दिप्पमाणे हत्थिअखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं २ वेसमणे चेव णरवई अमरवइसण्णिभाए इड्ढीए पहियकित्ती हय-गय-पवरजोहक-

राय-सहस्ररूपे' मनुजराज-वृषभ-रूप-मनुगजाना=गजा वृषभा=नायनाश्रुकरतिन
 तैस्तुन्य-मनाङ्गनतया ममान, उत्तरभरतार्थस्यापि नापने प्रवृत्तत्वादिति भाव । 'अम्भ-
 हिय' अम्भधिक-यथा स्यात् तथा-'राय-तेय-लञ्छीए' राजतेजोलक्ष्या, 'दिप्प-
 माणे' दीप्यमान, 'हत्थि-अखंध-वर-गए' हस्ति-रक्षन्ध-वर-गत, 'सकोरट-
 मल्ल-दामेण उत्तेण धरिज्जमाणेण' मकोरट-मान्य-दाम्ना उत्रेण धियमाणेन,
 'सेय-वर-चामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं उद्धुव्वमाणीहिं' श्वेतरचामरैरुद्धूयमानैरुद्धूय-
 मानै शोभमान 'वेसमणे चेव' वैश्रवण-इव=शेकरूपाल कुवेर इव 'णरवई' नरपति,
 'अमरवइसण्णिभाए इड्ढीए' अमरपतिसन्निभया=इन्द्रसदृशा रुद्ध्या, 'पहियकित्ती'

थे । 'चक्रवर्ती जैसे थे'-इसका मतलब यह है कि उत्तर भरतार्थ के साधन में प्रवृत्त होने से चक्रवर्ती जैसे थे । (अम्भहिय रायतेयलञ्छीए दिप्पमाणे) जो राजसी तेज से और राजश्रमी से अधिक दीर्घायमान थे । ऐसे ये कृशिक राजा (हत्थि-अखंध-वर-गए) जब हाथी पर बैठ तब इन्होंने अपने ऊपर (सकोरट-मल्ल-दामेणं उत्तेण धरिज्जमाणेण) कोरट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र धारण किया, और इनके ऊपर (सेय-वर-चामराहि उद्धुव्वमाणीहिं २) सफेद चमर डुलने लगे । इनसे ये (णरवई) राजा (वेसमणे चेव) कुवेर के समान दिखने लगे । तथा (अमरवइसण्णिभाए इड्ढीए पहियकित्ती) इन्द्र के

कल्पे) भाषुसोना राज्ञोना पशु राज-अकवतीं जेवा हुता 'अकवतीं जेवा हुता'-अनी मतलब अरे छे डे उत्तर भरताधने स्वाधीन करवाभा प्रवृत्त होवाथी अकवतीं जेवा हुता (अम्भहिय रायतेयलञ्छीए दिप्पमाणे) जेओ राजसा तेजथी तथा राजलक्ष्मीथी अधिक देदीप्यमान हुता अेवा आ कृषिक राज (हत्थि-अखंध-वरगए) न्यारे हाथी उपर भेडा न्यारे तेभुणे पोताना उपर (सकोरट-मल्ल-दामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण) डेरटपुष्पोनी भाजाओथी युक्त छत्र धारण उरुं, अने तेभना उपर (सेयवरचामराहि उद्धुव्वमाणीहिं २) सफेद चामर डोणावा लाग्या तेनाथी तेओ (णरवई) राज (वेसमणे चेव) कुवेरना जेवा देभावा लाग्या तथा (अमरवइसण्णिभाए इड्ढीए पहियकित्ती) धरना जेवी रुद्धिना नरपुथी विख्यात कीर्तीवाजा तेओ (हय-

वाल-वीयणीए सच्चिद्द्वीए सच्चज्जुईए सच्चवलेणं सच्चसमु-
दएणं सच्चादरेणं सच्चविभूर्ईए सच्चविभूसाए सच्चसंभमेण
सच्च-पुष्प-गंध-मल्ला-लंकारेणं सच्च-तुडिय-सद्-सण्णिणा-

यस्मै म तथा । 'पवीडय-वाल-वीयणीए' प्रवीजित-वाल-व्यजनिक् -प्रवीजिता=
प्रचायिता वाज्यजनिक्का यस्मै म तथा, 'सच्चिद्द्वीए' सर्वद्रव्यां=सर्वया रुद्र्या ।
'सच्चज्जुईए' सर्वद्युया=मन्त्रप्रवाभगणाना प्रमया, 'सच्चवलेण' सर्वलेन=सर्व-
मैत्येन, 'सच्चसमुदएण' सर्वसमुदयेन = सर्वपवित्रागदिसमुदायेन, 'सच्चादरेण'
सर्वादरेण=सर्वप्रयनेन, 'सच्चविभूर्ईए' सर्वविभूया=सर्ववभवेन, 'सच्चविभूसाए'
सर्वविभूपया = सर्वविभ्रनेपय्यादिधारणेन, 'सच्चसंभमेण' सर्वसंभ्रमेण = सर्वेण औसु-
क्येन=स्नेहमेयन चाद्येनेयर्थ, 'सच्च-पुष्प-गंध-मल्ला-लंकारेण' सर्व-पुष्प-
गन्-माच्या-उलङ्कारेण, 'सच्च-तुडिय-सद्-सण्णिणाएण' सर्व-श्रुटित-शब्द-मनि-
नादेन=सर्वविज्ञाना श्रुटिताना=वाद्याना यो शब्द तस्य मनिनादेन=प्रतिध्वनिना । 'महया

ऐसे वे कृष्णिक राजा (सच्चिद्द्वीए) अपनी समस्त राज्य रुद्रिसे (सच्चज्जुईए) समस्त वख और
आभरणों की प्रभासे (सच्चवलेण) अपनी समस्त सेनाओं से (सच्चसमुदएण) अपने समस्त परि-
जनों से, (सच्चादरेण) आदरम काररूप सभी प्रयनों से (सच्चविभूर्ईए) अपने समस्त ऐश्वर्य
से (सच्चविभूसाए) सभी प्रकार के वखाभरणों की शोभा से, (सच्चसंभमेण) भक्तिजनित
अयत्निक उमुकता से (सच्च-पुष्प-गंध-मल्ला-लंकारेण) सब तरह के पुष्पों से, सब
तरह के गन्ध द्रव्यों से, सब तरह की मालाओं से, एव सब तरह के अलंकारों से (सच्च-
तुडिय-सद्-सण्णिणाएण) सभी प्रकार के वादित्तों की मधु घ्वनि से, तथा-(महया

णीए) रेना उपर वाज्यजनि अर्थात् यभर दोजाई ग्हा उता, जेवा ते
ईष्टिउ गाल (सच्चिद्द्वीए) पोतानी अभन्त रान्य रुद्रिथी, (सच्चज्जुईए) सभ-
न्त वञ्च तथा आलङ्घोना प्रभाव वडे, (सच्चवलेण) पोतानी अभन्त मेनाओ
वडे, (सच्चसमुदएण) पोताना अभन्त पण्णिना वडे, (सच्चादरेण) आदर
मल्ला उप अधजा प्रयत्ने वडे (सच्चविभूर्ईए) पोताना अभन्त ऐश्वर्य वडे,
(सच्चविभूसाए) तमाभ प्रजाग्ना वञ्चालङ्घोनी शोभा वडे, (सच्चसंभमेण)
लक्षितजनित अत्यत उत्सुकता वडे, (सच्च-पुष्प-गंध-मल्ला लंकारेण) सर्व
प्रकारना पुष्पो वडे, सर्व प्रकारना गंधद्रव्यो वडे, सर्व प्रकारनी भाषाओ
वडे तेमज सर्व प्रकारना अलंकारो वडे, (सच्च तुडिय-सद्-सण्णिणाएण) सर्व
प्रकारना वादित्ताना मधु घ्वनि वडे, तथा (महया इद्द्वीए) पोतानी विशिष्ट

पुरओ महं आसा आसवरा उभओ पारिं णागा णागवरा
पिट्ठओ रहसंगेल्ली ॥ सू० ५१ ॥

मूलम्—तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते अञ्जु-
गयभिंगारे पग्गहियतालयंटे ऊसविय—सेय—च्छत्ते पवीडय—

प्रस्थिता, 'उभओ पारिं' उभयो पार्थयो = वामदक्षिणयो 'णागा' नागा = महात्तो
गजा 'णागवरा' नागवरा = ज्ञाया शृङ्गारेण च वरा = श्रेष्ठ गजा प्रस्थिता, तथा—
'पिट्ठओ' पृष्ठ = 'रहसंगेल्ली' रथ-गङ्गी = रथसमूह प्रस्थित । 'संगेल्ली' इति
समूहवाचको देगीय शब्द ॥ सू० ५१ ॥

टीका—'तए णं से' इत्यादि । 'तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते'
तत सल्ल स कूणिको राजा भंभसारपुत्र 'अञ्जुगयभिंगारे' अञ्जुगतभृद्धार—अञ्जुग-
त = पुरत प्रस्थित भृद्धार = 'शारी' इति प्रसिद्ध जलपात्र यस्य स तथा 'पग्गहिय-
तालयंटे' प्रगृहीततालवृन्त—प्रगृहीत तालवृन्त यस्मै स प्रगृहीततालवृन्त । 'ऊसविय-
सेय—च्छत्ते' उच्छ्रितश्चेत्छत्र—'ऊसविय' उच्छ्रितम् = उपरि वितानित श्वेत = धवल छत्र
वरा) तथा उनक दोनों तरफ बडे २ हाथी एव जाति से और शृंगार से श्रेष्ठ गजराज चलने
लगे, और (पिट्ठओ) उनके पीछे २ (रहसंगेल्ली) रथका समूह चला ॥ ५१ ॥

'तए णं से कूणिए राया' इत्यादि ।

(तए णं) उसके बाद (से कूणिए राया भंभसारपुत्ते) भंभसार के पुत्र वे कूणिक
राजा कि, जिनके आगे (अञ्जुगयभिंगारे) जत्र से मरी हुई शारिणी थीं, (पग्गहियतालयंटे)
जिनके दोनों ओर पवनपथे हो रहे थे, (ऊसविय-सेय-च्छत्ते) जिनके ऊपर श्वेत छत्र धरा हुआ
था, तथा (पवीडय-वाल-वीयगीए) जिनके ऊपर वाल-व्यजन अर्थात् चमर ढोरा जा रहा था,

लाग्या (उभओ पारिं णागा णागवरा) तथा तेभनी अन्ने तण्क्क भोटा भोटा
हाथी तेभञ्ज न्तिथी शल्लुगात्थी श्रेष्ठ गजराज आलवा लाग्या तथा (पिट्ठओ)
तेभनी पाछण पाछण (रहसंगेल्ली) रथनो समूह आल्यो (सू. ५१)

"तए णं से कूणिए राया" इत्यादि

(तए णं) त्या २ ५४ (से कूणिए राया भंभसारपुत्ते) ललसाणा पुत्र ते
कूणिक राजा के जेना आगण (अञ्जुगयभिंगारे) ललथी लरेली आरीओ
हुती, (पग्गहियतालयंटे) जेनी अन्ने आलुओ पवनपथा थर्छ रह्या हुता,
(ऊसविय-सेय-च्छत्ते) जेना उपर श्वेत छत्र धरेलु हुतु, तथा (पवीडयवालवीय

मूलम्—तए णं तस्स कूणियस्स रण्णो चंपाए णय-
रीए मज्झमज्जेणं निग्गच्छमाणस्स बहवे अत्थत्थिया कामत्थि-
या भोगत्थिया लाभत्थिया किञ्चिसिया कारोडिया कारवाहिया
संखिया चक्किया नंगलिया मुहमंगलिया वद्धमाणा पूसमाणया

टीका—‘तए ण’ इत्यादि । ‘तए ण’ तत = चम्पानगरीमध्येन निर्गमनाऽनन्तर
खलु ‘तस्स कूणियस्स रण्णो’ तस्य कृणिकस्य राज्ञ, ‘चंपाए णयरीए मज्झमज्जेण
निग्गच्छमाणस्स’ चम्पाया नगर्या मध्यमध्येन निर्गच्छत ‘बहवे’ बहव = अनेके ‘अत्थ-
त्थिया’ अर्थोऽर्थिका = धनार्थिका, ‘कामत्थिया’ कामार्थिका = सुखार्थिका । ‘भोग-
त्थिया’ भोगार्थिका, ‘लाभत्थिया’ लाभार्थिका = लाभोऽभिलाषिण, ‘किञ्चिसिया’
किञ्चिपिका = भण्डचेष्टाकारिण — हास्यकरा इत्यर्थ, ‘कारोडिया’ कापालिका,
‘कारवाहिया’ कारवाहिता — कर एव कार, तेन वाहिता = राजकरपीडिता,
‘संखिया’ शालिका = गणनादका ‘चक्किया’ चाक्रिका = चक्रधारका ‘नंगलिया’

‘तए ण तस्स कूणियस्स’ इत्यादि ।

(तए ण) उसके बाद (तस्स कूणियस्स रण्णो) उस कूणिक राजा के (चंपाए
णयरीए मज्झमज्जेण) चंपा नगरी के मध्यभाग से होकर निकलते समय (बहवे
अत्थत्थिया कामत्थिया) अनेक धनार्थियों ने—सुखार्थियों ने—(भोगत्थिया लाभत्थिया)
अनेक भोगार्थियों ने, अनेक लाभार्थियों ने, (किञ्चिसिया) भण्डचेष्टा करने
वालों ने—हँसा-
मजाक करने वालों ने, (कारोडिया) अनेक कापालिकों ने—एक प्रकार के भिक्षुकों ने,
(कारवाहिया) अनेक राजकरपीडितों ने, (संखिया) अनेक गणवजाने वालों ने (चक्किया)
अनेक चक्रधारियों ने, (नंगलिया) अनेक कृपकों ने, (मुहमंगलिया) अनेक शुभाभावाद्

‘तए णं तस्स कूणियस्स’ इत्यादि

(तए ण) त्पार पश्री (तस्स कूणियस्स रण्णो) ते कूणिक राजाना (चंपाए
णयरीए मज्झमज्जेण) चंपा नगरीना मध्यभागभाथी नीडणती वणते
(बहवे अत्थत्थिया कामत्थिया) अनेक धनार्थिओओ, अनेक कामार्थिओओ—
सुखार्थिओओ (भोगत्थिया लाभत्थिया) अनेक भोगार्थिओओ, अनेक लाभ
ार्थिओओ, (किञ्चिसिया) ल उचेष्टा करवावाणाओओ—हानी मन्त करवावाणाओओ,
(कारोडिया) अनेक कापालिकोओ—अेक प्रकारना भिक्षुओओ, (कारवाहिया) अनेक
राजकरपीडितोओ, (संखिया) अनेक गणववावाणाओओ, (चक्रिया)

एणं महया इड्ढीए महया जुईए महया वलेणं महया समुद-
 एणं महया वर-तुडिय-जमगसमग-प्पवाइएणं संख-पणव-
 पडह-भेरि-अल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरय-मुअंग-दुंदुहि-णि-
 ग्घोस-णाइय-रवेणं चंपाए णयरीए मज्झं-मज्झेणं णिग्गच्छइ
 ॥ सू० ५२ ॥

इड्ढीए 'महया ऋद्धि' 'महया जुईए' महया धृति, 'महया वलेणं' महता बलेन-
 विपुलसैन्येन, 'महया समुदएण' महता समुदायेन=समूह्येन । 'महया वर-तुडिय-
 जमग-समग-प्पवाइएण' महता वर-तुटित-यमकसमक-प्रवादितेन-महता=बृहता,
 वरतुटिताना = श्रेष्ठविधवाधाना-यमकसमक = युगपप्रवादितेन 'सख-पणव-पडह-भे-
 रि-अल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरय-मुअंग-दुंदुहि-णिग्घोस-णाइय-रवेण' गह्व-
 पणव-पटह-भेरी-अल्लरी-खरमुखी-हुडुक्क-मुरज-मृदङ्ग-दुन्दुभि-निघोप-नादित-रवेण-
 शङ्खादिदुन्दुभ्यन्ताना वाद्यविशेषाणा निघोपस्य नादितरवेण=प्रतिध्वनिना चम्पाया नगर्या
 मध्यमध्येन 'णिग्गच्छइ' निर्गच्छति ॥ सू ५२ ॥

इड्ढीए) अपनी विशिष्ट ऋद्धि से, (महया जुईए) अपनी विशिष्ट धृति से, (महया वलेण)
 अपनी विशिष्ट सेना से (महया समुदएणं) अपने विशिष्ट परिजनों से (महया-वर-तुडिय-
 जमग-समग-प्पवाइएण) एक ही साथ बजने वाले वाजों की मनोहर महाध्वनि से, तथा
 (सख-पणव-पडह-भेरि-अल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरय-मुअंग-दुंदुहि-णिग्घोस-
 णाइय-रवेण) शख, पणव, पटह, भेरी, अल्लरी, खरमुखी, हुडुक्क, मुरज, मृदङ्ग एवं
 दुन्दुभि के निघोप की प्रतिध्वनि से ओमित होते हुए (चंपाए णयरीए मज्झमज्जेण
 णिग्गच्छइ) चम्पा नगरी के बीचो-बीच से होकर चले ॥ सू ५२ ॥

ऋद्धि व, (महया जुईए) पोतानी विशिष्ट धृति वडे, (महया वलेण) पोतानी
 विशिष्ट सेना वडे, (महया समुदएण) पोताना विशिष्ट परिजनों वडे, (महया
 वर-तुडिय-जमगसमग-पवाइएण) श्रेष्ठसाथे वगाउता वाजना मनोहर भडा
 धनि वडे, तथा (संख पणव पडह-भेरी अल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरय-मुअंग दुंदुहि-
 णिग्घोस णाइय रवेण) शख, पणव, पटह, भेरी, अल्लरी, खरमुखी, हुडुक्क,
 मुरज, मृदङ्ग, तेमङ्ग दुन्दुभिना निघोपनी प्रतिध्वनि वडे गोलता (चंपाए णयरीए
 मज्झ-मज्जेण णिग्गच्छइ) तथा नगरीना वन्ध्या-वन्धु धधने चाल्या (सू ५२)

जय जय णंदा । जय जय भद्रा । भद्रं ते, अजियं जिणाहि,
जियं च पालेहि, जियमज्जे वसाहि । इदो इव देवाणं, चमरो
इव असुराणं, धरणो इव नागाणं, चंदो इव ताराणं, भरहो इव

जनान्—इति नन्द, तन्मन्त्रोपन ह नन्द । जय जय=३ विजयवान भव । 'जय जय भद्रा'
जय जय भद्र । हे भद्र ।=कल्याणस्वरूप । विजयम् । 'भद्र ते' भद्र तुम्यमस्तु ।
'अजिय जिणाहि' अजित जय=अजित देशादिक जय, 'जिय च पालेहि' जित च
पालय, 'जियमज्जे वसाहि' जितमप्ये वस । तथा त्वम् 'इदो इव देवाण' इन्द्र इव
देवानाम्, 'चमरो इव असुराण' चमर इव=एतन्नामक इन्द्र इव असुराणाम्=सुरवि-
रोपिनाम्, 'धरणो इव नागाण' धरणेन्द्र इव नागानाम्, 'चंदो इव ताराण' चन्द्र इव
तारागाम्, 'भरहो इव मणुयाण' भग्न इव मनुजानाम्, 'वहड वासाट' वह्नि वपाणि,
'वहड वाससयाड' वह्नि वर्षातानि, 'वहड वाससहस्साट' वह्नि र्षमहन्वाणि,

जय भद्रा) ह नन्द—मनुष्यों को अपार आनंद प्रदान करनेवाले स्वामिन । आपकी जय
हो जय हो । हे भद्र ।—कल्याणस्वरूप । आप सदा विजयशाली रहें । (भद्र ते) आपका
सदा कल्याण हो । (अजिय जिणाहि) आपने जिसको नहीं जाता हो, उस पर विजय
करें । (जिय च पालेहि) जिमको आपने जीता है उसका पालन करें । (जियमज्जे
वसाहि) जति हुए प्रदेश में मद्रा आपका निवास रहे । (इदो इव देवाण, चमरो इव
असुराण, धरणो इव नागाण, चंदो इव ताराण, भरहो इव मणुयाण) देशों में इन्द्र
की तरह, असुरों में चमरेन्द्र की तरह, नागकुमारों में धरणेन्द्र की तरह, तारकों में चंद्र
की तरह और मनुष्यों में भग्न की तरह आप (वहड वासाटं वहडं वाससयाड वहडिं

भुति करता आ प्रकाश देवानो प्राण लोके (जय जय णंदा जय जय भद्रा)
हे नन्द—मनुष्यों के अपार आनंद आपवावाणा स्वामिन । आपकी जय हो
जय हो । हे भद्र ।—कल्याण स्वरूप । आप भद्रा विन्त्यशाली रहें । (भद्र ते)
आपको सदा कल्याण हो । (अजिय जिणाहि) आपने लेने न लुत्था होय तेना
उपर विन्त्य भेणयो (जिय च पालेहि) लेने आपने लुत्था होय तेमनु
पालन करे । (जियमज्जे वसाहि) लुत्था प्रदेशमा भद्रा आपने निवास रहे
(इदो इव देवाणं, चमरो इव असुराण, धरणो इव नागाणं, चंदो इव ताराण, भरहो
इव मणुयाण) देवाभा उदनी नेम, असुरेभा अमरेदनी नेम, नागकुमाभा
धणुदनी नेम, ताराभा अदनी नेम अने मनुष्येभा लवतनी नेम,
आप (वहडं वासाड वहडं वाससयाड वहड वासमहम्माड) धणु परयो भुवी,

खंडियगणा ताहिं इट्टाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं
मणाभिरामाहिं हिययगमणिज्जाहिं वग्गूहिं जय-विजय-मंगल-
सएहिं अणवरयं अभिणंदंता य अभित्थुणंता य एवं वयासी-

लाङ्गलिका = रुर्षका 'मुहमगलिया' सुखमङ्गलिका - मुने मङ्गल येवामस्ति ते सुखमङ्ग-
लिका = शुभवचनमात्रका, 'वद्धमाणा' वर्द्धमाना = स्कन्धेच्चारोपिता पुरपा, 'पूसमा-
णया' पुष्यमानवा = भागधा, 'सडियगणा' सण्ठिकगणा = छात्रसमुदाया । एते सर्वे
'ताहि' ताभि = विप्रक्षिताभि, 'इट्टाहिं' इष्टाभिर्वाञ्छिताभि, 'कताहिं' कान्ताभि-
कमनीयाभि, 'पियाहि' प्रियाभि, 'मणुण्णाहिं' मनोजाभि = सुन्दरतया मनोऽनुवृ-
त्ताभि, 'मणामाहिं' मनोऽमाभि - मनसा अग्न्यन्ते = गम्यन्ते इति मनोऽमास्ताभि -
मनसाऽवगमनीयाभि - हृदयाह्लादकत्वात्, 'मणाभिरामाहि' मनोऽभिरामाभि, 'वग्गूहि'
वाग्भि 'जय-विजय-मंगल-सएहिं' 'जय-विजय' इत्यादिभिर्मङ्गलकारकवचन-
गतै 'अणवरय' अनवरतम्, 'अभिणंदंता य' अभिनन्दयन्तश्च, 'अभित्थुणंता य'
अभिदुवन्तश्च ते पूर्वोक्ता अर्थाऽर्थिकादयो विरुदावलीपाठादिना राजान प्रसादयत
'एव वयासी' एवमवादिपु - 'जय जय णदा' जय जय नन्द ! नन्दयति = आनन्दयति

देने वालों ने, (वद्धमाणा) कंधों पर बैठे हुए अनेक पुरुषों ने, (पूसमाणया) विरुदावली
बोलने वालों ने (संडियगणा) छात्रगणों ने (ताहिं इट्टाहिं कताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं
मणामाहिं मणाभिरामाहिं) अपना २ भाषा के अनुसार इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ,
हृदयाह्लादक, मनोभिराम (हिययगमणिज्जाहिं) एव हृदयगम (वग्गूहिं) वचनों से
(जयविजयमंगलसएहिं) कि जिनमें जय और विजय के ही मंगलकारक शब्दों का
समावेश था, (अणवरय) अच्छी तरह (अभिणंदता य अभित्थुणता य एव वयासी)
अभिनन्दन एव स्तुति करते हुए इस प्रकार कहना प्रारंभ किया - (जय जय णदा जय

अनेक चक्रधारीयों ने (मगलिया) अनेक जेडुतों ने (मुहमगलिया) अनेक
शुभाशीर्वाद देवावाणियों ने (वद्धमाणा) कांधे उपर बैठेला अनेक पुरुषों ने
(पूसमाणया) गिरहावली गोलनारायणों ने (सडियगणा) छात्रगणों ने (ताहिं
इट्टाहिं कताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं मणाभिरामाहिं) पौतपौतानी लाया-
अनुसार छष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ, हृदयाह्लादक, मनोभिराम, (हियय-
गमणिज्जाहिं) तेमज हृदय गम (वग्गूहिं) वचनों द्वारा (जय विजय मंगलसएहिं)
छे लेभा जय अने विजयना मंगलकारक शब्दोंको समावेश कृतो, (अण
वरय) सारी रीते (अभिणंदता य अभित्थुणता य एव वयासी) अभिनन्दन तेमज

कव्वड-द्रोणमुह-मडंव-पट्टण-आसम-निगम-संवाह-संनिवे-
साणं आहेवच्चं पौरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणां-ई-

द्रोणमुख=जलस्थलपथोपेतम्, मडम्बम=अविद्यमानासन्नप्रामात्तरम्, 'पट्टण' पत्तनम्=जलम-
थेन स्थलपथेन वा निर्गमप्रवेगौ यत्र तत् पत्तनम्, यथा क्राञ्चीतो मुम्बापुरी, यद्वा-जलपथे-
नैव निर्गमप्रवेगौ न तु स्थलपथेन, यथा-भारताद् आग्लराजधानी 'इग्लेण्ड' इति प्रसिद्धा,
तत्, किंच-स्थलपथेनैव निर्गमप्रवेगौ न तु जलपथेन तत्, एतत् सर्वं पत्तनमुच्यते । यद्वा-
यत्र सर्वं वस्तु लभ्यते तत् पत्तनम् । आश्रम=तापमाद्यावास, निगम=वाणिज्यप्रधान
नगरम्, संवाह=कृषीयलाना धान्यरक्षणस्थानम्, संनिवेश=सार्थकटकादीनामुत्तरणस्थानम् ।
तेषाम्-'आहेवच्च' आधिपत्यम्, 'पौरेवच्च' पौरोरतिवत्-अप्रेसरत्वम् 'सा-

ऐसी वस्तियां के, रोटा के-धूलि के प्राकार से परिग्रहित वस्तियां के, कर्वटों के-सामान्य
नगरों के, द्रोणमुखों-जलमार्ग एव स्थलमार्ग से युक्त प्रदेशों के, मडम्बों-जिनके आसपास
दूसरे ग्राम नहीं होते हैं ऐसे प्रदेशों के, पत्तनों के-जहां जलपथ से भी एव स्थलपथ से भी
आना-जाना होता है, जैसे कर्गंची से बम्बई, अथवा जहां सिर्फ जलमार्ग से ही आना-
जाना होता है, जैसे भारत से इङ्ग्लैण्ड, अथवा स्थलमार्ग से ही जहां आना-जाना होता है,
ये सभी पत्तन कहलाते हैं । अथवा समस्त वस्तुओं का लाभ जहां होता है वह भी पत्तन
है, ऐसे पत्तनों के आश्रमों के अर्थात् तापम आदि के आवासों के, निगमों के अर्थात्
व्यापारिक नगरों के, संवाहों के अर्थात् क्रिमानों के धान्य आदि रखने के स्थलों के, तथा
संनिवेशों के अर्थात् सार्थकवाह और सेना आदि के उतरने के स्थानों के आधिपत्य को, पौर-
वृत्त्य को-अप्रेसरत्वको, स्वामित्व को-प्रभुत्व को, उनके भर्तृत्व को-पोषकत्व को, उनमें मह-

जेठाना-धूण (भाटी)ना प्राकारथी परिवेष्टित वस्तीओना, जेठाना-सामान्य
नगराना, द्रोणमुखाना-जलमार्ग तेमज स्थलमार्गथी युक्त प्रदेशाना, मड-
म्बाना-जेनी आसपास जीज गाभो न डोय तेवा प्रदेशाना, पत्तनाना-ज्या
जलमार्गथी तेमज स्थलमार्गथी पणु आवी जेथ शकालु डोय जेभके
कर्सवीथी सुजध, अथवा ज्या मात्र जलमार्गथी ज आवी जेथ शकालु, जेभके
लास्तथी धंगलाड, अथवा मात्र स्थल मार्गथी ज ज्या जेथ आवी शकालु
ते जधा पत्तन कडेवाय छे, अथवा मभस्त वस्तुओनी प्राप्ति ज्या थर्थ थडे
ते पणु पत्तन छे जेवा पत्तनाना, आश्रमोना अर्थात् तापस आदिना
आवासोना, निगमोना अर्थात् व्यापारिक नगराना, संवाहोना अर्थात् जेठु-
तोना धान्य आदि राखवाना स्थानाना, तथा संनिवेशाना अर्थात् सार्थकवाह
अने सेना आदिना उतरवाना स्थानाना आधिपत्यने, पौरवृत्त्यने - अप्रेसर

मणुयाणं, वहूडं वासाडं व्रहूडं वाससयाडं वहूडं वाससहस्साडं
अणहसमग्गो हट्टुट्टो परमाउं पालयाहि, इट्टजणसंपडिवुडो
चंपाए णयरीए अण्णेसि च वहूणं गामा-गर-णयर-खेड-

‘अणहसमग्गो’ अनघसमग्र, अनघश्चासौ समग्रश्चेति विग्रह, निष्पाप परिपूर्णसम्पत्तिपरि-
वारादिभि सम्पन्नश्च, यद्वा-अनघेन=पुण्येन समग्र=पूर्ण, यद्वा-न अघसमग्र=अनघस-
मग्र=सर्वत्रिधपापरहित इत्यर्थ, ‘हट्टुट्टो’ हट्टुट्ट सन् ‘पालयाहि’ पालय ‘परमाउं’
परमायु-परमम्=उत्कृष्टम्-अपमृत्युवर्जितमरण्डित पूर्णमायु, तथा-‘इट्ट-जण-संपडिवुडो’
इट्टजनसम्परिवृत=परिवारादिसमेत, चम्पाया नगर्यां, ‘अण्णेसि च वहूणं गामा-
गर-णयर-खेड-कब्बड-दोणमुह-मडव-पट्टण-आसम-निगम-संवाह-सन्निवे-
माण’ अन्येषाम् बहूना ग्रामा-SSर-नगर-खेट-कर्वट-दोणमुख-मडम्ब-पट्टना-SSश्र-
म-निगम-वाह-सन्निवेशानाम्-तत्र-ग्राम=साधारणजनवासस्थानम्, आर=लज्जा-
दिसम्भवस्थानम्, नगरम्=अविद्यमानकरम्, खेट=धूलीप्राकारवेष्टितम्, कर्वट=कुनगरम्,

वाससहस्साडं) बहुत वर्षों तक, बहुत सैकड़ों वर्षों तक, बहुत हजार वर्षों तक (अणहसम-
ग्गो) पूर्ण पुण्यशाली रहते हुए अथवा परिपूर्ण सम्पत्ति एव परिवार आदि से लम्बे अथवा
सर्वत्रिधपापरहित होते हुए (हट्टुट्टो परमाउ पालयाहि) सदा आनन्द और स्तोत्र के
साथ अखण्ड आयु भोगवे। (इट्ट-जण-संपडिवुडो चंपाए णयरीए अण्णेसि च वहूण
गामा-गर-णयर-खेड-कब्बड-दोणमुह-मडव-पट्टण-आसम-निगम-संवाह-सन्नि-
वेशाण आहेवच्च पोरेवच्च सामित्त भट्टित्त महत्तरगत्त आणाईसरसेणावच्च कारेमाणे
पालेमाणे) इष्ट जनों से परिवृत होते हुए आप चंपानगरी के तथा और भी बहुत से
गाँवों के, आर-लज्जा आदि के उत्पत्ति स्थानों के, नगरों-जिनमे कर नहीं लगता हो

धरुा से ङडा वरसे। सुधी, धरुा डुलर वरसे। सुधी (अणहसमग्गो) पूर्ण
पुण्यशाली रहेता अथवा परिपूर्ण सम्पत्ति तेभञ् परिवार आदिथी सम्पन्न
अथवा सर्वरीते पापरहित रहेता (हट्टुट्टो परमाउ पालयाहि) सदा आनन्द
तथा स्तोत्रपूर्वक अथवा आयु भोगवे, (इट्टजणसंपडिवुडो चंपाए णयरीए
अण्णेसि च वहूण गामा गर-णयर-खेड-कब्बड-दोणमुह-मडव-पट्टण-आसम निगम
संवाह-सन्निवेशाण आहेवच्च पोरेवच्च सामित्त भट्टित्त महत्तरगत्त आणाईसर
सेणावच्च कारेमाणे पालेमाणे) इष्ट भावुसे वडे परिवृत (विद्यते) आप
चंपानगरीना तथा जील पञ्च धरुा गाभेना, आकरेना-लवणु आदिना
उत्पत्तिस्थानेना, नगरेना-जेभा कर न लेवाते डोय जेधी वन्तीजेना

कवड-दोणमुह-मडव-पट्टण-आसम-निगम-संवाह-संनिवे-
साणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगतं आणां-ई-

द्रोणमुख=जलस्थलपथोपेतम्, मडम=अविद्यमानामत्रग्रामान्तरम्, 'पट्टण' पत्तनम्=जलय-
धेन स्थलपथेन वा निर्गमप्रवेगौ यत्र तत् पत्तनम्, यथा ऋक्षीतो मुम्बापुरी, यद्वा-जलपथे-
नैव निर्गमप्रवेगौ न तु स्थलपथेन, यथा-भारताद् आगराजधानी 'इग्लेण्ड' इति प्रसिद्धा,
तत्, किंच-स्थलपथेनैव निर्गमप्रवेगौ न तु जलपथेन तत्, एतत् सर्वं पत्तनमुच्यते । यद्वा-
यत्र सर्वं वस्तु लभ्यते तत् पत्तनम् । आश्रम=तापसाद्यावास, निगम=वाणिज्यप्रधान
नगरम्, संवाह=कृषीमलाना धान्यरक्षणस्थानम्, 'निवेज' =सार्थकरुटकादीनामुत्तरणस्थानम् ।
तेषाम्-'आहेवच्च' आधिपत्यम्, 'पोरेवच्च' पौरोहित्यम्=पुरोपतिव्यम्-अग्रेसरत्वम् 'सा-

ऐसी वस्तिया के, गेटों के-धूँटि के प्रकार से परिचित वस्तिया के, कर्मटा के-सामान्य
नगरों के, द्रोणमुहा-जलमार्ग एवं स्थलमार्ग से युक्त प्रदेशों के, मडमों-जिनके आसपास
दूसरे ग्राम नहीं होते हैं ऐसे प्रदेशों के, पत्तनों के-जहाँ जलपथ से भी एवं स्थलपथ से भी
आना-जाना होता है, जैसे कर्कोची से मम्बई, अथवा जहाँ सिर्फ जलमार्ग से ही आना-
जाना होता है, जैसे भारत से इङ्ग्लैण्ड, अथवा स्थलमार्ग से ही जहाँ आना-जाना होता है,
ये सभी पत्तन कहलाते हैं । अथवा समस्त वस्तुओं का लाभ जहाँ होता है वह भी पत्तन
है, ऐसे पत्तनों के, आश्रमों के अर्थात् तापस आदि के आश्रमों के, निगमों के अर्थात्
व्यापारिक नगरों के, संवाहों के अर्थात् किसानों के धान्य आदि रखने के स्थलों के, तथा
संनिवेशों के अर्थात् सार्थवाह और सेना आदि के उतरने के स्थानों के आधिपत्य को, पौर-
वृत्त्य को-अग्रेसरत्वको, स्वामित्व को-प्रभुत्व को, उनके भर्तृत्व को-पोषकत्व को, उनमें मह-

जेठाना-धूण (भाटी)ना प्राकारथी पवित्रित वस्तीओना, ठण्ठाना-सामान्य'
नगरेना, द्रोणमुओना-जलमार्ग तेमज स्थलमार्गथी युक्त प्रदेशेना, मड-
ओना-जेनी आसपास जीवत गाभे न होय तेवा प्रदेशेना, पत्तनेना-ज्या
जलमार्गथी तेमज स्थलमार्गथी पथु आवी जध शकतु होय जेभडे
करांचीथी सुजध, अथवा ज्या मात्र जलमार्गथी ज आवी जध शकय, जेभडे
भारतथी धंगलाड, अथवा मात्र स्थल मार्गथी ज ज्या जध आवी शकय
ते जधा पत्तन ठडेवाय छे, अथवा समस्त वस्तुओनी प्राप्ति ज्या यध शके
ते पथु पत्तन छे जेवा पत्तनेना, आश्रमेना अर्थात् तापस आदिनां
आश्रमेना, निगमेना अर्थात् व्यापारिक नगरेना, संवाहोना अर्थात् जेडु
तेना धान्य आदि राखवाना स्थणेना, तथा संनिवेशेना अर्थात् सार्थवाह
अने जेना आदिना उतरवाना स्थानेना आधिपत्ये, पौरवृत्त्ये - अग्रेसर-

सर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महया-हय-नट-गीय-
वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घण-मुअंग-पडु-प्पवाइय-
रवेणं विउलाइं भोगभोगाइं मुंजमाणे विहराहिति कट्टु जय
जय सइं पउंजति ॥ सू. ५३ ॥

मित्त भट्टित्त महत्तरगत' स्वामिव=प्रभुवम्, भर्तृवम्=पोपकवम्, महत्तरकवम्=नाय
कवम्, 'आणा-ईसर-सेणावच्च' आज्ञेश्वर-सेनापयम्-आज्ञेश्वर=आज्ञाप्रप्त सेनापतिपु
य स आज्ञेश्वरसेनापति, यस्याज्ञामुपादाय सेनापति स्वकार्ये प्रवर्तते स इत्यर्थ, तस्य
भावस्तत्त्व तत् 'कारेमाणे' कारयन् 'पालेमाणे' पालयन्=प्रजाजनान् रक्षन् 'महया-
हय-नट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घण-मुअंग-पडु-प्पवाइय-रवेण'
महता अहत-नाटय-गीत-वादित्र-तन्त्री-तल-ताल-तौर्यिक-घन-मृदङ्ग-पडु-प्रवादित-
रवेण-महता=दीर्घेण, अहतम्=अव्यवच्छिन्न यन्नाटय=नाटकम् तत्र यद् गीत=गयम्, वादित्र-
वाद्यम्, तथा तन्त्री=वीणा, तलताल=हस्तास्फोटा, तौर्यिकम्=शेषवाद्यसमुदाय, घनमृ-
दङ्ग=मेघदध्वनिकारको मर्दल-एतत्सर्वं समुदित पडुप्रवादित=दक्षपुरपद्मवादित तस्य
रवेण=नादेन-आनन्दित इति गम्यते, तथाभूत सन् 'विउलाइं' विपुल्यनि=अत्यधि-

त्तरकत्व-नायकव को, एव आज्ञेश्वरसेनापत्य को-सेनापतियों के आज्ञाप्रदत्वरूप अधिकार के
(कारेमाणे पालेमाणे) कराते हुए, पालते हुए एव सदा (महया-हय-नट-गीय-वाइय-
तंती-तलताल-तुडिय-घणमुअंग-पडु-प्पवाइयरवेण) व्यवधानरहित-अव्यवच्छिन्न-निर-
न्तर प्रवर्तित-नाटक मे गाये गये गीतों के, चतुरपुरुषों द्वारा बजाये गये वादित्रों के, तथा तन्त्री-
वीणा के, तलताल=हस्तास्फोटशब्द-तालियों के, तौर्यिक-और भी अवशिष्ट वाजों के समूह
के, घनमृदगों-मेघक्री तरह गरजने वाले ढोलों के एव मर्दलों के अविरल शब्दों से आनन्दित

त्वने, स्वामित्वने-प्रभुत्वने, भर्तृत्वने-पोपकत्वने, तेमा महत्तरकत्वने-नायक-
त्वने तेमञ्च आज्ञेश्वरसेनापत्यने - सेनापतिव्योना आज्ञाप्रदत्वरूप अधिकारने
(कारेमाणे पालेमाणे) करावता अने पालता थका, तेमञ्च सदा (महया-हय-नट-
गीय-वाइय-तंती-तलताल-तुडिय-घणमुअंग-पडु-प्पवाइय-रवेण) व्यवधानरहित-
अव्यवच्छिन्न-निरन्तर प्रवर्तित-नाटकमा गवाता गीताना तेमञ्च चतुर,
युरुषो द्वारा बजाता वादित्राना, तथा तन्त्री-वीणाना, तलताल-तालिव्योना,
तौर्यिक-वीणा आकीना वाद्यव्योना समूहना, घनमृदगो-मेघनी पेटे गञ्ज-
नारा ढोलोना, तेमञ्च मर्दलोना अविरल शब्दो द्वारा आनन्दित थता

मूलम्—तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते नयण-
मालासहस्सेहिं पेच्छिज्जमाणे पेच्छिज्जमाणे, हिययमालासहस्सेहिं

कानि, 'भोगभोगाइ' भोगभोगान् 'भुजमाणे विहराहिति रुहु' भुजन् विहर इति
कृवा=इत्युक्त्वा, 'जय जय सइ पउजति' जयजयशब्द प्रयुज्जते-जय जयेति
शब्दानुच्चारयन्ति ॥ सू. ५३ ॥

टीका—'तए ण से' इत्यादि । 'तए ण से कूणिए राया भंभसारपुत्ते'
तत्, सल्ल स कूणिको राजा भंभसारपुत्र 'नयणमालासहस्सेहिं पेच्छिज्जमाणे पेच्छि-
ज्जमाणे' नयनमालासहस्रै प्रेक्ष्यमाण प्रेक्ष्यमाण बहुविधदर्शकजननयनपङ्क्तिभिर्वा
वार निरीक्ष्यमाण, 'हिययमालासहस्सेहिं अभिणंदिज्जमाणे अभिणदिज्जमाणे'
हृदयमालासहस्रैर्गमिनन्द्यमान अभिनन्द्यमान-धन्योऽय कृतपुण्योऽय सफलजन्माऽयमित्यादि-

हाते हुए (विज्जलाइं भोगभोगाइ भुजमाणे विहराहि) विपुल-अयधिक-भोगभोगां को
भोगते हुए अपना समय निर्विघ्नरीति से व्यतीत करें, (त्तिरुहु) इस प्रकार (जय जय सइ
पउजति) वे पूर्वोक्त अर्थाभिलाषी आदि समस्त जय जय शब्द बोलते थे ॥ सू० ५३ ॥

'तए णं से' इत्यादि ।

(तए णं) इसके बाद (भंभसारपुत्ते) भंभसार के पुत्र (से) वे (कूणिए) कूणिक
(राया) राजा (णयणमालासहस्सेहिं पेच्छिज्जमाणे पेच्छिज्जमाणे) हजारों दर्शकजनों
को हजारों नयनपक्तियों द्वारा निरीक्षित होते हुए, (हिययमालासहस्सेहिं अभिणंदिज्जमाणे
अभिणंदिज्जमाणे) हजारों मनुष्यों के हृदयसहस्रों द्वारा अभिनन्दित होते हुए, अर्थात्—'इस
राजा को धन्यवान् है, यह बड़ा पुण्यशाली है, इसका जन्म सफल है' इत्यादि-रीति से वार-

(विज्जलाइ भोगभोगाइ भुजमाणे विहराहि) विपुल-अतिशय भोगभोगोने भोग-
पता आपने। समय निर्विघ्न रीति व्यतीत करें। (त्तिरुहु) आ प्रकार
(जय जय सइ पउजति) ते उपर उड़ेला अर्थाभिलाषी आदि अथा नय नय
शब्द बोलता हुता (सू. ५३)

'तए णं से' इत्यादि

(तए णं) त्थार पत्नी (भंभसारपुत्ते) लभभारना पुत्र (से) ते (कूणिए)
इच्छिज्ज (राया) राजा (णयणमालासहस्सेहिं पेच्छिज्जमाणे पेच्छिज्जमाणे) हुन्तरे।
नेनारा बोकोनी हुन्तरे आपो द्वारा नेवाता, (हिययमालासहस्सेहिं अभिणंदिज्ज
माणे अभिणंदिज्जमाणे) हुन्तरे मनुष्योना हुन्तरे हृदय द्वारा अभिनन्दित थता,
अर्थात्—'आ राजाने धन्यवाइ छे तेओ अहु अहु पुण्यशाली छे तेमने
जन्म सइल छे' इत्यादि रीतथी वारवार हुन्तरे बोको द्वारा इच्छिज्ज लावना-

अभिणंदिज्जमाणे अभिणंदिज्जमाणे, मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छि-
प्पमाणे विच्छिप्पमाणे, वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे
अभिथुव्वमाणे, कंति-दिव्व-सोहग्ग-गुणेहिं पत्थिज्जमाणे पत्थिज्ज-

रीयाऽसकृत् सहस्राऽधिकजनदृश्यै स्तूयमान, 'मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे
विच्छिप्पमाणे' मनोरथमालासहस्रैर्विस्पृश्यमान विरपृ-यमान = हीनदीनरक्षणपूर्वक
सकलमनोरथपूरकत्वात्—जनाना मनोरथमालासहस्रैर्मुहुर्मुहु स्पृश्यमान—'वृषोऽयमस्माक-
मापदुद्वारक पालकश्च, अतोऽयं शत वर्षाणि जीवतु' इत्यादि मनोरथसहस्रविषयीभवन-
इत्यर्थ । 'वयणमालासहस्सेहिं' वचनमालासहस्रै—मञ्जुलोदारवचनरचनानिचयै,
'अभिथुव्वमाणे अभिथुव्वमाणे' अभिप्रयमान अभिप्रयमान, 'कंति-दिव्व-सोह-
ग्ग-गुणेहिं पत्थिज्जमाणे पत्थिज्जमाणे' कान्तित्रियसौभाग्यगुणै प्रार्थ्यमान प्रार्थ्य-
मान, कान्त्या=देहदीत्या, प्रयास्तसौभाग्यादिगुणैश्च हतुना जनै सातिशयम् अभिलष्यमाण
अभिलष्यमाण, 'बहूण नरनारीसहरसाणं दाहिणहत्थेण अजलिमालासहस्साइ

वार सहस्राधिक जनो द्वारा हादिक भावना से स्तुत होते हुए, (मणोरहमालासहस्सेहिं
विच्छिप्पमाणे विच्छिप्पमाणे) हजारों जनो के मनोरथ महत्त्वरूपी मालाओं द्वारा स्पृष्ट
होते हुए, अर्थात्—हीनदीन जनो के रक्षापूर्वक समस्त मनोरथो का पूरक होने से ये राजा
हम लोगो की आपत्ति से रक्षा करने वाले है, एव पालक हैं, इसलिये ये सौ वर्ष तक जीवित
रहें" इस प्रकार से जनो के हजारों मनोरथ का पात्र होते हुए, (वयणमालासहस्सेहिं अ-
भिथुव्वमाणे अभिथुव्वमाणे) मज्जुल एव उदार वचनो की रचनाओं द्वारा अभिप्युत होते
हुए, (कंति-दिव्व-सोहग्ग-गुणेहिं पत्थिज्जमाणे पत्थिज्जमाणे) देह की दीप्ति से एव
दिव्य-असाधारण सौभाग्यादिक गुणो से जनो द्वारा प्रार्थित होने हुए, (बहूण नरनारि-

पूर्वक स्तुति करता, (मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे विच्छिप्पमाणे) डूबने
डोकनेना डूबने मनोरथरूपी मालाओं द्वारा स्पर्शाता, अर्थात् हीनदीनजनो
रक्षापूर्वक समस्त मनोरथो परिपूष्ण करता डोवाथी आ राजा आभारी
आपत्तिथी रक्षा करवावाणा छे तेमञ् पालक छे, तेथी तेओ सौ वर्ष सुधी
एवता रहै—आ प्रधारना डोकनेना डूबने मनोरथोने पात्र थता, (वयण-
मालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे अभिथुव्वमाणे) मज्जुल तेमञ् उदार वचनोनी
रचना द्वारा अलिप्युत थता, (कंति-दिव्व सोहग्ग गुणेहिं पत्थिज्जमाणे पत्थिज्जमाणे)
देहनी दीप्तिथी तेमञ् दिव्य-असाधारण सौभाग्य आदिक सुधोधी डोके द्वारा
प्रार्थित थता, (बहूण नरनारिसहस्साण अजलिमालासहस्साइ

माणे; वहूणं नरनारीसहस्साणं दाहिणहत्थेण अंजलिमालासह-
स्साणं पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे, मज्जुमंजुणा घोसेण पडिवुज्जमाणे
पडिवुज्जमाणे, भवणपंतिसहस्साणं समइच्छमाणे समइच्छमाणे,
चंपाए नयरीए मज्झमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव
पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स

पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे' वहूणा नरनारीसहस्राणा दक्षिणहस्तेनाञ्जलिमालासहस्राणि-
वहूणा नरनारीसहस्राणा यानि अञ्जलिमालासहस्राणि=राज सत्काराय विरचितानि मालारूपाणि
सहस्राणि प्राञ्जलिपुटानि तानि उद्यापितेन दक्षिणहस्तेन प्रतीच्छन् प्रतीच्छन्=वाग्दार स्वी-
कुर्वन्, 'मज्जुमंजुणा घोसेण पडिवुज्जमाणे पडिवुज्जमाणे' मज्जुमंजुणा घोसेण=अति-
कोमलेन शब्देन प्रतिबुध्यमान २=अनुमोदयन् २, 'भवण-पति सहस्साणं समइच्छमाणे
समइच्छमाणे' भवनपङ्क्तिमहस्राणि समतिक्रामन् समतिक्रामन्, 'चंपाए नयरीए मज्झ-
मज्झेणं' चम्पाया नगया मध्यमध्येन, 'निग्गच्छइ' निर्गच्छति=निस्सगति, 'निग्गच्छित्ता'
निर्गय, 'समणस्स भगवओ महावीरस्स' श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य 'अदूरसामते'

सहस्साण दाहिणहत्थेणं अंजलिमालासहस्साणं पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे) हजारों
नरनारियों की अंजलिरूप माला के सहस्रां को जो राजा के सत्कारार्थ विरचित हुई थीं, अपने
दक्षिण (दाहिने) हाथ से स्वीकृत करते हुए, (मज्जुमंजुणा घोसेण पडिवुज्जमाणे पडि-
वुज्जमाणे) अत्यन्त मधुर स्वर से उन लोगों के द्वारा किये हुए सत्कार-सम्मान का अनु-
मोदन करते हुए, (भवण-पति-सहस्साणं समइच्छमाणे समइच्छमाणे) एवं हजारों
महलों की पक्ति को पार करते हुए (चंपाए नयरीए मज्झ मज्झेण निग्गच्छइ) चंपा
नगरी के बीचमार्ग से होकर निकले, (निग्गच्छित्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवाग-

माणे) हुआरे नरनारीयोंना हाथनी हुआरे अञ्जलीरूप मालाओं के राजनना
सहस्राणं रथाई हुती तेना पोताना जभष्ठा हाथथी स्वीकार करता, (मज्जु
मंजुणा घोसेण पडिवुज्जमाणे पडिवुज्जमाणे) अत्यन्त मधुर स्वग्थी ते बोला दान
करेला सत्कार-सम्माननु अनुमोदन करता, (भवणपतिसहस्साणं समइच्छमाणे
समइच्छमाणे) तेभज हुआरे भडेलेनी हारने पमार करता (चंपाए नयरीए
मज्झमज्झेण निग्गच्छइ) चंपा नगरीना मध्येना मार्गमा थरने नीउष्ठा
(निग्गच्छित्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छइ) नीउष्ठीने न्या पूर्णलक्ष

भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्ताइए तित्थयराइसेसे पासइ, पासित्ता अभिसेक्कं हत्थिरयणं ठवेइ, ठवित्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता अवहट्टु पंच रायकउहाइ, तंजहा—खग्गं छत्तं उप्फेसं वाहणाओ वालवीयणि; जेणेव समणे

अदूरसमापे=नातिदूरे नातिसमापे, किंचिददरे इत्यर्थ । 'छत्ताइए तित्थयराइसेसे' उत्रादिकान् तीर्थकरातिगेषान्=तीर्थकरातिगयान् 'पासइ' पश्यति, 'पासित्ता' दृष्ट्वा, 'आभिसेक्क हत्थिरयण' आभिपेक्ष्य हस्तिरत्नम् 'ठवेइ, ठवित्ता' स्थापयति, स्थापयित्वा, 'आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ' आभिपेक्ष्यात् हस्तिरत्नात् 'पच्चोरुहइ' प्रत्यवरोहति=अवतरति, 'पच्चोरुहित्ता' प्रत्यवस्तु, 'अवहट्टु पंच रायकउहाइ' अपहृत्य पञ्च राजकुन्दानि—त्यक्त्वा पञ्च राजचिह्नानि=राजाऽयमिति ज्ञापकानि चिह्नानि, 'तंजहा' तद्यथा—तानि चिह्नानि यथा—'खग्गं' सङ्गम्, 'छत्तं' उत्रम्, 'उप्फेसं' मुकुटम् 'उप्फेस' इति

चउइ) निकल कर जहाँ पूर्णभद्र उद्यान या वहाँ आये, (उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामते छत्ताइए तित्थयराइसेसे पासइ) आकर उन्होंने श्रमण भगवान् महावार के न अतिसमीप और न अतिदूर—किन्तु कुछ ही दूर पर—तीर्थ-करों के अतिशयस्वरूप उत्रादिकों को देखा, (पासित्ता आभिसेक्क हत्थिरयण ठवेइ) देखते ही उन्होंने अपने हाथी को खडा करवाया, (ठवित्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ) हाथी के सडे होते ही वे उस हाथी से नाचे उतरे, (पच्चोरुहित्ता अवहट्टु पंच रायकउहाइ) नाचे उतरते ही उन्होंने इन पांच राजचिहों का परित्याग किया, (तंजहा) वे पांच राजचिह्न ये हे—(खग्गं छत्तं उप्फेसं वाहणाओ वालवीयणि) सङ्ग-

उद्यान इतु त्या आया, (उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामते छत्ताइए तित्थयराइसेसे पासइ) आवीने तेओओ श्रमणु भगवान् भडा वीरथी भडु इत्तं नडि तेभ भडु समीप नडि, पणु जरा इरे, तीर्थं करेना अतिशय स्वरूप उत्रादिकेने लेथा, (पासित्ता आभिसेक्क हत्थिरयण ठवेइ) लेताज तेओओ पोताना डाथीने उभे रथाओथे, (ठवित्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ) डाथी उभे रडेता ज तेओ ते डाथी उपरथी नीथे उतरथा, (पच्चोरुहित्ता अवहट्टु पंच रायकउहाइ) नीथे उतरथीने ज तेओओ पाथ राजचिह्नेना त्याग कथे (तंजहा) ते पाथ राजचिह्ने आ छे—(खग्गं छत्तं उप्फेसं वाहणाओ वालवीयणि) भडुग=तलवार, छत्तं, उप्फेसं=मुकुट, त-

भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छड, उवागच्छित्ता समणं भगवं
महावीरं पचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छड, तंजहा-(१)
सचित्ताणं दव्वाणं विओसरणयाए, (२) अचित्ताणं दव्वाणं
अविओसरणयाए, (३) एगसाडियं उत्तरासंगकरणेणं, (४)

देशाय शब्द, 'गृहणाओ' उपानहौ 'गाल्वीर्यणि' वाल्व्यजनीम्-चामरम्, एतानि
त्यक्त्वा, 'जेणेव समणे भगव महावीरे' यत्रैव श्रमणो भगवान महावार, 'तेणेव
उवागच्छड, उवागच्छित्ता' तत्रैवोपागच्छति, उपागय, 'समण भगवं महावीर' श्रमण
भगवन्त महावार 'पचविहेणं अभिगमेण अभिगच्छड' पचविधेनाऽभिगमेनाभिगच्छति-
पचप्रकारेण अभिगमेन=सत्कारप्रशेषेण अभिमुख गच्छति, 'तंजहा' तद्यथा-तत्पञ्चविधा-
भिगमन यथा-'सचित्ताण दव्वाण विओसरणयाए' सचित्ताना द्रव्याणा व्युसर्जनतया-
हरितफळकुसुमादाना वन्तूना त्यागन १, 'अचित्ताण दव्वाणं अविओसरणयाए' अचि-
त्ताना द्रव्याणामव्युसर्जनतया, अचित्ताना वस्त्रभरणादीनाम् अत्यागन २, 'एगसाडियमुत्त-

त्तरार, उत्र, मुकुट, उपानत्-पगरत्, एव वाल्व्यजनी-चामर । फिर वे (जेणेव समणे
भगव महावीरे तेणेव उवागच्छड) जहा श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे वहाँ पर
आये, (उवागच्छित्ता समण भगव महावीर पचविहेण अभिगमेण अभिगच्छड)
जाते ही वे पांच प्रकार के अभिगमन-सत्कारप्रशेष से युक्त होकर प्रभु के सन्मुख पहुँचे ।
वे पांच प्रकार के सत्कारप्रशेष इस प्रकार हैं-(सचित्ताण दव्वाण विओसरणयाए)
हरित फळ फूल आदि सचित्त द्रव्या का परित्याग करना, (अचित्ताण दव्वाण अवि-
ओसरणयाए) वस्त्र आभरण आदि अचित्त द्रव्या का परित्याग नही करना, (एगसाडिय-
मुत्तरासंगकरणेण) भाषा का यतना के लिये अस्पष्ट अथात् जो साया हुआ न हो

पगारणा, तेभव वाल्व्यजनी-चामर पछी तेथो (जेणेव समणे भगव महावीरे
तेणेव उवागच्छड) न्या श्रमणु लगवान भडावीर विराजता हुता त्या आव्या
(उवागच्छित्ता समण भगवं महावीर पचविहेण अभिगमेण अभिगच्छड) आवता
व तेथो पाच प्रकारना अलिगमन-सत्कारप्रशेषथी युक्त थधने प्रभुना
सन्मुख पडोव्या ते पाच प्रकारना सत्कारप्रशेष आ प्रकारना छे-(सचित्ताण
दव्वाण विओसरणयाए) लीला इण कूल आदि अचित्त द्रव्येनो परित्याग
करवो, (अचित्ताण दव्वाण अविओसरणयाए) वस्त्र-आभरणु आदि अचित्त
द्रव्येनो परित्याग न करवो, (एगसाडियमुत्तरासंगकरणेण) भाषानी यतना

भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्ताइए तित्थयराइसेसे
पासइ, पासित्ता अभिसेकं हत्थिरयणं ठवेइ, ठवित्ता आभिसे-
क्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहत्ता अवहट्टु पंच रायकउहाइं,
तजहा—खग्गं छत्तं उप्फेसं वाहणाओ वालवीयणिं; जेणेव समणे

अदूरसमीपे=नातिदूरे नातिसमीपे, किंचिददूरे इत्यर्थ । 'छत्ताइए तित्थयराइसेसे' उत्रा
दिकान् तीर्थकरातिगोपान्=तीर्थकरातिगयान् 'पासइ' पश्यति, 'पासित्ता' दृष्ट्वा, 'आभिसेक
हत्थिरयण' आभिपेक्ष्य हस्तिरत्नम् 'ठवेइ, ठवित्ता' स्थापयति, स्थापयित्वा, 'आभि-
सेक्काओ हत्थिरयणाओ' आभिपेक्ष्यात् हस्तिरत्नात् 'पच्चोरुहइ' प्रयत्नरोहति=अयत्-
रति, 'पच्चोरुहत्ता' प्रत्यवत्त्वा, 'अवहट्टु पंच रायकउहाइ' अपहृष्य पञ्च राजकु-
दानि—त्यक्त्वा पञ्च राजचिह्नानि=राजाऽयमिति ज्ञापकानि चिह्नानि, 'तजहा' तद्यथा—तानि
चिह्नानि यथा—'खग्गं' सङ्गम्, 'छत्तं' उत्रम्, 'उप्फेसं' मुकुटम् 'उप्फेस' इति

च्छइ) निकल कर जहाँ पूर्णभद्र उधान या वहाँ आये, (उवागच्छित्ता समणस्स भग-
वओ महावीरस्स अदूरसामते छत्ताइए तित्थयराइसेसे पासइ) आकर उन्होंने
श्रमण भगवान् महावार के न अतिसमीप और न अतिदूर—किन्तु कुछ ही दूर पर—तीर्थ-
करों के अतिशयस्वरूप उत्रादिकों को देखा, (पासित्ता आभिसेक हत्थिरयण ठवेइ)
देखते ही उन्होंने अपने हाथी को खडा करवाया, (ठवित्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ
पच्चोरुहइ) हाथी के सडे होते ही वे उस हाथी से नाचे उतरे, (पच्चोरुहत्ता अवहट्टु
पंच रायकउहाइ) नीचे उतरते ही उन्होंने इन पांच राजचिह्नों का परित्याग किया,
(तजहा) वे पांच राजचिह्न ये हैं—(खग्गं छत्तं उप्फेसं वाहणाओ वालवीयणिं) सङ्ग-

उधान इतु त्या आल्या, (उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसा
मते छत्ताइए तित्थयराइसेसे पासइ) आवीने तेज्यांजे श्रमणु लगवान भडा
वीरथी अहु इ नडि तेम अहु समीप नडि, पणु जरा दूरे, तीर्थ उरेना
अतिशय स्वूप छत्रादिडेने जेथा, (पासित्ता आभिसेक हत्थिरयण ठवेइ)
जेताज तेज्यांजे पोताना हाथीने जेभा रभांजे, (ठवित्ता आभिसेक्काओ हत्थि
रयणाओ पच्चोरुहइ) हाथी जेभा रडेता ज तेज्या ते हाथी उपरथी नीचे
उतर्या, (पच्चोरुहत्ता अवहट्टु पंच रायकउहाइ) नीचे उतर्याने ज तेज्यांजे पाथ
राजचिह्नेना त्याग ज्येथी (तजहा) ते पाथ राजचिह्नी आ छे—(खग्गं छत्तं
उप्फेसं वाहणाओ वालवीयणिं) अङ्ग=तलवार, छत्र, उप्फेस=मुकुट, उधानत-

भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं
महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ, तंजहा—(१)
सचित्ताणं दव्वाणं विओसरणयाए, (२) अचित्ताणं दव्वाणं
अविओसरणयाए, (३) एगसाडियं उत्तरासंगकरणेणं, (४)

देशीय शब्द, 'गहणाओ' उपान्तौ 'वालवीयणि' वालव्यजनीम्-चामरम्, एतानि
त्यक्त्वा, 'जेणेव समणे भगव महावीरे' यत्रैव श्रमणो भगवान् महावार, 'तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता' तत्रैवोपागच्छति, उपागय, 'समण भगवं महावीर' श्रमण
भगवन्त महावार 'पंचविहेणं अभिगमेण अभिगच्छइ' पञ्चविधेनाऽभिगमेनाभिगच्छति—
पञ्चप्रकारेण अभिगमेन=सत्कारविशेषेण अभिमुख गच्छति, 'तंजहा' तद्यथा-तपञ्चविधा-
भिगमन यथा—'सचित्ताण दव्वाण विओसरणयाए' सचित्ताना द्रव्याणा व्युसर्जनतया-
हृत्तफलकुमुमादाना वस्तूना त्यागेन १, 'अचित्ताण दव्वाणं अविओसरणयाए' अचि-
त्ताना द्रव्याणामव्युसर्जनतया, अचित्ताना वस्त्राभरणादीनाम् अयागन २, 'एगसाडियमुत्त-

त्तरार, उत्र, मुकुट, उपानत्-पगरम्, एव वालव्यजनी-चामर । फिर वे (जेणेव समणे
भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ) जहा श्रमण भगवान महावीर निराजमान ये वहाँ पर
आये, (उवागच्छित्ता समण भगव महावीर पंचविहेण अभिगमेण अभिगच्छइ)
जाते ही वे पाच प्रकार के अभिगमन-सत्कारविशेष से युक्त होकर प्रभु के सन्मुख पहुँचे ।
व पाच प्रकार के मत्कारविशेष इस प्रकार हैं—(सचित्ताण दव्वाण विओसरणयाए)
हृत्त फल फूल आदि सचित्त द्रव्या का परित्याग करना, (अचित्ताण दव्वाण अवि-
ओसरणयाए) वस्त्र आभरण आदि अचित्त द्रव्या का परित्याग नहीं करना, (एगसाडिय-
मुत्तरासंगकरणेण) भाषा का यतना के लिये अग्रण्ड अथात् जो साथ हुआ न हो

पराश्रया, तेभ्य वालव्यजनी-चामर पछी तेथे। (जेणेव समणे भगव महावीरे
तेणेव उवागच्छइ) तथा श्रमण भगवान महावीर निराजमान हुता त्याग्या
(उवागच्छित्ता समण भगव महावीर पंचविहेण अभिगमेण अभिगच्छइ) आवता
व तेथे पाच प्रकार के अभिगमन-सत्कारविशेषयी युक्त थर्धने प्रभुना
सन्मुख पहुँच्या ते पाच प्रकार के सत्कारविशेष या प्रकारना छे—(सचित्ताण
दव्वाण विओसरणयाए) वस्त्रा इण इल आदि अचित्त द्रव्येना परित्याग
करवे, (अचित्ताण दव्वाण अविओसरणयाए) वस्त्र-आभरण आदि अचित्त
द्रव्येना परित्याग न करवे, (एगसाडियमुत्तरासंगकरणेण) भाषानी यतना

चक्रवुष्पासे अंजलिपगहेणं, (५) मणसो एगत्तभावकरणेण,
समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ,
करित्ता वंदइ नमसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तिविहाए पज्जुवासण-

रासगरुणेण' एरुणाटिकोत्तराऽऽसङ्गकरणेण—मापायतनार्थम् अस्यूतेन एकपटन उत्तरा-
सङ्गकरणेण तेन ३, 'चक्रवुष्पासे' चक्रु स्पष्टे—श्रीमहावीरं दृष्टिमागते, 'अजलिपग-
हेण' अजलिप्रग्रहेण=कृताऽजलिपुटेन ४, 'मणसो एगत्तभावकरणेण' मनस एकत्र-
भावकरणेण—मनस चित्तस्यैकरूप=भगवद्विषये भावकरणेण=स्थिरीकरणेण, एव पञ्चविधाभिग-
मेन 'समण भगव महावीर' श्रमण भगवन्त महावीरम् अभिगम्य, तस्य श्रमणस्य भगवतो
महावीरस्य 'तिक्खुत्तो' त्रिष्टुव 'आयाहिणपयाहिण' आदक्षिणप्रदक्षिणम्=अजलिपुट
वद्व्या, त उद्गाजलिपुट दक्षिणकर्णमूलत आरभ्य ललाटप्रदेशेन वामकर्णान्तिकेन चक्राकार त्रि
परिभ्राम्य ललाटदेशे स्थानरूप, 'करेइ' करोति, 'करित्ता' कृत्वा 'वदइ नमसइ'
वन्दते नमस्यति—स्तौति नमस्करोति, 'वदित्ता नमंसित्ता' वन्दित्वा नमस्यित्वा, 'तिवि-

एसे वल का उत्तरासङ्ग करना, (चक्रवुष्पासे अजलिपगहेण) जम से भगवान दिखायी
दे, तभा से दोनों हाथों को जोड़ना, और (मणसो एगत्तभावकरणेण) मन को एकाग्र
करके भगवान म लगाना । इस प्रकार इन पाँच अभिगमनों से युक्त होकर राजाने भगवान्
महावीर प्रभु को तान गार (आयाहिणपयाहिण) आदक्षिणप्रदक्षिण-अजलिपुट को दाहिने कान से
लेकर गिर पर घुमाते हुए बाये कान तक ले जाकर फिर उसे घुमाते हुए दाहिने कान पर ले
जाना और बाद म उसे अपने ललाट पर स्थापन करना—रूप आदक्षिणप्रदक्षिण (करेइ)
किया, (करित्ता) आदक्षिणप्रदक्षिण कर के (वदइ नमंसइ) वन्दना और नमस्कार किया।
(वदित्ता नमंसित्ता) वन्दना नमस्कार कर के (तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ)

भाटे अथ उ अर्थात् जे सीवेला न छोय तेवा पञ्चनु उत्तराम ग करवु,
(चक्रवुष्पासे अजलिपगहेण) न्यारथी लगवान द्वेषाय त्यारथी ज अन्ने हाथने
लेउवा, अने (मणसो एगत्तभावकरणेण) मनने झेकाअ करीने लगवानभा
लेउवु आ प्रकारे आ पत्थ अलिगमनेथी युक्त थधने राअये लगवान
महावीर प्रभुने त्रषु वार (आयाहिणपयाहिण) आदाक्षिणप्रदक्षिण—अजलिपुटने
जमषु वानथी लधने शिर उपर घुभावता डाया डान सुधी लध जधने पाछे
तेने घुभावीने जमषु डाने लध जये अने पछी तेने पोताना ऽपाणे स्था-
पन करवाइप आदक्षिण-प्रदक्षिण (करेइ) वर्युं, (करित्ता) आदक्षिण-प्रदक्षिण
वनीने (वदइ नमसइ) वदना अने नमस्कार कथां (वदित्ता नमंसित्ता) वदना

।ज्जुवासइ, तंजहा-काइयाए वाइयाए माणसियाए ।
 १-ताव संकुइयग्गहत्थपाए सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अ-
 हं विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ । वाइयाए-जं जं भगवं

ज्जुवासणयाए पज्जुवासइ' त्रिविधया पर्युपासनया पर्युपास्ते-भगवत पर्युपासना
 'तजहा' तवया-तत् त्रिविधव दर्शयति-'काइयाए वाइयाए माणसियाए'
 वाचिण्या मानसिक्या, पर्युपास्ते इति पूर्वैणान्वय । तत्र कायिक्या पर्युपासनया
 तावत् 'सकुइयग्गहत्थपाए' सङ्कुचिताऽग्रहस्तपाद, 'सुस्सूसमाणे' शुश्रूषमाण =
 सेवमान, 'णमंसमाणे' नमस्यन-अभिमुखे विनयेन प्राञ्जलिपुट पर्युपास्ते, 'वाइयाए-
 जं जं भगवं वागरेइ' वाचिण्या पर्युपासनया-यद् यद् भगवान् व्याकरोति=व्याख्याति,

त्रिविध पर्युपासना से उनका उपासना की । वह त्रिविध उपासना इस प्रकार है-(काइयाए
 वाइयाए माणसियाए) काय से उपासना करना, वचन से उपासना करना एव मन से
 उपासना करना । (काइयाए ताव) कायिक उपासना इस प्रकार से उसने की-(सकुइयग्ग-
 हत्थपाए सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएण पजलिउडे पज्जुवासइ) प्रभु के
 समीप वे हाथपावों को सङ्कुचित करके उचित आसन से बैठे । उनसे धर्म सुनने की इच्छा
 करने लगे, उहे बारबार नमस्कार करने लगे, पुन नम्र होकर प्रभु के सम्मुख दोनों हाथों
 को जोड़ते हुए प्रभु की सेवा करने लगे । (वाइयाए) वचन से उपासना उन्होंने इस
 प्रकार की-(जं जं भगवं वागरेइ) जो जो भगवान् कहते थे, उस पर राजा इस प्रकार
 कहते थे, हे भगवान् ! (से जहेयं तुम्हे वदह) आप जैसा कहते हैं, (एवमेयं भते!) हे

नमस्कार करीने (तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ) त्रिविध पर्युपासना वडे तेमनी
 उपासना करी ते त्रिविध उपासना आ प्रकारे छे-(काइयाए वाइयाए माण-
 सियाए) कायाथी उपासना करवी, वचनथी उपासना करवी तेमनी मनथी
 उपासना करवी (काइयाए ताव) कायिक उपासना तेले आ प्रकारे करी-(सकु-
 इयग्गहत्थपाए सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएण पजलिउडे पज्जुवासइ)
 प्रभुनी पाने तेओ हाथ-पावने सङ्कुचित करीने उचित आसन पर जेडा
 तेओ पासैथी धर्म सांख्यजवानी धरिछा करवा लाओ, तेमने बारबार नम-
 स्कार करवा लाओ, अने नम्र थधने प्रभुना सम्मुख अन्ने हाथ जोडीने
 प्रभुनी सेवा करवा लाओ (वाइयाए) वचनथी तेमले आ प्रभुले उपासना
 करी-(जं जं भगवं वागरेइ) जे जे भगवान् कहेता डेटा ते उपर राजा आ
 प्रकारे जोखता डेटा-हे भगवान् ! (से जहेयं तुम्हे वदह) आप जेभ कहेता छे

वागरेइ, एवमेयं भंते । तहमेयं भंते ! अवितहमेयं भं
संदिद्धमेयं भंते । इच्छियमेयं भंते ! पडिच्छियमेयं
इच्छियपडिच्छियमेयं भंते ! से जहेयं तुव्भे वदह-अपडिकूल-

तत्र तत्र-‘ एवमेयं भंते ! ’ एवमेतद् भदन्त ! = हे भगवन् ! यद् भवानुपदिशति तद् एवमे-
वास्ति, ‘ तहमेयं भंते ! ’ तथैतद् भदन्त ! = हे भगवन् ! भवता यदुपदिष्टं तत्तथैव ।
‘ अवितहमेयं भंते ! ’ अवितथमेतद् भदन्त ! = हे भगवन् ! भवदुक्तमेतत् सर्वं सयमेव ।
‘ असदिद्धमेयं भंते ! ’ असन्दिग्धमेतद् भदन्त ! = हे भगवन् ! एतत् सन्देहरहितं = देश-
गङ्गासर्वेशाङ्गावर्जितम् । ‘ इच्छियमेयं भंते ! ’ इष्टमेतद् भदन्त ! = हे भगवन् ! एतद्भव
द्वचनमस्माभिर्वाञ्छितमेव, ‘ पडिच्छियमेयं भंते ! ’ प्रतीष्टमेतद् भदन्त ! = हे भगवन् ! पुन
पुनरिष्टमेतद् भवद्वचनम्, ‘ इच्छियपडिच्छियमेयं भंते ! ’ इष्टप्रतीष्टमेतद् भदन्त ! = हे
भगवन् ! एतद् वचनम् इष्टप्रतीष्टोभयरूपं वर्तते । ‘ से जहेयं तुव्भे वदह ’ तद्यथैतद्
यूयं वदथ-तदेतद् यथा भवन्त कथयन्ति तत्तथैवेति वदन् ‘ अपडिकूलमाणे पञ्जुवासइ ’
अप्रतिकूलयनं = प्रतिकूलाचरणं वर्जयन् पर्युपास्ते । ‘ माणसियाए ’ मानसिक्या = मन-

भगवन् ! यह ऐसा ही है, (तहमेयं भंते !) हे भगवन् ! यह वैसा ही है, (अवितहमेयं
भंते !) हे भगवन् ! आपने जो कहा सो सत्य है, (असदिद्धमेयं भंते !) हे भगवन् ! यह देश-
गङ्गा और सर्वेशाङ्गा से सर्वथा रहित है, (इच्छियमेयं भंते !) हे भगवन् ! आपका यह
वचन हम लोगों के लिए सर्वथा वाञ्छनीय है, (पडिच्छियमेयं भंते !) हे भगवन् !
यह आपका वचन हम लोगों के लिये सर्वथा वाञ्छनीय है, (इच्छियपडिच्छियमेयं भंते !)
हे भगवन् ! यह आपका वचन हम लोगों के लिये सर्वथा और सर्वथा वाञ्छनीय है । इस
प्रकार राजा-(अपडिकूलमाणे) भगवान् के साथ अनुकूल आचरण करते हुए (पञ्जु-
वासइ) उनकी उपासना करने लगे । (माणसियाए) राजा ने भगवान् की मानसिक उपा-

(एवमेयं भंते !) हे भगवन् ! ओ ओभञ्जं छे, (तहमेयं भंते !) हे भगवन् ! ओ
ओभञ्जं छे, (अवितहमेयं भंते !) हे भगवन् ! आपने ओ कथ्युं ते सत्यं छे
(असदिद्धमेयं भंते !) हे भगवन् ! आ तमाइ वचनं देशशुद्धां अने सर्व-
शुद्धां ओथी सर्वथा रक्षितं छे (इच्छियमेयं भंते !) हे भगवन् ! आपना आ
वचनं अभासां भाटे सर्वथा वाञ्छनीयं छे (पडिच्छियमेयं भंते !) हे भगवन् !
आ आपना वचनं अभासां भाटे सर्वथा वाञ्छनीयं छे, (इच्छिय-पडिच्छियमेयं
भंते !) हे भगवन् ! आ आपना वचनं अभासां भाटे सर्वथा अने सर्वथा
वाञ्छनीयं छे आ प्रकारे राजा (अपडिकूलमाणे) भगवान् की साथ अनुकूल

माणे पञ्जुवासइ । माणसियाए-महयासंवेगं जणइत्ता तिव्वध-
म्माणुरागरत्ते पञ्जुवासइ ॥ सू० ५४ ॥

मूलम्—तए णं ताओ सुभइप्पमुहाओ देवीओ अंतो
अंतेउरंसि ण्हायाओ जाव पायच्छित्ताओ सव्वालंकारविभूसि-

सम्बन्धिन्या पर्युपासनया, 'महयासवेग' महामवेग=महद्वैराग्य 'जणइत्ता' जनयित्वा
'तिव्व-धम्मा-णुराग-रत्ते' तीव्र-धमा-नुराग-रक्त सन् 'पञ्जुवासइ' पर्युपास्ते अनेन
वीतरागाण पुष्पधूपादिभि सावधपूजा निराकृता ॥ सू० ५४ ॥

टीका—'तए ण ताओ' इत्यादि । 'तए ण' तत् खलु 'ताओ सुभइप्प-
मुहाओ' तत् तदनन्तरम्-सुगद्राप्रसुखा 'देवीओ' देव्य =राग्य अतो अतेउरंसि'
अन्तरन्त पुरस्य स्त्रीभवनमध्ये, 'ण्हायाओ जाव पायच्छित्ताओ' स्नाता यावत् प्राय-

सना इस प्रकार की-(महयासंवेग जणइत्ता तिव्व-धम्मा-णुराग-रत्ते पञ्जुवासइ) प्रभु
के मुख से धर्म का उपदेश सुन कर राजा के हृदय में परम वैराग्य उत्पन्न हुआ और
धर्मानुराग से प्रेरित होकर वे प्रभु की उपासना करने लगे । इस सूत्र से वीतरागों की पुष्प-
धूप आदि से सावध पूजा करना सर्वथा निषिद्ध है-यह सूचित होता है ॥ सू० ५४ ॥

'तए ण ताओ' इत्यादि ।

(तए ण) इसके बाद (ताओ सुभइप्पमुहाओ देवीओ) वे सुगद्राप्रसुख देविया
मी (अतो अतेउरंसि) अत पुरस्य स्त्रीभवन के मध्यवर्ती स्नानागार में (ण्हायाओ जाव

आशरथु करता (पञ्जुवासइ) तेभनी उपासना करवा लाग्या (माणसियाए)
शान्दये भगवान्नी मानसिक उपासना आ प्रजारे करी-(महयासवेगं जणइत्ता
तिव्व-धम्मा-णुराग-रत्ते पञ्जुवासइ) प्रभुना सुभधी धर्मने उपादेश साभ-
जीने शान्दना हृदयमा परम वैराग्य उत्पन्न थयु, अने धर्मानुरागथी प्रेरित
थधने तेओ प्रभुनी उपासना करवा लाग्या आ सूत्रधी वीतरागोनी पुष्प
धूप आदि वडे सावधपूजा करनी ये सर्वथा निषिद्ध छे ते सूचित थय छे
(सू० ५४)

"तए ण ताओ" इत्यादि

(तए ण) त्थार ५५ (ताओ सुभइप्पमुहाओ देवीओ) ते सुगद्रा प्रभुभ
देवीओ थयु (अतो अतेउरंसि) अत पुरमा स्त्रीभवनना मध्यवर्ती स्नाना-
गारमा (ण्हायाओ जाव पायच्छित्ताओ) स्नान करीने ठौतुक तथा भविकर्भथी

याओ बहूहिं खुज्जाहिं चिलाईहिं वामणीहिं बडभीहिं बव्वरीहिं
वउसियाहिं जोणियाहिं पल्लवियाहिं ईसणियाहिं चारुडणियाहिं

श्रित्ता-यात्-श्रद्धात्-कृतबलिकर्माण कृतकौतुकमद्गलप्रायश्रित्ता ' इति सप्तह, तथा 'सव्वा-
लकार-विभूसियाओ' सर्वा-ऽश्रद्धार-निगृपिता-सर्वग्लदागैरलङ्कता 'बहूहिं खुज्जाहिं'
बहूभिः खुज्जाभिः-बन्धुशरीराभिः 'कून्डी' इति प्रमिद्धाभिः, 'चिलाईहिं' किरातीभिः=किरात
देशोत्पन्नाभिः, 'वामणीहिं' वामनाभिः-अतिह्रस्व शरीराभिः, 'बडभीहिं' बटभिकाभिः=बका-
ऽध कायाभिः, 'बव्वरीहिं' बर्वरीभिः=बर्वरदेशोपन्नाभिः, 'वउसियाहिं' बकुगिकाभिः,
'जोणियाहिं' योनिकाभिः=योनिरुदेशोपन्नाभिः, 'पल्लवियाहिं' पल्लविकाभिः=पल्लवदेशो-
त्पन्नाभिः, 'ईसणियाहिं' 'ईसिन' नामकोऽनार्यदेशस्तत्रोपन्नाभिः 'चारुडणियाहिं' चार-
किनिकाभिः, 'चारुकिनिक' देशविशोत्पन्नाभिः, 'लासियाहिं' लासिकाभिः=लासकदेशो

पायच्छित्ताओ) स्नान करके कौतुक तथा बलिकर्म से निवृत्त होकर, (सव्वा-लकार-विभू-
सियाओ) एव समस्त अलकारों को धारण कर (बहूहिं खुज्जाहिं चिलाईहिं) अनेक
कुबडी दासियों से, अनेक किरातिनियों-किरात देशमें उत्पन्न दासियों से, (वामणीहिं) अनेक
वामनियोंसे-जिनका शरीर अत्यंत ह्रस्व-ओटा था ऐसी दासियों से, (बडभीहिं) अनेक बट-
भियों-जिनकी कमर निरकुल झुक गई थी ऐसी दासियों से, (बव्वरीहिं) बर्वर देशोद्भव
अनेक दासियों से, (वउसियाहिं) बकुग देश की दासियों से, (जोणियाहिं) यूनान देश
की दासियों से, (पल्लवियाहिं) अनेक पल्लविकाओं-पल्लवदेश की दासियों से, (ईसणि-
याहिं)-इसिन नाम का एक अनार्यदेश है इस देश की दासियों से, (चारुडणियाहिं)
चारुकिनिक देश की दासियों से, (लासियाहिं) लासकदेश की दासियों से, (लउसियाहिं)

निवृत्त थपने (सव्वालकारविभूसियाओ) तेमज्ज सर्व अलकाराने धारण
करीने (बहूहिं खुज्जाहिं चिलाईहिं) अनेक कुबडी दासीओथी, अनेक किरा
तीओ-किरात देशमा उत्पन्न थयेली दासीओथी, (वामणीहिं) अनेक वाम-
निओ-नेना शरीर अत्यंत नाना-(ठी गण्णु) हुता येवी दासीओथी,
(बडभीहिं) अनेक बटणीओ-बेमनी कमर छेक वणी गध हुती येवी
दासीओथी (बव्वरीहिं) बर्वर-देशोत्पन्न अनेक दासीओथी, (वउसियाहिं)
बकुश देशनी दासीओथी, (जोणियाहिं) यूनान देशनी दासीओथी,
(पल्लवियाहिं) अनेक पल्लविकाओ-पल्लव देशनी दासीओथी, (ईसि-
णियाहिं) इसिन नामने अनेक अनार्य देश छे ते देशनी दासीओथी,
(चारुडणियाहिं) चारुकिनिक देशनी दासीओथी, (लासियाहिं) लासक देशनी
दासीओथी, (लउसियाहिं) लउशदेशनी दासीओथी (सिंहलीहिं) सिंहल देशनी

लासियाहिं लउसियाहिं सिंहलीहिं दमलीहिं, आरवीहिं पुलि-
दीहिं पक्कणीहिं वहलीहिं मरुंडीहिं सवरीहिं पारसीहिं णाणादे-
सीहिं विदेस-वेस-परिमंडियाहिं इंगिय-चितिय-पत्थिय-
वियाणियाहिं सदेसणेवत्थ-ग्गहिय-वेसाहिं चेडिया-चक्कवाल-व-

त्पन्नामि, 'लउसियाहिं' लकुगिफामि = लकुगदेशोत्पन्नामि, 'सिंहलीहिं' सिंहलीमि =
सिंहलदेशोत्पन्नामि 'दमिलीहिं' द्रविडीमि = द्रविडदेशोत्पन्नामि, 'आरवीहिं' आरवीमि =
अरबदेशोत्पन्नामि, 'पुलिदीहिं' पुलिदीमि = पुलिन्ददेशोत्पन्नामि, 'पक्कणीहिं' पक्कणीमि =
पक्कणदेशोत्पन्नामि, 'वहलीहिं' वहलीमि = वहलनामकोऽनार्यदेशोत्पन्नामि, 'मुरुंडीहिं'
मुरुण्डामि = मुरुण्डदेशोत्पन्नामि, 'सवरीहिं' शवरीमि = शवरदेशोत्पन्नामि, 'पारसीहिं' पार-
नामि = पारसदेशोत्पन्नामि, किरातादय सर्वेऽनार्यदेशा, 'णाणादेसीहिं' नानादेशीयाभि, 'वि-
देस-वेस-परिमंडियाहिं' विदेश-वेप-परिमण्डतामि = विविध-देशपरिमण्डनयुक्तामि, 'इंगिय-
चितिय-पत्थिय-वियाणियाहिं' इङ्गित-चिन्तित-प्रार्थित विज्ञामि, इङ्गितम् = अभिप्रायानुरूप-

लकुगदेश की दासियों से, (सिंहलीहिं) सिंहलदेश की दासियों से, (दमिलीहिं) द्रविड-
देश की दासियों से, (आरवीहिं) अरबदेश की दासियों से, (पुलिदीहिं) पुलिन्ददेश की
दासियों से, (पक्कणीहिं) पक्कणदेश की दासियों से, (वहलीहिं) वहल नाम के अनार्य देश
की दासियों से, (मुरुडिहिं) मुरुण्डदेश की दासियों से, (सवरीहिं) शवरदेश की दासियों
से, (पारसीहिं) पारसदेश की दासियों से, (ये किरात आदि जितने भी देश हैं वे सब
अनार्य देश हैं) इन (णाणादेसीहिं) अनेक देश की दासियों, जो (विदेस-वेस-
परिमंडियाहिं) विदेशी वेप भूषा से सज्जित थीं, (इंगिय-चितिय-पत्थिय-वियाणियाहिं)
इंगित को अर्थात् अभिप्राय के अनुरूप चेष्टा को, चिन्तित को अर्थात् मनोगत भावको,

दासीओथी, (दमिलीहिं) द्रविड देशनी दासीओथी, (आरवीहिं) अरब देशनी
दासीओथी (पुलिदीहिं) पुलिड देशनी दासीओथी (पक्कणीहिं) पक्कण देशनी
दासीओथी, (वहलीहिं) वहल नामना अनार्य देशनी दासीओथी, (मुरुडीहिं)
मुरुड देशनी दासीओथी, (सवरीहिं) शवर देशनी दासीओथी, (पारसीहिं)
पारस देशनी दासीओथी, आ किरात आदि जेटला देश छे ते गधा अनार्य
देश छे, आ (णाणादेसीहिं) अनेक देशनी दासीओ जे (विदेस-वेस-परि-
मंडियाहिं) विदेशी वेप भूषाथी सज्जित छती, (इंगिय-चितिय पत्थिय वियाणियाहिं)
इंगितने जेटले अभिप्रायने अनुरूप चेष्टाने, चिन्तितने जेटले मनोगत भावने,

रिसवर-कंचुइज्ज-महत्तर-वंद-परिक्खत्ताओ अंतेउराओ णिग्गच्छन्ति, णिग्गच्छत्ता जेणेव पाडियक्कजाणाडं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छत्ता पाडियक्कपाडियक्काडं जत्ताभिमुहाड जुत्ताड जाणाडं दुरू-

चेष्टितम्, चित्तित=मनोगत, प्रार्थितम्=अभिलषित तथा विज्ञाभि, 'सदेस-णेवत्थ-ग्गहिय-वेसाहिं' स्वदेश-नेपथ्य-गृहीत-वेपाभि-रदेशस्य यानि नेपथ्यानि=वस्त्रभूषण धारणरीतय, तैर्गृहीता वेपा यामि तास्तथा तामि, 'चेडिया-चक्रवाल-वरिसवर-कंचुइज्ज-महत्तर-वंद-परिक्खत्ताओ' चेटिका-चक्रवाल-वर्षवर-कञ्चुकीय-महत्तर-वृद्ध-परिक्षिता-चेटिकाना=दासीना चक्रवाल मण्डलम्, वर्षवरा=कलीना, कञ्चुकीया=अन्त-पुरवहि प्रदेशरक्षका, तदन्ये ये महत्तरा=प्रामाणिका अन्त पुररक्षका, तथा यद् वृन्द तेन परिक्षिता=परिवेष्टिता यास्तास्तथा सुभद्राप्रमुखा द्वेष्यो=राध्य 'अतेउराओ णिग्गच्छति' अन्त पुरात्-स्त्रीगृहनिर्गच्छन्ति, 'णिग्गच्छत्ता' निर्गम्य, 'जेणेव पाडियक्कजाणाड' यत्रैव प्रयेकयानानि=पृथक् २ यानानि सन्ति, तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागम्य 'पाडियक्क-पाडि-

प्रार्थित को अर्थात्-अभिलषित को जानने में विज्ञ थीं, (सदेस-णेवत्थ-ग्गहिय-वेसाहिं) अपने २ देश की रीति के अनुसार वेपभूषा धारण की हुई थीं, ऐसी इन विदेशी दासियों से, तथा-(चेडिया-चक्रवाल-वरिसवर-कंचुइज्ज-महत्तर-वंद-परिक्खत्ताओ) विदेशी दासियों से मिन दासियों के समूह से, वर्षवरा से-नपुसकों से, कञ्चुकीयों से तथा और भी अन्य प्रामाणिक अन्त पुर रक्षकों से परिक्षित-घिरी हुई होकर (अतेउराओ णिग्गच्छति) अत पुर से निकलीं, (णिग्गच्छत्ता) निकलकर (जेणेव पाडियक्कजाणाड) जहा अपने २ योग्य अलग २ यान रखे हुए थे, (तेणेव उवागच्छति) वहा पर पहुँचीं, (उवागच्छत्ता पाडियक्कपाडियक्काड जत्ताभिमुहाडं जुत्ताडं जाणाडं दुरूहति) पहुँच कर उन पृथक् २

प्रार्थितने अष्टवे अबिलाषाने बहूनि वेवामा निपुणुं हुती, (सदेसणेवत्थ-ग्गहियवेसाहिं) जेओजे पोतपोताना देशनी रीत प्रभाणु वेप धारणु करेले हुती ओथी आ विदेशी दासीओथी, तथा (चेडिया-चक्रवाल-वरिसवर-कंचुइज्ज-महत्तर-वंद-परिक्खत्ताओ) विदेशी दासीओथी बुढी दासीओना समूहथी, तथा वर्षवर-नपुसकोथी, वञ्चुकीओथी, तथा नील पणु प्रामाणिक अत पुररक्षकोथी परिक्षित-वीटाओथी षनीने (अतेउराओ णिग्गच्छति) अत पुरथी नीडणी, (णिग्गच्छत्ता) नीडणीने (जेणेव पाडियक्कजाणाड) न्या पोतपोताने योग्य बुढा बुढा यान (वाडने) राधवामा आव्या हुता (तेणेव उवागच्छति) त्या पडोथी (उवागच्छत्ता पाडियक्कपाडियक्काडं जत्ताभिमुहाडं जुत्ताडं जाणाडं दुरू

हंति, दुरुहिता णियग-परियाल सद्धिं संपरिवुडाओ चंपाए
णयरीए मज्झमज्झेणं णिग्गच्छंति, णिग्गच्छित्ता जेणेव पुण्ण-
भदे चेइए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणस्स भगव-
ओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्तादीए तित्थयराइसेसे पासंति,

यक्काइ' प्रयेरुप्रत्येकानि=पृथक् २ कल्पितानि 'जत्ताभिमुहाड जुत्ताइं जाणाइं'-यात्रा-
भिमुरगानि युक्तानि यानानि-यात्राभिमुरगानि=भगवद्दर्शनार्थगमनाय सञ्जितानि युक्तानि=वली-
वर्दं योजनानि, यानानि=स्थान 'दुरुहति' अधिरोहति, 'दुरुहिता' अरिख्य, 'णियग-
परियाल सद्धिं' निजरुपरिवारै सार्द्धम्, 'संपरिवुडाओ' सन्परिवृता=समन्ताद्वेष्टिता,
चम्पाया नगर्या मध्यमन्थेन, 'णिग्गच्छति' निर्गच्छन्ति, 'णिग्गच्छित्ता' निर्गत्य, 'जेणेव
पुण्णभदे चेइए तेणेव उवागच्छति' यत्रैव पूर्णभद्रं चैव तत्रैवोपागच्छन्ति, 'उवागच्छित्ता
समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते' उपागय श्रमगतस्य भगवतो महावीरस्या-
दूरसमीपे 'छत्तादीए तित्थयराइसेसे' उत्रादिकान् तीर्थंकरातिशेषान्=तीर्थंकरातिशयान्

यानों पर, जो भगवान के दर्शन के लिये ले जाने के निमित्त पहिले से सञ्जित कर रखे
हुए एव वलीवर्द आदिकों से युक्त थे, समार हुई । (दुरुहिता णियग-परियाल सद्धिं)
समार होकर अपने २ परिवारों के साथ (संपरिवुडाओ) परिवेष्टित होती हुई वे सब देविया
(चंपाए णयरीए मज्झमज्झेणं) चंपा नगरी क ठीक बीच बीच के मार्ग से होकर
(णिग्गच्छति) निकलीं, (णिग्गच्छित्ता) निकलकर (जेणेव पुण्णभदे चेइए तेणेव
उवागच्छंति) जिस ओर पूर्णभद्र चैय (उद्यान) था, उस ओर आयीं, (उवागच्छित्ता)
आकर (समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्तादीए तित्थयराइसेसे
पासंति) उन्होंने श्रमग भगवान् महावीर से कुछ दूर पर रहे हुए तीर्थंकरों के अतिशय

हृत्ति) पड़े। नीने ते णुहा णुहा यानो-स्थै पर ते भगवानना दर्शने लक्ष ऋचा
भाटे पड़े। थी तैयार करी राधवाभा आया हुता तेभण भणदो जेडी
राधेला हुता तेभा गेडा, (दुरुहिता णियग-परियाल सद्धिं) भेसीने पौतपौताना
परिवारनी साथे (संपरिवुडाओ) युक्त थधने ते भधी देवीये (चंपाए णयरीए
मज्झमज्झेणं) य पानगरीना भरोअर वन्थे-वन्थना भागे थधने (णिग्गच्छति)
नीडणी, (णिग्गच्छित्ता) नीडणीने (जेणेव पुण्णभदे चेइए तेणेव उवागच्छंति) ते त२३
पूषुंभद्र चैत्य (उद्यान) हुत ते त२३ आयी, (उवागच्छित्ता) आयीने (समण-
स्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्तादीए तित्थयराइसेसे पासंति) तेभण्णे

पासित्ता पाडियक्कपाडियक्काइं जाणाइं ठवेंति, ठवित्ता जाणेहितो पच्चोरुहन्ति, पच्चोरुहित्ता, वहूहिं खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ताओ जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छन्ति;

‘पासंति’ पश्यन्ति, ‘पासित्ता’ दृष्ट्वा, ‘पाडियक्क पाडियक्काइं जाणाइं ठवेंति’ प्रयेकप्रयेकानि यानानि स्थापयन्ति, स्थापयित्वा, ‘जाणेहितो पच्चोरुहन्ति’ यानेभ्य प्रयवरोहन्ति=अवतरन्ति, ‘पच्चोरुहित्ता’ प्रत्यवरुत्वा, ‘वहूहिं खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ताओ’ बहूहिं कुञ्जिकाभियाव परिक्खिता =परिवेष्टिता, यावच्छब्दापूर्वोक्ता निविधदेशजातिसमुद्भूता ग्राह्या, ‘जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छन्ति’ यत्रैव श्रमणो भगवान् महावीरस्तत्रैवोपागच्छन्ति, ‘उवागच्छित्ता’ उपागत्य ‘समण भगव महावीरं पंचविहेण अभिगमेणं अभिगच्छन्ति’ श्रमण भगवन्त महावीर पञ्चविधेनाऽभिगमेनाभिगच्छन्ति, पञ्चविधमभिगमन स्फुटीकरोति—‘त जहा’ तद्यथा

स्वरूप छत्रादिको को देसा, (पासित्ता) देस कर उन सबोने (पाडियक्कपाडियक्काइं जाणाइं ठवेंति) अपने २ (पृथक् २) यानों को रोक दिया और वे (जाणेहितो पच्चोरुहन्ति) उन यानों से नीचे उतरतीं, (पच्चोरुहित्ता) उतर कर (वहूहिं खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ताओ जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छन्ति) उन अनेक कुञ्जादिक दासियों से परिवृत्त होती हुई वे जहा श्रमण भगवान् महावीर थे वहा पर आर्यां, (उवागच्छित्ता) आकर उन्होंने ने (समण भगवं महावीर पंचविहेण अभिगमेणं अभिगच्छन्ति) प्रभु के निकट जाने के लिये पांच प्रकार के अभिगमनों को अच्छी तरह धारण किया। वे पाँच प्रकार के अभिगमन ये हैं—(सच्चित्ताण दव्वाण विओसरणयाए, अच्चित्ताण दव्वाण अवि

श्रमणु लगवान महावीरथी जरा इर रडेवा तीर्थं कथेना अतिशय स्वउप छत्रादिङ्केने नेथा, (पासित्ता) नेधने अधी (पाडियक्कपाडियक्काइं जाणाइं ठवेंति) पोतपोताना (जुहा जुहा) यानो-स्थाने रेकी हीधा, अने तेओ (जाणेहितो पच्चोरुहन्ति) ते यानोभाथी नीचे उतरती, (पच्चोरुहित्ता) उतरतीने (वहूहिं खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ताओ जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छन्ति) ते अनेक कुण्ड आदिक दासीओना परिवार सहित न्या श्रमणु लगवान महावीर उता त्या आवी, (उवागच्छित्ता) आवीने तेओओ (समण भगव महावीर पंचविहेण अभिगमेण अभिगच्छन्ति) प्रभुनी पासो जवा भाटे पाथ प्रकारना अभिगमनोने मारी शीते धारणु कथा ते पाथ प्रकारना अभिगमन आ छे—(सच्चित्ताण दव्वाण

तंजहा-१ सचित्ताणं द्वाणं विओसरणयाए, २-अचित्ताणं द्वाणं अविओसरणयाए, ३-विणओणयाए गायलट्टीए, ४-चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेणं, ५-मणसो एगत्तीभावकरणेणं समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपायाहिणं करेति,

‘सचित्ताण द्वाण विओसरणयाए’ सचित्ताना द्रव्याणा व्युसर्जनतया-सचित्तद्रव्य-त्यागन, १, ‘अचित्ताण द्वाण अविओसरणयाए’ अचित्ताना द्रव्याणामव्युसर्जन-तया-अचित्तद्रव्याणा=वत्त्वाभरणादीनामपरित्यागेन २, ‘विणओणयाए गायलट्टीए’ विनयावनतया गात्रयष्ट्या ३, ‘चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेण’ चक्षुस्पर्शेऽञ्जलिप्रग्रहेण=श्रीरर्धमाने महारारे चक्षुर्निपये सति अञ्जलिविरचनेन ४, ‘मणसो एगत्तीभावकरणेणं’ मनस एकत्रीभावकरणेन-मनस =चित्तस्य एकत्रीभावरूपेण-एकरूपेण=भगवद्विषये स्थिरीकरणेन ५, एतद्रूपेण पञ्चप्रकारेण अभिगमेन, ‘समण भगव महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपायाहिणं करेति, करित्ता वदति णमसति, वदित्ता णमसित्ता’ श्रमणस्य

ओसरणयाए, विणओणयाए गायलट्टीए, चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेण, मणसो एगत्ती-भावकरणेण) सचित्त द्रव्यों का परित्याग करना-प्रभु के दर्शन करने के लिये जाते समय अपने पास सचित्त वस्तुओं को नहीं रखना, अचित्तवत्त्वादिकों का त्याग नहीं करना, विनय से अवनत गात्र-शरीर होना-विनयभार से नम्रीभूत होना, प्रभु के दिखते ही दोनों हाथों को जोड़ना, एवं प्रभु की भक्ति में मन को एकाग्र करना। इन पांच अभिगमनों से युक्त सपरिवार उन रानियों ने (समणं भगव महावीरं तिक्खुत्तां आयाहिणपायाहिणं करेति) श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिणप्रदक्षिण क्रिया, (करित्ता वदति नमसति)

विओसरणयाए, अचित्ताण द्वाण अविओसरणयाए, विणओणयाए गायलट्टीए, चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेण, मणसो एगत्तीभावकरणेण) सचित्त द्रव्योंको परित्याग करवे-प्रभु दर्शन करवा भाटे जाती वपते पोतानी पासे सचित्त वस्तुओं न राखवी १, अचित्त वत्त्वादिओंको त्याग करवे २, विनयथी नभावेत्त गात्र-शरीर राखवु-विनयभारथी नम्रीभूत थवु ३, प्रभुने नेताज्ज पन्ने हाथ नेउवा ४, तेभज्ज प्रभुनी लक्षिताभा भनने ज्येकाथ करवु ५, आ पाय अलि-गभनेथी युक्त सपरिवार ते राणीओओ (समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आया-हिणपायाहिणं करेति) श्रमण भगवान महावीरने त्रयवार आदक्षिणप्रदक्षिण क्रिया, (करित्ता वदति णमसति) पत्नी वदना तेभज्ज नमस्कार उथा,

करिता वंदंति णमंसंति, वंदिता णमंसिता कृणियरायं पुरओ
कट्टु ठिइयाओ चैव सपरिवाराओ अभिमुहाओ विणएणं पंज-
लिउडाओ पज्जुवासंति ॥ सू० ५५ ॥

मूलम्—तए णं समणे भगवं महावीरे कृणियस्स
रण्णो भंभसारपुत्तस्य सुभद्वापमुहाणं देवीणं तीसे य महइमहा-

भगवतो महावीरस्य त्रिकुत्व आदक्षिणप्रदक्षिण कुर्वन्ति, कृत्वा वन्दन्ते नमस्यन्ति, वदित्वा
नमस्यित्वा, 'कृणियराय पुरओ कट्टु ठिइयाओ चैव' कृणिकराज पुरत कृत्वा स्थिता एव
'सपरिवाराओ' सपरिवारा—परिजनसमेता, 'अभिमुहाओ' अभिमुहा भगवद्दृष्टिपथे,
'विणएणं पजलिउडाओ पज्जुवासति' विनयेन प्राञ्जलिपुटा = कृताञ्जलिपुटा पर्युपासते
॥ सू० ५५ ॥

'तए णं' इत्यादि । 'तए ण' तत = द्वादशविधपरिपदुपस्थितिसमनन्तर खल्ल
'समणे भगव महावीरे' श्रमणो भगवान् महावीर 'कृणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स'
कृणिकस्य राजो भंभसारपुत्तस्य 'सुभद्वापमुहाण देवीणं' सुभद्राप्रमुखिणा देवीनाम्—तीसे

पश्चात् वदना एव नमस्कार क्रिया, (वदित्ता णमंसिता कृणियराय पुरओ कट्टु ठिइ-
याओ चैव सपरिवाराओ अभिमुहाओ विणएण पजलिउडाओ पज्जुवासंति) वंदना
नमस्कार कर चुकने के बाद फिर वे, कृणिक राजा को आगे कर के खड़ी खड़ी विनयपूर्वक
हाथ जोड़ कर भगवान की सेवा करने लगीं ॥ सू. ५५ ॥

'तए ण' इत्यादि ।

(तए ण) बारह प्रकार के परिपद जम जाने पर (समणे भगव महावीरे)
श्रमण भगवान् महावीर ने (कृणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स) भंभसार अर्थात् श्रेणिक

(वदित्ता णमंसिता कृणियराय पुरओ कट्टु ठिइयाओ चैव सपरिवाराओ अभिमुहाओ
विणएणं पजलिउडाओ पज्जुवासति) वंदना नमस्कार करी लीधा पछी वणी ते
कृणिक राजने आगण करीने उली उली विनयपूर्वक हाथ जोडीने भगवाननी
सेवा करवा लागी (सू. ५५)

"तए ण" इत्यादि

(तए ण) बार प्रकारनी परिपद लराध जता (समणे भगव महावीरे) श्रमण
भगवान भडावीरे (कृणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स) ललसार अर्थात् श्रेणिक

लियाए परिसाए इसिपरिसाए मुणिपरिसाए जइपरिसाए देव-
परिसाए अणेगसयाए अणेगसयवंदाए अणेगसयवंदपरिवाराए

य महइमहालियाए' तस्याध महातिमहत्या 'परिसाए' परिपट =समाया, 'इसिपरिसाए'
ऋषिपरिपट -ऋषन्ति=जानन्ति अवधिजानाद्विनेति ऋषय -अतिगयजानयन्त, तेषा परिपत्-
सभा तस्या, 'मुणिपरिसाए' मुनिपरिपट -मुणन्ति-मन्यन्ते वा=प्रतिजानन्ति सर्वसावध-
व्यापारोपरतिम इति मुणयो-मुनयो वा-सर्वत्रिभक्तिमन्त, तेषा परिपत् तस्या मुणिपरिपटो,
मुनिपरिपटो वा, 'जइपरिसाए' यतिपरिपट -यतन्ते दशविधयनिधर्म इति यतय ।
तथा चोक्तम्—

एवं यः शुद्धयोगेन, परिस्थज्य गृहाऽऽश्रमान् ।

सयमे रमते नित्य, स यतिः परिकीर्तितः ॥ १ ॥

इति तेषा यतीना परिपट-तस्या, 'देवपरिसाए' देवपरिपट -देवाना=भवन-
पयाद्विचतुर्विधदेवाना परिपट-तस्या, 'अणेगसयाए' अनेकगताया -अनेकानि गतानि
यस्या साऽनेकगता तस्या, 'अणेगसयवंदाए' अनेकगतवृन्दाया =अनेकशतानि वृन्दानि=
समूहा यस्या साऽनेकगतवृदा तस्या, 'अणेगसयवंदपरिवाराए' अनेकशतवृन्दपरि-

के पुत्र कृष्णिक राजा को, तथा-(सुभद्रापमुहाण देवीण) सुभद्राप्रमुख राजरानियो को,
(तीसे य महइमहालियाए) तथा उस बडी भारी (परिसाए) सभा को, (इसि-
परिसाए) ऋषियों-अवधिज्ञान से पढायों को जानने वालों की सभा को, (मुणिपरिसाए)
मुनियों-सर्वसावध व्यापारों के मन वचन एव काय आदि से त्यागियों की सभा को,
(जइपरिसाए) गृहाश्रम का परित्याग कर जो मन, वचन, काय के शुद्धयोग से मयम
में अर्थात् दश प्रकार के यतिधर्म में नित्य यत्नवान होते हे वे यति है, उनकी सभा को,
(देवपरिसाए) भवनपति आदि चतुर्निर्काय के देवों की सभा को, (अणेगसयाए)
अनेकगतमन्ध्यावाली (अणेगसयवदाए) अनेकगत वृन्द (समूह) वाली (अणेग-

कना पुत्र कृष्णिक राजने, तथा-(सुभद्रापमुहाण देवीण) सुभद्रा-प्रमुख राजराणी
शोने (तीसे य महइमहालियाए) तथा ते गहु भोटी (परिसाए) सभाने, (इसि
परिसाए) ऋषिओ-अवधिज्ञानथी पढायोने जलुवावाजाओनी सभाने, (मुणि-
परिसाए) मुनिओ भवसावधव्यापारोने मन वचन तेभज जाया आदिथी
त्याग करनारनी सभाने, (जइपरिसाए) गृहस्थाश्रमने परित्याग करी ने मन,
वचन, कायना शुद्धयोगथी सयभभा अर्थात् दश प्रकारना यतिधर्मभा
नित्य यत्नवान रहे छे ते यति छे तेम ॥ सभाने, (देवपरिसाए) भवनपति
आदि चतुर्निर्कायना देवोनी सभाने, (अणेगसयाए) अनेक शत (सो) सभ्या-

ओहवले अइवले महव्वले अपरिमिय-वल-वीरिय-तेय-माह-
प्प-कंति-जुत्ते सारय-णवत्थणिय-महुर-गंभीर-कोंच-णि-

वाराया --अनेकगतवृद्ध परिवारे यस्या सा तथा तस्या, इयम्गताया विविधाया पण्डित,
अत्र कर्मग सम्बन्धमात्रविधाया पत्नी, 'ओहवले' ओषणत्र =अप्रतिवद्धवल्गाली, 'अ-
वले' अतिवल् =अतिशयवल्गान्, 'महव्वले' महावल् =अनुपमप्रशस्तशक्तिमान्, 'अप-
रिमिय-वल्-वीरिय-तेय-माहप्प-कंति-जुत्ते' अपरिमित-वल्-वीर्य-तेजो-माहात्म्य
कान्ति-युक्त, अपरिमितम्=अ यधिक वल्=शारीरिकम्, वीर्यं=जीवसम्भूतम्, तेजो=द्रामि,
माहात्म्यम्=प्रभाव, कान्ति =सौन्दर्यम्, तैर्युक्त, 'सारय-णव-त्थणिय-महुर-गंभीर-
कोंच-णिग्गोस-दुदुभि-रसरे' शारद-नय-स्तनित मधुर गम्भीर-कौञ्च-निर्घोष-दुन्दुभि-
स्वर -शारद=शम्कालिक यन्नवस्तनित-नवघनगर्जित तद्वन्मधुरो गम्भीरश्च तथा कौञ्चनि

सय-वंद-परिवाराए) अनेकगत-समूह-युक्त परिवार वाली उस सभा को, (अरहा)
अर्हत प्रभु (धम्म) श्रुतचारित्ररूप धर्म का (भासइ) उपदेश देते हैं-इस शाश्वत
नियम के अनुसार (अद्धमागहाए भासाए) अर्धमागधी भाषा द्वारा (धम्म) श्रुत
चारित्ररूप धर्म का (परिकहेइ) उपदेश दिया। भगवान् कैसे थे? सो कहते हैं-भगवान्
महावीर प्रभु (ओहवले अइवले महव्वले अपरिमिय-वल-वीरिय-तेय-माहप्प-
कंति-जुत्ते) अप्रतिवद्धवल्गाली थे। अतिशयबलिष्ठ थे। अनुपम-प्रशस्त शक्ति-वल्ग थे।
अपरिमित वल्, वीर्य, तेज, माहात्म्य एव कान्ति से युक्त थे। वल् से यहा पर शारीरिक
शक्ति का ग्रह हुआ है। वीर्य से जीव की असाधारण शक्ति का ग्रहण किया गया है।
प्रभाव का नाम माहात्म्य है, शारीरिक सुन्दरता का नाम कान्ति है। (सारय-णव-

वाणी (अणोगसययवन्ताए) अनेकगत वृद्ध (समूह) वाणी (अणोग सय वंद परिसाए)
अनेक-गत-समूह युक्त परिवारवाणी ते सलाने, (अरहा) अर्हत प्रभु (धम्म)
श्रुतचारित्ररूप धर्मने (भासइ) उपदेश आपे छे-आ शाश्वत नियमने अनु-
सरीने (अद्धमागहाए भासाए) अर्ध-मागधी भाषा द्वारा (धम्म) श्रुतचारित्र
रूप धर्मने (परिकहेइ) उपदेश आप्ये। भगवान् देवा हुता? ते उळे छे-भग-
वान् महावीर प्रभु (ओहवले, अइवले, महव्वले, अपरिमिय वल्-वीरिय तेय माह
प्प-कंति-जुत्ते) अप्रतिवद्ध वल्गाली हुता, अतिशय वल्गवान हुता अनुपम
प्रशस्त-शक्ति-स पन्न हुता अपरिमित वल्, वीर्य, तेज, माहात्म्य तेभज
शक्तिथी युक्त हुता वल्गथी अडी शारीरिक शक्तिने स अडु सभज्जु वीर्यथी
एवनी असाधारण शक्तिने अर्थ अडु छे प्रलापने अर्थ माहात्म्य
छे शारीरिक सुन्दरता अटले कान्ति छे (सारय-णव-त्थणिय-महुर-गंभीर-कोंच-

**घोस-दंढुभि-स्सरे उरे वित्थडाए कंठे वट्टियाए सिरे समाड-
ण्णाए अग्रलाए अम्मणाए सव्व-क्खर-सण्णिवाडयाए**

धोपवत्-कौञ्च = पक्षिविशेषस्तस्य मञ्जुलकृमनत्, दुन्दुभिस्वरवच्च स्वरो यस्य स तथा-शारदजलधरध्वनिवत् कौञ्चकृमनत् दुन्दुभिस्वरवन्मधुरगम्भीरदूरगामिध्वनियुक्त इत्यर्थ । 'उरे वित्थडाए' उरमि विस्तृतया-वक्षस्थलस्य विस्तीर्णत्वात् तत्र विस्तारमुपगतया, 'कंठे वट्टियाए' कण्ठे वृत्तया, स्वार्थे तल्, वृत्तया इत्यर्थ, ऋण्ठस्य वर्तुलत्वात् तत्र वृत्तरूपेण स्थितया, 'सिरे समाडण्णाए' शिरसि समाकीर्णया-शिरसि=मूर्द्धि समाकीर्णया=व्यापया, तत् 'अग्रलाए' अग्रलया=व्यक्तया-मूर्ध्नि परावृत्त्य चक्रमागय तान्वादि-तत्तत्स्थान प्राप्य वर्णसमुदायस्वरूप प्राप्तया इति भाव, 'अम्मणाए' अमन्मनया=वर्ण-पदवैकन्यरहितया, 'सव्वक्खरसन्निवाडयाए' सर्वाक्षरसन्निपातिकया-सर्वे अक्षरसन्नि-पाता=वर्ण-योगा सन्ति यस्या सा तथा-सकलवाङ्मयस्वरूपा तया, भगवत् सर्वज्ञतया सर्वार्थिनाचक्रगन्धप्रयोगकरणादिति भाव, 'पुण्णरत्ताए' पूर्णरक्तया-पूणा=स्वरकलादि-

त्यणिय-महुर-गभीर-कौञ्च-णिग्गोस-दुदुभि-रसरे) भगवान् क्री ध्वनि शरत्कालीन नवीन मेघ की गर्जना जैसी मधुर एव गभीर थी । तथा कौचपक्षी के मञ्जुल निर्घोष की तरह मीठी एव दुदुभि के स्वर की तरह बहुत दूर तक जानेवाली थी । (उरे वित्थडाए) वक्षस्थल के विस्तीर्ण होने से वहाँ पर विस्तार को प्राप्त हुई ऐसी (कंठे वट्टियाए) कण्ठ के वर्तुल होने के कारण वहाँ पर गोलरूप से स्थित, (सिरे समाडण्णाए) मस्तक में व्याप्त, (अग्रलाए) मस्तक से चक्ररूप में आकर उन २ तान्वादिस्थानों में प्राप्त होकर वर्णसमुदायस्वरूप को प्राप्त, अत एव स्पष्ट उच्चारणवाली, (अम्मणाए) मण-मण शब्द से रहित अर्थात् वर्ण पद की विकलता से रहित, (सव्वक्खरसण्णिवाडयाए) सकलवाङ्मयस्वरूप-समस्त अक्षरों के योगवाली-सकल

णिग्गोस-दुदुभि-स्सरे) भगवान्को ध्वनि, शरद कालीना नवीन मेघनी गर्जना जैसा मधुर तेमज गभीर होय तेवो डतो तथा कौच पक्षीना मञ्जुल निर्घोषना जैसा मीठी तेमज दुदुभिना स्वरना जैसा षड्दु इर सुधी जय तेवो डतो (उरे वित्थडाए) वक्षस्थल विस्तीर्ण (पडोणु) होवाथी त्या विस्तारने प्राप्त थयेथी, (कंठे वट्टियाए) कंठ गोल होवाना जखे त्या गोल रूपथी स्थित, (सिरे समाडण्णाए) मस्तकमा व्याप्त, (अग्रलाए) मस्तकथी वक्ररूपमा आवी ते ते तालु आदिक स्थान प्राप्त करी वर्णसमुदायस्वरूपने प्राप्त होवाथी स्पष्ट उच्चारणवाणी, (अम्मणाए) मण-मण शब्द रहित अर्थात् वर्ण तेमज पदनी विकलतायी रहित (सव्वक्खर-सण्णिवाडयाए) सकल वाङ्मयस्वरूप समस्त अक्ष-

पुण्णरत्ताए सव्वभासाणुगामिणीए सरस्सईए जोयणणीहा-
रिणा सरेणं अद्धमागहाए भासाए भासइ, अरिहा धम्मं
परिकहेइ । तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं अगिलाए धम्मं
आइक्खइ, सावि य णं अद्धमागहा भासा तेसिं सव्वेसिं आरिय-

भिरुपपत्ता रक्ता च गेयरागण मालकोणारयेन युक्ता च तथा, 'सव्वभासाणुगामिणीए'
सर्वभाषानुगामिन्या=सर्वभाषापरिणमनशील्या, 'सरस्सईए' सरस्वत्या=वाण्या, 'जोय-
णणीहारिणा' योजननिर्हारिणा=योजनप्रमाणदूरगामिना 'सरेणं' स्वरेण=ध्वनिना, अद्ध-
मागच्या भाषया भाषते । 'अरिहा धम्मं परिकहेइ' अर्हन् धर्मं परिकथयति । 'तेसिं
सव्वेसिं आरियमणारियाण' तेषा सर्वेषामायाऽनार्याणाम्-आयाणाम्=आर्यदेशोत्पन्नानाम्,
अनार्याणाम्=अनार्यदेशोत्पन्नानाम्, 'अगिलाए' अलायन्=गलानिरहितो 'धम्मं' धर्मं=श्रुत-
चारित्रलक्षणम्, 'आइक्खइ' आरयति=कथयति । 'सावि य अद्धमागहा भासा' साऽपि
च अद्धमागधी भाषा-प्राकृतभाषालक्षणहुत्वा, 'तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाण' तेषा

भाषामय, (पुण्णरत्ताए) स्वर एव कल्यादिको से उत्पन्न तथा मालकोण नामक गेयराग
से युक्त, (सव्वभासाणुगामिणीए) और सर्वभाषापरिणमनस्वभाववाली ऐसी
(सरस्सईए) सरस्वती-वाणी से, जो (जोयणणीहारिणा) एक योजन तक दूर
जाने वाले स्वर से युक्त थी और जिसका दूसरा नाम अर्धमागधी भाषा था, (तेसिं
सव्वेसिं आरियमणारियाण अगिलाए धम्मं आइक्खइ) उन समस्त आर्यदेशोत्पन्न
एव अनार्यदेशोत्पन्न मानवों को श्रुतचारित्र रूप धर्म का विना किसी खेद के प्रभु ने
उपदेश दिया । (सा वि य ण अद्धमागहा भासा तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं
अप्पणो सभासाए परिणामेण परिणमइ) प्रभु ने जिस अर्धमागधी भाषा द्वारा उन

शैना स यो गवाणी-सकलभाषामय, (पुण्णरत्ताए) स्वर तेभव कलादिकेऽथी उत्पन्न
मालकोश नामक गेयरागधी युक्त, (सव्वभासाणुगामिणीए) सर्वभाषा-परिलुभन-
स्वभाववाणी श्रेणी (सरस्सईए) सरस्वती-वाणीधी, के ने (जोयणणीहारिणा) श्रेष्ठ
योजन सुधी दूर गत्य तेषा स्वरथी युक्त हुती तथा नेतु पीणु नाम अर्ध
मागधी भाषा हुतु, (तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं अगिलाए धम्मं आइक्खइ)
ते समस्त आर्य-अनार्य-देशोत्पन्न मानवोंने श्रुतचारित्र रूप धर्मको कथं पणु
श्रेष्ठ विना प्रभुश्रेष्ठ उपदेशे आश्रये। (सा वि य ण अद्धमागहा भासा तेसिं सव्वेसिं
आरियमणारियाणं अप्पणो सभासाए परिणामेण परिणमइ) प्रभुश्रेष्ठ ने अर्धमागधी

मणारियाणं अप्पणो सभासाए परिणामेणं परिणमइ । तंजहा-
अत्थि लोए, अत्थि अलोए, एवं जीवा अजीवा वंधे मोक्खे पुण्णे

सर्वेषाम् आर्यागमनार्यागाम्, 'अप्पणो' आमन = स्वस्य, 'सभासाए' स्वभाषाया, 'परि-
णामेणं परिणमइ' परिणामेन परिणमति, यादृश धर्मं कथयति तद्वर्जयति—'तं जहा' तद्यथा-
'अत्थि लोए' अस्ति लोक —इत्यादि 'सफले कल्लणपावए' इत्यन्तो ग्रन्थो धर्मस्वरूप-
प्रदर्शक । लोक —पञ्चास्तिकायमय । 'अत्थि अलोए' अस्यलोक —अलोक =केवलकाश-
रूप —एतयोरस्तित्वाभिधानं शून्यवादनिरासार्थम् । 'एव जीवा' "अत्थि जीवा" सन्ति
जीवा —जीवा =उपयोगलक्षणा । इदं नास्तिकमतनिराकरणार्थम् । 'अस्ति अजीवा' सन्ति
अजीवा =जडलक्षणा, एतत्कथनमद्वैतवादनिराकरणार्थम् । 'अत्थि वणे' अस्ति वन्ध —

समस्त आर्य और अनार्यों को श्रुतचारित्ररूप धर्म का उपदेश दिया वह प्रभु की भाषा,
उन समस्त आर्य-अनार्यों की अपनी २ भाषा में परिणमित होने के स्वभाववाली थी ।
भगवान् ने जिस तरह धर्म का उपदेश दिया सूत्रकार उसे यहा प्रकट करते हैं—

(अत्थि लोए) पच—अस्तिकायमय यह लोक अस्ति-स्वरूप है । (अत्थि अलोए)
केवल आकाशस्वरूप अलोक भी अस्तिस्वरूप है । लोक और अलोक में अस्तित्वस्वरूपता
का कथन बौद्धों द्वारा समत शून्यवाद के निराकरण करने के लिये जानना चाहिये ।
(एवं जीवा) इसी तरह उपयोगलक्षणवाला जीव भी अस्तित्वविशिष्ट है । जीव में अस्ति-
त्वप्रियान नास्तिकमत के परिहारनिमित्त जानना चाहिये । (अजीवा) जिसका लक्षण जड
है ऐसा अजीव पदार्थ भी भावस्वभावविशिष्ट है । अजीव पदार्थ की सत्ता का वह निरू-
पण अद्वैतवाद के निराकरण के लिये जानना चाहिये । (वणे) जाव और कर्मोंका एवध

भाषा द्वारा ते समस्त आर्ये अने अनार्ये लोकेने श्रुतचारित्ररूप धर्मने।
उपदेश आये, प्रभुनी ते भाषा ते समस्त आर्ये अनार्येनी पोतपोतानी
भाषाभा परिष्ठाभ पामवावाणा (समन्वय तेवा)—स्वभाववाणी छती लगवाने
जेवी रीते धर्मने उपदेश दीधे ते अही सूत्रकार प्रकट करे छे—(अत्थि लोए)
पचअस्तिकायमय आ लोक अन्तिव्वरूप छे (अत्थि अलोए) केवल आकाश-
स्वरूप अलोके पण अन्तिव्वरूप छे लोक अने अलोकेभा अन्तिव्वरूपतातु
कथन गौद्धी द्वारा समत शून्यवादानु निराकरण करवा भाटे न्णेषु जेधस्सि
(एव जीवा) आ रीते उपयोगलक्षणवाणा एव पण अन्तित्व-विशिष्ट छे
एवभा अस्तित्वनु विधान नास्तिकमतना परिहारनिमित्त न्णेषु जेधस्से
(अजीवा) जेतु लक्षणं जड छे तेवा अएव पदार्थं पण भाव-स्वभाव-विशिष्ट
छे अएव पदार्थेनी सत्तातु आ निरूपण अद्वैतवादाना निराकरण (परिहार)

कर्मणा जीवसम्बधोऽस्ति, बधन बध = आमप्रदेशाना ज्ञानावर्णायदिकर्मपुद्गलाना च परस्पर क्षीरोदकवत् सम्बन्ध इत्यर्थ । एतन्नयन सात्त्यादिमतनिराकरणार्थम् । 'अस्ति मोक्षे' अस्ति मोक्ष = जीवस्य अखिलकर्मक्षयो मोक्ष सोऽस्ति । मरुत्कर्मणा क्षय = आमप्रदेशोऽपगम, तथासति सकलकर्मविमुक्तस्य ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणम्यामन स्वस्वरूपेऽवस्थान मोक्ष इत्यर्थ । सकलकर्मभयसमकालमेव औदारिकगरीरायन्तवियुक्तस्यास्य मनुष्य-जन्मन समुच्छेद, बन्धहत्वभावाद्योत्तरजन्मन पुनरप्राप्त्याव, आत्मा ज्ञानाद्युपयोगलक्षण

स्वरूप बध भी है । जिस प्रकार दूध और पानी का परस्पर एकक्षेत्रावगाहरूप मन्ध होता है उसी प्रकार ज्ञानावर्णाय आदि कर्मपुद्गल का आमप्रदेशों के साथ एक क्षेत्रावगाहरूप जो मन्ध है उसका नाम बध है । बध के अस्तित्व का विधान सदा आमा को एकान्त शुद्ध माननेवाले साख्य आदि की मान्यता को निराकरण करने के लिये जानना चाहिये । (मोक्षे) मोक्ष है । जब बध है तो उसके अयताभावस्वरूप जीव के समस्त कर्मोंका क्षयन्वरूप मोक्ष भी है । आत्मा जब समस्त कर्मों से विन्दुल रिक्त हो जाता है तब ज्ञानदर्शनरूप अपने स्वरूप में इसका शाश्वतिक अवस्थान हो जाता है । इसीका नाम आत्मा की मुक्ति है । मतलब इसका यह है कि आत्मा से जिस समय शुरुव्यान के प्रभाव से समस्त कर्मों का क्षय हो जाता है उसा समय इसके गृहीत औदारिक शरीर का अयन्त वियोग हो जाता है । इस औदारिक शरीरका अयन्त वियोग होना ही मनुष्यजन्मका समुच्छेद है । बन्ध के हेतुओंका अभाव होने से इस आत्मा को फिर उत्तरकाल में जन्मकी प्राप्ति होती नहीं है ।

भाटे लक्ष्मु जेधये (बधे) एव अने कर्मोना सपधन्वइय बध पक्षु छे जेनी रीते इध अने पाणीने परस्पर ऐकक्षेत्र-अवगाह इय सपध थाय छे तेज प्रकारे ज्ञानावर्णाय आदि कर्मपुद्गलाना आत्मप्रदेशोनी साथे ऐकक्षेत्रावगाह इय जे सपध छे तेनु नाम बध छे बधना अस्तित्वनु विधान, सदा आत्माने ऐकान्त शुद्ध मानवावाजा माथ्य आदिनी मान्यतानु निराकरण करवा भाटे लक्ष्मु जेधये (मोक्षे) मोक्ष छे ज्यारे बध छे त्यारे तेना अत्यत अलाप स्वइय-एवना समस्त कर्मोना क्षय स्वइय मोक्ष पक्षु छे आत्मा ज्यारे समस्त कर्मोधी गिलकुल रिक्त (मुक्त) थर्ध नय छे त्यारे ज्ञान-दर्शन-स्वइय चोताना स्वइयमा शाश्वतिक तेनु अवस्थान थर्ध नय छे आनु ज नाम आत्मानी मुक्ति छे जेनी मतलब जे छे के आत्माभाधी जे वधते शुक्लध्यानना प्रलापथी समस्त कर्मोना क्षय थर्ध नय छे तेज वधते तेनायी अक्षु ठरायेला औदारिक शरीरने अत्यत वियोग थर्ध नय छे आ औदारिक शरीरने अत्यत वियोग थयो जे ज मनुष्य जन्मने समुच्छेद छे बधना हेतुजोना अलाप थवाधी आ आत्माने उत्तरकालमा इरी जन्मनी प्राप्ति थती नथी आ भाटे आ आत्मा, चोताना-ज्ञान-दर्शन उप-

पावे आसवे संवरे वेयणा णिज्जरा अरिहंता चक्रवट्टी वलदेवा

केवल शुद्ध इयेपाऽवस्था मोक्ष इयान्ग्यायते इति भाव । 'अस्थि पुण्णे' अस्ति पुण्यम्-
पूयते=पवित्राक्रियते आत्मा अननेति, पुनाति आमानमिति वा पुण्य=शुभकर्म, 'पूज् पवने'
इत्यस्माद्वातो 'पूजो यण्णुक् ह्रस्वश्च' इयौगादिकर्मत्रेण मिद्धि, पुण्य हि न्सारपारावागे-
त्तरणे तरगिभूतम् । अननैर्यजनपशभिजनकुम्भोत्रिभोजनिजम्मादिप्रानिजायते । किं
बहुना तीर्थकरगोत्रमपि पुण्येनैव वच्यते, यो हि पुण्य सर्वथा ह्य मन्यमानस्तत् त्यजति,
असौ सनुपेभिततगिग्गिाऽप्रापपत्तीरो मन्व्यसमुद्र मज्जतमसीदति । 'अस्थि पावे' अस्ति
पापम्-पातयति=शुभपरिणामाद् ध्वसयत्यामानमिति पापम्, पापमेवाऽपचीयमान सुख जन-

इसलिये यह आमा अपने ज्ञानदर्शनोपयोगरूप स्वरभाव मे मग्न होता हुआ केवल शुद्ध अव-
स्थावाला हो जाता है । आमाकी इसी अवस्थाका नाम मोक्ष है । (पुण्णे) पुण्य है । आमा
जिसके द्वारा पवित्र किया जाय उसका नाम पुण्य है, अथवा जो आमा को पवित्र करे ऐसा
जो शुभकर्म है उसका नाम पुण्य है । यह पुण्यकर्म जीव को न्साररूप पारावार से पार
करने के लिये नौकास्वरूप है । दर्माके प्रभाव से आर्यदेश, उच्चकुल मे जन्म, बोधिबीज-
इत्यादि ममस्त उत्तमोत्तम वस्तु की प्राप्ति इस जीव को होती है । ज्यादा और क्या रहा
जाय ? तीर्थकरगोत्रकर्म का वध भी तो साक्षात् दर्सी पुण्य का फल है । जो व्यक्ति इस
पुण्य कर्म को सर्वथा ह्य समझकर उमका परित्याग कर देते हैं वे, जिसने दूसरे तीर को
प्राप्त किये बिना समुद्र के बीच म ही जहाज का परित्याग कर दिया है उस मनुष्यके-
समान है । (पावे) पाप है । जो इस जीव को शुभपरिणाम से गिरा देता है उसका
नाम पाप है । शक्र-पाप जन अपचीयमान होता जाता है तब इस जीव को सुख की

योगइप स्वभावमा भजन् गहीने, केवल शुद्ध अवस्थावाणे शर्व लय छे
आत्मानी आ अवस्थानु न नाम मोक्ष छे (पुण्णे) पुण्य छे आत्मा नेना
द्वारा पवित्र कराय तेनु नाम पुण्य छे अथवा ने आत्माने पवित्र करे जेवा
ने शुभ कर्म छे तेनु नाम पुण्य छे आ पुण्यकर्म एवने न्साररूप
पारावार (समुद्र)थी पार करवा भाटे छोडी रूप छे तेना प्रभाव वडे एवने
आर्य देश, उच्च कुलमा जन्म, बोधिबीज इत्यादि ममस्त उत्तमोत्तम
वस्तुनी प्राप्ति थाय छे वधारे भीणु शु कडेपु, तीर्थ करगोत्रकर्मनो वध
पणु साक्षात् जेन पुण्यकर्मनु इल छे ने व्यक्ति आ पुण्य कर्मने सर्वथा
ह्य समझने तेनो परित्याग करी दे छे तेजो नेम कोर्ष सामे जाठे पछोन्था
बिना न समुद्रनी वचमा वडाणुनो परित्याग करी हीजे जेवा मनुष्य जेवा छे
(पावे) पाप छे ने आ एवने शुभपरिणामथी पाडी दे छे तेनु नाम पाप
छे शक्र-पाप न्यारे अपचीयमान (स्वल्प) वरु लय छे त्यारे आ एवने

યતિ, ઉપચીયમાન તદેવ દુઃખ જનયતિ ન પુણ્ય પૃથગસ્તિ, અથવા પુણ્યમેવોપચાયમાન સુખ જનયતિ, તદેવાપચીયમાન દુઃખ જનયતિ, ન પાપ વિચિતે—દ્યેવવાદિમતાનિરાકરણાર્થે પુણ્યપાપયો પૃથગભિધાનમ્, કેવલૈકસ્વભાવવાદિનિરાસાર્થે વા સર્વેષા પૃથક્ પૃથગુક્તિ । ‘અતિથિ આસવે’ અસ્યાન્નત્ર -આ=સમન્તાત્ સ્તવતિ=પ્રવિગતિ આમનિ જ્ઞાનાવરણીયાદષ્ટવિધં કર્મ યેન સ આસ્રવ, આશ્રય इतिच्छायापक्षे तु—આશ્રીયતે=સમુપાર્ચયતે કર્મ યેન સ, પૃષોદ્રરાદિત્વાદ યસ્ય વ, સર્વથા જીવતડાગે કર્મસલિલપ્રવેગાય નાલિકા-પ્રાપ્તિ હોતી છે એવ પાપ જન ઉપચીયમાન હોતા છે તન દુઃખ કી પ્રાપ્તિ હોતા છે, ઇસસે યહ નિર્કર્ષ નિકલતા છે કિ પાપ કે અપચય ઓર ઉપચય કે અધીન હી જીવો કો સુખ-દુઃખ કી પ્રાપ્તિ હોતી છે, અત સુખ કા કારણ પુણ્ય એવ દુઃખ કા કારણ પાપ ઇસ પ્રકાર સે દો સ્વતત્ર તત્વ માનના ઠીક નહીં છે, યા તો પુણ્ય હી માનો યા પાપ હી માનો, દોનો કો એક સાથ મત માનો । ઇસી તરહ પુણ્ય કા હાસ જન હોને લગતા છે તવ જીવો કો દુઃખ કો પ્રાપ્તિ હોતી છે ઓર જન પુણ્ય કા ઉપચય હોતા છે તન જીવો કો સુખકી પ્રાપ્તિ હોતા છે । ઇસ કથન સે મી યહી નિર્કર્ષ નિકલતા છે કિ સુખદુઃખ, પુણ્ય કે ઉપચય ઓર અપચય કે અધીન હીં । અત ઇન્કા કારણ ઉસકા હી ઉપચય એવ અપચય છે । ઇસસે યહ એક પુણ્ય તત્વ હી માનના ચાહિયે—સો એસા કહને વાલે વાદિયો કે મન્તવ્ય કો નિરાકરણ કે લિયે દોનો તત્વો કી સ્વતત્રરૂપ સે સત્તા પ્રતિપાદિત કી છે । અથવા જો વસ્તુકા એક હી સ્વભાવ માનતે છે ઊન વાદિયો કે મત કો નિરાકરણ કરને કે લિયે મિત્ર ૨ રૂપ સે સમસ્તપદાર્થો કા યહ નિરૂપણ હુઆ છે । (આસવે) આસ્રવ તત્વ છે । જિસકે કારણ સે જ્ઞાનાવરણીય

સુખની પ્રાપ્તિ થાય છે તેમજ પાપ ન્યારે ઉપચીયમાન (સચિત) થાય છે ત્યારે દુઃખની પ્રાપ્તિ થાય છે આથી એ નિષ્કર્ષ (સાર) નીકળે છે કે પાપના અપચય અને ઉપચયને આધાન જીવોને સુખ દુઃખની પ્રાપ્તિ થાય છે. આથી સુખનું કારણ પુણ્ય તેમજ દુઃખનું કારણ પાપ આ પ્રકારના એ સ્વતત્ર તત્વ માનવા ઠીક નથી કા તો પુણ્યને માનો અગર તો પાપને માનો બન્નેને એક સાથે ન માનો આવી રીતે પુણ્યનો હાસ ન્યારે થવા લાગે છે ત્યારે જીવોને દુઃખની પ્રાપ્તિ થાય છે, અને ન્યારે પુણ્યનો ઉપચય થાય છે ત્યારે જીવોને સુખની પ્રાપ્તિ થાય છે આ કથનની પણ એજ નિષ્કર્ષ નીકળે છે કે સુખ દુઃખ, પુણ્યના ઉપચય અને અપચયને આધીન છે આથી આનું કારણ તેનોજ ઉપચય તેમજ અપચય છે તેથી એ એક પુણ્ય તત્વજ માનવું જોઈએ આમ કહેવાવાળા વાદિઓના મતવ્યના નિરાકારણને માટે બન્ને તરવોની સ્વતત્ર રૂપે સત્તાનું પ્રતિપાદન ઠીક છે અથવા જે વસ્તુનો કેવળ એકજ સ્વભાવ માને છે તેવા વાદિઓના મતનું નિરાકરણ કરવા માટે જુદા જુદા રૂપથી સમસ્ત પદાર્થોનું આમ નિરૂપણ કર્યું છે (આસવે) આસ્રવ તત્વ જેના

रूप इति यावत् । कर्मव्यवहृतुगत्तन, म च मिथ्यावादि । 'अत्यि संवरे' अस्ति मवर = आन्तवनिर्गो, नत्रियते = निरुप्यते आववत = आगच्छत कर्म येन स = मवर, एष च द्रव्यभावमेतन्म्या द्विविध, तत्र द्रव्यतन्त्रथापिद्रव्येग (चिक्रगमृदादिना) सल्लिओपरि तगण्यादावनरत्तप्रविशन्नीगणा निर्गो, भावत आमतगण्या प्रविशन्कर्मनलाना समिति- गुनिप्रमृतिभिर्निर्गो । इह भावन्वग्न्य ग्रहगम् । एतकथन वन्धमोक्षयोर्निष्कारणवप्रति-

आदिक अष्ट-प्रकार का कर्म आमा म प्रविष्ट होना है उसका नाम आन्तव है । (आसवे) इस पद का 'आश्रय' जब इस प्रकार का म्भूत जाया ग्वा जायगी तब इसका अर्थ होगा जिमके द्वारा जीव कर्मों का आश्रय-मनुषार्जन करे वह आश्रय है । जिम प्रकार तात्रान में पानीका आना वालों द्वारा होता है उसी प्रकार इस जीव में जिमक द्वारा कर्मरूपी पानी आता रहता है वह आन्तव है । यह आन्तव ही नरान कर्मों के बन्ध का कारण होता है । यह आन्तव तत्व मिथ्यावादिक के भेद से अनेक प्रकार का है, क्यों कि ये जो मिथ्या-वादिक हैं वे कर्मों के आगमन के कारण हैं । (सवरे) मवर तत्व है । आन्तव का रचना इसका नाम मवर है । द्रव्यमवर और भावन्वर इस प्रकार से मवर के दो भेद हैं । द्रव्य-कर्मों के आगमन को रोकने में आमा का जो परिणाम कारण होता है वह परिणाम भावमवर है, एव जो कर्मपुटलों का रचना है वह द्रव्यमवर है । नौका में पानी के आगमन का रचना इसे द्रव्यमवर के स्थानापन्न, एव जिम छिट से वह आता था उसका बंद कर

हाल्ले जानावच्छीय आदिद आठ प्रकारना कर्म आत्माभा प्रविष्ट थाय छे तेनु नाम आन्तव छे (आसवे) आ पदनी (आश्रय) अ. प्रकारनी ले सभूत छाया गणवामा आवे तो जेना अर्थ जेम थाय छे जेना दाग एव, कर्मोना आश्रय (समुपाजन) कहे ते आश्रय छे जेम तणावभा पाणीनु आवतु नाजा दाग थाय छे तेम आ एवभा जेना दाग कर्मरूपी पाणी आवे छे ते आन्तव छे आ आन्तव ए नवीन कर्मोना अधनु दारलु थाय छे जेवुं ते आन्तव तत्व मिथ्यात्व आदिदना लेदवी अनेक प्रकारनु छे, केमके आ जे मिथ्यात्व आदिद छे ते कर्मोना आगमननु दारलु छे (सवरे) नवर तत्व छे. आन्तवने तैलु तेनु नाम संवर छे द्रव्यसवर अने सावसवर आ प्रकारना नवरना जे लेद छे द्रव्यकर्मोना आगमनने तैलवामा आत्मानु जे परिष्काम दारलु छेय छे ते परिष्काम सावसवर छे तेमज जे कर्मपुटगवोने दारलु ते द्रव्यसवर छे वहालुभा पाणीना आववाने तैलु जे द्रव्यसवरनु स्थानापन्न तेमज जे छिटभावी ते आवतु छतुं तेने अध दनी देतु ते सावसवरनु स्थानापन्न समजवुं जेज्जे अग्निगुप्ति आदि जे अध

पैथार्थम् । 'अत्थि वेयणा' अस्ति यदना-वेयना=उदनम-स्वभावात्तुदीरणा कृत्वा वा उदयावत्क्रियामनुप्रविष्टस्य कर्मणो योऽनुभव=कर्मफलगतसुखदुःखानुभव, तरत्तरूपम् । 'अत्थि णिज्जरा' अस्ति निर्जग-निर्जग=देशत कर्मण्य, 'अत्थि अरिहता' सत्यर्हन्त, 'अत्थि चक्कवट्टी' सन्ति चक्रवर्तिनः, 'अत्थि वल्लदेवा' सन्ति वल्लदेवा, 'अत्थि वासुदेवा' सन्ति वासुदेवा-अर्हन्तीना वसुणामभिधानं तु तेषां भुवनानिगायित्र-प्रतिपादनार्थं तेषामतिशयचमध्रदधता श्रद्धाविधानार्थं च । 'अत्थि नरगा' सन्ति नरगा-

देवा इति भावन्नर के स्थानापन्न जानना चाहिये । समितिगुणि आदि ये सप्त भावन्नर के ही भेद हे । इनसे ही आमा में आते हुए कर्म रत्नो है । यहा पर भावन्नर का ग्रहण हुआ हे । भावन्नर का कथन बंध और मोक्ष को जो निष्कारणक मानने वाले है उनकी धारणा का प्रतिषेध करने के निमित्त ममशाया चाहिये । (वेयणा) वेदना है । कर्म की स्वभावत उदीरणा करके अथवा उदयावत्ति में उसे लाकर उसके सुखदुःखादिक रूप फल का अनुभव करना इसका नाम वेदना हे । (णिज्जरा) निर्जरा है । एकदेश से कर्मों का क्षय होना सो निर्जरा हे । (अत्थि अरिहता अत्थि चक्कवट्टी) अर्हन्त है, चक्रवर्ती है । (अत्थि वल्लदेवा अत्थि वासुदेवा) वल्लदेव है, वासुदेव ह । इन चार अर्हन्त आदिका प्रतिपादन त्रिभुवन में इनकी सों कृपता जाहिर करने क निमित्त है । अथवा जो इनमें अतिशयत्व नहीं मानते हे, वे इस प्रतिपादन से उनके प्रिय में अपनी श्रद्धा जाग्रत करें इसके लिये भी यह अर्हन्त आदि चार का प्रतिपादन क्रिया गया जानना चाहिये । (अत्थि

लावस वरता लेह छि येनाथी न आत्माभा आपता कर्म शिक्षाय छे अही लावस वरतु श्रद्धेषु थयु छे लावस वरतु कथन बंध अने मोक्षने जेजो निष्कारणक माने छे तेमनी धारणाको प्रतिषेध कवा निमित्ते ममत्वसु ल्लेधये (वेयणा) वेदना छे उर्मनी स्वभावत उदीरणा करीने अथवा उदयावत्तिमा ते लागीने तेना सुण हु थ आदिक रूप इलने अनुभव करवो तेनु नाम वेदना छे (णिज्जरा) निर्जरा छे अवेदेशथी कर्मोको क्षय थवो ते निर्जरा छे (अत्थि अरिहता अत्थि चक्कवट्टी) अर्हन्त छे यकवर्ती छे (अत्थि वल्लदेवा अत्थि वासुदेवा) वल्लदेव छे, वासुदेव छे आ आः अर्हन्त आदिनु प्रतिपादन, त्रिभुवनमा तेमनी सर्वोन्कृपता ल्लेधेर करवाने निमित्ते छे अथवा तेजोभा जे अतिशयत्व न मानता छाय तेजो आ प्रतिपादनथी तेमना विषयमा पोतानी श्रद्धा लक्षत करे ते माटे पणु आ अर्हन्त आदि आःनु प्रतिपादन करेहु

(१) चेदगपरिणामो जो कम्मस्सावगिरोहणे हक ।

सो भावमवरो खल्ल दग्गामवरोहणे अण्णो ॥

वदसमिदीगुत्तीओ धम्माशुपिहा परीसहजओ य ।

चारित्त बहुभेय णायव्वा, भावमवरविसेसा ॥ द्रव्यग्रह गाथा ३४-३५ ॥

वासुदेवा नरगा णेरइया तिरिक्खजोणिया तिरिक्खजोणिणीओ
माया पिया रिसओ देवा देवलोया सिद्धी सिद्धा परिणिब्बुया,

अनेकविधनरकस्थानानि सन्ति । 'अत्थि णेरइया' सन्ति नैरयिका = नरकनिवासिन
सन्ति, 'अत्थि तिरिक्खजोणिया' सन्ति तिर्यग्योनिका, 'तिरिक्खजोणिणीओ'
सन्ति तिर्यग्योनिजाता स्त्रिय, नरकनैरयिकादीनामद्वयाना सत्तास्थापनाय कथनम् ।
'अत्थि माया अत्थि पिया' अस्ति माता अस्ति पिता, कचिदेव मय्यन्ते—मातापितृ-
व्यवहारो न वास्तविक, यतो हि—यूकाकृमिगण्डोलादय स्वजनक विनैरोपयन्ते, तन्मत-
निराकरणार्थमिदं भगवता प्रोक्तमिति भाव । 'अत्थि रिसओ' सन्ति ऋषय—ऋषय =
अतीन्द्रियाऽर्थद्रष्टार सन्ति । केचित्तेव वदन्ति—अतीन्द्रियार्थस्य द्रष्टारो न सम्भवन्ति,

नरगा अत्थि णेरइया अत्थि तिरिक्खजोणिया तिरिक्खजोणिणीओ) अनेक
विध नरकस्थान हे और उनमें रहने वाले जीव नारकी हे, तिर्यचयोनि के जीव हे. तिर्यच
योनि में उत्पन्न तिर्यच्च स्त्रिया भी है । नरक एव नारकी आदि अदृश्य जीवों का जो कथन
क्रिया है वह उनकी सत्ता प्रदर्शित करने के लिये जानना चाहिये । (अत्थि माया अत्थि
पिया) माता है, पिता है । कोई २ ऐसे मानते है कि माता—पिता यह व्यवहार वास्तविक
नहीं हैं, क्यों कि ऐसे भी कई जीव है कि जो माता—पिता के बिना भी उत्पन्न होते रहते
है । उनकी इस कल्पना को निराकरण करने के लिये भगवान् ने यह कहा है । (अत्थि
रिसओ) अतीन्द्रिय अर्थ को देखने वाले ऋषिजन है । इस कथन का तात्पर्य यह है कि
बहुत से वार्दा ऐसा कहते है कि अतीन्द्रियार्थ द्रष्टा कोई नहा है, कारण कि पुरुष रागादि
से कभी निर्मुक्त नहीं हो सकता । अतः जैसे हमलोग रागादि-उत्पन्न होने से अतीन्द्रियार्थ के

बल्लुपु लोभओ (अत्थि नरगा अत्थि णेरइया अत्थि तिरिक्खजोणिया तिरिक्ख
जोणिणीओ) अनेकविध नरक-स्थान छे, अने तेमा रडेवावाणा एव नारकी
छे तिर्य चयोनिना एव छे, तिर्य चयोनिमा उत्पत्त तिर्य च श्रीओ पणु
छे नरक तेम ७ नारकी आदि अदृश्य एवोतु ने उथन कथुं छे ते तेमनी सत्ता
प्रदर्शित उवा भाटे बल्लुपु लोभओ (अत्थि माया अत्थि पिया) माता छे
पिता छे दोर्ध कोष्ठ ओम भाने छे के माता पिता ओ व्यवहार वास्तविक
नथी, उमउ ओवा पणु डेटलाय एव छे उ ने मातापिता विना पणु उत्पन्न
थता रडे छे तेमनी आ कल्पनातु निराकरण करवा भाटे लगवाने ओम कहु
छे तथा (अत्थि रिसओ) अतीन्द्रिय अर्थने लोवावाणा ऋषिजन छे आ कथ
नतु तात्पर्य ओ छे के धणु वादिओ ओम कडे छे उ अतीन्द्रिय—अर्थ—द्रष्टा
कोर्ध छे नहि, नरक के पुरुष रागादिथी कही पणु निर्मुक्त थध शकतो नथी.

पुरुपाणा रागान्दिदोषयत्वात् अम्मन्त्वात् इति, तमतनिरासार्थमिदमुक्तम् । 'अत्थि देवा अत्थि देवलोया' सति देवा = भवनपयादय, सन्ति देवलोका - देवाना लोका = स्थानानि सौधमार्दानि । यत्साहु - न सति देवादयोऽप्रयक्ष चात् इति, तन्मतयुत्सासार्थमिदमुक्तम्, 'अत्थि सिद्धी अत्थि सिद्धा' अस्ति सिद्धि, सन्ति सिद्धा - सिद्धि = सित्यन्ति-निष्ठितार्था भवन्ति यस्या सा तथा, सिद्धिमन्त मिद्धा । 'परिणिञ्जाणे' परिनिर्वाण-मस्ति-परिनिर्वाण=कर्मकृतस तापोपगान्त्या मुस्थत्वम् । नि शेषत सकलकर्मक्षयजन्यमात्यन्तिकं सुखमित्यर्थ । 'अत्थि परिणिञ्जुया' मन्ति परिनिर्वृता = अपुनरावृत्त्या सकलसन्ताप-दर्शक नहीं हो सकते ह उसी प्रकार कोई भी व्यक्ति रागादिक से विगिष्ट होने के कारण अतान्द्रियार्थ पदार्थों का द्रष्टा नहीं हो सकता है । इस प्रकार जो यह भीमासकों की मान्यता है उस मान्यता को दूर करने के लिये अतान्द्रियार्थ द्रष्टा को यह स्थापना की है । (अत्थि देवा अत्थि देवलोया) पुण्यजनित अलौकिक क्रीडा का जो अनुभव करते हैं उनका नाम देव है । वे देव भवनपति आदि के भेद से ४ प्रकार के हैं । इनके रहने के स्थान भी हैं । जिहें स्वर्ग या देवलोक कहते हैं । जो यह कहते हैं कि अप्रत्यक्ष होने से देवादिक नहीं है उनके इस मन का निराकरण करने के लिये देवों का स्वरूप कहा है । (अत्थि सिद्धी अत्थि सिद्धा) सिद्धि है, और सिद्धि जिहें प्राप्त हो चुकी है ऐसे सिद्ध भी हैं । (परिणिञ्जाणे) परिनिर्वाण-मुक्ति है । कर्मकृत सन्ताप की उपगति से उद्भूत सुस्थत्व का नाम परिनिवाण है । समस्त कर्मों के अथत विनाग से जन्य जो आत्यतिक सुख है उसका नाम सुस्थत्व है । (अत्थि परिणिञ्जुया) अपुनरावृत्तिविशिष्ट होने से सकल सन्ताप

आथी नेम आपणु राज आदि स पन्न डोवाथी अती द्वियार्थना इर्थां अनी शकता नथी तेज प्रजारे दोष पण व्यक्तित राग आदिदोथी विशिष्ट डोवाना डारणु अती द्विय पदाथेना द्रष्टा अनी शके नडि अेवी ने आ भीमासकोनी मान्यता छे ते मान्यताने हर करवाने भाटे अतीद्वियार्थ द्रष्टानी आ स्थापना करी छे (अत्थि देवा अत्थि देवलोया) पुण्यजनित अलौकिक क्रीडाने ने अनुभव करे छे तेमनु नाम देव छे ते देवा भवनपति आदिना लेदथी ४ प्रकारना छे तेमना गडेवाना डोड अेटले स्थान पणु छे ने अेम कडे छे डे अप्रत्यक्ष डोवाथी देव आदिड नथी तेमना आ भतनु निराकरणु करवा भाटे देवानु स्वरूप डडेछु छे (अत्थि सिद्धी अत्थि सिद्धा) सिद्धि छे अने सिद्धि नेने प्राप्त-थथ गथ छे अेवा सिद्ध पणु छे (परिणिञ्जाणे) परिनिर्वाण-मुक्ति छे कर्मकृत ने सताप तेनी उपशातिथी उत्पन्न थतु ने सुस्थत्व तेनु नाम परिनिर्वाण छे समस्त कर्मोना अत्यत विना शथी चेडा थतु ने आत्यतिक सुख छे तेनु नाम सुस्थत्व छे अत्थि परि-

१ पाणाइवाए, २ मुसावाए, ३ अदिण्णादाणे, ४ मेहुणे, ५

कल्पपरिवर्जिता । 'अत्थि पाणाइवाए' अस्ति प्राणातिपात - प्राणा = उच्छ्वास-
नि आसाद्यस्तेगमतिपात = प्रियोजन - प्रागानिगत - प्रागिहिंसनमिति यावत्, तदुक्तम्—

पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविध बल च, उच्छ्वासनि श्वासमथान्यदायु ।

प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्तास्तेषा वियोगीकरण तु हिंसा ॥ १ ॥ इति ।

'अत्थि मुसावाए' अस्ति मृषावाद - मृषा = मिथ्या, वाद = वदनम् - असदभूतार्थ-भाषण-
मिति यावत् । 'अदिण्णादाणे' अदत्ताऽऽदानमस्ति - न दत्तमदत्तम् = देवगुरुभूपगाथापति-
साधर्मिकैरननुजात, तस्याऽऽदान = ग्रहणम् । 'अत्थि मेहुणे' अस्ति मैथुनम् - मिथुनेन = स्त्री-
पुसान्या निर्वृत्त कर्म मैथुन - कामक्रीडैर्यथ । 'अत्थि परिग्गहे' अस्ति परिग्रह - परि =

के कलापो से परिवर्जित ऐसे जीव है । (अत्थि पाणाइवाए) प्रागिहिंसा पाप है, उच्छ्वास-
नि श्वास आदि प्राग है, इनका अतिपात करना अर्थात् प्राणिया के प्राण का वियोग करना
प्रागातिपात है । कहा भी है—

“पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविध बल च उच्छ्वासनि श्वासमथान्यदायुः ।

प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्तास्तेषा वियोगीकरण तु हिंसा ॥

आत्मों में पाच इन्द्रिय, तीन बल, आयु, श्वासोच्छ्वास इस प्रकार से ये १० प्राण
भगवानने बतलाये है । इनका वियोग करना इसका नाम हिंसा है । (अत्थि मुसावाए)
मृषावाद पाप है । असद्भूत अर्थ का कथन करना इसका नाम मृषावाद है । (अदिण्णादाणे)
अदत्तादान पाप है । देव, गुरु, भूप, गाथापति एव साधर्मिक आदि की कोई वस्तु को उनकी
आज्ञा के बिना लेना सो अदत्तादान है । (अत्थि मेहुणे) मैथुन पाप है । (अत्थि परिग्गहे)
परिग्रह भी पाप है । जो मूर्च्छापूर्वक ग्रहण किया जाय उसका नाम परिग्रह है, अर्थात्

गिञ्चुया) अपुनरावृत्तिविशिष्ट धवाधी तभाम मतापना कलापोऽपी परिवर्जित
अवेो एव छे (अत्थि पाणाइवाए) प्राण्डिडि मा पाप छे उच्छ्वासनि श्वास
आदि प्राण्य छे तेनो अतिपात करवेो अर्थात् प्राण्येनो प्राण्यधी वियोग
करवेो प्राण्यतिपात छे कहुं पण्य छे—

“पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविध बल च उच्छ्वासनि श्वासमथान्यदायुः ।

प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्तास्तेषा वियोगीकरण तु हिंसा ॥

शास्त्रोभा पाच धद्रिय, त्रण्य भल, आयु, श्वासोच्छ्वास आ प्रकारधी १०
प्राण्य भगवाने भताव्या छे तेनो वियोग करवेो तेनु नाम हिंसा छे (अत्थि
मुसावाए) मृषावाद पाप छे असद्भूत अर्थनु ज्वन करवु ते मृषावाद छे
(अदिण्णादाणे) अदत्तादान पाप छे देव, गुरु, भूप, गाथापति तेभर साध
र्मिक आदिनी केई वस्तुने तेभनी आज्ञा पगर लेवी ते अदत्तादान छे

परिग्रहे, ६ अत्थि कोहे, ७ माणे, ८ माया, ९ लोभे, अत्थि

सर्वतो भावेन गृह्यते=जन्मजरामरणादिदुःखैरेष्ट्यते आत्मा अननेनि, यद्वा परिगृह्यते=सम्-
 ष्टं स्वांक्रियत इति । 'अत्थि कोहे माणे माया लोभे' अस्ति क्रोध, अस्ति मान,
 अस्ति माया, अस्ति लोभ । क्रोध=क्रोधमोहनीयप्रकृत्युदयेन स्वपरचित्तप्रवृत्तन्मरूपविकृति-
 जनक आत्मन परिणामविशेष । मान=स्वापेक्षयाऽन्यहीन मन्यते जनो येन म, मानमोहनी-
 योदयसमुत्थोऽन्यहीनतामननलक्षण आत्मन परिणामविशेष । माया=मायामोहनीयोदयसमुत्थो
 जीवस्य वञ्चनपरिणतिविशेष-स्वपरव्यामोहोपादकरमाचरणमिति यावत् । लोभः=लोभ-
 प्रकृत्युदयवशात् द्रव्याद्यभिलाषलक्षणो जीवस्य परिणतिविशेष । 'अत्थि जात्र मिच्छादस-

जन्म, जरा एव मरणादि दुःखों से जिसके द्वाग आत्मा वेष्टित होता है उसका नाम
 परिग्रह है । (ममेदं) भाव का नाम मूर्च्छा है । ('अत्थि कोहे
 माणे माया लोभे) ये चार कषाय हैं-क्रोध, मान, माया और लोभ । क्रोधमोहनीय
 प्रकृति के उदय से स्व और पर की चित्तवृत्ति म प्रवृत्तन रूप विकारजनक जो आत्मा का
 परिणामविशेष होता है, उसका नाम क्रोध है । मानमोहनीय के उदय से अन्य को हीन
 समझने का जो आत्मा का परिणामविशेष होता है वह मान है । इसके सद्भाव में जीव
 अपनी अपेक्षा अप् जन को हीन समझता है । मायामोहनीय के उदय से पर को वचित
 करने का जो आत्मा का परिणामविशेष होता है वह माया है । इसके वश में रहा हुआ
 जीव स्व और पर का व्यामोहक आचरण किया करता है । लोभप्रकृति के उदय के वश
 से द्रव्यादिक को चाहने की जो आत्मा की परिणतिविशेष है उसका नाम लोभ है ।

(अत्थि मेहुणे) मैथुन पाप छे (अत्थि परिग्रहे) परिग्रह पणु पाप छे, ले
 भूर्च्छापूर्वक ऋद्धि कराय तेतु नाम परिग्रह छे, अर्थात्, जन्म जरा तेमज्
 भरण्य आदि दुःखोती आत्मा लेना द्वारा वेष्टित थई (वी टणाधं) न्य छे
 तेतु नाम परिग्रह छे भूर्च्छालावतु नाम पणु परिग्रह छे (ममेदं) लावतु
 नाम भूर्च्छा छे (अत्थि कोहे माणे माया लोभे) आत्मा र कषाय छे-क्रोध, मान,
 माया अने लोभ क्रोधमोहनीय प्रकृतिना उदयथी स्व अने परनी चित्त-
 वृत्तिमा प्रवृत्तनरूप विकारजनक ले आत्मानु परिणाम-विशेष होय छे
 तेतु नाम क्रोध छे मान-मोहनीयना उदयथी अेक भीलने हीन समझवानु
 ले आत्मानु परिणामविशेष थाय छे ते मान छे आना सद्भावमा एव
 पोताना करता भील भावुसने हीन समझे छे मायामोहनीयना उदयथी
 भीलनी वचना करवानु ले आत्मानु परिणामविशेष थाय छे ते माया छे,
 तेने वश थयेको एव स्व तथा परतु व्यामोहक आचरण कर्था उरे छे

जाव मिच्छादंसणसल्ले। अत्थि पाणाडवायवेरमणे मुसावाय-

णसल्ले' अस्ति यावत् मिथ्यादर्शनजन्यम्, अत्र यावच्छब्दात्-‘पेज्जे, दोसे, कल्लहे, अन्नमक्खाणे, पेसुण्णे, परपरिवाए, अरइरई, मायामोसे’ इत्येषा म्ग्रह । अस्ति प्रेम-प्रेम=राग-पुत्रकलत्रादिविध्वभिध्वङ्गपरिणामविशेष । ‘अत्थि दोसे’ अस्ति द्वेष-द्वेष=आत्मनोऽप्रातिलक्षणपणिणाम, अस्ति कलह-कलह=आनन्दस्त हन्तीति कलह-नाचिक-द्वन्द्व, ‘अत्थि अन्नमक्खाणे’ अस्यभ्यारयानम्-अभ्यालयानम्=असदोपारोपणम् । ‘अत्थि पेसुण्णे’ अस्ति पैशुन्यम्-पैशुन्य=प्रच्छन्नतया परदोषाऽऽविष्करणम्, ‘अत्थि परपरिवाए’ अस्ति परपरिवाद-पंगपा कात्रादिभिर्दापकथनम्, ‘अत्थि अरइरई’ स्त अरतिरती-अरति=अरतिमोहनायोदयाच्चित्तोद्वेगरूप आमन परिणतिविशेष, रति=

(जाव मिच्छादंसणसल्ले) यावत् मिथ्यादर्शन आदि जन्य है । यहा “यावत्” शब्द से “पेज्जे, दोसे, कल्लहे, अन्नमक्खाणे, पेसुण्णे, परपरिवाए, अरइरई, मायामोसे” इस पाठ का म्ग्रह हुआ है । पुत्रकलत्रादिकों में जो आसक्तिरूप परिणामविशेष है उसका नाम प्रेम है । अप्रीतिलक्षण जो आत्माका परिणाम है वह द्वेष है । आनन्द जिससे नष्ट होता है उसका नाम कलह है । अमय दोषोंका आगेषण करना इसका नाम अभ्यारयान है । पीठ पाठे दूसरे के दोषोंको प्रकट करना इसका नाम पैशुन्य है । दूसरे की निंदा करना इसका नाम परपरिवाद है । अरति एव रति ये दोनों पाप है । अरतिमोहनीय के उदय होने से मयम के अन्दर जो चित्तोद्वेग होता है उसका ‘अरति’ कहते हैं । सासारिक विषयोंकी अमिलापा को ‘रति’ कहते हैं । कपटसहित मिथ्याभावग करना इसका नाम मायामृषा

बोलाप्रकृतिना उदयने वश थवाथी द्रव्यादिकेने आडुवानी ने आत्मानी परिष्णुति-विशेष छे तेनु नाम बोला छे (जाव मिच्छादंसणसल्ले) यावत् मिथ्यादर्शन-शक्य छे आडी “यावत्” शब्दथी “पेज्जे दोसे कल्लहे अन्नमक्खाणे पेसुण्णे परपरिवाए अरइरई मायामोसे” आ पाठने सत्रह कथी छे तेमा पुत्रकलत्र आदिमा ने आसक्तिरूप परिष्णुमविशेष छे तेनु नाम प्रेम छे अप्रीति-लक्षण ने आत्मानु परिष्णुम ० ते द्वेष छे आनन्द नेनाथी नष्ट थाय छे तेनु नाम कलह छे, अने अमय दोषोनु आरोपणु करवु तेनु नाम अभ्या-भ्यान छे टोडनी गेरडाजगीमा (पीठपाछण) तेना दोषो प्रकट करवा तेनु नाम पैशुन्य (गाडी) छे जीतनी निंदा करवी तेनु नाम परपरिवाद छे अरति तेमर रति अे गन्ने पाप छे अरति-मोहनीयने उदय थवाथी मयमनी अहर ने चित्तने उद्वेग थाय छे तेने ‘अरति’ उडे छे सासारिक विष-योनी अलिखापाने ‘रति’ उडे छे कपटवाण मिथ्यालापणु करवु तेनु नाम

वेरमणे आदिण्णादाणवेरमणे मेहुणवेरमणे परिग्गहवेरमणे
जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगे । सव्व अत्थिभावं अत्थित्ति वयइ,

विषयाभिरुचि । 'अत्थि मायामोसे' अस्ति मायामृपा-मायया सह मृपा-मायामृषा=
सरूपमिथ्याभाषणम्, 'मिच्छादंसणसल्ले' मिथ्यादर्शनगन्धम्-मिथ्यादर्शन गन्धमिव,
प्रतिक्षण त्रिविधन्यात्रिधायकवान । 'अत्थि पाणाइत्रायवेरमणे मुसावायवेरमणे
अदिण्णादाणवेरमणे मेहुणवेरमणे परिग्गहवेरमणे' अस्ति प्राणातिपातविरमणम्,
मृपावादविरमणम्, अदत्तादानविरमणम्, भैक्षुनविरमणम्, परिग्रहविरमणम् । केषाञ्चिन्मते
प्राणातिपातादिविरमणस्याशयव्य प्रतिपादित तन्निरासार्थं तसत्ताऽभिधानम् । 'जाव
मिच्छादंसणसल्लविवेगे' यात्रमिथ्यादर्शनगन्धविवेक-मिथ्यादर्शनगन्धस्य विवेक=
पृथग्भाव, तस्मान्निवृत्तिरित्यर्थ, सोऽप्यस्ति । 'सव्व अत्थिभावं अत्थित्ति वयइ' सर्व-
मस्तिभावमस्तीति वदति-सर्वे=सफलम् अस्तिभाव-सत्तारूपक्रियासहितो भाव=वस्तुसत्त्वम्

हे । तथा कुदेव कुगुरु कुधर्म मे श्रद्धा रसना मिथ्यादर्शन है । गन्ध की तरह प्रतिक्षण
अत्यन्त दुःखदायी होने के कारण यह मिथ्यादर्शन गन्ध कहलाता है । (अत्थि पाणाइ
त्रायवेरमणे परिग्गहवेरमणे जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगे) जो लोग हिंसादिक पाच
पापों से विरक्त होने में अशक्यता प्रतिपादित करते हैं उनके लिये प्रभु कहते हैं कि ऐसी
बात नहीं है, प्राणातिपात से जीव विरक्त होता है, मृषावाद से जीव विरक्त होता है,
एव परिग्रह से जीव विरक्त होता है, यावत् मिथ्यादर्शनगन्ध से भी जीव विरक्त होता है ।
(सव्व अत्थिभावं अत्थित्ति वयइ सव्व णत्थिभाव णत्थित्ति वयइ) " अस्ति " यह
पद सब को "अस्ति" इस रूपसे कहता है और " नास्ति " यह पद समस्त भाव को

'मायामृपा' छे, अने कुदेव, कुगुरु, कुधर्म भा श्रद्धा राभवी ते मिथ्यादर्शन छे,
ते शक्यनी भाइक प्रतिक्षणु दुःखदायी होवाथी ' मिथ्यादर्शनगन्ध ' उडेवाय छे
(अत्थि पाणाइत्रायवेरमणे, मुसावायवेरमणे, अदिण्णादाणवेरमणे, मेहुणवेरमणे, परि-
ग्गहवेरमणे, जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगे) ने दोक डि सा आदिक पाच पापेथी
विरक्त होवाभा अशक्यता प्रतिपादित करे छे तेभना भाटे प्रभु कडे छे के
अवी वात डोई छे नडि प्राणातिपातथी एव विरक्त थाय छे, मृषावादथी
एव विरक्त थाय छे, अदत्तादानथी एव विरक्त थाय छे, भैक्षुनथी एव विरक्त
थाय छे तेभञ्च परिग्रहथी एव विरक्त थाय छे, यावत् मिथ्यादर्शनगन्धथी
पणु एव विरक्त थाय छे (सव्व अत्थिभावं अत्थित्ति वयइ सव्व णत्थिभाव णत्थित्ति
वयइ) " अस्ति " अ पद णधाने अस्ति (अ) अ इपे उडे छे, अने " नास्ति " अ पद

सर्वं णत्थिभावं णत्थित्ति वयड, सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णफला भवंति, दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णफला भवंति, फुसड पुण्णपावे,

‘जीवोऽस्त्यजीवोऽस्ति, पुण्यमस्ति, पापमस्ति’ इत्यादिरूपेण वस्तुयथार्थस्वरूपनिरूपण-मिति यावत्, तम् ‘अस्ति’ इति वृत्त्वा वदति, यथा जीवत्वे सति जीव, अजीवत्वे सति अजीव इत्यादि । ‘सर्वं णत्थिभाव णत्थित्ति वयड’ सर्वं नास्तिभाव नास्ताति वदति—सर्वं नास्तिभावम्—अजीवत्वे सति अजीव, अपटत्वे सति अपट इत्येवरूपो भावो नास्ति—भावस्त नास्तीतिपदेन वदति । ‘सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णफला भवति’ सुचीर्णानि कर्माणि सुचीर्णफलानि भवन्ति—सुचीर्णानि—सु=प्रशस्ततया चीर्णानि= पादितानि कर्माणि= दानादीनि, सुचीर्णफलानि—सुचीर्ण फल चेपा तानि, सुचरितमूलकवात् पुण्यकर्मन्वादि-फलवन्तीत्यर्थ । ‘दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णफला भवति’ दुश्चीर्णानि कर्माणि दुश्चीर्ण-फलानि भवन्ति—दुश्चीर्णानि=कुसितानीत्यर्थ, दुश्चीर्णफलानि=कुसितफलवन्ति—नरक-निगोदादिगमनादिरूपफलदायकानि भवन्तीत्यर्थ । ‘फुसड पुण्णपावे’ स्पृशति

“नास्ति” इस रूप से कहता है । स्वसत्तारूप क्रिया से युक्त का नाम अस्तिभाव है एव पररूप से असत्ता का नाम नास्तिभाव है । मतलब इसका यह है कि प्रत्येक पदार्थ स्व-द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से ही अस्तित्वविशिष्ट है और पर-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा प्रत्येक द्रव्य नास्ति-विशिष्ट है । इससे स्याद्वादसिद्धान्त का कथन किया गया है । (सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णफला भवति) प्रशस्तभावों से स्पादित दानादिक सत्कर्म पुण्य कर्म के त्व-करनेवाले होते हैं । पुण्यकर्म का वन करना ही इनका फल माना गया है । (दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णफला भवति) कुसितभावों से किये कार्य कुसित-नरकनिगोदादि-फलवाले होते हैं, अर्थात् कुसित कर्मों को करनेवाला

अथा भावने नास्ति (नथी) ओ उषे डडे ऐ स्वभत्ताउप क्रियाथी युक्ततु नाम अन्ति-भाव छे तेभञ परउपथी अनत्तातु नाम नास्तिभाव छे आनेो मतलब ओ ऐ उ प्रत्येक पदार्थ स्व-द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावनी अपेक्षाथी न अस्तित्वविशिष्ट छे अने पर-द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावनी अपेक्षा तेन पदार्थ नास्ति-विशिष्ट छे आथी स्याद्वादसिद्धान्तु कथन कर-वाभा आवेलु छे (सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णफला भवंति) प्रशस्तभावोथी स पा-दित दान आदि सत्कर्म पुण्य कर्मनु अध करवावाणा थाय छे पुण्यकर्मने अध करवो ओओ ओतु इण ठडेवाभा आव्यु छे (दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णफला भवति) कुसित भावोथी ठरेलु ठार्थ कुसित-नरक-निगोद आदि इणवाणा थाय छे,

પચાયંતિ જીવા, સફલે કલ્લાણપાવણ । ધમ્મમાઙ્ગલ્લ-કલ્લાણમેવ

પુણ્યપાપે-જીવ સુચરિતક્રિયાભિ પુણ્યમ્, અસુચરિતક્રિયાભિ પાપ ચ સૃજન્તિ=જન્તાતિ ।
 'પચાયતિ જીવા' પ્રયાયાતિ જીવા-તેનૈવ સૃષ્ટેન=વક્ત્રેન-શુભાશુભકર્મસંતાનન
 પુનર્જીવા ઉત્પદ્યતે, 'મસ્મીભૂતસ્ય દેહસ્ય પુનરાગમન કુત'-ઇતિ નાસ્તિકવચન ન સયમ્
 इति भाव । तत उत्पत्तौ सयाम् 'सफले कल्लाणपावण' सफळ कल्याणपापके-सौभाग्य-
 दौर्भाग्यहेतुत्वात् पुण्य पापञ्च शुभाशुभ कर्म सफल भवतीति भाव । प्रकाशन्तरेणापि धर्मो
 पदेश भगवान् ददाति, तदेव प्रत्याह-'धम्ममाङ्गल्ल' इत्यारभ्य 'पडिरूवे'

પ્રાગા નરકનિગોદાદિક કા પાત્ર વનતા હૈ । (ફુસડ પુણ્ણપાવે) જાત સુચરિત ક્રિયાઓ
 દ્વારા પુણ્ય એવ અસુચરિત ક્રિયાઓ દ્વારા પાપ કા વંધ કરનેવાગ હોતા હૈ । (પચાયંતિ
 જીવા) શુભાશુભ કર્મો સે વદ્ધ હુઆ જીવ ઇસ મસાર મ જન્મમરણ કે દુરોં કો પ્રાપ્ત
 કરતા હૈ, અથાત્ જનતક કર્મ-તતિ જીવ મં અસ્તિત્વવિશિષ્ટ રહતી હૈ-જીવ કર્મો સે
 જનતક વધા રહતા હૈ તનતક હી વહ મસાર મે ઉપન્ન હોતા રહતા હૈ । ઇસ કથન સે
 નાસ્તિક કે ઇસ વાદ કા કિ-"મસ્મીભૂતસ્ય દેહસ્ય પુનરાગમન કુત" અર્થાત્ જબ દેહ
 મસ્મીભૂત હો જાતા હૈ તો પુન ડસકી પ્રાપ્તિ નહીં હોતી હૈ-નિરાકરણ હો જાતા હૈ ।
 (સફલે કલ્લાણપાવણ) સૌભાગ્ય એવ દૌર્ભાગ્ય કે હેતુ હોને સે પુણ્ય ઓર પાપ સફલ હૈ ।

પ્રકારાન્તર સે મી પ્રમુને શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મ કા ઉપદેશ દિયા-ઇસ વાત કો
 સૂત્રકાર-'ધમ્મમાઙ્ગલ્લ' સે લેકર 'પડિરૂવે' યહોં તક કે મૂલપાઠ સે પ્રદર્શિત કરતે

કુત્સિત કર્મો કરવાવાળા પ્રાણી નરક-નિગોદ આદિકના પાત્ર બને છે (ફુમડ
 પુણ્ણપાવે) એવ સુચરિત ક્રિયાઓ દ્વારા પુણ્ય તેમજ અસુચારત ક્રિયાઓ દ્વારા
 પાપના બંધ કરવાવાળા થાય છે (પચાયતિ જીવા) શુભાશુભ કર્મોથી બધા
 એલા એવ આ સંસારમા જન્મ-મરણના દુ ખોને પ્રાપ્ત કરે છે અથાત્ ન્યા
 સુધી કર્મ-સંતતિ એવમા અસ્તિત્વવિશિષ્ટ રહેતી હોય છે-એવ ન્યા સુધી
 કર્મોથી બધાયેલ રહે છે ત્યા સુધી જ તે સંસારમા ઉત્પન્ન થયા કરે છે
 આ કથનની નાસ્તિકનો એવો વાદ કે "મસ્મીભૂતસ્ય દેહસ્ય પુનરાગમન કુત"
 અર્થાત્ ન્યારે દેહ ભસ્મીભૂત થઈ બાક છે તો પછી વળી ફરી તેની પ્રાપ્તિ
 થતી નથી આનુ નિરાકરણ થઈ બાક છે (સફલે કલ્લાણપાવણ) સૌભાગ્ય
 તેમજ દૌર્ભાગ્યના હેતુભૂત હોવાના કારણે પુણ્ય અને પાપ સફળ (ફળ આપ-
 નારા) છે

ખીજી રીતે પણ પ્રભુએ શ્રુતચારિત્રક્રમ ધર્મનો ઉપદેશ આપ્યો-એ
 વાતને સૂત્રકાર-'ધમ્મમાઙ્ગલ્લ'થી લઈને 'પડિરૂવે' અહીં સુધીના મૂળપાઠ

णिगंथे पात्रयणे सचे अणुत्तरे केवलिए ससुद्धे पडिपुण्णे जेया-

इत्यन्तेन ग्रन्थेन । 'धम्ममाइक्खण्ड' धर्ममाग्याति- 'इणमेव णिगंथे पात्रयणे सचे' इदमेव नेर्ग्रन्थ प्रवचन सयम्-इद=प्रयत्नतया विद्यमान, नेर्ग्र-निर्ग्रन्थाना=द्रव्यभाव-ग्रन्थिग्रहिताना यमिना सम्बन्धि प्रवचनम्=आगम, सय=सन्भ्यो हित वास्तविकम् । 'अणुत्तरे' अनुत्तरम्-नास्-युत्तर यस्मात्, नास्मात्प्रधानतममन्यदस्तीति भाव, 'केवलिए' कैवलिक=केवलप्रणीतम्-अद्वितीय वा, 'ससुद्धे' सशुद्धम्=रूपादिभिः शुद्ध सुवर्णमिव निर्दोषम्, 'पडिपुण्णे' प्रतिपूर्णम्-सर्वथा समग्र-मूत्रापेक्षया मात्राविन्द्वादिभिः, अर्थापेक्षया चाकाङ्क्षाध्याहारदिभिर्वर्जितम्, 'जेयाउए' नैयायिकम्=न्यायानुगत=प्रमाणा-ऽवाप्तिम्, 'सत्कत्तणे' शन्यकर्तनम्=मायादिशन्यच्छेदनक्षमम्-एतद्भावभाषितानां

है। 'धम्ममाइक्खण्ड' भगवान् न प्रकाशन्तरे से भी धर्मोपदेश किया। जैसे-(इणमेव णिगंथे पात्रयणे सचे) प्रयत्नतया विद्यमान यह निर्ग्रन्थ-द्रव्य एव भावरूप ग्रन्थि से रहित मनसियों का प्रवचन-आगम सय-भयों का हितकारक एव यथार्थ है। (अणुत्तरे) यह अनुत्तर है-इससे उत्तर-प्रधान और दूसरा कोई नहीं है। (केवलिए) कारण कि यह केवलज्ञानी द्वारा प्रणीत हुआ है, इसलिये यह अद्वितीय है। (ससुद्धे) कपादिक द्वारा शुद्ध किये हुए सोने के समान यह शुद्ध है। (पडिपुण्णे) यह सर्वथा प्रतिपूर्ण है, न तो मूत्र की अपेक्षा से इसमें मात्रा एव विन्दु आदि के अयाहार की आवश्यकता है और न अर्थ की अपेक्षा से इसमें आकाक्षा आदि के अध्याहार का आवश्यकता है, अथान् सत्र प्रकार से यह पूर्ण है। (जेयाउए) इस भगवदुपदिष्ट आगम में किसी भी प्रमाण से चावा नहीं आती है। (सत्कत्तणे) मायामिध्याव एव निदान शन्यों का

दाता प्रदर्शित करे छे 'धम्ममाइक्खण्ड' भगवाने प्रकाशन्तर्वी पणु धर्मोपदेश कथे लेभडे (इणमेव णिगंथे पात्रयणे सचे) प्रत्यक्षतया (नान्नी आमेव) विद्यमान (मोणुह) आ निर्ग्रन्थो-द्रव्य तेमज्जा एव उप ग्रन्थि रक्षित नय भीओना प्रवचन-आगम सय-लब्धोने माटे हितकारक तेमज्जा यथार्थ छे (अणुत्तरे) आ अनुत्तर छे आनाथी उत्तर-प्रधान (मुण्य) भीणु जल नथे (किरणि) कारण छे आ देवजज्ञानी द्वारा प्रणीत थयेलु (रथाओलु) छे ते माटे आ अद्वितीय छे (ससुद्धे) उपादिद द्वारा शुद्ध करेला मोना लेवु ते शुद्ध छे (पडिपुण्णे) ओ सर्वथा परिपूर्ण छे-सत्रनी अपेक्षाओ तेमा मात्रा तेमज्जा णिहु आदिना अध्याहारनी आवश्यकता नयी अने अर्थनी अपेक्षाथी तेमा आकाक्षा आदिना अध्याहारनी पणु आवश्यकता नयी तमात्र प्रकाशे ओ पूर्ण छे (जेयाउए) आ भगवद्-उपदिष्ट आगममा डोर्छ पणु प्रमाणथी

उए सल्लकत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे णिज्जाणमग्गे अवित्रहम-
विसंधि सच्चदुक्खप्पहीणमग्गे ड्हट्टिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति

भावग्न्यानि विच्छेत्तमायातीनि । 'सिद्धिमग्गे' सिद्धिमार्ग -सिद्धि =कृतकृत्यता-तस्या
मार्ग =उपाय, 'मुत्तिमग्गे' मुक्तिमार्ग =सकलकर्मप्रियोगस्य हतु, 'णिव्वाणमग्गे'
निर्वाणमार्ग -निरांगस्य=सकलकर्मक्षयजन्यस्य पारमार्थिकसुखस्य मार्ग, 'णिज्जाणमग्गे'
निर्याणमार्ग -निर्याणम्=अपुनगवृत्त्या मसारात् प्रस्थान तस्य मार्ग, 'अवित्रहं'
अवितथम्-वितथ=मिथ्या तद्विपरीत-त्रिकालबाधितमित्यर्थ । 'अविसंधि' अविसन्धि=
अन्यवच्छिन्न-न कदाचिदपि विच्छेत्तमुपगतम् । 'सच्चदुक्खप्पहीणमग्गे' सर्वदुःखप्रहण-
मार्ग -सत्राणि=जन्ममरणादीनि दुःखानि प्रहीणानि यत्र स सर्वदुःखप्रहीणो मोक्षस्तस्य

कर्त्तन (छेदन) इसी आगम से होता है । (सिद्धिमग्गे) यह आगम ही सिद्धि-कृत
कृत्यता का एक मार्ग है । (मुत्तिमग्गे) समस्त कर्मों के क्षय का यही एक उपाय है ।
(णिव्वाणमग्गे) समस्त कर्मों के क्षय से उद्भूत पारमार्थिक सुख का यही एक रास्ता
है । (णिज्जाणमग्गे) मसार में जात्र का पुन आगमन न हो इस रूप से जो जीव का
ससार से प्रस्थान होता है उसका प्रधान कारण एक यही आगम है । (अवित्रह) यह
आगम त्रिकाल मे भी कुतर्कों द्वारा बाधित नहीं है । (अविसंधि) महाविदेह क्षेत्र को
अपेक्षा से-न इसका कभी विच्छेद होता है, और न कभी विच्छेद होगा । (सच्च-
दुक्खप्पहीणमग्गे) समस्त दुःखों का जिसमे सर्वथा अभाव है ऐसे मोक्ष का यही एक
उत्तम मार्ग है । जिस लिये यह प्रभु द्वारा प्रतिपादित आगम पूर्वोक्त प्रकार से इन सदगुणों

आधा आवती नथी (सल्लकत्तणे) भाया, मिथ्यात्व तेमञ्च निदान शल्योना
कर्त्तन (छेदन) आ आगमथी थाय छे (सिद्धिमग्गे) आ आगमञ्च सिद्धि-कृत-
कृत्यतानो अेठ मार्ग छे (मुत्तिमग्गे) समस्त कर्मोना क्षयनो आ अेठ उपाय
छे (णिव्वाणमग्गे) समस्त कर्मोना क्षयथी उत्पन्न थता पारमार्थिक सुखनो
आञ्च अेठ अन्तो छे (णिज्जाणमग्गे) ससारमा एवमु पुन आगमन न थाय
अे इथथी ने एवमु ससारथी प्रस्थान थाय छे तेनु प्रधान कारण अेठ
आञ्च आगम छे (अवित्रह) आ आगम त्रणु काणमा पणु कुतर्को द्वारा बाधत
नथी (अविसंधि) महाविदेह क्षेत्रनी अपेक्षाथी नथी आनो कही विच्छेद थयो,
नथी विच्छेद थातो अने नथी कही विच्छेद थवानो. (सच्चदुक्खप्पहीणमग्गे)
समस्त दुःखोना नेमा अलाव छे अेवा मोक्षनो आ अेठ उत्तम मार्ग छे
नेथी प्रभु द्वारा प्रतिपादन करेणु आ आगम पूर्वोक्त अेवा सदगुणोथी युक्त

मुञ्चति परिणिव्वायंति सब्बदुक्खाणमंतं करेति । एगच्चा पुण

मार्गं, यत् एव सदगुणगुम्फित नैर्ग्रन्थ प्रवचनम्, अतएव 'इहद्विया जीवा सिञ्जति' इह स्थिता जीवा सिध्यन्ति-इह=नैर्ग्रन्थप्रवचने स्थिता=एतदाराधना जीवा सिध्यन्ति=सिद्धिपद प्राप्नुवन्ति, अणिमादिसिद्धिं वा 'बुज्झति' बुध्यन्ते-कमलज्ञानप्राप्त्या नि शेष-विशेष जानन्ति, 'मुञ्चति' मुच्यन्ते-भवोपग्राहिणा कर्मणा निरगतत्वात्, 'परिणि-व्वायति' परिनिर्वान्ति-कर्मजन्यसकलसन्तापरिरहात्, वक्तव्यसाग वक्ति-'सब्वदुक्खाण-मंतं करेति' सर्वदु खानामन्तं कुर्वन्ति-सर्वेषा शारीरिकमानसिकानां दुःखानाम् अन्तःनाशं कुर्वन्ति ।

'एगच्चा पुण एगे भयत्तारो' एकाचा पुनरेके भवन्ता - एकैव अर्चा=भविष्यन्ती मनुष्यतनुयेषां ते एकाचा सन्त, पुनरेके=केचिद् भवन्ता =नैर्ग्रन्थप्रव-से युक्त है। इसीलिये (इहद्विया जीवा सिञ्जति) जो जीव इसकी आराधना में अपने जीवन का उत्सर्ग कर देते हैं वे नियमत सिद्धिपद के प्रापक होते हैं, (अणिमादि-सिद्धिं वा) अथवा इस लोक में अणिमादि सिद्धि के धारक होते हैं। (बुज्झति) केवलज्ञान की प्राप्ति से सभी वस्तुओं को जानते हैं। (मुञ्चति) भवोपग्राहिकों का सम्पूर्णरूप से नाश होने के कारण वे मुक्त हो जाते हैं। (परिणिव्वायति) कर्मजन्य समस्त फल के विरह से वे शीतलीभूत हो जाते हैं। (सब्वदुक्खाणमतं करेति) शारीरिक एवं मानसिक समस्त दुःखों का वे ही अन्त करनेवाले होते हैं। (एगच्चा पुण एगे भयत्तारो) इस निर्ग्रन्थ प्रवचन की आराधना करनेवाले भव्य जीव वर्तमान शरीर के छूट जाने के बाद मात्र एक बार मनुष्य शरीर धारण करते हैं, अर्थात् वे एकावतारी होते हैं। वे भव्य जीव इस शरीर के छूटने पर (पुब्वन्ममावसेसेण) पूर्वकर्मों के बाँकी

छे तेथी च (इहद्विया जीवा सिञ्जति) च एव आनी आराधनाया पीताना एवमेवो उत्सर्ग करी दे छे तेओ नियमत-निश्चयथी-सिद्धिपदने प्राप्त थाय छे, (अणिमादिसिद्धिं वा) आ बोधमा अणुमादि-सिद्धिने पाये छे (बुज्झति) केवलज्ञानकी प्राप्तिथी पधी चनुओ न्ने छे (मुञ्चति) लवोपग्राहि डमेने स पृष्ठं रूपे नाश थवाना कारणे तेओ मुक्त थथ नथ छे (परिणिव्वायति) कर्म-जन्य समस्त फलपना विरहथी (त्यागथी) तेओ शीतलीभूत पनी नथ छे (सब्वदुक्खाणमतं करेति) शारीरिक तेमच मानसिक समस्त दुःखोना तेओ अत करवावाणा होय छे (एगच्चा पुण एगे भयत्तारो) आ निर्ग्रन्थ प्रवचनकी आराधना करवावाणा भव्य एव वर्तमान शरीर छरी चवा पाद मात्र अेकवार मनुष्य शरीरने धारण करे छे अर्थात् तेओ अेकावतारी थाय छे ते लव्य

उए सल्लकत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे णिज्जाणमग्गे अवितहम-
विसंधि सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे इहद्विया जीवा सिज्जंति बुज्जंति

भावगत्याणि विच्छेदमायातीनि । 'सिद्धिमग्गे' सिद्धिमार्ग - सिद्धि = कृतकृत्यता - तस्या
मार्ग = उपाय, 'मुत्तिमग्गे' मुक्तिमार्ग = सकृदकर्मप्रयोगस्य इत्, 'णिज्जाणमग्गे'
निर्वाणमार्ग - निर्वाणस्य = सकृदकर्मभयजन्यस्य पारमार्थिकसुखस्य मार्ग, 'णिज्जाणमग्गे'
निर्याणमार्ग - निर्याणम् = अपुनगवृत्त्या मसारात् प्रस्थान तस्य मार्ग, 'अवितहं'
अवितथम् - वितथ = मिथ्या तद्विपरीत - त्रिकालावाधितमित्यर्थ । 'अविसंधि' अविसंधि =
अव्यवच्छिन्न - न कदाचिदपि विच्छेदमुपगतम् । 'सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे' सर्वदुःखप्रहीण-
मार्ग - सर्वाणि = जन्ममरणानि दुःखानि प्रहीणानि यत्र स सर्वदुःखप्रहीणो मोक्षस्तस्य

कर्तन (छेदन) इसी आगम से होता है । (सिद्धिमग्गे) यह आगम ही सिद्धि - कृत
कृत्यता का एक मार्ग है । (मुत्तिमग्गे) समस्त कर्मों के क्षय का यही एक उपाय है ।
(णिज्जाणमग्गे) समस्त कर्मों के क्षय से उद्भूत पारमार्थिक सुख का यही एक रास्ता
है । (णिज्जाणमग्गे) मसार में जीव का पुन आगमन न हो इस रूप से जो जीव का
मसार से प्रस्थान होता है उसका प्रधान कारण एक यही आगम है । (अवितह) यह
आगम त्रिकाल में भी कुतर्कों द्वारा बाधित नहीं है । (अविसंधि) महाविदेह क्षेत्र की
अपेक्षा से - न इसका कभी विच्छेद होता है, और न कभी विच्छेद होगा । (सव्व
दुक्खप्पहीणमग्गे) समस्त दुःखा का जिसमें सर्वथा अभाव है ऐसे मोक्ष का यही एक
उत्तम मार्ग है । जिस लिये यह प्रभु द्वारा प्रतिपादित आगम पूर्वोक्त प्रकार से इन सद्गुणों

भाधा आवती नथी (सल्लकत्तणे) भाया, मिथ्यात्व तेमञ्च निदान शक्त्येना
कर्तन (छेदन) आ आगमथी थाय छे (सिद्धिमग्गे) आ आगमञ्च सिद्धि-कृत-
कृत्यतेनो अेठ मार्ग छे (मुत्तिमग्गे) समस्त कर्मोना क्षयतेना आ अेक उपाय
छे (णिज्जाणमग्गे) समस्त कर्मोना क्षयथी उत्पन्न यता पारमार्थिक सुभने
आञ्च अेठ अन्तो छे (णिज्जाणमग्गे) स सारमा एवतु पुन आगमन न थाय
अे इपथी अे एवतु स सारथी प्रस्थान थाय छे तेतु प्रधान कारण अेक
आञ्च आगम छे (अवितह) आ आगम त्रलु बाणमा पलु कुतर्को द्वारा बाधित
नथी (अविसंधि) महाविदेह क्षेत्रनी अपेक्षाथी नथी आनो कही विच्छेद थयो,
नथी विच्छेद थातो अने नथी कही विच्छेद थवानो. (सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे)
समस्त दुःखेनो अेमा अलाव छे अेवा मोक्षतेना आ अेक उत्तम मार्ग छे
अेथी प्रलु द्वारा प्रतिपादन करेणु आ आगम पूर्वोक्त अेवा सद्गुणोथी युक्त

मुञ्चति परिणिव्वायति सव्वदुक्खाणमन्तं करेति । एगच्चा पुण

मार्ग, यत एव सदगुणगुम्फित नैर्ग्रन्थ प्रवचनम्, अतएव 'इहद्विया जीवा सिञ्जति' इह स्थिता जीवा सिध्यन्ति-इह-नैर्ग्रन्थप्रवचने स्थिता=एतदाराधका जीवा सिध्यन्ति=सिद्धिपद प्रान्नुवन्ति, अणिमादिसिद्धिं वा 'बुज्जति' बुध्यन्ते-केवलज्ञानप्राप्त्या नि शेष-विशेष जानन्ति, 'मुञ्चति' मुच्यन्ते-भवोपप्राहिगा कर्मणा निरग्नष्टयात्, 'परिणि-व्वायति' परिनिर्वान्ति-कर्मजन्यसकलसन्तापविरहात्, वक्तव्यसाग वक्ति-'सव्वदुक्खाण-मतं करेति' सर्वदु खानामन्तं कुर्वन्ति-सर्वेषा शारीरिकमानसिकानां दु खानाम् अन्त=नाश कुर्वन्ति ।

'एगच्चा पुण एगे भयतारो' एकाचा पुनरेके भदन्ता - एकैव अर्चा=भविष्यन्ती मनुष्यतनुयेषां ते एकार्चा सन्त, पुनरेके=केचिद् भदन्ता =नैर्ग्रन्थप्रव-से युक्त है । इसीलिये (इहद्विया जीवा सिञ्जति) जो जीव इसकी आराधना में अपने जीवन का उत्सर्ग कर देते हैं वे नियमत सिद्धिपद के प्रापक होते हैं, (अणिमादि-सिद्धिं वा) अथवा इस लोक में अणिमादि सिद्धि के धारक होते हैं । (बुज्जति) केवलज्ञान की प्राप्ति से सभी वस्तुओं को जानते हैं । (मुञ्चति) भवोपप्राहिकर्मों का सम्पूर्णरूप से नाश होने के कारण वे मुक्त हो जाते हैं । (परिणिव्वायति) कर्मजन्य समस्त ताप के विरह से वे शीतलीभूत हो जाते हैं । (सव्वदुक्खाणमतं करेति) शारीरिक एवं मानसिक समस्त दु खों का वे ह्रास अन्त करनेवाले होते हैं । (एगच्चा पुण एगे भयतारो) इस निर्ग्रन्थ प्रवचन की आराधना करनेवाले भव्य जीव वर्तमान शरीर के छूट जाने के बाद मात्र एक बार मनुष्य शरीर धारण करते हैं, अर्थात् वे एकापतारी होते हैं । वे भव्य जीव इस शरीर के छूटने पर (पुञ्जममावसेसेण) पूर्वकर्मों के बाँकी

छे तेथी च (इहद्विया जीवा सिञ्जति) च एव चानी आराधनामा पोताना एव नने उल्मर्ग करी हे छे तेथो नियमत-निश्चयथी-सिद्धिपदने प्राप्त थाय छे, (अणिमादिसिद्धिं वा) आ डोडमा अष्टिमादि-सिद्धिने पामे छे (बुज्जति) केवलज्ञाननी प्राप्तिथी यधी वस्तुथो ज्ञे छे (मुञ्चति) भवोपप्राहि कर्मोने स पूरुं इपे नाश थवाना करे छे तेथो मुक्त थथ जय छे (परिणिव्वायति) कर्म-जन्य समस्त स तापना विरहथी (त्यागथी) तेथो शीतलीभूत यनी जय छे (सव्वदुक्खाणमतं करेति) शारीरिक तेम च मानसिक समस्त दु खोना तेथो अत करवावाणा होय छे (एगच्चा पुण एगे भयतारो) आ निर्ग्रन्थ प्रवचननी आरा-धना करवावाणा लव्य एव वर्तमान शरीर छरी जवा पाद मात्र जेठवार मनुष्य शरीरने धारण करे छे अर्थात् तेथो जेकापतारी थाय छे ते लव्य

एगे भयंतारो पुत्रकम्मावसेसेण अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उवत्तारो भवन्ति, महड्डिएसु जाव महामुसुखेसु दूरंगइएसु चिरट्टिएसु । ते णं तत्थ देवा भवन्ति—महिड्डिया जाव चिर-

चनस्थाराधका भव्या , ' पुत्रकम्मावसेसेण ' पूर्वकमाऽवसेसेण , ' अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उवत्तारो भवन्ति ' अन्यतमेपु देवलोरुपु देवत्तेनोपत्तारो भवन्ति , ' महड्डिएसु जाव महामुसुखेसु दूरंगइएसु चिरट्टिएसु ' महर्दिकेपु यावन्महामौग्येपु—अत्र याव च्छब्दात्—' महज्जुटएसु, महापत्तेसु, महायसेसु, महाणुभागेसु ' इति दृश्यम् । प्राग्भ्याएयातमेतत् । दूरगतिकेपु=अनुत्तरविमानादिपु चिरस्थितिकेपु—चिग=बहुसागरोपमा स्थितिर्येपु तेपु । ' ते ण तत्थ देवा भवन्ति ' ते खड्ड तत्र देवा भवन्ति, कीडगा देवा भवन्ता यथाऽऽह—' महिड्डिया ' महर्दिका =महर्द्वि-पत्ता , यावत्—' चिरट्टिया ' चिर-

रहने के कारण (अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उवत्तारो भवन्ति महड्डिएसु जाव महामुसुखेसु दूरंगइएसु चिरट्टिएसु) महर्दिक—विमान आदि महासम्पत्तिवाले, महाद्युतिक= विविध रत्न आदि की महाकान्तिवाले, महानल—अत्यन्त स्थिर अर्थात् द्रव्यरूप से शाश्वत, महायशस्वी—शास्त्रों द्वारा प्रशंसित, महानुभाग—महाप्रभावशाली, महासौख्य—अत्यन्त सुख के निधानरूप, चिरस्थितिक—बहुत सागरोपमका स्थितिवाले, दूरगतिक—मनुष्यलोक आदि से अत्यन्त दूरवर्ती, ऐसे अनुत्तर विमानादिक देवलोकों में से किसी एक देवलोक में उत्पन्न होते हैं । (ते ण तत्थ देवा) वे देव वहाँ पर (भवन्ति महिड्डिया जाव चिरट्टिया) महर्दिक—विमान आदि की महासम्पत्तिवाले, महाद्युति—शरीर और आभरण की महा-

आ शरीर छटी जाता (पुत्रकम्मावसेसेण) पूर्व कर्मों जाकी रखेवाना कारणे (अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उवत्तारो भवन्ति महड्डिएसु जाव महामुसुखेसु दूर गइएसु चिरट्टिएसु) महर्दिक—विमान आदि महासम्पत्तिवाला, महाद्युतिक विविध रत्नआदिनी महाकान्तिवाला, महाअल—अत्यन्त स्थिर अर्थात् द्रव्यरूपशी शाश्वत, महायशस्वी—शास्त्रों द्वारा प्रशंसित, महानुभाग—महाप्रभावशाली, महासौख्य—अत्यन्त सुखनिधान रूप, चिरस्थितिक—धृष्ट सागरोपमनी स्थितिवाला, दूरगतिक—मनुष्य लोक आदिथी अत्यन्त दूरवर्ती, जेवा अनुत्तर विमानादिक देवलोकमाना केथि जेक देवलोकमा उत्पन्न थाय छे (ते ण तत्थ देवा) ते देव त्या (भवन्ति महिड्डिया जाव चिरट्टिया) महर्दिक—विमान आदिनी महासम्पत्तिवाला, महाद्युति—शरीर अने आभरणनी महाकान्तिवाला, महाअल-

द्विडया हार-विराडय-वच्छा जाव पभासमाणा कप्पोवगा गति-

स्थितिका = चिरकालस्थितिका, 'हारविराडयवच्छा' हारविगजितवक्षस्का = हारभूषितद्वय्या,
 'जाव पभासमाणा' यावत् प्रभासमाना - यावच्छब्दादिद्वयम् - 'कडय-तुडिय-थभिय-
 भुया' कटक-त्रुटित-स्तम्भित-भुजा 'अगय-कुडल-मट्ट-गडयल-कृष्णपीठ-धारी'
 अङ्गद-कुण्डल-गण्डतन-कूर्गपीठ-धारिण 'विचित्त-वत्या-भरणा' विचित्र-वला-
 SSभरणा, 'विचित्तमाला' विचित्रमाला, 'मउलिमउडा' मौलिमुकुटा, 'कल्लाणग-
 पवर-वत्थ-परिहिया' क-याणक-प्रवर-वल-परिहिता, 'कल्लाणग-पवर-मल्ला-
 पुलेवणा' कल्याणक-प्रवर-माच्या-नुलेपना, 'भासुरवोदी' भास्वरदेहा, 'पलव-
 णमालधरा' प्रलम्बवनमालधरा 'दिव्वेण सघाएण' दिव्येन सघातेन, 'दिव्वेण
 सठाणेण' दिव्येन स्रथानेन = सुन्दरेणाSSकारेण, 'दिव्वाए इड्डीए' दिव्यया रुद्ध्या,
 'दिव्वाए जुईए' दिव्यया दुत्या, 'दिव्वाए पभाए' दिव्यया प्रभया 'दिव्वाए
 छायाए' दिव्यया छायाया, 'दिव्वाए अच्चीए' दिव्येन अर्चिपा = दिव्येन तेजसा,
 'दिव्वाए लेसाए' दिव्यया लेस्यया, 'दस दिसाओ उज्जोयमाणा' दश दिगा

उद्घातयन्त - समन्तात्सवान् दिगाभोगान् विभासयन्त इति। 'पभासमाणा' प्रभा-
 कान्तिवाले, महायल-शरीर से अत्यन्त बलयान्, महायशस्वी-अत्यन्त यशवाले, महानुभाग-
 अत्यन्त प्रभायवाली, महातीरय-मुसपुज को भोगनेवाले और चिरस्थितिक-अनेक सागरो-
 पमरिधितियाले होते हैं। इनका वक्ष स्थल सदा हारों की मालाओं से सुशोभित रहा
 करता है। (जाव पभासमाणा) यहाँ 'जाव' गन्ध से (कडय-तुडिय-थभिय-भुया
 अगय-कुडल-गडयल-कृष्णपीठ-धारी विचित्त-वत्या-भरणा विचित्तमाला
 मउलिमउडा कल्लाणग-पवर-वत्थ-परिहिया कल्लाणग-पवर-मल्ला-पुलेवणा
 भासुरवोदी पलव-णमाल-धरा दिव्वेण सघाएण दिव्वेण सठाणेण दिव्वाए
 इड्डीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वाए

शरीरे धरणा भणवान्, महायशस्वी-अत्यन्त यशवाला, महानुभाग-अत्यन्त प्रभा-
 वशाली, महासौभ्य-सुभाषुर्ने भोगववावाणा अने चिरस्थितिक-अनेक साग-
 रोपम स्थितियाणा थाय छे अेभुं वक्ष-स्थल महा हारोनी मालाओथी सुशोभित
 रह्या करे छे (जाव पभासमाणा) अही 'जाव' शब्दथी (कडय-तुडिय-थभिय-
 भुया अगय-कुडल-गडयल-कृष्णपीठ-धारी विचित्त-वत्या-भरणा विचित्त-माला
 मउलिमउडा कल्लाणग-पवर-वत्थ-परिहिया कल्लाणग-पवर-मल्ला-पुलेवणा भासुर-
 वोदी पलव-णमाल-धरा दिव्वेण सघाएण दिव्वेण सठाणेण दिव्वाए इड्डीए दिव्वाए
 जुईए, दिव्वाए पभाए, दिव्वाए छायाए, दिव्वाए अच्चीए, दिव्वाए लेसाए दस

कङ्कलाणा ठिङ्कङ्कलाणा आगमेसिभवा जाव पडिरूवा । तमाडक्खड-

समाना = प्रकृपेण गोभमाना 'कप्पोवगा' कन्पोवगा-कन्प = इन्द्र-सामानिक-त्रायखिण
 पारिषदा त्तरक्ष-त्रो रूपाला नीरु-प्रकीर्णका भियोग्य-किन्विपिक-व्यवहाररूप आचारस्तमुप
 गता = प्राता, सौधमादिदेवलोकगतिवैमानिकदेवव प्रामा, 'गङ्कङ्कलाणा' गतिकन्याणा-
 कन्याणा गतिर्येषा ते तथा, अथवा-गया=चतुर्गतिकल्लोके देवगतिरूपया कन्याणा=

लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पमासमाणा) इस पाठ का अर्थ हुआ है, इस
 का अर्थ इस प्रकार है-इनकी भुजाएँ कटक-कडे और घुटित-मुजव इन आम्रणों से
 विभूषित रहा करती हैं। चाकी के इन समस्त पदों का अर्थ पीछे जहाँ पर देवों के
 आगमन का वर्णन किया गया है उस ३३वें सूत्र में लिखा जा चुका है। (कप्पोवगा)
 इन्द्र, सामानिक, त्रायखिण, पारिषदा, आत्तरक्षक, लोकरपाल, अनीकाधिपति, प्रकीर्णक,
 आभियोग्य, किन्विपिक, ये दस प्रकार के देव जहाँ होते हैं उन देवलोकों का नाम कन्प है।
 इन कन्पों में जो उत्पन्न होते हैं उनका नाम कन्पोवगा है। सौधमादिक देवलोक से अच्युत
 देवलोक तक के देव कन्पोवगा कहलाते हैं, क्यों कि यहाँ तक इन्द्रादिक १० प्रकार के
 देवों का व्यवहार होता है, इनके बाद नहीं। (गङ्कङ्कलाणा) इनकी गति कन्याणकारी
 होती है, अथवा चतुर्गतिक इस लोक में ये देवगति में रहनेवाले होने के कारण उत्तम
 होते हैं, इस अपेक्षा ये गतिकन्याण कह गये हैं। (ठिङ्कङ्कलाणा) अनेक पन्थोपम-

(१) असुरकुमारों के वर्णन में इन समस्त पदों का अर्थ लिया गया है।

दिसाओ उज्जोवेमाणा पमासमाणा) आ पाठने सशुद्ध कथें छे आने अर्थ
 आ प्रकारे छे अमनी बुद्धिओ कटक (कडा) अने घुटित-बुद्धिओ अ
 आलुधलोथी शलुगादेवी रहे छे पाडीना आ अथा पहोने अर्थ अगाडि
 न्या देवानो आगमननु वर्णन कथुं छे ते उउमा सूत्रमा लपार्थ गथुं छे ?
 (कप्पोवगा) इन्द्र, सामानिक, त्रायखिण, पारिषदा, आत्तरक्षक, लोकरपाल,
 अनीकाधिपति, प्रकीर्णक, आभियोग्य, किन्विपिक, आ दस प्रकारना देव न्या
 डोय छे ते देवलोकनु नाम कटप छे आ कल्पोमा ने उत्पन्न थाय छे
 तेभना नाम कल्पोवगा छे सौधमादिक देवलोकथी लधने अच्युत देवलोक
 सुधीना देव कल्पोवगा कडेवाय छे केभके अडी सुधी धरादिक १० प्रकारना
 देवानो व्यवहार थाय छे त्यार पछी नहि (गङ्कङ्कलाणा) तेभनी गति कन्याण-
 कारी डोय छे अथवा चतुर्गतिक आ लोकमा तेओ देवगतिमा रहेवावाणा
 डोवाने नारहे उत्तम डोय छे आ अपेक्षाथी तेओ गतिकन्याणु कडेवाय छे

(१) असुरकुमारों के वर्णन में आ अथा पहोने अर्थ लपार्थ गथे छे

एवं खलु चउर्हि ठाणेहि जीवा णेरइयत्ताए कम्मं पकरेंति,

भद्ररूपा, 'टिडकहाणा' स्थितिक्रत्याणा = अनेकपच्योपममागरोपमरूपचिगस्थितिका
 'आगमेसिभद्दा' आगमिष्यद्भद्र - आगमिष्यत् = आगामिकालभावि भद्र = क्रत्याण - निर्वाणरूप
 येपा ते तथा, 'जाव पडिस्वा' यावत्प्रतिरूपा = अतिरमणीयाऽऽकारा, यावच्छब्दात् -
 'प्रासादीया दर्शनीया अभिरूपा' इति श्लेषम् । पुनरपि 'तमाइक्खइ' तदाचष्टे = तत्प्रवचन
 कथयति - 'एव खलु चउर्हि ठाणेहि जीवा णेरइयत्ताए कम्मं पकरेंति' एव खलु
 चतुर्भि स्थानैर्जीवा नैगयिकृताया कर्माणि प्रकुर्वन्ति, तत्र नैगयिकृताया = नारिकिवत्स्य,

सागरोपम तत्र देवलोक में इनकी स्थिति होने के कारण ये देव स्थितिक्रत्याण कहे गये हैं ।
 इनम से आकर ही तो मनुष्यपर्याय लेकर जीव निर्वाण-मुक्ति का लाभ करते हैं, अत वे
 (आगमेसिभद्दा) आगमिष्यद्भद्र कहे गये हैं । (जाव पडिस्वा) यहाँ पर 'यावत्' शब्द
 से "प्रासादीयाः, दर्शनीयाः, अभिरूपाः" इन पदों का भी स्पष्ट हुआ है । 'प्रासा-
 दीयाः' दृष्टे देगने से मन प्रसन्न हो जाता है । अत एव ये 'दर्शनीयाः' दर्शनीय हैं ।
 'अभिरूपाः' इनके रूप की सुन्दरता प्रतिक्षण नवीन नवीन भाव से बढ़ती रहती हो
 गेमे ये मादम होते हैं, इसलिये ये अभिरूप हैं । 'प्रतिरूपाः' इनके रूप को तुलना नहा
 हो सकती है, क्योंकि इनका रूप असाधारण होता है, अर्थात् ये अनुपम सुन्दर होते हैं ।
 अत एव प्रवचन का क्या फल है ? इसको कहते हैं—

(एव गलु चउर्हि ठाणेहि जीवा णेरइयत्ताए कम्मं पकरेंति) यह जीव
 चार कारणों द्वारा नरक में ले जानेवाले कर्मों को करते हैं, अत इस बात को प्रभु प्रकट

(टिडकहाणा) अनेक पच्योपम सागरोपम सुधी देवलोकमा तेमनी स्थिति
 होवाना जण्णे ते देवो स्थितिक्रत्याणु ढडेवाय छे तेमाथी आधीने न मनु-
 ष्यपर्याय प्राप्त करी एव निर्वाण-मुक्तिना लाभ करे छे, भाटे तेओ (आग-
 मेसिभद्दा) आगमिष्यद्भद्र ढडेवाय छे (जाव पडिस्वा) अही यावत्
 शब्दही 'प्रासादीया, दर्शनीया, अभिरूपा' ओ पढोना पणु सअड थयो छे
 'प्रासादीया' - ओमने जेता मन प्रसन्न थछ जय छे आ भाटे न तेओ
 'दर्शनीया' दर्शनीय छे 'अभिरूपाः' ओमना इपनी सुदरता प्रतिक्षण नवीन
 नवीन भावथी वधती जाती होय तेम तेओ जण्णाय छे, ते भाटे तेओ अलि-
 इप न 'प्रतिरूपा' तेमना इपनी तुलना न थछ शके, तेमजे तेमनु इप
 असाधारणु होय छे, अर्थात् तेओ अनुपम सुदर होय छे हुवे आ प्रव
 चननु शु शक छे ? ते ढडे छे-

(एव खलु चउर्हि ठाणेहि जीवा णेरइयत्ताए कम्मं पकरेंति) आ एव चार

गेरइयत्ताए कम्मं पकरेत्ता गेरइएसु उववज्जति, तं जहा-महा-
रंभयाए १ महापरिग्गहयाए २ पंचिंदियवहेणं ३ कुणिमाहारेणं
४, एवं एएणं अभिलावेणं । तिरिक्खजोणिएसु-१ माइल्लयाए

‘गेरइयत्ताए कम्म पकरेत्ता गेरइएसु उववज्जति’ नैरयिक्रतायै कमागि प्रवृत्त्य=प्रकरणेण
विधाय नैरयिकेषु उत्पद्यन्ते=नारकजीमाना मग्ये जायन्ते, तजहा-तद्यथा=येन प्रकांगेण नैरयि
केषु जायन्ते तत् कथयति सूत्रकार-१ ‘महारभयाए’ महारम्भतया=सायबाऽऽरम्भ-
बाहुल्येन,-२ ‘महापरिग्गहयाए’ महापरिग्रहतया=परिग्रहाभिरस्येन, ३ ‘पंचिन्द्रियवहेण’
पञ्चेन्द्रियवधेन=पञ्चेन्द्रियप्राणिना हिंसया, ४ ‘कुणिमाहारेण’ कुणपाहारेण=मामाहारेण, ‘एव
एएणं अभिलावेणं’ एवमेतेनाभिलापेन=कथनेन ‘तिरिक्खजोणिएसु’ निर्येग्योनिषु-तिरिक्खा
योनय=उत्पत्तिस्थानानि तत्र, १-माइल्लयाए णियडिल्लयाए’ मायानितया निकृतिमत्तया-
माया=परवञ्चना सैपामस्तीति मायाविन तेपा भावरत्ता तथा, निकृति-मायान्तरणार्थं
मायान्तरकरण सैपामस्तीति निकृतिमन्त, तद्भावो निकृतिमत्ता तथा, २ ‘अलियवयणेण’

करते हैं-(त जहा) वे चार कारण ये हैं-(महारभयाए) महा-आरम्भ, (महा-
परिग्गहयाए) महापरिग्रह, (पंचिंदियवहेण) पंचेन्द्रिय जीवों का वध करना,
(कुणिमाहारेण) मास का आहार करना । इन चार कारणों से (गेरइयत्ताए कम्म पकरे-
त्ता गेरइएसु उववज्जति) नरक में छे जाने के योग्य कर्मों का उपार्जन होता है, इस-
लिये ये जीव नरक में उत्पन्न होते हैं । (एव एएण अभिलावेणं) इसी प्रकारका चार
कारण रूप कथन (तिरिक्खजोणिएसु) तिर्यञ्च गति में उत्पन्न कराने वाले कर्मों का
भी है । वे चार कारण ये हैं-(माइल्लयाए) मायाचारी करना (णियडिल्लयाए) एव माया
को न्तरण करने के लिये और अधिक मायाचारी करना १, (अलियवयणेण) असन्ध-

कारणो द्वारा नरकभा लर्ध ज्जाना उभो करे छे, (तजहा) ते चार कारण आ छे-
(महारभयाए) भडा आर ल, (महापरिग्गहयाए) भडापरिग्रह, (पंचिंदियवहेण) पंचे-
न्द्रिय एवेनो वध करेवा, (कुणिमाहारेण) भाभने आहार करेवा आ चार कारणोथी
(गेरइयत्ताए कम्म पकरेत्ता गेरइएसु उववज्जति) नरकभा लर्ध ज्जवा योग्य कर्मेतु उपा
ज्जन थाय छे तेथी ते एव नरकभा न्य छे (एव एएण अभिलावेण) आ प्रकारना ४
आर कारण ३ प कथन (तिरिक्खजोणिएसु) तिर्यञ्च गतिमा उत्पन्न करानेवा कर्मेतु
पणु छे ते चार कारण आ छे-(माइल्लयाए) मायाचारी करण, (णियडिल्लयाए)
तेभज्ज मायानु सवरण करवा भाटे-डाववा भाटे अन्य मायाचारी करण (१)

णियडिल्लयाए, २ अलियवयणेण, ३ उक्कचणयाए, ४ वचणयाए।

मणुस्सेसु-पगइभइयाए १, पगइविणीययाए २, साणुक्को-

अलीकवचनेन=असयभाषणेन, ३ 'उक्कचणयाए' उक्कचनतया-उक्कचनता नाम क चन सरलहृदय वञ्चयितु प्रवृत्तस्य पर चतुरतर नर पार्श्वस्य विलोक्य क्षण वञ्चनानिवृत्त-
तयाऽवस्थान तथा, कपटवृत्त्या, ४ 'वचणयाए' वचननया। एतैश्चतुर्भि स्थानैर्जीवा
स्तिर्यग्योनिषु यान्ति। मनुष्यजीवेषु पुन कैश्चतुर्भि स्थानैरुत्पद्यन्ते? तदर्गयितुमाह-
'मणुस्सेसु' इत्यादि। मनुष्येषु, 'पगइभइयाए' प्रकृतिभद्रतया=स्वभावसरलतया १,
'पगइविणीययाए' प्रकृतिविनीततया=स्वभावतो विनयशीलतया २, 'साणुक्कोसयाए'
सानुक्कोगतया-अनुक्कोगो=दया तेन सह वर्तने इति सानुक्कोगस्तस्य भाव सानुक्कोगता
तया-सदयतया ४, 'अमन्ठरियाए' अमत्तगितया-ममरोऽन्यशुभद्वेषस्तदभावोऽमत्सर =
परगुणप्राहित्व सोऽस्येषामित्यम सरिणस्तदभावोऽमसरिता तथा-ईर्ष्यांराहित्येन। एतैश्चतुर्भि

भाषण करना २, (उक्कचणयाए) किमी सरल हृदयवाले व्यक्ति को ठगने के लिये प्रवृत्त हुए
ठगिया-मायाचारी वाले का, उम सरल पुरुष के पास किमा चतुर पुरुष की स्थिति देख-
कर कुछ समयतक वचनामय अपनी प्रवृत्ति को स्थगित कर ठहर जाना-कपटवृत्ति को रोक
रखना ३, (वचणयाए) दूसरों को ठगना ४। इन चार कारणोंसे जीव त्रिर्ध्वगति में ले जाने
वाले कर्मों का उपाजन करते हैं। (मणुस्सेसु) मनुष्यगति में जीव चार कारणों से जाते
हैं। वे कारण ये हैं-(पगइभइयाए) प्रकृति से भद्र होना १, (पगइविणीययाए) प्रकृति
से विनात होना २, (साणुक्कोसयाए) दयालु होना ३, एव (अमन्ठरियाए) मत्सरभाज
नहीं रखना अर्थात् गुणप्राही होना ४। इन चार कारणों से ये जीव मनुष्यगति में उत्पन्न

(अलियवयणेण) असत्य भाषण करने (२) (उक्कचणयाए) दोष सरल हृदयवाला
भाषुसने ठगवा-छेतरवा-भाटे प्रवृत्त थनारा ठग-भाया-आगीवाणानु, ते
सरण पुरुषनी पासे दोष चतुर पुरुषनी डानरी नेध थोडा समय भाटे
वचनामय पोतानी प्रवृत्तिने स्थगित करी शोकाध जवु-पोतानी उपटवृत्तिने
शोकी राणवु (३) (वचणयाए) जीवने ठगवा (४) आ याः कारणोधी एव
तिर्यग् गतिमा लध जवा लेवा उर्भोनु उपाजन करे छे (मणुस्सेसु) मनुष्य-
गतिमा आ एव ४ कारणोधी नय छे ते कारणो आ छे-(पगइभइयाए)
प्रकृतिथी भद्र डोवु (१), (पगइविणीययाए) प्रकृतिथी विनीत डोवु (२),
(साणुक्कोसयाए) दयालु डोवु (३), तेमज (अमन्ठरियाए) मत्सरभाव न
राणवो अर्थात् शुष्कआही थवु (४) आ याः कारणोधी आ एव मनुष्य

सयाए ३, अमच्छरियाए ४। देवेषु-सरागसंजमेणं १,
संजमासंजमेणं २, अकामणिज्जराए ३, चालतवोकम्मेणं ४।
तमाइक्खइ-

स्थानैर्जावा मनुजव प्राप्नुवति । देवप्राप्तिहस्तभूतानि च्याग्नि स्थानानि दर्शयति-‘देवेषु’
इत्यादि । देवेषु-‘सरागसंजमेणं’ सरागमयमेन-रागेग=आसक्त्या सहित सराग स
चासौ मयमथ सरागयुमस्तेन-सकृपायचारिणेण १, ‘संजमासंजमेणं’ मयमामयमेन=
देगमयमेन २, ‘अकामणिज्जराए’ अकामनिर्जरा-अकामेन=अभिलाषमन्तरेण निर्जग=
क्षुधादिसहन तथा ३, ‘चालतवोकम्मेणं’ चालतप कर्मणा=नालसाइयाद् बाल =
मिथ्यादृश, तेपा तप कर्म चालतप कर्म, तेन ४, एतै स्थानैर्जावा देवभव प्राप्नुवन्तीति भाव ।
पुन प्रकारान्तरेण ‘तमाइक्खइ’ तदाप्याति=तत् कथयति ‘जह णरगा गम्मती’

कराने वाले कर्मों का उपार्जन करते हैं । (देवेषु) चार कारणों से जीव देवगति में उपन्न
होते हैं । वे चार कारण ये हैं-(सरागसंजमेणं) सरागमयम का पालन करना १, (संजमा-
संजमेणं) देशविरति पालन करना २, (अकामणिज्जराए) अकामनिर्जरा ३, एव (चाल-
तवोकम्मेणं) बाल तपस्या ४ । जिस स्वयं मे राग (आसक्ति) विद्यमान होता है उस
का नाम सरागमयम है । मतलब-कृपायसहित चारित्र का पालना सरागसयम है । १२-
चारह व्रतों का-देशविरति का धारण करना इसका नाम स्वयमासयम है । अभिलाषा-इच्छा
के बिना क्षुधा आदि का सहन करना इसका नाम अकामनिर्जरा है । मिथ्यादृष्टियों के तप
का नाम चालतप है । इन कामों के करने से जीव देवगति में जाने योग्य कर्मों का उपार्जन
करते हैं । (जह णरगा गम्मती जे णरगा जा य वेयणा णरए। सारीरमाणसाइ दुक्खाइ

गतिमा उत्पन्न करवावाणा कर्मोनु उपाञ्जनं करे छे (देवेषु) चार कारणोथी
एव देवगतिमा उत्पन्न थाय छे-(सरागसंजमेणं) सराग सयमनु पालन करवु १,
(संजमासंजमेणं) देशविरतिनु पालन करवु २, (अकामणिज्जराए) अकाम-
निर्जरा ३, तेभञ्ज (चालतवोकम्मेणं) बाल तपस्या ४) जे सयममा राग-आसक्ति
विद्यमान होय छे तेनु नाम सराग-सयम छे मतलब-कृपाय सहित चारि-
त्रनु पालन करवु ते सरागसयम छे (१) १२ चार व्रतो-देशविरति
धारण करवा तेनु नाम सयमासयम छे (२) अभिलाषा-इच्छा-बिना भूष
आदि सहन करवु तेनु नाम अकाम निर्जरा छे (३) मिथ्यादृष्टिना तपनु
नाम चालतप छे (४) आ कामो करवाथी एव देवगतिमा ज्वायेज्ज कर्मोनु

“ જહ ણરગા ગમ્મંતી, જે ણરગા જા ય વેયણા ણરણ ।
 સારીરમાણસાઠં દુક્ખાઠં તિરિક્ખજોણીણ ॥ ૧ ॥
 માણુસ્સં ચ અણિચ્ચં, વાહિ-જરા-મરણ-વેયણા-પરરં ।
 દેવે ય દેવલોણ, દેવિહ્હિં દેવસોઁખ્વાઠં ॥ ૨ ॥

इयान्निगायामि । ‘जह णरगा गममंती’ यथा नरका गम्यन्ते—जावैर्येन प्रकारेण नरका =नरकरस्थानानि गम्यन्ते=प्रायन्ते, ‘जे णरगा’ ये नरका—यद्रूपा नरका = नारकिग सन्ति, ‘जा य वेयणा णरए’ याश्च वेदना नरके—या =यादृश्यो वेदना = यातनाश्च नरके भवन्ति, तसर्वं कथयतीति पूर्वैगान्वय । ‘सारीरमाणसाठ दुक्खाठ तिरिक्खजोणीए’ शारीरमानसानि दुःखानि तिर्यग्योन्याम्—यथा च शरीरसम्बन्धीनि मन सम्बन्धानि च दुःखानि भवन्ति प्राणिनामिति शेषस्तथा भगवान् परिक्रमयति ॥ १ ॥ एव ‘माणुस्स च अणिच्च वाहि-जरा-मरण-वेयणा-परर’ मानुष्यश्चाऽनिय न्यायि-जरा-मरण-वेदना-प्रचुरम्—व्याधयो=जरादय जरा=वार्धक,मरण=प्रसिद्ध, वेदना = शानोष्णादिस्वरूपा, प्रचुरा =विशदा यस्मिंस्तादृशम्, अतएव अनिय=क्षणभट्गुर मानु- ष्य=मनुष्यमव परिक्रमयति । ‘देवे य देवलोए देविह्हिं देवसोँखाः’ देवान च देवलोकात् देवद्विं देवसौर्यानि—तथा देवान, च पुन देवलोकात्, देवद्वि=देवसमृद्धि, देवसौर्यानि=देवसम्बन्धीनि सुखानि कथयतीति शेष ॥ २ ॥ एतान्येव नरकादीनि

तिरिक्खजोणीए) जीव जिम प्रकार नरका में जाते हैं, और वहा जैसे नारकी हैं, एव उहें जिस प्रकार की वेदना भोगनी पडती है यह सत्र प्रभुन (आडक्खइ) बतलाया। तिर्य- गति में पहुँचने पर इस जीव को जितने भी शारीरिक एव मानसिक कष्ट भोगने पडते हैं, यह भी भगवानने स्पष्ट किया । (माणुस्स च अणिच्च वाहि-जरा-मरण-वेयणा-परर) यह मानवपर्याय अनिय है, व्याधि, जग, मरण एव वेदना से प्रचुर-भरा है । (देवे य

ઉપાજ્ઞન કરે છે (જહ ણરગા ગમ્મંતી જે ણરગા જા ય વેયણા ણરણ । સારીરમાણસાઠ દુક્ખાઠ તિરિક્ખજોણીણ) એવ ને પ્રકારે નરકોમા વ્તય છે, અને ત્યા નેવા નારકી હોય છે, તેમજ તેમને ને પ્રદારની વેદના ભોગવવી પડે છે, એ અધુ પ્રભુએ (આહ્મરહ) બનાવ્યુ તિય ચ-ગતિમા પહોચતા આ એવને નેટલા શારીરિક તેમજ માનસિક દુ ખ હોય છે તે અધા ભોગવવા પડે છે, એ પછુ ભગવાને વ્યપ્ત કર્યું (માણુસ્સ ચ અણિચ્ચ વાહિ-જરા-મરણ-વેયણા-પરર) આ

णरगं तिरिक्खजोणिं, माणुसभावं च देवलोगं च ।
 सिद्धे य सिद्धवसहिं, छज्जीवणियं परिकहेइ ॥ ३ ॥
 जह जीवा वज्झती मुच्चंती जह य संकिलिस्संति ।
 जह दुक्खाणं अंतं, करेति केई अपडिउद्धा ॥ ४ ॥

सगृह्य सूत्रे—'णरग' नरक=नरकावाप्तं, 'तिरिक्खजोणिं' तिर्यग्योनिं, 'माणुसभाव' मनुष्यभाव=मनुष्यत्व च 'देवलोग' देवलोकश्च कथयति । तथा 'सिद्धे य' सिद्धाश्च 'सिद्धवसहिं'—सिद्धवसतिं=सिद्धक्षेत्रं, 'छज्जीवणियं' पद्मजीवनिका परिकथयति ॥ ३ ॥
 एव 'जह जीवा वज्झती' यथा जाया वयन्ते=मन्य प्राप्नुवन्ति, 'मुच्चंती' मुच्यन्ते=मुक्ता भवन्ति, 'जह य संकिलिस्संति' यथा च नाशियन्ति, 'जह दुक्खाण अंतं करेति केई अपडिउद्धा' यथा दुस्मानामन्त कुर्वन्ति केऽपि अप्रतिबद्धा—केऽपि=कृति-चिज्जीवा अप्रतिबद्धा=प्रतिमन्धरहिता—मुक्ता सतो दुस्मानामन्त=नाश कुर्वन्ति, तत्सर्वं

देवलोए देविड्ढिं देवसोमखाइ) एव देवगति मे देवताओं को देवमन्धी अनेक ऋद्धिया एव देवपयायनमधी अनक सौरयो की प्राप्ति होती है—यह सब भी प्रमुने अच्छी तरह स्पष्ट करके अपनी दिव्यध्वनि द्वारा प्रदर्शित किया । (णरग तिरिक्खजोणिं माणुसभाव च देवलोग च । सिद्धे य सिद्धवसहिं छज्जीवणियं परिकहेइ) इस प्रकार प्रमु ने नरक, तिर्यक, मनुष्य एव देवगति का कथन किया, साथ में यह भी बतलाया कि सिद्ध कैसे होते हैं और सिद्धस्थान कैसा है, एव पद्मजीवनिकाय कौन २ हैं । (जह जीवा वज्झती मुच्चती जह य संकिलिस्संति । जह दुक्खाण अंतं करेति केई अपडिउद्धा) जीव जिस प्रकार कर्मों

मानवपर्याय अनित्य छे व्याधि, जरा, मरण तेमज वेदनाथी प्रयुर-लदेकी छे (देवे य देवलोए देविड्ढिं देवसोमखाइ) तेमज देवगतिमा देवताओंने देव-स मधी अनेक ऋद्धियों तेमज देवपर्याय—स मधी अनेक सौख्यनी प्राप्ति थाय छे ये मधु पणु प्रभुये सारी रीते स्पष्ट करीने पोताना दिव्य ध्वनि द्वारा प्रदर्शित कथुं (णरग तिरिक्खजोणिं माणुसभाव च देवलोय च । सिद्धे य सिद्धवसहिं छज्जीवणियं परिकहेइ) आ प्रकारे प्रभुये नरक, तिर्यक, मनुष्य तेमज देवगतिनु कथन कथुं, ते साथे ये पणु अताउथु के सिद्ध देवा डोय छे, अने सिद्धस्थान केपु छे, तेमज पडुलवनिधाय डोणु डोणु छे (जह जीवा वज्झती मुच्चती जह य संकिलिस्संति । जह दुक्खाण अंतं करेति केई अपडिउद्धा) एव जे प्रकारे कर्मोथी

અદ્વા અદ્વિચિત્તા જહ જીવા દુઃખસાગરમુવેતિ ।
 જહ વેરગમુવગયા કમ્મસમુગ્ગં વિહારેતિ ॥ ૫ ॥
 જહ રાગેણ કઢાણં કમ્માણં પાવગો ફલવિવાગો ।
 જહ ય પરિહીણકમ્મા સિદ્ધા સિદ્ધાલયમુવેતિ ॥ ૬ ॥ સૂ૦ ૫૬ ॥

કથયતિ ॥ ૪ ॥ ‘અદ્વા અદ્વિચિત્તા’ આર્તાર્તિતચિત્તા - આર્તાર્ત્વ=આર્તવ્યાનાદ્ આર્તિત=
 પાડિત ચિત્ત યેપા તે તથા, ‘જહ જીવા’ યથા જીવા ‘દુઃખસાગરમુવેતિ’ દુઃખ-
 સાગર=દુઃ સ્વરૂપ સમુદ્રમુપયન્તિ=પ્રાપ્નુવન્તિ, તત્ કથયતિ । ‘જહ વેરગમુવગયા કમ્મ-
 સમુગ્ગં વિહારેતિ’ યથા ચ વૈગ્યમુપગતા =પ્રાપ્તા કર્મસમુદગ-કર્મણા સમુદગ=મન્જૂપા
 કર્મરાશિમિતિ યાવત્ ત્રિષ્ઠાટયન્તિ=ત્રોટયન્તિ-નાશયન્તાતિ યાવત્, તત્ કથયતિ । ‘જહ રાગેણ
 કઢાણ કમ્માણં પાવગો ફલવિવાગો’ યથા ગગગ=પુત્રકરુત્રાદિધ્વમિધ્વહ્નરૂપેણ કૃતાનામ્=
 ઉપાર્જિતાના કર્મગા=જ્ઞાનાવરગીયાદ્રીના પાપક =પાપમય ફલવિપાક =ફલપરિણામો ભવતિ ।

સે વપતે હૈ ઓર જિસ પ્રકાર उनसे छूटते हैं तथा जिस प्रकार से अनक सकलजों को भोगते
 हैं और फिर अप्रतिबद्ध होकर जिस प्रकार से कितनेक भयजीव समस्त प्रकार के दु खों
 का विनाश करते ह यह विषय भी प्रमु न आगत जनता को अच्छी तरह समझाया ।
 (अद्वા અદ્વિચિત્તા જહ જીવા દુઃખસાગરમુવેતિ । જહ વેરગમુવગયા કમ્મસમુગ્ગ
 વિહારેતિ) પ્રમુ ને યહ મી વતલાયા કિ આર્તધ્યાન સે પીડિત ચિત્તવાલે પ્રાણા-જીવ કિસ
 તરહ દુઃખ સાગર મેં ગોતે રાતે રહતે હૈ ઓર કિસ પ્રકાર સે વૈરાગ્ય કો પ્રાપ કર જાવ કર્મ-
 રાશિ કો વિનષ્ટ કર દેતે હૈ । (જહ રાગેણ કઢાણ કમ્માણ પાવગો ફલવિવાગો ।

બધાય છે, અને જે પ્રકારે તેથી છૂટે છે, તથા જે પ્રકારે અનેક સકલજીવોને
 ભોગવે છે, અને પાછા અપ્રતિબદ્ધ થઈને જે પ્રકારે કેટલાક ભવ્ય જીવ
 સમસ્ત પ્રકારના દુઃખનો વિનાશ કરે છે એ વિષય પણ પ્રભુએ આવેલ
 જનતાને મારી ગીતે સમજાવ્યો (અદ્વા અદ્વિચિત્તા જહ જીવા દુઃખસાગરમુવેતિ ।
 જહ વેરગમુવગયા કમ્મસમુગ્ગ વિહારેતિ) પ્રભુએ એ પણ બતાવ્યું કે આર્ત-
 ધ્યાનથી પીડાતા ચિત્તવાળા પ્રાણી-જીવ ડેવી ગીતે દુઃખસાગરમાં ગોથા
 ખાધા કરે છે, અને ડેવી ગીતે વૈરાગ્ય પ્રાપ્ત કરીને જીવ કર્મરાશિનો નાશ
 કરે છે (જહ રાગેણ કઢાણ કમ્માણ પાવગો ફલવિવાગો । જહ ય પરિહીણ
 કમ્મા સિદ્ધા સિદ્ધાલયમુવેતિ) પુત્ર-કરુત્ર આદિમાં આમક્રિયા રૂપ રાગથી ઉપા-

मूलम्—तमेव धम्मं दुविहं आइक्खइ, तं जहा-अगार-

‘जह य’ यथा च—येन प्रकारेण ‘परिहीणरुम्मा’ परिहीनरुमाग—परिहीणानि=विनष्टानि कर्माणि येषां ते, मिद्धा—‘सिद्धाअयमुपेति’ सिद्धाअयमुपयति—लोकान्तक्षेत्रलक्षणं स्थानं प्राप्नुवन्ति, तथा भगवान् परिक्रययतीति पूर्वणावय ॥ सू० ५६ ॥

टीका—‘तमेव’ इत्यादि। ‘तमेव धम्मं दुविहं आइक्खइ’ तमेव=पूर्वोक्तमेव धर्मं द्वित्रिषु=द्विप्रकारम्, आग्यानि=कथयति, ‘तं जहा’ तयथा—‘अगारधम्म अणगारधम्मं च’ अगारधम्मम्, अनगारधम्मं च—अगार=गृहं तास्वध्यादगारा गृहस्था, गृहा दारा इत्यादिवत्, यद्वा—अगारमस्त्येषामियर्थे ‘अर्ण आदिभ्योऽच्’ इति मन्थर्यावच् प्रयय, तेषां धर्म—वक्ष्यमाणस्वरूपस्तम्, तथा—अनगारधम्मं=न विद्यतेऽगार-गृहं येषां तेऽनगारा साधयस्तेषां धर्मस्तं च आग्याति। तत्र प्राधान्यात् प्रथमं

जह य परिहीणरुम्मा सिद्धा सिद्धालयमुपेति) पुत्रकलत्रादिकां मे आसक्तिरूपं रागं से उपार्जितं ज्ञानावरणीयं आदिकं कर्मों का पापमय फल जैसे होता है और कर्मों को नष्ट कर जीव सिद्धावस्थापन हो सिद्धालय में जैसे पहुँचते हैं यह सत्र भी प्रमु ने अपनी देवना में स्पष्ट किया ॥ सू. ५६ ॥

‘तमेव धम्मं दुविहं आइक्खइ’ इत्यादि

प्रमु ने (तमेव धम्मं दुविहं आइक्खइ) इस धर्म को दो प्रकार से कहा है।
(^१अगारधम्म अणगारधम्म च) १ गृहस्थ का धर्म और दूसरा अनगार—मुनि का धर्म।

(१) ‘अगार’ नाम घर का है। परन्तु इस पद से यहाँ उनमें रहने वाले गृहस्थों का ग्रहण हुआ है, अथवा “अर्ण आदिभ्योऽच्” इस सूत्र से अस्त्यर्थ में अच् प्रत्यय करने से भी उनमें रहने वाले गृहस्थों का ग्रहण हो जाता है।

अनं करेला ज्ञानावरणीय आदिक कर्मोंना पापमय इल जेभं थाय छे अने कर्मोंना नाश करी एवं सिद्ध-अवस्था प्राप्त करी सिद्धालय (मुक्ति स्थानमा) जेभं पडोवे छे ते अणु पणु प्रभुअे पोतानी देशनामा स्पष्ट कर्युं (सू. ५६)

“तमेव धम्मं दुविहं आइक्खइ” इत्यादि

प्रभुअे (तमेव धम्मं दुविहं आइक्खइ) आ धर्मं जे प्रकारेनां कही छे
(^१अगारधम्म अणगारधम्म च) १—गृहस्थना धर्मं अने अणान् अनगार-मुनिना

(१) अगार अेटले घर परतु आ पदथी अही तेमा रडेवावाणा गृहस्थो अेवो अर्थ अडणु कथी छे, अथवा “अर्ण आदिभ्योऽच्” आ सूत्रथी ‘अस्ति’ अर्थमा अच् प्रत्यय लगाउवाथी पणु तेमा रडेवावाणा गृहस्थो—अेवो अर्थ थाय छे

धम्मं अणगारधम्मं च । अणगारधम्मो ताव-इह खलु सव्वओ
सव्वत्ताए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वडयस्स सव्वओ
पाणाडवायाओ वेरमणं मुसावाय-अदिण्णादाण-मेहुण-परिग्गह-

अनगारधर्ममेव व्याचष्टे-‘अणगारधम्मो ताव’ इति । अनगारधर्मस्तावत्-तावत्=
प्रथमम् अनगारधर्म उच्यते-‘इह खलु सव्वओ सव्वत्ताए मुंडे भवित्ता अगाराओ
अणगारियं पव्वडयस्स सव्वओ पाणाडवायाओ वेरमणं’ इह खलु सर्वत सर्वान्ना
मुण्डो नृवाङ्गागदनगागिता प्रवृत्तित्य सर्वान्नाङ्गागतिपातादिरमगन्-इह जगति खलु
सर्वत-द्रव्यतो भावतश्चेत्यर्थ, सर्वाङ्गना-परमवैगम्येण मुण्डो नृवा-द्रव्यतो मुण्डो
मल्लके लक्षितकेश, भावतस्तु कषायगामपनयनमिति मुण्डलक्षणाधर्मयोगापुरुषो मुण्ड
उच्यते, अत्र ‘अङ्गं आदिन्योऽव्’ इत्यच्प्रयय, तादृशो नृवेत्यर्थ, अगागद-गृहात्-गृह

(अणगारधम्मो ताव) अनगार का धर्म वे ही जीव पालन करते हैं जो (इह खलु सव्वओ
सव्वत्ताए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वडयस्स सव्वओ पाणाडवायाओ
वेरमणं मुसावाय-अदिण्णादाण-मेहुण-परिग्गह-राईभोयणवेरमण) यहा सर्व प्रकार
से-द्रव्य एव भावरूप से, सर्वान्ना-परमवैराग्य न्यून होकर मुडित हो जाते हैं । यह मुडित
अवस्था द्रव्य एव भाव के मंड से दो प्रकार का है-केशों का लुचन करना द्रव्यमुडन है,
एव कषायों का त्याग करना भावमुडन है, मुडित होकर जो अपने गृह का परिग्रह कर
साधु की दीक्षा से दीक्षित हो जाता है । उमका नाम अनगार है । इन अनगार अवस्था में

(१) मुड पद से मुडित पुरुष का मत्तर्थाय अच्प्रयय करने से ग्रहण हुआ है ।

धर्म. (अणगारधम्मो ताव) अनगारना धर्म तेज एव पालन करे छे ने
(इह खलु सव्वओ सव्वत्ताए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वडयस्स
सव्वओ पाणाडवायाओ वेरमणं मुसावाय-अदिण्णादाण-मेहुण-परिग्गह-राईभोयण-
वेरमण) अङ्गी सर्व प्रजाव्यो-द्रव्य तेमञ्ज लाव उपधी सर्व प्रकारे परम-
वैगम्य-अपन्न धर्म लय छे आ मुडित अवस्था द्रव्य तेमञ्ज लाव ना लेद्धी
वे प्रजाव्यो छे-‘डिशलु अन्न उरु’ अे द्रव्यमुडन छे, तेमञ्ज कषायोनो त्याग
उपे’ अे लावमुडन छे मुडित धर्म ने पोताना धरने त्याग करी साधुनी
दीक्षाधी दीक्षित धर्म लय छे तेमनु नाम अनगार छे आ अनगार अव-

(१) मुड शब्दधी मुडित पुरुषनो मत्तर्थाय अच् प्रत्यय लगावधी
अङ्गु कथी छे.

मूलम्—तमेव धम्मं दुविहं आइक्खइ, तं जहा—अगार-

‘जह य’ यथा च—येन प्रकारेण ‘परिहीणरुम्मा’ परिहीनरुमाण—परिहीगानि=निनष्टानि कर्माणि येषां ते, सिद्धा—‘सिद्धालयमुवेति’ सिद्धालयमुपपत्ति—लोकान्तक्षेत्रलक्षण स्थान प्राप्नुवन्ति, तथा भगवान् परिकथयतीति पूर्वेणाचय ॥ सू० ५६ ॥

टीका—‘तमेव’ इत्यादि। ‘तमेव धम्मं दुविहं आइक्खइ’ तमेव=पूर्वोक्तमेव धर्मं द्विविधं=द्विप्रकारम्, आग्याति=कथयति, ‘तं जहा’ तद्यथा—‘अगारधम्मं अणगारधम्मं च’ अगारधर्मम्, अनगारधर्मं च—अगार=गृह तास्थ्यादगारा गृहस्था, गृहा दारा इत्यादिवत्, यद्वा—अगारमस्त्येषामियर्थे ‘अर्श आदिभ्योऽच्’ इति मन्त्रार्थाच्च प्रत्यय, तेषां धर्म—वक्ष्यमाणस्वरूपस्तम्, तथा—अनगारधर्मं=न निचयेऽगार-गृह येषां तेऽनगारा साधनस्तेषां धर्मस्तं च आग्याति। तत्र प्राधान्यात् प्रथम-

जह य परिहीणरुम्मा सिद्धा सिद्धालयमुवेति) पुत्रकन्यादिको मे आसक्तिरूप राग से उपार्जित ज्ञानावरणीय आदिक कर्मों का पापमय फल जैसे होता है और कर्मों को नष्ट कर जीव सिद्धावस्थापन्न हो सिद्धालय में जैसे पहुँचते हे यह सब भी प्रभु ने अपनी देहना में स्पष्ट किया ॥ सू० ५६ ॥

‘तमेव धम्मं दुविहं आइक्खइ’ इत्यादि

प्रभु ने (तमेव धम्मं दुविहं आइक्खइ) इस धर्म को दो प्रकार से कहा है।
(‘अगारधम्मं अणगारधम्मं च’) १ गृहस्थ का धर्म और दूसरा अनगार-मुनि का धर्म।

(१) ‘अगार’ नाम घर का है। परन्तु इस पद से यहाँ उनमें रहने वाले गृहस्थों का ग्रहण हुआ है, अथवा “अर्श आदिभ्योऽच्” इस सूत्र से अस्त्यर्थ में अच् प्रत्यय करने से भी उनमें रहने वाले गृहस्थों का ग्रहण हो जाता है।

अनं करेला ज्ञानावरणीय आदिक कर्मोंना पापमय फल जेभं थाय छे अने कर्मोंना नाश करी एव सिद्ध-अवस्था प्राप्त करी सिद्धालय (मुक्ति स्थानमा) जेभं पडोये छे ते गधु पणु प्रभुअे पोतानी देशनामा स्पष्ट कथुं (सू० ५६)

“तमेव धम्मं दुविहं आइक्खइ” इत्यादि

प्रभुअे (तमेव धम्मं दुविहं आइक्खइ) आ धर्मं जे प्रकारेना कहे छे
(‘अगारधम्मं अणगारधम्मं च’) १-गृहस्थना धर्मं अने जीव अनगार-मुनिना

(१) अगार अटले ध- परतु आ पदधी अही तेभा रडेवावाणा गृहस्थे अेवे अर्थ अडलु कथे छे, अथवा “अर्श आदिभ्योऽच्” आ सूत्रधी ‘अस्ति’ अर्थमा अच् प्रत्यय लगाउवाधी पणु तेभा रडेवावाणा गृहस्थे-अेवे अर्थ थाय छे

राइभोयण-वेरमणं। अयमाउसो! अणगारसामाडए धम्मे पणत्ते, एयस्स धम्मस्स सिक्खाए उवट्टिए णिग्गंथे वा णिग्गंथी वा विहरमाणे आणाए आराहए भवति।

अर्थात् परिगृह्यते=समूहं स्वीक्रियत इति परिग्रह—धर्मापकरणभिन्न सर्वमित्यर्थस्तस्माद् विरमणम् ॥ ५ ॥ रात्रिभोजन—रात्रौ भोजन तस्माद् विरमणम् ॥ ६ ॥ 'अयमाउसो ? अणगारसामाडए धम्मे पणत्ते' अयमायुष्मन् ? अनगारसामयिक—अनगाराणा=साधूना समये=सिद्धान्ते, यद्वा आचारे भव, धर्म प्रज्ञत =कथित । 'एयस्स धम्मस्स सिक्खाए उवट्टिए' एतस्य धर्मस्य शिक्षायाम्=आसेवने उपस्थित =उद्युक्त, 'णिग्गंथे वा' निर्ग्रन्थ =साधुर्वा 'णिग्गंथी वा' निर्ग्रन्थी वा उपस्थिता साध्वी वा—'विहरमाणे' विहरमाण =चिचरन् 'आणाए आराहए भवइ' आज्ञाया =सर्वजोपदेकास्य आराधको भवति । इत्थमनगारधर्ममुपदिश्य न्प्रत्यगारधर्ममुपदिशति, तदेवाह—'अगारधम्म' इत्यादि।

गया है। क्यों कि प्राणियों को इनमें 'ममेदभाव' होता है। इस परिग्रह से विरक्त होना परिग्रहविरमण महाव्रत है। रात्रि में भोजन नहीं करना—इसका नाम रात्रिभोजनविरमण व्रत है। (अयमाउसो! अणगारसामाडए धम्मे पणत्ते) हे आयुष्मन्! सिद्धान्त में यह साधुओं का आचारजन्य धर्म प्रतिपादित किया गया है। (एयस्स धम्मस्स सिक्खाए उवट्टिए) इस साधु के धर्म के आसेवन में उपस्थित (तत्पर) चाहे निर्ग्रन्थ—साधु हो, चाहे निर्ग्रन्थी—साध्वी हो, (विहरमाणे) जो इसे अपने आचरण में लाता है वह (आणाए आराहए भवइ) प्रभु सर्वज के आज्ञा का आराधक माना जाता है। इस प्रकार अनगार-धर्म की प्ररूपणा कर के प्रभुने 'गृहस्थ का क्या धर्म है?' इसकी प्ररूपणा इस प्रकार की

पथा धन धान्य आदिदिनी, परिग्रहमा गलुना थाय छे केभके प्राण्यिओने येमा 'ममेदभाव' थाय छे ये परिग्रहथी विरक्त थवु ये परिग्रह-विरमणु महाव्रत छे रात्रिमा लोजन न करवु तेनु नाम रात्रिलोजन विरमणु व्रत छे (अयमाउसो! अणगारसामाडए धम्मे पणत्ते) हे आयुष्यमान्! सिद्धान्तमा साधु-ओना आचार जन्य आ धर्मनु प्रतिपादन करेव छे (एयस्स धम्मस्स सिक्खाए उवट्टिए) साधुना आ धर्मने पाणवामा उपस्थित-तत्पर, याडे ते निर्ग्रन्थ साधु डोय छे याडे ते निर्ग्रन्थी—साध्वी डोय (विहरमाणे) ने आने आचरणुमा लावे ते (आणाए आराहए भवइ) प्रभु सर्वजनी आज्ञाना आराधक बनाय छे आ प्रकारे अनगार धर्मनी प्ररूपणा करीने प्रभुये 'गृहस्थनो शु धर्म छे?' तेनी

परित्यज्ये यर्थ, अनगारिता=माधुच प्राजिनस्य=प्रकर्षेण ममस्तममवपरियागपूर्वक
 स्वीकृतवत, सर्वस्मात्=त्रिकरणत्रियोगतो जायमानात् अत्यन्त प्राणातिपातात्-प्राणा =
 स्वर्गेन्द्रियादय सत्येषामिति प्राणा-एकत्रियादयो जीवास्तेषामनिपातो=वियोजन-हिंसन
 मित्यर्थस्तस्माद् विरमण=निवर्तनम् ॥ १ ॥ 'मुसायाय-अद्रिणाद्याण-मेहुण-परिग्रह-
 राडभोग्याओ चेरमण' मृषावादा-अदत्तादान-मैथुन-परिग्रह-रात्रिभोजनाद्विरमणम्-
 मृषावाद =असत्यभाषण तस्माद् विरमण=निवृत्ति ॥ २ ॥ अदत्तादान-न दत्तमदत्त=देव-
 गुरु-भूप-गाथापति-साधमिकेरननुजात, तस्यादान=ग्रहण तस्माद् विरमणम्, ॥ ३ ॥
 मैथुन-मिथुनेन=स्त्रीपुमान्या निवृत्त कर्म-कामक्रीडालक्षण, तस्माद् विरमणम् ॥ ४ ॥
 परिग्रह-परि=सर्वतो भावेन गृह्यते=जन्मजरामरणादिजनितैर्दुःखैरेष्टयत्त आमा अनेनेति,

कृत, कारित, अनुमोदना एव मन, वचन और काय इस प्रकार त्रिकरण और त्रियोग से
 प्राणातिपातादिक पापों का सर्वथा त्याग कर लिया जाता है। प्राणानिपात का त्याग करना-
 इसीका नाम प्राणातिपातविरमण है। 'प्राण' शब्द से प्राणवाले एकेन्द्रियादिक जीवों का
 ग्रहण हुआ है। 'अतिपात' शब्द का अर्थ त्रियोग करना है। एकेन्द्रियादिक प्राणियों की हिंसा
 से विरक्त-सर्वथा दूर-होना इसका नाम प्राणातिपातविरमण-अहिंसा-महाव्रत है। इसी
 तरह त्रियोग-त्रिकरण से मृषावाद से विरक्त होना इसका नाम मृषावादविरमण-सत्य-महा-
 व्रत है। देव, गुरु, भूप, साधमिक एव गाथापति द्वारा अदत्त का ग्रहण करना इसका नाम
 अदत्तादान है, उससे निवृत्त होना उसका नाम अदत्तादानविरमण महाव्रत है। तीन करण
 तीन योग से जो मैथुन में निवृत्त होना उसका नाम मैथुनविरमण महाव्रत है। जिसके
 ग्रहण से आत्मा, जन्म, जरा एव मरण आदि जनित दुःखों से वेष्टित होती है उसका नाम
 परिग्रह है। धर्मोपकरण सिवाय अन्य सब धन-धान्यादिक को परिग्रह में परिगणित किया

स्थाभा कृत, कारित अनुमोदना तेभ्य मन, वचन अने काय अने प्रकारे
 त्रिकरण अने त्रियोगथी प्राणातिपात आदिक पापानो सर्वथा त्याग कराय छे
 प्राणातिपातनो त्याग करयो अने न नाम प्राणातिपात-विरमण छे 'प्राण'
 शब्दथी प्राणवाणा अनेन्द्रियादिक प्राणियोंनी हिंसाथी विरक्त-सर्वथा दूर
 थवु अने नाम प्राणातिपातविरमण-अहिंसा-महाव्रत छे अथी न रीते
 त्रियोगत्रिकरणथी मृषावादथी विरक्त थवु अने नाम मृषावादविरमण सत्य
 महाव्रत छे देव, गुरु, भूप, साधमिक तेभ्य गाथापति द्वारा अदत्तनु अदत्त
 करवु तेनु नाम अदत्तादान छे, तेथी निवृत्त थवु अदत्तादानविरमण महा
 व्रत छे त्रण करवु त्रण योगथी मैथुनथी निवृत्त रडेवु अने नाम मैथुन-
 विरमण महाव्रत छे अना अदत्तथी आत्मा, जन्म, जरा तेभ्य मरण आदि
 दुःखेथी घेराध लय छे तेनु नाम परिग्रह छे धर्मोपकरण सिवाय अन्य

थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं २, थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं ३, सदारसंतोसे ४, इच्छापरिमाणे ५ । तिण्णि गुणव्व-

'मुसावायाओ वेरमण' स्थूलमृपावाद्धिरमणम्=स्थूलसत्यवचनक्रयनान्निवृत्ति । 'थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमण' स्थूलददत्तादानाद्विरमणम्-अदत्तस्य आदानं=ग्रहण तस्माद्विरमण=निवृत्ति ३ । 'सदारसतोसे' स्वदारमन्तोप =परदाग्नेय्याद्विर्जनम् ॥४॥ 'इच्छापरिमाणे' इच्छापरिमाण-इच्छया =मनायभिलाषरूपपाया परिमाण=नियमनम्-इच्छापरिमाणम्-देगत परिग्रहप्रगति, यद्वा-इच्छा=परिग्राहवस्तुविषयावाञ्छा तस्या परिमाणम्=इयत्ता । इदमेतावदेव मया धार्यमुपाज्जनीय वेति नियमनमिच्छापरिमाणम् ॥५॥ 'तिण्णि गुणव्वयाइ' त्रीणि

तिपात से निरमण होना ही अहिंसा अणुव्रत है । (थूलाओ मुसावायाओ वेरमण) स्थूल मृपावाद से निरक्त होना-स्थूल असत्य वचनों के रहने से दूर रहना सो स्थूलमृपावाद-विरमण अणुव्रत है । (थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमण) स्थूल अदत्तादान से निरमण होना सो अचौर्य अणुव्रत है । (सदारसतोसे) अपनी स्त्री में ही मन्तोप रचना-परदारा (परस्त्री) एव वेश्या आदि का परित्याग कर देना-सो स्वदारमन्तोप अणुव्रत है । (इच्छापरिमाणे) धन एव धान्यादिक की अभिलाषा रूप इच्छा का प्रमाण करना-एक देगसे परिग्रह का त्याग करना, अथवा परिग्राहवस्तुविषयक वाञ्छा का नाम इच्छा है, इसका परिमाण इस प्रकार करना कि मैं अमुक वस्तु इतनी रखूंगा, इतनी कमाऊंगा, इससे अधिक नही । यह इच्छा-परिमाण नामका अणुव्रत है (तिण्णि गुणव्वयाइ) गुणव्रत तीन है-ये गुणव्रत अणुव्रतों के

थलु अये न 'अहिंसा अणुव्रत' छे (थूलाओ मुसावायाओ वेरमण) स्थूल-मृपा-वाहथी विरक्त थलु-स्थूल असत्य वचनो कडेवाथी हर रडेथु ते 'स्थूल-मृपा-वाह-विरमणु अणुव्रत' छे (थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमण) स्थूल अदत्ता-दानथी विरमणु थलु अये 'अचौर्य अणुव्रत' छे (सदारसतोसे) पैतानी स्त्रीमा न सतोप राषयो-परदारा-परस्त्री तेमन वेश्या आदिने परित्याग करी देवो ते 'परदारा-मन्तोप अणुव्रत' छे (इच्छापरिमाणे) धन तेमन धान्य आदिकेनी अभिलाषा इप धिच्छानु प्रमाणु करवु (इह राषयी)-देश थकी परिग्रहने त्याग करवो अथवा परिग्रह करवानी वस्तु जाणतनी ने वाछा तेनु नाम धिच्छा छे, तेनु परिमाणु (माप-मर्यादा) आ प्रकारे करवु के हु अमुक वस्तु आटली राषीश, आटली उभाईश, आवी वधारे नहिं आ धिच्छापरिमाणु नामनु अणुव्रत छे (तिण्णि गुणव्वयाइ) शुणुव्रत त्रणु छे आ शुणुव्रत आणुव्रतोना उपकारक

અગારધમ્મં દુવાલસવિહં આઙ્કલ્લઙ્ક, તં જહા-પંચ
અણુવ્વયાદં ૧, તિણ્ણિ ગુણવ્વયાદં ૨, ચત્તારિ સિમ્મલાવયાદં ૩।
પંચ અણુવ્વયાદં, તં જહા-થૂલાઓ પાણાડવાયાઓ વેરમણં ૧,

‘અગારધમ્મ દુવાલસવિહં આઙ્કલ્લઙ્ક’ અગારધર્મ દ્વાદશવિધમાર્યાતિ, ‘ત જહા’ તથયા,
‘પંચ અણુવ્વયાદં’ પચ્ચાણુવ્વયાદં ‘તિણ્ણિ ગુણવ્વયાદં’ ત્રીણિ ગુણવ્રતાણિ
‘ચત્તારિ સિમ્મલાવયાદં’ ચત્તારિ શિક્ષાવ્રતાણિ, શિક્ષા=અભ્યાસ-પુન પુનરમ્યયન
તત્પ્રધાનાણિ વ્રતાણિ-શિક્ષાવ્રતાણિ। યથાપિ પુન પુનરાસેવનાયોગ્યાણિ શિક્ષાવ્રતાણિ પુરો
વક્કમાગાણિ ચવાર્યેવ, તથાપિ ત્રયાણા ગુણવ્રતાણા શિક્ષાવ્રતેષ્વેવાન્તર્ભાગાત સમ શિક્ષાવ્રતાણિ-
ઈત્યપ્યુચ્ચયતે ૩। સ્વરૂપર્યાપનાય આહ-‘પંચ અણુવ્વયાદં’ પચ્ચાણુવ્વયાદં-‘ત જહા’
તથથા-‘થૂલાઓ પાણાડવાયાઓ વેરમણ’ સ્થૂલા પ્રાણાતિપાતાદિરમણમ્-પ્રાણાના-
પ્રાણિનામતિપાનો=હિસન-તસ્માત્ સ્થૂલાત્ વિરમણ=નિવૃત્તિ, ન તુ સૂક્ષ્માત્ ॥ ૧ ॥ ‘થૂલાઓ

હૈ-(અગારધમ્મ દુવાલસવિહં આઙ્કલ્લઙ્ક) પ્રમુને કહા કિ ગૃહસ્થ ધર્મ ૧૨ પ્રકાર કા હૈ,
(ત જહા) ઉસકે ષે ૧૨ પ્રકાર ઇસ તરહ સે હૈ-(પંચ અણુવ્વયાદં તિણ્ણિ ગુણવ્વયાદં
ચત્તારિ સિમ્મલાવયાદં) ૫ અણુવ્રત, ૩ ગુણવ્રત, એવ ૪ શિક્ષાવ્રત। કહા ૨ પર શિક્ષાવ્રત-
સાત મી કહે ગયે હૈ સો ઉસકા કારણ યહ હૈ કિ ઉનમે ૩ ગુણવ્રતો કો સમ્મિલિત કર
લિયા ગયા હૈ। શિક્ષાપ્રધાન વ્રતો કા નામ શિક્ષાવ્રત હૈ। (પંચ અણુવ્વયાદં તં જહા) પાંચ
અણુવ્રત યે હૈ-(થૂલાઓ પાણાડવાયાઓ વેરમણ) સ્થૂલ પ્રાણાતિપાત સે વિરક્ત હોના સો
અહિંસા અણુવ્રત હૈ। ‘સ્થૂલ’ શબ્દ યહા યહ વતલાતા હૈ કિ સૂક્ષ્મ સે નહીં, કિન્તુ સ્થૂલ પ્રાણ

પ્રપ્ત્યા આ પ્રકારે ઠરી છે-(અગારધમ્મ દુવાલસવિહં આઙ્કલ્લઙ્ક) પ્રમુએ,
કલ્લુ ડે ગૃહ-થ ધર્મ ૧૨ ખાર પ્રકારના છે (તજહા) તેના એ ૧૨ ખાર-
પ્રકાર આવી રાતના છે-(પંચ અણુવ્વયાદં તિણ્ણિ ગુણવ્વયાદં ચત્તારિ સિમ્મલાવ-
યાદં) ૫ આણુવ્રત, ૩ શુણુવ્રત, તેમજ ૪ શિક્ષાવ્રત કયાક કયાક શિક્ષાવ્રત,
સાત પણ ઠહેવામા આવ્યા છે, તેનુ ઠારણુ એ છે કે તેમા ત્રણુ શુણુવ્રતોને
સમિલિત કરી લેવામા આવ્યા છે શિક્ષાપ્રધાન વ્રતોનુ નામ શિક્ષાવ્રત છે
(પંચ અણુવ્વયાદં તજહા) પાંચ આણુવ્રત આ છે-(થૂલાઓ પાણાડવાયાઓ વેરમણ)
સ્થૂલ પ્રાણાતિપાતથી વિરક્ત થવુ તે ‘અહિંસા આણુવ્રત’ છે ‘સ્થૂલ’, ‘શબ્દ’
અહીં એ ખંતાવે છે કે સૂક્ષ્મથી નહિ પણ સ્થૂલ પ્રાણાતિપાતથી વિરમણ

परिभोगपरिमाणं ८ । चत्वारि सिक्खावयाइं, तं जहा-सामाडयं
९, देसावयासियं १०, पोसहोववासे ११, अतिहिसंविभागे,

परतस्तदधिके इयेन्मभूत दिग्रतम् ॥ ७ ॥ 'उपभोग-परिभोग-परिमाण' उपभोग-
परिभोग-परिमाणम्-उपभोग = मङ्कद्रोगोऽशनपानानुलेपनादीनाम्, परिभोगस्तु पुन पुनर्भोग
आसनशयनवसनादीनाम्, तयो परिमाणम् ॥ ८ ॥ 'सामाडय' सामायिकम्-समाना=
ज्ञानदर्शनचारित्रागामायो=लाभ समाय-तत्र भव मामायिकम् ॥ ९ ॥ 'देसावयासिय'
देशाऽवकाशिकम्-देशे=दिग्रतगृहीतदिकूपरिमाणस्य विभागे अत्रकागो=गमनाद्यवस्थान

नहीं, इस प्रकार १० दिशाओं में आने-जाने का मर्यादा करना सो 'दिग्रत' है। एक
वार जो भोगने में आता है उसका नाम उपभोग है, जैसे-अशन, पान एवं अनुलेपन
आदि। जो वार २ भोगने में आते हैं ऐसे आसन, शयन, वसन आदि को परिभोग कहा
गया है। इन दोनों का प्रमाण करना सो 'उपभोग-परिभोग-परिमाण' है। (चत्वारि
सिक्खावयाइं) शिक्षावत् चार हैं, (त जहा) वे ये हैं-(सामाडय देसावयासिय
पोसहोववासे अतिहिसंविभागे) सामायिक, देशावकाशिक, पौषधोपवास एवं अतिथि-
विभाग। दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र का नाम सम है। इस सम के आय (लाभ) का नाम
समाय है। इसमें जो समतापरिणाम होता है उसका नाम सामायिक है। 'दिग्रत' में
जो मर्यादारूप से आने-जाने के लिये जीवनपर्यन्त दिशारूपी क्षेत्र रख लिया या उसीके
भीतर २ प्रतिदिन स्फोट करना सो 'देशावकाशिक' है, जैसे-मैं आज इस दिशा के

अेनाथी आगण-अहार नहि आ प्रकारे १० दिशाअेमा आववा-ज्वाने
मर्यादा उरवी ते दिग्रत छे अेक वार ले लोणववामा आवे छे तेनु नाम
उपलोण छे, लेभडे-अशन, पान तेमज अनुलेपन आदि ले वारवार लोण-
ववामा आवे छे अेवा आसन, शयन, वसन आदिने परिलोण कडेवाय छे
आ अन्नेनु प्रमाण राणु ते 'उपलोण-परिलोण-परिमाणु' छे (चत्वारि
सिक्खावयाइ) शिक्षावत् आर छे (त जहा) ते आ अे-(सामाडय देसावयासिय
पोसहोववासे अतिहिसंविभागे) सामायिक १, देशावकाशिक २, पौषधोपवास ३,
तेमज अतिथिविभाग ४ दर्शन, ज्ञान तेमज चारित्रनु नाम सम छे
आ समना आय (लाभ)नु नाम समाय छे अेमा ले समता-परिणाम थाय
छे तेनु नाम सामायिक छे १ दिग्रतमा ले मर्यादाइथी आववा-ज्वाने
माटे लवनपर्यन्त दिशाउपी क्षेत्र राणु छे तेमज प्रतिदिवस न्यूनना
उरवी ते देशावकाशिक छे लेभडे छे आज आ दिशामा आ स्थान सुधी

याइं, तं जहा—अणत्थदंडवेरमणं ६, दिसिच्चयं ७, उवभोग-

गुणनतानि, 'त जहा' तद्यथा 'अणत्थदंडवेरमणं' अर्थदण्डविरमणम्—अर्थ = प्रयोजन गृह
स्थस्य क्षेत्र-वास्तु-धन-शरीरपरिपालनायात्प्रियय, तदद्या दण्ड = आरम्भ प्राण्युपमर्दनोऽर्थदण्ड ।
दण्डो निग्रहो यातना विनाश इति पर्याया । दण्ड = निष्प्रयोजन हिंसात्क्रुण्णमिथर्थ, तस्मा
द्विरमण=निवर्तनम् १, 'दिसिच्चयं' दिग्गतम्—दिश पूर्वदक्षिणादय ऊर्ध्वमधश्चेति दशविधा,
तत्र दिशा सम्प्रन्धि व्रत दिग्गतम्—गतावमु पूर्वादिदिविभागेषु मया गमनागमन विधेय न

उपकारक है, (त जहा) ये तीन प्रकार ये हैं (अणत्थदंडवेरमण दिसिच्चयं उवभोगपरि
भोगपरिमाण) अनर्थदंडविरमण व्रत, दिग्गत, उपभोग—परिभोग—परिमाणव्रत । क्षेत्र,
वास्तु, धन, धान्य, एव शरीर के परिपालन आदि के निमित्त जो आरम किया जाता है
इसका नाम अर्थ है । इस आरम में प्राणिय अश्रयभावी है । अत इसमें जो दंड—प्राणियों
का विनाश होता है उससे पाप का वध जीव को होता है । अत यह वध अर्थदंड है ।
अर्थात् प्रयोजन को लेकर जो प्राण्युपमर्दनरूप दंड किया जाता है उसका नाम अर्थदंड है ।
दण्ड, निग्रह, यातना एव विनाश ये सब पर्यायवाची शब्द हैं । इससे जो विपरीत है उसका
नाम अर्थदंड है । अर्थात् निष्प्रयोजन हिंसादिक पाप करना सो अनर्थदंड है । इससे विरक्त
होना सो 'अनर्थदंडविरमण' है । दश दिशाओं में आने—जाने का प्रमाण करना सो
'दिग्गत' है । चारदिशा और त्रिदिशा तथा ऊर्ध्व एव अध इस प्रकार ये १० दिशाएँ
हैं । मैं अमुक दिशा की ओर इतनी दूर तक जाऊँगा और आऊँगा, इससे आगे बाहिर

छे, (तजहा) ते त्रय प्रकार आ छे (अणत्थ दंड वेरमण दिसिच्चय उवभोगपरिभोगपरि
माण) अनर्थदंड उ—विरमण व्रत, दिग्गत, उपभोगपरिभोगपरिमाण व्रत क्षेत्र,
वास्तु, धन, धान्य, तेभञ्ज शरीरना परिपालन आदिना निमित्ते के आरल
करवाभा आवे छे तेनु नाम अर्थ छे आ आरलमा प्राणिवध अश्र
श्रयभावी छे आथी अभा के दंड—प्राणियोंना विनाश थाय छे तेनाथी
पापना अध लुवने थाय छे तेथी आ वध अर्थदंड छे, अर्थात् प्रयो
जनने लधने के प्राण्यु—उपमर्दनरूप दंड कराय छे तेनु नाम अर्थदंड छे
दंड, निग्रह, यातना तेभञ्ज विनाश अे अधा पर्यायवाची शब्दो छे तेनाथी
के विपरीत (उलटा) छे तेनु नाम अनर्थदंड छे अर्थात् निष्प्रयोजन हिंसा
आदि पाप करवा ते अनर्थदंड छे तेनाथी विरक्त थपु ते अनर्थदंड
विरमण छे दश दिशाओंमा आववा—जवानु प्रमाण राणपु ते दिग्गत छे
चार दिशा अने विदिशा तथा उपर अने नीचे अे प्रजारे आ दश १०
दिशाओं छे हु अमुक दिशा तरङ्क आठवे हर सुधी जर्धश के आवीथ

परिभोगपरिमाणं ८ । चत्वारि सिक्खावयाडं, तं जहा-सामाडयं
९, देसावयासियं १०, पोसहोववासे ११, अतिहिसंविभागे,

परतस्तदधिके इयेमभूत दिग्गतम् ॥ ७ ॥ 'उपभोग-परिभोग-परिमाण' उपभोग-
परिभोग-परिमाणम्-उपभोग = मरुद्भोगोऽशनपानानुलेपनादीनाम्, परिभोगस्तु पुन पुनर्भोग
आसनशयनवसननादीनाम्, तयो परिमाणम् ॥ ८ ॥ 'सामाडय' सामायिकम्-समाना=
ज्ञानदर्शनचारित्रागामायो=अभ समाय -तत्र भव सामायिकम् ॥ ९ ॥ 'देसावयासिय'
देशाऽवकाशिकम्-देशे=दिग्गतगृहीतद्विकृतिपरिमाणस्य विभागे अवकाशो=गमनाद्यवस्थान

नहीं, उस प्रकार १० दिशाओं में आने-जाने की मर्यादा करना सो 'दिग्गत' है। एक
वार जो भोगने में आता है उसका नाम उपभोग है, जैसे-अशन, पान एवं अनुलेपन
आदि। जो वार २ भोगने में आते हैं ऐसे आमन, शयन, वसन आदि को परिभोग कहा
गया है। इन दोनों का प्रमाण करना सो 'उपभोग-परिभोग-परिमाण' है। (चत्वारि
सिक्खावयाडं) शिक्षात्रय चार है, (त जहा) वे ये हैं-(सामाडय देसावयासिय
पोसहोपवासे अतिहिसंविभागे) सामायिक, देशावकाशिक, पौषधोपवास एवं अतिथि-
विभाग। दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र का नाम सम है। उस सम के आय (लाभ) का नाम
समाय है। इसमें जो समतापरिणाम होता है उसका नाम सामायिक है। 'दिग्गत' में
जो मर्यादारूप में आन-ज्ञान के लिये जीवनपर्यन्त दिशारूपी क्षेत्र रख लिया था, उसीके
भीतर २ प्रतिदिन स्कोच करना सो 'देशावकाशिक' है, जैसे-मैं आज इस दिशा के

अनाथी आगण-अहार नहि आ प्रकारे १० दिशाओभा आववा-ज्वानी
मर्यादा उरवी ते दिग्गत छे ओउ वार के लोगववाभा आवे छे तेनु नाम
उपलोग छे, जेभडे-अशन, पान तेमज अनुलेपन आदि के वारवार लोग-
ववाभा आवे छे ओवा आमन, शयन, वसन आदिने परिलोग कडेवाय छे
आ जन्नेनु प्रमाण राणु ते 'उपलोग-परिलोग-परिमाण' छे (चत्वारि
सिक्खावयाड) शिक्षात्रय आ छे (त जहा) ते आ छे-(सामाडय देसावयासिय
पोसहोपवासे अतिहिसंविभागे) सामायिक १, देशावकाशिक २, पौषधोपवास ३,
तेमज अतिथिसंविभाग ४ दर्शन, ज्ञान तेमज चारित्रनु नाम सम छे
आ समता आय (लाभ)नु नाम समाय छे ओभा के समता-परिणाम थाय
छे तेनु नाम सामायिक छे १ दिग्गतमा के मर्यादाइपथी आववा-ज्वाने
माटे जीवनपर्यन्त दिशारूपी क्षेत्र राणु छे तेमज प्रतिदिवस न्यूनता
उरवी ते देशावकाशिक छे जेभडे हु आज आ दिशाभा आ स्थान सुधी

याइं, तं जहा—अणत्थदंडवेरमणं ६, दिसिच्चयं ७, उवभोग-

गुणतानि, 'तं जहा' तद्यथा 'अणत्थदंडवेरमणं' अनर्थदण्डविरमणम्—अर्थ = प्रयोजन गृह
स्थस्य क्षेत्र-वास्तु-धन शरीरपरिपालनायादिविषय, तदयो दण्ड = आरम्भ प्राण्युपमर्दोऽर्थदण्ड ।
दण्डो निग्रहो यातना विनाश इति पयाया । दण्ड = निष्प्रयोजन हिंसादिकरणमित्यर्थ, तस्मा
द्विरमण=निवर्तनम् १, 'दिसिच्चयं' दिग्गतम्—दिश पूर्वदक्षिणादय ऊर्ध्वमधश्चेति दशविधा,
तत्र दिशा सम्बन्धि व्रत विग्रतम्—पताकसु पूर्वादिदिग्बिभागेषु मया गमनागमन विधेय न
उपकारक हैं, (त जहा) वे तीन प्रकार ये हैं (अणत्थदंडवेरमण दिसिच्चय उवभोगपरि
भोगपरिमाण) अनर्थदंडविरमण व्रत, दिग्गत, उपभोग-परिभोग-परिमाणव्रत । क्षेत्र,
वास्तु, धन, धान्य, एव शरीर के परिपालन आदि के निमित्त जो आरभ किया जाता है,
इसका नाम अर्थ है । इस आरभ में प्राणिग्रह अवश्यभावी है । अत इसमें जो दंड—प्राणियों
का विनाश होता है उससे पाप का बंध जात्र को होता है । अत यह वध अर्थदंड है ।
अर्थात् प्रयोजन को लेकर जो प्राण्युपमर्दनरूप दंड किया जाता है उसका नाम अर्थदंड है ।
दण्ड, निग्रह, यातना एव विनाश ये सन पर्यायवाची शब्द हैं । इससे जो विपरीत है उसका
नाम अर्थदंड है । अर्थात् निष्प्रयोजन हिंसादिक पाप करना सो अनर्थदंड है । इससे विरक्त
होना सो 'अनर्थदंडविरमण' है । दश दिशाओं में आने-जाने का प्रमाण करना सो
'दिग्गत' है । चारदिशा और त्रिदिशा तथा ऊर्ध्व एव अध इस प्रकार ये १० दिशाएँ
हैं । मैं अमुक दिशा की ओर इतनी दूर तरु जाऊँगा और आऊँगा, इससे आगे बाहिर

छे, (तजहा) ते त्रयु प्रकार आ छे (अणत्थ दंड वेरमण दिसिच्चय उवभोगपरिभोगपरि
माण) अनर्थदंड-विरमण व्रत, दिग्गत, उपभोगपरिभोगपरिमाण व्रत क्षेत्र,
वास्तु, धन, धान्य, तेभञ्ज शरीरना परिपालन आदिना निमित्तो के आरल
करवाभा आवे छे तेनु नाम अर्थ छे आ आरलमा प्राणिवध अव
श्यभावी छे आधी ओभा के दंड-प्राणियोना विनाश थाय छे तेनाथी
पापनो अध छेवोने थाय छे तेथी आ वध अर्थदंड छे, अर्थात् प्रयो
जनने लधने के प्राण्यु-उपमर्दनरूप दंड कराय छे तेनु नाम अर्थदंड छे
दंड, निग्रह, यातना तेभञ्ज विनाश ओ अधा पर्यायवाची शब्दो छे तेनाथी
के विपरीत (उलटा) छे तेनु नाम अनर्थदंड छे अर्थात् निष्प्रयोजन हिंसा
आदि पाप करवा ते अनर्थदंड छे तेनाथी विरक्त थयु ते अनर्थदंड
विरमण छे दश दिशाओभा आववा-जवानु प्रमाण राखयु ते दिग्गत छे
चार दिशा अने विदिशा तथा उपर अने नीचे ओ प्रकारे आ दश १०
दिशाओ छे हु अमुक दिशा तरु आटवे इर सुधी ज्यथि के आवीथ

परिभोगपरिमाणं ८ । चत्वारि सिक्खावयाडं, तं जहा-सामाइय
९, देसावयासियं १०, पोसहोपवासे ११, अतिहिसंविभागे,

परतस्तदधिके इयेन्भूत दिग्गतम् ॥ ७ ॥ 'उपभोग-परिभोग-परिमाण' उपभोग-
परिभोग-परिमाणम्-उपभोग = मद्द्रोणोऽन्नपानानुलेपनादीनाम्, परिभोगस्तु पुन पुनर्भोग
आसनशयनवसननादीनाम्, तयो परिमाणम् ॥ ८ ॥ 'सामाइय' सामायिकम्-ममाना=
ज्ञानदर्शनचारित्रागामायो=अभ समाय -तत्र भव सामायिकम् ॥ ९ ॥ 'देसावयासिय'
देशावकाशिकम्-देशे=दिग्गतगृहीतदिकूपरिमाणस्य विभागे अवकाशो=गमनाद्यवस्थान

नहीं, उस प्रकार १० दिशाओं में आने-जाने की मर्यादा करना सो 'दिग्गत' है। एक
वार जो भोगने में आता है उसका नाम उपभोग है, जैसे-अन्न, पान एवं अनुलेपन
आदि। जो वार २ भोगन में आते हैं उसे आसन, शयन, वसन आदि को परिभोग कहा
गया है। इन दोनों का प्रमाण करना सो 'उपभोग-परिभोग-परिमाण' है। (चत्वारि
सिक्खावयाडं) शिक्षात्रत चार ह, (त जहा) वे ये ह-(सामाइय देसावयासिय
पोसहोपवासे अतिहिसंविभागे) सामायिक, देशावकाशिक, पौष्ट्योपवास एव अतिथि-
विभाग। दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र का नाम सम है। उस सम के आय (लाभ) का नाम
समाय है। उसमें जो समतापरिणाम होता है उसका नाम सामायिक है। 'दिग्गत' में
जो मर्यादारूप से आन-ज्ञान के लिये जीवनपर्यन्त दिशारूपी क्षेत्र रख लिया था, उसीके
भीतर २ प्रतिदिन स्कोच करना सो 'देशावकाशिक' है, जैसे-मे आज इस दिशा के

अनाथी आगण-गडाग नडि आ प्रदारे १० दिशाओभा आववा-जवानी
मर्यादा उरवी ते दिग्गत छे ओउ वार ले भोगववामा आवे छे तेनु नाम
उपभोग छे, लेभडे-अन्न, पान तेभज अनुलेपन आदि ले वारवाग भोग-
ववामा आवे छे ओवा आसन, शयन, वसन आदिने परिलोग कडेवाय छे
आ गन्नेनु प्रमाण राभवु ते 'उपभोग-परिलोग-परिमाण' छे (चत्वारि
सिक्खावयाड) शिक्षात्रत आर छे (त जहा) ते आ छे-(सामाइय देसावयासिय
पोसहोपवासे अतिहिसंविभागे) सामायिक १, देशावकाशिक २, पौष्ट्योपवास ३,
तेभज अतिथिविभाग ४ दर्शन, ज्ञान तेभज चारित्रनु नाम सम छे
आ ममना आय (लाभ)नु नाम समाय छे ओभा ले समता-परिणाम थाय
छे तेनु नाम सामायिक छे १ दिग्गतमा ले मर्यादाइपथी आववा-जवानी
भाटे जीवनपर्यंत दिशाइपी क्षेत्र राख्यु छुनु तेभज प्रतिदिवस न्यूनता
उरवी ते देशावकाशिक छे लेभड हु आव आ दिशामा आ स्थान मुधी

याइं, तं जहा—अणत्थदंडवेरमणं ६, दिसिच्चयं ७, उवभोग-

गुणगतानि, 'त जहा' तथा 'अणत्थदंडवेरमणं' अनर्थदण्डविमणम्—अर्थ = प्रयोजन गृह्य
स्थस्य क्षेत्र-वास्तु-धन-शरीरपरिपालनोयादिविषय, तदथा दण्ड = आरम्भ प्राण्युपमर्दनोऽर्थदण्ड ।
दण्डो निग्रहो यातना विनाश इति पर्याया । दण्ड = निष्प्रयोजन हिंसादि क्रममि यर्थ, तस्मा
द्विरमण=निवर्तनम् १, 'दिसिच्चयं' दिग्गतम्—दिग्घ पूर्वदक्षिणादय ऊर्ध्वमधश्चेति दशविधा,
तत्र दिशा सम्बन्धि व्रत त्निग्गतम्—एतावन्तु पूर्वादिति विभागेषु मया गमनागमन विधेय न

उपकारक है, (त जहा) वे तीन प्रकार ये हैं (अणत्थदंडवेरमण दिसिच्चय उवभोगपरि-
भोगपरिमाणं) अनर्थदण्डविमण व्रत, दिग्गत, उपभोग—परिभोग—परिमाणव्रत । क्षेत्र,
वास्तु, धन, धान्य, एव शरीर के परिपालन आदि के निमित्त जो आरम किया जाता है
इसका नाम अर्थ है । इस आरम में प्राणिव्य अस्वभावी है । अत इसमें जो दंड—प्राणियों
का विनाश होता है उससे पाप का बंध जात्र को होता है । अत यह वध अर्थदंड है ।
अर्थात् प्रयोजन को छेकर जो प्राण्युपमर्दनरूप दंड किया जाता है उसका नाम अर्थदंड है ।
दण्ड, निग्रह, यातना एव विनाश ये सत्र पर्यायवाची शब्द हैं । इससे जो विपरीत है उसका
नाम अर्थदंड है । अर्थात् निष्प्रयोजन हिंसादिक पाप करना सो अनर्थदंड है । इससे विरक्त
होना सो 'अनर्थदंडविमण' है । दश दिशाओं में आने—जाने का प्रमाण करना सो
'दिग्गत' है । चारदिशा और विदिशा तथा ऊर्ध्व एव अध इस प्रकार ये १० दिशाएँ
हैं । मैं अमुक दिशा की ओर इतनी दूर तक जाऊँगा और आऊँगा, इससे आगे बाहिर

छे, (तजहा) ते त्रय प्रकार आ छे (अणत्थ दंड वेरमण दिसिच्चय उवभोगपरिभोगपरि-
माण) अनर्थदंड उ—विरमण्य व्रत, दिग्गत, उपभोगपरिभोगपरिमाण्य व्रत क्षेत्र,
वास्तु, धन, धान्य, तेभ्य शरीरना परिपालन आदिना निमित्ते ने आरल
करवाभा आवे छे तेनु नाम अर्थ छे आ आरलभा प्राणिव्य अथ
श्यावा छे आधी ओभा ने दंड—प्राणिव्योने विनाश थाय छे तेनाथी
पापना अध एवोने थाय छे तेथी आ वध अर्थदंड छे, अर्थात् प्रयो
जनने लक्षणे ने प्राणिव्य—उपमर्दनरूप दंड कराय छे तेनु नाम अर्थदंड छे
दंड, निग्रह, यातना तेभ्य विनाश ये अधा पर्यायवाची शब्दो छे तेनाथी
ने विपरीत (उलटा) छे तेनु नाम अनर्थदंड छे अर्थात् निष्प्रयोजन हिंसा
आदि पाप करवा ते अनर्थदंड छे तेनाथी विरक्त थयु ते अनर्थदंड
विरमण्य छे दश दिशाओभा आववा—ज्वानु प्रमाण्य राण्यु ते दिग्गत छे
आर दिशा अने विदिशा तथा उपर अने नीचे ये प्रकारे आ दश १०
दिशाओ छे हु अमुक दिशा तरक्ष आटवे इर सुधी ज्यथि ते आवीथ

माउसो। अगारसामाइए धम्मे पणत्ते। एयस्स धम्मस
सिक्खाए उवट्टिए समणोवासए वा समणोवासिया वा विहर-
माणे आणाए आराहए हवड ॥ सू० ५७ ॥

कर्मधारये—अपश्चिममारणान्तिरुमलेपना, नन्या जूपणा=सेवना—मग्नकाले सलेखनानाम्ना
तपसा शरीरस्य कपायादीनाञ्च कृतीकरण, तस्या आराधना=निरवा उन्नतया सपादनम्
॥ १२ ॥ 'अयमाउसो' अयमायुष्मन्! 'अगारसामाइए धम्मे पणत्ते' अगार-
सामयिको धर्म प्रजम 'एयस्स धम्मस्स सिक्खाए उवट्टिए समणोवासए वा समणो-

फिर भी यहा जो उसे अपश्चिम कहा है वह अमगलपरिहार के निमित्त से जानना चाहिये।
क्यों कि "अन्तक्रियाधिकरण तप फल सकलदर्शित स्तुवते" तप का फल गलेखनापूर्वक
प्राणों का विसर्जन करना प्रभुने वतलाया है, अत यदि यह अन्तिम समय आचरित नहीं
होती है तो जीवनभर की गई वताराधना तपस्या आदि एक प्रकार से निष्फल ही समझना
चाहिये। अत इस अपेक्षा से यह अपश्चिम—सर्वोत्कृष्ट कही गई है। यह सलेखना
(मारणान्तिकी) मरण क समय धारण की जाती है। काय और कपाय आदि जिसके
द्वारा अथवा जिसम कृत्र किये जाते है उमका नाम म्लेखना है। यह म्लेखना भी एक
तप—विशेष है। इसे प्रेम से वारण करना चाहिये इस अर्थ को धोतित करने के लिये ही
"जूपणा" यह पद दिया गया है। (अयमाउसो!) इस प्रकार हे आयुष्मन्! यह
(अगारसामाइए धम्मे पणत्ते) गृहस्थ का धर्म सिद्धान्त मे कहा गया है। (एयस्स
धम्मस्स सिक्खाए उवट्टिए समणोवासए वा समणोवासिया वा विहरमाणे आणाए

छे ते अमगल परिहारतु निमित्त वान्धु वान्धये केभडे "अन्तक्रियाधिकरण
तप फल सकलदर्शित स्तुवते" तपतु केल सलेखना—पूर्वक प्राणानु विसर्जन
करतु येम प्रभुये गताव्यु छे आथी ने आ अतिम समये आचरवामा
नथी आवती तो लपनभर ढरेली वत—आराधना तपस्या आदि ओक प्रकारे
निष्फल व मानवी नेधये आम आनी अपेक्षाये आ अपश्चिम—सर्वोत्कृष्ट
कहेली छे आ सलेखना (मारणान्तिकी) भरषुना समये धारणु वराय छे
काय अने कपाय आदि नेना द्वारा अथवा नेमा कृत्र कराय छे तेनु नाम
सलेखना छे आ सलेखना पणु ओक तपविशेष छे तेने प्रेमथी धारणु
करवी नेधये आ अर्थने धोतित (प्रशशित) वरवा भाटे व "जूपणा" ये
पद आपेलु छे (अयमाउसो) आ प्रकारे हे आयुष्मन्! आ (अगारसामा

अपच्छिमा-मारणतिया-सलेहणा-झूसणा-राहणा १२। अय-

तेन निर्वृत्त ऋचाप्रकाशिकम्-न्निगूतगृहीतपरिमाणस्य प्रतिदिन मन्त्रेपकरणम् ॥ १० ॥
 'पोषधोपवास' पोषधोपवास-पोषण पोष =पुष्टिगियर्थस्त धत्ते=गृह्णातीति पोषध, स
 चासाजुपनासश्चेति पोषधोपवास, एतत्तु अस्य व्युपत्तिमात्रम्, प्रवृत्तिनिमित्त तु-आहारादि-
 चतुष्टयपरित्याग एवेति बोध्यम्, अष्टमीचतुर्दस्यमानास्यापौर्णमासीषु अनुष्ठेयो व्रतविशेष ।
 तदुक्तम्—

‘आहार-तनुसत्कारा-ऽब्रह्म-सावध-रुर्मणाम् ।

त्यागः पूर्वचतुष्टया, तद्भिदुः पोषधव्रतम् ॥ ११ ॥ इति ।

‘अतिथिसविभागे’ अतिथि=विभाग-अतिथि =साधुस्तस्मै सविभाग =स्वाम

कन्याणभावनया समर्पणम् ‘अपच्छिमा-मारणतिया-सलेहणा-झूसणा-राहणा’
 अपश्चिम-मारणान्तिक-सलेखना-जूषणा-ऽऽराधना=अपश्चिमा-पश्चिमैवाऽमङ्गलपरिहारार्थ-
 मपश्चिमैस्तुच्यते, मरण=प्राणत्यागलक्षणम्, तदेवान्तो मरणान्त, तत्र भवा मारणान्तिकी,
 रलिरगते=कृशीक्रियतेऽनया शरीरकपायादि-इति सलेखना=तपोविशेषलक्षणा, एतत्पदत्रयस्य

इस स्थान तक जाऊँगा, इस गली तक जाऊँगा, आगे नहीं ! इत्यादि । चारों प्रकार के
 आहार का परित्याग करना इसका नाम ‘पोषधोपवास’ है । यह व्रत प्रत्येक महिने
 की प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या एवं पूर्णमासी के दिन किया जाता है । कहा भी
 है—पूर्वचतुष्टय मे—चारपवों मे आहारका परित्याग, शारीरिक सुस्कार का परित्याग, कुशील
 का परित्याग आदि सावध कर्मोंका जो त्याग है सो ‘पोषधव्रत’ है । अतिथि नाम साधु
 का है । साधु के लिये जो सविभाग—अपनी आत्मा के कल्याण की भावना से आहार पानी
 आदि समर्पण करना—सो ‘अतिथिसविभाग’ है । (अपच्छिमा-मारणतिया-सले-
 हणा-झूसणा-राहणा) सलेखना यद्यपि पश्चिम है—अर्थात्—अन्त में धारण की जाती है,

७४श, आ गली सुधी ७४श आगण नडि नडि ! इत्यादि आश्रय प्रकारना
 आहारना परित्याग करये तेतु नाम पोषधोपवास छे आ व्रत प्रत्येक मासनी
 प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या तेमञ्च पृष्ठिमाने द्विवस कराय छे उ कछु
 पछु छे—पूर्वचतुष्टयमा—चार पर्वमा आहारना परित्याग, शारीरिक सुस्कारना
 परित्याग, कुशीलना परित्याग आदि सावध कर्मोना जे त्याग छे ते पोषधव्रत
 छे अतिथि नाम साधु छे साधु माटे जे सविभाग—पोताना आत्माना
 कृत्याणुनी भावनाथी आहार पाछी आदि समर्पणु करवु ते अतिथिसवि
 भाग छे ४ (अपच्छिमा-मारणतिया-सलेहणा-झूसणा-राहणा) सलेखना जे के
 पश्चिम डोय छे—अतमा धाणु कराय छे, ते पछु तेने अपश्चिम कडेनाय

माउसो ! अगारसामाडए धम्मे पणत्ते । एयस्स धम्मस्स
सिक्खाए उवट्टिए समणोवासए वा समणोवासिया वा विहर-
माणे आणाए आराहए हवइ ॥ सू० ५७ ॥

कर्मधारये—अपश्चिममारणान्तिरुमलेपना, तस्या जूपणा=सेवना—मरणकाले सलेखनानाम्ना
तपसा शरीरस्य कषायार्दीनाञ्च वृथाकरण, तस्या आराधना=निरवाऽऽन्नतया सपादनम्
॥ १२ ॥ ‘अयमाउसो’ अयमायुष्मन् । ‘अगारसामाडए धम्मे पणत्ते’ अगार-
सामयिको धर्म प्रज्ञ ‘एयस्स धम्मस्स सिक्खाए उवट्टिए समणोवासए वा समणो-

फिर भी यहा जो उसे अपश्चिम कहा है वह अमगलपग्गिहार के निमित्त से जानना चाहिये ।
क्यों कि “अन्तक्रियाधिकरण तप फल सकलदर्शिन स्तुवते” तप का फल म्लेखनापूर्वक
प्राणां का विसर्जन करना प्रभुने मतलाया है, अत यदि यह अन्तिम समय आचरित नहीं
होती है तो जीवनभर की गई व्रताराधना तपस्या आदि एक प्रकार से निष्फल ही समझना
चाहिये । अत इस अपेक्षा से यह अपश्चिम—सर्वोत्कृष्ट कही गई है । यह म्लेखना
(मारणान्तिकी) मरण के समय धारण की जाती है । काय और कषाय आदि जिसके
द्वारा अथवा जिसमें कृञ क्रिये जाते हैं उसका नाम म्लेखना है । यह म्लेखना भी एक
तप—विशेष है । इसे प्रेम से वारण करना चाहिये इस अर्थ को द्योतित करने के लिये ही
“जूपणा” यह पद दिया गया है । (अयमाउसो !) इस प्रकार हे आयुष्मन् ! यह
(अगारसामाडए धम्मे पणत्ते) गृहस्थ का धर्म सिद्धान्त मे कहा गया है । (एयस्स
धम्मस्स सिक्खाए उवट्टिए समणोवासए वा समणोवासिया वा विहरमाणे आणाए

छे ते अभगल परिहारतु निमित्त जलुषु जलधये डेमडे “अन्तक्रियाधिकरण
तप फल सकलदर्शिन स्तुवते” तपतु डेल सलेपना—पूर्वक प्राणेतु विसर्जन
करतु जेम प्रलुये जताव्यु छे आयी जे आ अतिम सभये आचरवामा
नथी आवती तो एवनलर डरेली व्रत—आराधना तपस्या आदि जेक प्रकारे
निष्फल व मानवी जेधजे आम आनी अपेक्षाजे आ अपश्चिम—सर्वोत्कृष्ट
डडेली छे आ सलेपना (मारणान्तिकी) भरलुना सभये धारणु कराय छे
काय जने कषाय आदि जेना द्वारा अथवा जेमा कृथ कराय छे तेतु नाम
सलेपना छे आ सलेपना पणु जेक तपविशेष छे तेने प्रेमथी धारणु
करवी जेधजे आ अर्थने द्योतित (प्रदाशित) करवा माटे व “जूपणा” जे
पद आपेडु छे (अयमाउसो) आ प्रकारे छे आयुष्मन् ! आ (अगारसामा

तए णं सा महतिमहालिया मणूसपरिसा समणस्स
भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा गिसम्म हट्ट-तुट्ट-

वासिया वा ' एतस्य कर्मस्य शिवायाम् उपस्थित श्रमगोपायको वा श्रमगोपायिका वा,
'विहरमाणे' विहरन् 'आणाए आराहए भवइ' आज्ञाय आगतो भवति । अगारधर्मस्य
विस्तरतो व्याख्या उपासकदशाङ्गसूत्रस्यागारधर्मत्वज्ञान्याय्याया व्याख्याया प्रथमाअयन-
ऽस्माभि कृता ॥ सू० ५७ ॥

टीका—'तए ण' इत्यादि । 'तए ण' तत् मल्ल 'सा महतिमहालिया'
सा महतिमहती=अतिविशाल—'मर्मणूपरिसा' मनुष्यपरिपद 'समणस्स भगवओ
महावीरस अतिए' श्रमणस्य भगवतो महावीरस्याऽन्तिके=समीपे 'धम्म सोच्चा

आराहए हवइ) इस धर्म की शिक्षा में उपस्थित चाहे श्रमण का उपासक—गृहस्थ हो,
चाहे श्रमण की उपासिका—श्रायिका हो, कोई भी क्यों न हो, जो भी प्राणी इस धर्म की
छत्रच्छाया में अपने आपको विसर्जित कर देता है, अर्थात्—इन व्रतों की आराधना करता
है वह तीर्थंकर प्रभु की आज्ञा का आराधक माना गया है । अगारधर्म की विस्तृतरूप से
व्याख्या उपासकदशाङ्ग सूत्र के ऊपर विरचित अगारधर्मजीवनीनामकी टीका में प्रथम
अयन में की गई है । अत विशेषार्थी विषय को वहां से विस्ताररूप में देख ले ॥ सू० ५७ ॥

'तए णं सा महतिमहालिया' इत्यादि ।

(तए ण) तदन्तर (सा महतिमहालिया) वह अतिविशाल (मणूसपरिसा)

मनुष्यों की सभा (समणस्स) श्रमण (भगवओ) भगवान (महावीरस्स) महावीर के

इए धम्मे पणत्ते) गृह-स्थना धर्म सिद्धातमा कडेला छे (एयस्स धम्मस्स
सिन्हाण उवट्ठिण ममणोवासए वा समणोवासिया वा विहरमाणे आणाए आरा-
हए हवइ) आ धर्मनी शिक्षामा उपस्थित, आडे श्रमणुना उपासक-गृहस्थ
डोय, आडे श्रमणुनी उपासिका-श्रायिका डोय, ने डोय पणु प्राणी आ
धर्मनी छत्र-छायामा पोतानी जतनु विसर्जन करी दे छे—आ व्रतानी
आराधना करे छे, ते तीर्थंकर प्रभुनी आज्ञाना आगधन बनाय छे अगार
धर्मनी विस्तृतइपथी व्याख्या उपासकदशाङ्गसूत्रना उपर जनावेदी अगारधर्म-
मणुवनी नामनी टीकामा प्रथम अध्ययनमा करवामा आवेदी छे, भाटे विशेष
बिज्ञासुओओ आ विषयने त्याथी विस्तारइपे जोइ लेवे। (सू० ५७)

'तए ण सा महतिमहालिया' इत्यादि

(तए ण) त्थार ५७ (सा महतिमहालिया) ते अतिविशाल (मणूस

जाव-हियया उट्टाए उट्टेइ, उट्टित्ता समणं भगव महावीरं
तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ, करित्ता वदइ णमंसइ,
वंदित्ता णमंसित्ता अत्थेगइया मुडे भवित्ता अगाराओ अण-

णिसम्म' धर्मं श्रुत्वा=आश्चर्यं, निगम्य=दृष्टिं श्रुत्वा, 'हट्ट-तुट्ट-जाव-हियया' दृष्ट-तुष्ट-
यावद्-दृष्ट्या 'उट्टाए उट्टेइ' उच्यया=उच्यमानस्या उत्तिष्ठति 'उट्टित्ता' उच्यय,
'समणस्स भगवओ महावीरस्स' श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य 'तिक्खुत्तो' त्रिक्वव,
'आयाहिणपयाहिण करेइ' आदक्षिणप्रदक्षिण करोति, 'करित्ता' कृत्वा, 'वदइ
णमंसइ' वन्दते नमस्यति, 'वंदित्ता णमंसित्ता' वन्दित्वा नमस्यित्वा, तत्र-'अत्थे-
गइया' सन्त्येकके=केचित् 'मुंढे भवित्ता' मुण्डा भूत्वा 'अगाराओ' अगाराद्=गृहात्-
गृह परित्यज्येत्यर्थं, 'अणगारिय' अनगारिता=साधुता प्रव्रजिता =प्राप्ता, 'अत्थेगइया'

(अतिए) समीप (जम्म) धर्म का व्याख्यान (सोच्चा) सुनकर, एव अच्छी तरह उसे
(णिसम्म) हृद्यगम कर (हट्ट-तुट्ट-जाव-हियया) बहुत ही अधिक हर्षित एव स्तुष्ट-
चित्त हुई, (उट्टाए उट्टेइ) पश्चात् अपने २ आमन से उठी, (उट्टित्ता समणं भगवं महा-
वीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ करित्ता वदइ णमंसइ) उठ कर फिर उसने
श्रमण भगवान महावीर को तानवार आदक्षिणप्रदक्षिणपूर्वक वन्दन-नमस्कार किया, (वंदित्ता
णमंसित्ता अत्थेगइया मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइया) वदना-नमस्कार
कर के किननेक मनुष्योंने मुटित होकर, अपने २ घर को छोडकर उनके पास अनगार बने,
अर्थात् दीक्षा वारण की। (अत्थेगइया पचाणुव्वइय सत्तसिक्खावइय दुवालसविह गिहि-

परिसा) मनुष्योंनी भला (समणस्स) श्रमण (भगवओ) भगवान (महावीरस्स)
महावीरना (अंतिण) अभीषे (धम्म) श्रुतव्याख्यान धर्मनी देशना (सोच्चा)
सालणीने तेमज सागी शीते तेने (णिसम्म) हृद्यगम शरीने (हट्ट-तुट्ट-जाव
हियया) अर्द्ध हर्षित तेमज सतोष पाभी, (उट्टाए उट्टेइ) यश्री पोतपोताना
आसनेयी डी, (उट्टित्ता समण भगव महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ,
करित्ता वदइ णमंसइ) डीने, यश्री तेमणु श्रमणु भगवान महावीरने त्रणुवार
आदक्षिण-प्रदक्षिण-पूर्वक वदन नमस्कार श्या, (वंदित्ता णमंसित्ता अत्थेगइया
मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइया) वदना-नमस्कार करीने डेटलाड
मनुष्योंने सुडित शधने पोतपोताना घर छोडीने तेमना पासे अनगार
थया, अर्थात् दीक्षा लीधी (अत्थेगइया पचाणुव्वइय सत्तसिक्खावइय दुवाल-

गारियं पव्वइया, अत्थेगइया पचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइय
दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवण्णा ॥ सू० ५८ ॥

मूलम्—अवसेसा ण परिसा समणं भगवं महावीरं
वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एव वयासी—सुअक्खाए ते

सन्त्येकके 'पंचाणुव्वइय सत्तसिक्खावइय दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवण्णा' पञ्चा
णुवतिक सतगिक्षानतिक द्वादशनिध गृह्णिमं प्रतिपत्ता ॥ सू० ५८ ॥

टीका—'अवसेसा ण परिसा' इत्यादि । 'अवसेसा ण परिसा समण
भगव महावीर वदइ णमंसइ, वदित्ता णमंसित्ता एव वयासी' अवशेषा=अवशिष्टा
खलु परिपत्त श्रमण भगवन्त महावीर वन्दते नमस्यति, वन्दित्ता नमस्यित्वा एवमनादीत्—
'सुअक्खाए ते भते ! गिग्गये पावयणे' स्वारायात्=सुष्टु कथित सामान्यतस्त्वया
भदन्त ! निर्ग्रन्थ प्रवचनम्, 'एव सुप्पणत्ते' एव सुप्रज्ञमम्—विशेषकथनात्, 'सुभासिए'

धम्मं पडिवण्णा) कितनेको ने पाँच अणुवत, सात गिक्षानत—इम तरह १२ प्रकार का गृह
स्थधर्म स्वीकार किया ॥ सू. ५८ ॥

'अवसेसा ण परिमा' इत्यादि ।

(अवसेसा ण परिसा) अवशिष्ट परिपत्तने (समण भगव महावीर) श्रमण भग
वान् महावीर को (वंदइ णमंसइ) वन्दना एव नमस्कार किया, (वदित्ता णमंसित्ता एव
वयासी) वदना नमस्कार करने के बाद फिर उन्होंने इस प्रकार कहा—(सुअक्खाए ते
भते ! गिग्गये पावयणे) हे भदन्त ! आपने निर्ग्रन्थ प्रवचन बहुत अच्छा कहा, (एव सुप्प
णत्ते) और आपने इमका बहुत अच्छा तरह से प्ररूपण किया, (सुभासिए) आपन सूब

सविह गिहिधम्म पडिवण्णा) डेटलाडे पच्य आणुवत मात शिक्षानत ओम १२
प्रकारना गृहस्थ धर्म स्वीकार कर्था (सू. ५८)

'अवसेसा ण परिमा' इत्यादि

(अवसेसा ण परिसा) आशीनी परिपदे (समण भगव महावीर) श्रमण
भगवान् महावीरने (वंदइ णमंसइ) वदना तेभ्य नमस्कार कर्था, (वदित्ता णमंसित्ता
एव वयासी) वदना नमस्कार कर्था पत्ती तेओओ आ प्रभाणे कल्लु—(सुअक्खाए
ते भते ! गिग्गये पावयणे) हे भदन्त ! आपने निर्ग्रन्थ प्रवचन बहुत अच्छा कहा,
(एव सुप्पणत्ते) अने आपने तेनु बहुत सारी रीते प्ररूपण कर्था (सुभासिए)

भंते । णिग्गंथे पावयणे, एवं सुप्पणत्ते, सुभासिए, सुविणीए,
सुभाविए । अणुत्तरे ते भंते । निग्गंथे पावयणे । धम्म णं आड-
क्खमाणा तुब्भे उवसमं आडक्खह, उवसमं आडक्खमाणा वि-
वेगं आडक्खह, विवेगं आडक्खमाणा वेरमणं आडक्खह, वेर-

सुभाषितम्—भावयज्जनात्, 'सुविणीए' सुविनीतम्—द्विष्येषु सुष्टु विनियोजितत्वात्,
'सुभाविए' सुभाषितम्=सुष्टु भाषितम्—तत्त्वकथनात्, 'अणुत्तरे' अनुत्तर—नास्त्युत्तर
यस्मात् तद्—अनुत्तर—मर्वश्रेष्ठ, तत्र भदन्त निर्धन्य प्रवचनम् । 'धम्म ण आडक्खमा-
णा तुब्भे उवसम आडक्खह' धर्म रत्त्वाचक्षणा यूयसुपगमम्=क्रोधादिनिरोधम् आरयाथ=
कथयथ, 'उवसमं आडक्खमाणा विवेग आडक्खह' उपगममाचक्षणा विवेकमाख्याय,
क्रोधादिनिरोध कथयन्तो यूय विवेक=हयोपादेयविवेचन कथयथ, 'विवेग आडक्खमाणा
वेरमण आडक्खह'—विवेकमाचक्षणा विरमणमारयाथ, विरमणम्=प्राणातिपातादिनिवर्त-

सुन्दर रूप से पदार्थों के स्वरूप को प्रकट किया, (सुविणीए) आपने द्विष्यों को खून सम-
झाया, (सुभाविए) जीवादि सभी तत्वों को आपन अच्छी तरह से समझाया । (अणुत्तरे ते
भंते । णिग्गंथे पावयणे) हे भदन्त ! आपका यह निर्धन्य प्रवचन सर्वोत्कृष्ट है । हे भदन्त !
(धम्म ण आडक्खमाणा तुब्भे उवसम आडक्खह) धर्मका उपदेश करते समय आप उपगम
भाष क्रोधादिनिरोध का उपदेश करते हैं, (उवसम आडक्खमाणा विवेग आडक्खह) क्रोधादिक
के निरोध का उपदेश करते समय हयोपादेयरूप विवेक का उपदेश देते हैं, (विवेग आड-
क्खमाणा वेरमण आडक्खह) विवेक का उपदेश करते समय प्राणातिपातादिक से विरक्त
होने का भी उपदेश करते हैं, (वेरमण आडक्खमाणा अकरण पावाण कम्मण आड-

आपे भूष सुष्टु उपथी पदार्थोना स्वश्रुने प्रकट कथां (सुविणीए) आपे
शिक्ष्येने भूष समन्तव्या (सुभाविए) एवादि यथा तत्त्वोने मारी गीते समन्तव्या
(अणुत्तरे ते भंते । णिग्गंथे पावयणे) हे भदन्त ! आपनु आ निर्धन्य प्रवचन
सर्वोत्कृष्ट छे हे भदन्त ! (धम्म ण आडक्खमाणा तुब्भे उवसम आडक्खह)
धर्मोने उपदेश करती वधने आपे उपशमलाव—क्रोधादिनिरोधोने उपदेश
करती छे (उवसम आडक्खमाणा विवेग आडक्खह) क्रोधादिना निरोधोने उप-
देश करती वधते उय—उपादेय उप विवेकने उपदेश करती छे (विवेग आड-
क्खमाणा वेरमण आडक्खह) विवेकने उपदेश करती वधते प्राणातिपातादिकथी

मणं आइक्खमाणा अकरणं पावाणं कम्माणं आइक्खह । णत्थि
णं अण्णे केइ समणे वा माहणे वा जे एरिसं धम्ममाइक्खि-
त्तए, किंमंग ! एत्तो उत्तरतरं ? एवं वदित्ता जामेव दिसं पाउ-
ब्भूया तामेव दिसं पडिगया ॥ सू०५९ ॥

नम्, 'वेरमणं आइक्खमाणा अकरण पावाण कम्माणं आइक्खह' विरमणमाच
क्षाणा अकरण पावाना कर्मणामाएयाव=पापरूपाणा कर्मणामकरणम्=अनाचरण कथयथ,
'णत्थि ण अण्णे केइ समणे वा माहणे वा जे एरिस धम्ममाइक्खित्तए' नास्ति
खन्वन्य कोऽपि श्रमणो वा ब्राह्मणो वा य ईदृश धर्ममाएयायात्, 'किमंग पुण एत्तो
उत्तरतर' किमङ्ग ' पुनरेतस्मात् उत्तरतरम्—अस्माद्भ्रमापदेशादुत्कृष्ट कथयिष्यतीति का
सम्भावना ' न कापा यर्थ, 'एव वदित्ता जामेव दिस पाउब्भूया तामेव दिस पडि-
गया' एवम् उदित्वा यस्या एव दिश प्रादुर्भूतास्तामेव दिश प्रतिगता ॥ सू०५९ ॥

कावह) प्राणातिपातादिके विरमण का उपदेश देते हुए आप पापरूप कर्मों को नही करने का
उपदेश भी देते है। अत (णत्थि ण अण्णे केइ समणे वा माहणे वा जे एरिस धम्ममाइ-
क्खित्तए) इस नसार मे ह नाथ ! एसा और कोई दूसरा श्रमण वा ब्राह्मण उपदेश नहीं
है जो इस प्रकार के धर्म का उपदेश दे सके, (किमंग ! पुण एत्तो उत्तरतर) फिर इससे
उत्कृष्ट धर्म का उपदेश कौन दे सकता है ? अर्थात् कोई नहीं ! (एव वदित्ता जामेव
दिसि पाउब्भूया तामेव दिस पडिगया) इस प्रकार कह कर वे सन जिस दिशा से आये
थे उसी दिशा का ओर चले गये ॥ सू ५९ ॥

विरक्त थवाने उपदेश क्यो छे (विरमण आइक्खमाणा अकरण पावाण कम्माण
आइक्खह) प्राणातिपातादिकना विरमणुने उपदेश देती वअते आपे पापक्ष
कर्मो न करवाने पणु उपदेश क्यो छे भाटे (णत्थि ण अण्णे केइ समणे वा
माहणे वा जे एरिस धम्ममाइक्खित्तए) आ स सारभा, छे नाथ ! जेवो भीजे
कोध श्रमणु के प्राक्षणु उपदेशा नथी के ? आ प्रकारना धर्मने उपदेश
आपी शके (किमंग ! पुण एत्तो उत्तरतर) तो पजी आनाथी उत्कृष्ट धर्मने उप
देश कोषु आपी शके ! अर्थात् कोध नहि (एव वदित्ता जामेव दिसि पाउब्भूया
तामेव दिस पडिगया) आ प्रजा के छडीने ते अथा के दिशाकेथी आन्था डती
ते के दिशा तन्क्ष पाधा आत्या गया (सू ५८)

मूलम्—तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते सम-
णस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ट-
तुट्ट-जाव-हियए उट्टाए उट्टेइ, उट्टित्ता समणं भगवं महावीरं
तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ, णमंसइ,

टीका—‘तए ण से’ इत्यादि । ‘तए ण से कूणिए राया भंभसारपुत्ते’
तत खलु स कूणिको राजा भंभसारपुत्र, ‘समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए
धम्म सोच्चा णिसम्म’ श्रमणस्य भगवतो महावीरस्याऽन्तिके धर्मे श्रुत्वा निगम्य, ‘हट्ट-
तुट्ट-जाव-हियए’ हट्ट-तुट्ट-यावद्दृढय ‘उट्टाए उट्टेइ’ उर्थ्योत्तिष्ठति, ‘उट्टित्ता’
उत्थाय श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ‘तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ’ त्रिक्रव आद-
क्षिणप्रदक्षिणं करोति, ‘करित्ता’ कृत्वा ‘वंदइ णमंसइ’ वन्दते नमस्यति, ‘वंदित्ता

‘तए ण से कूणिए राया’ इत्यादि ।

(तए ण) अनन्तर (से कूणिए राया भंभसारपुत्ते) भंभसार के पुत्र उन कूणिक
राजाने (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमण भगवान् महावीर के (अतिए) पास में
(धम्म सोच्चा) धर्मापदेश सुनकर, (णिसम्म) एव उसका अच्छी तरह पूर्वापररूप से विचार
कर, (हट्ट-तुट्ट-जाव-हियए) चित्त में अधिक से अधिक आनन्द एव सतोष प्राप्त किया,
(उट्टाए उट्टेइ) बाद में अपने स्थान से उठे और (उट्टित्ता) उठकर (समण भगव महावीरं-
तिक्खुत्तो अयाहिणपयाहिणं करेइ करित्ता वंदइ णमंसइ) उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर
की तीनवार आदक्षिणप्रदक्षिणपूर्वक वन्दना एव नमस्कार किया, (वंदित्ता णमंसित्ता एव

“तए ण से कूणिए राया” इत्यादि

(तए ण) त्थार पथी (से कूणिए राया भंभसारपुत्ते) ललसारना पुत्र ते
इत्थिक्क राणात्थे (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणु ललवान भहावीरनी
(अतिए) पासै (धम्म सोच्चा) धर्मोपदेशे सावणीने, (णिसम्म) तेभज्ज तेने
आरी रीते पूर्वापररूपे विचार करीने, (हट्ट-तुट्ट-जाव-हियए) मनभा थहु
ज्ज आनन्द तेभज्ज सतोष प्राप्त कर्यो, (उट्टाए उट्टेइ) त्थार पथी पोताना
स्थानेथी उठ्था, अने (उट्टित्ता) उठीने (समण भगव महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-
पयाहिणं करेइ करित्ता वंदइ णमंसइ) तेभज्जे श्रमणु ललवान भहावीरने त्रयु-
वार आदक्षिणु-प्रदक्षिणुपूर्वक वन्दना तेभज्ज नमस्कार कर्यो (वंदित्ता णमंसित्ता

वदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-सुअक्खाए ते भंते । णिग्गंये पावयणे जाव किमग ! पुण एत्तो उत्तरतरं ? एवं वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए ॥ सू० ६० ॥

णमंसित्ता एव वयासी' वदिता नमस्विना ण्यममादीत्- 'सुअक्खाए ते भंते ! णिग्गंये पावयणे जाव किमग ! पुण एत्तो उत्तरतरं' स्वाग्यात तत्र भदत् । निर्भन्थ प्रवचनम् यावत् किमङ्ग ! पुनरेतस्मादुत्तरतरम् । 'एव वदित्ता जामेव दिस पाउब्भूए तामेव दिस पडिगए' ण्यम् उदिता यस्या एव दिश प्रादुर्भूत, तामेव दिश प्रतिगत ॥ सू० ६० ॥

वयासी) वदना एव नमस्कार कर फिर उन्होंने प्रभु से इस प्रकार कहा-(सुअक्खाए ते भंते ! णिग्गंये पावयणे) हे भद्रन्त ! आपन निर्भन्थ प्रवचन का उपदेश बहुत ही सुदूर-पूर्वापरनिरोधरहित-सर्वोत्कृष्ट किया है । (जाव किमग पुण एत्तो उत्तरतरं) इस निर्भन्थ प्रवचन में ऐसा कोई सा भी विषय बाकी नहीं बचा जिस पर आपन प्रकाश न डाला हो-अच्छी तरह से विवेचन नहीं किया हो । आपन सब कुछ एक ही साथ बहुत ही अच्छी तरह मीठे शब्दों में समझा दिया है, हमने तो ऐसा उपदेश आजतक नहीं सुना, कल्याण एव जीव नके उपयोगी सब विषय आपने कहे हैं ।-इत्यादि । एव वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिस पडिगए) इस प्रकार प्रभु का स्तुति रूप में कह कर कृष्णिक राजा जिस दिशा से आये थे उसी दिशा का ओर वहा से वापिस चले गये ॥ सू० ६० ॥

एव वयासी) वदना तेभञ्ज नमस्कार करीने पछी तेओ प्रभुने आ प्रकारे कहुं-(सुअक्खाए ते भंते ! णिग्गंये पावयणे) हे भद्रन्त ! आपणो आ निर्भन्थ प्रवचनने उपदेश अहुञ्ज सुदूर-पूर्वापरनिरोधरहित-सर्वोत्कृष्ट थयो छे (जाव किमग ! पुण एत्तो उत्तरतरं) आ निर्भन्थ प्रवचनमा ओवो कोर्ध पण विषय आकी रह्यो नथी जेना उपर आये प्रकाश न नाज्यो होय-सारी रीतथी विवेचन न कहुं होय आये तामे-तमाम ओक साथेञ्ज अहुञ्ज सारी चेटे मीठा शब्दोमा समजवी दीधु छे अमे तो ओवो उपदेश आञ्ज सुधी साज्यो नथी कल्याण तेभञ्ज जवनमा उपयोगी अथा विषय आये कहुआ छे इत्यादि (एव वदित्ता जामेव दिस पाउब्भूए तामेव दिस पडिगए) आ प्रकारे प्रभुनी स्तुतिरूपमा कहीने इच्छिक राजा जे दिशाओथी आजा उता ते दिशा तरङ्ग पाछा आख्या गया (सू ६०)

मूलम्—तए णं ताओ सुभद्रापमुहाओ देवीओ
समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म
हट्ट-तुट्ट-जाव-हिययाओ उट्टेंति. उट्टित्ता समणं भगवं महावीर
तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेंति, करित्ता वंदंति णमंसंति,

टीका—‘तए ण ताओ’ इत्यादि । ‘तए ण ताओ सुभद्रापमुहाओ देवी-
ओ’ तत ग्वल्ल ता सुभद्राप्रमुखा देव्य ‘समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए’
श्रमणस्य भगवतो महावीरस्याऽन्तिके ‘धम्म सोच्चा णिसम्म हट्ट-तुट्ट-जाव-हिय-
याओ’ धर्म श्रुत्वा निगम्य हट्ट-तुट्ट यावद्दृश्या ‘उट्टाए उट्टेंति’ उच्योतिप्रति, ‘उट्टि-
त्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स’ उच्यते श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ‘तिक्खुत्तो
आयाहिणपयाहिण करेंति’ त्रिकुव आदक्षिणप्रदक्षिण कुर्वन्ति, ‘करित्ता वदति णमसति’

‘तए णं ताओ सुभद्रापमुहाओ’ इत्यादि ।

(तए ण) इस के बाद (ताओ सुभद्रापमुहाओ देवीओ) के सुभद्राप्रमुख देवियों
भी (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमण भगवान् महावीर के (अतिए) समीप (धम्म
सोच्चा) धर्म श्रवण कर, एव (णिसम्म) उसे हृदयगम कर, (हट्ट-तुट्ट-जाव-हिययाओ)
बहुत ही अधिक खुश एव मत्तुष्ट होती हुई जहाँ वे गड़ी थी वहाँ से (उट्टाए उट्टेंति) चल
कर भगवान् के समीप आया, (उट्टित्ता) आकर उन्होंने (समणं भगवं महावीर तिक्खुत्तो
आयाहिण-पयाहिण करेंति करित्ता वदति णमसति) श्रमण भगवान् महावीर की तीन-

“तए ण ताओ सुभद्रापमुहाओ” इत्यादि

(तए ण) त्थार पछी (ताओ सुभद्रापमुहाओ देवीओ) ते सुभद्रा-प्रमुख
देवीओ पछु (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणु लगवान् महावीरना (अतिए)
समीपे (धम्म सोच्चा) धर्म-श्रवणु करीने, तेभण (णिसम्म) तेने हृदय गम करीने
(हट्ट-तुट्ट-जाव-हिययाओ) षडुण पुश तेभण स तोप पाभती न्या तेओ
उली उती त्याथी (उट्टाए उट्टेंति) आलीने लगवाननी पासि आवी,
(उट्टित्ता) आवीने तेओअे (समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण
करेंति, करित्ता वदति णमसति) श्रमणु लगवान् महावीरने त्रणुवार आदक्षिणु

वदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-सुअक्खाए ते भंते ! णिगंगे पावयणे जाव किमंग ! पुण एत्तो उत्तरतरं ? एवं वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए ॥ सू० ६० ॥

णमंसित्ता एव वयासी' वदित्ता नमस्सिवा णमयासीन- ' सुअक्खाए ते भंते ! णिगंगे पावयणे जाव किमंग ! पुण एत्तो उत्तरतरं ' स्वाग्यात तत्र भदत्त ! निर्भन्थ प्रवचनम् यावत् किमङ्ग ! पुनरेतस्मादुत्तरतम् ' ' एव वदित्ता जामेव दिस पाउब्भूए तामेव दिस पडिगए ' एवम् उच्यते यस्या णम दिश प्रादुर्भूत, तामेव दिश प्रतिगत ॥ सू० ६० ॥

वयासी) वदना एव नमस्कार कर फिर उच्यते प्रभु से इस प्रकार कहा-(सुअक्खाए ते भंते ! णिगंगे पावयणे) हे भदन्त ! आपन निर्भन्थ प्रवचन का उपदेश बहुत ही सुंदर पूर्वापरविरोधरहित-सर्वोत्कृष्ट किया है। (जाव किमंग पुण एत्तो उत्तरतरं) इस निर्भन्थ प्रवचन में ऐसा कोड सा भी विषय बाका नहीं बचा जिस पर आपन प्रकाश न डाला हो-अच्छी तरह से विवेचन नहीं किया हो। आपन सब कुछ एक ही साथ बहुत ही अच्छी तरह मीठे शब्दों में समझा दिया है, हमने तो ऐसा उपदेश आज तक नहीं सुना, कल्याण एव जीव नके उपयोगा सब विषय आपने कहे हैं।-इत्यादि। एव वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिस पडिगए) इस प्रकार प्रभु की स्तुति रूप में कह कर कृष्णिक राजा जिस दिशा से आये थे उसी दिशा की ओर वहां से वापिस चले गये ॥ सू० ६० ॥

एव वयासी) वदना तेभञ्ज नमस्कार करीने पछी तेओ प्रभुने आ प्रकारे कहुं-(सुअक्खाए ते भंते ! णिगंगे पावयणे) हे भदन्त ! आपणो आ निर्भन्थ प्रवचननेो उपदेश अहुञ्ज सुंदर-पूर्वापरविरोधरहित-सर्वोत्कृष्ट थये छे (जाव किमंग ! पुण एत्तो उत्तरतरं) आ निर्भन्थ प्रवचनमा ओवेो कोरि पक्ष विषय बाकी रह्यो नथी जेना उपर आपे प्रकाश न नाजयेो डोय-सारी रीतथी विवेचन न कथुं डोय आपे तमामे-तमाम ओक साथेञ्ज अहुञ्ज सारी चेठे भीळा शब्दोमा समजवी दीधु छे अमे तो ओवेो उपदेश आञ्ज सुधी साबल्येो नथी कल्याण तेभञ्ज एवममा उपयोगी पधा विषय आपे कहुं छे धत्थादि. (एव वदित्ता जामेव दिस पाउब्भूए तामेव दिस पडिगए) आ प्रकारे प्रभुनी स्तुतिरूपमा कडीने कृष्णिक राजा जे दिशाओथी आओवा उता ते दिशा तरफ पाछा आओवा गया (सू. ६०)

मूलम्—तए णं ताओ सुभद्रापमुहाओ देवीओ
समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्म सोच्चा णिसम्म
हट्ट-तुट्ट-जाव-हिययाओ उट्टेति, उट्टित्ता समणं भगवं महावीरं
तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेति, करित्ता वदति णमंसति,

टीका—‘तए ण ताओ’ इत्यादि । ‘तए ण ताओ सुभद्रापमुहाओ देवी-
ओ’ तत् स्वच्छ ता सुभद्राप्रमुखा देव्य ‘समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए’
श्रमणस्य भगवतो महावीरस्याऽन्तिके ‘धम्म सोच्चा णिसम्म हट्ट-तुट्ट-जाव-हिय-
याओ’ धर्मं श्रुत्वा निशम्य हट्ट-तुट्ट यावद्दृश्या ‘उट्टाए उट्टेति’ उ व्योत्तिष्ठन्ति, ‘उट्टि-
त्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स’ उच्चाय श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ‘तिक्खुत्तो
आयाहिणपयाहिण करेति’ त्रिक्रान् आदक्षिणप्रन्क्षिण कुर्वन्ति, ‘करित्ता वदति णमंसति’

‘तए ण ताओ सुभद्रापमुहाओ’ इत्यादि ।

(तए ण) इस के बाद (ताओ सुभद्रापमुहाओ देवीओ) के सुभद्राप्रमुख देवियों
भी (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमण भगवान् महावीर क (अतिए) समीप (धम्म
सोच्चा) धर्म श्रवण कर, एवं (णिसम्म) उसे हृदयगत कर, (हट्ट-तुट्ट-जाव-हिययाओ)
बहुत ही अधिक खुश एवं मनुष्य होती हुई जहाँ के गेटा थीं वहाँ से (उट्टाए उट्टेति) चल
कर भगवान् के समीप आया, (उट्टित्ता) आकर उन्होंने (समण भगवं महावीर तिक्खुत्तो
आयाहिण-पयाहिण करेति करित्ता वदति णमंसति) श्रमण भगवान् महावीर की तीन-

“तए ण ताओ सुभद्रापमुहाओ” इत्यादि

(तए ण) त्थार पछी (ताओ सुभद्रापमुहाओ देवीओ) ते सुभद्रा-प्रमुख
देवीओ पधु (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणु भगवान् महावीरना (अतिए)
समीपे (धम्म सोच्चा) धर्म-श्रवणु करीने, तेमए (णिसम्म) तेने हृदय गत करीने
(हट्ट-तुट्ट-जाव-हिययाओ) पधुए पुश तेमए म तोप पावती न्था तेओ
उभी उती त्थाथी (उट्टाए उट्टेति) थालीने भगवान्नी पासि आवी,
(उट्टित्ता) आवीने तेओओ (समण भगवं महावीर तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण
करेति, करित्ता वदति णमंसति) श्रमणु भगवान् महावीरने त्रणुवार आदक्षिणु

वदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-सुअक्खाए ते भंते । णिग्गंये पावयणे जाव किमंग । पुण एत्तो उत्तरतरं ? एवं वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए ॥ सू०६० ॥

णमंसित्ता एव वयासी' वदित्ता नमरिय वा ण्वमवादीन- 'सुअक्खाए ते भंते । णिग्गंये पावयणे जाव किमंग ! पुण एत्तो उत्तरतरं' स्वाग्यात तत्र भदन्त । निर्भन्ध प्रवचनम् यावत् किमङ्ग ! पुनन्तस्मादुत्तरतरम् । 'एव वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए' ण्वम् उदित्वा यस्या एव दिशं प्रादुर्भूत, तामेव दिशं प्रतिगत ॥ सू० ६० ॥

वयासी) वदना एव नमस्कार कर फिर उन्हांन प्रभु से इस प्रकार कहा-(सुअक्खाए ते भंते ! णिग्गंये पावयणे) हे भदन्त ! आपन निर्भन्ध प्रवचन का उपदेश बहुत ही सुंदर पूर्वापरविरोधरहित-सर्वोच्छ्रित किया है । (जाव किमंग पुण एत्तो उत्तरतरं) इस निर्भन्ध प्रवचन में ऐसा कोई सा भी विषय नहीं बचा जिस पर आपन प्रकाश न डाला हो- अच्छी तरह से विवेचन नहीं किया हो । आपन सब कुछ एक ही साथ बहुत ही अच्छी तरह मीठे शब्दों में समझा दिया है, हमने तो ऐसा उपदेश आज तक नहीं सुना, कल्याण एव जीव-नके उपयोगों सब विषय आपन कहे हैं ।-इत्यादि । एव वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए) इस प्रकार प्रभु का स्तुति रूप में कह कर कृष्णिक राजा जिस दिशा से आये थे उसी दिशा की ओर वहा से वापिस चले गये ॥ सू० ६० ॥

एव वयासी) वदना तेभञ्ज नमस्कार इतीने पछी तेज्यो प्रभुने आ प्रकारे कर्हुं-(सुअक्खाए ते भंते ! णिग्गंये पावयणे) हे भदन्त ! आपणो आ निर्भन्ध प्रवचनने। उपदेश अहुञ्ज सुद्धर-पूर्वापरविरोधरहित-सर्वोच्छ्रित थयो छे (जाव किमंग ! पुण एत्तो उत्तरतर) आ निर्भन्ध प्रवचनमा जेवो केअि पञ्च विषय आकी रह्यो नथी जेना उपर आपे प्रकाश न नाज्यो होय-सारी रीतथी विवेचन न कर्हुं होय आपे तमामे-तमाम अेक माथेञ्ज अहुञ्ज सारी पेटे भीळा शब्दोमा समन्तवी हीधु छे अमे तो जेवो उपदेश आञ्ज सुधी सावज्यो नथी कल्याण तेभञ्ज लवनमा उपयोगी अथा विषय आपे कर्हा छे इत्यादि. (एव वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए) आ प्रकारे प्रभुनी स्तुतिप्रथमा कर्हीने कृष्णिक राजा जे दिशाअेथी आव्या हता ते दिशा तरङ्ग पाछा आव्या गया (सू ६०)

त्रिदिता जामेव दिस पाउब्भूयाओ तामेव दिस पडिगयाओ ' एवम् उदित्वा यस्या
एव दिश प्रादुर्भूता , तामेव दिश प्रतिगता ॥ सू० ६१ ॥

इति श्री-विश्वविद्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धवाचक - पञ्चदशभाषाकण्ठितललितकलापालापक-
प्रविशुद्भगवधनैऋप्रथनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहउत्रपति-कोल्हापुरराज-प्रदत्त-
जैनशास्त्राचार्य-पदभूपित-कोल्हापुरराजगुरु-बालत्रहचारि-जैनाचार्य-जैन-
धर्मद्विवाकर-पूज्यश्रीघासीलालत्रतिविरचितायाम् औपपातिकसूत्रम्य पीयूष-
षिण्याख्याया व्याख्याया समवरणनामक पूर्वार्द्धं सम्पूर्णम् ।

तामेव दिस पडिगयाओ) इस प्रकार भक्तिभाव से प्रभु की स्तुति करके वे सब रानियाँ
जहा से आई थीं वही वापिस चली गयीं ॥ सू० ६१ ॥

॥इति औपपातिक सूत्रका समवसरणनामक पूर्वार्द्धं सपूर्ण ॥

जामेव दिस पाउब्भूयाओ तामेव दिस पडिगयाओ) आ प्रकारे लक्षितभावथी
प्रभुनी स्तुतिरूपे निवेदन करीने तेओ णधी राणीओ न्याथी आवी हुती
त्या पाठी आवी गछ (सू. ६१)

इति औपपातिक सूत्रनु समवसरणु नामक पूर्वार्द्धं स पूरु



वदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—सुयक्खाए ते भंते । निग्गये
पावयणे जाव किमंग ! पुण एत्तो उत्तरतरं ?, एवं वदित्ता
जामेव दिसं पाउब्भूयाओ तामेव दिसं पडिगयाओ ॥ सू०६ ? ॥

॥ समोसरणं नाम पुब्बद्द समत्त ॥

कृत्वा वन्दन्ते नमरयन्ति, 'वदित्ता णमंसित्ता एव वयासी' वन्दित्वा नमरियवैवमवादिषु -
'सुयक्खाए ते भंते ! निग्गये पावयणे जाव किमंग ! पुण एत्तो उत्तरतरं ?' स्वा
ख्यात तव भदत्त ! निर्ग्रन्थ प्रवचनम् यावत् किमङ्ग ! पुनरेतस्मादुत्तरतरम् ? 'एव

वार आदक्षिणप्रदक्षिणपूर्वक वदना एव नमस्कार किया, (वदित्ता णमंसित्ता एव वयासी)
वदना नमस्कार करने के अनन्तर फिर वे प्रभु से इस प्रकार बोलीं कि (सुयक्खाए ते भंते !
निग्गये पावयणे) आपने ह भदन्त ! इस निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश बहुत ही सुन्दर
पूर्वापरविरोधरहित—सर्वो कष्टरूप से किया है । (जाव किमंग ! पुण एत्तो उत्तरतर) हे
प्रभो ! आपने इस निर्ग्रन्थ प्रवचन में सब ही विषयों को अच्छी तरह समझाया है । कोई भी
विषय ऐसा नहीं रहा कि जिस पर आपकी वाणी का अविरल प्रवाह न बहा हो । सब कुछ
आपने बहुत सरल भाषा में समझा दिया है । हमने तो आजतक इतना मार्मिक उपदेश नहीं
सुना, इससे उत्तम उपदेश की बात ही नहीं कहें ' (एव वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूयाओ

प्रदक्षिणपूर्वक वदना तेभञ्ज नमस्कार कथां, (वदित्ता णमंसित्ता एव वयासी)
वदना—नमस्कार करी लीधा पछी तेअोअे प्रभुने आ प्रकारे कल्लु के (सुयक्खाए
ते भंते ! निग्गये पावयणे) आपे हे लहन्त ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचननेओ उपदेश
अहुञ्ज सारीरीते, पूर्वापरविरोधरहित तेभञ्ज सर्वोत्कृष्ट कथो छे (जाव
किमंग ! पुण एत्तो उत्तरतर) हे प्रभो ! आपे आ निर्ग्रन्थ प्रवचनमा अधाअे
विषयोने सारी रीतथी समज्जया छे काध पल्लु विषय अेवो नथी रक्षो के
नेना उपर आपनी वाणीने अविरल प्रवाह पछो न होय, अधुय आपे अहु
सरल लापामा समज्जवी दीधु छे अमे तो आञ्ज सुधीमा आट्ठेओ भाभिंके
उपदेश साल्लो नथी आथी उत्तम उपदेशनी तो वात न् कथा ? (एव वदित्ता

सत्तुस्सेहे सम-चउरंस-संठाण-संठिए वइर-रिसह-णाराय-
संघयणे कणग-पुलग-णिघस-पम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे

समचतुरस्रम्-मानोन्मानप्रमाणानामन्यूनानधिकवात् अङ्गोपाङ्गाना चाविकलवात् ऊर्ध्वं तिर्यक्
च तुन्यत्वात् सम, चतुरस्र चाविकलावयवत्वात्, सम च तच्चतुरस्र चेति समचतुरस्र-स्वा-
ङ्गुलाष्टगतोच्छ्रयाङ्गोपाङ्गयुक्त, युक्तिनिर्मितलेप्यकवदवा, मस्थानम्=आकारविशेष, तेन
मस्थित =युक्त, 'वइर-रिसह-णाराय-संघयणे' वज्र-र्षभ-नाराच-महनन-वज्र-
कीलिका, ऋषभ =पद्, नाराच =मर्कटबन्ध-उभयपार्श्वयोरस्थिवधविशेष, वज्रर्षभनाराचा
महनने=अम्भा बधविशेषे यस्य स वज्रर्षभनागचमहनन, 'कणग-पुलग-णिघस-पम्ह-
गोरे' कनक-पुलक-निकप-पद्मगौर-कनकस्य=सुवर्णस्य पुलको=लव-प्रफुल्लवर्तुल-
कणरूप, तस्य निकप =रूपपट्टे कृष्टो रेखारूपो लक्षणया लक्ष्यते, पुलकस्य मशुद्धतया निकपे
कृष्टारेयास्ताप चाकृचिक्रययुक्ता भवति, अतएव तेनोपमानेनोपमित पद्मगौर-पद्मगर्भ =किञ्चलक,
तद्वदगौर =कमनीयकान्ति, 'उग्गतवे' उग्रतपा, 'दित्ततवे' दीप्ततपा-दीप्त =प्रदीप्तो
स्सेहे) मातहत्य की अवगाहनायुक्त (वइर-रिसह-णाराय-संघयणे) 'वज्र-रूपम-
नाराचमहननधारी (कणग-पुलग-णिघस-पम्हगोरे) विशुद्ध सुवर्ण के खण्ड की आण पर
पसा हुई रेखा के समान चमकीली कान्ति वाले तथा कमल के केसर के समान गौरवर्ण
(इदभूर्देणाम अणगारे) ऐसे गौतम नाम से प्रसिद्ध इद्रभूति नाम के अनगार गणधर थे।
(उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे घोरतवे उगले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरवभ-
चेरवासी उच्छूढसरीरे सखित्तविउलतेयलेस्से) इनकी तपस्या बड़ी उग्र थी।

(१) इम सहनन में वज्र की सी कीले, वज्र के से हाड एव वज्र का सा पद्मबन्ध होता है।

मस्थान-मपन्न (सत्तुस्सेहे) सात हाथनी अवगाहनायुक्त (वइर-रिसह-
णाराय-संघयणे) वज्र-रूपम नाराच-सहनन धारी (कणग-पुलग-णिघस-
पम्हगोरे) विशुद्ध सुवर्णना अङ्गी शाशु पर घसेली रेखा जेवी चमकीली
कान्तिवाला तथा कमलना डेभरना जेवा गौरवर्ण (इदभूर्देणाम अणगारे)
जेवा गौतमनामथी प्रसिद्ध इद्रभूति नामना अनगार गणधर हुता
(उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे घोरतवे उगले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरवभ-
चेरवामी उच्छूढसरीरे सखित्त-विउल-तेयलेस्से) तेमनी तपस्या अहु उग्र
हुती कर्मरूपी बनने आणवावाणा डोवाथी तेमनु तप आग्निना जेवु आ

(१) आ सहननमा वज्रना जेवा पीला, वज्र जेवा हाड तेमज व
जेवा पद्मध डोय छे

अथ उत्तरार्द्धम्—

मूलम्—तेणं कालेण तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूर्इ णाम अणगारे गोयमगोत्ते णं

टीका—‘तेणं कालेण’ इत्यादि। (तेणं कालेण तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स) तरिम्न् कालं तरिम्न् समये श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य (जेट्ठे अंतेवासी इंदभूर्इ णाम अणगारे) ज्येष्ठोऽंतेवासीन्द्रभूतिनामा अनगार, ज्येष्ठवमस्य मयमपर्यायेण सर्वश्रेष्ठत्वात्, ‘अंतेवासी’=शिष्य, इन्द्रभूतिरेतनामक, अनगार=साधु, स कीदृश इत्याह—‘गोयमगोत्ते ण’ गौतमगोत्र—गौतम=गौतमार्य गोत्र यस्य स तथा ‘ण’ इति वाक्यालंकार, ‘सत्तुस्सेहे’ सपोसेध—सप्तहरत उत्सथ=उच्छ्रयो यस्य स तथा, ‘सम-चउरस-सठाण-सठिए’ सम-चतुरस्र-मस्थान-संस्थित—सम च तच्चतुरस्र चेति

उत्तरार्ध का अनुवाद प्रारंभ—

‘तेण कालेण’ इत्यादि।

(तेण कालेण तेण समएण) उस काल एव उस समय में (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमण भगवान् के महावीर के (जेट्ठे अंतेवासी) १ बड़े शिष्य (गोयमगोत्ते ण) गौतमगोत्री (सम-चउरस-सठाण-सठिए) समचतुरस्रमस्थानमपन्न (सत्तु-

(१) जिसमें अग एव उपाग की रचना सम-प्रमाणोपेत (जिसका जितना प्रमाण होना चाहिये उस माफिक) होती है, कमती बढ़ती नहीं होती, उसका नाम ‘समचतुरस्र-सस्थान’ है। इसमें एक सौ आठ अंगुल के उच्छ्राय वाले अग और उपाग होते हैं। आकार बड़ा ही सौम्य होता है।

उत्तरार्धना अनुवादना प्रारंभ—

‘तेण कालेण’ इत्यादि

(तेण कालेण तेण समएण) ते काल तेमज्जे ते समयमा (समणस्स भगवओ महावीरस्स) श्रमणु भगवान् महावीरना (जेट्ठे अंतेवासी) भोटा शिष्य (गोयमगोत्ते ण) गौतमगोत्री (समचउरस-सठाण-सठिए) १समचतुरस्र-

(१) जेमा अग तेमज्जे उपागनी रचना सम-प्रमाणोपेत (जेणु जेट्ठु प्रमाणु डोणु जेधंजे ते प्रमाणु) डोय, वधु धट्ट न डोय तेणु नाम ‘समचतुरस्र-मस्थान’ छे आमा जेकसो आठ आगण (तसु) ना उच्छ्रायवाणा अग तथा उपाग डोय छे आकार षड्भुज सौम्य डोय छे

सत्तुस्सेहे सम-चउरंस-संटाण-संठिए वडर-रिसह-णाराय-
संघयणे कणग-पुलग-णिघस-पम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे

समचतुरस्रम्-मानोन्मानप्रमाणानामन्यूनानधिक्रवात् अज्ञोपाज्ञाना चाप्रिक्रवात् ऊर्ध्वं निर्यक्
च तुन्यवात् सम, चतुरस्र चाप्रिक्रवावयववात्, सम च तच्चतुरस्र चेति समचतुरस्र-स्वा-
हुलाष्टगतोञ्ज्ञयाज्ञोपाज्ञयुक्त, युक्तिनिर्मितलेप्यकवदवा, मस्थानम्=आकारविशेष, तेन
मस्थित =युक्त, 'वडर-रिसह-णाराय-संघयणे' वज्र-र्षभ-नाराच-महनन-वज्रं=
कालिका, ऋषभ =पद्, नागच =मर्कटपद्म-उभयपार्श्वयोगेश्वरबन्धविशेष, वज्रर्षभनाराचा
महनने=अम्भा बन्धविशेषे यस्य स वज्रर्षभनागचमहनन, 'कणग-पुलग-णिघस-पम्ह-
गोरे' कनक-पुलक-निकप-पद्मगौर-कनकस्य=मुवर्णस्य पुलको=लव-प्रफुल्लवर्तुल-
कणरूप, तस्य निकप =रूपपट्टे कृष्टो रेखारूपो लक्षणया लक्ष्यते, पुलकस्य मशुद्रतया निकपे
दृष्टाग्नाज्ञाव चाकचिक्ययुक्ता भवति, अतएव तेनोपमानेनोपमित पद्मगौर-पद्मगर्भ =किञ्चलक,
तद्रगौर =कर्मनीयकान्ति, 'उग्गतवे' उग्रतया, 'दित्ततवे' दामतया-दीप्त =प्रदीप्तो
स्सेहे) मातहाथ क्री अवगाहनायुक्त (वडर-रिसह-णाराय-संघयणे) 'वज्र-ऋषभ-
नाराचमहननधारी (कणग-पुलग-णिघस-पम्हगोरे) विशुद्ध मुवर्ण के खण्ड क्री शाण पर
पसा हुई रेखा के समान चमक्रीत्री कान्ति वाले तथा कमल के केसर के समान गौरवर्ण
(इदमूर्ध्णाम अणगारे) ऐमे गौतम नाम से प्रसिद्ध धद्रभृति नाम के अनगार गणधर थे।
(उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे घोरतवे उराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्मी घोरवम-
चेरवासी उञ्छदसरीरे संखित्तविउलतेयलेस्से) इनकी तपस्या बड़ी उग्र थी।

(१) इस महनन में वज्र की सा क्रीले, वज्र के से हाड एव वज्र का सा पद्मबन्ध होता है।

सस्थान-मयन्न (सत्तुस्सेहे) सात हाथनी अवगाहनायुक्त (वडर-रिसह-
णाराय-संघयणे) वज्र-ऋषभ नाराच-सहनन धारी (कणग-पुलग-णिघस-
पम्हगोरे) विशुद्ध मुवर्णना ज्ञानी शाण पर घसेली रेखा जेवी यमकीली
हातिवाजा तथा ठमजना डेसरना जेवा गौरवर्ण (इदमूर्ध्णाम अणगारे)
जेवा गौतमनामथी प्रसिद्ध धद्रभृति नामना अनगार गणधर हुता
(उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे घोरतवे उराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्मी घोरवम-
चेरवासी उञ्छदसरीरे संखित्त-विउल-तेयलेस्से) तेमनी तपस्या जहु व्रथ
हुती कर्मरूपी बनने आजवावाजा होवाथी तेमनु तप अजिना जेपु जहु

(१) आ सहननमा वज्रना जेवा भीला, वज्र जेवा हाड तेमज वज्र
जेवा पद्मपद्म होथ छे

तत्ततवे घोरतवे उराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरवभचेरवासी

हुताशन इव कर्मवनदाहकत्वेन जाग्वन्व्यमान तपो यस्य स तथा, 'तत्ततवे' तपतपा - तप्त=सविधि सेवित तपो येन स तप्ततपा, 'महातवे' महातपा = बृहत्तपोयुक्त, 'घोरतवे' घोरतपा = अतिकठिनतपोयुक्त, 'उराले' उदार, 'घोरे' घोर = भीम, अत्र कश्चिच्छब्दते- य उदार स भीम कथम्? अस्योत्तरमाह—अतिक्रुप तप कुर्वन् अल्पशक्तिमता भयानको भवतीति निसर्ग । कश्चिद् वक्ति—उदार = प्रधान, घोरस्तु परीपहेन्द्रियकपायाऽऽव्याना रिपूणा विनाशे कठोर । केचिदात्मनिरपेक्षतया तपस्सु प्रवर्तमानत्वाद् घोर इत्याहु । 'घोरगुणे'

कर्मरूपी वन को जलाने वाला होने से इनका तप अग्नि की तरह अधिक जाग्वन्व्यमान था । तपस्या की आराधना ये विधिपूर्वक बड़ी सावधानी से करते थे । ये महातपस्वी थे । दूसरे मुनिजन जिन तपों को करना अति कठिन मानते थे, उन तपों को ये तपते थे । ये उदार एव घोर अर्थात् भयानक थे । प्रश्न—उदारता और भयानकता ये दोनों धर्म परस्परविरोधी हैं, क्यों कि जो उदार होता है वह भयानक नहीं होता और जो भयानक होता है वह उदार नहीं होता, अतः इन दोनों बातों का यहाँ निर्वाह कैसे हो सकता है? उत्तर—ये अति-कठिन तपस्याओं को करते थे, अतः अल्पशक्ति वालों को ये देखने में बड़े भयानक—जैसे मालूम देते थे, अर्थात् अल्पशक्ति वालों को इनसे डर लगता था, इस अपेक्षा इन्हे भयानक कहा गया है । कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि 'उदार' शब्द का अर्थ 'प्रधान' है, एव 'घोर' शब्द का अर्थ 'कठोर' है । ये कठोर इसलिये थे कि परीपह, इन्द्रिय एव कपाय इन

जाग्वन्व्यमान हुतु तपस्यानी आराधना तेभ्यो विधिपूर्वकं अहु सावधानीयं कृता हुता तेभ्यो महातपस्वी हुता भीष्म मुनिजनो न तपोने कृत्वातु अहु कठेषु मानता हुता तेवा तपोने आ कृता हुता तेभ्यो उदार तेभ्य घोर अर्थात् भयानक हुता

प्रश्न—उदारता अने भयानकता अने अन्ने धर्म परस्पर विरोधी छे, कभके न उदार डोय छे ते भयानक डोता नथी अने न भयानक डोय छे ते उदार डोता नथी, तो पछी आ अन्ने बातोने अही भेज केवी रीते थय शके ?

उत्तर—आ अति कठेषु तपस्याभ्यो कृता हुता तेथी अल्पशक्तिवा- जाभ्योने तेभ्यो जेवामा भयानक जेवा हेभाता हुता, अर्थात् अल्पशक्ति- वाजाभ्योने तेभ्यो उर लागतो हुतो आ अपेक्षाथी तेभ्यो भयानक कहेला छे कोध कोध अम पथु कहे छे के 'उदार' शब्दने अर्थ 'प्रधान' छे, तेभ्य 'घोर' शब्दने अर्थ 'कठोर' छे तेभ्यो कठोर अने भाटे हुता के परिपह.

उच्छृङ्खलसरीरे संखित्त-विउल-तेयलेस्से समणस्स भगवओ

घोरगुण-घोरा=अन्येदुस्त्वहा गुणा=मूलगुणादयो यस्य स तथा । 'घोरतपस्वी'
 घोरतपस्वी=दुष्कृतपधरणश्रीत्, पाग्णादौ नानाविधाभिग्रहधार्कत्वात्, 'घोर-प्रमचेर-वासी'
 घोर-ब्रह्मचर्य-वासी-घोर=द्वारणमन्पमत्वैर्दुर्वहत्वाद् यद् ब्रह्मचर्यं तत्र वसति तच्छील ।

'उच्छृङ्खलसरीरे' उच्छृङ्खलशरीर-उच्छृङ्खलम्=उज्ज्वलमिव स्कारपरित्यागात् शरीर
 येन स उच्छृङ्खलशरीर-शरीरमस्कार प्रति निस्पृहत्वात् त्यक्तशरीरमस्कार । 'सखित्त-
 विउल-तेयलेस्से' सखित्त-त्रिपुल-तेजोले-य-सक्षिमा=निजशरीराऽन्तर्निहिता, त्रिपुला=

रिपुओं के विनाश करने में निरत थे । फटोर नन विना शत्रुओं का निवारण करना बड़ा ही
 मुश्किल होता है । कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि तपस्याओं के तपने में ये अपनी निज
 आमा को परवाह ही नहा करते थे, अत घोर थे । 'घोरगुणवाले' ये इसलिये थे कि
 इनके द्वारा धृत मूलगुण आदि अन्यजनों के लिये दुर्धारणीय थे, 'घोरतपस्वी' ये इसलिये
 थे कि जिस दिन पागणा का अपसर होता था उस दिन ये अनेक प्रकार के अभिग्रहों को
 धारण करते थे । 'घोर-ब्रह्मचर्य-वासी' ये इसलिये थे कि ये अल्पशक्ति वाले प्राणियों
 द्वारा दुर्वह होने से कठिनतर ऐसे ब्रह्मचर्य की आराधना में पूर्णनिष्ठ हो चुके थे । 'उच्छृ-
 ङ्खलशरीर' यह इसलिये कहा है कि इन्होंने अपने शरीर का स्कार करना ही छोड़ दिया
 था । अत उनका शरीर ऐसा ज्ञात होता था कि मानो इन्होंने इसका परित्याग जैसा कर
 रखा है । 'सखित्त-त्रिपुल-तेजोलेइय' ये इसलिये थे कि यद्यपि विशिष्ट तपस्या की

धर्म्मिय तेभज् ज्पाय ओ रिपुओओनो विनाश करवाभा निरत हुता इडोर
 गन्था विना शत्रुओओतु निवारणु करवु गहुण सुशुडेल थाय छे डोध डोध
 ओम पणु कडे छे के तपस्या तपवाभा तेओओ शुड पोताना आत्मान्नी परवाड
 पणु इरता नडोता आवी रीते घोर हुता 'घोरशुषुवाजा' तेओओ ओ कार-
 षुथी हुता के तेमना द्वारा अडणु करयेला भूलशुषु आदि शुषुओ णीणननेो भाटे
 दुर्धारणीय (अडणु न करी शक्य ओवा) हुता 'घोरतपस्वी' तेओओ ओ
 भाटे हुता के ने हिवने पारणुओओ अवसर आवतो ते हिवने तेओओ अनेक
 प्रकारना अलिअडोने धारणु करता हुता 'घोर-ब्रह्मचर्य-वासी' तेओओ ओ
 भाटे हुता के तेओओ अल्पशक्तिवाजा प्राणुओओ द्वारा दुर्वह (सहन न थाय
 ओवा) डोवाथी गहु कडणु ओवी अह्मचर्यनी आराधनाभा पृष्णनिष्ठ यध
 युज्या हुता 'उच्छृङ्खलशरीर' ओमने ओ भाटे कडेता के तेमणु पोताना शरी-
 रना सम्भारो न छोडी दीधा हुता आथी तेमनु शरीर ओवु नषुओतु
 हुतु के नषु तेओओओ तेनो परित्याग न करी नाओओ डोय 'सक्षिप्त-

महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढजाणू अहोसिरे झाणकोट्टोवगए
संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥ सू. १ ॥

अनेकयोजनप्रमाणक्षेत्रान्तर्वर्तिवस्तुदहनसमर्थत्वाद् विशाला तेजोऽद्या=विशिष्टतप-
सम्भूतलब्धिविशेषोद्भवा तेजोज्वाला यस्य स तथाभूत सन् 'समणस्स भगवओ
महावीरस्स अदूरसामते' श्रमणस्य भगवतो महावीरस्याऽदूरसमीपे=अदूरसमीपे=नातिदूरे
नातिसमीपे=उचितदेशे, 'उड्ढजाणू' उर्व्वजानु=ऊर्चं जानुनी यस्य स ऊर्चजानु-
उकुटुकाऽऽसनवान्, 'अहोसिरे' अध शिरा=अधोमुखो, नोर्ध्वं न तिर्यग् वा क्षितदृष्टि,
'झाण-कोट्टो-वगए' ध्यान-कोष्ठो-पगत-ध्यान कोष्ठ इव ध्यानकोष्ठस्तमुपगत,
यथा कोष्ठगत धान्यं विकीर्यं न भ्रमति तथैव ध्यानगता इन्द्रियान्त करणवृत्तयो बहिर्न यान्तीति

आराधना से इन्हें तेजोलेस्या प्राप्त हो चुकी थी, जिसकी इतनी सामर्थ्य होती है कि अनेक-
योजनप्रमाण क्षेत्र के भीतर रही हुई वस्तुओं को वह क्षणमात्र में दग्ध कर डालती है,
परन्तु ऐसी विपुल तेजोलेस्या को भी इन्होंने अपने शरीर के भीतर ही अन्तर्हित कर रखी
थी, उसका उपयोग नहीं करते थे, और ये (समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूर-
सामते) श्रमण भगवान् महावीर के न अतिदूर और न अतिनिम्न, किन्तु पास ही कुछ
दूरी पर (उड्ढजाणू) घुटनों को ऊँचाकर (अहोसिरे) शिर को नीचे कर के (झाण-कोट्टो-
वगए) ध्यानरूपी कोठे में विराजमान थे, अर्थात् ध्यान म बैठे थे। ध्यान को जो कोष्ठ की
उपमा दी है उसका हेतु यह है कि जिस प्रकार कोठे में रहा हुआ धान्यादिक इतस्तत
(इधर-उधर) नहीं बिखरता है उसी प्रकार ध्यानगत इन्द्रिय एव अन्त करण की वृत्तिया

विपुलतेजोलेश्व' अये आथी हुता के तेमने जे के विशिष्ट तपस्थानी आरा-
धनाथी तेजोलेश्व्या प्राप्त थध चुकी हुती, जेजु अेटलु सामर्थ्य डोय छे के
अनेक योजनना प्रमाण क्षेत्रनी अहर रडेली वस्तुआने तेज्या क्षण मात्रमा
आजीने लक्ष्म करी नाये छे, परतु अेषी विपुल तेजोलेश्व्याने पणु तेज्याअे
पोताना शरीरनी अहर ज अन्तर्हित करी राधी हुती, तेना उपयोग करता
नडोता (समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामते) तेज्या श्रमणु भगवान् मडा-
वीरनी अहु हूर नडि तेम अहु पासे नडि पणु तेमनी पासे ज थोडे ज हूर
पर (उड्ढजाणू) घुटणु उथ्या करीने (अहोसिरे) शिरने नभापीने (झाण-कोट्टो
वगए) ध्यानरूपी डोडामा विराजमान हुता=अर्थात् ध्यानमा जेडा हुता ध्या-
नने जे डोडानी उपमा आपी छे तेना डेतु अे छे के जेम डोडामा लरेला
धान्य आदिक आभतेम विभराध जता नथी तेम ध्यानमा अेटेली धद्रिये

मूलम्—तए णं से भगवं गोयमे जायसड्ढे जायसंसए

मान, नियन्त्रितचित्तवृत्तिमानिर्य, 'सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ' म्यमेन तपसाऽऽमान भावयन्=वामयन् विहरति ॥ सू १ ॥

टीका—'तए णं से' इत्यादि। 'तए णं से भगवं गोयमे' तत् खलु स भगवान् गौतम 'जायसड्ढे' जातश्रद्ध-जाता=प्राग्भूता नप्रति सामान्येन प्रवृत्ता श्रद्धा=तत्त्वनिर्णयनिपयिका वाञ्छा यस्य स जातश्रद्ध, वक्ष्यमाणतत्त्वपरिज्ञानेच्छावानिर्य, 'जायसंसए' जातमशय-जात=प्रवृत्त मशयो यस्य स तथोक्त, सगयोत्पत्तिप्रकार-स्विथम्-औपपातिङ्गसूत्र हि-आचागङ्गस्योपाङ्गम्, तेनाचागङ्गप्रथमश्रुतस्फुटस्य प्रथमाध्ययन प्रथमोद्देशके य आमन उपपात उक्त, तस्मिन् विषये वक्ष्यमाणमशयोपत्या जात-

बाहर इधर-उधर नहीं हो सकती है। मानसिक प्रत्येक वृत्तिया इस अवस्था में नियंत्रित हो जाती है। ऐसे ये गौतम नामसे प्रसिद्ध इन्द्रभूति गणधर (सजमेण तवसा अप्पाण भावे-माणे विहरइ) मयम एव तप से सदा अपनी आमा को भावित करते हुए विचरते थे ॥ सू १ ॥

'तए णं से' इत्यादि।

(तए णं) परिपत् चले जाने के बाद (से भगवं गोयमे) वे भगवान् गौतम (जायसड्ढे) कि जिनके चित्तमें तत्त्व को निर्णय करने के लिये वाञ्छा हुई, कारण कि इन्हें (जायसंसए) इस प्रकार का मशय उद्भूत हुआ था कि यह औपपातिक सूत्र, आचाराग सूत्र का उपाग है, आचागग सूत्र के प्रथम अध्ययन के प्रथम उद्देशक में जो आत्मा का उपपात कहा है सो किस प्रकार से कहा है? (जायकोऊहल्ले) अतः भगवान् मेरे सहायित

तेभन् अतः कश्चिन्नी वृत्तियो अहार आभतेम न्छ शकती नथी मानसिक प्रत्येक वृत्तियो आ अवस्थाभा नियंत्रित थछ नय छे अेवा आ गौतम नामे प्रसिद्ध इन्द्रभूति गणधर (सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ) सथम तेम न् तपथी मदा पेतानी आत्माने लावित उरता करता विचरता हुता (सू १)

'तए णं से' इत्यादि

(तए णं) परिपद् आली गया थछी (से भगवं गोयमे) ते लगवान् गौतम (जायसड्ढे) के नेना चित्तमा तत्त्वनेा निर्णय उग्वानी वाछा थछ, कश्चि ते तेभने (जायसंसए) आ प्रकाग्नेा सशय उत्पन्न थयो हुतो के आ औपपा-तिक सूत्र, आचाराग सूत्रतु उपाग छे आचाराग सूत्रना प्रथम अध्ययनना प्रथम उद्देशकमा ने आत्मानेा उपपात वलुंथेा छे ते केवा प्रकाशनी कही छे? (जायकोऊहल्ले) हुवे लगवान् भाग आ सशयना प्रश्ननेा उत्तर न लखे

जायकोऊहल्ले, उप्पणसड्ढे उप्पणसंसए उप्पणकोऊहल्ले,
संजायसड्ढे संजायसंसए संजायकोऊहल्ले, समुप्पणसड्ढे समु-

नञय इति भाव । 'जायकोऊहल्ले' जातकुतूहल्ल -जात कुतूहल्लम=औसुर्य यस्य स जातकुतूहल्ल, मङ्कतप्रश्नस्य क्रीडशुत्तरं भगवान् वक्ष्यति तद्भूतुमौ मुम्यनानियर्थ, 'उप्पणसड्ढे' उपनश्रद्ध -उपन्ना=विशेषण जाता श्रद्धा यस्य स तथा, यद्वा-श्रद्धाया स्वरूपस्य तिरोहितने जातश्रद्ध, तस्या स्वरूपस्य प्रादुर्भावे तु उपनश्रद्ध -इति भाव । 'उप्पणसंसए' उपनसंसय, 'उप्पणकोऊहल्ले' उपनकुतूहल्ल, 'सजायसड्ढे' सजातश्रद्ध, प्ररुपादिवाचक मञ्ज, ततश्च सजाता=विशेषतरेण उपन्ना श्रद्धा यस्य स सजातश्रद्ध, 'सजायसंसए' सजातसंसय, 'सजायकोऊहल्ले' सजातकुतूहल्ल, 'समुप्पणसड्ढे' समुत्पन्नश्रद्ध -समुपन्ना=सर्वथा सजाता श्रद्धा यस्य स तथा,

प्रश्न का उत्तर न माद्वम किस तरह का देगे ? इस बात को जानने को उत्कण्ठा उनके चित्त मे वढी, क्यों कि (उप्पणसड्ढे) भगवान के ऊपर ही उनके चित्त मे अतिशय श्रद्धा थी, अत उनसे ही निर्णय करने के लिये श्रद्धा उत्पन्न हुई। (उप्पणसंसए उप्पणकोऊहल्ले सजायसड्ढे सजायसंसए सजायकोऊहल्ले समुप्पणसड्ढे समुप्पणसंसए समुप्पणकोऊहल्ले) उत्पन्न-सय, उत्पन्नकौतूहल्ल'-इत्यादि पदों द्वारा वाच्यार्थ मे, अवग्रह, ईहा, अवाय, और धाग्णा ज्ञान की तरह उत्तरोत्तररूप से विशेषता द्योतन करने के लिए सूत्रकार ने 'जात, उत्पन्न, सजात, समुत्पन्न' इन पदों का प्रयोग किया है। भगवान् गौतम को जो चित्त में तत्व के निर्णय करने की इच्छा जागृत हुई वह पहिले सामान्यरूप में ही हुई, कारण कि उहे - शय जो उपन हुआ था वह भी सामान्यरूप से ही हुआ था, इसी

केही रीते आपसे ? ये बातने लक्ष्मणाणी उत्कण्ठा तेमना चित्तमा वधी, केभडे (उप्पणसड्ढे) भगवानना उपरए तेमना चित्तमा अतिशय श्रद्धा हुती, हुवे तेमनी ए पासेथी निर्णय करवा भाटे श्रद्धा उत्पन्न थर्ध (उप्पणसंसए उप्पणकोऊहल्ले सजायसड्ढे सजायसंसए सजायकोऊहल्ले समुप्पणसड्ढे समुप्पणसंसए समुप्पणकोऊहल्ले) 'उत्पन्न-सय उत्पन्नकौतूहल्ल' इत्यादि पदों द्वारा वाच्यार्थमा, अवग्रह, ईहा, अवाय अने धारणा ज्ञाननी पेठे उत्तरोत्तररूपथी विशेषताने प्रकाश लाववाभाटे सूत्रकारे 'जात उत्पन्न सजात समुत्पन्न' ये पदोंने प्रयोग क्यो छे भगवान गौतमने ने चित्तमा तत्त्वने निर्णय करवानी इच्छा लक्ष्य थर्ध ते पडेला सामान्यरूपमा ए थर्ध हुती धारणा तेमने ने सशय

पुष्पणसंसाए समुष्पणकोऊहल्ले उट्टाए उट्टेड उट्टित्ता जेणेव
समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं
भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेड करित्ता

‘समुष्पणसंसाए’ समुपन्नमत्ता, ‘समुष्पणकोऊहल्ले’ समुपन्नमुत्तूल, अद्वा-
त्य शब्दा व्याख्याता एव । अत्रैव शब्दादौ कार्यकारणभाव । प्रथमान्धारुपा शब्दा जाता,
तस्या कारण-सहाय उत्तूल चेति । ‘उट्टाए उट्टेड’ उद्यया=उद्यानशक्त्या स्वाम-
नान् उक्तिष्ठति, उथाय, ‘जेणेव समणे भगव महावीरे’ यत्रैव श्रमणो भगवान् महा-
वीरो निराजत इति शेष, ‘तेणेव उवागच्छइ’ तत्रोपागच्छति, ‘उवागच्छित्ता’ उवा-
गय, ‘समणं भगव महावीर’ श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य, ‘तिक्खुत्तो आयाहिण-
पयाहिणं करेड’ तिक्खुव आदन्निणप्रदन्निणं करोति, ‘करित्ता’ कृत्वा ‘उट्टेड णमसट्’

तरह अपने प्रश्न के उत्तर को सुनने के लिये जो उनके चित्त में उद्विष्टा चाग्रत हुई वह
भी सामान्यरूप से ही । फिर बाद में ‘उत्पन्नमड्ढे’ आदि पदों द्वारा जो सूत्रकार ने शब्दा
को उपन्न आदिरूप में प्रकट किया है उसमें शब्दा आदि में उत्तरोत्तर विशेषता जाननी
चाहिये । इस प्रकार के वे गौतमप्रभु (उट्टाए उट्टेड) उद्यानशक्ति द्वारा अपने स्थान से उठे
और (उट्टित्ता जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ) उठकर जहां प्रभु
श्रमण भगवान् महावीर निराजमान थे वहाँ पहुँचे, (उवागच्छित्ता समणं भगव महावीर
तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेड) पहुँचने ही उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर प्रभु
को तीन बार आदन्निण-प्रदन्निण किया, (करित्ता उट्टेड णमसट्) फिर बाद में कृत्वा एव

उत्पन्न थये ते पणु सामान्यउपथी ७ थये हुतो आधी ७ गीते पोताना
प्रश्नो उत्तर नालगवाने माटे तेमना चित्तमा ७ उत्तरा लथत यत् ते पणु
सामान्यउपथी ७ हुती पणु त्यार पथी (उपणमड्ढे) आदि पदो ढाग ७
सूत्रकारे शब्दाने उत्पन्न आदि उपथी प्रकट करी छे तेवी शब्दा आदिमा
उत्तरोत्तर विशेषता नालुवी लेधये आ प्रदानता ते गौतम प्रभु (उट्टाए उट्टेड)
‘उद्यानशक्ति द्वारा पोताना स्थानथी उठ्या, अने (उट्टित्ता जेणेव समणे भगव
महावीरे तेणेव उवागच्छइ) उठने ल्या प्रभु श्रमणु भगवान् महावीर शिग-
नमान हुता त्या पडोअ्या (उवागच्छित्ता समणं भगव महावीर तिक्खुत्तो आया
हिणपयाहिणं करेड) पडोअ्यता ७ तेमणे श्रमणु भगवान् महावीर प्रभुने पणु

जायकोऊहल्ले, उप्पणसड्ढे उप्पणसंसए उप्पणकोऊहल्ले,
संजायसड्ढे संजायसंसए सजायकोऊहल्ले, समुप्पणसड्ढे समु-

ग्गय इति भाव । 'जायकोऊहल्ले' जातकुतूहल्ल - जात कुतूहल्लम = औसुक्य यस्य
स जातकुतूहल्ल, मत्कन्तप्रश्नस्य कीदृशमुत्तरं भगवान् वक्ष्यति तद्भोतुमौमुक्यमानि यर्थे,
'उप्पणसड्ढे' उत्पन्नश्रद्ध - उत्पन्ना = विशेषेण जाता श्रद्धा यस्य स तथा, यद्वा -
श्रद्धाया स्वल्पस्य तिरोहितत्वे जातश्रद्ध, तस्या स्वल्पस्य प्रादुर्भावे तु उत्पन्नश्रद्ध - इति
भाव । 'उप्पणसंसए' उत्पन्नसंगय, 'उप्पणकोऊहल्ले' उत्पन्नकुतूहल्ल, 'सजा-
यसड्ढे' मजातश्रद्ध, प्रकर्षादिवाचक म्गच्छ, ततश्च मजाता = विशेषतरेण उत्पन्ना श्रद्धा
यस्य स मजातश्रद्ध, 'सजायसंसए' सजातसंगय, 'सजायकोऊहल्ले' मजातकुतू-
हल्ल, 'समुप्पणसड्ढे' समुत्पन्नश्रद्ध - समुत्पन्ना = सर्वथा सजाता श्रद्धा यस्य स तथा,

प्रश्न का उत्तर न माह्वम किस तरह का देगे ? इस बात को जानने का उत्कण्ठा उनके
चित्त में बढी, क्यों कि (उप्पणसड्ढे) भगवान के ऊपर ही उनके चित्त में अतिगय श्रद्धा
थी, अतः उनसे ही निर्णय करने के लिये श्रद्धा उत्पन्न हुई। (उप्पणसंसए उप्पणको-
ऊहल्ले सजायसड्ढे सजायसंसए सजायकोऊहल्ले समुप्पणसड्ढे समुप्पणसंसए समु-
प्पणकोऊहल्ले) उत्पन्नसय, उत्पन्नकौतूहल्ल - इत्यादि पदों द्वारा वाच्यार्थ में, अवग्रह, ईहा,
अवाय, और धारणा ज्ञान की तरह उत्तरोत्तररूप से विशेषता द्योतन करने के लिए सूत्रकार
ने 'जात, उत्पन्न, सजात, समुत्पन्न' इन पदों का प्रयोग किया है। भगवान् गौतम
को जो चित्त में तत्त्व के निर्णय करने की इच्छा जागृत हुई वह पहिले सामान्यरूप में ही
हुई, कारण कि उन्हें 'गय जो उत्पन्न हुआ था वह भी सामान्यरूप से ही हुआ था, इसी

देवी दीते आपसे ? ये बातने लक्ष्मिणी उत्तुठा तेमना चित्तमा वधी, डेमडे
(उप्पणसड्ढे) भगवानना उपरव तेमना चित्तमा अतिशय श्रद्धा हुती, डवे
तेमनी व पासेथी निर्णय करवा भाटे श्रद्धा उत्पन्न थर्थ (उप्पणसंसए उप्प-
णकोऊहल्ले सजायसड्ढे सजायसंसए सजायकोऊहल्ले समुप्पणसड्ढे समुप्पण-
संसए समुप्पणकोऊहल्ले) 'उत्पन्नसय उत्पन्नकौतूहल्ल' इत्यादि पदों द्वारा
वाच्यार्थमा, अवग्रह, ईहा, अवाय अने धारणा ज्ञाननी पेटे उत्तरोत्तररूपथी
विशेषताने प्रकाश लाववाभाटे सूत्रकारे 'जात उत्पन्न सजात समुत्पन्न' ये पदोंने
प्रयोग कथों छे भगवान गौतमने जे चित्तमा तत्त्वने निर्णय करवानी इच्छा
लक्ष्मिणी ते पडेला सामान्यरूपमा व थर्थ हुती धारण तेमने जे मशय

हय-पञ्चस्त्राय-पात्रकम्मे सकिरिए असंवुडे एगंतदंडे एगंत-
वाले एगंतसुत्ते पात्रकम्मं अण्हाइ ? , हंता ! अण्हाइ ॥ सू०३ ॥

निरहित , तथा-‘अ-प्पडिहय-पञ्चस्त्राय-पात्रकम्मे’ अ-प्रतिहत-प्रत्याख्यात-पापकर्मा-प्रति-
हतानि अतीतकालकृतानि निन्दाद्वारेण, प्रत्याख्यातानि भविष्यत्कालभावीनि निवृत्तिद्वारेण, पाप-
कर्माणि=प्राणातिपातादिरूपाणि येन स प्रतिहत-प्रत्याख्यात पापकर्मा, भूतभाविपापनिषेयभावेन
यस्तथा न भवति स -अ-प्रतिहत प्रत्याख्यात पापकर्मा, अतएव-‘सकिरिए’ सक्रिय =कायि-
क्यादिक्रियायुक्त , ‘असंवुडे’ असंवृत =अनिरुद्धेन्द्रिय , ‘एगंतदंडे’ एकान्तदण्ड -एकान्तनैव=
सर्वथैव दण्ड- यत्यात्मान पर वा पापप्रवृत्तितो य स एकान्तदण्ड , ‘एगंतवाले’ एकान्त-
वात् -सर्वथा मिथ्यादृष्टि , अतएव-‘एगंतसुत्ते’ एकान्तसुप्त =सर्वथा मिथ्यात्वनिद्रया प्रसुप्त ,
‘पात्रकम्म’ पापकर्म=प्राणातिपातादिकर्म ‘अण्हाइ’ आस्रवति=वन्नाति किम् ? , भगवान्हा-
‘हंता अण्हाइ’ हन्ताऽऽस्रवति-हन्त इति स्वीकारे, आस्रवति=वन्नाति इदमुत्तरवाक्यम् ॥सू० ३॥

अनुष्ठान करने में लगा हुआ है, (अविरेण) प्राणातिपातादिक से जिसने विरति धारण
नहीं की है, तथा (अ-प्पडिहय-पञ्चस्त्राय-पात्रकम्मे) लगे हुए पापकर्मों का निन्दा
द्वारा तथा भविष्यत् काल में बधनेवाले पापकर्मों का प्रत्याख्यान-निवृत्ति-द्वारा जिसने परित्याग
नहीं किया है, (सकिरिए) कायिकी आदि क्रियाओं से जो युक्त है, इसलिये (असंवुडे)
असंवृत-अनिरुद्धेन्द्रिय बना हुआ है, (एगंतदंडे) अपने को अथवा परको जो पापमय
प्रवृत्ति से ढकित-ढुं सित करता रहता है, जो (एगंतवाले) एकान्तमिथ्यादृष्टि है और
(एगंतसुत्ते) सर्वथा मिथ्यात्व की निद्रा में गाढ सुप्त बना हुआ है, वह (पात्रकम्मं)
पापकर्म-प्राणातिपातादिक कर्मों का (अण्हाइ) बन्ध करता है क्या ? तत्र भगवान् ने
कहा, (हंता) हा गौतम ! (अण्हाइ) बन्ध करता है ।

अथ सावध अनुष्ठान करवाभा तत्पर रडेडो छे, (अविरेण) प्राणातिपात आदि-
कथी जेहे विरति धारण करी नहीं, तथा (अ-प्पडिहय-पञ्चस्त्राय-पात्रकम्मे)
लागी रडेला पापकर्मोंना निन्दा द्वारा, तथा भविष्य कालमा अथानार. पाप-
कर्मोंना प्रत्याख्यान-निवृत्ति-द्वारा, जेहे परित्याग कथी नहीं, (सकिरिए)
कायिकी आदि क्रियाओंथी जे युक्त छे, तेथी (असंवुडे) असंवृत-अनिरुद्ध
धट्टियेवाणो जन्यो छे, (एगंतदंडे) चेताने अथवा परने जे पापमय प्रवृत्तिथी
ढकित-ढुं सित कथी करे छे जेवे ते (एगंतवाले) जेकाल मिथ्यादृष्टि छे जे
(एगंतसुत्ते) सर्वथा मिथ्यात्वनी घोर निद्रामा सुतेडो छे, ते (पात्रकम्म) पाप-
कर्म- प्राणातिपात आदि कर्मोंना (अण्हाइ) अथ करे छे जे शु ? तयारे
भगवाने जेहे-(हंता) हा गौतम ! (अण्हाइ) अथ करे छे

वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता नच्चासण्णे नाइदूरे सुस्सूसमा-
णे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासमाणे
एवं वयासी ॥ सू०२ ॥

मूलम्—जीवे णं भंते । असंजए अविरए अ—प्पडि-

वन्दते नमस्यति, 'वंदित्ता णमंसित्ता' वन्दित्वा नमस्यत्वा, 'नच्चासण्णे नाइदूरे' ना
त्यासन्ने नातिदूरे 'सुस्सूसमाणे णमसमाणे' शुश्रूपमाणो नमस्यन् 'अभिमुहे विणएण
पजलिउडे पज्जुवासमाणे एव वयासी' अभिमुवे त्रिनयेन प्राञ्जलिपुट पर्युपासान
एवमवादीत् । प्राग् व्याख्यातम् ॥ सू०२ ॥

टीका—अथात्मन उपपातस्य कर्मबन्धपूर्वकत्वात् कर्मबन्धविषये पृच्छति—'जीवे
ण भंते!' इत्यादि । 'जीवे ण भंते!' जीव खलु भवन्त ! = भगवन् ! 'असंजए'
अम्यत = असयमवान्—सर्वसावधानुष्ठानयुक्त, 'अविरए' अविरत = प्राणातिपातादिविर-

नमस्कार किया, (वंदित्ता णमंसित्ता नच्चासण्णे नाइदूरे सुस्सूसमाणे णमसमाणे अभि-
मुहे विणएण पजलिउडे पज्जुवासमाणे एव वयासी) वदना नमस्कार करने के बाद
फिर वे प्रभु के निकट सामने ही, न उनसे अति दूर न उनके अतिनिकट ही, किन्तु उचित
स्थान पर विनयावन्त होकर दोनों हाथोंको जोड़कर बैठ गये, पश्चात् इस प्रकार बोले ॥ सू २ ॥

'जीवे ण भंते!' इत्यादि ।

गौतमने भगवान् से क्या पूछा ? इस बात को इस सूत्र द्वारा सूत्रकार प्रदर्शित
करते हैं—(भंते) व भवत ! जो (जीवे) जीव (असंजए) असयमी है—सर्व सावध

वार आदक्षिषुप्रदक्षिषु कथुं, (करित्ता वदइ णमंसइ) पछी वदना नमस्कार
कथां (वंदित्ता णमंसित्ता नच्चासण्णे नाइदूरे सुस्सूसमाणे णमसमाणे अभिमुहे
विणएण पजलिउडे पज्जुवासमाणे एव वयासी) वदना नमस्कार कथां पछी तेज्जो
प्रभुणी पासो सामे ज, न थहुं इर के न थहुं पासो पडु—उगित स्थाने, विन-
यथी नअ थनीने थन्ने डाय लेडीने जेसी गया पछी आ प्रकारे जेव्या (सू २)

'जीवे ण भंते' इत्यादि

गौतमे भगवानने शु पूछथु ?—जे वातने आ सूत्रद्वारा सूत्रकार प्र-
दर्शित करे छे—(भंते) व भवन्त ! जे (जीवे) एव (असंजए) अमयमी छे—

मूलम्—जीवे णं भन्ते । मोहणिज्जं कम्मं वेदेमाणे किं
मोहणिज्जं कम्म वन्धइ ? वेयणिज्जं कम्म वन्धइ ? गोयमा । मोह-
णिज्जं पि कम्मं वन्धइ, वेयणिज्जं पि कम्मं वन्धइ, णणत्थ चरिम-

टीका—‘जीवे णं भन्ते’ इत्यादि । ‘जीवे णं भन्ते !’ जीव खलु भद-
न्त । ‘मोहणिज्जं कम्मं वेदेमाणे’ मोहनाय कर्म वेदयन्=अनुभवन् ‘किं मोहणिज्जं
कम्म वन्धइ’ किं मोहनाय कर्म वन्नाति, अथवा—‘वेयणिज्जं कम्मं वन्धइ ?’ वेदनीय
कर्म वन्नाति किम् ? इति प्रश्ने स युत्तरमाह—‘गोयमा ! मोहणिज्जं पि कम्मं वन्धइ
वेयणिज्जं पि कम्मं वन्धइ’ गौतम ! मोहनीयमपि कर्म वन्नाति वेदनीयमपि कर्म वन्नाति,
‘णणत्थ चरिममोहणिज्जं कम्मं वेदेमाणे’ केवल चरिममोहनाय कर्म वेदयन्, ‘णण-
त्थ’ इति नवर-केवलमित्यर्थ, सूक्ष्मसंपरायदशमगुणस्थानके लोभमोहनीयमूक्ष्मकि-

‘जीवे णं भन्ते’ इत्यादि ।

(भन्ते) हे भदन्त ! (मोहणिज्जं कम्म) मोहनीय कर्म का (वेदेमाणे) अनुभव करने वाला
(जीवे णं) जीव (किं) क्या (मोहणिज्जं कम्म) मोहनीय कर्म का (वन्धइ) बन्ध करता
है ? (वेयणिज्जं कम्म वन्धइ) अथवा वेदनीय कर्म का बन्ध करता है ? इन दो प्रश्नों का उत्तर
प्रभु इस प्रकार देते हैं—(गोयमा) हे गौतम ! (मोहणिज्जं पि कम्म वन्धइ वेयणिज्जं पि
कम्मं वन्धइ) मोहनीय कर्म का अनुभव करनेवाला जीव मोहनीय कर्म का भी बन्ध करता
है और वेदनाय कर्म का भी बन्ध करता है, (णणत्थ चरिममोहणिज्जं कम्म वेदेमाणे
वेयणिज्जं कम्म वन्धइ) केवल सूक्ष्मसंपराय नामके १० वे गुणस्थान में चरिम-मोह-
नीय-सूक्ष्मलोभ-को वेदन करनेवाला जीव वेदनीय कर्म का बन्ध करता है, क्यों कि अयोगी-

‘जीवे णं भन्ते’ इत्यादि

(भन्ते) हे भदन्त ! (मोहणिज्जं कम्म) मोहनीय कर्मना (वेदेमाणे) अनुभव
करवावाणा (जीवे) जीव (किं) शु (मोहणिज्जं कम्म) मोहनीय कर्मना (वन्धइ)
बन्ध करे छे ? (वेयणिज्जं कम्म वन्धइ) अथवा वेदनीय कर्मना बन्ध करे छे ?
आ जे प्रश्नोना उत्तर प्रभु आ प्रजारे आपे छे—(गोयमा) हे गौतम ! (मोह-
णिज्जं पि कम्म वन्धइ वेयणिज्जं पि कम्म वन्धइ) मोहनीय कर्मना अनुभव करनारा
जीव मोहनीय कर्मना बन्ध करे छे अने वेदनीय कर्मना बन्ध करे छे (णणत्थ चरिममोहणिज्जं कम्म वेदेमाणे वेयणिज्जं कम्म वन्धइ) केवल सूक्ष्म
संपराय नामना १० दशमा शुद्धस्थानमा अरभ मोहनीय-सूक्ष्मलोभ-वेदन

મૂલમ્—જીવે ણ મંતે ! અસંજણ જાવ ઇગંતસુત્તે મોહણિજ્જં પાવકમ્મં અણહાઈ ? હંતા ! અણહાઈ ॥ સૂ. ૪ ॥

ટીકા—‘જીવે ણ મંતે !’ इत्यादि । ‘जीवे ण मते !’ जीव रह भदन्त । ‘असजण जाव एगंतसुत्ते’ अमयतो यावदेकान्तमुप ‘मोहणिज्ज पावकम्म’ मोहनाथ पापकर्म ‘अण्हाइ’ आस्रवति=व्रतानि किम् ?—इति प्रणे, उत्तरमाह—‘हंता ! अण्हाइ’ हन्त । आस्रवति=व्रताता यर्थ ॥ सू० ४ ॥

भावार्थ—જો જાવ અસયમી દે, સાવધ અનુષ્ઠાનો સં નિવૃત્ત નહીં હુઆ હૈ, પૂર્વવૃત્ત પાપક્રમા કા જિસન નિદા નહીં કી, તથા ભવિષ્યત્—કાલ મ મૈ એસે પાપકર્મ નહીં કર્મગા—દસ પ્રકાર અકરણભાવ સે જિમને ડનડા પમિયાગ નહા કિયા, કાચિકી આદિ ક્રિયાઆ મે જો મગ્ન હે, સ્વયં દુ રિત્ત હોતા હૈ ઓર ડૂસરાં કો મી અપની કુસિત પ્રવૃત્તિ સે દુ રિત્ત કરતા રહતા હૈ એસા મિથ્યાત્વ કી ગાઢ અવેરી મ રહા હુઆ મિથ્યાદષ્ટિ જીવ પાપકર્મોં કા વધક્ર હોતા હૈ યા નહીં ?—ઇસ પ્રકાર ગૌતમ કે પ્રશ્ન કો સુનકર પ્રસુ ને કહા—હા ! હોતા હૈ ॥ સૂ. ૩ ॥

‘જીવે ણ મંતે !’ इत्यादि ।

(જીવે ણ મંતે ! અસજણ જાવ ઇગંતસુત્તે) હ મદત ! વહી પૂર્વોક્ત અન્યમ આદિ અવસ્થા સે લેકર સર્વથા મિથ્યાત્વરૂપી ગાઢનિદ્રા મેં પ્રસુત અન્યમી મિથ્યાદષ્ટિ જીવ (મોહણિજ્જ) મોહનીય કર્મ કા (અણહાઈ) વધ કરતા હૈ કયા ? (હતા) હા ગૌતમ ! (અણહાઈ) બંધ કરતા હૈ ॥ સૂ. ૪ ॥

ભાવાર્થ—જે છવ અસયમી છે, સાવધ અનુષ્ઠાનોથી નિવૃત્ત થતો નથી, પૂર્વે ટરેલા પાપ કર્મોની જેણે નિદ્રા કરી નથી, તથા ભવિષ્ય કાલમા એવા પાપ કર્મ હું નહિ કરું—એ પ્રકારના અકરણભાવથી જેણે તેનો પરિત્યાગ કર્યો નથી, વાચિકી આદિ ક્રિયાઓમા જે મગ્ન છે, પોતે દુ ખિત થાય છે અને બીજાને પણ પોતાની કુસિત પ્રવૃત્તિથી દુ ખિત કરે છે એવા મિથ્યાત્વના ગાઢ અધારામા રહેલો એવા મિથ્યાદષ્ટિ છવ પાપકર્મોનો બધક થાય છે યા નહિ ? આ પ્રકારના ગૌતમનો પ્રશ્નને સાલજીને પ્રભુએ કહ્યું—હા ! થાય છે (સૂ. ૩)

‘જીવે ણ મંતે’ इत्यादि

(જીવે ણ મંતે ! અસજણ જાવ ઇગંતસુત્તે) હે ભદન્ત ! ઉપર કહેલ અસયમ આદિ અવસ્થાથી લઇને સર્વથા મિથ્યાત્વરૂપી ગાઢ નિદ્રામા સુતેલા અસયમી—મિથ્યાદષ્ટિ છવ (મોહણિજ્જ) મોહનીય કર્મનો (અણહાઈ) બધ કરે છે શુ ? (હતા) હા ગૌતમ ! (અણહાઈ) બધ ટરે છે (સૂ. ૪)

मूलम्—जीवे ण भंते । असंजए जाव एगतसुत्ते
उस्सण्ण-तस-पाण-घाई कालं किच्चा णेरइएसु उववज्जइ ?
हंता । उववज्जइ ॥ सू० ६ ॥

मूलम्—जीवे ण भंते । असंजए अविरए अ-प्पडिहय-प-

टीका—अथोपपात पृच्छति—‘जीवे ण भंते ।’ इत्यादि । ‘जीवे ण भंते ।’
जीव सल्ल हे भदत्त ! ‘असंजए जाव एगतसुत्ते’ असयतो यावदेकान्तमुम-प्राग्-
आयात्, ‘उस्सण्ण-तस-पाण-घाई’ प्रायस्त्रस-प्राण-घाती-‘उस्सण्ण’ इतिप्रा य=
बाहुल्येन त्रसप्राणान्=त्रसप्राणिनो हन्ति तच्छील, ‘कालमासे’ मरणसमये, ‘काल किच्चा’
कालं कृत्वा-मरण विधाय, ‘णेरइएसु उववज्जइ’ नैरयिकेपूपयते किम् ? इति प्रश्ने,
उत्तरमाह भगवान्—‘हंता । उववज्जइ’ हन्त । उपयते=नारकेषु जायते ॥ सू० ६ ॥

टीका—‘जीवे ण भंते’ इत्यादि । ‘जीवे ण भंते ।’ जीव सल्ल हे
‘जीवे ण भंते !’ इत्यादि ।

गौतम उपपात के विषय में पूछते हैं—(जीवे ण भंते ! असंजए जाव एगत-
सुत्ते उस्सण्ण-तसपाण-घाई) हे भदत्त ! वही पूर्वोक्त अमथम आदि अवस्था से लेकर
सर्वथा मिथ्यास्वरूपी गाढनिद्रा में प्रसुप्त मिथ्यादृष्टि जीव जो बहुलता से त्रसजीवों की हिंसा
करने में लवलीन रहा करता है वह (कालमासे) मृत्यु के समय में (काल किच्चा) मर कर
(णेरइएसु) नारकियों में (उववज्जइ) उत्पन्न होता है क्या ? उत्तर—(हंता) हा गौतम !
(उववज्जइ) उत्पन्न होता है ॥ सू. ६ ॥

‘जीवे ण भंते’ इत्यादि

गौतम उपपातना विषयमा पूछे छे—(जीवे ण भंते ! असंजए जाव एगत
सुत्ते उस्सण्ण-तसपाण-घाई) हे भदत्त ! उपर दंडेन अमथम आदि अय
स्थाथी लधने सर्वथा मिथ्यात्व इपी गाढनिद्रामा सुतेवे। मिथ्यादृष्टि एव न
धेषे।अरे तस एवे।नी डि सा करवामा भन्थे रडे छे, ते (कालमासे) मृत्यु-
नभये (काल किच्चा) भरीने (णेरइएसु) नारकीओमा (उववज्जइ) उत्पन्न थाय
छे शु ? उत्तर—(हंता) हा गौतम ! (उववज्जइ) उत्पन्न थाय छे. (सू. ६)

મોહણિજ્ઞં કમ્મં વેદેમાણે વેયણિજ્ઞં કમ્મં વંધઈ, ણો મોહણિજ્ઞં
કમ્મં વંધઈ ॥ સૂ૦૫ ॥

ટિકારૂપ ચરમમોહનાયમિયુચ્યતે, તદ્વેદયન્ જીવ, 'વેયણિજ્ઞં કમ્મં વંધઈ' વેદનીય કર્મ વધ્નાતિ, યતો હિ અયોગિન એવ વેદનીયકર્મણો વધ્નામાવ, 'ણો મોહણિજ્ઞં કમ્મ વંધઈ' નો મોહનાય કર્મ વધ્નાતિ—સૂક્ષ્મપરાયસ્ય મોહનીયાયુક્તવર્જાના પળ્લામેવ પ્રકૃતીના વન્ધકત્વાદિતિ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

નામક ચૌદહવે ગુણસ્થાન મે હી વેદનીય કર્મ કે વન્ધ કા અમાવ હૈ, (ણો મોહણિજ્ઞં કમ્મં વંધઈ) ઇસલિયે સૂક્ષ્મપરાય વાલા જીવ મોહનીય એવ આયુર્કર્મ કો છોડકર શેષ જ્ઞાનાવરણીયાદિ છ પ્રકૃતિયો કા વન્ધક હોતા હૈ ।

માવાર્થ—પ્રશ્ન ઇસ પ્રકાર હૈ કિ મોહનીય કર્મ કા વેદન કરને વાલા જીવ મોહનીય કર્મ કા વધ કરતા હૈ કિ વેદનીય કર્મ કા વન્ધ કરતા હૈ ? ઉત્તર—વેદનીય કર્મ કા મી વધ કરતા હૈ ઓર મોહનીય કર્મ કા મી વધ કરતા હૈ, પરન્તુ અન્તિમ મોહનીય—સૂક્ષ્મલોભ કા ક્ષય કરતે સમય (ચારહવે ગુણસ્થાન મેં) વેદનીય કર્મ કા તો વધ કરતા હૈ પરન્તુ મોહનીય કર્મ કા વધ નહીં કરતા । કારણ કિ મોહનીય કર્મ કા ક્ષય ૧૦ વે ગુણસ્થાન મે હી હો જાતા હૈ, આગે સિર્ફ ૧૧ વેદનીય કર્મ કા વધ હોતા હૈ સો યહ મી કેવલ તેરહવે ગુણસ્થાન તક હી જાનના ચાહિયે, ક્યોં કિ ૧૪ વે ગુણસ્થાન મેં વેદનીય કર્મ કે વધ કા અમાવ હૈ ॥ મૂ ૫ ॥

ઠરનારા ૭૫ વેદનીય કર્મનો બધ કરે છે કેમકે અયોગી નામના ચૌદમા શુભસ્થાનમા જ વેદનીય કર્મનો બધનો અભાવ છે (ણો મોહણિજ્ઞં કમ્મ વંધઈ) આ માટે સૂક્ષ્મપરાયવાળા ૭૫ મોહનીય તેમજ આયુકર્મને ડોડીને બાકીની જ્ઞાનાવરણીય આદિ છ પ્રકૃતિઓના બધક થાય છે

લાવાર્થ—પ્રશ્ન એવા પ્રકારનો છે કે મોહનીયકર્મનું વેદન કરવાવાળા ૭૫ મોહનીય કર્મનો બધ કરે છે કે વેદનીય કર્મનો બધ કરે છે ?

ઉત્તર—વેદનીય કર્મનો બધ કરે છે અને મોહનીય કર્મનો પણ બધ કરે છે પરંતુ અતિમ મોહનીય સૂક્ષ્મલોભનો ક્ષય ઠરતી વખતે (બારમા શુભસ્થાનમા) વેદનીય કર્મનો તો બધ કરે જ છે, પરંતુ મોહનીય કર્મનો બધ કરતા નથી, ઠરણુ કે મોહનીય કર્મનો ક્ષય ૧૦ માં શુભસ્થાનમા જ થઈ જાય છે આગળ માત્ર ૧ વેદનીય કર્મનો જ બધ થાય છે, અને તે પણ ઠેવળ તેરમા શુભસ્થાન સુધી જ જણવો જોઈએ, કેમકે ૧૪ માં શુભસ્થાનમા વેદનીય કર્મનો બધનો અભાવ છે (સૂ ૫)

देवे सिया, अत्येगडया णो देवे सिया ? गोयमा । जे इमे जीवा गा-
मा-गर-णयर-णिगम-रायहाणि-खेड-कच्चड-मडंव - दोगमु-
ह-पट्टणा-सम-संवाह सण्णिवेसेमु अकामतण्हाए अकाम-

कको देव स्यात्, अ यरको न दत्त स्यात् ।—ए यदु यत यदेतो देवो भवति एको न
भवति किनिमित्तकोऽय भन् ' इति प्रथ, भगवानुत्तमाह—' गोयमा । जे इमे जीवा
गामा-गर-णयर-णिगम-रायहाणि-खेड-कच्चट-मडव-दोगमुह-पट्टणा-सम-
संवाह-सण्णिवेसेमु' गौतम । य इम जीवा ग्रामा-SSर-नगर-णिगम-गजधाना-वेद-कर्म-
ट-मट्टव-दोगमुह-पट्टणा-सम- राय-मत्रियेषु-प्रागुज्याग्यातरूपु 'अकामतण्हाए'
अकामतण्हाए-अकामाना=निर्जगद्यनभियपिणा मता तृष्णा=तृष्ट-अकामतृष्णा तथा, 'अ-

'से केणट्टेण भते ।' इत्यादि ।

प्रथ-(भते ।) इ भवत् । (से केणट्टेण णं पुच्यइ अत्येगडया देवे सिया अत्ये-
गडया देवे णो मिया) आप पेमा किम काण से कहते हैं कि कितनक जीव देवलोक में
उपन्न हो सकते हैं और कितनक नही हो सकते हैं, ' उत्तर—(गोयमा) गौतम । मुनो,
(जे इमे जीवा गामा-गर-णयर-णिगम-रायहाणि-खेड-कच्चड-मडंव-दोगमुह-
पट्टणा-सम-संवाह-सण्णिवेसेमु अकामतण्हाए अकामतृष्णाए अकामवभचरेवामेणं
अकाम-अण्णाणम-मीया-यय-दस-मसग-सेय-जल्ल-मल्ल-पक-परित्तणेण
अपपतरो वा भुज्जतरो काल अप्पाण परिकिळेसति, परिकिळेसित्ता
या कालमासे काल किच्चा अण्णयरेसु राणमतरेसु देवतोणसु देवत्ताए
उपत्तागे भवति) जो जीव प्रकोट महित ग्राम म, मुग्गादिक की खानों म, कर-
'से केणट्टेण भते ।' इत्यादि ।

प्रथ-(भते) ऐ भवत् । (से केणट्टेण णं पुच्यइ अत्येगडया देवे मिया

अत्येगडया देवे णो मिया) आप ओम गृ धारण्यथी ढेढो छो दे देटदाइ एव
देवलोडभा उत्पन्न यथं गडं छे अने देटदाइ नथी यथं शब्दा ? उत्तर-(गोयमा)
गौतम । माणो (जे इमे जीवा गामा-गर-णयर-णिगम-रायहाणि-वेद कच्चट-
मट्टव-दोगमुह-पट्टणा-सम-संवाह-सण्णिवेसेमु अकामतण्हाए अकामतृष्णाए अकाम-
वभचरेवामेण अकाम-अण्णाणम-मीया-यय-दस-मसग-सेय-जल्ल-मल्ल-पक-परित्त
णेण अपपतरो वा भुज्जतरो वा काल अप्पाण परिकिळेसति, परिकिळेसित्ता
कालमासे काल किच्चा अण्णयरेसु राणमतरेसु देवलोकसु
देवत्ताए उपत्तागे भवति) वे एव जेट पापेदा गाभमा, सुवर्णनी
आलोभा, उ० वगन्ना नगरभा, व्यापारीओनी वन्तीवाजा निगभमा, रात्त-

ચક્ષુઃ- પાવકમ્મે ઇઓ ચુએ પેચ્ચ દેવે સિયા ?, ગોયમા !
અત્યેગડયા દેવે સિયા, અત્યેગડયા ણો દેવે સિયા ॥ સૂ. ૭ ॥

મૂલમ્—સે કેણટ્ટેણં મંતે ! એવં વુચ્ચડ—અત્યેગડયા

મદન્ત ! 'અસજએ અવિરએ અ-પ્પહિહય-પચ્ચક્ષુઃ-પાવકમ્મે' અન્યત અનિગત
અ-પ્રતિહત-પ્રયાગ્યાત-પાપકમા-ચ્યાગ્યાતપૂર્વ, 'ઇઓ ચુએ' ઇત =મર્ત્યલોકાત્, 'યુત =
મૃત, 'પેચ્ચ દેવે સિયા' પ્રેય દેવ સ્યાત્-પ્રેય=જન્માન્તરે દેવ =દેવગતિસમાપન્ન
સ્યાત કિમ્ ? ઇતિ પ્રશ્ને મગનાનુત્તર કથયતિ—'ગોયમા ! અત્યેગડયા દેવે સિયા' ગૌતમ ?
અત્યેકકો દેવ સ્યાત્-કથિદેવ સ્યાત્, 'અત્યેગડયા ણો દેવે સિયા' અત્યેકકો
નો દેવ સ્યાત્-કથિદેવગતિસમાપનો ન ભવેત્ ॥ સૂ. ૭ ॥

ટીકા—'સે કેણટ્ટેણ મંતે' ઇત્યાદિ । 'સે કેણટ્ટેણ મંતે ! એવં વુચ્ચડ—
અત્યેગડયા દેવે સિયા અત્યેગડયા ણો દેવે સિયા ?' તકેનાર્થેન મદન્ત । એવમુચ્યતે ડત્ત્યે-

'જીવે ણ મંતે !' ઇત્યાદિ ।

(મંતે) હે મદત ! (અસજએ અવિરએ અ-પ્પહિહય-પચ્ચક્ષુઃ-પાવકમ્મે જીવે)
જો જીવ અસયમી હૈ, અવિરતિસપન્ન હૈ, પાપકમોં કા જિસને નિંદાદ્વારા એવ વિનિવૃત્તિદ્વારા
પ્રત્યાખ્યાન નહીં ક્રિયા હૈ એસા વહ જીવ, (ઇઓ ચુએ) ઇસ મર્ત્યલોક સે મર કર (પેચ્ચ)
પરલોક મેં-જન્માન્તર મે (દેવે સિયા) ક્યા દેવલોક મેં ઉત્પન્ન હો સકતા હૈ ? ઉત્તર-
(ગોયમા) હે ગૌતમ ! (અત્યેગડયા દેવે સિયા અત્યેગડયા ણો દેવે સિયા) કિત-
નેક જીવ દેવલોક મ ઉત્પન્ન હોતે હૈ ઓર કિનનેક જીવ દેવલોક મે ઉત્પન્ન નહીં મી
હોતે હૈ ॥ સૂ. ૭ ॥

'જીવે ણ મંતે' ઇત્યાદિ

(મંતે) હે મદત ! (અસજએ અવિરએ અ-પ્પહિહય-પચ્ચક્ષુઃ-પાવકમ્મે જીવે)
જે એવ અમયમી છે, અવિરતિસપન્ન છે, પાપકમોંતુ જેણે નિંદા દ્વારા
તેમજ વિનિવૃત્તિ દ્વારા પ્રત્યાખ્યાન કર્યું નથી એવા તે એવ (ઇઓ ચુએ) આ
મર્ત્યલોકમાથી મરીને (પેચ્ચ) પરલોકમા-જન્માન્તરમા (દેવે સિયા) શુ દેવ
લોકમા ઉત્પન્ન થઇ શકે છે ? (ગોયમા) ઉત્તર-હે ગૌતમ ! (અત્યેગડયા દેવે
સિયા અત્યેગડયા ણો દેવે સિયા) કેટલાક એવ દેવલોકમા ઉત્પન્ન થાય છે
અને કેટલાક એવ દેવલોકમા ઉત્પન્ન નથી પણ થતા (સૂ. ૭)

भुज्जतरो वा काल अप्पाणं परिकिलेसंति, परिकिलेसित्ता
कालमासे कालं किञ्चा अग्गयरेसु वाणमंतरेसु देवओएसु
देवत्ताए उववत्तारो भवंति, तहिं तेसिं गई, तहि तेसि
ठिई, तेहिं तेसिं उववाए पण्णत्ते । तेसि णं भंते । देवाणं
केवडयं काल ठिई पण्णत्ता ? गोयमा । दसवाससहस्साइं ठिई

भूयन्तर वा कालमा मान परिक्केययन्ति—'अप्पतरो भुज्जतरो' इत्युभयत्र द्वितीयायै प्रथमा,
'परिकिलेसित्ता' परिदेश 'कालमासे' कालमामे=कालावसरे 'काल किञ्चा' काल कृत्वा
'अग्गयरेसु वाणमंतरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवति' अन्यतमेषु व्यन्तरेषु देव-
लोकेषु देवत्वेनोपपातारो भवन्ति—अन्यतमेषु=ग्रहणा मध्ये एकरतरेषु देवलोकेषु उपपात प्राप्नुवन्ति,
'तहिं तेसिं गई तहिं तेसिं ठिई तहिं तेसिं उववाए पण्णत्ते' तत्र=देवलोके तेषा गति ,
तत्र तेषा स्थिति , तत्र तेषामुपपात प्रवृत्त । 'तेसिं ण भंते' देवाण केन्द्रिय काल ठिई
पण्णत्ता' तेषा रजल भदन्त । दवाना क्रियन्त काल स्थिति प्रज्ञता , 'गोयमा' दसवासस-
हस्साइं ठिई पण्णत्ता' हे गौतम । दशवर्षसहस्राणि स्थिति प्रज्ञता—वर्षाणा दशसहस्राणि

से, चाह ये सत्र कष्ट जीव अन्पकाल तक सह या बहुतकाल तक सह, परन्तु इन कष्टों से
जो अपनी आत्मा को क्लेशित करते हे वे मरणकाल प्राप्त होने पर मर कर किसी एक व्यन्तर-
देवों के देवलोक में देवरूप से उपपन्न होते है, (तहिं तेसिं गई तहिं तेसिं ठिई तहिं तेसिं
उववाए पण्णत्ते) इसलिये वहाँ पर उनकी गति, वहाँ पर उनकी स्थिति और वहा पर
उनका उपपात होता हे । (तेसिं ण भंते । देवाण केन्द्रिय काल ठिई पण्णत्ता) हे भदत् ।
वहा पर उन देवों की कितने काल तक की स्थिति होती है' (गोयमा ! दसवास-
सहस्साइं ठिई पण्णत्ता) गौतम ! सुनो, वहा पर उनकी स्थिति दसहजार वर्ष की होती

परितापने सहन उगीने—आडे ते णधा कष्ट एव थोडा वषत सहन करे
अथवा लाथा डाण सुधी सहन करे परन्तु वा कष्टोथी ने पोताना आत्माने
क्लेशित उठे हे ते भरशुकाल प्राप्त थता भरीने ठोछ अेक व्यन्तर देवाना
देवदोडकमा देवउपे उत्पन्न थाय छे, (तहिं तेसिं गई तहिं तेसिं ठिई तहिं तेसिं
उववाए पण्णत्ते) आथी त्या तेमनी गति, त्या तेमनी स्थिति, अने त्याज
तेमनो उपपात थाय छे (तेसिं ण भंते । देवाण केन्द्रिय काल ठिई पण्णत्ता ?)
हे भदत् । त्या ते देवाने उठेदो डाण स्थिति डोय छे ? (गोयमा ! दसवास

छुहाए अकाम-व्रभचेर-त्रासेणं अकाम-अणहाणग-सीया-यव-
दंस-मसग-सेय-जह्ल-मह्ल-पंक - परितावेणं अप्पतरो वा

कामछुहाए ' अकामक्षुधया-अकामाना=निर्जराघनभित्रापिणा सता क्षुधा-अकामक्षुधा तथा,
' अकाम-व्रभचेर-त्रासेण ' अकाम-व्रभचय-त्रासेन-अकामाना=निर्जराघनपेत्तागा-व्रभ
चये वाम तेन, ' अकाम-अणहाणग-सीया-यव-दंस-मसग-सेय-जह्ल-मह्ल-पङ्क-
परितावेण ' अकामा-उत्तानरु-शीता-उत्तप-दश-मशरु-स्त्रे-जह्ल-मह्ल-पङ्क परिता-
पेन-अकामाना=निर्जराघनपेक्षमाणाना यानि रानानाऽभावाऽनि पदातानि तेषा परितापेन=
सन्तापेन, ' अप्पतरो वा भुज्जतरो वा काल अप्पाण परिक्रिलेसति ' अप्पतर वा

रहित नगर में, व्यापारियों की वस्तीवाले निगम में, राजा की राजधानी में, घूल क फोट से युक्त
खेडे में, कुसित जन की वस्तीवाले कर्वट में, नजदीक २ ग्रामवाले मट्ट में, जल और स्थल
इन दोनों प्रकार के मार्ग वाले द्रोणमुख (वदर) में, सर्ववस्तु जहा मिलती हों ऐसे पाटण में,
तापसों के आश्रमों में, पर्वत के नजदीक वाले मजार में, एव गोपालों की प्रधान वस्तीवाले
सन्निवेश में, अकामनिर्जरासे-मनचिना परवश हो कर खाने पीने की वस्तु न मिल सकने
के कारण क्षुधा-तृषा सहन करने से, अकामब्रह्मचर्य से-इच्छा होने पर भी स्त्री आदि की
अप्राप्ति से ब्रह्मचर्य पालन करने से, अकामस्तान से-इच्छा होने पर भी पाना न मिल सने
के कारण स्नान नहीं करने से, वस्त्रादिक न मिल सकने के कारण शीत-आतप जन्य दु ख
सहने से, दशमशरु के द्वारा काट जाने का कष्ट सहन करने से, स्वेद, जह्ल, मह्ल एव
पङ्क आदि को शरार से दूर नहा करने से, अर्थात् इन क द्वारा उत्पन्न परिताप के सहन करने

युक्त राजधानीमा, धूणना डोटवाणा गामडाभा, कुसित जनाना निवासइय
कर्वटमा, पाने पाने गामवाणा मडणमा, जल अने स्थल ओ णन्ने प्रका
रना मार्गवाणा द्रोणमुख (वदर)मा, सर्व वस्तु ज्या भणती होय ओवा
पाटणमा, तपस्वीओना आश्रमोमा, पर्वतनी पासोना मणायमा, तेभण
गोवाणनी सुख्य वस्तीवाणा सन्निवेशमा, अकामनिर्जरासी-मनचिना परवश
थधने-आवापीवानी वस्तु भणी न शठवाथी बूधतरन मडन ढरीने, अकाम-
ब्रह्मचर्यथी-इच्छा होवा छता स्त्री आदिनी अप्राप्तिथी ब्रह्मचर्य पालन करीने,
अकामस्तानथी-इच्छा होवा छता पाणी न भणी शकवाना कारणे स्नान नहिं
करीने, वस्त्रादिक न भणी शठवाना कारणे ठडी-गरमाथी थता दु ख सहन
करीने, दशमशरुथी ढरडाई जवानु वध सहन करीने, स्वेद, जह्ल, मह्ल
तेभण पङ्क आदिने शरीरथी हर नहिं करीने ओटले, आथी उत्पन्न थता

मूलम्—से जे इमे गामा—गर—णयर—णिगम—राय—
हाणि—खेड—कञ्चड—मडंव—दोणमुह—पट्टणा—सम—संवाह—स—
पिणवेसेसु मणुया भवति, तंजहा—अंडुवद्धगा णियलवद्धगा हडिब-

टीका—‘से जे इमे’ इत्यादि । ‘से जे इमे’ अथ य इमे ‘गामा—गर—

णयर—णिगम—रायहाणि—खेड—कञ्चड—मडंव—दोणमुह—पट्टणा—सम—संवाह—स—
पिणवेसेसु मणुया भवति’ ग्रामा—ऽऽकर—नगर—निगम—राजधानी—खेड—कर्वट—मडम्ब—
दोणमुख—पट्टणाऽऽ—श्रम—सन्निवेशे मनुजा भवन्ति—ग्रामादय प्राग् व्याख्याता, तेषु
य इमे मनुष्या भवन्ति, ‘तंजहा’ तद्यथा— ‘अंडुवद्धगा’ अण्डुवद्धका—अण्डनि=अन्दु-

से देव होते हैं वे हा जीव आराधक होकर नियम से, आगामी एक हा मनुष्य भव से
अथवा परम्परा से मात आठ भय से मुक्ति का लाभ करनेवाले होते हैं, अन्य नहीं । परन्तु
जो अक्रामनिर्जग करके देवता होते हैं वे सभी निर्वाणानुकूल भवान्तर प्राप्त करे ही यह
नियम नहीं है ॥ सू० ८ ॥

‘से जे इमे गामागर’ इत्यादि ।

(से जे इमे) जो ये जीव (गामा—गर—णयर—णिगम—रायहाणि—खेड—
कञ्चड—मडंव—दोणमुह—पट्टणा—सम—संवाह—सपिणवेसेसु मणुया भवति) ग्राम में,
आकर म, निगम म, राजधानी में, खेडे म, कर्वट में, मडम्ब में, दोणमुख में,
पट्टण में, आश्रम म, सन्निवेश में, एवं सन्निवेश में मानव की पर्याय से उत्पन्न होते हैं और
वे किसी अपराध (अंडुवद्धया) लोह एवं काष्ठ के बंधनों से हाथ पैरों को बाधकर

तेभ्यः सम्बन्धितपूर्वकं अतुष्ठांशुं देव वाच छे तेभ्य एव आराधक
थर्धने नियमथी आगामी अेक व मनुष्यना लवथी अथवा परपराथी सात-
आठ लवथी मुक्तिने लाल भेजवनार थाय छे परतु वे अक्रामनिर्जग
करीने देवता थाय छे ते निर्वाण-अनुकूल लवातर प्राप्त करेण अेवो नियम
नथी (सू० ८)

‘से जे इमे गामागर—’ इत्यादि

(से जे इमे) वे आ एव (गामा—गर—णयर—णिगम—रायहाणि—खेड—कञ्चड—
मडंव—दोणमुह—पट्टणा—सम—संवाह—सपिणवेसेसु मणुया भवति) ग्राममा, आकरमा,
नगरमा, निगममा, राजधानीमा, खेडमा, कर्वटमा, मडम्बमा, दोणमुखमा,
पट्टणमा, आश्रममा, सन्निवेशमा, तेभ्य अन्निवेशमा मानवनी पर्यायमा उत्पन्न

पण्णत्ता । अत्थि ण भंते ! तेसिं देवाण इड्ढीइ वा जुईइ वा जसेइ वा बलेइ वा वीरिएइ वा पुरिसक्कार-परक्कमेइ वा ? हंता । अत्थि । ते णं भंते ? देवा परलोगस्स आराहगा ? णो इण्णट्ठे समट्ठे ॥ सू० ८ ॥

यावत् तत्र तेषा स्थिति प्रज्ञा । 'अत्थि ण भंते ! तेसिं देवाणा इड्ढीइ वा जुई-
इ वा जसेइ वा बलेइ वा वीरिएइ वा पुरिसक्कारपरक्कमेइ वा ?' अस्ति खलु हे भदन्त !
तेषा देवानामृद्धिरिति वा, धृतिरिति वा, यश इति वा, बलमिति वा, वीर्यमिति वा, पुरुष
कारपराक्रम इति वा, ? , तेषा देवानामृद्ध्यादयो विद्यन्ते नरेति प्रश्न , उत्तरमाह- 'हंता !
अत्थि' हन्त ! अस्ति-तेषामृद्ध्यादयो वर्तन्ते इति भाव । पुन -पृच्छति-' ते णं भंते ! देवा
परलोगस्स आराहगा ?' ते खलु हे भदन्त ! देवा परलोकस्थाऽऽराधका = परलोकसा
धका सन्ति किम् ? , उत्तरमाह-' णो इण्णट्ठे समट्ठे' नाऽयमर्थ समर्थ = गत-
इत्युत्तरम्, अयमभिप्राय -ये हि जीवा सम्यग्दर्शनज्ञानपूर्वकानुष्ठानेन देवा भवन्ति, त
एव नियमतयाऽऽन्तर्येण पारम्पर्येण वा निर्वागाकाल भवांतर प्राप्नुवन्ति तदन्ये तु
भाज्या ॥ सू० ८ ॥

है । (अत्थि ण भंते ! तेसिं देवाण इड्ढीइ वा जुईइ वा जसेइ वा बलेइ वा
वीरिएइ वा पुरिसक्कारपरक्कमेइ वा) प्रभो ! वहा उन देवों मे परिवार आदि ऋद्धियों,
शारीरिक कति, यश, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम ये सब चाते है या नहीं ?
(हंता ! अत्थि) उत्तर-हा है । (ते ण भंते ! देवा परलोगस्स आराहगा) हे
भदत ! वे देव परलोक के आराधक होते है क्या ? उत्तर-(णो इण्णट्ठे समट्ठे) यह अर्थ
समर्थित नहीं है, क्योंकि जो जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एव सम्यक्चारित्र-पूर्वक अनुष्ठान

सहस्साइ ठिई पण्णत्ता) गौतम । साधुणा, त्या तेभणी स्थिति इस दुनर
वर्षनी डोय छे (अत्थि ण भंते ! तेसिं देवाण इड्ढीइ वा जुईइ वा जसेइ वा बले
इ वा वीरिएइ वा पुरिसक्कारपरक्कमेइ वा) प्रभो । त्या ते देवोभा परिवार आदि
ऋद्धियो, शारीरिक कति, यश, बल, वीर्य अने पुरुषकार-पराक्रम आ णधु
डोय छे नडि ? (हंता अत्थि) हा छे (ते ण भंते ! देवा परलोगस्स
आराहगा) हे भदत ! ते देवो परलोकना आराधक डोय छे ? (णो इण्णट्ठे
समट्ठे) आ अर्थ समर्थित नथी, केभके छे एव सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान

मूलम्—से जे इमे गामा—गर—णयर—णिगम—राय-
हाणि—खेड—कव्वड—मडव—दोणमुह—पट्टणा—सम—संवाह—स-
णिवेसेसु मणुया भवति, तजहा—अंडुवद्धगा णियलवद्धगा हडिव-

टीका—‘से जे इमे’ इत्यादि । ‘से जे इमे’ अथ य इमे ‘गामा—गर—
णयर—णिगम—रायहाणि—खेड—कव्वड—मडव—दोणमुह—पट्टणा—सम—संवाह—स-
णिवेसेसु मणुया भवति’ ग्रामा—ऽऽकर—नगर—निगम—राजधानी—खेड—कर्वट—मडम्ब—
द्रोणमुख—पट्टणाऽऽ—श्रम—सन्नाध—सन्निवेशेषु मनुजा भवन्ति—ग्रामादय प्राग् व्याख्याता, तेषु
य इमे मनुष्या भवन्ति, ‘तजहा’ तद्यथा—‘अंडुवद्धगा’ अण्डुवद्धका—अण्डनि=अण्डु-

से देव होते हैं वे हा जीव आराधक होकर नियम से, आगामी एक हा मनुष्य भव से
अथवा परम्परा से सात आठ भव से मुक्ति का लाभ करनेवाले होते हैं, अन्य नहीं । परन्तु
जो अकामनिर्जरा करके देवता होते हैं वे समा निर्वाणानुकूल भवान्तर प्राप्त करे हा यह
नियम नहा है ॥ सू० ८ ॥

‘से जे इमे गामागर’ इत्यादि ।

(से जे इमे) जो ये जीव (गामा—गर—णयर—णिगम—रायहाणि—खेड-
कव्वड—मडव—दोणमुह—पट्टणा—सम—संवाह—सणिवेसेसु मणुया भवति) ग्राम में,
आकर मे, नगर मे, निगम मे, राजधानी मे, खेडे मे, कर्वट म, मडम्ब में, द्रोणमुख में,
पट्टण म, आश्रम म, सन्नाध में, एव सन्निवेश मे मानव की पर्याय से उत्पन्न होते हैं और
वे किसी अपराधवश (अंडुवद्धया) लोह एव काष्ठ के बधनों से हाथ पैरों को बाधकर

तेभञ्ज सभ्यत्वारित्रपूर्वक अनुष्ठानथी देव धाय छे तेञ्ज एव आराधक
थर्धने नियमथी आगामी अेक ञ् मनुष्यना लवथी अथवा पर पराथी सात-
आठ लवोथी मुक्तिने लाल भेणवनार धाय छे परतु जे अकामनिर्जरा
करीने देवता धाय छे ते निर्वाण-अनुकूल लवातर प्राप्त करेञ्ज अेवो नियम
नथी (सू ८)

‘से जे इमे गामागर—’ इत्यादि

(से जे इमे) जे आ एव (गामा—गर—णयर—णिगम—रायहाणि—खेड—कव्वड-
मडव—दोणमुह—पट्टणा—सम—संवाह—सणिवेसेसु मणुया भवति) गाममा, आठरमा,
नगरमा, निगममा, राजधानीमा, खेडामा, कर्वटमा, मडममा, द्रोणमुखमा,
पाटणुमा, आश्रममा, सन्नाधमा, तेभञ्ज सन्निवेशमा मानवनी पर्यायमा उत्पन्न

द्वगा चारगवद्धगा हृत्थच्छिण्णगा पायच्छिण्णगा कण्णच्छिण्णगा
नक्कच्छिण्णगा ओट्टच्छिण्णगा जिब्भच्छिण्णगा सीसच्छिण्णगा
मुहच्छिण्णगा मज्झच्छिण्णगा वड्कच्छिण्णगा हियउप्पाडियगा

कानि काप्रमयानि लोहमयानि वा हस्तयो पादयोर्वा बधनप्रशेषा, तेषु बद्धका = बद्धा एव बद्धका, स्वार्थे क, 'णिअलवद्धगा' निगडवद्धका - निगडा = लौहमया पादयोर्बध-
विशेषा 'वेडी' इति प्रसिद्धा तेषु बद्धका - निगडवद्धा इत्यर्थे, 'हडिबद्धगा' हडिबद्ध
का - हडि = खोटक, तत्र बद्धका, 'चारगवद्धगा' चारकवद्धका - चारका = कारागारणि,
तत्र बद्धका, 'हृत्थच्छिण्णगा' हस्तच्छिन्नका - हस्ती छिन्नो येषा ते तथा, 'पायच्छि
ण्णगा' पादच्छिन्नका 'कण्णच्छिण्णगा' कर्णच्छिन्नका, 'नक्कच्छिण्णगा' नासिका
च्छिन्नका, 'ओट्टच्छिण्णगा' ओष्ठच्छिन्नका, 'जिब्भच्छिण्णगा' जिह्वाच्छिन्नका, 'सीस-
च्छिण्णगा' शार्पच्छिन्नका, 'मुहच्छिण्णगा' मुखच्छिन्नका, 'मज्झच्छिण्णगा' मयच्छि-
न्नका, मय = उदरदेश, 'वड्कच्छिण्णगा' वैकृशच्छिन्नका - उत्तरासङ्गाऽऽकारेण नि-

एक स्थान पर रोककर रख दिये जाते हैं, (णिअलवद्धगा) वेडी से जकड़ दिये जाते
हैं, (हडिबद्धगा) काष्ठ के खोड़े में पैर डलवाकर रोक दिये जाते हैं, (चारगवद्धगा)
जेलखाने में बद्ध कर दिये जाते हैं, (हृत्थच्छिण्णगा) तथा उनके दोनों हाथ काट दिये
जाते हैं, (पायच्छिण्णगा) दोनों पैर छिन्नभिन्न कर दिये जाते हैं, (कण्णच्छिण्णगा)
कान छेद दिये जाते हैं, (नक्कच्छिण्णगा) नाक छेद दी जाती है, (ओट्टच्छिण्णगा)
ओष्ठ छेद दिये जाते हैं, (जिब्भच्छिण्णगा) जिह्वा छेद दी जाती है, (सीसच्छिण्णगा)
शिर छेद दिया जाता है, (मुहच्छिण्णगा) मुख छेद दिया जाता है, (मज्झच्छिण्णगा)

थाय छे अने तेओ कोष्ठ अपराधवथ (अहुवद्धगा) लोढाना तेमज्ज लाडडाना
अधनोथी हाथ-पगने आधीने ओक स्थान पर रोकी रभाय छे, (णिअलवद्धगा)
ओडीथी जकडी देवाय छे, (हडिबद्धगा) लाकडाना जोडा (पकड)भा पग नभा-
वीने रोकी रभाय छे (चारगवद्धगा) जेलखानाभा पुरी देवाभा आवे छे,
(हृत्थच्छिण्णगा) तथा तेमना अन्ने हाथ कथी नाभवाभा आवे छे, (पायच्छि
ण्णगा) अन्ने पंग छिन्न सिन्न करी नाभवाभा आवे छे, (कण्णच्छिण्णगा) कान
छेदी नाभवाभा आवे छे (नक्कच्छिण्णगा) नाक छेदी नभाय छे, (ओट्टच्छिण्णगा)
होड छेदी नभाय छे (जिब्भच्छिण्णगा) ओष्ठ छेदी नभाय छे (सीसच्छिण्णगा)
शिर छेदी नभाय छे (मुहच्छिण्णगा) मुख छेदी नभाय छे (मज्झच्छिण्णगा)

णयणुप्पाडियगा दसणुप्पाडियगा वसणुप्पाडियगा गेवच्छिण्णगा
तंडुलच्छिण्णगा कागणिमंसक्खावियगा ओलवियगा लंवियगा

दारिता, 'हियउप्पाडियगा' हृद्योपादितका -उपादितहृद्या इत्यर्थ, 'णयणुप्पाडि-
यगा' नयनोपादितका -उपादितनयना =पृथक्कृतनेत्रा, 'दसणुप्पाडियगा' दशानो-
पादितका -उपादितदशना =पृथक्कृतदन्ता, 'वसणुप्पाडियगा' वृषणोपादितका -पृथ-
क्कृताण्डकेशा, 'गेवच्छिण्णगा' ग्रीवाच्छिन्नका =छिन्नग्रीवाप्रदेशा, 'तंडुलच्छिण्णगा'
तण्डुलच्छिन्नका -तण्डुउत्त कणशाच्छिन्ना, 'कागणिमसक्खावियगा' कारुणीमास-
खादितका -कारुणीमासानि=देहो हृत्तमासगण्डानि खात्तितानि येषा ते तथा, 'ओलवि-
यगा' अलम्बितका =रज्ज्वा बद्ध्या कूपादौ पातिता, 'लवियगा' लम्बितका =तरुशा-
खादौ बद्ध्या लम्बिता, 'प्रसियगा' घर्षितका =चन्दनवत् पाषाणादौ वृष्टा, 'घोलि-

मय्यभाग-पेट का भाग छेद दिया जाता है, (वड्कच्छिण्णगा) बायें कन्धे से लेकर
दाहिने कौंध के नीचे के भाग सहित मस्तक उदर दिया जाता है, (हियउप्पाडियगा)
हृदय फाड़ लिया जाता है, (णयणुप्पाडियगा) नेत्रों आगे फोड़ दी जाती है, (दसणु-
प्पाडियगा) अटकोष निकाल लिये जाते हैं, (गेवच्छिण्णगा) गर्दन तोड़-मगेड दी
जाती है, (तंडुलच्छिण्णगा) तण्डुल का तरह कण्ठ करके उनके शरीर के खड २ कर
दिये जाते हैं, (कागणि-मस-क्खावियगा) उनकी देह से मांस काट २ कर कौंधों
को खिल दिया जाता है, (ओलवियगा) रस्मों से बाधकर कुएँ में डाल दिये जाते हैं,
(लवियगा) वृक्ष की शाखा आदि पर ग्राहकर लटका दिये जाते हैं, (प्रसियगा)
चन्दन की तरह पथर आदि पर घिसे जाते हैं, (घोलियगा) भाण्ड में स्थित दही की

मध्यभाग-पेटना भाग छेदी नभाय छे (वड्कच्छिण्णगा) डापी काधथी लघने
जमछी अगलना नीचेना भाग अहित मस्तक छेदी नभाय छे (हियउप्पा-
डियगा) हृदय काडी नभाय छे (णयणुप्पाडियगा) अन्ने आषो काडी-देवाय छे
(दसणुप्पाडियगा) हात पाडी नभाय छे (वसणुप्पाडियगा) अ उटोप काडी
नभाय छे (गेवच्छिण्णगा) गर्दन तोडी-मग्डी नभाय छे (तंडुलच्छिण्णगा) तण्डु-
लनी पेटे कषुकषु कराने तेना शरीरना कटके-कटका कगी नाभवामा आवे छे
(कागणि-मस-क्खावियगा) तेना देहमाथी मांस कापी कापीने कागडाने अव-
रावाय छे (ओलवियगा) होउआथी आधीने इवामा नाभी देवाय छे (लवियगा)
आडनी आजीअे आपीने लटकावामा आवे छे (प्रसियगा) अदननी पेटे

घंसियगा घोलियगा फालियगा पीलियगा सूलाइयगा सूलभि-
 णगा खारवत्तिया वज्जवत्तिया सीहपुच्छियगा दवग्गिदड्ढगा
 पंकोसण्णगा पंके खुत्तगा वलयमयगा वसट्टमयगा णियाणम-

यगा ' घोटितका = भाण्डरित्तदधिबद्ध्यांश्च क्रमेणाऽऽघूर्णिता, ' फालियगा ' स्फाटिता -
 शुष्ककाष्ठवकुष्ठारेण द्विधा कृता, ' पीलियगा ' पीडितका - यन्त्रक्षित्तेश्चयष्टिवत् पीडिता,
 ' सूलाइयगा ' शूलाचितका = शूले समारोपिता, ' सूलभिणगा ' शूलभिन्नका = शूलेन
 विदारिता, ' खारवत्तिया ' क्षारवत्तिका = क्षारे क्षिता, ' वज्जवत्तिया ' वज्जवत्तिका =
 वज्जस्थाने पातित्ता, ' सीहपुच्छियगा ' सिंहपुच्छित्तका = छिन्नजननेन्द्रियका, यद्वा-सिंह-
 पुच्छे बद्ध्वा समाकृष्टा ' दवग्गिदड्ढगा ' दावाग्निदग्धका - दावाग्निना = वनाग्निना दग्धा,
 ' पंकोसण्णगा ' पद्माऽवसन्नका = सर्वथा पक्के निमग्ना, ' पंके खुत्तगा ' पक्के निमग्ना =
 उत्तरीतुमसमर्था, ' वलयमयगा ' वलनमृतका - मयमयोगाद् भ्रष्टाना परीपहाथसहनतया

तरह ऊँचे नीचे करके मथ दिये जाते हैं, अथवा धुमाये जाते हैं, (फालियगा) शुष्क-
 काष्ठ की तरह दो टुकड़ों के रूप में कर दिये जाते हैं, (पीलियगा) कोल्ह में क्षित
 इक्षु की तरह पील दिये हैं, (सूलाइयगा) शूली पर चढा दिये जाते हैं, (सूलाभिणगा)
 शूल से विदारित कर दिये जाते हैं, (खारवत्तिया) क्षार में पटक दिये जाते हैं,
 (वज्जवत्तिया) वज्जस्थान में रख दिये जाते हैं, (सीहपुच्छियगा) उनका लिङ्ग काट
 दिया जाता है, अथवा वे सिंह की पूँठ में बाँधकर घसीटे जाते हैं, (दवग्गिदड्ढगा)
 दावाग्नि द्वारा दग्ध कर दिये जाते हैं, (पंकोसण्णगा) कीचड में विलकुल घसा दिये
 जाते हैं, (पंके खुत्तगा) कीचड में इस प्रकार खड़े कर दिये जाते हैं कि जिससे फिर

पत्थर उपर घसी नाभवाभा आवे छे (घोलियगा) वासधुभा राभेला हडी नी
 पेठे उबे-नीबे करी मथन उरवाभा आवे छे. अथवा धुमाववाभा आवे छे
 (फालियगा) सुकेला लाकडानी पेठे जे टुकडाना इधमा करी नाभवाभा आवे छे
 (पीलियगा) डोक्षुभा नाभवाभा आवती शेरडीनी पेठे पीली नभाय छे
 (सूलाइयगा) शूली उपर अडावी देवाय छे (सूलाभिणगा) शूवथी शूडी नाभ
 वाभा आवे छे (खारवत्तिया) क्षारभा नाभी देवाय छे (वज्जवत्तिया) वज्ज
 स्थानभा रभाय छे (सीहपुच्छियगा) लिग डापी नभाय छे, अथवा-मिडनी
 पुछडीभा आधीने धमेडाथ छे (दवग्गिदड्ढगा) दावाग्नि द्वारा आधी नभाय छे
 (पंकोसण्णगा) काडवभा नाभी देवाय छे तेथी त्याज्ज भरी जाय छे, (पंके खुत्तगा)

यगा अंतोसल्लमयगा गिरिपडियगा तरुपडियगा गिरिपक्खंदो-

मरण-वल्लमरण तदन्तो वल्लमृतका, यदा-बुभुक्षादिना आता भूत्वा मृतास्ते वल्लमृतका, 'वसट्टमयगा' वशान्मृतका -इन्द्रियविषयवशात् आता मन्त शब्दादिवशवर्तिमृगा-
 निमृता इत्यर्थ, 'णियाणमयगा' निदानमृतका -रुद्धिभोगादिप्रार्थना निदान, तत्पूर्वक
 मरण निदानमरणम्, तदन्त इत्यर्थ, 'अतोसल्लमयगा' अन्त शब्दमृतका -अन्त -
 शब्दा = अनुदृतभावशब्दा अन्त स्थितभङ्गादिशब्दा वा मृता, 'गिरिपडियगा' गिरि
 पतितका -गिरि = पर्वतात्पतिता, 'तरुपडियगा' तरुपतितका = वृक्षा पतिता, 'मरुप-
 डियगा' मरुपतितका -मरु = निर्जले देशे पतिता, 'गिरिपक्खंदोलगा' गिरिपक्षान्दो-
 लका -गिरिपक्षे = पर्वतपार्श्वे आत्मानमान्दोलयन्ति ये ते तथा, गिरिपरिसरान्मरणायैव दत्तज्ञप्त्वा

वे वहा से पार नहीं आ सके, (वलयमयगा) परीपह आदि को सहन करने में असमर्थ
 होन की वजह से गृहीत मयम से जो भ्रष्ट होना उसका नाम वल्लमरण है, अथवा दु खित
 होकर जो मरना है उसका नाम भी वल्लमरण है, इम मरण से जो युक्त हा वे वल्लमृतक
 है, ऐसे जो वल्लमृतक है, (वसट्टमयगा) शब्दादिक के वशवर्ती मृग को तरह जो इन्द्रियों
 क विषयों में फैमकर दुग्स्था से प्राणा का त्याग करते है, (णियाणमयगा) जो इन्द्रिय-
 भोगादिका की चाहनारूप निदान से मरण करत है, (अंतोसल्लमयगा) हृदय म शब्द
 धारण कर जो मरण करते है, अथवा भङ्गादिक शब्दा से विदारित होकर जो मरण करते
 है, (गिरिपडियगा) पहाट से गिरकर जो मरण करते है, (तरुपडियगा) पेड से
 गिरकर जो मरण करते है, (मरुपडियगा) जो मरुस्थल मे पट कर मर जाते है, (गिरि-
 पक्खंदोलगा) पर्वत से जो झपापात कर के मर जाते है, (तरुपक्खंदोलगा) वृक्षों से

गाराभा ज्येथी गीते उला ऽरी देवाय छे ते ज्येथी पाछा ते त्याथी नीउणी शडे
 नडि (वलयमयगा) परिपड आदिना मडन ऽरवाभा अममर्थ होवाथी लीधेला
 नयमथी भ्रष्ट यषु तेनु नाम वल्लमरण छे आ मरुथी जे युक्त होय
 अथवा डुणी थरने जे मरुथु थाय तेवा मरुथी जे युक्त होय ते वल्ल-
 तड छे, (वसट्टमयगा) शब्द आदिउने वश थछ मृगनी पेटे जे छट्टियोना
 विषयभा इभाछ जछ प्राणने त्याग ऽरे छे, (णियाणमयगा) जे उद्विथलोग
 आदिउनी आडना उप निदानथी मणु पाभे छे, (अतोसल्लमयगा) हृदयभा
 शब्द धारण ऽरीने (उगी भारीने) जे मरुथु पाभे छे, अथवा
 आला विगेरे शओथी जे मरुथु पाभे छे, (गिरिपडियगा) पडाउ उपरथी पडीने
 जे मरुथु पाभे छे, (तरुपडियगा) आडेथी पडीने जे मणु पाभे छे, (मरुप
 डियगा) जे मरुस्थलभा पडीने मगी नय छे, (गिरिपक्खंदोलगा) पर्वत उपरथी

लगा तरुपक्खंदोलगा मरुपक्खंदोलगा जलपवेसी (जलणपवे-
सिगा) विसभक्खियगा सत्थोवाडियगा वेहाणसिया गेद्धपट्टगा
कंतारमयगा दुब्भिक्खमयगा असंकिलिट्टपरिणामा ते कालमासे

मृताश्च तथाभिधायन्ते, 'तरुपक्खंदोलगा' तरुपक्षान्दोलका = तरपक्षाग्न्पादानेन मृता
'मरुपक्खंदोलगा' मरुपक्षान्दोलका - मरुपक्षे = मरुभूमौ आत्मानमान्दोलयन्ति ये ते तथा,
मरुभूमौ मृता इत्यर्थ, 'जलपवेसी' जलप्रवेगिन - जले निमज्ज्य मृता इत्यर्थ, 'जलण-
पवेसिगा' ज्वलनप्रवेगिका - अग्नौ मृता इत्यर्थ, 'विसभक्खियगा' विपभक्षितका -
विपभक्षणेन मृता इत्यर्थ, 'सत्थोवाडियगा' शत्रोत्पाटितका - शत्रेण = क्षुरिकादिना विदा-
रिता सन्तो मृता, 'वेहाणसिया' वैहायसिका - वृक्षशाखादावुद्धत्त्वाद् विहायसि =
आकाशे यन्मरण भवति तद्वैहायस, तदस्ति येषां ते वैहायसिका, 'गेद्धपट्टगा' गृध्रस्पृ-
ष्टका - गृध्रैः = पक्षिविशेषैः स्पृष्टस्य = विदारितस्य करिकरभरासभादिमृतफलेवरस्याभ्यन्तरे गत्वा
ये मृतास्ते गृध्रस्पृष्टका 'कतारमयगा' कान्तामृतका = अरण्ये मृता, 'दुब्भिक्खम-
यगा' दुर्भिक्षमृतका - दुर्भिक्षे मृता इत्यर्थ, 'असंकिलिट्टपरिणामा' अमक्लिष्टपरिणामा :

अपापात कर के मर जाते हैं, (मरुपक्खंदोलगा) मरुस्थल में मार्ग भूलकर जो उसी में
मर जाते हैं, (जलपवेसी) जल में डूब कर जो मर जाते हैं, (जलणपवेसिगा) अग्नि
से जलकर जो मर जाते हैं, (विसभक्खियगा) विप खाकर जो मर जाते हैं, (सत्थो-
वाडियगा) शत्रुओं से आहत होकर जो मर जाते हैं, (वेहाणसिया) वृक्षा पर लटक
कर जो मर जाते हैं, (गेद्धपट्टगा) गृध्रों द्वारा विदारित फेसे करि-हाथी एवं करम-ऊँट
आदि के फलेवर में प्रविष्ट होकर जो मरते हैं, (कतारमयगा) जो जंगल में ही मर जाते
हैं, (दुब्भिक्खमयगा) दुर्भिक्ष से पीड़ित होकर जो मौत के घाट उतर जाते हैं, (अस-

अपापात करीने (करीने) मरखु पाये छे, (तरुपक्खंदोलगा) वृक्ष परथी अपापात
करीने ने मरखु पाये छे, (मरुपक्खंदोलगा) मरुस्थलमा रस्ते भूलीने तेभाज्ज
ने मरी नय छे, (जलपवेसी) जलमा डुपीने ने मरखु पाये छे, (जलणपवे-
सिगा) अग्निथी अजीने ने मरी नय छे, (विसभक्खियगा) अेर भाधने
ने मरखु पाये छे, (सत्थोवाडियगा) शत्रोना घातथी ने मरी नय छे, (वेहा-
णसिया) वृक्षा पर लटकनीने ने मरखु पाये छे, (गेद्धपट्टगा) गीधोद्वारा विदारित
हाथी तेमज्ज करल-ऊँट आदिना शरीरमा प्रविष्ट थधने ने मरखु पाये छे,
(कतारमयगा) ने जंगलमा ज मरखु पाये छे, (दुब्भिक्खमयगा) दुर्भिक्षथी पीडाधने

काल किञ्चा अण्णयरेसु वाणमत्तरेसु देवलोएसु देवत्ताए उवव-
त्तारो भवन्ति, तहि तेसिं गई तहिं तेसि ठिई, तहिं तेसिं उववाए
पण्णत्ते । तेसिं ण भन्ते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ।

मक्खिल्लपरिणामा महात्तरोद्दघ्यानाऽऽवेअन देवव न लभन्ते, अत अमक्खिल्लपरिणामा इति
विशिष्य प्रदर्शिता, ते कालमासे काल वृत्ता, 'अण्णयरेसु वाणमत्तरेसु देवलोएसु देव-
त्ताए उववत्तारो भवन्ति' अन्यतमेपु व्यन्तरेपु देवलोकेपु देववेनोपपत्तारो भवन्ति, 'तहिं
तेसिं गई' तत्र तेपा गति, 'तहिं तेसिं ठिई' तत्र तेपा स्थिति, 'तहिं तेसिं उव-
वाए पण्णत्ते' तत्र तेपामुपपात प्रज्ञम । 'तेसिं ण भन्ते ! देवाण केवइय कालं ठिई
पण्णत्ता ?' तेपा खल्ल भदन्त ! देवाना क्रियन्त काल स्थिति प्रज्ञमा, 'गोयमा ! वार-

किञ्चित्परिणामा) और जिनके परिणाम मङ्गित नहीं होते हैं, ऐसे जीव (अण्णयरेसु
वाणमत्तरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवन्ति) किसी एक व्यन्तर देव का पर्याय
स उपन होते हैं। (तहिं तेसिं गई, तहिं तेसिं ठिई, तहिं तेसिं उववाए पण्णत्ते) वहाँ
पर उनका गति, वहाँ पर उनका स्थिति एवं वहाँ पर उनका उपपात कहा गया है,
(तेसिं ण भन्ते ! देवाण केवइय कालं ठिई पण्णत्ता) है भदत ! वहा उन जीवों की

(१) मक्खिल्लपरिणामों के मद्भाव में जीवों को देवगति का बंध नहा होता है ।

महा आर्तगौद्दघ्यान के परिणाम सक्खिल्ल परिणाम है, अमक्खिल्ल परिणाम ही देवगति की
प्राप्ति में कारण है, इस बात को प्रदर्शित करने के लिये "असक्खिल्लपरिणाम" इस पद
का प्रयोग किया है ।

ने भोतने लेटे छे, (असक्खिल्लपरिणामा) अने जेनु परिष्णाम—अत सा किल्ल न
थाय अेवा एव (अण्णयरेसु वाणमत्तरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवन्ति) डोई
अेअ व्यन्तर देवलोकेमा व्यन्तर—देवनी पर्यायथी उत्पन्न थाय छे (तहिं तेसिं गई
तहिं तेसिं ठिई तहिं तेसिं उववाए पण्णत्ते) त्या तेभनी गति, त्या तेभनी स्थिति,
तेभए त्या तेभना उपपात उडेवामा आये छे (तेसिं ण भन्ते ! देवाण केव
इय कालं ठिई पण्णत्ता) छे भदत ! त्या ते एवेनी स्थिति डेटला काणनी भनायी

(१) सक्खिल्ल परिष्णामना सहभावमा एवेने देवगतिनेो बंध थतो
नथी भडा—आर्तगौद्दघ्यानन. परिष्णाम सक्खिल्लपरिष्णाम छे असक्खिल्ल
परिष्णाम पण्ण देवगतिनी प्राप्तिमा कारणभूत छे अे वात प्रदर्शित करवा
"असक्खिल्लपरिणाम" अे पहनेो प्रयोग कथो छे

वारसवाससहस्साइं ठिईं पणत्ता । अत्थि णं भंते ! तेसिं देवाणं इड्ढीइ वा, जुईइ वा, जसेइ वा, वलेइ वा, वीरिएइ वा, पुरिसक्कारपरक्कमेइ वा ?, हंता ! अत्थि । ते णं भंते ! देवा परल्लो-
गस्स आराहगा ?, णो इण्णट्ठे समट्ठे ॥ सू० ९ ॥

सवाससहस्साइं ठिईं पणत्ता' गौतम ! द्वादशवर्षसहस्राणि स्थिति प्रजया । 'अत्थि ण भते ! तेसिं देवाण इड्ढीइ वा जुईइ वा जसेइ वा वलेइ वा वीरिएइ वा पुरिसक्कार परक्कमेइ वा ?' अस्ति खलु भदन्त ! तेषा देवानामृद्धिगिति वा वृत्तिगिति वा यज्ञ इति वा बलमिति वा वीर्यमिति वा पुरुषकारपरक्रम इति वा ' इति प्रश्न भगवानुत्तर वक्ति— 'हंता ! अत्थि' हन्त ! अस्ति, ' ते ण भते ! देवा परल्लोगस्स आराहगा ?' ते खलु भदन्त ! देवा परल्लोकस्याऽऽराधका भवन्ति किम् ' णो इण्णट्ठे समट्ठे ' नाऽयमर्थ समर्थ ॥ सू० ९ ॥

स्थिति कितने काल की बतलाई गई है, (गौतम ! वारसवाससहस्साइं ठिईं पणत्ता) गौतम ! उन जीवों की बहा स्थिति बारह हजार वर्ष की बतलाई गई है। (अत्थि ण भते ! तेसिं देवाणं इड्ढीइ वा जुईइ वा जसेइ वा वलेइ वा वीरिएइ वा पुरिसक्कारपरक्कमेइ वा) हे भदत ! बहा उन देवों में ऋद्धि, वृत्ति, कीर्ति, बल, वीर्य एवं पुरुषकारपरक्रम हे या नहा ' (हंता अत्थि) हा है। (ते ण भते देवा ! परल्लोगस्स आराहगा) हे भदत ! वे देव परल्लोक के आराधक होते हे क्या ' (णो इण्णट्ठे समट्ठे) हे गौतम ! वे आराधक नहीं होते हैं।

भावार्थ—जो जीव ग्राम आदि में उत्पन्न होकर पूर्वोक्तरूप से प्रदर्शित विषम-

छे ? (गौतम ! वारसवाससहस्साइं ठिईं पणत्ता) हे गौतम ! ते लोकोनी त्या स्थिति पार ६००२ वर्षानी अतापी छे (अत्थि ण भते ! तेसिं देवाण इड्ढीइ वा जुईइ वा जसेइ वा वलेइ वा वीरिएइ वा पुरिसक्कार-परक्कमेइ वा) हे भदत ! त्या ते देवाभा ऋद्धि, वृत्ति, कीर्ति, बल, वीर्य, तेभव पुरुषकार-परक्रम छे के नहि ? (हंता अत्थि) हा छे (ते ण भते ! देवा परल्लोगस्स आराहगा) हे भदत ! आ देव परल्लोकना आराधक होय छे शु ? (णो इण्णट्ठे समट्ठे) हे गौतम ! आराधक नथी होता

भावार्थ—ये एवं ग्राम आदिमा उत्पन्न वर्धने पूर्वोक्त रूपे अतावेदी

मूलम्—से जे इमे गामागर जाव संनिवेसेसु मणुया भवति, तं जहा- पगइभद्गा पगइउवसंता पगइ-पतणु—कोह-माण-

टीका—‘से जे इमे’ इत्यादि । ‘से जे इमे’ अथ य इमे वक्ष्यमाणा ‘गामागर जाव संनिवेसेसु मणुया भवति’ ग्रामाकर यात्र-निवेशेषु मनुजा भवन्ति—ग्रामे आकरे नगरे निगमे यात्रत् सन्निवेशे मनुष्या भवन्ति, तान् वर्णयति—‘तं जहा’ तद्यथा ‘पगइभद्गा’ प्रकृतिभद्रका—प्रकृया=स्वभावेन भद्रका=परोपकारपरायणा, ‘पगइउवसंता’ प्रकृत्युपशान्ता=क्रोधोदयाऽभावादुपशान्तिमुपगता, ‘पगइ-पतणु-कोह-माण-माया-लोहा’ प्रकृति-प्रतनु-क्रोध-मान-माया-लोभा-सयपि कपायोदये प्रकृया प्रतनुक्रोधादिभावा, ‘मिउ-मद्दव-सपण्णा’ मृदु-मार्दव-सम्पन्ना—मृदु यन्मार्दव तत् सम्पन्ना=ग्रामा, अय-

स्थिति को अकामनिर्जरा के बल से भोगते हैं वे जीव मरकर व्यन्तर पर्याय से उत्पन्न होते हैं । वहा पर उनकी स्थिति १२ हजार वर्ष की होती है, धृति ऋद्धि आदि समस्त देवोचित गुणों से ये मपन्न रहते है । वे परलोक के आराधक नहीं होते है ॥ सू ९ ॥

‘से जे इमे गामागर जाव’ इत्यादि ।

(से जे इमे) जो जीव (गामागर जाव संनिवेसेसु) पूर्वोक्त ग्राम, आकर से लेकर सन्निवेश आदि स्थानों में (मणुया भवति) मनुष्य होते है और उनमें जो (पगइभद्गा पगइउवसंता पगइ-पतणु-कोह-माण-माया-लोहा) प्रकृति से भद्रक होते हैं, क्रोधादिक कपायों के उदय के अभाव से जिनके परिणाम शक्तियुक्त बने रहते ह, स्वभाव से ही जिनकी क्रोध, मान, माया एव लोभ ये चार कपायें पतली रहा करती है,

विषम स्थितिने अकामनिर्जराणा अलथी लोअवे छे ते एव भरी लछने व्यन्तर-पर्यायथी उत्पन्न थाय छे त्या तेमनी स्थिति १२ आर हजार वर्षनी होय छे धृति, ऋद्धि आदि समस्त देवोचित गुणोधी तेओ सपन्न रहे छे तेओ परलोकना आराधक होला नथी (सू ९)

“से जे इमे गामागर जाव” इत्यादि

(से जे इमे) ने एव (गामागर-जाव-संनिवेसेसु) पूर्वो कहेल गाम, आकरथी लछने सन्निवेश आदि स्थानोभा (मणुया भवति) मनुष्य थाय छे अने तेमा ने (पगइभद्गा पगइउवसंता पगइ-पतणु-कोह-माण-माया-लोहा) प्रकृतिथी भद्रक होय छे, क्रोध आदिक कपायोना उदयना अभावथी नेना इलइये शक्तियुक्त रह्या करे छे, स्वभावथी ल नेना क्रोध, मान, माया

માયા-લોહા મિત્ર-મદ્વ-સંપણાં અહ્લીના વિણીયા અમ્મા-
પિત્ર-સુસ્સૂસગા અમ્માપિર્ડેણં અણઙ્કમણિજ્જવચણા અપ્પિચ્છા
અપ્પારંભા અપ્પપરિગ્ગહા અપ્પેણં આરંભેણં અપ્પેણં સમારંભેણં

ધમહકારજયગીલા હ્યથે, 'અહ્લીના' આલીના = ગુરુમાશ્રિય વર્તનગોલા, 'વિણીયા' વિનીતા = વિનયવન્ત, 'અમ્મા-પિત્ર-સુસ્સૂસગા' અમ્મા-પિત્ર-શુશ્રૂપકા = માતાપિત્રો સેવકા, 'અમ્માપિર્ડેણ અણઙ્કમણિજ્જવચણા' અમ્માપિત્રોરનતિક્રમણીયવચના = માતાપિત્રો-નીતિવચનપરાયણા, 'અપ્પિચ્છા' અપ્પેચ્છા = અપ્પામિલાપવન્ત, 'અપ્પારંભા' અપ્પારમ્મા-અન્ય = સ્વન્ય, આરમ્ભ = વૃથિન્યાયુપમર્દનરૂપો યેપા નેસ્સપારમ્મા, 'અપ્પપરિગ્ગહા' અન્ય પારમ્મહા - અન્ય પરિમહો = ધનધાન્યાદિરૂપો યેપા તે તથા, એતદેવ વાક્યાન્તેરેણાસ્સહ-અપ્પેણ આરંભેણ અપ્પેણ સમારંભેણ' અપ્પેનારમ્મેગ અપ્પેન સમારમ્મેગ-દ્દહાસ્સમ્ભ = પ્રાગિનામુપપાત,

(મિત્ર-મદ્વ-સંપણા) મૃદુમાર્દવ સે જિનકી આત્મા અત્યત વાસિત્ત્વે હતી છે, અહકાર કા સર્વથા જિનમેં અમાવ રહા કરતા છે, (અહ્લીના) ગુરુ કી આજ્ઞાનુસાર જો અપની પ્રકૃતિ કો સુચારુ બનાવે રહા કરતે છે, (વિણીયા) જો પ્રકૃતિ સે હી અત્યત વિનીત હોતે છે, (અમ્મા-પિત્ર-સુસ્સૂસગા) માતાપિતા કે જો સેવા કરતે છે, (અમ્મા-પિર્ડેણ અણઙ્કમણિજ્જવચણા) માતાપિતા કે વચનો કે અનુસાર જો ચલતે છે, (અપ્પિચ્છા) જિનકી ઇચ્છાઈ-આવશ્યકતાઈં બહુત થોડી હોતી છે, (અપ્પારંભા) આરમ્ભ જિનકા અલ્પ હોતા છે, (અપ્પપરિગ્ગહા) ધનધાન્યાદિરૂપ પરિમહ જિનકા અલ્પ હોતા છે, (અપ્પેણ આરંભેણ અપ્પેણ સમારંભેણ અપ્પેણ આરંભસમારંભેણ વિત્તિ કપ્પેમાણા) એવ જો અન્ય આરમ્ભ સે, અલ્પ સમારમ્ભ સે ઓર અન્ય આરમ્ભ-સમારમ્ભ સે આજીવિકા ચલાયા કરતે

તેમજ લોભ એ આરંભ થાયો નબળા રહ્યા કરે છે (મિત્ર-મદ્વ-સંપણા) મૃદુ-માર્દવથી જેમને આત્મા અત્યત વાસિત્ત્વ (પ્રકુલ) હોય છે, અહ કારને જેમનામા સવ થા અભાવ રહ્યા કરે છે (અહ્લીના) ગુરુની આજ્ઞા-અનુસાર જે પોતાની પ્રકૃતિને સુદર બનાવ્યા કરે છે, (વિણીયા) જે પ્રકૃતિથી જ અત્યત વિનીત હોય છે, (અમ્મા-પિત્ર-સુસ્સૂસગા) માતા-પિતાની જે સેવા કરે છે, (અમ્માપિર્ડેણ અણઙ્કમણિજ્જવચણા) માતાપિતાના વચને અનુસાર જે ચાલે છે (વર્તે છે), (અપ્પિચ્છા) જેની ઇચ્છાઓ-આવશ્યકતાઓ બહુ જ થોડી હોય છે, (અપ્પારંભા) આરંભ જેના અલ્પ હોય છે, (અપ્પેણ આરંભેણ અપ્પેણ સમારંભેણ અપ્પેણ આરંભસમારંભેણ વિત્તિ કપ્પેમાણા) તેમજ જે અલ્પ આરંભથી,

अप्पेणं आरंभसमारंभेणं वित्तिं कप्पेमाणा व्हूडं वासाडं आउय पालेंति, पालित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु वाणमंतरेसु, तंचेव सव्वं, णवरं ठिई चउइसवाससहस्साडं ॥ सू० १० ॥

समारम्भस्तु तेषां परितापकरणम् 'अप्पेण आरंभसमारंभेण' अन्पेन आरम्भसमारंभेण—आरम्भश्च समारम्भश्चेति—आरम्भसमारम्भ तेन, अन्पेनारम्भेण अन्पेन समारम्भेण चेत्पर्य, 'वित्तिं कप्पेमाणा' वृत्तिं ऋणयन्त = जीविका कुर्वाणा, 'व्हूडं वासाडं आउय पालेंति' वह्नि वर्षाणि आयूषि=जीवितानि पालयन्ति, 'पालित्ता' पालयित्वा, 'कालमासे कालं किच्चा' कालमासे कालं कृत्वा 'अण्णयरेसु वाणमंतरेसु' अन्यतरेषु व्यन्तरेषु, अतोऽप्ये 'तंचेव सव्वं' तदेव=पूर्ववदेव सर्वं वर्णनं ज्ञेयम्। 'णवरं' नवरं=त्रिंशोपस्तु—'ठिई चउइस—वास—सहस्साडं' स्थितिश्चतुर्दशवर्षसहस्राणि—चतुर्दशवर्षसहस्राणि यावत् स्थिति प्रज्ञा ॥ सू० १० ॥

हैं, ऐसे जीव (वहूड वासाइ आउय पालेंति) बहुत वर्षों तक जीवित रहा करते हैं, (पालित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु वाणमंतरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवति) पश्चात् काल अवसर काल करके किसी एक व्यन्तरो के देवलोक में देवतारूप से उत्पन्न होते हैं। (तंचेव सव्वं) यहाँ पूर्ववर्णित प्रकार के अनुसार स्थिति आदि सब कुछ समझ लेना चाहिये। (णवरं) विशेषता सिर्फ इतनी ही है कि वहाँ पर उनकी स्थिति १२ हजार वर्ष की प्रतिपादित की गई है, और यहाँ पर उनकी (ठिई चउइसवाससहस्साइ) १४ हजार वर्ष की स्थिति जाननी चाहिये ॥ सू० १० ॥

अत्थ समारंभधी अने अत्थ आरंभ—अमारंभधी पोतानी आलुविका अलाव्या करे छे अेवा एव (वहूड वासाइ आउय पालेंति) धणु वरसे सुधी एवता रक्षा करे छे (पालित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु वाणमंतरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवति) पत्ती काल अवसरे काल करीने ठोई अेव व्यन्तरेना देवलोका देवताइये उत्पन्न थाय छे (तंचेव सव्वं) अही अगाठ वलुंन करेला प्रचार अनुसार स्थिति आदि अंधु समल्लेखु लेधअे (णवरं) विशेषता मात्र अेटली ज छे उे त्या तेमनी स्थिति १२ आर हुंनर वरसनी प्रतिपादित करेली छे, अने अही तेमनी (चउइस—वास—सहस्साइ) १४ अौइ हुंनर वरसनी स्थिति समजवी लेधअे, (सू० १०)

માયા-લોહા મિત્ર-મદ્વ-સંપણાં અહ્લીણા વિણીયા અમ્મા-
પિત્ર-સુસ્ત્રુસગા અમ્માપિર્ડેણં અણદ્કમણિજ્જવયણા અપ્પિચ્છા
અપ્પારંભા અપ્પપરિગ્ગહા અપ્પેણં આરંભેણં અપ્પેણં સમારંભેણં

યમહકારજયગ્રીલા इत्यर्थ, 'अह्लीणा' आलीना = गुरुमाश्रित्य वर्तनगाला, 'विणीया' विनीता = विनयवन्त, 'अम्मा-पितृ-सुरमूसगा' अम्मा-पितृ-शुश्रूषका = मातापित्रो सेवका, 'अम्मापिर्दण अणदकमणिज्जवयणा' अम्मापित्रोरनतिऋमणीयवचना = मातापित्रो-नातिवचनपरायणा, 'अपिच्छा' अप्पेच्छा = अप्याभिलाषवन्त, 'अप्पारमा' अप्पारम्भा-अल्प = स्वल्प. आरम्भ = पृथिव्याद्युपमर्दनरूपो येषा तेऽप्पारम्भा, 'अप्पपरिगगहा' अल्प पारग्रहा -अल्प परिग्रहो=धनधान्यादिरूपो येषा ते तथा, एतदच वाक्यान्तरेणाऽऽह-'अप्येण आरभेण अप्येण समारंभेण' अप्पेणारम्भेण अप्पेण समारम्भेण-इहोऽरम्भ = प्रागिनामुपघात,

(મિત્ર-મદ્વ-સંપણા) મૃદુમાર્દવ સે જિનકી આત્મા અત્યત વાસિત્ત્વ હોતી છે, અહકાર કા સર્વથા જિનમે અભાવ રહ્યા કરતા છે, (અહ્લીણા) ગુરુ કી આજ્ઞાનુસાર જો અપની પ્રકૃતિ કો સુચારુ વનાયે રહ્યા કરતે છે, (વિણીયા) જો પ્રકૃતિ સે હી અત્યત વિનીત હોતે છે, (અમ્મા-પિત્ર-સુસ્ત્રુસગા) માતાપિતા કે જો સેવા કરતે છે, (અમ્મા-પિર્દેણ અણદકમણિજ્જવયણા) માતાપિતા કે વચનો કે અનુસાર જો ચલતે છે, (અપ્પિચ્છા) જિનકી ઇચ્છાએ-આવશ્યકતાએ વહુત થોડી હોતી છે, (અપ્પારંભા) આરમ્બ જિનકા અલ્પ હોતા છે, (અપ્પપરિગગહા) ધનધાન્યાદિરૂપ પરિગ્રહ જિનકા અલ્પ હોતા છે, (અપ્પેણ આરભેણ અપ્પેણ સમારભેણ અપ્પેણ આરંભસમારંભેણ ચિત્તિ કપ્પેમાણા) એવ જો અલ્પ આરમ્બ સે, અલ્પ મમારમ્મ સે ઓર અન્ય આરમ્બ-સમારમ્બ ને આજીવિકા ચલાયા કરતે

તેમજ લોક એ આર ભયાયો નબળા રહ્યા કરે છે (મિત્ર-મદ્વ-સંપણા) મૃદુ-માર્દવથી જેમનો આત્મા અત્યત વાસિત્ત્વ (પ્રકુલ) હોય છે, અહ કારને જેમનામાં સર્વથા અભાવ રહ્યા કરે છે (અહ્લીણા) ગુરુની આજ્ઞા-અનુસાર જે પોતાની પ્રકૃતિને સુદર બનાવ્યા કરે છે, (વિણીયા) જે પ્રકૃતિથી જ અત્યત વિનીત હોય છે, (અમ્મા-પિત્ર-સુસ્ત્રુસગા) માતા-પિતાની જે સેવા કરે છે, (અમ્માપિર્દેણ અણદકમણિજ્જવયણા) માતાપિતાના વચનો અનુસાર જે ચાલે છે (વર્તે છે), (અપ્પિચ્છા) જેની ઇચ્છાઓ-આવશ્યકતાઓ બહુ જ થોડી હોય છે, (અપ્પારમા) આરમ્બ જેના અલ્પ હોય છે, (અપ્પેણ આરભેણ અપ્પેણ સમાર ભેણ અપ્પેણ આરમ્મસમારભેણ ચિત્તિ કપ્પેમાણા) તેમજ જે અલ્પ આરમ્બથી,

पियरक्खियाओ भायरक्खियाओ पडरक्खियाओ कुलघररक्खि-
याओ ससुरकुलरक्खियाओ परूढ-णह-केस-कम्बरुमाओ वव-
गय-धूव-पुप्फ-गंध-मल्ला-लंकाराओ अण्हाणग-सेय-जल्ल-मल्ल-

भ्रातरक्षिता, 'पडरक्खियाओ' पतिरक्षिता, 'कुलघररक्खियाओ' कुलगृहरक्षिता - कुल-
गृहे=पितृगृह रक्षिता - पितृवशोद्धवै पालिता इत्यर्थ, 'ससुरकुलरक्खियाओ' श्वशुरकुल-
रक्षिता, 'परूढ-णह-केस-कम्बरुमाओ' प्ररूढ-नर-केस-कक्षरोमाण - प्ररूढानि=
मजातानि नखकेसकक्षरोमाणियासा तास्तथा, 'ववगय-धूव-पुप्फ-गय-मल्ला-लंकाराओ'
व्यपगत-धूप-पुष्प-गन्ध - मान्याऽ - लङ्गाग - व्यपगता = यक्ता धूपपुष्पगन्धमान्यानाम-
लङ्गाग यामिस्तास्तथा, 'अण्हाणग-सेय-जल्ल-मल्ल-पक-परितावियाओ' अत्नानक-

हुई अपने जीव की रक्षा करती रहती हैं, (भायरक्खियाओ) कितनीक अपने भाइयों से
सुरक्षित रहा करती है, (पडरक्खियाओ) कितनीक अपने २ पतिद्वारा सुरक्षित रहा करती
हैं, (कुलघररक्खियाओ) कितनीक कुलगृह में पिता के वगजों द्वारा पाली-पोपी जाकर
सुरक्षित रहा करती हैं, (ससुर-कुल-रक्खियाओ) कितनीक ससुरपक्ष के लोगों द्वारा
सुरक्षित की जाती है, (परूढ-णह-केस-कम्बरुमाओ) कितनीक ऐसी होती हैं कि
जिनके केश, कायरा के बाल एव नख बड़े रहा करते हे, (ववगय धूव-पुप्फ-गय-मल्ला-
लंकाराओ) कितनीक एमी होती हैं जो धूप-खूब-तूटार तैल आदि के लेने से तथा पुष्पों
एव सुगंधित पुष्पों की माल्यरूप अलंकारों से सदा परित्यक्त रहा करती हैं, (अण्हाणग-
सेय-जल्ल-मल्ल-पक-परितावियाओ) कितनीक ऐसी होती हैं जो स्नान नहीं करने से

लीड पितायी सुगंधित रहेता पोताना जीवनी रक्षा करती होय छे, (भायर-
क्खियाओ) डेटलीड पोताना लाभओथी सुगंधित रक्षा करे छे, (पडर-
क्खियाओ) डेटलीड पोतपोताना पति द्वारा सुरक्षित रक्षा करे छे, (कुलघर-
रक्खियाओ) डेटलीड कुलगृहमा पिताना वशजे द्वारा पालन-पोषण लई
सुरक्षित रक्षा करे छे, (ससुरकुलरक्खियाओ) डेटलीड सासुर पक्षना लोक
द्वारा सुरक्षित कराय छे, (परूढ-णह-केस-कम्बरुमाओ) डेटलीड ओपी होय
छे के जेना नख, केश, तेमज काभरी (अंगल)ना वण, वधता जता होय छे,
(ववगय-धूव-पुप्फ-गय-मल्ला-लंकाराओ) डेटलीड ओपी होय छे के जे धूप-
सुगंधित तेल आदिना दोषथी तथा पुष्पों तेमज सुगंधित पुष्पोंनी मालाङ्क
अलंकारथी सदा परित्यक्त रक्षा करे छे, (अण्हाणग-सेय-जल्ल-मल्ल-पक-

मूलम्—से जाओ इमाओ गामागर जाव सनिवेशेसु
इत्थियाओ भवन्ति, तं जहा—अंतो अंतेउरियाओ गयपइयाओ
मयपइयाओ वालविहवाओ छड्डियल्लियाओ माइरक्खियाओ

टीका—‘से जाओ इमाओ’ इत्यादि । ‘से जाओ इमाओ’ अथ वा इमा—इ-
स्य ‘गामागर जाव सनिवेशेसु इत्थियाओ भवति’ ग्रामाऽऽकर यावत् मनिवेशेषु खियो
भवन्ति, ‘तं जहा’ तथथा—‘अतो अंतेउरियाओ’ अन्तरन्त पुरिका =अन्त पुरान्तर्वर्तिन्त्य,
‘गयपइयाओ’ गतपत्तिका—गता =कापि प्रोपिता पतयो यासा तास्तथा, ‘मयपइयाओ’
मृतपत्तिका—मृता पतयो यासा तास्तथा, विधवा इत्यर्थ, ‘वालविहवाओ’ बालविधवा—
वालाश्वाम् विधवा—बाल्ये वैधव्य गता, ‘छड्डियल्लियाओ’ छर्दिता =पत्यादिभि परित्यक्ता,
‘माइरक्खियाओ’ मातृरक्षिता =अपररक्षकामावाञ्जन्या रक्षिता, मातृकृतरक्षया शीलरक्षण-
कारिका इत्यर्थ, एवमग्रेऽपि बोध्यम्, ‘पियरक्खियाओ’ पितृरक्षिता, ‘भायरक्खियाओ’

‘से जाओ इमाओ’ इत्यादि ।

(से जाओ इमाओ) जो ये जीव (गामागर जाव सनिवेशेसु) ग्राम आकर
आदि से लेकर सनिवेशतक के स्थानों में खीपर्याय से उत्पन्न होते हैं, जैसे कि उनमें कित-
नीक खिया तो (अतो अंतेउरियाओ) राजा के अंत पुर की रानिया होती हैं, कितनीक
(गयपइयाओ) प्रोपितभर्तृका होती है, जिनके पति प्रवासी अर्थात् परदेश गये हों उनको
प्रोपितभर्तृका कहते हैं, कितनीक (मयपइयाओ) विधवा होती हैं, (वालविहवाओ) बाल-
विधवा होती है, (छड्डियल्लियाओ) कितनीक पतिद्वारा परित्यक्त होती है, कितनीक (माइ-
रक्खियाओ) मातृरक्षिता होती है, (पियरक्खियाओ) कितनीक पिता से सुरक्षित होती

‘से जाओ इमाओ’ इत्यादि

(से जाओ इमाओ) जे आ एव (गामागर जाव सनिवेशेसु) ग्राम
आकर आदिथी लधने सनिवेश सुधीना स्थानोभा श्रीपर्यायधी उत्पन्न
थाय छे, जेभके तेओभा डेटलीक श्रीओ तो (अतो अंतेउरियाओ) राजना
अत पुरनी राणीओ डोय छे, डेटलीक (गयपइयाओ) प्रोपितभर्तृका डोय छे,
(जेना पति प्रवासी अर्थात् परदेश गया डोय तेभने प्रोपितभर्तृका छे
छे), डेटलीक (मयपइयाओ) विधवा डोय छे, डेटलीक (वालविहवाओ)
वाल-विधवा डोय छे, (छड्डियल्लियाओ) डेटलीक पतिद्वारा परित्यक्ता डोय
छे, डेटलीक (माइरक्खियाओ) मातृरक्षिता डोय छे, (पियरक्खियाओ) डेट

रंभेणं अप्पेणं आरंभसमारंभेणं वित्तिं कप्पेमाणीओ अकामवंभ-
चेरवासेणं तामेव पइसेज्जं णाडक्कमंति । ताओ णं इत्थियाओ एया-
रूवेणं विहारेणं विहरमाणीओ वहूडं वासाडं, सेसं तं चेव, जाव
चउसट्ठि वाससहस्साडं ठिडं पणत्ता ॥ सू० ११ ॥

समारम्भेण अप्पेण आरम्भसमारम्भेण, 'वित्तिं कप्पेमाणीओ' वृत्ति कल्पयत्य - वृत्ति=जीविका
जुर्गाणा, अकामवन्भचर्यवासेन-अकामाना=निर्जराधनपेक्षाणा वन्भचर्येवास्तेन 'तामेव पइसेज्ज'
तामेव पतिश्रया-पया सह सेविता श्रया-पतिश्रया 'णाडक्कमति' नातिक्रामन्ति, परपुरुष-
परिहारेण सर्वथा पतिव्रतधर्मपालिका इत्यर्थ, 'ताओ ण इत्थियाओ एयारूवेण विहारेण
विहरमाणीओ' ता खलु म्रिय एतद्रूपेण विहारेण विहरन्त्य, 'वहूड वासाड आउय पालेत्ति'
वह्निवर्षाणि आयुष्य पालयन्ति, पालयिवा, शेष तदेव यावत्-अत्र यावच्छब्देनेद दृश्यम् कालमासे
काल कृत्वाऽन्यतमेपु व्यन्तरेपु देवलोकेषु देववेनोपपात प्राप्ता भवन्ति, तत्र-देवलोके तासा

अन्य समारभ से, और अन्य आरम्भ-समारभसे अपनी आर्जाविका चलाती है, (अकाम-वंभ-
चेर-वासेणं तामेव पइसेज्ज णाडक्कमति) और परवगता मे वन्भचर्य का पालन करती हुई
अपने पति की श्रया का उल्लघन नहीं करती हे-पातिव्रत्य धर्म के पालन मे निरत रहा करती
हैं, इस प्रकार जो स्त्रिया अपने जीवन को व्यतीत करती है, (ताओ ण इत्थियाओ एया-
रूवेण विहारेण विहरमाणीओ वहूड वासाड आउय पालेत्ति) वे स्त्रिया इस प्रकार की
अपनी नैतिक प्रवृत्ति से युक्त बनी रह कर बहुत वर्षों की आयु पावती है, (सेस त चेव)
एव जय उनका मरने का अवसर आ जाता है तब वे उस अवसर मे मर कर अन्यतम व्य-

समारभेण अप्पेण आरंभसमारभेण वित्तिं कप्पेमाणीओ) तेभ्यो अत्थ आगलथी,
अत्थ अमारलथी अने अत्थ आरल-अभागलथी पोतानी आलुपिका यत्तावे
छे (अकामवंभचेरवासेण तामेव पइसेज्ज णाडक्कमति) अने परवशताथी
प्रश्नचर्यनु पालन करती थकी पोताना पतिनी श्रय्यानु उल्लघन करती नथी-
पातिव्रत्य धर्मेना पाणनमा निरत र्हा करे छे आ प्रदारे ने श्रीभ्यो पोताना
एवने व्यतीत करे छे (ताओ ण इत्थियाओ एयारूवेण विहारेण विहरमाणीओ
वहूड वासाड आउय पालेत्ति) ते श्रीभ्यो आ प्रकारनी पोतानी नैतिक प्रवृत्ति
करती रह्हीने धष्ठा पर्योनी आयु लोगवे ने (सेस त चेव) तेभ्य न्याये
तेभना भरवानो अवसर आवे छे त्यारे ते अवसरमा भगीने धीन व्यतराना

પંક-પરિતાવિયાઓ વ્રગય-શીર-દહિ-ળવળીય-સપ્પિ-તેહ-
ગુલ-લોળ-મહુ-મજ્જ-મસ-પરિચત્ત-કયા-હારાઓ અપ્પિચ્છાઓ
અપ્પારંભાઓ અપ્પપરિગ્ગહાઓ અપ્પેણં આરંભેણં અપ્પેણં સમા-

સ્વેદ-જહ્લ-મલ્લ-પદ્મ-પરિતાપિતા -અસ્નાનકેન=સ્નાનાઽભાવેન હનુના સ્વેદજહ્લમલ્લપદ્મ, સ્વેદ =
પ્રસ્વેદ, જહ્લ =શુષ્ક પ્રસ્વેદ, મલ્લ =રજોમાત્ર કઠિનીભૂતમ્, પદ્મ =આર્દ્રાભૂત રજ', તૈ
પરિતાપિતા =કેળિતા -મમૃતા હૃયર્થ, 'વ્રગય-શીર-દહિ-ળવળીય-સપ્પિ-તેહ-ગુલ-
લોળ-મહુ-મજ્જ-મસ-પરિચત્ત-કયા-હારાઓ' વ્યાપગત-શીર-દધિ-નવનીત-સર્પિ-
ત્તૈલ-ગુહ-લવળ-મધુ-મધ-માસ-પરિચ્યક્ત-કૃતાઽહારા -વ્યપગતાનિ શીરદધિનવનીત-
સર્પાપિ યસ્માત્ સ વ્યપગતશીરદધિનવનીતસર્પિ, તૈલગુહલવળમધુમધમાસૈ પરિચ્યક્ત, તત
પદ્મદ્રવ્યસ્ય કર્મધારય, શીરાદિમાસપર્યન્તરહિત હૃયર્થ, તાદૃશ કૃત =સેવિત આહારો યામિ-
સ્તાસ્તથા, 'અપ્પિચ્છાઓ' અન્પેચ્છા, 'અપ્પારંભાઓ' અન્પારમ્મા -અન્પ આરમ્ભ =પૃથિ-
વ્યાધુપમર્દનવ્યાપારો યાસા તાસ્તથા, 'અપ્પપરિગ્ગહાઓ' અન્પપરિગ્ગહા -અન્પયનધાન્યમગ્રહા,
'અપ્પેણ આરંભેણ અપ્પેણ સમારંભેણ અપ્પેણ આરંભસમારંભેણ' અન્પેનાઽસ્મંભેણ અન્પેન

પસીના સે લથપથ રહા કરતી હે, એવ પશીના કે શુષ્ક હો જાને સે ઉસ પર બેઠી હુઈ ધૂલિ,
કાલે કઠિન મૈલ કે રૂપ મેં પરિણમિત હોરુર ઉનકે શરીર કો મલિન બનાયે રહતી હૈ।
(વ્રગય-શીર-દહિ-ળવળીય-સપ્પિ-તેહ-ગુલ-લોળ-મહુ-મજ્જ-મસ-પરિચત્ત-
કયા-હારાઓ) કિતનીકુ એસી હોતી હૈં કિ જો દૂધ, દહી, મક્કન, સર્પિ-ધૂત, તૈલ, ગુહ,
નમક, મધુ, મધ, એવ માસ સે વર્જિત આહાર ક્રિયા કરતી હૈં, (અપ્પિચ્છાઓ) ઓર જિનકી
ઈચ્છાઈ સ્વભાવત અલ્પ હુઆ કરતી હે, (અપ્પારંભાઓ અપ્પપરિગ્ગહાઓ અપ્પેણ આરં-
ભેણં અપ્પેણ સમારંભેણ અપ્પેણ આરંભસમારંભેણ વિત્તિ કપ્પેમાળીઓ) વે અલ્પ આરંભ સે,

પરિતાવિયાઓ) ડેટલીઠ એવી હોય છે કે જે સ્નાન ન કરવાથી પસીનાથી
લથપથ રહ્યા કરે છે, તેમજ પશીને સુકાઈ જવાથી તેના પર ઊડીને પડેલી
ધૂળ કાળા અને કઠણ મેલના રૂપે પરિણામ પામીને તેમના શરીરને મલિન
બનાવ્યા કરે છે (વ્રગય-શીર-દહિ-ળવળીય-સપ્પિ-તેહ-ગુલ-લોળ-મહુ-
મજ્જ-મસ-પરિચત્ત-કયા-હારાઓ) ડેટલીક એવી હોય છે કે જે દૂધ, દહી,
માખણ, સર્પિ-ધી, તેલ, ગોળ, મીઠું, મધ, મધ, તેમજ માસથી વર્જિત
આહાર ત્યાં કરે છે, (અપ્પિચ્છાઓ) અને જેમની ઈચ્છાઓ સ્વભાવથી જ
અલ્પ રહ્યા કરે છે (અપ્પારંભાઓ અપ્પપરિગ્ગહાઓ અપ્પેણ આરંભેણ અપ્પેણ

गोयमा गोव्वडया गिहिधम्मा धम्मचितगा अविरुद्ध-विरुद्ध-चुड्ड-

पइद्दयागि दक च सम भोचने येपा ते दकमममा, 'दगएकारसमा' दकैकादगा—ओद-
नादीनि दगदयागि दकन्वैकादग पूरगाय भोचने येपा ते दकैकादगा, 'गोयमा' गौतमा -
वृषम पुग्स्सुय तत्तौडा दग्गिवा येऽन्न याचन्ते, तेन च जीवन निवाहयन्ति त इयर्थ ।
'गोव्वडया' गोत्रतिका—गोत्रमस्ति येपा ते गोत्रतिका, ते हि गोषु ग्रामान्निर्गच्छन्तीषु निर्ग-
च्छन्ति, चरन्तीषु चरन्ति, पिमन्तीषु पिमन्ति, आयान्तीषु आयान्ति, शयानामु च शंते, उक्ख-

“गावीहिं सम निग्गमपवेससयणासणाड पकरेति ।

भुजति जहा गावी तिरिक्खवास विहाविता ॥ १ ॥”

तथा सातवा पानी हो, (दगएकारसमा) दस द्रव्य दाल भात आदि अन्य हों, एव ११ वा
पानी हो, (गोयमा) तथा जो बैल को आगे कर के जनता को उमकां क्रीडा दिक्वाकर उससे
अन्न नी याचना कर अपना जीवन निर्वाह करने वाले हों, (गोत्रतिका) 'गोत्रती हों, (गिहि-

(१) गोत्रती पुरुष, जब गाँव गाँव से बाहर निकलती है तब अपने घर से बाहर
निकलते हैं, जब वे चरती हैं तब वे भोजन करते हैं, जब वे पानी पीती हैं तब ही ये पानी
पीने हैं। जब ये घर आती हैं तब ये भी अपने घर आते हैं। और जब ये सोती हैं तब ये
भी सो जाते हैं।

“गावीहिं सम निग्गमपवेससयणासणाड पकरेति । भुजति जहा गावी तिरिक्ख-
वाम विहाविता ॥ १ ॥

(दगमत्तमा) छ द्रव्य (अन्न)—बोभा हाण आदि होय तथा सातमु पाणी
होय, (दगएकारसमा) दस द्रव्य—हाण लात आदि अन्न होय तेम ११ मु
पाणी होय, (गोयमा) तथा वे भणहोने आगण लापीने बोडोने तेनी कीडा
हेभाडीने तेमनी पायेथी अन्न भागी पोतानु एवन निर्वाह करवावाणा
होय, (गोत्रतिका) 'गोत्रती होय, (गिहिधम्मा) गृहस्थ धर्मने कल्याणुकारक

(१) गोत्रती पुरुष, न्यारे गाये गाभथी अहार नीकणे हे त्यारे पोताना
घेरथी अहार नीकणे छे न्यारे तेओ थरे छे त्यारे ते सोवन करे छे,
न्यारे तेओ पाणी पीये छे त्यारे ते पाणी पीये छे न्यारे तेओ
घेर आवे छे त्यारे ते पणु घेर आवे छे, अने न्यारे तेओ सुवे छे
त्यारे ते पणु सुव व्य छे

“गावीहिं सम निग्गमपवेससयणासणाड पकरेति । भुजति जहा गावी तिरि-
क्खवास विहाविता” ॥ १ ॥

मूलम्—से जे इमे गामागर जाव सन्निवेशेसु मणुया भवन्ति, तं जहा—दगविइया दगतइया दगसत्तमा दगएक्कारसमा

गतिस्तासा स्थितिस्तासामुपपात प्रजम, तासा रलु हे भदन्त ! देवच प्रामाना क्रियन्त काले स्थिति प्रजता ? इति प्रश्ने भगवानाह—‘गोयमा !’ हे गौतम ! इति । ‘चउसट्ठि वाससहस्साइ ठिई पण्णत्ता’ चतु पाँटि वर्षसहस्राणि स्थिति प्रजता ॥ सू० ११ ॥

टीका—‘से जे इमे’ इत्यादि । ‘से जे इमे’ अथ य इमे—दृग्गा, ‘गामागर-जाव सन्निवेशेसु मणुया भवन्ति’ ग्रामाऽऽकर यावत् सन्निवेशेषु-ग्रामाऽऽकर-नगर-निगम-राजधानी-खेट-कर्कट-पट्टन-मडम्न-द्रोणमुखा-ऽऽश्रम-मनाथ-सन्निवेशेषु प्रागुच्यारयात स्वरूपेषु मनुजा भवन्ति, ‘त जहा’ तद्यथा—‘दगविइया’ दकद्वितीया—ओदनापेक्षया दकम्=उदक द्वितीय भोजने येषां ते दकद्वितीया, ‘दगतइया’ दकवृत्तीया—ओदनमूपरूपद्रव्य-द्वयाऽपेक्षया दकम्=उदक वृत्तीय येषां ते दकवृत्तीया, ‘दगसत्तमा’ दकसत्तमा—ओदनादीनि

न्तरो के देवलोक मे देवता की पर्याय से उत्पन्न होती है । वहाँ पर उनकी गति, वहाँ पर उनकी स्थिति एवं वहाँ पर उनका उपपान होता है । हे भदन्त ! वहाँ पर उनकी स्थिति कितनी है ? हे गौतम ! (चउसट्ठि वाससहस्साइ ठिई पण्णत्ता) वहा उनकी स्थिति ६४ हजार वर्ष की है ॥ सू० ११ ॥

‘से जे इमे गामागर जाव’ इत्यादि ।

(से जे इमे गामागर जाव सन्निवेशेसु मणुया भवन्ति) ये जो इन ग्राम आकर आदि पूर्वोक्त स्थानों में इस प्रकार के मनुष्य होते हैं, (त जहा) जैसे कि (दगविइया) जिनके आहार में अन्न एवं द्वितीय पानी ये दो ही द्रव्य हों, (दगतइया) अन्न—चावल, दाल एवं वृत्तीय पानी ये तीन द्रव्य हों, (दगसत्तमा) छह द्रव्य अन्न—चावल—दाल आदि हों

देवलोकमा देवतानी पर्यायधी उत्पन्न थाय छे अही ञ तेमनी गति, अही ञ तेमनी स्थिति तेमञ्च अही ञ तेमनेो उपपात थाय छे हे भदन्त ! त्या तेमनी स्थिति डेटली छेय छे ? हे गौतम ! (चउसट्ठि वाससहस्साइ ठिई पण्णत्ता) त्या तेमनी स्थिति ६४ चासठ डन्तर वरसनी छे (सू० ११)

‘से जे इमे गामागर जाव’ इत्यादि

(से जे इमे गामागर जाव सन्निवेशेसु मणुया भवन्ति) जेयो आ गाम, आकर आदि उपर डहेला स्थानोमा आ प्रकारे मनुष्य थाय छे, (त जहा) जेभके (दगविइया) जेना आहारमा अन्न तेमञ्च पीणु पाणी ये जे ञ द्रव्य—पदार्थ छेय, (दगतइया) अन्न—चावा, दाल, तेमञ्च त्रीणु पानी त्रयु द्रव्य छेय,

फाणियं महुं मज्जं मंसं. णो अण्णत्थ एक्काए सरिसवविगईए,
ते णं मणुया अप्पिच्छा, त चेव मच्चं, णवरं चउरासीडं वाससह-
स्साडं ठिडं पण्णत्ता ॥ सू० १२ ॥

ता इमा नग्गमपिड्डनय प्रत्थ्यन्ते—'त जहा' तयथा—'खीर दहिं णवणीय सर्पि तेळ फाणिय महुं मज्ज मास' खीर दधि नवनीत सर्पि तैल फाणित मज्ज मध मामम-त्त-
नवनीत='मकग्न' इति प्रमिद्ध, फाणित=गुड, अन्यानि प्रमिद्धानि, आहतुं न कप्पन्ते
इत्यवय । 'णो अण्णत्थ एक्काए सरिसवविगईए' नो अन्यत्रैकस्या मार्षपिड्डिते-
मार्षपितैलरूपामेका विकृति वर्जयिष्या अन्या उक्ता विकृतयो न कप्पन्तेऽस्यप्रवृत्तुमिति शेष ।
'ते ण मणुया अप्पिच्छा' ते गृह्य मनुजा अप्पेच्छा, 'सेम त चेव' शेष तदेव=
अवशिष्ट मरुं पूर्वपदेन बोध्यम् । 'णवरं नग्ग=विशेषस्तु—'चउरासीडं वाससहस्साडं ठिडं
पण्णत्ता' चतुर्गतीर्षसहस्राणि स्थिति प्रज्ञप्ता—व्यन्तरेषु देववेनोपज्ञाना तेषा तत्रावस्थान
चतुर्गतीर्षसहस्राणि यावन् ॥ सू० १२ ॥

गय) गाने योग्य नहीं हैं । वे विकृतिया ये हैं—(खीर दहिं णवणीय सर्पि तेळ फाणिय
महुं मज्ज मास) खीर, दधि, नवनीत, सर्पि, तैल, फाणित, मज्ज, मध, एव माम । गुड का
नाम फाणित है । नवनीत नाम मकग्न का है । (णो अण्णत्थ एक्काए सरिसवविगईए)
एक मग्गों के तैलरूप विकृति का परिहार नहा बतलाया गया है । नग्गरूप विकृति
का परिहार कर्न वाले व्यक्ति मग्गा का तैल ग्या सकते हैं । (ते ण मणुया अप्पिच्छा,
त चेव मच्चं, णवरं चउरासीडं वाससहस्साडं ठिडं पण्णत्ता) ये मनुष्य अप्प-
च्छापाठे होते हैं । अवशिष्ट ममस्त पूर्ण की तरह यहा जान लना चाहिये । विशेषता

नथी ते विट्ठित्थो आ छे—(खीर दहिं णवणीय सर्पि तेळ फाणिय महुं
मज्ज मास) खीर (दध), दही, नवनीत, सर्पि—(धृत), तैल, द्राक्षित,
मध, भध, तेभज्ज भाय गोणतु नाम द्राक्षित छे नवनीत अष्टद्वे
भाणतु (णो अण्णत्थ एक्काए सरिसवविगईए) अष्ट मग्गवन्ता तेलउप विट्ठ-
तिना परिहार नथी अतात्थो नवग्गउप विट्ठतिनो परिहार उवावाणा भाणुम
मरनवतु तेल भाध थडे छे (ते ण मणुया अप्पिच्छा, त चेव मच्चं, णवरं
चउरासीडं वाससहस्साडं ठिडं पण्णत्ता) आ मनुष्यो अल्प-उवावाणा छेय
छे आदीनु अधु पूर्व उवा प्रभाणु तान्णी देवु जेय्थे विगेषभा विगेषता

सावग-प्पमितयो, तेसिं ण मणुयाणं णो कप्पति इमाओ नव रस-
विगईओ आहारेत्तए, तं जहा-खीरं दहिं णवणीयं सप्पि तेहं

छाया—गोभि सम निर्गमप्रवेगभयनाऽऽगनादि प्रकुर्वन्ति ।

भुञ्जत यथा गावस्तिर्यग्वाम विभावयन्त ॥ १ ॥ इति ।

‘गिहियम्मा’ गृहियमांग - ‘गृह्यधर्म एव श्रेयस्कर’ - इति मत्वा दानान्धिमाराधका
‘धम्मचित्ता’ धर्मचित्तका = धर्मशास्त्रपाठका, ‘अविरुद्ध-विरुद्ध-बुद्धसावग-प्पमि-
तयो’ अविरुद्ध-विरुद्ध वृद्धश्रावक-प्रभृतय, अविरुद्धा धैनयिका, उक्तव—

“अविरुद्धो विणयकरो, देवाइण पराए भत्तीए ।

जह वेसियायणसुओ, एव अन्ने वि नायव्वा ॥ १ ॥”

छाया—अविरुद्धो विनयकरो, देवादाना परया भक्त्या ।

यथा वैश्यायनमुत, एवमन्येऽपि ज्ञातव्या ॥ १ ॥ इति ।

विरुद्धा = अक्रियावादिन, आत्माद्यनम्युपगमेन वाह्याभ्यन्तरविरुद्धत्वात्, वृद्ध-
श्रावका = ब्राह्मणा, एते प्रभृतिरान्धिर्येपा ते तथा । ‘तेसिं ण मणुयाण णो कप्पति इमाओ
नव रसविगईओ आहारेत्तए’ तेषा खलु मनुजाना नो कप्पन्ते इमा नव रसविकृतीराहर्तुम्,
धम्मा) गृह्यधर्म को श्रेयस्कर मानकर दानान्धिक धर्म के आराधक हों, (धम्मचित्ता)
धर्मशास्त्र के पाठक हों, (अविरुद्ध-विरुद्ध-बुद्धसावग-प्पमितयो) ‘अविरुद्ध-धैनयिक
हों, विरुद्ध-अक्रियावादी हों-आमादिक पदार्थों के नहीं मानने से बाह्य एव आभ्यन्तर
क्रियाओं के विरोधी हों वृद्धश्रावक हों-ब्राह्मण हों-इत्यादि । (तेसिं ण मणुयाण नो कप्पति
इमाओ नव रसविगईओ आहारेत्तए) इन समस्त जनों को ये नवरस विकृतिया (नौ वि-

(१) अविरुद्धो विणयकरो देवाइण पराए भत्ताए । जह वेसियायणसुओ एव अन्ने
वि नायव्वा ॥ १ ॥

मानीने दान-आदिक धर्मना आराधक होय, (धम्मचित्ता) धर्मशास्त्रना पाठ
करनारा होय, (अविरुद्ध-विरुद्ध-बुद्धसावग-प्पमितयो) ‘अविरुद्ध-धैन-
यिक होय विरुद्ध-अक्रियावादी होय-आत्मा-आदिक पदार्थोंने न मानवाथी
बाह्य तेमन्त्र अभ्यन्तर क्रियाओंना विरोधी होय, वृद्धश्रावक होय-ब्राह्मण
होय-इत्यादि (तेसिं णे मणुयाण णो कप्पति इमाओ नव रसविगईओ आहारे-
त्तए) आ समस्त लोकोंने ये नवरसविकृतियों (नौ विगयों) भावा येव्य

(१) अविरुद्धो विणयकरो देवाइण पराए भत्तीए । जह वेसियायणसुओ एव
अन्ने वि नायव्वा ॥ १ ॥

दक्षिणकूलगा उत्तरकूलगा संखधमगा कूलधमगा मियलुद्धगा
हृत्थितावसा उद्दगा दिसापोकृषणो वक्कवासिणो विलवासिणो

एव ये क्षण तिष्ठन्ति ते, 'सपक्खालगा' नप्रक्षालका—ये मृत्तिकादिघर्षणपूर्वक्रमज्ञानि प्रक्षालयन्ति ते सप्रक्षालका, 'दक्षिणकूलगा' दक्षिणकूलका—ये गङ्गाया पूर्वाभि-
मुगमनशीलाया दक्षिणतट एव वसन्ति ते, 'उत्तरकूलगा' उत्तरकूलका—उत्तरतट एव
ये वसन्ति ते, 'सखधमगा' गङ्गध्मायका = गङ्गवादका—गङ्ग वादयित्वा ये भुञ्जते ते
इत्यर्थ, 'कूलधमगा' कूलध्मायका—ये कूले स्थित्वा गन्ध कृत्वा भुञ्जते ते, 'मिय-
लुद्धगा' मृगलुन्धका—व्याधयन्मृगमामजीविन, 'हृत्थितावसा' हस्तितापसा—ये हस्तिन
मारयित्वा तेनैव बहुकाल भोजनतो यापयन्ति ते, 'उद्दगा' उद्दण्डका—उत्=ऊर्ध्वं दण्डा
येषां ते उद्दण्डका, दण्डमूर्ध्वं कृत्वा ये सञ्चरन्ति ते इत्यर्थ, 'दिसापोकृषणो' दिशा-
प्रोक्षिण = उदकेन दिश प्रोक्ष्य ये फलपुष्पादि समुच्चिन्वन्ति ते, 'वक्कवासिणो' वल्क-
वासस = वल्कानि = नरत्पत्र एव वासासि येषां ते तथा, 'विलवासिणो' विलवासिन =

डुनका लगाकर स्नान करनेवाले, (निमज्जगा) पानी में कुछ देर तक डूबकर स्नान करने
वाले, (संपक्खालगा) मिट्टी आदि से अग को घर्षण कर स्नान करने वाले, (दक्षिण-
कूलगा) गंगा के दक्षिण तट पर बसने वाले, (उत्तरकूलगा) गंगा के उत्तर तट पर बसने
वाले, (सखधमगा) शरों को बजाकर भोजन करने वाले, (कूलधमगा) नदी के तट पर
बैठ कर गन्ध कर के भोजन करने वाले, (मियलुद्धगा) व्याधोकी तरह मृग के मांस को
खाने वाले, (हृत्थितावसा) हाथी को मारकर उसके मांस का भोजन करने वाले, (उद्दगा)
टंडे को ऊचा करके फिरने वाले, (दिसापोकृषणो) दिशाओं को जल से सिंचन करने
वाले, (वक्कवासिणो) वृक्षा का छाल को पहिरने वाले, (विलवासिणो) भूमिगृह में निवास

स्नान करवाणा, (निमज्जगा) पाष्ठीभा थोड़ीवार सुधी डूबीने स्नान करवावाणा,
(संपक्खालगा) भाटी आदि वडे अग्ने घसीने स्नान करवा वाणा, (दक्षिण-
कूलगा) गंगाना दक्षिण तट उपर बसवावाणा, (उत्तरकूलगा) गंगाना उत्तर
तट उपर बसवावाणा, (सखधमगा) शंख वगाडीने लोखन करवावाणा, (कूल-
धमगा) नदीना तट उपर जेमीने उद्द करता करता (जोखता जोखता) लोखन
करवावाणा, (मियलुद्धगा) शिकारीनी पेटे मृगनु मांस खावावाणा,
(हृत्थितावसा) हाथीने भागीने तेना माननु लोखन करवावाणा, (उद्दगा) उडाने
उथो वरी करवावाणा, (दिसापोकृषणो) दिशाओभा पाष्ठी छोटवा वाणा,
(वक्कवासिणो) वृक्षनी छाल पहरेवा वाणा, (विलवासिणो) भूमिगृहमा

મૂલમ્—સે જે ઇમે ગંગાકૂલગા વાણપત્થા તાવસા ભવતિ, તં જહા—હોત્તિયા પોત્તિયા કોત્તિયા જણ્ણઈ સહ્હઈ થાલઈ હુંવડદા દંતુક્વલિયા ઉમ્મજ્જગા સંમજ્જગા નિમજ્જગા સપક્કવાલગા

ટીકા—‘સે જે ઇમે’ इत्यादि । ‘સે જે ઇમે’ અથ યે ઇમે ‘ગંગાકૂલગા’ ગંગા કૂલકા =ગંગાતટાશ્રિતા ‘વાણપત્થા’ વાનપ્રસ્થા =વાનપ્રસ્થાશ્રમવર્તિન ‘તાવસા ભવતિ’ તાપ-સા ભવન્તિ ‘ત જહા’ તથા—‘હોત્તિયા’ હોત્રિકા =આગ્નિહોત્રિકા, ‘પોત્તિયા’ પોત્રિકા = વલ્લધારકા, ‘કોત્તિયા’ કૌત્રિકા =ભૂમિશાયિન, ‘જણ્ણઈ’ યજ્ઞક્રિનઃ=યજ્ઞકારકા, ‘સહ્હઈ’ શ્રાદ્ધક્રિન =શ્રાદ્ધકારકા, ‘થાલઈ’ સ્થાલક્રિન =ભોજનપાત્રધારકા, ‘હુંવડદા’ કુણ્ડિકા-ધારિણા, ‘હુંવડદા’ હિતિ દેશીય શબ્દ, ‘દંતુક્વલિયા’ દન્તોદ્ગલિકા =ફળભોજિન, ‘ઉમ્મજ્જગા’ ઉન્મજ્જકા —ઉન્મજ્જનમાત્રેણ=જલોપરિ તરણમાત્રેણ યે સ્નાન્તિ તે, ‘સમ્મજ્જગા’ સમ જ્જકા -ઉન્મજ્જનસ્થૈવાસકૃત્ કરણેન યે સ્નાન્તિ તે, ‘નિમજ્જગા’ નિમજ્જકા —સ્નાનાર્થ નિમગ્ના

સિફ યહા ઇતની હી હૈ ક્રિ એસે જીવ જો વ્યન્તર દેવો મે ઉત્પન્ન હોતે હૈ ઉનકી વહા સ્થિતિ ચૌરાસી હજાર વર્ષ કી બતલાઈ ગઈ હૈ ॥ સુ ૧૨ ॥

‘સે જે ઇમે’ इत्यादि

(સે જે ઇમે) જો યે (ગંગાકૂલગા વાણપત્થા તાવસા ભવતિ) ગંગા કે તટ પર રહનેવાલે વાનપ્રસ્થ તાપસ હૈ, જૈસે (હોત્તિયા) આગ્નિહોત્રિક, (પોત્તિયા) પોત્રિક વલ્લ-ધારક, (કોત્તિયા) કૌત્રિક—ભૂમિશાયી—ભૂમિ પર સોને વાલે, (જણ્ણઈ) યજ્ઞકારક (સહ્હઈ) શ્રાદ્ધકારક, (થાલઈ) ભોજનપાત્રધારક, (હુંવડદા) કુણ્ડિકાધારી, (દંતુક્વલિયા) ફળભોજી, (ઉમ્મજ્જગા) એક વાર પાની મે ડુબકી લગાકર સ્નાન કરને વાલે, (સમ્મજ્જગા) વાર વાર

માત્ર અહી એટલીજ છે કે જીવ જે વ્યન્તર દેવોમા ઉત્પન્ન થાય છે તેની ત્યા સ્થિતિ ચોથોસી હજાર વરસની બતાવવામા આવી છે (સુ ૧૨)

‘સે જે ઇમે’ इत्यादि

(સે જે ઇમે) જે આ (ગંગાકૂલગા વાણપત્થા તાવસા ભવતિ) ગંગાના તટ પર વસનારા વાનપ્રસ્થ તાપસ હોય છે, જેવા કે—(હોત્તિયા) આગ્નિહોત્રિક, (પોત્તિયા) પોત્રિક—વલ્લધારક, (કોત્તિયા) કૌત્રિક—ભૂમિશાયી—ભૂમિ ઉપર યુવા વાળા, (જણ્ણઈ) યજ્ઞકારક, (સહ્હઈ) શ્રાદ્ધકારક, (થાલઈ) ભોજનપાત્રધારક, (હુંવડદા) કુણ્ડિકાધારી, (દંતુક્વલિયા) ફળભોજી, (ઉમ્મજ્જગા) એકવાર પાણીમા ડુબકી મારીને સ્નાન કરવાવાળા, (સમ્મજ્જગા) વાર વાર ડુબકી મારીને

परिसडिय-कंद-मूल-तय-पत्त-पुष्प-फलाहारा जला-भिसेय-
कठिण-गायभूया आयावणाहि पंचगितावेहि इगालसोल्लियं
कंडुसोल्लियं पिव अप्पाणं करेमाणा वहूडं वासाडं परियागं
पाउणंति, पाउणित्ता कालमासे कालं किच्चा उक्कोसेण जोइ-

मुञ्जते ऋदमूलत्रयामपि तथाविधानामेवोपयोग कुर्वते ते, 'जलाभिसेय-कठिण-गाय-
भूया' जलामिपेक-कठिन-गात्र-भूता-जलामिपेकेण कठिन यद् गात्र तत् प्रामा ये
ते तथा, 'आयावणाहि' आतापनाभि-प्रखररविकाराऽऽसेवनाभि, 'पंचगितावेहि'
पञ्चान्नतापै-चतसृषु दिक्षु प्रज्वालितेश्चतुर्भिरग्निभि उपरिभागे सूर्यकिरणपञ्चमैर्ये तापास्तै,
'इगालसोल्लिय' अङ्गारपक्वम्-प्राकृतं-'पच्' धातो स्थाने 'सोल्ल' आदेशो भवति।
अङ्गारैर्निर्धूमज्वलद्रनलपिण्डैरिव पक्वम्, 'कंडुसोल्लिय' कन्दुपक्वम्-कन्दु=चणकादि-
भर्जनपात्र, तत्र पक्वम्, 'अप्पाण करेमाणा' आमान=शरीर कुर्वाणा, 'वहूडं वासाडं
परियाग पाउणति' वह्नि वर्षाणि पर्याय=वानप्रस्थपर्याय पालयन्ति, पालयित्वा,

गिरे हुए या किसी के द्वारा लाये गये कद, मूल, त्वरू, पत्र, पुष्प एव फलों का आहार
करने वाले, (जलाभिसेय-कठिण-गाय भूया) जलामिपेक करने से जिनका शरीर कठिन
हो गया है ऐसे, (आयावणाहि पंचगितावेहि इगालसोल्लिय कंडुसोल्लिय पिव
अप्पाण करेमाणा) तथा आतापना-प्रखर सूर्य की किरणों के सेत्रन से, पंचाग्नि के
गोच बैठकर तापों के सहन करने से अगर में पक्व हुए जैसे एव भाड में भूजे हुए जैसे
अपने शरीर को करने वाले ये वानप्रस्थ तापस जन (वहूडं वासाडं परियाग पाउणति)
वहुत वर्ष पर्यन्त वानप्रस्थ तापस की पर्याय का पालन करते हुए (कालमासे काल किच्चा)

लावी आपेला षड, मूल, छाल, पत्र, पुष्प, तेमज् इण्णो आहार करवावाणा,
(जलाभिसेय-कठिण-गाय-भूया) जलने अलिपेक करवाथी नेना शरीर कडु थड
गया होय जेवा, (आयावणाहि पंचगितावेहि इगालसोल्लिय कंडुसोल्लिय पिव
अप्पाण करेमाणा) तथा आतापना-प्रखर सूर्यना किरणोना सेवनथी, यथा
जिनना वन्धे जेसीने ताप सहन करवाथी, अगारमा पडावेल होय तेवा
तेमज् डाडलाभा भूजेल जेवा पोताना शरीरने करी नाणवावाणा ते वान-
प्रस्थ तापसजन (तपन्वीजो) (वहूडं वासाडं परियाग पाउणति) धषु। वरमे।
सुधी वानप्रस्थ तापसनी पर्यायनु पालन करता करता (कालमासे काल किच्चा)

जलवासिणो रुक्खमूलिया अंबुभक्खिणो वाउभक्खिणो सेवालभ-
क्खिणो मूलाहारा कंदाहारा तथाहारा पत्ताहारा पुप्फाहारा वीयाहारा

भूमिगृहवासिन, 'जलवासिणो' जलवासिन—ये जलं प्रविष्टा एव निवसन्ति ते,
'रुक्खमूलिया' वृक्षमूलका—तरतले ये निवसन्ति ते, 'अंबुभक्खिणो' अम्बुभक्षिण =
जलाहारकारिण, 'वाउभक्खिणो' वायुभक्षिण = पत्रनाहारा, 'सेवालभक्खिणो'
शैवालभक्षिण—शैवाल = जललता भक्षन्ति तच्छीला—जलोपरिस्थितहृत्तत्रनस्पतिप्रियेभोजिन
इत्यर्थ, 'मूलाहारा' मूलाहारा—मूलानि आहरन्ति तच्छीला 'कंदाहारा' कन्दाऽऽहारा =
सूरणादिकदभक्षिण, 'तथाहारा' त्वगाहारा = निम्बादिवृक्षभक्षिण, 'पत्ताहारा' पत्रा-
ऽऽहारा = बिल्वादिपत्रभक्षिण, 'पुप्फाहारा' पुष्पाऽऽहारा = कुन्दगोभाजनादिपुष्प भिज,
'वीयाहारा' वीजाऽऽहारा—कूष्माण्डादिबीजाभोजिन, 'परिसडिय-कद-मूल-तय-
पत्त-पुप्फ-फला-हारा' परिशदित-कन्द-मूल-त्वक्-पत्र-पुष्प-फला-ऽऽहारा—
परिशदित = केनचिदानीत स्वयं पतितं च परिशदितम्, तादृशं कन्दमूलवरूपत्रपुष्पफलम्
आहरन्ति तच्छीला—केनचित् आनीतानि तरुम्य स्वयं पतितानि वा पत्रपुष्पफलान्येव

करने वाले, (जलवासिणो) जल में खड़े रहने वाले, (रुक्खमूलिया) वृक्ष के नीचे निवास
करने वाले, (अंबुभक्खिणो) मात्र जल का आहार करने वाले, (वाउभक्खिणो) मात्र
वायु का ही आहार करने वाले, (सेवालभक्खिणो) मात्र शैवालका ही आहार करने वाले,
(मूलाहारा) मात्र मूल का ही आहार करने वाले, (कंदाहारा) सूरणादिक कंदों का आहार
करने वाले, (तथाहारा) त्वक्-शलका आहार करने वाले, (पत्ताहारा) बिल्व आदि के
पत्तों का आहार करने वाले, (पुप्फाहारा) पुष्पों का आहार करने वाले, (परिसडिय-
कद-मूल-तय-पत्त-पुप्फ-फला-हारा) तोड़ कर या स्वयं लगे हुए नहीं, किन्तु स्वयं

निवास करवावाणा, (जलवासिणो) जलभाज उला रडेवावाणा, (रुक्खमूलिया)
वृक्षनी नीचे निवास करवावाणा, (अंबुभक्खिणो) मात्र पाष्णीने आहार कर-
वावाणा, (वाउभक्खिणो) मात्र वायुने आहार करवावाणा, (सेवालभक्खिणो)
मात्र शैवाणने आहार करवावाणा, (मूलाहारा) मात्र मूलने आहार
करवावाणा, (कंदाहारा) सूरण आदि कंदने आहार करवावाणा, (तथाहारा) त्वक्
छालने आहार करवावाणा, (पत्ताहारा) पत्ती आदि पानने आहार करवा-
वाणा, (पुप्फाहारा) पुष्पने आहार करवावाणा, (वीयाहारा) बीजा आदिना
भीने आहार करवावाणा, (परिसडिय-कद-मूल-तय-पत्त-पुप्फ-फलाहारा) तोड़ीने
अथवा पोते लावेले न डोय परतु पोतानी भेजे पडी गयेला अ डोयने

भवन्ति, तं जहा—कंदप्पिया कुकुड्या मोहरिया गीयरडप्पिया
नच्चणसीला, ते णं एएणं विहारेणं विहरमाणा वहूडं वासाडं
सामण्णपरियायं पाउणंति, पाउणित्ता तस्स ठाणस्स अणा-

सेसु पव्वइया समणा भवन्ति ' याव सन्निवेशेषु प्रयुजिता श्रमणा भवन्ति, ' तं जहा ' तयथा—' कंदप्पिया ' कान्दर्पिका—हास्यकारका भाण्डादय, ' कुकुड्या ' कौकुचिका—कुकुचेन=कुसितचेष्टया चरन्तीति कौकुचिका ये च भ्रूनयनवदनकरचरणाऽऽदिभिर्भाण्डा इव तथा चेष्टन्ते यथा स्वयमहसन्त एव परान हासयन्ति ते। ' मोहरिया ' मौसरिका=वाचाला—नानाविधाऽसम्बद्धभाषिण इत्यर्थे। ' गीय-रड-प्पिया ' गीत-रति-प्रिया—गीतेन या रति=क्रीडा सा प्रिया येपा ते तथा, ' नच्चणसीला ' नर्तनशीला ' ते ण एएण विहारेणं विहरमाणा ' ते खलु एतेन विहारेण विहरन्तः=उक्तमाचरणमाचरत, ' वहूइ वासाड सामण्णपरियायं पाउणति ' वहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं=चारित्र्यपर्यायं पालयन्ति, ' पाउणित्ता ' पालयिवा ' तस्स ठाणस्स ' तस्य स्थानस्य=

समणा) प्रयुजित श्रमण होते हैं, (त जहा) जैसे—(कंदप्पिया कुकुड्या मोहरिया गीयर-डप्पिया) कान्दर्पिक—हास्यकारक भांड आदि, कौकुचिक—भ्रू, नयन, वदन, कर एव चरण आदिकों से कुसित चेष्टाएँ करके भांडों की तरह स्वयं न हँसकर दूसरों को हँसाने वाले, गीतपूर्वक क्रीडा को अधिक पसंद करने वाले, (नच्चणसीला) नृत्य करने के स्वभाव वाले, ये सब (एएण विहारेण विहरमाणा वहूड वासाड सामण्णपरियाय पाउणति) अपने २ पद के अनुसार उक्त आचरण को आचरण करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमणपर्याय को पालते हैं, (पाउणित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइय—अपढिकता कालमासे काल

समणा) प्रयुजित श्रमणु थाय छि, (त जहा) लेवाडे (कंदप्पिया कुकुड्या मोह-रिया गीय-रड-प्पिया) कान्दर्पिक—हास्यकारक (लवाया) आदि, कौकुचिक—भ्रू, नयन, वदन, कर तेमळ पण आदि वडे कुत्मित चेष्टाओ करी लवैयानी पेडे स्वय (पोते) न हसता भीजने हुसाववावाणा, मौषरिक—अनेक प्रकारना, अस-भद्ध प्रलाप करवावाणा, गीतयुक्त क्रीडाने वधारे पसद करवावाणा, (नच्च-णसीला) नृत्य करवाना स्वलाववाणा, आ यथा (एएण विहारेण विहरमाणा वहूइ वासाड सामण्णपरियाय पाउणति) पोत पोताना पद प्रभाणे उक्त आचर-णुने आचरता आचरता धळ्ठा वरसे सुधी श्रमणु-पर्यायने पाणे छि (पाउ-णित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइय—अपढिकता कालमासे काल किच्चा उक्कोसेण

सिएसु देवेसु देवत्ताए उववत्तारो भवन्ति । पलिओवम वास-
सहस्समन्भहियं ठिई । आराहगा ? णो इणट्टे समट्टे । सेसं
तं चेव ॥ सू० १३ ॥

मूलम्—से जे इमे जाव सन्निवेसेसु पव्वइया समणा

‘कालमासे काल किञ्चा’ कालमासे काल कृपा ‘उक्कोसेण जोइसिएसु देवेसु
देवत्ताए उववत्तारो भवन्ति’ उक्कोसेण ज्योतिपिकेषु देवेषु देववेनोपपत्तारो भवन्ति,
‘पलिओवम वाससयसहस्समन्भहियं ठिई’ पन्थापम वर्षगतसहस्राम्यधिक स्थिति—
वर्षशतसहस्राणि अभ्यधिकानि यत्र तत्—वर्षशतसहस्राम्यधिकम्=एकलक्षत्रयधिकं पन्थापम
स्थिति प्रजप्तेति । जिय्य पृच्छति—एते ज्योतिपिका देवा ‘आराहगा?’ आराधका =
परलोकस्थाराधका भवन्ति किम्?, उत्तरमाह—‘णो इणट्टे समट्टे’ नाऽयमर्थ
समर्थ =मगत, परलोकस्थाराधका न भवन्ति । अस्थार्थस्तु—अत्रैतोत्तराद्धेऽष्टमे सूत्रे
व्याख्यात ॥ सू० १३ ॥

टीका—‘से जे इमे’ इत्यादि । ‘से जे इमे’ अथ य इमे ‘जाव सन्निवे-

मरण के अवसर में मृत्यु के वशवर्ता हो, (उक्कोसेण जोइसिएसु देवेसु देवत्ताए उव-
वत्तारो भवन्ति) उत्कृष्ट रूप से ज्योतिषी देवों में देवरूप से उत्पन्न हो जाते हैं । (पलि-
ओवम वाससयसहस्समन्भहियं ठिई) वहा पर उनकी स्थिति १ लाख वर्ष अधिक एक
पन्थप्रमाण होती है । गौतम पूछते हैं—हे नाथ । (आराहगा) ये परलोक के आराधक होते
हैं या नहीं? उत्तर—(णो इणट्टे समट्टे) ये परलोक के आराधक नहीं होते हैं ॥ सू १३ ॥

‘से जे इमे जाव’ इत्यादि

(से जे इमे) जो ये (जाव सन्निवेसेसु) ग्राम नगर आदि स्थानों में (पव्वइया

काल अवसरे काल करीने (उक्कोसेण जोइसिएसु देवेसु देवत्ताए उववत्तारो भवन्ति)
उत्कृष्टरूपथी ज्योतिषी देवोभा देवेषु उत्पन्न थर्थ नाथ छे (पलिओवम वास-
सयसहस्समन्भहियं ठिई) त्या तेभनी स्थिति १ लाख वरस उपर अेक पत्थ-
प्रमाणु डोय छे गौतम पूछे छे के हे नाथ ! (आराहगा) तेओ परलोउना
आराधक डोय छे के नहि ? उत्तर—(णो इणट्टे समट्टे) तंओ परलोउना आरा
धक होता नथी (सू १३)

“से जे इमे जाव” इत्यादि

(से जे इमे) जे (जाव सन्निवेसेसु) ग्राम नगर आदि स्थानोभा (पव्वइया

मूलम्—से जे इमे जाव सन्निवेशेसु परित्रायगा भवति, तं जहा—सखा जोगी काविला भिउव्वा हंसा परमहंसा

टीका—‘से जे इमे’ इत्यादि । ‘से जे इमे’ अथ य इमे=ईदृशा ‘जाव सन्निवेशेसु’ यावत् सन्निवेशेषु, ‘परित्रायगा भवति’ परित्राजका =मन्यासिनो भवन्ति, ‘त जहा’ तथा—‘सखा जोगी काविला भिउव्वा हसा परमहसा बहुउदगा कुडिब्वया ऋष्यपरित्रायगा’ साय्या योगिन कापिला भार्गवा हसा परमहसा बहुदका कुटीत्रता कृष्णपरित्राजका, तत्र साय्या =साय्यमतानुयायिन, योगिन—योगश्चित्तवृत्तिनिरोध सोऽस्त्येषा ते योगिन, ‘कापिल शास्त्र साय्य द्विविधम्—सेश्वर निरीश्वर च । तत्र शेश्वर साय्यं भगवदवतार कपिल प्रणीतवान्, निरीश्वर साय्य तु अन्यवतार कपिल इति साय्यशास्त्रानुयायिन’ इति वाचस्पत्याभिधानकोश । निरीश्वरसाय्यमतानुयायिन इति भाव । ‘भिउव्वा’

‘से जे इमे जाव’ इत्यादि ।

(से जे इमे) जो ये (जाव सन्निवेशेसु) ग्राम आकर आदिसे लेकर सन्निवेश तक के स्थानों में (परित्रायगा) परित्राजक रहते हैं, जैसे (सखा जोगी काविला भिउव्वा हंसा परमहंसा) साय्य—साय्यमतानुयायी साधु, योगी—चित्तवृत्ति-निरोधरूप योग को पालन करने वाले साधु, कापिल—निरीश्वर साय्यमतानुयायी साधु,

(१) साय्य दो प्रकार के हैं—१ शेश्वरसाय्य, २ निरीश्वरसाय्य । शेश्वरसाय्य-ईश्वर को मानता है । निरीश्वर साय्य ईश्वर को नहीं मानता है । वाचस्पत्याभिधानकोप में ऐसा लिखा है कि भगवदवतारस्वरूप कपिलने ईश्वरवादी साय्य को, एवं अन्यवतारविशिष्ट उसी कपिलने निरीश्वरवादी साय्य को रचा है ।

“से जे इमे जाव” इत्यादि

(से जे इमे) जेथो (जाव सन्निवेशेसु) ग्राम आकर आदिथी लधने सन्निवेश सुधीना स्थानोभा (परित्रायगा) परित्राजक रहे छे, जेवा के (सखा जोगी काविला भिउव्वा हसा परमहसा) साय्य—साय्यमतना अनुयायी साधु, योगी—चित्तवृत्तिनिरोधरूप योगतु पालन करवावाजा साधु, कापिल—निरीश्वर साय्यमत अनुयायी साधु, लार्गव—लूगु ऋषिना व शब्, (हंसा) हस

(१) साय्य छे प्रकारना छे १ शेश्वरसाय्य- २ निरीश्वरसाय्य शेश्वर-साय्य ईश्वरने माने छे निरीश्वरसाय्य ईश्वरने मानता नथी. वाचस्पत्य-अभिधान कोपभा जेभ लब्धु छे के लगवानना अवतारस्वरूप कपिले ईश्वरवादी साय्यने तेभज अग्नि-अवतार-विशिष्ट तेज कपिले निरीश्वरवादी साय्य रच्यु छे

लोड्य-अपडिकंता कालमासे कालं किञ्चा उक्कोसेणं सोहम्मे
कप्पे कंदप्पिएसु देवेसु देवत्ताए उववत्तारो भवन्ति, तहिं तेसिं
गई, सेसं तं चेव, णवरं पलिओवमं वाससयसहस्समम्भहियं
ठिई ॥ सू० १४ ॥

उक्तस्य पापस्थानस्य, 'अणालोड्यअपडिकता' अनालोचिताऽप्रतिक्रान्ता—अनालो
चिताश्च ते अप्रतिक्रान्ता—गुरुणा समीपे अकृताऽऽलोचनका अतएव दोषादनिवृत्ता इत्यर्थः ।
'कालमासे कालं किञ्चा' कालमासे कालं कृत्वा, 'उक्कोसेण सोहम्मे कप्पे
कंदप्पिएसु देवेसु देवत्ताए उववत्तारो भवन्ति' उक्केण सौधर्मे कप्पे कान्दपिकेषु=
हास्यक्रीडाकारकेषु देवेषु देवत्वेनोपपत्तारो भवन्ति, 'तहिं तेसिं गई' तत्र तेषां गति
'सेसं तं चेव' शेष तदेव=पूर्वोक्तमेव बोध्यम् । 'पलिओवमं वाससयसहस्समम्भहियं
ठिई' पल्योपम वर्षशतसहस्राऽभ्यधिकं स्थिति—लक्षवर्षाधिकं पल्योपम स्थिति ॥ सू० १४ ॥

किञ्चा उक्कोसेण सोहम्मे कप्पे कदप्पिएसु देवेसु देवत्ताए उववत्तारो भवन्ति) पालन
करते हुए अत समय वे अपने उक्त पापस्थानों की गुरु के समीप आलोचना नहीं करके
उनसे निवृत्त नहीं होते हैं, इसलिए जब वे काल-अवसर में काल करते हैं, तब अधिक से
अधिक सौधर्मरूप में जो हास्यक्रीडाकारक देव हैं उनमें देवरूप से उत्पन्न होते हैं ।
(तहिं तेसिं गई सेसं तं चेव) वहीं पर उनकी गति आदि बतलाई गई है । यहा पर और
भी जो कुछ वक्तव्य है वह इसी आगमके उत्तरार्ध में आठवें सूत्र की तरह समझ लेना
चाहिये । (पलिओवमं वाससयसहस्समम्भहियं ठिई) उस कल्प में उनकी स्थिति उस
पर्याय में १ लाख वर्ष अधिक १ पल्य की जाननी चाहिये ॥ सू० १४ ॥

सोहम्मे कप्पे कदप्पिएसु देवेसु देवत्ताए उववत्तारो भवन्ति) पालन करता करता
अत समये तेभ्यो पोताना उक्त पापस्थानानां गुरुनी पासे—आलोचनानां न
करवाथी तेनाथी निवृत्तं यना नथी तेथी न्यारे तेभ्यो काल अवसरे काल
करे छे त्तारे पधारेमा पधारे सौधर्मं कल्पमा ने हास्यक्रीडाकारक देव छे
तेमा देवेषु उत्पन्नं थाय छे (तहिं तेसिं गई सेसं तं चेव) त्या तेभनी गति
आदि ज्ञातवयामा आवेल छे अडी जीणु पधु ने कर्ध वधुंन छे ते आ
आगमना उत्तरार्धना आठमा सूत्रनी पेठे समल्ल वेवु जेधये (पलिओवम
वाससयसहस्समम्भहियं ठिई) ये कल्पमा तेभनी स्थिति ते पर्यायमा १ लाख
वस उपरात १ पल्यनी लक्षणी जेधये (सू १४)

तत्थ खलु इमे अट्ट खत्तियपरिव्वायया भवन्ति । तं जहा-
सीलही ससिहारे नग्गई भग्गईति य ॥

विदेहे राया रामे वलेति य अट्टमे ॥ सू० १५ ॥

मूलम्—ते ण परिव्वाया रिउवेय—यजुवेय—सामवेय-

परासरे । कण्हे दीवायणे चेव देवगुत्ते य नारए ॥ कर्णश्च करकण्डश्च अम्बडश्च
पराशर । कृष्णो द्वैपायनश्चैव देवगुप्तश्च नारद । एतेऽष्टौ ब्राह्मणपरिव्राजका । 'तत्थ खलु
इमे अट्ट खत्तियपरिव्वायया भवन्ति' तत्र खन्विमेऽष्टौ क्षत्रियपरिव्राजका भवन्ति, 'तं जहा'
तद्यथा—'सीलही ससिहारे नग्गई भग्गईति य । विदेहे राया रामेवलेति य अट्टमे ।'
शीलधी शशिधारो नग्नको भग्नक इति च । विदेहो राजा रामो बल इति च अष्टम । एते
षोडश परिव्राजका लोक्तो ज्ञेया ॥ सू० १५ ॥

टीका—'ते ण परिव्वाया' इत्यादि । 'ते ण परिव्वाया' ते खलु

परिव्वायया भवन्ति) ब्राह्मण की जाति के परिव्राजक होते हैं—(तं जहा) सो जैसे
(कृष्णे य करकडे य अघडे य परासरे । कण्हे दीवायणे चेव, देवगुत्ते य नारए)
१ कर्ण, २ करकड, ३ अघट, ४ परासर, ५ कृष्ण, ६ द्वैपायन, ७ देवगुप्त एव नारद ।
(तत्थ खलु इमे अट्ट खत्तियपरिव्वायया) तथा ये आठ क्षत्रिय जाति के परिव्राजक होते हैं,
(तं जहा) सो जैसे—(सीलही ससिहारे य नग्गई भग्गई ति य । विदेहे राया रामे वले-
ति य अट्टमे) शीलधी, शशिधार, नग्नक, भग्नक, विदेह, राजा राम और बल ॥ सू १५ ॥

'तेण परिव्वाया रिउवेय' इत्यादि ।

(ते ण परिव्वाया) ये १६ साधु—परिव्राजक—आठ ब्राह्मण जाति के आठ क्षत्रिय

व्यायया भवन्ति) ब्राह्मणुनी जतिना परिव्राजक थाय हे, (तं जहा) जेमडे
(कृष्णे य करकडे य अघडे य परासरे । कण्हे दीवायणे चेव, देवगुत्ते य नारए)
१ कर्ण, २ करकड, ३ अघट, ४ परासर, ५ कृष्ण, ६ द्वैपायन, ७ देव-
गुप्त, तेमज ८ नारद (तत्थ खलु इमे अट्ट खत्तियपरिव्वायया भवन्ति) तथा
आ आठ क्षत्रियजतिना परिव्राजक होय हे (तं जहा) जेम डे (सीलही
ससिहारे नग्गई भग्गईति य । विदेहे राया रामे वलेति य अट्टमे) १ शीलधी, २
शशिधार, ३ नग्नक, ४ भग्नक, ५ विदेह, ६ राजा, ७ राम तथा ८ बल
(सू १५)

'तेण परिव्वाया रिउवेय' इत्यादि

(ते ण परिव्वाया) आ १६ साधु—परिव्राजक आठ ब्राह्मण जति अने

बहुउदगा कुडिञ्चया कण्हपरिञ्चायगा । तत्थ खलु इमे अट्ट
माहणपरिञ्चायगा भवन्ति, तं जहा—

कण्णे य करकंडे य, अंवडे य परासरे ।

कण्हे दीवायणे चेव, देवयुत्ते य नारए ॥

भार्गवा—भृगुलोकप्रसिद्ध ऋषिस्तद्वज्रजा भार्गवा । 'हंसा'—हसा=पर्वतकुहरपय्याऽऽ-
श्रमाऽऽरामवासिनो भिक्षार्थं च ग्राम प्रविशन्ति । 'परमहसा' परमहसा, एतेषु नदी-
पुलिनसमागमप्रदेशेषु वसन्ति मरणसमये चीर,कौपीनकुशाश्च त्यक्त्वा प्राणान् परित्यजन्ति ।
'बहुउदगा' बहूदका, इमे तु ग्राम एकरात्रिका, नगरे पञ्चरात्रिका प्राप्तभोगाश्च भुञ्जते
इति । 'कुडिञ्चया' कुटीव्रता=कुटीचरा, ते च कुट्या वर्तमाना व्यपगतक्रोधलोभमोहा
अहङ्कार वर्जयन्ति । 'कण्हपरिञ्चायगा' कृष्णपरिवाजका—परिवाजकविशेषा एव, नारायण-
भक्तिका इति केचित् । 'तत्थ खलु इमे अट्ट माहणपरिञ्चायगा भवन्ति' तत्र खलु
इमेऽष्टौ ब्राह्मणपरिवाजका भवन्ति । 'तं जहा' तद्यथा—'कण्णे य करकंडे य अंवडे य

भार्गव-भृगु ऋषि के वज्र (शिष्य), हस-पर्वतकी गुफा, आश्रम, देवमन्दिर तथा बगीचा
आदि में निवास करने वाले साधु, जो सिर्फ भिक्षा के लिये ही ग्राम में आते हैं, (परमहसा)
नदी के तट पर नग्नरूप में रहने वाले साधु, जो मरण काल में चीर, कौपीन और कुशा को
त्याग कर मरण करते हैं । (बहुउदगा) एक रात ग्राम में पाच राततक नगर में रहे तथा जो
मिले सो खावें ऐसे बहूदक साधु, (कुडिञ्चया) कुटीव्रत-कुटीचर-क्रोध, लोभ एव मोह
तथा अहङ्कार से रहित होकर पर्णकुटी में रहने वाले, (कण्हपरिञ्चायगा) नारायण के भक्त
परिवाजक-अथवा कृष्ण के भक्त परिवाजक, (तत्थ) इनमें (अट्ट) आठ (इमे) ये (माहण-

पर्वतनी शुद्ध, आश्रम तथा बगीचा आदिमा निवास करनेवाला साधु, जो
मात्र भिक्षा माटे व गाभमा आवे छे (परमहसा) नदीना तट उपर नग्न
रूपमा रहनेवाला साधु, जो मरणकालमा चीर, कौपीन (लगाटी) अने कुशाना
त्याग करी मरण पावे छे (बहुउदगा) अेक रात गाभमा, पाच रात सुधी
नगरमा रहे तथा जो मजे ते भाय अेवा अडूदक साधु, (कुडिञ्चया) कुटी-
व्रत-कुटीचर-क्रोध, लोभ तेमअ मोह तथा अहङ्कारथी रहित यधने पर्थु
कुटीमा रहनेवाला, (कण्हपरिञ्चायगा) नारायणना लक्त परिवाजक, अथवा
कृष्णना लक्त परिवाजक, (तत्थ) अेमा (अट्ट) आठ (इमे) आ (माहणपरि-

सामयणे अण्णेषु य बहुसु वंभण्णएसु य सत्थेषु सुपरिणिट्ठिया यावि होत्था ॥ सू० १६ ॥

मूलम्—ते णं परिव्वायगा दाणधम्म च सोयधम्मं

अक्षरस्वरूपनिरूपक शास्त्र शिक्षा, तथाविधसमाचारग्रन्थक शास्त्रमेव रूपस्तस्मिन्, 'वागरणे' व्याकरणे=शब्दशास्त्रे, 'उडे' छन्दमि=वृत्तबोधके शास्त्रे, 'निरुत्ते' निरुक्ते=शब्दार्थबोधके, 'जोइसामयणे' ज्योतिषामयने ज्योतिषशास्त्रे, 'अण्णेषु य बहुसु वंभण्णएसु य सत्थेषु' अन्येषु च बहुषु ब्राह्मण्येषु च शास्त्रेषु-ब्राह्मण्येषु हितानि ब्राह्मण्यानि-वेदव्याख्यारूपाणि ब्राह्मणादीनि शास्त्राणि तेषु च बहुषु शास्त्रेषु, 'सुपरिणिट्ठिया यावि होत्था' सुपरिनिष्ठिता=परिपक्वज्ञानाश्चापि भवन्ति ॥ सू० १६ ॥

टीका—'ते ण परिव्वाया' इत्यादि । 'ते ण परिव्वाया' ते खलु परिव्राजका, 'दाणधम्म च सोयधम्म च तित्थाभिसेय च' दानधर्मं च औचधर्मं च

रूपे वागरणे उडे निरुक्ते जोइसामयणे अण्णेषु य बहुसु वंभण्णएसु य सत्थेषु सुपरिणिट्ठिया यावि होत्था) तथा गणित के विषय में, शिक्षा-अक्षर के स्वरूप को निरूपण करने वाले शास्त्र में, कल्प में, व्याकरण शास्त्र में, उद शास्त्र में, निरुक्त-शब्दार्थबोधक शास्त्र में, एवं ज्योतिष शास्त्र में और भा अनेक बहुत से ब्राह्मणशास्त्रों में ये परिपक्व ज्ञानशाली होते हैं ॥ सू १६ ॥

'तेण परिव्वायगा' इत्यादि

(ते ण परिव्वायगा) ये समस्त परिव्राजक (दाणधम्म च सोयधम्मं च) दानधर्म की, औचधर्म का, (तित्थाभिसेय च) तीर्थाभिषेक की (आघवेमाणा) जनता में

बुधुनारा डोय छे (सत्ताणे निम्पवाकप्पे वागरणे छडे निरुक्ते जोइसामयणे अण्णेषु य बहुसु वंभण्णएसु य सत्थेषु सुपरिणिट्ठिया यावि होत्था) तथा गच्छितना विषयमा, शिक्षा-अक्षरना स्वइधने निइपणु इरवावाणा शास्त्रमा, कल्पमा, व्याकरणु शास्त्रमा, छड शास्त्रमा, निरुक्ता-शब्दार्थबोधक शास्त्रमा, तेमणु ज्योतिष-शास्त्रमा अने णीण पणु अनेड प्राहणु शास्त्रोमा तेजो ज्ञानशाली डोय छे (सू . १६)

'तेण परिव्वायगा' इत्यादि

(ते ण परिव्वायगा) आ समस्त परिव्राजक (दाणधम्म च सोयधम्मं च) दानधर्मनी, औचधर्मनी, (तित्थाभिसेय च) तीर्थाभिषेकनी (आघवेमाणा)

અહ્વણવેય-इतिहासपंचमाणं निघंटुछट्टाणं संगोवगाणं सर-
हस्साणं चउण्हं वेदाणं सारगा पारगा धारगा सडंगवी सद्वितंत-
विसारया, संखाणे सिक्खाकप्पे वागरणे छंदे निरुत्ते जोइ-

परिवाजका - प्राग्दर्णिता अष्टौ नाक्षत्रपग्निजका, अष्टौ क्षत्रियपग्निजका, ते क्रीडृगा ?
अत्राऽऽह- ' रिउवेय-यजुव्वेय-सामवेय-अह्वणवेय-इतिहासपचमाण ' ऋग्वेद-
यजुर्वेद-सामवेदाऽथर्ववेदेतिहासपचमानाम्-ऋग्वेदादयश्च वारो वेदा, तथा इतिहास पञ्चमे-
येषां ते इतिहासपचमा तेषाम्, ' निघट्टुछट्टाण ' निघट्टुपग्रनाम-निघट्टुर्नाम कोश
पठ = पट्टरयापूरको येषां तेषां ' संगोवगाण ' साद्वोपाद्धानाम्-अङ्गैरपाङ्गै सहितानाम्,
' सरहस्साण ' सरहस्याना=रहस्ययुक्तानाम्, ' चउण्हं ' चतुर्णाम्, ' वेदाण ' वेदानाम्,
' सारगा ' सारका =अध्यापनद्वारेण प्रवर्तका, अथवा स्मारका =अन्येषां विस्मृतस्य
स्मरणात्, ' पारगा ' पारगा =मूर्णवेदार्यज्ञानवन्त, ' धारगा ' धारका =धारयितु क्षमा,
' सडंगवी ' पडङ्गविद, ' सद्वितंतविसारया ' पष्ठितत्रविशारदा -पष्ठितत्र=कपिलसिद्धान्त -
तत्र विशारदा =पण्डिता, ' संखाणे ' सरयाने=गणितत्रिपये ' सिक्खाकप्पे ' शिक्षाकल्पे-

जाति के (रिउवेय-यजुव्वेय-सामवेय-अह्वणवेय-इतिहासपचमाण निघट्टुछट्टाण
सगोवगाण सरहस्साण चउण्ह वेदाणं) ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास,
निघट्टु इन उह शास्त्रों के तथा इन शास्त्रों के और भी जितने अंग और उपांग हैं उनके एव
रहस्य सहित चार वेदों के (सारगा) पाठन द्वारा प्रचारक होते हैं, या दूसरों के लिये
विस्मृत हुए इन के स्मारक होते हैं (पारगा) स्वयं भी इन सब शास्त्रों के ज्ञाता होते हैं,
(धारगा) इन सबकी धारणा वाले होते हैं। इसलिये ये (सडंगवी) पडंगवेदवित् कहे जाते
हैं। ये (सद्वितंतविसारया) पष्ठितत्र-कपिलशास्त्र के भी वेत्ता होते हैं, (संखाणे सिक्खा

આઠ ક્ષત્રિય જાતિના (રિહવેય-યજુવ્વેય-સામવેય-અહ્વણવેય-इतिहास-पचमाण।
निघट्टुछट्टाण संगोवगाण सरहस्साण चउण्ह वेदाणं) ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद,
अथर्ववेद, इतिहास, निघट्टु आ छ शास्त्राणां, तथा आ शास्त्राणां भीज
पञ्च नेटला अंग अने उपांग छे तेभना, रहस्यसहित चार वेदाना (सारगा)
पठनद्वारा प्रचारक होय छे, अथवा भीजने विस्मरण थयेल होय तो तेभने याद
क्षमनास होय छे, (पारगा) पौते पञ्च ते शास्त्रे ज्ञानुनास होय छे, तेथी
तेओ (धारगा) आ अधानी धारणावाला होय छे, तेथी तेओ (सडंगवी) पडंग
वेदवित् कहेवाय छे तेओ (सद्वितंतविसारया) पष्ठितत्र-कपिलशास्त्रना पञ्च

सूलम्—तेसि णं परिव्वायगाणं णो-कप्पइ, अगडं वा तलायं वा नइं वा वाविं वा पुक्खरिणिं वा दीहियं वा गुंजालियं

शुचय = शुद्धा 'सुइसमापारा' शुचिसमाचारा = सर्वथा शुद्धाचारा 'भविता', भूवा 'अभिसेय-जल-पूय-प्पाणो' अभिपेक-जल-पूताऽऽ-त्मान-अभिमन्त्रितजलै पूता = पवित्र आत्मानो ज्ञेया ते तथा, 'अविग्गेण सग्ग गमिस्सामो' अविग्गेण स्वर्गं गमिष्याम - अस्माकं स्वर्गगमन-निर्वाधमस्ति-इत्यर्थे ॥ सू० १७ ॥

टीका—'तेसि णं परिव्वायगाणं' इत्यादि । 'तेसि णं परिव्वायगाणं' तथा खलु परिव्राजकानाम्, 'णो कप्पइ अगडं वा तलायं वा नइ वा वाविं वा पुक्खरिणिं वा दीहियं वा गुंजालियं वा सरं वा सागरं वा ओगाहित्तए' नो कल्पतेऽप्यट वा तडाग वा नदी वा वापो वा पुक्खरिणी वा दीर्घिका वा गुंजालिका वा सरो

हम शुचि हैं और हमारा आचार-विचार भी शुचि है । इस तरह शुचि होकर, अभिमन्त्रित जल से सर्वथा आत्मा को पवित्र कर हम लोग विना किसी वित्त के स्वर्ग में जावेंगे—हम लोगों को स्वर्गप्राप्ति निर्वाध है ॥ सू १७ ॥

'तेसि णं परिव्वायगाणं' इत्यादि ।

(तेसि णं परिव्वायगाणं) इन परिव्राजकों को (णो कप्पइ) इतनी बातें कल्पित नहीं हैं—(अगड वा तलाय वा नइ वा वाविं वा पुक्खरिणिं वा दीहियं वा गुंजालियं वा सरं वा सागर वा ओगाहित्तए) कूप में प्रवेश करना, नालव में प्रवेश करना, नदी में प्रवेश करना, चावडी में प्रवेश करना, पुक्खरिणी में प्रवेश करना, दीर्घिका में प्रवेश करना, गुंजालिका में प्रवेश करना, सरोवर में प्रवेश करना, एव समुद्र में प्रवेश करना ।

पवित्र छे अन्ने शुचि छीअे, अने अमारा आचारविचार पणु शुचि छे आवी-ईते शुचि धरने, अलिमन्त्रित जलथी सर्वथा आत्माने पवित्र करीने अन्ने-कोई जलतना विघ्न विना स्वर्गमा अशु-अमने स्वर्गनी-प्राप्ति-निर्वाध छे (सू-१७)

'तेसि णं परिव्वायगाणं' इत्यादि ।

(तेसि णं परिव्वायगाणं) आ परिव्राजकानी (णो कप्पइ) आटली माते कल्पित नहीं (अगड वा तलाय वा नइ वा वाविं वा पुक्खरिणिं वा दीहियं वा गुंजालियं वा सरं वा सागर वा ओगाहित्तए) कूपाभा प्रवेश करवो, तलावभा प्रवेश करवो, नदीभा प्रवेश करवो, चावभा प्रवेश करवो, पुक्खरिणीभा प्रवेश करवो, दीर्घिकाभा प्रवेश करवो, गुंजालिकाभा प्रवेश करवो, सरोवरभा प्रवेश-

च तित्थाभिसेयं च आघवेमाणा पणवेमाणा परूवेमाणा
विहरन्ति । जं णं अम्हं किञ्चि असुई भवइ तं णं उदएण य
मट्टियाए य पक्खालियं सुई भवइ । एवं खलु अम्हे चोक्खा
चोक्खायारा सुई सुइसमायारा भवित्ता अभिसेयजलपूयप्पाणो
अविग्घेणं सग्गं गमिस्सामो ॥ सू० १७ ॥

તીર્થાભિષેક, 'આઘવેમાણા' આગ્યાન્ત = રુથયન્ત, 'પણવેમાણા' પ્રજાપયન્ત =
વોધયન્ત, 'પરૂવેમાણા' પ્રરૂપયન્ત = ઉપપત્તિભિ સ્વસિદ્ધાન્ત સ્થાપયન્તો વિહરન્તિ ।
'જ ણં અમ્હં કિંચિ અસુઈ ભવઈ' યત્ સન્વસ્માક કિચ્છિદશુચિ ભવતિ, 'ત ણ ઉદણ
ય મટ્ટિયાએ ય પક્કલાલિય સુઈ ભવઈ' તરલ ઉદકેન ચ મૃત્તિકયા ચ પ્રક્ષાલિત શુચિ
ભવતિ = પવિત્ર ભવતિ, 'એવં સ્વલુ અમ્હે' એવ સ્વલુ વચ, 'ચોક્કા' ચોક્ષા = કૃત-
પ્રમાર્જના - વિમલદેહનેપથ્યા, 'ચોક્કાયારા' ચોક્ષાચારા = પવિત્રાચારા, અતએવ - 'સુઈ'

પુષ્ટિ કરતે હુણ (પણવેમાણા) જનતા કો યે સવ વાતે અચ્છી તરહ સમજાતે હુણ (પરૂવે-
માણા વિહરતિ) જનતા મે ઇનકી યુક્તિપૂર્વક પ્રરૂપણા કરતે હુણ વિચરતે રહતે હૈ ।
(જ ણ અમ્હં કિંચિ અસુઈ ભવઈ ત ણ ઉદણ ય મટ્ટિયાએ ય પક્કલાલિય સુઈ ભવઈ)
વે કહતે હૈ - કિ જો કુઠ મા હમ લોગોં કી દષ્ટિ મે અપવિત્ર જ્ઞાત હોતા હૈ વહ પાની સે યા
મિટ્ટી સે જવ પ્રક્ષાલિત હો જાતા હૈ તવ વહ શુચિ હો જાતા હૈ । (એવ સ્વલુ અમ્હે ચોક્કા
ચોક્કાયારા સુઈ સુઈસમાયારા ભવિત્તા અભિસેયજલપૂયપ્પાણો અવિગ્ઘેણ સગ્ગ
ગમિસ્સામો) ઇસ પ્રકાર હમ લોગ ચોલે હૈ ઓર હમારા આચારવિચાર મી ચોક્કા - પવિત્ર હૈ ।

જનતામા પુષ્ટિ (અચાર) કરતા થકા, (પણવેમાણા) જનતાને આ બધી વાતો
સારી રીતે સમજાવતા થકા, (પરૂવેમાણા વિહરતિ) જનતામા તેમની યુક્તિ
પૂર્વક પ્રરૂપણા કરતા થકા વિચરતા રહે છે (જ ણ અમ્હં કિંચિ અસુઈ ભવઈ
ત ણ ઉદણ ય મટ્ટિયાએ ય પક્કલાલિય સુઈ ભવઈ) તેઓ કહે છે કે જે કાઈ
પણ આપણી દષ્ટિમા અપવિત્ર જણાય છે તે પાણીથી અથવા / માટીથી નો
ધોવામા આવે તો તે શુચિ-પવિત્ર થઈ જાય છે (એવ સ્વલુ અમ્હે ચોક્કા ચોક્કા-
યારા સુઈ સુઈસમાયારા ભવિત્તા અભિસેયજલપૂયપ્પાણો અવિગ્ઘેણ સગ્ગ ગમિસ્સામો)
આ પ્રકારે આપણે ચોક્ષા છીએ, અને આપણા આચારવિચાર પણ ચોક્ષા-

तेसिं णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ आसं वा हत्थि वा उट्टं वा
 गोणिं वा महिसं वा खरं वा दुरूहित्ता णं गमित्तए, णणत्थ
 बलाभिओगेणं । तेसिं णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ नडपेच्छाइ
 वा जाव मागहपेच्छाइ वा पेच्छित्तए । तेसिं णं परिव्वायगाणं णो

व्राजकाना-न कल्पते इत्यन्वय, 'तेसिं णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ आसं वा हत्थि
 वा उट्टं वा गोणिं वा महिसं वा खरं वा दुरूहित्ताणं गमित्तए णणत्थ बलाभिओगेणं'
 तेषां खलु परिव्राजकानां न कल्पतेऽश्व वा हस्तिन वीर्यं वा गा वा महिष वा खर वाऽधिरुह खलु
 गन्तुम्—नान्यत्र बलाऽभियोगात्—बलेन=बलाकारेण यं अभियोग =नियोजन—बलवत्पारन्त्य-
 नियोग इत्यर्थ, तस्मात्, अन्यत्र तेषां परिव्राजकानां गन्तुं न कल्पते । 'तेसिं णं परि-
 व्वायगाणं णो कप्पइ नडपेच्छाइ वा जाव मागहपेच्छाइ वा पेच्छित्तए' तेषां
 खलु परिव्राजकानां नो कल्पते नटप्रेक्षणमिति वा यावन्मागधप्रेक्षणमिति वा प्रेक्षितुम्—

डोली पर, अथवा शोल्लिका-यानविशेष पर, प्रवहण-पालकी पर, बग्घी पर, एव स्थन्दमानिका-ताम-
 जाम पर चढ़कर भी जाना साधुओं के लिए वर्जित है । (तेसिं णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ
 आसं वा हत्थि वा उट्टं वा, गोणिं वा, महिसं वा, खरं वा दुरूहित्ताणं गमित्तए)
 उन परिव्राजकों को घोड़े पर, हाथी पर, ऊँट पर, बैल पर, भैसा पर, एव गधे पर चढ़ कर
 भी चलना वर्जित है, (णणत्थ बलाभिओगेणं) बलाभियोग को छोड़ कर । यदि कोई
 हठ करके अर्थात् जवर्दस्ती से बैठे तो दोष नहीं है । (तेसिं णं परिव्वायगाणं णो
 कप्पइ नडपेच्छाइ वा जाव मागहपेच्छाइ वा पेच्छित्तए) उन परिव्राजकों को यह
 भी उचित नहीं है, अर्थात् उनके आचारके अनुसार यह भी उन्हें वर्जित है कि वे

लघने, उपादीने आले छे अथवा डोली पर अथवा शोल्लिका नामना यानविशेष
 पर, प्रवहण-पालकी पर, बग्घी पर तेमज स्थन्दमानिका-तामजाम पर
 अदीने पणु ञ्णु साधुओंने भाटे वर्जित छे (तेसिं णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ
 आसं वा हत्थि वा उट्टं वा गोणिं वा महिसं वा खरं वा दुरूहित्ताणं गमित्तए)
 ते परिव्राजकोंने घोड़ा पर, हाथी पर, ऊँट पर, भैसा पर, गधे पर, तेमज
 गधे पर अदीने आले पणु वर्जित छे (णणत्थ बलाभिओगेणं) बलाभियोग छोडीने,
 जे कोरि हठ करीने अवरदस्तीथी जेसाडी दे तो दोष नहीं (तेसिं णं परिव्वा-
 यगाणं णो कप्पइ नडपेच्छाइ वा जाव मागहपेच्छाइ वा पेच्छित्तए) ते परिव्राजकोंने

वा सरं वा सागरं वा ओगाहित्तए, णण्णत्थ अद्दाणगमणेणं ।
णो कप्पइ सगडं वा जाव संदमाणियं वा दुरूहित्ताणं गच्छित्तए ।

वा सागर वाऽवगाहित्तुम्, तनावट = कूप, बापी = चतुष्कोणजलाशयविशेष, पुष्करिणी =
वर्तुलाकारजलाशय, दीर्घिका = आयताकारजलाशय, गुञ्जालिका = वक्रजलाशय, सर =
कृत्रिमपद्मयुक्तजलाशय, तेषु प्रवेष्टुं सन्यासिना न कल्पते, 'णण्णत्थ अद्दाणगमणेणं'
नान्यत्राध्वगमनात् = न इति यो निषेध सोऽध्वगमनादन्यत्र, मार्गे जलाशयप्रवेशो न निषिद्ध
इत्यर्थः । 'णो कप्पइ सगडं वा जाव संदमाणियं वा दुरूहित्ता णं गच्छित्तए' नो
कल्पते शकट वा यावत् स्यन्दमानिका वाऽधिरुह्य स्वल्पगन्तुम् - शकटमधिरुह्य गन्तु न कल्पते
इत्यन्वयः, यावच्छब्दादिद बोध्यम् - रथ वा यान वा युग्यं वा गिल्लिं वा = पुरुषद्वयोर्विशेष-
दोल्लिका वा 'मोल्लिका वा' यानविशेष वा प्रवहणं वा शिबिकाम् वा इति, गिल्लिं वा = अत्र-
द्वयवाह्य यानविशेष वा, तथा - स्यन्दमानिका = शिबिकाविशेष वा, आरुह्य गन्तुं तेषां परि-

चार कोने वाले जलाशय का नाम बावड़ी, गोल मुहवाले जलाशय का नाम पुष्करिणी, एवं
विस्तृत आकारवाले जलाशय का नाम दीर्घिका है, जो जलाशय टेड़ा होता है उसका नाम
गुञ्जालिका है । इन सब में प्रवेश करना सन्यासियों के लिये निषिद्ध है । हां (णण्णत्थ अद्दा-
णगमणेणं) मार्ग में चलते समय यदि कोई तालाब नदी आदि जलाशय बीच में पड़ जाय
तो अगत्या उसमें होकर जाना निषिद्ध नहीं है । (णो कप्पइ सगडं वा जाव संदमाणियं
वा दुरूहित्ता गच्छित्तए) इसी तरह शकट-वैलगाडी पर चढ़कर भी जाना निषिद्ध है । यहाँ
'यावत्' शब्द से - "रथ वा यान वा युग्यं वा गिल्लिं वा" इत्यादि पाठ गृहीत हुआ है ।
इसका मतलब इस प्रकार है - रथ पर, यान पर, घोड़े पर, दो पुरुष जिसे लेकर चलते हैं ऐसी

करवो, तेमञ्ज समुद्रमा प्रवेश करवो आरे केरेथी घेरायेणु जलाशय डोय ।
तेनु नाम वाव, गेण सुभवाणु जलाशय डोय ते पुष्करिणी, तेमञ्ज विस्तृत
आकारवाणा जलाशयने दीर्घिका कडे छे जे जलाशय वाक्यायु का डोय छे तेनु ।
नाम गुञ्जालिका छे आ अधामा प्रवेश करवो जे सन्यासीयोने भाटे निषिद्ध ।
छे डा (णण्णत्थ अद्दाणगमणेणं) मार्गमा आलती वपते जे केछ तणाव नदी
आदि जलाशय वयमा आपी जय तो अगत्या तेमा यधने जपु निषिद्ध नथी
(णो कप्पइ सगडं वा जाव संदमाणियं वा दुरूहित्ता गच्छित्तए) आपी ज रीते ।
शकट-अण्डनु गाडुं पर अडीने पषु जपु निषिद्ध छे अडी यावत्
शब्दथी " रथ वा यान वा युग्यं वा गिल्लिं वा " इत्यादि पाठ अकषु करी छे
जेनी मतलब जे छे के-रथ पर, यान पर, घोडा पर, जे भाषसे जेने

कहाइ वा जणवयकहाइ वा अणत्थदंडं करित्तए । तेसि णं परि-
 व्वायगाणं णो कप्पइ अयपायाणि वा तउयपायाणि वा तंव-
 पायाणि वा जसदपायाणि वा सीसगपायाणि वा रूपपायाणि
 वा सुवर्णपायाणि वा अण्णयराणि वा बहुमुल्लाणि धारित्तए,

कथा' इति वा, 'चोरकथा' इति वा, 'जनपदकथा' इति वा अनर्थदण्ड कर्तुम्—स्व्यादीना
 कथा कर्तुं न कल्पन्ते, तथा—अनर्थदण्डमपि कर्तुं न कल्पते । 'तेसि णं परिव्वायगाण
 णो कप्पइ अयपायाणि वा तउयपायाणि वा तवपायाणि वा जसदपायाणि वा
 सीसगपायाणि वा रूपपायाणि वा सुवर्णपायाणि वा अण्णयराणि वा बहुमुल्लाणि
 धारित्तए' तेषां सुख परिभाषकानां नो कल्पन्ते—अय पात्राणि वा त्रपुकपात्राणि वा ताम्र-
 पात्राणि वा अन्ये द्वपात्राणि वा सीसरूपात्राणि वा रूपपात्राणि वा सुवर्णपात्राणि वा अन्यतराणि
 वा बहुमूल्यानि धारयितुम्, तत्र—अय पात्राणि—लोहपात्राणि, त्रपुकपात्राणि—श्रवेव त्रपुक
 पात्राणि इति ह्यात् तस्य पात्राणि, अन्यत् सर्वं सुगमम् । 'णणत्थ अलाउपाएण वा

वा) चोरकथा एव जनपदकथा, (तेसि ण परिव्वायगाण णो कप्पइ) ये कथाएँ भी
 उन परिव्वाजको के लिये कल्पित नहीं है, कारण कि इन कथाओं के करने से (अणत्थदंड
 करित्तए) अनर्थदंड का बंध होता है—ये कथाएँ अनर्थदंड करानेवाली हैं । (अयपायाणि
 वा तउयपायाणि वा तवपायाणि वा जसदपायाणि वा सीसगपायाणि वा रूपपा-
 याणि वा सुवर्णपायाणि वा अण्णयराणि वा बहुमुल्लाणि धारित्तए तेसि परिव्वा
 यगाण णो कप्पइ) लोह के पात्र, त्रपु के पात्र, तावे के पात्र, जसद के पात्र, सीसे के
 पात्र, लौह के पात्र, सुवर्ण के पात्र तथा और भी धातु के बहुमूल्य पात्र उन साधुओं को

णो कप्पइ) आ कथाओ पक्ष ते परिव्वाजकोने भाटे कल्पित नथी, कारखु डे
 ओ कथाओ कारवाशी (अणत्थदंड करित्तए) अनर्थडे उने पध थाय छे—आ
 कथाओ अनर्थडे कारवावाणी छे (अयपायाणि वा तउयपायाणि वा तव-
 पायाणि वा जसदपायाणि वा सीसगपायाणि वा रूपपायाणि वा सुवर्णपायाणि वा
 अण्णयराणि वा बहुमुल्लाणि धारित्तए तेसि परिव्वायगाण णो कप्पइ) दोहानु 'पात्र
 त्रपु—(कासा)नु पात्र, ताम्रानु पात्र, जसतनु पात्र, सीसानु पात्र, आदीनु
 पात्र, सुवर्णनु पात्र, तथा भील धातुना बहुमूल्य पात्र राखवा ये साधु
 ओने चोताना आहार विहार भाटे कल्पित नथी (णणत्थ अलाउपाएण वा

कप्पइ हरियाणं लेसणया वा घट्टणया वा थंभणया वा लूसणया
 वा उप्पाडणया वा करित्तए । तेसिं परिव्वायगाणं णो कप्पइ
 इत्थिकहाइ वा भत्तकहाइ वा देसकहाइ वा रायकहाइ वा चोर-

नटादिना गीतवृत्तौदिकानि प्रेक्षितुं तेषां परिव्राजकानां न कल्पते । तेसिं परिव्वायगाणं
 णो कप्पइ हरियाणं लेसणया वा घट्टणया वा थंभणया वा लूसणया वा उप्पाडणया
 वा करित्तए । तेषां खलु परिव्राजकानां नो कल्पते हरितानां=वनस्पतीनां श्लेषणया वा घट्टता
 वा स्तम्भनता वा छपणता वा उप्पाटनता वा, श्लेषणतादौ सर्वत्र स्वार्थे तद्ध, श्लेषणादिकमित्यर्थः ।
 श्लेषण=स्पर्श, घट्टता=घट्टन=सघर्षणम्, स्तम्भनता=स्तम्भन=हस्तादिनाऽवरोध, शाखा-
 प्लवादीनां मोहनम्, ऊर्वाकरण च, छपणता=छपण=हस्तादिना पत्रकादे समार्जनम्,
 तेसिं परिव्वायगाणं णो कप्पइ इत्थिकहाइ वा भत्तकहाइ वा देसकहाइ वा
 रायकहाइ वा चोरकहाइ वा जणवयकहाइ वा अणत्तपदड करित्तए । तेषां परि-
 व्राजकानां नो कल्पते—'खीकथा' इति वा, 'भत्तकथा' इति वा 'देशकथा' इति वा, 'राज-

नटों का एव मागध आदिकों का खेल-तमासा नहीं देखें और उनके गीत वृत्त आदि नहीं
 सुनें । (हरियाण, लेसणया वा घट्टणया वा थंभणया वा लूसणया वा उप्पाडणया
 वा करित्तए) हरितवनस्पति का स्पर्श करना, सघर्षण करना, हस्तादिक द्वारा अवरोध
 करना, शाखा एव उनके पत्ते आदिकों को ऊँचा करना अथवा उन्हें मोड़ना, हस्त आदि के
 द्वारा पत्र आदि का समार्जन करना, ये सब बातें मी (तेसिं परिव्वायगाणं णो कप्पइ)
 उन परिव्राजकों के लिये कल्पित नहीं है (इत्थिकहाइ वा भत्तकहाइ वा देसकहाइ वा
 रायकहाइ वा) खीकथा, भत्तकथा, देशकथा, राजकथा (चोरकहाइ वा जणवयकहाइ

आथार अनुसार ये पणु तेमने वणिंत छे, के तेओ नटोना तेमण भागध
 आदिडेकेमा म्पेलभ्तमासा बुज्जेणुनडी, अने तेमनागीत नृत्यआदिशासणे नडी
 (हरियाणं लेसणया वा घट्टणया वा थंभणया वा लूसणया वा उप्पाडणया वा करित्तए)
 खीली प्रनस्पतिना प्रपर्श करेवे, रस घर्षणु करेवे, हाथेथी अवरोध करेवे, शाखा
 तेमण तेतात्थाडडा आदिडेकेना उठिया करेवा, अथवा भरउवा, हाँश आदिथी
 लील-डुल आदिनु मस माणन करेवुं, आ यधी वाते पणु। (तेसिं परिव्वायगाण
 णो कप्पइ) ते परिव्राजके। माटे कटिपत) नथी (इत्थिकहाइ वा भत्तकहाइ वा
 देसकहाइ वा रायकहाइ वा) खीकथा, भत्तकथा, देशकथा, राजकथा, (चोरक-
 हाइ वा जणवयकहाइ वा) खोरकथा तेमण अणत्तपदडथा (तेसिं परिव्वायगाण

व्वायगाणं णो कप्पइ हारं वा अद्धहारं वा एगावलिं वा मुत्तावलिं
वा कणगावलिं रयणावलिं वा मुरविं वा कंठमुरविं वा पालवं वा
तिसरयं वा कडिसुत्तं वा दसमुद्दियाणंतगं वा कडयाणि वा

नो कल्पन्ते नानाविध-वर्ण-रग-रक्तानि वखाणि धारयितुम्, 'णण्णत्थ एगेण धाउरत्ताए'
नायत्रैकस्माद्भातुरक्तात्-केवल गैग्गिकट्टिधातुरक्त कल्पते इत्यर्थ, । 'तेसिं ण परिव्वाय-
गाण णो कप्पइ हारं वा अद्धहार वा एगावलिं वा मुत्तावलिं वा कणगावलिं वा
रयणावलिं वा मुरविं वा कंठमुरविं वा पालव वा तिसरयं वा कडिसुत्त वा दस-
मुद्दियाणंतगं वा कडयाणि वा तुडियाणि वा अगयाणि वा केऊराणि वा कुंडलाणि
वा मउडं वा चूडामणिं वा पिणद्धित्तए' तेषा म्वल्ल परिव्राजकाना नो कल्पन्ते-हार
वाअद्धहार वा, एकावलिं वा, मुक्तावलीं वा, कनकावलीं वा, रत्नावलीं वा, मुरविं=कर्ण-
मूषणविशेष वा, कण्ठमुरविं=कण्ठमूषणविशेष वा, प्रालम्ब वा, तिसरक वा, कटिसून वा,
दशमुद्रिकान्तक वा, म्दोडयं अण्डस्तेन-हस्ताङ्गुलीमुद्रिकादगकमियर्थ, कटकानि वा,

के रगों से रजित वस्त्र भी इन्हे धारण करना उचित नहीं मतलब गया है। सिर्फ एक
गैरिक रग से रगा हुआ वस्त्र ही इन्हे धारण करना बतलाया है। (तेसिं ण परिव्वाय-
गाण णो कप्पइ हार वा अद्धहारं वा एगावलिं वा मुत्तावलिं वा कणगावलिं वा
रयणावलिं वा मुरविं वा कंठमुरविं वा तिसरयं वा कडिसुत्त वा दसमुद्दियाणंतगं
वा कडयाणि वा तुडियाणि वा अगयाणि वा केऊराणि वा कुंडलाणि वा मउडं
वा चूडामणिं वा पिणद्धित्तए, णण्णत्थ एगेण तविण्णं पवित्तएण) हार, अद्ध-
हार, एकावलि, मुक्तावलि, कनकावलि, रत्नावलि, मुरवी, कण्ठमुरवी (ये कठ के आभ-

अनेक प्रकारना रगथी रगायेला वस्त्र पण तेज्याये धारण करवा उचित
नथी मात्र अेक गेडुना रगथी रगायेला वस्त्र न तेमण्णे धारण करवानु
अताप्यु छे (तेसिं ण परिव्वायगाण णो कप्पइ हार वा अद्धहार वा एगावलिं वा
मुत्तावलिं वा कणगावलिं वा रयणावलिं वा मुरविं वा कंठमुरविं वा पालव वा तिस-
रय वा कडिसुत्त वा दसमुद्दियाणंतग वा कडयाणि वा तुडियाणि वा अगयाणि वा केऊ-
राणि वा कुंडलाणि वा मउड वा चूडामणिं वा पिणद्धित्तए, णण्णत्थ एगेण तविण्णं पवि-
त्तएण) छार, अर्धछार, अेकावलि, मुक्तावलि, कनकावलि, रत्नावलि,
मुरवी, कंठमुरवी, (आ अथा कंठना आभरणे छे) प्रालम्ब, तण्ण सरेणे

गण्णत्थ अलाउपाएण वा दारुपाएण वा महिआपाएण वा ।
 तेसिं णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ अयबंधणाणि जाव बहुमुल्लाणि
 धारित्तए । तेसिं णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ णाणाविहवण्ण-
 रत्ताइं वत्थाइं धारित्तए, गण्णत्थ एगाए धाउरत्ताए । तेसिं णं परि-

दारुपाएण वा महिआपाएण वा ' नाऽन्यत्राऽजानुपात्राद् वा दारुपात्राद्वा मृत्तिकापात्राद्वा,
 'न'इति पूर्वोक्तो निषेध—तुम्बीपात्रात् काष्ठनिर्मितपात्रात्, मृत्तिकापात्राद्वाऽन्यत्र । तुम्बी—काष्ठ-
 मृत्तिकापात्राणि तु मंत्र्यासिना कल्पन्ते इति भावः । 'तेसिं णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ
 अयबंधणाणि वा जाव बहुमुल्लाणि धारित्तए' तेषां स्वल्प परिभाषकानाम् अवबोधार्थमि-
 लौहवधनयुक्तानि पात्राणि, यावच्छब्दात्—त्रपुताप्रादिबन्धनयुक्तानि पात्राणि, तथा, बहु-
 मूल्यानि अयान्यपि बन्धनानि धारयितुः तेषां सन्यासिना न कल्पन्ते । 'तेसिं णं परिव्वाय-
 गाणं णो कप्पइ णाणाविहवण्ण-राग रत्ताइं वत्थाइं धारित्तए' तेषां स्वल्प परिभाषकानां

धरने आहार—मिहार आदि' के लिये रखना कल्पित नहीं है । (गण्णत्थ अलाउपाएण वा
 महिआपाएण वा) तूबडी, काष्ठनिर्मित कमण्डलु, अथवा मिट्टीका पात्र, ये ही उन्हें रखना
 कल्पता है । (अयबंधणाणि जाव बहुमुल्लाणि धारित्तए तेसिं णं परिव्वायगाणं णो
 कप्पइ) तथा—लौह के बधन से युक्त पात्र, त्रपु के बधन से युक्त पात्र, तांबे के बधन से
 युक्त पात्र, जसद के बधन से युक्त पात्र, सीसे के बधन से युक्त पात्र, चांदी के बधन से
 युक्त पात्र, सुवर्ण के बधन से युक्त पात्र तथा और भी बहुमूल्य बधन से युक्त पात्र इन
 साधुओं को कल्पित नहीं बतलाया गया है । (तेसिं णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ णाणा-
 विहवण्ण-राग-रत्ताइं वत्थाइं धारित्तए गण्णत्थ एगाए धाउरत्ताए) अनेक प्रकार

दारुपाएण वा महिआपाएण वा) तूणडी, दोहाडालु । अनेहु ४३३३ - अथवा
 भाटीनु पात्र ओण तेओओ राधु कल्पित छे (अयबंधणाणि जाव बहुमुल्लाणि
 धारित्तए तेसिं णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ) तथा दोढाना अ धनथी युक्त पात्र,
 त्रपुना अ धनथी युक्त पात्र, ताणाना अ धनथी युक्त पात्र, जसतना अ धनथी
 युक्त पात्र, सीसाना अ धनथी युक्त पात्र, चाडीना अ धनथी युक्त पात्र,
 सुवर्णना अ धनथी युक्त पात्र तथा पील्ल पण अहुमूल्य (कीमती) धातुना अ धनथी
 युक्त पात्र साधुओने भाटे कल्पित अतावेल नथी (तेसिं णं परिव्वायगाणं
 णो कप्पइ णाणाविहवण्ण-राग-रत्ताइं वत्थाइं धारित्तए, गण्णत्थ एगाए धाउरत्ताए)

परिवायगाणं णो कप्पड अगल्लएण वा चंदणेण वा कुंकुमेण वा
गायं अणुलिंपित्तए, णणत्थ एक्काए गंगामट्टियाए ॥ सू० १८ ॥
मूलम्—तेसि णं परिवायगाणं कप्पड मागहए पत्थए

‘तेसि ण परिवायगाण णो कप्पड—अगल्लएण वा चदणेण वा कुंकुमेण वा गाय
अणुलिंपित्तए’ तेषा गल्ल परिवाजकाना नो कप्पतेऽरणा वा चन्दनेन वा कुंकुमेन वा
गात्रमनुलेप्तुम्—सुगन्धितद्रव्येण गात्राऽनुलेपन सन्यासिना न कपते इत्यर्थ, ‘णणत्थ
एक्काए गंगामट्टियाए’नाऽन्यत्रैकस्या गङ्गामृत्तिकाया—एका गङ्गामृत्तिका वर्जयित्वाऽय
निषेध इत्यर्थ ॥ सू० १८ ॥

टीका—‘तेसि णं’ इत्यादि। ‘तेसि ण’ तेषा खलु ‘परिवायगाणं
कप्पड मागहए पत्थए जलस्स पडिग्गाहित्तए’ परिवाजकाना कप्पते मागध प्रस्थ
जलस्य परिग्रहीतुम्, प्रस्थ परिमाणविशेष, तथाहि—‘दो असईओ पसई, दोहिं पसईहिं

उनके लिये पहिरना अर्जित है। (तेसि ण परिवायगाण णो कप्पड अगल्लएण वा
चदणेण वा कुंकुमेण वा गाय अणुलिंपित्तए णणत्थ एक्काए गंगामट्टियाए) तथा
उन परिवाजकों के लिये अगुरु से, चंदन एवं कुंकुम से शरीर पर लेप करना भी निषिद्ध
है। सिर्फ यदि वे लेप करना चाहे तो एक मात्र गंगा की मिट्टी का लेप कर
सकते हैं ॥ सू १८ ॥

‘तेसि ण’ इत्यादि।

(तेसि णं परिवायगाण) उन प्रत्येक परिवाजकों को अपने उपयोग में लाने
के वास्ते (मागहए पत्थए जलस्स पडिग्गाहित्तए कप्पड) केवल मागधदेश—प्रचलित
प्रस्थप्रमाणमात्र जल लेना कल्पता है। प्रस्थ एक माप का नाम है। कहा भी है—दो

चदणेण वा कुंकुमेण वा गाय अणुलिंपित्तए णणत्थ एक्काए गंगामट्टियाए) तथा ते
परिवाजकाने भाटे अगुरुथी, चंदनथी तेभञ्ज कुंकुथी शरीर पर लेप करवे।
पणु निषिद्ध छे जे ते लेप करवा खाडे तो अेकमात्र गंगानी भाटीने लेप
करी शके छे (सू १८)

“तेसि ण” इत्यादि

(तेसि ण परिवायगाण) ते प्रत्येक परिवाजकाने पेताना उपयोगमा
लेवा भाटे (मागहए पत्थए जलस्स पडिग्गाहित्तए कप्पड) मागध देशमा प्रस्थ-
लित प्रस्थप्रमाणमात्र जल लेवु कल्पे छे ‘प्रस्थ’ अेउ मापनु नाम छे

तुडियाणि वा अंगयाणि वा केऊराणि वा कुंडलाणि वा मड्डं
 वा चूलामणि वा पिण्डित्तए, णणत्थ एगेणं तंविणं पंविणं ।
 तेसिं णं । परिव्वायगाणं णो कप्पइ गंधिमवेडिमपूरिमसघाइमे
 चउव्विहे मल्ले धारित्तए, णणत्थ एगेणं कण्णपूरेणं । तेसिं णं

त्रुटिकानि वा, अङ्गदानि=केयूरान् वा, कुण्डानि वा, मुकुट वा, चूडामणि वा पिनदुम्,
 हारादीनि तेषा परिव्राजकाना न कल्पन्ते परिघातुमित्यर्थः । ' णणत्थ एगेणं तंविणं
 पंविणं ' नाऽन्यत्रैकस्मात्ताम्रमयात्पवित्रकात्-ताम्रमयमङ्गुलयक पवित्रकनामक तु तेषा
 परिधत्तुं कल्पत इति भावः । ' तेसिं णं परिव्वायगाणं, णो कप्पइ गंधिम-वेडिम-
 पूरिम-सघाइमे चउव्विहे मल्ले धारित्तए ' तेषा खलु परिव्राजकाना नो कल्पन्ते प्रथिम-
 वेष्टिम-पूरिम-सङ्घातिमानि चतुर्विधानि मान्यानि धारयितुम्-प्रथेन=प्रथनेन निर्वृत्तं=निर्मितं
 मालारूप प्रथिमम्; वेष्टेन=वेष्टनेन निर्वृत्त वेष्टिमम्, पूरिम=पूरणेन-निर्वृत्तम्, सघातेन
 निर्वृत्त सङ्घातिमम्, एतानि चतुर्विधानि माल्यानि धारयितु न कल्पन्ते इत्यर्थः, ' णणत्थ
 एगेणं कण्णपूरेणं ' नान्यत्रैकस्मात्कर्णपूरकात्-एक पुष्पमय कर्णपूर तेषा न निषिद्धमिति भावः ।

रण विशेष हैं), प्रालव, तीन लरका हार, कटिसूत्र, दशमुद्रिकाएँ, कटक, त्रुटिक-बाजूबध,
 अगद, केयूर, कुडल, मुकुट, चूडामणि, इनका पहिरना भी इन साधुओं को कल्पता नहीं
 है । एक तावे की अगूठी ही इन्हे हाथ की अगुली में धारण करना कल्पता है । (तेसिं
 ण परिव्वायगाणं णो कप्पइ गंधिम-वेडिम-पूरिम-सघाइमे चउव्विहे मल्ले
 धारित्तए, णणत्थ एगेणं कण्णपूरेणं) इन परिव्राजकों को गूथ कर बनाई गई, वेष्टित
 कर बनाई गई, एवं परस्पर दो पूलों को सयुक्त करके बनाई गई, ऐसी चार प्रकार की
 मालाओं का पहिरना भी कल्पता नहीं है । एक पुष्पों का रचित कर्णफूल ही कान में

हार, कटिसूत्र, दश मुद्रिकाओं (वीटी), कटक, त्रुटिक-आभूषण, अगद केयूर,
 कुडल, मुकुट, चूडामणि, अथ पहरेषु येषु आसाधुष्येने कल्पतु नथी अथेक
 ताभानी अगूठी न तेषु हाथनी आगणीमा धारण करयी कटये छे (तेसिं ण
 परिव्वायगाणं णो कप्पइ-गंधिम-वेडिम-पूरिम-सघाइमे चउव्विहे मल्ले धारित्तए
 णणत्थ एगेणं कण्णपूरेणं) आ परिव्राजकेने सुथीने अनावेली, वेष्टित करीने अना-
 वेली, अथ अ उभर पूरीने अनावेली तेभण परस्पर वे पुणेने अेलीने अना
 वेली अथेवी अार प्रकारनी मालाओः पहरेषु कल्पती नथी सिद्धं पुष्पोः अथेक
 कर्णफूल न तेभने कल्पनीय छे (तेसिं ण परिव्वायगाणं णो कप्पइ अमङ्गुण वा

चेव णं अपरिपूए, से वि य णं दिण्णे णां चेव णं अदिण्णे,
से वि य पिचित्तए, णो चेव णं हत्थ-पाय-चरु-चमस-पक्खाल-
णट्टाए सिणाडत्तए वा । तेसिं णं परिव्वायगाणं कप्पड मागहए

स्वच्छ कल्पते, नो चैव सल्ल अग्रहप्रसन्नम्, 'से वि य परिपूए णो चेव ण अपरिपूए'
तदपि च जल परिपूत=उत्तेज गालित कल्पते, नो चैव स्वचपिपूतम्, 'से वि य ण
दिण्णे णो चेव ण अदिण्णे' तदपि च सल्ल त्त कल्पते, न चैव स्वचदत्तम्, 'से वि
य पिचित्तए णो चेव ण हत्थ-पाय-चरु-चमस-पक्खालणट्टाए सिणाडत्तए वा' तदपि
च पालु कल्पते नो चैव सल्ल हस्तपादचरुचमसप्रक्षालनार्थम्, तत्र-हस्तौ पादौ च प्रसिद्धौ। चरु =
अन्नपात्र, यस्मिन् भिक्षाल्न स्थाप्यते। चमसो-दर्विका-परिवेणपात्र 'चमचा' इति प्रसिद्धम्,

है, अतिनिर्मल नहीं होने पर ग्राह्य नहीं हो सकता। (से वि य परिपूए णो चेव ण
अपरिपूए) अतिनिर्मल होने पर भी बल्ल से छाना जाने पर ही कल्पित कहा गया है,
अनठ्ठना पानी अपने उपयोग में लाने का निषेध है। (से वि य ण दिण्णे णो चेव ण
अदिण्णे) छाना हुआ होने पर भी किसी दाता के द्वारा दिया गया ही ग्रहण करने के
योग्य कहा है, बिना दिया हुआ नहीं। (से वि य पिचित्तए णो चेव हत्थ-पाय-चरु-
चमस-पक्खालणट्टाए) दिया गया भी जल का उपयोग केवल पीने के लिये ही करने
की आज्ञा है, हाथ-पैर, चरु-भाजन पात्र एव चमचा धोने के लिये उसका उपयोग विहित
नहीं है, अर्थात् हाथ पैर आदि धोने के काम में उसको नहीं ला सकते, (सिणाडत्तए वा)

अग्रहृत्पसण्णे) अम्बड डोवा छता पल्लु अतिनिर्भण डोय तो ४ आह्व थध
शके छे, अतिनिर्भण न डोय तो आह्व थध शकतु नथी (से वि य परि-
पूए णो चेव ण अपरिपूए) अतिनिर्भण डोवा छता पल्लु वन्थी गणाञ्जेलु
डोय तो ४ इत्थित डडेलु छे वगर गणाथेलु पाण्णी पोताना उपयोगमा
देवानु निषिद्ध छे (से वि य ण दिण्णे णो चेव ण अदिण्णे) गाणेलु डोय
छता पल्लु केध दाता द्वारा अपाञ्जेलु ४ अडेलु उरवा योग्य डडेवामा आण्यु
छे, वगर दीथेलु नडि (से वि य पिचित्तए णो चेव हत्थ-पाय-चरु-चमस-पक्खा-
लणट्टाए) आण्येलु डोय तेवा नलनेा उपयोग पल्लु के ण पीवा माटे ४ कर-
वानी आसा छे, हाथ-पग, अङ्ग-लोअन पात्र, तेमज्ज अमथा घोवा माटे
तेना उपयोग उरवेा विहित नथी, अर्थात् हाथ पग आदि घोवाना काममां
तेना उपयोग उरी शकय नडि (सिणाडत्तए वा) तेमज्ज तेना उपयोग स्नान

जलस्सं पडिग्गाहित्तए, से वि य वहमाणे णो चेव णं अवह-
माणे, से वि य थिमिओदए णो चेव णं कइमोदए, से वि य
वहुप्पसण्णे णो चेव णं अवहुप्पसण्णे, से वि य परिपूए णो

सेइया होइ। चउसेइओ उ कुलओ चउकुलओ पत्थओ होइ ॥ १ ॥ चउपत्थमाढ्य
तह चत्तारि य आढया भवे दीणो।' उया—द्वे असती प्रसृति, दान्या प्रसृतिन्या
सेतिका भवति। चतुप्सेतिकस्तु कुलवधतुप्कुलव प्रस्थो भवति ॥ १ ॥ चतुप्रस्थमाढक
तथा चत्वारि आढकानि भवेद् द्रोण ॥ इति। मागधप्रस्थपरिमित जलं सन्यासिना परिग्रहीतुं
कल्पते इत्यर्थः। 'से वि य वहमाणे णो चेव ण अहमाणे' तदपि च जल वहमान-
नद्यादिस्रोतोवर्ति व्याप्रियमाण वा परिग्रहीतुं कल्पते, नो चैवाऽवहमानम्। 'से वि य
थिमिओदए णो चेव ण कइमोदए' तदपि च स्तिमितोदकं नो चैव सल्ल कर्दमोदकम्,
स्तिमितोदकं=पङ्कसम्पर्करहित कल्पते, यत्र तु कर्दमसम्पर्कोऽस्ति तज्जलं न कल्पते—इत्यर्थः,
'से वि य बहुप्पसण्णे णो चेव णं अवहुप्पसण्णे' तदपि च जल बहुप्रसन्नम्=अति-

असती की एक प्रसृति होती है। दो प्रसृति की एक सेतिका, चार सेतिकाओं का एक
कुलव और चार कुलवों का एक प्रस्थ होता है। यह पहिले समय में काष्ठ का बनता था।
चार प्रस्थों का एक आढक और चार आढकों का एक द्रोण होता है। इनके लिये प्रस्थप्रमाण
जल उपयोग में लेने का विधान किया गया है (से वि य वहमाणे णो चेव ण
अवहमाणे) वह भी वहती हुई नदी आदि का होना चाहिए, बिना वहता हुआ जल लेना
उहें निषिद्ध है। (से वि थिमिओदए णो चेव ण कइमोदए) वह भी यदि स्वच्छ
हो तब ही ग्रहण करने योग्य कहा गया है, कर्दम से मिश्रित नहीं। (से वि य बहुप्प-
सण्णे णो चेव ण अवहुप्पसण्णे) स्वच्छ होने पर भी निर्मल हो तब ही ग्राह्य हो सकता

कहे। पथु छे—जे असतीनी ओक—प्रसृति थाय छे जे प्रसृतिनी ओक सेतिका,
चार सेतिकाओने। ओक कुलव आने, चार कुलवने। ओक प्रस्थ थाय छे आ
अगाउना समयमा लाकडाने बनता छे। चार प्रस्थाने। ओक आढक आने
चार आढकाने। ओक द्रोण थाय छे प्रस्थप्रमाण जलना उपयोगनु विधान
जे उरेलु छे (से वि य वहमाणे णो चेव ण अवहमाणे) ते जल पथु वडेती नदी
आदिनु। डोपु ओधजे, बिना वडेतु जल लेलु तेभने निषिद्ध छे (से वि य
थिमिओदए णो चेव ण कइमोदए) ते पथु जे स्वच्छ छे। य तो ज अडलु करवा
थे। जे उरेलु छे, उर्ध्वमथी मिश्रित नहि (से वि य बहुप्पसण्णे णो चेव णं

मूलम्—ते णं परिच्चायगा एयास्वेणं विहारेणं विहर-
माणा वहुड वासाडं परियायं पाउणंति, पाउणित्ता कालमासे
कालं किच्चा उक्कोसेणं वंभलोए कप्पे देवत्ताए उववत्तारो भवंति ।

टीका—‘ते णं परिच्चायगा’ इत्यादि । ‘ते णं परिच्चायगा’ ते सत्त्व
परिवाजका ‘एयास्वेणं विहारेणं विहरमाणा’ एतद्रूपण=उत्तररूपेण विहागेण विहरत,
‘वहुड वासाडं परियायं पाउणति’ वहनि वर्षाणि पर्यायं पालयन्ति, ‘पाउणित्ता
कालमासे कालं किच्चा’ पालयिवा कालमासे कालं कृत्वा ‘उक्कोसेणं वंभलोए कप्पे
देवत्ताए उववत्तारो भवति’ उक्कोसेणं ब्रह्मलोके कप्पे देवत्तेनोपपत्तारो भवन्ति, ‘तहिं

इस निमित्त प्राप्त क्रिये गये जल को पान अथवा स्नान के काम में लाने का
निषेध है ॥ सू १९ ॥

-- ‘ते णं परिच्चायगा’ इत्यादि ।

(ते णं परिच्चायगा) ये परिवाजक (एयास्वेणं विहारेणं विहरमाणा) इस
प्रकार क विहार से निचरण करते हुए अर्थात् इस प्रकार की परिस्थिति में रहते हुए
(वहुड वासाडं परियायं पाउणति) अपने जीवन के बहुत वर्षों को इसी पर्याय का पालन
करते २ जन व्यतीत करते हैं, तत्र (कालमासे कालं किच्चा) कालमास के उपस्थित होने
पर मर कर वे (उक्कोसेणं) ज्यादा से ज्यादा (वंभलोए कप्पे देवत्ताए उववत्तारो भवति)
ब्रह्मलोक नामक पंचमरूप में देवता की पर्याय से उत्पन्न हो जाते हैं । (तहिं तेसिं गईं
तहिं तेसिं ठिईं) वही पर उनकी गति एव वही पर उनकी दिव्यता आकां में वर्णित की

येल जलने पीवा अथवा स्नान क्वाना काममा लेवानो निषेध छे (सू १६)

“ते णं परिच्चायगा” इत्यादि

(ते णं परिच्चायगा) ये परिवाजक (एयास्वेणं विहारेणं विहरमाणा) आ
प्रकारना विहारयी विचरण छे करता करता, अर्थात्—आ प्रकारनी परिस्थितिमा
रहेता (वहुड वासाडं परियायं पाउणति) पीताना एवमना धरुा परमाने एव
पर्यायना पालनमा व्यतीत करे छे त्यारे (कालमासे कालं किच्चा) काण अव-
भरे काण करीने तेओ (उक्कोसेणं) वधारेमा वधारे (वंभलोए कप्पे देवत्ताए उव-
वत्तारो भवति) ब्रह्मलोके नामना पाचमा कृपमा देवतानी पर्यायथी उत्पन्न
थईं जय छे, (तहिं तेसिं गईं तहिं तेसिं ठिईं) त्या तेमनी गति तेमज त्या

आढए जलस्स पडिग्गाहित्तए, से वि य वहमाणे णो चेव ण
अवहमाणे, जाव णं अदिण्णे, सेवि य हत्थपायचरुचमसपक्खा-
लणट्टयाए, णो चेव णं पिचित्तए सिणाइत्तए वा ॥ सू० १९ ॥

एतेषा प्रक्षालनार्थं स्नातु वा न कल्पते इति। 'तेसिं ण परिव्यायगाण कप्पड मागहए आढए
जलस्स पडिग्गाहित्तए' तेषा खलु परिभाजकाना कल्पते मागधमाढकं जलस्य परिग्रहीतुम्,
'से वि य वहमाणे णो चेव णं अवहमाणे जाव णं अदिण्णे' तदपि च वहमान
नो चैव स्नचवहमान यावत्खलु अदत्तम्, यावच्छब्दात्कर्दमरहित, स्वच्छ, वस्त्रगान्धित च
कल्पते, अवहमानादिक तु न कल्पते इति बोध्यम्। 'से वि य हत्थ-पाय-चरु-चमस-
पक्खालणट्टयाए' तदपि च हस्त-पाद-चरु-चमस-प्रक्षालनार्थम्, 'णो चेव ण
पिचित्तए सिणाइत्तए वा' नो चैव खलु पातु स्नातु वा ॥ सू० १९ ॥

और न उसका उपयोग स्नान करने में ही किया जाता है। इसी प्रकार (तेसिं ण परि-
व्यायगाण कप्पड मागहए आढए जलस्स पडिग्गाहित्तए से वि य वहमाणे णो
चेव णं अवहमाणे जाव णं अदिण्णे, से वि य हत्थ-पाय-चरु-चमस-पक्खालण-
ट्टयाए, णो चेव णं पिचित्तए सिणाइत्तए वा) इन साधुओं के लिये मगधदेशीय प्रस्थ
प्रमाणमात्र जल ही हाथ, पैर, पात्र, चम्मच आदि धोने के लिये ग्राह्य बतलाया गया है।
वह भी बहता हुआ ही होना चाहिये—स्थिर नहीं। उसमें भी वह अतिस्वच्छ, एव वस्त्र
से छना हुआ तथा दाता के द्वारा दिया गया होना चाहिये, इससे भिन्न नहीं। ऐसा जल
ही हस्त, पाद, चरु एव चमचा के धोने के काम में आ सकता है, अन्यथा नहीं। अत

करवाभा पशु करी शक्य नहि अे प्रकारे (तेसिं ण परिव्यायगाण कप्पड माग
हए आढए जलस्स पडिग्गाहित्तए से वि य वहमाणे णो चेव णं अवहमाणे जाव
णं अदिण्णे से वि य हत्थ-पाय-चरु-चमस-पक्खालणट्टयाए णो चेव णं पिचित्तए
सिणाइत्तए वा) आ साधुओने भाटे मगधदेशीय प्रस्थप्रभाषु मात्र जल
छाय पग पात्र चमचा आदि धोवाने भाटे ग्राह्य गताववाभा आव्यु छे ते
पशु वडेतु छाय ते ज छायु न्नेधओ, न वडेतु छाय ते नहि तेभा पशु
ते अतिस्वच्छ तेभज वञ्चथी गाणेलु तथा दाता द्वारा अपाओलु छायु
न्नेधओ, तेनाथी पीणु नहि ओवु जलज छाय, पग, चरु तेभज चमचाने
धोवाना क्षमभा आवी शके छे, पीणु नहि आम अे निमित्ते प्राप्त करा

पुरिमतालं णयर संपट्टिया विहाराए ॥ सू० २१ ॥

मूलम्—तए णं तेसिं परिव्वायगाणं तीसे अगामि-
याए छिण्णोवायाए दीहमद्धाए अटवीए कंचि देसंतरमणुपत्ताणं

कूलेण ' गगाया महानया उभयत कूत्तन=उभयतटाम्याम, ' कपिल्लपुराओ णयराओ
पुरिमतालं णयरं सपट्टिया विहाराए ' कापिन्यपुर नगर मुग्गिमतालं नगर नप्रस्थिता
विहाराय=वित्तुम् ॥ सू० २१ ॥

टीका—' तए ण ' इत्यादि । ' तए णं ' तत् सट्ट ' तेसिं परिव्वायगाणं ' ?
तेषा परिग्राजकानाम्, ' तीसे अगामियाए ' तस्या अगामिकाया =ग्राममन्वथरहिताया -
ग्रामाद्दूरवर्ति या इत्यर्थे, ' छिन्नोवायाए ' छिन्नोवापाताया =जनागमनिर्गमरहिताया -
निर्जनाया इत्यर्थे, ' दीहमद्धाए ' दीर्घांश्व्याया =दीर्घमागाया -प्रा तरापरिहताया इत्यर्थे,
' अटवीए ' अटव्या =वनस्य ' कंचि देसंतरमणुपत्ताण ' क्विचिदेशान्तरमनुप्राप्तानाम्=

महाण्डेए उभओ कूलेण) गगा नदी के दोनों तरों से होकर, (कपिल्लपुराओ णयराओ
पुरिमतालंणयर सपट्टिया) कापिन्यपुर नगर से पुरिमताल नगर की ओर विहार के त्रिप्रे
निक्के ॥ सू० २१ ॥

' तए ण ' इत्यादि ।

(तए ण) इसके वाट (तेसिं परिव्वायगाणं) उन परिग्राजका का (तीसे अगो-
मियाए अटवीए) जन कि वे चलते २ एक भयकर अटवी में आ पहुँचे, जो ग्राम के
मन्वथ से सर्वथा रहित थी—ग्राम से बहुत दूर थी, (छिन्नोवायाए) उसलिये यहा पर मनु-
ष्यों का संचार बिलकुल ही नहीं था, अथान् वह अटवी निर्जन थी, (दीहमद्धाए) रास्ते इसके
बड़े निकट थे, (कंचि देसंतरमणुपत्ताण) इसका थोडा सा ही भाग इन्होंने तय कर पाया

७५० थधने (कपिल्लपुराओ णयराओ पुरिमतालंणयर सपट्टिया) कापिन्यपुर
नगरथी पुरिमताल नगरनी तरइ विहार भाटे नीअथ्या (सू २१)

" तए ण " इत्यादि

(तए ण) त्थार पछी (तेसिं परिव्वायगाण) ते परिग्राजको, (तीसे अगो-
मियाए अटवीए) त्थारे आलता आलता ओक लय ८० अटवी (वन)मा आवी
पडोअथा के ले वन गाभना मज धयी सर्वथा रहित छत्तु—गाभथी णहुं हूर
छत्तु (छिन्नोवायाए) तेथी अही मनुष्योने म थार बिलकुल न नडोतो ओटले
डे ते वन निर्जन छत्तु (दीहमद्धाए) तेना अस्ता णहुं विट्ट छत्ता (कंचि

तहिं तेसिं गई, तहिं तेसिं ठिई । दससागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ।
सेसं तं चेव ॥ सू० २० ॥

। मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं अम्मडस्स परि-
व्वायगस्स सत्त अंतेवासिसयाइं गिम्हकालसमयंसि जेट्टामूलमा-
संमि गंगाए महानईए उभओकूलेणं कंपिल्लपुराओ णयराओ

तेसिं गई, तहिं तेसिं ठिई' तत्र तेपा गति, तत्र तेपा स्थिति । 'दस सागरोवमाइ
ठिई पण्णत्ता' दस सागरोपमानि स्थिति प्रज्ञता, 'सेस त चेव' शेष तदेव ॥ सू० २० ॥

टीका—तेणं कालेण तेण समएण' इत्यादि । 'तेण कालेण समएणं'
तस्मिन् काले तस्मिन् समये 'अम्मडस्स परिव्वायगस्स सत्त अंतेवासिसयाइ'
अम्बडस्य परिव्राजकस्य समान्तेवासिगतानि=सप्तशतमर्याका अन्तेवायिन-शिष्या,
'गिम्हकालसमयंसि जेट्टामूलमासमि' श्राद्धकालसमये ज्येष्ठामूलमासे=ज्येष्ठानक्षत्रे
मूलनक्षत्रे वा पूर्णिमा यस्मिन् तस्मिन्, ज्येष्ठमासे इत्यर्थ । 'गंगाए महानईए उभओ-

गई है । इस स्थिति का प्रमाण (दस सागरोवमाइ) वहा १० दस सागर है, (सेस त
चेव) यावत् ये आराधक नहीं होते है ॥ सू० २० ॥

'तेणं कालेण तेण समएण' इत्यादि ।

(तेण कालेण समएण) उस काल में एव उस समय में (अम्मडस्स परिव्वा-
यगस्स) अम्बड नामक परिव्राजक (सन्त्यासी) के (सत्त अंतेवासिसयाइ) सात सौ शिष्य
(गिम्हकालसमयंसि) श्राद्ध काल के समय (जेट्टामूलमासमि) ज्येष्ठ मास में (गंगाए

तेमनी स्थिति शाश्वतीमा वर्षान् करेदी छे आ स्थितिनु प्रभाणु (दस साग-
रोवमाइ) त्या १० दस सागरनु छे (सेस त चेव) यावत् तेओ आराधक
डोता नथी (सू २०)

“तेण कालेण तेण समएण” इत्यादि

(तेण कालेण तेण समएण) ते प्राणमा तेभञ्ज ते सभयमा (अम्मडस्स
परिव्वायगस्स) अम्बड नामना परिव्राजक (सन्त्यासी)ना (सत्त अंतेवासिस-
सयाइ) सातसो शिष्य (गिम्हकालसमयंसि) श्राद्ध कालना सभयमा (जेट्टामूलमा-
समि) जेठ भर्दिनामा (गंगाए महानईए उभओ कूलेण) गंगा नदीना णन्ने तट

मूलम्—एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमीसे अगामियाए जाव अडवीए कंचि देसंतरमणुपत्ताणं से उदए जाव झीणे, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमीसे अगामियाए

टीका—ते परिप्राजका परस्पर यद्वान्निपुस्तत्रिदिशति—'एवं खलु देवाणुप्पिया' इत्यादि । 'एव खलु देवाणुप्पिया !' एव खलु हे देवानुप्पिया ! 'अम्हं इमीसे अगामियाए जाव अडवीए' अस्माकमया अप्रामिकाया यावदटव्या, 'कचि-देसंतरमणुपत्ताणं मे उदए जाव झीणे' किञ्चिद्देशान्तरमनुप्राप्तानां तत् उदकं यावत् क्षीणम्, 'त सेयं खलु देवाणुप्पिया' तत्=नस्मात् श्रेयं खलु हे देवानुप्पिया ? 'अम्हं इमीसे अगामियाए जाव अडवीए' अस्माकमस्यामप्रामिकाया यावदटव्याम्, नहीं देखकर, (अण्गमण्णं महारंति) परस्पर में एक दूसरे का आह्वान करने लगे, (सदा-वित्ता एव वयासी) और आह्वान करके इस प्रकार बोले ॥ सू० २३ ॥

एवं खलु देवाणुप्पिया !' इत्यादि ।

(एव खलु देवाणुप्पिया !) हे देवानुप्पियो ! यह बात बिलकुल ठीक है कि (अम्हं इमीसे अगामियाए जाव अडवीए कंचिदेसंतरमणुपत्ताणं से उदए जाव झीणे) हम लोगों का, उस अप्रामिक अटवी में कि अभी जिसे थोड़ी ही तय की है, वह अपने २ स्थान से लाया हुआ जल अब समाप्त हो चुका है, (त सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमीसे अगामियाए जाव अडवीए उदगदायारस्स सच्चओ समंता मग्गणगवेसणं करित्तए) ऐसी हालत में हमारे—तुम्हारे लिये यही एक कल्याणकारक मार्ग है कि हम इस अप्रामिक एव निर्जन अटवी में सर्व प्रकार से चारों ओर किसी जल-

जोलाववा लाय्या, (सदावित्ता एव वयासी) अने जोलावी आ प्रक्षारे ढडेवा लाय्या (सू० २३)

“एव खलु देवाणुप्पिया ।” इत्यादि

(एव खलु देवाणुप्पिया ।) हे देवानुप्पियो ! ये बात बिलकुल ठीक है कि (अम्हं इमीसे अगामियाए जाव अडवीए कचि देसंतरमणुपत्ताणं से उदए जाव झीणे) आपल्ले आ वनमा थोड़ीक इर आलीने आया छीये, अने उभय्ठा वराड व रीवाया छीये, त्या तो चोताना स्थानेथी लावेहु याणी समाप्त थई गथु (त सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमीसे अगामियाए जाव अडवीए उदगदायारस्स सच्चओ समंता मग्गणगवेसणं करित्तए) येथी हालतमा अमारा

से पुव्वग्गहिए उदए अणुपुव्वेणं परिभुंजमाणे झीणे ॥ सू० २२ ॥

मूलम्—तए णं ते परिव्वायगा झीणोदगा समाणा तण्हाए पारव्वमाणा २ उदगदायारमपस्समाणा अण्णमण्णं सद्दावेत्ति, सद्दावित्ता एवं वयासी ॥ सू० २३ ॥

कचित् प्रदेशमागताना 'से' तत् 'पुव्वग्गहिए' पूर्वगृहीतम् 'उदए' उदकम् 'अणुपुव्वेण' आनुपूर्व्येण 'परिभुजमाणे' परिभुज्यमान 'झीणे' क्षीग=क्षय प्रातम् ॥ सू० २२ ॥

टीका—'तए ण ते परिव्वाया' इत्यादि । 'तए णं ते परिव्वाया' तत खलु ते परिवाजका 'झीणोदगा समाणा' क्षीणोदका सन्त, 'तण्हाए' तण्हाया=पिपासया, 'पारव्वमाणा २' प्रारभ्यमाणा २=पीड्यमाना २=व्याकुलीभवन्त, व्याकुलीभावेहे तुर्गर्भविशेषणमाह—'उदगदायारमपस्समाणा' उदकदातारमपदयन्त, 'तेषाम-दत्ताप्राहित्वादिति भाव, 'अण्णमण्णं सद्दावेत्ति' अन्योऽन्य शब्दयन्ति=परस्परमाह्वयन्ति, शब्दयित्वा=आह्वय 'एव वयासी' एवमवादिपु—एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण वदन्ति स्म ॥ सू० २३ ॥

था कि इतने में (से पुव्वग्गहिए उदए अणुपुव्वेण परिभुजमाणे झीणे) चलते समय अपने स्थान से लाया हुआ जल क्रमश पीते २ खतम हो गया ॥ सू० २२ ॥

'तए ण से परिव्वाया' इत्यादि ।

(तए ण) इस के बाद (ते परिव्वाया झीणोदगा समाणा) वे परिवाजक कि जिनका पानी बिलकुल समाप्त हो चुका है, (तण्हाए पारव्वमाणा २) पुन तृषा से अर्थात् पीडित-व्याकुल होते हुए (उदगदायारमपस्समाणा) उस समय किसी पानी दाता को

देसतरमणुपत्ताणं) तेना थोडा लाग व तेओ आल्या हे ओटलाभा (से पुव्वग्गहिए उदए अणुपुव्वेण परिभुजमाणे झीणे) आसती वणते पोताना स्थानेथी लावेव वल डणवे डणवे पीता पीता पूरू थध गयु (सू २२)

" तए ण ते परिव्वाया " इत्यादि ।

(तए ण) त्थार पछी (ते परिव्वाया झीणोदगा समाणा) ते परिवाजके हे जेभना पाछी गिलकुल समाप्त थध वूठया छे, (तण्हाए पारव्वमाणा २) तेओ तरसथी गहु व पीडित-व्याकुल थधने (उदगदायारमपस्समाणा) ते सभये डोड पाछीना हाताने न जेवाथी (अण्णमण्णं सद्दावेत्ति) परस्पर ओक पीनेने

मलभमाणा दोच्चंपि अप्णमणं सदावेति, सदावित्ता
एवं वयासी ॥ सू० २४ ॥

मूलम्—इह णं देवाणुप्पिया ! उदग्गदातारो णत्थि,
तं णो खलु कप्पइ अम्ह अदिण्णं गिण्हित्तए, अदिण्णं साइ-

अप्णमण्ण सदावेति ' द्वितीयमपि=द्वितीयवारमपि अन्योऽन्य शब्दयन्ति, 'सदावित्ता'
शब्दयित्वा 'एव वयासी' एवमवादिषु ॥ सू० २४ ॥

टीका—'इह ण देवाणुप्पिया !' इत्यादि । 'इह णं देवाणुप्पिया !' इह
खलु हे देवानुप्रिया ! 'उदग्गदातारो णत्थि' उदग्गदातारो न सन्ति । 'तं णो खलु
कप्पइ अम्ह अदिण्णं गिण्हित्तए' तत्=तरमात् नो खलु कप्पतेऽस्माकमदत्तम् उदक
ग्रहीतुम्, 'अदिण्णं साइजित्तए' अदत्तम् उदक स्वादयितुं=पातुम्, 'त मा ण अम्हे
इयाणि' तन्मा खलु वयमिदानीम्, 'आवइकालपि' आयतिकालमपि=आगामिनि

भी पानी का दाता नहीं मिला तब उन्होंने द्वितीयवार भी परस्पर में एक-दूसरे का आह्वान
क्रिया, और आह्वान करके इस प्रकार बोले ॥ सू० २४ ॥

'इह णं देवाणुप्पिया' इत्यादि ।

(इह णं देवाणुप्पिया ! उदग्गदातारो णत्थि) हे देवानुप्रियो ! प्रथम तो इस
अटनी में एक भी उदकदातार नहीं है, (तं णो खलु कप्पइ अम्ह अदिण्णं गिण्हित्तए)
दूसरे-हम लोगों को अदत्त जल ग्रहण करना उचित नहीं है, (अदिण्णं साइजित्तए)
कारण कि अदत्त जल का पान करना हम लोगों की मर्यादा से सर्वथा विरुद्ध है । (त मा
णं अम्हे इयाणि आवइकालं पि अदिण्णं गिण्हामो अदिण्णं साइज्जामो मा ण

दातार भण्थे नहि त्थारे तेओओे पीएण वार पणु परएपर ओकणीजने
ओलाओ्या, ओलापीने आ प्रकारे कडेवा लाओ्या (सू० २४)

"इह ण देवाणुप्पिया" इत्यादि

(इह ण देवाणुप्पिया) हे देवानुप्रियो ! प्रथम तो आ अटनीमा ओकेथ
याणीने दातार नथी, (तं णो खलु कप्पइ अम्ह अदिण्णं गिण्हित्तए) पीणु
आपणुने अदत्त जल अडणु करणु उचित नथी (अदिण्णं साइजित्तए)
करणु हे अदत्त जलने पीणु ते आपणी भयादाथी सर्वथा विरुद्ध छे
(त मा ण अम्हे इयाणि आवइकालपि अदिण्णं गिण्हामो अदिण्णं साइज्जामो मा

जाव अडवीए उदगदायारस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करित्तए—त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता तीसे अगामियाए जाव अडवीए उदगदायारस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेंति, करित्ता उदगदायार-

‘उदगदायारस्स सव्वओ समता मग्गणगवेसणं करित्तएत्ति कट्टु’ उदकदातु सर्वत समन्तात् मार्गणगवेसणं कर्तुम् इति कृत्वा, ‘अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति’ अन्योऽन्यस्य अन्तिके एतमर्थं प्रतिशृण्वन्ति=स्वीकुर्वन्ति, ‘पडिसुणित्ता’ प्रतिश्रुय ‘तीसे अगामियाए जाव अडवीए उदगदायारस्स सव्वओ समता मग्गणगवेसणं करेंति’ तस्याम् अग्रामिकाया यावददृश्याम् उदकदातु सर्वत समन्ताद् मार्गणगवेसणं कुर्वन्ति, ‘करित्ता’ कृत्वा, ‘उदगदायारमलभमाणा’ उदकदातारम् अलभमाना, ‘दोच्चपि

दाता की मार्गगा एव गवेसणा करें, (त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स अतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति) इस प्रकारकी की गई सलाह सवने एरुमत होकर मान ली। (पडिसुणित्ता तीसे अगामियाए जाव अडवीए उदगदायारस्स सव्वओ समता मग्गणगवेसणं करेंति) पश्चात् उस सलाह क अनुसार वे सप्त उस अग्रामिक अटवी में सर्व प्रकार से चारों ओर पानी के देने वाले दाता की गवेसणा करने मे सलग्न हो गये। (करित्ता उदगदायारमलभमाणा दोच्चपि अण्णमण्णं सहावेति सहावित्ता एवं वयासी) गवेसणा करते २ जब उन्हें कोई

तभारा भाटे ये न् एक कल्याणकारक मार्ग छे के आपणे आ अग्रामिक तेमन् निर्जन वनमा सर्व प्रकारथी चारे डारे कोध न् लना हातारनी मार्गेषु तेमन् शोध करीये (त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स अतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति) आ प्रकारनी करेली सलाह यथाये एकमत थधने मानी लीधी पथी (पडिसुणित्ता तीसे अगामियाए जाव अडवीए उदगदायारस्स सव्वओ समता मग्गण गवेसणं करेंति) ते सलाहने अनुसरीने ते यथा ते अग्रामिक अटवी (वन)मा सर्व प्रकारथी चारे डारे पाणी देवावाजा हातारनी शोध करवाभा सलग्न थध गथा (करित्ता उदगदायारमलभमाणा दोच्चपि अण्णमण्णं सहावेति सहावित्ता एव वयासी) शोध करता करता पथु तेमने न्यारे कोध पथु पाणीने।

णियाओ य, करोडियाओ य, भिसियाओ य, छण्णालए य,
अंकुसए य, केसरियाओ य, पवित्तए य, गणेत्तियाओ य, छत्तए
य, वाहणाओ य, पाउयाओ य, धाउरत्ताओ य एगंते एडित्ता,
गंगं महाणडं ओगाहित्ता, वालुयासथारए सथरित्ता, संलेहणा-

य ' करोटिकाश्च=सृण्मयभाजनविशेषान्, ' भिसियाओ य ' वृषिकाश्च=उपवेशनपट्टिका,
' छण्णालए य ' पण्णालिनि च=त्रिकाष्टिका, ' अंकुसए य ' अङ्गुष्ठाश्च=आरू-
पणिका -वृक्षपट्टवाधाकर्षणसाधनविशेषान्, देवार्चने पत्रपुष्पफलयना मन्त्रहोममङ्गुष्ठाका
उपयुज्यन्ते, ' केसरियाओ य ' केसरिकाश्च=प्रमार्जनार्थानि वस्त्ररण्डानि, ' पवित्तए य '
पवित्रकाणि=ताम्रमयमुष्टिका, ' गणेत्तियाओ य ' हस्तधार्या रत्नमाला, ' गणेत्तिया '
इति हस्तार्थस्त्रमालार्थे देवीयवच्च, ' उत्तए य ' उत्तणि च ' वाहणाओ य '
उपानहश्च, ' पाउयाओ य ' पादुकाश्च=काष्ठपादुका, ' धाउरत्ताओ य ' धातुत्ताश्च=
गैरिकोपरञ्जिता, आटिका =व्यासिपग्निधानीयवस्त्राणि, एतानि सर्वाणि ' एगंते एडित्ता '
एकान्ते त्यक्त्वा, ' गंगं महाणडं ओगाहित्ता ' गङ्गामहानदीमवगाह=गङ्गाया महानवामन-
तीर्थ- ' वालुयासथारए सथरित्ता ' वालुकास्तारकान् मस्तोर्य, ' संलेहणाञ्जिसियाण ' मन्त्रना-

मिठी के बने हुए पात्रविशेषों को, वृषिकाओं-बैठने के पाटियों को, तिपाइयों को, देवों
का पूजा के लिये पत्र-पुष्पादिकों के गिराने के वास्ते मद्रा पास म रहनेवाली छोटी सी
अङ्गुष्ठा को, केसरिका को-प्रमार्जन करने के काम में आनेवाले बब के सड़ों को, तामे
की मुद्रियों को, मुमरिनियों को, छत्रों को, जूतों को, काष्ठ की पादुकाओं को एवं गैरि-
कधातु से रक्त पहिरन की धोलियों को एकान्त में छोड़कर महानदी गंगा को पारकर
(वालुयामथारए सथरित्ता) उसके तट पर वालुका का मथारा निचोरे और उस पर

भाजाओने, करोटिकाओ-भाटीना भनेला पात्र विशेषेने, वृषिकाओ-उपवेशना
पाटलाओने, त्रिपार्श्वओने (घोडीने), देवेने पृथ निमित्त पत्र, पुष्प आदि
राधवा भाटे सहा पाने रहेवावाणी नानी मरणी अ कुशिलने, देशिकाओने-
प्रमार्जन क्वाना काममा आववावाणा पत्रना वटकाओने, ताभानी
मुद्रियोंने, मुमरिनियोंने, छत्रोंने, जूताने, लाडुआनी पादुकाओने,
तेमज गेड रगेला पडेखाना धोतियाओने ओक ठेकाणे राणी धर्धने
मडानदी गंगाने उतरीने (वालुयासथारए सथरित्ता) तेना तट उपर रैतीना

जित्तए, तं मा णं अम्हे इयाणि आवइकालं पि अदिण्णं
गिण्हामो, अदिण्णं साइज्जामो, मा णं अम्हं तवलोवे भविस्सइ।
तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! तिदंडं, कुंडियाओ य, कंच-

समयेऽपि 'अदिण्ण गिण्हामो' अदत्तं गृह्णीम = अदत्तमुदकं न स्वीकुर्म, 'अदिण्ण
साइज्जामो' अदत्तं स्वादयाम = अदत्तं जलं मा स्वादयाम इत्यवयव, 'मा णं अम्हं
तवलोवे भविस्सइ' मा खलु अस्माकं तपोलोपो भविष्यति, अदत्तस्याग्रहणेऽनास्वादाने
चास्माकं तपोलोपो न भविष्यतीत्यर्थः । 'तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया !' ततः
तस्मात् श्रेयं खलु अस्माकं हे देवानुप्रिया ! 'तिदंडय' त्रिदण्डकं 'कुंडियाओ य'
कुण्डिकाश्च = कमण्डलून्, 'कचणियाओ य' काञ्चनिकाश्च = रत्नाक्षमालिका, 'करोडियाओ

अम्हं तवलोवे भविस्सइ) तथा हम सब लोगों का यह भी दृढ निश्चय है कि आगामी
काल में भी हम सब बिना दिया हुआ जल न ग्रहण करें और न उसे पिये, क्यों कि इस
प्रकार के आचरण से हमारी तपस्या का लोप हो जायगा, अतः वह भी सुरक्षित रहे इस
अभिप्राय में हममें से किसी को भी अदत्त जल ग्रहण नहीं करना चाहिये और न उसे पीना
ही चाहिये। (तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! तिदंडं कुंडियाओ य, कचणियाओ य,
करोडियाओ य, भिसियाओ य, छणालए य, अकुसए य, केसरियाओ य, पवि-
त्तए य, गणेत्तियाओ य, छत्तए य, वाहणाओ य, पाउयाओ य, धाउरत्ताओ य,
एगते एडित्ता गग महानइ ओगाहित्ता) इसलिये हे देवानुप्रियो ! अब हम सब की मलाई
इसी में है कि हम सब त्रिदण्डों को, कमण्डलुओं को, रत्नाक्ष की मालाओं को, करोडिकाओं-

ण अम्हं तवलोवे भविस्सइ) तथा आपणुं दृढनिश्चयी त्रिदण्डे टे लविण्यकाणमा
पणुं दीधेणुं न डोयं येणुं जलं अदत्तं कुरुवुं नहिं अने पीवुं नहिं, केमंके
ये प्रकारना आचरण्णथी आपणुं तपस्यानां दोषं यथं जशे माटे ते
सुरक्षितं भवेत्ते येवा अभिप्रायथी आपणुमाणां डोषं येणुं अदत्तं जलं
अदत्तं न कुरुवुं नोथं अने ते पीवुं पणुं न लोभं ये (तं सेयं खलु अम्हं
देवाणुप्पिया ! तिदंडं, कुंडियाओ य, कचणियाओ य, करोडियाओ य, केसरियाओ य,
पवित्तए य, गणेत्तियाओ य, छत्तए य, वाहणाओ य, पाउयाओ य, धाउरत्ताओ
य एगते एडित्ता गग महानइ ओगाहित्ता) ये माटे हे देवानुप्रियो ! इवे
आपणुं ललाधं येमां न छे हे आपणुं त्रिदण्डे, रत्नाक्षणी

णियाओ य, करोडियाओ य, भिसियाओ य, छणालए य,
अंकुसए य, केसरियाओ य, पवित्तए य, गणेत्तियाओ य, छत्तए
य, वाहणाओ य, पाउयाओ य, धाउरत्ताओ य एगंते एडित्ता,
गंगं महाणडं ओगाहित्ता, वालुयासंथारए संथरित्ता, संलेहणा-

य' करोटिकाध=मृण्मयभाजनविशेषान्, 'भिसियाओ य' वृषिकाध=उपवेशनपट्टिका,
'छणालए य' पणाल्लिफानि च=त्रिकाष्टिका, 'अंकुसए य' अङ्कुशकाध=आरु-
पणिका -वृक्षपल्लवाद्यार्कणसाधनविशेषान्, देवार्चने पत्रपुष्पफलाना मन्त्रहार्यमङ्कुशका
उपयुज्यन्ते, 'केसरियाओ य' केशरिकाध=प्रमार्जनार्थानि वस्त्रखण्डानि, 'पवित्तए य'
पवित्रकाणि=ताम्रमयमुष्टिका, 'गणेत्तियाओ य' हस्तधार्या रुद्राक्षमाला, 'गणेत्तिया'
इति हस्तधार्यरुद्राक्षमालार्ये देशीयशब्द, 'छत्तए य' छत्राणि च 'वाहणाओ य'
उपानहध, 'पाउयाओ य' पादुकाध=काष्ठपादुका, 'धाउरत्ताओ य' धातुरत्ताध=
गैरिकोपरञ्जिता, शट्टिका =मन्यासिपरिधानीयवस्त्राणि, एतानि सर्वाणि 'एगंते एडित्ता'
एकान्ते त्यक्त्वा, 'गंग महाणडं ओगाहित्ता' गङ्गामहानदीमवगाह=गङ्गाया महानद्यामन-
नार्य- 'वालुयासंथारए संथरित्ता' वालुकास्तारकान् मस्तौर्य, 'संलेहणाञ्जिसियाणं' मलेखना-

मिठी के बने हुए पात्रविशेषों को, वृषिकाओं-बैठने के पाटियों को, तिपाइयों को, देवों
की पूजा के लिये पत्र-पुष्पादिकों के गिराने के वास्ते सदा पास में रहनेवाली छोटी सी
अङ्कुशिका को, केशरिका को-प्रमार्जन करने के काम में आनेवाले बल के खटों को, तामे
की मुद्रगियों को, सुमरिनियों को, छत्रों को, जूतों को, काष्ठ की पादुकाओं को एत्र गैरि-
कधातु से रक्त पहिने की धोतियों को एकान्त में ओडकर महानदा गया को पारकर
(वालुयासंथारए संथरित्ता) उसके तट पर वालुका का मयारा निजरे और उस पर

भाजाओने, कशेटिकाओ-भाटीना अनेला यात्र विशेषेने, वृषिकाओ-असवाना
पाटलाओने, त्रिधाधओने (घाडीने), देवाने पूज निमित्त पत्र, पुष्प आदि
राखवा भाटे सदा पासे रहैवावाणी नानी सरणी अंकुशिकाने, देशरिकाओने-
प्रमार्जन क्वाना वाममा आववावाणा वस्त्रना उटटाओने, ताषानी
मुहरिओने, सुमरिनिओने, छत्रोने, जेडाने, लाडडानी पादुकाओने,
तेमज जेइ रजेला पहरेवाना धोतियाओने अेक डेवाले राणी दधने
भडानडी अगाने उतरीने (वालुयासंथारए संथरित्ता) तेना तट उपर देतीना

जित्तए, तं मा णं अम्हे इयाणि आवडकालं पि अदिण्णं
गिण्हामो, अदिण्णं साइज्जामो, मा णं अम्हं तवलोवे भविस्सइ।
तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया। तिट्ठं, कुडियाओ य, कंच-

समयेऽपि 'अदिण्ण गिण्हामो' अदत्तं गृह्णीम = अदत्तमुदकं न स्वीकुरुम, 'अदिण्ण
साइज्जामो' अदत्तं स्वादयाम = अदत्तं जलं मा स्वादयाम इत्यन्वयः, 'मा णं अम्हं
तवलोवे भविस्सइ' मा खलु अस्माकं तपोलोपो भविष्यति, अदत्तस्याग्रहणेऽनास्वादाने
चास्माकं तपोलोपो न भविष्यतीत्यर्थः। 'त सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया।' तत् =
तस्मात् श्रेयं खलु अस्माकं हे देवानुप्रिया! 'तिट्ठं' त्रिदण्डकं 'कुडियाओ य'
कुण्डिकाध = कमण्डलुन्, 'कचणियाओ य' काञ्चनिकाध = रद्राक्षमालिका, 'करोडियाओ

अम्हं तवलोवे भविस्सइ) तथा हम सब लोगों का यह भी दृढ निश्चय है कि आगामी
काल में भी हम सब बिना दिया हुआ जल न ग्रहण करें और न उसे पियें, क्यों कि इस
प्रकार के आचरण से हमारी तपस्या का लोप हो जायगा, अतः वह भी सुरक्षित रहें इस
अभिप्राय से हममें से किसी को भी अदत्त जल ग्रहण नहीं करना चाहिये और न उसे पीना
ही चाहिये। (त सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया। तिट्ठं कुडियाओ य, कचणियाओ य,
करोडियाओ य, भिसियाओ य, छण्णालए य, अकुमए य, केसरियाओ य, पवि
त्तए य, गणेत्तियाओ य, छत्तए य, वाहणाओ य, पाउयाओ य, धाउरत्ताओ य,
एगते एडित्ता गग महानइ ओगाहित्ता) इसलिये हे देवानुप्रियो! अब हम सब की भलाई
इसी में है कि हम सब त्रिदण्डों को, कमण्डलुओं को, रद्राक्ष की मालाओं को, करोटिकाओं-

ण अम्हं तवलोवे भविस्सइ) तथा आपणुं दृढनिश्चयीं ग्रीशुं डे भविष्यत्कालमा
पणुं दीधेणुं न डोयं येणुं जलं अणुं करणुं नडिं अने पीणुं नडिं, डेमके
अणुं प्रधारणां आचरणेषुथीं आपणुं तपस्याने। डोयं अर्थं जशे माटे ते
सुरक्षित रहें अथवा अभिप्रायथीं आपणुंमानां डोयं अणुं अदत्तं जलं
अणुं न करणुं नोर्थं अने ते पीणुं पणुं न नोर्थं अणुं (त सेयं खलु अम्हं
देवाणुप्पिया! तिट्ठं, कुडियाओ य, कचणियाओ य, करोडियाओ य, केसरियाओ य,
पवित्तए य, गणेत्तियाओ य, छत्तए य, वाहणाओ य, पाउयाओ य, धाउरत्ताओ
य एगते एडित्ता गग महानइ ओगाहित्ता) अणुं माटे डे देवानुप्रियो! डे
आपणुं ललाधं अणुं न डे डे आपणुं त्रिदण्डे, डम डलुअणे, ड्राक्षनी

सथरित्ता वालुयासंधारयं दुरुहिति, दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहा
संपलियंकनिसण्णा करयल जाव कट्टु एवं वयासी ॥ सू० २५ ॥

मूलम्—नमोत्थु णं अरिहंताणं जाव सपत्ताणं, नमोत्थु ण

अवतीर्थ 'वालुयासंधारय' वाट्टकान्तारकान 'सथरिति' स्तृणति, 'सथरित्ता'
सस्तीर्थ 'वालुयासंधारय' वाट्टकान्तारक 'दुरुहिति' दुरोहन्ति=अरोहन्ति,
'दुरुहित्ता' दूरुहच=आरुहच 'पुरत्थिमाभिमुहा' पौरुष्याभिमुग्धा=पूर्वदिङ्मुग्धा,
'संपलियंकनिसण्णा' स-पर्यङ्कनिपण्णा-मपर्यङ्क=पद्मासन तेन निपण्णा-पद्मासनेनो-
पयिथा, 'करयल जाव कट्टु एव वयासी' करतल यावत्तृवा=मस्तकेऽङ्गलि कृत्वा
एवमवदन् ॥ सू० २५ ॥

टीका—'नमोत्थु णं' इत्यादि 'नमोत्थु णं अरिहंताणं जाव सपत्ताणं' नमोऽग्वर्ह-
दभ्यो यावत् सम्प्राप्तेभ्य, यावच्छब्दात्-आदिकरेभ्य, तीर्थङ्गरेभ्य स्वयं स्तुद्धेभ्य -इत्यादिति
विशेषणानि पूर्वार्धगतविंशतिपर्यन्तमूत्राद् बोध्यानि । सिद्धगणिनामधेय स्थान सम्प्राप्तेभ्य ।

हित्ता वालुआसंधारय सथरिति) उस पार कर उन लोगोंने वालुकाका मथारा निज्या,
(सथरित्ता वालुयासंधारय दुरुहिति) गिठाकर उसपर वे फिर चढ़ गये, (दुरुहित्ता)
चढ़कर (पुरत्थाभिमुहा संपलियंकनिसण्णा करयल जाव कट्टु एव वयासी) पूर्व
दिशा की ओर मुँह कर पर्यङ्कासन से बैठ गये और दोनों हाथों को जोड़कर मस्तक पर
लगा इस प्रकार कहने लगे ॥ सू० २५ ॥

'णमोत्थु णं अरिहंताणं जाव सपत्ताणं' इत्यादि ।

(णमोत्थु णं अरिहंताणं जाव सपत्ताणं) यावत् मुक्ति प्राप्त हुए श्री अर्हतप्रभु को
नमस्कार हो । (समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव सपाविउकामस्स नमोत्थु णं)

अधाय ते भूदानदी गंगाभा प्रविष्ट थया (ओगाहित्ता वालुआसंधारय सथरिति)
तेने पार करीने तेओओे आलुका (देती) ना मथारा गिछाव्या (सथरित्ता
वालुयासंधारय दुरुहिति) गिछाथीने तेना उपर तेओे केडा (दुरुहित्ता) केसीने
(पुरत्थाभिमुहा संपलियंकनिसण्णा करयल जाव कट्टु एव वयासी) पूर्व दिशानी तरङ्ग
भोढा राणी पर्यं ०-आमनथी केसी गथा अने गन्ने डाथेने जेडीने मस्तक
उपर राणीने आ प्रकारे कडेवा लाव्या (सू. २५)

'णमोत्थु णं अरिहंताणं जाव सपत्ताणं' इत्यादि

(णमोत्थु णं अरिहंताणं जाव सपत्ताणं) मुक्तिने प्राप्त थयेला श्री अर्हुत
प्रभुने नमस्कार हो । (समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव सपाविउकामस्स नमो-

झूसियाण भक्तपाणपडियाइक्खियाणं पाओवगयाणं कालं अण-
वकंखमाणं विहरित्तएत्ति कहु अणमणस्स अंतिए एयमट्ठं
पडिसुणेत्ति, पडिसुणित्ता तिदंडए य जाव एगंते एडेंत्ति, एडित्ता
गंगं महाणइं ओगाहेंत्ति, ओगाहित्ता वाल्लुआसंधारए संथरंत्ति,

जुष्टानाम्-तपसा शरीरस्य कृत्रीकरण सलेखना तथा जुष्टाना=सेविताना-युक्तानाम्, 'भक्त-
पाण-पडियाइक्खियाणं' भक्तपान-प्रत्यार्यातानाम्, 'पाओवगयाण' पादपोषगतानाम्-
छिन्नवृक्षवनिष्पन्दतयाऽवस्थितानाम्, 'कालं अणवकखमाणं विहरित्तएत्ति कहु' काल
मानवकाङ्क्षता=मरणमनिच्छता विहर्तुमिति कृत्वा, 'अणमणस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसु-
णेत्ति' अन्योऽन्यस्याऽन्तिके एतमर्थं प्रतिगृष्यन्ति=स्वीकुर्वन्ति, 'पडिसुणित्ता' प्रतिश्रुत्य
'तिदंडए य जाव एगंते एडेंत्ति' त्रिदण्डकाश्च यावत् सर्वोपकरणानि एकान्ते त्यजन्ति,
'गंगं महाणइं ओगाहेंत्ति' गङ्गा महानदीमवगाहन्ते=अवतरन्ति, 'ओगाहित्ता' अवगाहः=

(भक्तपाणपडियाइक्खियाण) भक्तपान का प्रत्यार्यान कर (पाओवगयाण) छिन्न-
वृक्ष की तरह निश्चेष्ट होते हुए (काल अणवकखमाण) मरण की इच्छा से रहित
होकर (सलेहणाझूसियाण विहरित्तए) सलेखनापूर्वक मरण को प्रेम के साथ सेवन
करें। (त्तिकहु) इस प्रकार विचारकर (अणमणस्स अंतिए एयमट्ठ पडिसुणेत्ति)
उन लोगोंने इस निर्धारित बात को स्वीकार कर लिया, (पडिसुणित्ता) स्वीकार करने
के बाद (तिदंडए य जाव एगंते एडेंत्ति) फिर उन सबने अपने २ त्रिदण्ड आदि
उपकरणों को एकान्त में परित्यक्त कर दिया, (एडित्ता गंगं महाणइं ओगाहेंत्ति)
परित्यक्त कर चुकने पर फिर वे सब के सब उस महानदी गंगा में प्रविष्ट हुए, (ओगा-

स थारा भिछापीये, अने तेना पर (भक्तपाण-पडियाइक्खियाण) लक्ष्मपानना प्रत्या
प्यान करीने (पाओवगयाण) पादपोषगभन स थारा करीने (काल अणवकखमाण)
भरलुनी धंछाथी रहित थधने (सलेहणाझूसियाण विहरित्तए) स लेखना-
पूर्वक भरलुनु प्रेमथी सेवन करीये (त्तिकहु) आ प्रकारने विचार करी
(अणमणस्स अंतिए एयमट्ठ पडिसुणेत्ति) ते बोकाये आ निर्धो करेदी वातने
स्वीकार करी दीधा (पडिसुणित्ता) स्वीकार कथा पछी (तिदंडए य जाव एगंते
एडेंत्ति) ते थधाये पोतपोताना त्रिदंड आदि उपकरणेने एकान्त स्थानमा
परित्यक्त करी दीधा. (एडित्ता गंगं महाणइं ओगाहेंत्ति) छोडी दीधा पछी ते

જીવાણ, શૂલણ પરિગ્રહે પચ્ચક્ષાણ જાવજીવાણ, ડ્યાર્ણિ અમ્હે સમણસ્સ ભગવઓ મહાવીરસ્સ અંતિણ સવ્વ પાણાઙ્ગાય પચ્ચ-
ક્ષામો જાવજીવાણ, એવં જાવ સવ્વં પરિગ્રહં પચ્ચક્ષામો જાવજી-
વાણ, સવ્વં કોહં માણં માયં લોહં પેજ્જં દોસં કલહં અવ્બક્ષાણં

મૃપાવાદોઽદત્તાઽઽદાન પ્રચાર્યાત યાવજીવમ્, 'સવ્વે મેહુણે પચ્ચક્ષાણ જાવજીવાણ
સર્વં મૈથુન પ્રચાર્યાત યાવજીવમ્, 'શૂલણ પરિગ્રહે પચ્ચક્ષાણ જાવજીવાણ' સ્થૂલ
પરિગ્રહ પ્રચાર્યાતો યાવજીવમ્ । 'ડ્યાર્ણિ અમ્હે સમણસ્સ ભગવઓ મહાવીરસ્સ અતિણ
સવ્વં પાણાઙ્ગાય પચ્ચક્ષામો જાવજીવાણ' ઇદાનીં વચ શ્રમણસ્ય ભગવતો મહાવીરસ્યા-
ઽન્તિકે સર્વં પ્રાણાતિપાત પ્રચાર્યામો યાવજીવમ્, 'એવ જાવ સવ્વ પરિગ્રહ પચ્ચક્ષામો
જાવજીવાણ' એવ યાવન્ સર્વં પરિગ્રહ પ્રચાર્યામો યાવજીવમ્, 'સવ્વ કોહ માણ
માય લોહં પેજ્જં દોસ કલહં અવ્બક્ષાણ પેમુણ્ણ પરપરિચાય અરઙ્ગ માયામોસં

સમસ્ત મૃપાવાદ કા સમસ્ત અદત્તાદાન કા જીવનપર્યન્ત પરિત્યાગ કર દિયા હૈ, સમસ્ત
મૈથુન કા યાવજીવન પરિત્યાગ કર દિયા હૈ । સ્થૂલ પરિગ્રહ કા મી યાવજીવન પરિત્યાગ
કર દિયા હૈ । (ડ્યાર્ણિ અમ્હે સમણસ્સ ભગવઓ મહાવીરસ્સ અતિણ સવ્વ પાણાઙ-
ગાય પચ્ચક્ષામો જાવજીવાણ) એવ ઇસ સમય હમ સવ લોગ શ્રમણ ભગવાન્ મહાવીર
કે સમીપ પુન સમસ્ત પ્રાણાતિપાત કા જીવનપર્યન્ત પ્રત્યાહ્યાન કરતે હૈ, (એવ જાવ
સવ્વ પરિગ્રહ પચ્ચક્ષામો જાવજીવાણ) ઇતી તરહ સમસ્ત પરિગ્રહ આદિ કા મી
જીવનપર્યન્ત પ્રચાર્યાન કરતે હૈ, (સવ્વ કોહ માણ માયં લોહં પેજ્જં દોસ કલહં

પચ્ચક્ષાણ જાવજીવાણ) એવી રીતે સમસ્ત મૃપાવાદનો અને સમસ્ત અદત્તા-
દાનનો જીવનપર્યન્ત પરિત્યાગ કરી દીધો છે, સમસ્ત મૈથુનનો જીવનપર્યન્ત
પરિત્યાગ કરી દીધો છે સ્થૂલ પરિગ્રહનો પણ યાવજીવન પરિત્યાગ કરી
દીધો છે (ડ્યાર્ણિ અમ્હે સમણસ્સ ભગવઓ મહાવીરસ્સ અતિણ સવ્વ પાણાઙ્ગાય
પચ્ચક્ષામો જાવજીવાણ) હવે આ સમયે અમે બધાય લોકો શ્રમણ ભગવાન
મહાવીરની પાસે વળી પાછા સમસ્ત પ્રાણાતિપાતનું જીવનપર્યન્ત પ્રત્યાહ્યાન
કરીએ છીએ (એવ જાવ સવ્વં પરિગ્રહ પચ્ચક્ષામો જાવજીવાણ) એવી જ
રીતે સમસ્ત પરિગ્રહ આદિનું પણ જીવનપર્યન્ત પ્રત્યાહ્યાન કરીએ છીએ
(સવ્વ કોહ માણ માય લોહ પેજ્જં દોસ કલહ અવ્બક્ષાણ પેમુણ્ણ પરપરિચાય અરઙ્ગ-

समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव संपाविउकामस्स, नमो-
त्थु णं अम्मडस्स परिव्वायगस्स अम्हं धम्मायरियस्स धम्मोवदे-
सगस्स । पुण्वि णं अम्हेहिं अम्मडस्स परिव्वायगस्स अंतिए
थूलगपाणाइवाए पच्चक्खाए जावजीवाए, सव्वे मुसावाए अदि-
ण्णादाणे पच्चक्खाए जावजीवाए, सव्वे मेहुणे पच्चक्खाए जाव-

‘नमोत्थु ण समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव संपाविउकामस्स’ नमोऽस्तु सद्ध श्रमणाय
भगवते महावाराय यावत् सम्प्राप्तुकामाय, ‘नमोत्थु णं अम्मडस्स परिव्वायगस्स अम्हं
धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स’ नमोऽस्तु ग्वच्चम्वज्जाय परित्राजकाय अत्मारु धर्माचार्याय
धर्मोपदेशकाय । धर्माचार्यैव प्रकटयति—‘पुण्वि ण अम्हेहिं अम्मडस्स परिव्वायगस्स
अतिए थूलगपाणाइवाए पच्चक्खाए जावजीवाए’ पूर्वं स्वप्नस्माभिरम्बडस्य परि-
त्राजकस्याऽन्तिके स्थूलप्राणातिपात प्रत्याप्यातो यावज्जीवम्—जीवनपर्यन्त स्थूलप्राणातिपात-
विरमगमस्माभिरद्गीकृतम् । ‘मुसावाए अदिण्णादाणे पच्चक्खाए जावजीवाए’

श्रमण भगवान् महावीर को जो मुक्ति प्राप्त करने के कामो है नमस्कार हो ।
(धम्मोवदेसगस्स धम्मायरियस्स अम्हं परिव्वायगस्स अम्मडस्स नमोत्थु णं)
धर्म के उपदेशक धर्माचार्य ऐसे हमारे गुरु अम्मड परित्राजक को नमस्कार हो ।
(पुण्वि ण अम्हेहिं अम्मडस्स परिव्वायगस्स अतिए थूलगपाणाइवाए जावजीवाए
पच्चक्खाए) पहिले हम लोगों ने अम्मड परित्राजक के समीप स्थूलप्राणातिपातका यावज्जीव
प्रत्याख्यान किया है । (सव्वे मुसावाए अदिण्णादाणे पच्चक्खाए जावजीवाए सव्वे
मेहुणे पच्चक्खाए जावजीवाए थूलपरिग्गहे पच्चक्खाए जावजीवाए) इसी तरह

त्थु णं श्रमणु लगवान् महावीर के जे मुक्ति प्राप्त करवानी कामनावाणा
छे तेभने नमस्कार हो । (धम्मोवदेसगस्स धम्मायरियस्स अम्हं परिव्वायगस्स अम्म-
डस्स नमोत्थु णं) धर्माना उपदेशक धर्माचार्य जेवा अमारो गुरु अम्मड परि-
त्राजकने नमस्कार हो । (पुण्वि ण अम्हेहिं अम्मडस्स परिव्वायगस्स अतिए थूलगपा-
णाइवाए जावजीवाए पच्चक्खाए) पहिले अम्हे जेजेजे अम्मड परित्राजकनी पासो
स्थूल प्राणातिपातनु यावज्जीव प्रत्याख्यान कथुं छे, (सव्वे मुसावाए अदिण्णा-
दाणे पच्चक्खाए जावजीवाए, सव्वे मेहुणे पच्चक्खाए जावजीवाए, थूलपरिग्गहे

सरीरं इष्टं कंतं प्रियं मणुष्यं मणामं पेज्जं थेज्जं वेसासियं समयं
वहुमय अणुमयं भंडकरं डगसमाणं, माणं सीयं मा णं उण्हं मा णं

चोरा मा णं दंसा मा णं ममगा मा णं राडयपित्तियसिंभियसनिवाडय त्रिविहा
रोगायका परिसहोवसग्गा फुसतु' इदं=पुरतो वर्तमान शरीरम् इष्टं=वल्लभम्, कान्तं=
कमनायम्, प्रियं=मया प्रेमाऽऽस्पदम्, मनोज्ञं=सुन्दरम्, मनोऽमं=मनसाऽस्यते=प्राप्यते पुन
पुन स्मरणतो यत्नमनोऽमम्, प्रेयं=सर्वपदार्थेष्वतिशयेन प्रियमिति प्रेय, अथवा काल्य तर-
नया प्रेयम्, स्थैर्यं=स्थैर्यवत्-स्थिरम् इत्यर्थ, वैश्वामिकम्-विश्वास प्रयोजनम्-अस्येति वैश्व-
सिकम्-प्राणिना परशरीरमेव प्राचुर्येणोऽविश्वासहेतु, निजशरीरं तु प्रतीतिपात्रमेव भवति, ममत-
तद्वत्कार्योऽपि सम्मतपात्र, बहुमत-बहुशो नृणां वामये मनम् इष्टं यत् 'हुमतम्, अनुमतं=वैगु-
णवर्तिनेऽपि अनु=शान्त्वं=मान् अनुमनम्, अत्र पर भाग्यकरं उडकममान भाण्डानाम्=भूषणाना
करण्डकसमान-भूषणमञ्जूषातुल्यमुपादेयमित्यर्थ, एतादृशशरीर मा शीतं=शैत्य स्पृशतु, मा-

पिवासा मा णं चाला मा णं चोरा मा णं दसा मा णं मसगा मा णं राडयपित्तिय-
सिंभियसनिवाडय त्रिविहा रोगायका परीसहोवसग्गा फुसतु) यहा पर सर्वत्र
"मा" शब्द निषेध अर्थ में, एव "ण" शब्द वाक्यालंकार में प्रयुक्त हुआ समझना
चाहिये। इष्टं-वल्लभ, कान्तं-कमनीय, प्रियं-सदा प्रेमास्पद, मनोज्ञं-सुन्दर, मनोमं-समस्त
की अपेक्षा अत्यंत प्रिय, स्थैर्यं-स्थिरतायुक्त, वैश्वामिकं-पर शरीर की अपेक्षा जीवों की
अपना शरीर अतिशय प्रीति का स्थान होता है इस अपेक्षा अतिशय प्रांतिका पात्र, शारीरिक
कार्यों के समत होने से समत, बहुत करके अथवा बहुतों के मध्य में इष्ट होने से बहुमत,
अनुमत-प्रिगुणता क दिखने पर भी प्रेम का स्थानभूत, जिस प्रकार भूषणों का करटक प्रिय

समाण मा णं सीय मा णं उण्ह मा णं सुहा मा णं पिवासा मा णं चाला मा णं चोरा
मा णं दसा मा णं मसगा मा णं राडयपित्तियसिंभियसनिवाडय त्रिविहा रोगायका
परीसहोवसग्गा फुसतु) अही सर्वत्र 'मा' शब्द निषेधना अर्थमा तेभ्य 'ण'
शब्द वाक्यालंकारमा वापदेवो समन्वेो ज्येष्ठ्ये छिष्टं-वदल्लभ, कान्तं-कम-
नीय, प्रियं-सदा प्रेमास्पद, मनोज्ञं-सुन्दर, मनोमं-समस्तानी अपेक्षा अत्यंत
प्रिय, स्थैर्यं-स्थिरतायुक्त, वैश्वामिकं-प्राणितना शरीरानी अपेक्षाज्येष्ठ्येने
पोताना शरीर अतिशय प्रीतिनु स्थान डोय छे-ज्येष्ठ्ये अतिशय प्रीतिने
पात्र, शारीरिक कार्यो माटे समत डोवाथी समत, धलु शरीने अथवा धलु-
ज्योनी वथमा छिष्ट तेवी बहुमत, अनुमन-प्रिगुणता जेवा छता धलु प्रेमना
स्थानभूत, जे प्रकारे धरेल्लानो करडीथो प्रिय डोय छे तेवी शीने प्रिय डोवाने

पेसुपणं परपरिवायं अरइरइं मायामोसं मिच्छादंसणसल्लं अकर-
णिज्जं जोगं पच्चक्खामो जावजीवाए, सव्वं असणं पाणं खाडमं
साइमं चउव्विहंपि आहारं पच्चक्खामो जावजीवाए, जं पि य इमं

मिच्छादंसणसल्ल अकरणिज्ज जोग पच्चक्खामो जावजीवाए ' सर्वं क्रोध मान माया
लोभे प्रिय द्वेष क्लहम् अभ्याएयान पेसुन्य परपरिवादम् अरतिरता मायामृषा मिथ्यादर्शन-
शून्यमकरणीयं योग प्रत्याएयामो यावज्जीवम्—अत्रयानि सर्वाणि पदानि प्राग् व्याख्यातानि ।
' सव्वं असणं पाणं खाडमं साइमं चउव्विहंपि आहारं पच्चक्खामो जावजीवाए '
सर्वमशन पान खाद्य स्वाद्य चतुर्विधमपि आहारं प्रत्याएयामो यावज्जीवम् । ' जपि य इमं
सरीरं इदं कतं पियं मणुण्णं मणामं पेज्जं थेज्जं वेसासियं समयं बहुमयं अणुमयं
भट्टकरडगसमाणं, माणं सीयं माणं उण्हं माणं खुहा माणं पिवासा माणं वाला माणं

अवभक्खाणं पेसुपणं परपरिवायं अरइरइं) इसी तरह उर्त्ती की साक्षीपूर्वक समस्त क्रोध
का, समस्त मान का, समस्त माया का, समस्त लोभ का, समस्त प्रिय का, समस्त द्वेष
का, क्लह का, अभ्याख्यान का, पैशुन्य का, परपरिवाद का, अरति—रति का (माया-
मोस) मायामृषा का, (मिच्छादंसणसल्ल) मिथ्यादर्शन शून्य का, (अकरणिज्ज जोग)
एव अकरणीय योग का (पच्चक्खामो जावजीवाए) यावज्जीव प्रत्याख्यान करते हैं ।
(सव्वं असणं पाणं खाडमं साइमं चउव्विहंपि आहारं पच्चक्खामो जावजीवाए)
समस्त, अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य इन चार प्रकार के आहारों का यावज्जीव प्रत्याख्यान
करते हैं । (ज पि य इमं सरीरं इदं कतं पियं मणुण्णं मणामं पेज्जं थेज्जं वेसासियं
समयं बहुमयं अणुमयं भट्टकरडगसमाणं, माणं सीयं माणं उण्हं माणं खुहा माणं

रइं) ऐसी रीति से तेमनी ७ साक्षीपूर्वक अभस्त क्रोधतु, समस्त मानतु,
समस्त मायातु, समस्त लोभतु, समस्त प्रियतु, समस्त द्वेषतु, क्लहतु
अभ्याख्यानतु (आणतु), पैशुन्यतु, परपरिवादतु, अरतितु, रतितु, (मायामोस)
मायामृषातु, (मिच्छादंसणसल्ल) मिथ्यादर्शनशून्यतु, (अकरणिज्ज जोग)
तेमनी अकरणीय योगतु (पच्चक्खामो जावजीवाए) एवज्जीवन्तं प्रत्याख्यान
करीये छीये (सव्वं असणं पाणं खाडमं साइमं चउव्विहंपि आहारं पच्च-
क्खामो जावजीवाए) समस्त अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य वगैरे व्यापकारना
आहारोतु यावज्जीवन्तं प्रत्याख्यान करीये छीये (ज पि य इमं सरीरं
इदं कतं पियं मणामं मणुण्णं पेज्जं थेज्जं वेसासियं समयं बहुमयं अणुमयं भट्टकरडग-

रामि-त्ति कट्टु सलेहणाञ्जूसणाञ्जूसिया भत्तपाणपडियाडम्बिया
पाओवगया कालं अणवकंखमाणा विहरंति ॥ सू० २६ ॥

मूलम्—तए णं ते परिव्वायगा वट्टुडं भत्ताडं अणसणाए
छेदंति, छेदित्ता आलोइयपडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं

शरीरवृत्तान्तरणे या जोषणा=प्राणि तथा जुष्टा=सेविता, 'भत्तपाणपडियाडम्बिया'
प्रयाग्यातभक्तपाना, 'पाओवगया' पाठपोषणता =वृक्षान्निष्पदतया स्थिता, 'काल
अणवकंखमाणा' कालमनवकाईकन्त, केचिद वेदनापिकल्प मरणमिच्छन्ति तेषा निषेधार्थ-
मेतद्वाक्यम्, एवम्भूता विहरन्ति—अम्बटपरिवाजकशिष्या इति ॥ सू० २६ ॥

टीका—'तए णं ते परिव्वायगा' इत्यादि । 'तए णं ते परिव्वायगा'
तत्त खड्डु ते परिवाजका -अम्बटशिष्या वृत्तकायोसर्गा—'वट्टुडं भत्ताडं अणसणाए
छेदंति' वहन्ति भक्तानि अनशनं चिन्दन्ति, 'छेदित्ता' छित्वा 'आलोइयपडिक्कंता'
आलोचितप्रतिक्रान्ता =गुरुजनस्य समीपे कृताऽऽलोचना, प्रतिक्रान्ता—पापस्थानापश्चा-

सन के सन (भत्तपाणपडियाडम्बिया) भक्त एव पान का प्रयाग्यान करके (पाओ-
वगया) वृक्ष की तरह निश्चेष्ट होकर (काल अणवकंखमाणा विहरन्ति) मरण की इच्छा
नहीं करते हुए स्थित हो गये ॥ सू० २६ ॥

'तए णं ते परिव्वायगा', इत्यादि ।

(तए णं) इसके बाद (ते परिव्वायगा) उन समस्त पापवाजकोंने (वट्टुडं
भत्ताडं) चांगे प्रकार के आहार का (अणसणाए) अनशन द्वारा (छेदंति) छेद कर
निया, (छेदित्ता) छेद करने के बाद (आलोइयपडिक्कंता) अपने अतिचारों की

पानतु प्रत्याप्यान करीने (पाओवगया) वृक्षनी पेटे निश्चेष्ट थधने(काल अणवक-
समाणा विहरन्ति) भस्वानी धम्बा नही करना स्थित थल गया (सू २६)

'तए णं ते परिव्वायगा' इत्यादि

(तए णं) त्याग पछी (ते परिव्वायगा) ते गंधा परिवाजकोंने (वट्टुडं
भत्ताडं) आरेथ प्रकारना आहारना (अणसणाए) अनशन द्वारा (छेदंति) छेद
करी दीधे (छेदित्ता) छेद करी दीधे पछी (आलोइयपडिक्कंता) पेताना अति
आरोनी आवोगना करी पछी तेथे तेनाथी निवृत्त थया (समाहिपत्ता)

खुहा मा णं पिवासा मा णं बाला मा णं चोरा मा णं मसगा मा णं
वाइयपित्तिर्यासभियसंनिवाइय विविहा रोगायंका परिसहोव-
सग्गा फुसंतु—त्तिकट्टु एयंपि णं चरमेहिं उसासणीसासेहिं वोसि-

शब्दा निषेधार्थ, 'ण' शब्दा वाक्यालङ्कारार्थ, शैथ र्तु शरीर र्मक स्पर्शन न करोतु, एवमेवोष्ण-
क्षुधा-पिपासा-व्याल-चौर दश-मशरु वातिक पैत्तिक श्लेष्मिक-सन्निपातिक-आदयो विविधा रोगा-
तङ्का परीपहा उपसर्गाश्चैतच्छरीर न स्पृशन्तु। अत्र व्याला = सर्पा, रोगा = महाव्याधय,
आतङ्का = सद्योघातिनो रोगा एव, परीपहा क्षुधादयो द्वाविंशति, उपसर्गा = द्विव्यादय, अन्यत्
सुगमम्। 'त्तिकट्टु' इति कृत्वा 'एय पि णं चरमेहिं उसासणीसासेहिं वोसिरामि
त्तिकट्टु' एतदपि रालु चरमैरुच्छ्वासनि श्वासैर्युसजामि-एतदपि शरीर त्यजामि इति कृत्वा=
इत्थ विचार्य 'सलेहणाञ्जसणाञ्जसिया' मलेखना-जूषणा-जुष्टा-सलखनाया=कपाय-

होता है उसी प्रकार से प्रिय होने कारण भाण्टकण्डक के तुन्य (इम) इस मेरे (सरीर) शरी-
रको जीत स्पर्श न करे, उष्ण स्पर्श न करे, क्षुधा स्पर्श न करे, पिपासा स्पर्श न करे, व्याल-सर्प
स्पर्श न करे, चोर उपद्रव न करे, दस-डास स्पर्श न करे, मशरु-मच्छर स्पर्श न करे, वात-
सबधी, पित्तसबधी, कफसबधी, सन्निपातसबधी आदि विविध रोग-महाव्याधिया, आतक-सद्य-
प्राणहर रोग, परीपह-क्षुधाआदि एव उपसर्ग-देवादि कृत उपद्रव, कोई भी इस शरीर को
स्पर्श न करे, (त्तिकट्टु) इस प्रकार की विचारधारा को (चरमेहिं उसासणीसासेहिं वोसि-
रामि) अब चरम उच्छ्वासनि श्वास तक छोड़ते हैं। (त्तिकट्टु) इस तरह करके (सले-
हणाञ्जसणाञ्जसिया) मलेखना में-कपाय एव शरीर के कृश करने में प्रीति से युक्त वे

कारणो वाउउर उक्ष्णा तुल्य (इम) आ भारा (सरीर) शरीरने ठडी स्पर्श न
करे, गरभी स्पर्श न करे, लूण स्पर्श न करे, तरस स्पर्श न करे, व्याल-
सर्प स्पर्श न करे, चोर उपद्रव न करे, दस-डास स्पर्श न करे, मशरु-
मच्छर स्पर्श न करे, वातसबधी, पित्तसबधी, कफसबधी, सन्निपात-
सबधी आदि विविध रोग-महाव्याधियो, आतक-तीनप्राणहर रोग, परी
पह-क्षुधाआदि तेमन् उपसर्ग-देवादि कृत उपद्रव, जेवुं कर्ष पणु आ
शरीरने स्पर्श न करे (त्तिकट्टु) आ प्रकारनी विचारधाराने (चरमेहिं उसा-
सणीसासेहिं वोसिरामि) जेवुं चरम उच्छ्वासनि श्वास सुधी छोडु छु (त्तिकट्टु)
आयी गीते करीने (सलेहणाञ्जसणाञ्जसिया) मलेखनामा-कपाय तेमन् शरीरने
कृश करवाभा प्रीतिथी युक्त, ते पधा (भक्तपाणपडियाइक्खिया) लक्षत तेमन्

कखड एवं भासइ एवं पन्नवेड एवं परूवेइ । एवं खलु अम्मडे परिव्वायए कपिल्लपुरे णयरे घरसए आहारमाहारेइ, घरसए वसहि उवेइ । से कहमेवं भंते । एवं ॥ सू० २८ ॥

मूलम्—गोयमा । जं णं से बहुजणे अणमणस्स

‘अणमणस्स एवमाइकखड’ अन्योन्यमेवमारयाति=हे भगवन् ! जनसमूह परस्परमि-
थ वक्ति, ‘एव भासइ’ एव भाषते, ‘एवं पन्नवेइ’ एव प्रज्ञापयति, ‘एव परूवेइ’
एव प्ररूपयति, ‘एव खलु अम्मडे परिव्वायए कपिल्लपुरे णयरे’ एव सन्ध्वड परि-
वाजक काष्पिन्यपुरे नगरे, ‘घरसए आहारमाहारेइ’ गृहगतादाहारमाहरति=भिक्षा
गृह्णाति, ‘घरसए वसहि उवेइ’ गृहगते वसतिमुपैति, ‘से कहमेय भंते एव’
तत् कथमेतद् भगवन् ! एवम्—इति भगवन्त प्रति शिष्यप्रश्न ॥ सू० २८ ॥

टीका—भगवानाह—‘गोयमा !’ इत्यादि । ‘ज ण से बहुजणे अणमण-

जणे ण) बहुत से लोग (अणमणस्स) परस्पर जो (एवमाइकखड) इस प्रकार कहते
हैं, (एव भासइ) इस प्रकार भाषण करते हैं, (एव पन्नवेइ) इस प्रकार अच्छी तरह
ज्ञापित करते हैं, (एव परूवेइ) इस प्रकार प्ररूपित करते हैं कि (एवं खलु अम्मडे
परिव्वायए कपिल्लपुरे णयरे घरसए आहारमाहारेइ) ये अम्पडपरिवाजक कपिल्लपुर
नगर में सौ घरों में आहार करते हैं, एव (घरसए वसहि उवेइ) सौ घरों में निवास करते
हैं, (से) तो (भंते) इस भदत्त ! (कहमेय) यह बात कैसे है ? ॥ सू० २८ ॥

‘गोयमा ! जं ण से बहुजणे’ इत्यादि ।

प्रभु गौतम के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि (गोयमा !) हे गौतम !

(बहुजणे ण) धृष्टा लोकों (अणमणस्स) परस्पर जो (एवमाइकखड) आ
प्रकारे कहे छे, (एव भासइ) आ प्रकारे भाषण करे छे, (एव पन्नवेइ) आ
प्रकारे सारी जीते ज्ञापित करे छे (खलुवे छे), (एव परूवेइ) आ प्रकारे
प्रशिक्षित करे छे के (एव खलु अम्मडे परिव्वायए कपिल्लपुरे णयरे घरसए आहार-
माहारेइ) अम्पड परिव्वाजक कपिल्लपुर नगरमा से घरमा आहार करे छे
तेभए (घरसए वसहि उवेइ) से घरमा निवास करे छे, (से) तो (भंते) !
हे भदत्त ! (कहमेय) आ बात कैसी छे ? (सू २८)

‘गोयमा ! जं ण से बहुजणे’ इत्यादि

प्रभु गौतमना प्रश्नको उत्तर आपता कहे छे के (गोयमा !) हे

किञ्चा वंभरोए कप्पे देवत्ताए उववण्णा । तहिं तेसिं गई । दस
सागरोवमाइं ठिईं पण्णत्ता, परलोगस्स आराहगा, सेसं तं
चेव ॥ सू० २७ ॥

मूलम्—बहुजणे णं भते ! अणमणस्स एवमाइ-

परावृत्ता, 'समाहिपत्ता' समाधिप्राप्ता = उपगन्तव्या, 'कालमासे काल किञ्चा'
कालमासे काल कृत्वा, 'वमलोए कप्पे देवत्ताए उववण्णा' ब्रह्मलोकके रूपे देववेत्ते-
पपत्ता, देशभिरतिफलं त्वया परलोकस्सगधकवमेव । परित्राजकक्रियाफत्तं ब्रह्मलोकगमनम् ।
'तहिं तेसिं गई' तत्र तेपा गति, 'दस सागरोवमाइं ठिईं पण्णत्ता' दससागरोपमागि
स्थितिं प्रज्ञता, 'परलोगस्स आराहगा' परलोकस्सग्यत्रा सती यर्थ, 'सेसं
त चेव' शेष तदेव ॥ सू० २७ ॥

टीका—'बहुजणे ण भते !' इत्यादि । बहुजन = जनसमूह खलु हे भद्रत !

आलोचना की, पश्चात् वे उनसे परावृत्त हुए । फिर (समाहिपत्ता) समाधि प्राप्त कर
(कालमासे काल किञ्चा वमलोए कप्पे देवत्ताए उववण्णा) काल-अवसर में काल
करके ब्रह्मलोक रूप में देव की पर्याय से उपजन्त हुए । (तहिं तेसिं गई, दससागरोव-
माइं ठिईं पण्णत्ता, परलोगस्स आराहगा, सेसं त चेव) वही पर उनकी गति प्ररूपित
रूप में आई है । स्थिति इनकी १० सागर प्रमाण है । ये परलोक के नियम से आराधक
रूहे गये हैं । और पहिंते को तरह समझना चाहिये ॥ सू० २७ ॥

'बहुजणे ण भते' इत्यादि ।

पुन गौतमस्वामा ने भक्तिपूर्वक प्रभु से पूछा कि (भते) हे भगवन् ! (बहु-

अने समाधि प्राप्त करीने (कालमासे काल किञ्चा वमलोए कप्पे देवत्ताए
उववण्णा) १०-अवसर १०-काल करीने ब्रह्मलोक उत्पन्ना देवनी पर्यायथी
उत्पन्न थथ (तहिं तेसिं गई, दससागरोवमाइं ठिईं पण्णत्ता, परलोगस्स आरा
हगा, सेसं त चेव) तथा १०-तेमनी गति प्ररूपित इत्यादि आधी छे तेमनी
स्थिति १० सागर प्रमाण छे तेओने निश्चिन्तपथी परवोधना आधारक
उडेतामा आन्त्या छे आधीनु अगाउनी पेडे समल्ल वेवु नेईये (सू० २७)

'बहुजणे ण भते' इत्यादि

पुन गौतम स्वामीने भक्तिपूर्वक प्रभुने पूछ्यु के (भते) हे भगवन् !

मूलम्—से केणट्टेणं भंते । एवं बुच्चइ-अम्मडे परि-
व्वायए जाव वसहिं उवेइ ॥ सू० ३० ॥

मूलम्—गोयमा ! अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स पगइ-
भइयाए जाव विणीययाए छट्ठेणं अनिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं

टीका—पुनर्गौतम पृच्छति—‘से केणट्टेण’ इत्यादि । ‘से केणट्टेण भंते । एवं बुच्चइ’ तत् केनार्थेन हे भदन्त ! एमुच्यते—‘अम्मडे परिव्वायए जाव वसहिं उवेइ’ अम्बड परिव्राजको यावद् वसतिमुपैति, गृहत्यादभिक्षा करोति, गृहशते वसति स्वीकरोति, इति ॥ सू० ३० ॥

टीका—भगवानाह—‘गोयमा ।’ इत्यादि । हे गौतम ! ‘अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स पगइभइयाए’ अम्बडस्य खलु परिव्राजकस्य प्रकृतिभद्रतया—प्रकृते = स्वभावस्य भद्रतया=सरलतया ‘जाव विणीययाए’ यावद्विनीततया—यावच्छब्दादिदृश्यं—प्रकृत्युपगता ततया प्रकृतितनुक्रोधमानमायालोभतया मृदुमार्दवसम्पन्नतयाऽऽस्त्रीनतया इति,

‘से केणट्टेणं’ इत्यादि ।

(भंते) हे भदन्त ! (से केणट्टेणं एव बुच्चइ) आप यह किस आगय से कहते हैं कि—(अम्मडे परिव्वायए जाव वसहिं उवेइ) अम्बड परिव्राजक सौ घरों में आहार करते हैं और सौ घरों में निवास करते हैं ॥ सू० ३० ॥

‘गोयमा ! अम्मडस्स णं’ इत्यादि ।

(गोयमा) हे गौतम ! यह अम्बड परिव्राजक (पगइभइयाए जाव विणीययाए) प्रकृति से भद्र है, अल्प क्रोध, मान, माया एव लोभ—रूपायवाला है स्वभावत

‘से केणट्टेणं’ इत्यादि

(भंते) हे भदन्त ! (से केणट्टेणं एव बुच्चइ) आप ये क्या हेतु थी कहे थे—(अम्मडे परिव्वायए जाव वसहिं उवेइ) अम्बड परिव्राजक सौ घरमा आहार करे छे अने सौ घरमा निवास करे छे ? (सू० ३०)

‘गोयमा ! अम्मडस्स णं’ इत्यादि

(गोयमा) हे गौतम ! आ अम्बड परिव्राजक (पगइभइयाए जाव विणीययाए) प्रकृतिथी लभ्र छे, अल्प क्रोध, मान, माया, तेभव लोभ रूपायवाला छे, अभावत मृदु-मार्दव शुण्ठी युक्त छे, तथा अत्यंत विनीत

एवमाइक्खइ जाव एवं परूवेइ—एवं खलु अम्मडे परिव्वायए कपिल्लपुरे जाव घरसए वसहिं उवेइ । सच्चे णं एसमट्ठे, अहंपि णं गोयमा । एवमाइक्खामि जाव एवं परूवेमि—एवं खलु अम्मडे परिव्वायए जाव वसहिं उवेइ ॥ सू० २९ ॥

स एवमाइक्खइ' हे गौतम । यत्खलु स बहुजनोऽन्योऽन्यम् एवमाएयाति, यावदेवं प्ररूपयति, 'एवं खलु अम्मडे परिव्वायए कपिल्लपुरे जाव घरसए वसहिं उवेइ' एव खन्वम्बड परिव्राजक काम्पिन्यपुरे यावद् गृहगते वसतिमुपैति—इति यत्वया पृच्छ्यते । 'सच्चे ण एसमट्ठे' सत्य खन्वेपोऽर्थ । 'अहंपि ण गोयमा ! एवमाइक्खामि' अहमपि खलु गौतम ! एवमाग्यामि, 'जाव एव परूवेमि' यावदेव प्ररूपयामि=प्ररूपगा करोमि, 'एव खलु अम्मडे परिव्वायए जाव वसहिं उवेइ' एव खलु अम्बड परिव्राजको यावद् वसतिमुपैति—गृहशताद् भिक्षा गृह्णाति, गृहशते वसति करोति, इति ॥ सू० २९ ॥

(ज) जो (से) वे (बहुजणे) बहुत से लोग (अण्णमण्णस्स) परस्पर दूसरे से (एवमाइक्खइ जाव परूवेइ) इस प्रकार कहते हे यावत् इस प्रकार प्ररूपित करते हैं कि (एव खलु अम्मडे परिव्वायए कपिल्लपुरे) ये अम्बड परिव्राजक कपिल्लपुर नगर में (जाव घरसए वसहिं उवेइ) सौ घरों में भिक्षा लेते हैं और सौ घरों में निवास करते हैं, सो (सच्चे णं एसमट्ठे) यह बात बिलकुल ठीक है । (अहं पिण गोयमा ! एवमाइक्खामि) गौतम ! मैं भी इसी तरह कहता हूँ (जाव एवं परूवेमि) यावत् इसी तरह प्ररूपित करता हूँ कि (एव खलु अम्मडे परिव्वायए जाव वसहिं उवेइ) ये अम्बड परिव्राजक सौ घरों में आहार करते हैं और सौ घरों में निवास करते हैं ॥ सू० २९ ॥

गौतम ! (ज) जे (से) तेओ (बहुजणे) धणुा ढोडो (अण्णमण्णस्स) परस्पर ओक धीजने (एवमाइक्खइ जाव परूवेइ) आ प्रकारे कडे छे यावत् आ प्रकारे अरूपित करे छे ते (एव खलु अम्मडे परिव्वायए कपिल्लपुरे) ते अम्बड परिव्राजक कपिल्लपुर नगरमा (जाव घरसए वसहिं उवेइ) सो धरैथी भिक्षा ले छे अने सो धरैमा निवास करे छे तो (सच्चे ण एसमट्ठे) आ वात बिलकुल ठीक छे । (अहंपि ण गोयमा ! एवमाइक्खामि) गौतम ! हु पथु ओर शीते कडे छु (जाव एव परूवेमि) यावत् ओवी ओ शीते अरूपित करे छु ते (एव खलु अम्मडे परिव्वायए जाव वसहिं उवेइ) ओ अम्बड परिव्राजक सो धरैमा आहार करे छे अने सो धरैमा निवास करे छे (सू. २९)

खओवसमेणं ईहावृहामगणगवेसण करेमाणस्स वीरियलद्धी
वेउव्वियलद्धी ओहिणाणलद्धी समुप्पण्णा । तए णं से अम्मडे
परिन्वायगे तीए वीरियलद्धीए वेउव्वियलद्धीए ओहीणाणलद्धीए

‘खओवसमेणं’ तदावर्गीयाना=कर्मणा वीर्यवैक्रियलन्व्यवभिज्ञानावर्गीयाना क्षयोपशमेन,
‘ईहा-वृहा-मगण-गवेसणं करेमाणस्स’ ईहा-वृह-मार्गण गवेसण कुर्यत-तत्र-ईहा=
मनिज्ञानभेद-नामजा यादिविशेषरूपनागदित्तमामान्यज्ञानोत्तर विशेषनिश्चयार्थं विचारणा इत्यर्थः,
वृह=अपोह-सामान्यज्ञानोत्तरकाल विशेषनिश्चयार्थं विचारणाया प्रवृत्ताया तदनु गुणदोष-
विचारणाजनितो निश्चयः । मार्गण=जीवाद्विपदार्थस्य यथावस्थितस्वरूपान्वेषणम्, गवेसण=
मार्गानन्तरमनुपलभ्यन्त्य जीवाद्विपदार्थस्य सर्वत परिभाजनम्, ण्णा समाहारस्तत् तथा, तत्
कुर्यत अन्वडस्य परिभाजकस्येयन्वयः । ‘वीरियलद्धी’ वीर्यलब्धि, ‘वेउव्वियलद्धी’
वैक्रियलब्धि ‘ओहिणाणलद्धी समुप्पण्णा’ अवधिज्ञानलब्धि समुपपन्ना । ‘तए णं

आवरण कर्मों के (खओवसमेण) क्षयोपशम से (ईहा-वृहा-मगण-
गवेसण करेमाणस्स) ईहा-नाम एव जायादिरूप कल्पना से रहित सामान्य ज्ञान के
बाद विशेषरूप से निश्चय करने की चेष्टा-विचारधारा, वृह-सामान्य ज्ञान के बाद विशेष
निश्चय के लिये विचारणा करने पर गुणदोष के विचार से होनेवाला निश्चय-अवायरूप
ज्ञान, मार्गण-यथावस्थित जीवाद्विक पदार्थ के स्वरूपका अन्वेषण, एव गवेसण-मार्गण के
बाद अनुपलभ्य जीवाद्विक पदार्थों के सभी प्रकार से निर्णय करने की तरफ तपस्वरूप
गवेसण (करेमाणस्स) करने से (वीरियलद्धी वेउव्वियलद्धी ओहिणाणलद्धी समु-
प्पण्णा) वीर्यलब्धि, वैक्रियलब्धि, तथा अधिज्ञानलब्धि उत्पन्न हो गईं । (तए णं से

आवण्णु ढभोना (खओवसमेण) क्षयोपशमथी (ईहा-वृहा-मगण-
गवेसण करेमाणस्स) ईहा-नाम तेभज न्ति आदिनी कल्पनाथी
रहित सामान्य ज्ञान तथा पछी विशेषरूपथी निश्चय करवानी चेष्टा-
विचारधारा, वृह-सामान्यज्ञान बाद विशेष निश्चय ढवा भाटे विचारणु
थी पछी गुणदोषना विचारथी यथावाणा निश्चय-अवायरूप ज्ञान, मार्गण-
यथावस्थित एव-आदि पदार्थना अन्वेषणु, तेभज गवेसणु-मार्गणु
पछी अनुपलभ्य एव आदि पदार्थोना सर्व प्रधारथी निर्णय करवानी तरङ्ग
तत्पत्तारूप गवेसणु (करेमाणस्स) ढवाथी (वीरियलद्धी वेउव्वियलद्धी ओहि-
णाणलद्धी समुप्पण्णा) वीर्यलब्धि, वैक्रियलब्धि, तथा अधिज्ञानलब्धि

उड्डं वाहाओ पगिज्झय २ सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं पसत्थाहिं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं अन्नया कयाइं तदावरणिजाणं कम्माणं

विनयशीलतया, 'उड्डउट्टेण अनिक्खित्तेणं तपोरुम्मेण' पट्टपट्टेन अनिक्षितेन तप-
कर्मणा-मुहुर्दिनद्वयाऽनगनरूपेण अपित्रान्तेन तपोरूपेण कर्मणा, 'उड्ड वाहाओ पगि-
ज्झय २' ऊर्ध्वं वाह प्रगृह्य २=वाह ऊर्ध्वं कृत्वा 'सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए
आयावेमाणस्स' सूर्याभिमुखस्थाऽऽतापनाभूमावातापयत 'सुभेण परिणामेण' शुभेन
परिणामेन=शुभ-रूपयाऽऽत्मपरिणत्या, 'पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं' प्रशस्तैरध्यवसानै-
उत्तममनोविशेषै, 'पसत्थाहिं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं' प्रशस्ताभिर्द्रव्याभि-
र्विशुध्यमानामि 'अन्नया कयाइ' अन्यदा कदाचित् 'तदावरणिजाण कम्माण

मृदुमार्दव गुण से युक्त है, तथा अत्यत विनीत भी है। (अनिक्खित्तेण) तथा लगातार
(उड्ड उट्टेण तपोरुम्मेणं) छठ छठ-वेला-की तपस्या करनेवाला है। एव (उड्ड
वाहाओ पगिज्झय २) वाहुओं को ऊपर उठा कर, (सूराभिमुहस्स) सूर्य के सम्मुख
(आयावणभूमीए आयावेमाणस्स) आतापना क योग्य प्रदेश में आतापना लेता है।
अत (अम्मडस्स परिव्वायगस्स) इस अम्बड परिव्राजक को (सुभेण परिणामेण)
शुभ परिणाम से-शुभरूप आत्मा की परिणति से, (पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं) प्रशस्त
अध्यवसानों से-उत्तम विचारधाराओं से, (पसत्थाहिं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं)
प्रशस्त देशों की विशुद्धि होने से, (अण्णया कयाइ) किसी एक समय (तदावर-
णिजाण कम्माण) तदावर्णीय कर्मों-वीर्य के, वैकियलब्धि के एव अधि ज्ञान के

पथु छे (अनिक्खित्तेण) तथा लगातार (उड्डउट्टेण तपोरुम्मेण) छठ छठ-
वेला-की तपस्या करवावाणा छे तेभ २ (उड्ड वाहाओ पगिज्झय २) इत्यने
उत्था करीने (सूराभिमुहस्स) सूर्यनी सम्मुख (आयावणभूमीए आया-
वेमाणस्स) आतापनाने योग्य प्रदेशमा आतापना ले छे आथी (अम्मडस्स
परिव्वायगस्स) अे अम्बड परिव्राजकने (सुभेण परिणामेण) शुभं परिश्रुमाथी,
शुभरूप आत्मानी परिश्रुतिथी, (पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं) प्रशस्त अध्यव
सानोथी-उत्तम विचारधाराओथी, (पसत्थाहिं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं) प्रशस्त
देश्याओनी विशुद्धि थवाथी (अण्णया कयाइ) के। एक समय (तदावरणि
जाण कम्माण) तदावर्णीय कर्मों-वीर्य, वैकियलब्धि अने अधिज्ञानना

खओवसमेणं ईहावृहामगणगवेसणं करेमाणस्स वीरियलद्धी
वेउच्चियलद्धी ओहिणाणलद्धी समुप्पण्णा । तए णं से अम्मडे
परिवायगे तीए वीरियलद्धीए वेउच्चियलद्धीए ओहीणाणलद्धीए

‘खओवसमेण’ तद्वारणीयाना=कर्मणा वीर्यवैक्रियलन् यत्रिज्ञानावर्णयाना क्षयोपशमन,
‘ईहा-वृहा-मगण-गवेसण करेमाणस्स’ ईहा-यूह-मार्गण गवपण कुर्वत -तत्र-ईहा=
मनिज्ञानभेद-नामजा याद्वि विशेषरूपनागरहितमामान्यज्ञानोत्तर विशेषनिश्चयार्थ विचारणा इत्यर्थ,
व्यूह=अपोह-मामान्यज्ञानोत्तरकाल विदोपनिश्चयार्थ विचारणाया प्रवृत्ताया तदनु गुणदोष-
विचारणाजनितो निश्चय । मार्गणं=जीवादिपदार्थस्य यथावस्थितस्वरूपान्वेषणम्, गवेपणं=
मार्गणान्तरमनुपलभ्यस्य जीवादिपदार्थस्य सर्वत्र परिभावनम्, एषा ममाहारस्तत् तथा, तत्
कुर्वत अम्पडस्य परिज्ञाजकस्ये यन्वय । ‘वीरियलद्धी’ वीर्यलन्धि, ‘वेउच्चियलद्धी’
वैक्रियलन्धि ‘ओहिणाणलद्धी समुप्पण्णा’ अवधिज्ञानलन्धि समुत्पन्ना । ‘तए णं

आवरण कर्मों के (खओवसमेण) क्षयोपशम से (ईहा-वृहा-मगण-
गवेसण करेमाणस्स) ईहा-नाम एव जायादिरूप कल्पना से रहित सामान्य ज्ञान के
बाद विशेषरूप से निश्चय करने की चेष्टा-विचारधारा, व्यूह-सामान्य ज्ञान के बाद विशेष
निश्चय के लिये विचारणा करने पर गुणदोष के विचार से होनेवाला निश्चय-अवायरूप
ज्ञान, मार्गण-यथास्थित जीवादि पदार्थ के स्वरूपका अन्वेषण, एव गवेपण-मार्गण के
बाद अनुपलभ्य जीवादि पदार्थों के सभी प्रकार से निर्णय करने की तरफ तपरतारूप
गवेपण (करेमाणस्स) करने से (वीरियलद्धी वेउच्चियलद्धी ओहिणाणलद्धी समु-
प्पण्णा) वीर्यलन्धि, वैक्रियलन्धि, तथा अवधिज्ञानलन्धि उत्पन्न हो गईं । (तए णं से

आवृष्ट्य उर्ध्वेना (खओवसमेण) क्षयोपशमथी (ईहा-वृहा-मगण-
गवेसण करेमाणस्स) छंदा-नाम तेभञ्ज न्ति आदिनी कल्पनाथी
रहित सामान्य ज्ञान तथा पछी विशेषरूपथी निश्चय उरवानी चेष्टा-
विचारधारा, व्यूह-सामान्यज्ञान आद विशेष निश्चय करवा भाटे विचारणा
थी पछी शुद्धोपना विचारथी यथावाजा निश्चय-अवायरूप ज्ञान, मार्गण-
यथावस्थित एव-आदि पदार्थना अन्वेषण अन्वेषण, तेभञ्ज गवेपण-मार्गण
पछी अनुपलभ्य एव आदि पदार्थोना सर्व प्रकारथी निर्णय उरवानी तरश्
तत्परताउप गवेपण (करेमाणस्स) उरवथी (वीरियलद्धी वेउच्चियलद्धी ओहि-
णाणलद्धी समुप्पण्णा) वीर्यलन्धि, वैक्रियलन्धि, तथा अवधिज्ञानलन्धि

સમુપ્પણાણ જળવિમ્હાવળહેઠં કંપિલ્લપુરે ણયરે ઘરસણ જાવ
વસહિં ઉવેઙ્ગે । સે તેણદ્દેણં ગોયમા ! એવં વુચ્છઈ-અમ્મહે પરિવ્વાયણ
કંપિલ્લપુરે ણયરે ઘરસણ જાવ વસહિં ઉવેઙ્ગે ॥ સૂ. ૩૧ ॥

સે અમ્મહે પરિવ્વાયણે' તત્ત સલ્લસ અમ્મહ પગિજજક, 'તીણ વીરિયલદ્ધીણ વેઠ્ઠિવિય-
લદ્ધીણ ઓહિણાણલદ્ધીણ સમુપ્પણાણ' તથા વીરિયલ યા વૈકિયલ વ્યાસવધિજ્ઞાનલ વ્યાવ
સમુત્પન્નયા 'જળવિમ્હાવળહેઠ' જનવિસ્માપનહેતો, 'કંપિલ્લપુરે ણયરે ઘરસણ જાવ
વસહિં ઉવેઙ્ગે' કામ્પિયપુરે નગરે ગૃહશતે યાવદ્દસતિમુપૈતિ, 'સે તેણદ્દેણં ગોયમા ! એવ
વુચ્છઈ' તત્ત તેનાથેન ગૌતમ ! એવમુચ્ચતે—' અમ્મહે પરિવ્વાયણ કંપિલ્લપુરે ણયરે ઘરસણ
જાવ વસહિં ઉવેઙ્ગે' અમ્મહ પરિવ્વાજક કામ્પિલ્લપુરે નગરે ગૃહશતે યાવદ્દસતિ
મુપૈતિ ॥ સૂ. ૩૧ ॥

અમ્મહે પરિવ્વાયણે તીણ વીરિયલદ્ધીણ વેઠ્ઠિવિયલદ્ધીણ ઓહિણાણલદ્ધીણ સમુ-
પ્પણાણ) इसके बाद उत्पन्न हुई उन वीर्यलब्धि, वैकियलब्धि एव अवधिज्ञानलब्धि द्वारा
यह (जलविम्वहावणहेठ) मनुष्यों को आश्चर्यचकित करने के लिये (कंपिल्लपुरे णयरे
घरसण जाव वसहिं उवेइ) कपिल्ल नगर में सौ घरों से भिक्षा करता है, एव उन्हीं में विश्राम
करता है। (से तेणद्वेणं गोयमा ! एव वुच्चइ) इस आशय से, हे गौतम ! मैं ऐसा
कहता हूँ (अम्महे परिव्वायण कपिल्लपुरे णयरे घरसण जाव वसहिं उवेइ) कि
अम्मह परिव्वाजक कपिल्लपुर नगर में सौ घरों में आहार करता है और सौ घरों में निवास
करता है ॥ सू. ३१ ॥

ઉત્પન્ન થઈ (તણ ને સે અમ્મહે પરિવ્વાયણે તીણ વીરિયલદ્ધીણ વેઠ્ઠિવિયલદ્ધીણ
ઓહિણાણલદ્ધીણ સમુપ્પણાણ) ત્યાર પછી ઉત્પન્ન થયેલી તે વીર્યલ્લબ્ધિ,
વૈકિલ્લિલ્લબ્ધિ તેમજ અવધિજ્ઞાનલ્લબ્ધિ દ્વારા એ (જળવિમ્હાવળહેઠ)
મનુષ્યોને આશ્ચર્યચકિત કરવા માટે (કંપિલ્લપુરે ણયરે ઘરસણ જાવ વસહિં
ઉવેઙ્ગે) કંપિલ્લપુરનગરમાં એ ધરોથી ભિક્ષા કરે છે તેમજ તેમાં જ વિશ્રામ
કરે છે, (સે તેણદ્દેણ ગોયમા ! એવ વુચ્છઈ) આ આશયથી હે ગૌતમ ! હું
એમ કહું છું (અમ્મહે પરિવ્વાયણ કંપિલ્લપુરે ઘરસણ જાવ વસહિં ઉવેઙ્ગે)
કે અમ્મહ પરિવ્વાજક કંપિલ્લપુર નગરમાં એ ધરોમાં આહાર કરે છે અને
એ ધરોમાં નિવાસ કરે છે (સૂ. ૩૧)

मूलम्—पहू णं भंते । अम्मडे परिव्वायए देवाणु-
प्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्व-
डत्तए ॥ सू० ३२ ॥

मूलम्—णो इणट्टे समट्टे गोयमा । अम्मडे णं परि-

गौतम पृच्छति—‘पहू ण भंते’ इत्यादि । ‘भंते !’ हे भद्रन्त ! ‘अम्मडे परिव्वायए देवाणुप्पियाण अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वडत्तए’ अम्बड परिव्राजको देवानुप्रियाणामन्तिके मुण्ड = लुञ्चितकेओ भूयाऽगारादनगारिता = साधुत्व प्रव्रजितु = प्राप्तुं ‘प्रभू ण’ प्रभु = समर्थं किम् ? ‘ण’ इति वाक्यालङ्कारे ॥ सू० ३२ ॥

टीका—भगवानाह—‘णो इणट्टे समट्टे गोयमा ?’ इत्यादि । ‘णो इणट्टे समट्टे गोयमा !’ नाऽयमर्थं समर्थो गौतम ! ‘अम्मडे ण परिव्वायए समणोवासए’ अम्बड खलु

‘पहू णं भंते ! अम्मडे परिव्वायए’ इत्यादि ।

(भंते) हे भद्रन्त ! (अम्मडे परिव्वायए) यह अम्बड परिव्राजक (देवाणु-
प्पियाण अंतिए) आप के पास (मुंडे भवित्ता) मुडित होकर (अगाराओ) आगार
अवस्था से (अणगारिय) अनगार अवस्था को (पव्वडत्तए) धारण करने के लिये
(पहू ण) समर्थ है क्या ? ॥ सू० ३२ ॥

‘णो इणट्टे समट्टे’ इत्यादि ।

प्रभु ने कहा—(गोयमा) हे गौतम ! (णो इणट्टे समट्टे) यह अर्थ समर्थ नहीं है ।
क्यों कि (अम्मडे ण परिव्वायए) यह अम्बड परिव्राजक (समणोवासए) समणोपासक

‘पहू ण भंते ! अम्मडे परिव्वायए’ इत्यादि

(भंते) हे भद्रन्त ! (अम्मडे परिव्वायए) आ अम्बड परिव्राजक
(देवाणुप्पियाण अंतिए) आपनी पास (मुंडे भवित्ता) मुडित थडने (अगाराओ)
अगार अवस्थायी (अणगारिय) अनगार अवस्थाने (पव्वडत्तए) धारण
वस्थाने भाटे (पहू ण) समर्थ छे डे डेभ ? (सू० ३२)

“णो इणट्टे समट्टे” इत्यादि

प्रभुओ वल्लु (गोयमा) हे गौतम ! (णो इणट्टे समट्टे) आ अर्थ
समर्थ नहीं, डेभडे (अम्मडे ण परिव्वायए) आ अम्बड परिव्राजक (समणो-

व्यायए समणोवासए अभिगयजीवाऽजीवे जाव अप्पाणं
भावेमाणे विहरइ, णवरं ऊसियफलिहे अवंगुदुवारे चियत्ततेउर-
घरदारपवेसी एयं णं बुच्चइ ॥ सू० ३३ ॥

परिवाजक श्रमणोपासक, 'अभिगयजीवाऽजीवे' अभिगतजीवाऽजीव = जीवाजागतवज,
'जाव' यावत्-अत्र यावच्छब्दादिदृश्यम्-उपलब्धपुण्यपाप, आसन्नमरणनिर्जरा
क्रियाऽधिकरणवधमोक्षकुशल इति, 'अप्पाण भावेमाणे' आत्मान भावयन् विहरति=
विचरति। 'णवर' -अयमत्र विशेष - 'ऊसियफलिहे' उच्छ्रितस्फटिक = स्फटिकरागिरिव
निर्मल, 'अवंगुदुवारे' अपावृत्तद्वार - 'अवंगु' इतिदेशीय शब्द, उद्घाटितकपाट
द्वार - अतिधार्मिकतयाऽस्य प्रवेशकाले जनै कपाट उद्घाटयते इति भाव। 'चियत्ततेउरघर-
दारपवेसी' त्यक्ताऽन्त पुरगृहद्वारप्रवेग - त्यक्त = प्रीया जनैर्दत्त अन्त पुरगृहद्वारेषु प्रवेगो
यस्य स तथा, अतिधार्मिकतया सर्वत्र प्रवेगेऽनाङ्गनीय इति भाव। 'एयं णं बुच्चइ'
एव खल्वुच्यते = एतादृश सोऽम्बइ उच्यते ॥ सू० ३३ ॥

होकर (अभिगयजीवाजीवे जाव अप्पाण भावेमाणे विहरइ) जीव, अजान, पुण्य,
पाप, आसन्न, स्वर, निर्जरा, वध एव मोक्ष इनका ज्ञाता होता हुआ अपनी आत्मा को
भावित करता हुआ विचर रहा है। (णवर) परन्तु (एयं णं बुच्चइ) इतना भै अत्रत्य
कहता ह कि यह अम्बइ परिवाजक (ऊसियफलिहे) स्फटिकमणि की राशि के समान
निर्मल, (अवंगुदुवारे) जिसके लिये सभी के घरों का दरवाजा हर वरन खुला रहता है,
ऐसा है, और (चियत्ततेउरघरदारपवेसी) यह निश्चय होने के कारण राजाके अन्त-
पुर में भी वे-रोकटोक आता जाता है ॥ सू० ३३ ॥

वासए) श्रमणोपासक थडने (अभिगयजीवाजीवे जाव अप्पाण भावेमाणे
विहरइ) एव, अएव, पुण्य, पाप, आसन्न, स्वर, निर्जरा तेमज्ज वध, मोक्ष
येना ज्ञाता थडने पोताना आत्माने आवित करता विचरि छे (णवर) परन्तु
(एयं णं बुच्चइ) ओठलु तो हु अत्रत्य डहु छु डे आ अम्बइ परिवाजक
(ऊसियफलिहे) स्फटिकमणिनी राशि (दगलानी)) पेठे निर्मल (अवंगुदुवारे)
नेना भाटे अधाना घरना दरवाजा हर वधत खुल्ला रहे छे येवा छे, अने
(चियत्ततेउरघरदारपवेसी) ये विश्वासु डोवाना कारखे राजाना अत पुरमा
पछु डोई जतनी रोडटोक विना आवे जय छे (सू० ३३)

अन्वयः—अन्वयः षं पञ्चिवायगन्तु शूलः पायाड-
 जग पञ्चकवाग जावजीवाग जाव पञ्चिवाहे, पावर् नव्वे मेहुणे
 पञ्चकवाग जावजीवाग ॥ सूः ३४ ॥

अन्वयः—अन्वयः षं पञ्चिवायगन्तु षो कन्वड

टीका— अन्वयः षं पञ्चिवायगन्तु इति। 'अन्वयः षं पञ्चिवा-
 गन्तु' अन्वयः षं पञ्चिवायगन्तु शूलः पायाडवाग पञ्चकवाग जावजीवाग जाव
 पञ्चिवाहे, पावर् नव्वे मेहुणे पञ्चकवाग जावजीवाग ॥ सूः ३४ ॥

टीका— अन्वयः षं पञ्चिवायगन्तु इति। 'अन्वयः षं पञ्चि-

'अन्वयः षं पञ्चिवायगन्तु' इति।

(अन्वयः षं पञ्चिवायगन्तु) अन्वयः षं पञ्चिवायगन्तु ने (शूलपायाडवाग
 पञ्चकवाग जावजीवाग) शूलः पायाडवाग जावजीवाग जाव पञ्चिवाहे (जाव
 पञ्चिवाहे, पावर् नव्वे मेहुणे पञ्चकवाग जावजीवाग) शूलः पायाडवाग
 पञ्चकवाग जावजीवाग जाव पञ्चिवाहे, पावर् नव्वे मेहुणे पञ्चकवाग जावजीवाग
 शूलः पायाडवाग पञ्चकवाग जावजीवाग जाव पञ्चिवाहे, पावर् नव्वे मेहुणे
 पञ्चकवाग जावजीवाग ॥ सूः ३४ ॥

अन्वयः षं पञ्चिवायगन्तु इति।

अन्वयः षं पञ्चिवायगन्तु) अन्वयः षं पञ्चिवायगन्तु के लिये विहा करने

'अन्वयः षं पञ्चिवायगन्तु' इति।

(अन्वयः षं पञ्चिवायगन्तु) अन्वयः षं पञ्चिवायगन्तु (शूलपायाडवाग
 पञ्चकवाग जावजीवाग) शूलः पायाडवाग पञ्चकवाग जावजीवाग जाव
 पञ्चिवाहे (जाव पञ्चिवाहे) पावर् नव्वे मेहुणे पञ्चकवाग जावजीवाग
 शूलः पायाडवाग पञ्चकवाग जावजीवाग जाव पञ्चिवाहे, पावर् नव्वे मेहुणे
 पञ्चकवाग जावजीवाग ॥ सूः ३४ ॥

'अन्वयः षं पञ्चिवायगन्तु' इति।

(अन्वयः षं पञ्चिवायगन्तु) अन्वयः षं पञ्चिवायगन्तु ने माटे विहार

अक्खसोयप्पमाणमेत्तपि जलं सयराहं उत्तरित्तए, णण्णत्थ अद्धाण-
गमणेणं । अम्मडस्स णं णो कप्पइ सगडं वा एव तं चेव भाणिय-
व्वं णण्णत्थ एगाए गंगामट्टियाए । अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स

व्यायगस्स ' अम्बडस्य खलु परिव्राजकस्य, ' णो कप्पइ अक्खसोयप्पमाणमेत्तपि जल
सयराह उत्तरित्तए ' अक्षलोत प्रमाणमात्रमपि—अक्षलोत = चक्रधू प्रवेशरन्ध्रं तदेव
प्रमाण तेन प्रमाणेन मात्रा=परिमाणम् अवगाहनतो यस्य ततथा तत्, चक्रस्य छिद्रपर्यन्त
जलमपि ' सयराह ' शीघ्र, ' सयराह ' इतिदेगीयशब्द, ' उत्तरित्तए ' उत्तरीतु नो
कल्पते=तत्र प्रवेष्टु न कल्पते, तस्मान्मन्यूनपरिमाणं जलमुत्तरीतुं कल्पत इति भाव । ' णण्ण-
त्थ अद्धाणगमणेण ' नाऽन्यत्राऽध्वगमनात्—अध्वगमनादन्यत्राऽथ निषेध—अध्वगमने तु
जलमुत्तरीतु कल्पते, ' अम्मडस्स ण णो कप्पइ सगड वा एव त चेव भाणियव्व जाव'
अम्बडस्य खलु नो कल्पते शकट वा एव तदेव भणितव्य यावत्, यावच्छब्देन ' सदमा-
णियं वा दुरूहित्ताण गच्छित्तए ' इत्यारभ्य ' कुंकुमेण वा गाय अणुलिपित्तए ' इति
पर्यन्त पाठोऽस्यैवोत्तरार्धगतायादशमूत्रगतोऽनुसन्धेय इति । ' णण्णत्थ एगाए गंगामट्टियाए '

समय मार्ग में (सयराहं) अकस्मात् (अक्खसोयप्पमाणमेत्तपि) गाती की धुरा प्रमाण
जल आ जाय तो भी उसमें (उत्तरित्तए णो कप्पइ) उतरना नहीं कल्पता है।
(णण्णत्थ अद्धाणगमणेणं) परतु विहार करते हुए अन्य रास्ता नहीं हो तो बात अलग।
(अम्मडस्स ण णो कप्पइ सगड वा एव तं चेव भाणियव्व जाव) इसी तरह इस
अम्बड परिव्राजक को शकट आदि पर चढ़ना भी कल्पता नहीं है। यहा ' यावत् ' शब्द
से 'सदमाणिय वा दुरूहित्ता ण गमित्तए' यहा से लेकर ' कुंकुमेण वा गाय अणुलि-
पित्तए ' यहा तक का पाठ इसी आगम के उत्तरार्ध के अठारहवें सूत्र से समझ लेना

क़रती वधते मार्गभा (सयराह) अकस्मात् (अक्खसोयप्पमाणमेत्तपि) गातीना
धोसराणा प्रमाणे जेट्ठुं जल आपी जाय तो पणु तेमा (उत्तरित्तए णो कप्पइ)
एतत्तु कल्पतुं नथी (णण्णत्थ अद्धाणगमणेण) परतु विहार करता करता
धीन्ने रस्ता न डोय तो वात बुदी (अम्मडस्स णं णो कप्पइ सगड वा एव त
चेव भाणियव्व जाव) ओपी रीते ते अभ्यड परिव्राजकने शकट (गाडी) आदि
पर चढतु पणु कल्पतुं नथी अडी (यावत्) शकटथी 'सदमाणिय दुरूहित्ता
ण गच्छित्तए' अडीथी लधने ' कुंकुमेण वा गाय अणुलिपित्तए ' अडी सुधीने।
पाठ आ आगमना उत्तरार्धना अठारभा सूत्रथी जाणी देवेने नोधये (णण्णत्थ

णो कप्पइ आहाकम्मिए वा उद्देसिए वा मीसजाए इ वा अज्जो-
यरए इ वा पूइकम्मे इ वा कीयगडे इ वा पामिच्चे इ वा अणिसि-

नान्यत्रैरस्या गङ्गापृत्तिकाया - एका गङ्गापृत्तिका कल्पते प्रहीतुमियर्थ । 'अम्मडम्म णं
परिव्वायगस्स णो रूप्पइ आहाकम्मिए वा' अम्बडत्थं खलु परिवाजकस्य मो कल्पते-
आधाकर्मिक=पट्कायोपमर्दनपूर्वकं साधुवर्धकृतमशनादिकं वा 'उद्देसिए वा' औद्देशिक=
साधुमुद्दिश्य यत् कृतं तद् वा न कल्पते, 'मीसजाए इ वा' मिश्रजात-मिश्रेण=गृहस्थ-
साध्यादिप्रणिधानलक्षणभावेन निष्पन्न=पाकान्निभावमुपगतं मिश्रजातमन्नाद्येव, तदपि न
कल्पते, 'इ वा' इति सर्वत्र वाक्यालङ्कारे, 'अज्जोयरए इ वा' अयवरतम्=साधुवर्धम-
धिकप्रक्षेपणेन निष्पादितम्, एतदप्यकल्पनीयम्, 'पूइकम्मे इ वा' पूतिकर्म-आधाकर्मिक-
विशुद्धलेशसपृक्तभक्तादि, तदपि न कल्पते, 'कीयगडे इ वा' कीतकृतम्-क्रात=कृत्यण-सा-

चाहिये। (णण्णत्थ एगाए गगामट्टियाए) इत्ते सिर्फ एरु गगा की मिट्टी ही कल्पित
है। (अम्मडस्स ण परिव्वायगस्स) इस अम्बड परिव्राजक के लिये (णो रूप्पइ
आहाकम्मिए वा उद्देसिए वा मीसजाए इ वा अज्जोयरए इ वा पूइकम्मे इ वा
कीयगडे इ वा पामिच्चे इ वा अणिसिट्टे इ वा अभिहडे इ वा) पट्कायोपमर्दनपूर्वक
साधु के निमित्त निष्पादित आधाकर्मिक एव औद्देशिक-साधु के उद्देश्य करके
बनाया गया अशनादिक ग्रहण करना परिवर्जित है। तथा मिश्रजात-साधु एव गृहस्थ के
उद्देश्य से तैयार किया गया अन्नादिक का भा ग्रहण करना निषिद्ध है। इन पदों में "इ"
"वा" ये दोनों वर्ण वाक्यालङ्कार में प्रयुक्त हुए हैं। इसी तरह अयवरत-साधु के लिये
अधिक मात्रा में बनाया गया आहार, पूतिकर्म-आधाकर्मिक आहार के अंश से मिश्रित

एगाए गगामट्टियाए) तेने भाटे मात्र अेक गगानी भाटीअ उद्वियत अतावी
छे (अम्मडस्स ण परिव्वायगस्स) आ अणउ परिवाजकने भाटे (णो कप्पइ
आहाकम्मिए वा उद्देसिए वा मीसजाए इ वा अज्जोयरए इ वा पूइकम्मे इ वा कीयगडे-
इ वा पामिच्चे इ वा अणिसिट्टे इ वा अभिहडे इ वा) पट् (छ) काया उपमर्दनपूर्वक
साधुने निमित्त निष्पादित आधाकर्मिक तेमअ औद्देशिक-साधुने उद्देश्य करीने
अनावेलु अशन आदिक अहणु करणु परिवर्जित छे तथा मिश्रजात-साधु
तेमअ गृहस्थना उद्देश्यथी तैयार करेला अन्न-आदिकणु अहणु करणु पणु
निषिद्ध छे आ पदोभा 'इ' अने 'वा' अे अन्ने वणु वाक्यालकारभा
परायेला छे तेवीअ रीते अयवरत-साधुने भाटे अधिक मात्राभा अनावेला
आहार, पूतिकर्म-आधाकर्मिक आहारना अथथी मिश्रित आहार, कीतकृत-

ट्टे इ वा अभिहडे इ वा ठडत्तए वा रडत्तए वा, कंतारभत्त इ वा
दुम्भिवखभत्ते इ वा गिलाणभत्ते इ वा वदलियाभत्ते इ वा पाहुण-

व्यादिनिमित्त तेन कृत=निष्पातितम्, तदपि न कल्प्यम्। 'पामिञ्जे इ वा' प्रामित्यम्= यदन्नवखादिक साध्यमुच्छ्रियानीयते तत् प्रामित्यम्। 'अणिसिट्ठे इ वा' अनिसृष्टम्- सर्वं स्वामिभि साधवे दातु न निसृष्ट=नानुजात यत् तदन्निसृष्टम्, यदा द्वित्राणा पुर पाणा साधारणे आहारे एकोऽन्याननापृच्छ्य साधवे ददाति, तदा तदन्नमनिसृष्ट, तदपि न कल्पते। 'अभिहडे इ वा' अभ्याहृतम्-साधु ममुखमानीतं न कल्पते। 'ठडत्तए वा' स्थापित-स्वनिमित्त स्थापित न कल्पते। 'रडत्तए वा' रचितम्-औद्वेगिकमेद, तच्च मोदकचूर्णादि पुनर्मोदकतया रचित, तदपि न कल्प्यम्। 'कंतारभत्ते इ वा' कान्तारभक्तम्- कान्तारम्=अरण्यम्-तत्समुल्लघनार्थं नीयमान भक्तम्। यदा अरण्ये भिक्षुकाणा निर्वाहाय यत् सस्क्रियते तत् कान्तारभक्तम्-तदप्यकल्पनीयम्। 'दुम्भिवखभत्ते इ वा' दुर्मिक्षभक्तमिति वा-दुर्मिक्षे भिक्षुकाणा कृते यत् सस्क्रियते तदप्यकल्पनीयम्। 'गिलाणभत्ते इ वा' ग्लान-

आहार, क्रीतकृत-मोल लाकर दिया गया आहार, प्रामित्य-उधार लेकर अथवा किसान दूसरे से झपट कर दिया हुआ आहार, अनिसृष्ट-जिस आहार के ऊपर अनेक का स्वामित्व है उन सभी को पूछे बिना सिर्फ एक के द्वारा दिया गया आहार, अभ्याहृत-साधु के मसुख लाकर दिया गया आहार, स्थापित-साधु के निमित्त रखा हुआ आहार, रचित-मोदक-चूर्ण आदि को फोड़कर पुन मोदकरूप में बनाया गया आहार, कान्तारभक्त-अटवा को उल्लघन करने के लिये घर से लाया हुआ पाथेयस्वरूप आहार, अथवा जंगल में भिक्षुकों के निर्वाह के लिये तैयार करवाया गया आहार, दुर्मिक्षभक्त-दुर्मिक्ष के समय भिक्षुकों को देने के लिये बनवाया गया आहार, ग्लानभक्त-रोगी के लिये बनाया गया आहार, धार्दलिका-

वेयांती लधने दीधेत्तो आहार, प्रामित्य-उधार लधने अथवा कोर्ध पीण पासेथी अुट्ठी लधने दीधेत्तो आहार, अनिसृष्ट-ने आहारना उपर अनेकवृ स्वामित्व डाय जेवा अधाने पूछया बिना मात्र जेकना द्वारा अधायेत्तो आहार, अभ्याहृत-साधुमी सामे लध आवीने आपेत्तो आहार, स्थापित-साधुना निमित्त राणी मुठेत्तो आहार, रचित लाडुने तोडीने भूका करी पधी ते भूकाभाधी लाडु-इपभा बनायेत्तो आहार, कान्तारभक्त-अटवीने उल्लघन करवा माटे धरथी लावी राजेत्तो पाथेयवइप आहार, अथवा जंगलमा भिक्षुकेना निर्वाडने माटे तैयार करयेत्तो आहार, दुर्मिक्षभक्त-दुम्भिकाण समयमा भिक्षुकेने देवा माटे बनायेत्तो आहार, ग्लानभक्त-रोगीने माटे बनायेत्तो

गभत्ते इ वा भोत्तए वा पाइत्तए वा । अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स
णो कप्पइ मूलभोयणे वा जाव वीयभोयणे वा भोत्तए वा
पाइत्तए वा ॥ सू० ३५ ॥

भक्तम्—ग्लान सन् निजाऽऽगोयाय यत्प्रदीयते तद्—ग्लानभक्तम्, 'वृद्धलियामत्ते इ वा'
वार्द्धलिकाभक्तम्—वृष्टौ यदातु क्रियते एतन्प्यक्रुष्यम् । 'पाहुणगभत्ते इ वा' प्राधुणक-
भक्तम्—प्राधुणक = क्रोऽपि क्रस्य चिद् गृहे समागत तस्य क्रते यत् क्रियते तत् प्राधुणकभक्तम्,
एतदप्यक्रुष्यनीयम् । एतत्पूर्वोक्तम्—' भोत्तए वा पाइत्तए वा ' भोक्तु वा पातु वा न क
ल्पते इत्युक्तमेव । 'अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स णो कप्पइ मूलभोयणे वा जाव वीय-
भोयणे वा भोत्तए वा पाइत्तए वा ' अम्बडस्य खल परिवाजकस्य न कल्पते मूलभोजन
वा यावद् बीजभोजन वा भोक्तु वा पातु वा—मूलानि कमलादीना, यावच्छब्दा क्रन्दभोजन
फलभोजन हरितभोजनमेतानि त्रीणि पदानि गृह्यन्ते, तत्र—क्रन्दा = सुरणादयः, फलानि=आम्र-
फलादीनि, हरितानि=मधुरतृणादीनि, बीजानि=शान्यादीनि, एतानि भोक्तु न कल्पन्ते, तथा—
आधाकर्मान्पियानकानि पातु न कल्पन्ते इति ॥ सू ३५ ॥

भक्त—वृष्टि में देने के लिये प्रनाया गया आहार, प्राधुणकभक्त—पाहुणों के लिये राधा गया
आहार, उस अम्बड परिवाजक के लिये नहीं कल्पता है, और इसी प्रकार का पेय भी उसे
नहीं कल्पता है । (अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स णो कप्पइ मूलभोयणे वा जाव
वीयभोयणे वा भोत्तए वा पाइत्तए वा) इसी प्रकार इस अम्बड परिवाजक के लिये क्रम-
लादिकों के मूल, सुरणादिक क्रन्द, आम्र आदि फल का भोजन एव अपक शाल्यादिक एव
मधुर तृण आदि हरित सचित्त वस्तु का भोजन भी अकल्पित है ॥ सू ३५ ॥

आहार, वार्द्धलिकालक्षत—वृष्टिभा देवा भाटे जनावेत्ते। आहार, प्राधुणकलक्षत—
परोष्ठाओने भाटे रधाववाभा आवेत्ते। आहार ते अम्बड परिवाजकने भाटे
नथी कल्पते, अने आवा प्रदरतु पेय पथु तेने नथी कल्पतु (अम्मडस्स णं
परिव्वायगस्स णो कप्पइ मूलभोयणे वा जाव वीयभोयणे वा भोत्तए वा पाइत्तए वा)
आ प्रकारे ओ अम्बड परिवाजकने भाटे कभज आदिना भूण, सुरण
आदि कइ, आम्र आदि इणतु लोअन तेमअ अपकव शालि आदि तेमअ
मधुर तृण आदि लीली सचित्त वस्तुतु लोअन पथु अकल्पित छे (सू ३५)

મૂલમ્—અમ્મહસ્સ ણં પરિવ્વાયગસ્સ ચડવ્વિહે અણ-
દ્વાદ્દે પચ્ચક્ખાણ જાવજ્જીવાણ, તં જહા—અવજ્જાણાયરિણ પમાયા-
યરિણ હિંસપ્પયાણે પાવકમ્મોવણ્ણે ॥ સૂ. ૩૬ ॥

ટીકા—‘અમ્મહસ્સ ણ’ ઇત્યાદિ ।

‘અમ્મહસ્સ ણ પરિવ્વાયગસ્સ’ અમ્મહસ્સ સ્વરૂપ પરિવાજકસ્ય ‘ચડ
વ્વિહે અણદ્વાદ્દે પચ્ચક્ખાણ જાવજ્જીવાણ’ ચતુર્થિઠ્ઠ અનર્થદ્વંડ—અર્થ=પ્રયોજન ગૃહ-
સ્થસ્ય ક્ષેત્રવાસ્તુધનધાન્ય શરીરપરિપાલનાદિવિષય—તદર્થ આરમ્ભો=મૂતોપમદોડર્થદ્વંડ ।
દ્વંડો નિપ્રહો યાતના ત્રિનાશ ઇતિ પર્યાયા । અર્થેન=પ્રયોજનેન દ્વંડોડર્થદ્વંડ, સ ચૈવમૂત
ઉપમર્દનલક્ષણો દ્વંડ ક્ષેત્રાદિપ્રયોજનમપેક્ષમાણોડર્થદ્વંડ ઉચ્યતે, તદ્વિપરીતોડનર્થદ્વંડ પ્રત્યા
રયાતો યાવજ્જીવમ્ । અયમનર્થદ્વંડ ફિસ્વરૂપઃ ઇતિ બોધયિતુમાહ—‘ત જહા’
તથથા—‘અવજ્જાણાયરિણ’ અપધ્યાનાસચરિત—અપધ્યાનમ્=આર્તરૌદ્રરૂપ, તેનાચરિત =
આસેવિનો યોડનર્થદ્વંડ સ તથા । ‘પમાયાયરિણ’ પ્રમાદાસચરિત—પ્રમાદેન=મદ્યવિષય

‘અમ્મહસ્સ ણ પરિવ્વાયગસ્સ’ ઇત્યાદિ ।

(અમ્મહસ્સ ણ પરિવ્વાયગસ્સ) ઇસ અમ્મહ પરિવાજક કે (ચડવ્વિહે) ચારો
પ્રકાર કે (અણદ્વાદ્દે) અનર્થ દ્વંડો કો (જાવજ્જીવાણ પચ્ચક્ખાણ) જાગનપર્યન્ત પરિ-
વ્યાગ હૈ । વ ચાર અનર્થદ્વંડ ઇસ પ્રકાર હૈ—(અવજ્જાણાયરિણ પમાયાયરિણ હિંસપ્પ-
યાણે પાવકમ્મોવણ્ણે) અપધ્યાનાચરિત, પ્રમાદાચરિત, હિંસાપ્રદાન, ઇવ પાપકર્મોપદેશ ।
વિના પ્રયોજન જીવોં કા ઉપમર્દન જિન કાર્યોં કે કરને સે હોતા હૈ ઇસકા નામ અનર્થદ્વંડ
હૈ । આર્તરૌદ્રરૂપ ધ્યાન કા નામ અપધ્યાન હૈ । ઇસ ધ્યાનસે ઉદ્ભૂત અથવા ક્રિયમાણ દ્વંડ
કા નામ અપધ્યાનાચરિત અનર્થ દ્વંડ હૈ । મદ્ય, વિષય, ક્રુપાય, નિદ્રા ઇવ વિરુધ્ધારૂપ પ્રમાદ સે

“અમ્મહસ્સ ણ પરિવ્વાયગસ્સ” ઇત્યાદિ

(અમ્મહસ્સ ણ પરિવ્વાયગસ્સ) આ અમ્મહ પરિવાજકને (ચડવ્વિહે)
ચારેય પ્રકારના (અણદ્વાદ્દે) અનર્થ દ્વંડોને (જાવજ્જીવાણ પચ્ચક્ખાણ) જાગન
પર્યન્ત પરિવ્યાગ છે એ ચાર અનર્થદ્વંડ આ પ્રકારના છે (અવજ્જાણાયરિણ
પમાયાયરિણ હિંસપ્પયાણે પાવકમ્મોવણ્ણે) અપધ્યાનાચરિત, પ્રમાદાચરિત, હિંસા
પ્રદાન—હિંસાકારક શસ્ત્ર કોઇને દેવું, તેમજ પાપકર્મને ઉપદેશ વિના પ્રયોજન
જીવોં ઉપમર્દન જે અર્થો કરવાથી થાય તેવું નામ અનર્થદ્વંડ છે આર્ત-
રૌદ્રરૂપ ધ્યાનનું નામ અપધ્યાન છે આ ધ્યાનથી ઉદ્ભવેલા અથવા ધનારા
દ્વંડનું નામ અપધ્યાનાચરિત—અનર્થદ્વંડ છે મદ્ય, વિષય, ક્રુપાય, નિદ્રા તેમજ

मूलम्—अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स कप्पड मागहए अद्दाहए जलस्स परिग्गाहित्तए, से वि य वहमाणए णो चेव

कपायनिद्राविकथालक्षणेन आचरित 'हिंसप्याणे' हिंसाप्रदानम्—हिंसाहेतुत्वाद्गन्निग्नि-
शस्त्रादिक हिंसोच्यते, कारणे कार्योपचारात्, तत्प्रदानमन्यस्मै क्रोशभिभूताय अनभिभूताय
वा । यद्वा—हिंस्रप्रदानमितिच्छाया—हिंस्र=हिंसाकारि शस्त्रानि, तत्प्रदान=परेषा समर्पणम्,
अय तृतीयोऽनर्थदण्ड, 'पापकम्मोवणमे' पापकर्मोपदेश—पार्तयति नरकादाजिति
पापम्, तत्प्रधान कर्म पापकर्म, तस्योपदेश, कृप्यादिमात्रध्व्यापारं प्रवर्तनम्, अय
चतुर्थे ॥ सू० ३६ ॥

टीका—'अम्मडस्स' इत्यादि ।

'अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स कप्पड' अम्मडस्य ग्वल्ल परिवाजकस्य कल्पते
'मागहए अद्दाहए जलस्स परिग्गाहित्तए' मागमथादक जलस्य परिग्रहीतुम्, 'से वि य
क्रिये गये कार्ये का नाम प्रमादाचरित अनर्थदण्ड है । हिंसा के हेतु होने से अग्नि, विष एव
शस्त्र आदि, कारण में कार्य के उपचार से हिंसास्वरूप कहे गये हैं । इन हिंसा के कारणों
को किसी क्रोशयुक्त व्यक्ति के लिये अथवा क्रोधरहित व्यक्ति के लिये देना सो हिंसाप्रदान
नाम का अनर्थदण्ड है । आत्मा को जो नरक में डाले उसका नाम पाप है, इस पापप्रधान
कर्म करने का उपदेश देना अथवा स्वयं भी कृप्यादि साधनरूप व्यापार में प्रवृत्ति करना
सो पापोपदेश नामका अनर्थदण्ड है ॥ सू ३६ ॥

'अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स' इत्यादि ।

(अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स) इस अम्बड परिवाजक को (मागहए
अद्दाहए) भगवद्देश प्रसिद्ध अर्थ—आदक—प्रमाण (जलस्स परिग्गाहित्तए कप्पड) जल

विज्याइय प्रमादथी आव्यरेला-करेला कार्यंतु नाम प्रमादाचरित-अनर्थदण्ड
छे हिंसाणा डेतु थाय तेवा अग्नि, विष तेमज शस्त्र आदि, कारणमा कार्येना
उपचार थावाथी हिंसास्वरूप कहेवाय छे आ हिंसाणा कारणेने केरि
कोधायमान व्यक्तित्ते उ विना कोधवाणा व्यक्तित्ते भाटे आपवा ते हिंसाप्रदान
नामने अनर्थदण्ड छे आत्माने ले नरकमा नाये तेतु नाम पाप छे आ
पापप्रधान ठमं करवाने उपदेश देवे अथवा पोते यल्ल कृपि आदि मावधइय
व्यापारमा प्रवृत्ति करवी ते पापोपदेश नामने अनर्थदण्ड छे (सू ३६)

'अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स' इत्यादि

(अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स) आ अण्ड परिवाजके (मागहए
अद्दाहए) भगवद्देश प्रसिद्ध अर्थ—आदक प्रमाण (जलस्स परिग्गाहित्तए कप्पड)

ળ અવહમાણૅ, ંવં ધિમિૅ પસન્ને જાવ સે વિ ય પરિપૂૅ ણો
 ચેવ ણં અપરિપૂૅ, સે વિ ય સાવજ્ઞે ત્તિ કાઠં ણો ચેવ ણં
 અણવજ્ઞે, સે વિ ય જીવત્તિ કાઠં ણો ચેવ ણં અજીવે, સે વિ

વહમાણૅ ણો ચેવ ણ અવહમાણૅ' તદપિ ચ વહમાને નો ચૈવ સ્વલ્લ અવહમાનમ્,
 'ૅવ ધિમિૅ પસન્ને જાવ' ંવ ત્તિમિત પ્રસન્ન યાવત્ 'સે વિ ય પરિપૂૅ ણો ચેવ ણ
 અપરિપૂૅ' તદપિ ચ પરિપૂત નો ચૈવ સ્વલ્લ અપરિપૂતમ્, ઠસ્માત્ કારણાત્ પરિપૂત ગૃહ્ણા
 તીયત આહ—'સે વિ ય સાવજ્ઞે ત્તિ કાઠ' તદપિ ચ સાવધમિતિ કૃવા—ઠ્ઠિ । ઈદ
 જલ સાવધમસ્તીતિ જાત્વા વલ્લગાલિત કૃવા ગૃહ્ણાતાતિ માન । 'ણો ચેવ ણ અણવજ્ઞે'
 ન ચૈવ સ્વલ્લ અનયમ્—ન તુ નિરયમિતિ કૃત્વા પરિપૂતં કરોતિ । સાવધમિત્યપિ ઠય જાતમ્'
 ઈત્યત આહ—'સે વિ ય જીવત્તિ કાઠ' તદપિ ચ જીવા ઈતિ કૃત્વા, ઈહ પુતરકાદિજીવા
 સન્તીતિ કૃત્વેતિ માવ', 'ણો, ચેવ ણ અજીવે ત્તિ કાઠ' નો ચૈવ સ્વલ્લ અજીવ=જીવરહિતમ્
 ઈતિ કૃત્વા, 'સે વિ ય ઢિણ્ણે ણો ચેવ ણ અઢિણ્ણે' તદપિ ચ દત્ત નો ચૈવ સ્વન્વદત્તમ્,

પહળ કરના કલ્પતા હૈ । (સે વિ ય વહમાણૅ ણો ચેવ ણ અવહમાણૅ) જિતના
 અર્ધ—આઢક—પ્રમાણ જલ લેના ઈસે કલ્પતા હૈ સો મી વહતા હુઆ હી કલ્પતા હૈ, અવહતા
 હુઆ નહીં । (ૅવ ધિમિૅ પસન્ને જાવ સે વિ ય પરિપૂૅ ણો ચેવ ણં અપરિપૂૅ)
 વહ મી ઠર્દમ સે રહિત, સ્વચ્છ, પ્રસન્ન—નિર્મલ યાવત્ પરિપૂત—ઝાના હુઆ હી કલ્પતા હૈ,
 ઢસસે વિપરીત નહીં । (સે વિ ય સાવજ્ઞેત્તિ કાઠ ણો ચેવ ણ અણવજ્ઞે) સોમી
 સાવધ સમજ્ઞ ઠર ઝાના હુઆ હી કલ્પતા હૈ, નિરયધ સમજ્ઞ ઠર નહીં । (સે વિ ય જીવત્તિ
 કાઠ ણો ચેવ ણ અજીવે) સાવધ મી ંસે વહ જીવસહિત સમજ્ઞકર હી માનતા
 હૈ, અજીવ સમજ્ઞકર નહીં । (સે વિ ય ઢિણ્ણે ણો ચેવ ણ અઢિણ્ણે)

જલ શ્રઢલ્લ ઠરલ્લ ઠલ્પે છે (સે વિ ય વહમાણૅ ણો ચેવ ણ અવહમાણૅ)
 ંલ્લ અર્ધ—આઢક પ્રમાણ જલ લેલુ તેને ઠલ્પે છે તે પશુ વહેતુ ઢોધ
 તેલુ જ ઠલ્પે છે, ન વહેતુ ઢોધ તે નહિ (ૅવ ધિમિૅ પસન્ને જાવ સે વિ ય
 પરિપૂૅ ણો ચેવ ણ અપરિપૂૅ) તે પશુ ઠર્દમ, (ઠયરા)થી રહિત, સ્વચ્છ,
 પ્રસન્ન—નિર્મળ યાવત્ પરિપૂત—ગાળેલુ જ ઠલ્પે છે, તે વિનાતુ નહિ (તેનાથી
 ઢલલ્લ નથી ઠલ્પતુ) (સે વિ ય સાવજ્ઞેત્તિ કાઠ ણો ચેવ ણ અણવજ્ઞે) તે પશુ
 સાવધ સમજ્ઞને ગાળેલુ જ ઠલ્પે છે, નિરયધ સમજ્ઞને નહિ (સે વિ ય
 જીવત્તિ કાઠ ણો ચેવ ણ અજીવે) સાવધ પશુ તેને તે ંવસહિત સમજ્ઞને
 જ માને છે, અલ્લવ સમજ્ઞને નહિ (સે વિ ય ઢિણ્ણે ણો ચેવ ણ અઢિણ્ણે)
 તે પશુ ઢોધને આપેલુ ઢોધ તે જ ઠલ્પે છે ઠીધા વગરતુ નહિ (સે વિ

य दिण्णे णो चेव णं अदिण्णे, से वि य हत्थ-पाय-चरु-
चमस-पक्खालणट्टयाए पिवित्तए वा, णो चेव णं सिणाइत्तए ।
अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स कप्पड मागहए य आढए जलस्स
पडिग्गाहित्तए, से वि य वहमाणए जाव णो चेव णं अदिण्णे,

‘से वि य हत्थ-पाय-चरु-चमस-पक्खालणट्टयाए पिवित्तए वा’ तदपि च हस्त-
पाद-चरु-चमस-प्रक्षालनार्थाय पातु वा, चरु पात्रविशेष, ‘णो चेव ण सिणाइत्तए’
नो चैव खल्वत्तातुम् । ‘अम्मडस्स ण परिव्वायगस्स कप्पड’ अम्बडस्य खलु परिवाजकस्य
रूपते ‘मागहए य आढए जलस्स पडिग्गाहित्तए’ मागध चादकजलस्य प्रतिग्रहीतुम्,
‘से वि य वहमाणए जाव णो चेव ण अदिण्णे’ तदपि महामानं यावत् नो चैव खल्वदत्तम्,
‘से वि य सिणाइत्तए’ तदपि च स्नातुम्, ‘णो चेव ण हत्थ-पाय-चरु-चमस-

उह भा णिया हुआ हा रूपता है, विना दिया हुआ नहीं । (से वि य हत्थ-पाय-चरु-
चमस-पक्खालणट्टयाए पिवित्तए वा) दिया हुआ भा उह जल हस्त, पाद, चरु (पात्र
विशेष) ण चमस के प्रक्षालन क लिये अथवा पीने क लिये हा रूपता है, (णो सिणा
इत्तए) स्नान क लिये नहीं । (अम्मडस्स ण परिव्वायगस्स कप्पड मागहए य आढए
जलस्स पडिग्गाहित्तए) इस अम्बड परिवाजक को मगधदेशमन्त्री आढकप्रमाण जल
ग्रहण करना रूपता है (से वि य वहमाणए जाव णो चेव णं अदिण्णे) वह भी
बहता हुआ यावत् दिया हुआ हा रूपता है, विना दिया हुआ नहीं । (से वि य सिणा
इत्तए णो चेव ण हत्थ-पाय-चरु-चमस-पक्खालणट्टयाए) वह भी स्नान क लिये

य हत्थ-पाय-चरु-चमस-पक्खालणट्टयाए पिवित्तए वा) दीधेलु डोय ते पणु पाणी,
डोय पण, चरु, तेमज्ज अभसने धोवा भाटे अथवा पीवा भाटे ज् डट्ठे छे (चरु,
अभस अथवा पात्रविशेषना नामो छे) (णो सिणाइत्तए) स्नान भाटे नडि (अम्मडस्स
ण परिव्वायगस्स कप्पड मागहए य आढए जलस्स पडिग्गाहित्तए) आ अणउ परि
वाजकने मगधदेश-सणधी आढकप्रमाणे ज् ड डडु डट्ठे छे (से वि य
वहमाणए जाव णो चेव ण अदिण्णे) ते पणु पडेतु डोय तेज् डट्ठे छे, (यावत्)
आपेलु डोय ते डट्ठे छे आपेलु न डोय तेषु नडि (से वि य सिणाइत्तए णो
चेव ण हत्थ-पाय-चरु-चमस-पक्खालणट्टयाए) ते पणु स्नान भाटे ज् डट्ठे छे ।

से वि य सिणाइत्तए, णो चैव णं हत्थ- पाय- चरु- चमस- प-
क्खालणट्टयाए पिचित्तए वा ॥ सू० ३७ ॥

मूलम्—अम्मडस्स णो कप्पइ—अण्णउत्थिया वा अ-
ण्णउत्थियदेवयाणि वा अण्णउत्थियपरिग्गहियाणि वा चेइयाइं

पक्खालणट्टयाए पिचित्तए वा' नो चैव सल्ल हस्त-पाद-चरु-चमस-प्रक्षालनाऽथै
पातु वा, शेषपदव्याख्याऽस्यैवागमस्योत्तरार्धे णकोनविगितितमे मूत्रे प्रदर्शिता, अत्र सूत्रे जलस्य
परिमाणं प्रदर्शितमस्ति ॥ सू ३७ ॥

टीका—'अम्मडस्स णो कप्पइ' इत्यादि ।

'अम्मडस्स णो कप्पइ' अम्बडस्य न कल्पते, अस्य 'नन्दितुम्' इत्यत्रान्वय ।
कान् नन्दितु न कल्पते 'अत्राऽऽह—'अण्णउत्थिया वा' अन्ययूथिकान् वा—अन्यत्=तीर्थ-
करमघापेभया भिन्न यद् यूथ-सघस्तदन्ययूथ तदस्त्येषामित्यन्ययूथिका=गान्त्यादिभिक्षव
तान्, 'अण्णउत्थियदेवयाणि वा' अन्ययूथिकदैवतानि वा—अन्ययूथिकाना दैवतानि
अन्ययूथिकदैवतानि—अर्हद्भिन्नान देवान वा, 'अण्णउत्थियपरिग्गहियाणि वा चेइयाइं'

ही कल्पता है, हाथ, पैर, चरु एव चमचा को धोने के लिये नहीं, और न पान के लिये
ही । 'आढक' आदि का अर्थ इसी आगम के उत्तरार्ध में उन्नासने सूत्र का व्याख्या में
प्रदर्शित किया गया है ॥ सू ३७ ॥

'अम्मडस्स णो कप्पइ' इत्यादि ।

(अम्मडस्स) इस अम्बड को (अण्णउत्थिया) अन्ययूथिक-तीर्थकरमघ की
अपेक्षा शाक्यादिक भिक्षुओं का मघ, एव (अण्णउत्थियदेवयाणि वा) अन्यमघ द्वारा
उपास्यरूप से समत अर्हत्-प्रभु सिवाय दूसरे देवता, (अण्णउत्थियपरिग्गहिया

हाथ, पग, चरु तेभञ्ज अमया धेवा माटे नद्धि अने धीवा माटे पल्लु नद्धि
'आढक' आदिने अर्थ अने आगमना उत्तरार्धमा आगल्लुवीशमा सूत्रनी
व्याख्यामा करवाभा आये छे (सू. ३७)

'अम्मडस्स णो कप्पइ' इत्यादि

(अम्मडस्स) अने अम्बडने (अण्णउत्थिया) धील्ल यूथवाणा-तीर्थ करस धनी
अपेक्षा शाक्य भिक्षुओंना सध, तेभञ्ज (अण्णउत्थियदेवयाणि वा) धील्ल
सध द्वारा उपास्यरूपथी समत अर्हत् प्रभु सिवाय धील्ल देव, (अण्ण-
उत्थियपरिग्गहियाणि वा चेइयाइ) तथा धील्ल यूथमा लणी गयेला नैन साधु

वदित्तए वा णमंसित्तए वा जाव पज्जुवासित्तए वा, णणत्थ
अरिहंते वा अरिहंतचेइयाइं वा ॥ सू० ३८ ॥

मूलम्—अम्मडे णं भंते । परिव्वायए कालमासे कालं

अन्ययूयिकपरिगृहीतान् वा चैयान्, आर्यवात् झीरनिर्देश, चित्ति = ज्ञान, तत्र साधव =
कुशल चित्ति = अर्हः साधव, त एव चैया, प्रजादित्वात् स्वार्थेऽण्, तान्, अयमत्र पिण्ड-
तोऽर्थ, तैर्यिकान्तरमाधून् वा तैर्यिकान्तरदेवान् वा, यथाकथंचित्तरिकान्तरमभिहितान्
जिनसाधून् वा 'वदित्तए वा' वदित्तुं = स्तोतु वा, 'णमंसित्तए वा' नमस्त्यतु = नम-
स्कर्तुं वा 'जाव पज्जुवासित्तए वा' यावत् पर्युपासितुम् = आराधयितु वा, 'णणत्थ
अरिहंते वा अरिहंतचेइयाइ वा' नाऽन्यत्र अर्हतो वा अर्हचैयान् वा । अय निपेधोऽर्ह-
द्विपेये, अर्हत्मावुविपये वा न घटते, किन्तु ततोऽन्यत्राऽय निपेध इति भाव । 'चैय' शब्दस्य
विस्तृतोऽर्थ 'उपासकदशाङ्ग'—सूत्रस्यागारधर्ममजीवनीटीकाया मया प्रदर्शित स ततोऽन्येय
॥ सू ३८ ॥

टीका—गौतम पृच्छति—'अम्मडे ण भंते ! परिव्वायए' इत्यादि ।

'भंते' हे भदन्त । 'अम्मडे णं परिव्वायए' अम्बड खल्ल परिभाजक

णि वा चेइयाइ) तथा अन्य यूय में सम्मिलित जैन साधु भी (वदित्तए वा णमंसि-
त्तए वा जाव पज्जुवासित्तए वा) वदना करने, नमस्कार करने एव पर्युपासना करने के
लिये (णो कप्पइ) कपते नहीं हैं । (णणत्थ अरिहंते वा अरिहंतचेइयाइ वा)
परंतु यदि नमस्कार आदि के लिये उसे कोई कपते हे तो वे एकमात्र अरिहंत एव अरि-
हंत के साधुजन ही कपते हैं । 'चैय' शब्द का विस्तृत अर्थ, जिज्ञासुओं को
'उपासकदशाङ्ग' की अगारधर्ममजीवनी टीका में देखना चाहिये ॥ सू ३८ ॥

'अम्मडे ण भंते' इत्यादि ।

(भंते) हे भदन्त ! (अम्मडे ण परिव्वायए) यह अम्बड परिभाजक (कालमासे

पथु (वदित्तए वा णमंसित्तए वा जाव पज्जुवासित्तए वा) वदना करवा,
नमस्कार करवा तेमए पर्युपासना करवा भाटे (णो कप्पइ) नहीं कपता
(णणत्थ अरिहंते वा अरिहंतचेइयाइ वा) परंतु नमस्कार आदि योग्य जे
ठोई जेने भाटे डोय ते ते जेठमात्र अरिहंत तेमए अरिहंतना साधुजन
ए छे 'चैय' शब्दने विस्तृत अर्थ जिज्ञासुओंके 'उपासकदशाङ्ग'नी
अगारधर्मसंलघवनी टीकाभा जेवे जेधजे (सू ३८)

"अम्मडे ण भंते ।" इत्यादि

(भंते) हे भदन्त ! (अम्मडे ण परिव्वायए) आ अम्बड परिभाजक (काल-

किञ्चा कर्हि गच्छिहिति ? कर्हि उव्वज्जिहिति ? गोयमा !
अम्मडे ण परिव्वायए उच्चावएहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-
पच्चक्खाण-पोसहो-व्वासेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहूडं वासाइं

‘कालमासे काले किञ्चा कर्हि गच्छिहिति ? कर्हि उव्वज्जिहिति ?’ कालमासे काल
कृत्वा कुत्र गमिष्यति ? कुत्रोपस्यते ? भगवानाह—‘गोयमा ! अम्मडे ण परिव्वायए’
हे गौतम ! अम्बड खलु परिव्राजक ‘उच्चावएहिं’ उच्चावचै = नानाविधै, ‘सील-व्वय-
गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोव्वासेहिं’ शील-व्रत-गुण-विरमण-प्रत्याख्यान-
पोषधोपवासै, शीलानि—“शील समाधौ” अस्माद् घञ्, नपुसकत्वं लोकात्, शीलति—आत्म-
चिन्तनरूप समाधिं प्राप्नोति एभिस्तानि शीलानि । तानि चत्वारि—सामायिक-देगावकाशिक-
पोषधा—तिथिनिविभागाद्यानि, व्रतानि—पञ्चाणुव्रतानि, गुणा—त्रीणि गुणव्रतानि, विरमण मिथ्या-
त्वान्निवर्तनम्, प्रत्याख्यान—पर्वदिनेषु त्याज्याना परित्याग, पोषधोपवास—पोष=पुष्टि धर्मस्य
वृद्धिमिति यावद् धत्ते इति पोषध, पोषधगन्दो रूढ्या पर्वसु वर्तते, पर्वाणि चाष्टमी—चतु-
र्दशी—पौर्णमास्यमावास्यातिथय, पूरणात् पर्वत्युच्यते, पूरणत्व धर्मवृद्धिकारकत्वात्, पोषधे उप-

काल किञ्चा) काल अवसर मे काल करके (कर्हि गच्छिहिति) कहा जायगा ? (कर्हि उव्व-
ज्जिहिति) कहा उत्पन्न होगा ? प्रभु ने कहा—(गोयमा) हे गौतम ! (अम्मडे ण परिव्वायए
उच्चावएहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोव्वासेहिं) यह अम्बड
परिव्राजक अनेक प्रकार के शीलव्रत—जिनके द्वारा आत्मा के चित्तन रूप समाधि जीव प्राप्त
करता है उनका नाम शीलव्रत है, गुणव्रत, मिथ्यात्वविरमण, प्रत्याख्यान—पर्वदिनों मे त्याग
करने योग्य वस्तुओं का त्याग करना, पोषधोपवास—अष्टमी, चतुर्दशी, पौर्णमासी एव अमा-
वास्या ये तिथियाँ धर्म का पोषण करती है इसलिये ये पोषध है, इनमे चतुर्विध आहार का

मासे काल-किञ्चा) काल अवसरे काल करीने (कर्हि गच्छिहिति) क्या कथे ?
(कर्हि उव्वज्जिहिति) क्या उत्पन्न कथे ? प्रभुने उत्तरमा कथ्य—(गोयमा) हे
गौतम ! (अम्मडे ण परिव्वायए उच्चावएहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-
पासहोव्वासेहिं) ये अम्बड परिव्राजक, अनेक प्रकारना शीलव्रत (नेना
द्वारा आत्माना चिन्तनरूप समाधि एव प्राप्त करे छे तेनु नाम शीलव्रत
छे), गुणव्रत, वेरमण—मिथ्यात्वविरमण, प्रत्याख्यान—पर्वना दिवसोमा त्याग
करवा योग्य वस्तुओना त्याग करवा, पोषधोपवास—अष्टमी, चतुर्दशी,
पौर्णमासी तेमळ अमावास्या ये तिथियो धर्मनु पोषण करे छे ते भाटे

समणोवासगपरियायं पाउणिहिति, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता,

वास = नियमविशेष पोषधोपवास, स चतुर्विध - आहारशगमस कारत्यागत्रयचर्यसावधव्यापारपरिग्यागभेदात् । पपा शीलदिपोषधोपवासान्तानामितरेतरग्योगद्वन्द्वनैस्तथोक्तै
'अप्पाणं भावेमाणे व्हूइं वासाइ समणोवासगपरियाय पाउणिहिति' आमान भावयन् व्हनि वर्षाणि श्रमणोपासकपर्याय पालयिन्वति, 'पाउणित्ता' पालय वा 'मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता' मासिम्या मलेखनयाऽऽमान जुषिवा=सेवित्रा, 'सट्ठिं भत्ताइ अणसणाए छेदित्ता' पट्टि भक्तानि अनशनन ठित्वा, 'आलोडयपडिक्कते'

त्याग करना । इन सनका भेद इस प्रकार है, शीलव्रत का भेद-सामायिक, देशवकाशिक, पौषध और अतिथिनविभाग इम प्रकार से ४ हैं । गुणव्रत तीन है । पौषधोपवास भी ४ प्रकार का है-आहार का त्याग, शारीरिक सत्कार का त्याग, ब्रह्मचर्य का पालन एव सावध व्यापार नहीं करना । इन सत्र नियमों-व्रतों से (अप्पाण भावेमाणे) अपनी आमा को भावित करता हुआ (वहूइ वासाइ समणोवासगपरियायं पाउणिहिति) अनेक वर्षों तक श्रमणोपासक - श्रावक की पर्याय का पालन करेगा । (पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता) इस प्रकार श्रावक की पर्याय को पालन करके फिर वह १ मास की मलेखना से अपनी आमा को युक्त कर-अर्थात् एक मास की मलेखना धारण कर (सट्ठिं भत्ताइ अणसणाए छेदित्ता) साठ भक्त का अनशन से छेदकर (आलोडयपडिक्कते) पापकर्मों की आलोचना-प्रतिक्रमण करके (समाहिपत्ते) समाधि

ये पोषध छे तेभा उपवास अट्ठे वभवुं ये पोषधोपवास कडेवाय छे
ये षधानो लेह आ प्रकारे छे, शीलव्रतना लेह-आभायिक, देशवकाशिक,
पोषध, अने अतिथिन विलाग, आ चार प्रकारना छे शुषुव्रत त्रय प्रकारना
छे पोषधोपवास चार ४ प्रकारना छे-आहारना त्याग, शारीरिक सत्कारना
त्याग, ब्रह्मचर्यनु पालन तेभज भावध व्यापार न करेवा आ षधा
नियमो-व्रतोथी (अप्पाण भावेमाणे) पोताना आत्माने लावित करता थका
(वहूइ वासाइ समणोवासगपरियाय पाउणिहिति) अनेक वर्गो सुधी श्रमणो
पासक-श्रावकनी पर्यायनु पालन करथे (पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए
अप्पाणं झूसित्ता) आ प्रकारे श्रावकनी पर्यायनु पालन करीने पछी ते
अेव भावनी मलेखना धारण करीने (सट्ठिं भत्ताइ अणसणाए छेदित्ता)
साठ लक्षतनु अनशनथी छेदन करीने (आलोडयपडिक्कते) पाप कर्मोनी

आलोइयपडिकंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किञ्चा बंभलोए कप्पे देवत्ताए उववज्जिहिति । तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं दस सागरोवमाइं ठिई पणत्ता । तत्थ णं अम्मडस्स वि देवस्स दस सागरोवमाइं ठिई ॥ सू० ३९ ॥

मूलम्—से णं भंते ! अम्मडे देवे ताओ देवलोगाओ

आलोचितप्रतिकान्त = प्रतिनिवृत्त, 'समाहिपत्ते' समाधिप्राप्त, 'कालमासे काल किञ्चा' कालमासे काल वृत्त्वा 'बंभलोए कप्पे देवत्ताए उववज्जिहिति' ब्रह्मलोके कप्पे देववेनोत्पस्यते, 'तत्थ ण अत्थेगइयाण देवाण दस सागरोवमाइं ठिई पणत्ता' तत्र खलु अस्ति एकेपा=केपाचिद् देवाना दश सागरोपमानि स्थिति प्रज्जा। 'तत्थ ण अम्मडस्स वि देवस्स दस सागरोवमाइं ठिई' तत्र खलु अम्मडस्याऽपि देवस्य दश सागरोपमानि स्थिति ॥ सू० ३९ ॥

टीका—गौतम पृच्छति—'से ण भते ?' इत्यादि ।

'से ण भते ! अम्मडे देवे' स खलु भदन्त ! अम्मडो देव, 'ताओ देव-

को प्राप्त करेगा । पश्चात् (कालमासे काल किञ्चा) काल अवसर में काल कर के (बंभलोए कप्पे देवत्ताए उववज्जिहिति) ब्रह्मलोक नामक पाचवे देवलोक मे उपन्न होगा । (तत्थ णं अत्थेगइयाण देवाण दससागरोवमाइं ठिई पणत्ता) वहा कितनेक देवों की स्थिति १० सागर की है । (तत्थ णं) वहा पर (अम्मडस्स वि देवस्स दस सागरोवमाइं ठिई) इस अम्बड देव की भी दश सागर प्रमाण स्थिति होगी ॥ सू० ३९ ॥

'से ण भते अम्मडे देवे' इत्यादि ।

गौतम पृच्छते है—(भते) हे भदन्त ! (से अम्मडे देवे) वह अम्बड देव (ताओ

आलोचयना तथा प्रतिकभणु करीने (समाहिपत्ते) समाधिने प्राप्त करथे पछी (कालमासे काल किञ्चा) काल-अवसरि काल करीने (बंभलोए कप्पे देवत्ताए उववज्जिहिति) ब्रह्मलोक नामना पाचमा देवलोकमा उत्पन्न थथे (तत्थ ण अत्थेगइयाण देवाण दससागरोवमाइं ठिई पणत्ता) तथा डेटलाक देवोनी स्थिति दश १० सागरनी छे, (तत्थ णं) त्या (अम्मडस्स वि देवस्स दससागरोवमाइं ठिई) आ अम्बडदेवनी पणु दस सागर प्रमाण स्थिति थथे (सू० ३९)

'से ण भते ! अम्मडे देवे' इत्यादि

गौतम पूछे छे—(भते) हे भदन्त ! (से ण अम्मडे देवे) ते अम्बड देव

आउक्खएणं भवक्खएणं ठिडक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ ? ॥ सू० ४० ॥

मूलम्—गोयमा ! महाविदेहे वासे जाइं कुलाइं

लोगाओ' तस्मादेवल्लोकात् 'आउक्खएण' आयु क्षयेण=देवसम्भ्र यायु कर्मदल्लिक-
निर्जरेण, 'भवक्खएण' भवक्षयेण=देवभवेतुगयात्किर्मनिर्जरेण, 'ठिडक्खएण' स्थिति
क्षयेण=त्रल्लोके दशासागरोपमस्थितिक्षयेण 'अणतरं' अनन्तर चय=गरीर 'चइत्ता' त्यक्त्वा,
'कहिं गच्छिहिइ' कुत्र गमिष्यति, 'कहिं उववज्जिहिइ' कुत्रोत्पत्त्यते ? ॥ सू ४० ॥

टीका—गौतमेन पृष्ट सन् भगवानाह—'गोयमा !' इत्यादि ।

'गोयमा !' हे गौतम ! 'महाविदेहे वामे जाइ कुलाइ भवति' महाविदेहे
वर्षे यानि कुलानि भवन्ति=सन्ति, कानि तानि ? इत्याह—'अड्ढाड' आढ्यानि=समृद्धानि,

देवल्लोगाओ) उस देवलोक से (आउक्खएणं भवक्खएणं ठिडक्खएणं) आयु के
क्षय-देवमन्थी आयुर्कर्म के दल्लिकों की निर्जरा से, भव के क्षय-देवभव के हेतु गयादिक
कर्म की निर्जरा से तथा स्थिति के क्षय-त्रल्लोक मन्थी १० सागर की स्थिति के समाप्त
होने से (चय चइत्ता) देवपर्याय से चयकर (अणतर) इसके बाद (कहिं गच्छि-
हिइ कहिं उववज्जिहिइ) कहा जायगा ? कहा उत्पन्न होगा ? ॥ सू ४० ॥

'गोयमा ! महाविदेहे वामे' इत्यादि ।

गौतमस्वामीने पूर्वोक्त प्रकार से जब प्रभु से पूछा तत्र उन्होंने कहा—(गोयमा)
हे गौतम ! (महाविदेहे वामे) महाविदेह क्षेत्र में (जाइ) जितने (अड्ढाडं दित्ताइ
वित्ताइ) आढ्य-समृद्ध दीप्त-उज्ज्वल तथा प्रशंसित, एव वित्त-प्रसिद्ध, (कुलाइ भवति)

(ताओ देवल्लोगाओ) ते देवल्लोकाधी (आउक्खएणं भवक्खएणं ठिडक्खएणं)
आयुने क्षय-देवसन्धी आयुर्कर्मदल्लिकोनी निर्जराधी, भवने क्षय-देव-
भवना हेतु गति आदि कर्मनी निर्जराधी तथा स्थितिने क्षय-त्रल्लोका
सन्धी इत्थ सागरनी स्थिति समाप्त होवाधी (चय चइत्ता) देवपर्यायधी स्युत
थईने (अणतर) त्थार पछी (कहिं गच्छिहिइ कहिं उववज्जिहिइ ?) कथा वशे ?
कथा उत्पन्न थशे ? (सू० ४०)

"गोयमा ! महाविदेहे वामे" इत्यादि

गौतमे उपर कक्षा प्रकारे न्यारे प्रभुने पूछयु त्तारे तेओओ कहु- (गोयमा)
हे गौतम ! (महाविदेहे वामे) महाविदेह क्षेत्रमा (जाइ) जेटला (अड्ढाड
वित्ताइ वित्ताइ) आढ्य-समृद्ध, दीप्त-उज्ज्वल तथा प्रशंसित, तेमव वित्त-
प्रसिद्ध, (कुलाइ भवति) कुलो छे. (वित्थिण्ण-विचल-भवण-सयणा-सण-जाण-

भवन्ति अड्ढाडं दित्ताडं वित्ताडं वित्थिण्ण-विउल-भवण-स-
यणा-सण-जाण-वाहणाडं बहुधण-जायरूव-रययाडं आओ-
ग-पओग-संपउत्ताडं विच्छड्डिय-पउर-भत्तपाणाडं बहु-दासी-

‘दित्ताड्’ दीपानि=उ-बलानि-प्रशमितानि, ‘वित्ताड्’ वित्तानि=प्रसिद्धानि ‘वित्थिण्ण-
विउल-भवण-सयणा-सण-जाण-वाहणाड्’ विस्तीर्ण-विपुल-भवन-शयना-आसन-
यान-वाहनानि-विस्तीर्णानि=विरतूतानि विपुलानि=विशालानि भवनानि शयनादीनि च
येषु कुट्टेषु तानि तथा, ‘बहुधण-जायरूव-रययाड्’ बहुधन-जातरूप-रजतानि-बहूनि
धनानि जातरूपाणि=सुवर्णानि रजतानि च येषु तानि तथा, ‘बहु-दासी दास गो-महिस-
गवेलग-प्पभूयाड्’ बहु-दासी-दास-गो-महिष-गवेलरू-प्रभूतानि-बह्व्यो दास्य बह्वो
दासा, गाव =धृपमा धेनवश्च, महिषा =महिषा मरिच्यश्च, गवेलरू =मेपा तै प्रभूतानि=
सहितानि, ‘आओग-पओग-संपउत्ताड्’ आयोग-प्रयोग-सम्प्रयुक्तानि-निविधदानाऽऽ-

कुल हैं। जो कि (वित्थिण्ण-विउल-भरण-सयणा-सण-जाण-वाहणाऽ) विस्तृत एव
विपुल भवनो के अधिपति है। जिनके पास अनेक प्रकार के शयन, आसन एव यान-
वाहनादिक है। (बहुधनजायरूवरययाड्) जो बहुत अधिक धन के स्वामी हैं। सोने एव
चादीकी जिनके पास कमी नहीं है। (आओग-पओग-संपउत्ताड्) आदान-प्रदान अर्थात्
लाभ के लिये लेन-देन का काम करते हैं, (विच्छड्डिय-पउर-भत्त-पाणाड्) याचक
आदि जनों के लिये जो प्रचुरमात्रा में भक्तपान आदि देते हैं, (बहु-दासी-दास-गो-
महिस-गवेलग-प्पभूयाड्) जिनकी सेवामे रातदिन अनेक दासी एव दास उपस्थित रहा
करते हैं, जिनकी गोगालाए अनेक बैलोसे, गावों से, महिषियों से, महिषा से, एव मेषों से,
सदा भरपूर रहा करती हैं, (बहुजणस्स अपरिभूयाड्) और जो किसी के द्वारा भी पगभव

वाहणाड्) ने विशाल तेमज विपुल लवनोना अधिपति छे, नेभनी पासे
अनेक प्रकारना शयन, आसन, तेमज यान-वाहन आदि छे, (बहु-धन-
जायरूव-रययाड्) ने बहुधन धनना स्वामी छे, सुवर्ण तेमज थादी नेभनी
पामे आधी नथी, (आओग-पओग-संपउत्ताड्) आदान-प्रदान अर्थात् लाभने
भाटे लेणुदेणुतु काम करे छे, (विच्छड्डिय-पउर-भत्त-पाणाड्) याचक आदि
नेभने भाटे ने प्रचुर मात्रामा लक्षत-पान आदि आपे छे, (बहु-दासी-
दास-गो-महिस-गवेलग-प्पभूयाड्) नेनी सेवामा रातदिवस अनेक दासी
दास उपस्थित रह्या करे छे नेभनी गौशाजाओ अनेक भेलाथी, गाथेथी
लेभेथी, पाडाओथी, तेमज घेठाथी सदा भरपूर रह्या करे छे, (बहुजणस्स

दास-गो-महिस-गवेलगप्पभूयाडं बहुजणस्स अपरिभूयाड तह-
प्पगारेसु कुलेसु पुमत्ताए पच्चायाहिइ ॥ सू. ४१ ॥

मूलम्--तए णं तस्स दारगस्स गव्भत्थस्स समाण-
स्स अम्मापिईणं धम्मो दढा पइण्णा भविस्सइ ॥ सू. ४२ ॥

दान-कर्मोपयुक्तानि, 'त्रिच्छट्टिय-पउर-भक्तपाणाड' त्रिच्छर्दित-प्रचुर-भक्तपानानि-
विच्छर्दितानि=दत्तानि प्रचुराणि भक्तानि पानानि=पेयानि ये कुल्लैस्तानि तथा, 'बहुजणस्स
अपरिभूयाड' बहुजणस्याऽपरिभूतानि, कैरप्यपराजितानात्पर्य । 'तहप्पगारेसु' तथाप्रका-
रेषु=तादृशेषु कुलेषु, 'पुमत्ताए' पुस्तया=पुरुषतया, 'पच्चायाहिइ' प्रत्यायास्यति=उपस्यत
इत्यर्थ ॥ सू. ४१ ॥

टीका--'तए णं' इत्यादि । 'तए णं' तत खल-तत्पश्चात् 'तस्स दारगस्स'
तस्य दारकस्य=वालस्य 'गव्भत्थस्स चेत्र' गर्भस्यस्यैत्र=गर्माऽऽगतस्यैव सत पुण्यशालि-
तया तत्रभावात् 'अम्मापिईणं धम्मो' मातापित्रोर्धर्मं 'दढा पइण्णा' दृढा प्रतिज्ञा
'भविस्सइ' भविष्यति-धर्माराधनाय दृढनिश्चयो भविष्यतीत्यर्थ ॥ सू. ४२ ॥

नहा पा सकते हैं, (तहप्पगारेसु कुलेसु पुमत्ताए पच्चायाहिइ) ऐसे निश्चित कुलो मे से
किसा एक कुल मे यह अम्बड परिव्राजक पुत्ररूप से उत्पन्न होगा ॥ सू० ४१ ॥

'तए णं तस्स दारगस्स' इत्यादि ।

(तए णं) इसके पश्चात् (तस्स दारगस्स) उस लडके के (गव्भत्थस्स समा-
णस्स) गर्भ में आते ही पुण्य के प्रभाव से (अम्मापिईणं) मातापिता को (धम्मो दढा
पइण्णा भविस्सइ) धर्म में दृढ़ आस्था उत्पन्न होगी ॥ सू० ४२ ॥

अपरिभूयाड) अने ने डोडथी पणु परालव पाभता नथी (तहप्पगारेसु
कुलेसु पुमत्ताए पच्चायाहिइ) अथा विशिष्ट कुलोभाथी डोड अेक कुणमा अे
अम्भड परिव्राजक पुरुषइथी उत्पन्न थथे (सू ४१)

'तए णं तस्स दारगस्स' इत्यादि

(तए णं) त्थार पछी (तस्स दारगस्स) ते डोडराना (गव्भत्थस्स समा-
णस्स) गर्भमा आवता न पुण्यना प्रभाव वडे (अम्मापिईणं) माता-पितानी
(धम्मो दढा पइण्णा भविस्सइ) धर्ममा दढ आस्था उत्पन्न थथे (सू ४२)

मूलम्--से णं तत्थ णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं
अद्धट्टमाण राइंदियाणं वीइक्कंताणं सुकुमालपाणिपाए जाव ससि-
सोमाकारे कंते पियदंसणे सुरुवे दारए पयाहिए ॥ सू. ४३ ॥

मूलम्--तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो पढमे

टीका--'से ण तत्थ' इत्यादि । 'से ण तत्थ' स खलु तत्र 'णवण्हं
मासाण' नवसु मासेषु, अत्र सप्तम्यर्थे पट्टी, एवमग्नेऽपि, 'बहुपडिपुण्णाण' बहुप्रतिपू-
र्णेषु=सर्वथा व्यतीतेषु, 'अद्धट्टमाणं' अर्धाष्टमेषु-सार्धसप्तसु 'राइन्दियाणं' रात्रिन्दिवेषु
'वीइक्कंताण' व्यतिक्रान्तेषु=व्यतीतेषु 'जाव ससिसोमाकारे' यावत् शशिसौम्याकार =
चन्द्रवत्सुन्दर, 'कंते' कात =ऋमनीय, 'पियदंसणे' प्रियदर्शन, 'सुरुवे' सुरूप,
'दारए' दारक =पुत्र 'पयाहिए' प्रजनियते=उत्पत्स्यते ॥ सू. ४३ ॥

टीका--'तए ण' इत्यादि ।

'तए ण तस्स दारगस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे' तत खलु तस्य दार-
कस्य अम्मापितरौ प्रथमे दिवसे 'ठिइवडिय' स्थितिपतित=कुलमर्यादाप्राप्त-पुत्रजन्मोत्सव

'से ण तत्थ णवण्ह मासाण' इत्यादि ।

(तत्थ) गर्भ मे (णवण्ह मासाणं बहुपडिपुण्णाण अद्धट्टमाण राइंदियाण वीइ-
क्कंताण) नौ महीने साढे सात दिनरात बीतने पर (सुकुमालपाणिपाए जाव ससिसोमा
कारे कंते पियदंसणे सुरुवे दारए पयाहिए) यह सुकुमार पाणिपादवाला यावत् चद्रमा
के समान सौम्य आकारवाला, कात, प्रियदर्शन एव सुन्दररूप से विशिष्ट ऐसा पुत्र उत्पन्न
होगा ॥ सू. ४३ ॥

'तए ण तस्स दारगस्स' इत्यादि ।

(तए ण) इसके बाद (तस्स दारगस्स) इस बालक के (अम्मापियरो) माता-

'से णं तत्थ णवण्ह मासास' इत्यादि

(तत्थ) गल भा (णवण्ह मासाण बहुपडिपुण्णाण अद्धट्टमाण राइ-
दियाण वीइक्कंताण) नव भङ्गिना अने साडा सात दिनरात पीत्था पछी
(सुकुमाल-पाणि-पाए जाव ससिसोमाकारे कंते पियदंसणे सुरुवे दारए पयाहिए)
ये सुकुमार डायपगवाणे, यावत् अद्रमा जेवे सौम्य आकारवाणे, कात,
प्रियदर्शन, तेभज सुदर रूपथी विशिष्ट जेवे पुत्र उत्पन्न थये (सू. ४३)

'तए ण तस्स दारगस्स' इत्यादि

(तए ण) त्पार पछी (तस्स दारगस्स) आ बालकने (अम्मापियरो) माता-

दिवसे त्रिडवडियं काहिति. विड्यदिवसे चंदसूरदंसणियं काहिति,
छट्टे दिवसे जागरियं काहिति, एक्कारसमे दिवसे वीडकते णि-
व्वत्ते असुइ-जाय-कम्मकरणे संपत्ते वारसाहे दिवसे अम्मापि-
यरो इमं एयारुवं गोणं गुणणिप्फणं णामवेज्जं काहिति-

‘काहिति’ करिष्यत ‘त्रिड्यदिवसे’ द्वितीयदिवसे ‘चंदसूरदंसणिय’ चन्द्रसूर्यदर्शन-
कानामक पुत्रजन्मोत्सवविशेष करिष्यत, ‘छट्टे दिवसे’ षष्ठे दिवसे ‘जागरिय’ जाग-
रिका=गतिजागरिका—मुतजन्मोत्सवरूपा करिष्यत ‘एक्कारसमे दिवसे’ एकादशे दिवसे
‘वीडकते’ व्यतिक्रान्ते=व्यतीते, ‘णिव्वत्ते’ निवृत्ते=व्यतीते ‘असुइजायकम्मकरणे’
अशुचिजातकर्मकरणे—अशुचीनाम्=अशुचिवता जातकर्मणो=जातकर्मस्कारस्य यत् करण=
विधान तस्मिन्, निवृत्ते मताति पूर्वोक्तान्य ‘सपत्ते वारसाहे दिवसे’ सम्प्राप्ते द्वादशाहे
दिवसे=द्वादशाहरूपे दिन समागते इत्यर्थ, ‘अम्मापियरो इमं एयारुव गोणं गुणणिप्फ-
ण नामवेज्जं काहिति’ अम्मापितरो इदं=वक्ष्यमाणम् एतद्रूपं=वक्ष्यमाणस्वरूपं गौणं=

पिता (पहले दिवसे) प्रथम दिवस में (त्रिडवडिय) अपनी स्थिति के अनुसार पुत्र-जन्म के
उत्सव को (काहिति) मनावेंगे। (विड्यदिवसे चंदसूरदंसणिय काहिति) द्वितीय दिवसमें पुत्र-
जन्म के उत्सव के अवसर पर मनाये जान वाले ‘चंद्रसूर्यदर्शनिका’ नाम के उत्सव को करेंगे।
(उट्टे दिवसे जागरिय काहिति) छठवे दिन जागरण करेंगे (एक्कारसमे दिवसे वीडकते
णिव्वत्ते असुइजायकम्मकरणे सपत्ते वारसाहे दिवसे) ग्याह्रवें दिवस जननाशुच समाप्त
होने पर फिर बागहवें दिवस के लगने पर (अम्मापियरो) इसके मातापिता (इम
एयारुव गोण गुणणिप्फण नामवेज्जं काहिति) इसका गुणमन्त्रयुक्त एवं सार्थक

पिता (पहले दिवसे) पहले दिवसे (त्रिडवडिय) पितानी स्थिति अनुसार
पुत्रजन्मोत्सव (काहिति) मनावेंगे, (विड्यदिवसे चंदसूरदंसणिय काहिति)
द्विदिने दिवसे पुत्रजन्मोत्सव अवसरे मनाववाभा आवतो ‘चंद्रसूर्य-
दर्शनिका’ ये नामोत्सव वरथे, (उट्टे दिवसे जागरिय काहिति) छठे दिवसे
जागरण करेगे (एक्कारसमे दिवसे वीडकते णिव्वत्ते असुइजायकम्मकरणे सपत्ते
वारसाहे दिवसे) अग्यारवें दिवसे जन्म-अशुच (सूतक) समाप्त थई गया
पछी बारवें दिवस थता (अम्मापियरो) तेना मातापिता (इम एयारुव गोण
गुणणिप्फण नामवेज्जं काहिति) तेना शुभमन्त्रयुक्त एवं सार्थक

जम्हा णं अम्हं इमंसि दारगंसि गब्भत्थंसि चेव समाणंसि
धम्मं दढपइण्णा, तं होउ णं अम्हं दारए दढपइण्णे णामेणं ।
तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो णामधेज्ज करेहिंति-
दढपइण्णत्ति ॥ सू. ४४ ॥

मूलम्—तं दढपइण्णं दारगं अम्मापियरो साइरेगढ-

गुणसम्बन्धयुक्त, गुणनिष्पन्न-गुणै = धर्मत्रिपयकदाढर्चादिगुणैर्निष्पन्न = सिद्ध नामधेय करिष्यत ।
'जम्हा ण अम्ह इमंसि दारगंसि गब्भत्थंसि चेव समाणंसि' यस्मात्स्वन्वावयोरस्मिन्
दारके गर्भस्थ एव सति 'धम्मं' धर्मे = धर्माश्रयन 'दढपइण्णा' दढप्रतिज्ञा = दढनिश्चयो जात,
'त होउ ण अम्ह दारए दढपइण्णे णामेण' तद् भवतु स्वन्वावयोर्दारको दढप्रतिज्ञो
नाम्ना—तस्मादस्य बालकस्य 'दढप्रतिज्ञ' इति नामास्तु—इत्यर्थ । 'तए ण तस्स दार-
गस्स अम्मापियरो णामधेज्ज करेहिंति दढपइण्णेत्ति' तत खलु अम्मापितरो तस्य
दारकस्य नामधेय करिष्यतो दढप्रतिज्ञ इति ॥ सू. ४४ ॥

टीका—'त दढपइण्ण' इत्यादि । 'त दढपइण्ण' त दढप्रतिज्ञ = दढप्रतिनामक

नामकरणसंस्कार करेंगे । वह उस बात को विचार कर इसका नाम रखेगा कि (जम्हा ण
अम्ह इमंसि दारगंसि गब्भत्थंसि चेव समाणंसि धम्मं दढपइण्णा, त होउ णं अम्हं
दारए दढपइण्णे नामेण) हमारा यह बालक जब गर्भ में आया था तब से ही हम
लोगों की प्रतिज्ञा—आस्था धर्म में दढ हुई, अत हमारे इस बालक का नाम दढप्रतिज्ञ हो ।
(तए ण तस्स दारगस्स अम्मापियरो णामधेज्ज करेहिंति दढपइण्णत्ति) उस समय
उस बालक के मातापिता उसका नाम दढप्रतिज्ञ रखेगा ॥ सू. ४४ ॥

सार्थक नामकरणसंस्कार करेगा तेजो अये वातने विचार करेगा तेजु नाम
राशिशे के (जम्हा ण अम्ह इमंसि दारगंसि गब्भत्थंसि चेव समाणंसि धम्मं दढ-
पइण्णा त होउ ण अम्ह दारए दढपइण्णे नामेण) अम्मापि आ आणक न्याये
गर्भमा आन्धे उतो त्थारथीण अम्मापि दोडोनी प्रतिज्ञा—आस्था धर्ममा दढ
थध, तेथी अम्मापि आ आणकतु नाम दढप्रतिज्ञ रहे। (तए ण तस्स दारगस्स
अम्मापियरो णामधेज्ज करेहिंति दढपइण्णत्ति) ते नभये ते आणकना माता-
पिता तेजु नाम दढप्रतिज्ञ राशिशे (सू. ४४)

वासजायगं जाणित्ता सोभणंसि तिहिकरणदिवसणक्खत्तमुहुत्तं-
सि कलायरियस्स उवणेहिंति ॥ सू ४५ ॥

मूलम्—तए णं से कलायरिए तं ददपडण्णं दारगं लेहाइयाओ

‘दारय’ दारक=कुमारम्, ‘अम्मापियरो’ अम्मापितरौ ‘साइरेगदुवासजायग’ सातिरेका-
टवर्षजातक=किञ्चिदधिक्राष्टवपाणि जातानि यस्य स तथा त, किञ्चिदधिक्राष्टवर्षप्रयस्कमि यर्थ,
‘जाणित्ता’ ज्ञावा ‘सोभणमि’=जोभने-शुभकारके ‘तिहिकरणदिवसनक्खत्तमुहुत्तसि’
तिथिकरणदिवसनक्खत्तमुहुत्तं ‘कलायरिस्स’ कलाचार्यस्य ‘उवणेहिंति’ उपनेष्यत—दासतनि
कलाज्ञानप्राप्तये कलाशिक्षकस्य समीप नेष्यत इत्यर्थ ॥ सू० ४५ ॥

टीका—‘तए ण’ इत्यादि । ‘तए ण से कलायरिए’ नत खलु स कलाचार्य
‘त ददपडण्ण’ तं दृढप्रतिज्ञ दृढप्रतिज्ञनामक ‘दारग’ दारक ‘लेहाइयाओ’ लेखादिका,

‘त ददपडण्ण दारग’ इत्यादि ।

(त ददपडण्ण दारग) पश्चात् उस दृढप्रतिज्ञ नामक बालक को (अम्मा
पियरो) उसके माता-पिता (साइरेगदुवासजायग जाणित्ता) जन आठ वर्ष से कुछ
अधिक वय का जानेंगे तब वे उसे (सोभणसि तिहि-करण-दिवस-णक्खत्त-मुहु-
त्तमि कलायरियस्स उवणेहिंति) शुभ तिथि, शुभ करण, शुभ नक्षत्र एवं शुभ
मुहूर्त में कलाचार्य के पास ७२ कलाओं का ज्ञान प्राप्त कराने के निमित्त ले
जावेंगे ॥ सू ४५ ॥

‘तए ण से कलायरिए’ इत्यादि ।

(तए ण) इसके बाद (से कलायरिए) वह कलाचार्य (त ददपडण्ण

‘त ददपडण्ण दारग’ इत्यादि

(त ददपडण्ण दारग) त्पार पछी ते दृढप्रतिज्ञ नामना पाणकने (अम्मा-
पियरो) तेना माता-पिता (साइरेग-दुवास-जायग जाणित्ता) न्त्यारे आठ वर-
सथी कर्धठ वधारे उभरने। नक्षत्रे त्त्यारे तेत्थो तेने (सोभणसि तिहि-करण-
दिवस-णक्खत्त-मुहुत्तसि कलायरियस्स उवणेहिंति) शुभतिथि, शुभ उरत्थु, शुभ
दिवस, शुभ नक्षत्र, तेभञ्ज शुभ मुहूर्त्तमा कलाचार्यनी पासो ७२ उणात्थोत्तु
ज्ञान प्राप्त उराववा निमित्ते लध ञ्थे (सू. ४५)

‘तए ण से कलायरिए’ इत्यादि

(तए णं) त्पार पछी (से कलायरिगि) ते उलात्थार्थ (त ददपडण्ण दारग)

गणियप्पहाणाओ सउणरुयपज्जवसाणाओ वावत्तरिकलाओ सुत्त-
ओ य अत्थओ य करणओ य सेहाविहिति सिक्खाविहिति, त
जहा—लेहं १, गणियं २, रुवं ३, णटं ४, गीयं ५, वाइयं ६, सर-

‘गणियप्पहाणाओ’ गणितप्रधाना, ‘सउणरुयपज्जवसाणाओ’ शकुनरुतपर्यवसाना, ‘वाव-
त्तरिकलाओ’ दासततिकला, ‘सुत्तओ य’ सूत्रत = सूत्रस्यपदपाठनात्, ‘अत्थओ य’
अर्थत = पदार्थबोधनात्, ‘करणओ य’ करणत = प्रयोगत — कलाव्यापारप्रदर्शनात्, ‘सेहावि-
हिति’ साधयिष्यति = प्रापयिष्यति, ‘सिक्खाविहिति’ शिक्षयिष्यति = अभ्यास कारयिष्यति ।

ता कला नामत प्रदर्शयति— ‘त जहा’ तद्यथा—‘लेहं’ लेख—लेखनं लेख-
अक्षरविन्यासस्तद्विषयकलाविज्ञानं लेख एवोच्यते तम्, ‘गणिय’ गणित=मन्यायन मकलिता
घनेक्रमेदम् २, ‘रुवं’ रूप=लेप्यशिलासुवर्णमणिवस्त्रचित्रादिषु रूपनिर्माणम् ३, ‘णट’ नाट्य=
साभिनयनिरभिनयपूर्वक नर्तनम् ४, ‘गीय’ गीत=गायत्र्यवैकल्याज्ञानविज्ञानम् ५, ‘वाइय’
वाष्प=वीणापटहादिवादनकलाज्ञानम् ६, ‘सरगय’ स्वरगत=गीतमूलभूताना षड्जगुणभादि-

दारग) उस दृढप्रतिज्ञ कुमार को (लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ) लिखने आदि का,
गणित की, तथा पक्षी के शब्द आदि जानने की (वावत्तरिकलाओ) ७२ कलाओं में
(सुत्तओ य) सूत्ररूप से (अत्थओ य) एव अर्थरूप से तथा (करणओ य) प्रयोगरूप
से (सेहाविहिति) प्राप्त करायेगा, (सिक्खाविहिति) अभ्यास करायेगा। (त जहा) वह-
त्तर कलाओं के नाम ये हैं— (१ लेह) लेख लिखने की, (२ गणिय) गणित की, (३
रूप) रूप की—अर्थात् लेप्य, शिला, सुवर्ण, मणि, वस्त्र एव चित्र इत्यादिकों में रूपनिर्माण
करने की, (४ णट) नृत्य की—साभिनय एव निरभिनयपूर्वक नाचने की, (५ गीय)
गाने की, (६ वाइय) वीणा एव पटह—ढोल आदि बाजे बजाने की, (७ सरगय)

ते दृढप्रतिज्ञ कुमारने (लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ) लेखन आदिनी, गणित-
तनी तथा पक्षीना शब्द आदि ज्ञानुवानी (वावत्तरिकलाओ) ७२ कलाओं
(सुत्तओ य) सूत्ररूपथी (अत्थओ य) तेमन् अर्थ रूपथी, तथा (करणओ य) प्रयोग
रूपथी (सेहाविहिति) प्रप्त करवाये, (सिक्खाविहिति) अभ्यास करवाये (त जहा
अउतेर कलाओना नाम आ प्रभाणे छे—१ (लेह) लेख लेखवानी, २ (गणिय)
गणितनी, ३ (रूप) रूपनी अथान् लेप्य, शिला, सुवर्ण, मणि, वस्त्र तेमन्
चित्र धत्यादिमा रूप निर्माण करवानी, ४ (णट) नृत्यनी—साभिनय तेमन्
निरभिनय—पूर्वक नाचवानी, ५ (गीय) गायवानी, ६ (वाइय) वीणा तेमन्
पटह ढोल आदि वाज्जित्र वगाडवानी, ७ (सरगय) स्वरानी—गीतना भूणभूत

गयं ७, पुस्वरगयं ८, समतालं ९, जयं १०, जणवायं ११, पासगं १२, अट्टावयं १३, पोरेकव्वं १४, दगमट्टियं १५, अण्णविहिं १६, पाणविहिं १७, आभरणविहिं १८, सयणविहिं १९, अज्जं २०,

स्वगणा परिज्ञानम् ७, 'पुस्वरगयं' पुष्करगत=प्रदङ्गविषयकं विज्ञानम्, वाचान्तर्गतवेऽपि प्रदङ्गादे पृथक्कथन परममार्गात्प्रवर्णनार्थम् ८, 'समताल' समताल=मार्गादिमानकाल-
स्ताल म सम=युनाप्रिक्रमाग्रहितो जायते यस्मात् तत् समतालविज्ञानम् ९, 'जयं'
यूत-'जुगार' इति भाषायाम् १०, 'जणवायं' जनवात्=जनेषु वादप्रतिवादकरणरूपम् ११,
'पासयं' पाशक=यूतोपकरणविशेष, 'पाशा' इति भाषायाम् १२, 'अट्टावयं' अष्टापद-यूत-
विशेषखेलनम् १३, 'पोरेकव्वं' पुर काव्य=पुरत पुरत काव्य-काव्यरूपशाणानि सारणं
=शाघकृतिवन्वियर्थ १४, 'दगमट्टियं' ट्टकप्रतिक्राम्=उक्तयुक्तप्रतिक्रामप्रयोगविधिं ट्टक-
प्रतिक्राम=कुम्भकारविशेषयर्थ, ताम् १५, 'अण्णविहिं' अन्नविधिम्=अन्ननिष्पादनविज्ञानम् ।
'अन्नविहिं' इत्यत्र समयायाङ्गोक्तस्य 'मधुमित्थं' इत्यस्य समावेश १६, 'पाणविहिं'
पानविषयविज्ञानम् १७, 'आभरणविहिं' आभरणविधिम्=भूषणनिष्पादनविज्ञानम् ।

स्वरां क्री-गात के मूलभूत पङ्कज-रूपम आदि स्वरां का, (८ पुस्वरगयं) मृदग बजाने क्री
(९ समताल) समताल क्री-तान के अनुसार ताल गान का, (१० जयं) जुगार खेलने क्री,
(११ जणवायं) लोकां क साथ प्रतिवात् करन का, (१२ पासग) पासो फेंकने क्री,
(१३ अट्टावयं) अष्टापद-चौपड खेलने का, (१४ पोरेकव्वं) आशुक्रिप होने क्री, (१५
दगमट्टियं) मिट्टी से अनेक प्रकार क चर्चन बनाने क्री, (१६ अण्णविहिं) धान्य आदि को
बो कर अन्नादिक उत्पन्न करन क्री-भोजन बनाने का, समयायाङ्ग में उक्त 'मधुमित्थं'-
मधुमित्थ का इसीमे समावेश किया गया है (१७ पाणविहिं) पेयपदार्थ क्री विधि जानन

पङ्कज-रूपम आदि स्वरांनी, ८ (पुस्वरगयं) मृदग वगाडवानी, ९ (समताल)
समतालानी-तानने अनुसार ताल बनववानी, १० (जयं) जुगार रभवानी,
११ (जणवायं) लोकोनी साथे प्रतिवाह बनवानी, १२ (पासग) पासो फेंकवानी,
१३ (अट्टावयं) अष्टापद-चौपाट रभवानी, १४ (पोरेकव्वं) आशुक्रिप बनवानी,
१५ (दगमट्टियं) माटीमाथी अनेक प्रकारना काम बनववानी, १६ (अण्ण-
विहिं) धान्य आदिने वापीने अन्न आदिउने उत्पन्न बनवानी-भोजन बना-
ववानी, समयायागमा उक्त 'मधुमित्थं' मधुसिक्तथेनो समावेश अही व कर-
वामा आयेथे छे, १७ (पाणविहिं) पीवाना पदार्थनी विधि बनववानी, १८

पहेलियं २१, मागहियं २२, गाहं २३, गीइयं २४, सिलोयं २५,

‘आभरणविहिं’ इयत्र समवायाङ्ग-ज्ञाता-राजप्रश्रीय-जम्बूद्वीपप्रजसिक्वितस्य
 ‘वत्थविहिं’ इयस्य, तथा ज्ञाता-राजप्रश्रीय-जम्बूद्वीपप्रजसिक्वितस्य ‘विलेवणविहिं’
 इत्यस्य च समावेश १८, ‘सयणविहिं’ जयनविधि=शय्यापर्यङ्गादिविभिज्ञानम् १९,
 ‘अज्ज’ आर्या=मात्राऽन्दोरूपा, मात्रानमेलनन उन्दोनिमाणविज्ञानम् २०, ‘पहेलिय’
 प्रहेलिका = गूढाशयगद्यपद्यमयी रचनाम् २१, ‘मागहिय’ मागधिका=मगध-
 देशीयभाषाकवित्वम् २२, ‘गाह’ गाथा=मस्कृतेतरभाषानिर्दामायांमेव, कलिङ्गादिदेशभाषा-
 निबद्धकवित्वविज्ञान मा २३, ‘गीइय’ गीतिका=पूर्वार्धसदृशोत्तरार्धलक्षणरूपाम् २४,
 ‘सिलोय’ श्लोकम्=अनुष्टुपादिलक्षणम् २५, ‘हिरण्यजुत्ति’ हिरण्ययुक्ति=रत्ननिर्माण-

की, (१८ आभरणविहिं) आभरण आदि को बनाने एवं उन्हें यथास्थान धारण करने की,
 समवायाङ्ग ज्ञाता, राजप्रशनीय और जम्बूद्वीपप्रजसिक्विति में उक्त ‘वत्थविहिं’ वस्त्रविधि का,
 ज्ञाता, राजप्रशनीय तथा जम्बूद्वीप में उक्त ‘विलेवणविहिं’ विलेपनविधि का समावेश यहीं
 पर हो जाता है, (१९ सयणविहिं) शय्या आदि बनाने का, (२० अज्ज) आर्याऽन्द-मात्रिक
 छंदों को रचने की, (२१ पहेलिय) प्रहेलिका की, अर्थात् गूढ आशयवाला गद्यपद्यमयी
 रचना करने का (२२ मागहिय) मागधिकाकी अर्थात् मगध-देशकी भाषा में कविता
 रचने की, (२३ गाह) मस्कृतसे भिन्न भाषा में मात्रिक छंदों में कविता रचने की, अथवा
 कलिङ्ग आदि देशों की भाषा में निबद्ध कविता के विज्ञान की, (२४ गीइय) पूर्वार्ध के
 सदृश उत्तरार्ध लक्षणरूप गीतिका छन्द में काव्य रचने का, (२५ सिलोय) अनुष्टुप् आदि
 छंदों में श्लोकों को रचने का, (२६ हिरण्यजुत्ति) चाँदा बनाने का विधि की (२७ सुव

(आभरणविहिं) आभरण आदि बनाववानी, समवायाङ्ग, ज्ञाता, राजप्रशनीय
 अने जम्बूद्वीप प्रजसिक्विति उक्त ‘वत्थविहिं’ वस्त्रविधिना, अने ज्ञाता, राज-
 प्रशनीय अने समवायाङ्गमा उक्त ‘विलेवणविहिं’ विलेपनविधिना
 समावेश अही ज उरवाभा आये। छ १८ (सयणविहिं) शय्या
 आदि बनाववानी, २० (अज्ज) आर्या छन्द-मात्रिक-छन्द रचवानी,
 २१ (पहेलिय) प्रहेलिकानी अर्थात् गूढ आशयवाणी गद्यपद्यमयी रचना
 करवानी, २२ (मागहिय) मागधी अर्थात् मगध देशनी भाषामा कविता
 रचवानी, २३ (गाह) मस्कृतथी जुडी भाषामा मात्रिक छन्दमा कविता रच
 वानी, अथवा कलिङ्ग आदि देशीनी भाषामा रचित कविताना विज्ञाननी,
 २४ (गीइय) पूर्वार्धना जेम उत्तरार्धलक्षण ३५ गीतिका छन्दमा काव्य
 रचवानी, २५ (सिलोय) अनुष्टुप् आदि छन्दमा श्लोको रचवानी, २६ (हिर

हिरण्यजुति २६, सुवर्णजुति २७, गंधजुति २८, चुण्णजुति २९,
तरुणीपडिकम्म ३० इत्थिलक्खणं ३१, पुरिसलक्खणं ३२ हय-
लक्खणं ३३, गयलक्खणं ३४ गोणलक्खण ३५, कुक्कुडलक्खण

विधिम् २६, 'सुवन्नजुति' सुवर्णयुक्ति=सुवर्णनिर्माणोपायम् २७, 'गंधजुति' गन्धयुक्ति=
गन्धद्रव्यनिर्माणविधिम् २८, 'चुन्नजुति' चूर्णयुक्ति=वगीकरणान्तर्धानार्थं तत्तद्वृत्तद्रव्याप्ये-
करोक्त्य तपिष्ठीकरणविधिम् २९, 'तरुणीपडिकम्म' तरुणापरिकर्म=युवतीरूपगोभा-
परिवर्धनविधिम् ३०, 'इत्थिलक्खण' स्त्रीलक्षणम्=पद्मिनाहस्तिव्याप्तियुवतीना लक्षणम्
३१, 'पुरिसलक्खण' पुरुषलक्षणम्=उत्तमम यमात्पुरुषाणा लक्षणविज्ञानम् ३२,
'हयलक्खण' हयलक्षण-दार्ढ्यमात्रिकृतालक्षणविज्ञानम्, 'हयलक्खण' हयत्र
समयाद्गोक्तस्य 'आमसिक्ख' इत्यस्य समावेश ३३ 'गयलक्खण' गजलक्षण=
हस्तिशुभाद्गुभलक्षणविज्ञानम्, 'गयलक्खण' इत्यत्र समयाद्गोक्तस्य 'हत्थिसिक्ख'
इत्यस्य समावेश ३४, 'गोणलक्खण' गालक्षण- साम्नात्रिकला अतिरूपा मूर्धिकनयना-
श्च न शुभदा गाव' इत्यादिविज्ञानम् ३५, 'कुक्कुडलक्खण' कुक्कुडलक्षणम्, 'कुक्कुडलक्खण
जुति' सुवर्णनिर्माण करने की विधि की, (२८ गंधजुति) गन्धद्रव्य को ज्वान की विधि
की, (२९ चुन्नजुति) जगाकरण आदि चूर्ण को बनाने वाली औषधियां को एकत्रित कर
उनकी पिष्टा करने की विधि की (३० तरुणीपडिकम्म) युवती के रूप की गोभा
उदाने का विधि का (३१ इत्थिलक्खण) पद्मिनी, हस्तिनी आदि युवतियों को जानने के
लक्षणों का, (३२ पुरिसलक्खण) पुरुषों को पहिचानने के लक्षणों की, (३३ हयलक्खणों)
अश्वों क लक्षणों को जानने की तथा उनको चलाने का (३४ गयलक्खण) हाथी क लक्षणों
को जानने की, यहाँ पर समयायाग में उक्त 'हत्थिसिक्ख' हस्तिशिक्षा कला का समावेश
हुआ है (३५ गोणलक्खण) गाय के लक्षणों को जानने की, (३६ कुक्कुडलक्खण) कुक्कुड-

णजुति) याही जनाववानी विधिनी, २७ (सुवन्नजुति) सुवर्णनिर्माण करवानी
विधिनी, २८ (गंधजुति) गन्धद्रव्य जनाववानी विधिनी, २९ (चुन्नजुति)
वशीकरण आदि चूर्ण जनाववानी औषधीयोंने अश्वी करी तेने पीसवा
(वाटी नाथवानी) विधिनी, ३० (तरुणीपडिकम्म) युवतीना रूपनी गोभा
वधारवानी विधिनी, ३१ (इत्थिलक्खण) पद्मिनी, हस्तिनी आदि युवतीयों
ने ज्ञानवाना लक्षणोंनी, ३२ (पुरिसलक्खण) पुरुषोंने ज्ञानवाना लक्षणोंनी,
३३ (हयलक्खण) हाथीना लक्षणों ज्ञानवानी तथा तेमने ज्ञानवानी, ३४
(गयलक्खण) हाथीना लक्षणों ज्ञानवानी, अही समयायागभा उक्त 'हत्थि-

३६, चक्रलक्षणं ३७, छत्तलक्षणं ३८, चम्मलक्षणं ३९, दंड-
लक्षणं ४०, असिलक्षणं ४१, मणिलक्षणं ४२, कागणिल-
क्षणं ४३, वत्थुविज्ज ४४, खंधारमाणं ४५, नगरमाणं ४६, चारं

इत्यत्र समवायाङ्गोक्तस्य 'मिद्वयलक्षण' इत्यस्य समावेश, उपर्युक्तौ मचारंण सादृश्यात्
३६, 'चक्रलक्षण' चक्रलक्षण=चक्ररत्नगुणदोषविज्ञानम् ३७, 'छत्तलक्षण' छत्रल-
क्षण=छत्रस्य शुभाशुभविज्ञानम् ३८, 'चम्मलक्षण' चर्मलक्षण, चर्म=ढाल इति प्रसिद्ध
तस्य शुभाशुभलक्षणज्ञानम् ३९, 'दंडलक्षण' दण्डलक्षणम्=दण्डस्य शुभाशुभलक्षणवि-
ज्ञानम् ४०, 'असिलक्षणं' असिलक्षणम्='अङ्गुलीगतार्थं उत्तम खड्ग' इत्यादिविज्ञानम्
४१, 'मणिलक्षणं' मणिलक्षणम्=रत्नपरीक्षाविज्ञानम् ४२, 'कागणिलक्षणं' काकणी-
लक्षणम्=चक्रवर्तिनो रत्नविशेष काकणो, तस्या विषापहरणमानोन्मानादियोगप्रवर्तकत्वादिज्ञा-
नम् ४३, 'वत्थुविज्ज' वास्तुविद्याम्=वसति अस्मिन्निति वास्तु=गृहादिक तस्य विद्या=
वास्तुशास्त्रप्रसिद्ध गृहभूमिगतद्रावगुणविज्ञानम्, 'वत्थुविज्ज' इत्यत्र समवायाङ्गोक्तयो
'वत्थुमाण' 'वत्थुनिवास' इत्यनयो समावेश ४४, 'खंधारमाण'

मुर्गे के लक्षणों को जानने का, समवायाङ्ग में उक्त 'मिद्वयलक्षण' (मंडिका लक्षण) का
समावेश यहीं हो जाता है। (३७ चक्रलक्षण) चक्ररत्न के गुणदोष जानने की, (३८
छत्तलक्षण) छत्र के शुभाशुभ जानने की, (चम्मलक्षण) ढाल के खोटे-खरे लक्षणों
को जानने की, (४० दंडलक्षण) दंड के अच्छे-बुरे लक्षणों को जानने की, (४१
असिलक्षण) तलवार के लक्षणों की, (४२ मणिलक्षण) मणिलक्षण जानने की-रत्नकी
परीक्षा करने की, (४३ कागणीलक्षण) चक्रवर्ती के काकणी रत्न को जानने की, (४४
वत्थुविज्ज) वास्तु (घर) शास्त्र की, समवायाङ्ग में उक्त 'वत्थुमाण' वास्तुमान और
'वत्थुनिवेश' वास्तुनिवेश इन दोनों का यहीं समावेश होता है, (४५ खंधारमाण) शत्रु को

सिक्ख' छस्तिशिक्षा कणामो समावेश थये छे ३५ (गोणलक्षण) गायना
लक्षणे। ञ्छुवानी, ३६ (कुक्कुडलक्षण) कुक्कुट-कुक्कुडना लक्षणे। ञ्छुवानी,
समवायाङ्गमा उक्त 'मिद्वयलक्षण' (घिटाणु लक्षण) समावेश अछी थाय छे
३७ (चक्रलक्षण) चक्ररत्नना शुभदोष ञ्छुवानी, ३८ (छत्तलक्षण) छत्रना
शुभ अशुभ ञ्छुवानी, ३९ (चम्मलक्षण) ढालना जोटा तथा थरा लक्षणे।
ञ्छुवानी, ४० (दंडलक्षण) दंडना सारा-नरसा लक्षणे। ञ्छुवानी, ४१
(असिलक्षण) तलवारना लक्षणे। ञ्छुवानी, ४२ (मणिलक्षण) मणिना लक्षणे। ञ्छु-
वानी, ४३ (कागणीलक्षण) चक्रवर्तीना काकणी रत्नने ञ्छुवानी, ४४ (वत्थुविज्ज)

४७, पडिचारं ४८, वृहं ४९, पडिवृह ५०, चक्रवृह ५१ गरुलवृहं

स्कन्धावारमानं-शत्रु विजितु कदा क्रियपरिमित सैन्य निवर्तनीयमिति प्रमाणविज्ञानम्।
 'संधारमाण' इत्यत्र समवायाद्भोक्तस्य 'खवापारणिवेस' इत्यस्य समावेश
 'नगरमाण' नगरमानम्-अस्मिन् प्रदेशे क्रीदृग्मायामवैद्य्योपलक्षित नगर निर्मा-
 पणीय, येन विजयशाली भवेयम्, कस्य वर्णस्य कस्मिन् स्थाने निवेश श्रेष्ठ इति विज्ञा-
 नम्, 'नगरमाण' इत्यत्र समवायाद्भोक्तस्य 'नगरणिवेस' इत्यस्य समावेश ४६, 'चारं'
 चार=व्योतिधारविज्ञानम्। 'चार' इत्यत्र समवायाद्भोक्ताना 'चदलक्षण' सूरचरिय,
 राहुचरिय, गहचरिय' इत्येतेषा चतुर्णां समावेश ४७, 'पडिचारं' प्रतिचार=प्रतिव-
 र्त्तितचारम्-इष्टानिष्टफलजनकशान्तिरुमाविक्रियाविशेषविज्ञानम्, 'पडिचार' इत्यत्र
 'सोभागकरं, दोभागकर, विज्जागयं, मंतगयं, रडस्सगय, सभासचारं' इत्येतेषा सम-
 वायाद्भोक्ताना पण्या समावेश ४८, 'वृहं' व्यूहं-शक्रटद्याकृतिसैन्यरचनम् ४९, 'पडि-

वीतने के त्रिये कितनी सेना होनी चाहिये इस प्रकार सेना के परिमाण को जानने की,
 यहाँ पर समवायाद्भ में उक्त 'संधारणिवेसं' स्कन्धावारनिवेश का समावेश होता है।
 (४६ नगरमाण) इस प्रदेश में कितना रजा कितना चौड़ा नगर उसाना चाहिये
 जिससे मैं विजयशाली हो सकू तथा किस वर्ण को किस स्थान में बसाना श्रेष्ठ
 होगा इन सब बातों के विज्ञान की, समवायाद्भ में उक्त 'नगरनिवेश'
 नगरनिवेश का अन्तर्भाव यहाँ पर हो जाता है। (४७ चार) व्योतिधरक की,
 समवायाद्भ में कथित (चदलक्षण) चद्रमा के लक्षण, (सूरचरियं राहु-
 चरिय गहचरियं) सूर्य की चाल, राहु की चाल एवं ग्रहों की-चाल, इन सबों का समा-
 वेस 'चार' में समझना चाहिए। (४९ पडिचार) इष्टानिष्टफलजनक शान्तिरुमाविक्रिया-
 विशेषों के विज्ञान की, यहाँ समवायाद्भ कथित "सोभागकरं दोभागकर विज्जागय मंत-

वास्तु (धर) शास्त्रनी, समवायाद्भोक्त उक्त "वत्युमाण वत्युनिवेश" वास्तुमान
 तेभ्य वास्तुनिवेशानो समावेश अही थाय छे ४५ (संधारमाण) शत्रुने
 छतवा भाटे डेटली सेना छोपी लेईये, ये जीते सेनाना परिमाणुने (गणतरी)
 लक्षुवानी, समवायाद्भोक्त 'संधारणिवेस' श्रधापारणिवेशने अही
 पर समावेश थाय छे, ४६ (नगरमाण) आ प्रदेशमा डेवडु लाणु अने डेटलु
 पडोणु नगर पन्नावु लेईये डे लेथी हु विजयशाली थई थडु तथा
 क्या वर्णु (लत) ने क्या स्थानमा पन्नावु श्रेष्ठ थशे ये अही वाताना
 विज्ञाननी, समवायाद्भोक्त 'नगरनिवेश' नगरनिवेशकजानो समावेश
 अही थये छे ४७ (चार) व्योतिधरकनी, समवायाद्भोक्त

५२, सगडवूहं ५३, जुद्धं ५४, निजुद्धं ५५, जुद्धाडजुद्धं ५६, मुट्टि-

वूहं' प्रतिव्यूहम्=व्यूहप्रतिपक्षिभूत व्यूह-सैन्यरचनाविशेषम् ५०, 'चक्रवूह' चक्रव्यूहम्=सैन्यस्य चक्राकाररचनाविशेषम् ५१, 'गरुडव्यूह' गरुडव्यूह=गरुटाट्टिसंनानिवगपति-जानम् ५२, 'सगडवूह' शकटव्यूह=शकटाकृतिसैन्यरचनम् ५३, 'जुद्ध' युद्ध=समा-मम्, 'जुद्ध' इत्यत्र ज्ञाता-ममवायाद्भोक्तस्य 'अट्टिजुद्ध' इत्यस्य, तथा-समवायाद्भोक्तस्य 'दडजुद्ध' इत्यस्य, तथा जम्बूद्वीपप्रजन्तिकथितस्य 'दिट्टिजुद्धं' इत्यस्य, तथा-राजप्रन्नाय सूत्रोक्तस्य 'असिजुद्ध' इत्यस्य च समावेश ५४, 'निजुद्ध' नियुद्ध=मल्लयुद्धम् ५५, 'जुद्धाडजुद्ध' युद्धातियुद्धम्=खड्गादिप्रक्षेपपूर्वक महायुद्धम् ५६, 'मुट्टियुद्ध' मुट्टियुद्धम्, योधयो परस्पर मुष्ट्या हननम् ५७, 'वाहुजुद्ध' वाहुयुद्धम् ५८, 'लयाजुद्धं' लतायुद्ध

गय रहस्सगय सभासचार" इस पाठ का समावेश हुआ है। (४९ वूह) शकट आदि के आकार में सैन्य स्थापित करने की, (५० पडिवूहं) व्यूह के प्रतिपक्षी व्यूह की रचना करने की, (५१ चक्रवूहं) चक्रव्यूह की-सैन्य को चक्राकार रचने की, (५२ गरुडव्यूह) गरुडव्यूह की-गरुड़ की आकृति के समान सैन्य को रचने की, (५३ सगडवूह) शकट की आकृति के समान सैन्य को रचने की, (५४ जुद्ध) सपाम करने की, यहाँ पर ज्ञाता, समवायाद्भ मे कथित (अट्टिजुद्धं) अस्थियुद्ध का, (दडजुद्ध) दंडयुद्ध का, तथा जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति में प्रतिपादित (दिट्टिजुद्ध) दृष्टियुद्ध का और राजप्रश्नीयसूत्र में बताया गया (असिजुद्ध) तलवार से युद्ध करने का समावेश हुआ है, (५५ निजुद्धं) मल्लयुद्ध की, (५६ जुद्धाडजुद्ध) खड्गादिप्रक्षेपपूर्वक महायुद्ध करने की, (५७ मुट्टियुद्ध) मुट्टियुद्ध करने की, (५८ वाहुजुद्ध) वाहु से युद्ध करने की, (५९ लयाजुद्ध) लतायुद्ध की, जिस प्रकार लता

'चदलस्त्रण' अर्धमाना लक्ष्णु 'सूरचरिय राहुचरियं गहचरिय' सूर्यनी चाल, राहुनी चाल तेमल अडोनी चाल अये षधानो सभावेश 'चार' भा सभ-लवा नेध अये ४८ (पडिचार) धध-अनिष्ट इणनक शातिकर्म आदि क्रिया-विशेषना विज्ञाननी, अही सभवाय अगभा ऽडेल "सोभागकर, दोभागकर, विजागय, मतगय, रहस्सगय, सभासचार" आ पाठने सभावेश थये छे, ४९ (वूह) शकट [गाडु] आदिना आठारभा सैन्य स्थापित करवानी, ५० (पडिवूह) व्यूहना प्रतिपक्षी व्यूहनी रचना करवानी, ५१ (चक्रवूह) चक्र-व्यूहनी-सैन्यने चक्राकार रचवानी, ५२ (गरुडवूह) गरुडव्यूहनी-गरुडनी आकृतिना नेवी सैन्यरचना करवानी, ५३ (सगडवूह) शकटनी आकृति ना समान सैन्य रचवानी, ५४ (जुद्ध) सपाम करवानी, अही 'ज्ञाता अने समवा-याग' भा कडेल (अट्टिजुद्ध) अस्थियुद्धने, (दडजुद्ध) दंडयुद्धने तथा जम्बूद्वीप

जुहं ५७, वाहुजुहं ५८, लयाजुहं ५९, ईसत्यं ६०, छरुप्पवायं ६१,
धणुव्वेयं ६२, हिरण्णपागं ६३, सुवण्णपागं ६४, सुत्तखेडं ६५,

यथा लता वृन्मागेरन्ती आमूलमागिरो वृक्षमावेष्टयति, तथा यत्र योष प्रनियोयशरीरं गाढ
निपांठ्य भूमौ पातयति तन्लतायुद्धम् ५९, 'ईसत्यं' इपुशाख=नागवाणादिदिव्याखसूचक
शाखम्, 'ईसत्यं' इति प्राकृतशैल्या इपुशाखम् ६०, 'छरुप्पवायं' सुरप्रपातम्, सुर = 'सुरा'
इति प्रसिद्धं देदनशब्दप्रिण, तस्य प्रपात = पातनम् ६१, 'धणुव्वेयं' धनुर्वेद=धनुशाखम्
६२, 'हिरण्णपागं' हिरण्यपाक=रजतसिद्धिं ६३, 'सुवण्णपागं' सुवर्णपाक=कनकसिद्धिम्,
'सुवण्णपागं' इत्यत्र समायाङ्गराजप्रश्रीयसूत्रोक्तयो 'मणिपागं धातुपागं' इत्यनयो समावेश
६४, 'सुत्तखेडं' सूत्रपेठ=सूत्रकीडाम् ६५, 'वट्टखेडं' वृत्तपेठम् ६६, एतन्कण्ठय लोक-
तो बोध्यम्। 'वट्टखेडं' इत्यत्र 'चम्मखेडं' चर्मखेडम्-इत्यन्य ममनायाङ्गोक्तस्य समावेश।

वृक्ष पर चढ़ कर नीचे से ऊपर तक वृक्ष को लपेट लेती है उसी प्रकार योधा जिस युद्ध
में प्रनियोया के शरीर को अत्यन्त पीड़ित कर जमीन पर पटक देते हैं और उसके ऊपर
चढ़ बैठते हैं वह लतायुद्ध है उसकी, (६० ईसत्यं) इपुशाख की, 'ईसत्यं' यहा पर
प्राकृतशैली से इपुशाख ममझना चाहिये। नागवाण आदि दिव्य अख आदि का सूचक जो
शाख है उसका नाम इपुशाख है उस की, (६१ छरुप्पवायं) सुरा से युद्ध करने की,
(६२ धणुव्वेयं) धनुर्वेद की, (६३ हिरण्णपागं) रजतसिद्धि की, (६४ सुवण्णपागं)
सुवर्णसिद्धि की, राजप्रश्रीय एव समावायाम में कथित मणिपाक और धातुपाक का समावेश
यहाँ करना चाहिये। (६५ सुत्तखेडं) सूत्र-डोरा से लेने की, (६६ वट्टखेडं) वर्त-रस्सी
पर सेलने की, यहाँ पर समायाङ्गोक्त-(चम्मखेडं) चमड़ा से लेना-इसका भी समावेश

प्रज्ञप्ति २। प्रदिपादन ०रेल (विट्टिजुहं) इष्टियुद्धनो अने 'राजप्रश्रीय' सूत्रभा
षतावेल (असिजुद्ध) तलवारथी युद्ध करवानो समावेश थथेवो छे पप (निजुद्ध)
महयुद्धनी, प८ (जुद्धाइजुद्ध) अङ्ग आदि प्रक्षेपपूर्वक [धा भारीने] महायुद्ध
०वानी, प७ (मुट्टिजुद्ध) मुष्टियुद्ध ०वानी, प८ (वाहुजुद्ध) आहुथी युद्ध करवानी,
प९ (लयाजुद्ध) लतायुद्धनी, जे रीते लता [वेल] वृक्ष उपर चडीने नीचेथी उपर सुधी
वृक्षने लपेटे ले ठे तेनी ७ गीते योधा जे युद्धमा भागेना योधाना शरीरने गाढ-
इथी पीडा करी जमीन उपर पाडी दे छे अने तेना उपर चडी जेसे छे ते लतायुद्ध
ठे, तेनी, ६० (ईसत्यं) इपुशाखनी, 'ईसत्यं' अडी प्राकृत शैलीथी इपुशाख ममल
लेवु जेउजे नागवाण आदि दिव्य अख आदितु सूचक ७ शाख ठे तेतु नाम
इपुशाख ठे तेनी, ६१ (छरुप्पवायं) छराथी युद्ध करवानी, ६२ (धणुव्वेयं) धनुर्वेदनी,
६३ (हिरण्णपागं) रजतसिद्धिनी, ६४ (सुवण्णपागं) सुवर्णसिद्धिनी, 'राजप्रश्रीय'

वटखेडं ६६, णालियाखेडं ६७, पत्तच्छेज्जं ६८, कडच्छेज्जं ६९, सज्जी-
वं ७०, निज्जीवं ७१, सउणरुय ७२-मिति वावत्तरिकलाओ सेहा-
वित्ता सिक्खावेत्ता अम्मापिईणं उवणेहिति ॥ सू० ४६ ॥

‘नालियाखेड’ नालिकाखेलम्=भूतंविशयम्—माभूदिष्टयायाद विपरीतपागकनिपतन
मिति नालिकाया यत्र पागक पात्यते । यद्यपि घूते एवास्य समावेशो भवितुमर्हति तथापि
नालिकाखेलप्राधान्यज्ञापनार्थं भेदेन ग्रहणम् ६७, ‘पत्तच्छेज्जे’ पत्रच्छेद्यम्=अष्टोत्तरगतपत्राणा
मध्ये विवक्षितमख्याकपत्रच्छेदने हस्तलाघयम् ६०, ‘कडच्छेज्जे’ कडच्छेद्यम्—कट (चटाई)-
वत् क्रमाच्छेद्यं वस्तु यत्र विज्ञाने तत्तथा तत् ६९, ‘सज्जीवं’ सजीव=सजीवकरण—मृतधात्वा-
दौना सहजस्वरूपापादनम् ७०, ‘निज्जीवं’ निर्जीवं=निर्जीवकरणम्—हेमादिधातुमारण पारद-
मारण वा ७१, ‘सउणरुय’ शकुनरुतम्, अत्र शकुनपद रुतपद चोपलक्षणम्, तेन सर्व-
शकुनमग्रह, गतिचेष्टादिगवलोरुनादिपरिग्रहश्च ७२, ‘इति वावत्तरिकलाओ’ इति द्वासप्त-
तिकला =द्वासप्ततिपुस्तकला ‘सेहावित्ता सिक्खावेत्ता’ सेधयित्वा शिक्षयित्वा च ‘अम्मा-
पिईणं उवणेहिति’ मातापित्रोरुपनेष्यति=समर्पयिष्यति ॥ सू ४६ ॥

हुआ है । (६७ नालियाखेड) घूतविशेष खेलने की—नालिका में पागे डालकर जुआ
खेलने की, (६८ पत्तच्छेज्ज) पत्र छेदन करने की, १०८ पत्रों में से विवक्षित पत्र को
छेदन करने में हाथ की कुशलता की, (६९ कडच्छेज्ज) कट की अर्थात् चटाई की तरह
क्रम २ से छेदन करने की, (७० सज्जीवं) मारी हुई धातुओं को पुन प्रकृतिस्थ करने की,
(७१ निज्जीवं) निर्जीव करने की—हेमादिक धातुओं को मारने की, अथवा पागे को मारने
की, (७२ सउणरुय) पक्षियों के गन्ध पहिचानने की उनकी गति, चेष्टा एवं अवलोकन
आदि जानने की कला, (इति वावत्तरिकलाओ सेहावित्ता सिक्खावेत्ता अम्मापिईणं)

तेमञ्ज ‘समवायाग’ मा कडेल मध्दिपाड अने धातुपाडने सभावेश अही उरवेो
जेधअ ६५ (सुत्तखेड) सूत्र—दोराथी रभवानी, १६६ (वटखेड) वत्—दोराडा पर रभ-
वानी, अही रभवयायागमा कडेल (चम्मखेड) ‘आमडाथी जेदवु’ अनेो पधु सभा-
वेश कथो छे ६७ (नालियाखेड) घूतविशेष रभवानी—नालिकाभा पासा नाथीने
जुगार रभवानी, ६८ (पत्तच्छेज्ज) पत्र डापवानी, १०८ पत्रोभाथी विवक्षित पत्रो
डापवामा डायनी कुशगता नी, ६९ (कडच्छेज्ज) कटनी—अर्थात् अटाईनी पेठे
कभकभथी छेहन करवानी, ७० (सज्जीवं) मारेदी धातुओने इरीने प्रकृतिस्थ करवानी,
७१ (निज्जीवं) निज्जीवं करवानी—हेम अट्टिक धातुओने मारवानी, अथवा पारने
मारवानी ७२ (सउणरुय) पक्षिओना शण्ड सभञ्जवानी, तेमनी गति, जेष्टा तेमञ्ज
अवलोकन आदि जलधुवानी कणा (इति वावत्तरिकलाओ सेहावित्ता सिक्खावित्ता

मूलम्—तए णं तस्स दढपइण्णस्स दारगस्स अम्मा-
पियरो तं कलायरियं विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं
वत्थ-गंध-मल्ला-लंकारेण य सक्कारेहिति सम्माणेहिति, सक्का-

टीका—‘तए ण’ इत्यादि। ‘तए णं तस्स दढपइण्णस्स दारगस्स
अम्मापियरो त कलायरियं’ तत खलु तस्य दढप्रतिज्जस्य दारगस्य अम्मापितरो त
कलाचार्यं ‘विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेण’ विपुलेनाऽशनपानखाद्यस्वाद्येन
‘वत्थ-गंध-मल्ला-लंकारेण य सक्कारेहिति सम्माणेहिति’ वक्त्रगन्धमान्यालङ्कारेण
च सत्कारयिष्यत सम्मानयिष्यत—सुगमानि पदानि वाक्यानि च। ‘सक्कारित्ता सम्मा-
णित्ता’ सकृत्य समान्य ‘विउलं जीवियारिह पीइदाण दलइस्सति’ विपुल जीवि-

उवणेहिति) ये ७२ कलायें पुरुषकी हैं, इन कलाओं की शिक्षा कलाचार्य उसे देगा,
पश्चात् वह उसे उसके मातापिता के पास लाकर सौंप देगा ॥ सू ४६ ॥

‘तए णं तस्स’ इत्यादि।

(तए णं) इसके बाद (तस्स दढपइण्णस्स दारगस्स) उस दढ प्रतिज्जकुमार
के (अम्मापियरो) मातापिता (त कलायरियं) उस कलाचार्य का (विउलेणं
असण-पाण-खाइम-साइमेण वत्थ-गंध-मल्ला-लंकारेण य सक्कारेहिति) विपुल,
अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वक्त्र, गंध, एव माला तथा अलंकारों के प्रदान से खूब
सत्कार करेंगे। (सम्माणेहिति) खूब सम्मान करेंगे। (सक्कारित्ता सम्माणित्ता)
सत्कार एव सम्मान करके पश्चात् वे उसे (विउल जीवियारिह पीइदाण दलइस्सति)-

अम्मापिइणं उवणेहिति) आ ७२ कलाओं पुरुषकी छे ओ कलाओंकी कलाचार्य तेने
शिक्षा आपसे पछी ते तेने तेना मातापितानी पास लावीने मोपी देशे (सू० ४६)

‘तए णं तस्स’ इत्यादि

(तए णं) त्पार पछी (तस्स दढपइण्णस्स दारगस्स) ते दढप्रतिज्ज कुमारना
(अम्मापियरो) मातापिता (त कलायरियं) ते कलाचार्यने (विउलेण असण-पाण-
खाइम-साइमेण वत्थ-गंध-मल्ला-लंकारेण य सक्कारेहिति) विपुल अशन, पान,
आदिम, स्वादिम, वक्त्र, गंध तेमञ्च माला तथा अलंकारे आपीने भूष
सत्कार करशे, (सम्माणेहिति) भूष सम्मान करशे (सक्कारित्ता सम्माणित्ता)
सत्कार तेमञ्च सम्मान करीने पछी तेओ तेने (विउल जीवियारिह पीइदाण

रिक्ता सम्माणित्ता विउलं जीवियारिहं पीडटाणं दलइस्सन्ति, दल-
इत्ता पडिविसज्जेहिंति ॥ सू० ४७ ॥

मूलम्—तए णं से दढपइण्णे दारए वावत्तरिकला-
पडिए नवंगसुत्तपडिवोहिए अट्टारसदेसभासाविसारए गीयरई

काऽऽहं प्रीतिदान दास्यत, 'दलइत्ता' दत्त्वा 'पडिविसज्जेहिंति' प्रतिविमं
जैयिष्यत ॥ सू० ४७ ॥

टीका—'तए णं' इत्यादि। 'तए ण से दढपइण्णे दारए' 'तत्' सद्ध
स दढप्रतिजो दारक 'वावत्तरिकलापडिए' दास्यति कलापण्डित 'नवंगसुत्तपडि-
वोहिए' नयाङ्गसुत्तप्रतिवोधित-नयाङ्गानि=द्वे श्रोत्रे, द्वे नेत्रे, द्वे घ्राणे, एका च जिह्वा, त्वग्का,
मनश्चैरुमिति, तानि सुप्तानीव सुप्तानि-वाच्यादव्यक्तचेतनानि, तानि प्रतिवोधितानि=यौवनेन
व्यक्तचेतनावन्ति कृतानि यस्य स तथा। 'गीयरई' गीतरति = गानप्रियः, 'गधव्वण-णह-

त्रिपुल रूप में जीविका के योग्य प्रीतिदान देंगे, (दलइत्ता पडिविसज्जेहिंति) और
देकर उसे विसर्जित कर देंगे ॥ सू० ४७ ॥

'तए णं से दढपइण्णे दारए' इत्यादि।

(तए ण) इस के बाद (से) वह (दढपइण्णे) दढप्रतिज (दारए) कुमार
(वावत्तरिकलापडिए) बहत्तर कलाओं में पंडित (नवंगसुत्तपडिवोहिए) एव सुप्त
नवांगों—२ कान, २ श्रोत्र, २ नासिका के छिद्र, १ जिह्वा, १ स्पर्शन इन्द्रिय और मन के
प्रतिबोध-जागृति से युक्त-यौवनावस्था सपन्न होकर, (अट्टारसदेसभासाविसारए)
१८ देशों की भाषा का जाता होगा, (गीयरई गधव्वणट्टकुसले) यह-कुमार-गीत में

दलइस्सन्ति) विपुल रूप में जीविकाने योग्य प्रीतिदान आपिशे (दलइत्ता पडिवि-
सज्जेहिंति) अने आपीने तेभनु विनयन करी दोगे (सू० ४७)।

'तए णं से दढपइण्णे दारए' इत्यादि

(तए ण) त्थार पडी (से) 'ते' (दढपइण्णे) दढप्रतिज (दारए) कुमार
(वावत्तरिकलापडिए) ओठ तेर कणाओभा पडित (नवंगसुत्तपडिवोहिए) तेभु
सुप्त नव अंगों—२ कान, २ नेत्र, २ नासिकाना छिद्र, १ ओठ १ स्पर्-
शन इन्द्रिय अने मनना प्रतिबोध-जागृतिशी युक्त-यौवनावस्था सपन्न
थधने (अट्टारसदेसभासाविसारए) १८ देशोंनी भाषाओना जाता थशे (गीयरई

गंधवृणटकुसले हयजोही गयजोही रहजोही वाहुजोही वाहु-
प्पमदी वियालचारी साहसिए अलं भोगसमत्ये यावि
भविस्सइ ॥ सू० ४८ ॥

मूलम्—तए णं दढपइण्णं दारगं अम्मापियरो वाव-

कुसले' गान्धर्व-नाट्यकुशल -गान्धर्वे=गीतविद्याया नाट्ये=नाट्यशास्त्रे च कुशल =निपुण ,
'अट्टारस-देसभापा-विसारए' अष्टादश-देश-भापा-विशारद , 'हयजोही' हय-
जोही-हयैने=अश्वेन युध्यते तच्छीलो हययोधी, एव 'गयजोही रहजोही वाहुजोही'
गजयोधी रथयोधी वाहुयोधी-ज्ञातव्य 'वाहुप्पमदी' वाहुप्रमदी-वाहुभ्या प्रमुदनाति
तच्छीने वाहुप्रमदा, 'वियालचारी' विकालचारी-निर्भयत्वादिकाले राजावपि चरति
तच्छालो विकालचारी, अत एव 'साहसिए' साहसिके=अतिशर , 'अल भोगसमत्ये'
अलभोगसमर्थ =अलम्=अर्थ भोगानुभवसमर्थ 'यावि भविस्सइ' चापि
भविष्यति ॥ सू० ४८ ॥

टीका—'तए ण' इत्यादि । 'तए ण दढपइण्णं दारय' तत खल दढ-

अनुराग वाला तथा गान्धर्वविद्या मे और नृत्यकुला मे कुशल होगा । (हयजोही गय-
जोही रहजोही वाहुजोही) यह अश्वयोधी, गजयोधी, रथयोधी और वाहुयोधी होगा ।
(वाहुप्पमदी वियालचारी साहसिए) यह वाहुप्रमदी होगा और अति शर होगा, इस
लिये इसे विकाल रात्रि मे भी आने-जाने में कोई भय नहीं होगा । (अलं भोगसमत्ये
यावि भविस्सइ) तथा यह भोगसमर्थ भी होगा ॥ सू ४८ ॥

'तए ण दढपइण्णं दारग' इत्यादि ।

(तए ण) वाद मे (दढपइण्णं दारग) इस अपने दढप्रतिज्ञ वालक को

गंधवृणटकुसले) अये कुमार गीतभा, गान्धर्वविद्याभा अने नृत्यकुलाभा
कुशल थसे (हयजोही गयजोही रहजोही वाहुजोही) अये अश्वयोधी, गजयोधी,
रथयोधी, अने वाहुयोधी थसे (वाहुप्पमदी वियालचारी साहसिए)
अये वाहुप्रमदी थसे अने अति शूरवीर थसे आ माटे तेने विकाल रात्रिभा
पहु आववा-जवाभा डोई जातने भय थसे नहि (अल भोगसमत्ये यावि भवि
स्सइ) तथा आ भोगसमर्थं पहु थसे (सू ४८)

'तए ण दढपइण्णं दारग' इत्यादि

(तए ण) त्थार पठी (दढपइण्णं दारग) आ पोताना दढप्रतिज्ञं भाण्डने

त्तरिकलापंडियं जाव अलं भोगसमत्थं वियाणित्ता विउलेहिं
अण्णभोगेहिं पाणभोगेहिं वत्थभोगेहिं सयणभोगेहिं उवणि-
मंतेहिंति ॥ सू० ४९ ॥

मूलम्—तए णं से दढपइण्णे दारए तेहिं विउलेहिं अण्ण-

प्रतिज्ञ दारकम् 'अम्मापियरो' मातापितरौ 'वावत्तरिकलापडियं' द्वास्ततिकल्पपण्डित
'जाव' यावत्-अत्र-यावच्छब्दाद्-अष्टादशदेशभाषाविशारद गीतरतिं गान्धर्वनाट्यकुशल
हययोधिनम्-इत्यादानि विशेषणानि द्वितीयैकवचनान्तानि ज्ञेयानि । 'अल भोगसमत्थ'
अल भोगसमर्थम्-अलम्=अत्यर्थं भोगानुभवसमर्थं 'वियाणित्ता' विजाय 'विउलेहिं
अण्णभोगेहिं' विपुलैरन्नभोगै 'पानभोगेहिं' पानभोगै 'लेणभोगेहिं' लब्धनभोगै-
चित्रशालाद्यावासनवनवाभोगै 'वत्थभोगेहिं' वस्त्रभोगै, 'सयणभोगेहिं' शयनभोगै
'उवणिमंतेहिंति' उपनिमन्त्रयिष्यत =भोगान् भुङ्क्व-इति कथयिष्यत ॥ सू० ४९ ॥

टीका—'तए णं' इत्यादि । 'तए ण से दढपइण्णे दारए' तत्र खलु

(अम्मापियरो) मातापिता (वावत्तरिकलापडिय जाव अलभोगसमत्थ) ७२
कलाओं में पारगत तथा नवयौवनशाली एव भोग भोगने में समर्थ जानकर उसे (विउ-
लेहिं) विपुल (अण्णभोगेहिं) अन्न के भोगों से, (पाणभोगेहिं) पान करने योग्य
द्रव्यों के भोगों से, (लेणभोगेहिं) विविध चित्रों से सुशोभित प्रासाद के भोगों से,
(वत्थभोगेहिं) सुन्दर २ वस्त्रों को इच्छानुसार पहनने रूप भोगों से एव (सयण-
भोगेहिं) शय्या आदि के भोगों से (उवणिमतेहिंति) आमन्त्रित करेंगे, अर्थात् 'भोगों
को भोगो' ऐसा उससे कहेंगे ॥ सू ४९ ॥

(अम्मापियरो) मातापिता, (वावत्तरिकलापडिय जाव अल भोगसमत्थ) ७२ कला-
भाषा पारगत अने नवयौवनशाली तेभञ्ज लोग लोगववाभा समर्थ आछीने
तेने (विउलेहिं) विपुल (अण्णभोगेहिं) अन्नना लोगोथी (पाणभोगेहिं) पान उर-
वाने योग्य द्रव्यना लोगोथी (लेणभोगेहिं) विविध चित्रोथी सुशोभित प्रासाद
(भडेल)ना लोगोथी (वत्थभोगेहिं) सुहर सुहर वओने धिच्छानुसार पहरेवा
रूप लोगोथी तेभञ्ज (सयणभोगेहिं) शय्या आदिना लोगोथी (उवणिमतेहिंति)
आमन्त्रित करेशे, अर्थात् 'लोगोने लोगवो' अथ तेने कडेशे (सू ४९)

भोगेहिं जाव सयणभोगेहिं णो सज्जिहिति, णो रज्जिहिति, णो गिज्झि-
हिति, णो मुज्झिहिति, णो अज्झोववज्जिहिति ॥ सू० ५० ॥

मूलम्—से जहाणामए उप्पले इ वा पउमे इ वा कुसु-

स दृढप्रतिज्ञो दारक 'तेहिं विउलेहिं अण्णभोगेहिं जाव सयणभोगेहिं' तैविपुलैन्नभोगै-
र्याउच्छयनभोगै—अत्र यावच्छब्दात्पानलयनप्रयभोगैरिति ग्राह्यम्, 'णो सज्जिहिति' नो
सङ्ख्यति—न सद्ग=सम्बन्ध करिष्यति, 'णो रज्जिहिति' नो रङ्ख्यति—न राग=प्रेम
भोगसम्बन्धहेतु करिष्यति, 'णो गिज्झिहिति' नो गद्धिष्यते=नो गृद्धिभाव करिष्यति,
'णो मुज्झिहिति' नो मोहिष्यति=मोह न करिष्यति 'णो अज्झोववज्जिहिति' नो
अध्युपस्यते=न तदेकाग्रमना भविष्यति ॥ सू० ५० ॥

टीका—'से जहाणामए' इत्यादि । 'से जहाणामए' अथ यथा नाम

'तए ण से दढपइण्णे' इत्यादि ।

(तए ण) माता-पिता के इन बच्चों को सुनने के बाद (से दढपइण्णे दारए)
वह दृढप्रतिज्ञ कुमार (तेहिं विउलेहिं अण्णभोगेहिं जाव सयणभोगेहिं णो सज्जि-
हिति) उन अन्न आदि विपुल भोगों में मिलकुल ही आसक्तचित्त नहा होगा । (णो
रज्जिहिति) अनुरक्त नहीं होगा । (णो गिज्झिहिति) उनमें गृद्ध नहीं होगा, (णो
मुज्झिहिति) मूर्च्छित नहीं होगा, और (णोअज्झोववज्जिहिति) न उनमें सर्वथा एकाग्र-
मन ही होगा ॥ सू ५० ॥

'से जहाणामए' इत्यादि ।

इस सूत्र में "इ वा" ये शब्द वाक्यालंकार में प्रयुक्त हुए हैं । (से जहाणा-

'तए ण से दढपइण्णे' इत्यादि

(तए ण) मातापिताना अथवा बच्चन सालब्धा पत्नी, (से दढपइण्णे दारए)
ते दृढप्रतिज्ञ कुमार (तेहिं विउलेहिं अण्णभोगेहिं जाव सयणभोगेहिं णो सज्जिहिति)
ते अन्न आदि विपुल भोगोभा मिलकुल अ मननी आसक्ति राशये नहिं,
(णो रज्जिहिति) अनुरक्त थये नहिं, (णो गिज्झिहिति) तेभा गृद्ध थये नहिं,
(णो मुज्झिहिति) मूर्च्छित थये नहिं अने तेभा (णोअज्झोववज्जिहिति)
सर्वथा अेकाग्रमन पथु थये नहिं (सू ५०)

'से जहाणामए' इत्यादि

आ सूत्रमा "इ वा" अे शब्द वाक्यालंकारे प्रयुक्ते । (से जहा-

मे इ वा नलिणे इ वा सुभगे इ वा सुगंधे इ वा पोंडरीए इ वा
महापोंडरीए इ वा सयसपत्ते इ वा सहस्सपत्ते इ वा सयसहस्सपत्ते
इ वा पंके जाए जले सवुड्ढे णोवल्लिप्पइ पंकरएणं, णोवल्लिप्पइ

‘उप्पले इ वा’ उपल-रक्तकमलम्, ‘इ वा’ इति वाक्यालङ्कारे ‘पउमे इ वा’ पत्रम्-कमलमेव,
‘कुसुमे इ वा’ कुसुमम्, ‘नलिणे इ वा’ नलिनम्, ‘सुभगे इ वा’ सुभग-कमलविशेष
‘सुगंधे इ वा’ सुगन्धम्=सन्ध्याविक्रासिकमलविशेष, ‘पोंडरीए इ वा’ पुण्डरीक=श्वेतकम-
लम्, ‘महापोंडरीए इ वा’ महापुण्डरीक=विशाल श्वेतकमलम्, ‘सयसपत्ते इ वा’ शत-
पत्रम्=कमलम्, ‘सहस्सपत्ते इ वा’ सहस्रपत्रम्, ‘सयसहस्सपत्ते इ वा’ शतसहस्रपत्रम्,
एतानि सर्वाणि कमलजातीयान्येव । एतत्प्रयेकम्-‘पके जाये’ पके जातम्=कर्दमे समुत्पन्न
‘जले सवुड्ढे’ जले सवृद्धम्, ‘णोवल्लिप्पइ पंकरएण’ नोपल्लिप्यते पङ्करजसा-पङ्क =कर्दम
स एव रजो रेषुत्तुन्यत्वात्, तेन नोपल्लिप्यते=उपल्लिप्त न भवतीत्यर्थ । ‘णोवल्लिप्पइ जल-

मए) जैसे (उप्पले इ वा) रक्त कमल, (पउमे इ वा) पत्रकमल (कुसुमे इ वा)
कुसुम-पुष्प, (नलिणे इ वा) नलिन-कमलविशेष, (सुभगे इ वा) सुभग कमल,
(सुगंधे इ वा) सुगन्धकमल-सन्ध्याकालविक्रासी सौगन्धिक कमल, (पोंडरीए इ वा),
पुण्डरीक-श्वेतकमल, (महापोंडरीए इ वा) महापुण्डरीक-विशाल श्वेतकमल, (सयसपत्ते
इ वा) शतपत्र कमल, (सहस्सपत्ते इ वा) सहस्रपत्र कमल, (सयसहस्सपत्ते इ वा)
लक्षपत्र कमल, ये सब कमल की जातिया हैं । (पके जाए) ये कीचड उत्पन्न होते हैं,
(जले सवुड्ढे) तथा जल में बढ़ते हैं, तो भी (णोवल्लिप्पइ पंकरएण णोवल्लिप्पइ
जलरएण) पक की रज से वे लिम नहा होते हैं और न जल की रज से-बिन्दुओं से लिम

णामए) जेभके (उप्पले इ वा) रक्त कमल, (पउमे इ वा) पत्र कमल, (कुसुमे इ वा)
कुसुम-पुष्प, (नलिणे इ वा) नलिन-कमलविशेष, (सुभगे इ वा) सुभग कमल,
(सुगंधे इ वा) सुगन्ध कमल-सन्ध्याकाले विक्रासि यामे तेषु सुगन्धवाणु कमल,
(पोंडरीए इ वा) पुण्डरीक-श्वेत कमल, (महापोंडरीए इ वा) महापुण्डरीक-विशाल-
श्वेत कमल (सयसपत्ते इ वा) शतपत्र कमल, (सहस्सपत्ते इ वा) सहस्रपत्र कमल,
(सयसहस्सपत्ते इ वा) लक्षपत्र कमल, जे जधी कमलनी ललितिया छे (पके
जाए) ते कीचडमा उत्पन्न थाय छे, (जले सवुड्ढे) तथा जलमा वधे छे, ते
पणु (णोवल्लिप्पइ पंकरएण व णोवल्लिप्पइ जलरएण) कीचडनी रजथी तेओ लिप्त
थता नथी, तेभज जलना टीपाथी ओ लिप्त थता नथी, (एवामेव से ददप

जलरणं, एवामेव दृढपङ्कणे वि दारए कामेहिं जाए भोगेहिं संवु-
ड्ढे णोवलिप्पिहिति कामरणं, णोवलिप्पिहिति भोगरणं, णोव-
लिप्पिहिति मित्तणाइणियगसयणसंवधिपरिजणेणं ॥ सू० ५१ ॥

मूलम्—से णं तहारूवाणं थेराणं अंतिए केवलं

रण' नोपलियते जलरजसा 'एवामेव दृढपङ्कणे वि दारए' एवमेव दृढप्रतिज्ञोऽपि दाररु ,
'कामेहिं जाए भोगेहिं संवुड्ढे' कामैर्जातो भोगे मृद्भ 'णोवलिप्पिहिति' नोपलेप्स्यते,
'कामरण' कामरजसा—काम = शब्दो रूप च, स एव रज कामरजस्तेन, 'णोवलिप्पि-
हिति' नोपलेप्स्यते 'भोगरणं' भोगरजसा—भोग = गधो रस स्पर्शश्च, स एव रजो भोग-
रजस्तेन, 'णोवलिप्पिहिति मित्त-णाइ-णियग-सयण-सवधि-परिजणेण' नोपले-
प्स्यते मित्र-जाति-निजक-स्वजन-सम्बन्धि परिजनेन—मित्राणि=सुहृद्, जातय =सजातीया ,
निजका =भ्रातृपुत्रादय, स्वजना =मातुलादय, सम्बन्धिन =श्वशुरादय, परिजना =भृत्या
दय, एतैर्न लिप्पो भविष्यति ॥ सू ५१ ॥

होते हैं, (एवामेव से दृढपङ्कणे वि दारए) इस तरह वह दृढप्रतिज्ञ कुमार भी
(कामेहिं) कामों से—काम सेवन से (जाए) उत्पन्न होगा, (भोगेहिं संवुड्ढे) भोगों
से वृद्धिगत होगा, तो भी वह (कामरण) काम रजसे (णोवलिप्पिहिति) उपलब्ध
नहीं होगा, (भोगरण णोवलिप्पिहिति) भोगरज से उपलब्ध नहीं होगा । गध, रस,
स्पर्श इन गुणों का नाम भोग है । शब्द तथा रूप का नाम काम है । भोगरज एव काम-
रज इनमें रूपकालकार है । (णोवलिप्पिहिति मित्त-णाइ-णियग-सयण-सवधि-
परिजणेणं) इसी तरह वह मित्र—सुहृद्, जाति—सजातीय, निजक—भतीजा आदि,
स्वजन—मामा आदि, मत्रधी—श्वशुर आदि एव परिजन—भृत्य आदि परिंकारों के साथ भी
मोह को प्राप्त नहीं होगा ॥ सू ५१ ॥

इण्णे वि दारए) तेवीर रीते ते दृढप्रतिज्ञ कुमार पणु (कामेहिं) कामेथी—काम
सेवनथी (जाए) उत्पन्न थशे, (भोगेहिं संवुड्ढे) भोगेथी वृद्धिगत थशे, तो पणु
ते (कामरण) कामरजथी (णोवलिप्पिहिति) उपलब्ध थशे नहिं (भोगरण
णोवलिप्पिहिति) भोगरजथी उपलब्ध थशे नहिं गध, रस, स्पर्श अे शुष्णानु
नाम भोग छे शण्ड तथा इपणु नाम काम छे भोगरज तेभज कामरज
अेभा इपणु—अलकार छे (णोवलिप्पिहिति मित्त-णाइ-णियग-सयण-सवधि-परिज-
णेण) आवी रीते ते मित्र-सुहृद्, जाति-सजातीय, निजक-भ्रातृपुत्र (भत्रिजे)
आदि, स्वजन-मामा आदि, सवधि-श्वशुर आदि तेभज परिजन-नोकर
आदि परिंकारे—परिवाशे साथे पणु मोहने प्राप्त करशे नहिं (सू. ५१)

वोहिं बुज्झिहिति, बुज्झिता अगाराओ अणगारियं पव्वइ-
हिति ॥ सू० ५२ ॥

मूलम्—से णं भविस्सइ अणगारे भगवते ईरियास-
मिए जाव गुत्तवंभयारी ॥ सू० ५३ ॥

टीका—‘से णं’ इत्यादि । ‘से णं’ स दृढप्रतिज्ञ राद्ध ‘तहारूवाण’ तथारू-
पाणा=सम्यग्ज्ञानादिसम्पन्नानां ‘येराण’ स्थविराणाम्, ‘अत्तिए’ अन्तिके=समीपे ‘केवलं
वोहिं’ केवल बोधि=विशुद्धं सम्यग्दर्शनं ‘बुज्झिहिति’ भोत्स्यते=ज्ञास्यति, अनुभविष्यती-
त्यर्थ, ‘बुज्झिता’ बुद्ध्वा ‘अगाराओ’ अगारात्=गृहात्—गृह परित्यज्ये यर्थ, ‘अणगा-
रियं’ अनगारिता=साधुत्व ‘पव्वइहिति’ प्रजिष्यति=प्राप्स्यति ॥ सू ५२ ॥

टीका—‘से णं’ इत्यादि । ‘से णं’ स खलु दृढप्रतिज्ञो दारक ‘भविस्सइ
अणगारे’ अनगारो भविष्यतीत्यन्वय, स कौटुम्भो भविष्यतीत्याह ‘भगवते’ भगवान्=अति-
शयधारी, ‘ईरियासमिए’ ईर्यासमित =गमनक्रियाया यतनायुक्त, ‘जाव’ यावत्—यावच्छ-
ब्दात्—भाषासमित, एपणासमित, इत्यादि पञ्चसमितियुक्त, ‘गुत्तवंभयारी’ गुप्तब्रह्मचारी=
गुप्तब्रह्मचर्यवान् ॥ सू ५३ ॥

‘से ण तहारूवाण’ इत्यादि ।

(से ण) वह दृढप्रतिज्ञ कुमार नियम से (तहारूवाण येराण) तथारूप-सम्यग्ज्ञान
आदि गुणों से युक्त स्थविरों के (अत्तिए) पास (केवलं वोहिं) केवल बोधि को-
विशुद्ध सम्यग्दर्शन को (बुज्झिहिति) प्राप्त करेगा—उसका अनुभव करेगा, (बुज्झिता
अगाराओ अणगारियं पव्वइहिति) अनुभव करने के बाद फिर वह अगार-अवस्था से
विरक्त हो कर साधु अवस्था को प्राप्त करने वाला होगा ॥ सू ५२ ॥

‘से ण भविस्सइ’ इत्यादि ।

(से ण) वह दृढप्रतिज्ञ कुमार (अणगारे भगवते) अनगार भगवत्

‘से ण तहारूवाण’ इत्यादि

(से ण) ते दृढप्रतिज्ञ कुमार नियमथी (तहारूवाण येराण) तथारूप
सम्यग्ज्ञान आदि शुद्धोत्थी युक्त स्थविरेशनी (अत्तिए) पास (केवलं वोहिं) केवल
बोध विशुद्ध सम्यग्दर्शनने (बुज्झिहिति) प्राप्त करे—तेने अनुभव करे,
(बुज्झिता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिति) अनुभव करी लीधा पछी ते अगार-
अवस्थाथी विरक्त थधने साधु-अवस्थाने प्राप्त करवावाणे थथे (सू ५२)

‘से ण भविस्सइ’ इत्यादि

(से ण) ते दृढप्रतिज्ञ कुमार (अणगारे भगवते) अनगार भगवन्त (भवि

मूलम्—तस्स णं भगवंतस्स एएणं विहारेणं विहर-
माणस्स अणंते अणुत्तरे णिव्वाघाए निरावरणे कसिणे पांड-
पुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुप्पज्जिहिति ॥ सू० ५४ ॥

टीका—‘तस्स णं’ इत्यादि । ‘तस्स णं भगवंतस्स’ तस्यं सद्ध भगवतो
दृढप्रतिज्ञस्याऽनगारस्य, ‘एएणं विहारेणं विहरमाणस्स’ एतेन विहारेण विहरत—
‘अणंते’ अनन्तम्=अनन्तार्थविषयम्, ‘अणुत्तरे’ अनुत्तर=सर्वोत्तमम्, ‘णिव्वाघाए’
निर्व्याघातं=व्याघाताद्बहिर्भूतम्—अप्रतिहतमित्यर्थ, ‘निरावरणं’ क्षायिकत्वादावरणरहितम्,
‘कसिणे’ कृत्स्नं=सकलार्थप्राहकम्, ‘पण्डिपुण्णे’ प्रतिपूर्णं=सकलस्वकीयाग्युक्तम्,
‘केवलवरणाणदंसणे’ केवलपरजानदर्शनम्—केवलम्=असहायम् अतएव वरं=श्रेष्ठं ज्ञानं

(भविस्सइ) होगा, अर्थात् उत्कृष्ट मुनिराज बनेगा, वह (इरियासमिणं जाव गुत्तव-
मयारी) ईर्यासमिति आदि पाच समितियों और तीन गुणियों का आराधक एव यावत्
गुप्तप्रहारी होगा ॥ सू० ५३ ॥

‘तस्स णं भगवतस्स’ इत्यादि ।

(तस्स णं भगवंतस्स) उन अतिगय प्रभावविशिष्ट दृढप्रतिज्ञ मुनि को (एएणं
विहारेणं विहारमाणस्स) इस प्रकार के विहार से विचरते हुए (अणंते) अनन्त
पदार्थों के युगपत् जानने के साधक होने से अनन्त, (अणुत्तरे) सर्वोत्कृष्ट, (णिव्वा-
घाए) निर्व्याघात, (निरावरणे) आवरणरहित, (कसिणे) ज्ञान के पूर्ण विकास से
सकलार्थप्राहक, (पण्डिपुण्णे) तथा अपने समस्त अविभागी अर्गों में से किसी

स्सइ) थये, अर्थात् उत्कृष्ट मुनिराज बनये, ते (इरियासमिणं जाव गुत्तवमयारी)
ईर्यासमिति आदि पाच समितियों। अने त्रय गुणियोंने आराधक तेभ्यं
गुप्तप्रहारी थये (सू. ५३)

‘तस्स णं भगवतस्स’ इत्यादि

(तस्स णं भगवतस्स) ते अतिशय-प्रभाव-विशिष्ट दृढप्रतिज्ञ मुनिने
(एएणं विहारेणं विहरमाणस्स) ये प्रकारना विहारथी विचरता (अणंते) अनन्त
पदार्थोंने ओडी साथे नखुवाभा साधक डोवाथी अनन्त, (अणुत्तरे) सर्वोत्कृष्ट,
(णिव्वाघाए) निर्व्याघात, (निरावरणे) आवरणरहित, (कसिणे) ज्ञानना विकास-
थी सद्धा अर्थोंने नखुवा वाणा, (पण्डिपुण्णे) तथा पीताना समस्त अवि-
भागी अशोभाथी डोडं त्रय अर्थी हीन नहिं अथा (केवलवरणाणदंसणे)

मूलम्—तए णं दद्वपइण्णे केवली बहूइं वासाइं
केवल्लिपरियागं पाउणिहिति, पाउणिता मासियाए सलेहणाए
अप्पाणं झूसित्ता, सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदिता, जस्सट्टाए
कीरइ नग्गभावे सुंडभावे अणहाणए अदंतवणए केसलोए

च दर्शने चेति ज्ञानदर्शन, तत्र ज्ञान विशेषाऽनोपरूपम्, दर्शन सामान्यावबोधरूप
'सद्युपज्जिहिति' समुत्पत्त्यते=उदेष्यति ॥ सू० ५४ ॥

टीका—'तए णं' इत्यादि । 'तए णं से दद्वपइण्णे केवली' नत खलु
स दद्वप्रतिज्ञ केवली 'बहूइं वासाइं केवल्लिपरियाय' बहूनि वर्षाणि केवल्लिपरियाय
'पाउणिहिति' पालयिष्यति, 'पाउणिता' पालयिना, 'मासियाए सलेहणाए
अप्पाणं झूसित्ता' मासिकया सलेखनयाऽऽमान जूपिवा=सेवित्रा 'सट्ठि भत्ताइं अणसणाए
छेदिता' षट्ठि भक्तानि अनशनेन छित्वा 'जस्सट्टाए' यस्यार्थाय=यन्निमित्तं 'कीरइ'

भी अश से हीन नहीं ऐसे (केवलवरणाणदसणे), इन्द्रियों की सहायता आदि से
रहित होने के कारण केवल-असहाय उत्तम ज्ञान एवं उत्तमदर्शन उत्पन्न होंगे ॥सू० ५४॥

'तए ण से दद्वपइण्णे केवली' इत्यादि ।

(तए ण) इस के बाद (से दद्वपइण्णे केवली) वे दद्वप्रतिज्ञ केवली भगवान्
(बहूइं वासाइं) बहुत वर्षों तक (केवल्लिपरियागं) केवल्लिपरियाय का (पाउणिहिति)
पालन करेंगे, (पाउणिता) पालन करके (मासियाए सलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता)
एक मास की सलेखना से आत्मा को शीतकर (सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदिता)
एवं साठ भक्तों का अनशन से छेदकर (जस्सट्टाए) जिसके निमित्त (नग्गभावे) नग्न

धर्म्मिभ्यांणी सहायता आदिही रहित होवाने कारणे देवण-असहाय भवेत्
उत्तम ज्ञान तेभ्य दर्शन उत्पन्न भवेत् (सू० ५४)

'तए ण से दद्वपइण्णे केवली' इत्यादि

(तए ण) तत्र पद्ये (से दद्वपइण्णे केवली) ते दद्वप्रतिज्ञ केवली भग-
वान् (बहूइं वासाइं) धृषुः परसे सुधी (केवल्लिपरियागं) केवलीपरियायतु (पाउ-
णिहिति) पालन करे, (पाउणिता) पालन करीने (मासियाए सलेहणाए अप्पाण
झूसित्ता) एक मासकी सलेखनाही आत्माने सेविने, (सट्ठि भत्ताइं अणसणाए
छेदिता) तेभ्य साठ लक्ष्मिने अनशनही छेदन करीने (जस्सट्टाए) जेना निमित्त

वंमचेरवासे अच्छुत्तगं अणोवाहणगं भूमिसेज्जा फलहसेज्जा
कट्टसेज्जा परघरपवेसो लद्धावलद्धं, परेहिं हीलणाओ खिसणाओ

क्रियते, 'नग्गभावे' नग्गभाव 'मुडभावे' मुण्डभाव, 'अण्हाणए' अत्नानम्=स्नान-
वर्जनम्, 'अदत्तवणए' अदत्तधावनम्=दत्तधावनवर्जनम्, 'केसलोए' केशलोच =केशाना
लुञ्चनम्, 'वंमचेरवासे' ब्रह्मचर्यवास =ब्रह्मचर्यपालन, 'अच्छुत्तगं' अच्छुत्तकम्=छत्रधारण-
वर्जनम्, 'अणोवाहणगं' अनुपान क=पादत्राणराहित्य, अश्वशित्तिकादिवाहनराहित्य च,
'भूमिसेज्जा' भूमिगम्या, 'फलहसेज्जा' फलकगम्या, 'कट्टसेज्जा' काष्ठगम्या,
'परघरपवेसो' पग्गहप्रवेश -मिक्षावृत्तिमि यच्याहार्यमि यर्थ, 'लद्धावलद्धं' लब्धापलब्धम्-
सकारादिना लब्ध=प्राप्ति, अपलब्धम्-अपमानेन प्राप्ति क्रियते इति पूर्वेण सन्बन्ध ।
तथा-'परेहिं हीलणाओ' परेपा हेलना =अवज्ञा -परकृता जन्मकर्ममोदघाटना, यथा-

भाव, (मुडभावे) मुण्डभाव, (अण्हाणए) स्नान का परित्याग; (अदत्तवणए) दाँतो
के प्रक्षालन करने का परित्याग, (केसलोए) केशों का लोच करना, (वंमचेरवासे)
ब्रह्मचर्य का पालन, (अच्छुत्तग) छत्र धारण नहीं करना, (अणोवाहणग) विना
जूतों के चलना, अश्व पर, शित्तिका पर, वाहन पर नहीं बैठना, (भूमिसेज्जा) भूमि पर
गयन करना, (फलहसेज्जा) काष्ठ के पाटिये पर सोना, (कट्टसेज्जा) साधारण काष्ठ
पर सोना, (परघरपवेसो) दूसरों के घर भिक्षावृत्ति के लिये जाना, (लद्धावलद्धं) मान
और अपमान-पूर्वक प्राप्त भिक्षा में समभाव रखना, ये सब (कीरड) किये जाते हैं, और जिसके
निमित्त (परेहिं हीलणाओ) परकृत अवज्ञाओं को-जैसे 'अरे ! तू जारजात (दोगला)
' है' इस प्रकार के अनादर वचनों का, (खिसणाओ) लोगों के द्वारा खिजाने का-लोकों

(नग्गभावे) नग्गभाव, (मुडभावे) मुडभाव, (अण्हाणए) स्नानना परित्याग,
(अदत्तवणए) दातानु प्रक्षालन करवाने परित्याग, (केसलोए) केशानु लुञ्चन
करवुं, (वंमचेरवासे) ब्रह्मचर्यनु पालन करवु, (अच्छुत्तग) छत्र धारण न करवु,
(अणोवाहणग) जेडा पडेयां विना यावणु, अश्वपर, शित्तिकापर (पालणी
पर), वाहन पर न गेसणु, (भूमिसेज्जा) भूमिपर गयन करवु, (फलहसेज्जा)
लाकडाना पाटिया पर सुणु, (कट्टसेज्जा) साधारण लाकडा पर सुणु,
(परघरपवेसो) धीअने घर भिक्षावृत्ति माटे ळणु, (लद्धावलद्ध) मान-
अपमानमा समभाव राखयो, ये णधु (कीरड) करवामा आवे छे, अने
रेना निमित्ते (परेहिं हीलणाओ) धालअे करेली अवज्ञाओ वेपी छे,
'अरे ! तू जारजात छे' या प्रकाग्ना अनादरना वचने, (खिसणाओ) दोडोना

निन्दणाओ गरहणाओ तालणाओ तज्जणाओ परिभवणाओ
पव्वहणाओ उच्चावया गामकटगा वावीसं परिसहोवसग्गा अहि-

‘जारजातोऽसि’ इत्यादिरूपा इत्यर्थः । ‘खिसणाओ’ खिसणा = लोकासमक्ष मर्मोद्घाटनम्,
‘निन्दणाओ’ निन्दना = मनसा जुगुप्सा, ‘गरहणाओ’ गर्हणा = समक्षे क्रियमाणं
जुगुप्सा, ‘तालणाओ’ ताडना = चपेटादिदानानि, ‘तज्जणाओ’ तर्जना = अङ्गुल्यादि
प्रदर्शनपूर्वकं फट्टवचनफयनानि, ‘परिभवणाओ’ परिभाननास्तिरस्कारा, ‘पव्वहणाओ’
प्रव्यथना = पीडोत्पादना, ‘उच्चावया’ उच्चावचा = अनेकविधा, ‘गामकटगा’ ग्राम-
कण्टका, —ग्राम = समूह, स चेन्द्रियाणामिह प्रकरणवशाद् गृह्यते, इन्द्रियाणां प्रतिकूलं शब्दादय
इत्यर्थः, ‘वावीस परीसहोवसग्गा’ द्वाविंशति परीपहोपसगां ‘अहियासिज्जति’
अधिसहिष्यन्ते, ‘तमट्टमाराहिच्चा’ तमर्थमाराध्य = आमकल्याणरूप तमर्थं साधयित्वा
‘चरिमेहिं उस्सासणिस्सासेहिं’ चरमैरुच्छ्वासनि श्वासैः ‘सिज्जिहिति’ सेत्यति =

के समक्ष अपने मर्मों के उद्घाटनों का, (निन्दणाओ) अपने प्रति लोगों के मानसिक
घृणाओं का, (गरहणाओ) लोगों द्वारा प्रत्यक्षरूप से की गयीं घृणाओं का, (ताल-
णाओ) थप्पड़ आदि की ताडना का, (तज्जणाओ) अगुली-निर्देश-पूर्वक कहे हुए कड़
वचनों का, (परिभवणाओ) तिरस्कारों का, (पव्वहणाओ) पीडाजनक परिस्थितियों
का, (उच्चावया) अनेक प्रकार के, (गामकटगा) इन्द्रियों के प्रतिकूल शब्दादिकों का,
(वावीस परीसहोवसग्गा) बाईस प्रकार के परीपहों का, एव परकृत उपसर्गों का
(अहियासिज्जति) सहन किया जाता है, (तमट्टमाराहिच्चा) वे दृढप्रतिज्ञ केवली भग
वान् उस आत्मकल्याण रूप अर्थ को आराधित करके (चरिमेहिं उस्सासणिस्सासेहिं)

द्वारा थती भीजवष्ठीनु-बोके समक्ष-पोतानी भाभिंके वातोने प्रकाश
थाय तेनु, (निन्दणाओ) पोताना प्रति बोकेनी मानसिक घृष्ठाओनु, (गरहणाओ)
बोकेथी प्रत्यक्षरूपे टरायेली घृष्ठाओनु, (तालणाओ) थप्पड़-आदिथी भार
भावानु, (तज्जणाओ) आगणी थीधीने कडेला कट्टु वचनेनु (परिभवणाओ)
तिरस्कारेनु, (पव्वहणाओ) पीडाजनक परिस्थितिओनु, (उच्चावया) अनेक
प्रकारना (गामकटगा) छद्रियोने प्रतिकूल शब्द आदिनु, तथा (वावीस
परीसहोवसग्गा) भावीस प्रकारना परीपडेनु तेभज भीजव्णे करेला उपसर्गेनु
(अहियासिज्जति) सहन कराय छे (तमट्टमाराहिच्चा) ते दृढप्रतिज्ञ केवली भग-
वान् ते आत्मकल्याणरूप अर्थने आराधित करीने (चरिमेहिं उस्सास-णिस्सा-
सेहिं) अन्तिम उच्छ्वास-नि श्वासेथी (सिज्जिहिति) कृतकृत्य थर्छे जथे

यासिञ्जति, तमट्टमाराहिता चरिमेहिं उस्सासणिस्सासेहिं सिञ्जि-
हिति, बुञ्जिहिति, मुच्चिहिति, परिणिव्वाहिति, सब्बदुक्खाणमंतं
करेहिति ॥ सू० ५४ ॥

मूलम्—से जे इमे गामा-गर-जाव-सण्णिवेसेसु प-
व्वइया समणा भवन्ति, तं जहा-आयरियपडिणीया उवज्जाय-

कृतकृत्यो 'भविष्यति, 'बुञ्जिहिति' भोस्यते=समस्तानयान् केवलज्ञानेन जात्यति, 'मुच्चि-
हिति' मोक्ष्यते-सकृत्कर्मणै, 'परिणिव्वाहिति' परिनिर्वास्यति=कर्मकृतसन्तापाम्भावेन
शीतलीभविष्यति, 'सब्बदुक्खाणमतं करेहिति' सर्वदुःखानाम्=आगीरमानसाना सकल-
दुःखानामन्तं करिष्यतीति ॥ सू० ५५ ॥

टीका—'से जे इमे' इत्यादि । 'से जे इमे' अथ य इमे 'गामा-गर-
जाव-सण्णिवेसेसु' ग्रामाऽऽकर-यावत्-सन्निवेशेषु, 'पव्वइया समणा भवन्ति' प्रव्रजिता
श्रमणा भवन्ति, ते कोटणा सन्तीयत्राऽऽइ-'तजहा' तद्यथा-'आयरियपडिणीया'
आचार्यप्रयत्नीका =आचार्यनिरोधिन, 'उवज्जायपडिणीया' उपाध्यायप्रयत्नीका,

अन्तिम उच्छ्वासनि धासो से (सिञ्जिहिति) कृतकृत्य हो जायेंगे, (बुञ्जिहिति) समस्त
चराचर पदार्थों को केवलज्ञानरूपी आलोक-प्रकाश से जान जायेंगे, (मुच्चिहिति) समस्त
कर्मणों से छूट जायेंगे, (परिणिव्वाहिति) कर्मकृत सन्ताप के अभाव से शीतलीमृत हो
जायेंगे, (सब्बदुक्खाणमतं करेहिति) समस्त आगीरिक, मानसिक दुःखों का अन्त
कर देंगे ॥ सू० ५५ ॥

'से जे इमे' इत्यादि ।

(से जे इमे) वे जो (गामा-गर-जाव सण्णिवेसेसु) ग्राम, आकर से लेकर
सन्निवेश तक के स्थानों में (पव्वइया समणा) प्रव्रजित साधु होते हैं, जैसे-(आयरिय-
पडिणीया) आचार्य के प्रत्यनीक-विरोधी, (उवज्जायपडिणीया) उपाध्याय के निरोधी,

(मुच्चिहिति) समस्त कर्मोंना अशोथी छूटी जये, (परिणिव्वाहिति) कर्मोंथी
थता सतापना अलावथी शीतलीभूत थथ जये, (सब्बदुक्खाणमतं करेहिति)
समस्त आगीरिक, मानसिक दुःखोंना अन्त करी देंगे (सू० ५५)

'से जे इमे' इत्यादि

(से जे इमे) तेज्जा डे जे (गामा-गर-जाव-सण्णिवेसेसु) ग्राम
आकर आदिथी लधने सन्निवेश मुधीना स्थानोभा (पव्वइया समणा) प्रव-
जित साधु होथ छे, जेवा डे (आयरियपडिणीया) आचार्यना प्रत्यनीक-विरोधी,

पडिणीया कुलपडिणीया गणपडिणीया आयरियउवज्झायाणं
अयसकारगा अवणकारगा अकित्तिकारगा व्हूहिं असम्भावु-
व्भावणाहिं मिच्छत्ताभिणिवेसेहि य अप्पाणं च परं च तदुभयं
च वुग्गाहेमाणा वुप्पाएमाणा विहरित्ता व्हूडं वासाडं सामण्ण-

‘कुलपडिणीया’ कुलप्रत्यनीका, ‘गणपडिणीया’ गणप्रत्यनीका, ‘आयरियउव-
ज्झायाणं अयसकारगा’ आचार्योपाध्यायानामयसकारका, ‘अवणकारगा’ अवर्ण-
कारका = निन्दका ‘अकित्तिकारगा’ अक्रीर्तिकारका, ‘व्हूहिं असम्भावुव्भावणाहिं
मिच्छत्ताभिणिवेसेहि य’ बह्वीभिरसद्भावोद्भावनाभि मिथ्यात्वाभिनिवेशैश्च—असद्भावानाम्=
अविद्यमानार्थानाम् असद्भावना=आरोपगास्ताभि, तथा च—मिथ्यात्वाभिनिवेशैश्च=आशात-
नाजनितैर्मिथ्यात्वग्रहै, ‘अप्पाण च परं च तदुभय च वुग्गाहेमाणा’ आत्मानं च
परञ्च तदुभयञ्च व्युदप्राहयन्त = आशातनारूपे पापे नियोजयन्त, ‘वुप्पाएमाणा’ व्युत्पा-
दयन्त = आशातनारूप पापमुपार्जयन्त, ‘विहरित्ता’ विहरय, ‘व्हूडं वासाडं सामण्ण

(कुलपडिणीया) कुल के प्रत्यनीक, (गणपडिणीया) गण के प्रत्यनीक, (आयरिय-उव-
ज्झायाण अयसकारगा अवणकारगा) आचार्य एव उपाध्यायों के अयसकारक, तथा अव-
र्णवादकारक—निंदाकरने वाले, (अकित्तिकारगा) अक्रीर्तिकारक, (व्हूहिं असम्भावुव्भाव-
णाहिं मिच्छत्ताभिणिवेसेहि य) अनेक असद्भावों की उद्भावना—दोषों के अभाव में भी
दोषों को उनमें प्रकट करने—से, मिथ्यात्व के अभिनिवेशों—आशातनाजनित मिथ्याग्रहों—से
(अप्पाण पर च तदुभय च वुग्गाहेमाणा वुप्पाएमाणा) अपने आपको एव दूसरों को
तथा साथ में दोनों को आशातनारूप पाप में नियोजित करते हुए, स्वयं आशातना रूप

(उवज्झायपडिणीया) उपाध्यायना विरोधी, (कुलपडिणीया) कुलना विरोधी,
(गणपडिणीया) गणना विरोधी, (आयरियउवज्झायाण अयसकारगा अवणकारगा)
आचार्य तेमञ्ज उपाध्यायेना अयसकारक, अवर्णवादकारक—निंदा करवावाणा,
(अकित्तिकारगा) अक्रीर्तिकारक, तेञ्जे (व्हूहिं असम्भावुव्भावणाहिं मिच्छत्ताभि-
णिवेसेहि य) अनेक असद्भावोनी उद्भावनाथी—दोषो न होय तेमा पखु दोषो
प्रकट करवाथी, मिथ्यात्वना अभिनिवेशोथी—आशातनाजनित मिथ्या—आश-
होथी, (अप्पाण च पर च तदुभय च वुग्गाहेमाणा वुप्पाएमाणा) पोते पोताने तेमञ्ज
धीज्जने तथा धन्नेने साथे ञ् आशातनाइप पापमा नियोजित करता करता,

परियागं पाउणति, पाउणित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइय-अप्प-
डिक्कंता कालमासे कालं किच्चा उक्कोसेणं लंतए कप्पे देवकि-
च्चिसिएसु देवकिच्चिसियत्ताए उववत्तारो भवन्ति, तहिं तेसिं गई,

परियायं पाउणति, पाउणित्ता' वह्नि वर्णानि श्रामण्यपर्यायं पालयन्ति, पालयित्वा 'तस्स
ठाणस्स' तस्य स्थानस्य=तस्य प्रयनीकतादिप्रजातस्य पापस्थानस्य, 'अणालोइय-अप्प-
डिक्कंता' अनालोचिताऽप्रतिक्रान्ता =गुरुसमीप आलोचनाया प्रतिक्रमणस्य चाकरणेन
दोषादनिवृत्ता सन्त 'कालमासे कालं किच्चा', कालमासे कालं कृत्वा 'उक्कोसेणं
लंतए कप्पे देवकिच्चिसिएसु' उरूपेण लान्तके कप्पे=लातकनामके षष्ठे देवलोके
देवकिच्चिसियत्ताए उववत्तारो भवन्ति 'देवकिच्चिसियत्ताए उववत्तारो भवन्ति' देवकिच्चिसियत्ताया उत्पत्तारो

पाप का उपार्जन करते हुए (विहरित्ता वहडं वासाडं) इस भूमिडल पर विचरण करते रहते
हैं, और इतन्तत उसका प्रचार करते २ ही अनेक वर्षों तक उस साधुपर्याय को पालते हैं,
वे (तस्स ठाणस्स अणालोइय-अप्पडिक्कंता) उन पापस्थानों की आलोचना नहीं कर के,
उन पापस्थानों का प्रतिक्रमण नहीं करके (कालमासे कालं किच्चा) काल अपसर में काल
कर (उक्कोसेणं) उत्कृष्ट (तए कप्पे देवकिच्चिसिएसु देवकिच्चिसियत्ताए उववत्तारो
भवन्ति) लान्तक नामके छठवें देवलोके में किच्चिसियत्ता देवों में किच्चिसियत्ता जाति के देव होते
हैं। इनको जो देवपर्याय मिलती है वह विजिष्ट श्रामण्यजन्य है, अर्थात् चालतप के प्रभाव
से प्राप्त होती है, परंतु वही किच्चिसियत्ता देवों में जो जन्म होता है यह तो आचार्यादिक की
प्रयनीकता के फल से होता है। जिस प्रकार लोक में चांडाल आदि हुआ करते हैं उसी

(विहरित्ता वहडं वासाडं) आ लूम उण उपर विचरणु करता रहे छे, अने
आम-तेम तेनो प्रचार करता करता न अनेक वरसो सुधी ते साधुपर्या-
यनु पालन करे छे, तेओ (तस्स ठाणस्स अणालोइय-अप्पडिक्कंता) ते पाप-
स्थानोनी आलोचना न करता, ते पापस्थाननु प्रतिक्रमणु न करता (काल-
मासे कालं किच्चा) काल अवमरे काल करीने (उक्कोसेणं) उत्कृष्ट (तए कप्पे
देवकिच्चिसिएसु देवकिच्चिसियत्ताए उववत्तारो भवन्ति) लान्तक नामना छुट्टा देव-
लोकाभा किच्चिसियत्ता देवोभा किच्चिसियत्ता नतिना देव थाय छे तेमने के देव-
पर्याय भजे छे, ते विशिष्ट श्रमणु धर्म पाणवाथी न भजे छे, अर्थात् पाल-
तपना प्रभावथी प्राप्त थाय छे, परंतु त्या के किच्चिसियत्ता देवोभा जन्म
थाय छे ओ तो आचार्या आदिनी प्रत्यनीकताना क्षणथी थाय छे

तेरस सागरोवमाइं ठिई, अणाराहगा, सेसं तं चैव ॥ सू० ५६ ॥

मूलम्—से जे इमे सण्णि-पंचिदिय-तिरिक्ख-
जोणिया पज्जत्तया भवंति, तं जहा-जलयरा थलयरा खहयरा,

भवन्ति=उपयन्ते, एतेषा त्रिगिष्टश्रामण्यजन्य देवस्य, प्रयत्नीकृताजन्य क्लिबिपिकच, तेन ते देवेषु चाण्डालतुल्या भवन्ति । 'तहिं तेसिं गई' तत्र तेषा गतिः, 'तेरस सागरोवमाइं ठिई' त्रयोदश सागरोपमाणि स्थिति । 'अणाराहगा' अनाराधका भवति । 'सेसं तं चैव' शेष तदेव ॥ सू० ५६ ॥

टीका—'से जे इमे' इत्यादि । 'से जे इमे' अथ य इमे 'सण्णि-पंचिदिय-तिरिक्खजोणिया पज्जत्तया भवंति' सज्जि-पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिका पर्याप्त भवन्ति, के ते ? इत्याह—'तं जहा' तद्यथा—'जलयरा थलयरा खहयरा' जलचरा स्थलचरा खेचरा 'तेसिं णं अत्येगइयाणं सुभेणं परिणामेण पसत्थेहिं अज्झ-

प्रकार देवों में क्लिबिपिक जाति के देव होते हैं । (तहिं तेसिं गई) वहाँ पर उनकी गति होती है । वहा (तेरस सागरोवमाइं ठिई) १३ सागर की उनकी स्थिति होती है (अणाराहगा सेसं तं चैव) ये जीव अनाराधक होते हैं । इस विषयमें अवशिष्ट पूर्ववत् समझना चाहिये ॥ सू ५६ ॥

'जे इमे' इत्यादि ।

(जे इमे सण्णि-पंचिदिय-तिरिक्ख-जोणिया) जो ये सज्जि-पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनि के पर्याप्त जीव हैं, (तं जहा) जैसे—(जलयरा थलयरा खहयरा) जलचर, स्थलचर और खेचर । (तेसिं णं अत्येगइयाणं सुभेणं परिणामेण पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं)

येवी रीते दोकभा याडाल आदि डोय छे तेवी ज रीते देवोभा डिटिणापिड
आतिना देव डोय छे (तहिं तेसिं गई) त्या तेमनी गति डोय छे त्या
(तेरस सागरोवमाइं ठिई) १३ सागरनी तेमनी स्थिति डोय छे
(अणाराहगा सेसं तं चैव) आ विषयभा आकीनु अणु अगाडि प्रभाण्णे सभण्डुं
नेधणे ओ एव अनाराधक डोय छे (सू ५६)

'से जे इमे' इत्यादि

(से जे इमे सण्णि-पंचिदिय-तिरिक्ख-जोणिया) जे आ सज्जि-पञ्चेन्द्रिय-
तिर्यग्योनिना पर्याप्त एवे छे, (तं जहा) जेवा डे (जलयरा थलयरा खह
यरा) जलचर, स्थलचर अने खेचर (तेसिं णं अत्येगइयाणं सुभेणं परिणामेण

तेसिं णं अत्थेगडयाणं सुभेणं परिणामेणं पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं
लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं
ईहा-बूह-मग्गण-गवेसणं करेमाणाणं सण्णि-पुव्वजाई-सरणे
समुप्पज्जइ ॥ सू० ५७ ॥

मूलम्—तए णं समुप्पण्णजाइसरणा समाणा सयमेव

वसाणेहिं लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं 'तेषां खलु अस्ति एकेषा शुभेन परिणामेन प्रगस्तैर-
प्यवसानैर्लेश्याभिर्विशुद्धचमानाभिः, तदावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं' तदा-
वरणीयानां कर्मणा क्षयोपशमेन, अतएव 'ईहा-बूह-मग्गण-गवेसणं करेमाणाणं'
ईहा-बूह-मार्गण-गवेसणं कुर्वताम्, एषा पदानां व्याख्या अनैवोत्तरार्धे एकत्रिंशत्तमसूत्रे गता ।
'सण्णिपुव्वजाईसरणे' सज्जिपूर्वजातिस्मरण=पूर्वसज्जिमवत्स्मरण, 'समुप्पज्जइ' समुत्पद्यते
॥ सू० ५७ ॥

टीका—'तए णं' इत्यादि । 'तए णं' समुप्पण्णजाइसरणा समाणा'

उनमें कितनेक जीव, शुभ परिणामों से, प्रगस्त अध्यवसायों से, (विसुज्झमा-
णीहिं लेस्साहिं) विशुद्ध लेश्याओं-लेश्या की विशुद्धि से, तथा-(तयावरणिज्जाणं कम्माणं
खओवसमेणं) तदावरणीय-ज्ञानावरणीय एवं वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से (ईहा-बूह-
मग्गण-गवेसणं करेमाणाणं) ईहा, बूह, मार्गण एवं गवेसण करते हैं, करते करते,
(सण्णि-पुव्व-जाई-सरणे समुप्पज्जइ) सज्जित अवस्था के पूर्वमवों की स्मृति-नि-
स्मरण ज्ञान-पाते हैं । (ईहा) आदि पदों की व्याख्या यहीं उत्तरार्ध के एकत्रिंशत्तम सूत्र
में देखें ॥ सू० ५७ ॥

पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं) तेभां देहलाभ एवेने ष्ठे ने शुभ परिणामोऽथी, प्रथस्त
अध्यवसायोऽथी (विसुज्झमाणीहिं लेस्साहिं) विशुद्ध लेश्याओ-लेश्याओऽनी पवित्र
ताथी, तथा (तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं) तदावरणीय-ज्ञानावरणीय ।
तेभ्य वीर्यान्तराय कर्मणा क्षयोपशमथी, (ईहा-बूह-मग्गण-गवेसणं करेमाणाणं)
ईहा, बूह, मार्गणं तेभ्य गवेसणं करता करता (सण्णिपुव्वजाईसरणे
समुप्पज्जइ) सज्जित अवस्थानां पूर्व अवोऽनी स्मृति-निस्मरणज्ञान-उत्पन्नः
थाय छे 'ईहा' आदि पदोऽने अर्थ ओ न सूत्रना उत्तरार्धभा अेकत्रिंशत्तमा
सूत्रभा लुओ (सू० ५७)

पंचाणुव्रयाइं पडिवज्जंति, पडिवज्जित्ता बहूहिं सीलव्वय-गुण-
वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहो-ववासेहिं अप्पाणं भावेमाणा बहूइं
वासाइं आउय पालेंति, पालित्ता भत्तं पच्चक्खंति, बहूइं भत्ताइं

तत खल्ल समुप्पणजाइसरणा सन्त 'सयमेव' स्वयमेव, 'पंचाणुव्रयाइ' पञ्चाणु
व्रतानि 'पडिवज्जंति' प्रतिपद्यन्ते=स्वीकुर्यन्ति, 'पडिवज्जित्ता' प्रतिपद्य 'सीलव्वय-
गुण-विरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं' शीलव्रत-गुण-विरमण-प्रत्याख्यान-पोष-
धोपवासैः, 'अप्पाण भावेमाणा' आमान भावयन्त, 'बहूइं वासाइं' बहूनि वर्षाणि
'आयुयं' आयुष्कं 'पालेंति' पालयन्ति, 'पालित्ता' पालयित्वा 'भत्त' भक्त 'पच्चक्खंति'
प्रत्याख्यानन्ति, 'बहूइ भत्ताइ' बहूनि भक्तानि 'अणसणाए' अनशनेन 'छेदेंति'

'तए ण समुप्पणजाइसरणा' इत्यादि ।

(तए ण) तव (समुप्पणजाइसरणा समाणा) जातिस्मरणज्ञानयुक्त वे जीव,
उस ज्ञान के प्रभाव से (सयमेव) स्वय ही (पंचाणुव्रयाइ) पांच अणुव्रतों को स्वीकार कर
लेते हैं। (पडिवज्जित्ता बहूहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण पच्चक्खाण-पोसहो-ववासेहिं)
स्वीकार कर शीलव्रतों से, गुणव्रतों से, हिंसादिक पापों के त्याग से, प्रत्याख्यानो से एवं
पोषधोपवासों से (अप्पाणं भावेमाणा) अपनी आत्मा को भाविन करते हुए (बहूइ वासाइं)
अनेक वर्षों तक (आउय पालेंति) आयुष्य पालते हैं, (पालित्ता) आयुष्य पालकर वे (भत्तं
पच्चक्खंति) भक्तप्रत्याख्यान करते हैं। (बहूइ भत्ताइ अणसणाए छेदेंति) अनशन से
अनेक भक्तों का छेदन करते हैं, (छेदित्ता आलोदयपडिकता समाहिपत्ता कालमासे)

'तए ण समुप्पणजाइसरणा' इत्यादि

(तए ण) त्वारे (समुप्पणजाइसरणा समाणा) जति-स्मरण-ज्ञानयुक्त
ते एव ये ज्ञानना प्रभाव वडे (सयमेव) "चेते" (पंचाणुव्रयाइ) पांच
अणुव्रतों को स्वीकार करी ले छे (पडिवज्जित्ता बहूहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-
पच्चक्खाण-पोसहो-ववासेहिं) स्वीकार करीने शीलव्रतोंथी, गुणव्रतोंथी, हिंसा
आदिक पापोंना त्यागथी, प्रत्याख्यानोथी "तेभव पौषधोपवासोथी" (अप्पाण भावे-
माणा) चेताना आत्माने भाविन करता करता (बहूइ वासाइ) अनेक वर्षों
सुधी (आउय पालेंति) आयुष्य पाले छे, (पालित्ता) आयुष्य पालीने तेओ
(भत्त पच्चक्खंति) भक्तप्रत्याख्यान करे छे, (बहूइ भत्ताइ अणसणाए छेदेंति)
अनशनथी अनेक भक्तोंनु छेदन करे छे, (छेदित्ता आलोदयपडिकता समाहि-

अणसणाए छेदेति, छेदिता आलोडयपडिकंता समाहिपत्ता काल-
मासे कालं किच्चा उक्कोसेणं सहस्सारे कप्पे देवत्ताए उवत्तारो
भवन्ति, तहिं तेसिं गई, अट्टारस सागरोवमाइं ठिईं पण्णत्ता,
परलोयस्स आराहगा, सेसं तं चेव ॥ सू० ५८ ॥

मूलम्—से जे इमे गामागर जाव संनिवेसेसु आजी-

छिदन्ति, 'छेदिता' छित्ता 'आलोडयपडिकंता' आलोचितप्रतिक्रान्ता, 'समाहिपत्ता'
समाधिप्राप्ता, 'कालमासे कालं किच्चा' कालमामे=कालावसरे काल कृत्वा, 'उक्कोसेण'
उक्कपेण 'सहस्सारे कप्पे' महत्त्वां कप्पे-सहस्राणामके अष्टमे देवलोकं 'देवत्ताए'
देवत्वेन 'उवत्तारो भवन्ति' उपपत्तागे भवन्ति=उपपद्यते, 'तहिं तेसिं गई' तत्र
तेषां गतिः, 'अट्टारस सागरोवमाइं ठिईं पण्णत्ता' अष्टादश सागरोपमाणि स्थिति
प्रज्ञा, 'परलोयस्स आराहगा' परलोक्यागधका, 'सेसं तं चेव' शेष
तदेव ॥ सू० ५८ ॥

टीका—'से जे इमे' इत्यादि । 'से जे इमे' अथ य इमे 'गामा-गर-

काल किच्चा) उद्वेग कर वे अपने पापों की आलोचना करते हैं, प्रतिक्रमण करते हैं,
समाधि को प्राप्त होते हैं । तथा काल अवसर काल कर के (उक्कोसेण सहस्सारे कप्पे देव-
त्ताए उवत्तारो भवन्ति) उद्भूत आठमें देवलोक महत्त्वा कृत्वा म देवरूप से उपज्न होते
हैं । (तहिं तेसिं गई) वहीं पर उनकी गति कही गयी है । (अट्टारस सागरोवमाइं ठिईं
पण्णत्ता) इस आठमें देवलोक म १८ सागर को स्थिति है । (परलोयस्स आराहगा, सेस
तं चेव) ये परलोक के आराधक होते हैं । अवशिष्ट पूर्वगत समझना चाहिये ॥ सू. ५८ ॥

पत्ता कालमासे कालं किच्चा) छेदन करीने तेओ पोते करेदा पापोनी आदो-
यना करे छे, प्रतिक्रमण करे छे, ममााधने प्राप्त थाय छे, तथा काल अवसरे
काल करीने (उक्कोसेण सहस्सारे कप्पे देवत्ताए उवत्तारो भवन्ति) उद्भूत आठमा
सहस्रार देवदोठमा देवउपथी उत्पन्न थाय छे (तहिं तेसिं गई) त्या तेमनी
गति अताववाभा आवी छे (अट्टारस सागरोवमाइं ठिईं पण्णत्ता) आ आठमा
देवदोठमा १८ सागरनी उद्भूत स्थिति छे (परलोयस्स आराहगा, सेस तं चेव)
ओओ परदोठना आगधउ होय छे आनीतु यधु पूर्वप्रभाणे समल देवु
नेधओ (सू. ५८)

विया भवन्ति, त जहा-दुघरंतरिया तिघरंतरिया सत्तघरंतरिया
उप्पलवेट्टिया घरसमुदाणिया विज्जुयंतरिया उट्टियासमणा, ते

जात्र-सनिवेशेसु 'ग्रामाऽऽ-कर-याव'सनिवेशेषु 'आजीविया भवन्ति' आजीविका =
गोशालकर्मताऽनुवर्तिनो भवन्ति । ते किंस्वरूपा 'अत्राऽऽह- 'तं जहा' तथया-
'दुघरंतरिया' द्विगृहाऽन्तरिका -एकरिभन् गृहे भिक्षा गृहीया अभिप्रहविशेषेण गृहद्वय
मतिक्रम्य पुनर्भिक्षा गृह्णन्ति, न निरंतर न एकान्तर वा भिक्षा गृह्णन्तीति भाव,
'तिघरतरिया' त्रिगृहाऽन्तरिका -तीन् गृहानतिक्रम्य भिक्षा गृह्णन्तीति त्रिगृहाऽन्तरिका,
एव 'सत्तघरंतरिया' सप्तगृहान्तरिका -सप्तगृहान् परित्यज्य भिक्षा गृह्णन्तीति, 'उप्पल-
वेट्टिया' उप्पलवृत्तिका -उत्पलवृत्तानि नियमविशेषात् प्राकृतया भैक्षत्वेन येषां ते उत्पल-
वृत्तिका, 'घरसमुदाणिया' गृहसमुदानिका -गृहसमुदानम्=अनेकगृहे भिक्षा येषां ते
गृहसमुदानिका, 'विज्जुयतरिया' विद्युदन्तरिका -विघरसम्पातेऽन्तर=भिक्षाग्रहणस्यावरोधो
येषां ते विद्युदन्तरिका, विद्युति दीप्यमानाया भिक्षार्थं नाटन्तीति भाव, 'उट्टियासमणा'
उट्टिकाश्रमणा -उट्टिका=मृत्तिकामयो भाजनविशेष, तत्र प्रविष्टा ये श्राम्यन्ति=तपस्यन्ति त

'से जे इमे' इत्यादि ।

(से जे इमे) ये जो (ग्रामा-गर-जात्र-सनिवेशेसु) ग्राम आकर आदि स्थानों
से लेकर सनिवेश तरु मे (आजीविया) गोशालक के मतानुयायी (भवन्ति) होते हैं,
(त जहा) जैसे-(दुघरतरिया) दो घर के अन्तर से जो भिक्षा लेते हैं, (तिघरतरिया)
तीन घर के अन्तर से जो भिक्षा लेते हैं, (सत्तघरतरिया) सात घरों के अन्तर से जो भिक्षा
लेते हैं, (उप्पलवेट्टिया) कमल के नालों की जो भिक्षा करते हैं, (घरसमुदाणिया) बहुत
घरों से जो भिक्षा लेते हैं, (विज्जुयतरिया) बिजली चमकने पर जो भिक्षा नहीं लेते हैं,
(उट्टियासमणा) मिट्टी के किसी गड्ढे वर्तन-नाँद आदि मे प्रविष्ट हो कर जो तपश्चर्या करते

'से जे इमे' इत्यादि

(से जे इमे) तेथो के ने (ग्रामा-गर-जात्र-सनिवेशेसु) ग्राम आकर
आदि स्थानोथी लधने सनिवेश सुधीमा (आजीविया) गोशालकना मतानुयायी
(भवन्ति) होय छे, (तजहा) जेवाके (दुघरतरिया) दो घरने अतर राभी ने
भिक्षा ले छे, (तिघरतरिया) त्रधु घरने अतर राभी ने भिक्षा ले छे (सत्त
घरतरिया) सात घरनेना अतरथी ने भिक्षा ले छे (उप्पलवेट्टिया) कमलना नालनी
ने भिक्षा करे छे, (घरसमुदाणिया) धधुा घरनेथी ने भिक्षा ले छे, (विज्जुय-
तरिया) बिजली चमके त्यारे ने भिक्षा लेता नथी, (उट्टियासमणा) भाटीना

ળં ઇયારૂવેળં વિહારેળં વિહરમાળા વહૂડં વાસાઈં પરિયાયં પાઝ-
ણિત્તા કાલમાસે કાલં કિચ્ચા ઉક્કોસેળં અચ્ચુણ કપ્પે દેવત્તાણ
ઉવવત્તારો ભવંતિ । તહિં તેસિં ગઈં, વાવીસં સાગરોવમાઈં ઠિઈં,
અળારાહગા, સેસં તં ચેવ ॥ સૂ૦ ૫૯ ॥

અપ્પિકાશ્રમણા, 'તે ળં ઇયારૂવેળ વિહારેળ વિહરમાળા' તે સહુ ઇતદ્રૂપેળ વિહારેળ
વિહરન્ત, 'વહૂડ વાસાઈં પરિયાય પાઝણિત્તા' વહુનિ વર્વાગિ પર્યાય પાલકિવા, 'કાલ-
માસે કાલ કિચ્ચા' કાલમાસે કાલ કૃત્ત્વા, 'ઉક્કોસેળ અચ્ચુણ કપ્પે દેવત્તાણ
ઉવવત્તારો ભવંતિ' ઉક્કોસેળ અચ્ચુતે કપ્પે દેવત્તેનોપત્તારો ભવન્તિ, 'તહિં તેસિં ગઈં'
તત્ર તેષા ગતિ, 'વાવીસ સાગરોવમાઈ ઠિઈં' દ્વાવિત્તિ સાગરોવમાનિ સ્થિતિ । 'અળા-
રાહગા' અનારાધકા, 'સેસ તં ચેવ' શેષ તદેવ ॥ સૂ૦ ૫૯ ॥

હૈ, ઇસ પ્રકાર જો અભિપ્રેત વાલે હૈ, (તે ળ ઇયારૂવેળ વિહારેળ વિહરમાળા વહૂડં વાસાઈં
પરિયાય પાઝણિત્તા કાલમાસે કાલ કિચ્ચા ઉક્કોસેળ અચ્ચુણ કપ્પે દેવત્તાણ ઉવ-
વત્તારો ભવંતિ) યે સત્ર ઇસ પ્રકાર વિહાર કરતે હુણ વહુત વર્ષાં તત્ર ઇસ પર્યાય કો પાલ-
કર કાલ અસર મં કાલ કરકે ઉક્કૃત વાગ્હેવં દેવલોક અચ્ચુત કપ્પ મં દેવ કી પર્યાય
સે ઉપન્ન હોતે હૈ । (તહિં તેસિં ગઈં) વહોં પર ઉનકી ગતિ હોતી હૈ । (વાવીસ સાગરોવ-
માઈ ઠિઈં) ૨૨ સાગર કી ડનકી સ્થિતિ વહા હોતી હૈ । (અળારાહગા) યે સત્ર અનારાધક
હોતે હૈ । (સેસ તં ચેવ) અપ્રગિષ્ટ પૂર્વવત્ સમજના ચાહિયે ॥ સૂ ૫૯ ॥

કોઈ મોટા વાસણુ-ઢોઢી આદિમા પ્રવિષ્ટ થઈને જે તપશ્રયાં ઠરે છે, આ પ્રકાર-
ના અભિગ્રહવાળા જે છે, (તે ળ ઇયારૂવેળ વિહારેળ વિહરમાળા વહૂડ વાસાઈ
પરિયાય પાઝણિત્તા કાલમાસે કાલ કિચ્ચા ઉક્કોસેળ અચ્ચુણ કપ્પે દેવત્તાણ ઉવવ-
ત્તારો ભવંતિ) આ બધા આ પ્રકારે વિહાર ઠગતા ઠરતા ઘણા વરસો સુધી
આ પર્યાયને પાળીને કાલ અવચરે કાલ કરીને ઉત્કૃષ્ટ બાગ્મા અચ્ચુત કલ્પમા
દેવની પર્યાયથી ઉત્પન્ન થાય છે (તહિં તેસિં ગઈં) ત્યા તેમની ગતિ થાય છે,
(વાવીસ સાગરોવમાઈ ઠિઈં) બાવીસ સાગરની તેમની સ્થિતિ ત્યા હોય છે
(અળારાહગા) આ બધા અનારાધક હોય છે (સેસ તં ચેવ) બાકીનું બધું પૂર્વ
પ્રમાણે સમજવું જોઈએ (સુ ૫૬)

मूलम्—से जे इमे गामागर जाव सणिवेसेसु पव्वइया समणा भवन्ति, तं जहा—अत्तुक्कासिया परपरिवाइया भूइकम्मिया भुज्जो भुज्जो कोउयकारगा, ते णं एयारूवेणं विहारेणं विहर-

टीका—‘से जे इमे’ इत्यादि। ‘से जे इमे गामागर जाव सणिवेसेसु पव्वइया समणा भवन्ति’ अथ य इमे ग्रामाऽऽकर यावसन्निवेशेषु प्रव्रजिता श्रमणा भवन्ति। तद्वेदान दर्शयितुमाह—‘त जहा’ तथा ‘अत्तुक्कासिया’ आत्मो कर्षिका—आत्मन उक्कर्ष = श्रेष्ठ च सोऽस्येषामित्यात्मो कर्षिका—आत्मगौरवदर्शिका, ‘परपरिवाइया’ परपरिवादिका—परपा परिवादो=निन्दाऽस्ति येषां ते परपरिवादिका—परनिन्दका इत्यर्थः, ‘भूइकम्मिया’ भूतिकर्मिका—भूतिकर्म=ज्वरिताना वाधाप्रशमनाय भस्मदानं तदस्ति येषां ते ‘भूतिकर्मिका’, ‘भुज्जो भुज्जो कोउयकारगा’ भूयोभूय कौतुककारका—भूयोभूय = पुन पुन कौतुक=परपा सौभाग्यादिनिमित्त स्नपनादि तत्कर्तार, यद्वा—कुतूहलकारका। ‘ते ण एयारूवेणं विहारेण विहरमाणा’ ते खन्वेत्तद्रूपेण विहारेण विहरन्त ‘बहूइ

‘से जे इमे गामागर’ इत्यादि।

(से जे इमे) जो ये (गामागर—जाव सनिवेसेसु) ग्राम आकर आदि से लेकर सनिवेश तक के स्थानों में प्रव्रजित सयमी श्रमण है, जैसे—(अत्तुक्कासिया) अपनी आत्मा के गौरव को दिखाने वाले, (परपरिवाइया) स्वमत को अच्छा समझकर दूसरों की निंदा करने वाले, (भूइकम्मिया) भूतिकर्म करने वाले—ज्वरित व्यक्तियों की वाधा को शमन करने के लिये भस्म को देने वाले, (भुज्जो २ कोउयकारगा) पुन पुन अनेक प्रकार के कौतुक करने वाले, (ते ण एयारूवेण विहारेण विहरमाणा) वे सब इस प्रकार के आचार में रहते हुए (बहूइ वासाइ सामणपरियाग पाउणति) बहुत वर्षों तक श्रम-

‘से जे इमे गामागर’ इत्यादि

(से जे इमे) आ के जेओ (गामा-गर-जाव-सनिवेसेसु) गाम आकर आदिथी दधने सनिवेश सुधीना स्थानोभा प्रव्रजित सयमी श्रमण छे, जेवां जे—(अत्तुक्कासिया) पोताना आत्माना गौरवने देखाइवावाणां, (परपरिवाइया) पोताना मतने सारे समझने पीलनी निंदा करवावाणा, (भूइकम्मिया) भूतिकर्म करवावाणा—ज्वरथी पीडाता भाणुसोना दुःख शमन करवा भाटे लसभ आपवावाणा, (भुज्जो भुज्जो कोउयकारगा) वारवार अनेक प्रकारना कौतुक करवावाणा, (ते ण एयारूवेण विहारेण विहरमाणा) तेओ जधा आवा प्रकारना

माणा वहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणंति, पाउणित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा उक्को-
सेणं अच्चुए कप्पे आभिओगिएसु देवेषु देवत्ताए उववत्तारो
भवन्ति, तहिं तेसिं गई, वावीसं सागरोवमाइं ठिई, परलोगस्स
अणाराहगा, सेसं तं चेव ॥ सू० ६० ॥

वासाइ सामण्णपरियागं पाउणति ' वहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयन्ति 'पाउणित्ता'
पालयित्वा ' तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कता ' तस्य स्थानस्य अनालोचितप्रतिक्कान्ता
' कालमासे कालं किच्चा ' कालमासे कालं कृत्वा ' उक्कोसेण अच्चुए कप्पे आभिओ-
गिएसु देवेषु देवत्ताए उववत्तारो भवति ' उत्कर्षेणाच्युते कप्पे आभियोगिकेषु-अभि-
योगे=आज्ञाकर्मणि नियुक्ता अभियोगिकारुतेषु-आज्ञाकारिषु देवेषु देवत्वेनोपपत्तारो भवन्ति,
एतेषा देवव चारित्राराधकत्वेन, आभियोगिकत्व चात्मोत्कर्षादिरयापनात्, ' तहिं तेसिं गई'
तत्र तेषा गति, ' वावीसं सागरोवमाइं ठिई ' द्वाविंशतिं सागरोपमानि विधत्ति, ' परलो-
गस्स अणाराहगा ' परलोकस्याऽनाराधका ' सेसं तं चेव ' शेषं तदेव ॥ सू० ६० ॥

प्यपर्याय को पालते है, (पाउणित्ता) पालकर (तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कता)
उन पापस्थानों की आलोचना एव प्रतिक्कमण क्रिये विना (कालमासे कालं किच्चा)
काल अन्तर में कालकर (उक्कोसेण अच्चुए कप्पे आभिओगिएसु देवेषु देवत्ताए
उववत्तारो भवति) अधिक से अधिक अच्युतदेवलोक के आभियोगिक देवों में-जो इन्द्र आदि
के आज्ञाकारी होते हैं, उत्पन्न हो जाते हैं, । चारित्र की आराधना करने वाले होने से ये
देवपर्याय तो पालते हैं, परन्तु आत्मोत्कर्ष आदि रयापन करने के कारण इन्हे आभियोगिक

आचारमा रडीने (नहूइ वासाइ सामण्णपरियाग पाउणति) धरुा वरसेा सुधी
श्रामण्य-पर्यायने पाणे छे, (पाउणित्ता) पाणीने (तस्स ठाणस्स अणालोइयपडि-
क्कता) ते पापस्थानोनी आलोचना तेभज् प्रतिक्कमण्णु उर्या वगर (कालमासे
कालं किच्चा) काल अवसरमा काल करीने (उक्कोसेण अच्चुए कप्पे आभिओगि-
एसु देवेषु देवत्ताए उववत्तारो भवति) वधारेमा वधारे अच्युत देवलोकना आलियो
गिक्क देवोमा, जे छे आदिना आज्ञाकारी होय छे, उत्पन्न थाय छे आरि-
ननी आराधना करवावाजा होवाथी तेओ देवपर्याय तो पाणे छे, परन्तु आत्मोत्कर्ष

८) मूलम्—से जे इमे गामागर जाव सणिवेसेसु पवडया
समणा भवति, तं जहा—अत्तुक्कासिया परपरिवाडया भूइकम्मिया
भुज्जो भुज्जो कोउयकारगा, ते णं एयारूवेणं विहारेणं विहर-

टीका—‘से जे इमे’ इत्यादि । ‘से जे इमे गामागर जाव सणिवेसेसु
पवडया समणा भवति’ अथ य इमे गामाऽऽकर याव सन्निवेशेषु प्रवृत्ता श्रमणा
भवति । तद्देवान् दर्शयितुमाह—‘त जहा’ तद्यथा ‘अत्तुक्कासिया’ आमो कर्षिका—
आत्मन उर्कपे = श्रेष्ठव सोऽस्त्येषामि यात्मो कर्षिका—आमगौरवदर्शिका, ‘परपरिवाडया’
परपरिवादिक्का—परेषा परिवादो=निन्दाऽस्ति येषा ते परपरिवादिक्का—परनिन्दका इत्यर्थः,
‘भूइकम्मिया’ भूतिकर्मिका—भूतिकर्म=ज्वरिताना वाधाप्रशमनार्थं भस्मदानं तदस्ति येषा
ते भूतिकर्मिका, ‘भुज्जो भुज्जो कोउयकारगा’ भूयोभूय कौतुककारका—भूयोभूय =
पुन पुन कौतुक=परेषा सौभाग्यादिनिमित्त स्नपनादि तत्कर्तार, यद्वा—कुतूहलकारका ।
‘ते ण एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा’ ते स्वन्वेतद्रूपेण विहारेण विहरन्त ‘बहूइं

‘से जे इमे गामागर’ इत्यादि ।

(से जे इमे) जो थे (गामागर—जाव सनिवेसेसु) गाम आकर आदि से लेकर
सनिवेश तक के स्थानों में प्रवृत्त सयमी श्रमण हैं, जैसे—(अत्तुक्कासिया) अपनी आत्मा
के गौरव को दिखाने वाले, (परपरिवाडया) स्वमत को अच्छा समझकर दूसरों की निंदा
करने वाले, (भूइकम्मिया) भूतिकर्म करने वाले—ज्वरित व्यक्तियों की वाधा को शमन
करने के लिये भस्म को देने वाले, (भुज्जो २ कोउयकारगा) पुन पुन अनेक प्रकार के
कौतुक करने वाले, (ते ण एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा) वे सब इस प्रकार के
आचार में रहते हुए (बहूइं चासाइ सामग्गपरियाग पाउणति) बहुत वर्षों तक श्रम-

‘से जे इमे गामागर’ इत्यादि

(से जे इमे) जो थे (गामा—गर—जाव—सनिवेसेसु) गाम आकर
आदिथी लक्ष्मिने सनिवेश सुधीना स्थानोभा प्रवृत्त सयमी श्रमण छे, जेवा
डे—(अत्तुक्कासिया) पोताना आत्माना गौरवने देखाडवावाणा, (परपरिवाडया)
पोताना मतने साशे समणने पीणनी निंदा करवावाणा, (भूइकम्मिया) लूति-
कर्म करवावाणा—ज्वरथी पीडिता भाषुओना दुःख शमन करवा भाटे लक्ष्मि
आपवावाणा, (भुज्जो भुज्जो कोउयकारगा) वारवार अनेक प्रकारना कौतुक करवा
वाणा, (ते ण एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा) तेओ अधा आवा प्रकारनी

૩, સામુચ્છેદ્યા ૪, દોકિરિયા ૫, તેરાસિયા ૬, અવહ્નિયા ૭,

હ્યેવગાદિનો વહુસ્તા—જમાલિમતાનુયાયિન ૧, 'જીવપ્રદેશિયા' જીવપ્રદેશિકા—એક એક ચરમપ્રદેશો જીવ હ્યેવમ્યુગમાજીવપ્રદેશો વિષયે યેષા તે તથા, એકનાડપિ પ્રદેશેન ન્યૂનો જીવો ન ભવન્તિ, અતો યેનૈકેન પ્રદેશેન પૂર્ણ મન્ જીવો ભવન્તિ, સ એવૈક પ્રદેશો જીવો ભવતીત્યેવ-વિધવાદિન તિપ્યગુતાચાર્યમતાનુયાયિન ૨, 'અવ્યક્તિયા' અવ્યક્તિકા—અવ્યક્ત સમસ્ત-મિદ્ર જગત્, સાધ્વાદિવિષયે શ્રમણોડય દેવો વાડ્યમ્ હ્યાદિવિનિક્તપ્રતિભાસોદયાડભાવાત્, તતથાડવ્યક્તમ્=અસ્ફુટ વસ્તુ—ઇતિ મતમસ્તિ યેષા તેડવ્યક્તિકા, અથવા અવિધમાના સાધ્વાદિ-વ્યક્તિરેષામિત્યવ્યક્તિકા, આપાદાચાર્યશિષ્યમતાડન્તર્વર્તિન ૩, 'સામુચ્છેદ્યા' સામુચ્છે-દિકા—પ્રતિક્ષણ નારકાદિભાગાના સમુચ્છેદ=શ્વય ચદન્તીતિ સામુચ્છેદિકા—ક્ષણક્ષયિભાવ-પ્રરૂપકા અશ્વમિત્રમતાનુયાયિન ૪, 'દોકિરિયા' દ્વૈક્રિયા—દ્વૈક્રિયે=ગીતવેદનોષ્ણવેદનાદિ-

હૈ, એક સમય મેં નહીં । યે જમાલિમત કે અનુયાયી હોતે હે ૧ । જીવપ્રદેશિકા કા એસા કહના હૈ કિ જીવ એક ચરમપ્રદેશસ્વરૂપ હી હૈ । જીવ યદિ એક મી પ્રદેશ સે ન્યૂન હો તો વહ જીવમજ્જા પ્રાપ્ત નહીં કર સકતા, અત જિસ એક પ્રદેશ સે પરિપૂર્ણ હોકર વહ જીવ કહલાતા હૈ વહ ઉસ એકપ્રદેશસ્વરૂપ હી હૈ । યે તિપ્યગુત આચાર્ય કે મતાનુયાયી હોતે હૈ ૨ । અવ્યક્તિકા કા યહ કહના હે કિ યહ સમસ્ત જગત સાધુ આદિ કે વિષય મેં સર્વથા અવ્યક્ત હૈ, કયા કિ યે દેવ હ, યે શ્રમણ હે—ઉસ પ્રકાર કા મિત્ર ૨પ્રતિભાસ નહીં હોતા હૈ । ઇસલિલ્ વાસ્તવિક કયા હૈ યહ સત્ર અવ્યક્ત—અસ્ફુટ હૈ । અથવા યે અવ્યક્તિકા જન કિસી કો મી સાધુવ્યક્તિ નહીં માનતે હ । યે આપાદાચાર્ય કે શિષ્યો કે મત કે અન્તર્વર્તી માને જાતે હૈ ૩ । સામુચ્છેદિકા—મતવાદી પ્રત્યેક પદાર્થ કો ક્ષણવિનશ્ચર માનતે હૈ । યે અશ્વમિત્ર કે મત કે અનુયાયી હૈ ૪ । દ્વૈક્રિયા—મતવાદી કી એસી માન્યતા હૈ કિ એક હી સમય મેં

સમયમા નહિ આ જમાલિમતના અનુયાયી હોય છે (૧) જીવપ્રદેશિકા—એમનુ એવું કહેવું છે કે એવ એક ચરમ-પ્રદેશ-સ્વરૂપ જ છે એવ જો એક પ્રદેશથી ન્યૂન (કમ) હોય તો તે એવમજ્જા પ્રાપ્ત કરી શકે નહિ આથી જ એક પ્રદેશથી પરિપૂર્ણ હોય તે એવ કહેવાય છે, તે એક પ્રદેશસ્વરૂપ જ છે આ તિપ્યગુત આચાર્યના મતાનુયાયી હોય છે (૨) અવ્યક્તિકા—એમનુ એમ કહેવું છે કે આ સમસ્ત જગત સાધુ આદિના વિષયમા સર્વથા અવ્યક્ત છે, કેમકે તેઓ દેવ છે, આ શ્રમણ છે, આ પ્રકારનો જુદો જુદો પ્રતિભાસ હોતો નથી એથી વાસ્તવિક શુ છે એ બધું અવ્યક્ત—અસ્ફુટ છે અથવા આ અવ્યક્તિકા જનો કોઈને પણ સાધુ વ્યક્તિ મનતા નથી આ આપાદાચાર્યના શિષ્યોના મતના અન્તર્વર્તી મનાય છે. (૩) સામુચ્છેદિકા—આ પ્રત્યેક પદાર્થને ક્ષણબચ્ચર માને છે, તેઓ અશ્વામિત્રના મતના અનુયાયી છે.

मूलम्—से जे इमे गामागर जाव सण्णिवेसेसु णि-
ण्हगा भवन्ति, तं जहा—बहुरया १, जीवपएसिया २, अव्वत्तिया

टीका—‘से जे इमे’ इत्यादि। ‘से जे इमे गामागर जाव सण्णिवे-
सेसु’ अथ य इमे ग्रामाकर यावत्—मनिवेशेषु ‘णिण्हगा’ निह्वा—निहुवते=अपलपत्ति=
अन्यथा प्ररूपयतीति निह्नुवा=मिथ्या अभिनिवेशान्नोकार्यस्यापलापका इत्यर्थ, यथा
जमात्यादय, ते कतिविधा भवन्ति इत्याकरक्षाय दर्शयन्ति—‘तं जहा’ तद्यथा—‘बहुरया’
बहुरता—गुणु समयेषु रता=आसक्ता—बहुभिरेव समये कार्यं सम्पद्यते, नैकेन समयेन—

जाति के देवों में जन्म धारण करना पड़ता है। (तहिं तेसिं गई) वही पर इनकी गति,
एव (बावीस सागरोवमाइ ठिई) स्थिति २२ सागर की कही गई है। (परलोगस्स
अणाराहगा) ये परलोक के अनाराधक कहे गये हैं। (सेस त चेव) अवशिष्ट पूर्ववत्
समझना चाहिये ॥ सू. ६० ॥

‘से जे इमे गामागर’ इत्यादि।

(से जे इमे) जो ये (गामागर—जाव—सण्णिवेसेसु) ग्राम आकर आदि स्थानों से
छेकर सनिवेश तक कथित स्थानों में रहने वाले (णिण्हगा भवन्ति) जमालि आदि निह्व-
मिथ्यात्व के अभिनिवेश से जिनोक्त अर्थ के अपलापक होते हैं, जैसे—(बहुरया जीव-
पएसिया अव्वत्तिया सामुच्छेइया दोक्किरिया तेरासिया अवद्धिया इच्चेते सत्तपव
यणणिण्हगा) बहुरत—बहुरतों का ऐसा सिद्धान्त है कि कार्य अनेक समयों में ही होता

आदि पथापन करवाना कारणे तेभने आलियोगिक भतिना देवोभा जन्म धारण
करवो पडे छे (तहिं तेसिं गई) त्या तेभनी गति, तेभज (बावीस सागरोवमाइ
ठिई) स्थिति २२ सागरनी कडेली छे (परलोगस्स अणाराहगा) तेओ परलोका
अनाराधक कडेवाय छे (सेस त चेव) आधीनु णधु पूर्व प्रभाणे सभज्जु
जेधओ (सू. ५८)

‘जे इमे गामागर’ इत्यादि

(जे इमे) तेओ के जे (गामागर जाव सण्णिवेसेसु) ग्राम, आकर आदि
स्थानोथी लधने सनिवेश सुधीना कडेला स्थानोभा रडेवावाणा (णिण्हगा भवन्ति)
जभादि जेवा निह्वनप—मिथ्यात्वना आभिनिवेशथी जिन लजवाने कडेला
अर्थना अपलापक होय छे, जेवा के—(बहुरया जीवपएसिया अव्वत्तिया सामु-
च्छेइया दोक्किरिया तेरासिया अवद्धिया इच्चेते सत्तपवयणणिण्हगा) (१) बहुरत-
अहुरतोना ओवो सिद्धात के कार्य अनेक समयोभा ज थाय छे ओके

दिष्टी वहृहि असवभावुभावणाहिं मिच्छताभिनिवेशेहि य अप्पाणं च परं च तदुभयं च वुग्गाहेमाणा वुप्पाएमाणा विहरित्ता वहृइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणंति, पाउणित्ता कालमासे

इत्यं ग्राह- 'मिच्छादिष्टी' मिथ्यादृष्टय -मिथ्या=विपरीता दृष्टि =मत येषां ते तथा, एते सप्त निद्रवका 'वहृहि' बहुभि 'असवभावुभावणाहिं' असद्भावोद्भावनाभिः असद्भावानाम्=अविद्यमानायानाम् उद्भावना =उपेक्षणानि-आरोपणानि, तामि, 'मिच्छ- ताभिनिवेशेहि य' मिथ्यावामिनिवेश-मिथ्याप्रोदये- अभिनिवेशा =स्वमतेस्थापना- ऽऽप्राप्तौ 'अप्पाणं च परं च तदुभय च' आत्मानञ्च परञ्च तदुभयञ्च 'वुग्गाहेमाणा' व्युद्ग्राहयन्त =स्वमते स्थापयन्त, 'वुप्पाएमाणा' व्युपादयन्त =जिनवचनविरुद्धप्ररूपणा- जनितपापमुपार्जयन्त, 'विहरित्ता' चिदय, 'वहृइ वासाइ' वहूनि वर्षाणि, 'सामण्ण- परियागं' श्रामण्यपर्याय 'पाउणंति' पालयन्ति, 'पाउणित्ता' पालयित्वा 'कालमासे

हे। (मिच्छादिष्टी) ये सातो ही निद्रव मिथ्यादृष्टि हे। (वहृहि असवभावुभावणाहिं मिच्छताभिनिवेशेहि य अप्पाणं च परं च तदुभयं च वुग्गाहेमाणा वुप्पाएमाणा) ये अनेक प्रकार के असद्भावों की उद्भावनाओं से-अविद्यमान पदार्थों की कल्पनाओं से, तथा मिथ्यात्वानिक्रम में अभिनिवेशों से-अपने मत को स्थापन करने रूप आप्रहो से अपनी आत्मा को, दूसरों को तथा स्व-पर इन दोनों को अपने मत में स्थापित करते हुए एवं जिनमत के विरुद्ध प्ररूपणा करने से उपज पाप का उपार्जन करते हुए (विहरित्ता) विचरते हैं। इस

विग-उद्गारण आदि माधुना चिद्भेदोनी अपेक्षाये तेजोभा संभानता छे (मिच्छादिष्टी) ये सातेय निद्रव मिथ्यादृष्टि छे (वहृहि असवभावुभावणाहिं मिच्छताभिनिवेशेहि य अप्पाणं च परं च तदुभयं च वुग्गाहेमाणा वुप्पाएमाणा) तेजो अनेक प्रकारना असद्भावोनी उद्भावनाथी-अविद्यमान पदार्थोनी कल्पनाथी-कल्पनाथी तथा मिथ्यात्व आदिभा अलिनिवेशोथी-पोताना भतनु- स्थापन करवा इपी आग्रहोथी, पोताना आत्माने, धीनयोने तथा पोताना उपरात आ धन्नेने पोताना भतमा स्थापित करवा तेम न जिनमतनी- विरुद्ध प्ररूपणा कर्वाथी उत्पन्न थता पापनु उपार्जन करता (विहरित्ता) विचरे- छे आ प्रकारे ते (वहृइ वासाइ सामण्णपरियाय पाउणति) अनेक परसे सुधी आवाय प्रकारना आचार-विचारोमा तन्मय धनीने श्रामण्यपर्यायनु पालन

इच्छेते सत्त प्रवयणणिण्हगा केवलं चरियालिङ्गसमाणा मिच्छ-

स्वरूपे एकस्मिन् समये जीवोऽनुभवति इत्येव वदन्ति ये ते द्वैकिया = क्रियाद्वयानुभव प्ररूपिणो गङ्गाचार्यमतानुयायी ५, 'तेरासिया' त्रैगणिका - त्रीन् राजान् - त्रीन् जीव - नोजीवरूपान् वदन्ति ये ते त्रैगणिका - त्रैगणियाग्यापका इत्यर्थ - रोहगुमाचार्यमतानु सारिण ६, 'अवद्विया' अवद्विका - जीव कर्मणा वदो न भवति, किन्तु कञ्चुकवस्तुष्टो भवति - इत्येव वदन्ति ये तेऽवद्विका, गोष्ठमाहिलमतानुल्गिन ७, उपलक्षण चैतद् - चान्तसम्यक्त्वानामन्येषामपि । 'इच्छेते सत्त प्रवयणणिण्हगा' इच्छेते सत्त प्रव - चननिहवा - प्रवचन = जिनागम निहनुवते = अपन्नन्ति, अन्यथा तदेकदेशस्य चाऽभ्यु - पगमात् ते प्रवचननिहवा, केवल - 'चरियालिङ्गसमाणा' चर्यालिङ्गसमाना - चर्या = भिक्षाटनादिक्रियाया लिङ्गेन = रजोहरणादिना च समाना = साधुतुल्या, ते पुन कीदृगा ?

एक जीव दो विरुद्ध क्रियाओं का भी अनुभव करता है। शीतवेदना एवं उष्णवेदना ये दो परस्पर में एक समय में विरुद्ध हैं। इहे जीव एक समय में भोगता है। ये गंगाचार्य के मत के अनुयायी होते हैं ५। त्रैराशिक मतवाले का ऐसा कहना है कि जीवों की तीन राशियाँ हैं - (१) जीव, (२) अजीव एवं (३) नोजीव। ये रोहगुप्त के मत के अनुयायी हैं ६। अवद्विक लोग-ऐसी प्ररूपणा करते हैं कि जीव और कर्म का वध नहीं होता है। सिर्फ जीव के साथ कर्म कचुक की तरह स्पृष्ट रहा करते हैं। ये गोष्ठमाहिल के मत को मानने वाले होते हैं ७। यह उपलक्षणस्वरूप है, इससे सम्यक्त्वरहित क्रिया करने वालों का भी ग्रहण हुआ है। इस प्रकार ये सात प्रवचन-जिनागम के निहव है। (केवल चरियालिङ्गसमाणा) मात्रा चर्या-भिक्षा याचना आदि क्रिया तथा लिङ्गेन-रजोहरणादि साधु के चिह्नों की अपेक्षा इनमें समानता

(५) 'द्वैकिय-ओमनी ओपी मान्यता छे डे ओऽव्य सम्यभा ओक एव जे विरुद्ध क्रियाओना पणु अनुभव करे छे शीतवेदना-तेमन् उष्णवेदना आ जे परस्परभा ओक सम्यभा विरुद्ध छे तेमने एव ओक सम्यभा लोगवे छे तेओ गंगा-चार्यना मतना अनुयायी होय छे (६) त्रैराशिक-तेओ ओम उडे छे के एवोनी उ राशियो छे, (१) एव (२) अएव तेमन् (३) नोएव' तेओ रोहगुप्तना मतना अनुयायी छे (६) अवद्विक-तेओ ओम प्ररूपणा करे छे के एव अने 'उमने' वध थतो नथी मात्र एवनी साथे उर्म कचुकनी पेटे स्पृष्ट गडेला (बिटी रडेला-दागी रडेला) छे आ गोष्ठमाहिलना मतने मानवा वाणा होय छे आ उपलक्षणस्वरूप छे, भाटे सम्यक्त्वरहित क्रिया करवा वाणानु पणु अरुणु थाय छे आ प्रकारे आ सात प्रवचन-जिनागमना निहव छे (केवल चरियालिङ्गसमाणा) मात्र चर्या-भिक्षा याचना आदि क्रिया तथा

ભવંતિ, તં જહા—અપ્પારંભા અપ્પપરિગ્ગહા ધમ્મિયા ધમ્માણુયા
ધમ્મિટ્ઠા ધમ્મકલ્લાઈ ધમ્મપ્પલોઈ ધમ્મપલજ્જાના ધમ્મસમુદાયારા

‘તં જહા’ તથા—‘અપ્પારંભા’ અપ્પારમ્મા—અપ આરમ્મ = કૃષ્યાદિના પૃથિવ્યાદિ-
જીવોપમદોં યેપા તે તથા, ‘અપ્પપરિગ્ગહા’ અપ્પપરિગ્ગહા અપ્પ—પરિગ્ગહ = ધનધાન્યાદિ-
સ્વીકારરૂપો યેપા તે તથા, ‘ધમ્મિયા’ ધાર્મિકા—ધર્મેણ=પ્રાણાતિષ્ઠાતાદિવિરમણરૂપેણ
ચરંતિ યે તે ધાર્મિકા, ‘ધમ્માણુયા’ ધર્માણુયા—ધર્મમનુગચ્છન્તિ યે તે ધર્માણુયા, કુલ
હથમ્ અત્રાસ્સ—‘ધમ્મિટ્ઠા’ ધર્મેણ—ધર્મ એવણે=વલ્લભો યેપા તે ધર્મેણ । અથવા—
ધર્મેણ = ધર્મોસ્તિ યેપા તે ધર્મેણ, ત એવાતિશયયુક્તા ધર્મેણ । ‘ધમ્મકલ્લાઈ’ ધર્મ-
ત્યાતય—ધર્માત્ રયાતિ = પ્રસિદ્ધિયેપા તે ધર્મત્યાતય । અથવા ધર્માસ્સહ્યાયિન—ધર્મ-
મારયાન્તિ=મત્ર્યેમ્ય પ્રતિપાદયન્તીતિ ધર્મારયાયિન । ‘ધમ્મપ્પલોઈ’ ધર્મપ્રલોકિન ।

ધમ્મિયા ધમ્માણુયા) અપ્પ આરમ્મી—જો પૃથિવ્યાદિક્ષુ જીવોં કે ઉપમર્દન વાલે કૃષ્યાદિક્ષુ
રૂપ આરમ્મ કો અપ્પ કરતે હૈ વે, અપ્પપરિગ્ગહા અથાત્ જિનકે ધનધાન્યાદિક્ષુ કે સ્વીકારરૂપ મમ-
ત્વમાવ અપ્પ હોતા હૈ વે, ધાર્મિક—પ્રાણાતિષ્ઠાતાદિક્ષુ વિરમણરૂપ ધર્મ સે જો યુક્ત હોતે હૈ વે,
તથા—ધર્માણુયા—ધર્મપદ્ધતિ કે અનુસાર જો ચલતે હૈ વે, (ધમ્મિટ્ઠા ધમ્મકલ્લાઈ ધમ્મપ્પલોઈ
ધમ્મપલજ્જાના ધમ્મસમુદાયારા) ધર્મેણ—ધર્મ હો જિહં પ્રિય હૈ વે, અથવા ધર્મેણ—ધર્મ
કે અતિગ્રય સે જો યુક્ત હૈ વે, ધર્મત્યાતિ ધર્મ સે જિનકી રયાતિ હુઈ હૈ વે, અથવા—ધર્મત્યાયી-
મત્ર્યજનોં કે ળિયે જો શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મ કા કથન કરને વાલે હોતે હૈ વે, ધર્મપ્રલોકી
ધર્મ કો જો ઉપાદેયરૂપ સે માનતે હૈ વે, ધર્મપ્રવ્રજ્જન—ધર્મ કે સેવન કરને સે જો અધિક

ગામ, આકર તેમજ સન્નિવેશોમા મનુષ્ય રહે છે, (તં જહા) જેવા કે (અપ્પારમ્મા
અપ્પપરિગ્ગહા ધમ્મિયા ધમ્માણુયા) અપ્પ આરમ્મી—જે પૃથિવી આદિક જીવોને
હુ.પ દેવાવાળા કૃષિ આદિક રૂપ આરમ્મને અદ્ય (આદ્યા) કરે છે તેઓ,
અદ્ય પરિગ્રહી—જેના ધન ધાન્ય આદિકના સ્વીકાર રૂપ મમત્વભાવ અદ્ય
હોય છે તેઓ, ધાર્મિક—પ્રાણાતિષ્ઠાતાદિકના વિરમણરૂપ ધર્મથી જે યુક્ત
હોય છે તેઓ, તથા ધર્માણુયા—ધર્મપદ્ધતિને અનુસરીને જે ચાલે છે તેઓ,
(ધમ્મિટ્ઠા ધમ્મકલ્લાઈ, ધમ્મપ્પલોઈ, ધમ્મપલજ્જાના ધમ્મસમુદાયારા) ધર્મેણ—ધર્મ
જેમને ઈષ્ટ—પ્રિય છે તેઓ, અથવા ધર્મેણ—ધર્મના અતિશયથી જેઓ યુક્ત છે
તેઓ, ધર્મત્યાતિ—ધર્મથી જેઓની ત્યાતિ (પ્રસિદ્ધિ) થઈ છે તેઓ, અથવા
ધર્મત્યાયી—લભ્ય જોને માટે જે શ્રુતચારિત્ર રૂપ ધર્મનું કથન કરવાવાળા
હોય છે તેઓ, ધર્મપ્રલોકી—ધર્મને જે ઉપાદેયરૂપથી માને છે તેઓ, ધર્મ-

कालं किञ्चा उक्कोसेण उवरिमेसु गेवेज्जेसु देवत्ताए उववत्तारो भवन्ति । तहिं तेसिं गई, एकतीस सागरोवमाइं ठिई, परलोगस्स अणाराहगा, सेसं तं चेव ॥ सू० ६१ ॥

मूलम्—से जे इमे गामागार जाव सण्णिवेसेसु मणुया

कालं किञ्चा' कालमासे कालं कृत्वा 'उक्कोसेण' उरुपेण 'उवरिमेसु गेवेज्जेसु' उपरित्तेषु प्रैवेयकेषु 'देवत्ताए उववत्तारो भवति' देवत्तेनोपपत्तारो भवन्ति । 'तहिं तेसिं गई' तत्र तेषां गतिः, 'एकतीस सागरोवमाइं ठिई' एकत्रिंशत्सागरोपमानि स्थितिः, 'परलोगस्स अणाराहगा' परलोकत्यागानाराधका, 'सेसं तं चेव' ज्ञेयं तदेव ॥ सू० ६१ ॥
टीका—'से जे इमे' इत्यादि । 'से जे इमे' अथ य इमे 'गामा-गर-जाव-सण्णिवेसेसु' ग्रामाऽऽ-कर-यावत्सन्निवेशेषु 'मणुया भवति' मनुजा भवन्ति,

इस प्रकार ये (बहुईं वासाईं सामणपरियाय पाउणति) अनेक वर्षों तक इसी प्रकार के आचार-विचारों में तन्मय बने हुए श्रामण्यपर्याय का पालन करते रहते हैं । (पाउणित्ता कालमासे काल किञ्चा उक्कोसेण उवरिमेसु गेवेज्जेसु देवत्ताए उववत्तारो भवन्ति) पालन कर काल अवसर काल करके अधिक से अधिक उपरिम प्रैवेयकों में देव की पर्याय से ऊपल होते हैं । (तहिं तेसिं गई, एकतीस सागरोवमाइं ठिई, परलोगस्स अणाराहगा, सेसं तं चेव) वहीं पर उनकी गति एव ३१ सागर प्रमाण स्थिति होती है । ये परलोक के अनाराधक कहे गये हैं । अग्रलिखित सब पूर्ववत् समझना चाहिये ॥ सू० ६१ ॥

'से जे इमे' इत्यादि ।

(से जे इमे) जो ये (गामा-गर-जाव-सण्णिवेसेसु मणुया भवति) ग्राम आकर यावत् सन्निवेशों में मनुष्य रहते हैं, (त जहा) जैसे—(अप्पारमा अप्परिमाहा

ध्थां करे छे (पाउणित्ता कालमासे काल किञ्चा उक्कोसेण उवरिमेसु गेवेज्जेसु देवत्ताए उववत्तारो भवति) पाणीने काल अवसररे काल करीने वधारेमा वधादे उपरिम प्रैवेयकोमा देवती पर्यायथी उत्पन्न थाय छे (तहिं तेसिं गई एकतीस सागरोवमाइं ठिई परलोगस्स अणाराहगा सेसं तं चेव) त्या तेमनी गति, तेमञ्ज उई सागर प्रमणु स्थिति डोय छे तेञ्जा परलोकाकना अनाराधक उडेवाय छे पाणीनुं अणु पूर्व प्रमाणे समणुनुं जेधञ्जे (सू० ६०)

'से जे इमे' इत्यादि

(से जे इमे) तेञ्जा देवे (गामागार जाव सण्णिवेसेसु मणुया भवति)

माणाओ मायाओ लोहाओ पेजाओ दोसाओ कलहाओ अन्म-
कराणाओ पेसुण्णाओ परपरिवायाओ अरडरईओ मायामोसाओ
मिच्छादंसणसल्लाओ पडिविरया जावजीवाए, एगच्चाओ अपडि-
विरया, एगच्चाओ आरंभसमारंभाओ पडिविरया जावजीवाए,

याव परिग्रहात्, यावच्छन्देन—मृपावात् अदत्तादान—मैथुनानि बोद्धव्यानि । ' एगच्चाओ ' एक-
स्मात्=स्थूलत् 'कोहाओ' क्रोधात्, 'माणाओ' मानात्, 'मायाओ' मायाया, 'लोहाओ'
लोभात्, 'पेजाओ' प्रेयस, 'दोसाए' द्वेषात् 'कलहाओ' कलहात् 'अन्मकरा-
णाओ' अन्यास्यानात्=पैशुन्यात्, 'परपरिवायाओ' परपरिवादात् 'अरडरईओ'
अरतिरतिभ्याम् 'मिच्छादंसणसल्लाओ' मिथ्यादर्शनजन्यात् 'पडिविरया' प्रतिविरता =
भावतो विरता 'जावजीवाए' यावज्जीव=जीवनपर्यन्तम्, 'एगच्चाओ अपडिविरया'
एकस्मात्—सूक्ष्मात् अप्रतिविरता 'एगच्चाओ आरंभसमारंभाओ पडिविरया जावजीवाए'
एगच्चाओ अपडिविरया' एकस्मादारम्भसमारम्भात्प्रतिविरता यावज्जीवमेकस्मादप्रति-

पडिग्गहाओ) तथा इसी तरह स्थूल मृपावाद, स्थूल अदत्तादान, स्थूल मैथुन एवं स्थूल
परिग्रह से निरक्त रहते हैं वे, (एगच्चाओ कोहाओ माणाओ मायाओ लोहाओ पेजाओ
दोसाओ कलहाओ अन्मकराणाओ पेसुण्णाओ परपरिवायाओ अरडरईओ माया-
मोसाओ मिच्छादंसणसल्लाओ पडिविरया जावजीवाए) इसी प्रकार स्थूल क्रोध, मान,
माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अन्यायान, पैशुन्य, परपरिवाद, अरति, रति, मायामृपा, एवं
मिथ्यादर्शनजन्य से जीवनपर्यन्त प्रतिविरत रहा करते हैं, (एगच्चाओ अपडिविरया)
किन्तु सूक्ष्म क्रोधादिको से प्रतिविरत नहीं रहते हैं, (एगच्चाओ आरंभसमारंभाओ पडि-

पडिग्गहाओ) तथा ऐसी ही शीते स्थूल मृपावाद, स्थूल अदत्तादान, स्थूल
मैथुन, तेमञ्च स्थूल परिग्रहथी से विरक्त रहे छे तेओ, (एगच्चाओ कोहाओ
माणाओ मायाओ लोहाओ पेजाओ दोसाओ कलहाओ अन्मकराणाओ पेसुण्णाओ
परपरिवायाओ अरडरईओ मायामोसाओ मिच्छादंसणसल्लाओ पडिविरया जावजी-
वाए) ऐञ्च प्रकारे स्थूल क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अन्या-
यान, पैशुन्य, परपरिवाद, अरति, रति, मायामृपा, तेमञ्च मिथ्यादर्शन-
जन्यथी जीवनपर्यन्त प्रतिविरत रह्या करे छे, (एगच्चाओ अपडिविरया)
परंतु सूक्ष्म क्रोध आदिथी प्रतिविरत रह्येता नथी. (एगच्चाओ आरंभ-

धम्मणेणं चैव वित्तिं कप्पेमाणा सुसीला सुव्वया सुप्पडियाणंदा
साहूहिं एगच्चाओ पाणाइवायाओ पडिविरया जावजीवाए, एग-
च्चाओ अपडिविरया, एवं जाव पडिग्गहाओ, एगच्चाओ कोहांओ

‘धम्मपलज्जणा’ धर्मप्ररञ्जना—धर्मं प्ररञ्जति=आसज्जन्ति—परायणा मज्जति ये ते धर्म
प्ररञ्जना । ‘धम्मसमुदायारा’ धर्मसमुदायारा—धर्मं समुदायारं=सदाचारो येषां ते
धर्मसमुदायारा । ‘धम्मणेण चैव वित्तिं कप्पेमाणा’ धर्मणेणं वृत्तिं कप्पयन्त—धार्मिक-
जीविकया निर्वाहन्त, ‘सुसीला’ सुसीला=ओभनान्नाचारवत्त ‘सुव्वया’ सुव्वता=ओभनव्रतवन्त
‘सुप्पडियाणदा’ सुप्रत्यानन्दा—सुप्पु प्रत्यानन्द=चित्ताऽऽहृदो येषां ते तथा, ‘साहूहिं’
साधुम्य=साधुसमीपात्—साध्वतिके प्रत्याख्याय ‘एगच्चाओ’ एकस्मात्=स्थूलरूपात्
न तु सर्वस्मात् ‘पाणाइवायाओ’ प्राणातिपातात्=परप्राणव्यपरोषणत्, ‘पडिविरया’
प्रतिविरता=निवृत्ता, ‘जावजीवाए’ यावजीव—जीवनपर्यन्तमित्यर्थ, ‘एगच्चाओ अपडि-
विरया’ एकस्मात्=सूक्ष्मरूपात् अप्रतिविरता=अनिवृत्ता । ‘एव जावपरिग्गहाओ’ एवं

अनुराग सपन्न होते हैं वे, धर्मसमुदाचार—धर्म ही जिनका उत्तम आचार हैं वे, (धम्मणेण चैव
चित्तिं कप्पेमाणा) तथा जो धर्म से ही अपनी जीविका चलाते हैं वे, (सुसीला सुव्वया
सुप्पडियाणदा) शोभन आचार जिनका है वे, सुव्वत—निरतिचार व्रतों के जो पालन करने वाले
हैं वे, सुप्रत्यानन्द—जिनका चित्त सदा अच्छी तरह से आनन्दसपन्न रहा करता है वे, तथा जो
(साहूहिं एगच्चाओ) साधु के समीप प्रत्याख्यान लेकर केवल एक (पाणाइवायाओ) स्थूल
प्राणातिपातरूप से (जावजीवाए पडिविरया) जीवनपर्यन्त प्रतिविरत—निवृत्त रहते हैं
(एगच्चाओ अपडिविरया) परतु सूक्ष्मरूप प्राणातिपात से विरक्त नहीं रहते हैं वे, (एव जाव

प्ररञ्जन—धर्मतु सेवन करवाभा ने अधिक अनुरागस पन्न होय छे तेओ,
धर्मसमुदायार—धर्मने नेभनो उत्तम आचार छे तेओ, (धम्मणेण चैव वित्तिं
कप्पेमाणा) तथा ने धर्मथी ने पोतानु एवन चलावे छे तेओ, (सुसीला
सुव्वया सुप्पडियाणदा) शोभन आचार नेना छे तेओ, सुव्वत—निरतिचार
व्रतोतु नेओ पालन करवावाण छे तेओ, सुप्रत्यानन्द—नेभतु चित्त उभेशा
सारी रीते आनन्दस पन्न रह्या करे छे तेओ, तथा नेओ (साहूहिं एगच्चाओ)
साधुनी पासै प्रत्याख्यान लधने देवल ओठ (पाणाइवायाओ) स्थूलप्राणातिपातरूप
पापथी (जावजीवाए पडिविरया) एवनपर्यन्त प्रतिविरत—निवृत्त रहे छे, (एगच्चाओ
अपडिविरया) परतु सूक्ष्म प्राणातिपातथी विरक्त रहेता नथी तेओ, (एव जाव

बंध-परिकिलेसाओ पडिविरया जावजीवाए, एगच्चाओ अपडि-
विरया, एगच्चाओ ष्हाण-महण-वण्णग-विलेवण-सह-फरिस-
रस-रूव-गंध-मल्ला-लंकाराओ पडिविरया जावजीवाए, एगच्चाओ

-वध-वृत्त-परिक्लेशात्-तत्र कुट्टनम्=छेदनम्, -पिट्टन=वलादेरिव मुद्गरादिना हननम्,
तर्जनम्= 'जास्यसि रे जाल्म !' एतद्रूप भर्त्सन, ताडन=चपेटादिना हननम्, वध =
प्राणव्यपरोपण, बन्ध =रज्जुपाशादिना बन्धनम्, परिक्लेशो=बाधोत्पादन तेषा समाहार
तस्मात् 'पडिविरया' प्रतिविरता = निवृत्ता 'जावजीवाए' यावजीवम्,
'एगच्चाओ अपडिविरया' एकस्मात् अप्रतिविरता = अनिवृत्ता । 'एगच्चाओ
ष्हाण-महण-वण्णग-विलेवण-सह-फरिस-रस -रूव-गंध-मल्ला-लंकाराओ
पडिविरया जावजीवाए' एकस्मात् स्नान-मर्दन-वर्णक-विलेपन-शब्द-स्पर्श-रस-

कोट्टण-पिट्टण-तज्जण-तालग-वह-वध-परिकिलेसाओ पडिविरया जावजीवाए)
कोई २ ऐसे है जो कुट्टन-छेदन, पिट्टन-पीटना-वलादिक का जिस प्रकार मुद्गरादिक
से कूटना होता है उसी प्रकार मुद्गर-मूसल आदि से पीटना-कूटना, तर्जन-खोटे
बचनों द्वारा भर्त्सना करना, ताडन-चपेटा-थप्पड-आदि मारना, वध-प्राणव्यपरोपण करना,
बन्ध-रज्जुपाश आदि से किसी को बाधना, एव परिक्लेश-किसी को बाधा आदि उत्पन्न
करना, इन सब कार्यों से यावजीवन प्रतिविरत है, (एगच्चाओ अपडिविरया) कोई २
ऐसे है जो इन क्रियाओं से प्रतिविरत नहीं है । (एगच्चाओ ष्हाण-महण-वण्णग-विले-
वण-सह-फरिस-रस-रूव-गंध-मल्ला-लंकाराओ पडिविरया जावजीवाओ)

जावजावाए) कोई कोई जेवा छे के जे कुट्टन-छेदन, पिट्टन-पीटवु-वलादिने जे
प्रकारे मुद्गर आदिथी कूटे छे ते प्रकारे मुद्गर (घोडा) मूसल (साजेला) आदिथी
पीटवा-कूटवा, तर्जन-जोटा भराण बचनेो द्वारा भर्त्सना करवी, ताडन-तमाथा
के थप्पड आदि मारवु, वध-प्राणव्यपरोपण करवु (मारी नाणवु), बध-
हारडाना पाश आदिथी कोइने बाधवु, तेमज परिक्लेश-कोइने बाधा (हु भ)
आदि पडोथाउवु आ बाधा कारीथी एवनपर्यन्त प्रतिविरत छे (एगच्चाओ
अपडिविरया) कोई कोई जेवा छे के जे आ क्रियाजोथी प्रतिविरत नथी (एग-
च्चाओ ष्हाण-महण-वण्णग-विलेवण-सह-फरिस-रस-रूव-गंध-मल्ला-लंकाराओ

एगच्चाओ अपडिविरया, एगच्चाओ करणकारावणाओ पडिविरया
जावजीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया, एगच्चाओ पयणपया-
वणाओ पडिविरया जावजीवाए, एगच्चाओ पयणपयावणाओ
अपडिविरया, एगच्चाओ कोट्टण-पिट्टण-तज्जण-तालण-वह-

विरता 'एगच्चाओ करणकारावणाओ' एकरमा करणकारणात् = स्वयमनुग्रह-करण,
प्रेरणया परहस्तात्कारणम्, तयो समाहार, तस्मात् 'पडिविरया' प्रतिविरता, 'जाव-
जीवाए' यावजीवम्, 'एगच्चाओ अपडिविरया' एकरमादप्रतिविरता = राजामाजादिभि
कारणै । 'एगच्चाओ पयणपयावणाओ पडिविरया जावजीवाए' एकरमा पचनपा-
चनात्-पचनं=स्वहस्तात्पाककरण, पाचनं=परहारेण, तस्मात्प्रतिविरता यावजीव, 'एगच्चाओ
पयणपयावणाओ अपडिविरया' एकरमात् पचनपाचनादप्रतिविरता । 'एगच्चाओ कोट्टण-
पिट्टण-तज्जण-तालण-वह-वध-परिकिलेसाओ' एकरमाकुट्टन-पिट्टन-तर्जन-ताडन

विरया जावजीवाए) ऐसे ही वे स्थूल आरभ-समारंभ से ही जीवनपर्यंत विरक्त रहते
हैं, सूक्ष्म आरभसमारभ से नहीं। (एगच्चाओ करणकारावणाओ पडिविरया) कोई
ऐसे है जो केवल स्वयं करने से एव दूसरों से करामे से जीवनपर्यन्त विरक्त रहते है,
(एगच्चाओ अपडिविरया) कोई ऐसे है जो राजाकी आज्ञा-आदि के कारण इनसे प्रतिविरत
नहीं हैं, (एगच्चाओ पयण-पयावणाओ पडिविरया जावजीवाए) कोई २ ऐसे हैं जो
पचन-पाचन क्रिया से जीवन पर्यन्त विरक्त है। (एगच्चाओ पयणपयावणाओ अपडि-
विरया) कोई २ ऐसे हैं जो इन पचन-पाचनादि क्रियाओ से विरक्त नहीं है। (एगच्चाओ

समारंभओ पडिविरया जावजीवाए) तेमञ्च तेञ्चो स्थूल आरभ-समारंभली
पञ्च एवनपर्यन्त विरक्त रहते छे, सूक्ष्म आरभ-समारंभली विरक्त नथी
रहते। (एगच्चाओ करणकारावणाओ पडिविरया) डोई ओवा छे के के करवा-
कराववाथी एवनपर्यन्त विरक्त होय छे (एगच्चाओ अपडिविरया) डोई ओवा छे के के
राजनी आज्ञा आदिना करणतेनाथी प्रतिविरत होय नथी, (एगच्चाओ पयणपयाव-
णाओ पडिविरया जावजीवाए) डोई डोई ओवा छे के के पचन-पाचन क्रियाथी
एवनपर्यन्त विरक्त छे (एगच्चाओ पयणपयावणाओ अपडिविरया) डोई
डोई ओवा छे के के आ पचन-पाचन आदि क्रियाओथी विरक्त नथी
(एगच्चाओ कोट्टण-पिट्टण-तज्जण-तालण-वह-वध-परिकिलेसाओ पडिविरया

मूलम्—तं जहा—समणोवासगा भवन्ति, अभिगय-
जीवाजीवा उवलद्धपुण्णपावा आसव—सवर—निज्जर—किरिया—
अहिगरण—बंध—मोक्ख—कुसला असहेज्जा देवा—सुर—नाग—

टीका—ये पूर्व सामान्येन कथितास्त एव विशेषेण कथ्यन्ते—‘तं जहा’ तद्यथा—ते मनुजा, ‘समणोवासगा भवन्ति’ श्रमणोपासका = साधुसेवका—श्रावका भवन्ति, ते क्रीदृशा सन्ति’ अत्राऽऽह—‘अभिगयजीवाजीवा’ अभिगतजीवाजीवा—अभिगता— यथावस्थितस्वरूपेण ज्ञाता जीमा अजीवाश्च यैस्ते तथा, जीयाजीवतत्त्वज्ञानवन्त इत्यर्थ, ‘उवलद्धपुण्णपावा’ उपलब्धपुण्यपापा—उपलब्धे—यथावस्थितस्वरूपेण विज्ञाते पुण्यपापे यैस्ते तथा, तत्त्वतो विज्ञातपुण्यपापस्वरूपा इत्यर्थ, ‘आसव—सवर—निज्जर—किरिया—अहिगरण—बंध—मोक्ख—कुसला’ आसव—सवर—निर्जरा—क्रिया—धिकरण—बंध—मोक्ष— कुसला—तत्रासव—आसवति—प्रविगति अष्टविध कर्मसलिल येन आवमसरसि स आसव =

जीवनपर्यंत प्रतिविरत हैं, तथा कितनक ऐसे है जो (एगच्चाओ अपडिविरया) इनसे प्रतिविरत नहीं हैं ॥ सू० ६२ ॥

‘तं जहा समणोवासगा’ इत्यादि ।

(तं जहा) इसी प्रकार (समणोवासगा भवन्ति) अन्य श्रमणोपासक होते हैं, जो कि (अभिगयजीवाजीवा) जीव और अजीव के यथार्थ स्वरूप के ज्ञाता होते हैं, (उवलद्धपुण्णपावा) पुण्य एव पाप का यथावस्थित स्वरूप जिन्होंने अच्छी तरह जान लिया है, (आसव—सवर—निज्जर—किरिया—अहिगरण—बंध—मोक्ख—कुसला) आसव, सवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बंध, मोक्ष इनमें हेय कौन २ है और उपादेय कौन २ है इस प्रकार हेय और उपादेय के ज्ञान से जिनका भाव परिपक्व हो चुका है ।

प्रतिविरत छे, तथा डेटलाक ओवा छे के ने (एगच्चाओ अपडिविरया) तेनाथी प्रतिविरत नथी. (सू. ६२)

‘तं जहा समणोवासगा’ इत्यादि

(तं जहा) ओव रीते (समणोवासगा भवन्ति) ने श्रमणोपासक होय छे, (अभिगयजीवाजीवा) ने एव अने अणवना यथार्थ स्वरूपना ज्ञाता होय छे, (उवलद्धपुण्णपावा) पुण्य तेमव पापनु यथावस्थित स्वरूप नेओओे सारी रीते समण लीपिछु छे, (आसव—सवर—निज्जर—किरिया—अहिगरण—बंध—मोक्ख—कुसला) आसव, सवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बंध, मोक्ष, तेमा हेय

અપંડિવિરયા, જે યાવળે તહપ્પગારા સાવજ્જજોગોવહિયા
કમ્મંતા પરપાણપરિયાવણકરા કજ્જંતિ તઓ વિ ઇગ્ગચ્ચાઓ
પંડિવિરયા જાવ્વજીવાણ, ઇગ્ગચ્ચાઓ અપંડિવિરયા ॥ સૂ. ૬૨ ॥

રૂપ-ગન્ધ-માન્યાઽ-લક્ષણપ્રતિવિરતા યાવજ્જીવમ્, 'ઇગ્ગચ્ચાઓ અપંડિવિરયા' એક
સ્માદપ્રતિવિરતા -તત્ર વર્ણક =અપ્પરાગ, અન્યત્ સ્પટ્ટમ્ । તથા-'જે યાવળે તહપ્પગારા'
થે યાવન્તસ્તથાપ્રકારા 'સાવજ્જજોગોવહિયા' સાવચયોગોપધિકા -સાવચયોગા =સાવચયો-
ગયુક્તાથ તે ઔપધિકા =માયાપ્રયોજનાથેતિ તથા, 'પર-પાણ-પરિયાવણકરા' પરપાણ-
રિતાપનકરા 'કમ્મંતા' કર્મંતા =કુપ્યાદિવ્યાપારાશા 'કજ્જંતિ' ક્રિયન્તે, 'તઓ વિ
ઇગ્ગચ્ચાઓ પંડિવિરયા' તતોઽપિ એકસ્માત્ પ્રતિવિરતા =પ્રતિનિવૃત્તા, 'ઇગ્ગચ્ચાઓ અપંડિ-
વિરયા' એકસ્માત્ અપ્રતિવિરતા =અનિવૃત્તા સન્તિ ॥ સૂ. ૬૨ ॥

કોઈ ૨ એસે હૈં જો જીવનપર્યન્ત સ્નાન સે, મર્દન સે, વિલેપન સે, શબ્દ, રૂપ, મંથ, રસ,
સ્પર્શ इन इन्द्रियों के भोगों से, माला एव अलंकार आदि से निवृत्त हैं । (इगच्छाओ
अपण्डिविरया) कोई २ ऐसे भी हैं जो इनसे बिलकुल ही प्रतिविरत नहीं हैं । (जे याव-
ण्णे तहप्पगारा सावज्जजोगोवहिया कम्मता परपाणपरियावणकरा कज्जति) इसी
प्रकार केँ और भी जितने सावधयोगोपधिक अर्थात्-सावधयोगयुक्त और मायाकषायज्व-
तथा-दूसरों के प्राणों को परिताप पहुँचाने वाले जो कृप्यादि व्यापार हैं, (तओ वि)
उनसे भी कितनेक ऐसे मनुष्य हैं जो (इगच्छाओ पण्डिविरया जावज्जीवाण) एकान्त

પંડિવિરયા જાવજ્જીવાઓ) ઠોઈ ઠોઈ એવા હોય છે કે જે જીવનપર્યન્ત સ્નાનથી,
મર્દનથી, અગરાગથી, વિલેપનથી, શબ્દ-સ્પર્શ-રૂપ-ગન્ધ-રસ એ ઇન્દ્રિયોના
ભોગોથી અને માળા તેમજ અલંકાર આદિથી નિવૃત્ત છે (ઇગ્ગચ્ચાઓ
અપંડિવિરયા) ઠોઈ ઠોઈ એવા પણ છે કે જે તેનાથી બિલકુલ જ પ્રતિવિરત
હોતા નથી (જે યાવળે તહપ્પગારા સાવજ્જજોગોવહિયા કમ્મતા પરપાણ-
પરિયાવણકરા કજ્જતિ) એજ પ્રકારે બીજા પણ જેટલા સાવચયોગોપધિક
એટલે સાવચયોગયુક્ત અને માયાકષાયજનિત તથા બીજા જીવોના પ્રાણોને
પરિતાપ પહોંચાડનાર જે કૃપિ આદિ વ્યાપાર છે, (તઓ વિ) તેનાથી પણ બીજા
જેટલાક એવા મનુષ્ય છે કે જે (ઇગ્ગચ્ચાઓ પંડિવિરયા જાવજ્જીવાણ) જીવનપર્યન્ત

सकलकर्मक्षये सति जीवस्य कर्मयोगापादितरूपरहितस्य साधपर्यवसानम् अत्र्यावाधमव-
स्थानम्, उक्त च-

नीसेसरुम्मविगमो मुक्त्वो जीवस्स सुद्धरूपस्स ।

साइणपज्जवसाण अब्वाजाह अवत्थाण ॥ १ ॥

जया-निश्चेषकर्मनिगमो मोक्षो जीवस्य शुद्धरूपस्य ।

साधपर्यवसानम् अत्र्यावाधम् अवस्थानम् ॥ इति ॥

तेषां द्वन्द्व, तत्र कुशला, आसवादीनां हेयोपादेयतास्वरूपज्ञानिन इत्यर्थ, 'असहेज्जा' असाहाय्या-अविद्यमान साहाय्य=देवादिसाहाय्य स्वस्थैव धर्मजनितसाम-
र्थ्यतिगयात् येषां ते तथा, यद्वा-स्वयं कृतं कर्म स्वयमेव भोक्तव्यमिति ज्ञात्वा मनोदीर्घ-
ल्याभावात् परसाहाय्यानपेक्षा इत्यर्थ । 'देवा-सुर-नाग-जकख-रकखस-किंनर-
किंपुरिस-गरुल-गधव्व-महोरगाइएहिं देवगणेहिं' देवा-सुर-नाग-यक्ष-राक्षस-

अयन्त-आत्यन्तिक-क्षय का नाम मोक्ष है । ममस्त कर्मों के क्षय होने पर उनके सयोग
से आपादित मूर्तित्व का जीव ही पर्यवसान जीव में हो जाता है, इससे अमूर्तिस्वरूप
स्वभाव का प्राचुर्य होने से उसका अत्र्यावाधरूप से अवस्थान हो जाता है । कहा भी है-
समस्त कर्मों का निगम ही मोक्ष है और वही जीव का शुद्ध स्वरूप है, इस स्वरूप के प्राप्त होते ही
जीव का अवस्थान अत्र्यावाधरूप से आत्मा में हो जाता है । जो "असाहाय्या" हैं अर्थात्
धर्मजनित सामर्थ्य के अतिगय से देवादिकों की सहायता की रूप में भी इच्छा नही रखते
हैं, अथवा अपने द्वारा कृत शुभाशुभ कर्म आत्मा स्वयं ही भोग करता है दूसरों की सहा-
यता इसमें कार्यकारी नहीं हो सकती-इस प्रकार की मानसिक दृढता के कारण जो
दूसरों का सहायता की थोड़ी सी भी पर्वाह नहीं करते हैं । (देवा-सुर-नाग-जकख-

समस्त कर्मोंना क्षय थावाथी तेमना न योगथी आपादित मूर्तित्वनु तस्त न
पर्यवसानं एवमा थर्धं नयं छे तेथी अमूर्तित्वरूपं पोताना स्वभावतु प्राचुर्यं
थावाथी तेतु अत्र्यावाधरूपथी अवस्थानं थर्धं नयं छे उद्धुं पणुं छे-समस्त
कर्मोंतु विगमं एव मोक्षं छे, अने एव एतनु शुद्धं स्वरूपं छे आ स्व-
रूपने प्राप्तं थता न एतनु अवस्थानं आत्र्यावाधं रूपथी आत्माभा थर्धं
नयं छे 'असाहाय्या' छे अर्थात् धर्मथी उत्पन्नं थता आमर्थ्यना अतिशयथी
देव आदिदेवानी सहायतानी स्वरूपमा पणुं धरुंछा राभता नथी अथवा पोताना
द्वारा धरायैला शुभं अशुभं कर्म आत्मा पोते न लोकावे छे, भीतनी सहा-
यता एवमा काम आवी थरुती नथी आ प्रणरनी मानसिक दृढताना धरुंछे
ने भीतनी सहायतानी नरा पणुं परवाडं उरता नथी (देवा-सुर-नाग-
जकख-रकखस-किंनर-किंपुरिस-गरुल-गधव्व-महोरगाइएहिं देवगणेहिं निमाथाओ

मिथ्याचरितप्रमादरूपाययोगरूप, सवरः-मनियते=निगृह्यते आस्रवकर्म येन परिणामेन स सवर, समितिगुमिप्रभृतिगिरा ममरसि आगमकर्मगच्छिना रथगनमियर्थे, निज्या-निर्जरण=कर्मणा जीवप्रदेशेभ्य परिशटन-विशरण, सा च-देशत कर्मशयरूपा, क्रिय=कामिस्यादिका, अधिकरणम्-अधिक्रियत नरकगनियोग्यता प्रायते आमाज्जेनेयधिकरणम्-द्रव्यतो गन्त्रीयन्त्रादि, भावत क्रोधादिकम्, वध-जीवस्य कर्मपुद्गलसम्बन्ध, मोक्ष-

जिस प्रकार नौका में छिद्रों द्वारा जल का प्रवेश होता रहता है इसी प्रकार इस आमारूप सरोवर में जिसके द्वारा अष्टविध कर्मरूप जल का आगमन होता है उसका नाम आस्रव है। मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय ष्व योग के भेद से यह आस्रव अनेक प्रकार का है। छिद्रों के बंद करने से जिस प्रकार नौका में पानी का आना रुक जाता है उसी प्रकार जिन परिणामों से आते हुए कर्म रुक जाते हैं उन परिणामों का नाम सवर है। गुप्ति, समिति एव परीषह आदि के भेद से यह सवर अनेक प्रकार का बतलाया गया है। जीव-प्रदेश से कर्मों के एकदेश का नाश होना इसका नाम निर्जरा है। काय आदि सब्धी व्यापारों का नाम क्रिया है। नरकगति में जाने की योग्यता जीव जिसके द्वारा प्राप्त करता है वह अधिकरण है। द्रव्य और भाव के भेद से यह दो प्रकार का है। यहाँ पर भाव अधिकरण का कथन है, अतः वह क्रोधादिक कषायरूप जानना चाहिये। जीव का एव कर्मपुद्गलों का परस्पर में एकक्षेत्रावगाहरूप सवध का नाम वध है। समस्त कर्मों के

शुं छे अने उपादेय शुं छे आवी रीते डेय अने उपादेयना-ज्ञानथी जेना लाव परिषकव थछ गया डेय छे जेवी रीते नौकाभा छिद्रो द्वारा ज्जानो प्रवेश थथा करे छे तेवी ज रीते आ आत्माइष सरोवरभा जेना द्वारा आठ प्रकारना कर्मइपी जलनु आगमन थाय छे तेनु नाम आस्रव छे मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय तेमज योगना लेहथी आ आस्रव अनेक प्रकारना थाय छे छिद्रोने भध करवाथी जेवी रीते नौकाभा पाणीनु आवनु रोकार्थ जय छे तेवी ज रीते जे परिष्ठाभोथी आवनारा कर्म रोकार्थ जय जेवा परिष्ठाभोनु नाम सवर छे गुप्ति, समिति तेमज परीषह आदिना लेहथी आ सवर अनेक प्रकारना भताववाभा आव्या छे एव-प्रदेशथी कर्मोना ओक देश नष्ट थाय तेनु नाम निर्जरा छे काय आदि सभधी व्यापारोनु नाम क्रिया छे नरकगतिभा ज्वानी योग्यता एव जेना द्वारा प्राप्त करे छे ते अधिकरण छे द्रव्य तथा लाव ना लेहथी ते जे प्रकारना छे अही लाव-अधिकरणनु कथन छे तेथी ते डोष आदिक कषायइष जलनु जेथजे एवने तेमज कर्मपुद्गलोना परस्परभा ओकक्षेत्रावगाहइष सवध छे, तेनु नाम वध छे. समस्त कर्मोना अत्यत-आत्यतिक क्षयनु नाम मोक्ष छे

पुच्छियद्वा अभिगयद्वा विणिच्छियद्वा अट्टि-मिज-पेमा-पुराग-
रत्ता, अयमाउसो। निगंथे पावयणे अट्टे, अयं परमट्टे, सेसे अणट्टे,
ऊसियफलिहा अवंगुयट्टुवारा चियत्तं-तेउर-घरप्पवेसा व्हूहि

यद्वा' पृथार्था—सद्विषयस्य प्रवचनान्, 'अभिगयद्वा' अभिगतार्था—पृथार्थस्याभि-
गमात् 'विणिच्छियद्वा' विनिश्चितार्था—पदार्थानां विनिश्चयात्, 'अट्टि-मिज-पेमा-
पुराग-रत्ता' अस्मिन्मज्जाप्रेमानुरागरक्ता अस्वीनि='हृद्दी' इति प्रसिद्धानि, मज्जा-अस्मा
मन्वगतो धातुविशेष, तासु अस्मिन्मज्जासु प्रवचनस्य प्रेमानुरागेण=प्रेमरूपेणानुरागेण रक्ता ये
ते तथा, ते श्रावका पुत्रादीन् मनोव्य वदन्ति 'अयमाउसो' इत्यादि। इदं हे आयुष्मन्।
'निगंथे पावयणे' नैर्ग्रन्थ प्रवचनम्, 'अट्टे' अर्थ=मोक्षस्य कारणम्, अनएव-'अय परमट्टे'
इद परमार्थ=मारमूत, 'सेसे अणट्टे' शेषमनर्थम्-शेष=नैर्ग्रन्थप्रवचनभिन्न कुप्रवचन
धनान्यपुत्रकलत्रादिक च अनर्थ=व्यर्थम्, 'ऊसियफलिहा' उच्छ्रितस्फटिका—उच्छ्रि-
तम्=उन्नत स्फटिक=स्फटिकमिव चित्तं येषां ते तथा, स्फटिकवर्जिर्मलद्वया इत्यर्थः,

हैं, पृथार्थ हे, अभिगतार्थ हैं, (विणिच्छियद्वा) विनिश्चितार्थ हैं, (अट्टि-मिज-पेमा-पुराग-
रत्ता) प्रवचन के प्रति अनुराग जिनकी नग-नग में भरा हुआ है। ऐसे ये श्रावक जन
वातालाप के प्रसंग में अपने २ पुत्रादिकां को अथवा अन्यजनों को इस प्रकार कह कर
समझाते-बुझाते हैं—(अयमाउसो ! निगंथे पावयणे अट्टे अय परमट्टे सेसे अणट्टे)
हे आयुष्मन् ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही मोक्ष का कारण है इसलिए यही परमार्थमूत है।
इससे भिन्न जो कुप्रवचन है—मिथ्यादृष्टियां द्वारा उपदिष्ट प्रवचन है वह, तथा धन, धान्य,
पुत्र एव कलत्रादि, अनर्थ के कारण है। इन व्यक्तियों का (ऊसियफलिहा) हृदय स्फटिक

नेमनी अस हिंघ श्रदा छे, ने लंघार्थ छे, गृहीतार्थ छे, पृथार्थ छे, अलि
गतार्थ छे, (विणिच्छियद्वा) विनिश्चितार्थ छे, (अट्टि-मिज-पेमा-पुराग-रत्ता)
नेनी नमे-नममा प्रवचन प्रति अनुराग लरेलो होय छे जेवा जे श्रावक
जन वातालापना प्रसंगमा चेतपोताना पुत्रादिजोने अथवा पीन लोकोने
आ प्रकारे कहीने सभजये-शुआवे छे—(अयमाउसो ! निगंथे पावयणे अट्टे, अय
परमट्टे, सेसे अणट्टे) हे आयुष्मन् ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचन न मोक्षनु कारण
छे माटे जेन परमार्थमूत छे तेनाथी पीन ने कार प्रवचन छे ते मिथ्या-
दृष्टिओ द्वारा उपदेशायेलो प्रवचन छे, ते, तथा धन, धान्य पुत्र तेमन कलत्र
आदि, अनर्थना कारण छे आ व्यक्तियोना हृदय (ऊसियफलिहा) स्फटिक

जम्बू-रखस-किन्नर-किंपुरिस-गरुड-गंधर्व-महोरगाइर्हि
 देवगणेहिं निग्गंथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जा, निग्गंथे
 पावयणे णिस्संकिया णिकंखिया निव्वितिगिच्छा लद्धट्टा गहियट्टा

किन्नर-किंपुरूप-गरुड-गंधर्व-महोरगादिकै -ता देवा =ऽमातिका असुरा =असुरकुमारा,
 नागा =नागकुमारा, असुरा नागा इमे उभये भग्नपतय, यथा राक्षसा किन्नरा
 किंपुरुषा -एते चचारो व्यन्तरविशेषा, गरुडा - गरुडचक्रा - सुपर्णकुमारा भवनपति-
 विशेषा, गंधर्वा महोरगाश्च व्यन्तरविशेषा, तत्प्रभृतिभि देवगणै 'निग्गंथाओ पाव-
 यणाओ' निर्धेन्धात् प्रवचनात् 'अणइक्कमणिज्जा' अनतिक्रमणीया =अचालनीया -
 निर्धेन्धप्रवचनात् तान् चालयितु देवादयोऽप्यसमर्था इति भाव । 'निग्गंथे पावयणे'
 निर्धेन्धे प्रवचने 'निस्संकिया' नि गद्विता =शङ्कारहिता, 'निकंखिया' निष्काङ्क्षिता =
 परमतानभिलाषिण, 'निव्वितिगिच्छा' निर्विचिकित्सा - फल प्रति सदेहवर्जिता,
 'लद्धट्टा' लब्धार्था -अर्थश्रवणात्, 'गहियट्टा' गृहीतार्था -अर्थान्धारणात्, 'पुच्छि-

रखस-किन्नर-किंपुरिस-गरुड-गंधर्व-महोरगाइर्हि देवगणेहिं निग्गंथाओ पाव-
 यणाओ अणइक्कमणिज्जा) देव, असुरकुमार, नागकुमार, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष,
 गरुड, सुपर्णकुमार, गंधर्व एव महोरग इत्यादिक देवगणों द्वारा भी जो निर्धेन्ध प्रवचन से
 एक बाल भी विचलित नहीं किये जा सकते है, (निग्गंथे पावयणे णिस्संकिया णिक-
 खिया निव्वितिगिच्छा लद्धट्टा गहियट्टा पुच्छियट्टा अभिगयट्टा) निर्धेन्धप्रवचन में
 जिनकी श्रद्धा नि शक्ति है, निष्काक्षित है-परमत की ओर जिनके हृदय में जाने की
 अथवा उसे सराहने आदि की थोड़ी सी भी अभिलाषा नहीं है, निर्विचिकित्सागुण से जो
 भरपूर हैं, फल के प्रति जिनकी श्रद्धा सदेह से सर्वथा रिक्त है, जो लब्धार्थ है, गृहीतार्थ

पावयणाओ अणइक्कमणिज्जा) देव, असुरकुमार, नागकुमार, यक्ष, राक्षस,
 किन्नर, किंपुरुष, गरुड, सुपर्णकुमार, गंधर्व तेभञ्ज महोरग इत्यादिक देव-
 गणेषु द्वारा पद्ये ने निर्धेन्ध प्रवचन वडे अेक वाण नेटला पद्ये विचलित
 करी शकता नथी, (निग्गंथे पावयणे णिस्संकिया, णिकखिया निव्वितिगिच्छा
 लद्धट्टा गहियट्टा पुच्छियट्टा अभिगयट्टा) निर्धेन्ध प्रवचनमा नेभनी श्रद्धा नि
 शक्ति छे, काक्षा वगरना छे-परमतनी तरइ ज्वानी नेभना हृदयमा अलि-
 लाषा जरा पद्ये नथी, अथवा परमतनी प्रथसा आदि करवानी किञ्चित
 पद्ये अलिलाषा नथी, निर्विचिकित्सा-शुद्धथी ने भरपूर छे इणना तरइ

पुच्छियद्वा अभिगयद्वा विणिच्छियद्वा अट्टि-मिंज-पेमा-पुराग-
रत्ता, अयमाउसो! निगंथे पावयणे अट्टे, अयं परमट्टे, सेसे अणट्टे,
ऊसियफलिहा अंवंगुयदुवारा चियत्तं-तेउर-घरप्पवेसा व्हूहि

यद्वा 'पृष्ठार्था'—सद्विधार्थस्य प्रश्नकरणात्, 'अभिगयद्वा' अभिगतार्था—पृष्ठार्थस्याभि-
गमात् 'विणिच्छियद्वा' विनिश्चिताया—पदार्थानां विनिश्चयात्, 'अट्टि-मिंज-पेमा-
पुराग-रत्ता' अस्थिमज्जाप्रेमानुरागरत्ता अस्थीनि='हड्डी' इति प्रसिद्धानि, मज्जा-अस्था
मध्यगतो धातुविशेष, तासु अस्थिमज्जासु प्रवचनस्य प्रेमानुरागेण=प्रेमरूपेणानुरागेण रत्ता ये
ते तथा, ते श्रावका पुरादीन् मनोध्य वदन्ति 'अयमाउसो' इत्यादि। इदं हे आयुष्मन् !
'निगंथे पावयणे' नैर्ग्रन्थ प्रवचनम्, 'अट्टे' अर्थ =मोक्षस्य कारणम्, अतएव—'अय परमट्टे'
इद परमार्थ =मारभूत, 'सेसे अणट्टे' शेषमनर्थम्—शेष=नैर्ग्रन्थप्रवचनमिन्न कुप्रवचन
धनान्यपुत्रकलत्रादिक च अनर्थ=अर्थम्, 'ऊसियफलिहा' उच्छ्रितस्फटिका—उच्छ्रि-
तम्=उज्जत स्फटिक=स्फटिकमिव चित्तं येषां ते तथा, स्फटिकनिर्मलहृदया इत्यर्थः,

हैं, पृष्ठार्थ है, अभिगतार्थ है, (विणिच्छियद्वा) विनिश्चितार्थ हैं, (अट्टि-मिंज-पेमा-पुराग-
रत्ता) प्रवचन के प्रति अनुराग जिनकी नञ-नञ में भरा हुआ है। ऐसे ये श्रावक जन
वार्तालाप के प्रसंग में अपने २ पुरादिकों को अथवा अन्यजनों को इस प्रकार कह कर
समझाते-बुझाते हैं—(अयमाउसो ! निगंथे पावयणे अट्टे अय परमट्टे सेसे अणट्टे)
ह आयुष्मन् ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही मोक्ष का कारण है इसलिए यही परमार्थभूत है।
इससे भिन्न जो कुप्रवचन है—मिथ्यादृष्टियां द्वारा उपदिष्ट प्रवचन है वह, तथा धन, धान्य,
पुत्र एव कलत्रादि, अनर्थ के कारण है। इन व्यक्तियों का (ऊसियफलिहा) हृदय स्फटिक

लेमनी असद्विध श्रद्धा छे, ले लब्धार्थ छे, गृहीतार्थ छे, पृष्ठार्थ छे, अलि-
गतार्थ छे, (विणिच्छियद्वा) विनिश्चितार्थ छे, (अट्टि-मिंज-पेमा-पुराग-रत्ता)
लेनी नसे-नमना प्रवचन प्रति अनुगम लरेले होय छे जेवा जे श्रावक
जन वार्तालापना प्रसंगमा चेतपेतानाना पुरादिकेने अथवा पीण लोकेने
आ प्रकारे कहीने समन्तवे-भुआये छे—(अयमाउसो ! निगंथे पावयणे अट्टे, अय
परमट्टे, सेसे अणट्टे) छे आयुष्मन् ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचन व मोक्षनु कारण
छे भाटे जे परमार्थभूत छे तेनाथी पीण ले कार्य प्रवचन छे ते मिथ्या-
दृष्टियो द्वारा उपदेशायेला प्रवचन छे, ते, तथा धन, धान्य, पुत्र तेमज कसन
आदि, अनर्थना कारण छे आ व्यक्तिओना हृदय (ऊसियफलिहा) स्फटिक

सील-व्यय-गुण-वेरमण-पच्चम्खाण-पोसहो-ववासेहिं चउद-
सद्वमुद्विट्टपुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेत्ता

‘अग्रगुयदुवारा’ अपावृत्तद्वारा = दानार्थमर्थिभ्य उदघाटितद्वारा इत्यर्थं, ‘अवगुय’ इति
देशीय शब्द, ‘चियत्ततेउरघरप्पवेसा’ त्यक्तान्त पुरगृहप्रवेशा -रयक्त =मीया प्रदत्त,
अन्त पुरे वा गृहे वा प्रवेशो येषा ते तथा, अतिधार्मिकतया सर्वत्रानागच्छनीया इत्यर्थ । ते
कथमृता विहरन्ती याह-‘चउदस-ट्टमु-द्विट्ट-पुण्णमासिणीसु’ चतुर्दश्यष्टम्युद्विट्टपौर्ण-
मासीसु ‘वहूहिं’ बहुभि, ‘सील-व्यय-गुण-वेरमण-पच्चम्खाण-पोसहो-ववासेहिं’
शील-व्रत-गुण-विरमण-प्रत्यारयान-पोषधे-पवासं -अरय ध्यारयाऽत्रैवोत्तगर्धे त्रिषष्टितमे
सूत्रेऽप्रलोकनीया । चतुर्दश्यष्टम्युद्विट्टपौर्णमासीसु-इह-‘उद्विट्टा’ इत्यनेन अमावास्या गृह्यते ।

मणि के समान निर्मल रहा करता है । (अग्रगुयदुवारा) इनके घर के दरवाजे सदा दान-
के लिये खुले रहा करते हैं, (चियत्त-तेउर-घर-प्पवेसा) राजा क अत पुर में भी इनको
आने-जाने की कोई भी रोक-टोक नहीं होती है । (वहूहिं सील-व्यय-गुण-वेरमण-
पच्चम्खाण-पोसहोववासेहिं चउदसद्वमुद्विट्टपुण्णमासिणीसु) ‘शील’ शब्द से सामा-
यिक, देशावकाशिक, पोषध, अतिथिमविभाग ये चार लिये जाते है । ‘व्रत’ से पाच अणु-
व्रत, गुण से तीन गुणव्रत लिये जाते हैं । विरमण-भित्थात्व से निवृत्त होना, प्रत्यारयान-पर्वदिनों
में निषिद्धवस्तुका त्याग करना । पोषधोपवास-(पोष धत्ते) इस व्युत्पत्ति से धर्म की वृद्धि को
जो करता है वह पोषध कहलाता है, अर्थात् चतुर्दशी, अमावास्या, अष्टमी, पूर्णिमा, ये पोषध
कहलाते है, इन पर्वदिनों मे आहार, शरीरसत्कार, अप्रह्वचर्य, और सावधव्यापार इन चारों

भण्डिना जेवा निर्भण रह्या करे छे, (अवगुयदुवारा) तेभना धरना दरवाजा
सदा दान भाटे उघाडा रह्या करे छे (चियत्ततेउरघरप्पवेसा) राजाना अत-
पुरभा पणु तेभने आववा-ज्वानी डोछ पणु लतनी रोक-टोक थती नथी,
(वहूहिं सील-व्यय-गुण-वेरमण-पच्चम्खाण-पोसहोववासेहिं चउदसद्वमुद्विट्टपुण्ण-
मासिणीसु) ‘शील’ शब्दथी सामायिक, देशावकाशिक, पोषध, अतिथिस वि-
भाग, जे चार समजवाना छे ‘व्रत’थी पाच अणुव्रत, ‘शुभ्र’थी त्रणु शुभ्र-
व्रत लेवाना छे, विरमण-भित्थात्वथी निवृत्त थपु, प्रत्यारयान-पर्वना द्वि-
सोभा निषिद्ध वस्तुने त्याग करेवे पोषधोपवास-(पोष धत्ते) आ व्युत्पत्तिथी
धर्मनी वृद्धिने जे करे छे ते पोषध कहेवाय छे, अर्थात् चतुर्दशी, अमा-
वास्या, अष्टमी, पूर्णिमा, जे पोषध कहेवाय छे आ द्विसोभा-पर्वद्विसोभा
आडार, शरीरसत्कार, अप्रह्वचर्य अने सावधव्यापार जे चारियेने त्याग

समणे निग्गथे फासुएसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं
 वत्थ-पडिग्गह-कंवल-पायपुंछणेणं ओसहभेसज्जेणं पाडिहारिण
 य पीठ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणा विहरंति, विह-

चतुर्दश्यादिषु तत्रिषु 'पडिपुण्ण' प्रतिपूर्ण 'पोसह' पोषध, 'सम्म' सम्यक् 'अणु-
 पालेत्ता' अनुपाल्य 'समणे निग्गथे' श्रमणान निर्धन्यान् 'फासुएसणिज्जेण'
 प्रासुकैपणीयेन, 'असण-पाण-खाइम-साइमेण' अशन-पान-खाद्य-स्वाधेन, 'वत्थ-
 पडिग्गह-कंवल-पायपुंछणेण' वलपतद्ग्रहकम्बलपादप्रोञ्चनेन, तत्र पतद्ग्रह=पान,
 पादप्रोञ्चन=रजोहरणम्, 'ओसहभेसज्जेण' औपधभैषज्येन 'पाडिहारिण य पीठ-
 फलग-सेज्जा-सथारएण' प्रतिहारिकेण च पीठफलकम् शय्यास्तारकेण-तत्र पीठम्=
 आसन, फलकम्=अवष्टम्भनफलक, शय्या=वसति, यद्वा बृहत्स्तारक, रस्तारक=लघुतर,
 एषा समाहारद्वन्द्व, ततस्तेन, 'पडिलाभेमाणा' प्रतिलम्भयन्त =ददत, 'विहरति'

का त्याग करना पोषधोपवास है, इस तरह बारह प्रकार के श्रावक धर्म को (सम्म अणु-
 पालेत्ता) अच्छी तरह पालन करते हैं। (समणे-निग्गथे) श्रमणनिर्धनों को (फासुए-
 सणिज्जेण असण-पाण-खाइम-साइमेण) प्रासुक-एपणीय अशन, पान, खाद्य तथा
 स्वाद्य ऐसे चारों प्रकार के आहारों से (वत्थ-परिग्गह-कंवल-पायपुंछणेण ओसहभेस-
 ज्जेण) एव वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, औषध, (पाडिहारिण य पीठफलगसेज्जा-
 सथारएण पडिलाभेमाणा विहरति) एव प्रातिहारिक (पडिहारा) पीठ (वाजोट) फलक
 (पाट) शय्या (वसति) और सस्तारक आदि से, मुनियों को प्रतिलाभित करते हुए विचरते
 हैं, अर्थात् उन्हें इन पूर्वोक्त वस्तुओं को आवश्यकतानुसार प्रदान करते हैं, (विहरित्ता भत्त

करोते। ते पोषधोपवास छे आ रीते पार प्रकारना श्रावक धर्मने (सम्म
 अणुपालेत्ता) सारी रीते पालन करे छे (समणे निग्गथे) श्रमणु निर्धथेने
 (फासुएसणिज्जेण असण-पाण-खाइम-साइमेण) प्रासुक-एपणीय अशन, पान,
 भाद्य तथा स्वाद्य ज्योवा चारेय प्रकारना आडाइरथी, (वत्थ-परिग्गह-कंवल-पाय-
 पुंछणेण ओसहभेसज्जेण) तेभव वस्त्र, पात्र, कंवल, रजोहरण, औषध, क्षेधव,
 (पाडिहारिण य पीठ-फलग-सेज्जा-सथारएण पडिलाभेमाणा विहरति) तेभव
 प्रातिहारिक (पडिहारा) पीठ (पान्नेठ) इलक-पाट, शय्या (वसति) अने सस्ता
 रक आदिथी मुनियोने प्रतिलाभिन करता विचरे छे, अर्थात् तेज्यो आ उपर
 कडेली वस्तुज्योने आवश्यकता प्रमाणे प्रदान करे छे (विहरित्ता भत्त पच्चक्खति)

शील-व्रय-गुण-वेरमण-पच्चख्वाण-पोसहो-ववासेहिं चउद-
सट्टमुद्धिद्वपुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेत्ता

‘अगुयदुवारा’ अपावृतद्वारा =दानार्थमयि-य उदपाटितद्वारा इत्यर्थ, ‘अवगुय’ इति
देशीय शब्द, ‘चियत्ततेउरघरप्पवेसा’ त्यक्तान्त पुग्गहप्रवेशा -त्यक्त =भीया प्रदत्त,
अन्त पुरे वा गृहे वा प्रवेशो येषा ते तथा, अतिधार्मिकतया सर्वत्रानागच्छनीया इत्यर्थ । ते
कथमूता विहरन्ती याह-‘चउदस-दुमु-द्धिद्व-पुण्णमासिणीसु’ चतुर्दश्यष्टमुद्धिद्वपौर्ण-
मासीसु ‘वहूहिं’ बहुभि, ‘शील-व्रय-गुण-वेरमण-पच्चख्वाण-पोसहो-ववासेहिं’
शील-व्रत-गुण-विरमण-प्रत्याख्यान-पोषधो-पवासै -अरय व्याख्याऽत्रैगेत्तरार्धे त्रिपटितमे
सूत्रेऽवलोकनीया । चतुर्दश्यष्टमुद्धिद्वपौर्णमासीसु-इह-‘उद्धिद्व’ इत्यन्त अमावास्या गृह्यते ।

मणि के समान निर्मल रहा करता है । (अगुयदुवारा) उनके घर के दरवाजे सदा दान-
के लिये खुले रहा करते हैं, (चियत्त-तेउर-घर-प्पवेसा) राजा के अंत पुर में भी इनको
आने-जाने की कोई भी रोक-टोक नहीं होनी है । (वहूहिं शील-व्रय-गुण-वेरमण-
पच्चख्वाण-पोसहोववासेहिं चउदसदुद्धिद्वपुण्णमासिणीसु) ‘शील’ शब्द से सामा-
यिक, देशावकाशिक, पोषध, अतिथिसविभाग ये चार लिये जाते हैं । ‘व्रत’ से पाच अणु-
व्रत, गुण से तीन गुणव्रत लिये जाते हैं । विरमण-भिव्याव से निवृत्त होना, प्रत्याख्यान-पर्वदिनों
में निषिद्धवस्तुका त्याग करना । पोषधोपवास-(पोष धत्ते) इस व्युत्पत्ति से धर्म की वृद्धि को
जो करता है वह पोषध कहलाता है, अर्थात् चतुर्दशी, अमावास्या, अष्टमी, पूर्णिमा, ये पोषध
कहलाते हैं, इन पर्वदिनों में आहार, शरीरसंस्कार, अप्रज्ञाचर्य, और सावधव्यापार इन चारों

भङ्गिना जेवा निर्भण रक्खा करे छे, (अवगुयदुवारा) तेभना घरना दरवाण
सदा दान भाटे उघाडा रक्खा करे छे (चियत्ततेउरघरप्पवेसा) रावणना अत-
पुरभा पण्ण तेभने आपववा-ज्वानी ढोध पण्ण नतनी रोक-टोड थती नथी,
(वहूहिं शील-व्रय-गुण-वेरमण-पच्चख्वाण-पोसहोववासेहिं चउदसदुद्धिद्वपुण्ण-
मासिणीसु) ‘शील’ शब्दथी सामायिक, देशावकाशिक, पोषध, अतिथिस वि-
भाग, जे चार सभज्वाना छे ‘व्रत’थी पाच अणुव्रत, ‘शुभ्र’थी त्रणु शुभ्र-
व्रत जेवाना छे, विरमण-भिव्यावथी निवृत्त थपु, प्रत्याख्यान-पर्वना द्वि-
सोभा निषिद्ध वस्तुना त्याग करेवा. पोषधोपवास-(पोष धत्ते) आ व्युत्पत्तिथी
धर्मनी वृद्धिने जे करे छे ते पोषध छडेवाय छे, अर्थात् चतुर्दशी, अमा-
वास्या, अष्टमी, पूर्णिमा, जे पोषध छडेवाय छे आ द्विसोभा-पर्वद्विसोभा
आडार, शरीरसंस्कार, अप्रज्ञाचर्य अने सावधव्यापार जे चारियेना त्याग

મૂલમ્—સે જે ઇમે ગામાગર જાવ સણિવેસેસુ મણુયા
ભવંતિ, તં જહા-અણારંભા અપરિગ્ગહા ધમ્મિયા જાવ કપ્પેમાણા

ટીકા—‘સે જે ઇમે’ ઇત્યાદિ । ‘સે જે ઇમે ગામાગર જાવ સણિવેસેસુ’
અથ ય ઇમે પ્રામાસકર યાવત્ સન્નિવેશેષુ ‘મણુયા ભવંતિ’ મનુજા ભવન્તિ, ‘તં જહા’
તપથા—‘અણારંભા અપરિગ્ગહા ધમ્મિયા જાવ કપ્પેમાણા’ અનારમ્બા અપરિગ્ગહા
ધાર્મિકા યાવત્ કલ્પયન્ત, અત્ર—યાવચ્છન્દેન ‘ધમ્માણુયા, ધમ્મિદ્દા, ધમ્મકરવાર્દ, ધમ્મ-
પ્પલોર્દ, ધમ્મપલ્લજ્જણા, ધમ્મસમુદાયારા, ધમ્મેણં ચેવ વિક્કિં’ ધર્માનુયા ધર્મિદ્દા
ધર્માર્યાયિનો ધર્મપ્રલોકિનો ધર્મપ્રરજ્જના ધર્મસમુદાચારા ધર્મણેવ વૃત્તિમ્—ઇતિ પાઠો

મેં સ્કૃષ્ટ વાર્દસ સાગરોપમ સ્થિતિ કહી ગયી છે । અવગિષ્ટ પહેલે કે સમાન સમક્ષના
ચાહિયે ॥ સુ. ૬૩ ॥

‘સે જે ઇમે’ ઇત્યાદિ ।

(સે જે ઇમે) જો યે (ગામાગર જાવ સણિવેસેસુ) ગ્રામ આકર આદિ નિવાસ
સ્થાનો સે લેકર સન્નિવેશ તક કે નિવાસસ્થાનોં મેં (મણુયા ભવંતિ) મનુષ્ય નિવાસ કરતે
હેં ઓર ઉનમેં જો કઈ એક મનુષ્ય (સાહુ) સાધુ હોતે હેં વે (અણારંભા) આરમ સે રહિત
હોતે હેં, (અપરિગ્ગહા) પરિગ્રહવર્જિત હોતે હેં, (ધમ્મિયા) ધાર્મિક હોતે હેં, (જાવ ધમ્મે-
ણેવ વિક્કિં કપ્પેમાણા) એવ નિર્દોષ ભિક્ષા સે અપની સયમયાત્રા કા નિર્વાહ કરતે હેં ।
યહોં ‘જાવ’ શબ્દ સે “ધમ્માણુયા, ધમ્મિદ્દા, ધમ્મકરવાર્દ, ધમ્મપ્પલોર્દ, ધમ્મપલ્લ-
જ્જણા, ધમ્મસમુદાયારા, ધમ્મેણ ચેવ વિક્કિં” ઇસ પાઠ કા ગ્રહણ હુઆ હેં । ઇસનોં

બાવીસ સાગરોપમ સ્થિતિ કહેવાય છે બાકી બધુ પહેલા પ્રમાણે સમજુ
જોઈએ. (સુ. ૬૩)

‘સે જે ઇમે’ ઇત્યાદિ

(સે જે ઇમે) તેઓ જે (ગામાગર જાવ સણિવેસેસુ) ગામ આકર આદિ
નિવાસસ્થાનોથી લઈને સન્નિવેશ સુધીના નિવાસસ્થાનોમા (મણુયા ભવંતિ)
મનુષ્ય નિવાસ કરે છે અને તેમા જે કેટલાએક મનુષ્ય (સાહુ) સાધુ હોય
છે તેઓ (અણારંભા) આરંભથી રહિત હોય છે, (અપરિગ્ગહા) પરિગ્રહવર્જિત
હોય છે, (ધમ્મિયા) ધાર્મિક હોય છે (જાવ ધમ્મેણેવ વિક્કિં કપ્પેમાણા) તેમજ
નિર્દોષ-ભિક્ષાવટે પોતાની સયમયાત્રાનો નિર્વાહ કરે છે એથી ‘જાવ’
શબ્દથી “ધમ્માણુયા, ધમ્મિદ્દા, ધમ્મકરવાર્દ, ધમ્મપ્પલોર્દ, ધમ્મપલ્લજ્જણા, ધમ્મસમુ-
દાયારા, ધમ્મેણ ચેવ વિક્કિં” આ પાઠને શ્રદ્ધુ કરવામા આવ્યો છે આની વ્યાખ્યા

રિતાં ભક્તં પચ્ચત્વંતિ, તે વહૂઈં ભક્તાઈં અણસળાણ છેદેતિ,
 છેદિત્તા આલોહ્યપડિક્કંતા સમાહિપત્તા કાલમાસે કાલં કિચ્ચા
 ઉક્કોસેણં અચ્ચુણ કપ્પે દેવત્તાણ ઉવવત્તારો ભવંતિ, તર્હિં તેસિં
 ગઈં, વાવીસં સાગરોવમાઈં ઠિઈં, આરાહગા, સેસં તહેવ ॥ સૂ. ૬૩ ॥

વિહરન્તિ, 'વિહરિત્તા' વિહૃત્ય 'મત્ત પચ્ચત્વંતિ' મત્ત પ્રત્યાગ્યાન્તિ=પરિત્યજન્તિ,
 'અણસળાણ છેદેતિ' અનશનયા ઠિન્દન્તિ, 'છેદિત્તા' ઠિત્વા 'આલોહ્યપડિક્કંતા'
 આલોચિત્તપ્રતિક્રાન્તા, 'સમાહિપત્તા' સમાધિપ્રાપ્તા, 'કાલમાસે' કાલમાસે 'કાલ
 કિચ્ચા' કાલ કૃત્વા 'ઉક્કોસેણ અચ્ચુણ કપ્પે' ઉત્કર્ષિતોડ્ધ્યુતે કપ્પે 'દેવત્તાણ ઉવ-
 વત્તારો ભવન્તિ' દેવલ્લેન ઉપવત્તારો ભવન્તિ। 'તર્હિં તેસિં ગઈં' તત્ર તેષા ગતિ,
 'વાવીસં સાગરોવમાઈ ઠિઈં' દ્વાવિંશતિં સાગરોપમાનિ રિથિતિ, 'આરાહગા' આરાધકા,
 'સેસ તહેવ' શેષ તથૈવ ॥ સૂ. ૬૩ ॥

પચ્ચત્વંતિ) પશ્ચાત્ અન્તિમ સમય મેં મત્તપ્રત્યાગ્યાન કરતે હૈ, (તે વહૂઈં ભક્તાઈ અણ-
 સળાણ છેદેતિ) વે અનેક મત્તોં કા અનશન દ્વારા છેદન કરતે હૈ, (છેદિત્તા આલોહ્ય-
 પડિક્કંતા સમાહિપત્તા કાલમાસે કાલ કિચ્ચા) છેદન કર અપને પાપસ્થાનોં કી આલો-
 ચના ઇવ પ્રતિક્રમણ કરકે વે સમાધિસહિત કાલ અવસર મેં કાલ કર (ઉક્કોસેણ અચ્ચુણ
 કપ્પે દેવત્તાણ ઉવવત્તારો ભવંતિ) જઘન્ય પહેલે દેવલોક ઉત્કૃષ્ટ વારહવેં દેવલોક અચ્ચુ-
 તક્રમ્પ મેં દેવપર્યાય સે ઉત્પન્ન હોતે હેં। (તર્હિં તેસિં ગઈં, વાવીસં સાગરોવ માઈ ઠિઈં,
 આરહગા, સેસ તહેવ) પ્રથમ દેવલોક મેં ઇન્કી ઉત્કૃષ્ટ દો સાગરોપમ ઓર વ હૈવેં દેવલોક

પત્રી અંત સમયે ભક્ત-પ્રત્યાગ્યાન કરે છે (તે વહૂઈં ભક્તાઈ અણસળાણ છેદેતિ)
 તેઓ અનેક ભક્તોનુ અનશન દ્વારા છેદન કરે છે (છેદિત્તા આલોહ્યપડિક્કંતા
 સમાહિપત્તા કાલમાસે કાલં કિચ્ચા) છેદન કરીને પોતાના પાપસ્થાનોની
 આલોચના તેમજ પ્રતિક્રમણ કરીને તેઓ સમાધિ-સહિત કાલ અવસરમા કાલ
 કરીને (ઉક્કોસેણ અચ્ચુણ કપ્પે દેવત્તાણ ઉવવત્તારો ભવન્તિ) જઘન્ય પહેલા દેવ-
 લોક, ઉત્કૃષ્ટ આરમા દેવલોક અચ્ચુત કલ્પમા દેવપર્યાયથી ઉત્પન્ન થાય છે
 (તર્હિં તેસિં ગઈં, વાવીસં સાગરોવમાઈ ઠિઈં, આરાહગા, સેસ તહેવ) પ્રથમ
 દેવલોકમા તેમની ઉત્કૃષ્ટ બે સાગરોપમ અને આરમા દેવલોકમા ઉત્કૃષ્ટ

पडिविरया, सच्चाओ आरंभसमारंभाओ पडिविरया, सच्चाओ
 करणकारावणाओ पडिविरया, सच्चाओ पयणपयावणाओ पडि-
 विरया, सच्चाओ कोट्टण-पिट्टण-तज्जण-तालण-वह-वध-
 किलेसाओ पडिविरया, सच्चाओ ष्हाण-मइण-वण्णग-विले-
 वण-सइ-फरिस-रस-रूव-गंध-मह्ला-लकाराओ पडिविरया,

‘समारंभाओ पडिविरया’ सर्वस्मादारंभमाम्भाप्रतिविरता ‘सच्चाओ करणकारा-
 वणाओ पडिविरया’ सर्वस्मा करणकारणाप्रतिविरता, ‘सच्चाओ पयणपयावणाओ
 पडिविरया’ सर्वस्मापचनपाचनाप्रतिविरता, ‘सच्चाओ कुट्टण-पिट्टण-तज्जण-
 तालण-वह-वध-परिकिलेसाओ पडिविरया’ सर्वस्माकुट्टन-पिट्टन-तर्जन-ताडन-
 वध-वध-परिकिलेसाप्रतिविरता, ‘सच्चाओ ष्हाण-मइण-वण्णग-विलेवण-सइ-
 फरिस-रस-रूव-गंध-मह्ला-लकाराओ पडिविरया’ सर्वस्मात् स्नान-मर्दन-वर्णक-
 विलेपन-शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्ध-मान्याऽ-लङ्काराप्रतिविरता, तथा ‘जे यावण्णे

आरंभमारंभ से प्रतिविरत होते ह, (सच्चाओ करणकारावणाओ पडिविरया) समस्त
 करण एव करावणमे-करन-कराने से विरक्त होते हैं, (सच्चाओ पयणापयावणाओ पडि-
 विरया) सर्व प्रकार की पचन एव पाचन क्रिया से प्रतिविरत होते ह, (सच्चाओ कोट्टण-
 पिट्टण-तज्जण-तालण-वह-वध-परिकिलेसाओ पडिविरया) समस्त प्रकार के कुट्टण,
 पिट्टण, तर्जन, ताडन, वध, वध, परिकिलेसा से विरक्त होते हैं, (सच्चाओ ष्हाण-मइण-
 वण्णग-विलेवण-सइ-फरिस-रस-रूव-गंध-मह्ला-लकाराओ पडिविरया) न्पूर्ण
 स्नान, मर्दन, वर्णक, विलेपन, शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श, मान्य एवं अलङ्कारों से रहित

रक्षथी प्रतिविरक्त होय छे (सच्चाओ करणकारावणाओ पडिविरया) समस्त
 उरुं तेमन् उरावणुथी-उरवा-उराववाथी विरक्त होय छे (सच्चाओ पयणपया-
 वणाओ पडिविरया) सर्वप्रकारनी पचन तेमन् पाचन क्रियाथी विरक्त होय
 छे (सच्चाओ कोट्टण-पिट्टण-तज्जण-तालण-वह-वध-परिकिलेसाओ पडिविरया)
 समस्तप्रकारना कुट्टण, पिट्टण, तर्जन, ताडन, वध, वध, परिकिलेसाथी विरक्त होय
 छे (सच्चाओ ष्हाण-मइण-वण्णग-विलेवण-सइ-फरिस-रस-रूव-गंध-मह्ला-ल-
 काराओ पडिविरया) न्पूर्ण स्नान, मर्दन, वर्णक, विलेपन, शब्द, स्पर्श, रस,

सुसीला सुव्वया सुपडियाणंदा साहू सव्वाओ पाणाइवायाओ
पडिविरया जाव सव्वाओ परिग्गहाओ पडिविरया, सव्वाओ
कोहाओ माणाओ मायाओ लोहाओ जाव मिच्छादसणसल्लाओ

अनुसन्धेय । सर्वेषा व्याख्याऽत्रैव द्विपष्टितमे सूत्रे गता । नवर-धर्मैव वृत्ति कल्प-
यन्त-निरवधमिक्षया ग्यमयात्रारूपा वृत्ति निर्वहन्त इत्यर्थो बोध्य । शेषपदानामपि
व्याख्या तस्मिन्नेव सूत्रे वृत्ताऽस्माभि । 'सुसीला सुव्वया' सुसीला 'सुनता 'सुपडियाणदा'
सुप्रत्यानन्दा-सुपु प्रत्यानन्दधित्ताहादो येषा ते तथा, आज्ञात्रिचयधर्मव्यानानन्दयुक्ता
'साहू' साधन, 'सव्वाओ पाणाइवायाओ पडिविरया जाव सव्वाओ परिग्गहाओ
पडिविरया' सर्वस्मात् प्राणातिपाताप्रतिविरता यावत्सर्वस्मात् परिग्गहात्प्रतिविरता,
'सव्वाओ कोहाओ माणाओ लोभाओ जाव मिच्छादसणसल्लाओ पडिविरया'
सर्वस्मात् क्रोधान्मानान्मायाया लोभाद् यावन्मिध्यादर्शनशून्यात्प्रतिविरता, 'सव्वाओ आर-

व्याख्या इसी उत्तरार्ध के वासठने (६२) सूत्र में की जा चुकी है । (सुसीला) ये सुशील
तथा (सुव्वया) निर्दोष रीति से व्रतों की आराधना करने वाले होते हैं । (सुपडियाणदा)
आज्ञात्रिचयनामक धर्मध्यान के ध्याने से इनका चित्त सदा अहादयुक्त बना रहता है । ये सब
(सव्वाओ पाणाइवायाओ पडिविरया) सर्व प्रकार के प्राणातिपात से विरक्त रहते हैं,
(जाव सव्वाओ परिग्गहाओ पडिविरया) यावत् समस्त परिग्रह से विरक्त रहा करते हैं,
(सव्वाओ कोहाओ) समस्त प्रकार के क्रोध से, (माणाओ) मान से, (मायाओ) माया
से, (लोहाओ) लोभ से, (जाव मिच्छादसणसल्लाओ) यावत् मिध्यादर्शन शून्य से,
(पडिविरया) विरक्त रहा करते हैं, (सव्वाओ आरभमसमारभाओ पडिविरया) समस्त

आ आगमना उत्तरार्धना वासठ (६२) भा सूत्रमा करवाभा आवी छे (सुसीला)
सुशील तथा (सुव्वया) निर्दोष रीतिथी व्रतानी आराधना करवावाणां छेय
छे (सुपडियाणदा) आज्ञात्रिचय नामना धर्मध्यान ध्याववाथी तेभना चित्त सदा
आनदी अनेला रहे छे ते थधा (सव्वाओ पाणाइवायाओ पडिविरया) सर्व
प्रकारना प्राणानिपातथी विरक्त रहे छे (जाव सव्वाओ परिग्गहाओ पडिविरया)
तेभञ्ज समस्त परिग्रहथी विरक्त रह्या करे छे (सव्वाओ कोहाओ) समस्त
प्रकारना क्रोधथी, (माणाओ) मानथी, (मायाओ) मायाथी, (लोहाओ) लोभथी,
(जाव मिच्छादसणसल्लाओ) तेभञ्ज मिध्यादर्शन शून्यथी (पडिविरया) विरक्त
रह्या करे छे. (सव्वाओ आरभमसमारभाओ पडिविरया) समस्त आरभमभा-

पडिविरया, सव्वाओ आरंभसमारंभाओ पडिविरया, सव्वाओ
करणकारावणाओ पडिविरया, सव्वाओ पयणपयावणाओ पडि-
विरया, -- सव्वाओ कोट्टण-पिट्टण-तज्जण-तालण-वह-वंध-
किलेसाओ पडिविरया, सव्वाओ पहाण-महण-वण्णग-विले-
वण-सद्-फरिस-रस-रुव-गंध-मल्ला-लंकाराओ पडिविरया,

भसमारंभाओ पडिविरया ' सर्वस्माद्भसमारंभाप्रतिविरया ' सव्वाओ करणकारा-
वणाओ पडिविरया ' सर्वस्माद्करणकारणाप्रतिविरया, ' सव्वाओ पयणपयावणाओ
पडिविरया ' सर्वस्मात्पचनपाचनाप्रतिविरया, ' सव्वाओ कुट्टण-पिट्टण-तज्जण-
तालण-वह-वंध-परिकिलेसाओ पडिविरया ' सर्वस्मात्कुट्टण-पिट्टण-तज्जण-
तालण-वह-वंध-परिकिलेसाओ पडिविरया, ' सव्वाओ पहाण-महण-वण्णग-विलेवण-सद्-
फरिस-रस-रुव-गंध-मल्ला-लंकाराओ पडिविरया ' सर्वस्मात् स्नान-मर्दन-वर्णक-
विपण-अन्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्ध-माल्याऽ-उच्चारणप्रतिविरया, तथा ' जे यावणो

आरंभमारंभ से प्रतिविरत होते हैं, (सव्वाओ करणकारावणाओ पडिविरया) समस्त
करण एव करावणसे-करन-कराने से विरक्त होते हैं, (सव्वाओ पयणापयावणाओ पडि-
विरया) सर्व प्रकार की पचन एव पाचन क्रिया से प्रतिविरत होते हैं, (सव्वाओ कोट्टण-
पिट्टण-तज्जण-तालण-वह-वंध-परिकिलेसाओ पडिविरया) समस्त प्रकार के कुट्टण,
पिट्टण, तज्जण, तालण, वह, वंध, परिकिलेसा से विरक्त होते हैं, (सव्वाओ पहाण-महण-
वण्णग-विलेवण-सद्-फरिस-रस-रुव-गंध-मल्ला-लंकाराओ पडिविरया) सपूर्ण
स्नान, मर्दन, वर्णक, विपण, अन्द, रूप, गन्ध, माल्य एवं उच्चारण से रहित

२९वीं प्रतिविरक्त होय छे (सव्वाओ करणकारावणाओ पडिविरया) समस्त
करण तेमन् उरावणुथी-उराव-उराववाथी विरक्त होय छे (सव्वाओ पयणपया
वणाओ पडिविरया) सर्वप्रकारनी पचन तेमन् पाचन क्रियाथी विरक्त होय
छे (सव्वाओ कोट्टण-पिट्टण-तज्जण-तालण-वह-वंध-परिकिलेसाओ पडिविरया)
समस्त प्रकारना कुट्टण, पिट्टण, तज्जण, तालण, वह, वंध, परिकिलेसाथी विरक्त होय
छे (सव्वाओ पहाण-महण-वण्णग-विलेवण-सद्-फरिस-रस-रुव-गंध-मल्ला-लं-
काराओ पडिविरया) सपूर्ण स्नान, मर्दन, वर्णक, विपण, अन्द, स्पर्श, रस,

सुसीला सुव्वया सुपडियाणंदा साहू सव्वाओ पाणाइवायाओ
पडिविरया जाव सव्वाओ परिग्गहाओ पडिविरया, सव्वाओ
कोहाओ माणाओ मायाओ लोहाओ जाव मिच्छादंसणसल्लाओ

ऽनुसन्धेय । सर्वेषा व्याख्याऽत्रैव द्विपष्ठितमे सूत्रे गता । नवर-धर्मेषु वृत्ति कल्प-
यन्त -निरवद्यभिक्षया रयमयात्रारूपा वृत्ति निर्वहन्त इत्यर्थो बोध्य । जेपपदानामपि
व्याख्या तस्मिन्नेव सूत्रे कृताऽस्माभिः । 'सुसीला सुव्वया' सुशीला सुव्वता 'सुपडियाणदा'
सुप्रत्यानन्दा -सुप्तु प्रयानन्दश्चित्ताह्लादो येषा ते तथा, आज्ञाविचयधर्मध्यानानन्दयुक्ता
'साहू' साधव, 'सव्वाओ पाणाइवायाओ पडिविरया जाव सव्वाओ परिग्गहाओ
पडिविरया' सर्वस्मात् प्राणातिपाताप्रतिविरता यावसर्वस्मात् परिग्गहात्प्रतिविरता,
'सव्वाओ कोहाओ माणाओ लोभाओ जाव मिच्छादंसणसल्लाओ पडिविरया'
सर्वस्मात् क्रोधान्मानान्मायाया लोभाद् यावन्मिथ्यादर्शनशून्यात्प्रतिविरता, 'सव्वाओ आर-

व्याख्या इसी उत्तरार्ध के वासठवे (६२) सूत्र में की जा चुकी है । (सुसीला) ये सुशील
तथा (सुव्वया) निर्दोष रीति से व्रतों की आराधना करने वाले होते हैं । (सुपडियाणदा)
आज्ञाविचयनामक धर्मध्यान के ध्याने से इनका चित्त सदा अह्लादयुक्त बना रहता है । ये सब
(सव्वाओ पाणाइवायाओ पडिविरया) सर्व प्रकार के प्राणातिपात से विरक्त रहते हैं,
(जाव सव्वाओ परिग्गहाओ पडिविरया) यावत् समस्त परिग्रह से विरक्त रहा करते हैं,
(सव्वाओ कोहाओ) समस्त प्रकार के क्रोध से, (माणाओ) मान से, (मायाओ) माया
से, (लोहाओ) लोभ से, (जाव मिच्छादंसणसल्लाओ) यावत् मिथ्यादर्शन शून्य से,
(पडिविरया) विरक्त रहा करते हैं, (सव्वाओ आरममसमारभाओ पडिविरया) समस्त

आ आगमना उत्तरार्धना पासठ (६२) भा सूत्रमा करवाभा आवी छे । (सुसीला)
सुशील तथा (सुव्वया) निर्दोष रीतिधी व्रतानी आराधना करवावाणो छे।
छे (सुपडियाणदा) आज्ञाविचय नामना धर्मध्यान ध्याववाथी तेमना चित्त सदा
आनदी भनेला रहे छे ते तथा (सव्वाओ पाणाइवायाओ पडिविरया) सर्व
प्रकारना प्राणातिपातधी विरक्त रहे छे (जाव सव्वाओ परिग्गहाओ पडिविरया)
तेमन् समस्त परिग्रहधी विरक्त रहा करे छे (सव्वाओ कोहाओ) समस्त
प्रकारना क्रोधधी, (माणाओ) मानधी, (मायाओ) मायाधी, (लोहाओ) लोभधी,
(जाव मिच्छादंसणसल्लाओ) तेमन् मिथ्यादर्शन शून्यधी (पडिविरया) विरक्त
रहा करे छे (सव्वाओ आरम-समारभाओ पडिविरया) समस्त आरमभा-

पडिविरया, सव्वाओ आरंभसमारभाओ पडिविरया, सव्वाओ
 करणकारावणाओ पडिविरया, सव्वाओ पयणपयावणाओ पडि-
 विरयां, सव्वाओ कोट्टण-पिट्टण-तज्जण-तालण-वह-वंध-
 किलेसाओ पडिविरया, सव्वाओ ण्हाण-मद्दण-वण्णग-विले-
 वण-सद्-फरिस-रस-रूप-गंध-मल्ला-लंकाराओ पडिविरयां,

भसमारभाओ पडिविरया ' सर्वस्मादारम्भसमारम्भाप्रतिविरता ' सव्वाओ करणकारा-
 वणाओ पडिविरया ' सर्वस्मात्करणकारणाप्रतिविरता, ' सव्वाओ पयणपयावणाओ पडि-
 विरया ' सर्वस्मात्पचनपाचनाप्रतिविरता, ' सव्वाओ कुट्टण-पिट्टण-तज्जण-
 तालण-वह-वंध-परिकिलेसाओ पडिविरया ' सर्वस्मात्कुट्टन-पिट्टन-तर्जन-ताडन-
 वध-वन्ध-परिकिलेसाप्रतिविरता, ' सव्वाओ ण्हाण-मद्दण-वण्णग-विलेवण-सद्-
 फरिस-रस-रूप-गंध-मल्ला-लंकाराओ पडिविरया ' सर्वस्मात् स्नान-मर्दन-वर्णक-
 विलेपन-जन्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्ध-मात्र्याऽ-लङ्काराप्रतिविरता, तथा ' जे यावण्णे

आरंभसमारभ से प्रतिविरत होते है, (सव्वाओ करणकारावणाओ पडिविरया) समस्त
 करण एव करवावणसे-करन-कराने से विरक्त होते है, (सव्वाओ पयणापयावणाओ पडि-
 विरया) सर्व प्रकार की पचन एव पाचन क्रिया से प्रतिविरत होत है, (सव्वाओ कोट्टण-
 पिट्टण-तज्जण-तालण-वह-वंध-परिकिलेसाओ पडिविरया) समस्त प्रकार के कुट्टण,
 पिट्टण, तर्जन, ताडन, वध, परिक्लेस से विरक्त होते है, (सव्वाओ ण्हाण-मद्दण-
 वण्णग-विलेवण-सद्-फरिस-रस-रूप-गन्ध-मल्ला-लंकाराओ पडिविरया) सपूर्ण
 स्नान, मर्दन, वर्णक, विलेपन, जन्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श, माल्य एव अलंकारों से रहित

रक्षणी प्रतिविरक्त होय है (सव्वाओ करणकारावणाओ पडिविरया) समस्त
 कर्षण तेमञ्ज कर्षणवृत्ती-कर्म-कर्मवर्षी विरक्त होय है (सव्वाओ पयणपया-
 वणाओ पडिविरया) सर्वप्रकारकी पचन तेमञ्ज पाचन क्रियाथी विरक्त होय
 है (सव्वाओ कोट्टण-पिट्टण-तज्जण-तालण-वह-वंध-परिकिलेसाओ पडिविरया)
 समस्त प्रकारकी कुट्टण, पिट्टण, तर्जन, ताडन, वध, वन्ध, परिक्लेसथी विरक्त होय
 है (सव्वाओ ण्हाण-मद्दण-वण्णग-विलेवण-सद्-फरिस-रस-रूप-गन्ध-मल्ला-ल-
 काराओ पडिविरया) सपूर्ण स्नान, मर्दन, वर्णक, विलेपन, जन्द, स्पर्श, रस,

सुसीला सुव्वया सुपडियाणंदा साहू सव्वाओ पाणाइवायाओ
पडिविरया जाव सव्वाओ परिग्गहाओ पडिविरया, सव्वाओ
कोहाओ माणाओ मायाओ लोहाओ जाव मिच्छादंसणसल्लाओ

ऽनुसन्धेय । सर्वेषा व्याख्याऽत्रैव द्विपठितमे सूत्रे गता । नवर-धर्मेषु वृत्ति कल्प-
यन्त-निरवचभिक्षया रयमयात्रारूपा वृत्ति निर्वहंत इत्यर्थो बोध्य । शेषपदानामपि
व्याख्या तस्मिन्नेव सूत्रे कृताऽस्माभि । 'सुसीला सुव्वया' सुशील 'सुनता 'सुपडियाणदा'
सुप्रत्यानन्दा-सुपु प्रत्यानन्दश्चित्ताहादो येषा ते तथा, आज्ञाविचयधर्मध्यानानन्दयुक्ता
'साहू' साधन, 'सव्वाओ पाणाइवायाओ पडिविरया जाव सव्वाओ परिग्गहाओ
पडिविरया' सर्वस्मात् प्राणातिपाताप्रतिविरता यावत्सर्वस्मात् परिग्रहात्प्रतिविरता,
'सव्वाओ कोहाओ माणाओ लोभाओ जाव मिच्छादंसणसल्लाओ पडिविरया'
सर्वस्मात् क्रोधान्मानान्मायाया लोभाद् यावन्मिथ्यादर्शनशून्यात्प्रतिविरता, 'सव्वाओ आर-

व्याख्या इसी उत्तरार्ध के वासठ्ये (६२) सूत्र में की जा चुकी है । (सुसीला) ये सुशाल
तथा (सुव्वया) निर्दोष रीति से व्रतों की आराधना करने, वाले होते हैं । (सुपडियाणदा)
आज्ञाविचयनामक धर्मध्यान के ध्याने से इनका चित्त सदा अह्लादयुक्त बना रहता है । ये सब
(सव्वाओ पाणाइवायाओ पडिविरया) सर्व प्रकार के प्राणातिपात से विरक्त रहते हैं,
(जाव सव्वाओ परिग्गहाओ पडिविरया) यावत् समस्त परिग्रह से विरक्त रहा करते हैं,
(सव्वाओ कोहाओ) समस्त प्रकार के क्रोध से, (माणाओ) मान से, (मायाओ) माया
से, (लोहाओ) लोभ से, (जाव मिच्छादंसणसल्लाओ) यावत् मिथ्यादर्शन शून्य से,
(पडिविरया) विरक्त रहा करते हैं, (सव्वाओ आरभमसमारभाओ पडिविरया) समस्त

आ आगमना उत्तरार्धना णासठ (६२) भा सूत्रमा उरवाभा आपी छे '(सुसीला)
सुशील तथा (सुव्वया) निर्दोष रीतिथी व्रतानी आराधना करवावाणा' डोय
छे (सुपडियाणदा) आशाविचय नामना धर्मध्यान ध्याववाथी तेमना चित्त सदा
आनदी अनेला रडे छे ते अथा (सव्वाओ) पाणाइवायाओ पडिविरया) सर्व
प्रकारना प्राणातिपातथी विरक्त रडे छे (जाव सव्वाओ परिग्गहाओ पडिविरया)
तेमज्ज समस्त परिग्रहथी विरक्त रह्हा करे छे (सव्वाओ कोहाओ) समस्त
प्रकारना क्रोधथी, (माणाओ) मानथी, (मायाओ) मायाथी, (लोहाओ) लोभथी,
(जाव मिच्छादंसणसल्लाओ) तेमज्ज मिथ्यादर्शन शून्यथी (पडिविरया) विरक्त
रह्हा करे छे. (सव्वाओ आरभ-समारभाओ पडिविरया) समस्त आरभसमा-

मूलम्—तेसि णं भगवताणं एएणं विहारेणं विहरमाणाणं अत्येगइयाणं अणंते जाव केवलवरणाणदंसणे समुप्पज्जइ । ते बहूइं वासाइं केवलपरियागं पाउणंति, पाउणिन्ता भत्तं पच्च-

मिता =गमनागमनादिषु समितिषुता 'भासासमिया' भाषासमिता सन्त, यावच्छब्दाद् गुप्तिगुप्ता इति द्रस्यम्, 'इणमे' इदमेव 'णिग्गभ पाउण' नैर्ग्रन्थ प्रवचनं 'पुरओकाउ' पुरस्कृत्य=प्रधानीवृत्त्य 'विहरति' विहरन्ति ॥ सू० ६५ ॥

टीका—'तेसि ण' इत्यादि । 'तेसि णं भगवताण' तेषा खलु भगवताम्=अनगारभगवताम् 'एएणं' एतेन पूर्वोक्तेन 'विहारेण विहरमाणाणं' विहारेण विहरताम् 'अत्येगइयाणं' अत्येकेषाम्, 'अणते' अनन्तम्=अन्तरहित 'जाव' यावत् 'केवलवरणाणदंसणे' केवलवरजानदर्शन 'समुप्पज्जइ' समुत्पद्यते=अचिन्नेण प्रादुर्भवति । 'ते बहूइं वासाइं' ते अनगारा भगवन्तो बहूनि वषाणि 'केवलपरियायं' केवलपर्याय

समिति आदि समितियां को तथा तीन गुप्तियों को पालन करते हैं । एव इन समस्त क्रियास्वरूप जो निर्ग्रन्थप्रवचन हे उसके अनुसार ही अपनी समस्त प्रवृत्ति चलाते हैं ॥ सू ६५ ॥

'तेसि ण भगवताण' इत्यादि ।

(तेसि णं भगवताण एएण विहारेण विहरमाणाण) इस प्रकार के इन अनगार भगवन्तो में जो निर्ग्रन्थ प्रवचन को आगे करके विचरते हैं, (अत्येगइयाणं) उन म से कितनेक अनगार भगवन्तां को (अणते जाव केवलवरणाणदंसणे समुप्पज्जइ) अनन्त केवलज्ञान एव अनन्त केवलदर्शन उत्पन्न होता हे । (ते बहूइ वासाइं केवलपरियाग पाउणति) वे इसी पर्याय में बहुत वर्षों तक इस पृथ्वीमंडल को पारन करते हैं,

भाषासमिति आदि समितिषुता तथा त्रष्टु शुक्तिषुता पालन करे छे तेमज्ज समस्त क्रियास्वरूप ले निर्ग्रन्थ प्रवचन छे तेने अनुसरीने ज पोतानी समस्त प्रवृत्तिषुता खलावे छे (सू ६५)

'तेसि णं भगवताण' इत्यादि

(तेसि णं भगवताण एएण विहारेण विहरमाणाण) आ प्रकारना आ अनगार लगवानोमा ले निर्ग्रन्थ प्रवचनने मुख्य करीने विचरे छे, (अत्येगइयाणं) तेमाथी डेटलाक अनगार लगवानोने (अणते जाव केवल-वर-णाण-दंसणे समुप्पज्जइ) अनन्त केवलज्ञान तेमज्ज अनन्त केवलदर्शन उत्पन्न थाय छे, (ते बहूइ वासाइ केवलपरियाग पाउणति) तेथो आ ज पर्यायमा धरु।

जे यावण्णे तहप्पगारा सावज्जजोगोवहिया कम्मता परपाणपरियावणकरा कज्जंति तओ वि पडिविरया जावज्जीवाए ॥ सू० ६४ ॥

मूलम्—से जहानामए अणगारा भवंति—ईरियासमिया भासासमिया जाव इणमेव निग्गंथं पावयणं पुरओ काउं विहरंति ॥ सू० ६५ ॥

तहप्पगारा ' ये यावन्तस्तथाप्रकारा , ' सावज्जजोगोवहिया ' सावययोगौपधिका - सावययोगा = सावययोगयुक्ताश्च ते औपधिका = मायाप्रयोजनाश्चेति तथा, ' परपाणपरियावणकरा ' परप्राणपरितापनकरा , ' कम्मता ' कर्माणा = व्यापाराणा ' कज्जंति ' क्रियन्ते ' तओ वि पडिविरया जावज्जीवाए ' ततोऽपि प्रतिविरता यावजीवम् ॥ सू ६४ ॥

टीका—' से जहानामए ' इत्यादि । ' से जहानामए अणगारा भवंति ' अथ यथानाम केचित् अनगारा भवन्ति, कीदृशास्तेऽनगारा ' इत्याह ' ईरियासमिया ' ईर्यास-

होते है, (जे यावण्णे तहप्पगारा सावज्जजोगोवहिया कम्मता परपाणपरियावणकरा कज्जंति तओ वि पडिविरया जावज्जीवाए) तथा इसी प्रकार के और भी जो सावययोगवाले मायाकपायजनित कार्य हैं कि जिनमें प्राणियों के प्राणों को परिताप जन्य कष्ट भोगना पड़ता है उन सब से ये प्रतिविरत होते हैं ॥ सू ६४ ॥

' से जहानामए ' इत्यादि ।

(से जहानामए अणगारा भवति) ये जो अनगार होते है, वे (ईरियासमिया भासासमिया जाव इणमेव निग्गथ पावयण पुरओ काउ विहरंति) ईर्यासमिति, भाष-

३५, गध, भाला तेमञ्च अल्ल काशेथी रडित डोय छे (जे यावण्णे तहप्पगारा सावज्जजोगोवहिया कम्मता पर-पाण-परियावण-करा कज्जति तओ वि पडिविरया जावज्जीवाए) तथा अे प्रधारना भील्ल पथु वे सावययोगवाणा भायाकपायजनित कार्य छे के वेभा प्राणियोना प्राणुने परितापजनित कष्ट लोगववा पडे छे, तेवा अधा काथेथी तेओ विरडत डोय छे (सू ६४)

' से जहानामए ' इत्यादि

(से जहानामए अणगारा भवति) आ वे अनगार डोय छे, तेओ (ईरियासमिया भासासमिया जाव इणमेव निग्गथ पावयण पुरओ काउ विहरति) इर्यासमिति,

पाउणित्ता आवाहे उप्पण्णे वा अणुप्पण्णे वा भत्तं पच्चरखति ।
ते वहूडं भत्ताडं अणसणाए छेदेंति, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ
नग्गभावे जाव तमट्टमाराहित्ता चरमेहिं ऊसासणीसासेहिं

प्रादुर्भवति, 'ते वहूट वासाट' तेषुनगारा भगवतो वहनि वर्षाणि 'छउम-
त्यपरियाय पाउणति' उन्नत्यपर्याय पालयन्ति=उन्नत्यावस्था पालयन्ति, 'पाउणित्ता'
पालयिता 'आगहे' आवाधाया=रोगादिवाधायाम् 'उप्पण्णे वा अणुप्पण्णे वा' उत्प-
न्नाया वा अनुपन्नाया वा सया 'भत्त पच्चरखति' भक्तं प्रत्यारयन्ति, 'ते वहूडं
भत्ताड अणसणाए छेदेंति' ते वहनि भक्तानि अनशनया छिन्दन्ति, 'छेदित्ता' छिन्वा
'जस्सट्ठाए' यस्मै अर्थाय 'कीरइ नग्गभावे' क्रियते नग्नभाव—अक्रियते क्रियते,
'जाव तमट्टमाराहित्ता' यावत् तमर्थमाराध्य, 'चरमेहिं ऊसासणीसासेहिं' चरमैरु-
च्छ्वासनि श्वासै 'अणत्' अनन्तम्=अन्तरहितम्, 'अणुत्तर' अनुत्तरम्=उच्छ्वासम्,

लाभ शीघ्र नहीं होता है, (ते वहूड वासाड छउमत्यपरियाय पाउणित्ता) वे अनगार
भंगवान् उन्नत्य पर्याय को ही बहुत वर्षों तक पालते रहते हैं, (पाउणित्ता) और उस पर्याय
के पालन करते २ भी यदि (आवाहे उप्पण्णे वा अणुप्पण्णे वा) किसी प्रकार की चाहे
उन्हे रोगादिक वाधा उत्पन्न हो, चाहे न भी हो तो भी वे, (भत्त पच्चरखति) भक्तप्रत्यान्यान
करते हैं। (ते वहूडं भत्ताड अणसणाए छेदेंति) वे अनेक भक्तों का अनशन द्वारा छेदन
करते हैं, (छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव तमट्टमाराहित्ता) छेदन करके उन्हों-
ने निम्न की प्राप्ति के लिये नग्नभाव धारण किया था, उस प्रयोजन की सिद्धि प्राप्त कर
(चरमेहिं ऊसासणीसासेहिं अणत् अणुत्तर णिव्वाप्पाय निरावरण कसिण पडिपुणं

दर्शननेो लाभ लक्ष्मी भगतेो नथी, (ते वहूड वासाड छउमत्यपरियाय पाउ-
णति) ते अनगार लगवान छन्नत्यपर्यायतु ल वंश्या वरमेो सुधी पालन
उठे छे, (पाउणित्ता) अने ते पर्यायतु पालन उठता करता पणु ने (आवाहे
उप्पण्णे वा अणुप्पण्णे वा) दोध प्रदरनी वेग आि -नी पीडा उत्पन्न थाय
ठे थाडे न पणु थाय तो पणु तेओ (भत्त पच्चरखति) लक्षतप्रत्याप्यान
उठे छे (ते वहूड भत्ताड अणसणाए छेदेंति) तेओ अनेक लक्षतेोतु अनशन
दाग छेदन उठे छे (छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव तमट्टमाराहित्ता)
छेदन करीने तेओओ नेनी प्राप्ति माठे नग्नभाव धारणु करीो हतेो ते प्रथो
जननी सिद्धि प्राप्त करीने (चरमेहिं ऊसासणीसासेहिं अणत् अणुत्तर णिव्वा-

कखंति, पञ्चस्त्रिंशत्ता वहूइं भत्ताइं अणसणाए छेदंति, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव अतं करंति ॥ सू० ६६ ॥

मूलम्—जेसिं पि य णं एगइयाणं णो केवलवरणाणं दंसणे समुप्पज्जइ ते वहूइ वासाइं छउमत्थपरियागं पाउणति,

‘पाउणति’ पालयन्ति, ‘पाउणित्ता’ पालयित्ता, ‘भत्त पच्चक्खति’ भक्त प्रया रयन्ति, ‘भत्त पच्चक्खित्ता’ भक्त प्रयाएणाय ‘वहूइ’ वहूनि ‘भत्ताइ अणसणाए’ भक्तानि अनशनया ‘छेदंति’ छिन्दन्ति, ‘छेदित्ता’ छिन्ना ‘जस्सट्ठाए’ यस्मै अर्थाय ‘कीरइ’ क्रियते ‘नग्गभावो’ नग्नभाव = आक्रिय्य क्रियते इत्थंनय, ‘जाव अतं’ यावत्—सर्वदु सनामन्त ‘करंति’ कुर्वन्ति ॥ सू० ६६ ॥

‘जेसिं पि य ण’ इत्यादि। ‘जेसिं पि य ण एगइयाण णो केवलवर- नाणदंसणे समुप्पज्जइ’ येषामपि च सल्ल एकेषा नो केवलपरजानदर्शनं समुत्पद्यते—

(पाउणित्ता भत्त पच्चक्खति) इस पर्याय को प्राप्त कर वे भक्त का प्रत्याख्यान कर देते हैं। (पच्चक्खित्ता वहूइ भत्ताइ अणसणाए छेदंति) प्रत्याख्यान करके अनेक भक्तों का अनशन द्वारा छेदन कर देते हैं। (छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव अतं करंति) छेदन करके जिस प्रयोजन के लिये नग्नभाव उन्होंने धारण किया था वे उस प्रयो- जन को प्राप्त करते हैं, अर्थात् समस्त दु खों का अंत करते हैं ॥ सू० ६६ ॥

‘जेसिं पि य ण’ इत्यादि।

(जेसिं पि य ण) इन सावुआं म से भो (एगइयाण) जिन किन्हीं साधु मुनि- राजों को (णो केवलवरणाणदंसणे समुप्पज्जइ) निर्मल केवलज्ञान एवं केवल दर्शन का-

परमो सुधी आ पृथ्वीम उणने पावन करे छे (पाउणित्ता भत्त पच्चक्खति) आ पर्यायने प्राप्त करीने लक्षप्रत्याख्यान करी दे छे (पच्चक्खित्ता वहूइ भत्ताइ अणसणाए छेदंति) प्रत्याख्यान करीने अनेक लक्षतनु अनशन द्वारा छेदन करे छे (छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव अतं करंति) छेदन करीने के प्रयोजन भाटे नग्नभाव तेमणे धारण करेदेो छेते ते प्रयोजनने प्राप्त करे छे, अर्थात् समस्त दु खोने अंत करे छे (सू० ६६)

‘जेसिं पि य ण’ इत्यादि

(जेसिं पि य ण) आ साधुओभाधी पणु (एगइयाण) के कोर्ध साधु मुनि राजने (णो केवलवरणाणदंसणे समुप्पज्जइ) निर्मल केवलज्ञान तेमण केवल

कालमासे कालं किञ्चा, उक्कोसेणं सच्चद्रुमिद्रे महाविमाणे
 देवत्ताए उववत्तारो भवन्ति, तर्हि तेसिं गर्ड, तेत्तीसं सागरोवमाडं
 टिडं, आराहगा, सेसं तं चैव ॥ सू० ६८ ॥

मनुजन्मवाविनी वा अर्चा=तनुयेषा त ण्काचा 'पुण' पुन, अत्र पुन शब्द उक्तायां उपा
 वैलक्ष्ययवतनार्थ, 'एने' एके-अन्ते तु 'भयतारो मकार=मयमसेविन, 'मयंतागे' इय-
 यानुच्चार आर्षवात् 'पुव्वकम्मावमेसेणं' पूर्वकर्मवशेण पूर्वकृतकर्मगानवशेण 'काट्टमामे
 काटं किञ्चा' कालमासे काट कृत्वा- 'उक्कोसेण सच्चद्रुमिद्रे महाविमाणे' उक्कपेण
 सर्वार्थसिद्धे महाविमाने 'देवत्ताए' देवत्तं 'उववत्तारो भवन्ति' उपपत्तये भवन्ति=उपपन्ते,
 'तर्हि तेसिं गर्ड तेत्तीसं सागरोवमाडं टिडं' तत्र तेषां गति, यत्रक्षिप्रसागरोपमानि
 स्थिति । 'आराहगा आगमका=गद्रेकस्याऽऽगमका, 'सेसं तं चैव' सेव तदेव ॥ सू ६८ ॥

हैं कि जिहें उसीं मय से केंद्रजन एव केंद्रदर्शन का काम नहीं होता है तो ऐसे वे
 अन्तगार भगवान् (एगचा) ण्कमवावतागं होते हैं। ये (भयतारो) मयम की आगमना
 करने २ ही (पुव्वकम्मावमेसेण) पूर्वकर्म के अवशिष्ट होने के कारण (काट्टमामे
 काटं किञ्चा) काल अवसर में काल कर (उक्कोसेण) उक्कपे से (सच्चद्रुमिद्रे महाविमाणे
 देवत्ताए उववत्तारो भवन्ति) सर्वार्थसिद्ध नामके महाविमान म देवपथाय से उपर हो
 अने हैं। (तर्हि तेसिं गर्ड, टिडं तेत्तीसं सागरोवमाडं) वहाँ पर उक्का गति और
 स्थिति होती है। इनकी स्थिति वहाँ पर तर्तिस सागर प्रमाण है। (आराहगा सेसं त
 चैव) ये नियम से पण्डोक्त के आगमक होते हैं। अवशिष्ट पूर्ववत् मनजना चाहिये ॥
 सू ६८ ॥

समयान होय ठे हे जेभने तेर समय देवजानान तंमय देवजदर्शनने
 प्राप्त भजते नही तो जेवा ते अन्तगार भगवान (एगच्चा) जेसकवावतागी
 होय ठे तेजो (भयतारो) मयमनी आगमना कृत्वा दर्शन य (पुव्वकम्माव-
 सेसेणं) पूर्वकर्मना भागी उदेवाना काले (काट्टमामे काट किञ्चा) काल-अव-
 सरे काल दर्शने (उक्कोसेण) उक्कपे वटे (सच्चद्रुमिद्रे महाविमाणे देवत्ताए उव-
 वत्तारो भवन्ति) सर्वार्थसिद्ध नामना महाविमानमा देवपथायी उपर गय ठे
 त्या तेमनी गति अने स्थिति होय ठे तेमनी त्या स्थिति तेनीय सागर
 प्रमाण छे (आराहगा सेसं त चैव) तेजो नियमधी पण्डोक्तना आगमक होय
 छे, आदी अत्र अगाड प्रमाणे समजवुं जेतजे (सू. ६८)

अणंतं अणुत्तरं निव्वाघायं निरावरणं कसिणं पडिपुण्णं केवल-
वरणाणदंसणं उप्पादेति, तओ पच्छा सिज्झिहिति जाव अंतं
करेहिति ॥ सू० ६७ ॥

मूलम्—एगच्चा पुण एगे भयंतारो पुव्वकम्मावसेसेणं

‘निव्वाघायं’ निर्व्याघात=सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टविषयेषु अप्रतिहित, ‘निरावरणं’ निरा-
वरण=कमावरणरहित ‘कसिणं’ कृत्स्न=सकल, ‘पडिपुण्णं’ प्रतिपूर्ण=सपूर्ण, ‘केवल-
वरणाणदंसणं’ केवलपरजानदर्शनम् ‘उप्पादेति’ उत्पादयन्ति, ‘तओ पच्छा सिज्झि-
हिति’ तत पश्चात् सेत्स्यन्ति, ‘जाव अत’ यावत् अन्त=सर्वदुःखानामन्त ‘करे-
हिति’ करिष्यन्ति ॥ सू० ६७ ॥

‘एगच्चा’ इत्यादि । ‘एगच्चा’ एकाऽच्चा—एका=असाधारणगुणवात् अद्वितीया-

केवलवरणाणदंसण उप्पादेति) चरम उच्छ्वास—निश्वासे में अन्तरहित, अनुपम, निर्व्या-
धान—सूक्ष्म, व्यवहित एव विप्रकृष्ट विषय को हस्तामलकवत् जानने के लिये समर्थ, निरा-
वरण—कमावरणरहित, कृत्स्न—सकल, एवं प्रतिपूर्ण—सपूर्ण केवलजान एव केवलदर्शन की उत्पत्ति
से विशिष्ट हो जाते हैं । (तओ पच्छा सिज्झिहिति जाव अंतं करेहिति) इसके पश्चात्
वे सिद्ध हो जाते हैं और उस अवस्था में उनके समस्त दुःखों का एव उनके कारणभूत
कर्मों का सर्वथा अभाव हो जाता है ॥ सू० ६७ ॥

‘एगच्चा पुण’ इत्यादि ।

इन अनगार भगवन्तों के बीच (एगे) कितनेक ऐसे भी अनगार भगवान होते

घाय निरावरण कसिण पडिपुण्णं केवलवरणाणदंसणं उप्पादेति) चरम उच्छ्वास—
निश्वासेमा अन्तरहित, अनुपम, निर्व्याघात—सूक्ष्म, व्यवहित तेमञ्च विप्र-
कृष्ट विषयने हस्तामलकवत् लक्ष्णवा भाटे समर्थ, निरावरण—कमावरणरहित,
कृत्स्न—सकल, तेमञ्च परिपूर्ण—सपूर्ण केवलजान तेमञ्च केवलदर्शननी उत्पत्तिथी
विशिष्ट थर्थ लय छे (तओ पच्छा सिज्झिहिति जाव अत करेहिति) त्थार
पडी तेमो सिद्ध थर्थ लय छे, अने ते अवस्थाभा तेमना समस्त दुःखानो
तेमञ्च तेमना कारणभूत कर्मोना सर्वथा अलाव थर्थ लय छे (सू ६७)

‘एगच्चा पुण’ धत्तादि

आ अनगार भगवन्तोनी पत्थमा (एगे) डेटलाक ओवा पत्थ अनगार

मायालोहा अणुपुञ्ज्वेणं अट्टकम्मपयडीओ खवेत्ता उप्पि लोय-
गपइट्टाणा भवन्ति ॥ सू० ६९ ॥

मूलम्—अणगारे णं भन्ते ! भावियप्पा केवलिसमु-

‘निष्कोहा’ निष्कोहा = कोषान्निष्क्रान्ता, ‘सीणरोहा’ क्षीणकोषा - कोष क्षीणो येषां ते क्षीणकोषा - मोहनीयकर्मणां क्षयाकरणात् क्षीणकोषमोहनीयकर्मणां, ‘एत्र माणमायालोहा’ एव मानमायालोहा = एव क्षीणमानमायालोहा, ‘अणुपुञ्ज्वेण’ अनुपूर्व्या = क्रमणो यथापद्रम, ‘अट्टकम्मपयडीओ’ अष्टकर्मप्रकृती ‘खवेत्ता’ क्षययिवा ‘उप्पि लोयगपइट्टाणा’ उपरि लोकाप्रप्रतिश्राना = लोकाप्रवस्थिता ‘भवन्ति’ भवन्ति ॥ सू ६९ ॥

टीका—‘अणगारे णं भन्ते’ इत्यादि । ‘अणगारे ण भन्ते !’ अनगार खलु हे भदन्त ! ‘भावियप्पा’ भावितामा = कृताऽऽमसाक्षात्कार, ‘केवलिसमुग्घाएण’ केवलिस-

कोहा एवं माणमायालोहा) जिनका क्रोध नष्ट हो गया है, अत एव जो निष्कोष हैं, मोहनीय कर्म नष्ट हो जाने के कारण क्रोध जिनकी आत्मा से क्षीण हो चुका है, इसी तरह से मान, माया एव लोभ भी जिनकी आत्मा से सर्वथा नष्ट हो चुके हैं, वे (अणुपु-
ञ्ज्वेण अट्ट कम्मपयडीओ खवेत्ता उप्पि लोयगपइट्टाणा भवन्ति) क्रम २ से पूर्ववत् अष्टकर्मों की प्रकृति को सर्वथा नष्ट कर नियमसे लोक के अग्रभागमें निवास करनेवाले होते हैं, अर्थात् मोक्षको प्राप्त करते हैं ॥ सू ६९ ॥

‘अणगारे ण भन्ते !’ इत्यादि ।

(भन्ते !) हे भगवन् ! (भावियप्पा अणगारे ण) भावितात्मा अनगार (साधु)
(केवलिसमुग्घाएण) केवलिसमुद्घात द्वारा (समोहणित्ता) आत्मप्रदेशों को शरीर से

गयेला छे, तेथी जेज्या डोधरहित छे, मोहनीय कर्म नष्ट थई जवाना डार-
णुथी डोध जेभना आत्माभाथी क्षीण थई गयेला छे, तेवी जरीते मान, माया
तेभज लोल पणु जेभना आत्माभाथी सर्वथा नष्ट थई गयेला छे, तेज्या
(अणुपुञ्ज्वेण अट्ट कम्मपयडीओ खवेत्ता उप्पि लोयगपइट्टाणा भवन्ति) अनुक्रमेण
पूर्ववत् आठ उमोनी प्रकृतिने सर्वथा नष्ट करीने नियमथी लोकना उपरना
लाजभा निवास करवावाणा थाय छे, अर्थात् मोक्षने प्राप्त करे छे (सू ६९)

‘अणगारे ण भन्ते !’ इत्यादि

(भन्ते !) हे भगवन् ! (भावियप्पा अणगारे ण) भावितात्मा अनगार
(साधु) (केवलिसमुग्घाएण) केवलिसमुद्घात द्वारा (समोहणित्ता) आत्म

मूलम्—से जे इमे गमागर जाव सणिवेसेसु मणुया भवन्ति, तं जहा—सव्वकामविरया सव्वरागविरया सव्वसंगातीता सव्वसिणेहाइक्कता अक्कोहा निक्कोहा खीणक्कोहा एवं माण-

टीका—‘से जे इमे’ इत्यादि । ‘से जे इमे गमागर जाव सणिवेसेसु मणुया भवन्ति’ अथ य इमे ग्रामाऽऽकर यावत् मनिरेगु मनुजा भवन्ति, ‘त जहा’ तद्यथा ‘सव्वकामविरया’ सर्वकामविरता—सर्वकामेभ्यः=समस्तगन्धादित्रिषयेभ्यो विरता=निवृत्ता, शब्दादिविषयेषु वा विरता=विगनो मुन्या, ‘सव्वरागविरया’ सर्वरागविरता=सर्वरागात्—समस्ताद् विषयाभिमुखहेतुभूताऽऽमपरिणामविशेषात् निवृत्ता, ‘सव्वसंगातीता’ सर्वसङ्गातीता—सर्वसङ्गात्=मातापित्रादिसम्बन्धादतीता=विनिर्गता—सर्वसङ्गरहिता इत्यर्थे, ‘सव्वसिणेहाइक्कता’ सर्वसन्हातिकान्ता=स्नेहरहिता, ‘अक्कोहा’ अक्रोहा,

‘से जे इमे’ इत्यादि ।

(से जे इमे गमागर जाव सणिवेसेसु) ये जो ग्राम। आकर आदि से लेकर सन्निवेश तरु के निवासस्थानों में (मणुया भवन्ति) मनुष्य रहते हैं, (त जहा) जैसे (सव्वकामविरया सव्वरागविरया सव्वसंगातीता सव्वसिणेहाइक्कता) जो समस्त शब्दादिक विषयों से निवृत्त है, अथवा शब्दादिक विषयों में जिन्हें उत्सुकता नहीं है, समस्त विषयों की ओर झुकाने वाले आ माके रागरूप परिणाम से जो निवृत्त है, माता-पिता आदि समस्त सबधिजनों से अथवा समस्तप्रकार के परिग्रह से जो दूर हो चुके हैं, जिन्होंने सम्पूर्णप्रकार का स्नेहभाव परिवर्जित कर दिया है। (अक्कोहा निक्कोहा खीण-

‘से जे इमे’ इत्यादि

(से जे इमे) आ उ ने (गमागर जाव सणिवेसेसु) गाम आकर आदिथी लधने सन्निवेश सुधीना निवासस्थानोभा (मणुया भवन्ति) मनुष्य रहे छे, (त जहा) नेवा उ—(सव्वकामविरया सव्वरागविरया सव्वसंगातीता सव्वसिणेहाइक्कता) नेओ समस्त शब्दादिक विषयोथी निवृत्त छे, अथवा शब्दादिक विषयोभा नेभने उत्सुकता नथी छोती, समस्त विषयोनी तरु जे अवावावा आत्माना रागइध परिछुाभथी नेओ निवृत्त छे, मातापिता आदि समस्त सधधी जनोथी अथवा समस्त प्रचारना परिग्रहोथी नेओ दूर थंथ गथेला छे, नेओओ स पूरु प्रचारना स्नेहलावने परिवर्जित करी दीथेला छे, (अक्कोहा निक्कोहा खीणक्कोहा एव माणमावालोहा) नेभने क्रोध नष्ट थंथ

मूलम्—से नूणं भंते ! केवलरूपे लोए तेहि निज-

रापोगलेहि फुडे ? हंता ! फुडे ॥ सू० ७१ ॥

मूलम्—छउमत्ये णं भंते ! मणुस्से तेसिं णिज्जरापो-

गलाणं किंचि वण्णेणं वण्णं, गंधेणं गंधं, रसेणं रसं, फासेणं

टीका—‘से नूणं भंते !’ इत्यादि । ‘से नूणं भंते !’ अथ नून हे भदन्त !
‘केवलरूपे लोए’ केवलरूपो लोकर, ‘तेहिं’ तै ‘निज्जरापोगलेहिं’ निर्जरापुद्गले—
निर्जरा प्रभाना पुद्गला निर्जरापुद्गला—जीवेन अकर्मनामापादिता कर्मपुद्गलास्तै ‘फुडे’
सृष्ट = व्याप्त किम् ? इति प्रश्न । उत्तरमाह ‘हंता ! फुडे’ इति । सृष्ट ॥ सू ७१ ॥

टीका—‘छउमत्ये णं भंते !’ इत्यादि । ‘छउमत्ये णं भंते !’ छउमत्ये सल्ल
भदन्त ! = ह भदन्त ! उदमस्य सल्ल मनुष्य, उदमस्य इह निरतिशयज्ञानयुक्तो ज्ञेय, यतश्चउदम-
स्योऽपि निशिष्टावधिज्ञानयुक्तो निर्जरापुद्गलान् जानायेव । ‘तेसिं णिज्जरापोगलाणं’ तेषां निर्ज-
रापुद्गलानां ‘किंचि’ किंचिद् ‘वण्णेणं’ वर्णेन—वर्णतया यथावस्थितस्वरूपेण ‘वण्णं’ वर्णं=

‘से नूणं भंते !’ इत्यादि ।

(से नूणं भंते !) ह भदन्त ! इया अस्यतया (तेहिं निज्जरापोगलेहिं)

उनक निर्जराप्रधान पुद्गलां द्वाग (केवलरूपे लोए) यह समस्त लोग (फुडे) सृष्ट
होता है / (हंता ! फुडे) हैं ! सृष्ट होता है ॥ ॥ सू ७१ ॥

‘छउमत्ये णं’ इत्यादि ।

(छउमत्ये णं भंते ! मणुस्से) ह भदन्त ! विशिष्टज्ञानी छउमस्य मनुष्य (तेसिं

णिज्जरापोगलाण) उन निर्जराप्रधान पुद्गलां को (किंचि) किंचित् (वण्णेण वण्ण

‘से नूणं भंते !’ इत्यादि ।

(से नूणं भंते !) हे भदन्त ! शु अवस्थतया (तेहिं निज्जरापोगलेहिं) तेभना

निर्जराप्रधान पुद्गलां द्वाग (केवलरूपे लोए) आ भवन्त होउने
(फुडे) अर्थ थाय छे ? (हंता ! फुडे) हा ! थाय छे (सू ७१)

‘छउमत्ये णं’ इत्यादि ।

(छउमत्ये णं भंते ! मणुस्से) हे भदन्त ! विशिष्टज्ञानी छउमस्य मनुष्य

(तेसिं णिज्जरापोगलाण) ते निर्जराप्रधान पुद्गलां द्वाग (किंचि) किंचित्
(वण्णेण वण्ण गंधेण गंधं रसेण रसं फासेण फासं जाणइ पासइ) वर्णं थी

घ्राणं समोहणित्ता केवलकल्पं लोयं फुसित्ता णं चिट्ठी, हंता !
चिट्ठी ॥ सू० ७० ॥

समुद्घातेन, तत्र प्रथम समुद्घातस्वरूपमुच्यते—यथास्वभावरितानामात्मप्रदेशान् समुद्घातेन—
समन्ताद्दुद्घातेन—स्वभावादव्यभावेन परिणमन समुद्घात, स च समविध—वेदनासमुद्घात' १,
कषायसमुद्घात २, मरणसमुद्घात ३, वैक्रियसमुद्घात ४, तैजससमुद्घात ५, आहारक-
समुद्घात ६, केवलिसमुद्घात ७ । ण्यु समसु समुद्घातेषु चरम केवलिसमुद्घात । तत्र को
नाम केवलिसमुद्घात ? उच्यते—यस्यान्तर्मुहूर्तकाले परमपद भावि, तस्मिन् केवलिति भव
समुद्घात केवलिसमुद्घातस्तेन, 'समोहणित्ता' समवहस्य=आत्मप्रदेशान् प्रसार्य 'केवलरूप'
केवलरूप=मपूर्ण 'लोय' लोक 'फुसित्ता ण' स्पृष्टा सख 'चिट्ठी' तिष्ठति किम् ? उत्तर-
माह—'हता' इत्यादि । 'हन्त' इतिपद कोमलाऽऽमन्त्रणपूर्वकस्वीकारार्थकम्, 'चिट्ठी'
तिष्ठति ॥ सू० ७० ॥

बाहर निकालर (केवलरूप लोय) न्या समस्त लोका (फुसित्ता) स्पर्ग करके (चिट्ठी)
ठहरते है ? उत्तर—(हता ! चिट्ठी) हा ! ठहरते है । यथास्वभाज से स्थित आत्मप्रदेशों का
अव्य भाव मे परिणमन करना उसका नाम समुद्घात है । समुद्घात ७ प्रकार का है—वेदना-
समुद्घात १, कषायसमुद्घात २ मरणसमुद्घात ३, वैक्रियसमुद्घात ४, तैजससमुद्घात ५,
आहारकसमुद्घात ६, केवलिसमुद्घात ७ । इनमे अन्तिम समुद्घात केवलिसमुद्घात है । जिसको
अन्तर्मुहूर्तकाल मे निर्वाण पदकी प्राप्ति होती है ऐसे केवली भगवान का दण्ड, कषाट,
मन्थान और लोकरूपण क्रिया द्वारा आत्मप्रदेशों का मूल शरीर को न छोडकर शरीर से
बाहर फैलना इसका नाम केवलिसमुद्घात है ॥ सू० ७० ॥

प्रदेशोने शरीरथी अहार खादीने (केवलकल्प लोय) शु समस्त ढोडने।
(फुसित्ता) स्पर्श करीने (चिट्ठी) रडे छे ? (हता ! चिट्ठी) डा ! रडे
छे, यथास्वभावमा रडेला आत्मप्रदेशोने अन्यलावमा डेरवी नाभवु तेनु
नाम समुद्घात छे समुद्घात ७ प्रकारना छे—१ वेदनासमुद्घात, २ कषाय-
समुद्घात, ३ मरणसमुद्घात, ४ वैक्रियसमुद्घात, ५ तैजससमुद्घात,
६ आहारकसमुद्घात, ७ केवलिसमुद्घात तेमा छेदो समुद्घात केवलिसमु-
द्घात छे लेने अन्तर्मुहूर्त कालमा निर्वाणपदनी प्राप्ति थाय छे जेवा
केवली लगवानना हउ, कषाट, मन्थान, अने लोकरूपण क्रियाद्वारा आत्म
प्रदेशोना, भूण शरीरने नहि छोडता शरीरथी अहार खेलावे थयो तेनु नाम
केवलिसमुद्घात छे (सू० ७०)

**मूलम्—गोयमा । अयं णं जंजुद्दीवे दीवे सव्वदीव-
समुद्धानं सव्ववभंतराए सव्वखुडुआए वट्टे तेह्हापूय-संठाण-संठिए**

टीका—भगवानाह—‘गोयमा’ इत्यादि । ‘गोयमा’ अयं णं जंजुद्दीवे दीवे’
इ गौतम ! अयं गच्छ जंजुद्दीपो द्वीप ‘सव्वदीवसमुद्धानं सव्ववभंतराए’ सर्वद्वीपसमु-
द्धाना सर्वाभ्यन्तरम् = सर्वद्वीपसमुद्रमध्यवर्ती, ‘सव्वखुडुआए’ सर्वखुडुक = सर्वद्वीपसमुद्रापेक्षया
लघु, ‘वट्टे’ वृत्त = योत्राकार, मोत्तुद घनवृत्तोऽपि भवेत् तद् यत्र च्छेदायं प्रतरवृत्ततामाह—
‘तेह्हापूय-संठाण-संठिए’ तैत्रयपूप-मस्थान-मरियत — तैलमिति घृतस्योपलक्षणम्, तेन
तैलत्रयिकाऽपूयाऽऽकारमस्थित, ‘वट्टे’ वृत्त, ‘रहचक्कवाल-संठाण-संठिए’ रथचक्रवाल-

जाता है कि (उच्चमत्ये ण मणुस्से तेसिं णिज्जरापोग्गलाण णो किंचि वण्णेणं वण्ण
जाव जाणड पासड) उच्चस्थ मनुष्य, उन केवली भगवान् के उन निर्जराप्रधान पुद्गला के
वर्ण भय रस स्पर्श को न जान सकता है । न दग्ग सक्ता है । ॥ म ७३ ॥

‘गोयमा । अयं णं’ इत्यादि ।

(गोयमा !) इ गौतम ! (अयं णं जंजुद्दीवे दीवे) यह जंजुद्दीप नामका द्वीप
(सव्वदीवसमुद्धानं) समस्त द्वीप और समुद्रों का (सव्ववभंतराए) सर्वप्रकार से मध्य-
वर्ती है । अतः यह (सव्वखुडुआए) सब से छोटा है । (वट्टे) यह उलय के समान
वृत्ताकार-गोत्र है । (तेह्हा-पूय-संठाण-संठिए) तैलपक पुआ के आकार जैसा गोल
है । (वट्टे रहचक्कवाल-संठाण-संठिए) रथके पहिये जैसा गोल है । (वट्टे पुक्खर-

धारण्णथी ओभ ढडेवाथ छे ऽ (उच्चमत्ये ण मणुस्से तेसिं णिज्जरापोग्गलाण णो
किंचि वण्णेण वण्ण जाव जाणड पासड) उच्चस्थ मनुष्य ते देवदी भगवानना
ते निर्जराप्रधान पुद्गलाना पण्णं, गध, रस, स्पर्शने नथी वल्ल्णी शक्ता हे
नवी देणी शक्ता ? (सू. ७३)

‘गोयमा । अयं णं’ इत्यादि

(गोयमा !) इ गौतम ! (अयं णं जंजुद्दीवे दीवे) आ जंजुद्दीप नामके
द्वीप (सव्वदीवसमुद्धानं) समस्त द्वीपों अने समुद्रोंकी (सव्ववभंतराए)
सर्व प्रकाशकी मध्यवर्ती छे आथी ते (सव्वखुडुआए) लघुकी नामके छे
(वट्टे) ते पलयना (अगदी) जेयो वृत्ताकार गोल छे (तेह्हापूय-संठाण-संठिए)
पुडलाना आकार जेयो गोल छे (वट्टे रहचक्कवाल-संठाण-संठिए)
रथना पैदा जेयो गोल छे (वट्टे पुक्खरकणिया-संठाण-संठिए) धमणनी
दण्डिंठ जेयो गोल छे (वट्टे पडिपुण्ण-चट्ट-संठाण-संठिए) पूण्णचट्टम उण

फासं जाणइ पासइ ? गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ॥ सू० ७२ ॥

मूलम्—से केणट्ठेणं भंते । एवं वुच्चइ—छउमत्थे णं मणुस्से तेसिं णिज्जरापोग्गलाणं णो किंचि वण्णेणं वण्णं जाव जाणइ पासइ ? ॥ सू० ७३ ॥

कालादिरूप, 'गधेन गध' गन्धेन गन्धम्, 'रसेन रसं' रसेन रसम्, 'फासेण फास' स्पर्शेन स्पर्श 'जाणइ' जानाति विशेषत, 'पासइ' पर्यति सामान्यत किम्?, उत्तरमाह— 'गोयमा' हे गौतम ! 'णो इणट्ठे समट्ठे' नायमर्थ समर्थ =सगत, कर्मपुद्गलाना साप्त- गयज्ञानगम्यत्वात् । अत्र उद्मस्थगन्धेनातिगयज्ञानरहितस्य निवृत्तत्वादिति भाव । एव गन्धादयोऽपि ज्ञेया ॥ सू० ७२ ॥

टीका—'से केणट्ठेण भते !' इत्यादि । 'से केणट्ठेण भते !' अथ केनाऽर्थेन भदन्त ! 'एव वुच्चइ' एवमुच्यते—'उउमत्थे ण मणुस्से' उद्मस्थ खलु मनुष्य 'तेसिं णिज्जरापोग्गलाणं' तेषा निर्जरापुद्गलाना 'णो किंचि वण्णेणं वण्णं जाव जाणइ पासइ' नो किञ्चिद्वर्णेन वर्णं यावज्जानाति पर्यति ॥ सू० ७३ ॥

गधेण गध रसेण रस फासेण फास जाणइ पासइ) वर्ण से वर्ण को, गध से गंध को, रस से रस को और स्पर्श से स्पर्श को जानता है देखता है ? उत्तर—(गोयमा !) हे गौतम ! (णो इणट्ठे समट्ठे) यह अर्थ सिद्धान्त से समर्थित नहीं है । अर्थात् उद्मस्थ केवली भगवान् के निर्जराप्रधान पुद्गलों के रूप, रस, गध, और स्पर्श को किंचिन्मात्र भी नहीं जान सकता है, न देख सकता है ॥ सू० ७२ ॥

'से केणट्ठेण भते !' इत्यादि ।

(भते !) हे भदत ! (से) यह बात (केणट्ठेण एव वुच्चइ) किस-कारण ऐसी कही

वर्णने, गधधी गधने, रसधी रसने अने स्पर्शधी स्पर्शने लक्ष्य छे ? लुब्धे ? उत्तर—(गोयमा !) हे गौतम ! (णो इणट्ठे समट्ठे) आ अर्थ सिद्धातवी समर्थन पावेवो नथी, अर्थात् छद्मन्ध पुरुष केवली भगवानना निर्जराप्रधान पुद्गलाना रूप, रस, गध तथा स्पर्शने विहित मात्र पणु लक्ष्यी शकता नथी, तेम लोभ शकता पणु नथी (सू० ७२)

'से केणट्ठेण भते !' इत्यादि

(भते !) हे भदन्त ! (से) आ बात (केणट्ठेण एव वुच्चइ) आ

मूलम्—देवे णं महड्डिए महज्जुइए महच्चले महाजसे
महासोक्खे महाणुभावे सविलेवणं गंधसमुग्गयं गिण्हइ, गिण्हित्ता
तं अवदालेइ, अवदालित्ता जाव इणामेवत्ति कट्टु केवल-

टीका—‘देवे ण’ इत्यादि । ‘देवे ण’ देव गल ‘महड्डिए’ महड्डिक =
विपुलैश्वर्ययुक्त, ‘महज्जुइए’ महाघुतिक = महातेजसा, ‘महच्चले महाजसे’ महाबलो
महायथा ‘महासोक्खे’ महासौग्य = महासुग्ग, ‘महाणुभावे’ महानुभाव, ‘सविलेवण’
सत्रिलेपन ‘गंधसमुग्गयं’ गन्धसमुद्रगन्ध = गन्धसमुद्रक ‘गिण्हइ’ गृह्णाति, ‘गिण्हित्ता’ गृही वा
त = गन्धसमुद्रगन्ध ‘अवदालेइ’ अवदालयति = उदघाटयति, ‘अवदालित्ता’ अवदाल्य =
उदघाट्य, ‘जाव इणामेवत्ति कट्टु’ यावत् इदमेवमिति कृत्वा, इह यावच्छब्द परिमाण-
वर्धकस्त्वान्नादित्यस्य सापेक्ष, इदं = गमनम्, एवम् = टोटिकात्रय यावता कालेन भवति तावत्का-

विक्रमवाला है । इसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्तरसं योजन तीन कोश
एकसौ अष्टासं धनुष साडे तेरह अगुल से कुछ अधिक है । उससे यह परिवर्धित है ॥ सू ७४ ॥

‘देवे ण महड्डिए’ इत्यादि ।

(महड्डिए) महाकृद्धि का धारी (महच्चले) महाबलिष्ठ (महाजसे) अतिगय
यशस्वी (महासोक्खे) अत्यन्तसौख्यवाले (महाणुभावे) एवं अत्यत्त प्रभावशाली ऐसा
कोई (देवे ण) देव (सविलेवण गंधसमुग्गय) विलेपनसहित एक गन्ध के समुद्रक
(पेटी) को (गिण्हइ) लेवे, (गिण्हित्ता) और लेकर उसे (अवदालेइ) वहाँ पर
खोले, (अवदालित्ता) खोलकर (जाव इणामेवत्ति कट्टु केवलरूप जवुदीव दीव)

प्राणो छे तेनो परिध त्रयु लाअ भोण उन्नर असो सत्तावीश योन्न त्रयु
टोश ओउसो अट्ठावीस धनुष अने साडा तेर आगणथी जग वधारे छे ते
अट्ठा वेगवाभा छे (सू ७४)

‘देवे ण महड्डिए’ इत्यादि

(महड्डिए) महाकृद्धिना धारी (महच्चले) महाबलिष्ठ (महाजसे)
अतिगय यशस्वी (महासोक्खे) अत्यत्त सौख्यवाला (महाणुभावे) तेभज्ज
अत्यत्त प्रभावशाली अथवा कौर्ष (देवे ण) देव (सविलेवण गन्धसमुग्गय)
विलेपन सहित अत्र गन्धसमुद्रगन्ध (सुगन्धद्रव्यनी पेटी) ने (गिण्हइ)
लीअे, (गिण्हित्ता) अने लधने तेने (अवदालेइ) त्याज्ज उधाडे, (अवदालित्ता)
उधाडीने (जाव इणामेवत्ति कट्टु केवलरूप जवुदीव दीव) ते सभस्त ज्ज पृथी-

वट्टे रहचक्रवाल-संठाण-संठिए वट्टे पुम्खर-कणिया-संठाण-
 संठिए वट्टे पडिपुण्ण-चंद-संठाणसंठिए एक जोयणसयसहस्सं
 आयामविक्खवेणं तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलस सहस्साइं
 दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे अट्टावीसं च
 धणुसयं तेरस य अगुलाइं अद्दगुलियं च किंचि विसेसाहिए
 परिक्खेवेणं पण्णत्ते ॥ सू० ७४ ॥

सस्थान-संस्थित -चक्रवाल=मण्डल, मण्डलवर्धर्मयोगाच्च रथचक्रमपि रथचक्रवाल, तसस्थानेन
 संस्थित -रथचक्राऽऽकारसंस्थित इत्यर्थ 'वट्टे' वृत्त 'पुम्खर-कणिया संठाण संठिए वट्टे'
 पुम्खरकणिका-स्थान-संस्थित -पद्मराजकोशसदृशाकारयुक्त, 'एकं जोयणसयसहस्सं
 आयामविक्खवेणं' एक योजनगतसहस्रम् आयामविक्खवेण=द्वैर्व्यपरिणाहाभ्यामेकलज्योज-
 नप्रमाण, 'वट्टे' वृत्त, 'पडिपुण्ण-चंद-संठाण संठिए' प्रतिपूर्ण-चन्द्र-संस्थान-संस्थित,
 'तिण्णि जोयणसयसहस्साइं' त्रीणि योजनगतमहत्वाणि=त्राणि लक्षाणि योजनानि, 'सोलस
 सहस्साइं' षोडश महत्वाणि, 'दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए' द्वे च सप्तविंशे योजनशते=
 सप्तविंशत्यधिके द्वे शते योजनानि 'तिण्णि य कोसे' त्राश्च कोशान 'अट्टावीसं च धणुसय'
 अष्टात्रिंश च अनुगतम्=अष्टात्रिंश यधिकगतधनूपि, 'दस य अगुलाइं' त्रयोदश चाङ्गुलानि
 'अद्दगुलियं च' अद्वाङ्गुलिकञ्च 'किंचि विसेसाहिए' किञ्चिद्विशेषाऽधिक 'परिक्खेवेणं'
 परिक्षेपम्=पगिधिना 'पण्णत्ते प्रज्ञप्तम् ॥ सू० ७४

कणिया-संठाण-संठिए) कमलक्री कर्णिका के जैसा गोल है। (वट्टे पडिपुण्ण-
 चंद-संठाण-संठिए) पूर्णचन्द्रमण्डल के जैसा गोल है। (एक जोयणसयसहस्सं
 आयामविक्खवेणं तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलससहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे
 जोयणसए तिण्णि य कोसे अट्टावीसं च धणुसयं तेरस य अगुलाइं अद्दगुलियं च
 किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते) यह जवूदीप एक व्याप योजनका आयाम एव

७२०। गोल छे (एकक जोयण सयसहस्सं आयामविक्खवेणं तिण्णि जोयण
 सयसहस्साइं सोलससहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे
 अट्टावीसं च धणुसयं तेरस य अगुलाइं अद्दगुलियं च किंचिद्विशेषाहिए परिक्खेवेणं
 पण्णत्ते) आ ७७ जूदीप १ लाख थी-नना आयाम तेम ७ वि०३ अवाणे लाणे-

मूलम्—देवे णं महड्डिए महज्जुडए महच्चले महाजसे
महासोक्खे महाणुभावे सविलेवणं गंधसमुग्गयं गिण्हइ, गिण्हित्ता
तं अवदालेइ, अवदालित्ता जाव इणामेवत्ति कट्टु केवल—

टीका—‘देवे णं’ इत्यादि । ‘देवे णं’ देव खलु ‘महड्डिए’ महड्डिक =
विपुलैर्धर्ययुक्ता, ‘महज्जुडए’ महाघुतिक = महातेजसा, ‘महच्चले महाजसे’ महावलो
महायशा ‘महासोक्खे’ महासौख्य = महानुगी, ‘महाणुभावे’ महानुभाव, ‘सविलेवणं’
सविलेपन ‘गंधसमुग्गयं’ गन्धसमुद्राक्रम = गन्धनपुटक ‘गिण्हइ’ गृह्णाति, ‘गिण्हित्ता’ गृहीया
त = गन्धसमुद्राक्रम ‘अवदालेइ’ अत्रालयति = उद्घाटयति, ‘अवदालित्ता’ अत्रालय =
उद्घाटय, ‘जाव इणामेवत्ति कट्टु’ यावत् इदमेवमिति कृत्वा, इह यावच्छब्द परिभाषा-
र्कस्तावदित्यस्य सापेक्ष, इद = गमनम्, एवम् = टोटिकानय यावता कालेन भवति ताव का-

विष्कभवात् है । इसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्तारस योजन तीन कोश
एकसौ अठारस धनुष साडे तेरह अगुल से कुछ अधिक है । उससे यह परिवेष्टित है ॥ सू ७४ ॥

‘देवे णं महड्डिए’ इत्यादि ।

(महड्डिए) महाकृद्धि का धारी (महच्चले) महावलिष्ठ (महाजसे) अतिशय
यशस्वी (महासोक्खे) अत्यन्तसौख्यवाले (महाणुभावे) एवं अत्यत प्रभावशाली ऐसा
कोई (देवे णं) देव (सविलेवणं गंधसमुग्गयं) विलेपनसहित एक गंध के समुद्रक
(पेटी) को (गिण्हइ) लेवे, (गिण्हित्ता) और लेकर उसे (अवदालेइ) वहीं पर
खोले, (अवदालित्ता) खोलकर (जाव इणामेवत्ति कट्टु केवलरुप्य जवुदीव दीव)

प्रायेः छे तेने परिध त्रयु लाख सोण डलर जने सत्तावीश योजन त्रयु
कोश ओधने अट्ठावीस धनुष अने साडा तेर आगण्ठी ७२५ वधारे छे ते
अटला घेरावाभा छे (सू ७४)

‘देवे णं महड्डिए’ इत्यादि

(महड्डिए) महाकृद्धिना धारी (महच्चले) महावलिष्ठ (महाजसे)
अतिशय यशस्वी (महासोक्खे) अत्यत सौख्यवाला (महाणुभावे) तेभन्
अत्यत प्रभावशाली ऐसा कोई (देवे णं) देव (सविलेवणं गंधसमुग्गयं)
विलेपन सहित ओह गंधसमुद्रक (सुगंधद्रव्यनी पेटी) ने (गिण्हइ)
लीये, (गिण्हित्ता) अने लधने तेने (अवदालेइ) त्याज् उधारे, (अवदालित्ता)
उधारीने (जाव इणामेवत्ति कट्टु केवलरुप्य जवुदीव दीव) ते भभस्त ७ पृद्धी-

कप्पं जवुदीवं दीवं तिहिं अच्छराणिवाएहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्ठित्ता णं हव्वमागच्छेज्जा ॥ सू० ७५ ॥

मूलम्—से णूणं भंते । से केवलकप्पे जवुदीवे दीवे तेहिं घाणपोग्गलेहिं फुडे ? हंता । फुडे ॥ सू० ७६ ॥

लिकम्—सत्वरमित्यर्थ, इति कृत्वा, 'केवलकप्प' केवलकप्प=सपूर्ण, 'जवुदीवं' जम्बूद्वीप 'दीवं' द्वीप 'तिहिं' त्रिभि 'अच्छराणिवाएहिं' अच्छराणशब्दो देवगीघ्र, ओटिकायाचक्र, ओटिकाभिरित्यर्थ, 'तिसत्तखुत्तो' त्रिसत्तखत्व = एकविंशतिवारान् 'अणुपरियट्ठित्ता णं' अनुपर्यट्य = परिभ्रम्य खलु 'हव्वमागच्छेज्जा' शीप्रमागच्छेत् । ओटिकात्रयकालसमकाले एव सपूर्ण जम्बूद्वीपमेकविंशतिवारान् परिभ्रम्य शीप्रमागच्छेदित्यर्थ ॥ सू० ७५ ॥

टीका—गौतम पृच्छति—'से णूणं भंते !' इत्यादि । 'से णूणं भंते !' अथ नूनं हे भदन्त ! 'से केवलकप्पे जवुदीवे दीवे' स केवलकप्पे जम्बूद्वीपे द्वीपे 'तेहिं' ते, 'घाणपोग्गलेहिं' प्राणपुद्गलैः = गन्धपुद्गलैः 'फुडे' स्पृष्ट किम्, 'मगवानाह—'हता । फुडे' हन्त ! स्पृष्ट ॥ सू ७३ ॥

उस समस्त जवुदीप की (तिहिं अच्छराणिवाएहिं) तीन चुटकी बजाने में जितना समय लगे उतने समय में (तिसत्तखुत्तो) तीनगुणित सात—दक्कीस बार (अणुपरियट्ठित्ता) प्रदक्षिणा देकर (हव्वमागच्छेज्जा) वहाँ पर शीघ्र आजावे ॥ सू ७५ ॥

'से णूणं भंते !' इत्यादि ।

गौतम पूछते हैं—(से णूणं भंते । से केवलकप्पे जवुदीवे दीवे) हे भदन्त ! वह समस्त जवुदीप (तेहिं घाणपोग्गलेहिं फुडे ?) क्या उन समस्त सुगन्धित पुद्गलों से स्पृष्ट हो जाता है ? उत्तर—(हता ! फुडे) हा ! हो जाता है ॥ सू ७६ ॥

पनी (तिहिं अच्छराणिवाएहिं) त्रयु अपटी बगाडवाभा नेटलो समय लागे तेटला समयभा (तिसत्तखुत्तो) ओठपीसवार (अणुपरियट्ठित्ता) प्रदक्षिणा दधने (हव्वमागच्छेज्जा) त्या पाछा जट्टी आवी नय (सू ७५)

'से णूणं भंते !' इत्यादि

गौतम पूछे छे—(से णूणं भंते ! से केवलकप्पे जवुदीवे दीवे) हे भदन्त ! आ समस्त जवुदीप (तेहिं घाणपोग्गलेहिं फुडे) शु ते समस्त सुगन्धित पुद्गलवासी स्पृष्ट थध नय छे ? उत्तर—(हता ! फुडे) हा, थध नय छे (सू ७६)

मूलम्—छउमत्ये णं भंते । मणुस्से तेसिं घाणपो-
गलाणं किंचि वण्णेणं वण्णं जात्र जाणइ पासइ ? गोयमा !
णो इणट्ठे समट्ठे ॥ सू० ७७ ॥

मूलम्—से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुचइ—छउमत्ये

टीका—पुनर्गीतम पृच्छति—‘छउमत्ये ण’ इत्यादि । ‘भंते’ हे भदन्त ।
‘छउमत्ये ण मणुस्से’ छउमत्ये खलु मनुष्य, ‘तेसिं घाणपोगलाणं’ तेषा पाणपुद्गलाना
‘किंचि वण्णेणं वण्णं जात्र जाणइ पासइ’ किञ्चिद्वर्णैः वर्णं यावज्जानाति पश्यति किम् ?
भगवानाह—‘गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे’ गौतम ! नाऽप्यमर्थं समर्थं ॥ सू० ७७ ॥

टीका—‘से तेणट्ठेणं’ इत्यादि । ‘से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुचइ’ अथ

‘छउमत्ये ण भंते ! मणुस्से’ इत्यादि ।

पुनर् गौतम ने पूछा—(छउमत्ये ण भंते ! मणुस्से) हे भदन्त ! क्या उग्रस्थ
मनुष्य, (तेसिं घाणपोगलाणं) उन सुगन्धित पुद्गलों को (किंचि वण्णेणं वण्णं जात्र)
वर्ण से यावत् गंध स्पर्शादि से थोड़ा भी (जाणइ पासइ) जान सकता है ? देख सकता
है ? प्रभु ने कहा कि (गोयमा !) हे गौतम ! (णो इणट्ठे समट्ठे) यह अर्थ समर्थ
नहीं है ॥ सू० ७७ ॥

‘से तेणट्ठेणं’ इत्यादि ।

(से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुचइ) हे गौतम ! उग्रस्थ उन निर्जरापुद्गलों को
गन्धादिगुणों द्वारा थोड़ा भी नहीं जान सकता है—यह जो बात कही गई है सो इसलिये

‘छउमत्ये ण भंते ! मणुस्से’ इत्यादि

पुनर् गौतमे पृच्छथु—(छउमत्ये ण भंते ! मणुस्से) हे भदन्त ! श्रु उग्रस्थ मनुष्य,
(तेसिं घाणपोगलाणं) ते सुगन्धित पुद्गलाने वर्णैश्चि तेभ्य गंध स्पर्श
आदिभिः चरा पक्षु (जाणइ पासइ) ज्ञास्यी शक्ते छे ? ज्ञेयं शक्ते छे ? प्रभुञ्चे
उच्यु षे (गोयमा !) हे गौतम ! (णो इणट्ठे समट्ठे) आ अर्थं समर्थं
नथी (सू० ७७)

‘से तेणट्ठेणं’ इत्यादि

(से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुचइ) हे गौतम ! उग्रस्थ, ते निर्जरा-
पुद्गलाने गंध आदि-गुणों द्वारा चरा पक्षु ज्ञास्यी शक्ते नथी अर्थं न

णं मणुस्से तेसिं निज्जरापोग्गलाणं णो किंचि वण्णेणं वण्णं
जाव जाणइ पासइ ॥ सू० ७८ ॥

मूलम्—एए सुहुमा णं ते पोग्गला पण्णत्ता, समणा-

तेनाऽर्थेन हे गौतम । एवमुच्यते—‘छउमत्थे ण मणुस्से’ छउमत्थे मणुस्से ‘तेसिं
णिज्जरापोग्गलाण’ तेषां निर्जरापुद्गलाणां ‘न किंचि वण्णेण’ न किंचिद् वर्णेन ‘वण्ण’
वर्गं ‘जाव जाणइ पासइ’ यावज्जानाति पश्यति । तस्य उग्रस्थस्य सातिशयजानामावास
यथावस्थितस्वरूपेण वर्गादिकं न जानातीत्यर्थः ॥ सू ७८ ॥

टीका—‘एए सुहुमा’ इत्यादि । ‘एए’ एते वर्गादियस्तथा ‘सुहुमा’
सूहमा सन्ति यत् तान् यथावस्थितस्वरूपेण उग्रस्थो न जानाति, तथा ‘ते पोग्गला’ ते
पुद्गला = निर्जरापुद्गला अतिमूहमा ‘पण्णत्ता’ प्रजमा । ‘समणाउसो’ हे श्रमण ! हे
आयुष्मन् ! अथवा—श्रमणशाखायायुष्माथेति समासस्तस्यामन्त्रण हे श्रमणायुष्मन् ! हे गौतम !

कही गई है कि (उउमत्थे ण मणुस्से) उस उग्रस्थ के सातिशय ज्ञान का अभाव है,
अतः वह यथावस्थित रूप से (तेसिं णिज्जरापोग्गलाण) उन निर्जरित पुद्गलों के (णो
किंचि वण्णेण वण्ण जाव जाणइ पासइ) वर्णादिक को थोड़ा भी नहीं जान सकता है,
न देख सकता है ॥ सू ७८ ॥

‘एए सुहुमा ण’ इत्यादि ।

(एए सुहुमा णं ते पोग्गला पण्णत्ता) उन निर्जरापुद्गलों को उग्रस्थ यथा-
वस्थित रूपसे इस कारण से भी नहीं जान सकता है कि उन पुद्गलों के वर्गादिक गुण
मूहम है, अतः (समणाउसो ! सब्बलोक पि य ण ते फुसित्ता ण चिट्ठति) हे आयु-

वात कही छे ते ओ भाटे कहेवी छे उ (उउमत्थे ण मणुस्से) ते उग्रस्थने
सातिशय ज्ञानने अभाव छे तेरी ते यथावस्थितरूपथी (तेसिं णिज्जरापो-
ग्गलाण) ते निर्जरित पुद्गलाणां (णो किंचि वण्णेण वण्ण जाव जाणइ पासइ)
वर्णु आदिउने जरा पणु लणुी शकतो नथी, लोछ पणु शकतो नथी (सू ७८)

‘एए सुहुमा ण’ इत्यादि

(एए सुहुमा णं ते पोग्गला पण्णत्ता) ते निर्जरापुद्गलाणां उग्रस्थ
यथावस्थितरूपथी ओ जरापथी पणु लणुी शकतो नथी छे ते पुद्गलाणां वर्णु
आदिउ गुणु मूहम छे तेथी (समणाउसो ! सब्बलोक पि य ण फुसित्ता ण
चिट्ठति) छे आयुष्मन् श्रमणु ! जेवी नीते उग्रस्थ गध आदिउ गुणो द्वारा

उसो । सच्चलोयं पि य णं ते फुसित्ता णं चिट्ठंति ॥ सू० ७९ ॥

मूलम्—कम्हा णं भंते । केवली समोहणंति ? कम्हा णं
केवली समुग्घायं गच्छंति ? गोयमा । केवलीण चत्तारि कम्मंसा

यथाऽतिसूक्ष्मत्वाद् गन्धपुद्गलान्न जानायेय निर्जरापुद्गलानपीति दृष्टान्तप्रदर्शनम् । 'सच्च-
लोय पि य णं' सर्वलोकेषुमपि च गच्छते=निर्जगपुद्गल 'फुसित्ता णं' स्थूयसा गच्छ
'चिट्ठंति' निश्चिन्ति ॥ सू ७९ ॥

टीका—गौतम पृच्छति—'कम्हा णं भंते !' इत्यादि । 'कम्हा णं भंते !' कस्मा-
त्पल्लु भदन्त ! = ह भदन्त ! कस्मात् पल्लु 'केवली' केवलिन 'समोहणति' समुद्घान्ति = कस्मै
प्रयोजनाय केवलिन समुद्घात कुर्वन्ती यर्थ, उक्तमर्थ—पुन मुग्घोधार्यमाट—'कम्हा णं केवली'
कस्मात् पल्लु केवलिन, 'समुग्घायं' समुद्घातम् = आमप्रदेशप्रसारकता गच्छन्ति = प्राप्नुवन्ति,
भगवानुत्तरमाह—'गोयमा !' गौतम । 'केवलीण चत्तारि कम्मंसा' केवलिना चत्वार

पन् श्रमण ! जिस प्रकार उन्नत्य गन्धादिक गुणा द्वारा अत्यन्त सूक्ष्म रूप से परिणत गन्ध
पुद्गलों को यथावस्थित रूपसे नहीं जान सकता है उसी प्रकार वह अत्यन्त सूक्ष्मरूप से
परिणत होने के कारण उन निर्जगपुद्गलों को भी गन्धादिक गुणद्वारा न जान सकता है, न
देख सकता है । इस दृष्टान्त से यह बात स्फुट हो जाती है ॥ सू ७९ ॥

'कम्हा णं भंते !' इत्यादि ।

गौतम ने पुन प्रश्न किया—(भंते !) ह भदन्त ! (कम्हा णं) किस कारण से
(केवली) केवली भगवान् (समोहणति) समुद्घात करते हैं ? अर्थात्—केवलिया को
समुद्घात किस प्रयोजन के लिये करना पड़ता है ? उत्तर—(गोयमा !) हे गौतम ! (केव-
लीण चत्तारि कम्मंसा अपल्लिकरीणा भवति) केवलियों के चार कर्म अवशिष्ट रहते

अत्यन्त सूक्ष्मरूपमा परिष्णाम पाभेला गन्धपुद्गलाने यथावस्थितरूपधी
जाणी शकता नथी, तेवीण् रीते अत्यन्त सूक्ष्मरूपमा परिष्णाम पाभेला होवाने
कारण्ते ते निर्जरापुद्गलाने पण्ण गन्ध आदिड शुष्ण द्वारा जाणी शकता नथी, तेम
ज्येष्ठ शकता नथी आ दृष्टान्तधी ज्ये वात स्पष्ट थर्थ जाय छे (सू ७९)

'कम्हा णं भंते ! केवली समोहणति' धत्थादि

गौतमे वणी पाछे प्रश्न किये—(भंते !) हे भदन्त ! (कम्हा णं) क्या
कारणधी (केवली) केवली भगवान् (समोहणति) समुद्घात करते छे, अर्थात्—
केवलीज्येने समुद्घात ज्या प्रयोजनने भाटे करेवा पडे छे ? उत्तर—(गोयमा !)
हे गौतम ! (केवलीण चत्तारि कम्मंसा अपल्लिकरीणा भवति) केवलीज्येने गार

अपलिक्खीणा भवन्ति, तंजहा—(१) वेयणिज्जं (२) आउयं ३ णामं
 गोत्तं सव्ववहुए से वेयणिज्जे कम्ममे भवइ, सव्वत्थोवे से आउए
 कम्ममे भवइ। विसमं समं करेइ वधणेहिं ठिईहि य, विसम-
 समकरणयाए वधणेहिं ठिईहि य। एवं खलु केवली समोहणंति,
 एवं खलु केवली समुग्घायं गच्छन्ति ॥ सू० ८० ॥

कर्मणा 'अपलिक्खीणा' अपरिक्षीणा = अवशिष्टा 'भवन्ति' भवन्ति = सन्ति, 'तंजहा'
 तथा—'वेयणिज्जं' वेदनीयम्, 'आउयं' आयु, 'णामं' नाम, 'गोत्तं' गोत्रम्,
 'सव्ववहुए से वेयणिज्जे कम्ममे भवइ' सर्ववहुलतद् वेदनीयं कर्म भवति, 'सव्वत्थोवे
 से आउए कम्ममे भवइ' सर्वस्तोक तद् आयु कर्म भवति, 'विसमं समं करेइ वधणेहिं
 ठिईहि य' विषमं समं करोति वधनै—प्रदेशान्धानुभागान्धावाश्रियेति भाव, स्थितिभिश्च=
 स्थितिविधिशेषैश्च, 'विसमसमकरणयाए वधणेहिं ठिईहि य एवं खलु केवली
 समोहणंति' अत्रैव पदयोजना—एव खलु विषमसमकरणाय = विषमकर्मणा समीकरणार्थं
 वधनै स्थितिभिश्च केवलिन 'समोहणंति' समुद्गच्छन्ति—समुद्घातं कुर्वन्ति 'एवं खलु
 केवली समुग्घायं गच्छन्ति' एव खलु केवलिन समुद्घातं गच्छन्ति ॥ सू० ८० ॥

है, (तंजहा) वे ये है—(वेयणिज्ज आउय णाम गोत्त) वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ।
 (सव्ववहुए से वेयणिज्जे कम्ममे भवइ) केवली में सत्रसे अधिक स्थितिवाला उस
 समय वेदनाय कर्म रहता है। (सव्वत्थोवे से आउए कम्ममे भवइ) तथा सबसे स्तोक
 आयु कर्म रहता है। (विसमं समं करेइ वधणेहिं ठिईहि य विसमसमकरणयाए वधणेहिं
 ठिईहि य) इस विषमता को सम करने के लिये अर्थात् आयु कर्म की स्थिति के समान
 वेदनायादिक कर्मों की स्थिति करने के लिये केवली भगवान् समुद्घात करते हैं। अन्य

८० भं आधी रहे छे, (तंजहा) ते आ छे (वेयणिज्ज आउय णाम गोत्त)
 वेदनीय, आयु, नाम अने गोत्र (सव्ववहुए से वेयणिज्जे कम्ममे भवइ)
 डेवणीभा सर्वथी पधारे स्थितिवाला ते समय वेदनीय कर्म रहे छे (सव्व-
 त्थोवे से आउए कम्ममे भवइ) तथा सर्वथी स्तो० आयु कर्म रहे छे (विसम
 सम करेइ वधणेहिं ठिईहि य, विसमसमकरणयाए वधणेहिं ठिईहि य) आ
 विषमताने सम करवा भाटे अर्थात् आयु कर्मनी स्थिति परापर वेदनीय

मूलम्—सव्वे वि णं भंते । केवली समुग्घायं गच्छंति ?
णो इण्ढे समट्ठे ।

अकित्ताणं समुग्घायं, अणता केवली जिणा ।

जरामरणविप्पमुक्का, सिद्धिं वरगइं गया ॥ सू० ८१ ॥

टीका—गौतम पृच्छति—‘सव्वे वि णं’ इत्यादि । ‘सव्वे वि णं भंते !’ सर्व-
सपि खलु भदन्त ! = इ भदन्त ! सर्वेऽपि खलु ‘केवली’ केवलिन ‘समुग्घायं’ समुद्घान
‘गच्छंति’ गच्छन्ति किम् ‘भगवान्’ ‘णो इण्ढे समट्ठे’ नाऽयमर्थं समर्थ ।

“अकित्ता ण समुग्घाय, अणता केवली जिणा ।

जरामरणविप्पमुक्का, सिद्धिं वरगइं गया ॥ १ ॥”

कर्मों का स्थितिवध, अनुभागवध एव प्रदेशवध, समुद्घात करने से आयुर्कर्म के स्थितिवध,
अनुभागवध एव प्रदेशवध के बराबर हो जाते हैं । (एवं खलु केवली समोहणंति, एव
खलु केवली समुग्घाय गच्छन्ति) इस प्रकार केवलियों के समुद्घात करने का यह
प्रयोजन है । इस प्रकार व केवली समुद्घात करते हैं ॥ सू ८० ॥

‘सव्वे वि णं भंते !’ इत्यादि ।

प्रश्न—(भंते !) हे भदन्त ! क्या (सव्वे वि णं केवली) समस्त केवली
भगवान् (समुग्घाय गच्छन्ति) समुद्घात करते हैं । (णो इण्ढे समट्ठे) हे गौतम ! यह
अर्थ समर्थित नहीं है, अर्थात्—समस्त केवली भगवान् समुद्घात करें ऐसा कोई नियम

आदि क उर्भोनी स्थिति उरवा माटे डेवली भगवान् समुद्घात करे छे खीन्त
उर्भोना स्थितिभ ध, अनुभागवध तेभञ्ज प्रदेशभ ध, समुद्घात करवाथी आयु-
उर्भोना स्थितिभ ध, अनुभागवध तेभञ्ज प्रदेशभ धना षशभर थर्ध न्य छे
(एव खलु केवली समोहणंति एव खलु केवली समुग्घाय गच्छन्ति) आ प्रकारे
डेवलीओने समुद्घात करवानु आ प्रयोजन छे आ प्रकारे ते डेवली समु-
द्घात करे छे (सू ८०)

‘सव्वे वि णं भंते ! केवली’ इत्यादि

प्रश्न—(भंते !) हे भदन्त ! शु (सव्वेवि णं केवली) वधा डेवली
भगवान् (समुग्घाय गच्छन्ति) समुद्घात करे छे ? (णो इण्ढे समट्ठे) हे
गौतम ! आ अर्थ समर्थित नहीं, अर्थात् समस्त डेवली भगवान् समुद्घात

अपलिखलीणा भवन्ति, तंजहा—(१) वेयणिज्जं ।(२) आउयं ३ णामं
गोत्तं सव्ववहुए से वेयणिज्जे कम्मे भवइ, सव्वत्थोवे से आउए
कम्मे भवइ । विसमं समं करेइ वंधणेहिं ठिईहि य, विसम-
समकरणयाए वंधणेहिं ठिईहि य । एवं खलु केवली समोहणंति,
एवं खलु केवली समुग्घायं गच्छंति ॥ सू० ८० ॥

कर्मशा 'अपलिखलीणा' अपरिक्षीणा = अवशिष्टा 'भवन्ति' भवन्ति = सन्ति, 'तं जहा'
तद्यथा - 'वेयणिज्ज' वेदनीयम्, 'आउय' आयु, 'णाम' नाम, 'गोत्त' गोत्रम्,
'सव्ववहुए से वेयणिज्जे कम्मे भवइ' सर्वगहुलतद् वेदनीयं कर्म भवति, 'सव्वत्थोवे
से आउए कम्मे भवइ' सर्वस्तोक तद् आयु कर्म भवति, 'विसमं समं करेइ वंधणेहिं
ठिईहि य' विषमं समं करोति बन्धनै - प्रदेशान्धानुभागान्धावाश्रित्येति भावः, स्थितिभिश्च =
स्थितिवन्धविशेषैश्च, 'विसमसमकरणयाए वंधणेहिं ठिईहि य एव खलु केवली
समोहणंति' अत्रैव पदयोजना - एव खलु विषमसमकरणाय = विषमकर्मणा समीकरणार्थं
बन्धनै स्थितिभिश्च केवलिन 'समोहणंति' समुद्घन्ति - समुद्घातं कुर्वन्ति 'एवं खलु
केवली समुग्घायं गच्छन्ति' एव खलु केवलिन समुद्घातं गच्छन्ति ॥ सू० ८० ॥

है, (तं जहा) वे ये है - (वेयणिज्ज आउय णाम गोत्त) वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ।
(सव्ववहुए से वेयणिज्जे कम्मे भवइ) केवली में सबसे अधिक स्थितिवाला उस
समय वेदनाय कर्म रहता है । (सव्वत्थोवे से आउए कम्मे भवइ) तथा सबसे स्तोक
आयु कर्म रहता है । (विसमं समं करेइ वंधणेहिं ठिईहि य विसमसमकरणयाए वंधणेहिं
ठिईहि य) इस विषमता को सम करने के लिये अर्थात् आयु कर्म की स्थिति के समान
वेदनायादिक कर्मों की स्थिति करने के लिये केवली भगवान् समुद्घात करते हैं । अन्य

कर्म पाडी रहे छे, (तं जहा) ते आ छे (वेयणिज्ज आउय णाम गोत्त)
वेदनीय, आयु, नाम अने गोत्र (सव्ववहुए से वेयणिज्जे कम्मे भवइ)
वेदनीया सर्वथी वधादे स्थितिवाला ते समय वेदनीय कर्म रहे छे (सव्व-
त्थोवे से आउए कम्मे भवइ) तथा सर्वथी स्तोक आयु कर्म रहे छे (विसम
सम करेइ वंधणेहिं ठिईहि य, विसमसमकरणयाए वंधणेहिं ठिईहि य) आ
विषमताने सम करवा भाटे अर्थात् आयु कर्मनी स्थिति पगअर वेदनीय

मूलम्—केवलिसमुद्घाए णं भंते । कइसमइए पणत्ते ?
गोयमा । अट्टसमइए पणत्ते; तं जहा—पढमे समए दंडं करेइ.

माण यत् मोक्ष प्रयामनोऽभिमुखीकरण तत्, तच्च उदयावत्रिकाया कर्मपुद्गलप्रक्षेपव्या-
पाररूप उदीरणाविशेष । केवलिसमुद्घात उर्वन् केवली प्रथममेवाऽऽवर्जीकरण करोति ।
भगवानाह—‘गोयमा ।’ इ गौतम । ‘असखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए पणत्ते’
अमायेयसमयिकम् भान्तमौहर्तिक प्रज्ञम् ॥ सू० ८२ ॥

टीका—गौतम पृच्छति—‘केवलिसमुद्घाए णं’ इत्यादि । ‘केवलिसमुद्घाए
णं भंते !’ केवलिसमुद्घात खलु भदन्त ! हे भदन्त ! केवलिसमुद्घात ‘कइसमइए
पणत्ते’ कतिसमयिक प्रज्ञम्, भगवानाह—‘गोयमा’ हे गौतम । ‘अट्टसमइए
पणत्ते’ अट्टसमयिक प्रज्ञम् । अतर्मुहूर्तभाविपरमपदे केवलिनिय समुद्घातो भवति स
केवलिसमुद्घात, स चाष्टसु समयेषु भवती यर्थ । तदेवाह—‘तजहा’ तद्यथा ‘पढमे समए

अभिमुख क्रिया जाता है उसका नाम आवर्जीकरण है । यह केवलिसमुद्घात के पहिले होता
है । उदयावलिा में कर्मपुद्गल का प्रक्षेप करने—रूप व्यापार का यह नामान्तर है ॥ सू० ८२ ॥

‘केवलिसमुद्घाए णं भंते !’ इत्यादि ।

प्रश्न—(भंते !) हे भगवन् ! (केवलिसमुद्घाए णं कइसमइए पणत्ते)
केवलिसमुद्घात कितना समय का कहा गया है ? उत्तर—(गोयमा) हे गौतम !
(अट्टसमइए पणत्ते) इसका काल ८ समय का कहा गया है । अन्तर्मुहूर्त में
परमपद का लाभ जिनको होने वाला है उसे केवलियों द्वारा जो समुद्घात किया जाता
है उसका नाम केवलिसमुद्घात है । इसका काल ८ समय का है । (तजहा) वह
समुद्घात इस प्रकार से होता है—(पढमे समए दंडं करेइ) प्रथम समय में केवली के

एव भोक्षणी आवे करवाभा आवे छे तेनु नाम आवए करण छे ते
केवलिसमुद्घातनी पडेला थाय छे उदयावलिाभा कर्मपुद्गलेने प्रक्षेप
करवा इय व्यापारनु आ नाभातर छे (सू० ८२)

‘केवलिसमुद्घाए णं भंते !’ इत्यादि

प्रश्न—(भंते !) हे भगवन् ! (केवलिसमुद्घाए णं कइसमइए पणत्ते)
केवलिसमुद्घातना कितना समय उडेला छे ? उत्तर—(गोयमा !) हे गौतम !
(अट्टसमइए पणत्ते) तेना काल ८ समयनो उडेला छे अतर्मुहूर्तभा परमपदने
लाभ नेभने थवानो होय छे एवा केवलीओ द्वारा ने समुद्घात करवाभा
आवे छे तेनु नाम केवलिसमुद्घात छे तेना काल ८ समयनो छे (तजहा)

मूलम्—कइसमए णं भंते ! आउज्जीकरणे पण्णत्ते !
 गोयमा । असंखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए पण्णत्ते ॥ सू० ८२ ॥

अहृत्वा खलु समुद्घातम्, अनन्ता केरन्निो जिना । जरामरण विप्रमुक्ता, सिद्धि
 वरगतिं गता ॥ १ ॥ अयमाव—पण्णमासायुषि अशिश्ट सति येषा केरल ज्ञानमुपपन्न ते
 नियमत समुद्घात कुर्वन्ति, अन्ये तु समुद्घात कुर्वन्ति न वा कुर्वन्तीति ॥ सू० ८१ ॥

टीका—गौतम पृच्छति—‘कइसमए णं भंते !’ कति-
 समय खलु भदन्त ! ‘आउज्जीकरणे पण्णत्ते’ आउर्जाकरण प्रज्ञमम् । आवर्ज्यतेऽभिमुख-
 क्रियते मोक्षोऽनेनेति—आवर्जस्तस्य करणविप्रक्षया चिप्रयय । केरलिसमुद्घातात् पूर्व क्रिय-

नहीं है । क्यों कि (समुग्घाय अक्किता) समुद्घात को नहीं भी करके (अणता केवली)
 अनत केवली (जिणा) जिन (जरामरणविप्पमुक्ता) जन्म, जरा एव मरण से रहित
 होकर (वरगइ) सिद्धिस्वरूप सर्वोत्कृष्ट गति को प्राप्त हुए हैं । भावार्थ—जिनकी आयु ६
 मास की बाकी बची है और अत्र उहे केवलज्ञान प्राप्त हुआ है तो ऐसी स्थिति में वे नियम
 से केवलिसमुद्घात करते हैं । बाकी क लिये ऐसा कोई नियम नहीं है कि समुद्घात
 करे ही ॥ सू ८१ ॥

‘कइसमए णं भंते !’ इत्यादि ।

प्रश्न—(भंते !) हे भदत ! (कइसमए णं आउज्जीकरणे पण्णत्ते) मोक्ष-
 प्राप्ति का आवर्जाकरण कितने समय का होता है । उत्तर—(असंखेज्जसमए अंतोमुहु-
 त्तिए पण्णत्ते) अनह्यात समय का अतर्मुहूर्त कहा है । जिसके द्वारा जीव मोक्ष के

उरे ज्येो डोई नियम नथी, डेमडे (समुग्घाय अक्किता) समुद्घात न पणु
 करीने (अणता केवली) अनत केवली (जिणा) जिन (जरामरणविप्पमुक्ता)
 जन्म, जरा तेमज मरणथी रहित यईने (वरगइ) सिद्धिस्वरूप सर्वोत्कृष्ट
 गतिने प्राप्त थया छे भावार्थ—नेमनी आयु छ मास बाकी रहे छे अने
 छवे तेमने केवलज्ञान प्राप्त थयु छे, तो ज्येी स्थितिमा तेज्यो नियमथी
 केवलिसमुद्घात उरे छे पाडीने भाटे ज्येो डोई नियम नथी डे समुद्घात
 करे ज. (सू ८१)

‘कइसमए णं भंते !’ इत्यादि

प्रश्न—(भंते !) हे भदन्त ! (कइसमए णं आउज्जीकरणे पण्णत्ते) मोक्ष
 प्राप्तिनु आवर्ज उरधु डेटला समयमा थाय छे उत्तर—(असंखेज्जसमए
 अंतोमुहुत्तिए पण्णत्ते) अनह्यात समयनु अतर्मुहूर्त कहेछु छे नेना द्वारा

समए लोयं पूरेइ, पंचमे समए लोयं पडिसाहरइ, छट्टे समये मंथं पडिसाहरइ, सत्तमे समए कवाडं पडिसाहरइ, अट्टमे समए दंडं पडिसाहरइ, पच्छा सरीरत्थे भवइ ॥ सू० ८३ ॥

मूलम्—से णं भंते ! तहा समुग्घायं गए कि मणजोगं

दधातेन प्रसारितान् आत्मप्रदेशान् सहरति, तदाह—‘पचमे समये’ इत्यादि । ‘पचमे समए लोयं पडिसाहरइ’ पचमे समये लोक प्रतिस्हरति=चतुर्भि समयैर्जगपूरणं कृत्वा पचमे समये आमप्रदेशान् अन्तरालावस्थितान् उपसहरति । ‘छट्टे समए मथ पडिसाहरइ’ षष्ठे समये मन्थान् प्रतिस्हरति । ‘सत्तमे समए कवाडं पडिसाहरइ’ सत्तमे समये कपाटं प्रतिस्हरति । ‘अट्टमे समए दंडं पडिसाहरइ’ अष्टमे समये दण्डं प्रतिस्हरति । ‘तओ पच्छा सरीरत्थे भवइ’ तत पश्चात् शरीरस्थो भवति ॥ सू. ८३ ॥

टीका—‘से ण भंते !’ इत्यादि । ‘से ण भंते !’ अथ खलु भदन्त ! ‘तहा

४ चार समय लगते है । सो ये सर्वप्रथम (पचमे समए लोयं पडिसाहरइ) पचम समय में अन्तराल मे स्थित उन आत्मप्रदेशों को उपसहृत करते है । (छट्टे समए मथ पडिसाहरइ) छठे समय में मथाकाररूप से स्थित उन आत्मप्रदेशों को सङ्गोचते है । (सत्तमे समए कवाडं पडिसाहरइ) ७ वे समय मे कपाटाकारता को और (अट्टमे समए दंडं पडिसाहरइ) आठवें समय मे दंडाकारता को सङ्गुचित करते है । (तओ पच्छा सरीरत्थे भवइ) उसके बाद आमस्थ हो जाते है ॥ सू० ८३ ॥

‘से ण भंते !’ इत्यादि ।

(से णं भंते ! तहा समुग्घायं गए किं मणजोगं जुजइ) हे भदत ! इस

सहुधी पडेला (पचमे समए लोयं पडिसाहरइ) पाचम समयमा, अंतरालमा रहेला ते आत्मप्रदेशोने उपसहार करे छे (छट्टे समए मथ पडिसाहरइ) छठ्ठा समयमा मथाकाररूपधी स्थित (रहेला) ते आत्मप्रदेशोने सङ्गोचे छे (सत्तमे समए कवाडं पडिसाहरइ) सातमा समयमा कपाटाकारताने, अने (अट्टमे समए दंडं पडिसाहरइ) आठमा समयमा दंडाकारताने सङ्गुचित करे छे (तओ पच्छा सरीरत्थे भवइ) त्यारपधी आत्मस्थ थधं लय छे (सू. ८३)

‘से ण भंते !’ इत्यादि

(से णं भंते ! तहा समुग्घायं गए किं मणजोगं जुजइ ?) हे भदन्त !

विईए समए कवाडं करेइ, तइए समए मंथं करेइ, चउत्ये

दडं करेइ' प्रथमे समये दण्ड करोति=प्रथमे समये ऊर्वाधोलोकान्त याक्प्रसारितैरात्मप्रदेशैर्दण्डाकारता कुरुते। 'विईए समए कवाड करेइ' द्वितीये समये कपाट करोति=द्वितीये समये पूर्वपश्चिमयोर्दिशोर्विस्तृतैरामप्रदेशैर्ब कपाटाकारता कुरुते। 'तइए समए मथ करेइ' तृतीये समये मन्थान करोति=तृतीये समये दक्षिणोत्तरयोर्दिशोरप्यामप्रदेशै कपाटाकारविस्तृतैर्मन्थानाकारता कुरुते। 'चउत्ये समए लोय पूरेइ' चतुर्थे समये लोकं पूरयति=चतुर्थे समये तदन्तरालपूरणेन सर्वलोकस्य पूरण कुरुते। एव समुद्रघात कुर्वन् केवली चतुर्भि समयैर्विश्वव्यापी भवति।

एव केवली स्वात्मप्रदेशाना विस्तारणेन कर्मलेशान् समीकृत्य विपरीतरूपेण समु-

आत्मप्रदेश दण्डाकार होते है, अर्थात् प्रथम समय मे उर्ध्वलोक एव अधोलोक के अन्त तक प्रसारित होकर आत्मप्रदेश दण्डाकारता को धारण करते है। (विईए समए कवाड करेइ) द्वितीय समय में वे ही आत्मप्रदेश पूर्व और पश्चिम दिशा में विस्तृत होकर कपाटाकारता को धारण करते है। (तइए समए मथ करेइ) तृतीय समय मे दक्षिण और उत्तरदिशा में विस्तृत होकर मन्थान के आकार हो जाते है। (चउत्ये समए लोय करेइ) चतुर्थ समय में इनके अन्तराल की पूर्ति करते हुए वे समस्त लोक को पूरण कर देते है, अर्थात् समस्त लोक मे फैल जाते है। इसका नाम लोकरूपणसमुद्रघात है। इस प्रकार आत्मप्रदेशों को फैलाने-रूप समुद्रघात करते हुए वे केवली ४ चार समयों में विश्वव्यापी बन जाते है, पश्चात् प्रसारित उन आत्मप्रदेशों को संकुचित करते है। इस क्रिया में भी उहे

ते समुद्रघात आ प्रकारे थाय छे, (पहमे समए दड करेइ) प्रथम समयमा केवलीना आत्मप्रदेश दण्डाकार होय छे, अर्थात् प्रथम समयमा उर्ध्वलोक तेमज अधोलोकना अत सुधी इलाय जधने आत्मप्रदेश दण्डाकार ताने धारण करे छे (विईए समए कवाड करेइ) भील समयमा ते ज आत्मप्रदेश पूर्व अने पश्चिम दिशाभा विस्तार पाभीने कपाटना आकारने धारण करे छे (तइए समए मथ करेइ) त्रील समयमा दक्षिण तथा उत्तर दिशाभा विस्तार पाभीने मन्थानना आकार धारण करे छे (चउत्ये समए लोय पूरेइ) चौथा समयमा तेना अंतरालनी पूर्ति करता करता ते समस्त लोकने पूरण करी दीजे छे, अर्थात् समस्त लोकमा इलाय जय छे आनु नाम लोकपूरणसमुद्रघात छे आ प्रकारे आत्मप्रदेशेना इलावा इय समुद्रघात करता करता ते केवली ४ समयमा विश्वव्यापी जनी जय छे, पछी प्रसारला ते आत्मप्रदेशेने संकुचित करे छे आ क्रियामा पणु तेने ४ समय लागे छे भाटे ते

कायजोगं जुंजइ?, ओरालियमिस्ससरीरकायजोगं जुंजइ?,
वेउव्वियसरीरकायजोगं जुंजइ?, वेउव्वियमिस्ससरीरकायजोगं
जुंजइ?, आहारगसरीरकायजोगं जुंजइ?, आहारगमिस्सस-
रीरकायजोगं जुंजइ?, कम्मसरीरकायजोगं जुंजइ?। गोयमा।

‘ओरालियमिस्ससरीरकायजोग जुंजइ?’ औदारिकमिश्रशरीरकाययोग युङ्क्ते ?
‘वेउव्वियसरीरकायजोग जुंजइ?’ वैकियशरीरकाययोग युङ्क्ते ? ‘वेउव्वियमिस्सस-
रीरकायजोग, जुंजइ?’ वैकियमिश्रशरीरकाययोग युङ्क्ते ? ‘आहारगसरीरकायजोग
जुंजइ?’ आहारकशरीरकाययोग युङ्क्ते ? ‘आहारगमिस्ससरीरकायजोग जुंजइ?’ आहा-
रकमिश्रशरीरकाययोग युङ्क्ते ? ‘कम्मसरीरकायजोग जुंजइ?’ कर्मगशरीरकाययोग
युङ्क्ते ? भगवानाह—‘गोयमा!’ गौतम । ‘ओरालियसरीरकायजोग जुंजइ?’ औदारिक-

रिक्शरीररूपी काययोग को काममे लाते ह ? अथवा (ओरालियमिस्ससरीरकायजोग
जुंजइ) औदारिकमिश्रशरीरकाययोग को काम मे लाते है ? (वेउव्वियसरीरकायजोग जुंजइ ?
वेउव्वियमिस्ससरीरकायजोग जुंजइ ? आहारगसरीरकायजोग जुंजइ ? आहार-
गमिस्ससरीरकायजोग जुंजइ ? कम्मसरीरकायजोग जुंजइ ?) या वैकियिकशरीर-
काययोगरूपी काययोग को काम मे लाते है ? या वैकियिकमिश्रशरीर को काम मे लाते है ? अथवा
आहारकशरीररूपी काययोग को काम मे लाते हे ? , या आहारकमिश्रशरीरकाययोग को काम मे
लाते है ? , या कर्मणशरीरकाययोग को काम मे लाते हे ? । भगवान कहते है—(गोयमा!) हे
गौतम । (ओरालियसरीरकायजोग जुंजइ ओरालियमिस्ससरीरकायजोग जुंजइ)

शु औदारिकशरीररूपी काययोगने काममा लीञ्जे छे ? , अथवा (ओरालिय-
मिस्ससरीरकायजोग जुंजइ ?) औदारिकमिश्रशरीरकाययोगने काममा लीञ्जे छे ?
(वेउव्वियसरीरकायजोग जुंजइ ? वेउव्वियमिस्ससरीरकायजोग जुंजइ ? आहा-
रगसरीरकायजोग जुंजइ ? आहारगमिस्ससरीरकायजोग जुंजइ ? कम्मसरीरकायजोग
जुंजइ ?) अथवा वैकियिकशरीररूपी काययोगने काममा लावे छे ? अथवा
वैकियमिश्रशरीरकाययोगने काममा लावे छे ? अथवा आहारकशरीररूपी काय-
योगने काममा लावे छे ? अथवा आहारकमिश्रशरीरकाययोगने काममा लावे छे ?
अथवा कर्मणशरीरकाययोगने काममा लावे छे ? भगवान कहते छे—(गोयमा !) हे
गौतम । (ओरालियसरीरकायजोग जुंजइ ओरालियमिस्सकायजोग जुंजइ) केवडी

जुंजइ ?, वयजोगं जुंजइ ?, कायजोगं जुंजइ ?। गोयमा ! णो मणजोगं जुंजइ, णो वयजोगं जुंजइ, कायजोगं जुंजइ ॥ सू० ८४ ॥
 मूलम्—कायजोगं जुंजमाणे किं ओरालियसरीर-

समुग्यायं गए' तथा समुदघात गत केवली 'किं मणजोग जुजइ?' किं मनोयोग युनक्ति 'वयजोग जुजइ?' वाग्योग युनक्ति किम् 'कायजोग जुजइ' काययोग युनक्ति किम्, भगवानाह—'गोयमा!' हे गौतम! 'णो मणजोग जुजइ' नो मनोयोग युनक्ति, 'णो वयजोग जुजइ' नो वाग्योग युनक्ति, 'कायजोग जुजइ' काययोग युनक्ति ॥ सू० ८४ ॥

टीका—गौतम पृच्छति—'कायजोग' इत्यादि। 'कायजोग जुजमाणे किं ओरालियसरीरकायजोग जुजइ?' काययोग युज्जान किमौदारिकगरीरकाययोग युद्धे?

प्रकार समुदघात अवस्था में रहनेवाला वह आत्मा कितने योगों को प्रयुक्त करता है?, क्या मनोयोग को प्रयुक्त करता है? (वयजोग जुजइ) क्या वचनयोग को प्रयुक्त करता है? (कायजोग जुजइ) क्या काययोग को प्रयुक्त करता है? भगवान् ने कहा (गोयमा!) हे गौतम! (णो मणजोगं जुजइ, णो वयजोग जुजइ, कायजोग जुजइ) वह न मनोयोग को प्रयुक्त करता है और न वचनयोग को प्रयुक्त करता है, किन्तु एक कायजोग को ही प्रयुक्त करता है ॥ सू० ८४ ॥

'कायजोग जुजमाणे' इत्यादि।

गौतम ने पुनः प्रश्न से पूछा कि हे प्रभु! (कायजोग जुंजमाणे) केवली काययोग को योजित करते हुए (किं ओरालियसरीरकायजोग जुजइ?) क्या औदा-

या प्रकारे समुदघात अवस्थाभा रहेवावाणा ते अत्ता डेटला येागोने प्रयुक्त करे छे? शु मनोयोगने प्रयुक्त करे छे? (वयजोग जुजइ) शु वचनयोगने प्रयुक्त करे छे? (कायजोग जुजइ) शु काययोगने प्रयुक्त करे छे? भगवाने अब्हु—(गोयमा!) हे गौतम! (णो मणजोग जुजइ, णो वयजोग जुजइ, कायजोग जुजइ) ते नथी मनोयोगने प्रयुक्त करता, तथा नथी वचनयोगने प्रयुक्त करता, परंतु अेक काययोगने न प्रयुक्त करे छे (सू० ८४)

'कायजोग जुजमाणे' इत्यादि

गौतमे वणी पाछु प्रभुने पूछथु हे छे प्रभु! (कायजोग जुजमाणे) केवली काययोगने योजित करता करता (किं ओरालियसरीरकायजोग जुजइ?)

कायजोगं जुजइ?, ओरालियमिस्ससरीरकायजोगं जुजइ?,
वेउच्चियसरीरकायजोगं जुजइ?, वेउच्चियमिस्ससरीरकायजोगं
जुजइ?, आहारगसरीरकायजोगं जुजइ?, आहारगमिस्सस-
रीरकायजोगं जुजइ?, कम्मसरीरकायजोगं जुजइ?। गोयमा।

‘ओरालियमिस्ससरीरकायजोग जुजइ?’ औदारिकमिश्रशरीरकाययोग युङ्क्ते ?
‘वेउच्चियसरीरकायजोग जुजइ’ वैकियशरीरकाययोग युङ्क्ते, ‘वेउच्चियमिस्सस-
रीरकायजोग, जुजइ?’ वैकियमिश्रशरीरकाययोग युङ्क्ते, ‘आहारगसरीरकायजोगं
जुजइ?’ आहारकशरीरकाययोग युङ्क्ते, ‘आहारगमिस्ससरीरकायजोग जुजइ’ आहा-
रकमिश्रशरीरकाययोग युङ्क्ते, ‘कम्मसरीरकायजोग जुजइ’ कर्मणशरीरकाययोग
युङ्क्ते, भगवानाह—‘गोयमा।’ गौतम। ‘ओरालियसरीरकायजोग जुजइ’ औदारिक-

रिक्शरीररूपी काययोग को काममें लाते हैं? अथवा (ओरालियमिस्ससरीरकायजोग
जुजइ) औदारिकमिश्रशरीरकाययोग को काम में लाते हैं? (वेउच्चियसरीरकायजोगं जुजइ?
वेउच्चियमिस्ससरीरकायजोग जुजइ? आहारगसरीरकायजोग जुजइ? आहार-
गमिस्ससरीरकायजोग जुजइ? कम्मसरीरकायजोग जुजइ?) या वैकियिकशरीर-
काययोगरूपी काययोग को काममें लाते हैं? या वैकियिकमिश्रशरीर को काम में लाते हैं? अथवा
आहारकशरीररूपी काययोग को काम में लाते हैं, या आहारकमिश्रशरीरकाययोग को काम में
लाते हैं, या कर्मणशरीरकाययोग को काम में लाते हैं?। भगवान कहते हैं—(गोयमा!) हे
गौतम। (ओरालियसरीरकायजोग जुजइ ओरालियमिस्ससरीरकायजोगं जुजइ)

शुं औदारिकशरीररूपी काययोगने काममा लीये छे?, अथवा (ओरालिय-
मिस्ससरीरकायजोग जुजइ ?) औदारिकमिश्रशरीरकाययोगने काममा लीये छे ?
(वेउच्चियसरीरकायजोगं जुजइ? वेउच्चियमिस्ससरीरकायजोग जुजइ? आहा-
रगसरीरकायजोग जुजइ? आहारगमिस्ससरीरकायजोग जुजइ? कम्मसरीरकायजोगं
जुजइ?) अथवा वैकियशरीररूपी काययोगने काममा लावे छे? अथवा
वैकियमिश्रशरीरकाययोगने काममा लावे छे? अथवा आहारकशरीररूपी काय-
योगने काममा लावे छे? अथवा आहारकमिश्रशरीरकाययोगने काममा लावे छे ?
अथवा कर्मणशरीरकाययोगने काममा लावे छे? भगवान कहे छे—(गोयमा!) हे
गौतम। (ओरालियसरीरकायजोग जुजइ ओरालियमिस्सकायजोग जुजइ) केवली

ओरालियसरीरकायजोगं जुंजइ, ओरालियमिस्ससरीरकायजोगं
पि जुंजइ, णो वेउच्चियसरीरकायजोगं जुंजइ, णो वेउच्चि-
यमिस्ससरीरकायजोगं जुंजइ, णो आहारगमिस्ससरीरकायजोगं
जुंजइ, कम्मसरीरकायजोगंपि जुंजइ । पढमद्वमेसु समएसु

शरीरकाययोग युङ्क्ते, 'ओरालियमिस्ससरीरकायजोगं जुंजइ, औदारिकमिश्रशरीर-
काययोगमपि युङ्क्ते, 'णो वेउच्चियसरीरकायजोगं जुंजइ' 'नो वैक्रियशरीरकाययोग
युङ्क्ते, 'णो वेउच्चियमिस्ससरीरकायजोगं जुंजइ' 'नो वैक्रियमिश्रशरीरकाययोग युङ्क्ते,
'णो आहारगसरीरकायजोगं जुंजइ' 'नो आहारकशरीरकाययोग युङ्क्ते, 'णो आहारगमि-
स्ससरीरकायजोगं जुंजइ' 'नो आहारकमिश्रशरीरकाययोग युङ्क्ते, 'कम्मसरीरकायजो-
गं जुंजइ' 'कर्मणशरीरकाययोगमपि युङ्क्ते । 'पढमद्वमेसु समएसु ओरालियसरीरकायजो-
गंपि जुंजइ' प्रथमाऽष्टमयो समययोरौदारिकशरीरकाययोगमपि युङ्क्ते, 'विइयच्छट्सत्तमेसु

केवली भगवान् औदारिकशरीरकाययोग को काम में लाते है, तथा औदारिकमिश्रशरीरकाययोग को
भा काम मे लाते है । (णो वेउच्चियसरीरकायजोगं जुंजइ, णो वेउच्चियमिस्ससरीर-
कायजोगं जुंजइ, णो आहारगसरीरकायजोगं जुंजइ, णो आहारगमिस्ससरीर-
कायजोगं जुंजइ, कम्मसरीरकायजोगंपि जुंजइ) वैक्रियशरीरकाययोग, वैक्रियमिश्रशरीर-
काययोग, आहारकशरीरकाययोग, आहारकमिश्रशरीरकाययोग इनको काम में नहीं लाते । परन्तु
कर्मणशरीरकाययोग को वे काम मे लाते है । (पढमद्वमेसु समएसु ओरालियसरीरकाय-
जोगं जुंजइ विइयच्छट्सत्तमेसु समएसु ओरालियमिस्ससरीरकायजोगं जुंजइ,
तइयच्चउत्थपचमेहिं कम्मसरीरकायजोगं जुंजइ) प्रथम और आठवें समय मे तो

अगवान् औदारिकशरीरकाययोगने कामभा लावे छे तथा औदारिकमिश्रशरीरकाय-
योगने पणु कामभा लावे छे (णो वेउच्चियसरीरकायजोगं जुंजइ, णो वेउच्चि-
यमिस्ससरीरकायजोगं जुंजइ, णो आहारगसरीरकायजोगं जुंजइ, णो आहारगमि-
स्ससरीरकायजोगं जुंजइ, कम्मसरीरकायजोगंपि जुंजइ) वैक्रियशरीरकाययोगने,
वैक्रियमिश्रशरीरकाययोगने, आहारकशरीरकाययोगने, आहारकमिश्रशरीरकाय-
योगने कामभा लावता नथी, परन्तु कर्मणशरीरकाययोगने तेओ कामभा लावे छे
(पढमद्वमेसु समएसु ओरालियसरीरकायजोगं जुंजइ, विइयच्छट्सत्तमेसु समएसु
ओरालियमिस्ससरीरकायजोगं जुंजइ, तइयच्चउत्थपचमेहिं कम्मसरीरकायजोगं जुंजइ)

ओरालियसरीरकायजोगं जुंजइ, विडयछट्टसत्तमेसु समएसु
ओरालियमिस्ससरीरकायजोगं जुंजइ, तइयचउत्थपंचमेहिं कम्म-
सरीरकायजोगं जुंजइ ॥ सू० ८५ ॥

मूलम्—से णं भते ! तहा समुग्घायगए सिज्झइ

ओरालियमिस्ससरीरकायजोगं जुंजइ' द्वितीयपट्टसत्तमेसु समयेसु औदारिकमिश्रशरीर-
काययोग युङ्क्ते, मिश्रच चात्र कर्मणैव सहौदारिकत्वावस्थानात् । 'तइयचउत्थपंचमेहिं
कम्मसरीरकायजोगं जुंजइ' तृतीयचतुर्थपञ्चमेसु समयेसु कर्मणशरीरकाययोग
युङ्क्ते ॥ सू ८५ ॥

टीका—'से णं भते इत्यादि । 'से णं भते' तदा समुग्घायगए' स खलु भदन्त !

औदारिकशरीररूपी काययोग को वे काम म लाते है, दूसरे, छठे एव सातवे समय में
औदारिकमिश्रशरीरकाययोग को काम में लाते है, एव तीसरे, चौथे एव पंचम समय में कर्म-
णशरीररूपी काययोग को काम में लाते है ॥

भावार्थ—काययोग ७ प्रकार का है । उनमें औदारिकशरीरकाययोग, औदारिकमिश्रशरीर-
काययोग एव कर्मणशरीरकाययोग ये ३ तीन योग केवत्री के होते है । बाकी के ४ काययोग
केवत्री के नहीं होते हैं । प्रथम और आठवें समय में औदारिकशरीरकाययोग होता है, द्वितीय,
छठवें और सातवे समय में औदारिकमिश्रशरीरकाययोग होता है और तीसरे, चौथे एव पाचवे
समय में उनके समुद्घात अवस्था मे कर्मणशरीररूपी काययोग होता है ॥ सू० ८५ ॥

प्रथम तथा आठमा समयमा ते औदारिकशरीररूपी काययोगने तेज्जा काममा
लावे छे भील, छट्टा तेमज सातमा समयमा औदारिकमिश्रशरीरकाययोगने काममा
लावे छे, तेमज त्रील, योथा अने पाचमा समयमा कामणुशरीररूपी काययोगने
काममा लावे छे

भावार्थ—काययोग ७ प्रकारना छे, तेमा औदारिकशरीरकाययोग, औदारिक
मिश्रशरीरकाययोग, तेमज कामणुशरीरकाययोग, आ तल्लु योग केवलीना होय छे
भाडीना ४ काययोग केवलीना होता नथी प्रथम अने आठमा समयमा
औदारिककाययोग होय छे भील, छट्टा अने सातमा समयमा औदारिक-
मिश्रशरीरकाययोग होय छे, अने त्रील, योथा तेमज पाचमा समयमा तेमनी
समुद्घात-अवस्थामा कामणुशरीररूपी काययोग होय छे (सू ८५)

બુજ્ઞાઈ મુચ્છઈ પરિણિવ્વાઈ સવ્વદુક્ખાણં અંતં કરેઈ ? ણો ણ્ણઠ્ઠે
સમઠ્ઠે ! સે ણં તઓ પહિણિયત્તઈ, પહિણિયત્તિત્તા ઇહમાગચ્છઈ,
તઓ પચ્છા મળજોગંપિ જુંજઈ, વયજોગંપિ જુંજઈ, કાયજોગંપિ
જુંજઈ ॥ સૂ. ૮૬ ॥

તથા સમુદ્ધાતગત -હે ભદન્ત ! સ સ્વલ તથા સમુદ્ધાતગત =કૃત્તસમુદ્ધાત કેવલી 'સિજ્ઞાઈ
બુજ્ઞાઈ મુચ્છઈ પરિણિવ્વાઈ સવ્વદુક્ખાણમત કરેઈ ?' સિધ્ધતિ, બુધ્ધતે, મુચ્ચતે, પરિનિર્વાતિ,
સર્વદુ સ્વાનામન્ત કરોતિ કિમ્ ? , ભગવાનાહ-' ણો ણ્ણઠ્ઠે સમઠ્ઠે' નાડયમર્થ સમર્થ ! 'સે ણં'
સ સ્વલ 'તઓ' તત =સમુદ્ધાતાત્ 'પહિણિયત્તઈ' પ્રતિનિર્વર્તે, 'પહિણિયત્તિત્તા' પ્રતિનિ
વર્ત્ય 'ઇહમાગચ્છઈ' ઇહાસગચ્છતિ=શરીરસ્થો ભવતિ । 'તઓ પન્ઠા' તત પશ્ચાત્, 'મળજોગ-
પિ જુજઈ' મનોયોગમપિ યુક્તે, 'વયજોગપિ જુજઈ' વાયોગમપિ યુક્તે 'કાયજોગં પિ
જુજઈ' કાયયોગમપિ યુક્તે ॥ સૂ. ૮૬ ॥

‘સે ણ ભત્તે !’ ઇત્યાદિ ।

(ભત્તે !) હે ભદત ! (સે ણ તદ્દા સમુદ્ધાયગ) સમુદ્ધાત અવસ્થા મેં કેવલી
ભગવાન્ (સિજ્ઞાઈ બુજ્ઞાઈ મુચ્છઈ પરિણિવ્વાઈ) સિદ્ધ, બુદ્ધ, મુક્ત એવ પરિનિર્વાણ હો
(સવ્વદુક્ખાણ અત કરેઈ) ક્યા સમસ્ત દુ ક્ખોં કા અત કરતે હૈ ? પ્રમુ ને ઉત્તર દિયા
કિ (ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (ણો ણ્ણઠ્ઠે સમઠ્ઠે) યહ અર્થ સમર્થિત નહોં હૈ । (સે ણ તઓ
પહિણિયત્તઈ, પહિણિયત્તિત્તા ઇહમાગચ્છઈ, આગચ્છિત્તા તઓ પન્ઠા મળજોગ પિ
જુંજઈ, વયજોગ પિ જુજઈ, કાયજોગ પિ જુજઈ) કિન્તુ જન્ન વે સમુદ્ધાત કર ચુકતે હૈ

‘સે ણ ભત્તે !’ ઇત્યાદિ

(ભત્તે !) હે ભદત ! (સે ણ સમુદ્ધાયગ) સમુદ્ધાત અવસ્થામ
કેવલી ભગવાન્ (સિજ્ઞાઈ, બુજ્ઞાઈ, મુચ્છઈ, પરિણિવ્વાઈ) સિદ્ધ, બુદ્ધ, મુક્ત
તેભન્ પરિનિર્વાણ થઈને (સવ્વદુક્ખાણ અંત કરેઈ) શુ સમસ્ત દુ ક્ખોના
અત કરે છે ? પ્રભુએ ઉત્તર આપ્યો છે (ગોયમા !) હે ગૌતમ ! (ણો
ણ્ણઠ્ઠે સમઠ્ઠે) આ અર્થ સમર્થિત નથી (સે ણ તઓ પહિણિયત્તઈ, પહિણિ
યત્તિત્તા ઇહમાગચ્છઈ, આગચ્છિત્તા તઓ પચ્છા મળજોગ પિ જુજઈ, વયજોગંપિ
જુજઈ, કાયજોગ પિ જુજઈ) પરંતુ ન્યાંરે સમુદ્ધાત કરી ચુકે છે અર્થાત્ તે
દ્વિયાથી નિવૃત્ત થઈ બાક છે અને પૂર્વ પ્રમાણે શરીરમા સ્થિત થઈ બાક છે ત્યારે

**मूलम्—मणजोगं जुंजमाणे किं सच्चमणजोगं जुंजइ ?
मोसमणजोगं जुंजइ ?, सच्चामोसमणजोगं जुंजइ ?, असच्चामो-**

टीका—गौतम पृच्छति—“मणजोग” इत्यादि । ‘मणजोग जुंजमाणे किं सच्चमणजोग जुंजइ’ मनोयोग युञ्जान किं सयमनोयोग युद्धे ? ‘मोसमणजोग जुंजइ ?’ मृषामनोयोग युद्धे ? ‘सच्चामोसमणजोगं जुंजइ’ सयमृषामनोयोग युद्धे किम् ? भगवा-

अर्थात् उस क्रिया से निवृत्त हो चुकते हैं और पूर्ववत् शरीर में स्थित हो जाते हैं तब मनोयोग को भी प्रयुक्त करते हैं, वचनयोग को भी प्रयुक्त करते हैं तथा काययोग को भी प्रयुक्त करते हैं । समुद्धात—अवस्था में मरण नहीं होना । अतः मुक्ति की प्राप्ति उस समय नहीं होती ॥ सू० ८६ ॥

‘मणजोग जुंजमाणे’ इत्यादि ।

प्रश्न—हे भट्टन ! आपने जो अभी यह बात कही है कि समुद्धात से निवृत्त होने पर केवली भगवान् मनोयोग को प्रयुक्त करते हैं सो इस त्रिपय में यह पूछता हू कि वे भगवान् (मणजोग जुंजमाणे) मनोयोग को प्रयुक्त करते हुए चार मनोयोगों में से कौन से मनोयोग को प्रयुक्त करते हैं ? (किं सच्चमणजोग जुंजइ, मोसमणजोग जुंजइ, सच्चामोसमणजोग जुंजइ, असच्चामोसमणजोग जुंजइ ?) सयमनोयोग को प्रयुक्त करते हैं, या असत्यमनोयोग को प्रयुक्त करते हैं, अथवा मिश्रमनोयोग को प्रयुक्त करते हैं, असत्यमृषामनोयोग को प्रयुक्त करते हैं ? अर्थात् व्यवहारमनोयोग को प्रयुक्त करते हैं ? (गौयमा !) हे गौतम ! (सच्च-

मनोयोगने पणु प्रयुक्त करे छे, पथनयोगने पणु प्रयुक्त करे छे तथा काययोगने पणु प्रयुक्त करे छे समुद्धात अवस्थामा मरणं यतु नथी तेथी मुद्धितनी प्राप्ति ते मभये थती नथी (सू ८६)

‘मणजोगं जुंजमाणे’ इत्यादि

प्रश्न—हे लडन्त ! आपने जो उभयथा से बात कही छे, हे समुद्धातथी निवृत्त यता देवली भगवान् मनोयोगने प्रयुक्त करे छे माटे से विषयमा से पूछ छु के ते भगवान् (मणजोग जुंजमाणे) मनोयोगने प्रयुक्त करता थार मनोयोग-माथी क्या मनोयोगने प्रयुक्त करे छे ? (किं सच्चमणजोग जुंजइ ? मोसमणजोगं जुंजइ ? सच्चामोसमणजोग जुंजइ ? असच्चामोसमणजोग जुंजइ ?) शु सत्य मनोयोगने प्रयुक्त करे छे ? अथवा असत्यमनोयोगने प्रयुक्त करे छे ? अथवा मिश्रमनोयोगने प्रयुक्त करे छे ? हे असत्यमृषामनोयोगने प्रयुक्त करे छे अर्थात् व्यवहारमनोयोगने प्रयुक्त करे छे ? उत्तर—(गौयमा !) हे

समणजोगं जुंजइ ? गोयमा ! सच्चमणजोगं जुंजइ, णो मोसमण-
जोगं जुंजइ, णो सच्चामोसमणजोगं जुंजइ, असच्चामोसमणजोगं
पि जुंजइ ॥ सू० ८७ ॥

मूलम्—वयजोगं जुंजमाणे किं सच्चवइजोगं जुंजइ ?

नाह—‘गोयमा ! सच्चमणजोग जुंजइ’ गौतम ! सत्यमनोयोग युङ्क्ते, ‘णो मोसमणजोग
जुंजइ’ नो मृषामनोयोग युङ्क्ते ‘णो सच्चामोसमणजोग जुंजइ’ नो सत्यमृषामनोयोग
युङ्क्ते, ‘असच्चामोसमणजोगपि जुंजइ’ असत्याऽमृषामनोयोगमपि युङ्क्ते ॥ सू० ८७ ॥

टीका—गौतम पृच्छति—‘वयजोग’ इत्यादि । ‘वयजोग जुंजमाणे किं सच्च-
वइजोग जुंजइ’ वाग्योग युञ्जान किं सत्यवाग्योग युङ्क्ते ? ‘मोसवइजोग जुंजइ’ मृषावा

मणजोग जुंजइ) वे केवली सत्यमनोयोग को प्रयुक्त करते हैं, (णो मोसमणजोग जुंजइ णो
सच्चामोसमणजोग जुंजइ, असच्चामोसमणजोगं जुंजइ) असत्यमनोयोग एव मिश्रमनोयोग
को प्रयुक्त नहीं करते हैं, किन्तु असत्यामृषामनोयोग को प्रयुक्त करते हैं, अर्थात् व्यवहार
मनोयोग को प्रयुक्त करते हैं । सत्यमनोयोग एव व्यवहारमनोयोग को वे केवली प्रयुक्त
करते हैं, अन्य दो को नहीं ॥ सू० ८७ ॥

‘वयजोग जुंजमाणे’ इत्यादि ।

प्रश्न—हे भगवन् ! वे केवली जो (वयजोग जुंजमाणे किं) वचनयोग को
प्रयुक्त करते हैं सो क्या (सच्चवइजोग जुंजइ, मोसवइजोग जुंजइ, सच्चामोसवइजोग
जुंजइ, असच्चामोसवइजोग जुंजइ) सत्यवचन योग को प्रयुक्त करते हैं, या असत्यवचन-

गौतम ! (सच्चमणजोग जुंजइ) ते डेवणी सत्यमनोयोगने प्रयुक्त करे छे
(णो मोसमणजोग जुंजइ, णो सच्चामोसमणजोग जुंजइ, असच्चामोसमणजोग
जुंजइ) असत्यमनोयोग तेमण मिश्रमनोयोगने प्रयुक्त करता नथी, परंतु
असत्यामृषामनोयोगने प्रयुक्त करे छे अर्थात् व्यवहारमनोयोगने प्रयुक्त
करे छे सत्यमनोयोग तेमण व्यवहारमनोयोगने ते डेवली प्रयुक्त करे छे
भील जेने नहि (सू ८७)

‘वयजोग जुंजमाणे’ इत्यादि

प्रश्न—हे भगवन् ! ते डेवली के ने (वयजोग जुंजमाणे) वचनयोगने
प्रयुक्त करे छे, ते शु (सच्चवइजोग जुंजइ, मोसवइजोग जुंजइ, सच्चामो-

मोसवइजोगं जुंजइ ? सच्चामोसवइजोगं जुंजइ ? असच्चामोस-
वइजोगं जुंजइ ? सच्चवइजोगं जुंजइ, णो मोसवइजोगं जुंजइ, णो
सच्चामोसवइजोगं-जुंजइ, असच्चामोसवइजोगं पि जुंजइ ॥ सू० ८८ ॥

मूलम्— कायजोगं जुंजमाणे आगच्छेज्ज वा चिट्ठेज्ज

योग युक्ते 'सच्चामोसवइजोग जुंजइ' सत्यमृषावायोग युक्ते 'असच्चामोसवइजोगं जुंजइ'
असत्यामृषावायोग युक्ते किम् ' भगवानाह—'गोयमा ' सच्चवइजोग जुंजइ ? ' गौतम ।
सयवायोग युक्ते, 'णो मोसवइजोग जुंजइ' नो मृषावायोग युक्ते, णो सच्चामोसवइ-
जोग जुंजइ' नो सत्यमृषावायोग युक्ते, 'असच्चामोसवइजोगं पि जुंजइ' असत्यामृषा-
वायोगमपि युक्ते ॥ सू० ८८ ॥

टीका—'कायजोग' इत्यादि । 'कायजोग जुंजमाणे आगच्छेज्ज वा चिट्ठेज्ज
वा' काययोग युञ्जान आगच्छति वा तिष्ठति वा, 'णिसीएज्ज वा' निपीदति=उपविशति वा,

योग को प्रयुक्त करते हैं, अथवा मिश्रवचनयोग को प्रयुक्त करते हैं, या असत्यामृषावचनयोग
को प्रयुक्त करते हैं ? उत्तर—(गोयमा ।) ह गौतम । (सच्चवइजोग जुंजइ) वे केवली
सयवचनयोग को प्रयुक्त करते हैं, (णो मोसवइजोग जुंजइ णो सच्चामोसवइजोग
जुंजइ) असत्यवचनयोग को एव मिश्रवचनयोग को प्रयुक्त नहीं करते हैं । (असच्चामोस-
वइजोगपि जुंजइ) परन्तु असत्यामृषावचनयोग को प्रयुक्त करते हैं । चार वचनयोगों से
से केवली के सत्यवचनयोग एव असत्यामृषावचनयोग दो ही वचनयोग होते हैं, बाक
क दो नहीं ॥ सू० ८८ ॥

सवइजोग जुंजइ, असच्चामोसवइजोग जुंजइ) सत्यवचनयोगने प्रयुक्त करे छे,
अथवा असत्यवचनयोगने प्रयुक्त करे छे, अथवा मिश्रवचनयोगने प्रयुक्त करे
छे, अथवा असत्यामृषावचनयोगने प्रयुक्त करे छे ? उत्तर—(गोयमा ।)
छे गौतम । (सच्चवइजोग जुंजइ) ते केवली सत्यवचनयोगने प्रयुक्त करे छे
(णो मोसवइजोग जुंजइ णो सच्चामोसवइजोग जुंजइ) असत्यवचनयोगने तेमज्ज
मिश्रवचनयोगने प्रयुक्त करता नथी, (असच्चामोसवइजोगपि जुंजइ) परन्तु
असत्यामृषावचनयोगने प्रयुक्त करे छे चार वचनयोगोभाथी केवलीना सत्य-
वचनयोग तेमज्ज असत्यामृषावचनयोग जे ज् मात्र वचनयोग होय छे
थाकीना जे नहि (सू ८८)

वा गिसीएज्ज वा तुयट्टेज्ज वा उल्लघेज्ज वा पल्लघेज्ज वा उक्खेवणं
वा पक्खेवणं वा तिरियक्खेवणं वा करेज्जा, पाडिहारियं वा,
पीढफलगसेज्जासंधारणं पच्चप्पिणेज्जा ॥ सू० ८९ ॥

‘तुयट्टेज्ज वा’ त्वग्वर्तयति=शयन करोति वा ‘उल्लघेज्ज वा’ उल्लघयति—गतीदिक वा, ‘पल्लघेज्ज वा’ प्रोद्धयति वा, उक्खेवणं वा’ उक्खेपणम्=ऊर्ध्वगमन वा, ‘पक्खेवणं वा’ प्रक्षेपण=नीचैर्गमन वा, ‘तिरियक्खेवणं वा’ तिरियक्खेपण=तिर्यग्गमन वा ‘करेज्जा’ करोति, ‘पाडिहारिय वा पीढ-फलग-सेज्जा-संधारण पच्चप्पिणेज्जा’ प्रतिहार्यं वा पीढफलक-शय्यासस्तारक प्रत्यर्पयति ॥ सू० ८९ ॥

‘कायजोग जुजमाणे’ इत्यादि ।

हे गौतम (कायजोग जुजमाणे आगच्छेज्ज वा चिट्ठेज्ज वा गिसीएज्ज वा तुयट्टेज्ज वा उल्लघेज्ज वा पल्लघेज्ज वा) इस काययोग को प्रयुक्त करते हुए वे आते हैं, जाते हैं, ठहरते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, सोते हैं, करबट बदलते हैं, उल्लघन करते हैं, प्रलघन करते हैं, (उक्खेवणं वा पक्खेवणं वा तिरियक्खेवणं वा करेज्जा) उक्खेपण करते हैं, प्रक्षेपण—हाथ-पैर को ऊपर—नीचे करते हैं, तिरछे गमन करते हैं, (पाडिहारिय वा पीढफलगसेज्जा-संधारण पच्चप्पिणेज्जा) काम निकल जाने के बाद प्रातिहार्यक पीढ, फलक, शय्या, एव संधारे को पीछे दते हैं ॥ सू० ८९ ॥

“कायजोग जुजमाणे” इत्यादि

हे भदन्त ! काययोग प्रयुक्त करता देवणी लगवान् शु शु काम करे छे ? हे गौतम ! ((कायजोग जुजमाणे आगच्छेज्ज वा चिट्ठेज्ज वा गिसीएज्ज वा तुयट्टेज्ज वा उल्लघेज्ज वा पल्लघेज्ज वा)) अये काययोगने प्रयुक्त करता तेअो आवे छे, लय छे, रोकाय छे, उठे छे, जेसे छे, सुचे छे, उरवट भइवे छे, उल्लघन करे छे, प्रलघन करे छे (उक्खेवणं वा पक्खेवणं वा तिरियक्खेवणं वा करेज्जा) उक्खेपण करे छे, प्रक्षेपण—हाथपग उथा—नीथा करे छे, तिरछा (आडु—अवणु) गमन करे छे, (पाडिहारिय वा पीढ-फलग-सेज्जा-संधारण पच्चप्पिणेज्जा) काम थर्ध गथा पछी प्रातिहार्यक पीढ, इलक, शय्या, तेभण संधारणे पाछा सुडी दे छे (सू ८६)

मूलम्—से णं भंते ! तद्वा सजोगी सिञ्जइ जाव अंतं करेइ ? णो इणट्टे समट्टे ॥ सू० ९० ॥

मूलम्— से णं पुञ्जामेव सण्णिस्स पंचिंदियस्स पज्ज-

टीका—गौतम पृच्छति—'से णं भंते !' इत्यादि । 'से णं भंते ! तद्वा सजोगी' स खलु भदन्त ! तथा सयोगी 'सिञ्जइ' सिंयति किम् 'जाव' यावत् 'सञ्चदुक्खाणमंतं करेइ' सर्वदुःखानामन्तं करोति किम् ? । भगवान्वाह—'णो इणट्टे समट्टे' नाऽयमर्थं समर्थं ॥ सू० ९० ॥

टीका—'से णं पुञ्जामेव' इत्यादि । 'मे ण' स केवली खलु 'पुञ्जामेव' पूर्वमेव=योगनिरोधवस्थाया आदावेव 'संणिसस पंचिंदियस्स' सजिन पञ्चेन्द्रियस्य, अत्र पञ्चेन्द्रियस्येति विशेषण मज्जिस्वरूपप्रदर्शनाय, पञ्चेन्द्रियस्यैव मज्जिवात्, 'पज्जत्तगस्स' पयात्तकस्य=मन पर्याय्या पर्याप्तस्येत्यर्थ, अन्यपर्याप्तस्य मनसोऽभावात् । स च मव्यमादिमनोयोगोऽपि

'से णं भंते !' इत्यादि ।

(भंते !) हे भदन्त ! (मे तद्वा सजोगी) वे केवला ऐसी सयोगी अवस्था में रहते हुए (सिञ्जइ जाव अत करेइ) सिद्ध, बुद्ध, मुक्त एव परिनिर्वाण हो समस्त दुःखों का अन्त करते हैं क्या ? उत्तर—ह गौतम ! (णो इणट्टे समट्टे) यह अर्थ समर्थित नहीं है । अर्थात् सयोगिकेवली कर्मों का अन्त नहीं करते ! ॥ सू० ९० ॥

'से णं पुञ्जामेव' इत्यादि ।

(से णं) ये सयोगी कर्मली भगवान् (पुञ्जामेव) पहिले (सण्णिस्स पंचिंदियस्स पज्जत्तगस्स) मज्जी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त के (जहणजोगस्स हेट्ठा) जहण्यमनोयोगसे भी नीचे

'से णं भंते !' इत्यादि

(भंते !) हे भदन्त ! (से तद्वा सजोगी) ते केवली ज्येवी सयोगी—अवस्था में रहते हैं (सिञ्जइ जाव अत करेइ) सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, तेभ्यः परिनिर्वाण्यु थथ नभन्तं दुःखानां शुभ्रं अत करे छे ? उत्तर—हे गौतम ! (णो इणट्टे समट्टे) आ अर्थ समर्थित नहीं, अर्थात् सयोगी केवली कर्मोंने अत दर्शना नहीं (सू ६०)

"से णं पुञ्जामेव" इत्यादि

(से णं) ते सयोगी केवली भगवान् (पुञ्जामेव) पहिले (सण्णिस्स पंचिंदियस्स पज्जत्तगस्स) सजी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तानां (जहणजोगस्स हेट्ठा)

वा णिसीएज्ज वा तुयट्टेज्ज वा उल्लघेज्ज वा पल्लघेज्ज वा उक्खेवणं
वा पक्खेवणं वा तिरियक्खेवणं वा करेज्जा, पाडिहारियं वा,
पीढफलगसेज्जासंधारगं पच्चप्पिणेज्जा ॥ सू० ८९ ॥

‘तुयट्टेज्ज वा’ त्वग्वर्तयति=शयन करोति वा ‘उल्लघेज्ज वा’ उल्लघयति—गतादिकं वा, ‘पल्लघेज्ज वा’ प्रोल्लघयति वा, उक्खेवणं वा’ उक्खेपणम्=ऊर्ध्वगमन वा, ‘पक्खेवणं वा’ प्रक्षेपण=नीचैर्गमन वा, ‘तिरियक्खेवणं वा’ तिरियक्खेपणं=तिरियगमन वा ‘करेज्जा’ करोति, ‘पाडिहारियं वा पीढ-फलग-सेज्जा-संधारगं पच्चप्पिणेज्जा’ प्रतिहार्यं वा पीढफलक-शय्यासस्तारकं प्रत्यर्पयति ॥ सू० ८९ ॥

‘कायजोग जुजमाणे’ इत्यादि ।

हे गौतम (कायजोग जुजमाणे आगच्छेज्ज वा चिट्ठेज्ज वा णिसीएज्ज वा तुयट्टेज्ज वा उल्लघेज्ज वा पल्लघेज्ज वा) इस काययोग को प्रयुक्त करते हुए वे आते हैं, जाते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, सोते हैं, करवट बदलते हैं, उल्लघन करते हैं, प्रलघन करते हैं, (उक्खेवणं वा पक्खेवणं वा तिरियक्खेवणं वा करेज्जा) उक्खेपण करते हैं, प्रक्षेपण—हाथ-पैर को ऊपर—नीचे करते हैं, तिरिछे गमन करते हैं, (पाडिहारियं वा पीढफलगसेज्जा-संधारगं पच्चप्पिणेज्जा) काम निकल जाने के बाद प्रातिहार्यक पीठ, फलक, शय्या, एवं संधारे को पीठे देते हैं ॥ सू० ८९ ॥

“कायजोगं जुजमाणे” इत्यादि

हे अहन्त ! काययोग प्रयुक्त करता देवणी लगवान् शु शु काम करे छे ? हे गौतम ! ((कायजोग जुजमाणे आगच्छेज्ज वा चिट्ठेज्ज वा णिसीएज्ज वा तुयट्टेज्ज वा उल्लघेज्ज वा पल्लघेज्ज वा)) अे काययोगने प्रयुक्त करता तेओ आवे छे, नय छे, रोकाय छे, उठे छे, भेसे छे, सुवे छे, करवट अहवे छे, उल्लघन करे छे, प्रलघन करे छे (उक्खेवणं वा पक्खेवणं वा तिरियक्खेवणं वा करेज्जा) उक्खेपण करे छे, प्रक्षेपण—हाथपग उथा—नीथा करे छे, तिरिछा (आडु—अपणु) गमन करे छे, (पाडिहारियं वा पीढ-फलग-सेज्जा-संधारगं पच्चप्पिणेज्जा) काम थर्छ गया पछी प्रातिहार्यक पीठ, फलक, शय्या, तेभज संधाराने पाछा सुधी दे छे (सू ८९)

मूलम्—से णं भंते ! तहा सजोगी सिज्झइ जाव अंतं करेइ ? णो इणट्ठे समट्ठे ॥ सू० ९० ॥

मूलम्— से णं पुव्वामेव सण्णिस्स पंचिंदियस्स पज्ज-

टीका—गौतम पृच्छति—‘से णं भंते !’ इत्यादि । ‘से णं भंते !’ तहा सजोगी’ स सल्ल भदन्त ! तथा सयोगी ‘सिज्झइ’ सिन्धति किम् ‘जाव’ यावत् ‘सव्वदुस्खाणमंतं करेइ’ सर्वदुस्खानामन्तं करोति किम् ? । भगवानाह—‘णो इणट्ठे समट्ठे’ नाऽयमर्थं समर्थः ॥ सू० ९० ॥

टीका—‘से णं पुव्वामेव’ इत्यादि । ‘से णं’ स केवली खल्ल ‘पुव्वामेव’ पूर्वमेव=योगनिरोधावस्थाया आदायेन ‘सण्णिस्स पंचिंदियस्स’ सजिन पञ्चेन्द्रियस्य, अत्र पञ्चेन्द्रियस्येति विशेषण मज्जिस्वरूपप्रदर्शनार्थं, पञ्चेन्द्रियस्यैव सज्जिवात्, ‘पज्जत्तगस्स’ पर्याप्तकस्य=मन पर्याप्तया पर्याप्तस्येत्यर्थः, अन्यपर्याप्तस्य मनसोऽभावात् । स च मध्यमादिमनोयोगोऽपि

‘से णं भंते !’ इत्यादि ।

(भंते !) हे भदन्त ! (से तहा सजोगी) वे केवली ऐसी सयोगी अवस्था में रहते हुए (सिज्झइ जाव अत करेइ) सिद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं परिनिर्वाण हो समस्त दुःखों का अन्त करते हैं क्या ? उत्तर—हे गौतम ! (णो इणट्ठे समट्ठे) यह अर्थ समर्थित नहीं है । अर्थात् सयोगिकेवली कर्मों का अन्त नहीं करते ! ॥ सू० ९० ॥

‘से णं पुव्वामेव’ इत्यादि ।

(से णं) ये सयोगी केवली भगवान् (पुव्वामेव) पहिले (सण्णिस्स पंचिंदियस्स पज्जत्तगस्स) मज्जी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक के (जहणज्जोगस्स हेट्ठा) जघन्यमनोयोग से भी नीचे

‘से णं भंते !’ इत्यादि

(भंते !) हे भदन्त ! (से तहा सजोगी) ते केवली ऐसी सयोगी—अवस्थाभा रहते (सिज्झइ जाव अत करेइ) सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, तेभ्यं परिनिर्वाण यथं समस्त दुःखानां शुभ्र अत करे छे ? उत्तर—हे गौतम ! (णो इणट्ठे समट्ठे) आ अर्थं समर्थित नहीं, अर्थात् सयोगी केवली कर्मोंका अन्त करेता नहीं (सू० ६०)

“से णं पुव्वामेव” इत्यादि

(से णं) ते सयोगी केवली भगवान् (पुव्वामेव) पहिले (सण्णिस्स पंचिंदियस्स पज्जत्तगस्स) सरी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकना (जहणज्जोगस्स हेट्ठा)

हस्सपंचस्वरुच्चारणद्वाए असखेज्जसमइयं अंतोमुहुत्तियं सेलेसि
पडिवज्जइ, पुव्वरइयगुणसेदीयं च णं कम्मं तीसे सेलेसिमद्वाए

अयोगच्च प्राप्नोति, 'अयोगत्तं पाउणिच्चा' अयोगत्तं प्राप्य, 'ईसिहस्सपंचस्वरु-
च्चारणद्वाए' ईपद्धस्वपच्चाऽक्षरोच्चारणाऽद्रायाम्-ईपत्=अच्चापि, यानि ह्रस्वानि पच्चाक्ष-
राणि तेपा यदुच्चारण तस्य याऽद्वा=काल. सा तथा तस्याम्, इदमुच्चारणं न द्रुत न विलम्बित
किन्तु मध्यममेव गृह्यते, 'असखेज्जसमइयं' अन्तरयेयसमयिकाम्, 'अतोमुहुत्तियं'
आन्तर्माहर्तिकां 'सेलेसि' शैलेशी-शैलानामीश शैलेशो मेरु, तस्येव या स्थिरता=साग्याय
वत्या सा शैलेगी ताम्, अथवा-शैलेश =सर्वपररूपचारित्रान्, तस्येयमवत्या योगनिरोध-
रूपा शैलेगी ता, शैलेश्यवस्थाया केवली वेदनीयादिकर्मचतुष्टय क्षपयति, तत्प्रकारमाह-
'पुव्वरइयं' इत्यादि । 'पुव्वरइयगुणसेदीयं च णं कम्मं' पूर्वरचितगुणश्रेणिकं च कर्म,
पूर्व=शैलेश्यवस्थाया प्राग् रचिता गुणश्रेणी यस्य तत्तथा, का नाम गुणश्रेणी' उच्यते-

णइ)अयोगि-अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं, (पाउणिच्चा ईसि-हस्स-पंचस्वरु-च्चारण-
द्वाए असखेज्जसमइयं अंतोमुहुत्तियं) अयोगि-अवस्था को प्राप्त हो जाने के बाद ह्रस्व
पाच अक्षर के उच्चारण काल-प्रमाण समय में, अर्थात् अन्तरयात् समय के अंतर्मुहूर्त जैसे
काल म (सेलेसि पडिवज्जइ) वे शैलेशी-अवस्था को प्राप्त करते हैं, अथवा सर्व कर्मों के
स्वरूप चारित्र वाले की अवस्था को-योगनिरोधरूप अवस्था को प्राप्त करते हैं। इस
शैलेगी-अवस्था में केवली किस प्रकार से वेदनीय आदि चार अचानिया कर्मों को क्षय
करते हैं, इस बात को प्रगट करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि (पुव्वरइयगुणसेदीयं च ण
कम्म तीसे सेलेसिमद्वाए असखेज्जाहि गुणसेदीहि अणते कम्मसे खवयते)
शैलेशी-अवस्था के पहिले जिन कर्मों की गुणश्रेणी रची जाय वे गुणश्रेणिक कर्म हैं। गुण-

छे (पाउणिच्चा ईसिहस्सपंचस्वरुच्चारणद्वाए असखेज्जसमइयं अतोमुहुत्तियं)
अयोगि-अवस्थाने प्राप्त थय गया म जी ह्रस्वा पाच अक्षराना उच्चारणकाल-
प्रमाण समयमा, अर्थात् अन्तरयात् समयानो अंतर्मुहूर्त वेवा कालमा
(सेलेसि पडिवज्जइ) तेष्वा शैलेशी अवस्थाने प्राप्त करे छे, अथवा सर्व
कर्मोना स वरइयं चारित्रवाजानी अवस्थाने-योगनिरोधम् अवस्थाने
प्राप्त करे छे आ शैलेशी अवस्थाना केवली वेवा प्रकारशी वेदनीय आदि
चार अधातिया कर्मोना क्षय करे छे ? अथ वातने प्रकट करता सूत्रकार छडे
छे छे (पुव्वरइयगुणसेदीयं च णं कम्मं तीसे सेलेसिमद्वाए असखेज्जाहि गुणसेदीहि
अणते कम्मसे खवयते) शैलेशी अवस्थानी भडेलो वे कर्मोनी गुणश्रेणी रची

यत् केवलिनो वेदनीयादिक चतुर्विध कर्म कालान्तरवेद्य स्थित वर्तते, तस्य शीघ्रतरक्षप-
णार्थं तन्मैव कर्मणो दलिक क्रमेण प्रतिसमय पूर्वपूर्वापेक्षया उत्तरोत्तरमन्त्यातगुणवृद्ध्या
गुणीकृत्य स्वल्प, बहु, बहुतर, बहुतमम्-इति श्रेणीरूपेण स्थितिखण्ड रचयति । इदमत्र
स्पष्टीकरणम्-गुणश्रेणीरचनाया प्रथमसमये कर्मदलिक स्वल्प गृह्यते, द्वितीयसमये पूर्वा
पेक्षया अमन्त्यातगुणित दलिक गृह्यते, तृतीयसमये ततोऽप्यमन्त्यातगुणित कर्मदलिक
गृह्यते, एवमुत्तरोत्तरमन्त्यातगुणवृद्ध्या कर्मदलिक रचयति । एव कर्मदलिकमत्र ताव-
द्वाच्य, यावदन्तर्मुहूर्तं चमसमयम् । तच्चान्तर्मुहूर्तमपूर्वकरणानिवृत्तिकरणकालान्त्या स्तोकाभ्य-
धिकं वदितव्यम् । अय कर्मपुद्गलाना रचनाविशेषो " गुणश्रेणी " - ल्युच्यते । ' तीसे

श्रेणी कित्ते रहते है ' इस बात को प्रकट किया जाता है-कालान्तर में वेदन करन योग्य
जो वेदनीयादिक चार कर्म अभी अनगिष्ट है उन्हें शीघ्रतर क्षपण करने के निमित्त उनके
दलिया को क्रम से प्रतिसमय पूर्व पूर्व को अपेक्षा उत्तरोत्तर अमन्त्यात गुणवृद्धि से गुणित
कर स्वल्प, बहु, बहुतर एव बहुतम-इस श्रेणीरूप में विभाजित करते हुए स्थिति का रचन
करना सो गुणश्रेणी है । मतलब इसका यह है कि गुणश्रेणीरचना के प्रथम समय में
कर्मदलिक स्वल्प ग्रहण किये जाते हैं, द्वितीय समय में पूर्व का अपेक्षा अमन्त्यातगुणित
दलिक ग्रहण किये जाते हैं, तृतीय समय में इससे भी अमन्त्यातगुणे कर्मदलिक ग्रहण किये
जाते हैं । इस प्रकार उत्तरोत्तर अमन्त्यातगुणित कर्मदलिया का बहानक ग्रहण किया
जाता है कि जबतक अन्तर्मुहूर्तका अन्तिमसमय पूर्ण नहीं हो जाता । अपूर्वकरण और अनि-
वृत्तिकरण के काल से यह अन्तर्मुहूर्त कुछ अधिक समझना चाहिये । इस प्रकार कर्मपुद्ग-

शक्यते ते शुभश्रेष्ठिकर्म छे शुभश्रेष्ठी कडेने कडेवाय ? ये वात प्रकट
कराय छे-कालान्तरमा वेदन करवा योग्य ले वेदनीय आदिक चार कर्म कडु
आधी छे तेमने जलदी अपाववा-क्षपण करवा-निमित्त तेमना दलियोमा धीमे-
धीमे कर्मपूर्वक प्रतिसमय पूर्वपूर्वनी अपेक्षा उत्तरोत्तर असभ्यात शुभवृद्धिथी
शुभित करीने स्वल्प, बहु, बहुतर तेमने बहुतम आमा श्रेष्ठीरूपमा विला
जित कृता करता स्थितिनु जडन करवु अने शुभश्रेष्ठी कडे छे अनी
मतलब ये छे के शुभश्रेष्ठीरचनाना प्रथम समयमा कर्मदलिक स्वल्प अडु
करवामा आवे छे, जेना समयमा प्रथमनी अपेक्षा असभ्यातशुभित दलिक
अडु करवामा आवे छे जेना समयमा तेनाथी पणु असभ्यातशुभित कर्म-
दलिक अडु कराय छे आ प्रकारे उत्तरोत्तर असभ्यातशुभित कर्मदलियोने
त्या सुधी अडु करवामा आवे छे के ज्यासुधी अन्तर्मुहूर्तने अतिम
समय पूरा थर्ध न जय अपूर्वकरण अने अनिवृत्तिकरणना कारणे आ
अन्तर्मुहूर्त कुछ अधिक समयमा लेधये आ प्रकारे कर्मपुद्गलोनी रचनानी

हस्सपंचक्खरुच्चारणद्वाए असखेज्जसमइयं अंतोमुहुत्तियं सेलेसिं
पडिवज्जइ, पुव्वरइयगुणसेदीयं च णं कम्मं तीसे सेलेसिमद्वाए

अयोगव प्राप्नोति, 'अयोगत्तं पाउणित्ता' अयोगव प्राप्य, 'ईसिंहस्सपंचक्खरु-
च्चारणद्वाए' ईपदध्रस्वपश्चाऽक्षरोच्चारणाऽद्वायाम्-ईपत्=अन्यानि यानि ह्रस्वानि पञ्चान-
राणि तेषा यदुच्चारण तस्य याऽद्वा=काल सा तथा तस्याम्, इदमुच्चारणं न द्रुत न विलम्बित
किन्तु मध्यममेव गृह्यते, 'असखेज्जसमइयं' अमरयेयसमयिकाम्, 'अतोमुहुत्तियं'
आन्तर्मौहूर्तिकी 'सेलेसिं' शैलेशी-शैलानामीग शैलेशो मेरु, तस्येव या रिवरता=साग्याथ
वस्था सा शैलेशी ताम्, अथवा-शैलेश =सर्वमंजरूपचारित्रवान्, तस्येयमवस्था योगनिरोध-
रूपा शैलेशी ता, शैलेश्यवस्थाया केवली वेदनीयादिकर्मचतुष्टय लपयति, तत्प्रकारमाह
'पुव्वरइयं' इत्यादि । 'पुव्वरइयगुणसेदीयं च णं कम्मं' पूर्वनिर्दिष्टगुणश्रेणिक च कर्म,
पूर्व=शैलेश्यवस्थाया प्राग् रचिता गुणश्रेणी यस्य तत्तथा, का नाम गुणश्रेणी' उच्यते-

णइ) अयोगि-अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं, (पाउणित्ता ईसिं-हस्स-पंचक्खरु-च्चारण-
द्वाए असखेज्जसमइयं अतोमुहुत्तियं) अयोगी-अवस्था को प्राप्त हो जाने के बाद ह्रस्व
पाच अक्षर के उच्चारण काल-प्रमाण समय में, अर्थात् अन्त्यात समय के अंतमुहूर्त जैसे
काल में (सेलेसिं पडिवज्जइ) वे शैलेशी-अवस्था को प्राप्त करते हैं, अथवा सर्व कर्मों के
स्वरूप चारित्र्य वाले की अवस्था को-योगनिरोधरूप अवस्था को प्राप्त करते हैं । इस
शैलेशी-अवस्था में केवली किस प्रकार से वेदनीय आदि चार अघातिया कर्मों को क्षय
करते हैं, इस बात को प्रगट करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि (पुव्वरइयगुणसेदीयं च णं
कम्मं तीसे सेलेसिमद्वाए असखेज्जाहिं गुणसेदीहिं अणते कम्मसे खवयते)
शैलेशी-अवस्था के पहिले जिन कर्मों की गुणश्रेणी रची जाय वे गुणश्रेणिक कर्म हैं । गुण-

छे (पाउणित्ता ईसिंहस्सपंचक्खरुच्चारणद्वाए असखेज्जसमइयं अंतोमुहुत्तियं)
अयोगी-अवस्थाने प्राप्त थछ गया थरी ह्रस्वाऽपार्थ अक्षराना । उच्चारणकाल-
प्रमाण समयमा, अर्थात् अन्त्यात समयाने अंतमुहूर्त नेवा कालमा
(सेलेसिं पडिवज्जइ) तेव्वा शैलेशी अवस्थाने प्राप्त करे । छे, अथवा सर्व-
कर्मोना सवरूप आश्रितवाजानी । अवस्थाने-योगनिरोधरूप अवस्थाने
प्राप्त करे छे आ शैलेशी अवस्थामा केवली केवा प्रकारथी वेदनीय आदि
चार अघातिया कर्मोना क्षय करे छे ? अथवा तने प्रकट उरता । सूत्रकार कहे
छे छे (पुव्वरइयगुणसेदीयं च णं कम्मं तीसे सेलेसिमद्वाए असखेज्जाहिं गुणसेदीहिं
अणते कम्मसे खवयते) शैलेशी अवस्थानी । थडेला ने कर्मोनी गुणश्रेणी रची

यतेयकम्माइं सव्वाहिं विप्पजहणाहिं विप्पजहइ, विप्पजहिता
उज्जुसेढीपडिवण्णे अफुसमाणगई उड्ढं एकसमएण अविग्ग-
हेण गंता सागारोवउत्ते सिज्झइ ॥ सू० ९२ ॥

युगपत् क्षपयतीति । 'खवित्ता' क्षपयित्वा 'ओरालियतेयकम्माइं' औदारिकृतैजस-
कामाणि 'सव्वाहिं' सर्वाभि = अशेषाभि, 'विप्पजहणाहिं' विप्रहाणिभि - विशेषेण = प्ररूपतो
हानय = यागास्ताभि, अत्र व्यन्यपेक्षया बहुवचनम्, 'विप्पजहइ' विप्रजहाति = सर्वथा परिशाट-
यति, 'विप्पजहिता' विप्रहाय = परित्यज्य, 'उज्जुसेढीपडिवण्णे' ऋजुश्रेणिप्रतिपन्न - ऋजु =
अवका, श्रेणि = आकाशप्रदेशपट्टकिस्तामाश्रित 'अफुसमाणगई' अस्पृशद्गति - अस्पृशन्ती
मिद्वचन्तरालप्रदेशान् गतिर्यस्य स तथा, 'एकसमएण' एकसमयेन, अन्तरालप्रदेशस्पर्शने हि
नैकेन समयेन सिद्धि स्यात्, इत्यते तु तत्रैव एव समय, य एव चायुक्तादिकर्मणा क्षयसमय
स एव निर्वागसमय । अतोऽन्तराले समयान्तरस्यासद्वादान्तरालप्रदेशानाममस्पर्शन भवति ।
भाजनोऽय मूढमाऽय केवलिगम्य । 'अविग्गहेण' अविप्रहण = अश्लेषण - वक्र एव हि समया-
न्तर लगानि प्रदेशान्तर च स्पृशति । 'उड्ढं' ऊर्ध्व 'गता' गत्वा 'सागारोवउत्ते' साका-
रोपयुक्त = ज्ञानोपयोगवान्, 'सिज्झइ' सिद्धचरि = सिद्धो भवति ॥ सू० ९२ ॥

गार्हिं विप्पजहइ) क्षपण क्रमे के बाद औदारिक, तैजस एव कामेण इन शरीरोंको
त्रिगिष्टरूप से समस्त हानियों द्वारा सर्वथा छोड़ देते हैं । (विप्पजहिता उज्जुसेढी-
पडिवण्णे अफुसमाणगई उड्ढं एकसमएण अविग्गहेण गता सागारोवउत्ते
सिज्झइ) छोड़ने के बाद ऋजु-अवका आकाशक प्रदेशोंकी पक्तिस्वरूप श्रेणीको आश्रित
करते हुए, अर्थात् श्रेणीके अनुसार सिद्धिके अन्तराल के प्रदेशोंको नहीं स्पर्शते व केवली
भगवान् एक समय में विप्रहरहित गति से-सीधी गति से होकर सिद्धिगति में विराजमान हो
जाते हैं । यहा उनका उपयोग साकार होता है, अर्थात् ज्ञानोपयोग से वे त्रिगिष्ट रहते हैं ।

क्या पछी औदारिक, तैजस तेमए कामेण ये शरीराने विशिष्टपथी
अरण हानियों द्वारा सर्वथा छोड़ी दीये छे (विप्पजहिता उज्जुसेढीपडिवण्णे
अफुसमाणगई उड्ढं एकसमएण अविग्गहेण गता सागारोवउत्ते सिज्झइ)
छोड़ी दीया पछी ऋजु-अवक आकाशना प्रदेशोंकी पक्तिस्वरूप श्रेणीने आश्रित
करता, अर्थात् श्रेणीने अनुसार सिद्धिना अन्तरालप्रदेशोंने स्पर्श न करता
ते केवली भगवान् अष्ट समयमा विप्रहरहित गतिथी-सीधी गतिथी यधने
सिद्धिगतिमा विराजमान थध लय छे, अही' तेमने उपयोग साकार छाय

असंखेज्जाहिं गुणसेढीहिं अणंते कम्मसे खवयंते वेयणिज्जाउय-
णामगोए इच्चेते चत्तारि कम्मसे जुगवं खवेइ, खवित्ता ओरालि-

सेलेरिमद्दाए' तस्या शैलेश्यद्वायाम् "क्षपयन्"—इति पदमन्याहृत्य योजना करणीया,
'असंखेज्जाहिं गुणसेढीहिं' असत्वेयाभिगुणश्रेणिभि, 'अणते कम्मसे खवयते'
अनन्तान् कर्माशान् क्षपयन्, 'वेयणिज्जाउयणामगोए' वेदनीयायुर्नामगोत्राणि, 'इच्चेते
चत्तारि कम्मसे' इत्येताश्चतुर. कर्माशान् 'जुगवं खवेइ' युगपत् क्षपयति । अयमत्र
समुदायार्थ — एव पूर्वं गुणश्रेणीं कृत्वा विशुद्धपरिणामवशादसत्त्वात्समयव्याप्तान्तर्मुहूर्तिक्रिया
शैलेश्यवस्थाया कर्म क्षपयन् केवली स्वरचिताभिरसत्त्वात्गुणश्रेणीमि शीघ्रतरक्षपणक्रियाया
साधनमूताभिरनन्तपुद्गलरूपत्वादनन्तान् कर्माशान् क्षपयन् २ वेदनीयादिकाश्चतुर कर्माशान्

लोक्री रचना की विशेषताका नाम गुणश्रेणी है । इस प्रकार वे केवली भगवान् प्रथम-रचित
गुणश्रेणिकर्मको उस शैलेशी के काल में नष्ट करते हुए असत्त्वात् गुणश्रेणियों द्वारा
अनन्त कर्माशोकाक्षय कर देते हैं । (वेयणिज्जा-उय-णाम-गोए इच्चेते चत्तारि कम्मसे
जुगवं खवेइ) वेदनीय, आयु, नाम एव गोत्र इन चार कर्माशोको एक साथ क्षय करते
हैं । मतलब इसका यह है—इस प्रकार गुणश्रेणी करके विशुद्ध हुए परिणामों के वश से
असत्त्वात्समयप्रमाण अन्तर्मुहूर्त कालकी इस शैलेशी अवस्था में वे केवली प्रभु, कर्मको
क्षपित करते हुए, कर्मों की शीघ्रतर क्षपण क्रिया में साधनमूत असत्त्वात् गुणश्रेणियों द्वारा
अनन्तपुद्गलस्वरूप कर्माशोका क्षय करते २ वेदनीयादिक चार अघातिया कर्माशोका
एक ही साथ क्षय कर देते हैं । (खवेत्ता उरालिय-तेय-कम्माइ सव्वाहिं विप्पजह-

विशेषतानु नाम शुष्मश्रेणी, छे, आनी रीते ते डेवती भगवान् प्रथम रथेल
शुष्मश्रेणिक कर्मने ते शैलेशीना काणमा नष्ट करता करता असत्त्वात् शुष्म-
श्रेणियों द्वारा अनन्त कर्मना अशोको क्षय करी दे छे (वेयणिज्जाउयणामगोए
इच्चेते चत्तारि कम्मसे जुगवं खवेइ) वेदनीय, आयु, नाम तेभज गोत्र ये
चार कर्माशोको अक्ष साथे क्षय करे छे अनी मतलब ये छे डे-आ प्रकारे
शुष्मश्रेणी करीने विशुद्ध थयेला परिष्कारने वश थर्थ असत्त्वात्-समय-अभाष्य
अन्तर्मुहूर्त काणनी आ शैलेशी अवस्थाभा ते डेवती प्रभु कर्मने क्षपित
करता करता कर्मोनी अक्ष उतावणी कियाभा साधनमूत असत्त्वात् शुष्मश्रे-
णियों द्वारा अनन्तपुद्गलस्वरूप कर्माशोको क्षय करता करता वेदनीय
आदिक चार (४) अघातिया कर्माशोको अक्षसाथे क्षय करी नाये छे
(खवेत्ता उरालिय-तेय-कम्माइ सव्वाहिं विप्पजहणाहिं) क्षपण

यतेयकम्माडं सव्वाहिं विप्पजहणाहिं विप्पजहइ, विप्पजहिच्चा
उज्जुसेठीपडिवण्णे अफुसमाणगई उड्डं एकसमएणं अविग्ग-
हेण गंता सागारोवउत्ते सिज्झइ ॥ सू० ९२ ॥

युगपत् क्षपयतीति । 'स्वविच्चा' क्षपयित्वा 'ओरालियतेयकम्माडं' औदारिकतैजस-
कर्माणि 'सव्वाहिं' सर्वाभिः = अशेषाभिः, 'विप्पजहणाहिं' विप्रहाणिभिः - विप्रोपेण = प्रकृत्यतो
हानय = यागास्ताभिः, अत्र व्यक्त्यपेक्षया बहुवचनम्, 'विप्पजहइ' विप्रजहाति = सर्वथा परिगाट-
यति, 'विप्पजहिच्चा' विप्रहाय = परिगय्य, 'उज्जुसेठीपडिवण्णे' ऋजुश्रेणिप्रतिपन्न - ऋजु =
अवक्रा, श्रेणि = आकाशप्रदेशपङ्क्तिस्तामाश्रित 'अफुसमाणगई' अस्पृशद्गति - अस्पृशन्ती
सिद्धचन्तरालप्रदेशान् गतिर्यस्य स तथा, 'एकसमएणं' एकसमयेन, अन्तरालप्रदेशस्पर्शने हि
नैकेन समयेन सिद्धिः स्यात्, इत्यते तु तत्रैक एव समयः, य एव चायुष्कादिकर्मणा क्षयसमय
स एव निर्वासमयः । अतोऽन्तराले समयान्तरस्यासद्भावादान्तरालप्रदेशानामसम्पर्शनं भवति ।
भावनोऽयं सूदमोऽर्थः केवलिनम्य । 'अविग्गहेण' अविप्रहण = अपक्वेण - एक एव हि समया-
न्तरं लगति प्रदेशान्तरं च स्पृशति । 'उड्डं' ऊर्ध्वं 'गंता' गत्वा 'सागारोवउत्ते' साका-
रोपयुक्त = ज्ञानोपयोगवान्, 'सिज्झइ' सिद्धयति = सिद्धो भवति ॥ सू० ९२ ॥

णाहिं विप्पजहइ) क्षपण करने के बाद औदारिक, तैजस एव कर्मण इन शरीरोक्तो
त्रिगिष्टरूप से समस्त हानियों द्वारा सर्वथा उड़ देते हैं । (विप्पजहिच्चा उज्जुसेठी-
पडिवण्णे अफुसमाणगई उड्डं एकसमएण अविग्गहेण गता सागारोवउत्ते
सिज्झइ) उड़ने के बाद ऋजु-अवक्र आकाशके प्रदेशोकी पंक्तिस्वरूप श्रेणीको आश्रित
करते हुए, अर्थात् श्रेणीके अनुसार सिद्धिके अन्तराल के प्रदेशोको नहीं स्पर्शते वे केवली
भगवान एक समय में विप्रहृष्ट गति से-सीधी गति से होकर सिद्धगति में विराजमान हो
जाते हैं । यहा उनका उपयोग साकार होता है, अर्थात् ज्ञानोपयोग से वे निश्चिष्ट रहते हैं ।

क्या पक्षी औदारिक, तैजस तेभ्यः कर्मण्यु अथ शरीराने विशिष्टपथी
सकण हानियो द्वारा सर्वथा छोडी दीये छे. (विप्पजहिच्चा उज्जुसेठीपडिवण्णे
अफुसमाणगई उड्डं एकसमएण अविग्गहेण गता सागारोवउत्ते सिज्झइ)
छोडी दीया पक्षी ऋजु-अवक्र आकाशना प्रदेशोनी पङ्क्तिस्वरूप श्रेष्ठीने आश्रित
कृता, अर्थात् श्रेष्ठीने अनुसार सिद्धिना अन्तरालप्रदेशोने स्पर्श न कृता
ते केवली भगवान अथ समभयमा विग्रहृष्ट गतिथी-सीधी गतिथी यथने
सिद्धिगतिमा विगल्यमान यथ लय छे. अक्षी तेभनो उपयोग साकार छाय

मूलम्—ते णं तत्थ सिद्धा हवन्ति, साइया अपज्जवसिया

टीका—अत्रोत्तरार्द्धे एकोनसप्ततितमे सूत्रे यद्वचोचत् 'से जे इमे गामागरजाव सन्निवेसेसु मणुया हवति सव्वकामविरया' इत्यारम्य 'अट्टकम्मपयडीओ खवइत्ता उट्पि लोयग्ग-

भावार्थ—इस उपाय से योगीका निरोध करते समय प्रथम मनोयोगका निरोध करते हैं, फिर वचनयोगका और फिर वाद मंकाययोगका। योगिके निरोध हो जाने से वे अयोगी—अवस्थाको प्राप्त कर ह्रस्व अकारादिके, अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ—इन पांच अक्षरोंके उच्चारण करने में जितना काल लगता है उतने काल तक उस अयोगी—अवस्था में रहते हुए शैलेशी—अवस्थाको प्राप्त करने के पश्चात् असह्यातगुणश्रेणी से अनन्त कर्मश्रीका क्षय कर देते हैं। फिर वेदनीय, आयु, नाम एव गोत्र इन चार अघातिया कर्मोंको युगपत् विनष्ट कर वे भगवान्, औदारिक, तैजस एव कर्मण शरीरको क्षपित करते हैं। इस प्रकार कर्मों और शरीरों से सर्वथा रहित बने हुए वे प्रभु आकाशकी प्रदेशपक्ति के अनुसार १ समय प्रमाणवाली अविग्रहगति से गमन कर सिद्धिगति में जाकर विराजमान हो जाते हैं। यहाँ वे साकार—उपयोगविशिष्ट रहा करते हैं ॥ सू. ९२ ॥

'ते ण तत्थ' इत्यादि।

इसी आगम के उत्तरार्धका ६९ वाँ सूत्र जो (से जे इमे गामागर जाव सन्निवे-

छे ज्ञानोपयोगथी तेओ विशिष्ट रड्डे छे

भावार्थ—आ उपायथी योगीना निरोध करती वप्यते प्रथम मनोयोग-गना ते डेवली निरोध करे छे पछी, वचनयोगना अने तयार पछी वाच-योगना निरोध थर्छ गथा पछी तेओ, अयोगी—अवस्था प्राप्त करीने ह्रस्व अकार आदिषु, अर्थात्—अ, इ, उ, ऋ, लृ—आ पाच अक्षरानु उच्चारण करवाभा जेटवेला जाण लागे जेटवेला काल सुधी तेओ ते अयोगी—अवस्थाभा रड्डेला शैलेशी—अवस्थाने प्राप्त करीने पछी असह्यात शुषुश्रेणीथी अनन्त कर्मश्रीना क्षय करी दे छे पछी वेदनीय, आयु, नाम तेमज्ज गोत्र अ-अघातिया कर्मोने युगपत् नाश करीने ते भगवान् औदारिक, तैजस तेमज्ज शरीरने क्षपित करे छे आ प्रकारे कर्मो अने शरीरथी सर्वथा रहित भनेला ते प्रभु आकाशनी प्रदेशपक्ति अनुसार १ समयप्रमाणवाली अविग्रह-गतिथी गमन करीने सिद्धिगतिभा अथ विराजमान थर्छ जाया छे अड्डी तेओ साकार—उपयोग—विशिष्ट रड्डा करे छे, (सू. ९२)।

'ते ण तत्थ' इत्यादि

अथ आगमना उत्तरार्धतु योगसुसित्तसु सूत्रे (से जे इमे गामागर जाव

અસરીરા જીવવળા દંસળનાળોવડતા નિદ્ધિયદ્ધા નિરેચળા

પડદ્ધાળા હવતિ ' દ્ધતિ, ત્ત તે લોકાપ્રપ્રતિષ્ઠાના સન્ત કોદ્ધ્યા ભવન્તીતિ જિજ્ઞાસાયામાહ—
' તે ળ ' ઢ્ધ્યાદિ । ' તે ળ ' તે=પૂર્વનિદ્ધિષ્ઠ મનુષ્યા સહ ' ત્તથ ' ત્ત લોકાપ્રેપ્રતિષ્ઠાન
પ્રાપ્તા સન્ત, 'સિદ્ધા હવતિ' મિદ્ધા ભવન્તિ । તે કોદ્ધ્યા ભવન્તીયાહ—'સાડ્યા' માદિકા =
આદિસહિતા, ' અપજ્જવસિયા ' અપર્યવસિતા =અન્તરહિતા —અન્નિનાશિન ઢ્ધ્યર્થે 'અસરીરા'
અસરીરા =પશ્ચનિધશરીરરહિતા, અન્યે વદન્તિ—સશરીરોડપિ સિદ્ધો ભવન્તીતિ તન્મતનિરાકરણાર્થ-

સેષ્ટ મળુયા હવતિ સવ્વકામવિરયા) યહોં સે લેકર (અદ્ધુ કમ્મપગડીઓ સ્વહ્ધ્તા ડપ્પિ
લોયમ્મપડદ્ધાળા હવતિ) યહોં તક હૈ । ઢ્ધમ સૂત્ર મે યહ જો કહા ગયા હૈ કિ વે સિદ્ધ
મળાન લોક કે અપ્રમાગ મં પ્રનિષ્ઠિત હો જાતે હૈ, ડમો ત્રિપય મં અન ઢ્ધસ સૂત્ર દ્ધારા યહ
વતાયા જાના હૈ કિ વે મિદ્ધ મળાન લોક કે અપ્રમાગ મ રહતે હુપ કૈસે હોને હૈ । વહ
ઢ્ધસ પ્રકાર હૈ—(તે ળ ત્તથ સિદ્ધા હવંતિ) વે પૂર્વનિદ્ધિષ્ઠ મનુષ્ય, લોક કે અપ્રમાગ મં પ્રતિ-
ષ્ઠિત હોતે હુપ મિદ્ધ કહે જાતે હૈ, વે (સાડ્યા અપજ્જવસિયા) સાદ્ધિ ડૉર પર્યવસાનરહિત
હોતે હૈ, અયાત્—વહા સે ફિર ડહે સસાર મં પીઢે જન્મ ધારણ નહીં કમ્મા પડતા હૈ, ઇત્તદર્થ
ડહે અપર્યવસિત કહા હૈ । અનાત્કાલ સે લમે હુપ ક્રમોં કા ક્ષય કરકે વે સિદ્ધ હુપ હૈ,
અન ઢ્ધમ અપેશા વે સાદ્ધિ કહે ગયે હૈ । (અસરીરા) ડૉદારિક આદિ પાચ શરીરોં સે વે
સર્વથા ગહિત હોતે હૈ । કિતનેક ઇસા કહતે હૈ કિ સશરીર મો પ્રાણી સિદ્ધ હોતા હૈ, ડનકે
ઢ્ધમ મિદ્ધાન્ત કો દૂર કરતે હુપ મળાન ને સિદ્ધોં કા (અસરીરા) યહ વિશેષળ દિયા હૈ ।

મન્નિવેસેમુ મળુયા હવતિ સવ્વકામવિરયા) અહીં થી લઈને (અદ્ધુ કમ્મપગડીઓ સ્વહ્ધ્તા
ડપ્પિ લોયમ્મપડદ્ધાળા હવતિ) અહીં સુધી છે આ સૂત્રમા જે આ કહેવામા આન્યુ છે
કે તે મિદ્ધ ભગવતો લોકના અશ્વભાગમા પ્રતિષ્ઠિત થઈ જાય છે, તે જ વિષયમા
આ સૂત્ર ઢ્ધાગ એમ બતાવવામા આવે છે કે તેઓ સિદ્ધ ભગવતો લોકના
અશ્વભાગમા ગહેતા દેવા થાય છે તે આ પ્રકારે છે—(તે ળ ત્તથ સિદ્ધા હવતિ)
તેઓ પૂર્વે બતાવેલા મનુષ્ય, લોકના અશ્વભાગમા પ્રતિષ્ઠિત થઈ જતા મિદ્ધ
કહેવાય છે તેઓ (સાડ્યા અપજ્જવસિયા) સાદ્ધિ અને અત (જન્મ-મળુ)-
રહિત થાય છે ત્યાંથી પાછો તેઓને સસારમા જન્મ ધારણ કરવો પડતો
નથી, તે અર્થમા તેમને અપર્યવસિત કહેવામા આવે છે અનાદિકાળથી
લાગેલા કર્મોંના ક્ષય કરીને તેઓ સિદ્ધ થયા છે, આથી એ અપેક્ષાએ તેમને
સાદ્ધિ કહે છે (અસરીરા) ડૉદારિક આદિ પાચ શરીરોંથી તેઓ સર્વથા
ગહિત થાય છે ડેટલાક એમ કહે છે કે સશરીર પણ પ્રાણી સિદ્ધ હોય છે,
તેઓના આ સિદ્ધાતને દૂર ઢ્ધરવા ભગવાને મિદ્ધોને ' અસરીરા ' એ વિશે-

नीरया णिम्लला वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागयद्धं काल
चिद्वंति ॥ ९३ ॥

मिद विशेषगम्, 'जीवघणा' जीवघना—जीवाध ते घना जीवघना—अन्तररहितत्वेन जीव-
प्रदेशमया, योगनिरोधकाले रन्ध्रपूरणेन त्रिभागोनावगाहनाया सद्भावादित्यर्थ, 'दंसणणाणोव-
उत्ता' दर्शनज्ञानोपयुक्ता—दर्शनम्=अनाकार, ज्ञानम्=साकार, तयोरुपयुक्ता, 'निद्वियट्टा'
निष्ठिताया =कृतकृत्या—समाप्तसर्वप्रयोजना इत्यर्थ । 'निरेयणा' निरेजना=निश्चला—स्थिरा
इत्यर्थ, 'नीरया' नीरजस =वध्यमानकर्मरहिता इत्यर्थ, यद्वा—नीरया इति षड्याया, रयो, वेगस्त
द्रहिता =निरुद्वेगा—निरोत्सुक्या इत्यर्थ । 'णिम्मला' निर्मला =पूर्ववद्भक्तकर्म— निर्मुक्ता,
'वितिमिरा' वितिमिराः=विगताज्ञाना, 'विसुद्धा' विसुद्धा =कर्मनिशुद्धप्रकर्षमुपगता,

इससे भगवान का यह अभिप्राय प्रगट होता है कि शरीररहित जीव कभी भी मुक्त नहीं
होता है। (जीवघणा) अन्तररहित होने से वे भगवान जीवप्रदेशमय रहते हैं। अत के शरीर
की अवगाहना से उनकी सिद्ध-अवस्था में अवगाहना कुछ कम रहती है। योगनिरोधकाल
में शरीर के छेदों के पूरण हो जाने से त्रिभाग—ऊन उनकी अवगाहना बतलाई गई है।
(दंसणणाणोवउत्ता) दर्शन एव ज्ञान से वे उपयुक्त रहा करते हैं। अनाकार ज्ञान का नाम
दर्शन एव साकार ज्ञान का नाम ज्ञान कहा गया है। (निद्वियट्टा) समस्त मनोरथ सिद्ध
हो जाने से एव कुछ भी कार्य करने के लिये बाकी नहीं रहने से वे भगवान् कृतकृत्य कहे
जाते हैं। तथा (निरेयणा) ये निश्चल, (नीरया) बध्यमान कर्मों से रहित, अथवा निरुद्वेग,
(णिम्मला) निर्मल—पूर्ववद्भक्तकों से निर्मुक्त, (वितिमिरा) अज्ञानरूप तिमिर से अतीत,

पणु आप्यु छे आथी लगवाननो आ अलिप्राय प्रगट थाय छे के शरीर-
सहित एव कही पणु मुक्त थतो नथी (जीवघणा) अतररहित होवाथी
ते लगवान एव प्रदेशमय रहे छे अतना शरीरनी अवगाहनाथी तेमनी
सिद्ध-अवस्थाभा अवगाहना जरा जोछी रहे छे योग-निरोध काजभा
शरीरना छेहोना पूरणु थर्ध जवाथी त्रिभाग-थून तेमनी अवगाहना भतावेली छे
(दंसणणाणोवउत्ता) दर्शन तेमज ज्ञानथी तेजो उपयुक्त रह्या करे छे अनाकार ज्ञाननु
नाम दर्शन तेमज साकार ज्ञाननु नाम ज्ञान कहेवाय छे (निद्वियट्टा) समस्त मनोरथ
सिद्ध थर्ध जवाथी तेमज काध पणु कार्य करवानु भाकी न रहेवाथी ते लगवान कृत-
कृत्य कहेवाय छे तथा (निरेयणा) तजो निश्चल, (नीरया) बध्यमान कर्मोथी
रहित, अथवा निरुद्वेग, (णिम्मला) निर्मल—पूर्ववद्भक्तकोथी निर्मुक्त, (वितिमिरा)
अज्ञानरूप तिमिर—अधकारथी अतीत, (विसुद्धा) कर्मोना विनाशथी थती

मूलम्—से केणट्टेणं भंते। एवं बुच्चड—ते णं तत्थ सिद्धा भवंति सादीया अपज्जवसिया जाव चिट्ठंति ? गोयमा ! से जहा णामए वीयाणं अग्गिदड्ढाणं पुणरवि अंकुरुप्पत्ती ण भवइ,

‘सासयमणागयद्ध काल चिट्ठति’ शाश्वतम् अनागताद् काल=भविष्य काल ‘चिट्ठति’ तिष्ठन्ति ॥ सू० ९३ ॥

टीका—गौतम पृच्छन्ति—‘से केणट्टेण भंते’! इत्यादि। ‘भंते’ हे भदन्त ! ‘से केणट्टेण’ अथ केनाऽर्थेन=केन कारणेन ‘एव बुच्चड’ एवमुच्यते ‘ते ण तत्थ सिद्धा भवन्ति’ ते खलु तत्र सिद्धा भवन्ति, ‘सादीया सादिना ‘अपज्जवसिया’ अपर्यवसिता ‘जाव चिट्ठति’ यावत् तिष्ठन्ति?, भगवानाह—‘गोयमा’ हे गौतम ! ‘से जहा णामए’ तद् यथा नाम ‘वीयाण अग्गिदड्ढाणं’ वीजानामग्निदग्धाना ‘पुणरवि’ पुनरपि ‘अंकुरुप्पत्ती ण भवइ’ अट्टपुरोत्पत्तिर्न भवति, ‘एवामेव सिद्धाणं रम्मवीए

(विमुद्धा) कर्मों क विनाश से उद्भूत आमविशुद्धि से युक्त हो कर (सासयमणागयद्ध काल चिट्ठति) भविष्यत्काल में शाश्वतरूप से सिद्धावस्था से संपन्न रहा करते हैं। अर्थात्—मिद्ध भगवान् सादि—अनन्त रहा करते हैं, एवं शुद्ध आत्मगुणों के पूर्ण विकास से वे सिद्ध—अवस्थाम अनन्तकाल तक विगजित रहते हैं ॥ सू० ९३ ॥

‘से केणट्टेणं’ इत्यादि।

प्रश्न—(भंते!) हे भदन्त! (से केणट्टेण एव बुच्चड) ‘व माणि अपर्यवसित होते हैं’ यह आप किस कारण से कहते हैं? उत्तर—(गोयमा!) हे गौतम! मुनो! (से जहा णामए वीयाण अग्गिदड्ढाणं पुणरवि अंकुरुप्पत्ती ण भवइ) जिन प्रकार अग्नि

आत्मविशुद्धिधी युक्त थडने (सासयमणागयद्ध काल चिट्ठति) भविष्यत्कालमा शाश्वत-उपवी सिद्धाव-वावी युक्त रह्या करे छे अर्थात्—सिद्ध लगवान् नादि अनन्त रह्या करे छे, तेमए शुद्ध आत्मगुणोना पूर्ण विकासधी तेओ मिद्ध अपर्यवामा अनन्तकाल सुधी विराजमान रहे छे (सू ६३)

‘से केणट्टेणं’ इत्यादि

प्रश्न—(भंते!) हे भदन्त! (से केणट्टेण एव बुच्चड) “तेओ मादि अपर्यवसित होय छे” जेभ आप शु धारणुधी कही छे? उत्तर—(गोयमा!) हे गौतम! मालोओ (से जहा णामए वीयाण अग्गिदड्ढाणं पुणरवि अंकुरुप्पत्ती ण भवइ) के प्रकारे अग्निधी अणेदा भीमा इग्ने अंकुर उत्पन्न करवानी

एवामेव सिद्धाणं कम्मवीए दइडे पुणरवि जम्मुप्पत्ती न भवइ,
से तेणट्ठेण गोयमा ! एवं वुच्चइ—ते णं तत्थ सिद्धा भवन्ति
सादीया अपज्जवसिया जाव चिट्ठन्ति ॥ सू० ९४ ॥

मूलम्—जीवा णं भन्ते । सिज्झमाणा कयरंमि सघयणे

दइडे' एवमेव सिद्धाना कर्मबीजे दग्धे सति 'पुणरवि' पुनरपि 'जम्मुप्पत्ती न
भवइ' जन्मोत्पत्तिर्न भवति=जन्मन प्रादुर्भावो न भवति, 'से तेणट्ठेण' तत्तेनाऽर्थेन,
'गोयमा' हे गौतम । 'एवं वुच्चइ' एवमुच्यते—'ते णं सिद्धा भवन्ति सादीया अपज्जव-
सिया' तेऽगलसिद्धा भवन्ति सादिका अपर्यवसिता 'जाव चिट्ठन्ति' यावत्तिष्ठन्ति ॥ सू० ९४ ॥

टीका—गौतम पृच्छति—'जीवा ण भन्ते' इत्यादि । 'भन्ते ! ? हे भदन्त ।
'जीवा ण' जीवा खलु 'सिज्झमाणा' सिद्धयन्त 'कयरंमि' कतरस्मिन्=पदसु
सहननेषु कस्मिन् 'सघयणे' सहनने 'सिज्झन्ति' सिध्यन्ति । भगवानाह—'गोयमा'

से दग्ध बीजां में पुन अकुर को उपन्न करनेकी शक्ति नहीं रहती है, (एवामेव सिद्धाण
कम्मवीए दइडे पुणरवि जम्मुप्पत्ती ण भवइ) उसी तरह सिद्ध भगवान् के भी कर्म-
रूपी ससारका बीज नष्ट हो जाने पर पुन जन्मकी उत्पत्ति नहीं होती है । (से तेणट्ठेण
गोयमा ! एव वुच्चइ) इसलिये हे गौतम ! ऐसा कहा है कि (ते ण सिद्धा भवन्ति
सादीया अपज्जवसिया) वे सिद्ध सादि अपर्यवसित होते हैं ॥ सू ९४ ॥

'जीवा ण भन्ते !' इत्यादि ।

प्रश्न—(भन्ते !) हे भदन्त ! (जीवा ण सिज्झमाणा) जीव सिद्ध होते हुए
(कयरंमि सघयणे सिज्झन्ति) उह सहननों में से कौन से सहनन में सिद्ध होते हैं ?

शक्ति रहती नहीं, (एवामेव सिद्धाण कम्मवीए दइडे पुणरवि जम्मुप्पत्ती ण
भवइ) तेलीए रीते सिद्ध लोगवानने पणु कर्मइपी ससारना वीए नए
थए ववाथी इरीने जन्मनी उत्पत्ति थती नथी. (से तेणट्ठेण गोयमा ! एव
वुच्चइ) ओटला भाटे हे गौतम ! ओम कइए छे .के. (ते ण सिद्धा भवन्ति
सादीया अपज्जवसिया) ते सिद्धी सादि-अपर्यवसित होय'छे (स ९४)

('जीवा ण भन्ते ! सिज्झमाणा' इत्यादि)

प्रश्न—(भन्ते !) हे भदन्त ! (जीवा ण सिज्झमाणा) एव सिद्ध थए
(कयरंमि सघयणे सिज्झन्ति ?) छ सहननोभाथी थया सहननभा सिद्ध

सिद्धंति? गोयमा । वद्भरोसभणारायसंघयणे सिद्धंति ॥ सू० ९५ ॥

मूलम्—जीवा ण भंते । सिद्धमाणा कयरंमि संठाणे सिद्धंति ? गोयमा । छण्हं संठाणाणं अण्णयरे संठाणे सिद्धंति ॥ ९६ ॥

हे गौतम ! 'वद्भरोसभणारायसंघयणे' वद्भरुपभनाराचसहनने 'सिद्धति' सिद्धचन्ति ॥ सू० ९५ ॥

टीका—गौतम पृच्छति— 'जीवा ण भंते !' इत्यादि । 'भंते !' हे भवन्त ! = हे भगवन् । 'जीवा णं सिद्धमाणा कयरंमि संठाणे सिद्धति ?' जीवा खलु सिध्यन्त कतरंमिन् सस्थाने सिध्यन्ति ? भगवानाह— 'गोयमा' हे गौतम ! 'छण्हं संठाणाणं अण्णयरे संठाणे सिद्धति' एणा सस्थानानामन्यतरंमिन् कस्मिंश्चिदेकंमिन् सस्थाने सिध्यन्ति ॥ सू० ९६ ॥

उत्तर—(गोयमा !) हे गौतम ! (वद्भरोसभणारायसंघयणे सिद्धति) वद्भरुपभनाराचसहनन से वे सिद्ध होते हैं । वद्भरुपभनाराचसहननवाला जीव ही मुक्ति को पाता है ॥ सू० ९५ ॥

'जीवा ण भंते !' इत्यादि ।

प्रश्न—(भंते !) हे भटत ! (जीवा ण सिद्धमाणा) जो जीव सिद्ध होते हैं वे (कयरंमि संठाणे सिद्धति) कौन से संस्थान से सिद्ध होते हैं ? उत्तर—(गोयमा !) हे गौतम ! (छण्हं संठाणाणं अण्णयरे संठाणे सिद्धति) छह संस्थानों में से किसी भी एक संस्थान से जीव सिद्धिगति का लाभ कर सकते हैं ॥ सू० ९६ ॥

थाय छे ? उत्तर—(गोयमा !) हे गौतम ! (वद्भरोसभणारायसंघयणे सिद्धति) वद्भरुपभनाराचसहननवाली तेणो सिद्ध थाय छे वद्भरुपभनाराचसहननवाणा एवञ्च भुजितने भेषवे छे (सू० ९५)

'जीवा ण भंते !' इत्यादि

प्रश्न—(भंते !) हे भटत ! (जीवा ण सिद्धमाणा) तेणो सिद्ध थाय छे तेणो (कयरंमि संठाणे सिद्धति ?) कथा संस्थानधी सिद्ध थाय छे ? उत्तर—(गोयमा !) छण्हं संठाणाणं अण्णयरे संठाणे सिद्धति) हे गौतम ! छ संस्थानोभाथी इथं पणुं एके संस्थानधी एव सिद्धिगतिनो लाभ करी शके छे (सू० ९६)

मूलम्—जीवा ण भते ! सिज्झमाणा कयरम्मि उच्चत्ते सिज्झन्ति ? गोयमा ! जहण्णेणं सत्तरयणीए, उक्कोसेणं पंचधणुसइए सिज्झन्ति ॥सू० ९७॥

टीका—गौतम पृच्छति—‘जीवा ण भते !’ इत्यादि । ‘भते !’ हे भदन्त ! ‘जीवाण सिज्झमाणा कयरम्मि उच्चत्ते सिज्झन्ति ?’ जीवा खलु सिध्यन्त कतगस्मिन्—क्रियति उच्चत्वेऽवगाहनेन सिध्यन्ति । भगवानाह—‘गोयमा !’ हे गौतम ! ‘जहण्णेणं’ जघन्येन ‘सत्तरयणीए’ सतरनिके=सपहस्त्रपरिमिते ‘उक्कोसेणं’ उक्कपेण ‘पंचधणुसइए’ पञ्चधनु-शतिके=पञ्चशतधनु परिमिते उच्चत्वे, ‘सिज्झन्ति’ सिध्यन्ति । चतुर्हस्तपरिमाणविशेषो धनुरित्युच्यते । इदं जघन्य तीर्थरुरापेक्षया कथितम् । अतो द्विहस्तप्रमाणेन कूर्मापुत्रेण न विरोधः । ॥ सू० ९७ ॥

‘जीवा ण भते !’ इत्यादि ।

प्रश्न—(जीवा ण भते ! सिज्झमाणा कयरम्मि उच्चत्ते सिज्झन्ति ?) हे भदन्त ! जो जीव सिद्ध होते हैं वे कितनी अवगाहना से सिद्ध होते हैं ? उत्तर—(गोयमा ! जहण्णेण सत्तरयणीए उक्कोसेण पंचधणुसइए सिज्झन्ति) हे गौतम ! कम से कम ७ हाथ प्रमाणवाली अवगाहना से और उत्कृष्ट से ५०० धनुषकी अवगाहना से सिद्ध होते हैं । ४ हाथका एक धनुष होता है । जघन्य, रुग्ण तीर्थरुर की अपेक्षा से जानना चाहिये । अतः दो हाथकी अवगाहना वाले कूर्मापुत्र से इसमें कोई विरोध नही आता है ॥ सू० ९७ ॥

‘जीवा ण भते !’ इत्यादि ।

प्रश्न—(जीवा ण भते ! सिज्झमाणा कयरम्मि उच्चत्ते सिज्झन्ति ?) हे भदन्त ! वे ७ हाथ सिद्ध थाय छे ते डेटली अवगाहनाथी सिद्ध थाय छे ? उत्तर—(गोयमा ! जहण्णेण सत्तरयणीए उक्कोसेण पंचधणुसइए सिज्झन्ति) हे गौतम ! आछामा आछी ७ हाथ—प्रमाणवाणी अवगाहनाथी अने उत्कृष्टथी (वधारेभा वधारे) ५०० धनुषनी अवगाहनाथी सिद्ध थाय छे ४ हाथनु अेक धनुष थाय छे जघन्य रुग्ण तीर्थरुरनी अपेक्षाअे ञ्णुनु नेध अे आथी जे हाथनी अवगाहनावाणा कूर्मापुत्रथी आमा डोर्ध विरोध आवतो नथी. (सं. ६७)

मूलम्—जीवा ण भन्ते । सिद्धमाणा कयरम्मि आउए सिद्धन्ति ? गोयमा । जहण्णेणं साइरेगट्टवासाउए, उक्कोसेणं पुव्वकोडियाउए सिद्धन्ति ॥ सू० ९८ ॥

टीका—गौतम पृच्छति—‘जीवा णं भन्ते ’ इत्यादि । ‘भन्ते ’ हे भवन्त । ‘जीवा ण सिद्धमाणा कयरम्मि आउए सिद्धन्ति ’ जीवा सद्ध सिध्यन्त कतरम्मिन् आउपि सिध्यन्ति । भगवानाह—‘गोयमा ’ इ गौतम । ‘जहण्णेण साइरेगट्टवासाउए’ जघन्येन सातिरेकाऽऽष्टवर्षाऽयुषि, ‘उक्कोसेण’ उक्कपेण ‘पुव्वकोडियाउए’ पूर्वकोट्यायुषि ‘सिद्धन्ति’ सिध्यन्ति । पूर्व इति चतुरश्रातिलक्षाणा चतुरश्रातिलक्षैर्गुणने कृते या सः स्योपलभ्यते तावत्सहस्रवर्षपरिमितं काल उच्यते ॥ सू० ९८ ॥

‘जीवा ण भन्ते’ इत्यादि ।

प्रश्न—(जीवा ण भन्ते ! सिद्धमाणा कयरम्मि आउए सिद्धन्ति ?) हे भवन्त ! जो जीव सिद्ध होते हैं वे कितनी आयुवाले सिद्ध होते हैं ? अर्थात् कितनी आयु-तरु के जीव सिद्धिगनिका लाभ कर सकते हैं ? उत्तर—(गोयमा । जहण्णेणं साइरेगट्टवासाउए उक्कोसेण पुव्वकोडियाउए सिद्धन्ति) क्रम से क्रम आठ वर्ष से कुछ अधिक आयु वाले जीव सिद्ध हो सकते हैं और ज्यादा से ज्यादा एक पूर्वकोटि आयुवाले जीव सिद्ध हो सकते हैं । ८४००००० चौरासी लाख वर्षका पूर्वाह्न होता है और ८४००००० चौरासी लाख पूर्वाह्नका एक पूर्व होता है ॥ सू ९८ ॥

‘जीवा ण भन्ते ’ इत्यादि.

प्रश्न—(जीवा ण भन्ते । सिद्धमाणा कयरम्मि आउए सिद्धन्ति ?) हे लहत ! ने एव सिद्ध थाय छे ते डेटली आयुध्यवाणा सिद्ध थाय छे ? अर्थात् डेटली आयुध्य सुधीना एव सिद्धिगतिनेो लाभ करी शक्ते छे ? उत्तर—(गोयमा । जहण्णेण साइरेगट्टवासाउए उक्कोसेण पुव्वकोडियाउए सिद्धन्ति) ओछामा ओछा ८ परसथी थोडी वधाउे आयु (उमर) वाणा एव सिद्ध थध शक्ते छे, अने वधारेमा वधारे १ पूर्वकोटी आयु-ध्यवाणा एव सिद्ध थध शक्ते छे ८४००००० चौरासी लाख वर्षनु ओउ पूर्वांज थाय छे, अने ८४००००० चौरासी लाख पूर्वांजनु ओउ पूर्व थाय छे (सू ९८)

मूलम्—जीवा ण भन्ते ! सिञ्जमाणा कयरम्मि उच्चत्ते सिञ्जति ? गोयमा ! जहण्णेणं सत्तरयणीए, उक्कोसेणं पंचधणुसइए सिञ्जंति ॥सू० ९७॥

टीका—गौतम पृच्छति—‘जीवा ण भन्ते !’ इत्यादि । ‘भन्ते !’ हे भदन्त ! ‘जीवाण सिञ्जमाणा कयरम्मि उच्चत्ते सिञ्जंति ?’ जीवा गच्छ सिञ्चन्त कतरस्मिन्—क्रियति उच्चत्वेऽप्रगाहनेन सिञ्चन्ति । भगवानाह—‘गोयमा !’ हे गौतम ! ‘जहण्णेणं’ जघयेन ‘सत्तरयणीए’ सत्तरनिके=सप्तहस्तपरिमिते ‘उक्कोसेणं’ उत्कर्षेण ‘पंचधणुसइए’ पञ्चधनु—शतिका=पञ्चगतधनु परिमिते उच्चत्वे, ‘सिञ्जति’ सिञ्चन्ति । चतुर्हस्तपरिमाणनिशेषो धनुरित्युच्यते । इदं जघन्य तीर्थकरापेक्षया कथितम् । अतो द्विहस्तप्रमाणेन कूर्मापुत्रेण न निरोधः । ॥ सू० ९७ ॥

‘जीवा ण भन्ते !’ इत्यादि ।

प्रश्न—(जीवा ण भन्ते ! सिञ्जमाणा कयरम्मि उच्चत्ते सिञ्जति ?) हे भदन्त ! जो जीव सिद्ध होते हैं वे कितनी अवगाहना से सिद्ध होते हैं ? उत्तर—(गोयमा ! जहण्णेण सत्तरयणीए उक्कोसेण पंचधणुसइए सिञ्जति) हे गौतम ! कम से कम ७ हाथ प्रमाणवाली अवगाहना से और उत्कृष्ट से ५०० धनुषकी अवगाहना से सिद्ध होते हैं । ४ हाथका एक धनुष होता है । जघन्य रुधन तीर्थकर की अपेक्षा से जानना चाहिये । अतः दो हाथकी अवगाहना वाले कूर्मापुत्र से इसमें कोई विरोध नहीं आता है ॥ सू० ९७ ॥

‘जीवा ण भन्ते !’ इत्यादि

प्रश्न—(जीवा ण भन्ते ! सिञ्जमाणा कयरम्मि उच्चत्ते सिञ्जति ?) हे भदन्त ! जे एव सिद्ध थाय छे ते डेटली अवगाहनाथी सिद्ध थाय छे ? उत्तर—(गोयमा ! जहण्णेण सत्तरयणीए उक्कोसेण पंचधणुसइए सिञ्जति) हे गौतम ! ओछाभा ओछी ७ हाथ-प्रमाणवाणी अवगाहनाथी अने उत्कृष्टथी (वधारेभा वधारे) ५०० धनुषनी अवगाहनाथी सिद्ध थाय छे ४ हाथनु ओके धनुष थाय छे जघन्य रुधन तीर्थकरनी अपेक्षाअे अणुवु जेध अे आथी जे हाथनी अवगाहनावाणा कूर्मापुत्रथी आभा डेध विरोध आवतो नथी. (सू. ९७)

भूमिभागाओ उड्डं चंदिमसूरियग्गहगणणक्खत्तताराभवणा-
ओ वहूड जोयणाडं, वहूडं जोयणसयाडं, वहूडं जोयणसहस्साडं,
वहूडं जोयणसयसहस्साडं, वहूओ जोयणकोडीओ, वहूओ जोय-
णकोडाकोडीओ उड्डतरं उप्पडत्ता सोहम्मि-साण-सणकुमार-

अस्या रनप्रमाया पृथिव्या 'वहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ' बहुमममर्णायाद्
भूमिभागात् 'उड्ड' ऊर्ध्वं 'चंदिम-सूरिय-ग्गहगण-णक्खत्त-ताराभवणाओ' चन्द्र-सूर्य-
ग्रहगण-नक्षत्र-ताराभवनात् 'वहूड जोयणाड' वह्नि योजनानि, 'वहूड जोयणसयाड'
वह्नि योजनगतानि, 'वहूडं जोयणसहस्साडं' वह्नि योजनसहस्राणि, 'वहूड जोयणसय-
सहस्साड' वह्नि योजनगतसहस्राणि, 'वहूओ जोयणकोडीओ' वह्न्यो योजनकोट्य
'वहूओ जोयणकोडीकोडीओ' वह्न्यो योजनकोटिकोट्य 'उड्डतर उप्पडत्ता'
ऊर्ध्वतरमुत्पद्य 'सोहम्मि-साण-सणकुमार-माहिंद-वम-लतग-महासुक्क-सहस्सार-
आणय-पाणय-आरण-अच्चुए'सौमि-गान-सनकुमार-माहन्ट-नल-लत्तक-महाशुक-

के (वहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ) बहुसमरमणीय भूमिभाग से (उड्ड) ऊँच-ऊपर
(चंदिम-सूरिय-ग्गहगण-णक्खत्त-ताराभवणाओ) चंद्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र एव ताराओं
के भवनों से (वहूड जोयणाड वहूडं जोयणसयाड वहूड जोयणसहस्साड वहूडं
जोयणसयसहस्साड वहूओ जोयणकोडीओ वहूओ जोयणकोडीकोडीओ) बहुत
योजन, बहुत सैरुडों योजन, बहुत हजारों योजन, बहुत लार्यों योजन, बहुत करोड़ों योजन एव अनेक
कोटीकोटी योजन (उड्डतरं उप्पडत्ता) ऊपर जाने पर (सोहम्मि-साण-सणकुमार-माहिंद-
वम-लतग-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण अच्चुए तिण्णि य अट्टारे गेविज्ज-

रचनापहाण पुटवीण) आ रत्नप्रला पृथिवीना (बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभा-
गाओ) अहुमभरमणीय भूमिभागथी (उड्डं) उच्च-उपर (चंदिमसूरियग्गह-
गणणक्खत्तताराभवणाओ) चंद्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तेभन् ताराओना
भवनाथी (वहूड जोयणसयाड वहूड जोयणसहस्साड वहूड जोयणसयसहस्साड वहूओ
जोयणकोडीओ वहूओ जोयणकोडीकोडीओ) धल्ला लाणो योजन, धल्ला येठो
योजन, डल्लरे योजन, धल्ला लाणो योजन, धल्ला डरेठो योजन तेभन्
अनेक डोटीडोटी योजन (उड्डतर उप्पडत्ता) उपर गता (सोहम्मि-साण-
सणकुमार-माहिंद-वम-लतग-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुए

मूलम्—से कर्हिं खाइ णं भंते । सिद्धा परिवसंति ? ।
गोयमा ! इमीसे रयणप्पहाए पुढवीए बहुसमरमणिजाओ

भदन्त । 'ईसीपब्भाराए' इप प्राग्भाराया—ईपत्त=अप प्राग्भारो=महत्त्व यस्या सा
तथा तस्या—सिद्धशिलाया 'पुढवीए' पृथिव्या 'अहे' अथ 'सिद्धा परिवसंति ?' सिद्धा
परिवसन्ति किम् ? भगवानाह—'णो इणट्ठे समट्ठे' नाऽयमर्थ समर्थ ॥ सू० १०१ ॥

टीका—'से कर्हिं' इत्यादि । गौतम पृच्छति—'से कर्हिं खाइ णं भंते ! सिद्धा
परिवसति ?' अथ कस्मिन् पुन खलु भदन्त ! सिद्धा परिवसन्ति ? 'खाइं' इतिदेगीय
शब्द पुनर्थवाचक । भगवानाह—'गोयमा !' हे गौतम ! 'इमीसे रयणप्पहाए पुढवीए'

'अत्थि ण भंते !' इत्यादि ।

प्रश्न—(भंते !) हे भदत ! (अत्थि ण ईसीपब्भाराए पुढवीए अहे सिद्धा परि-
वसति ?) क्या सिद्ध भगवान् ईपत्प्राग्भारा—सिद्धशिला के नीचे रहते हैं ? उत्तर—हे गौतम !
(णो इणट्ठे समट्ठे) यह अर्थ समर्थ नहीं है ॥ सू० १०१ ॥

'से कर्हिं खाइ णं' इत्यादि ।

गौतम ने पुन प्रश्न से पूछा—(भंते !) हे भदत ! (से कर्हिं खाइ णं सिद्धा
परिवसति) सिद्ध लोग इन पूर्वोक्त स्थानों में नहीं रहते तो फिर वे कहाँ रहते हे ? तब
प्रश्न ने कहा—(गोयमा !) हे गौतम ! (इमीसे रयणप्पहाए पुढवीए) इस स्तम्भप्रभापृथिवी

१—'खाइ' यह देगीय शब्द है, यह 'पुन' शब्द के अर्थ का द्योतक है । 'ण' शब्द
वाक्यालंकार में प्रयुक्त हुआ है ।

'अत्थि ण भंते !' इत्यादि

प्रश्न—(भंते !) हे भदत ! (अत्थि ण ईसीपब्भाराए पुढवीए अहे
सिद्धा परिवसति) शु सिद्ध भगवान् ईपत्प्राग्भारा—सिद्धशिलानी नीचे रहे
छे ? उत्तर—हे गौतम ! (णो इणट्ठे समट्ठे) आ अर्थ समर्थ नहीं
(सू० १०१)

'से कर्हिं खाइ णं' इत्यादि

गौतमे इदीने प्रश्नने पूछ्यु—(भंते !) हे भदत ! (से कर्हिं खाइ ण
सिद्धा परिवसति) सिद्ध लोग आ पूर्वोक्त स्थानोमा नहीं रहते तो पछी
तेओ कथा रहे छे ? त्यारे प्रश्नये कहुं—(गोयमा !) हे गौतम ! (इमीसे

१—'खाइ' ये शब्द देशी शब्द छे, आ शब्द 'पुन' शब्दना अर्थना सूचक
छे 'ण' शब्द वाक्यालंकारमा छे

यस्य काम एतत्परिचितं है कि पर देता है वे कुन पर 1961 में महले में सविधा पर

साइं आयामविक्रमभेणं, एगा जोयणकोडी वायालीस सहस्साइं तीसं च सहस्साइं दोण्णि य अउणापण्णे जोयणं ए किंचिविसेसाहिए परिरएणं ॥ सू० १०२ ॥

मूलम्—ईसीपन्भाराए णं पुढवीए बहुमज्झदेसभाए

जोयणाइ' द्वादश योजनानि 'जवाहाए' अत्राधया=अन्तरेण-दूरेण ततोऽप्युपरोत्यर्थ, 'एत्थ णं' अत्र खलु 'ईसीपन्भारा णाम' ईपन्भारा=सिद्धगिला नाम 'पुढवी पण्णत्ता' पृथिवी प्रजसा, 'पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्रमभेणं' पञ्चत्वारिंशत् याजनगतसहस्राणि आयामविक्रमभेण-आयामेन विक्रमभेण च, 'एगा जोयणकोडी' एका योजनकोटि 'वायालीसं च' द्वाचत्वारिंशच्च 'सयसहस्साइं' शतसहस्राणि 'तीसं च सहस्साइं' त्रिंशच्च सहस्राणि, 'दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसए' द्वे चैकोनपञ्चाशो योजनगते, 'किंचि विसेसाहिए' किञ्चिद्विशेषाधिके परिरयेण' परिरयेण=परिधिना ॥ सू० १०२ ॥

टीका—'ईसीपन्भाराए' इत्यादि । 'ईसीपन्भाराए णं पुढवीए' ईपन्भाराया खलु पृथिव्या 'बहुमज्झदेसभाए' अट्टजोयणिए खत्ते अट्ट जोयणाइ वाहट्ठेण'

भाग से (दुवालस जोयणाइ अत्राहाए) बारह योजन दूर जाने पर, अर्थात् इन पाच अनुत्तर विमानोंके शिखरों के अप्रभाग से १२ योजन ऊपर (एत्थ ण ईसीपन्भारा णाम पुढवी पण्णत्ता) ईपन्भारा पृथिवी अर्थात् सिद्धगिला है । (पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्रमभेण, एगा जोयणकोडी वायालीसं च सयसहस्साइं तीसं च सहस्साइं दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिरएण) यह पैतालीम लग्न योजनको लनी-चौडी और एक करोड बयालीस लाख, तीन हजार, दो सौ उचास योजन से कुछ अधिक परिधिवाली है ॥ सू० १०२ ॥

अर्थात् ये पाच अनुत्तरविमानोना अत्रलागथी १२ योजन ऊपर (एत्थ ण ईसीपन्भारा णाम पुढवी पण्णत्ता) ईपन्भारा पृथिवी-अर्थात् सिद्धशिला छे (पणयालीसं च जोयणसयसहस्साइं आयामविक्रमभेण, एगा जोयणकोडी वायालीसं च सयसहस्साइं तीसं च सहस्साइं दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिरएण) आ पीस्तालीस लाख योजननी लाणी-पडोणी अने अेठ करोड जेतालीस लाख त्रीम हजार पसो अोगणुपयाम योजनथी लग्न पधाए परिधिवाणी छे (सू० १०२)

माहिंद-बंभ-लंतग-महासुक-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण
 -अच्चए तिण्णि य अट्टारे गेविज्जविमाणावाससए वीईवइत्ता
 विजय-वैजयंत-जयंत-अपराजिय-सव्वट्टसिद्धस्स य महावि-
 माणस्स सव्वउवरिह्हाओ थूभियग्गाओ दुवालसजोयणाइं अवा-
 हाए एत्थ णं ईसीपव्वभारा णाम पुढवी पण्णत्ता, पणयालीसं जो-

सहस्राग-५५नत-प्राणता-५५-रणा-५-च्युतानि, 'तिण्णि य अट्टारे गेविज्जविमाणावाससए' त्रिणि
 च अष्टादश प्रैवेयविमानावासगतानि-प्रैययकविमानावासानाम अष्टादशाधिकगतत्रय 'वीईवइ-
 त्ता' व्यनित्तय-यनीय-उल्लङ्घ्य, तत्र- प्रथमत्रिकस्य एकदशाधिकगत (१११), द्वितीय-
 त्रिकस्य समोत्तरशत (१०७), तृतीयत्रिकस्य शत (१००) प्रैवेयकविमानावासान् व्यति-
 क्रम्येत्यर्थ । 'विजय-वैजयंत-जयंत-अपराजिय-सव्वट्टसिद्धस्स य महाविमाणस्स'
 विजय-वैजयन्त-जयन्ता-पराजित-सर्वार्थसिद्धस्य च महाविमानस्य 'सव्व-
 उवरिह्हाओ' सर्वोपरितनात्, 'थूभियग्गाओ' स्तूपिकाप्रात-गिखराप्रभागात् 'दुवालस

विमाणावाससए) सौधर्म, ईशान, सनकुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तरु, महाशुक, सह-
 स्सार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत ये १२ देवलोक, एव प्रथमत्रिक के १११, दूसरे
 त्रिकके १०७, एव तीसरे त्रिकके १०० इस प्रकार तीनमौ अठागह प्रैवेयक विमानों को
 (वीईवइत्ता) पार करने के बाद जो (विजय-वैजयंत-जयंत-अपराजिय-सव्वट्टसिद्धस्स
 य महाविमाणस्स सव्वउवरिह्हाओ थूभियग्गाओ) विजय, वैजयन्त, जयत, अपरा-
 जित एव सप्तार्थसिद्ध ये पांच अनुत्तर विमान आते हैं, इन महाविमानों के गिखर के अफ-

तिण्णि य अट्टारे गेविज्जविमाणावाससए) सौधर्म, ईशान, सनकुमार,
 माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तरु, महाशुक, सहस्सार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत
 आ १२ देवलोक, तेमज्ज प्रथम त्रिकना १११, भील त्रिकना १०७, तेमज्ज
 त्रील त्रिकना १००, ये रीते त्रयसो अठार (३१८) प्रैवेयक विमानोने (वीईवइत्ता)
 पार कथो पछी ने (विजय-वैजयंत-जयंत-अपराजिय-सव्वट्टसिद्धस्स य महा-
 विमाणस्स सव्वउवरिह्हाओ थूभियग्गाओ) विजय, वैजयन्त, जयत, अपराजित,
 तेमज्ज सर्वार्थसिद्ध ये पांच अनुत्तर विमान आवे छे, ये महाविमानना
 शिपरना अत्रलागथी (दुवालसजोयणाइ अवाहाए) १२ योजन हर जता

साङं आयामविक्रमभेणं, एगा जोयणकोडी वाया-
लीससहस्साइं तीसं च सहस्साइं दोण्णि य अउणापण्णे
जोयणसए किंचिविसेसाहिए परिरएणं ॥ सू० १०२ ॥

मूलम्—ईसीपञ्चभाराए णं पुढवीए वहुमञ्जदेसभाए

जोयणाइं द्वादश योजनानि 'अवाहाए' अवाधया=अन्तरेण-दूरेण ततोऽप्युपरित्यर्थ, 'एत्थ णं'
अत्र खलु 'ईसीपञ्चभारा णाम' ईप-प्राग्भारा=सिद्धशिला नाम 'पुढवी पण्णत्ता' पृथिवी प्रज्ञ-
ता, 'पणयालीस जोयणसयसहस्साइं आयामविक्रमभेण' पञ्चचारिंशत् याजनगतस-
हस्राणि आयामविक्रमभेण-आयामेन विक्रमभेण च, 'एगा जोयणकोडी' एका योजनकोटि
'वायालीस च' द्वाचचारिंशच्च 'सयसहस्साइं' गतसहस्राणि 'तीस च सहस्साइं' त्रिंशच्च
सहस्राणि, 'दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसए' द्वे चैकोनपञ्चाशो योजनगते, 'किंचि विसे-
साहिए' किञ्चिद्विघोषाधिके परिरयेण' परिरयेण=परिधिना ॥ सू० १०२ ॥

टीका—'ईसीपञ्चभाराए' इत्यादि । 'ईसीपञ्चभाराए णं पुढवीए' ईप-प्राग्भारा-
राया खलु पृथिव्या 'वहुमञ्जदेसभाए अट्टजोयणिए खेत्ते अट्ट जोयणाट् वाहलेण'

भाग से (दुवालस जोयणाइ अवाहाए) बारह योजन दूर जान पर, अर्थात् इन पाच
अनुत्तर विमानेके शिखरो के अग्रभाग से १२ योजन ऊपर (एत्थ ण ईसीपञ्चभारा णाम
पुढवी पण्णत्ता) ईप-प्राग्भारा पृथिवी अर्थात् सिद्धशिला है । (पणयालीस जोयणसय-
सहस्साट आयामविक्रमभेण, एगा जोयणकोडी वायालीस च सयसहस्साट तीस च
सहस्साट दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिरएण) यह पैंतालीस
लाख योजनकी लकी-चौडी और एक करोड बयालीस लाख, तीन हजार, दो सौ उचास
योजन से कुछ अधिक परिधिवाली है ॥ सू १०२ ॥

अर्थात् ये पाच अनुत्तरविमानेना अथलागथी १२ योजन उपर (एत्थ ण
ईसीपञ्चभारा णाम पुढवी पण्णत्ता) धृत्प्राग्भारा पृथिवी-अर्थात् सिद्धशिला
छे (पणयालीस च जोयणसयसहस्साइं आयामविक्रमभेण, एगा जोयणकोडी
वायालीस च सयसहस्साइ, तीस च सहस्साइ, दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसए
किंचि विसेसाहिए परिरएण) आ पीस्तालीस लाख योजननी लाणी-पडोणी
अने ओऽ करेड वेतालीस लाख तीस हजार अथो ओगधुपथास योजनधी
जरा वधारे परिधिवाली छे (सू० १०२)

अट्टजोयणिए खेत्ते अट्ट जोयणाइं वाहल्लेणं, तयाणतरं च णं
 मायाए २ परिहायमाणी २ सव्वेसु चरिमपेरंतेसु मच्चियपत्ताओ
 तणुयतरा । अंगुलस्स । असखेज्जइभागं वाहल्लेणं पणत्ता
 ॥ सू० १०३ ॥

बहुमध्यदेशभागोऽष्टयोजनिक क्षेत्रम् अष्ट योजनानि बाह्व्येन, 'तयाणतरं च णं' तदनंतरम्
 खलु 'मायाए' २ मात्रया २ 'परिहायमाणी' २ परिहायमाना २ 'सव्वेसु चरिमपेरंतेसु' सर्वेषु
 चरमप्रान्तेषु 'मच्चियपत्ताओ तणुयतरा' मक्षिक्रापक्षात्तनुक्तरा 'अंगुलस्स असखेज्जइभागं'
 अङ्गुलस्याऽऽह्वयेयभागं 'बाहल्लेणं' बाह्व्येन 'पणत्ता' प्रजना ॥ सू० १०३ ॥

'ईसीपन्भाराए ण पुढवीए' इत्यादि ।

इस (ईसीपन्भाराए ण पुढवीए) ईपद्भागभारा पृथिवीका अर्थात् सिद्धशिलाका
 (बहुमज्जदेशभाए अट्टजोयणिए खेत्ते) जो बहुमध्यदेशभागस्थित आठ योजनका क्षेत्र है,
 उसका (अट्टजोयणाइ वाहल्लेण) आठ योजन बाह्व्य है, अर्थात् सिद्धशिला बीच में आठ योजन
 जाड़ी है । (तयाणतरं च ण मायाए २ परिहायमाणी २) उस मध्यभाग से क्रमशः
 कम होती हुई यह (सव्वेसु चरिमपेरंतेसु) सभी चरम प्रदेशों में (मच्चियपत्ताओ तणु
 यतरा) मक्खी के पाख से भी अधिक पतली है, (अंगुलस्स असखेज्जइभाग वाहल्लेण
 पणत्ता) अतः यह बारीकी में अंगुल के असह्यतर्वे भाग जाननी चाहिये ॥ सू० १०३ ॥

'ईसीपन्भाराए ण पुढवीए' इत्यादि

आ (ईसीपन्भाराए ण पुढवीए) धृत्पद्भागभारा पृथिवीना, अर्थात्
 सिद्धशिलाना (बहुमज्जदेशभाए अट्टजोयणिए खेत्ते) अर्द्ध-मध्यदेश-भागभा
 रक्षेत्तु ० २ आठ योजन प्रमाणवाणु क्षेत्र छे, तेना (अट्टजोयणाइ वाहल्लेण)
 आठ योजन आह्वय छे, अर्थात् सिद्धशिला पश्चिमा आठ योजन लडी छे (तयाणतर
 च ण मायाए २ परिहायमाणी २) ते मध्यभागथी कश्चि धीमे-धीमे आली
 थता थता आ, (सव्वेसु चरिमपेरंतेसु) अधा चरम प्रदेशोभा (मच्चिय
 पत्ताओ तणुयतरा) भाषीनी पाष्यथी पणु वधारे पातणी छे (अंगुलस्स
 असखेज्जइभाग वाहल्लेण पणत्ता) आभ ते आरीक्षाधमा आगणीना अस्स आ-
 तमा भागनी लणुवी लेधये (सू० १०३)

मूलम्—ईसीपञ्चाराए णं पुढवीए दुवालस णामधे-
ज्जा पणत्ता, तं जहा—ईसीइ वा ईसीपञ्चाराइ वा तणूइ वा
तणुतणूइ वा सिद्धीइ वा सिद्धालएइ वा मुत्तीइ वा मुत्तालएइ
वा लोयग्गेइ वा लोयग्गधूमिगाइ वा लोयग्गपडिबुज्जणाइ वा
सव्व—पाण—भूय—जीव—सत्त—सुहावहाइ वा ॥ सू० १०४ ॥

टीका—‘ईसीपञ्चाराए’ इत्यादि । ‘ईसीपञ्चाराए णं पुढवीए दुवालस
णामधेज्जा पणत्ता’ ईषत्प्राग्भाराया रत्न पृथिव्या द्वादश नामधेयानि प्रजमानि, ‘तजहा’
तद्यथा—‘ईसीइ वा’ ईषत् इति वा १, ‘ईसीपञ्चाराइ वा’ ईषत्प्राग्भारा इति वा २, ‘तणूइ वा’
तनुरिति वा ३, ‘तणुतणूइ वा’ तनुतनुरिति वा ४, ‘सिद्धीइ वा’ सिद्धिरिति वा ५, ‘सिद्धालएइ वा’
सिद्धालय इति वा ६, ‘मुत्तीइ वा’ मुक्तिरिति वा ७, ‘मुत्तालएइ वा’ मुत्तालय इति वा
८, ‘लोयग्गेइ वा’ लोकाप्रमिति वा ९, ‘लोयग्गधूमिगाइ वा’ लोकाप्रस्तूपिकेति वा
१०, ‘लोयग्गपडिबुज्जणाइ वा’ लोकाप्रप्रतिबोधनेति वा ११, ‘सव्व—पाण—भूय—जीव
—सत्त—सुहावहाइ वा’ सर्व—प्राण—भूत—जीव—सत्त्व—सुखावहति वा १२ ॥ सू० १०४ ॥

‘ईसीपञ्चाराए णं पुढवीए’ इत्यादि ।

(ईसीपञ्चाराए णं पुढवीए दुवालस णामधेज्जा भवति) ईषत्प्राग्भारा पृथिवी
के १२ नाम हैं, (तं जहा) जैते-१—(ईसीइ वा) ईषत्, २—(ईसीपञ्चाराइ वा) ईषत्प्राग्भारा,
३—(तणूइ वा) तनु, ४—(तणुतणू इ वा) तनुतनु, ५—(सिद्धी इ वा) सिद्धि, ६—(सिद्धा-
लएइ वा) सिद्धालय, ७—(मुत्ती इ वा) मुक्ति, ८—(मुत्तालएइ वा) मुत्तालय, ९—(लोयग्गे
इ वा) लोकाप्र, १०—(लोयग्गधूमिगा इ वा) लोकाप्रस्तूपिका, ११—(लोयग्गपडिबुज्जणा

‘ईसीपञ्चाराए णं पुढवीए’ इत्यादि

(ईसीपञ्चाराए णं पुढवीए दुवालस णामधेज्जा पणत्ता) आ ईषत्प्रा
ग्भारा पृथिवीना १२ नामो छे, (त जहा) जैभके १—(ईसी इ वा) ईषत्, २—
(ईसीपञ्चारा इ वा) ईषत्प्राग्भारा, ३—(तणू इ वा) तनु, ४—(तणुतणू इ वा) तनुतनु,
५—(सिद्धी इ वा) सिद्धि, ६—(सिद्धालए इ वा) सिद्धालय, ७—(मुत्ती इ वा) मुक्ति, ८—
(मुत्तालए इ वा) मुत्तालय, ९—(लोयग्गे इ वा) लोकाप्र, १०—(लोयग्गधूमिगा इ वा)
लोकाप्रस्तूपिका, ११—(लोयग्गपडिबुज्जणा इ वा) लोकाप्रप्रतिबोधना, १२—(सव्व—पाण

मूलम्—ईसीपञ्चभारा णं पुढवी सेया संखतल-विमल-
सोल्लिय-मुणाल-दगरय-तुसार-गोक्खीर-हार-वण्णा उत्ताणय
-छत्त-संठाण-संठिया सब्वज्जुणसुव्वणयमई अच्छा सण्हा

टीका—‘ईसीपञ्चभारा’ इत्यादि । ‘ईसीपञ्चभारा णं पुढवी’ ईपप्राग्भारा खलु
पृथिवी ‘सेया’ श्वेता ‘संखतल-विमल-सोल्लिय-मुणाल-दगरय-तुसार-गोक्खीर-
-हार-वण्णा’ गद्दतल-विमल-शौन्य मृणाल-दकरज-स्तुपार-गोक्खीर-हार-वर्णा-तत्र-गइखतल=
गइक्खयाधस्तनो भाग, विमल=निर्मल शौन्य=श्वेतकुमुमविशेष, मृणाल=कमलस्य कन्द,
तुपार=हिम-‘वर्फ’ इति प्रसिद्धम्, हार=मुक्ताहार, गद्दादिहारान्ताना वर्णा इव वर्णो यस्या
सा तथा, ‘उत्ताणय-छत्त-संठाण-संठिया’ उत्तानकच्छत्र-मस्थान-संस्थिता-उत्तानकम्=
ऊर्ध्वमुख-विस्फारित यत् उत्र तस्य मस्थानमिव मस्थान तेन संस्थिता=युक्ता, ‘सब्वज्जुण-

इ वा) लोफप्रतिबोधना, १२-(सब्व-पाण-भूय-जीव-सत्त-सुहावहा इ वा) सर्व-
प्राणभूतजीवसत्त्वसुखावहा ॥ सू० १४ ॥

‘ईसीपञ्चभारा णं पुढवी’ इत्यादि ।

(ईसीपञ्चभारा णं पुढवी) यह ईपप्राग्भारा नामकी पृथिवी (सेया) सफेद है।
इसकी उज्ज्वलता (संखतल-विमल सोल्लिय मुणाल दगरय-तुपार-गोक्खीर-हार-वण्णा)
शब के तलभागके समान, शुभ्रपुष्पके समान, मृणालके समान, कमलके समान, पानीकी
बिन्दुओं के समान, बर्फ के समान, दुग्ध के समान, एव मुक्ताहार के समान है। ये सब
चीजें जिस प्रकार शुभ्र होती हैं उसी प्रकार यह भी शुभ्र है। (उत्ताणय-छत्त-संठाण-
संठिया) शिर पर ताने हुए छत्र के समान इसका आकार है। (सब्वज्जुण-सुव्वणयमई

-भूय-जीव-सत्त-सुहावहा इ वा) सर्व-प्राण-भूत-एव-सत्त्व-सुखावहा (सू० १०४)

‘ईसीपञ्चभारा णं पुढवी’ इत्यादि

(ईसीपञ्चभारा णं पुढवी) आ धपत्प्राग्भारा पृथिवी (सेया) सङ्के
छे तेनी उन्नवणता (संखतल-विमल-सोल्लिय-मुणाल-दगरय-तुसार-गोक्खीर-
हार-वण्णा) श भना तणीयाना भाग जेवी उन्नवण, शुभ्र पुष्प समान, कमलना
भृष्टाल जेवी, पाष्ठीना बिडुआना जेवी, अरुकेना जेवी, दूधना
जेवी, तेभज्ज भोतीना हार जेवी उन्नवण छे आ षधी खीले जेवी शुभ्र
(घोणी) डोय छे तेवीज्ज रीते आ पष्प शुभ्र छे (उत्ताणय-छत्त-संठाण-
संठिया) शिर उपर ओढेला छत्र समान तेना आकार छे (सब्वज्जुण-

लण्हा घट्टा मट्टा णीरया णिम्मला णिप्पंका णिककडच्छाया
समरीचिया सुप्पभा पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा
॥ सू० १०५ ॥

सुवण्णयमई सर्वाजुनसुवर्णकमयी-सर्वेण=सर्वावयवावच्छेदेन अर्जुनसुवर्णकमयी=श्वेत-
काञ्चनमयी, तथा-‘अच्छा’ अच्छा आकाशस्फटिकवत्, ‘सण्हा’ श्लक्ष्णा=शुभपरमाणुस्कन्ध-
रचिततया श्लक्ष्णा-सूक्ष्मतन्तुनिर्मितवस्त्रवत् सूक्ष्मा, ‘लण्हा’ श्लक्ष्णा-घुण्टितवस्त्रवन्मृणा,
‘लट्टा’ लट्टा=सुन्दराकृतिका, ‘घट्टा’ घट्टा=घृष्टेव-स्तरगाणया गोधितपापाणवत्, ‘मट्टा’
मट्टा=घृष्टेव-कोमलगाणया गोधितपापाणवत्, ‘णीरया’ नीरजा, ‘णिम्मला’ निर्मला,
‘णिप्पंका’ निप्पंका=ऊर्दमरहिता ‘णिककडच्छाया’ निष्कडच्छाया=आवरणरहिता
‘समरीचिया’ समरीचिका=किरणसमूहयुक्ता, ‘सुप्पभा’ सुप्पभा=शोभासम्पन्ना, ‘पासादीया’
प्रासादीया-प्रसाद=प्रमोद स एव प्रासाद, स प्रयोजन यस्या सा तथा, ‘दरिसणिज्जा’
दर्शनीया-दर्शनाय हिता, ता पश्यच्चक्षुर्न श्राम्यतीत्यर्थ, ‘अभिरूवा’ अभिरूपा=

अच्छा सण्हा लण्हा घट्टा मट्टा णीरया णिम्मला णिप्पंका णिककडच्छाया समरी-
चिया सुप्पभा पासादीया, दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा) तथा-यह सपूर्ण श्वेतका-
चनमय है, आकाश एव स्फटिक के समान स्वच्छ है, शुद्धपरमाणुस्कन्धों से रचित होने के
कारण सूक्ष्मतन्तुओं से निर्मित वस्त्र के समान सूक्ष्म है, घुटे हुए वस्त्र के समान चिकनी है,
घृष्ट है-स्तर गाण से घिसे हुए पत्थर के जैसी है, मृष्ट है, अर्थात्-कोमलगाण से घिसे हुए
पत्थर के समान चिकनी है। नीरज-निर्मल है। ऊर्दमरहित है। आवरणरहित है। किरणों
के समुदाय से सुरम्य है। शोभासे सज्ज है। प्रमोद प्रदान करने वाली है। दर्शनीय है।

सुवण्णयमई अच्छा सण्हा लण्हा घट्टा मट्टा णीरया णिम्मला णिप्पंका णिककड-
च्छाया समरीचिया सुप्पभा पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा) तथा
ये स पूर्ण श्वेत काचनमय छे, आकाश तेभञ्ज स्फटिकना समान स्वच्छ छे
शुद्ध परमाणुस्कंधोधी निर्मित होवाने जारणे सूक्ष्मतन्तुओधी निर्मित वस्त्र
समान सूक्ष्म छे, घुटित-भाठ विजेरिथी धमायेला पत्रनी माइठ थीकणी
छे, घृष्ट छे-अस्थालुथी धमायेला पत्थरना जेवी छे, मृष्ट छे-अर्थात्
कोमलगाणुथी धमायेला पत्थरना जेवी थीकणी छे, नीरज-निर्मल छे, ऊर्दम
(ठाव) थी रक्षित छे, शोभा-सम्पन्न छे, प्रमोद (आनंद) आपवा वाणी
छे, दर्शनीय छे, अने जेवावाणाना नेत्र अने जेता जेता धराताज नथी, अने

મૂલમ્—ઈસીપન્મ્રારાણ ણં પુઢવીણ સેયાણ જોયણંમિ
લોગંતે । તસ્સ જોયણસ્સ જે સે ઉવરિલ્લે ગાઝણ, તસ્સ ણં ગાઝ-
યસ્સ જે સે ઉવરિલ્લે છન્મ્રાગે, તત્થ ણં સિદ્ધા ભગવંતો સાદિયા

કમનીયા, 'પઢિચ્ચા' પ્રતિરૂપા—દર્ગને પ્રતિક્ષણ નવ નવમિવ પ્રતિભાસમાન રૂપ યસ્યા
સા તથા ॥ સૂ૦ ૧૦૫ ॥

ટીકા—'ઈસીપન્મ્રારાણ' ઇત્યાદિ । 'ઈસીપન્મ્રારાણ ણ' ઈપપ્રામ્રારાયા =સિદ્ધ-
શિલાયા સ્વલ્લ 'પુઢવીણ સેયાણ' પૃથિવ્યા શ્વેતાયા 'જોયણંમિ લોગંતે' યોજને લોકાન્ત =
યોજનપરિમિત ક્ષેત્રમુપરિ ગત્વા લોકાતો વર્તેતે । અત્ર યોજનમ્—ઉત્તેષ્ઠાક્કુલયોજન પ્રાહ્યમ્,
તદીયસ્યૈવ હિ ક્રોશપદ્મભાગસ્ય સત્રિભાગત્રયલ્લિશદધિક્રધનુ શતત્રયીપ્રમાણત્વાદિતિ । 'તસ્સ
જોયણસ્સ' તસ્ય યોજનસ્ય, 'જે સે' ય સ 'ઉવરિલ્લે' ઉપરિતન 'ગાઝણ' દેગી-
યોડયશબ્દ ક્રોગાર્થે, સ ચ દિસહસ્રધનુ પ્રમાણક્ષેત્રમ્, ઉક્તચ—“ ચઠહત્થ પુણ ધનુહ દુન્નિ
સહસ્સાઙ ગાઝય તેસિ ” ॥ ઇતિ । 'તસ્સ ણ' તસ્ય સ્વલ્લ 'ગાઝયસ્સ' ક્રોગસ્ય, 'જે
સે ઉવરિલ્લે' ય સ ઉપરિતન 'છન્મ્રાણ' પદ્મભાગ =પષ્ઠો ભાગ, 'તત્થ ણ સિદ્ધા ભગવતો

इसे देखने वालों के नेत्र इसे देखते २ थकते नहीं है । यह बड़ी ही कमनीय है । इसे ज्यों
ज्यों देखा जाता है त्यों २ यह नवीन २ जैसी प्रतीत होती है ॥ सू० १०५ ॥

'ईसिपन्म्राराण ण पुढवीण' इत्यादि ।

इस (ईसिपन्म्राराण ण पुढवीण सैयाण) शुभ्र ईपप्राग्भारा पृथिवी से (जोय-
णमि) ऊपर १ योजन में (लोगते) लोक का अंत है । (तस्स जोयणस्स जे से उवरि-
ल्ले गाउण, तस्स ण गाउयस्स जे से उवरि-
ल्ले छन्म्रागे, तत्थ ण सिद्धा भगवतो सादिया
अपज्जवसिया) उस योजनपरिमित लोक के अंत में ३३३ धनुष और ३२ अगुल जितनी
जगह रही है, उसमें अर्थात् उस योजन क ऊपर के कोस के छठवें भाग में सिद्ध भगवान्

બહુ જ ડમનીય છે, તેને જેમ જેમ જોવાય તેમ તેમ તે નવીન નવીન જેવી
પ્રતીત થાય છે (સૂ૦ ૧૦૫)

'ईसिपन्म्राराण ण पुढवीण' इत्यादि

આ (ईसिपन्म्राराण ण पुढवीण सैयाण) शुभ्र धपत्प्राग्भारा पृथिवीधी
(जोयणमि) ઉપર ૧ યોજનમા (લોગતે) લોકના અંત છે (તસ્સ જોયણસ્સ
જે સે ઉવરિલ્લે ગાઝણ, તસ્સ ણ ગાઝયસ્સ જે સે ઉવરિલ્લે છન્મ્રાગે, તત્થ ણ
સિદ્ધા ભગવતો સાદિયા અપજ્જવસિયા ચિદ્ઠતિ) તે યોજનપરિમિત લોકના
અંતમા ૩૩૩ ધનુષ અને ૩૨ આગળ જેટલી જગા રહી છે, તેમા અર્થાત્

अपञ्चसिया अणेगजाइ-जरा-मरण-जोणि-वेयणं संसार-
कलंकलीभाव-पुणवभव-गवभवास-वसही-पवंचं अडक्कता
सासयमणागयद्धं चिट्ठति ॥ सू० १०६ ॥

मूलम्—कहिं पडिहया सिद्धा ?, कहिं सिद्धा पडिट्ठिया ?

कहिं वोदि चइत्ता णं, कथं गंतूण सिद्धाड ? ॥ सू० १०७ ॥

सादिया अपञ्चसिया' तत्र खलु सिद्धाभगवन्त सादिका अपर्ययसिता 'अणेग-जाइ-
जरा-मरण-जोणि-वेयण' अनेक-जाति-जरा-मरण-योनि-वेदनम्-अनेकजातिजरा-
मरणप्रधानयोनिषु वेदना यत्र म तथा त, 'संसार-कलंकलीभाव-पुणवभव-गवभवास-
वसही-पवंचं मसार-कलङ्कलीभाव-पुनर्भय-गर्भवास-यसति-प्रपञ्च -मसारे कलङ्कलीभावेन
=असमजसवेन ये पुनर्भया =पौन पुन्येन उपादा, गर्भवासयसतय =गर्भाश्रयनिवासाश्च तासा
य प्रपञ्चो=विस्तर स तथा तम् 'अडक्कता' अतिक्रान्ता =निस्तीर्णा, 'सासय'
आश्रयतम 'अणागयद्धं' अनागताद्वा=भविष्यत्काल 'चिट्ठति' तिष्ठन्ति ॥ सू० १०६ ॥

टीका—'कहिं पडिहया' इति । गौतमं पृच्छति—'कहिं पडिहया सिद्धा' क्व
प्रतिहता सिद्धा =सिद्धा कुत्र प्रतिक्रिया, तथा 'कहिं सिद्धा पडिट्ठिया' क्व सिद्धा प्रति-

सादि-अपर्ययसित स्थिति में विगजमान हैं । (अणेग-जाइ-जरा-मरण-जोणि-वेयण
संसार-कलंकलीभाव-पुणवभव-गवभवास-वसही-पवचमडक्कता)ये सिद्ध भगवान् अनेक
जानि, जरा एव मरण की वेदना से, तथा असमजसपूर्ण जो बार बार जन्म लेना, गर्भ में
वास करना आदि दुःख हैं उनमें युक्त सासारिक प्रपञ्चों से रहित होकर (सासयमणागयद्ध
चिट्ठति) सदा आश्रितिकरूप से वहाँ पर निराजते रहते हैं ॥ सू० १०६ ॥

ते यो-ननी उपरना केअना छ्हा लागमा सिद्ध लगवान सादि-अपर्ययसित
स्थितिमा विराजमान थे (अणेग-जाइ-जरा-मरण-जोणि-वेयण संसार-कलंक-
लीभाव-पुणवभव-गवभवास-वसही-पवचमडक्कता) ये सिद्ध लगवान अनेक
जन्मो, जरा तेमज मरणादी वेदनाथी तथा असमजसपूर्ण जे बार बार जन्म
लेयो, गर्भमा वास करयो-आदि दुःख छे तेनाथी युक्त सासारिक प्रपञ्चो
रहित थरने (सासयमणागयद्ध चिट्ठति) सदा आश्रितिकरूपथी त्याज विरा
जता छे छे (सू० १०६)

मूलम्—ईसीपवभाराए णं पुढवीए सेयाए जोयणंमि लोगतंते । तस्स जोयणस्स जे से उवरिल्ले गाउए, तस्स णं गाउयस्स जे से उवरिल्ले छब्भागे, तत्थ णं सिद्धा भगवंतो सादिया

कमनीया, 'पडिरूपा' प्रतिरूपा—दुर्गने प्रतिक्षण नव नवमिव प्रतिभासमान रूप यस्या सा तथा ॥ सू० १०५ ॥

टीका—'ईसीपवभाराए' इत्यादि । 'ईसीपवभाराए णं' ईपप्राग्भाराया =सिद्ध-शिलाया खल्ल 'पुढवीए सेयाए' पृथिव्या श्वेताया 'जोयणंमि लोगतंते' योजने लोकान्त = योजनपरिमित क्षेत्रमुपरि गत्वा लोकान्तो वर्तते । अत्र योजनम्—उत्सेधाङ्गुलयोजन प्राहम्, तदीयस्यैव हि क्रोशपद्भागस्य सन्निभागत्रयत्रिंशदधिकधनु शतत्रयीप्रमाणत्वादिति । 'तस्स जोयणस्स' तस्य योजनस्य, 'जे से' य स 'उवरिल्ले' उपरितन 'गाउए' देशो-योऽयञ्बद्ध क्रोशार्थे, स च द्विसहस्रधनु प्रमाणक्षेत्रम्, उक्त च—“ चउहत्थ पुण धनुइ दुन्नि सहस्साइ गाउय तेसिं ” ॥ इति । 'तस्स णं' तस्य सल्ल 'गाउयस्स' क्रोशस्य, 'जे से उवरिल्ले' य स उपरितन 'छब्भाए' पड्भाग =पडो भाग, 'तत्थ णं सिद्धा भगवतो

इसे देखने वालों के नेत्र इसे देखते २ अकृते नहीं है । यह बड़ी ही कमनीय है । इसे ज्यों-ज्यों देखा जाता है त्यों-त्यों यह नवीन-नवीन प्रतीत होनी है ॥ सू० १०५ ॥

'ईसीपवभाराए णं पुढवीए' इत्यादि ।

इस (ईसीपवभाराए णं पुढवीए सेयाए) शुभ्र ईपप्राग्भारा पृथिवी से (जोयणमि) ऊपर १ योजन में (लोगतंते) लोक का अंत है । (तस्स जोयणस्स जे से उवरिल्ले गाउए, तस्स णं गाउयस्स जे से उवरिल्ले छब्भागे, तत्थ णं सिद्धा भगवतो सादिया अपज्जवसिया) उस योजनपरिमित लोक के अंत में ३३३ धनुष और ३२ अंगुल जितनी जगह स्त्री है, उसमें अर्थात् उस योजन के ऊपर के क्रोश के उठवे भाग में सिद्ध भगवान्

५६६ ७ कमनीय छे, तेने जेभ जेभ जेवथ तेम तेम ते नवीन नवीन जेवी प्रतीत थाय छे (सू० १०५)

'ईसीपवभाराए णं पुढवीए' इत्यादि

आ (ईसीपवभाराए णं पुढवीए सेयाए) शुभ्र धपत्प्राग्भारा पृथिवीथी (जोयणमि) ऊपर १ योजनमा (लोगतंते) लोकान्तो अंत छे (तस्स जोयणस्स जे से उवरिल्ले गाउए, तस्स णं गाउयस्स जे से उवरिल्ले छब्भागे, तत्थ णं सिद्धा भगवतो सादिया अपज्जवसिया चिट्ठति) ते योजनपरिमित लोकान्तो अंतमा ३३३ धनुष अने ३२ आंगण जेट्ठी जगा रही छे, तेमा अर्थात्

अपञ्जवसिया अणेगजाइ-जरा-मरण-जोणि-वेयणं संसार-
कलंकलीभाव-पुणवभव-गवभववास-वसही-पवंचं अइक्कता
सासयमणागयद्धं चिट्ठति ॥ सू० १०६ ॥

मूलम्—कहिं पडिहया सिद्धा ?, कहिं सिद्धा पडिट्टिया ?

कहिं वोदिं चइत्ता णं, कत्थ गंतूण सिज्झइ ? ॥ सू० १०७ ॥

सादिया अपञ्जवसिया' तत्र रलु सिद्धा भगवन्त सादिका अपर्यवसिता 'अणेग-जाइ-
जरा-मरण-जोणि-वेयणं' अनेक-जाति-जरा-मरण-योनि-वेदनम्-अनेकजातिजरा-
मरणप्रधानयोनिषु वेदना यत्र स तथा त, 'संसार-कलंकलीभाव-पुणवभव-गवभववास-
वसही-पवच मसार-कलंकलीभाव-पुनर्भव-गर्भवास-वसति-प्रपञ्चं - ससारे कलंकलीभावेन
= असमजसत्वेन ये पुनर्भवा = पौन पुन्येन उत्पादा, गर्भवासवसतय = गर्भाश्रयनिवासाश्च तासा
य प्रपञ्चो=विस्तर स तथा तम् 'अइक्कता' अतिक्रान्ता = निस्तीर्णा, 'सासय'
शाश्वतम् 'अणागयद्ध' अनागताद्वा=भविष्यत्काल 'चिट्ठति' तिष्ठन्ति ॥ सू० १०६ ॥

टीका—'कहिं पडिहया' इति । गौतम पृच्छति—'कहिं पडिहया सिद्धा' क्व
प्रतिहता सिद्धा = सिद्धा कुत्र प्रतिरुद्धा, तथा 'कहिं सिद्धा पडिट्टिया' क्व सिद्धा प्रति-

सादि-अपर्यवसित स्थिति मे विराजमान है । (अणेग-जाइ-जरा-मरण-जोणि-वेयणं
ससार-कलंकलीभाव-पुणवभव-गवभववास-वसही पवंचमइक्कता) ये सिद्ध भगवान् अनेक
जाति, जरा एव मरण की वेदना से, तथा असमजसपूर्णे जो बार बार जन्म लेना, गर्भ में
वास करना आदि दुःख है उनसे युक्त सासारिक प्रपञ्चों से रहित होकर (सासयमणागयद्ध
चिट्ठति) सदा शाश्वतिकरूप से वहाँ पर विराजने रहते हैं ॥ सू० १०६ ॥

ते योजननी उपरना डोसना छुटा लागभा सिद्ध लगवान सादि-अपर्यवसित
स्थितिमा विराजमान छे (अणेग-जाइ-जरा-मरण-जोणि-वेयण ससार-कलंक
लीभाव-पुणवभव-गवभववास-वसही-पवचमइक्कता) ये सिद्ध लगवान अनेक
जन्मो, जरा तेमज मरणुनी वेदनाथी तथा असमजसपूर्णे के बार बार जन्म
लेवे, गर्भमा वास करवे-आदि दुःख छे तेनाथी युक्त सासारिक प्रपञ्चोथी
रहित स्थिति (सासयमणागयद्ध चिट्ठति) सदा शाश्वतिकरूपथी त्याज विरा
जता रहे छे (सू० १०६)

मूलम्—अलोमे पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पडिट्टिया ।
इह वोदिं चइत्ता णं, तत्थ गंतूण सिज्झइ ॥ सू० १०८ ॥

पिता = व्यवस्थिता ' तथा—'कहिं वोदिं चइत्ता णं' १व शरीर त्यक्त्वा रसल 'कत्थ गंतूण' २व गत्वा 'सिज्झइ' सिव्यन्ति । 'वोदी' इति शरीरार्थको देशीशब्द । 'सिज्झइ' इत्यत्रार्पणवाद बहुत्वे ण्कवम् ॥ सू० १०७ ॥

टीका—'अलोमे' इत्यादि । 'अलोमे' अलोके=अलोकाकागास्तिकाये 'सिद्धा' सिद्धा 'पडिहया' प्रतिहता =प्रतिरुद्धा; तथा 'लोयग्गे य' लोकाये=पञ्चास्तिकायलक्षण-लोकशिरोभागे च 'पडिट्टिया' प्रतिपिता =अपुनरावृत्तिरूपेण व्यवस्थिता, तथा 'इह' इह

'कहिं पडिहया सिद्धा' इत्यादि ।

गौतम पूछते हे किं ह भदत ! (कहिं पडिहया सिद्धा) सिद्ध भगवान किस स्थान पर अटके है, (कहिं सिद्धा पडिट्टिया) वे कहा प्रतिष्ठित है, (कहिं वोदिं चइत्ता णं) इस शरीर को छोड़कर (कत्थ गंतूण सिज्झइ) वे कहा जा कर सिद्ध होते है ? ॥ सू० १०७ ॥

'अलोमे पडिहया' इत्यादि ।

उत्तर—हे गौतम ! (अलोमे पडिहया सिद्धा लोयग्गे य पडिट्टिया) सिद्ध भगवान् लोक के अग्रभाग में रहते है, उसलिये वे अलोक में जाने से अटके हुए हैं । लोक के अग्रभाग में उनकी स्थिति है । (इह वोदिं चइत्ता णं) इस मनुष्यलोक में वे शरीर का

'कहिं पडिहया सिद्धा ?' इत्यादि ।

गौतम पूछे छे डे डे लदन्त ! (कहिं पडिहया सिद्धा) सिद्ध भगवान् क्या स्थाने अटके छे ?, (कहिं सिद्धा पडिट्टिया) तेओ क्या प्रतिष्ठित छे ?, (कहिं वोदिं चइत्ता णं, कत्थ गंतूण सिज्झइ) आ शरीरने छोडीने तेओ क्या जर्धने सिद्ध थाय छे ? (सू० १०७)

'अलोमे पडिहया' इत्यादि

उत्तर—हे गौतम ! (अलोमे पडिहया सिद्धा) सिद्ध भगवान् लोकना अग्रभागमा रहे छे तेथी तेओ अलोकमा जवाधी अटकेला होय छे (लोयग्गे य पडिट्टिया) लोकना अग्रभागमा तेमणी स्थिति छे (इह वोदिं चइत्ता णं) आ मनुष्यलोकमा तेओ शरीरने परित्याग करीने (कत्थ गंतूण

मूलम्—जं संठाणं भवं, चयंतस्स चरिमसमयमि ।

आसीय पएसघणं, तं संठाणं तहिं तस्स ॥ सू० १०९ ॥

मूलम्—दीहं वा हस्सं वा, जं चरिमभवे हवेज्ज संठाणं ।

तत्तो तिभागहीणं, सिद्धाणोगाहणा भणिया ॥ सू० ११० ॥

मनुष्यक्षेत्रे 'वोदिं' शरीर 'चइत्ता णं' त्यक्त्वा गच्छ 'तत्थ' तत्र=शेकाग्रे 'गत्तूण' गत्वा 'सिज्झइ' सिध्यन्ति ॥ सू १०८ ॥

टीका—'ज संठाण' इत्यादि । 'भवं' भव=मसार 'चयंतस्स' त्यजत सिद्धस्य 'चरिमसमयमि' चरमसमये=मोक्षगमनसमये 'इह तु' इह तु=मनुष्यक्षेत्रे तु 'जं संठाणं' यत् सस्थानम् 'आसीय' आसीत्, 'त संठाण' तत् सस्थान 'तस्स' तस्य सिद्धस्य 'तहिं' तत्र सिद्धक्षेत्रे 'पएसघण' प्रदेशघन तृतीयभागेन रन्ध्रपुरणाद् भवति ॥ सू १०९ ॥

टीका—'दीह वा' इत्यादि । 'दीहं वा' दीर्घ=पञ्चानु गतमान वा, 'हस्सं वा' परित्याग करके (तत्थ गत्तूण सिज्झइ) सिद्धस्थान मे जाऊर सिद्ध होते हे ॥ सू १०८ ॥ 'ज संठाण' इत्यादि ।

(भव चयंतस्स) मसार का परित्याग करते हुए सिद्ध का (चरिमसमयमि) मोक्षगमन समय में (इह तु) इस मनुष्यक्षेत्र मे (जं संठाण) जो सस्थान था, (तस्स) उस सिद्धका (त संठाण) वह सस्थान (तहिं) उस सिद्ध क्षेत्र मे (पएसघण) कान, चक्षु आदि इन्द्रियों के रिक्त स्थान भर जाने के कारण प्रदेशघनरूप होता है ॥ सू १०९ ॥

'दीह वा हस्सं वा' इत्यादि ।

(दीह वा) चाहे सस्थान दीर्घ-५०० धनुष का हो, (हस्सं वा) चाहे ह्रस्व-२हाथ

सिद्ध स्थानमा ऋधने तेज्जा सिद्ध थाय छे (सू १०८)

'ज संठाण' इत्यादि

(भव चयंतस्स) ससारनेो परित्याग करती वपते सिद्धतु (चरिमसमयमि) मोक्षगमन समयमा (इह तु) आ मनुष्य-क्षेत्रमा (ज संठाण) जे सस्थान छेतु, (तस्स) ते सिद्धतु (त संठाण) ते सस्थान (तहिं) ते सिद्धक्षेत्रमा (पएसघणं) कान, आभ आदि ध्रियेना रिक्त स्थानो परिपूर्युं थवाने कारणे प्रदेशघनरूप थाय छे (सू १०९)

'दीह वा हस्सं वा' इत्यादि

(दीह वा) चाहे सस्थान दीर्घ (लाघु)-५०० धनुषतु डाय, (हस्सं वा)

मूलम्—तिष्ठिण सया तेत्तीसा, धणुत्तिभागो य होइ बोद्धव्वो ।
एसा खलु सिद्धाणं, उक्कोसोगाहणा भणिया ॥ सू० १११ ॥

ह्रस्व वा—हस्तद्वयमान वा, वा-शब्दान्मध्यमं चापि प्रात् 'ज चरिमभवे सठाणं ह्वेज्ज' यच्च-
मभवे सस्थान भवेत् 'तत्तो तत्त = तस्मात्, 'तिभागहीण' त्रिभागहीन=त्रिभागेन—तृतीयभागेन
रन्ध्रपूर्णात् त्रिभागहीन यथा स्यात्तथा 'सिद्धाणोगाहणा' सिद्धानामवगाहना 'भणिया'
भणिता=कथिता जिनेरिति शेष ॥ सू० ११० ॥

टीका—'तिष्ठिण' इत्यादि । 'तिष्ठिण सया तेत्तीसा' त्रीणि गतानि त्रयस्त्रि-
शदन्पि, तथा 'धणुत्तिभागो य' धनुस्त्रिभागश्च—धनुष = एकस्य धनुषस्त्रिभाग = तृतीयो भाग -
द्वात्रिंशद्द्वुगुलानि, तेन त्रयस्त्रिंशदधिकगतत्रय-३३३-धनुषि द्वात्रिंशद्द्वुगुलानि चेत्तर्था, अय
सिद्धानामुत्कर्षतोऽवगाहनाप्रमाणो 'बोद्धव्वो' बोद्धव्यो=जातव्यो भवति । अमुमेवार्थमाह—'एसा
खलु सिद्धाण उक्कोसोगाहणा भणिया' एसा खलु सिद्धानाम् उत्कर्षाऽवगाहना भणितेति ।
इयमवगाहना पञ्चधनुःशतप्रमाणशरीराणा भवतीति बोध्यम् ॥ सू० १११ ॥

का हो, अथवा मध्य—अवगाहना के विकल्पो वाला हो, (ज चरिमभवे ह्वेज्ज संठाण) अन्तिम
भव—समय में जैसी अवगाहनावाला शरीर होगा, (तत्तो तिभागहीण सिद्धाणोगाहणा
भणिया) उससे तृतीय भाग—हीन अवगाहना सिद्धों की सिद्धिगति में होती है ॥ सू० ११० ॥

'तिष्ठिण सया तेत्तीसा' इत्यादि ।

(तिष्ठिण सया तेत्तीसा) तीन सौ तैंतीस धनुष, तथा (धणुत्तिभागो य होइ
बोद्धव्वो) एक धनुष का तीसरा भाग, अर्थात् ३२ अगुल, (एसा खलु सिद्धाण उक्को-
सोगाहणा भणिया) इतनी उत्कृष्ट अवगाहना सिद्ध भगवान् की जानना चाहिये । यह
अवगाहना, जिनका शरीर ५०० धनुष का होता है उनकी अपेक्षा कहीं गई है ॥ सू० १११ ॥

आहे ह्रस्व-टुटु-२ हाधनु डोय, अथवा मध्य अवगाहनाना विकल्पोवाणु
डोय, (ज चरिमभवे ह्वेज्ज संठाण) अन्तिम लव—अथवा लेवी अवगाहना-
वाणु शरीर डोये (तत्तो तिभागहीण सिद्धाणोगाहणा भणिया) तेनाथी त्रीण
भागनी ओछी अवगाहना सिद्धोनी सिद्धिगतिमा डोय छे (सू० ११०)

'तिष्ठिणसया तेत्तीसा' धर्थादि

(तिष्ठिण सया तेत्तीसा) त्रयुसो ते त्रीस धनुष, तथा (धणुत्तिभागो य होइ
बोद्धव्वो) ओक धनुषने त्रीणे भाग, अर्थात् ३२ आगण, (एसा खलु सिद्धाण
उक्कोसोगाहणा भणिया) ओटली उत्कृष्ट अवगाहना सिद्ध भगवान् की जाननी चाहिये

मूलम्—चत्तारि य रयणीओ, रयणितिभागूणिया य वोद्धव्वा ।

एसा खलु सिद्धाणं, मज्झिमओगाहगा भणिया ॥ सू० ११२ ॥

मूलम्—एक्का च होइ रयणी, साहीया अंगुलाइ अट्ट भवे ।

एसा खलु सिद्धाणं, जहणणओगाहणा भणिया ॥ सू० ११३ ॥

टीका—‘चत्तारि’ इत्यादि । ‘चत्तारि य रयणीओ’ चत्तस्रश्च रनय, ‘रयणितिभागूणिया य’ रनित्रिभागोन्निक्का च सिद्धाना मध्यमाऽवगाहना ‘वोद्धव्वा’ बोद्धव्या । अमुमेवार्थमाह— ‘एसा खलु सिद्धाण मज्झिमओगाहणा भणिया’ एषा खलु सिद्धाना मध्यमाऽवगाहना भणिता । पोटगाइगुलापरिचतुर्हस्तप्रमाणा सिद्धाना मध्यमावगाहनं यर्थ । इय सप्तहस्तप्रमाणशरीरधारिणा सिद्धानाम् ॥ सू० ११२ ॥

टीका—‘एक्का’ इत्यादि । सिद्धाना जघन्याऽवगाहनयाम् ‘एक्का च होइ

‘चत्तारि य रयणीओ’ इत्यादि ।

(चत्तारि य रयणीओ) चार हाथ और (रयणितिभागूणिया य वोद्धव्वा) एक हाथ का तीसरा भाग, अर्थात् १६ अंगुल का मध्यम अवगाहना होता है । (एसा खलु सिद्धाण मज्झिमओगाहणा भणिया) सिद्धा का यह मध्यम अवगाहना ७ हाथ शरीरवालों का अपेक्षा से जाननी चाहिये ॥ सू० ११२ ॥

‘एक्का च होइ रयणी’ इत्यादि ।

(एक्का च होइ रयणी साहीया अंगुलाइ अट्ट भवे) कुछ अधिक एक हाथ,

आ अवगाहना, जेतु शरीर ५०० धनुषतु डोय उ तेनी अपेक्षाये उडेवी छे (सू० १११)

‘चत्तारि य रयणीओ’ इत्यादि

(चत्तारि य रयणीओ) चार हाथ अने (रयणितिभागूणिया य वोद्धव्वा) १ हाथने तीसरे भाग, अर्थात् १६ आंगुली मध्यम अवगाहना डोय छे (एसा खलु सिद्धाण मज्झिम-ओगाहणा भणिया) नि दोनी आ मध्यम अवगाहना ७ हाथ शरीरवालों की अपेक्षा से जाननी चाहिये (सू० ११२)

‘एक्का च होइ रयणी’ इत्यादि

(एक्का च होइ रयणी साहीया अंगुलाइ अट्ट भवे) अथ हाथकी तीसरी

રચણી સાહીયા' ણ્કા ચ ભવતિ રતિ સાધિકા । ક્રિયતા પ્રમાણેનાપ્રિકા ભવતીત્યાદ-
 'અગુલાઈ' ડ્યાદિ । 'અગુલાઈ અટ્ટ ભવે' અટ્ટગુલાનિ અટ્ટ ભવતિ । અટ્ટાહુલાધિકૈરુ-
 હસ્તપ્રમાણા સિદ્ધાના જઘ્ન્યાવગાહના ભવતી યથા । અમુમેર્જાયામહ—'એસા સલુ સિદ્ધાણ
 જઘ્નણઓગાહણા મળિયા' ણ્પા સલુ સિદ્ધાણ જઘ્ન્યાવગાહના મળિતેતિ ।
 ડ્ય દ્વિહસ્તપ્રમાણશરીરાણામ્ । ડ્ય ત્રિવિધાઽપ્યવગાહના શરારાર્ચમાનમાશ્રિય ગૃપ્તે,
 અન્યયોપવિષ્ટાના સિધ્યતા માન ત્રિસદ્શમપિ ભવેત । નન્વેવમૂર્માનાક્ષીકારે નામિકુલ-
 લકરસ્ય માર્યાયા મરુદેવ્યા કથ સિદ્ધિસ્થાનપ્રાપ્તિ, નામિકુલકરો દ્વિ પદ્મવિગ્ન્યાધિકૃ-
 પદ્મગતધનુ પ્રમાણ આસીત્, તદ્ધાર્યાઽપિ મસ્દેવી તપ્રમાણૈવ, તથાચોક્તમ્—“સંઘયણ સઠાણ
 ઉચ્ચત્ત ચેવ કુલગરેહિં સમ ” ડ્વિતિ । અતસ્તદવગાહના ડ્વકૃષ્ટાવગાહનાતોઽધિકૃતરા ?,

અર્થાત્ ણ્કા હાથ ૮ અગુલ, (એસા સલુ સિદ્ધાણ જઘ્નણઓગાહણા મળિયા) યદ્ જઘ્ન્ય
 અવગાહના સિદ્ધ મળવાનું ફી જાનનીં ચાહિયે । યદ્ અવગાહના ૨ હાથ ફી અવગાહનાવાલે
 જીવો ફી અપેક્ષા વહી ગઈ સમજના ચાહિયે । યદ્ તાનો પ્રકાર ફી અવગાહના શરાર ફી
 ડેંચાઈ ફી અપેક્ષા વહી ગઈ હૈ । ટ્રૈટકર સિદ્ધ હોને વાલો કા માન તો વિસદ્શ મી
 હોના ચાહિયે । પ્રશ્ન—ડ્વસ તરહ ડ્વર્ચમાન કો આશ્રિત કરન પર નામિકુલકર ફી માર્યા મરુ-
 દેવા કો મિદ્ધિસ્થાન ફી પ્રાપ્તિ કૈસે હો સકતી હૈ, ક્યોં ફિ નામિકુલકર ૫૨૫ ધનુપ પ્રમાણ
 અવગાહનાવાલે થે તો ડ્વનકી ધર્મપત્ની મા ડ્વતના હી અવગાહનાવાલી હોંગા । ક્યોં ફિ એસા
 વહા હૈ ફિ મહનન ડ્વસ્થાન ડ્વુલકરો ફી મહિલાઓ ફા ડ્વુલકરો કે સમાન હોતા હૈ ।
 ડ્વસલિયે ડ્વનકી અવગાહના ડ્વકૃષ્ટ અવગાહના સે અધિકૃતર હો જાતી હૈ ? । ડ્વત્તર—પ્રશ્ન ડ્વક
 હૈ, પરંતુ ડ્વસકા સમાધાન ડ્વસ પ્રકાર હૈ, યદ્વપિ ડ્વુલકર જૈસી ડ્વચ્ચતા ડ્વનકી પત્નિયોં મેં

વધારે, અર્થાત્ એક હાથ ૮ આગળ, (એસા સલુ સિદ્ધાણ જઘ્નણઓગાહણા
 મળિયા) સિદ્ધ લગવાનનીં આ જઘ્ન્ય અવગાહના બલુવી આ અવગાહના
 ૨ હાથની અવગાહનાવાળા બલુવીની અપેક્ષાએ કહેલી છે એમ સમજવું એ
 ત્રણેય પ્રકારની અવગાહના શરીરની ઉચ્ચાઈની અપેક્ષાએ કહેલી છે નહિ
 તો એસીને સિદ્ધ થવાવાળાઓનું માન (પ્રમાણ) વિસદ્શ (બુદ્ધ) પણ હોવું
 જોઈએ પ્રશ્ન—આ રીતે ઉર્ધ્વ (ઉચ્ચ) માનને આશ્રિત કરવાથી નાલિકુલ-
 કરના ધર્મપત્ની મરુદેવીને સિદ્ધિસ્થાનની પ્રાપ્તિ કેવી રીતે થઈ શકે ?, કેમ કે
 નાલિકુલકર પર ૫ ધનુષ્યપ્રમાણ અવગાહનાવાળા હતા તો, તેમના ધર્મપત્ની
 પણ એટલી જ અવગાહનાવાળી હશે કેમકે એમ કહ્યું છે કે કુલકરોની મહિલા
 ડ્વોનું મહનન અને સસ્થાન કુલકરોના સમાન હોય છે આથી તેમની
 અવગાહના, ઉકૃષ્ટ અવગાહનાથી વધારે થઈ જાય છે ઉત્તર—પ્રશ્ન ડ્વક છે,
 પરંતુ તેનું સમાધાન આ પ્રકારે છે, જોડે કુલકર જેવી ઉચ્ચતા તેમની પત્ની

मूलम्—ओगाहणाए सिद्धा, भवत्तिभागेण होति परिहीणा ।
संठाणमणित्थत्थ, जरामरणविप्पमुक्काणं ॥ सू० ११४ ॥
जत्थ य एगो सिद्धो, तत्थ अणता भवक्खयविमुक्का ।

अत्रोच्यते—यद्यपि कुलकरतुन्यमुत्तत्त्व तपनानामित्युक्त, तथापि पद्मगतधनुमानता तस्या
वार्द्धक्येन शरीरमक्रोचात् मजातेति नास्ति विरोध ॥ सू० ११३ ॥

टीका—‘ओगाहणाए’ इत्यादि । ‘ओगाहणाए’अवगाहनया=स्वावगाहनया‘सिद्धा’
सिद्धा, ‘भवत्तिभागेण’ भवत्तिभागन—भवत्स्य=चरमभयशरीरस्य—चरमशरीरसम्बन्धिण्या
अवगाहनाया, त्रिभागेन=तृतीयभागेन ‘परिहीणा’ परिहीना ‘होति’ भवन्ति । तेषा
‘जरामरणविप्पमुक्काणं’ जरामरणविप्रमुक्ताना सिद्धानाम् ‘अणित्थत्थं’ अणित्थस्यम्—अमुना
प्रकारेणेती यम्, तत्र तिष्ठतीति—इत्यस्यम्, न इत्यस्यम्—अणित्थस्यम्—न केनचित्परिमण्डलादिलौ-
किकमस्थानन स्थित ‘संठाण’ मस्थान भवति ॥ सू० ११४ ॥

टीका—तत्र सिद्धक्षेत्रे सिद्धा देशभेदेन उतैकस्मिन् देशे तिष्ठन्तीत्यागङ्गाया-
माह—‘जत्थ’ इति । ‘जत्थ य’ यत्र च=यत्रैव देशे, ‘एगो सिद्धो’ एक सिद्धस्तिष्ठति,

होती हे तो भी उनमें ५०० धनुष—प्रमाणता उनके वृद्ध अवस्था में शरीरके सक्रोचसे घटित
हो जाती है । अन क्रोर्द विरोधनहा है ॥ सू० ११३ ॥

‘ओगाहणाए सिद्धा’ इत्यादि ।

(ओगाहणाए सिद्धा भवत्तिभागेण होति परिहीणा) सिद्ध अपने अतिम-
शरीर—सत्रधी अवगाहना के तृतीय भाग से हीन अवगाहनावान्ते होते है । (संठाणमणित्थत्थ
जरामरणविप्पमुक्काण) उनका आकार किसी परिमण्डल आदि लौकिक आकार से स्थित
नहीं है, वे जन्म, जग एव मरण से सदा के लिये रहित हो जाते है ॥ सू० ११४ ॥

ओमा डोय छे तो पष्ण तेओमा ५०० धनुषप्रमाषुता तेमनी वृद्धावस्थाभा
शरीरन्ता अ डोयावायी घटीने थर्ध णय छे तेथी डोय विरोध नथी (सू० ११३)
‘ओगाहणाए सिद्धा’ इत्यादि

(ओगाहणाए सिद्धा भवत्तिभागेण होति परिहीणा) सिद्ध पोतानी अव-
गाहनाथी अतिमशरीरन्तधी अवगाहनाता त्रीण लागथी ओछा थाय
छे (संठाणमणित्थत्थ जरामरणविप्पमुक्काण) तेमने आकार डोय परिमण्डल
आदि लौकिक आकारन्धी स्थित नयी तेओ जन्म, जरा तेमज मरषुथी
सहायने भाटे रहित थर्ध णय छे (सू० ११४)

अण्णोणसमोगाढा, पुट्टा सव्वे य लोगंते ॥ सू० १५१ ॥
मूलम्—फुसइ अणते सिद्धे, सव्वपएसेहि णियमसा सिद्धो ।

‘तत्थ’ तत्र देशे ‘अणता’ अनता—अप्रियमानोऽन्तो येषां तेषान्ता, ‘भवक्खयविमुक्का’ भवक्षयविमुक्ता—भवदाये सति विप्रमुक्ता, अनेन स्वेच्छयाऽनतरण-शक्तिमसिद्धव्यवच्छेदमाह । ‘अण्णोणसमोगाढा’ अन्योऽयसमवगाढा=परपरस्पर सम्यक् अवगाढा—धर्मास्तिकायादिप्रत् ममिलिता, ‘सव्वे य’ सर्वं च लोगंते’ लोकात्ते =लोकाप्रभागे अलोकेन ‘पुट्टा’ स्पृष्टा=जलना, प्रतिरुद्धत्वात्, तत्र धर्मास्तिकाया-भावादिति । अत एव—‘लोकाग्रे च प्रतिष्ठिता’ इत्युक्तम् ॥ सू० ११५ ॥

टीका—‘फुसइ’ इत्यादि । ‘सिद्धे’ सिद्ध =एक सिद्ध ‘णियमसा’ नियमन

‘जत्थ य एगो सिद्धो’ इत्यादि ।

(जत्थ य एगो सिद्धो) जिस सिद्धक्षेत्र में एक सिद्ध भगवान् विराजते है, (तत्थ अणता) उसी सिद्धक्षेत्र में अनन्त सिद्ध विराजमान रहतेह । (भवक्खयविमुक्का) उनके भवका क्षय सर्वथा हो चुका है । (अण्णोणसमोगाढा पुट्टा) जिस प्रकार एक ही स्थान पर धर्मादिक द्रव्य परस्पर अवगाढरूप में स्थित होकर रहते है उसी प्रकार ये सिद्ध आत्मा भी एक ही स्थान पर परस्पर में अवगाढरूप से रहते है । फिर भी अपने २ चैतन्य-स्वरूप का परित्याग नहीं करते है । (सव्वे य लोगंते) धर्मास्तिकायका अभाव होने से ये लोक के अप्रभाग में स्पृष्ट रहते है ॥ स ११५ ॥

‘फुसइ अणते सिद्धे’ इत्यादि ।

(फुसइ अणते सिद्धे सव्वपएसेहि णियमसा सिद्धो) एक सिद्ध

‘जत्थ य एगो सिद्धो’ इत्यादि

(जत्थ य एगो सिद्धो) जे सिद्धक्षेत्रमा ओक सिद्ध लगवान् गिराजे छे, (तत्थ अणता) तेज सिद्धक्षेत्रमा अनन्त सिद्ध विराजमान होय छे (भवक्खयविमुक्का) तेभना लवने क्षय सर्वथा थध् चूठये छे (अण्णोणसमोगाढा पुट्टा) जे प्रकारे ओक ज स्थान पर धर्मादिक द्रव्य परस्पर अवगाढरूपमा स्थित थध् रहै छे तेज प्रकारे ते सिद्ध आत्मा पण् ओकज स्थान पर परस्परमा अवगाढरूपधी रहै छे छत्ता पण् पोतपोताना चैतन्यस्वरूपने परित्याग करता नथी धर्मास्तिकायने अभाव होवाथी तेओ दोउना अज लागमा स्पृष्ट (लागी) रहै छे (सू ११५)

‘फुसइ अणते सिद्धे’ इत्यादि

(फुसइ अणते सिद्धे सव्वपएसेहि णियमसा सिद्धो) ओक सिद्ध लगवान्

ते वि असखेज्जगुणा, देसपएसेहिं जे पुट्टा ॥सू०॥ ११६ ॥

‘सव्यपएसेहिं’ सर्वप्रदेश = आमनोऽमर्यातप्रदेश, ‘अणते सिद्धे’ अनन्तान् मिद्वान् ‘फूसड’ स्पृशति । तथा ‘ते वि’ तेऽपि = ते सर्वे सिद्धा अपि ‘असखेज्जगुणा’ असखेय-गुणा वर्तन्ते, ‘जे’ ये सिद्धा ‘देसपएमेहिं’ देशप्रदेशे-देशे = अमर्यातदेशे प्रदेशे = असर्यात-प्रदेशेऽथ ‘पुट्टा’ स्पृश्या । तेषा सर्वेषा मिद्वाना प्रयेक स्वस्वव्यतिरिक्तसिद्धैरसर्यातदेश-प्रदेशत्रिभिर्मिलित्वेन गुणितप्रमद्वीकृत्य “असखेयगुणा” इत्युक्तम् । अयं भावः—सर्वाम-प्रदेशैस्तावदन्तत्ता सिद्धा स्पृश्या, एकसिद्धाऽवगाहनायामनन्तानामवगाहत्वात् । तथैकैक-देशेनाऽप्यनन्ता, एवमेकैकप्रदेशेनाप्यनन्ता अप्य । तत्र देशो—द्विचाद्विप्रदेशसमुदाय, प्रदे-अस्तु—निर्विभागोऽग इति । एकैकसिद्धश्चाऽमर्यातदेशप्रदेशामक, ततश्च मूलाऽनन्तकेऽ-सर्यातदेशेऽनन्तैरसखेयैस्व च प्रदेशाऽनन्तैरुणिते यावती सख्या भवेत् सा केऽल्लिगभ्यैवेति ॥ सू ११६ ॥

भगवान् नियम से आत्मा के अमर्यातप्रदेशों द्वारा अनन्त सिद्धों का स्पर्श करते हैं और (ते वि असखेज्जगुणा) वे सब सिद्ध अमर्यातप्रदेशों से स्थित हैं । (देसपएसेहिं जे पुट्टा) देश से एव प्रदेशों से भी वे सिद्ध असर्यातगुणित हैं । मतलब इसका यह है कि समस्त आत्मप्रदेशों से वे अनन्त सिद्ध स्पृष्ट हैं । एक सिद्ध की आत्मा में अनन्त सिद्धों की अवगाहना होने से, तथा एक एक देश से, एव प्रदेश से वे सिद्ध अनन्त हैं । द्विचाद्विप्रदेश के समुदाय का नाम देश, एव अविभागी अग का नाम प्रदेश है । एक एक सिद्ध असर्यात देश और प्रदेशात्मक हैं । इसलिये मूल अनन्त को अमर्यात एव अनन्त देश और प्रदेशों से गुणा करने पर कितनी राशि होगी यह बात सिर्फ केवली भगवान् द्वारा ही जानी जा सकती है ॥ सू ११६ ॥

नियमधी आत्माना असख्यात प्रदेशो द्वारा अनन्त सिद्धीनो स्पर्श करे छे, अने (ते वि असखेज्जगुणा) ते पधा सिद्ध अमर्यात प्रदेशोधी सस्थित छे (देसपएसेहिं जे पुट्टा) देशधी तेमज्ज प्रदेशोधी पणु ते सिद्धी अमर्यात गणो छे अनी मतलप अनी छे के समन्त आत्मप्रदेशोधी ते अनन्त सिद्धी स्पर्शायेला छे अेक सिद्धना आत्माना अनन्त सिद्धीनी अवगाहना छेपथी, तथा अेक अेक देशधी, तेमज्ज प्रदेशधी ते सिद्धी अनन्त छे द्वि-आद्वि प्रदेशना समुदायनु नाम देश, तेमज्ज अविभागी अस्तु नाम प्रदेश छे अेक अेक सिद्ध अमर्यात देश अने प्रदेशात्मक छे ते भाटे मूल अनन्तने असख्यात तेमज्ज अनन्त देश तथा प्रदेशोधी गुणुजार करवाधी उटली राशि (अथवा) थशे ते वात तो मात्र केवणी लगवान द्वाराज्ज बाणी शनाय मे (सू० ११६)

मूलम्—असरीरा जीवघणा, उवउत्ता दंसणे य णाणे य ।

सागारमणागारं, लखणमेयं तु सिद्धाणं ॥ सू० ११७ ॥

मूत्रम्—केवलणाणुवउत्ता, जाणंति सब्बभावगुणभावे ।

पासंति सब्बओ खलु, केवलदिट्ठीहि णंताहिं ॥ सू० ११८ ॥

टीका—‘असरीरा’ इत्यादि । अगरीरा जीवघना उपयुक्ता दर्शने च ज्ञाने च । साकारमनाकार लक्षणमेतत्तु सिद्धानाम् ॥ एतेषा पदाना व्याख्याऽस्थिनागमस्य उत्तरार्द्धे त्रिसप्ततितमसस्याके सूत्रे पूर्वमुक्ता ॥ सू ११७ ॥

टीका—यदुक्तम्—‘उवउत्ता दंसणे य णाणे य’ इति, तत्र ज्ञानदर्शनयो सर्वविषयतामुपदर्शयन्नाह—‘केवलणाणुवउत्ता’ इत्यादि । ‘केवलणाणुवउत्ता’ केवल-

‘असरीरा जीवघणा’ इत्यादि ।

(असरीरा जीवघणा उवउत्ता दंसणे य णाणे य) सिद्धों का लक्षणनिर्देश इस सूत्र में कहा गया है । औदारिक आत्ति शरीर से रहित एव धनरूप आमप्रदेशगाले व सिद्ध भगवान् केवलज्ञान एव केवलदर्शन से सदा उपयुक्त है । (सागारमणागार) केवल ज्ञान की अपेक्षा वे साकार उपयोग से युक्त है, एव केवल दर्शन की अपेक्षा निराकारस्वरूप दर्शन से युक्त हैं । (लखणमेय तु सिद्धाण) यही सिद्धों का लक्षण है ॥ सू ११७ ॥

‘केवलणाणुवउत्ता’ इत्यादि ।

(केवलणाणुवउत्ता जाणति सब्बभावगुणभावे) केवलज्ञानरूप उपयोग से युक्त वे सिद्ध भगवान् समस्त वस्तुओं के अनतगुण, एव उनकी अनतपर्यायों को युगपत् जानते

‘असरीरा जीवघणा’ इत्यादि

(असरीरा जीवघणा उवउत्ता दंसणे य णाणे य) सिद्धों का लक्षणनिर्देश या सूत्रमा कहेवाभा आये छे औदारिक आदि शरीरथी रहित तेमज धनरूप आत्मप्रदेशवाणा ते सिद्ध भगवान् देवज्ञान तेमज देवज्ञानदर्शनथी सदा उपयुक्त छे (सागारमणागार) देवज्ञाननी अपेक्षाये तेज्यो साकार उपयोगथी युक्त छे, तेमज देवज्ञानदर्शननी अपेक्षाये निराकारस्वरूप दर्शनथी युक्त छे (लखणमेय तु सिद्धाण) या ज सिद्धों का लक्षण छे (सू ११७)

‘केवलणाणुवउत्ता’ इत्यादि

(केवलणाणुवउत्ता जाणति सब्बभावगुणभावे) देवज्ञानरूप उपयोगथी

मूलम्—ण वि अत्थि माणुसाणं, तं सोक्खं ण वि य सव्वदेवाणं ।
जं सिद्धाणं सोक्खं, अच्चावाहं उवगयाणं ॥ सू० ११९ ॥

ज्ञानोपयुक्ता सन्तस्ते सिद्धा 'सव्वभावगुणभावे' सर्वभावगुणभावान्=समस्तवस्तुगुणपर्यायान
'जाणति' जानन्ति, तत्र-गुणा-सहवर्तिन, पर्यायास्तु-रुमवर्तिन इति । तथा 'णताहि'
अनन्ताभि 'केवलद्विद्वीहि' कवलद्विष्टिभि, अनन्ते कवलदर्शनेनिर्यथ, 'सव्वओ' सर्वत
सर्वभावान् ग्वल्लु=निश्चयेन 'पासति' पश्यन्ति ॥ सू० ११७ ॥

टीका--सिद्धाना सुगवर्णयति--'ण वि' इत्यादि । 'अच्चावाह' अच्याराध=सकल
दु स्ववर्जित मोक्षस्थानम् 'उवगयाण' उपगताना=प्राप्ताना, 'सिद्धाणं' सिद्धानाम् 'ज
यत 'मोक्ख' मौख्यम् 'अत्थि' अस्ति, 'त' तन् 'सोक्ख' सौख्य 'ण वि माणुसाण' नाप
मनुष्याणामस्ति, 'ण वि य सव्वदेवाण' नापि च सर्वदेवानाम् ॥ सू० ११९ ॥

ह । (पासति सव्वओ ग्वल्लु केवलद्विद्वीहि णताहि) अनतकेवलद्विष्टिस्वरूप अनतदर्शन
से युक्त वे सिद्ध भगवान्, युगपत् समस्त भावो को उनकी गुणपर्याया सहित देखते है । वस्तु में
त्रिकाल उसके साथ रहने वाले गुण होते हैं । एवं क्रमवर्ती पर्याय होती है ॥ सू० ११७ ॥

'ण वि अत्थि' इत्यादि ।

(ज सिद्धाण सोक्ख अच्चावाह उवगयाण) सकल दु खो स वर्जित ऐसे
मोक्षस्थान में प्राप्त हुए सिद्धा को जो सुख है, (ण वि अत्थि माणुसाण त सोक्खं ण वि
य सव्वदेवाण) वह सुग त्रलोक्य में न तो मनुष्य को है, और न सर्व देवों को है
॥ सू० ११९ ॥

युक्त ते सिद्ध भगवान् समस्त वस्तुओंना अनतशुष्ण, तेमन् तेमनी अनत
पर्यायाने ओझीसाथे लक्ष्णे छे (पासति सव्वओ ग्वल्लु केवलद्विद्वीहि णताहि)
अनत देवदृष्टिस्वरूप अनतदर्शनथी युक्त ते सिद्ध भगवान् ओझीसाथे
समस्त लावोने तेमनी शुष्ण-पर्यायो-अहित शुष्णे छे वस्तुमा त्रिजाण तेनी
साथे गडेवावाणा शुष्ण डोय छे, तेमन् इमवर्ती पर्याय डोय छे (सू ११८)
'ण वि अत्थि' इत्यादि

(ज सिद्धाण सोक्ख अच्चावाह उवगयाण) सकल दु खोथी वर्जित जेवा
मोक्षस्थान प्राप्त करेला सिद्धोने वे सुख छे, (ण वि अत्थि माणुसाण त
सोक्ख ण वि य सव्वदेवाण) ते सुख तल्लु दोक्षमाय नथी कोर्ध मनुष्यने
वे नथी सर्व देवोने डोतु (सू ११९)

मूलम्—जं देवाणं सोमखं , सव्वद्धापिण्डियं अणंतगुणं ।

ण य पावड मुत्तिसुहं, णतेहिं वग्गवग्गेहिं ॥ सू० १२० ॥

टीका—रुमादेव सुग्ग भवतीत्यत आह—‘ज देवाण’ इत्यादि । ‘ज’ यद् ‘देवाण’ देवानाम्=अनुत्तरसुरान्ताना ‘सोमख’ सौख्य=त्रैकालिकसुग्ग, तद्यपि ‘सव्वद्धापिण्डिय’ सर्वाद्धापिण्डितम्—सर्गादस्या=अतीताऽनागतवर्तमानकालेन पिण्डितम्=गुणित, तथा ‘अणंतगुण’ अनन्तगुणमिति, तदेव प्रमाण किञ्चिदसंरूपनया णकैकाऽऽकाशप्रदेशे स्थाप्यते, इत्येव सकललोकाकाशानन्तप्रदेशपूरणेनाऽनन्त भवति, एवमूत देवसुर (ण य पावड मुत्तिसुह) न च प्राप्नोति मुक्तिसुर=नैव मुक्तिमुखसमानता लभते, अनन्ताऽनन्तवात् सिद्धसुखस्य । किमिदं देवसुखमित्याह—‘णतेहिं वग्गवग्गेहिं’ अनन्तैर्वर्ग-

‘ज देवाण सोमख’ इत्यादि ।

(ज देवाण सोमख सव्वद्धापिण्डिय अणतगुण) जो सर्व देवों का त्रैकालिक सुख है उसे अनन्तगुणा किया जाय तो भी वह (ण य पावड मुत्तिसुह णतेहिं वग्गवग्गेहिं) सिद्ध भगवान् के एक क्षणोद्भव सुख की बराबरी नहीं कर सकता है । इसे यों समझना चाहिये कि सर्वदेवों का त्रैकालिक सुख एक २ आकाश के—प्रदेश पर स्थापित करते २ आकाश के अनन्त प्रदेश उस सुख से जब भर जाये तब उन समस्त—प्रदेशस्थ सुखों का परस्पर में गुणा करो । इस प्रकार वह देवसुख अनन्तगुणित हो जाता है । यह अनन्तगुणित सुख भी सिद्धों के एक क्षण में होनेवाले सुख की समता नहीं कर सकता । कारण कि उनका सुख अनन्तानन्त है । देवों का सुख अनन्तवर्गों से वर्णित बतलाया गया है । वर्ण

‘ज देवाण सोमख’ इत्यादि

(जं देवाण सोमख सव्वद्धापिण्डिय अणतगुण) वे सर्व देवोऽनु त्रष्टु काणतु सुभं छे तेने अनन्तगणु करवाभा आवे तो पणु ते, (ण य पावड मुत्तिसुह णतेहिं वग्गवग्गेहिं) सिद्ध भगवानन्ता अेक क्षणुथी उत्पन्न यता सुभनी भराभरी करी शकतु नथी आथी अेभ समज्जपु न्दध्अे डे सर्वदेवोऽनु त्रष्टु काणतु सुभं अेक अेक आकाशना प्रदेश उपर स्थापित करे अे रीते स्थापित करता करता आकाशना अनन्त प्रदेश ते सुभथी न्थारे भराध न्थ त्यारे ते समस्त प्रदेशमा रडेला सुभोऽनो परस्परमा सुष्वाकार करे अे प्रकारे ते देवसुभं अनन्तगणु थध न्थ छे आ अनन्तगणु सुभं पणु सिद्धोना अेकक्षणा थवावाणा सुभनी भराभरी करी शकता नथी वारणु डे तेभना सुभं अनन्तानन्त छे देवोऽना सुभं अनन्त वर्गोथी वर्णित भताव्हा

मूलम्-सिद्धस्स सुहो रासी, सच्चद्वार्षिण्डिओ जड हवेजा।

सोऽणतवग्गभइओ, सच्चागासे ण माएजा ॥ सू० १२१ ॥

वर्गै = अनन्तैरपि वर्गवर्गै, तत्र तद्गुणो वर्गो, यथा द्वयार्धगश्चत्वार, तथापि वगा वर्गवगा, यथा षोडश, एवमनन्तगो वर्गितमपीत्यर्थ ॥ सू १२० ॥

टीका—‘सिद्धस्स’ इत्यादि । ‘सिद्धम्स’ सिद्धस्य ‘सुहो’ सुख = सुख सम्बन्धी ‘रामी’ राशि = समूह, स च—‘सच्चद्वार्षिण्डिओ’ सर्वाद्वार्षिण्डित - सर्वाद्वार्षिण्डित = सर्वकालसमयै पिण्डितो = गुणितो ‘जड हवेजा’ यदि भवेत्, ‘सो’ स पुनः ‘अणतवग्गभइओ’ अनन्तवर्गभक्त = अनन्तवर्गैर्विभागीकृत, ‘सच्चागामे’ सर्वाऽऽकाशे = लोकाऽऽन्ये रूपे ‘ण माएजा’ न मायात्—न स्थातु शुक्नुयात् । अयं भाग—एहं किल निरुपम सुख गृह्यते, ततश्च यत् आरम्य लोकं सुखशब्दप्रवृत्ति, तदवधीकृत्य ऋक्गुणवृद्धिताग्नयेन तावत् तत् सुख के वर्ग करने का नाम वर्गवर्ग है । जिस प्रकार दो का वर्ग ४, और चार का वर्ग १६ होता है । १६ वर्गवर्ग है ॥ सू १२० ॥

‘सिद्धस्स सुहो रासी’ इत्यादि ।

(सिद्धस्स सुहो रासी सच्चद्वार्षिण्डिओ जड हवेजा) सिद्ध भगवान के सुख को जो राशि है वह सर्वकाल के समयों से यदि गुणित की जाय, और (सोऽणतवग्ग-भइओ) उस उपज महाराशि में अनन्त वर्गों में भाग दिया जाय, तो भी (सच्चागासे ण माएजा) वह सिद्धों के सुखों की विभक्त सुखगणि नमस्त आकाशमें नहीं समा सकती है । मतलब इसका यह है कि लोक में जो सुख-शब्द से कहा जाता है उस सुख में एक-एक गुण की क्रमिक वृद्धि से जब वह सुख अनन्तगुण वृद्धि पाकर अपनी अन्तिम अवधि

छे वर्गोंना वर्ग करे तबु नाम वर्गवर्ग छे जे प्रकारे २ नो वर्ग ४, अने आरने वर्ग १६ थाय छे १६ वर्ग-वर्ग छे (सू १२०)

‘सिद्धस्स सुहो रासी’ इत्यादि

(सिद्धस्स सुहो रासी सच्चद्वार्षिण्डिओ जड हवेजा) सिद्ध भगवानना सुखनी जे राशि छे तेने सर्वकालना समयोथी जे शुषुवाभा आवे अने (सोऽणतवग्गभइओ) तेनाथी उत्पन्न थयेदी ते महाराशिने अन्त वर्गोथी भागी देवाभा आवे तो पषु (सच्चागासे ण माएजा) ते सिद्धोना सुखोनी भागलब्ध सुखगणि नमस्त आकाशमा समाधं शकती नथी आने अलिप्राय जे छे ते लोकमा जे सुख-शब्दथी कहेवाय (नमन्तथ) छे ते सुखमा जेक जेक शुषुनी क्रमिक वृद्धिथी न्त्यारे ते सुख अनन्तशुषु वृद्धि

मूलम्—जह णाम कोइ मिच्छो, नगरगुणे बहुविहे वियाणंते ।
न चएइ परिकहेउं, उवमाण तहिं असंतीए ॥ सू० १२२ ॥

विशिष्टत यावदन्तगुणवृद्ध्या चरमाश्रिं प्राप्त भवति । ततश्च तदन्त्यन्तनिरुपममौमुक्य-
वृत्तिनिरहित प्रशान्तमद्दोषधितुन्य चरमाह्लादस्वरूपम् । तस्माच्चरमाह्लादात् पूर्वं प्रथमाचान्त-
रमपा तरालवर्तिनो ये तातरम्येनाह्लादत्रिगोपास्ते सर्वाकाशप्रदेशराजोर्गप भूयासो भवन्तीयत
किलोक्तम्—‘सव्वागासे ण माएज्जा’ इति, अन्यथा प्रतिनियतदेशावरिधिति कथं तेषामिति
मूरयोऽभिदधतीति ॥ सू १२१ ॥

टीका—‘जह णाम’ इत्यादि । ‘जह णाम’ यथानाम=यथादृष्टान्तम्—दृष्टा त-
मनुसृत्य कथयामी यर्थ, ‘कोइ मिच्छो’ कश्चिन्म्लेच्छो ‘बहुविहे’ बहुविधान्
‘नगरगुणे’ नगरगुणान् ‘वियाणते’ विज्ञानपि ‘परिकहेउ’ परिकथयितु=वर्णयितु
‘न चएइ’ न अफ्नोते, कथं न अफ्नोति ? इ याह—‘उवमाण’ इत्यादि । ‘उवमाण तहिं

को प्राप्त होता है, तब वह अत्यन्त अनुपम, उत्कृष्टा की वृत्ति से रहित, और प्रशान्त समुद्र
के समान गम्भीर चरमसुररूप हो जाता है । उस चरम सुख से पहले और प्रथम सुख के बाद
के जो मध्यवर्ती तरतमता से युक्त सुरत्रिगोप है, वे सभी सर्वाकाशप्रदेशों से भी अधिक है ।
इसीलिये कहा गया है—‘सव्वागासे ण माएज्जा’ अर्थात् सिद्धों का अनन्तवर्ग—विभक्त भा
सुख, समस्त आकाश में नहा समा पाता है ॥ सू १२१ ॥

‘जह णाम कोइ मिच्छो’ इत्यादि ।

दृष्टान्त देकर इसी विषय को स्पष्ट करते हैं—(जह णाम कोइ मिच्छो नगरगुणे
बहुविहे वियाणंते) जैसे कोई म्लेच्छ बहुत प्रकार के नगरगुणों को जानता हुआ भी (न

पाभीने पोतानी अतिम अवधिने प्राप्त थाय छे, त्यारे ते अत्यन्त अनुपम,
उत्कृष्टानी वृत्तिथी रहित अने प्रशान्त समुद्र समान गम्भीर चरमसुखरूप थाय छे
ते चरम सुखथी पूर्व अने प्रथम सुखना पछी मध्यवर्ती, तारतम्यथी
युक्त ने सुखविशेष छे, ते सुखे सधणा आकाश प्रदेशोनी अपेक्षाये पखु अधिक
छे अे भाटे न कडेवाभा आण्यु छे के ‘सव्वागासे ण माएज्जा’ अेटदे
सिद्धोना अनन्तवर्गविलकत सुख पखु सधणा आकाश प्रदेशोभां समाधि
शकतु नहि (सू १२१)

‘जह णाम कोइ मिच्छो’ इत्यादि

दृष्टान्त दधने अेन विषय स्पष्ट करे छे (जह णाम कोइ मिच्छो नगर-
गुणे बहुविहे वियाणते) नेम कोध अेक म्लेच्छ पखु प्रकारना नगरसुखाने

अमतीए' उपमाया =मादृश्यस्य तत्र वने अमत्वान्=अमद्गामादिति । एवमत्र कथानकम्-
कश्चिन्नगपतिर्दुष्टाऽधारूढ मनःपवनसेवनार्थं वनजगाम, तत्र चाश्वस्य दृजानिकवनपतिश्रान्तो
वनऽश्वात्प्रतीर्गम् । तत्रैकं वनवासिना स्त्रेन भूपति म कृत । ततोऽमौ नृपतिस्त श्लेच्छ
निजगजगानीमानाय त्रिगिद्वभोगभृतिभाजन वृत्तान् । एकदाऽमौ श्लेच्छ प्रावृषि प्रामाया
मनोहर मेघवर्ति श्रुत्वा वन गन्तुमुत्कण्ठितोऽभवत् । गजा मन्मानपूर्वक विमर्गित सन्नसौ वन

य चण्ड परिकहेड) उमका वर्णन वन में नहीं कर सकता है, क्योंकि (उपमाए तर्हि
अमतीए) उपमा का वहा अभाव है ।

यहाँ इस प्रकारकी एक कथा है ।

कोई एक राजा वायु सेवन के लिये घोड़े पर सवार हुआ । वह घोड़ा महादुर्गन्त
था । इसी लिये चलते २ उसे यह भय लग रहा था कि कहा यह मुझे पटक न दे,
अतः उसे रोकते २ वह बक गया और किसी जगल में जाकर वह उससे नीचे
उतर पड़ा । इतने में एक भील ने उसे देखा और सहसा पास आकर उमने
अके हुण गजा की सेवा-शुश्रूषा से बकावट दर की । गजा बड़ा खुश हुआ, और उसे
अपन साथ लेकर वह अपनी गजगानी को वापिस लौट आया । वहा राजा ने राजमी ठाट-
गाट के अनुसार उस खून आनन्द से रखा । खाने-पान के लिये उसे ऐसे २ भोज्य पदार्थ
दिये कि जो उसन अपन जावन म क्रमा देखे तक भा नहीं थे । रहते २ जब कुछ समय
यतीन हो गया तब वषाकाल के आन पर उसे अपन स्थान पर जान की उत्कठा जगा ।

पशुतो थडो पशु (न य चण्ड परिकहेड) तेषु पशुन वनभा ढरी थडतो
नथी, डेभडे (उपमाण तर्हि असतीए) उपमानो त्या अलाव छे

अही आ प्रकारनी ओड वार्ता छे

डेअ ओड रात वायुसेवन (इग्वा) भाटे थोडा उपर नवार थधने
भडेलभाथी अहार नीटण्यो ने थोडा उपर ते नवार थथे डतो ते भडा दुर्दान्त
(सुरदेवीथी वश थाय तेवो) डतो तेथी आलता आलता तेने ओ लय लागतो डतो
डे थ्याक आ मने पाडी तो नडि हे ? आथी तेने रोडता रोडता ते
थाडी गयो, अने डेअ न गलभा नर्धन तेना उपरथी ते नीचे डतयो
ओटलाभा ओक लीखे तेने जेथो अने तरन न पासे आवीने तेणे थडैला
राननी सेवा-शुश्रूषा ढरी थड उतार्यो रान अहु पुशी थयो अने तेने
पोतानी भाये लर्धने ते पोतानी राजधानीछे पाछो आण्यो त्या रानछे
पोताना राजमी डाडमाडपूर्वक तेने पृथ आनदथी राण्यो भावा-पीवाने
भाटे तेने ओवा ओवा तो लोअ्य पदार्थ आण्यो डे ने तेणे तेनी छडगीभा
ढहीछे जेथो पशु नडोता आभ रहेता रहेता डेटडोड समय वीती गयो
अने वरसादनो मभय आण्यो त्याडे तेने पोताना स्थान पर नवानी डतडा

मूलम्—इय सिद्धाणं सोक्खं, अणोवम णत्थितस्स ओवम्मं।

स्वप्नसंस्थानमागत । अथ स्वप्नविचारस्तं पृच्छति स्म—हे तात ! कीदृशम् तद् भूपनगरम् ? इति । स श्लेच्छस्तस्य भूपनगरस्य सर्वान् बहुविधान् नगरगुणान् विजानन्नपि तान् वक्तुं कृणोवमोऽपि तत्र वने नगरसादृश्यस्याभावाद् वर्णयितुं नाशक्नोदिति ॥ सू० १२२ ॥

टीका—‘इय’ इयादि । ‘इय’ इति=एवम्—अनेन प्रकारेण ‘सिद्धाणं’ सिद्धानां ‘सोक्खं’ सौख्यम्, ‘अणोवम’ अनुपम वर्तते, कुत ? यतस्तस्य ‘ओवम्मं णत्थि’ औपम्य

राजा को जब यह ज्ञात हुआ तब उसने उसको सूत्र आदर—सत्कार के साथ बिदा किया । चलते २ यह अपने घर पर आ गया । सब कुटुम्बी जन इससे मिलने को आने लगे । लोगों ने पूछा, कहो भाई ! राजा के निकट कैसे रहे, राजा का वह नगर कैसा है ? भील ने जो कि उस राजा के नगर का सब प्रकार की शी से परिचित हो चुका था, राजधानी का वर्णन करने का उद्यम तो किया, परन्तु वह अपने उन भील—भाइयों के समक्ष यथावत् उसका वर्णन नहीं कर सका । कारण कि उस वन में नगर के वर्णन से मिलनेवाली उपमेय वस्तुओं का अभाव था । इस दृष्टान्त का भाव इस प्रकार समझना चाहिये कि वह भील नगर में अनुभवित आनन्दका अपने अन्य भाइयों के समक्ष उम्र जगल में उस प्रकार की वस्तु के अभाव से वर्णन नहीं कर सका । उस सुख की कुछ भी उपमा नहीं बता सका ॥ सू १२२ ॥

जगत्त थं न्यारे आ वात राजना जलुवाभा आपी त्यारे तेणु तेने भूष आदर—सत्कारनी साथे विहायगिरी आपी आलता आलता ते पोताने धर पडोअथे जधा कुटुणी भाणुसे तेने भणवाने आपवा लाज्या कोडोअे पूछथु के, कडो लाछ, राजनी पासो तमे उेवी रीते रखा हुता ?, राजनु ते नगर उेवु छे ? भील जे के ते राजना नगरनी जधी जतनी श्री (वैभव शोला) थी परिचित थं गथे हुतो, अने राजधानीनु वर्णन करवाने तेणु उद्यम (प्रयत्न) तो कर्यो, परंतु ते पोताना लील लाछओनी समक्ष यथावत् (जेथे तेवु) तेनु वर्णन करी शक्यो नहि, जारणु के ते वनमा नगरना वर्णन साथे भेजणाय जेवी उपमा आपवा योग्य वस्तुओने अभाव हुतो आ दृष्टातने लावा जेवी रीते समज्जे जेथे के ते लील जे प्रकारे अनुभवेल आन हने पोताना लील लाछओनी समक्ष वर्णन करवा जता पणु ते जगलमा जेवा प्रदरनी वस्तुओना अलावथी पोते जोगवेला आन हने अनुभव करवावी शक्यो नहि ते सुभनी कोड पणु उपमा पतावी शक्यो नहि, (सू १२२)

किंचि विसेसेणेत्तो, ओवम्ममिणं सुणह वोच्छं ॥ सू० १२३ ॥

मूलम्—जह सव्वकामगुणियं, पुरिसो भोत्तूण भोयणं कोई।

तण्हाल्लुहाविमुक्को, अच्छेज्ज जहा अमियत्तित्तो ॥ सू० १२४ ॥

नास्ति, तथापि गालना मोक्षार्थमाह—‘किंचि’ इत्यादि । ‘किंचि विसेसेण’ किञ्चिद्विशेषेण ‘एत्तो’ इत = अत परम् ‘ओवम्म’ औपम्यम् = उपमानम् ‘इण’ इड = वक्ष्यमाण ‘सुणह’ शृणुत, ‘वोच्छ’ वक्ष्ये—अह कथयिष्यामीत्यर्थ ॥ सू १२३ ॥

टीका—‘जह’ इत्यादि । ‘जह’ यथा ‘कोई पुरिसो’ कोऽपि पुरुष, ‘सव्वकामगुणियं’ सर्वकामगुणित = मत्राभिलषणीयग्मादिमपन्न, ‘भोयणं’ भाजनम् = भक्षणादिकम्, ‘भोत्तूण’ भुक् वा, ‘तण्हाल्लुहाविमुक्को’ तृष्णाशुभानिमुक्त = पिपासाबुभुक्षारहित ‘अमि-

‘इय सिद्धाण सोक्ख’ इत्यादि ।

(इय सिद्धाणं सोक्ख) इसी प्रकार सिद्धों का मुख यद्यपि (अणोवम) अनुपम है, अन (णत्थि तस्स ओवम्म) उमकी कित्ता मो मामागिक पदार्थ के साथ उपमा नहीं की जा सकती है, तो भी (किंचि विसेसेणेत्तो ओवम्ममिण सुणह वोच्छ) बालजीवा को बोधन करने के लिये कुछ विशेषरूप से सिद्धा क इम मुख को उपमा देकर समझाया जाता है ॥ सू १२३ ॥

‘जह सव्वकामगुणियं’ इत्यादि ।

(जह सव्वकामगुणियं पुरिसो भोत्तूण भोयणं कोई) कोई पुरुष पाचा इन्द्रिया को तृप्त करनेवाले काम-अर्थ, रूप, और भोग-गर्भ, रस, स्पर्श आदि विषयों को यथेच्छता से भोगकर (तण्हाल्लुहाविमुक्को) पिपासा एव बुभुक्षा स रहित (अमियत्तित्तो

‘इय सिद्धाण सोक्ख’ इत्यादि

(इय सिद्धाणं सोक्ख) आ प्रकृति सिद्धोत्तु सुख को दे (अणोवम) अनुपम है, तथी (णत्थि तस्स ओवम्म) तेनी उपमा कोष पक्ष नासादि पदार्थना सुखनी साथे आधी गताती नहीं तो पक्ष (किंचि विसेसेणेत्तो ओवम्ममिण सुणह वोच्छ) बालजीवाने बोधन करने भाटे उचित विशेष वीतयी सिद्धोना आ सुखनी उपमा ही ने अभिलषणाभा आवे छे (सू १२३)

‘जह सव्वकामगुणियं’ इत्यादि

(जह सव्वकामगुणियं पुरिसो भोत्तूण भोयणं कोई) जेभ कोष पुरुष साथे हीन्द्रियोने तृप्त करने वाणा काम-शुद्ध, रूप, अने भोग-अर्थ, रस, स्पर्श

मूलम्—इय सव्वकालत्तिता, अउलं निव्वाणमुवगया सिद्धा ।
सासयमव्वायाह, चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥ सू० ॥ १२५
मूलम्—सिद्धत्ति य बुद्धत्ति य, पारगयत्ति य परंपरगयत्ति ।

यत्तित्तो' अमृततृप्तो 'जहा' गया=इव, 'अच्छेज्ज' आसीन=निच्छेज्ज ॥ सू १२४ ॥

टीका—'इय' इयात्ति । 'इय' इति=एव 'सव्वकालत्तिता' सर्वकालतृप्ता -
अपुनरावृत्तिस्थान प्राप्तत्वात्, 'निव्वाण'निर्वाण=मोक्षम 'उपगया' उपगता 'सिद्धा' सिद्धा,
'अउल' अतुलम्=अनुपमम् 'सासय' शाश्वत=सार्वाकारिकम्, 'अव्वायाह' अव्याबाध=पर्व-
दु खनिर्जित 'सुह' सुख 'पत्ता'प्राप्ता, अत 'सुही चिट्ठंति' सुखिनस्तिप्रवृत्ति, ननु 'सुख प्राप्ता'
इत्युक्ते 'सुखिन' इति क्रिमर्थम्, अप्रोच्यते—केचि मन्यन्ते दु राभावमात्र मुक्तिरिति, तन्मत-
निराकरणार्थं मोक्षस्य वास्तविकसुखस्वरूपताप्रतिबोधनार्थं च 'सुख प्राप्ता सुखिनस्तिच्छन्ती'-
त्युक्तम् ॥ सू १२५ ॥

टीका—साम्प्रत वस्तुत सिद्धपर्यायशब्दान् प्रतिबोधयन्नाह—'सिद्धत्ति' इत्यादि ।

जहा) अमृतपान से तृप्त के समान (अच्छेज्ज) रहता है ॥ सू १२४ ॥

'इय सव्वकालत्तिता' इत्यादि ।

(इय सव्वकालत्तिता) अपुनरावृत्तिस्वरूप मुक्तिस्थान को प्राप्त होने के कारण
सर्वकाल तृप्त हुए (निव्वाणमुवगया सिद्धा) वे सिद्ध भगवान्, शारीरिक एव मानसिक
दुःखों से सर्वथा रहित होकर (अउल अव्वायाह चिट्ठंति सुही सुह पत्ता) अनुपम,
शाश्वत एव अव्याबाध सुख को भोगते हुए उस मुक्तिस्थान में सदाकाल-अनन्तकाल तक
सुखा ही सुखी रहते हैं ॥ सू १२५ ॥

आदि विषयेने यथेच्छरूपे लोचनीने (तण्हाद्युहाविमुक्को) पिपासा तेमञ्ज
- सुखुक्षा (लूभ-तरस) थी रहित (अमियत्तित्तो जहा) अमृतपानधी तृप्तनी
लूभ (अच्छेज्ज) रहे छे (सू १२४) ।

'इय सव्वकालत्तिता' इत्यादि

(इय सव्वकालत्तिता) अपुनरावृत्तिस्वरूप मुक्तिस्थानने प्राप्त यवाना
कारणे सर्वकाल तृप्त यथेहा (निव्वाणमुवगया सिद्धा) ते सिद्ध भगवान्
शारीरिक तेमञ्ज मानसिक दुःखोशी सर्वथा रहित यधने (अउल अव्वायाह
चिट्ठंति सुही सुह पत्ता) अनुपम, शाश्वत तेमञ्ज अव्याबाध सुखने लोचनीने
ते मुक्ति स्थानमा सदाकाल-अनन्तकाल सुधी सुधी रहे छे (सू १२५)

उमुक्ककम्मकवया, अजरा अमरा असगा य ॥ सू० १२६ ॥

मूलम्—'णिच्छिण्णसव्वदुक्खा, जाइजरा मरणवंधणविमुक्का ।

'सिद्धत्ति य' सिद्धा इति च—तेषां नाम, कृतकृत्यत्वात्, 'बुद्धत्ति य' बुद्धा इति च—केवल-
ज्ञानेन विश्वावरोधात्, 'पारगयत्ति य' पारगता इति च—भवसागरपारगमनात्, 'परपर-
गयत्ति य' परपरगता = मिथ्यात्वादिचतुर्दशगुणस्थानकानां मनुष्यादिमुगतीनां च पारपर्येण
भवसिन्धुपार प्राप्ता इति, 'उम्मुक्ककम्मकवया' उम्मुक्ककर्मकवचा = कर्मकवचवर्जिता 'अजरा'
अजरा—वयसोऽभावात्, 'अमरा' अमरा—आयुषोऽभावात्, 'असगा य' असगाथ सकल
क्लेशरहितत्वात् ॥ सू १२६ ॥

टीका—'णिच्छिण्ण' इत्यादि । 'णिच्छिण्णसव्वदुक्खा' निस्तीर्णसर्वदृशा—

'सिद्धत्ति य बुद्धत्ति य' इत्यादि ।

(सिद्धत्ति य) कृतकृत्य होने से वे सिद्ध कहे जाते हैं । (बुद्धत्ति य) केवल
ज्ञान से सकल लोकारोह के ज्ञाता होने से वे बुद्ध कहे जाते हैं । (पारगयत्ति य)
भवरूप समुद्र से पारगत हो जाने के कारण वे पारगन कहे जाते हैं । (परपरगयत्ति य)
मिथ्यात्व—आदि चौदह गुणस्थानकों और मनुष्य—आदि मुगतियों की परंपरा से भवसिन्धु
को पार करने के कारण वे परपरगत कहे जाते हैं । (उम्मुक्ककम्मकवया अजरा अमरा
असगा य) कर्मरूप कवच से वर्जित होने के कारण, एवं आयु कर्म का सर्वथा प्रक्षय हो
जाने के कारण वे अमर कहे जाते हैं । तथा सकलक्लेशांसे रहित होने के कारण वे असगा
कहे जाते हैं । ये सिद्ध, बुद्ध, आदि सत्र शब्द, पर्यायवाची शब्द हैं ॥ सू १२६ ॥

'सिद्धत्ति य बुद्धत्ति य' इत्यादि

(सिद्धत्ति य) कृतकृत्य होवाची तेमने सिद्ध ठडेवाभा आवे छे (बुद्धत्ति य)
द्वैतज्ञानशी मडल होशालोडना साता होवाना कारणे बुद्ध ठडेवाभा
आवे छे (पारगयत्ति य) लवइय समुद्रवी पारगत यथं ज्वाना कारणे तेमने
पारगत ठडेवाभा आवे छे (परपरगयत्ति य) मिथ्यात्व—आदि चौदह गुणस्थानके।
अने मनुष्य आदि मुगतिओनी परपराची लवसिंधुने पार क्वाने कारणे को
परगत ठडेवाय छे (उम्मुक्ककम्मकवया अजरा अमरा असगा य) कर्मरूप
कवचशी वर्जित होवाना कारणे तेमने आयु कर्मने सर्वथा प्रक्षय हो
कारणे तेओने अमर ठडेवाभा आवे छे, तथा सकलक्लेशांसे रहित होवा
कारणे असगा ठडेवाभा आवे छे आ सिद्ध बुद्ध आदि सत्र शब्द पर्यायवाची शब्द
वाची शब्द छे (सू १२६)

अव्वावाहं सुक्खं, अणुहोती सासयं सिद्धा ॥ सू० १२७ ॥

मूलम्—अतुलसुखसागरगया, अव्वावाहं अणोवमं पत्ता ।

सव्वमणागयमद्ध, चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥ सू० १२८ ॥

॥ ओपाइय समत्त ॥

निस्तीर्णानि सर्वदुःखानि यैस्ते तथा—शारीरमानससकलदुःखान्यतिक्रान्ता, पुन—‘जाइजरा-
मरणबंधणविमुक्का’ जातिजरामरणबन्धननिमुक्ता = जन्मवर्षाद्यमृत्युकर्मबन्धनरहिता
‘सिद्धा’ सिद्धा ‘अव्वावाह’ अव्यावाध = व्याधातवर्जित ‘सासयं’ शाश्वत = सार्वकालिक
‘सोक्ख’ सौम्यम् ‘अणुहोती’ अनुभवन्ति ॥ सू० १२७ ॥

टीका—‘अतुलसुख’—इत्यादि । ‘अतुलसुखसागरगया’ अतुलसुखसागरगता—
अतुल = अनुपमो य सुखसागर = सुखसमुद्रस्त गता = प्राप्ता, पुन ‘अव्वावाह’ अव्या-

‘णिच्छिण्णसव्वदुक्खा’ इत्यादि ।

(सिद्धा) ये सिद्ध भगवान् (णिच्छिण्णसव्वदुक्खा) समस्त दुःखों के अति-
क्रमण, तथा (जाइजरामरणबंधणविमुक्का) जन्म, जरा एवं मरण के बन्धनोंसे निर्मुक्त हो जाने
के कारण, (सासयं अव्वावाह सुक्ख अणुहोती) शाश्वत एवं अव्यावाध सुख का
अनन्त काल तक अनुभव करते रहते हैं ॥ सू० १२७ ॥

‘अतुलसुखसागरगया’ इत्यादि ।

(अतुलसुखसागरगया) अनुपम सुख सागर में मग्न वे सिद्ध भगवान्,

‘णिच्छिण्णसव्वदुक्खा’ इत्यादि

(सिद्धा) ये सिद्ध भगवान् (णिच्छिण्णसव्वदुक्खा) सधया दुःखों का
अतिक्रमण, तथा (जाइजरामरणबंधणविमुक्का) जन्म, जरा तेमज्ज मरणना
बंधनोधी निर्मुक्त थर्थ जवाना कारणे (सासयं अव्वावाह सुक्ख अणुहोती)
शाश्वत तेमज्ज अव्यावाध सुखने। अनन्त काल सुधी अनुभव करता
रहे छे (सू० १२७)

‘अतुलसुखसागरगया’ इत्यादि

(अतुलसुखसागरगया) अनुपम सुखना सागरमा मग्न ते सिद्ध भग-
वान्, (अव्वावाह अणोवम पत्ता) ते प्राप्त करेदा मुक्तिस्थानमा (सव्वमणा-

बाध=व्याघातवर्जितम् 'अणोत्रमं' अनुपमम्=मादृश्यवर्जित सिद्धिस्थान 'पत्ता प्राप्ता =अधिष्ठिता
मिद्धा, 'सुह पत्ता' सुग्य प्राप्ता =सुखमगिता, अतएव 'सुही' सुखिन सन्त सञ्चम-
णागयमद्' सर्वमनागताद्=सर्वं भविष्यकाल 'चिद्वृत्ति' निष्ठन्तीति ॥ सू १२८ ॥

॥ औपपातिक समाप्तम् ॥

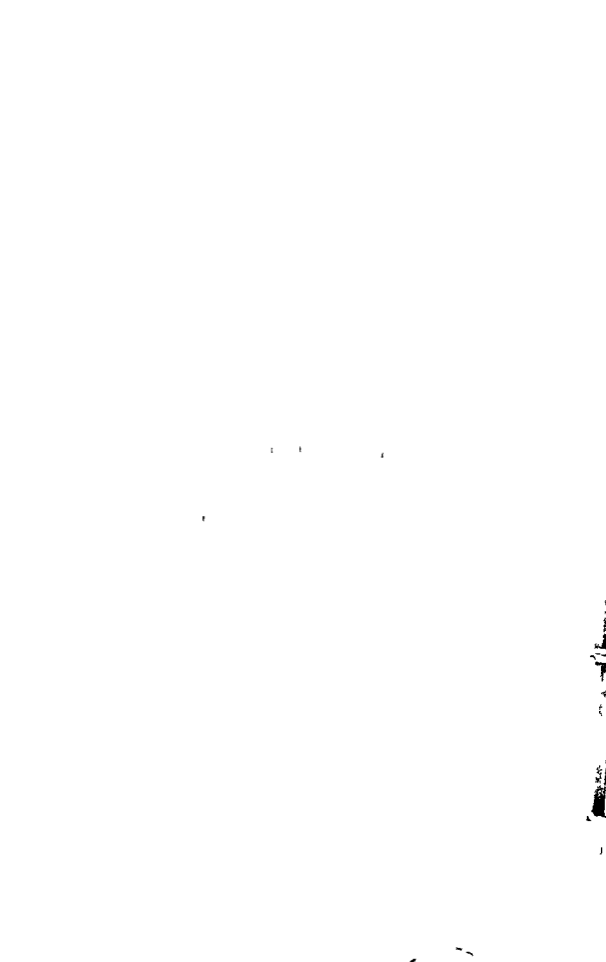
॥ इति श्राविश्रवि यात-जगदल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललितकला-
पालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैऋत्यनिर्मापक - वादिमानमर्दक - श्राशाह-
उत्रपति कोन्हापुरराजप्रदत्त- 'जैनशास्त्राचार्य'-पदमूषित-कोन्हापुरराजगुरु-
नालरक्षचारि-जैनाचार्य-जैनसर्मदिवाकर-पूज्य-श्रीघासीलाल-
मनिविरचिता औपपातिक-सूत्रस्य पीयूषत्रिपिण्यार-व्या
व्याख्या सम्पूर्णा ॥

(अव्वावाह अणोत्रम पत्ता) प्राप्ता हुए उस सुक्ति स्थान में (सञ्चमणागयमद् चिद्वृत्ति
सुही सुह पत्ता) अनन्तकाल तक सदा सुखी ही रहते हैं । ॥ सू १२८ ॥

॥ इति औपपातिकसूत्र का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण ॥

गयमद् चिद्वृत्ति सुही सुह पत्ता) अन तक्षण सुधी सुभीज रहे छे (सू १२८)

इति औपपातिक सूत्रनो गुजराती अनुवाद संपूर्ण



દાનવીરોની નામાવલી

*

શ્રી અખિલ ભારત પ્રવેતામ્બર સ્થાનકવાસી
ને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ.

*

ગરેડીયા કુવા રોડ-ગ્રીન લોજ પાસે,

રાજકોટ

*

શરૂઆત તા. ૧૮-૧૦-૪૪ થી તા ૧૦-૧૨-૫૮ સુધીમાં
દાખલ થયેલ મેમ્બરોનાં સુખારક નામો

*

ગામવાર કંકાવારી લિસ્ટ.

*

(૩૧. ૨૫૦ થી ઓછી રકમ ભરનારનું નામ આ યાદીમાં
સામેલ કરેલ નથી.)

આદ્યમુરખીશ્રીઓ-૫

(ઓછામા ઓછી રૂા ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

નંબર	નામ	ગામ	રૂપિયા
૧	શેઠ શાન્તીલાલ મંગળદાસભાઈ બણીતા મીલમાંલીઠ અમદાવાદ	અમદાવાદ	૧૦૦૦૦
૨	શેઠ હરખચ દ કાલીદાસભાઈ વારીયા હા શેઠ લાલચ દભાઈ નેચ દભાઈ, નગીનભાઈ, વૃજલાલભાઈ તથા વલ્લભદાસભાઈ ભાણુવડ	ભાણુવડ	૬૦૦૦
૩	કોઠારી નેચ દભાઈ અજરામર હા. હરગોવિ દભાઈ નેચ દભાઈ રાજકોટ	રાજકોટ	૫૨૫૧
૪	શેઠ ધારણીભાઈ ભવનભાઈ	ગોલાપુર	૫૦૦૧
૫	સ્વ પિતાશ્રી છગનલાલ શામળદાસના સ્મરણાર્થે હ ભોગીલાલ છગનલાલભાઈ ભાવસાર અમદાવાદ	અમદાવાદ	૫૨૫૧

મુરખીશ્રીઓ-૨૧

(ઓછામા ઓછી રૂા ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	વકીલ ભવરાજભાઈ વર્ધમાન કોઠારી હ કહાનદાસભાઈ તથા વેણીલાલભાઈ	જેનપુર	૩૬૦૫
૨	દોશી પ્રભુદાસ મૂળભાઈ	રાજકોટ	૩૬૦૪
૩	મહેતા શુલાબચ દ પાનાચ દ	રાજકોટ	૩૨૮૯
૪	મહેતા માણેકલાલ અમુલેખરાય	ઘાટકોપર	૩૨૫૦
૫	સઘવી પીતામ્બરદાસ શુલાબચ દ	બામનગર	૩૧૦૧
૬	શેઠ શામળભાઈ વેલભાઈ વીરાણી	રાજકોટ	૨૫૦૦
૭	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસિંહભાઈ બહાદુર	મોરખી	૨૦૦૦
૮	શેઠ હરેચ દ કુવરભાઈ હા શેઠ ન્યાલચ દ હરેચ દ	સિંદપુર	૨૦૦૦
૯	શાહ છગનલાલ હેમચ દ વસા હા મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	મુબઈ	૨૦૦૦
૧૦	શ્રી સ્થાનકવામી જૈન સઘ	મોરખી	૧૯૬૩
૧૧	મહેતા સોમચ દ તુલસીદાસ તથા તેમના ધર્મપત્ની અ સૌ મણીગૌરી મગનલાલ	રતલામ	૧૫૦૦
૧૨	મહેતા પોપટલાલ માવળભાઈ	બામજોધપુર	૧૩૫૧
૧૩	દોશી કપુરચ દ અમરશી હા દલપતરામભાઈ	બામજોધપુર	૧૦૦૨
૧૪	બગડીઆ જગજીવનદાસ રતનશી	બામજોધપુર	૧૦૦૨
૧૫	શેઠ આત્મારામ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૧૦૦૧
૧૬	શેઠ માણેકલાલ ભાણુભાઈ	પોરબ દર	૧૦૦૧
૧૭	શ્રીમાન અ દ્રસિંહભાઈ સાહેબ મહેતા (રેલવે એજેન્ટ)	કલકત્તા	૧૦૦૧
૧૮	મહેતા સોમચ દ નેણુમીભાઈ (કરાચીવાળા)	મોરખી	૧૦૦૧

૧૯	શાહ હરીલાલ અનોપચ દલાઈ	ખભાત'	૧૦૦૧
૨૦	કોઠારી છબીલદાસ હરખચ દલાઈ	સુળઇ	૧૦૦૦
૨૧	કોઠારી રગીલદાસ હરખચ દલાઈ	શિહોર	૧૦૦૦

સહાયક મેમ્બરો-૪૯

(ઓછામા ઓછી રૂ ૫૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	શાહ રગજીભાઈ મોહનલાલ	અમદાવાદ	૭૫૧
૨	મોદી દેશવલાલ હરીચ દલાઈ	સાબરમતી	૭૫૦
૩	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસઘ હા શેઠ ઝુઝાભાઈ વેલસીભાઈ વઢવાણ શહેર	ગીવ	૭૫૦
૪	શેઠ નરોત્તમદાસ ઓઘડભાઈ	ગીવ	૭૦૦
૫	શેઠ રતનશી હરજીભાઈ હા ગોરધનદાસભાઈ	જામજેધપુર	૫૫૫
૬	ખાટવીયા ગીરધર પરમાનદ હા અમીચ દલાઈ	ખાખીજાળીયા	૫૨૭
૭	મોરખીવાળા સઘવી દેવચ દ નેણુશીભાઈ તથા તેમના ધર્મપત્નિ અ સૌ મણીભાઈ તરફથી હ મુલચ દ દેવચ દ (કરાચીવાલા) મલાડ		૫૧૧
૮	વેરા મણીલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ	૫૦૨
૯	ગોસલીયા હરીલાલ લાલચ દ તથા અ પાળેન ગોસલીયા	અમદાવાદ	૫૦૨
૧૦	શાહ પ્રેમચ દ માણેકચ દ તથા અ સૌ સમરતળેન રાજગીતાપુર અમદાવાદ		૫૦૨
૧૧	શેઠ ઈશ્વરલાલ પુરુષોત્તમદાસ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૨	શેઠ ચંદુલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૩	શાહ શાન્તીલાલ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૪	શેઠ શીવલાલ ડમરભાઈ (કરાચીવાલા)	લીબડી	૫૦૧
૧૫	કામદાર તારાચ દ પોપટલાલ ધોરાજીવાળા	રાજકોટ	૫૦૧
૧૬	રહેતા મોહનલાલ કપુરચ દ	રાજકોટ	૫૦૧
૧૭	શેઠ ગોવિંદજીભાઈ પોપટભાઈ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૮	શેઠ રામજી શામજી વીરાણી	રાજકોટ	૫૦૧
૧૯	સ્વ પિતાશ્રી નદાજીના સ્મરણાર્થે હા વેણીચ દ શાન્તીલાલ (જાખુઆવાળા)	મેઘનગર	૫૦૧
૨૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસઘ હા શેઠ ઠાકરશી કરસનજી	યાનગઢ	૫૦૦
૨૧	શેઠ તારાચ દ પુખરાજજી	ઔરગાળાદ	૫૦૦
૨૨	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસઘ	ઔરગાળાદ	૫૦૦
	૧૫૦ શેઠ-શેખમલજી જીવરાજજી		
	૧૨૫ શેઠ અનરાજજી લાલચ દજી		
	૧૨૫ ધુકડચંદજી રૂપચ દજી		

२६	स धर्मी लक्ष्मणलाल छगनलाल (स्था नैन)	२५१
३०	शाह शतिलाल मोहनलाल प्रागप्रावाजा	२५२
३१	अ सौ जेन रतनगार्ध नादेया हा धुललुलाध य पालालल	२५१
३२	शाह हरिलाल नेहालाल लाडलावाला	२५१
३३	श्री सरसपुर हरीयापुरी आठकोटी स्था नैन उपाध्य हा लावसार लोगीलाल छगनलाल	२५१
३४	शेठ पुभराजल समतीसमल साहडीवाजा	२५१
३५	स्व पिताश्री नवाहीरलालल तथा पूज्य व्यायाल हुजरीमलल भरडीयाना स्मरणार्थे हा मूल्यदल नवाहीरलालल	२५१
३६	स्व. लावसार जगलाल (म गणदास) पानायटना स्मरणार्थे हा तेमना धर्मपत्नि पुरीजेन	२५१
३७	स्व पिताश्री स्वलुलाध तथा स्व मातुश्री भूणीगार्धना स्मरणार्थे हा ककलालार्ध कोठारी	३०१
३८	लावसार केशवलाललार्ध भगनलाललार्ध	२५१
३९	शाह केशवलाल नानयद जगडावाजा हा पार्वतीजेन	२५१
४०	शाह लतेन्द्रकुमार वाडीलाल भाषेकयद'राजसीतापुरवाजा (साभरमती)	२५१
४१	श्री स्था नैन स ध (साभरमती)	२५०
४२	श्री भीपिनयद्र तथा उभाकात युनीलाल गोपाली (राजपुरवाजा)	३०१
४३	लावसार छोटालाललार्ध छगनलाललार्ध	२५१
४४	लावसार शंकरलार्ध छगनलाललार्ध	२५१
४५	अ सौ लवीजेन रतीलाल हा लावसार रतीलाल हरगोविंददास	२५१
४६	स धर्मी जालुलार्ध कमजशी तथा तेमना धर्मपत्निये अ सौ य पाजेन तथा वसतजेन तरुथी	२५१
४७	अ सौ विद्याजेन वनेयद देशार्ध हा लूधेन्द्रकुमार वनेयद देशार्ध	२५१
४८	स्व पारेण नानयद गोलिदल भोरणीवाजाना स्मरणार्थे हा रतीलाल नानयद पारेण	३०१
४९	शाह नटवरलाल गोकणदास	२५१
५०	शाह शामललार्ध अमरशीलार्ध	२५१
५१	शाह त्रीलोचनदास भगनलालना स्मरणार्थे तेमना धर्मपत्नि शीवकुवरजेन तरुथी हा रतीलाल त्रीलोचनदास	४०२
५२	अ सौ ककुजेन (लावसार लोगीलाललार्ध छगनलाललार्धना धर्मपत्नि)	३०६

૫૩	અ. સૌ. સવિતાબેન (જયંતીલાલ લોગીલાલના ધર્મપત્નિ)	૨૫૧
૫૪	અ સૌ શાતાબેન (દીનુભાઈ લોગીલાલના ધર્મપત્નિ)	૨૫૧
૫૫	અ. મૌ મુનદાબેન (રમણુભાઈ લોગીલાલના ધર્મપત્નિ)	૨૫૧
૫૬	શેઠ હીરાજી રૂગનાથજીના મ્મરણ્યાર્થે હા. વાગમલજી રૂગનાથજી	૩૦૧
૫૭	શેઠ મણીલાલ જોષાભાઈ	૨૫૧
૫૮	પટવા સુમેરમલજી અનોપચદજી જ્ઞેધપુરવાળા	૩૦૧
૫૯	સ્વ માણેકલાલ વનમાળીદાસ શાહના મ્મરણ્યાર્થે હા રમણુલાલ માણેકલાલ	૨૫૧
૬૦	સ્વ શાહ ધનરાજજી જેમરાજજીના મ્મરણ્યાર્થે હા કનૈયાલાલજી ધનરાજજી	૩૦૧
૬૧	શ્રી સારગપુત્ર દ આ કો રથા. જેન સંઘ હા શાહ રમણુલાલ ભગુભાઈ	૨૫૧
૬૨	દોશી હરજીવનદાસ જીવરાજ તથા લક્ષ્મ બાઈ લહેરચદના મ્મરણ્યાર્થે હા દોશી મનહરલાલ કરસનદાસ મુળીવાળા	૨૫૧
૬૩	શાહ પૂનમચદ કૃતેહચદ	૨૫૧
૬૪	શ્રી ચતુરભાઈ નદલાલ	૨૫૧
૬૫	શ્રીચુત અમૃતલાલ ઈશ્વરલાલ	૨૫૧
૬૬	શાહ બદવજી મોહનલાલ તથા શાહ ચીમનલાલ અમુલખભાઈ	૨૫૧
૬૭	અ. સૌ. લાલુબેન મગનલાલ હા શાહ અમૃતલાલ ધનજીભાઈ વઢવાણુ શહેરવાળા	૩૦૧
૬૮	અ સૌ બહેન કાન્તાબેન ગોરધનદાસ	૨૫૧
૬૯	દોશી કુલચદ મુખલાલભાઈ જોટાદવાળાના મ્મરણ્યાર્થે હા. દોશી છબીલદાસ કુલચદભાઈ	૨૫૧
૭૦	લાલાજી રામકુમારજી જૈન	૨૫૧
૭૧	શેઠ છોટાલાલ શુભાનચદ પાલનપુરવાળા	૨૫૧
૭૨	શાહ ધીરજીલાલ મોતીલાલ	૨૫૧
૭૩	મ ઘવી સૂર્યકાંત ચુનીલાલના મ્મરણ્યાર્થે હા મ ઘવી જીવણુલાલ ચુનીલાલ	૨૫૧
૭૪	ભાવસાર મોહનલાલ અમુલખરાય	૨૫૧
૭૫	શાહ કુલચદ મુલચદભાઈ હા હમમુખભાઈ કુલચદભાઈ	૨૫૧
૭૬	લલ્લુભાઈ મગનભાઈ ચૂડાવાલાના મ્મરણ્યાર્થે હા જમળ તલાલ લલ્લુભાઈ	૩૦૧
૭૭	શ્રીમાન મીત્રીલાલજી જવાહીરલાલજી ખરડીયા અવરવાળા	૨૫૧
૭૮	મહેતા મુળચદ મગનલાલ	૨૫૧
૭૯	વૈધ નરસીદાસ સાકરચદના ધર્મપત્નિ ગેવાળાઈના મ્મરણ્યાર્થે હા હરીલાલભાઈ	૨૫૧

અમરેલી

- ૧ માસ્તર હકમીચ દ દીપચંદ શેઠ ૨૫૧
- અમલનેર
- ૧ શાહ નાગરદાસ વાઘજીભાઈ ૨૫૧
- ૨ શ્રી સ્થા જૈનસઘ હા શાહ ગાઠાલાલ ભીખાલાલ ૨૫૧
- આણુંદ
- ૧ શેઠ રમણીકલાલ એ કપાસી હા. મનસુખલાલભાઈ ૨૫૧
- આસનસોલ
- ૧ બાવીસી મણીલાલ ચત્રભુજના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ મણીબાઈ તરફથી હા. રસિકલાલ, અનિલકાત, વિનોદરાય આટકેટ ૨૫૧
- ૧ શાહ ચુનીલાલ નારણજી ૩૦૧
- ઉદયપુર
- ૧ શ્રીચુત સાહેબલાલજી મહેતા ૩૦૧
- ૨ શેઠ મોતીલાલજી રણજીતલાલજી હીગડ ૨૫૧
- ૩ શેઠ મગનલાલજી બાગરેયા ૨૫૧
- ૪ અ સૌ જડેન ચ દ્રાવતી તે શ્રીમાન બહોતલાલજી નાહરના ધર્મપત્નિ હા શેઠ રણજીતલાલજી હીગડ ૨૫૧
- ૫ સ્વ શેઠ કાળુલાલજી લોઢાના સ્મરણાર્થે હા શેઠ દોલતસિંહજી લોઢા ૨૫૧
- ૬ સ્વ શેઠ પ્રતાપમલજી સાંબલાના સ્મરણાર્થે હા પ્રાણુલાલ હીરાલાલ સાંબલા ૨૫૧
- ૭ પૂજ્ય પિતાશ્રી મોતીલાલજી મહેતાના સ્મરણાર્થે હા રણજીતલાલજી મોતીલાલજી મહેતા ૨૫૧
- ૮ શેઠ છગનલાલ બાગરેયા ૨૫૧
- ૯ શેઠ લીમરાજ યાવરચ દ બાકુલા ૨૫૧
- ઉમરગાંવરોડ
- ૧ શાહ મોહનલાલ પોપટલાલ પાનેલીવાળા ૨૫૧
- ઉપલેટા
- ૧ શેઠ જેઠાલાલ ગોરધનદાસ ૨૫૧
- ૨ સ્વ જેન સતોકબેન કચરા હા ઝોગમચ દભાઈ, છોટાલાલભાઈ તથા અમૃતલાલભાઈ વાલજી (કચાણુવાળા) ૨૫૧

- ૩ શેઠ ખુશાલચંદ કાનજીભાઈ હા. શેઠ પ્રતાપભાઈ ૨૫૧
- ૪ સ ઘાણી મૂળચ કર હરજીવનભાઈના સ્મરણાર્થે ૨૫૧
- હા તેમના પુત્રો જય તીલાલભાઈ તથા રમણીકલાલ ૨૫૧
- ૫ દોશી વિઠ્ઠલજી હરખચ દ (આગળના રૂા ૧૫૧ મળીને) ૨૫૧
- ૧ શાહ ગોકળદાસ ચામજી ઝોડન કેમ્પ ૨૫૧
- ૨ શાહ જગમોહનદાસ પરસોતમદાસ ઉદાણી ૨૫૧
- ૧ શ્રી કલકત્તા નૈન ટ્રવે સ્થા કેલકત્તા ૨૫૧
- હા શાહ જયસુખલાલ પ્રભુલાલ (ચુજરાતી) સ ઘ ૨૫૧
- ૧ શેઠ મોહનલાલ નેઠાભાઈના સ્મરણાર્થે હા. ગેઠ આત્મારામ મોહનલાલ ૨૫૧
- ૨ ડો મયાચ દ મગનલાલ શેઠ હા ડો રતનચ દ મયાચ દ ૨૫૧
- ૩ સ્વ નાથાલાલ ઉમેદચ દના સ્મ-ણાર્થે હા શાહ રતીલાલ નાથાલાલ ૨૫૧
- ૪ શાહ મણીલાલ તલકચ દના સ્મરણાર્થે હા મારકતીયા ચ દુલાલ મણીલાલ ૨૫૧
- ૫ સ્વર્ગસ્થ શ્રીયુત વાડીલાલ પરગોત્તમદાસના સ્મરણાર્થે ૨૫૧
- હા વેલાભાઈ તથા આત્મારામભાઈ ૨૫૧
- ૬ શેઠ નાગરદાસ કેશવલાલ ૨૫૧
- ૭ શ્રી સ્થાનકવાસી નૈન સ ઘ હ શેઠ આત્મારામભાઈ મોહનલાલભાઈ ૨૫૧
- ૧ શ્રી સ્થા દરીયાપુરી નૈન સ ઘ હા ભાવસાર દામોદરદાસભાઈ ઇન્દરભાઈ ૨૫૧
- કંડી ૨૫૧
- ૧ શાહ રમણીકલાલ ત્રેમચ દભાઈ કાનપુરે (આગળના રૂા ૧૫૦ મળીને) ૩૦૦
- ૨ શાહ હરકીશનદાસ કૂલચ દભાઈ કેદણી —(આટકેટ) ૨૫૧
- ૧ દોશી રતીલાલ ટોકરશીભાઈ કોલકત્તી ૨૫૧
- ૧ પટેલ ગોવિ હલાલ ભગવાનજી ખાખીન્દળીયા ૨૫૧
- ૨ પટેલ ખીમજી નેઠાભાઈ વાઘાણી (તેમના સ્વ સુપુત્ર રામજીભાઈના સ્મરણાર્થે) ૩૦૨
- ૧ બાટવીયા શુલાબચ દ લીલાધર (આગળના રૂા ૧૫૧ મળીને) ૨૫૧
- ૧ શેઠ કીશનલાલ પૃથ્વીરાજ ખીચન ૨૫૧

ડોંડાઇયા

- ૧ શ્રી સ્થા. જૈન સઘ હા. શેઠ ચપાલાલજી મારવે ૨૫૦
 ઢસા (વાયાધોળા)
- ૧ શ્રી ઢસાગામ શ્રી સ્થા જૈન સઘ હા એક મહમહમથ તરફથી ૨૫૧
 થાનગઢ
- ૧ શાહ ઠાકરશીભાઈ કચ્છનજી ૨૫૧
- ૨ શેઠ જેઠાલાલ ત્રીલોવનદાસ ૨૫૧
- ૩ શાહ ધારશીભાઈ પાશનીરભાઈ હા મુખલાલભાઈ ૨૫૧
 દહાણુ રોડ (થાણા)
- ૧ શાહ હરજીવનદાસ ઓઘડ ખધાર (કરાચીવાળા) ૨૫૧
 દિલ્હી
- ૧ લાલા પૂર્ણચંદ્ર જૈન (સેન્દ્રલ જેઠવાળા) ૩૫૧
- ૨ શ્રીચુત મહેતાખચંદ જૈન ૨૫૧
- ૩ લાલાજી મીઠૂનલાલજી જૈન એન્ડ મન્મ ૩૦૧
- ૪ લાલાજી ગુલશનરાયજી જૈન એન્ડ સન્સ ૩૦૧
- ૫ અ સૌ સન્નજનજેન ઈદરમલજી પારેખ ૨૫૧
 ધાર (મધ્યપ્રાત)
- ૧ શેઠ સાંગરમલજી પનાલાલજી ૨૫૧
- ધાગઢા
- ૧ શ્રી સ્થા જૈન મોટા સઘ હા શેઠ મગજીભાઈ જીવરાજ ૨૫૧
- ૨ સઘવી નરસીદાસ વખતચંદ ૩૦૧
- ૩ ઠક્કર નારણદાસ હરગોવીંદદાસ ૨૫૧
- ૪ કોઠારી કપૂરચંદ મગજી ૨૫૧
- ધોરાજી
- ૧ મહેતા પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ ૩૫૧
- ૨ પિતાશ્રી ભગવાનજી ઠચરાભાઈના સ્મરણાર્થે ૨૫૧
 હા પટેલ દલીચંદ ભગવાનજી
- ૩ અ સૌ ખચીજેન ખાખુભાઈ ૨૫૧
- ૪ ધી નવ સૌરાષ્ટ્ર ઓઈલ મીલ પ્રા લીમીટેડ ૨૫૧
- ૪ સ્વ રાયચંદ પાનાચંદ શાહના સ્મરણાર્થે હા ચીમનલાલ રાયચંદ ૩૦૧
- ૬ ગાધી પોપટલાલ જેચંદ ૨૫૦
- ૭ દેશાઈ છગનલાલ ઠાહ્યાભાઈ લાઠવાળાના ધર્મપત્નિ દિવાળીજેન ૨૫૧
 તરફથી હા કુમારી હનુમતી

ધ ધુકા

- ૧ ભાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઈ ૨૫૧
 ૨ શેઠ પોપટલાલ ધારશી ૨૫૧
 ૩ સ્વ શુભાબચ દભાઈના સ્મરણાર્થે હા પોપટલાલ નાનચ દ ૨૫૧
 ૪ વસાણી ચત્રજી વાઘજીભાઈ ૨૫૧

ન દુરખાર

- ૧ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ હા શેઠ પ્રેમચ દ લગવાનલાલ ૨૫૦
 પાણસણા

- ૧ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ ૨૫૧

પાલણુપુર

- ૧ લક્ષ્મીબેન હા મહેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ ૨૫૧
 ૨ શ્રી લોકાગચ્છ સ્થાનકવાસી જૈન પુસ્તકાલય ૨૫૧
 ૩ મહેતા મણીલાલ ભાઈચ દભાઈ ૨૫૧
 ૪ મહેતા સુરજમલ ભાઈચ દભાઈ ૨૫૧

પાલેજ

- ૧ સ્વ મનસુખલાલ મોહનલાલ સઘવીના સ્મરણાર્થે ૩૦૧
 હા ભાઈ ધીરજીલાલ મનસુખલાલ

પુના

- ૧ શેઠ ઉત્તમચ દજી કેવળચ દજી ધોડા ૨૫૧

પ્રાંતિજ

- ૧ શ્રી પ્રાંતિજ રથા જૈનસઘ હા શ્રીયુત અબાલાલ મહાસુખગમ ૨૫૧
 અરવાળા (ધિલાશા)

- ૧ સ્વ મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે ૨૫૧
 હા તેમના ધર્મપતિ સુરજબેન મોરારજી
 બગસરા (ભાયાણી)

- ૧ શેઠ પોપટલાલ રાઘવજી રાયડીવાળા હા. શેઠ માનસ જ પ્રેમચ દ ૨૫૧
 બેરાળ (કચ્છ)

- ૧ શેઠ ગાગજી કેશવજી (સાનલ ડાંગ માટે) ૨૫૧

બે ગલોર

- ૧ ખાટવીયા વનેચ દ અમીચ દ મહાડીર ઠેક્ષટાઈલ સ્ટોર તરફથી ૨૫૨
 ભાઈ ચ દ્રકાતના લગ્નની ખુશાલીમા

બોટાદ

- ૧ સ્વ વસાણી હરગોવિંદ દદામ છગનલાલના સ્મરણાર્થે ૨૫૧
 હા તેમના ધર્મપતિ છબલબેન

બાકાનેર

- ૧ શેઠ લેક્ષ્મીદાસ શેઠીયા ૨૫૪

બોડેલી

- ૧ શાહ પ્રવિણચંદ્ર નરસીદાસ (સાણદવાળા) ૨૫૧
 ૨ શાહ ગીરધરલાલ સાકરચંદ ૨૫૧

ભાણુવડ

- ૧ શેઠ જ્યેષ્ઠભાઈ માણેકચંદ ૩૫૨
 ૨ સઘવી માણેકચંદ માધવજી ૨૫૧
 ૩ શેઠ લાલજીભાઈ માણેકચંદ (લાલપુરવાળા) ૨૫૧
 ૪ શેઠ રામજી જીણાભાઈ ૨૫૧
 ૫ શેઠ પદમશી ભીમજી કૌશ્ઠરીઆ ૨૫૧
 ૬ કૌશ્ઠરીઆ ગાડાલાલ કાનજીભાઈ હા અ સૌ શાતાબેન વમનજી ૨૫૧
 ૭ વકીલ મણીલાલ જેગારભાઈ પૂનાતર ૨૫૧

ભીલવાડા

- ૧ શ્રી શાંતિ નૈન પુસ્તકાલય હા ચાદમલજી માનમલજી સઘવી ૨૫૧
 ૨ શેઠ ભીમરાજ મીશ્રીલાલજી ૨૫૧

ભોજપુર (કચ્છ)

- ૧ જ્ઞાન મદિરના સેક્રેટરી શાહ કુવરજી જીવરાજ ૨૫૧

ભાવનગર

- ૧ સ્વ કુવરજી બાવાભાઈના સ્મરણાર્થે હા શાહ લહેરચંદ કુવરજી ૩૦૧

મદ્રાસ

- ૧ શેઠ મેઘરાજજી દેવીચંદજી ૨૫૧

મનોર (થાણા)

- ૧ શાહ શેરમલજી દેવીચંદજી જસવતગઢવાળા
 હા પૂનમચંદજી શેરમલજી બોલ્યા ૨૫૧

માનકુવા (કચ્છ)

- ૧ સ્વ મહેતા કુવરજી નાથાલાલના સ્મરણાર્થે
 હા તેમના ધર્મપત્નિ કુવરબાઈ હરખચંદ ૨૫૧
 (માનકુવા સ્થાનકવાસી નૈનમઘ માટે)

સુબઈ તથા પરાઓ

- ૧ શેઠ હગનલાલ નાનજીભાઈ ૨૫૧
 ૨ શાહ હરજીવન કેશવજી ૨૫૧
 ૩ ઘેલાણી પ્રભુલાલ ત્રીકમજીભાઈ (બારીવડી); ૨૫૨
 ૪ શેઠ ઊઠુભાઈ હરગોવિંદદાસ કટોરીવાલા ૨૫૧

૫	શ્રી વર્ધમાન સ્વા ભૈન મઘ હા કેશરીમલ્લ અનોપચ દ્વલ શુગળીયા (મલાડ)	૨૫૧
૬	શેઠ દુગરગી હ શરાજ વીસરીયા	૨૫૧
૭	શાહ રમણીકલાલ કાળીદામ તથા અ સૌ કાન્તાબેન રમણીકલાલ	૨૫૧
૮	શાહ હિંમતલાલ હરજીવનદાસ	૨૫૧
૯	શાહ રતનગી મોણગીની ક પની	૨૫૧
૧૦	શાહ ગીવજી માણેજ (કન્થ બેગલવાળા)	૨૫૧
૧૧	વેરા પાનાચ દ મઘજના સ્મરણાર્થે હા ત્રણકલાલ પાનાચ દ એન્ડ બ્રધર્સ	૨૫૧
૧૨	સ્વ પૃ પિતાશ્રી વીરચ દ જેમી ગભાર્થ લખતગ્વાળાના સ્મરણાર્થે હા ડેશવલાલ વીરચ દ શેઠ	૨૫૧
૧૩	શા કુવરજી હ મરાજ	૨૫૧
૧૪	સ્વ માતૃશ્રી માણેજબેનના સ્મરણાર્થે હા શેઠ વલભદામ નાનજી (પોરબ દરવાળા)	૩૦૧
૧૫	એક સફગૃહસ્થ હા શેઠ સુદરલાલ માણેજચ દ	૨૫૧
૧૬	અ સૌ પાનબાર્થ હા શેઠ પદમગી નેરસિંહભાર્થ (મલાડ)	૨૫૧
૧૭	શ્રીચુત અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા વલીચ દ અમૃતલાલ	૨૫૧
૧૮	સ્વ શાહ નાગરી સોજપાળ શુદ્ધાળાવાળાના સ્મરણાર્થે હા સમજી નાગરી (મલાડ)	૨૫૧
૧૯	શાહ સમજી ડરગનજી ચાનગઢવાળા	૨૫૧
૨૦	શાહ નગીનદામ કલ્યાણજી વેરાવળવાળા	૨૫૧
૨૧	ગીવલાલ શુલાબચ દ શેઠ મેવાવાળા	૨૫૧
૨૨	સ્વ જટાશ કર દેવજી દોગીના સ્મરણાર્થે હા રબુછોડદાસ (બાણુલાલ) જટાશ કર દોશી	૩૦૧
૨૩	સ્વ ગોડા વણાગી ત્રીલોવન સરસઈવાળા સ્મરણાર્થે હા જગજીવન વણારશી ગોડા (મલાડ)	૨૫૧
૨૪	સ્વ ત્રીલોવનદાસ વજપાળ વી છીયાવાળાના સ્મરણાર્થે હા હરગોવિંદદાસ ત્રીલોવનદાસ અજ મેરા	૨૫૧
૨૫	સ્વ કાનજી મૂળજીના સ્મરણાર્થે તથા માતૃશ્રી દિવાળીબાર્થના ૧૬ ઉપવાસના પારણા પ્રસ જે હા જય તીલાલ કાનજી કાળાવડવાળા(મલાડ)	૨૫૧
૨૬	શેઠ ખુશાલભાર્થ જે ગારભાર્થ	૨૫૦
૨૭	શાહ પ્રેમજી માલગી ગંગર (મલાડ)	૨૫૧

- ૭૬ શેઠ મનુભાઈ માણેકચંદ હા ઝાટકીયા નરભેરામ મોરારજી (ઘાટકોપર) ૨૫૧
- ૭૭ જેતાણી મણીલાલ કેશવજી (વડીયાવાળા) ઘાટકોપર ૨૫૧
- ૭૮ સ્વ કસ્તુરચંદ અમરશીના સ્મરણાર્થે હા તેમના ધર્મપત્નિ
 ઝવેરબેન મગનલાલની પત્ની-જય તીલાલ કસ્તુરચંદ મસ્કારીયા
 (ચુડાવાળા) ૨૫૧
- ૭૯ સ્વ પૂજ્ય માતૃશ્રી જઠલબાઈના સ્મરણાર્થે
 હા દેશાઈ મજલાલ ઠાળીદાસ (મલાડ) ૨૫૧
- ૮૦ શાહ નટવરલાલ દીપચંદ તરફથી તેમના ધર્મપત્નિ
 અ સૌ સુશીલાબેનના વર્ષીતપની પ્રુથાલીમા ૨૫૧
- ૮૧ શેઠ રસીદલાલ પ્રભાશંકર મોરળીવાળા તરફથી તેમના માતૃશ્રી
 મણીબેનના સ્મરણાર્થે ૩૦૧
- ૮૨ કોટીયા જય તીલાલ રણછોડદાસ સૌભાગ્યચંદ જુનાગઢવાળા ૨૫૧
- ૮૩ મોદી અલેચંદ સુરચંદ રાજકોટવાળા હા ડોસાલાલ અલેચંદ ૨૫૧
- ૮૪ સ્વ શાહ રાયશી કચ્છરાલાઈના સ્મરણાર્થે તેમના
 ધર્મપત્નિ નેણુબાઈ પત્ની હ શાહ જેઠાલાલ રાયશી ૨૫૧
- ૮૫ શ્રીચુત જે સી વોરા ૨૫૦
- ૮૬ શ્રી વર્ધમાન સ્થા જૈન શ્રાવક સઘ હ સઘવી ચીમનલાલ અમરચંદ(દાદર) ૨૫૧
- ૮૭ સ્વ આશારામ ગીરધરલાલના સ્મરણાર્થે હ શાંતિલાલ
 આશારામની પત્ની જસવતલાલ આશારામ લખતરવાળા ૨૫૧

માડવી (કચ્છ)

- ૧ શ્રી સ્થા છ કોટી જૈન સઘ હા મહેતા ચુનીલાલ વેલજી ૨૭૭

માંડવા (ધોળાજ કચ્છ)

- ૧ શ્રી માંડવા સ્થા જૈન સઘ હ અ સૌ કચ્છનગૌરી રતિલાલ
 ગોસલીયા ગઢડાવાળા ૨૫૧

મેસાણા

- ૧ શાહ પદમશી સુરચંદના સ્મરણાર્થે હા શીવલાલ પદમશી વીરમગામબાળા ૨૫૧

મોરખાસા

- ૧ શાહ દેવરાજ પેથરાજ ૨૫૦
 ૨ શ્રીચુત નાથાલાલ ડી મહેતા ૨૫૧

યાદગીરી

- ૧ શેઠા યાદરમલજી સૂરજમલજી બેન્કસ ૨૫૦

રાણપુર (આલાવાડ)

૧ શ્રીમતિ માતુશ્રી મમરતબાઈના સ્મરણાર્થે
હા. ડો. નરોત્તમદાસ ચુનીલાલ કાપડીયા ૨૫૧

રાણાવામ (મારવાડ)

૧ શેઠ જ્ઞાનમલજી નેમીચંદજી હા બાબુ રીખબચંદજી ૩૦૧
રાજકોટ

૧ ધી વાડીલાલ ડાઈંગ એન્ડ પ્રિન્ટીંગ વર્કસ ૪૦૦

૨ શેઠ રતીલાલ ન્યાલચંદ ૨૫૧

૩ બાબુ પરશુરામ છગનલાલ શેઠ (ઉદેપુરવાળા) ૨૫૦

૪ શેઠ મનુભાઈ મુળચંદ (એન્જનીયર સાહેબ) ૨૫૧

૫ શેઠ શાન્તીલાલ પ્રેમચંદ તેમના ધર્મપત્નિના વરસીતપ પ્રસંગે ૨૫૧

૬ ઉદાણી ન્યાલચંદ હાકેમચંદ વકીલ ૨૫૧

૭ શેઠ પ્રવરોમ વીકુલજી ૨૫૧

૮ બહેન મયુબાળા નૌત્તમલાલ જસાણી (વરસીતપની પુશાલી) ૨૫૧

૯ મોદી મૌલાજીચંદ મોતીચંદ ૨૫૧

૧૦ બહાણી ભીમજી વેલજી તરફથી તેમના ધર્મપત્નિ

અ સૌ સમસ્તજેનના વરસીતપની પુશાલી ૨૫૧

૧૧ દોશી મોતીચંદ ધારશીભાઈ (રીટાયર્ડ એન્જનીયર સાહેબ) ૨૫૧

૧૨ કામદાર ચંદુલાલ જીવરાજ ૨૫૦

૧૩ હેમાણી થેલુભાઈ સવચંદ ૨૫૧

૧૪ પ્રભુલાલ ન્યાલચંદ દક્તરી ૨૫૧

૧૫ સ્વ મહેતા દેવચંદ પુરુષોત્તમદાસના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ

હેમકુવરબાઈ તરફથી હા ન્ય તીલાલ દેવચંદ મહેતા ૨૫૧

રાજકોટકેરડા (ભીલવાડા)

૧ શ્રીમાન જોગવંમલજી ધર્મચંદજી ડુગરવાલ [સુનીશ્રી માગીલાલજીના
ઉપદેશથી] ૨૫૧

રાયચુર

૧ સ્વ માતુશ્રી મોઘીબાઈના સ્મરણાર્થે હા શાહ ગીવલાલ
શુલાબચંદ વઢવાણવાળા ૨૫૧

રંગુન

૧ કામદાર ગોરધનદામ મગનલાલના ધર્મપત્નિ અ સૌ કમળાબેન ૨૫૧
ગપર (કમ્બ)

૧ પુન્ય વાલજીભાઈ ન્યાલચંદ ૨૫૧

- ૧૦ પારેખ મણીલાલ ટોઠરશી લાંતીવાળા તરફથી (ગોટીબેનના સ્મરણાર્થે) ૨૫૧
- ૧૧ શાહ નારણદાસ નાનજીભાઈના સુપુત્ર વાડીલાલભાઈના ધર્મપતિન અ સૌ.
નારગીબેનના વરસીપત નિમીત્તે હા શાન્તીભાઈ ૨૫૧
- ૧૨ સ્વ છળીલદાસ ગોઠજદાસના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપતિન
કમળાબેન તરફથી હા મળુલાકુમારી ૨૫૧
- ૧૩ શ્રી સ્થા જૈન શ્રાવિકા સ ઘ હા પ્રમુખ અ ગૌ રભાબેન વાડીલાલ ૨૫૧
- ૧૪ સ્વ ત્રીલોવનદાસ દેવચંદ તથા સ્વ અ સૌ ચચળબેનના
સ્મરણાર્થે હા ડા હિ મતલાલ સુખલાલ ૨૫૧
- ૧૫ શાહ મૂળચંદ કાનજીભાઈ તરફથી હા નાગરદાસ ઓઘડભાઈ, ૨૫૧
- ૧૬ શેઠ મોહનલાલ પીતાબરદાસ હા ભાઈ કેશવલાલ તથા મનસુખભાઈ ૨૫૧
- ૧૭ શ્રીમતી હીરાબેન નથુભાઈના વરસીપત નિમિત્તે
હા નથુભાઈ નાનચંદ શાહ ૩૦૧
- ૧૮ સ્વ મણીયાર પરસોતમદાસ સુંદરજીના સ્મરણાર્થે
હા શેઠ સાકરચંદ પરસોતમદાસ ૨૫૧
- ૧૯ શેઠ મણીલાલ શીવલાલ ૨૫૧

વેરાવલ

- ૧ શાહ કેશવલાલ જ્યેષ્ઠભાઈ ૨૫૧
- ૨ શાહ ખીમચંદ સૌભાગ્યચંદ વસનજી ૨૫૧
- ૩ સ્વ. શેઠ મદનજી જ્યેષ્ઠભાઈ માગરોજવાળાના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપતિન
લાડકુવરભાઈ તરફથી હા ધીરજલાલ મદનજી ૨૫૧

સરખેજ

- ૧ સ્વ પિતાશ્રી શાહ ફકીરચંદ પુળભાઈના સ્મરણાર્થે
હા શાહ રમણલાલ ફકીરચંદ ૨૫૧

સુતારા

- ૧ સ્વ. મદનલાલજી કુદનમલજી કોઠારીના સ્મરણાર્થે હા તેમના ધર્મપતિન
રાજકુવરભાઈ મદનલાલજી ૨૫૧

સાદડી

- ૧ શેઠ દેવરાજજી જીતમલજી પૂનમીયા ૨૫૧

સાલખની (બ ગાળ)

- ૧ દોશી ચુનીલાલ કુલચંદ મોરખીવાળા ૨૫૦

સાણુદ

- ૧ શાહ હીરાચંદ છગનલાલ હા શાહ ચીમનલાલ હીરાચંદ ૩૦૧
- ૨ અ સૌ ચ પાબેન હા દોશી જીવરાજ લાલચંદ ૨૫૧
- ૩ પટેલ મહાસુખલાલ ડોસાભાઈ ૨૫૧
- ૪ શાહ સાકરચંદ કાનજીભાઈ ૨૫૧

- ૫ પુરીબેન ચીમનલાલ કટયાણી સંઘવી લીમડીવાળાના સ્મરણાર્થે ૨૫૧
- ૬ ડા વાડીલાલ મોહનલાલ કોઠારી ૨૫૧
- ૬ પારેખ નેમચંદ મોતીચંદ સુળીવાળાના સ્મરણાર્થે ૨૫૧
- ૭ ડા પારેખ ભીખાલાલ નેમચંદ ૨૫૧
- ૭ સઘવી નારણદાસ ધરમશીના સ્મરણાર્થે ૨૫૧
- ૧ શ્રી સ્થા નૈન મઘ ડા શાહ છોટુભાઈ અભેચંદ ૨૫૧
- ૨ શ્રીચુત કટયાણીચંદ માણિકેચંદ હડાલાવાળા ૨૫૧
- ૧ સાવળા શામળ હીરજી તરકશી સદાનદી નૈન સુનિશ્રી છોટાલાલ ૨૫૧
- ૧ મહારાજના ઉપદેશથી સુવર્ષ સ્થા નૈન સઘ જ્ઞાનભ ડારને લેટ ૨૫૧
- ૧ શેઠ ચાપશીભાઈ સુખલાલ સુવર્ષ (કચ્છ) ૨૫૧
- ૨ ભાવસાર ચુનીલાલ પ્રેમચંદ સુરેન્દ્રનગર ૨૫૧
- ૩ સ્વ કેશવલાલ મૂળજીભાઈના ધર્મપત્નિ અમૃતભાઈના સ્મરણાર્થે ૨૫૧
- ૪ ડા શાહ કેશવલાલ (થાનગઢવાળા) ૨૫૧
- ૪ શાહ ન્યાલચંદ હરખચંદ ૨૫૧
- ૫ શાહ વાડીલાલ હરખચંદ ૨૫૧
- ૧ શાહ હુણીજી ગુલાખચંદ મળેલી (પચમહાલ) ૨૫૧
- ૨ શ્રી સ્થા નૈન મઘ ડા શેઠ પ્રેમચંદ દલીચંદ ૨૫૧
- ૧ શેઠ ગોપાલજી મીઠાભાઈ ડાટીનામાળીયા ૨૫૧
- ૧ અમુલખભાઈ સુળજી ડા પ્રકાશચંદ અમુલખ ૨૫૦
- ૨ સ્વ બેન ચંદ્રકાન્તાના સ્મરણાર્થે ડા અમુલખ સુળજીભાઈ ૩૦૧
- ૧ હીરાચંદ વનેચંદજી કટારીઆ હુબલી ૩૦૧
- ૫ આઘ સુરખીશ્રીઓ સુધી મેમ્બરોની સંખ્યા ૨૫૧
- ૨૧ સુરખીશ્રીઓ ૪૯ સહાયક મેમ્બરો
- ૬૯ બીજા કલાસના મેમ્બરો
- ૬૯ બીજા કલાસના મેમ્બરો

રાજકોટ તા ૧૦-૧૨-૫૮ કુલ મેમ્બરો ૫૫૬

સાકરચંદ ભાઈચંદ શેઠ

મત્રિ

શ્રી અખિલ ભારત સ્વેતાગ્નર સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિની

અગત્યની અપીલ

સ્થાનકવાસી જૈન લાઇઓ અને બહેનો:—

સ્થાનકવાસી સમાજને જે અવલગન છે તેમા પહેલુ મુનિવર્ગ અને બીજુ શાસ્ત્રશ્રવણ છે. ન્યા ન્યા મુનિમહારાજનેની ગેરહાજરી હોય છે (અને લવિધ્યમા રહેવાની છે) તે સ્વળે આ શાસ્ત્રો સ્થાનકવાસી ઠોમને ટકાવી રાખવા મોટામા મોટું સાધન છે

ઓછામા ઓછાં રૂ ૫૦૦૦ આપી આઘ મુરબીપદ આપ દિવાપી શકો છો

ઓછામા ઓછા રૂ ૧૦૦૦ આપી મુરબીપદ મેળવી શકો છો

ઓછામા ઓછા રૂ ૫૦૦ આપી 'મહાયક' મેમ્બર બની શકો છો

અને ઓછામા ઓછા રૂ ૨૫૦ આપી લાઇફ મેમ્બર તરીકે દરેક લાઇ યેન દાખલ થઈ શકે છે,

ઉપુરના દરેક મેમ્બરને ૩૨ સૂત્રો તથા તેના તમામ ભાગો મળી લગભગ ૭૦ ગ્રંથો જેની કિંમત લગભગ ૮૦૦ ઉપર થાય છે તે લેટ તરીકે મળી શકે છે અને દરેક શાસ્ત્રમા તેમનું નામ પ્રસિદ્ધ કરવામા આવે છે

દરેક શાસ્ત્ર ૪ લાપામા તૈયાર થાય છે એટલે દરેક પાનામા ૪ લાપા જેવામા આવશે ઉપરમા અર્ધમાગંધી, તેની નીચે સસ્કૃત છાયા-ટીકા ત્યાર બાદ હીન્દી રાષ્ટ્રલાપા અને છેવટે ગુજરાતીમા અનુવાદ જેવામા આવશે

શ્રમણ વર્ગ, શ્રાવક વર્ગને દરેક પ્રદેશમા વસતા સમાજના દરેક અંગને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થાય તેવી રીતે ખ્યાલ કરીને શાસ્ત્રની રચના કરવામા આવે છે

બહાર દેશાવરમા વસતા આપણા લાઇઓને તેમજ ગામડામા વસતા શ્રાવકોને તેમજ કુરસદે વાચન કરનાર બહેનો તેમજ વિદ્યાર્થીઓને એક સરખુ ઉપયોગી થઈ શકે તેવુ સાહિત્ય ખીણ કોઈ જગ્યાએ મળી શકે તેમ નથી

શ્રી અખિલ ભારત સ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિની

અગત્યની અપીલ

સ્થાનકવાસી જૈન લાઇઓ અને બહેનો :—

સ્થાનકવાસી સમાજને જે અવલગન છે તેમા પહેલુ મુનિવર્ગ અને બીજુ શાસ્ત્રવલુ છે ન્યા ન્યા મુનિમહારાજોની ગેરહાજરી હોય છે (અને ભવિષ્યમા રહેવાની છે) તે સ્થળે આ શાસ્ત્રો સ્થાનકવાસી કોમને ટકાવી રાખવા મોટામા મોઢે સાધન છે

ઓછામા ઓછા રૂ. ૫૦૦૦ આપી આઠ મુરખીપદ આપ દિપાવી શકો છો

ઓછામા ઓછા રૂ. ૧૦૦૦ આપી મુરખીપદ મેળવી શકો છો

ઓછામા ઓછા રૂ. ૫૦૦ આપી સહાયક મેમ્બર બની શકો છો.

અને ઓછામા ઓછા રૂ. ૨૫૦ આપી લાઇફ મેમ્બર તરીકે દરેક લાઇબ્રેરી દાખલ થઈ શકે છે,

ઉપરના દરેક મેમ્બરોને ૩૨ સૂત્રો તથા તેના તમામ ભાગો મળી લગભગ ૭૦ ગ્રંથો જેની કિંમત લગભગ ૮૦૦ ઉપર થાય છે તે ભેટ તરીકે મળી શકે છે અને દરેક શાસ્ત્રમા તેમજુ નામ પ્રસિદ્ધ કરવામા આવે છે

દરેક શાસ્ત્ર ૪ ભાષામા તયાર થાય છે એટલે દરેક પાનામા ૪ ભાષા જોવામા આવશે ઉપરમા અર્ધમાગંધી, તેની નીચે સસ્કૃત છાયા-ટીકા ત્યાર બાદ હિન્દી સંસ્કૃતભાષા અને છેવટે ગુજરાતીમા અનુવાદ જોવામા આવશે

મનુષ્ય વર્ગ, શ્રાવક વર્ગને દરેક પ્રદેશમા વસતા સમાજના દરેક અંગને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થાય તેવી રીતે ખ્યાલ કરીને શાસ્ત્રની રચના કરવામા આવે છે

બહાર દેશાવરમા વસતા આપણા લાઇઓને તેમજ ગામડામા વસતા શ્રાવકોને તેમજ કુરસડે વાચન કરનાર બહેનો તેમજ વિદ્યાર્થીઓને એક સરખુ ઉપયોગી થઈ શકે તેવુ સાહિત્ય પૂરું કૌઈ જગ્યાએ મળી શકે તેમ નથી

